Saraswati. 1938
Part-I

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ३९, खण्ड १
जनवरी से जून
१९३८

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल
श्रीनाथसिंह

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
वार्षिक मूल्य साढ़े चार रुपये

लेख-सूची

चित्र-सूची

रङ्गीन-चित्र

सादे-चित्र



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जनवरी १९३८ | भाग ३९, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४५७ | पौष १९९४

टूटी कड़ियाँ

लेखक, श्रीयुत विश्वम्भरनाथ

ह-जनित पीड़ा के रव से, उपजा था सङ्गीत;
णी औ' अम्बर के, कण कण में छाये थे गीत !

लिदास की मुग्ध लेखनी, उमड़ी गतिधारा-सी;
ग-रागिनी गूँज रही थी, मग्न दिशा हारा-सी !

शत युग के गोपनीय, भावों की बनकर भाषा;
सहस्रों गीतों से, मुखरित मोहक प्रत्याशा !

या मन का भाव गगन में, या अन्तर-ध्वनि खोई;
व्यथा की जीर्ण साधना, अलस-भाव से रोई !

नी पीड़ा सही, हृदय को मैं कैसे समझाऊँ ?
व सन्ध्या में वियोग का, कोई गीत सुनाऊँ !

सोचा था मेरी आहों से, व्याकुल गीत बनेंगे
टूटे अक्षर जोड़ जोड़, कोमल सङ्गीत बनेंगे

विरह-पीर की गाथा गूँजेगी, सब वन-उपवन में;
सिहर उठेगी राधा रानी, मन के वृन्दावन में !

अपने मन की वीणा के, छूकर दो तार जगाये
धूल-धूसरित कलियों के, कितने उपहार बनाये

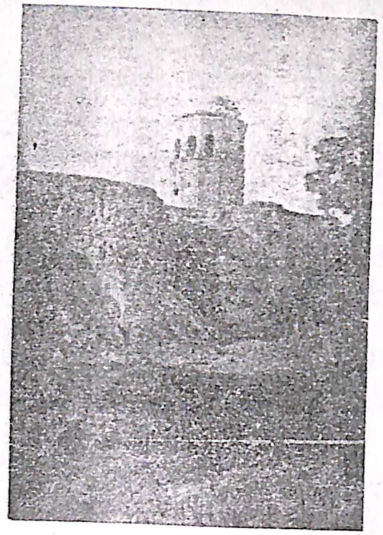
सोचा था शायद यौवन की, सुखद कल्पना जागे;
सोचा था शायद जीवन की, क्षुब्ध निराशा भागे !

मेरी टूटी कड़ियों पर, सारी वसुधा मुसकाती
मेरे मन की तीव्र वेदना, रह रह कर शरमाती

पञ्चाल के संस्मरण

लेखक, श्रीयुत उमेशचन्द्रदेव

पञ्चाल फ़र्रुख़ाबाद-ज़िले का प्राचीन नाम है। लेखक महोदय ने इसी ऐतिहासिक भूभाग का सप्रमाण परिचय इस लेख में दिया है। उन्होंने समस्त पञ्चाल का ४ बार भ्रमण किया है और उस पर एक ग्रन्थ लिखने के लिए काफ़ी अधिक सामग्री एकत्र की है। इस लेख में उन्होंने अपने उक्त भ्रमण के अनुभवों का संक्षेप में परिचय दिया है। यह लेख अपने विषय का नया ही नहीं, किन्तु पहला भी है।



[राजा द्रुपद के कोट का एक-मात्र टूटा हुआ बुर्ज—कम्पिल]

फ़र्रुख़ाबाद से छोटी लाइन के द्वारा मथुरा की ओर चलने पर, क़ायमगंज और रुदायन के बीच में, रेल से उत्तर की ओर एक झील दिखाई देती है। यह झील गर्मियों में सूखी-सी रहती है, पर वर्षाकाल में बारह-चौदह मील के घेरे में फैल जाती है। इसके किनारों पर आम के घने बाग़ हैं। यहाँ के निवासी इसे 'सरदीपक ताल' कहते हैं। साधारणतः इस ताल का कोई महत्त्व नहीं है, न किसी यात्री का इसकी ओर आकर्षण ही होता है; पर दस-बीस वर्ष बाद जब आश्विन के महीने में सोमवती पड़ जाती है तब इस ताल के आस-पास की भूमि भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासियों से भर जाती है। सप्ताह, दो सप्ताह बड़ी चहल-पहल रहती है, एक्के-मोटरों का ताँता लग जाता है, सहस्रों डेरे-तम्बू दिखाई देते हैं। सैकड़ों चौकों में खीर पकती दिखाई देती है। पण्डितों व पुरोहितों का भाव चढ़ जाता है। श्राद्ध व पिण्डदान की बाढ़ आ जाती है। मन्त्रोच्चारण का ऐसा शब्द होता है, मानों सतयुग आ गया हो। एक छोटा-पूरा कुम्भ हो जाता है।

पास-पड़ोस के यजमान तो पिण्डदान करके घर की राह लेते हैं, पर वे यात्री जो बङ्गाल, बम्बई प्रभृति दूर के स्थानों से आते हैं, पिण्डदान से निवृत्त होकर यथावकाश पञ्चाल की भूमि के दर्शन भी करते हैं। इस प्रकार यह 'सरदीपक' नामक एक नगण्य जलाशय अपनी महत्ता के कारण इतिहास-प्रेमियों का ध्यान दस-बीस वर्ष बाद हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

कारी सोमवती बार बार नहीं पड़ती। अस्सी वर्ष वृद्धों के जीवन में भी यह संयोग दो तीन बार से अधिक नहीं आता। एक जनश्रुति है कि पांडव लोग इस ताला के पास उक्त पुण्यपर्व की प्रतीक्षा में निरन्तर कई वर्ष त पड़े रहे थे। इस तालाब के चारों ओर सैकड़ों मील घेरे में विशाल पञ्चाल की भग्नावशिष्ट विभूतियाँ बिख पड़ी हैं। इन विभूतियों के अध्ययन के लिए ओझा जी मस्तिष्क की सहायता नहीं लेनी पड़ती। कोई भूला-भटक पथिक जब इधर से आ निकलता है तब ये विभूतिय प्रत्येक बच्चे के मुख से अपनी रामकहानी कहने लगत हैं। इन ऐतिहासिक स्थानों के नाम तत्समता के इत सन्निकट हैं कि महाभारतकालीन नामों से इनका सामंजस करने में खींचतान नहीं करनी पड़ती। महाभारत तथ हरिवंशपुराण में इस तालाब का नाम 'शरद्वीप-तीर्थ लिखा है। इसका माहात्म्य लिखते हुए कहा गया है शरद्वीप के चक्रवाक,[1] मानसरोवर के राजहंस और गौ

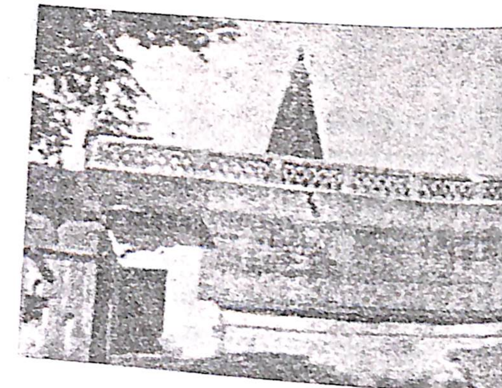
१—चक्रवाकाः शरद्वीपे मानसे राजहंसकाः।
ब्राह्मणा गौडदेशेषु प्रभवन्ति न संशयः॥
ततः पश्चान्नृपश्रेष्ठ शरद्वीपमितिस्मृतम्।
तीर्थमस्ति महापुण्यं............... ॥—महाभार

श के ब्राह्मण तीनों की समान गति है। आश्विन मास सोमवती पड़ने पर यहाँ पिण्डदान करने से गया-श्राद्ध का फल होता है[1]।

इस शरद्वीप से पश्चिम डेढ़ मील की दूरी पर रुदायन' गाँव है। यहाँ बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे का स्टेशन है। महाभारत में इसका नाम 'रुद्रायण-तीर्थ' और 'सोमाश्रयायण[2]-तीर्थ' दिया हुआ है। जब पांडव लोग द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए द्रुपद की राजधानी काम्पिल्य को जा रहे थे तब उन्हें रुद्रायण-तीर्थ बीच में मिला था[3]। पांडव लोग 'एका' नामक ग्राम में ब्राह्मण के घर पर रहते थे। यह एका सम्प्रति मैनपुरी-ज़िले में है। वहाँ से कम्पिल जाने के लिए रुदायन होकर ही मार्ग है। रुदायन और शरद्वीप के बीच में एक गढ़ा है। इस गढ़े की मिट्टी में, न जाने क्यों, केवड़े की सुगन्ध आती है। लोग इसकी मिट्टी पुड़ियों में बाँध कर दूर-दूर ले जाते हैं। रुदायन से दो मील पश्चिम 'भारागैन' नाम का एक बड़ा गाँव है। महाभारत में इसका नाम 'भार्गवायन' दिया गया है। पांडव इसी ग्राम में एक कुम्हार के घर ठहरे थे। आज-कल इस गाँव में मुसलमान भट्टियों के घर अधिक हैं। भार्गव का अर्थ कुम्हार है। जहाँ पांडवों को आश्रय देनेवाले कुम्हार का घर रहा होगा, उस स्थान की स्मृति आज तक सुरक्षित है। भारागैन के कुम्हार जो अपने को उसी कुम्हार का वंशज बतलाते हैं, उस स्थान पर मिट्टी का एक स्तूपाकार स्मारक परंपरा से बनाते चले आये हैं। भारागैन के कुम्हार कुम्हारों में चौधरी और कुलीन माने जाते हैं। बिरादरी में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

पांडव लोग कुम्हार के घर पर क्यों ठहरे थे? इसका उत्तर यह है कि पांडव लोग उन दिनों संन्यासी के वेश में थे, और जाबालोपनिषद् में संन्यासी का निवास निम्न स्थानों में कहा है—

शून्यगृह, देवालय, पर्णकुटी, वल्मीकि, वृक्षमूल वा कोटर, गिरिकन्दरा, विपिनस्थली, निर्जन सरित्तट और कुलाल-शाला (कुम्हार की चौपाल)। भारागैन से कम्पिल की ओर चलने पर एक छोटा-सा ग्राम 'धौमपुरा' मिलता है। यहाँ पांडवों के पुरोहित धौम्य जी का निवास-स्थान था। ये धौम्य जी वही थे जो अपने शिष्यों की 'अग्नि-परीक्षा' लिया करते थे। आरुणी आदि शिष्यों की परीक्षा की कहानी अनेक पाठक जानते होंगे। महाभारत में कहा है कि पञ्चाल को जाते हुए पांडव लोग आधी रात के समय गंगातट पर पहुँचे। उस समय एक यक्ष अपनी स्त्रियों के सहित गंगा जी की धारा में जल-क्रीड़ा कर रहा था। पांडवों को तट पर खड़ा देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। यक्ष ने बाहर निकल कर कहा कि "स्मृति के आज्ञानुसार मनुष्य को प्रहर रात्रि से प्रत्यूषकाल तक मार्ग नहीं चलना चाहिए, क्योंकि यह समय यक्ष, किन्नर, भूत, प्रेत और निशाचरों के लिए नियत है। आप लोग अनधिकारपूर्वक यहाँ क्यों आये? मैं अभी तुमको इसका मज़ा चखाता हूँ।" अर्जुन ने उत्तर दिया कि "गंगा जी प्राणिमात्र की माता हैं। वे किसी व्यक्ति या योनि-विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। माता के पास जो पुत्र जिस समय चाहे आ-जा सकता है। इसी अधिकार से हम यहाँ आये हैं। तुम हमें कदापि नहीं रोक सकते।" यक्ष



[जैन-मंदिर विक्रमीय ५४६ का।]

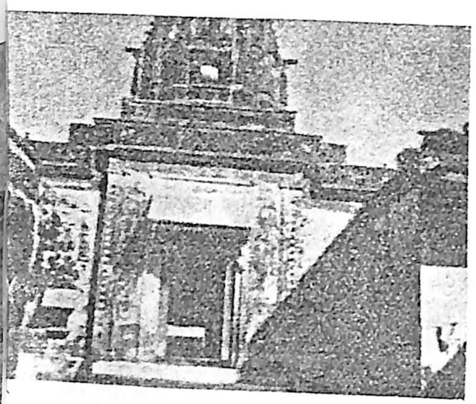
१—सोमवत्याममावास्यामाश्विने मासि यो नरः।
श्राद्धं कुर्य्यादत्र तस्य गयाश्राद्धफलं भवेत्।

२—सोमाश्रयः रुद्रः तस्य अयनम्, सोमाश्रयायणम् रुद्रायणम् इति,

—तट्टीकाकारः

३—ते त्वगच्छन्नहोरात्रात् तीर्थं सोमाश्रयायणम्।

—महाभारते



[जैन-मंदिर १९०४ विक्रमीय।]

की उपस्थिति में अपनी अवज्ञा सहन न कर सका। अर्जुन और यक्ष में युद्ध होने लगा। यक्ष पराजित और पांडवों की शरण में आया। धर्मराज ने क्षमा करके अपना मित्र बना लिया। यक्ष ने को सम्मति दी कि बिना पुरोहित किये क्षत्रिय की गति नहीं होती। अतः आप एक योग्य पुरोहित कर लीजिए। यहाँ पास ही धौम्य ऋषि रहते हैं; विद्वान् तथा कर्मनिष्ठ हैं। आप लोग उनसे पौरोहित्य याचना करें। पांडवों ने उसी दिन धौम्य जी के किये और उन्हें अपना पुरोहित नियुक्त कर लिया। आदर्श पथ-प्रदर्शक पाकर पांडवों को विश्वास कि स्वयंवर में उनकी विजय अवश्य होगी।



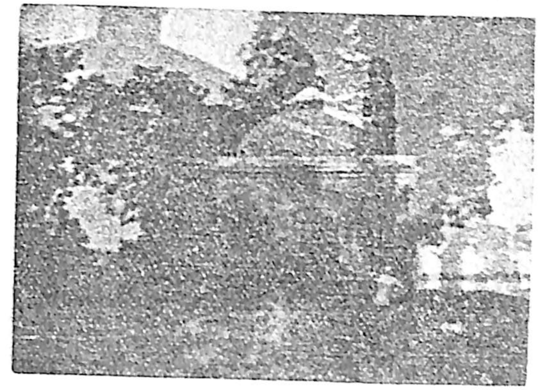
[सरदीपक ताल का एक दृश्य।]

'धौमपुरा' से आगे 'जाजपुरा' मिलता है। यहाँ जाजमुनि के आश्रम के चिह्न हैं। द्रोणाचार्य से तिरस्कृत द्रुपद-नरेश एक ऐसा ब्राह्मण चाहते थे जो लालची भी हो और यथेष्ट रुपया लेकर उन्हें ऐसा यज्ञ करा दे जिसके फल-स्वरूप द्रोण को मार सकनेवाली तेजस्वी सन्तान पैदा हो जाय। जाज इस पर राज़ी हो गये। यज्ञ कम्पिल में हुआ। फलतः उस कुण्ड से जो 'द्रौपदी-कुण्ड' नाम से प्रसिद्ध है, धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी का जन्म हुआ। जाजपुरा से आगे 'जिजवटा' ग्राम है। इसका शुद्ध नाम 'यज्ञवाट्' था। यहाँ राजा द्रुपद का कोट था। 'मत्स्यवेध' यहीं हुआ था। जिस कुण्ड में मत्स्यवेध हुआ था उसे 'बेधूकुंडा' कहते हैं। आज वह कोट एक ऊँचे खेरे में बदल गया; कुंड भी मिट्टी के नीचे दब गया। दो गज़ गहरा खोदने पर आज भी कुण्ड के पत्थर दिखाई देते हैं। यहाँ सैकड़ों वर्ष तक अष्टधातु के कड़ाह का एक भाग पड़ा रहा था, जिसके एक कने का भार बीस मन के लगभग रहा होगा। जनता का विश्वास है कि यह वही कड़ाह था जिसके तेल में मत्स्य-वेध के समय मत्स्य का प्रतिबिंब देखा जाता था। खुदाई होने पर जिजवटा में चाँदी व ताँबे के कुछ सिक्के व ताम्र-पत्र निकले थे। सिक्कों पर 'राम-पंचायतन' की मूर्ति थी। अब ये समस्त वस्तुएँ पुरातत्त्व-विभाग के अधिकार में होगई हैं। द्रुपद के कोट का सिलसिला पटियाली से कम्पिल तक बराबर चला गया है। इस बीच के ग्रामों के नाम महा-भारत-काल के नामों से मिलाने पर किसी विद्वान् को इसी प्रदेश के पञ्चाल होने में सन्देह नहीं रह सकता। उदा-हरणार्थ भटमयी, रौकरी (रथकरी), भैंसरी (भयस्मरी), कुमुद्दीनगर (कौमुदीनगर) पर्याप्त होंगे। भैंसरी से कुछ दूर पश्चिम एक खेरे पर बहुत पुरानी देवी की मठिया बनी हुई है। जब गंगा जी की धार यहाँ वृष्टिकाल में आती है और खेरे को काटने का प्रयत्न करती है तब धार का अधिकांश ख़ूनी रंग का हो जाता है। धार में यह लाल पट्टी ४-५ फ़र्लांग तक श्वेत जल से पृथक् दिखाई देती है। लोग कहते हैं कि गंगा जी और देवी जी में युद्ध हो रहा है। सम्भव है, खेरे में गैरिक मिट्टी का कोई पर्त्त हो। ये सब ग्राम उस सड़क पर हैं जो कम्पिल से पटियाली होती हुई दिल्ली तक चली गई है। कम्पिल, काम्पिल्य, कार्म्पील, कंपिला, ये सब कम्पिल के ही नाम हैं। कम्पिल

के साथ हज़ारों वर्ष के पुरातन इतिहास का संबंध है। हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य में स्थान स्थान पर इसका उल्लेख है। जैनग्रन्थों में पांडव-पुराण, आदि-पुराण, ब्रह्मदत्त-पुराण और जैन-पद्मपुराण में कम्पिल व पञ्चाल का वर्णन मिलता है। पुराणों से भी पूर्व के यजुर्वेद[1] में कम्पील का नाम मिलता है। यद्यपि स्वामी दयानन्द जी ने यहाँ काम्पील शब्द के अर्थ और लिये हैं क्योंकि वे वेदों में भौगोलिक संज्ञायें नहीं मानते थे, पर उवट[2] और महीधर[3] ने इस शब्द का अर्थ कम्पिलनगरी ही लिया है।

पुराणों में देवी का नाम 'काम्पिल्यवासिनी' बतलाया है। वहाँ इसकी व्याख्या में यह आख्यायिका दी है कि एक बार रुद्र-द्वारा सन्ताड़ित उनकी दोनों स्त्रियों—गंगा व गौरी—में ब्रह्मा ने कलह करवादी। शंकर जी के प्रयत्न करने पर भी जब दोनों का झगड़ा शान्त न हुआ तब उन्होंने शाप दिया कि तुम दोनों जाकर भूलोक में रहो। पार्वती से यह भी कहा कि तुम्हें 'अम्बेऽम्बिके' इस मंत्र से यज्ञ की पूर्णाहुति भक्षण करनी होगी। देवी ने शाप को अंगीकार करते हुए कहा[4] कि अच्छा मैं 'काम्पीलवासिनी' नाम से काम्पिलनगरी में निवास करूँगी और उपर्युक्त मंत्र के विनियोग-द्वारा यज्ञ की पूर्णाहुति का भक्षण किया करूँगी।

आयुर्वेद की प्राचीनतम संहिता चरक में भी कम्पिल का प्रसंग आया है। ज्येष्ठ मास का अन्तिम भाग था, भगवान् आत्रेय पुनर्वसु धन-जन-पूर्ण पञ्चाल देश के सुरम्य वनों में अपनी शिष्य-मंडली के साथ विचर रहे थे।



[कपिल-कुटी—कंपिल।]

अचानक भगवान् ने आकाश की ओर देखकर अपने शिष्य अग्निवेश से कहा—देखो, नक्षत्र, वायु, आकाश, जल आदि विक्रिय हो रहे हैं। किसी जनपदध्वंसी रोग का निदान उपस्थित है। ओषधियों का शीघ्र संग्रह कर लो, जिससे उनके रस, वीर्य, प्रभाव आदि विकृत न हो जायँ और हम महामारीपीड़ितों की यथेच्छ सेवा कर सकें[1]। इन प्रमाणों से कम्पिल की पुरातनता का अनुमान किया जा सकता है। जैनियों ने इसे सृष्टि के आदिम पंच नगरों में माना है। एक जैनमुनि का वाक्य है कि "कम्पिल की गहराई काल के पैमाने से नहीं नप सकती"।

कम्पिल और पञ्चाल के नाम पहले कुछ रहे हों, पर इनके उपर्युक्त नाम, जहाँ तक पुराण साक्ष्य देते हैं, राजा वाह्याश्व के समय से पड़े हैं। वाह्याश्व द्रुपद से सात पीढ़ी पूर्व इसी जनपद का राजा था। भागवत में इसका नाम भर्म्याश्व दिया हुआ है। इसके पाँच पुत्र थे। इनमें सबसे बड़े का नाम मुद्गल था।

इसी की सन्तान मौद्गल्य ब्राह्मण कहलाये, जो कम्पिल से चार मील दक्षिण 'बिलसटी' में अब तक रहते हैं। तीसरे पुत्र का नाम काम्पिल्य था। इसी के नाम पर इस नगरी

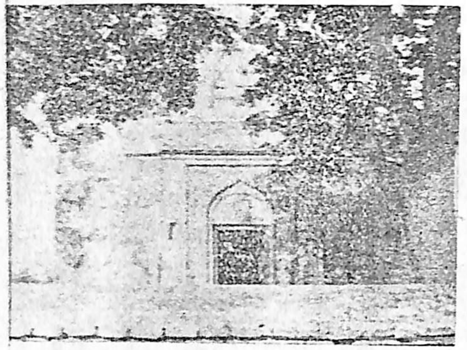
१—अम्बेऽम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।
—यजुर्वेदे अ० २३। मं० १८

२—काम्पीलवासिनीम् काम्पीलनगरे हि सुभगाः सुरूपा विदग्धाः स्त्रियो भवन्ति।
—उवटः

३—...किंभूतां सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्, काम्पील-नगरे वसतीति काम्पीलवासिनी, ताम्। तत्र हि सुरूपा विदग्धाः कामिन्यो भवन्तीति।
—महीधरः

४—अहमत्र वसिष्यामि नाम्ना काम्पीलवासिनी।
अम्बेऽम्बिकेति मंत्रेण भोक्ष्ये पूर्णाहुतिं मखे॥

१—जनपदमण्डले पाञ्चालक्षेत्रे द्विजातिभिरध्युषिते काम्पिल्यराजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगण-परिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गंगातीरे वनविचारमनु-विचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत्।
—चरक वि०। अ० ३। सू० ३



[श्री रामेश्वरनाथ महादेव—कंपिल।]

नाम काम्पिल्य पड़ा। वाह्वाश्व ने एक बार अपने पुत्रों रक्षता व वीरता की प्रशंसा करते हुए कहा कि ये मेरे पुत्र इन विषयों (देशों) की रक्षा करने में समर्थ हैं। प्रकार पंडितों ने उनका नाम पञ्चाल रख दिया। उनके कृत जनपद को पञ्चाल का नाम दिया गया[1]।

कम्पिल अब प्रायः खंडहर है। जिसे द्रुपद का कोट हैं वह एक ऊँचा खेरा है, केवल एक गुंबद शेष रह है। कोट पर तम्बाकू बहुत होती है। वह तम्बाकू की तम्बाकू के नाम से प्रख्यात है तथा २०) मन बिकती है। यही कारण है कि कोट पर के खेत पच्चीस बीघे से कम दर पर कभी नहीं उठते। इन खेतों में कू की उपज का औसत अन्यत्र की अपेक्षा चौगुने से अधिक है। जिसके पास दस-पाँच बीघे खेत हैं वह बना बैठा है। कम्पिल में ही एक शुक्ल जी रहते हैं, अधिकार में कोट का अधिक भाग है। ये स्वयं बड़े काश्तकार हैं। इनके पास ऊँचे-से-ऊँचे बैलों चालीस जोड़ियाँ तक रहती हैं और दो-दो सौ बीघे कराते हैं। कोट के नीचे गंगा जी की पुरानी धार से आजकल 'बूढ़ी गंगा' कहते हैं।

१—बाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः।
पञ्चैते रक्षणायालं विषयाणामिति श्रुतम्।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान्।
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुतः॥
हरिवंशपुराण पर्व १। अ० ३२। श्लोक ६४
[illegible] स्कंद ६। अ० ७७। श्लोक ३२, ३३

नगर के समीप ही उत्तर ओर गंगातट पर रामेश्वर का मंदिर है। किसी समय इसके चारों ओर पक्की चहारदीवारी थी। पूर्व की ओर के दो गुंबद अब भी बने हुए हैं। मन्दिर में अनेक गुफायें हैं। एक बड़ी पक्की सुरंग भी है। कहते हैं, यह सुरंग काशी तक चली गई है। मन्दिर का ऊपरी भाग बिजली के गिरने से कुछ तिर्छा होगया है। इसकी भीतरी डाट बहुत सुन्दर है।

पुराणों का मत है कि इसकी मूर्ति रामचन्द्र जी अशोक-वाटिका से लाये थे। लवणासुर को मारकर अयोध्या को लौटते हुए शत्रुघ्न जी ने इसकी प्रतिष्ठा की थी[1]। इस स्थान को 'सिद्धपीठ' भी कहते हैं। कई प्रख्यात सन्तों ने यहाँ तपस्या करके सिद्धि-समाधि का लाभ किया है। मन्दिर के भीतर काग़ज़ों पर अनेक श्लोक लिखकर भक्तों ने समय-समय पर लगा दिये हैं। पूर्व की दीवार में लगे एक काग़ज़ पर कविवर तोषनिधि का, उन्हीं के हाथ से लिखा, निम्न दोहा दिखाई दिया—

"तनिक न लाये बेर सुनि द्रुपद-सुता की टेर।
कैसी कान रुई दई, दई हमारी बेर॥"

इस दोहे से कवि जी की तत्कालीन खोज का परिचय मिलता है। वृद्धों ने बतलाया कि कवि जी कायस्थों से अपमानित होकर उन दिनों रामेश्वर जी के दरबार में अनशन-पूर्वक धरना दे रहे थे।

रामेश्वर से दक्षिण गंगातट पर, लगभग उसी ऊँचाई पर, कपिल-कुटी है। यहाँ कपिल मुनि ने तपस्या की थी[2]। इसके नीचे ही प्रसिद्ध 'द्रौपदी-कुण्ड' है। यह पन्द्रह फुट लम्बा, इतना ही चौड़ा और इतना ही गहरा होगा। इसका मुख्य भाग पत्थर का बना है, जो आज-कल जल-मग्न है। इसी कुण्ड से धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी का जन्म होना प्रसिद्ध है। कुछ दिन हुए इसमें चाँदी के दो सिक्के मिले थे। इन पर शीलादित्य की छाप थी। एक पोस्टल इन्स्पेक्टर साहब अपने बच्चे के गले में पहनाने के लिए

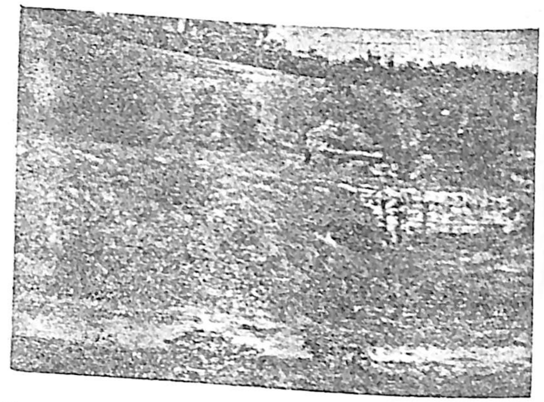
१—काम्पिल्ये त्रिधनुर्भूमिः सिद्धपीठस्तदन्तरे।
शत्रुघ्नारोपितं लिङ्गं रामेश्वर इति स्मृतम्।
२—तन्मुख्यः कपिलाश्रमः।
कपिलोऽत्र तपस्तप्त्वा गङ्गासागरमभ्यगात्।
तत्पदं कथ्यतेऽद्यापि काम्पिल्ये कपिला कुटी॥

इन्हें माँग ले गये। कपिल-कुटी से दक्षिण में कालेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह अष्टभुज है। इसमें शिव जी की मूर्त्ति जो काले रङ्ग की है, गहराई में रक्खी हुई है। तोरणों और द्वार पर बौद्धकालीन तक्षणकला के नमूने हैं। पुरानी खंडित मूर्त्तियों में मत्स्य भगवान्, हयग्रीव, बुद्ध व चतुर्भुज जी की कलापूर्ण मूर्त्तियाँ हैं। पुराणों के मतानुसार इसकी स्थापना द्रौपदी ने की थी।

कम्पिल जैनियों का भी प्रख्यात तीर्थ है। यहाँ वर्ष में दो बार जैनियों के दो बड़े बड़े मेले होते हैं, जो चार-चार दिन तक रहते हैं। ये मेले चैत्र अमावस्या और कारसुदी २ से आरम्भ होते हैं। इनमें देश-विदेश के हज़ारों जैन एकत्र होते हैं। ऐसे मेलों को ये लोग 'धर्मोत्सव' कहते हैं। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ जी के चार कल्याण (गर्भ, जन्म, दीक्षा, कैवल्यज्ञान) यहाँ हुए थे। इसी कारण जैन इसे अपना तीर्थस्थान मानते हैं। किसी समय कम्पिल में जैनियों के साढ़े उन्नीस सौ घर थे, आज एक भी नहीं है। यहाँ दो बड़े बड़े जैन-मन्दिर हैं, एक श्वेताम्बरों का, दूसरा दिगम्बरों का। श्वेताम्बरों का मन्दिर अपेक्षाकृत नया है। इसमें तीन मूर्त्तियाँ श्वेत हैं, इनकी बग़ल में एक काली मूर्त्ति भी रक्खी है। मन्दिर के निर्माण में पर्याप्त संगमरमर लगाया गया है। मूर्त्तियों के सामने पीठ पर स्फटिक के चार जोड़ी चरण बने हुए हैं, जो विमलनाथ जी के चारों कल्याणों के प्रतीक कहे जाते हैं। तीर्थ में तीर्थकरों के जितने अधिक कल्याण होते हैं उसे उतना ही महत्त्व दिया जाता है। कल्याणों की परिधि में मन्दिर की निर्माण-तिथि संवत् १६०४ विक्रमीय माघ शुक्ल २ बुधवार दी है।

दूसरा दिगंबरोंवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसमें दो चौक हैं। इसमें पार्श्वनाथ जी व विमलनाथ जी की मूर्त्तियाँ हैं। चार कल्याण इसमें भी हैं। निर्माण-तिथि ५४६ विक्रमी खुदी है। यदि यह संवत् ठीक हो तो यह मन्दिर १४५० वर्ष का पुराना है।

गंगा के उत्तर-प्रदेश को उत्तर-पञ्चाल कहते थे। यह देश द्रोणाचार्य ने अपने भाग में लिया था। इसकी राजधानी कम्पिल से ३५ मील उत्तर 'अहिच्छत्र' थी। इसे आज-कल 'अहिच्छता' कहते हैं। यहाँ बौद्धों का एक विहार था। इस विहार का वर्णन युएनच्वांग ने अपनी



[द्रुपद के कोट का भग्नावशिष्ट पार्श्व जिंजबटा—कंपिल।]

यात्रा-पुस्तक में किया है। विहार के खंडहर व गुफायें अभी मौजूद हैं। एक ग्राम मुंडौन है, जो प्राचीन काल में 'मुंडवन' था। पास ही एक ग्राम 'सोन सूवा' है, जो स्थूणश्रुवा यक्ष की नगरी थी। इसी यक्ष ने राजकन्या शिखंडिनी को पुंस्त्व प्रदान किया था। यहाँ से कुछ पूर्व पलावन गाँव है। यह प्रसिद्ध उत्पलावन-तीर्थ था। यहाँ विश्वामित्र जी ने तप करके इन्द्र के साथ सोमपान किया



[भीमसेन की गदा।]
(यह कंपिल व फ़र्रुख़ाबाद के बीच में एक चबूतरे पर है।)

और स्वयं को ब्राह्मण कहने लगे थे[1]। कंपिला से ठ मील पश्चिम नदरई के पुल के समीप एक घंटा खा है, जिसका भार अस्सी मन के लगभग होगा। इसे मसेन का घंटा कहते हैं। इसी प्रकार मदार दरवाज़े के ष्टधातु-निर्मित गदा के दो टुकड़े एक चबूतरे में गड़े हैं। इनको भीमसेन की गदा कहते हैं और पूजा की ती है। सैकड़ों वर्ष से पड़े रहने पर भी इन पर ज़ंग का ाव नहीं हुआ। जिसे आज-कल शमशाबाद कहते हैं प्रसिद्ध 'खोर नगरी' थी। जयचंद के लड़के कन्नौज से भाग कर यहीं रहे थे। यहाँ से एक लड़का रामपुर चला गया था, दूसरा खिमसेपुर और तीसरा जोधपुर। ये तीनों स्थान अब भी राठौरों की प्रतिष्ठित गद्दियाँ हैं। कम्पिल में ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि तोषनिधि जी के पौत्र जी से भी भेंट हुई। आपने कवि जी के कई हस्तलिखित ग्रंथ दिखलाये जो अब तक अप्रकाशित हैं। ब्रज-साहित्य-प्रेमियों को इधर ध्यान देना चाहिए।

रुदायन के पास ही विलसड़ का ऐतिहासिक गढ़ है, जो आल्हखंड का 'विरियागढ़' था। हरीसिंह और वीरसिंह के वंशज अब भी यहाँ रहते हैं, जो अपना वंश-वृक्ष दिखलाते हैं। पुरातत्त्व-विभाग ने यहाँ कुछ खुदाई कराई है। इसका वर्णन किसी स्वतंत्र लेख में किया जायगा।

१—पाञ्चालेषु च कौरव्य, कथयन्त्युत्पलावनम्।
विश्वामित्रोऽयजद्यत्र पुत्रेण सह धीमता॥
म० भा० व० ३७

शिक्षा

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

शिशु ने दुनिया में आकर,
रो-रोकर हँसना सीखा।
लघु होकर बढ़ना सीखा,
गिर-गिरकर चलना सीखा।
वीरों ने इस वसुधा में
मर-मरकर जीना सीखा।
प्रेमी ने आँसू पी पी
अधरामृत पीना सीखा।
कितने ही चक्कर खाकर,
चक्रों ने चढ़ना सीखा।
भूखे प्यासे रह-रहकर,
विहगों ने उड़ना सीखा।
उर छेद-छेद कर अपना,
मुरली ने गाना सीखा।
मिट-मिटकर वारिधरों ने,
पानी बरसाना सीखा।

सिर पटक-पटक पत्थर पर,
झरनों ने झरना सीखा।
गुरु गिरिवर से गिर-गिरकर,
नदियों ने बहना सीखा।
पहले पतङ्ग ने आकर,
निज देह जलाना सीखा।
जल-जलकर दीप-शिखा में,
फिर प्रेम निभाना सीखा।
घट-बढ़ कर शशि ने जग को,
पीयूष पिलाना सीखा।
नीचे गिर उदय-शिखर पर,
सविता ने आना सीखा।
हो क़ैद कञ्ज-कलिका में
अलि ने मँडराना सीखा।
हो छन्द-बद्ध कविता ने,
प्रिय रस सरसाना सीखा॥

गृह-जीवन की एक करुण कहानी

मा

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए०, एल-एल० बी०

(१)

ऐसे कठिन समय में मा के दिल पर जो कुछ बीत रही थी उसे दूसरा कौन जान सकता है? कितनी ही बार जगत की बात लगी, पर पण्डित जी की 'ख्याति' के कारण टूट गई। एक तो सिरे से ही दूसरी शादी, फिर लड़के का पिता शराबी और जुवाड़ी! कौन ऐसा क़साई बाप होगा जो अपनी लड़की को ऐसे शरीफ़ आदमी के घर ब्याहना पसन्द करेगा? आम के पेड़ में आम ही लगते हैं और कड़वे नीम में निबौलियाँ ही। कौन कह सकता है, 'योग्य' पिता का पुत्र भी 'योग्य' न होगा? दुर्व्यसनों में फँसने के अवसर तो बहुत मिल जाते हैं, हाँ, बच निकलने के कम होते हैं। यही कारण था कि जब जब नाई और पुरोहित के प्रयत्नों से जगत की सगाई हुई, पण्डित जी की 'शोहरत' के कारण टूट गई, और अब जब फिर सगाई हुई तब शादी का ही कोई डौल न था।

पण्डित जी को इस बात की चिन्ता हो, यह बात न थी। इस सिलसिले में उन्होंने कभी नहीं सोचा था। उन्हें तो आठों पहर बोतल और लाल परी से काम था। कोई मरे चाहे जिये, लड़के की शादी हो या न हो, घर में सम्पन्नता हो अथवा विपन्नता, उनके लिए सब एक बराबर था। पीते थे और सब कुछ भूल कर पीते थे। हाँ, जब कभी तबीयत होती तब नशे में झूमकर अलाप उठते—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और निश्चिन्त हो जाते, जैसे उन्हें विश्वास हो जाता कि सर्वशक्तिमान् ने उनके सब गुनाह माफ़ कर दिये हों।

यह सब तो था, पर यदि गाड़ी के दोनों पहिये बिगड़ जायँ तो वह चले ही कैसे? पिता अपने कर्तव्य को भूला हुआ था, मा उसे यथाशक्ति पूरा किये जा रही थी और यही कारण था कि किसी तरह सब काम चल रहा था। अन्दर से हालत चाहे कितनी ही बुरी हो गई हो, पर बाहर से साख बनी हुई थी।

जगत अपने मा-बाप का इकलौता लड़का था। नूर-महल के एक हाई-स्कूल में साधारण टीचर था। पण्डित जी ने नौकरी के दिनों में कुछ जमा नहीं किया था, प्राविडेंट-फ़ंड बाद को शराब की नज़र हो गया और जो एक-दो गहने थे वे धीरे धीरे जगत की पत्नी की बीमारी में चौध-राइन के यहाँ गिरवी रक्खे जाने लगे। और इधर गहने ख़त्म हुए, उधर उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। अब इस विवाह के लिए क्या किया जाय, कहाँ से गहने लाये जायँ, इसी बात की चिन्ता मा को खाये जा रही थी।

इस अन्धकार में जगत की मा को केवल एक ओर से प्रकाश की किरण दिखाई देती थी। उसके मैके में ऐसी दरिद्रता न थी; उसके पिता धनी-मानी और सम्पन्न व्यक्ति थे। जगत के पहले विवाह पर उन्होंने हाथ का एक आभूषण और मूल्यवान् वस्त्र दिये थे। कोई पाँच-छः सौ की चीज़ रही होगी। उसे आशा थी कि इस बार भी उसके पिता कुछ न कुछ अवश्य देंगे। पाँच-छः सौ न सही, तीन-चार सौ ही सही। मगर इन तीन-चार सौ से क्या बनेगा? गहने-कपड़े, लाग-विहार, मिठाई-शीरीनी, शादी में क्या क्या न चाहिए? गुड्डे-गुड़िया के विवाह में भी सौ व्यवस्थायें करनी पड़ती हैं और फिर यह तो स्त्री-पुरुष का विवाह था। सोचती—यदि इस बार भी विवाह न हो सका तो क्या होगा? सब आशाओं पर पानी फिर जायगा। उस समय उसे पण्डित जी के व्यवहार पर दुख होता था किन्तु पुराने विचारों की हिन्दू नारी थी, शिकायत का एक शब्द भी ओंठों पर लाना पाप समझती थी, कष्ट सहती थी, दुख झेलती थी, पर ज़बान नहीं हिलाती थी।

(२)

रात का तीसरा पहर था, सारी दुनिया मीठी नींद सो रही थी, किन्तु जगत की मा को नींद कहाँ? वह तो ऐसी भाग गई थी जैसे विपत्ति के समय सौभाग्य। पिंजरे का पट बन्द था, पर नींद के पंछी उड़ चुके थे।

विवाह होने में केवल बीस दिन रह गये थे और गहनों का अभी तक कोई भी प्रबन्ध नहीं हुआ था। रुपये होते तो चौधराइन से ही गहने छुड़ाती और रुपये—रुपये कहाँ

से आते ? कोई युक्ति सूझ नहीं रही थी। इसी सोच में रात बीत गई। अँधेरा कुछ कुछ छट गया। मुहल्ले के कुएँ में किसी ने गागर डुबोई। प्रातःकाल पानी भरनेवालों का आगमन आरम्भ हो गया था। सामने के घर से चक्की चलने के साथ किसी के गाने की आवाज़ आने लगी। शायद विधवा कंसो प्रातःकाल उठकर अपने काम में लग गई थी। दूर कहीं प्रातः का मुअज़्ज़िन मुर्ग़ अपनी पूरी आवाज़ से बोल उठा। मा उठी, और फिर, जैसा उसका नित्य का क्रम हो गया था, अन्दर कमरे में गई, ट्रंक खोलकर उसने उसमें से छोटा-सा डिब्बा निकाला और एक एक चीज़ बाहर निकाल कर देखने लगी। था ही क्या? चाँदी के लच्छे और ढोल था, सोने की दो अँगूठियाँ थीं, पुराने फ़ैशन की एक माला और छः माशे का एक सौकनमोहरा[१] था। शादी दूसरी थी, इसलिए एक अँगूठी तुड़वाकर सौकनमोहरा बनवा लिया था। भारी गहने तो सब चौधराइन के यहाँ गिरवी रक्खे थे। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उसने इन सबको डिब्बे में बन्द किया, डिब्बे को ट्रंक में रक्खा और ताला लगा दिया। फिर वहीं सिर को घुटनों पर रखकर सोचने लगी। कई दिनों से वह प्रतिदिन ऐसा ही करती थी। सुबह उठकर गहनों को निकालकर गिनती और फिर वहीं बैठकर सोचती, किन्तु कोई उपाय समझ में न आता। पर आज अचानक एक बात सूझ गई और इसके साथ ही उसके शरीर में स्फूर्ति की एक लहर दौड़ गई। वह उठी, घर में झाड़ू-बुहारी देकर पूजा करने बैठी और सच्चे दिल से उसने भगवान् से प्रार्थना की कि इस बार उसे असफलता का मुँह न देखना पड़े और फिर वह चौधराइन के घर की ओर चल दी।

चौधराइन का घर समीप ही था। जगत की मा तेज़ी से जा रही थी। उसने जल्दी जल्दी देहली पार की, किन्तु निचले आँगन में जाकर रुक गई। ऊपर जाय कि न जाय? उसकी बाईं आँख फड़कने लगी। मन में सन्देह-सा उत्पन्न हो उठा। उसके कान में जैसे किसी ने कहा—आज काम न बनेगा। उसने चाहा, मुड़ जाय। पर मुड़कर जाय कहाँ? विवश हो आगे बढ़ी। धीरे धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँची। मालूम हुआ, चौधराइन अभी सो रही हैं। वह दहलीज़ पर ही एक ओर होकर बैठ गई।

कोई एक घंटे के बाद जब चौधराइन की नींद टूटी तब एक हलकी सी मुसकराहट के बाद उसने जगत की मा से उसके आने का कारण पूछा।

जगत की मा चुप-सी हो गई। वहाँ कहने के लिए घर से जो कुछ सोचकर आई थी वह सब भूल गया। कह सकी तो मुश्किल से इतना ही—"जगत के विवाह में केवल तीन दिन रह गये हैं।"

चौधराइन फिर मुसकराई—"बधाई हो। मैं तो उधर आ ही नहीं सकी।" फिर लम्बी साँस खींचकर बोली—"यह कमर का निगोड़ा दर्द कुछ ऐसा चिमटा है कि कहीं जाने ही नहीं देता। मैं तो स्वयं बधाई देने के लिए जाना चाहती थी।"

"आपको ही बधाई है"—जगत की मा ने धीमे स्वर से कहा।

चौधराइन ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"परमात्मा करे, फिर घर बस जाय। बेचारा उदास उदास रहता है। मैं तो जब देखती हूँ, जी मसोस कर रह जाती हूँ। इस बार कहाँ बात लगी है?"

जगत की मा ने उत्साहित होकर कहा—"नकोदर में रिश्ता हुआ है, पर विवाह हो सकेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। उनकी आदत तो आप जानती ही हैं—और पैसे के बिना कुछ होता नहीं।"

अब चौधराइन ने कुछ शंकित नेत्रों से उसकी ओर देखा।

जगत की मा कहती गई—"मैं आपको तीन सौ रुपया दे दूँगी। आप मुझे कृपा कर मेरे सब गहने दे दें। इस बात का मैं वचन देती हूँ कि गौने के बाद सब गहने आपके पास फिर रख जाऊँगी।"

चौधराइन ने बेरुख़ी से कहा—"मैं सोचकर उत्तर दे सकूँगी। शाम को रिखीराम आ जायगा तब उससे सलाह करके तुम्हें बताऊँगी। आपकी ओर पिछले तीन महीने का सूद भी तो है।"

"वह भी मैं तीन सौ के साथ ही दे दूँगी।" जगत की

१—सौकनमोहरा—यह सोने का एक पत्र होता है, जिस पर पहली पत्नी का नाम खुदा होता है। दूसरी शादी के समय यह नई पत्नी के गले में पहनाया जाता है।

मा ने कहा। लेकिन चौधराइन ने यह नहीं सुना। उस समय तक वह उठकर अन्दर जा चुकी थी। जगत की मा चुपचाप सीढ़ियाँ उतर आई और फिर आकर धम से फ़र्श पर बैठ गई। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुसीबतों का अँधेरा पहले से कई गुना गहरा हो गया हो। उसने दुपट्टे से मुँह छिपा लिया और रोने लगी। उस समय पण्डित जी ने बैठक से तान लगाई—

"शामा मेरे अवगुण चित न धरो"

(३)

शाम को चौधराइन का जवाब आगया। वही जिसकी सम्भावना थी। मा ने शान्ति से उसे सुना और फिर अपने काम में लग गई। उसकी आँखें एक बार भर आईं, किन्तु उसने उन्हें पोंछ डाला। यदि आँसू बहाने से ही विवाह हो जाता तो आज तक जितने आँसू उसने बहाये थे उनसे मुहल्ले भर के लड़कों की शादियाँ हो जातीं।

जगत की मा एक असाधारण प्रकृति की स्त्री थी। वह न होती तो घर कब का चौपट हो गया होता और पण्डित जी या तो यमुना के किनारे धूनी रमा लेते या जेल की रोटियाँ तोड़ते। कई बार अवसर पड़ने पर जगत की मा उनके आड़े आई थी, कई बार उसने उनके लिए रुपये का प्रबंध किया था। साहस और हिम्मत की वह मूर्ति थी। उसने जगत को एक पत्र लिखवाया कि छुट्टी लेकर आ जाय और स्वयं अपने मैके को रवाना हो गई।

होशयारपुर में उसका मैका था। उसके पिता के पास धन का अभाव न था। वे चाहते तो एक छोड़ बीस शादियाँ करवा देते। किन्तु उन्होंने पुरोहिताई से रुपया कमाया था, पैसा पैसा करके, पेट काट काट कर, धन एकत्र किया था। वे कंजूस थे और उन्हें पैसे की जुदाई बहुत अखरती थी। फिर सबसे बढ़कर यह बात थी कि उनकी पत्नी दूसरी थी। सौतेली मा की उपस्थिति में जगत की मा को कुछ अधिक मिलने की सम्भावना न थी, फिर भी वह सब तरफ़ से निराश होकर वहीं जा रही थी। किनारा कितना भी चिकना क्यों न हो, उस पर सहारा देने की कोई वस्तु हो या न हो, किन्तु और कोई आश्रय न पाकर डूबता हुआ उसे ही पकड़ने के लिए हाथ-पाँव मारता है। वहाँ पहुँची तब उसकी सौतेली मा ने अड़चन डाल दी। बहुत कुछ झगड़-रगड़ के बाद जगत की मा चार सौ रुपया पा सकी। वहाँ से चली तब भविष्य की चिन्ताओं ने उसे घेर लिया। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा पाने पर भूख से और भी व्याकुल हो उठता है, उसी तरह जगत की मा इन चार सौ रुपयों को पाकर और भी चिन्तित हो गई थी। अब उसका मस्तिष्क किसी न किसी तरह इन्हीं से काम निपटाने की तरकीबें सोच रहा था। चौधराइन के व्यवहार ने उसके हृदय में अलग आग सुलगा दी थी, उसके यहाँ अपना एक भी आभूषण नहीं रखना चाहती थी।

घर पहुँचते ही उसने एक सौ रुपया तो मिठाई इत्यादि के लिए रख लिया और बाक़ी तीन सौ लेकर बीबी अमरकौर के पास पहुँची ताकि उससे कुछ और रुपया लेकर चौधराइन से गहने ले ले और उन्हें अमरकौर के पास रख दे। इस बात में तो अमरकौर को कोई आपत्ति न हो सकती थी, लेकिन जगत की मा चाहती थी कि रुपये तो ले ले, पर गहने गौने के बाद ले, और इस बात पर अमरकौर का राज़ी होना ज़रा मुश्किल था। कारोबार के मामले में वह भी कम सख़्त न थी, पर जगत की मा घर से निश्चय करके निकली थी कि जैसे भी होगा उसे मना ही लेगी। अमरकौर के दिल में भी अभी दया का सर्वथा लोप न हुआ था, इसलिए जगत की मा के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मान गई। उसने इस शर्त पर रुपया दे दिया कि गौने के बाद उसे गहने मिल जायँगे। अमरकौर से रुपया लेकर जगत की मा ने चौधराइन से सब गहने ले लिये और ख़ुशी ख़ुशी दूसरी तैयारियाँ करने लगी। सन्ध्या को जब जगत नूरमहल से आया तब उसने देखा मा का चेहरा खिला हुआ है।

(४)

निश्चित तारीख़ को मुहल्ले की स्त्रियों के सुहावने गीतों में बाजे-गाजे के साथ बारात रवाना हुई। जगत की मा ने शेष सब प्रबन्ध कैसे किया, यह न पूछिए। अपने पुत्र का घर बसाने के लिए वह घर घर फिरी। अपने स्वाभिमान को भी उसने कुछ दिनों के लिए भुला दिया और किसी से बीस, किसी से तीस लेकर काम चलता किया। उसे आशा थी कि दहेज़ में कुछ न कुछ ज़ेवर अवश्य मिलेगा और सौ डेढ़ सौ न सही, इक्यावन रुपये तो विदा में अवश्य ही दिये जायँगे। इससे छोटी-मोटी

रक़में उतर जायँगी। अमरकौर से जिन गहनों के बदले रुपया लाई है वे उसे पहुँचा देगी। इस तरह सुगमता से सब काम हो जायगा।

तीसरे दिन बारात आगई। ख़ुशी ख़ुशी जगत की मा बहू को लेने गई। पण्डित जी के सम्बन्ध में पूछा तब मालूम हुआ कि शराबख़ाने में औंधे मुँह पड़े हुए हैं।

विवाह के गीत गाते गाते मुहल्ले की स्त्रियाँ बहू को घर लाईं। सब रस्में भली भाँति अदा की गईं। दहेज़ का सामान नीचे बैठक में रख दिया गया। बहू का सुन्दर मुखड़ा देखकर सबके दिल खिल गये। कोई कहती—जगत पहले जन्म में मोतियों का दान करके आया है, कोई कहती चाँद का टुकड़ा ब्याह लाया है। छोटी छोटी लड़कियाँ बहू का मुँह देखने के लिए टूटी पड़ती थीं। घर में ख़ूब चहल-पहल थी, किन्तु जगत की मा इन सबसे अलग एक कोने में एक व्यक्ति से धीरे धीरे कुछ पूछ रही थी।

"तो क्या आपको कुछ भी मालूम नहीं?"

"कुछ भी नहीं, ज़रा भी नहीं, मुझे किसी ने पता भी नहीं चलने दिया।"

"आप अगुआ थे।"

"वहाँ मुझे कौन पूछता था? अगुआ तो वहाँ मास्टर जी थे। मैं तो जैसे उनके हाथ की पुतली था।"

"तो क्या आपको विदा की भेंट का भी पता नहीं! मिली भी या नहीं मिली?"

"मैं कहता हूँ, मुझे बिलकुल पता नहीं। चाननराम वहाँ था ही कौन। सब कुछ तो मास्टर जी करते थे। मुझ तक तो किसी बात की गन्ध तक भी नहीं आई।"

मा निराशा से सिर हिलाकर फिर काम में लग गई। जिस आशा के आधार पर आज तक सब कुछ करती आई थी वह आधार ही छिन गया। उल्लास की जगह फिर विषाद ने ले ली। अन्तर में दुख का पारावार छिपाये वह सब काम करने लगी। पण्डित जी की मद्यपता के कारण उसने चाचा चाननराम के हाथ में ही विवाह का सब काम सौंप दिया था। वे जगत के सगे चचा तो न थे, पर जगत की मा को उन पर पूरा भरोसा था। पर वहाँ उनको किसी ने पूछा भी नहीं। वहाँ जगत के एक मित्र जो उसके साथ ही स्कूल में पढ़ाते थे, सब बातों के कर्ता-धर्ता थे। आपस में गुप-चुप सब बातें होतीं और चाचा चाननराम के बिना पूछे ही सब कुछ तय हो जाता। मास्टर जी लड़कीवालों से इस तरह घुल-मिल गये थे, जैसे उन्हीं में से एक हों। इधर लड़केवालों की ओर से भी वही काम करते। दहेज़ का दिखावा ही उन्होंने बन्द करा दिया। हाँ, इधर से सब गहने भिजवा दिये। पण्डित जी शादी के प्रबन्ध में चाहे कुछ भाग न ले सकते हों, पर उसकी ख़ुशी में वे किसी से पीछे नहीं रहना चाहते थे, इसलिए इन दिनों उन्हें अपने तन-बदन का भी होश न था। सुबह पीते थे, दोपहर पीते थे, शाम को पीते थे। उधर से क्या मिला, विदा में कितने रुपये रक्खे गये, इस बात का किसी को भी पता न लग सका और चाचा चाननराम अगुआ होने का चाव दिल में लिये हुए ही वापस आगये।

जगत की मा प्रकट रूप में सब काम पूर्ववत् कर रही थी। परन्तु उसका मस्तिष्क और मन तो कहीं और ही थे। हाँ, हाथ-पाँव अवश्य चलते हुए नज़र आते थे। बड़े यत्न से उसने आशा का जो दुर्ग बनाया था वह उसे ढहता हुआ प्रतीत हो रहा था। नींव हिल गई थी, दीवारों में शिगाफ़ आ गये थे। अब गिरा कि अब गिरा। चेतनाहीन-सी, संज्ञाहीन-सी वह सब काम कर रही थी। दो बार उसके हाथ से मिठाई की तश्तरी गिर पड़ी, लस्सी पीने लगी तब दुपट्टे में ही गिरती गई। वह जाग रही थी या सो रही थी, उसे कुछ भी मालूम नहीं था।

सन्ध्या को जब जगत ऊपर आया तब एकान्त में मा ने सब कुछ पूछने का यत्न किया। किन्तु जगत ने साफ़ तौर पर कुछ भी उत्तर ही नहीं दिया। पूछा—"गहने कौन कौन मिले"? कहा—"उसके पास ही हैं। जाकर देख लो।" पूछा—"विदा में क्या रक्खा गया?" कहा—"मास्टर जी जाने या चाचा चाननराम।" और यह कहकर वह अन्दर कमरे में चला गया। मा वहीं खड़ी की खड़ी रह गई, और फिर सिर को दोनों हाथों से थामकर वहीं बैठ गई।

(५)

दूसरी सुबह बहू को अपने मैके जाना था। गौना यद्यपि साथ ही दे दिया गया था, पर प्रथा के अनुसार दुलहन का एक बार अपने माता-पिता के घर जाना आवश्यक था। रात को मा ने एक-दो बार नीचे बैठक में आकर दहेज़ का सामान देखने की कोशिश की, पर हर बार मास्टर

जी यम के दूत की भाँति दरवाज़े में बैठे दिखाई दिये। अपमान और तिरस्कार से वह जल उठी। सारी रात उसने छत पर घूम घूमकर बिता दी और जब दिन चढ़ा तब उसमें हिलने तक की शक्ति न थी। सारी रात वह पण्डित जी की राह देखती रही थी, पर वे न आये थे। चाचा चाननराम को भी उसने दो बार बुलवा भेजा था, पर वे तो विवाह से आने के बाद ऐसे भागे कि फिर सूरत ही न दिखाई। उस समय जगत की मा अपने आपको सर्वथा असहाय और बेबस महसूस कर रही थी।

विद्युत्-वेग से सब तैयारियाँ हो गईं। सब कुछ तो पहले से ही तय था। जगत की मा को कुछ सुझाई न दे रहा था, उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था, फिर भी मशीन की भाँति सब काम किये जा रही थी। दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी दुलहिन को ताँगे पर चढ़ाने गई। उसने देखा, वह बड़ा-सा ट्रंक जिसमें दहेज़ का सब सामान—गहने-कपड़े रक्खे थे, ताँगे पर रक्खा हुआ है। उसे एक वस्त्र तक देखना नसीब न हुआ।

जब ताँगा चलने लगा तब जगत की मा ने अपना सारा साहस बटोरकर कहा—'कल ही गौना ले आना, इस अवसर पर ससुराल में अधिक नहीं अटका करते।'

बेपरवाही से जगत ने उत्तर दिया—"मैं इधर न आ सकूँगा। मेरी छुट्टी ख़त्म हो गई है। मुझे वहाँ से सीधे नौकरी पर जाना है। वहीं से सीधा नूरमहल चला जाऊँगा?

ताँगा चल पड़ा। मास्टर जी ने धीरे से कहा, शुक्र है यह झंझट ख़त्म हुआ। भई रोगी का खाया, शराबी का कमाया एक बराबर होता है। हम तो तुम्हारे लाभ की ही बात कहेंगे। एक-दो बच्चे हो गये तो फिर क्या करोगे? शराबी के घर में इन गहनों की क्या बिसात है?

मा खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे उसकी समस्त शक्तियाँ शिथिल हो गई हों। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया। वह देर तक वहीं खड़ी रही। जब ताँगा दृष्टि से ओझल हो गया तब चुपचाप चली आई। एक आह भी उसने नहीं भरी, एक निःश्वास भी उसने नहीं छोड़ा, जैसे प्राणों से भी प्रिय पुत्र की कृतघ्नता ने उसकी वेदना का गला घोंट दिया हो। बैठक में एक हलका-सा कोंच का सेट रक्खा हुआ था। कोई बीस रुपये का होगा। बस, इतने परिश्रम, इतनी मेहनत के बाद उसे यह देखने को मिला। उस समय उसे महसूस हुआ, जैसे विपत्तियों के अथाह सागर में वह एकाकी गोते खाने के लिए छोड़ दी गई हो। जगत वापस न आयेगा। वह अमरकौर को कौन से गहने देगी; नेगियों का नेग कैसे देगी; मुहल्ले-वालों की छोटी-छोटी रक़में कैसे भुगतायेगी। जब वे सब उससे तक़ाज़ा करेंगे तब वह क्या उत्तर देगी। जो कुछ आज तक नहीं हुआ वह अब होकर रहेगा। उसे कितना अपमानित होना पड़ेगा। उसने अमरकौर से कहा था—हाथ की पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं; संसार से दयानतदारी का ख़ात्मा नहीं हो गया। अब वह उसे कैसे मुँह दिखायेगी? इस बेशरमी से तो मृत्यु अच्छी। मा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सहसा उसे एक ख़याल आया। पण्डित जी की अलमारी में अफ़ीम की एक डिबिया रक्खी रहती थी। जब शराब के लिए पैसे नहीं होते थे, वे अफ़ीम से ही काम चला लेते थे। उसने बढ़कर डिबिया उठा ली! उसे खोला, खिल उठी, जैसे उसे विष नहीं, जीवनामृत मिल गया हो। एक बार ही सारी की सारी अफ़ीम डिबिया से निकाल कर उसने मुँह में रख ली और कोंच में धँस गई। जीवन के सब दुख, सारी विपत्तियाँ, समस्त हारें एक एक करके उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। एक विचित्र प्रकार की तन्द्रा उसकी आँखों पर छाने लगी। उस समय बाहर से गाने की आवाज़ आई—वही चिर-परिचित, जानी-पहचानी, सुरीली तान—

शामा मेरे अवगुण चित न धरो।

और दूसरे क्षण बग़ल में पगड़ी दबाये झूमते-झामते पण्डित जी बैठक में दाख़िल हुए।

लाहुल की राह में

लेखक, श्रीयुत भदन्त आनन्द कौसल्यायन



[कार्तिकेय का मंदिर।]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन हिन्दी में यदा-कदा ही लिखते हैं। पर जब लिखते हैं तब काफ़ी रोचक लिखते हैं। इस लेख में आपने पंजाब के एक प्रसिद्ध पहाड़ी अंचल की यात्रा का वर्णन बहुत ही सरस और सरल ढंग से लिखा है।

अमृतसर से जो रेलवे-लाइन पठानकोट जाती है उसका अन्तिम स्टेशन है योगेन्द्र-नगर। ९ मई के प्रातःकाल दो बौद्ध भिक्षु योगेन्द्र-नगर स्टेशन पर दिखाई दिये। एक थे श्रद्धेय राहुल सांकृत्यायन और दूसरा इन पंक्तियों का लेखक।

योगेन्द्र-नगर से कुल्लु जानेवाली मोटरलारी तैयार थी। एक एक करके आदमी उसमें चढ़ रहे थे—नहीं लद रहे थे—आदमी और उनका सामान एक साथ। हमें पता लगा कि इसके बाद एक मोटरलारी और छूटनेवाली है। इस आशा से कि शायद उसमें आदमियों की तरह बैठने को जगह मिल जाय हम मोटर में लदनेवालों को खड़े देखते रहे। लारी छूट गई। पीछे पता लगा कि दूसरी लारी अपराह्न में दो बजे से पहले न जायगी। मैंने तो संतोष ही माना। पठानकोट से योगेन्द्र-नगर तक रेल-डिब्बे में 'सफ़र' (suffer) किया था। अब कुछ आराम करने का मौक़ा मिला।

दो बजे योगेन्द्र-नगर से चलकर शाम को मण्डी-रियासत पहुँचे और वहाँ से अगले दिन सुबह फिर मोटर-लारी में सवार हो ग्यारह बजते बजते कुल्लु। रास्ता—ख़ासकर मण्डी से कुल्लु तक का—प्राकृतिक दृश्यों से सजा हुआ था। हम उसकी झाँकी? भर मार सके, आनन्द नहीं ले सके। क्योंकि प्राकृतिक दृश्यों का यथार्थ आनन्द तो मनुष्य ले सकता है पैदल-यात्रा में ही। रेल-गाड़ी में यात्रा करने और पार्सल बनाकर एक जगह से दूसरी जगह भेज दिये जाने में विशेष अन्तर नहीं। और मोटर-लारी में जो पेट्रोल की गन्ध—मैं तो उसे बदबू ही कहूँगा—रहती है उसके मारे तो मेरा दिल और दिमाग़ इतना परेशान हो जाता है कि मुझे समझ ही नहीं आता कि कभी कभी मैं मोटर-लारीवालों के कुचक्र में क्यों फँस जाता हूँ। पैसे ख़र्च करना और ज़हमत मोल लेना, इसी को कहते हैं।

× × ×

१० से १८ तारीख़ तक हम कुल्लु में रहे। वहाँ ठाकुर मङ्गलचन्द और ठाकुर पृथ्वीचन्द की एक कोठी है। ऐसी अच्छी जगह कि दिन भर मलयानिल का आनन्द मिलता रहता है। सामने व्यास की अपनी उमड़ती पर तरङ्गें, रहने के लिए सुन्दर स्वच्छ जगह, भ्रमण करने के लिए प्रकृति की गोद, साथी राहुल सांकृत्यायन और इसके साथ ही ठाकुर मङ्गलचन्द का आतिथ्य, फिर किसी को क्या ज़रूरत पड़ी कि और कुछ चाहे? एक सप्ताह बड़ी मौज से कटा। यह मौज और भी बढ़ गई, क्योंकि इसी सप्ताह में दो दिन के लिए हम मान्यवर प्रोफ़ेसर रोएरिक का सान्निध्य प्राप्त कर आये और देख आये उनका हिमालय-रिसर्च इन्स्टिट्यूट।

कुल्लु से कटराइन ११ मील है और कटराइन से नगर, जिस स्थान को रोएरिक-परिवार ने अपने निवास और

इस महान संस्था की संस्थापना से पवित्र किया है, दो मील है। कटराइन तक लारी जाती है। अगले दो मील तो चीड़ और देवदारु के सुन्दरतम वृक्षों के बीच से होकर ऐसा अनुपम रास्ता गया है कि कितना भी सवारी में चलने का कोई आदी हो, मन बिना पैदल चले नहीं मानता। और यदि किसी सवारी में ही जाना चाहे तो वहाँ चढ़ाई इतनी है कि सवारी जा ही न सकेगी। हाँ, घोड़े अवश्य जा सकते हैं। लेकिन फिर पहाड़ पर आने का फ़ायदा?

जिस समय हम पहुँचे, मध्याह्न हो गया था। राहुल जी का विज़िटिंग कार्ड पाते ही श्री जार्ज रोएरिक (प्रोफ़ेसर रोएरिक के ज्येष्ठ पुत्र) बाहर आये और बड़े ही प्रेम से अपने अध्ययन-मन्दिर में लिवा ले गये। राहुल जी और जार्ज रोएरिक ने एक-दूसरे को पहली ही बार देखा था, लेकिन भेंट ऐसे हुई मानो चिर-परिचित हों। एक-दूसरे की कृतियों को पढ़ते रहने से क्या पण्डितजन चिर-परिचित नहीं हो जाते। श्री रोएरिक से मालूम हुआ कि वे उन दिनों राहुल जी की "तिब्बत में बौद्ध-धर्म" पढ़ रहे थे।

आज तिब्बती-पुरातत्त्व के दो पंडितों की भेंट हुई थी। बातचीत भोट-भाषा में ही होती, लेकिन मेरी ख़ातिर अँगरेज़ी में होती रही। भोजन के समय मेज़ के सिरे पर प्रोफ़ेसर रोएरिक थे। उसके बाद राहुल जी, मैं और श्री जार्ज रोएरिक, एक डाक्टर, जार्ज रोएरिक के छोटे भाई और रोएरिक संस्था के मन्त्री। १९३३ में जब मैं पेरिस में था, मुझे रोएरिक-इन्स्टीट्यूट के पेरिस-स्थित प्रतिनिधि ने प्रोफ़ेसर रोएरिक का एक चित्र दिया था, जिसके चित्रकार थे स्वयं प्रोफ़ेसर रोएरिक के सुपुत्र। आज पिता-पुत्र के एक साथ दर्शन कर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

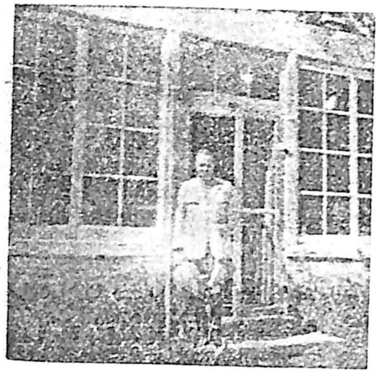
१२ मई की रात को हमने 'उरुसवती' की अतिथि-शाला में विश्राम किया। उरुस=रूस, वती=वाली। उरुसवती नाम से हिमालय-रिसर्च-इन्स्टीट्यूट की एक वार्षिक पत्रिका भी निकलती है। उसमें अनेक खोज-पूर्ण लेखों के अतिरिक्त संस्था के साल भर के काम का विवरण रहता है। १३ मई को प्रातःकाल सोकर उठते समय मेरे पाँव में कुछ ऐसा झटका लगा कि कंधे की एक नस हिल गई। अब दर्द की कुछ न पूछो। ज़रा गर्दन इधर से उधर करता कि चीख़ मारने का मन होता। डेढ़ दिन यही हालत रही। ख़ाली क्या करता, पड़े पड़े उरुसवती की पिछले तीन चार वर्ष की संख्यायें ख़त्म कर डालीं।

जार्ज रोएरिक चाहते थे कि राहुल जी वहाँ अधिक दिन ठहरें। दुबारा आने का वादा कर राहुल जी ने (और उनके साथ मैंने भी) अगले दिन विदा ली। मेरा दर्द प्रोफ़ेसर रोएरिक के छोटे सुपुत्र की मालिश से बहुत कम हो गया था। मैंने कहा—"आपको केवल एक श्रेष्ठ चित्रकार समझनेवाले ग़लती पर हैं। आप तो चिकित्सक भी हैं।" उनके हाथों के स्पर्श ने मेरे हृदय को जा छुआ था।

मैं प्रोफ़ेसर रोएरिक की संस्था को अधिक घूम-फिर कर नहीं देख सका। मेरा दुर्भाग्य! लेकिन जो कुछ देखा उसके आधार पर कह सकता हूँ कि खोज के कार्य के लिए जिस शान्ति की ज़रूरत है, जिस उद्बोधन की आवश्यकता है, वे दोनों जिस मात्रा में यहाँ विद्यमान हैं, शायद ही अन्य किसी जगह उपलब्ध हों।

१४ तारीख़ की शाम को हम कुल्लु पहुँचे और १८ तारीख़ के दोपहर को फिर कटराइन आये। आज ठाकुर मङ्गलचन्द, उनका नौकर किरपाराम और टुम्बु (कुत्ता) साथ थे। ठाकुर मङ्गलचन्द वास्तव में लाहुल के रहनेवाले हैं। वहाँ के वज़ीर माल (Revenue officer) हैं। कुल्लु प्रायः आना होता है, इसलिए एक कोठी यहाँ भी बना रक्खी है। वैसे असली मकान केलाङ्ग और कोलङ्ग में है। आज हम सबने कुल्लु से केलाङ्ग के लिए प्रस्थान किया। कटराइन से और दस मील आगे हरीपुर तक हम मोटर-लारी में गये। दो मील आगे मनाली तक जा सकते थे, लेकिन हरीपुर में भी ठाकुर साहब की एक कोठी है। वहीं ठहर गये। कोठी, कोठी के सामने फूल, चारों तरफ़ हरा मैदान, चारों तरफ़ चीड़ और देवदारु के सौन्दर्य से ढँके पहाड़, उन पहाड़ों के शिखरों पर चाँदी-सी सफ़ेद बर्फ़—बहुत ही आनन्द था। दो-तीन घंटे इसे लूटते रहे।

शाम को नज़दीक के गाँव में गये। सुना था कि वहाँ कार्तिकेय का मन्दिर है। किसी पुरानी मूर्ति या मन्दिर का पता लग जाय और राहुल जी शान्ति से बैठे रहें, यह हो नहीं सकता। थोड़ी थोड़ी बूँदें पड़ रही थीं। ठाकुर



[प्रोफ़ेसर रोएरिक के ज्येष्ठ पुत्र श्री जार्ज रोएरिक।]

साहब और हम दोनों खेतों को लाँघते-फाँदते मन्दिर को देखने चले। पाँच-सात घरों का एक छोटा-सा गाँव था और उसके ऊपर की तरफ़ मन्दिर। पहाड़ी घर प्रायः लकड़ी के बने दोतल्ले होते हैं और उन पर छत होती है पत्थर की स्लेटों की। ठाकुर साहब एक तो इलाक़े के मालिक हैं, दूसरे रोगियों को दवा-दारू देते रहते हैं। गाँव में पहुँचते ही झुक झुककर फ़र्शी सलाम होने लगे। मन्दिर का पुजारी बुलाया गया। और कई लोग यों ही साथ हो लिये। दरवाज़ों और चौखटों पर जो चित्रकारी थी उससे मन्दिर बहुत पुराना नहीं मालूम होता था। अन्दर मूर्ति अच्छी थी। पता लगा कि इस गाँव में एक ओझा भी है, जिसके सिर पर देवता आता है। वह भी बुलाया गया। एक बूढ़ा आदमी हाथ-मुँह धोकर आ हाज़िर हुआ। हम लोग छतरी के नीचे मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठे। ओझा सामने के चबूतरे पर सीढ़ियों के नीचे खुले मैदान में। उस बूढ़े आदमी को उस सर्दी में, उस बूँदा-बाँदी में, उस खुले मैदान में, उस गीले पत्थर पर बैठते देख उस पर दया, अपने पर लज्जा और अपने समाज के प्रति घृणा का भाव उदय हुआ। मैंने पूछा—क्या वह मन्दिर के चबूतरे पर नहीं आ सकता? पता लगा, नहीं, वह अछूत है। ज़रा-सी देर में कुछ नाम-मात्र का धूप-अक्षत और एक फूल के दो-चार टुकड़े इधर-उधर बिखेरने पर वह वृद्ध जो पहले से ही ठिठुर रहा था, थरथर काँपने लगा। यह देवता के आगमन का पूर्व-लक्षण था। और एक-दो मिनट में वृद्ध की बदली हुई आवाज़ ने देवता का आगमन प्रमाणित कर दिया। पास बैठे पुजारी ने कहा—कोई प्रश्न पूछना हो तो पूछो। राहुल जी बोले—देवता से पूछो कि यह जो व्यास नदी कुल्लु की ओर जा रही है इसका प्रवाह कब उलटा होगा। बिचारा देवता इधर-उधर की हाँकने लगा। और भी जो दो-एक प्रश्न पूछे गये, सब इसी ढंग के। देवता ने समझा था कि कोई मुक़द्दमे की बात, कोई बीमारी की बात, किसी खोई चीज़ की बात पूछी जायगी। सो उसके पास उत्तर तैयार थे। उसे क्या मालूम कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन उससे यह जानना चाहेंगे कि व्यास नदी कब उलटी बहेगी। देवता से कहा गया कि अब वह विदा हो जाय। पहले की ही तरह बूढ़े को एक हलका-सा झोंका देकर देवता चला गया। ठाकुर साहब ने पुजारी को मन्दिर दिखाने के लिए और ओझा को देवता बुलाने के लिए कुछ पैसे दिये। एक घर के पास से गुज़र रहे थे कि धड़ाम से कोई चीज़ छत पर से ज़मीन पर आ गिरी। अरे! यह क्या? यह तो आदमी है! बच गया, किसी पत्थर पर सिर पड़ता तो राम-नाम सत्य था। लेकिन इसे हुआ क्या? यह लुगड़ी* पीकर बेहोश था, लुढ़क गया। उस घर के पास थोड़ी ही देर के लिए खड़े हुए थे कि कई मरीज़ों ने आकर ठाकुर साहब को घेर लिया। उन्होंने सबको कहा कि कोठी पर आकर औषध ले जाना। एक-दो को औषध बता भी दी।

बूँदा-बाँदी हो रही थी। हम लौटे तब कुछ भीग गये थे। रास्ते भर तरह तरह की बातें होती रहीं। ठाकुर साहब को वनस्पतियों का बहुत ज्ञान है। वे लगभग हर पौधे की पहचान और गुण-दोष कहते चलते थे। सुनने को मैं यह सब सुनता और कभी कभी कुछ पूछता भी जाता था, लेकिन मन की निचली सतह पर कोई पूछ रहा था, "रोग-दरिद्रता—मिथ्याविश्वास—यही है क्या इन बेचारों का ग्रामीण-जीवन? जिससे कुछ आशा हो उसके सामने गिड़गिड़ाना, जिससे कुछ आशा न हो उसकी परवा न करना। क्या इसका कोई इलाज नहीं?"

उस रात को मैं यही सोचते सोचते सोया।

× × ×

*चावल या जौ के आटे की बनी शराब।

१९ मई को मध्याह्न के भोजन के बाद जब हम हरीपुर से चले तब मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब बहुत दिन तक मोटर-लारी से भेंट न होगी। पैदल-यात्रा का यथार्थ आनन्द आयेगा।

हरीपुर से मनाली कुल दो मील है। हलके हलके टहलते हुए चल रहे थे—एक घंटा लगा होगा। रास्ते में सड़क के किनारे ही देवदारु का एक जङ्गल इतना सुन्दर था कि बरबस खड़े हो गये। मनाली में तार है, डाकख़ाना है, मोटर है, मोटर की सड़क है। वर्तमान सभ्यता की चीज़ों में से यदि कोई चीज़ नहीं है तो केवल रेल नहीं। दूकानें काफ़ी हैं और सभी आवश्यक चीज़ें मिल जाती हैं। चौरस्ते पर किन्हीं महात्मा की एक कुटिया है। हम पास से गुज़रे तब अन्दर बैठे साधुओं ने आकर बैठने का आग्रह किया। अभी कुल दो मील चले थे। क्या बैठते? लेकिन पाँच-दस क़दम आगे एक दूकान पर बैठना ही पड़ा। ठाकुर मङ्गलचन्द अपना और हमारा सामान लिवा चलने के लिए एक कुली और चाहते थे। कुछ प्रतीक्षा करनी पड़ी। लाला मेलाराम ने चाय बनवाई। ठंडी हवा हो, बूँदा-बाँदी हो, फिर चाय अच्छी न लगे! मनाली से चले तब दिन इतना थोड़ा रह गया था कि चार-पाँच मील से अधिक नहीं जा सकते थे। चलना आरम्भ होते ही व्यास का पुल पार करना पड़ा। दूध की-सी सफ़ेद धार और उसके मोतियों के-से चमकदार छींटे। जहाँ पानी नहीं वहाँ हरियाली, जहाँ हरियाली नहीं वहाँ पानी। बड़े बड़े ऊँचे वृक्ष, लेकिन पर्वतों के सान्निध्य के कारण छोटे बने हुए थे। चलने में बड़ा ही आनन्द आ रहा था। बीच बीच में महकमा जङ्गलात की ज़्यादतियों की चर्चा होती चलती थी।

सरकारी महकमों में पुलिस बहुत बदनाम है। लेकिन इधर लोग कहते हैं कि महकमा जङ्गलात की ज़्यादतियाँ पुलिस से दस गुनी हैं। जो मिलता है, इस महकमे की जान को रोता है। तीन मील पर एक जगह में कई मर्द और औरतें खेत गोड़ रहे थे, साथ ही गाते भी जाते थे। राहुल जी को उनका वह खेत गोड़ना और उसके आस-पास का दृश्य इतना सुन्दर लगा कि वे उसे अपने कैमरे में बन्द करने के लोभ को संवरण न कर सके। डेढ़-दो मील पर पास ही एक गाँव था। रात को हमारा डेरा



[प्रोफ़ेसर रोएरिक अपने पुत्रों के साथ।]

उसी में लगा। चौकीदार ने आगे जाकर ठाकुर साहब के आगमन की सूचना दे दी थी। एक घर ख़ाली कर दिया गया। उसके बरामदे में अभी बैठे ही थे कि दो-चार रोगी पहुँच गये। औषध के लिए वे ठाकुर साहब को तो घेरते ही थे, लेकिन साथ ही हमें भी। हमें ओषधियों का ज्ञान नहीं, कहकर मुश्किल से छुट्टी पाते। एक आदमी अपने एक लड़के को लेकर आया। और बोला—इस लड़के की जन्मपत्री अच्छी नहीं है। पता नहीं, कितने दिन जियेगा। इसे आप ले लें। अपना शिष्य बना लें। राहुल जी ने मेरी ओर इशारा करते हुए जवाब दिया—ये महात्मा अब कुछ दिन लाहुल में रहेंगे। जल्दी करने की ज़रूरत नहीं। उचित समझेंगे तो पीछे बना लेंगे। बच्चा छोटा था। कुल पाँच-छः वर्ष का। पता नहीं, उसका पिता कैसे उसे छोड़ने को तैयार हो गया। बेचारे की माता न होगी! और पिता अपने को उसे पालने में असमर्थ पाता होगा। फिर जन्म-पत्री जो ख़राब थी!!!

× × ×

आज २० मई थी। आज हमको वह चढ़ाई चढ़नी थी जिसका ख़याल कर अभी तक की किसी चढ़ाई को हम चढ़ाई ही न कहते थे। आज हमें रतन-जोत पार करनी थी।

प्रातःकाल किरपाराम ने कुछ पराठे और चाय पिलाई। चढ़ाई थी, इसलिए ठाकुर साहब ने एक कुली और ले लिया, जिसमें कुलियों का बोझ बँट जाय और उन्हें अधिक तकलीफ़ न हो। चलते-चलाते सवा सात बज



[मार्ग में मिलनेवाले एक गाँव के निवासी ।]

गये। इस जोत को ही पार करने के लिए मैं लाहौर से एक पिशावरी ढंग का चप्पल लेता आया था, लेकिन कुल्लु में ठाकुर साहब ने यह कह कर कि चप्पल में तो बर्फ़ घुस जायगी, एक जूता और ले दिया था। जुर्राबें (शायद दो) पहनीं और उस पर जूता कस लिया। अब पैरों की ओर से कुछ निश्चिन्त था। लेकिन बर्फ़ पर चलना हो तो पैरों से ज़्यादा हिफ़ाज़त आँखों की करनी होती है। यदि बर्फ़ की चमक से कहीं आँख जल जाय तो एक-दो सप्ताह बहुत तकलीफ़ होती है। बर्फ़ की चमक से बचने का उपाय है हरे रङ्ग की ऐनक। राहुल जी तो रोज़ के बर्फ़ानी यात्री ठहरे। उनके पास हरी ऐनक पहले से थी। मुझे भी एक कुल्लु में ले दी गई थी। उसे आँखों पर चढ़ाया और चले।

व्यास का किनारा। उसका कलरव। आकाश से बातें करनेवाले पहाड़। उन पर सुन्दर देवदारु वृक्ष। उन वृक्षों की ठंडी-ठंडी छाया। चढ़ाई का रास्ता होने से माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें—यही हाल दो-तीन मील तक रहा। रास्ते से ज़रा हट कर एक डाक-बँगला मिला। यदि कल मनाली में देर न होती तो रात को हम इसी बँगले में ठहरते। मैंने पूछा कि असली चढ़ाई शुरू हुई या नहीं। ठाकुर साहब बोले—अभी नहीं। ३२वें मील के पत्थर के पास जब हमने व्यास को एक बार फिर लाँघा तब ठाकुर साहब ने कहा कि अब यहाँ से चढ़ाई शुरू होती है।

सीधी सड़क बहुत घूमकर जाती थी। उसे छोड़ दिया। एक पगडंडी से चलना शुरू किया। यह क्या! यह तो प्रत्येक पाँच-दस क़दम पर साँस फूलने लग गई। मैं अपने लिए डर रहा था, लेकिन देखा राहुल जी की साँस मुझसे भी अधिक फूल रही है। उनका अभी पिछले दिनों टान्सिल का आपरेशन हुआ था। शायद उसकी कमज़ोरी कारण थी। वे कहते थे कि कई महीने बैठे-बैठे केवल क़लम घिसते रहे हैं, उससे चलने का अभ्यास कम हो गया है। आध मील चढ़ते-चढ़ते टाँगें काफ़ी फूल गईं—मेरी और मुझसे ज़्यादा राहुल जी की। एक जगह कुछ देर विश्राम करने का बहाना मिल गया। पता लगा कि यहाँ एक 'साँपों की ढेरी (?)' है। यहाँ साँप निकल कर आ बैठते हैं और लोग उन्हें ला लाकर दूध पिलाते हैं। यही ९, १० बजे सुबह का समय साँपों के बाहर निकलने का होता है। हमने कुछ देर खड़े होकर इन्तज़ार किया। किसी नाग-देवता ने दर्शन नहीं दिये। चढ़ाई में थोड़ा आराम मिल गया। इतना ही फ़ायदा सही। फिर क़दम गिन-गिन कर चढ़ना शुरू किया, फिर आराम। मैं पतला दुबला होने से राहुल जी की अपेक्षा ज़रा नफ़े में था। जल्दी से दस-बीस क़दम आगे बढ़ जाता और फिर उनकी प्रतीक्षा करने के बहाने काफ़ी आराम ले लेता। जब तक वे जैसे-तैसे करके मेरे पास पहुँचते, मैं आगे चल देता। इसी प्रकार करते-करते एक बार राहुल जी पत्थरों की ओट में आँखों से ओझल हो गये, और मैंने देखा, ऊपर चढ़ाई के शिखर पर ठाकुर साहब रुमाल हिला रहे हैं। मुझे ऐसा लगा, मानो रुमाल जल्दी से जल्दी आने के लिए कह रहा है। मैं नाक की सीध हो लिया। कहीं रुका रुमाल देखने के लिए; कहीं रुका सीधा रास्ता देखने के लिए; कहीं रुका साँस लेने के लिए; लेकिन फिर भूलता-भटकता गिरता-फिसलता ऊपर पहुँच ही गया। ऊपर पहुँच कर देखा कि एक ढलवान मैदान है, जिस पर हरी घास बिछी है और हवा इतनी तेज़ चल रही है कि उड़ा ले जाय।

कोई आध घंटे या उससे कुछ कम देर तक इन्तज़ारी करने के बाद राहुल जी भी आ गये। एक जल के चश्मे के किनारे, जिसका पानी इतना ठंडा कि कलकत्ते में हो तो दो पैसे गिलास और लाहौर में हो तो चार पैसे गिलास बिके—बैठकर आराम किया। किरपाराम ने खाने-पीने की सामग्री निकाली। राहुल जी को छोड़कर सबने थोड़ी-थोड़ी ली। मुझे तो चढ़ाई में ख़ूब भूख लग गई थी, लेकिन राहुल जी की रुचि न थी। गरम पानी की बोतल में से थोड़ी-थोड़ी चाय पीकर गर्म हुए और फिर चल दिये। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, राहुल जी की रफ़्तार सुस्त होती जाती थी। तेज़ तो उस चढ़ाई में कोई भी न चल सकता था, लेकिन राहुल जी तो मानो बिलकुल चूर-चूर हो रहे थे। तब हमें मालूम हुआ कि पिछली बीमारी का उन पर कितना असर पड़ा है। अभी हमें ६-७ मील जाना था और हम लोग घंटे में एक मील भी नहीं चल रहे थे। आयु के लिहाज़ से हममें सबसे बड़े थे ठाकुर साहब और सबसे छोटा मैं। सो हम दोनों मिलकर राहुल जी को ऐसे ही बढ़ावा देकर ले चलने लगे, जैसे मातायें छोटे बच्चों को। ठाकुर साहब पचीस क़दम आगे जाकर दो-तीन पत्थर ऊपर-नीचे रखकर एक निशान बना देते और मैं कोशिश करता कि राहुल जी उस निशान से इधर कहीं न बैठने पावें। यह कहना भूल गया कि अब बीच-बीच में हमें बर्फ़ पर भी चलना पड़ता था। मैं कभी-कभी नंगी आँख से बर्फ़ देखने के लिए ऐनक को ज़रा उतारता, लेकिन आँख जलने के डर से तुरन्त ढँक लेता।

जैसे-तैसे ३९वें मील पर एक नाला आया। अब आगे जहाँ तक नज़र जाती थी, बर्फ़ ही बर्फ़ थी। यहाँ हमने ज़रा देर ठहर कर अपने को ताज़ा करना चाहा। चाय की बोतल खोली गई। देखा, उसमें जो दूध मिला दिया गया था वह फट गया है। गर्म पानी के लालच से मैंने दो-चार घूँट पीने चाहे, लेकिन गले से नीचे नहीं उतरे। राहुल जी तो थकावट का ही इतना अधिक अनुभव कर रहे थे कि बैठे रहने को छोड़कर और कुछ चाहते ही न थे—न चाय, न पानी। शाम के चार बजने को आये और फ़ासला अभी काफ़ी था। इतने में ठण्डी हवा चलनी शुरू हुई। ठाकुर साहब ने कहा, यदि यह हवा ज़्यादा हो गई तो फिर मुश्किल है। लाचार हिम्मत बाँध कर चलने की तैयारी करनी पड़ी। मैंने जीवन में पहली बार बर्फ़ का इस प्रकार विस्तृत रेगिस्तान देखा था। इसलिए मैं अपने में उस उत्साह का अनुभव कर रहा था जिसका जनक नया अनुभव होता है। आगे-आगे मैं ही हो लिया। हो तो लिया, लेकिन आगे जाकर मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई।



[खोकसर।]

कुछ दूर चलने पर राहुल जी और उनके साथ ठाकुर साहब पीछे छूट गये थे—आँखों से ओझल हो गये। मैंने खड़े होकर प्रतीक्षा करनी चाही, लेकिन कहाँ खड़ा होऊँ। उस सर्दी में चलते रह कर पैरों को गरम रखना ज़रूरी था। नहीं तो वे सुन्न हुए जा रहे थे। दो-एक जगह तजुर्बे के लिए खड़ा हुआ, लेकिन देखा अधिक देर ठहरना असम्भव है। बहुत आगे जाकर एक बड़ा पत्थर आया। मैं उस पर चढ़ गया कि यहाँ सूखे में खड़े रहकर कुछ देर इन्तज़ार करूँ। लेकिन सूखा कहाँ, जुर्राबों और जूतों में पहले से ही काफ़ी बर्फ़ घुस गई थी, जो अन्दर ही अन्दर पिघल कर पैरों को ठंडा कर रही थी। अब क्या किया जाय? राहुल जी के साथ ठाकुर साहब थे, इसलिए उनकी ओर से तो निश्चिन्त था, लेकिन साथ चिन्ता थी अपनी। बर्फ़ में जिसने जहाँ तबीयत चाही रास्ता बनाया था। एक से अधिक रास्ते फूट पड़ने पर मैं चकरा जाता कि किसको ग्रहण करूँ और किसको छोड़ूँ। ख़ैर, दूसरा कोई उपाय न देखकर मजबूरी अमर बढ़ता चला गया। हाँ, नाले के इस पार से उतराई शुरू हो गई थी। इसलिए रफ़्तार कुछ क्या, काफ़ी तेज़ थी। एकादशी की कसर द्वादशी को निकल रही थी। उतरते उतरते पहाड़ी के सिरे पर जा पहुँचा। अब ज़रा घूमा नहीं कि वह सारा मैदान जिस पर अभी तक दौड़ता आया था, आँखों से ओझल हो जायगा। पहाड़ के नीचे के रास्तों को बर्फ़ ने ढँक लिया था। कहीं कहीं नंगी सड़क दिखाई देती थी, लेकिन वह किधर से किधर जाती है, ठीक कुछ पता नहीं लगता था। एकाएक मुझे अपना एक कुली



[बर्फ़ का रेगिस्तान ।]

जाता दिखाई दिया। जिधर वह जा रहा था, उधर ही मैं हो लिया और थोड़ी देर में सड़क पर आ रहा। कुली का पीछा करने की जल्दी में एक जगह गिर पड़ा, घुटने में ज़रा-सी चोट आई। और अधिक चोट लगती तो भी बर्फ़ में बैठना तो उसका इलाज था नहीं। घुटने को ज़रा रगड़ कर गर्म किया और चल दिया।

चालीसवाँ या इकतालीसवाँ मील-पत्थर मिला। जान में जान आई। लिखा था—खोकसर दो मील। और खोकसर सामने दिखाई दे रहा था। आज रात को खोकसर में ही विश्राम करना था।

रास्ते पर जगह जगह बर्फ़ पड़ी रहने से रास्ता अभी साफ़ न था, लेकिन चार-पाँच मील लगातार बर्फ़ पर चल चुकने के बाद ऐसी छोटी-मोटी बर्फ़ की कौन परवा करता है। हर दस-पन्द्रह मिनट पर खड़े होकर मैं पीछे की ओर देखता कि कहीं राहुल जी आ रहे हों। लेकिन कहाँ? हरी ऐनक में से देखने से मालूम होता कि बस शाम सिर पर है, लेकिन जब चश्मा उतार कर देखता तब काफ़ी धूप दिखाई देती और दिल कुछ बेफ़िक्र हो जाता।

सूरज डूबने से पहले पहल मैं चन्द्रा के किनारे स्थित खोकसर के डाक-बँगले में पहुँच गया। सबसे आगे पहुँचने की उतनी ख़ुशी न थी, जितना अकेले पहुँचने का अफ़सोस।

आते ही जूता खोलकर गीली जुर्राबें उतारीं। पैर ऐसे हो गये थे, जैसी भीगी हुई डबल रोटी। कपड़े से सुखाकर, रगड़ कर कम्बल ओढ़कर बैठा।

शाम होती जा रही थी। राहुल जी नहीं आये थे। यह लो, सूर्य्य भी डूब गया। अभी भी नहीं आये। अँधेरा हो चला। अभी भी नहीं आये। मैंने किरपाराम को बुला कर पूछा कि टार्च कहाँ है, उसके पास है या ठाकुर साहब के पास। वह बोला—मेरे पास है। मैंने उसे टार्च लेकर आगे जाने को कहा। थोड़ी देर में ठाकुर साहब आते दिखाई दिये। यह क्या अकेले! राहुल जी कहाँ हैं? मैंने बेसब्री से पूछा। बोले उनसे बिलकुल नहीं चला जा रहा है। सख़्त प्यास लगी है। मैं आगे चला आया हूँ कि कुछ चाय बनवाकर भेजूँ। मैंने पूछा—अभी कितनी दूर पर होंगे? वे बोले—होंगे एक डेढ़ मील पर। क्या करूँ और क्या न करूँ? कुछ समझ में नहीं आता था। यह मालूम होता कि आज राहुल जी को इतना कष्ट होगा तो क्यों उनका साथ छोड़ता। कम से कम इस समय उनके कष्ट का समाचार सुनकर इस तरह दुखी तो न होता।

उठूँ, उठकर उन्हें लेने वापस जाऊँ? किस बूते पर? अपने ही राम राम करके न जाने कैसे पहुँच गया हूँ। मैं बार बार उठता, रास्ते की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखता। और किरपाराम उन्हें लिवा लाने जा ही चुका था। ख़ैर, बेचैनी के मारे एकाएक पीछे की ओर से कोई आता दिखाई दिया। यह क्या? राहुल जी। "इधर किधर से?" "रास्ता भूलकर पुल के दूसरी ओर चला गया था।" "किरपाराम मिला"? "हाँ"।

मैंने बात न की। झट-पट बिस्तरा लगा दिया। तब तक किरपाराम गरम गरम नमकीन चाय ले आया, जिसे पीते ही राहुल जी अपनी काली गुदड़ी में घुस कर सो गये।

उस दिन चले हम कुल १३ मील, लेकिन वैसी थकावट शायद ही और कभी हुई हो।

इतनी तकलीफ़ उठाकर पहुँचने पर भी सोते समय राहुल जी के मुँह में निराशा या दुःख का एक शब्द न था।

भारत तथा प्रान्तीय सरकारों की माली हालत

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

श्रीयुत वर्मा जी हिन्दी के उत्साही लेखक हैं। इस लेख में उन्होंने भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक अवस्था का सप्रमाण परिचय दिया है। इस विषय के पाठकों के लिए यह एक उपादेय लेख सिद्ध होगा।

भारतीय संघ बनने जा रहा है अथवा उसके निर्माण की चेष्टा की जा रही है। ऐसे अवसर पर सभी समझदार यह सोच रहे हैं या सोचने की चेष्टा कर रहे हैं कि संघ की माली हालत क्या होगी। जिस समय संघ-सरकार का प्रथम अर्थ-मंत्री शासन की बागडोर अपने हाथ में लेगा, उस समय क्या उसे भारतीय कोष बहुत ही दृढ़ और ठोस हालत में मिलेगा या उसको भी युक्त-प्रान्त, मदरास तथा पञ्जाब-प्रान्त की वर्तमान सरकारों की तरह घाटेवाले बजट के साथ २ करोड़ रुपये के क़र्ज़ से अपना काम शुरू करना होगा? हमारे इस लेख का उद्देश इस प्रश्न का सापेक्षिक उत्तर देना है और शुद्ध आँकड़ों-द्वारा यह दिखलाना है कि वास्तविक माली हालत क्या है।

यह बात कितनी बार कही जाय कि भारत की मौजूदा आर्थिक विपत्ति का कारण भारत-सरकार की मुद्रा-नीति है। १९२० में ही रुपये की विनिमय-दर तय करने में तथा रुपये को स्टर्लिंग की पूँछ में बाँध रखने की जो ग़लती की गई थी उसका रोना रोते रोते तो आँखें पथरा-सी गई हैं। अरबों का सोना बाहर चला गया! और अब भी १२-१५ लाख फ़ी हफ़्ते का औसत है। चाँदी के सट्टे में लोग करोड़ों रुपया खो तथा बना बैठे। चाँदी ही हमारे पास अब विनिमय की वस्तु रह गई है।

देश में रोज़गार के मन्दा होने तथा लाभ-युक्त अनेक साधनों के अभाव के कारण बहुत-सा रुपया बेकार पड़ा हुआ है। इसी स्थिति से आज बैंक-रेट बहुत गिरा हुआ है। बैंकों की तुलना में सरकारी हुण्डियों में रुपया रखना अच्छा समझा जाने लगा है, इससे अपने बैंकिंग व्यवसाय पर भी अविश्वास प्रकट होता है। इसी लिए पिछले वर्ष मई के महीने में जब भारत-सरकार ने १२ करोड़ रुपये का नया क़र्ज़ लेने की घोषणा की, उसी एक दिन में ऋण मिल गया और वह भी कुछ ही घण्टों में। सन् १८९६ के बाद सूद की इतनी कम दर पर और कोई भी क़र्ज़ सरकार ने नहीं लिया। यह ऋण $2\frac{3}{4}$ प्रतिशत की दर पर लिया गया है। २६ मई सन् १९३६ को चालू किया गया और उसी दिन सारा का सारा नक़द रुपया मिल गया। क़ीमत पूरे १००)। सरकार अधिक-से-अधिक ११ जून १९५२ में इसे चुका देगी, पर १ जून १९४८ के बाद कभी भी इसे अदा कर देने का उसे अधिकार होगा। सूद छमाही अदा होगा और उस पर आय-कर लगेगा। ५००) रुपया से कम किसी से नहीं लिया गया। इस प्रकार इस ऋण ने यह साबित कर दिया कि सरकारी काग़ज़ों पर जनता का पूर्ण विश्वास है तथा व्यापार की मन्दी में उसके लिए इन काग़ज़ों पर टूट पड़ने के अलावा कोई दूसरा साधन नहीं रहा।

१९३६-३७ में कई नये ऋण चालू किये गये और तुरन्त उनका रुपया मिल गया। इससे यह स्पष्ट है कि सरकारी के ही नहीं, हर एक प्रकार के ऋण में रुपया लगाकर लोग अपने पास पड़े हुए बेकार रुपये को काम में लगाना चाहते हैं। उपरिलिखित सरकारी ऋण के बाद ही, यानी ७ अगस्त १९३६ को, १००) मूल्य का, ३ प्रतिशत दर पर, ३० लाख रुपये का ऋण कलकत्ता-इम्प्रूवमेण्ट-ट्रस्ट ने लिया। ७ अगस्त १९६६ को यह ऋण चुका दिया जायगा। पहला छमाही सूद ७ फ़रवरी १९३७ को देना था और वह चुका दिया गया। इस ऋण को भी तुरन्त प्राप्त कर लेने में कोई दिक्क़त नहीं हुई। इसके सूद की अगस्त की क़िस्त भी अदा हो गई है।

इसी के बाद 'न्यू हवड़ा-ब्रिज-लोन' चालू हुआ, जिसकी ज़ामिन बंगाल की सरकार है। इस ऋण में १५,० लाख रुपया ३½ प्रतिशत सूद पर अगस्त १९३६ में लिया गया और यह २६ अगस्त १९६६ को चुका दिया जायगा। इसका सूद भी छमाही अदा होगा और इसकी २६ फ़रवरी १९३७ तथा २६ अगस्त १९३७ की क़िस्तें अदा हो गई हैं।

इसी वर्ष कलकत्ता-कारपोरेशन ने दो ऋण लिये। पहला सितम्बर १९३६ में ६० लाख रुपये का था, जो पहली अक्टूबर १९६६ को अदा होगा; दूसरा ७,७८,४००) रुपये का था, जो १९५३ में ही अदा हो जायगा। पहला ऋण 'डिबेंचर-लोन' है। इन दोनों का भी सूद नियमित रूप से अदा हो रहा है। सूद की दर ३ प्रतिशत है। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि ये सभी ऋण भारत-सरकार की अनुमति से लिये गये हैं।

अक्टूबर १९३६ में रंगून-कारपोरेशन ने ३½ प्रतिशत सूद पर १५० लाख रुपये का 'डिबेंचर-ऋण' लिया, जो ३०-४० वर्ष के बाद अदा होगा। नवम्बर १९३६ में कराची-पोर्ट-ट्रस्ट ने १२ लाख रुपये का ऋण लिया। सूद की दर ३ प्रतिशत है। इसी वर्ष प्रान्तीय सरकारों में केवल युक्त-प्रान्तीय सरकार ने २ करोड़ रुपये का ऋण लिया, जिसका ज़िक्र आगे किया गया है। सन् १९३७ में प्रधान ऋण प्रान्तीय सरकारों का ही रहा, पर कम सूद के रूप में जो लाभ भारत-सरकार ने प्राप्त किया वह किसी ने नहीं, और यह एक विशेष महत्त्व की बात है। पर इससे स्पष्ट है कि जनता का अपना इतना रुपया इतनी आसानी से दे देना उसकी व्यापारिक समृद्धि का उलटा रूप ही बतलाता है और यह साबित करता है कि १९३६-३७ से सरकार की मुद्रा-नीति के कारण भारत से सोने का जो भयंकर निर्यात हो रहा है वह हमें और भी ग़रीब कर रहा है।

गत ३१ मार्च १९३७ तक भारत-सरकार की माली हालत क्या थी तथा उसके आय-व्यय का लेखा उसके क़र्ज़ के अनुपात से किस रूप में था, यह आगे दिये गये आँकड़ों से मालूम होगा। २० सितम्बर १९३७ को राज-परिषद् में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मिस्टर ए० जे० राइसमैन ने ये आँकड़े दिये थे।

भारत-सरकार का देना

भारत में देना	(करोड़ रुपयों में)
ऋण	४३,७८,८
ट्रेज़री-बिल	२६,६९
अन्य देना—पोस्ट-आफ़िस-सेविंगबैंक	७४·७५
डिप्रिसिएशन एण्ड रिज़र्व फ़ण्ड	१९,०५
प्रान्तीय बैलेंस	१·३७
प्राविडेण्ट फ़ण्ड	१९·०५
पोस्टल कैश सर्टिफ़िकेट	६५·२३
कुल	७३०·२४

इँग्लेंड में देना	(दस लाख पौंड में)
ऋण	३००·७२
लड़ाई का चन्दा	१६·७२
ऐसा देना जो वाजिबुलअदा होनेवाली रेलवे की वार्षिक रक़मों के कारण मूल्य में कम हो रहा है	३९·८५
प्राविडेण्ट फ़ण्ड इत्यादि	१·४९
इँग्लेंड में—कुल	३५८·७८

पावना

[भारत-सरकार की सूद की आमदनीवाली पूँजियाँ]

भारत में	(करोड़ रुपयों में)
रेलवे को पेशगी दी गई रक़म	७५२,२१
अन्य व्यापारिक महकमों की पेशगी	२४,७३
प्रान्तों को दी गई पेशगी	१८६,४८
देशी रियासतों को दी गई पेशगी तथा अन्य सूदवाले ऋण (दिये गये)	२०,८९
कुल—भारत में	९८४,३१

इँग्लेंड में	(दस लाख पौंड में)
ट्रेज़री खाते में—नक़द—स्वर्ण-कोष तथा सिक्यूरिटी में	१९,३७
ऊपर दी गई संख्या के अलावा अन्य सूदवाली लागतों से	२०४,९३
कुल—इँग्लेंड में	२२४,३०

अब नीचे हम भारत-सरकार के उन क़र्ज़ों का जो उसने स्वयं इँग्लेंड तथा भारत में लिये हैं, ब्योरा देते हैं। इनसे सरकारी काग़ज़ों में लेन-देन करनेवालों को बड़ा लाभ होगा।

गवर्नमेंट आव् इण्डिया लोन्स

भारत-सरकार की कुल रुपये की सिक्यूरिटी का मूल्य ४,३५,११,७२,८००) रुपया है। कुल स्टर्लिंग सिक्यूरिटी का मूल्य २७६,५८४,४७३ पौंड है। १९३७ तक यही परिस्थिति थी और इस तालिका के प्रकाशित होने तक कोई परिवर्तन न होगा।

सीमित-काल के ऋण

ऋण	चालू	देना	जब वापस होंगे
३ प्रतिशतवाला ऋण	१९३४	१०,६७,३२,०००	१९४१
,, ,, ,,	१९३५	१५,१२,८५,०००	१९५१-५४
३½ ,, ,,	१९३३-३४	५५,६४,३७,०००	१९४७-५०
४½ ,, ,,	१९२८	९,०५,७०,०००	१९५५-६०
५ ,, लड़ाई का ऋण	१९१९-२५	५६,७४,९४,०००	१९४५-५५
४ ,, बांड	१९२६-३३	५३,३०,२६,०००	१९६०-७०
५½ ,, ऋण	१९३२	१६,१३,९०,०००	१९३८-४०
५ ,, ,,	१९२९	२७,७८,१२,०००	१९३९-४४
५ ,, ,,	१९३२	२५,१८,४७,८००	१९४०-४३
४ ,, ,,	१९३३	१४,९७,१८,०००	१९४३
२¾ ,, ,,	१९३६	१२,००,००,०००	
कुल		३०९,९३,११,८००	१९४८-५२

असीमित-काल के ऋण

ऋण		देना	
३ प्रतिशतवाले ऋण	१८९६-९७	३,१६,२४,०००	३ महीने का नोटिस देकर जब चाहे सरकार चुका सकती है।
३½ ,, ,, ,,	१८४२-४३	२३,७५,९५,०००	
,, ,, ,, ,,	१८५४-५५	२१,५८,७३,०००	
,, ,, ,, ,,	१८६५	३७,४७,३४,०००	
,, ,, ,, ,,	१८७९	२,८०,६१,०००	
,, ,, ,, ,,	१९००-१	३६,३१,७४,०००	
कुल—		१२५,१८,६१,०००	

स्टर्लिङ्ग-सिक्यूरिटी

प्रतिशतवाले ऋण		पौं०	
२½ ,,		११,५३९,९६६	५ अक्टूबर, १९४८ के बाद एक वर्ष का नोटिस देकर चुकाये जा सकते हैं।
३ ,, ,, ,,		७७,०२४,१८५	
३½ ,, ,, ,,		८८,६६७,८८४	५ जनवरी १९३१- ,, ,,
४½ ,, ,, ,,	१९२२-२३	३६,८५२,४१८	१९५०-५५
४½ ,, ,, ,,	१९२८-२९	१७,५००,०००	१९५८-६८
५ ,, ,, ,,	१९३२	१०,०००,०००	१९४२-४७
४ ,, ,, ,,	१९३३	१२,०००,०००	१९४८-५३
३½ ,, ,, ,,	१९३३	१०,०००,०००	१९५४-५९
३ ,, ,, ,,	१९३५	१०,०००,०००	१९४३-५२
कुल—		२७६,५८४,४७३	

इतना लिखने के उपरान्त यह आवश्यक है कि सरकारी-गिल्ट-एण्ड-सिक्यूरिटियों (जो सुनहरी सरकारी हुण्डी कहलाती हैं तथा बाज़ार में जिनकी बहुत काफ़ी ख़रीद-बिक्री होती है और जिनका सरकारी ज़मानतों के लिए बहुत ही उपयोग होता है) की स्थिति भी बतलाई जाय। इन हुण्डियों का दाम गिरने के दो मतलब होते हैं। या तो विदेशी वातावरण ऐसा हो कि लड़ाई छिड़ने इत्यादि की सम्भावना हो और सरकारी मुद्रा की साख के गिरने का भय हो या देश में उद्योग-व्यवसाय इतना काफ़ी हो कि इनकी पूछ कम हो या यह भी सम्भव है कि देश के पास पैसा ही न हो कि इनमें रुपया लगावे। पिछला कारण सम्भव नहीं है। लाख दारिद्र्य होने पर भी रुपया तो बाज़ार में होगा ही और व्यवसाय के अभाव में लोग इन्हीं की ओर दौड़ेंगे, अतएव उनका दाम बढ़ता ही रहेगा—माँग ज़्यादा होने पर ऐसा होता ही है। ये सिक्यूरिटियाँ वास्तव में सरकारी ऋण-पत्र हैं, पर ऋणदाता या ऋण लेनेवाला दोनों के हाथ में अन्त में पहुँचने के पहले इनका हज़ारों के हाथ में लेन-देन हो जाता है। हर एक काग़ज़ का ब्योरा बतलाना तो कठिन है, पर थोड़े में यह तो बतला ही सकते हैं कि इनका उलट-फेर कैसा होता है। सबसे अधिक प्रिय या चालू सुनहरा काग़ज़ ३½ प्रतिशत का है। इसी का उतार-चढ़ाव जानने से इस विषय का कुछ ज्ञान हो जायगा।

इनका भाव लंदन के रुख़ तथा लंदन की सलाह पर बहुत कुछ निर्भर करता है, यह हम ऊपर दिखला चुके हैं। यही सरकारी काग़ज़ लंदन की 'दृढ़' मुद्रा-रिपोर्ट तथा रुपये के सरल बाज़ार तथा अनुकूल विदेशी परिस्थिति के कारण १९३५ के दिसम्बर में, बड़े दिन की छुट्टियों में, ९६ रहा। यानी १००) का काग़ज़ ९६) रुपये में मिलता था। छुट्टी के बाद इनमें का लेन-देन कम रहा। फिर भी जनवरी १९३६ में भाव बढ़कर ९६।।।) हो गया, फ़रवरी में ९६।।।=) हो गया। इस समय ३ प्रतिशत-वाले काग़ज़ ९०।।=) के थे। तीन प्रतिशतवाले असीमित काल के भी हैं। अतः इनका दबना स्वाभाविक ही है। पर इस काग़ज़ की शक्ति का ३½ प्रतिशत पर प्रभाव पड़ता है।—जब असीमित काल के ऋणवाला काग़ज़ ८०-८१) रुपये के बजाय ९०) था तब ३½ प्रतिशतवाले का ९६।।।=) से बढ़कर फ़रवरी के मध्य तक ९७।।=) हो जाना असम्भव नहीं है। फ़रवरी के अन्त तक ३ प्रतिशत का काग़ज़ ९१) हो गया। इसके फल-स्वरूप ३½ प्रतिशतवाले काग़ज़ का दाम भी बढ़कर ९९।।=) तक पहुँच गया। वर्षों के बाद ऐसे मज़े का भाव बढ़ा था। पर मार्च में जर्मनी की सेना राइन देश की भूमि में जो अन्तर्राष्ट्रीय कब्ज़े में थी, अनधिकार प्रवेश कर गई। इससे योरप में हलचल मच गई। इस हलचल से इस सरकारी काग़ज़ का दाम तुरन्त गिरकर ९६।।।) हो गया। ३ प्रतिशत भी ८८) पर आ गया। पर जर्मनी की इस चेष्टा का कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ, अतएव बाज़ार सँभलने लगा और उसका भाव ९७।।) तक आ गया। मध्य अप्रैल तक ९८।।=) तक हो गया। स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटी भी ९७ पौंड १५ शि० तक पहुँच गई। इसी के बाद आस्ट्रिया में सेना-सञ्चालन होते देखकर लोग फिर घबराये, पर दाम ज़्यादा न गिरा। मई में सरकार का १२ करोड़ का ऋण-पत्र निकला। इससे, यानी इसकी ज़बर्दस्त माँग को देखकर ३½ प्रतिशतवाला काग़ज़ भी उत्साहित होकर ९९।।) तक पहुँच गया। जून-जुलाई में २-३ आने भाव बढ़ता ही रहा। सितम्बर में फ्रैंक (फ्रांस की मुद्रा) का मूल्य कम होने से इस सिक्यूरिटी-पत्र की माँग और बढ़ी और वह ९९।।।) हो गई। पर यह माँग और भी बढ़ी, यहाँ तक कि अगस्त में १००।।।=) हो गई—मूल्य अपनी सीमा से आगे चला गया। पहले के ख़रीदारों को बड़ा लाभ हुआ। नवम्बर में सम्राट् एडवर्ड के विवाह की ख़बर—उनके राजगद्दी-त्याग की हलचल—से यह भाव गिरकर ९८।।।=) हो गया, पर नये सम्राट् के गद्दी पर बैठते ही पुनः १००।।) हो गया।

सन् १९३७ में स्पेन के युद्ध, इटली-जर्मनी के मेल से उत्पन्न परिस्थिति तथा जापान-चीन की लड़ाई के कारण भाव बहुत चढ़-उतर रहा है। पर जहाँ तक हमें मालूम है, ९७-९८) से कम नहीं गया। अभी इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। वर्ष भर का ब्योरा तो वर्ष के अन्त में ही दिया जा सकता है। इस प्रकार सरकार की माली हालत का कुछ अन्दाज़ हमें मिल गया। अब हम प्रान्तीय सरकारों का संक्षेप में ज़िक्र करेंगे।

प्रान्तीय सरकार के ऋण

हर एक प्रान्तीय सरकार ने जो ऋण लिये हैं तथा इस समय उनकी जो माली हालत है उसका जो थोड़ा-बहुत विवरण हम दे सकेंगे वही यहाँ देंगे। पर १९३६ की उनके ऋण की दशा पूरी तरह बतला देना उचित होगा। १९३६ में असल में प्रान्तीय ऋणों का युग नहीं था। यह युग तो १९३७ में था। १९३७ के दिसम्बर में ही क्रमशः पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त तथा बंगाल व मदरास की सरकारों ने २ करोड़ रुपये का (प्रत्येक) क़र्ज़ लिया है। ये क़र्ज़ भी तुरन्त वसूल हो गये और इनको प्राप्त करने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई।

पर १९३६ में प्रान्तीय ऋणों में केवल युक्त-प्रान्त की सरकार का दो करोड़ रुपये का ऋण है, जिसका हमें ज़िक्र करना है। १५ सितम्बर १९३६ को इस ऋण के लिए एक दिन के भीतर ही रुपये प्राप्तकर लिये गये। यह ऋण-प्रान्तीय सरकार की 'हाइड्रो-इलेक्ट्रिक योजना', ग्रामों में ट्यूब-वेल के प्रचार की योजना तथा कृषकों और म्युनिसिपल संस्थाओं को ऋण देने की योजना के लिए चालू किया गया था। ३ प्रतिशत सूद है तथा चालू १००) ही था। १५ सितम्बर १९६१ इसके भुगतान की अन्तिम तिथि है तथा सरकार इसके पहले भी ३ महीने का नोटिस देकर इसको अदा कर सकती है। आय-कर इस पर भी लगेगा। ऋण-पत्र १००)-५००) १०००) १०,०००), २५,०००) ५०,०००) तथा १,००,०००) रुपये के प्रामिसरी नोटों में चालू किया गया था। इन प्रामिसरी नोटों की पुश्त पर हस्ताक्षर दूसरे के नाम ट्रांसफ़र भी किया जा सकता है। इन ऋण-पत्रों की अदायगी या इनके मूल्य के गिरने के अवसर के लिए प्रान्तीय सरकार १९३७-३८ के बजट से प्रतिवर्ष समूचे ऋण का १¼ प्रतिशत बचाकर रखती चलेगी। इसके लिए बेचनेवाले दलालों को (जो प्रान्तीय सरकार के द्वारा दलाल के रूप में स्वीकृत हों) दो आना प्रतिशत दलाली भी दी गई थी और दलालों ने काफ़ी फ़ायदा उठाया था।

१९३६ में जिन दो प्रमुख प्रान्तीय ऋणों के आँकड़े हमें प्राप्त हो सके हैं वे नीचे दिये जाते हैं। इनसे बहुत कुछ अन्दाज़ लगाया जा सकता है और यह भी ज्ञात हो सकता है कि कम-से-कम दो प्रान्त कितने ऋण-ग्रस्त हैं।

ऋण—	चालू हुए	वाजिब	कब अदा होंगे
५ प्रतिशत युक्त-प्रान्तीय-ऋण	१९३२	२,५७,८९,१००	१९४४
३ प्रतिशत ,, ,, ,,	१९३६	२,००,०००,००	१९६१-६६
५½ ,, पंजाब-ऋण	१९२५	८५,९२,८००	१९३७
४ ,, ,, ,,	१९३३	३,२४,४१,६००	१९४८

यहाँ यह लिख देना सामयिक होगा कि पंजाब-सरकार ने अपना १९३७ का ऋण १९२५ वाले ऋण की अदायगी के लिए भी लिया था। प्रान्तीय सरकारों की माली हालत के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि इस वर्ष बम्बई, पञ्जाब, बंगाल, मदरास, संयुक्त-प्रान्त—प्रायः सभी के बजट में घाटा रहा और किसी भी प्रान्त ने नवीन शासन-विधान में बहुत ही सन्तुलित बजट के साथ नहीं प्रवेश किया, अतएव भविष्य के विषय में कोई अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता।

जहाँ तक देशी रियासतों का ताल्लुक़ है, केवल मैसूर, ट्रावंकोर तथा कोचीन की सरकारों के ऋण बाज़ार में बहुतायत के साथ काफ़ी चालू दशा में पाये जाते हैं। ये सभी ऋण पिछले १६-१७ वर्षों के भीतर के हैं और या तो व्यापारिक अभ्युदय के काल में अथवा एकदम गिरी हालत के समय लिये गये हैं। मैसूर-सरकार पर सन् १९२० का १,०८,५७,२२५) रुपये का ऋण है, जिसे अब तीन ही वर्ष में चुकाना पड़ेगा। १९२१ में उसने २५,५०,८१२½) रुपये का ऋण पुनः लिया, जिसे उसको १९४१-४५ के भीतर चुकाना होगा। उसने १९३० में १,६३,४४,३००) का ऋण लिया, जो १९५५ में चुकता होगा। इसी वर्ष उसने २,४५,९२,०००) का एक ऋण और लिया है, जो अगले वर्ष ही दे देना होगा। इस सरकार ने १९३३ में २,४८,२९,०००) रुपये का क़र्ज़ फिर लिया, जो १९५३-६३ के भीतर चुकाया जायगा। १९३४ में ५० लाख रुपये का क़र्ज़ फिर लिया गया, जो १९५१-५८ में वाजिबुलअदा होगा। १९३६ में ५० लाख रुपया फिर लिया, जो १९५६-६१ में दिया जायगा। इस प्रकार कुल १८,९१,७४,२३७) मैसूर-सरकार को देना है, और वह भी

अधिक-से-अधिक सन् १९६३ तक। मैसूर में आज जो इतनी उन्नति देखी जा रही है वह इसी का परिणाम है। पर इतना अधिक क़र्ज़ कैसे अदा होगा, जब मैसूर के व्यावसायिक उद्योगों में से अधिकांश विशेष लाभदायक नहीं हैं? यह उसके विशेषज्ञों के सोचने की बात है। १९३६ में कोचीन तथा ट्रावंकोर की सरकारों ने क्रमशः ३० व ५० लाख रुपया क़र्ज़ लिया, जिसे क्रमशः १९५६-६१ तथा १९५६ में उन्हें चुकाना होगा। ये रक़में इन सरकारों के लिए ज़्यादा नहीं हैं।

नई सभ्यता तथा नये आर्थिक विचारों के अनुसार किसी सरकार का ऋणी होना बुरा नहीं, बल्कि अच्छा समझा जाता है। पर इस ऋण का कभी अन्त नहीं होता। एक लेकर दूसरे का भुगतान होता रहता है। पर जब चुकाते-चुकाते ऋण का चक्कर बहुत ही पेचीदा हो जाता है और राष्ट्र पर युद्ध ऐसी कोई विपत्ति आ जाती है, उस अ... पर वही दशा होती है जो आज जर्मनी की हुई है। ... उसने देखा कि वह ज़्यादा चुकता न कर सकेगा तब उ... कह दिया कि "हम न देंगे। लेना हो तो ज़बर्दस्ती लो।" या फ़्रांस ऐसे राज्यों की तरह परेशानी होती है। कई मंत्रिमण्डल बनते-बिगड़ते हैं और परेशान हो... ऋणदाता से भीख माँगी जाती है कि भाई, बहुत दे ... बक़ाया छोड़ दो। फ़्रांस तथा ब्रिटेन ने अमरीका से ऐ... ही प्रार्थनायें की थीं। इसलिए ऋण का लेना राष्ट्र के लि... आवश्यक होते हुए भी उसकी आर्थिक शक्ति का द्यो... नहीं होता। क़र्ज़ तो क़र्ज़ ही है, चाहे वह व्यक्ति ले... राष्ट्र। भारत पर ऋण का उतना बोझ नहीं है जितना 'ब्रिटेन के चार्ज' और इनका बन्धन न होने पर ... ऋण के बन्धन से भी छूट सकता है।

कौन ?

लेखिका, श्रीमती दिनेशनंदिनी चोरड्या

१

तारों की तड़पन हो तुम या
हो जूही के मधुर हास
गजरों के कोमल बन्धन हो
या मधुवन की सुरभित साँस।

२

जटिल ग्रन्थि हो जीवन की
या अलियों का अमृत गुञ्जन,
उलझे कुन्तल किरण बाल के
या बसुधा का सम्मोहन।

३

प्रथम मिलन की मादकता हो
या विछोह का चिरकम्पन
सिन्धु हृदय की चंचल लहरी
या भावों का शुचि मन्थन

४

जर्जर आँचल के प्रसून हो
या साधक की अथक चाह,
मन-मन्दिर की चेतन प्रतिभा
या हो उसके उर की चाह !!

विचारपूर्ण एकाङ्की नाटक

मरण-बेला

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

(१)

समय—मध्यनिशा, भयानक अन्धकार, कभी कभी बिजली की छटा।

स्थान—रणस्थली। कोसों तक फैली हुई।

दृश्य—संख्यातीत घायल तड़प रहे हैं, दम तोड़ रहे हैं। "पानी" "पानी" चिल्ला रहे हैं, ऐंठ रहे हैं, कराह रहे हैं। मुर्दों पर शृगाल और कुत्तों के हमले हो रहे हैं, कोलाहल मचा हुआ है। हवा में विषाद भरा हुआ है, हाहाकार भरा हुआ है, उदासी और कठोरता भरी हुई है। रक्त की कीच में घायल लोट रहे हैं, प्यास के मारे अपना ही ख़ून चाट रहे हैं। महामरण का मेला लगा हुआ है। भीम भैंसे पर सवार यमराज प्रकट होते हैं—क्षीण, लाल, मटमैला प्रकाश छा जाता है।

एक आहत योद्धा—"तुम कौन हो महाबाहो?"

यमराज—मैं! मैं हूँ यमराज, अन्तक। मेरे सिपाही! मैं तुम जैसों को पीड़ा से मुक्त करके स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाता हूँ, मैं स्वर्ग का दूत हूँ, मार्ग-प्रदर्शक हूँ, साथी हूँ, मैं शान्तिप्रदाता और नवजन्म का संदेशवाहक हूँ। मैं यहाँ, इस पवित्र भूमि पर आया हूँ तुम्हें वहाँ ले चलने, जहाँ अणिमा आदि सिद्धियाँ आसन, पाद्य, अर्घ्य लेकर तुम्हारा पथ निहार रही हैं, भगवती रणचंडी तुम्हारे लिए मुंडमाला लेकर खड़ी हैं और भूतनाथ तुम्हें अपना रूप प्रदान करने को आकुल हैं—वीर! मैं यमराज हूँ, महाकाल हूँ। यह मेरा यमदंड तुम्हें क्षण भर में समस्त कष्टों से दूर कर देगा। बोलो—हो तैयार?

आहत योद्धा—देव! प्रणाम। मैं—मैं तुम्हें जानता था देव! पर इस रूप में नहीं, इस भयानक आकार-प्रकार में नहीं। मैं नहीं कह सकता—नहीं सोच सकता कि सचमुच तुम कौन हो। यदि शक्ति होती, यदि आहत न होता, तो मैं तुम्हारी परीक्षा लेता तलवार की कसौटी पर खरे-खोटे की—देवता हो या मनुष्य, शत्रु हो या मित्र। बस, इतनी ही—पर—हाय देव! यह शृगाल मेरी आँत खींच रहा है। ऐसी लाचारी है।

हाँ, तो मैं जानता था, तुम सदा मेरी तलवार की छाया में विचरण करते हो, यही तुम्हारा निवास-स्थान है। मैं जानता था, तुम सच्चे वीर के प्रबल रोष में रहते हो। मैं जानता था, तुम 'मारू-राग' में रहते हो। मैं जानता था, तुम मेरी रोषभरी दृष्टि में रहते हो। पर यह क्या देख रहा हूँ? भैंसे पर सवार पुञ्जीभूत ज्वाला की तरह एक प्रज्वलित मूर्ति! नहीं, तुम यमराज नहीं हो। नहीं, तुम महाकाल नहीं हो। आर्य! जो अन्धकारमयी निशा में, अपने आपको छिपाकर, किसी आहत, लाचार, मरणोन्मुख योद्धा के सामने अस्त्र धारण करके जाता है वह संसार को अपने चरणों के नीचे दबाकर तांडव-नृत्य करनेवाला महा-काल नहीं कहा जा सकता। मैं सोचता हूँ, तुम भी सोचो हे वीर! मैंने जन्म भर ख़तरे से आँख-मिचौनी खेली है, मरण को अपनी म्यान में क़ैद करके रक्खा है, जीवन को गेंद समझकर दोनों हाथों से उछाला है—एक बार नहीं, दो बार नहीं, बार-बार। यही मेरा प्यारा खेल रहा है, यही मेरा एक लुभावना मनोविनोद रहा है। मुझे क्या चिन्ता यदि मेरे सामने मरण आकर दहाड़े, यमराज आकर यमदंड के महातेज से मेरी आँखों को झुलसाना चाहें या मृत्यु आकर पिशाचिनों के साथ किलकारियाँ भरे? मैंने भय का हृदय चीरकर उसका ख़ून पी लिया है—संसार में भय का अस्तित्व ही नहीं रहा। फिर उसका डर कैसा? तुम कहते हो, मैं स्वर्ग जाऊँगा। पर तुम जानते हो, देव, तुम्हें मालूम है, महाबाहो, वीरों का स्वर्ग कहाँ है, किधर है, कैसा है। नहीं जानते? अफ़सोस! जहाँ सुख से बैठने को आसन मिले, पंचदशी कामिनियाँ सेवा करती हों। संसार के कोलाहल से परे जो स्वर्ग है वह है कायरों का स्वर्ग। उस स्वर्ग में अपाहिजों को ले जाकर रख देना, विषय के

गंदे कीटों को वहाँ जाकर बसा देना। योद्धाओं का स्वर्ग वह नहीं है, जहाँ तुम मुझे ले जाना चाहते हो। हमारा स्वर्ग यही है, जहाँ मैं पड़ा हूँ, तलवारों की झनझनाहट में जहाँ हमारा स्वर्गीय संगीत गूँजता है। आघात-प्रतिघातों में हमारा स्वर्ग बसा हुआ है, महाकर्म कोलाहल में हमारा स्वर्ग शतदल की तरह फूल रहा है। खाइयों में, मैदान में, घाटी में आहत होकर या सिर कटवा कर मैदान में मरना ही हम योद्धाओं का चरम सुख है। काँटों का आसन ही हमारा आसन है और ये गृद्ध, सियार, कुत्ते हमारे अपने हैं, मित्र हैं, पुरजन हैं, हितैषी हैं और हमारी टूटी हुई तलवार ही स्वर्ग की नसैनी है। याद रहे, महाबाहो, तुम एक योद्धा के सम्मुख खड़े हो।

देव! मैं तुम्हारे बतलाये हुए स्वर्ग को ठोकर मारता हूँ। मुझे यह दुःख ही रहेगा कि तुम्हारे यमदंड के प्रहार का कोई उत्तर मैं नहीं दे सकूँगा। आज तक किसी भी प्रहारकर्ता का एक भी प्रहार मेरे यहाँ ऋण-रूप में नहीं है। यदि एक पाया तो चार लौटाये। पर देव! तुम्हारा यह अन्तिम प्रहार मेरे यहाँ रह गया, मुझे इसका दुःख है। यदि तुम मनुष्य-रूप में अवतरित हुए और मैं भी मनुष्य ही रहा तो मुझे... इ...स...की...या...द...दि...ला...ना...ख़ै...र!

(२)

उषाकाल। सुरम्य वाटिका। मधुऋतु। वृक्ष फूलों से लदे हुए हैं। डाल पर कोयल बोल रही है। इठलाता हुआ मलयानिल डोल रहा है। उषाकाल की सुनहरी विभा पृथ्वी पर मचलती हुई उतर रही है। बाग़ में एक सुन्दर चौतरा है। कवि मृत्यु के पालने पर हौले हौले झूल रहा है। सर्वत्र आलस्यमयी शान्ति।

मृत्यु का प्रवेश—श्वेतवस्त्रावृता परम कमनीय मूर्ति। शान्त, गम्भीर, सकरुण कोमल मुखमंडल, झुकी हुई आँखें और भीगी हुई पलकें। हाथों में नन्दनवन के पुष्पों के कंकण। परम लुभावनी क्रीडा चन्द्रविभानना। मराल गति।

कवि—वनदेवी! मेरी चिरसाधना की मूर्ति! तेरे अरुण कोमल चरणों में कोटिशत प्रणाम। किधर पधारीं मेरी कविते! किन शब्दों में अपने मनोभाव व्यक्त करूँ मेरी कामना की देवी? मैंने जन्म भर तेरी आराधना की, पर तू आई भी तो उस घड़ी जब अपने जीवन-नाटक का अन्तिम अंक लिखना समाप्त कर रहा हूँ। अब इतना ही लिखना बाक़ी है। क़लम को फिर से दावात का संयोग नहीं होगा। उ... पर जितनी रोशनाई चढ़ी हुई है बस उतनी ही शे... है। मेरी हृदयेश्वरी! तू ऐसे अवसर में आई क्यों? बोल बोल मेरी चिरध्यान की रानी!

मृत्यु—मेरे कोमल कवि! मैं शब्द खोज रही हूँ अपना परिचय देने के लिए। मुझे भय है कि संसार जि... नाम से मुझे पुकारता है, यदि उसी नाम से अप... परिचय दूँ तो सम्भवतः तुम्हारे कोमल हृदय को ए... आघात लगेगा। तुम सदा कोमल भावना के प्रिय... बने रहे। मेरे कवि! सँभाल लो अपने हृदय को... मैं अपना नाम लेती हूँ। मैं मृत्यु हूँ। (कवि सि... उठता है) सुन लिया, मैं कौन हूँ। चलो, तुम्हें ... विश्वभारती बुला रही हैं। उनकी वीणा का शृंगा... एक युग से नहीं हुआ है। उनके पादपीठ पर आ... तक तुम्हारे सजाये हुए पुष्प पड़े हैं। माता के चर... के स्पर्श से उनमें अब तक म्लानता नहीं आने पाई... पर नये रूप से शृंगार-पूजा तो होनी ही चाहिए... चलो, आकाश-गंगा का तट तुम्हारे बिना सूना है... वहाँ शशि-संभवा के बिना उदास-सी दिखलाई पड़... है। सौन्दर्य है, पर उसमें जीवन नहीं है। आ... कवि उदास हृदय से 'श्रीराम' 'श्रीराम' गुनगुना... करते हैं। उनका आश्रम भी थका-सा जान पड़... है। मेरे प्यारे कवि! चलो।

कवि—मेरी प्यारी मृत्यु! आ हृदयेश्वरी! तेरे ठंडे और चेतनाहीन हाथों को चूम लूँ मेरी साधना की अन्ति... निधि! यह संसार क्या है देवी? मरण की आँधी ... नीचे खिले हुए पुष्पों का एक अभागा बाग़ है... केवल 'गति', एक क्षण भी विराम नहीं—क्षण, प... घटिका के रूप में जीवधारी अविराम गति से तुम्हा... ओर चले जा रहे हैं। देखने में संसार का बाह्य... स्थिर है, बहुत कम परिवर्तन लक्षित होता है, प... भीतर ही भीतर परिवर्तन की जो चर्खी चल रही... उसका कोई ठिकाना नहीं है। फूल का अल्ह... कोमल, मनोहर शैशव निदाघ की ज्वाला में झुल...

है। घटायें जल की नन्हीं-नन्हीं बूँदों के रूप में अपने को परिवर्तित करके धरित्री की माँग को मोतियों से भर देती हैं। पर मेरी प्यारी जीवन सहचरी! ज़रा सोच लो, उनका अन्त भी हो जाता है, उनकी सत्ता भी विलीन हो जाती है, उनका जीवन भी दो बूँद आँसुओं की तरह मिट्टी में मिल जाता है। मैं अपने विषय में नहीं सोचता, अपनी चिन्ता नहीं करता रानी! मैं जानता हूँ, जीवन बिजली की चमक है, कल्पना की तरंग है। इसमें स्थायित्व कहाँ? पर चाहता हूँ कि मेरे हृदय में जो वेदना है, जो निराशा है, जो कसक है, अपने लिए लेता जाऊँ और मेरे पद्यों में जो माधुर्य है, जो मादकता है, जो अपनापन है, वह संसार के, विश्वदेवता के चरणों पर न्योछावर करता जाऊँ। मैं कल फूलों में हँसूँगा, तरंगों में गाऊँगा, चाँदनी बनकर संसार की कोमलता पर मचलूँगा, किसी की याद बनकर सहृदयों के मानसपटल से खेलूँगा। आज मैं रेखाओं के भीतर क़ैद हूँ, कल विश्व का सिहरन बनकर किसी को हँसाऊँगा, किसी को उदास कर दूँगा। आज मैं 'यत्र हूँ', 'तत्र हूँ', कल 'सर्वत्र' के रूप में परिणत होकर अनन्त बन जाऊँगा। देवि! इस पुण्यप्रभात-वेला में मैं अपने प्राणों के शतदल की स्नेहाञ्जलि तुम्हारे चरणों पर अर्पित करता हूँ—

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्रा ब्रह्मपुरंदरदिनकररुद्राः।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥

(३)

समय—दोपहर। जनपद। कोलाहलपूर्ण। सुन्दर गृह-पुरजन-परिजन-समवेत। एक शान्त कमरा। खाट पर एक जराजर्जर वृद्ध, मृत्यु की प्रतीक्षा। अर्धोन्मीलित कोटरगत आँखें। सुन्दर वस्त्रावृत मरण का प्रवेश—हाथ में सोने की छड़ी, सिर पर रत्नमय मुकुट। मुखमंडल प्रभापूर्ण। अगरु-धूप से कमरा का वायुमंडल आकुल हो उठता है। गम्भीर शान्ति।

मरण—गृहस्थ! तुम मुझे पहचानते हो? मैं मरण हूँ। तुम्हारे दिन पूरे हुए, तुमने सौ वर्ष तक गृहस्थाश्रम का सुखोपभोग किया। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, मान, धन, यश, पुण्य सब अर्जन कर चुके। चलो उस पितृ-लोक में जहाँ तुम्हारे पिता, माता, मित्र तुम्हारा स्वागत करने को आकुल हैं, तुम्हारी पतिप्राणा साध्वी पत्नी तुम्हारे लिए नन्दनवन के पारिजात की माला बनाकर उत्सुकता-पूर्वक तुम्हारी राह देख रही है। अक्षय यौवन प्राप्त करो और इस जराजीर्ण, क्लान्त शरीर को केंचुली की तरह उतारकर फेंक दो मेरे मित्र! मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। सुनो, स्वर्ग के बाजे बज रहे हैं, स्वर्ग के धूप की महक आ रही है। आज पुण्य का दिन है। महाशिवरात्रि है। चलो—समय हो गया।

वृद्ध—अहो भाग्य मेरे आराध्यदेव! अहो भाग्य! मुझ-सा सुखी कौन होगा नाथ? अब गृहस्थी में, इस प्रपंच में क्या धरा है? मैं उसी दिन से तुम्हारी व्याकुल प्रतीक्षा कर रहा था, कृपालो, जिस दिन मेरी जीवन-सहचरी मुझे त्यागकर, मेरी वृद्धावस्था का कोई मोह मन में न रखकर, कल्याणपथ से अमरधाम को चली गई। जाते समय उसने मेरे चरणों की धूलि को सिर पर चढ़ाया था और कहा था, 'फिर मिलूँगी।' आज बड़े भाग्य से, पर पूरे बीस साल के बाद, वह शुभ अवसर आया। मुझे दुःख है कि मैंने उस ग़रीबनी को जिसका एकमात्र आधार मैं ही था, बीस वर्ष तक एक अनजान देश में एकाकी निरवलम्ब अवस्था में छोड़ दिया। वह न जाने क्या सोचती होगी, मेरे प्रति उसके मन में कैसे कैसे भाव उठते होंगे? आह! तुम आये, तुम्हें आना था आ गये, पर बड़ा विलम्ब किया। मैं राह देखता देखता थक गया प्रभो!

मैं जानता हूँ, सब काम समय पर होता है। जब समय आ जाता है तभी कुछ होता-हवाता है, यों नहीं। मैं आज पूर्ण सुखी हुआ, पर—बस, एक विनय है। क्या पौत्र का ब्याह देख सकता हूँ? छोटा पौत्र है, मातृहीन है। मैंने ही उसे पाला है, वृक्ष की तरह स्नेह-सलिल से सींच सींच कर बड़ा किया है। इसी मास में ब्याह होने को था। मेरी अवस्था देखकर रोक दिया गया। बस, इतनी ही विनय है। किन्तु सोचता हूँ, भगवन्, यह मोह है, यह आत्म-प्रवंचना है, यह अशोभन विचार है। नहीं, मैं चलूँगा। आशीर्वाद देता जाऊँगा, वह मेरी शुभ कामना का प्रत-

मात्र अधिकारी है, खेलौना है, दुलारा है। वह फूले-फलेगा। अब यहाँ रहकर क्या करना है? महीनों से खाट पर पड़ा हूँ। दवा खाते खाते जी ऊब उठा है। मैं कहता हूँ, मैं मरूँगा! चिकित्सक कहते हैं, तुम्हें जीना पड़ेगा। क्यों? इस तनातनी के क्या मानी? मैं किसी उपयोग का नहीं रहा। देखना, सुनना, चलना-फिरना, बोलना सभी एक एक करके जवाब दे चुके हैं, इन्द्रियों ने जवाब दे दिया है, कर्म-लालसा मिट-सी रही है, फिर भी लोग मुझे जिलाने पर तुले हुए हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सभी मुझे नहीं मरने देना चाहते। इस टूटे हुए देह-पिंजर में प्राणपखेरू पंख फड़फड़ा रहे हैं, पर इसे लोग स्नेह से घेरकर वन्दी के रूप में रखना चाहते हैं। शरीर निर्बल हो चुका है, जीवन का भार, साँसों का भार वहन करने में अक्षम हो चुका है, फिर भी मेरे स्नेही मुझे जिलाये रखना चाहते हैं। मेरे प्रभु! अब दया करो। मैं तुम्हारे साथ ही जाऊँगा। विदा। मेरा हरा-भरा परिवार का बाग़ विदा, मेरे पुण्य-पाप, यश-अपयश विदा, मेरे अपने पराये विदा। यह नाटक का अन्तिम अङ्क जितनी शीघ्रता से समाप्त हो, उतना ही अच्छा। बहुत देखा; बहुत सुना। संसार की रङ्गीनियों को देखा, धूपछाँह का नर्तन देखा, सुख-दुःख के चक्र को घूमते देखा, जीवन-मरण की भाँवरें देखीं। अब अन्तिम बार आँखें बन्द कर लेना चाहता हूँ। आँखें थक गई हैं, मन थक गया है, प्राण इस घर से ऊब उठे हैं। चलो प्रभो! मैं प्रस्तुत हूँ। हरिः ओ३म्!

काया-सराय में जीव मुसाफ़िर
कहा करत उन्माद रे!
रैन-बसेरा कर ले डेरा
चला सवेरे लाद रे।

(४)

समय—संध्या। रात की काली छाया सुनहरी पृथ्वी पर पड़ रही है। स्थान—एक धनी महाजन का घर। एक कोठरी। शिला जैसे प्रचंड द्वार। दीवार के सहारे बड़ी बड़ी तिजोरियाँ। बीच में टूटी हुई खाट पर कथरी लपेटे एक अधेड़ पड़ा है। मैली धुँधली आँखों के कोने में कीच लगी हुई है। मुँह से भयानक दुर्गन्ध निकल रही है। कमरे में पाख़ाने और पेशाब की बदबू। हवा विषाक्त। सर्वत्र कूड़ा-कतवार। खाट के नीचे बहियों का ढेर। एक मोटी घिनौनी-सी बिल्ली चूहे की ताक में खाट के नीचे बैठी है—बस। काल का प्रवेश। काली डरावनी मूर्ति। हाथ में मोटा डंडा। सिर पर बड़ा-सा लाल साफ़ा। शरीर पर लाल कुर्ता, मानो आग की लपटें हों—ख़ूनी आँखें। दाढ़ी-मूँछों से भरा हुआ क्रूर चेहरा। चौड़ी छाती, लम्बा क़द—डकैत की तरह।

काल—होश कर। तुझे चलना होगा। एक बार अपनी पाप की कमाई को आँखें भरकर देख ले। इन तिजोरियों में ग़रीबों का ख़ून तूने जमा किया है। याद कर ले अपनी करनी को। तेरे प्रत्येक रुपया पर किसी न किसी ग़रीब के ख़ून का दाग़ लगा हुआ है। तेरे लिए नरकाग्नि में मैं थोड़ी-सी लकड़ी डाल आया हूँ। तेरे स्त्री, पुत्र आदि सब वहाँ घी लिये खड़े हैं। तू पूर्णाहुति बनकर उसमें पड़ेगा। क्या सोचता है रे अर्थपिशाच? अब छल-प्रपंच की घड़ी व्यतीत हो गई। बोल है तैयार चलने को या लगाऊँ एक डंडा तेरी पापी खोपड़ी पर। मैं चाहता हूँ कि तेरी अधम काया को मुझे स्पर्श न करना पड़े। मेरा कहा मान जा और चलने को तैयार हो जा। जल्दी कर।

महाजन—तुम—तुम कौन हो दादा? देखने में तो डकैत की तरह लगते हो। बाप रे! दिन दहाड़े लूट! सरकारी राज्य का भी कुछ ध्यान है? पकड़े गये तो एकदम कालापानी, अंडमन की ज़हरीली हवा में। अच्छी बात है। कुछ तुम भी ले लो। मेरे पास इन तिजोरियों की ताली नहीं है। मैं इस ख़तरे से सावधान रहता हूँ। खोज लो, विश्वास न हो तो! मैंने इस बार बड़ा घाटा उठाया है। रुई के बाज़ार में एकदम गिरती आ गई। बस मेरी गाढ़ी कमाई के बीस हज़ार स्वाहा हो गये। अरे! बीस हज़ार एक बड़ी रक़म होती है। समझे? केवल मेरा नाम बड़ा है। कुछ है नहीं। सस्ते ने चौपट कर दिया। (कुछ देर सोचकर) हाँ, तुमने क्या कहा? काल! तो क्या तुम मेरे काल हो? मैं अभी मरना ही नहीं चाहता। जानते हो? शिवदेनी पर मामला दायर करना है। तीन सौ दिया था ४) माहवारी फ़ी सैकड़े सूद पर। तीन साल हुए। जोड़ो तो कितना हुआ। ४३२) सूद और ३००) नक़द, कुल ७३२)। बड़ा उपजाऊ खेत है। डिग्री हुई नहीं कि एक, दो, तीन। पैरों पड़ता हूँ, मेरे दादा। एक साल के बाद आना। उस समय चलूँगा और अवश्य चलूँगा। शिवदेनी का काग़ज़ तमादी हो जायगा और खेत भी हाथ से निकल जायँगे। हरिभगत का भी मामला दायर हो चुका है। इसी महीने में समझौता हो जाने की बात है। ७४) नक़द और ३९६) सूद। १०) छोड़ दिया। बस ४६०) कुल! हिसाब बेबाक! भाई, अत्याचार मत करो। मेरे गाढ़े पसीने की कमाई है। जिनके सोने के गहने गिरवी हैं उनकी चिन्ता नहीं है। ५०) का सोना पाया १५) दिया। पच गया तो लाभ ही लाभ है। पर हैण्डनोटों का क्या होगा? नहीं दादा, मैं नहीं जाता। कुछ ले लो तुम भी और चलते बनो। पान-तम्बाकू के लिए ५०) काफ़ी हैं। बस, अधिक इस समय नहीं बन सकता। कहो तो दो-चार रुपये और हाज़िर कर दूँ, पर घाटे से जी छोटा हो गया है। यदि पिछले साल आते तो १००) देता। तीसी में बड़ा लाभ हुआ था—एक-दम ५,०००) समझते हो न जी?

हाँ जी, क्या सोच रहे हो? बोलते क्यों नहीं भाई? कह तो दिया कि मैं नहीं जाता। क्या ईश्वर के यहाँ भी ऐसी धाँधली चलती है? न्याय नहीं है? तभी तो संसार से ईश्वर की सत्ता उठी जा रही है। अभी मेरी उम्र ही कितनी हुई है? केवल चौहत्तर साल की। मेरे पिता ९५ वर्ष तक जीवित रहे। सामनेवाली तीनों तिजोरियाँ उन्हीं की ख़रीदी हुई हैं। छोटा व्यापार था। यही महाजनी ५।६ हज़ार की। पर अफ़ीम के व्यवसाय में काफ़ी कमा लिया। अब आबकारीवाले बड़ी जाँच करते हैं। पहले यह बात न थी। हम गुड़ की चक्की में छिपाकर अफ़ीम भेजते थे। वे दिन चले गये। अरे! अरे! मेरा गला क्यों दबाते हो? सौ ले लो, नहीं नहीं, पाँच सौ। हाय मेरी सम्पत्ति!

(५)

समय—रात का प्रथम प्रहर। स्थान—निविड़वन। झिल्लीरव मुखरित एक झाड़ी। दुर्गम पथ। सर्वत्र घोर निर्जनता, भयानक वातावरण। सामने सूखी नदी—जङ्[illegible] नाले के रूप में। शुक्ला पंचमी की उदास चाँदनी। [illegible] में भारीपन, शुष्कता, कुछ कुछ गर्मी-धूलि [illegible] व्याकुलता। झाड़ी के किनारे एक 'सर्वहारा' पड़ा है कु[illegible] कंटकों पर। सूखा हुआ शरीर, तेजोमयी आँखें [illegible] कठोर गम्भीर मुख-मुद्रा। पीड़ा के कारण या कुछ मानसि[illegible] उत्तेजना के कारण दाहनी मुट्ठी कस कर बाँधे हुए दाँ[illegible] से होंठ चबा रहा है। कराहना क्या है, गुर्राना है। एक सैनिक के रूप में अन्तक का प्रवेश। कमर [illegible] लटकती हुई बिजली-सी तलवार, हाथ में लम्बा शूल [illegible] शरीर वर्माच्छादित। प्रसन्न मुखमण्डल, स्नेहस्निग्[illegible] कोमल दृष्टि।

अन्तक—मेरे मित्र! मुझे पहचानते हो? तुमने जीवन [illegible] मुझे बुलाया, पर मैं सदा तुम्हारे साथ रहने पर [illegible] सामने नहीं आया। तुमने मुझसे साक्षात्कार क[illegible] के लिए क्या-क्या नहीं किया, ख़तरे से आँख-मिचौ[illegible] खेली, विपत्ति को गले लगाये रहे, विनाशाग्नि [illegible] समिधा बन कर बार बार गिरे, पर मित्र, मैं न[illegible] आया, नहीं आया, तुम्हें बार बार ललचाता रहा [illegible] आज वह अवसर आ गया है कि मैं तुम्हें अपने सा[illegible] उस धाम को ले जाऊँ जहाँ ऊँच-नीच का सवा[illegible] नहीं है, धनी-ग़रीब का दुराव नहीं है, बड़े-छोटे [illegible] मापदण्ड नहीं है। एकमात्र सत्, चित् और आनन्[illegible] मय लोक में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है—वहाँ [illegible] शोषक हैं न शोषित, न शासक हैं न शासित [illegible] चलो मित्र। तुम्हारी स्त्री जो अपनी 'आत्मा' की र[illegible] के लिए जल में डूब गई थी, वहाँ प्रस्तुत है [illegible] तुम्हारा छोटा बच्चा जो अपनी मा के आँचल से बँध[illegible] हुआ था, वहाँ तितलियों के साथ खेल रहा है [illegible] तुम्हारा बड़ा बच्चा जो भीख माँगता माँगता किसी [illegible] धनी के मोटर से दबकर मर गया था, वहाँ माता क[illegible] सेवा में लगा रहता है। एक तुम्हारी ही कमी है [illegible] चलो प्यारे साथी! विलम्ब हो रहा है। मैं अन्तक [illegible] हूँ, काल हूँ। मैं संसार को नूतन जन्म का संदेश [illegible] सुनाने प्रतिक्षण धरातल पर आता हूँ—मैं मृत्यु के [illegible] रूप में नवजन्म का सुन्दर स्वप्न दिखलानेवाला जादू[illegible] गर हूँ। चलो—शीघ्रता करो।

संहारा—अरे अभागे ! तुम आज आये और वह भी बिना बुलाये। बेशर्म ! उस दिन तुम कहाँ थे जब अपनी जवानी के अभिशाप के कारण, सुन्दरता के अभिशाप के कारण, रक्षक-स्वामी के अत्याचार के कारण—हाय ! आज भी उसकी याद छाती में प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़का देती है—अपने दुधमुँहे बच्चे के साथ तालाब में कूद कर मेरी पत्नी को मरना पड़ा। क्या ग़रीबों का जीवन जीवन नहीं होता ? क्या ग़रीबों के आत्माभिमान, सत्य, धर्म, प्रतिष्ठा से कोई मतलब नहीं ? मैं उस अत्याचारी की ज़मींदारी में रहता था। बस, यही अपराध था और दूसरा अपराध मेरी पत्नी का सुन्दर होना, हँसमुख होना। ख़ैर, देखा जायगा, यदि मैं जीवित रह गया ! सुनो, मैं कहता हूँ, मेरे अन्तक, मैं कहता हूँ, मैं मरना नहीं चाहता। यदि मैं मरा तो संसार को आराम की साँस लेने का अवसर प्राप्त हो जायगा जैसा कि मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ, मेरी एकान्त इच्छा है कि संसार को नरक बना कर मरूँ। मोटी तोंदवाले जिनके पास अपरिमित धन है, साधन है, पापों के छिपाव के योग्य ऊँची इमारतें हैं, गढ़ हैं, वे संसार को एक ओर तो मन्दिरों, धर्मशालाओं, अनाथालयों, विधवा-आश्रमों, निःशुल्क शिक्षालयों आदि से भर रहे हैं, दूसरी ओर शराबख़ाने, वेश्यालय, क़साईख़ाने, जूआख़ाने, ख़ूनियों के अड्डे, सर्वहाराओं के क्लब, भिखमंगों की पलटन, जेल, कोढ़ियों के अस्पताल भी इन्हीं के अनुग्रह की झलक हैं। मैं चाहता हूँ, मेरे नेक मित्र, मैं चाहता हूँ कि संसार, यह सौन्दर्यमय संसार जो धीरे-धीरे चुपके से नरक बनाया जा रहा है, इसका सक्रिय विरोध, खुलेआम वसुधातल पर नरक की प्रतिष्ठा करके करूँ। क्या मैं जीवित रह सकता हूँ ?

आह ! मैं मरने की बात सोचकर अब काँप उठता हूँ। पहले आत्मा पापों से डरती थी, मिथ्या से भागती थी, ख़ून, चोरी, डकैती का नाम सुनते ही बिलख उठती थी और चाहती थी कि इन कुकर्मों में लिप्त होने के पहले ही संसार से कूच कर जाना अच्छा है, पर अब मैं अपने सामने ख़ुद पूरी तरह बेशर्म हो चुका हूँ—पापों के प्रति मोह हो गया है, अपने पतित जीवन का रस मिल चुका है। मैं जिस पथिक को लूटता हूँ उसकी बेकली को देखकर, उसके हाहाकार को सुन कर, उसकी पत्नी या बच्चे की विकलता के भय का अनुभव कर मेरी आत्मा की कली खिल उठती है और एक प्रकार का ऐसा राक्षसी आनन्द प्राप्त होता है जिसका वर्णन हो नहीं हो सकता। संसार रोता है, मैं हँसता हूँ। संसार विकल होता है और मैं अपनी शराब की बोतल लेकर, ख़ून से भरे हुए छुरे को लेकर, तांडवनृत्य करता हूँ। खेतों का अन्त हुआ धनेसर तेली के रुपयों के सूद-दरसूद में। जो सम्पत्ति बची वह ज़मींदार से मुक़दमा लड़ने में वकीलों की जेबों में समा गई। स्त्री अपनी सुन्दरता की वेदी पर बलि ! उफ़ ! छोटा बच्चा माता के साथ गया और मेरी जेलयात्रा की अनुपस्थिति में भीख माँगता हुआ मेरा बड़ा बच्चा भगवती मोटर देवी की भेंट हो गया। इतना सा इतिहास है ! आह ! सुन लो। आज मैं महायात्रा कर रहा हूँ। संसार ! सुख की नींद सोना। कौन जाने, मेरे दलवाले मेरे कार्यक्रम को पूरा कर सकेंगे या नहीं ? सबको ठिकाने लगाया, पर जिसने मेरे बच्चे को मोटर से कुचल कर मार डाला था उसी का पता आज तक नहीं चला। यही एक कसक है, यही एक वेदना है हृदय में, जो सम्भवतः मरने के बाद तक मुझे पीड़ा पहुँचाती रहे। प्रतिहिंसा, घोर प्रतिहिंसा—मैं अपनी ही प्रतिहिंसा की ज्वाला में जल रहा हूँ—जल रहा हूँ, जल जाने दो मुझे............उफ़ ! अच्छा देखा जायगा............अगले जन्म में ! मोटरवाले ! अगले जन्म में मिलूँगा, अभी सुख...की...नींद... सो......लो......वि......दा।

(६)

समय—रात, प्रथम प्रहर। स्थान—कारागार की निर्जन कालकोठरी। चट्टान की दीवारें—दरवाज़ों में मोटे-मोटे घने लोहे के छड़। अत्यन्त मनहूस प्रकाश, विषाद की छाया-सी। कोठरी का वातावरण करुणा-पूर्ण, भयोत्पादक, कठोर। एक क़ैदी कम्बल पर लेटा हुआ मौत की प्रतीक्षा कर रहा है—आँखें छत से जा लगी हैं। शरीर ढाँचा-मात्र। साँस अटक अटककर आती है। एक

बड़ा-सा चमगादड़ कोठरी में उड़ रहा है—दीवार पर दो-तीन छिपकलियाँ रेंग रही हैं। यही दृश्य है उस नन्हीं-सी कोठरी का। हाथ में प्रज्वलित प्रकाश लिये मुक्तिदूत का प्रवेश ! सुन्दर शरीर दो सुनहरे पंख और पीत उत्तरीय, कोमल स्निग्ध मुखमंडल, उज्ज्वल ललाट !

मुक्तिदूत—बन्दी, आज तुम्हारे बन्दी-जीवन का अन्तिम क्षण उपस्थित हो गया है। मेरी ओर आँखें फेर कर देखो। मैं मुक्ति का दूत स्वर्गीय प्रकाश लेकर आया हूँ। तुम सभी प्रकार के कारागारों से छुटकारा पाने के अधिकारी हो। तुम्हें अस्तित्व की क़ैद से मुक्त कर मैं अनन्त बना दूँगा। बन्दी ! स्वर्ग और नरक दोनों क़ैदख़ाने हैं, दोनों में एक निश्चित घेरे के भीतर ही प्राणी रहते हैं। मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा, जहाँ 'स्व' और 'पर' की भावना ही नहीं है, अपना-पराया कोई नहीं है। बन्दी, प्रस्तुत हो जाओ ! समय हो गया। स्वतन्त्रता की देवी तुम्हें पुकार रही है।

बन्दी—तुम कौन हो ? मुक्तिदूत ! मुझे मुक्त करने आये हो, जिसके जीवन का तीन-चौथाई भाग इसी कोठरी में समाप्त हो गया ? इन सीख़चों से पूछो, इन ठोस दीवारों से पूछो। इनमें जितने अणु होंगे, मेरी उतनी ही आहें इनसे टकरा चुकी हैं, इन पर सिर पटक कर हवा में मिल चुकी हैं। अब तुम आये मुक्ति का संदेश लेकर, अमर संगीत का उपहार लेकर, चिर शान्ति का महामंत्र लेकर ! अफ़सोस ! मेरे देवदूत, अफ़सोस ! अब मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, नरक में ही रहने दो। पिंजरे में ही बन्दी पक्षी ने अपने परों का घोंसला तैयार कर लिया है। वह चमन की याद भूल गया, फूलों की महक भूल गया, हवा की मस्ती भूल गया है और भूल गया है स्वतन्त्र जीवन के मज़े। जब हृदय में विकलता थी, बहिर्जगत्—जेल के बाहर की दुनिया—जब मेरे मन को बार बार पकड़कर अपनी ओर खींचता था, हृदय कलेजा फाड़कर बाहर निकलने के लिए बाँसों उछलता था और बाहर की स्मृति दिन-रात आकर गुदगुदाया करती थी, उस समय 'मुक्ति' की बात सोचना भी कितना प्रिय था, सुखकर था, आनन्दप्रदाता था। पर हाय देवदूत ! आज मन पथरा गया है। लगातार बीस साल के एकान्तवास ने कल्पना को बेढंगी शिला का एक ढोंका बना दिया है। स्वतन्त्रता की रुचि ही नहीं पैदा होती। मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे हृदय में से वह तत्त्व मानो सहसा सूख गया है जिसके रहने से मन स्वतन्त्रता की ओर दौड़ता था। आँखों की भूख भी मिट चुकी है, सुन्दर-असुन्दर की पहचान नष्ट हो गई है। मैं फूल और 'कुकुरमुत्ते' का प्रभेद आज भूल गया हूँ। मैं कह नहीं सकता कि दोनों में क्या अन्तर है। सत्-असत् की पहचान करनेवाली विवेक-शक्ति का अन्त हो चुका है मेरे देव ! अब मैं मुक्त होकर क्या करूँगा ? मेरे सामने मुक्ति का कोई भी महत्त्व नहीं रहा। मैं अपनी लालसाओं से, मुक्ति-सम्बन्धी इच्छाओं से मुक्त हो चुका हूँ, जिनके कारण कारागार को मैं कारागार समझता था और बन्धन को बन्धन।

मुझे याद है, पहले मेरे परिवार के बहुत-से सम्बन्धी मुझसे मिलने आते थे। मैं उनकी प्रतीक्षा में आकुल रहता था; बड़ा आनन्द आता था उस दिन जिस दिन उनमें से एक दो आ जाते। कुछ सालों के बाद प्रत्येक मिलनेवाला किसी न किसी का मृत्युसंवाददाता बन गया। मेरे छोटे भाई ने एक दिन रोकर कहा—पिता जी मर गये ! मेरा हृदय शोकाकुल हो उठा, पर साल भर के बाद मेरे लड़के ने सुनाया—चाचा—मेरे बड़े भाई—चल बसे। यह दूसरा प्रहार ! इसके बाद मेरी स्त्री ने ख़बर दी कि मेरे छोटे भाई भी परलोक सिधारे और चार साल के बाद मेरे पुत्र ने फिर समाचार सुनाया कि उसकी अम्मा महायात्रा करने चली गई। इसके बाद तीन-चार साल तक मेरा एकलौता बेटा आता रहा, पर फिर उसकी झाँकी भी मिलनी बन्द हो गई। पता नहीं, वह भी चल बसा या मेरी ही तरह किसी जेल में घोंसला बनाकर जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। २० साल में यह सब कुछ हो गया। उस समय मेरा एकलौता १० साल का था और आज ३० साल का—यदि जीवित है तो—होगा। मेरे मुक्तिदूत ! तुम उनकी हथकड़ियाँ काटो जिनके पंखों में बल है, हृदय में लालसा है, मन में उमंगें हैं। मेरे मन को लक़वा मार गया है। मुझे अनन्त काल

तक इसी वन्दीख़ाने में सड़ने दो। मुझे भय है कि कहीं मैंने इस कोठरी को सदा के लिए ख़ाली कर दिया तो कोई दूसरा अभागा इसमें वन्द कर दिया जायगा। मैं नहीं चाहता कि इस नरक में किसी को घुसने का अवसर दूँ। यदि मेरा वश चले तो संसार भर की समस्त जेलों को केवल अपने ही शरीर में ऐसा भर दूँ कि उनमें एक तितली को भी घुसने का स्थान न रह जाय। मुक्तिदूत! मैं तो नहीं चाहता, पर विधि का विधान अटल होता है। यदि तुम मुझे ले जाना ही चाहते हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? पर इतना कहूँगा कि मैं अपने वन्दी-जीवन को अव प्यार करने लगा हूँ। इसी के भरोसे अपना सव कुछ स्वाहा कर चुका हूँ। यदि मैं सजीव अवस्था में जेल के वाहर निकाल दिया जाऊँ तो निश्चय ही मेरा कलेजा फट जायगा। उफ़! वड़ी ज्वाला! वड़ा कष्ट। अव निर्वल ठठरी को फाड़कर प्राण निकलना चाहते हैं...क्षमा ...शान्ति!

(७)

समय—मध्यनिशा। भयानक वदली। शूचीभेद अन्धकार।

स्थान—एक गली। खुले हुए द्वार पर एक नवयौवना उग्रचंडा की मूर्ति वनी हाथ में नंगी तलवार लिये खड़ी है। अनगिनत हताहतों का ढेर लग रहा है। नगर में हाहाकार मचा हुआ है। कहीं ज्वाला की लपटें उठ रही हैं तो कहीं मार-मार की पुकार मची हुई है। रह रह कर भयानक गड़गड़ाहट के साथ धमाके की आवाज़ सुनाई देती है। शहर मुर्दों से पट-सा गया है—भयंकर अव्यवस्था, ख़ून-ख़रावी, मार-काट! मातायें अपने वच्चों को रौंदती हुई प्राण-भय से भाग रही हैं। पुरुषों का हाल अकथनीय है। जिस घर के द्वार पर उक्त कृपाणधारिणी खड़ी है उस घर के पिछले हिस्से में एक कूड़ाख़ाना है। गन्दी अँधेरी कोठरी में टूटी खाट, टूटे संदूक़, टोकरियाँ, ईंधन, उपले, चक्की आदि चीज़ें कसरत से भरी हुई हैं। एक युवक जिसके हाथों में मेहँदी और आँखों में काजल लगा हुआ, है छिपा हुआ धीरे धीरे 'रामनाम' का जप कर रहा है। चूहे-छछूँदर के दौड़ने की आहट मिलते ही चिल्ला उठता है—दौड़ो वचाओ, सतीश की अम्मा! यमदूत का मुसलमानी-भेष में प्रवेश। सिर पर तुर्की टोपी, लुंगी, वह भी चारख़ाने की। शरीर पर ख़ाली नीमास्तीन, काला शरीर, ख़ूनी आँखें, एक हाथ में लम्वा-सा ख़ून से सना हुआ चमकदार छुरा और दूसरे हाथ में लालटेन।

यमदूत—अवे मूज़ी! निकल वाहर। देखता नहीं, मैं कौन हूँ। तूने कायरों की-सी ज़लील ज़िन्दगी विता कर मनुष्य-जाति का अपमान ही किया है। रे नारकी! चल। तुझे कुंभीपाक की हवा खिलाऊँ। पहचान ले। मैं तेरा काल हूँ और तेरी घड़ी पूरी हो चुकी है। विलम्व मत कर। तूने पुरुषत्व को रौंद डाला है, पुरुष-जाति के रूप में उसका पाप जन्मा है रे पतित! धराधाम पर तेरे जैसों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। निकल वाहर। अव सोच क्या रहा है? अपनी पतित ज़िन्दगी का अन्त समझ। यदि कभी भूल से किया हो तो तू अपने उन पुण्यों को एक वार, दो वार, सौ वार पुकार ले। सुन रे! अभागे! कायरों के हाथों से पुण्य हो ही नहीं सकता। अव सावधान हो जा। मैं आ गया हूँ तेरा कृतान्त।

कायर—वड़े मियाँ, रहम करो चाचा। मैं किसी का कुछ विगाड़ता नहीं। घर में रहता हूँ, सवसे डरता हूँ, वच्चों को खेलाता हूँ और जो कुछ परमात्मा दे देता है, खाकर वच्चों को छाती से लगाकर सो जाता हूँ। मेरे वच्चे अपनी अम्मा से वढ़कर मुझे प्यार करते हैं। वड़े मियाँ, मेरी जान मत लो। भई, एक वात मैं कहे देता हूँ। मैं अपनी 'उनकी', अरे 'उन्हीं' की वात कह रहा हूँ जो दरवाज़े पर खड़ी होकर तलवार भाँज रही हैं। हाँ, तो मैं उनकी वात नहीं चलाऊँगा, वड़ी ज़िद्दी औरत हैं चाचा! तुम्हें मेरे सिर की क़सम। उनसे कह न देना कि सुरेश के वावू जी ऐसा वोलते थे। भाई, मैं झगड़े से डरता हूँ। उनका मिजाज़ तेज़ है। अमीर की लड़की ठहरीं। नाक पर ग़ुस्सा रहता है। मैं ख़ुद तंग आगया हूँ। वात वात में दुत्कारती रहती हैं। वच्चों का मुँह देखकर जीता हूँ। नहीं तो जी चाहता है कि (रोनी आवाज़ में) कुछ खा-पीकर सो रहूँ। कलेजे में ऐसी ही चोट लगती है। भला देखो न! दरवाज़े पर न जाने कव से खड़ी तलवार भाँज रही हैं। शहर में दंगा हो रहा है। इस वक्त भी

कोई दरवाज़ा खोल कर वाहर झाँकता है? वाप रे वाप! मर्दानी औरत! भई वड़े मियाँ, अपना जान कर यह सव कह रहा हूँ। पैरों पड़ता हूँ, चाचा, कहीं कह न देना। हटो। मैं कुछ नहीं कहूँगा। तुम तो कुछ वोलते ही नहीं। रहम करो वड़े मियाँ! मैं हिन्दू-मुसलमान का भेद अपने दिल में नहीं रखता। जो हिन्दू-मुसलमान वाहर लड़ रहे हैं वे पल्ले सिरे के गुंडे हैं। समझ गये न। मैं तो उस्मानअली की दूकान पर वरावर वैठता हूँ, चाय पीता हूँ, कलिया खाता हूँ। तुम सुरेश की अम्मा को मारो या पकड़ कर ले जाओ। वे ही तलवार भाँज रही हैं। मैं पैरों पड़ता हूँ। मैं निरपराध हूँ। मुझे गऊ—नहीं सूअर समझो। अरे! अरे! कलेजे में छुरा घुसेड़ रहे हो—रहम! दया—अरी ओ सुरेश की अम्मा! दौड़ियो, वचाइयो—मैं ... म ... रा ...! हा ... य...री... दै...या!

जीवन-तरङ्ग

लेखक, श्रीयुत जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'

(१)

आ! एक वार जीवन-तरङ्ग;
तेरी वह आदि प्रसूति कहाँ?
वतला दे निज आरम्भ कोप।
क्या परिभाषा है कौन रूप!
तू शान्ति चली तज कहाँ चोप!
ले वह उद्भव ले वह उमङ्ग,
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

(२)

शिशु-शशि-दोला-सी वनी रम्य,
या सलिल-स्वप्न साकार धन्य।
वनते मिटते हैं पुनः पुनः,
आकार तुम्हारे हैं अगण्य॥
सिखला दे सवको यही ढङ्ग।
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

(३)

तू वारि-वेलि-सी मूल-हीन,
या छुईमुई-सी क्षीणगात।
विकसाती फेनिल-फूल कहीं,
सकुचाती करती है न वात॥
तू लेकर पतनोत्थान सङ्ग,
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

(४)

मुसकान मञ्जु मुग्धा की-सी,
या वारि-परी-सी रूपवान।
नर्तन वक्षस्थल पर जल के,
करती है अति ही वेगवान॥
सिहरण होता है अङ्ग अङ्ग
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

(५)

मृदु स्मृति-सी सोच्छ्वास कभी,
उठती हो लेकर स्वयं छोर।
या जन्म-मरण-इतिहास पृष्ठ,
के उलट दिखाती ओर छोर॥
कर देती क्षण में रङ्गभङ्ग,
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

(६)

जग की इस नाटकशाला में,
कर दो यदि अङ्गुलिपरिचालन।
तो महानाश भव-उद्भव का,
हो जाय साथ ही संचालन॥
हो नव जीवन रसधार अङ्ग,
आ! एक वार जीवन-तरङ्ग॥

भारत में गोवंश का बुरी तरह ह्रास हो रहा है, इस बात को लेखक महोदय ने यहाँ सप्रमाण सिद्ध किया है।

गो-धन का ह्रास

लेखक, श्रीयुत एम० पी० केदार, आई० डी० डी०

अभी कुछ ही दिन हुए भारत-सरकार के शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि के विभाग की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी, जिसमें यह प्रकट किया गया था कि हिन्दुस्तान में पशुओं की संख्या बढ़ गई है। परन्तु सरकार की यह घोषणा निर्मूल और भ्रम फैलानेवाली जान पड़ती है; क्योंकि हिन्दुस्तान में पशुओं की संख्या संसार के अन्य देशों से किसी हालत में भी ज़्यादा नहीं है। नीचे मुख्य-मुख्य देशों की तुलना की गई है। ये आँकड़े कुछ समय हुआ संयुक्त-प्रान्त के पशु-विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर ने प्रस्तुत किये थे।

नाम देश	सब पशुओं की संख्या प्रतिशत मनुष्यों के पीछे	गाय-भैंसों की संख्या प्रतिशत मनुष्यों के पीछे
ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड	२६	१०
डेन्मार्क	८२	३३
फ़्रांस	३४	१८
जर्मनी	२६	१३
रूस	२५	१४
कैनेडा	१०४	३६
अमरीका	६१	२३
अर्जनटाइन	३८५	३६
दक्षिण-अफ़्रीका	८८	३३
आस्ट्रेलिया	२४०	४२
न्यूज़ीलैंड	२५०	१००
ब्रिटिश भारत	५९	१५

ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट प्रकट होता है कि कुल पशुओं की संख्या के विचार से हिन्दुस्तान का नम्बर आठवाँ है और जहाँ तक गाय-भैंसों की संख्या का सम्बन्ध है उसका नम्बर नवाँ रह जाता है। सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया है कि भारतवर्ष में ५ प्रतिशत पशुओं की वृद्धि हुई है। परन्तु इस वृद्धि का कुछ महत्त्व नहीं रहता जब हम देखते हैं कि इस देश की मनुष्य-गणना में यहाँ की आबादी बत्तीस करोड़ से पैंतीस करोड़ अर्थात् दस प्रतिशत बढ़ गई है। ख़ैर, उक्त वृद्धि किस प्रकार के पशुओं में हुई है, सरकारी विज्ञप्ति ने इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला है।

बात यथार्थ में यह है कि पशुओं की संख्या में जो वृद्धि हुई है वह भैंसों और बच्चों की बढ़ती के कारण है। जहाँ तक गायों, बैलों और साँड़ों का प्रश्न है, उनकी संख्या में भारी कमी हुई है। कुछ मास हुए जनवरी १९३५ में हिन्दुस्तान में होनेवाली पशुओं की गणना की सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। उसके अनुसार १९३० और १९३५ में गाय-बैलों की संख्या इस प्रकार थी—

नाम पशु	१९३० में संख्या	१९३५ में संख्या	जितनी कमी हुई
बैल और साँड़	३,५३,०२,४३८	३,४८,९०,७४३	४,११,६९[illegible]
गाय	२,४७,४२,३२४	२,४६,२९,९८५	१,१२,३३[illegible]
		कुल कमी	५,२४,०३[illegible]

पशु-गणना की सरकारी रिपोर्ट में गाय-बैलों की इस कमी का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है। हमें एक मिनट के लिए भी यह न भूलना चाहिए कि हिन्दुस्तान में सब पशुओं की अपेक्षा गाय-बैलों को सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त है, जैसा कि वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भी कहा है—"गाय-बैल के ऊपर ही इस देश की सब खेती और काश्तकारी निर्भर है।" और खेती और काश्तकारी से हिन्दुस्तान के अस्सी प्रतिशत वाशिंदों का जीवन-निर्वाह होता है। गाय-बैल का स्थान इस देश में कोई दूसरा पशु और मशीनरी आदि नहीं ले सकते। और इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी कि इनकी संख्या पिछले कुछ वर्षों में ही पाँच लाख से ऊपर घट गई है।

दूसरी ओर संसार के अन्य देशों में इसके बिलकुल उलटा देखने में आता है। बहुत-से देशों में जहाँ पहले से ही गौओं की संख्या पर्याप्त है, उनकी संख्या में और वृद्धि हो रही है। १९३५ की पशु-गणना की रिपोर्ट में ही कुछ देशों में गाय-बैलों की प्रतिशत वृद्धि का इस प्रकार उल्लेख किया गया है। स्मरण रहे, यह वृद्धि कुछ ही वर्षों में हुई है।

नाम देश	प्रतिशत वृद्धि
ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड	१२·७
फ़्रांस	१·६
बेल्जियम	४·६
नीदरलैंड	११·५
डेन्मार्क	·०५
जर्मनी	२·४
नार्वे	६·२
रूमानिया	९·३
पोलैंड	३·१
संयुक्त-राज्य	१·६
आस्ट्रेलिया	१९·९
न्यूज़ीलैंड	१४·१

कितने आश्चर्य की बात है कि वे देश जहाँ गोवंश को अब तक न कोई विशेष महत्त्व दिया जाता था, न शिल्प और व्यापार की प्रधानता के कारण खेती को ही महानता प्राप्त है और न सर्व-साधारण मांसाहारी होने से दूध-घी पर ही अपने स्वास्थ्य और बल के लिए निर्भर रहते हैं, वहाँ गोवंश की इतनी वृद्धि हो रही है और दूसरी तरफ़ अभागे भारतवर्ष में जन-संख्या बढ़ने के साथ-साथ पिछले कुछ ही वर्षों में पाँच लाख से ऊपर की कमी हो गई है!

वास्तव में भारतवर्ष में गोवंश की संख्या में भारी कमी होगई है और होती जा रही है। यह केवल हमारा ही मत नहीं, सरकारी अधिकारियों की रिपोर्टों से भी इसकी पुष्टि होती है। उत्तरी भारत की फ़ौजी डेरियों के कंट्रोलर लेफ़्टिनेंट कर्नल जे० मेट्सन का कथन नीचे दिया जाता है—

"पन्द्रह-बीस वर्ष के पूर्व शहरों की आवश्यकता पूरी करने के लिए ढोर मुख्यतः पंजाब में मिलते थे। अमृतसर में साहीवाल की गायें काफ़ी संख्या में बिका करती थीं और हरियाने से भी बहुत-सी गायें मामूली भाव पर आती थीं। ये दोनों स्रोत अब सूख गये हैं। सिंध में गायें हैं, परन्तु काफ़ी नहीं हैं। आज-कल शहरों में भैंसें आने लगी हैं, परन्तु अच्छी भैंसें भी पर्याप्त नहीं आतीं। सन् १९११ में ही मैंने रोहतक, हिसार और फ़ाज़िलका के आस-पास के भागों से तीन मास में १,५०० दुधार भैंसें १००) औसत की दर से मोल ली थीं। आज उतनी ही कोशिश से मुश्किल से ५०० या ६०० भैंसें मिल सकती हैं और दाम भी सौ के स्थान पर दो सौ और तीन सौ रुपया देना पड़ता है।

"हिन्दुस्तान के शहरों में ढोरों की अवनति हो रही है, ऐसी दशा संसार के किसी देश में नहीं है। स्थिति गंभीर हो गई है, और भविष्य में तो इससे भी भयंकर स्थिति का हो जाना सम्भव है।"

कर्नल मेट्सन साहब का वर्णन इस समय की स्थिति का सच्चा दिग्दर्शन है। गायों-बैलों की कमी और ह्रास दोनों का उन्होंने ठीक चित्र खींचा है। भारतवर्ष में केवल दूध के पशुओं की संख्या ही कम हो रही हो सो बात नहीं है। संख्या कम होने के साथ ही उनकी अवनति भी होती जा रही है। एक तरफ़ बैलों में काश्त करने और बोझा ढोने का पहला-सा सामर्थ्य नहीं रहा, दूसरी तरफ़ गायों में दूध देने की शक्ति का लोप हो रहा है। और गो-जननोपयोगी साँड़ों का तो अभाव ही होगया है।

हिन्दू-राज्य-काल में प्रतिदिन मन-मन भर तक दूध देनेवाली कामधेनु गायों का उल्लेख मिलता है। उसके पीछे अकबर आदि मुसलमानी बादशाहों के समय में भी बीस-बीस सेर दूध देनेवाली गायों का वर्णन आया है। आज से बीस-पचीस वर्ष के पूर्व भी रोज़ाना पन्द्रह-सोलह सेर दूध देनेवाली गायों का प्राप्त करना एक साधारण-सी बात थी। परन्तु आज अवस्था इतनी ख़राब हो चुकी है कि आठ-दस सेर दूध देनेवाली गाय का मिलना कठिन हो गया है। और औसत दूध प्रतिगाय तो दो-चार सेर रह गया भी प्रतीत नहीं होता। इसका अवलोकन आप घर-गृहस्थियों और ग्रामनिवासियों के यहाँ जाकर गोवंश की दशा देखने से भली भाँति कर सकते हैं।

कर्नल मेट्सन के कथन का समर्थन और भी स्पष्टरूप से भारत-सरकार के भूतपूर्व इम्पीरियल-डेरी-एक्सपर्ट मिस्टर विलियम स्मिथ इन शब्दों में करते हैं—

"मैं हिन्दुस्तान में १९३ वर्ष से हूँ। इस बीच में पंजाब, युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, सिंध, बम्बई तथा मदरासप्रांत में पशु-पालन के धंधे से मेरा निकट सम्बन्ध रहा है।

मेरा विचार-पूर्वक मत है कि मेरे आने के बाद से पशुओं की यहाँ अवनति हुई है। अथवा अधिक सँभल कर यह कहूँगा कि सोलह वर्ष पहले जिस प्रकार के अच्छे गाय-बैल मिलते थे, वैसे अब कितना भी दाम देने पर काफ़ी संख्या में नहीं मिलते।"

इससे अधिक गोवंश के पतन का और क्या प्रमाण चाहिए? परन्तु इतना ही नहीं, और भी देखिए। कलकत्ता-हाईकोर्ट के न्यायाधीश सर जान उडरफ़ ने लार्ड चेम्सफ़ोर्ड को एक पत्र में लिखा था—"यहाँ पशु इतने कम हैं कि हिन्दुस्तान की आबादी के आठवें हिस्से को भी पूरा दूध नहीं पहुँचा सकते। देशी गायें सात महीने तक प्रतिदिन औसत सवा सेर के हिसाब से दूध देती हैं। इसी हिसाब से २५,४०,००,००० मनुष्यों को (यह जन-संख्या अँगरेज़ी भारत की है) दूध देनेवाले ५ करोड़ पशु एक दिन में लगभग पौने चार करोड़ सेर दूध देते हैं (५ करोड़ पशुओं में से कुछ सूखी गायों को घटाकर हिसाब लगाया गया है)। अर्थात् एक मनुष्य के पीछे रोज़ाना अढ़ाई छटाँक दूध भी नहीं बैठता और साधारणतः प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम डेढ़ सेर दूध तो मिलना ही चाहिए।"

आगे चलकर सर जान उडरफ़ बैलों के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"देशी बैल अधिक-से-अधिक एक फ़सल के लिए ५ एकड़ भूमि जोत सकता है। ब्रिटिश भारत में लगभग २२,८०,००,००० एकड़ भूमि जोती जाती है और उसे जोतने के लिए कुल पशु लगभग ४,६०,००,००० हैं। बोझ उठानेवाले, वृद्ध, अशक्त और रोगी पशु ५० प्रतिशत घटा दिये जायँ तो २२,७०,००,००० एकड़ भूमि जोतने के लिए केवल २,४०,००,००० पशु शेष रहते हैं। अर्थात् एक जोड़ी बैल के लिए १९ एकड़ भूमि का औसत पड़ता है। परन्तु साधारण तौर पर इतनी भूमि जोतने के लिए ४ जोड़ी बैल होने चाहिए। दूसरे देशों की तुलना में यहाँ फ़सल बहुत थोड़ी होती है। उसका मुख्य कारण यही बैलों की कमी है।"

उपर्युक्त विवरण से भारतवर्ष के दुर्भाग्य का काफ़ी परिचय हो जाता है। इसके साथ यहाँ दूसरे देशों के सौभाग्य की एक-आध झाँकी भी देख लेना ठीक होगा।

दूध के पशुओं की वृद्धि के आँकड़े हम ऊपर दे ही आये हैं, परन्तु यह बात केवल संख्या के बढ़ने तक ही समाप्त नहीं हो जाती। डेन्मार्क में पिछले तीस वर्ष के समय में गायों का औसत वार्षिक दूध प्रतिगाय ४५०० पौंड से ५४५० पौंड होगया। इँग्लैंड के औसत दूध में भी २० से ३० प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। परन्तु अमरीका की इस सम्बन्ध में उन्नति तो आश्चर्यजनक हुई है। वहाँ की एक पुस्तक में डाक्टर वारेन लिखते हैं—

"१९०० से १९१० तक दस वर्षों में बछड़ों और साँड़ों की संख्या २० प्रतिशत कम होगई है। परन्तु दूध देनेवाली गायों की संख्या जन-संख्या के अनुसार ही बढ़ी है। १९१० में एक औसत परिवार में ४.५ व्यक्ति इकट्ठे रहते थे, और साठ वर्ष तक संयुक्त-राज्यों में प्रतिपरिवार के पीछे १ गाय से अधिक का औसत बराबर बैठता रहा है"। नीचे दिये हुए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जायगा—

वर्ष	जन-संख्या	गौओं की संख्या
१८५०	२,३१,९१,८७६	६३,८५,०९४
१८६०	३,१४,४३,३२१	८५,८५,७३५
१८७०	३,८५,५८,३७१	८९,३५,३३२
१८८०	५,०१,५५,७८३	१,२४,४३,१२०
१८९०	६,२९,४७,७१४	१,६५,११,९५०
१९००	७,५९,९४,५७५	१,७१,३५,६३३
१९१०	९,१९,७२,२६६	२,०६,२५,४३२

उसी पुस्तक में प्रोफ़ेसर एकल्ज़ के आँकड़े दिये हुए हैं, जिनसे सब जाति की गायों के दूध और मक्खन के वार्षिक औसत का पूरा ज्ञान हो जाता है। वे आँकड़े इस प्रकार हैं—

नाम जाति	तौल दूध पौंड	तौल मक्खन पौंड
होलस्टीन	८६९९ ,,	३०० ,,
जरसी	५५०८ ,,	२८३ ,,
शार्टहार्न	६०१७ ,,	२१८ ,,
रेड पोलज़	५९०६ ,,	२३८ ,,
गारेन्सी	५५०९ ,,	२७४ ,,
आरशायर	६५३३ ,,	२५२ ,,

भारत में अच्छी-से-अच्छी जाति की गायों के दूध का वार्षिक औसत २,००० पौंड के लगभग होता है और मक्खन का औसत १०० पौंड भी मुश्किल से बैठता है।

परन्तु साधारण जाति की गायों का दूध अब औसत तौर पर ५०० पौंड वार्षिक भी नहीं रहा है। और गायों का मक्खन-घी का तो औसत नहीं के बराबर हो गया है।

अमरीका के संयुक्त-राज्यों में इस समय एक नहीं, सैकड़ों गायें ऐसी मिलती हैं जिनके एक वर्ष में १५,००० से ३०,००० पौंड तक दूध और ९०० से १२०० पौंड तक मक्खन होता है। एक गाय "सेगिस पीटर-जी प्रास्पैक्ट" ने जो वहाँ के कारोनेशन-फ़ार्म की सम्पत्ति है, एक वर्ष में ३७,३८१.४ पौंड दूध दिया, जो औसत तौर पर १०५ पौंड अर्थात् सवा मन प्रतिदिन होता है। एक दूसरी गाय 'डन्यूलारा' ने जो गेलवा स्थान की है, एक वर्ष में १,६१४.० पौंड मक्खन उत्पन्न किया।

भारतवर्ष में ऐसी गायें अब कल्पना-मात्र समझी जाती हैं और गोवंश का जिस प्रकार से पतन और ह्रास हो रहा है, यदि कुछ वर्ष और यही दशा रही तो गाय केवल दर्शन-मात्र की वस्तु रह जायगी। इस ख़राबी के जो दुष्परिणाम हो रहे हैं वह भी एक लम्बी और दर्दभरी कहानी है और उसके निरूपण के लिए एक अलग स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है।

यहाँ हमें इतना ही दिखाना अभीष्ट था कि इस देश के गाय-बैलों का बुरी तरह से विनाश हो रहा है। आवश्यकता है कि भारत-सरकार और देश के नेता इस सम्बन्ध में समुचित ध्यान दें। अन्य देशों के गोवंश की उन्नत अवस्था को देखकर ही यहाँ की स्थिति को सँभालें और राष्ट्र को एक आनेवाले भारी ख़तरे से बचावें।

गीत

लेखक, श्रीयुत कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

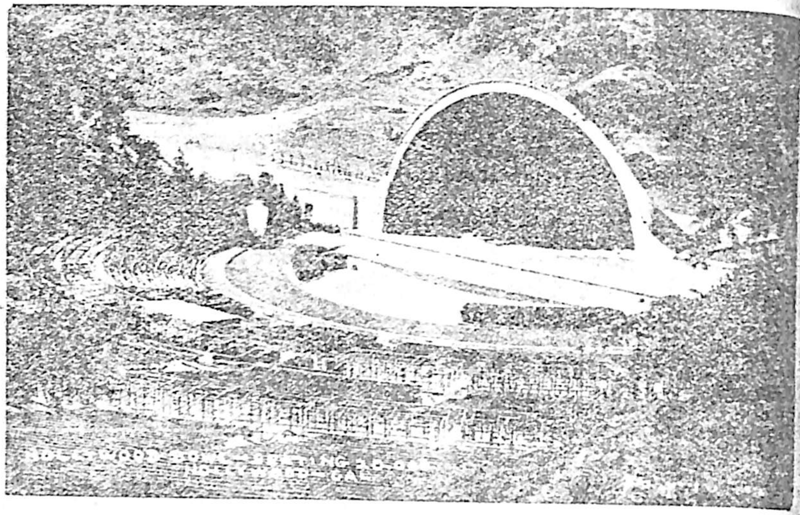
अस्त रे, जीवन !
धीर-पद आता मरण
असहाय तू न शरण !
क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल,
डूबते युग, कल्प काल—

अबाध यह लावन !
देख प्रति-पल प्रलय निश्चय,
लीन छायायें—सतत क्षय;
खोज अब भी, नहीं पाये
यदि अभय-प्रद चरण।

होलीउड

लेखक,
श्रीयुत भगवानदीन दुबे

श्रीमान् दुबे जी अपने पिछले भू-पर्यटन में चित्रपटों की नगरी 'होलीउड' भी गये थे। इस लेख में आपने उसी जगत्प्रसिद्ध स्थान का संक्षेप में परिचय दिया है।

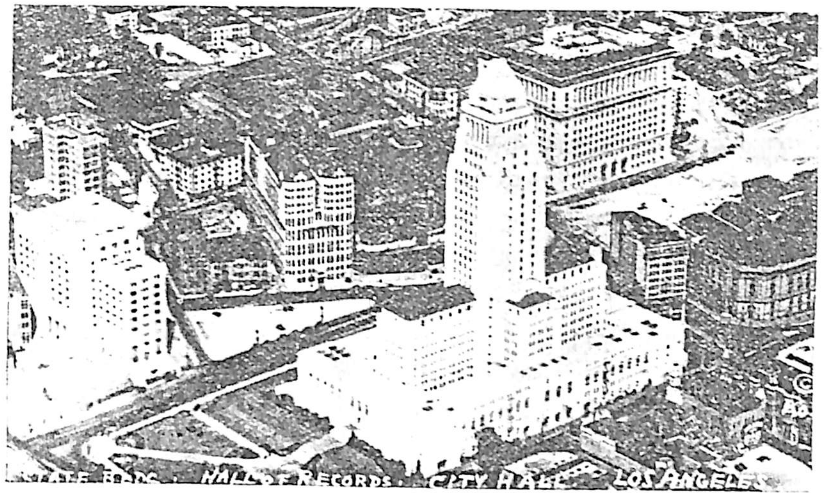


[होलीउड बाउल जहाँ एक लाख आदमी बैठकर कन्सर्ट सुन सकते हैं।]

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने सिनेमा का नाम सुना हो, पर होलीउड से अज्ञात हो। अमेरिकन फ़िल्मों की उत्पत्ति का केन्द्र होलीउड ही है। यद्यपि आज-कल फ़िल्में हर देश में बनाई जाती हैं, पर उनका क्षेत्र परिमित है। होलीउड में फ़िल्में सारे संसार को दर्शक-स्वरूप मानकर बनाई जाती हैं। वहाँ रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। फ़िल्म-स्टारों की तनख़्वाहें सुननेवालों को अवाक् कर देती हैं। हिन्दुस्तान को छोड़कर औसत लगाया जाय तो सिनेमा-दर्शकों में औरतों की संख्या कहीं ज़्यादा है। सिनेमा-स्टारों के ऊपर बहुत-सी साप्ताहिक और मासिक पत्रिकायें निकलती हैं और बड़े चाव से संसार में पढ़ी जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ तथा थोड़े से मूर्ख नौजवान लौंडे सिनेमा-स्टारों की तरह अपना चेहरा-मोहरा बनाने तथा पोशाक पहनने में गौरव समझते हैं। यहाँ तक कि भारत में जैसे कोई शिव को, कोई विष्णु को, कोई देवी को अपना आराध्य समझता है, उस तरह सिनेमा-प्रेमीगण अपना अपना सिनेमा-स्टार बाँट-सा लेते हैं और उनके पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद कर कभी कभी तो लड़ तक पड़ते हैं।

अपनी अपनी राय भिन्न होती है। सिनेमा से मुझे ज़रा भी प्रेम नहीं है। कोई असंगत पड़ने पर ही साल-छः महीने में कभी मैं सिनेमा देखने चला जाता हूँ। दो-चार मशहूर सिनेमा-पात्रों को छोड़कर मैं औरों का नाम तक नहीं जानता। विदेश-भ्रमण में हर क़िस्म के लोगों से वार्तालाप का अवसर मिलता है। बहुत-सी नौजवान औरतें तो सिनेमा-संसार से मेरा इतना अनभिज्ञ होना मुश्किल से यक़ीन कर पाती हैं। कचित् ही कोई ऐसा खेल आता है जिसमें कोई दर्दनाक वाक़या न हो। सिनेमा या नाटक देखनेवाले इमोशन-प्रूफ़ हो जाते हैं। संसार में काफ़ी सुख और दुख है। दुखपूर्ण दृश्य अथवा कहानी का मेरे दिल पर बड़ा असर पड़ता है। दिन भर काम में व्यस्त रह शाम को घर आकर पारिवारिक सुखास्वादन में जब समय अच्छी तरह कटता है तब फिर पैसे ख़र्च कर गर्मी और सिगरेट के धुएँ में अकड़कर दो घंटे बैठ बहुधा निहायत असंभव और साररहित, निर्दय अथवा करुणपूर्ण अश्लील और गंदे दृश्यावलोकन में दिन भर के थके हुए शरीर को अधमराकर घर लौटने में सिनेमा-प्रेमियों को क्या आनंद मिलता है, मेरी तुच्छ समझ के बाहर है। घर की बीबी से जो चौबीसों घंटे सेवा कर रही है, प्रेम नहीं, प्रेम है ग्रेटा गार्बो से!

न्यूयार्क से हवाना-पनामा होते हुए मैं लास ऐंजेल्स आया। यहाँ मुझे तीन दिन जापानी जहाज़ पाने के लिए रुकना था। अनिच्छा होते हुए भी जब प्रेरित कर्मों ने मुझे इस तरह इस स्थल पर ला पटका तब मैंने तय किया कि अब सिनेमा-रंग में रँग कर प्रस्तुत मौक़े का लाभ उठाना चाहिए।



[होलीउड की इमारतें।]

लास ऐंजेल्स के बन्दरगाह से शहर क़रीब २५ मील दूर है। मैं क्या, मेरे जैसे अनेक व्यक्ति होलीउड को एक अलग शहर ही समझते होंगे। पर वास्तव में वह लास ऐंजेल्स का एक 'सुबर्ब' है। बन्दरगाह से शहर के लिए बिजली की ट्रेन से रवाना होने पर तेल के असंख्य कुओं के लम्बे लम्बे मचान दिखाई पड़ते हैं। तेल निकलने की वजह से लास ऐंजेल्स की वृद्धि हुई और लास ऐंजेल्स का एक कृत्रिम बन्दरगाह बनाया गया। एक तो तेल जो आज-कल संसार में अनिवार्य चीज़ है, दूसरा होलीउड जहाँ जगत् के तमाशबीनों का पैसा खिंचकर चला आता है। इन दोनों के बेजोड़ मिलाप से लास ऐंजेल्स एक लाजवाब शहर हो गया है। इस शहर में क़रीब चार लाख मनुष्य निवास करते हैं, पर इसका घेरा क़रीब ४॥ सौ वर्गमील में है। बँगलों की क़तारें बनी हुई हैं। पानी तीन सौ मील से लाया जाता है। पानी की यहाँ इतनी प्रचुरता है कि सिर्फ़ औसत १४ इंच सालाना बारिश होने पर भी चारों तरफ़ हरी हरी दूब और बनस्पतियाँ लहलहाती नज़र आती हैं। यह स्थान मरुस्थल में ओसिस-सा बना हुआ है। अनेक बाग़ीचे बने हुए हैं। ताड़ के वृक्षों की क़तारें सड़कों के दोनों तरफ़ अजीब शोभा लाती हैं। प्रायः हर एक बँगले के सामने दूब की बहार देखने में आती है, जिसमें फ़ुहारे की सिंचाई बड़ी सुरम्य मालूम होती है।

जहाज़ से उतरकर ट्रेन से शहर गया। पूछने पर सलाह मिली कि रासलिन-होटल में ठहरना उचित होगा। टैक्सी से वहाँ गया। शहर इतना लम्बा-चौड़ा है और टैक्सी का किराया इतना अधिक है कि अलग टैक्सी कर मनमानी सैर करने का हौसला छोड़ देना पड़ा। टैक्सी का तीन डालर यानी नौ रुपये प्रतिघंटा किराया था। सिनेमा स्टडिओ की सैर का विज्ञापन पढ़ा। उसमें दिन भर की सैर का ४॥ डालर किराया लिखा था। विज्ञापन हमेशा की तरह प्रलोभनों से भरा था, जैसे सारे स्टडिओ की भीतरी सैर तथा स्टारों के साथ लंच इत्यादि। स्टडिओ देखने का यही ज़रिया समझकर मैंने टिकट ख़रीदा। दूसरे दिन ९ बजे होटल में एक बड़ी आरामदेह बस आई, जिसमें मेरे जैसे कुल बीस सैलानी भरे गये। कुर्सियाँ गद्दीदार थीं।

होटल से बस निकलकर होलीउड की तरफ़ चली। पहले रङ्ग-भूमि दिखलाई गई। इसमें सवा लाख व्यक्तियों के बैठने की जगह है। बड़ा आलीशान भवन देखने में आया। उसके प्रायः चारों तरफ़ बड़ा सुरम्य बाग़ीचा है। फिर होलीउड की अनेक सड़कों से गुज़रते हुए जापानी बाग़ीचे में जाकर बस रुकी। होलीउड की यह एक दर्शनीय जगह है। दो जर्मन यहूदी भाइयों ने इस बाग़ीचे को एक टीले पर बड़ी योग्यता से बनाया है। कुल रक़बा क़रीब २८ एकड़ है। जापानी ढंग का घर टीले पर है। नीचे अनेक प्रकार के पौधे छोटी छोटी सुरम्य नहरों के आस-पास लगाये गये हैं। कहते हैं कि इस बाग़ीचे के बनाने में २० लाख डालर लग चुके हैं। जर्मन भाई अब नहीं हैं। जान पड़ता है, बाग़ीचा म्युनिसिपेल्टी के प्रबन्ध में होगया है। दर्शकों से २५ सेंट याने क़रीब १२ आने लिये ज़ाते

हैं, जिससे बाग़ीचे की देख-भाल की जाती है। कहते हैं, बाग़ीचा १० लाख डालर में विकाऊ है।

बाग़ीचे की सैर कर अनेक स्टडिओं से गुज़रते हुए बस 'यूनीवर्सल स्टडिओ' के नज़दीक गई। क़रीब १ वज चुका था। वहीं रेस्ट्राँ में भोजन करने को कहा गया। अभी तक तो स्टडिओ का सिर्फ़ वाहर से ही मुलाहिज़ा होता रहा। कंडक्टर समझाता जाता था कि फ़लाँ फ़िल्म के बनाने में कैसी रचना की गई थी। रचित खंभों, घरों, सड़कों, जहाज़ों इत्यादि के ढाँचे मौजूद थे। फ़िल्म के पूरी हो जाने पर ढाँचों को जैसा का तैसा पड़ा रहने दिया जाता है। तोड़ने में कौन पैसा ख़र्च करे? इस तरह अनेक फ़िल्मों में काम आये हुए भग्नावशेष वहाँ मौजूद हैं।

विज्ञापन में यह प्रलोभन दिया गया था कि भोजनालय में सिनेमा-स्टारों से मुलाक़ात होगी। उसमें यह भड़कीला वाक्य लिखा था—स्टारों के साथ भोजन कीजिए। भीतर जाने पर जीते-जागते स्टार का नामोनिशान नहीं मिला। हाँ, दीवारों पर स्टारों की तसवीरें अवश्य भरी हुई थीं। विज्ञापन में कोई ज़्यादती नहीं थी। सिर्फ़ पढ़नेवालों की कमबुद्धि थी जो यह अर्थ लगा बैठे कि चार्ली चैप्लिन जैसे स्टार वहाँ मौजूद होंगे और दर्शकों के साथ भोजन करेंगे। पचहत्तर सेंट भोजन की क़ीमत थी। भोजन औसतन अच्छा था।

दो वजे तक निराश तमाशबीन फिर बस में आ गये। यह आशा थी कि स्टडिओ के भीतर जाया जायगा। पर बस दूसरे स्टडिओ की तरफ़ चली और फ़िल्मोंवाले खंडहरों की गाथा फिर शुरू हुई।

३॥ वजे वार्नर ब्रादर्स के स्टडिओ पर बस रुकी और कहा गया कि अब स्टडिओ के अंदर चला जायगा। फाटक पर स्टडिओ का सिपाही ड्राइवर के बग़ल में आकर … गया और बस फाटक के अंदर घुसी। फाटक के अंदर विशाल जगह देखने में आई। फ़िल्मों में अक्सर शहर … सड़कें और मकान बने मिलते हैं। मेरा यह ख़याल … कि तसवीरें वास्तविक सड़कों में ली जाती होंगी। पर … महल्ले के महल्ले बने पाये। न्यूयार्क, हालीउड अथवा जिस शहर को केन्द्र मानकर फ़िल्म उतारी जानेवाली होती है उस शहर का नक़ली ढाँचा हूबहू तैयार किया जाता है, उसमें आदमी भर दिये जाते हैं। मोटर दौड़ने लगते हैं, रेलें और ट्रामें चलने लगती हैं। विशाल थियेटर बनाये जाते हैं, जिनकी उपयोगिता बस एक मिनट के लिए रहती है। वाहर के दृश्य के लिए नक़ली घर इत्यादि बनाये जाते हैं, पर भीतर का दृश्य स्टडिओ में उतारा जाता है। ऐसी कई आश्चर्यजनक बातें देखते हुए क़रीब आध… के बाद फिर स्टडिओ के फाटक पर लौटे और सिपाही को वहाँ उतारकर बस आगे रवाना हुई।

'हालीउड बाल' जिसकी तसवीर यहाँ दी जाती है, एक विचित्र जगह है। पहाड़ियों के बीच इसकी कटोरे जैसी शकल है। पहाड़ी काटकर बेंचें बना दी गई हैं। क़रीब १ लाख आदमी यहाँ बैठकर कन्सर्ट सुन सकते हैं। दुनिया के मशहूर कंडक्टर अथवा गायक यहाँ आकर अपना हुनर दिखाते हैं।

'माउंट विल्सन आब्ज़र्वेटरी' भी यहाँ स्थित है, जिसमें एक अद्वितीय दूरबीन स्थापित की गई है।

लास ऐंजेल्स में बसे हुए जापानियों की काफ़ी तादाद है। इटालियन भी बहुत हैं। हालीउड की वजह से दुनिया के प्रमुख उस्तादों का यहाँ अच्छा जमघट रहता है। इस तरह दिन भर की सैरकर ५। वजे होटल में वापस आगये।

ग़दर और बाद की दिल्ली

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल

मौलवी साहब ने मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों का उर्दू में एक बृहत् संस्करण तैयार किया है। इसमें उन्होंने ऐसे अनेक पत्रों का समावेश किया है जो अभी तक अप्रकाशित थे। ऐसे ही पत्रों के आधार पर उन्होंने यह लेख लिखा है और इससे विद्रोह-कालीन दिल्ली की अवस्था पर एक नया प्रकाश पड़ता है। वास्तव में मिर्ज़ा साहब के पत्र महत्त्व के हैं, जैसा इस लेख से स्पष्ट होता है। क्या ही अच्छा होता, यदि कोई सज्जन भारतेन्दु बाबू के पत्रों को भी पुस्तक-रूप में प्रकाश में लाते।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने दस्तम्बो नामक पुस्तक में ग़दर का हाल, अपना हाल व कुछ अन्य लोगों का हाल लिखकर जल्दी प्रकाशित कराया और बड़े बड़े अँगरेज़ अफ़सरों व अन्य लोगों के पास इसलिए भेजा कि वे अँगरेज़ों के मित्र समझे जायँ न कि राजद्रोही और राजद्रोहियों के मित्र समझे जायँ एवं उनकी जो पेन्शन बन्द हो गई थी वह फिर जारी हो जाय, अँगरेज़ी दरबारों में उनको जगह मिले और उनका मान किया जाय। निदान ऐसा ही हुआ।

उक्त बात से यह अनुमान करना अनुचित नहीं कि दस्तम्बो में मिर्ज़ा ने जो कुछ लिखा बहुत बचकर लिखा, किन्तु उस ग्रन्थ के सिवा मिर्ज़ा के जिन अन्य लेखों से उनका अपना व ग़दर आदि का हाल मालूम होता है वे मिर्ज़ा के पत्र हैं, जिनको उन्होंने अपने मित्रों तथा शिष्यों को लिखा है। मिर्ज़ा या किसी अन्य को क्या पता था कि किसी समय इन पत्रों के प्रकाशित होने की नौबत आयेगी। इस कारण इन पत्रों की ग़दर-सम्बन्धी बातें दस्तम्बो से कहीं अधिक माननीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जिस समय ये पत्र लिखे गये थे उस समय जनता की डाक देखी-भाली जाती रही हो, इस कारण मिर्ज़ा ने पत्रों में जो कुछ लिखा हो उसे भी बहुत ही बचकर लिखा हो। तथापि पत्रों की सामग्री ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की माननी पड़ती है और दस्तम्बो से कहीं अधिक प्रामाणिक ठहरती है।

दिल्ली में ११ मई १८५७ ई० को ग़दर हुआ था। मिर्ज़ा के जो पत्र इस तारीख़ के बाद के मिलते हैं उनमें ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० का पत्र ऐसा है जिसमें सबसे पहले कुछ चर्चा है। यह पत्र मिर्ज़ा ने अपने प्यारे शिष्य मुंशी हरिगोपाल को लिखा था। इसमें की कुछ बातें ये हैं—

(क) यहाँ बाहर से भीतर कोई बिना टिकट के आने-जाने नहीं पाता। तुम कदापि यहाँ आने का विचार न करना।

(ख) अमीर-ग़रीब सब निकल गये। जो रह गये थे वे निकाले गये। जागीरदार, पेंशनदार आदि कोई भी नहीं है। विस्तारपूर्वक हाल लिखते हुए डरता हूँ। क़िला के नौकरों पर कड़ी दृष्टि है। उन लोगों की पूछ-गछ अधिक है और उनकी धर-पकड़ हो रही है।

(ग) सैनिक प्रबन्ध ११ मई से आज अर्थात् ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० तक बराबर है।

ग़दर होने पर दिल्ली १४ सितम्बर सन् १८५७ ई० को अँगरेज़ों के हाथ में आई थी। उस समय से १० जनवरी सन् १८५८ ई० तक उनकी ओर से दिल्ली में सैनिक प्रबन्ध रहा। किन्तु इसके पहले ११ मई को जब विद्रोहियों ने अपना अधिकार दिल्ली पर जमाया था, उस समय उनकी ओर से सैनिक प्रबन्ध था। इसी कारण मिर्ज़ा ने सैनिक प्रबन्ध ११ मई से लिखा है।

इस अवसर पर यह भी जान लेना चाहिए कि दिल्ली पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अँगरेज़ों ने जनता की डाक का प्रबन्ध शीघ्र ही कर दिया था, क्योंकि मिर्ज़ा के पास अपना पत्र मुंशी हरिगोपाल ने डाक के द्वारा ही भेजा था और उसका उत्तर भी मिर्ज़ा ने डाक के द्वारा ही दिया था। जब दिल्ली अँगरेज़ों के हाथ में आई तब काले व गोरे दोनों सिपाहियों ने, ख़ूब लूट-मार की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में जनता की क्षति कुछ

पूरी की गई थी, क्योंकि मिर्ज़ा ने अपने ३१ दिसम्बर के एक पत्र में यह लिखा है—

इतना सुना गया है कि एक कार्यालय लाहौर में प्रजा की हानि का बदला देने के लिए नियुक्त हुआ है और आज्ञा यह है कि प्रजा का जो धन कालों ने लूटा है, निस्सन्देह उसके बदले में दसवाँ भाग सरकार की ओर से दिया जायगा। अर्थात् हज़ार रुपया माँगनेवाले को सौ रुपये मिलेंगे। और जो लूट गोरों के समय की है उसके निमित्त कुछ न होगा।

ग़दर के बाद बहुत-से लोगों के घरों को सरकार ने अपने अधिकार में कर लिया था। किन्तु बाद को कुछ लोगों को उनके घर वापस मिल गये थे और कुछ को नहीं मिले थे। इस सम्बन्ध में मिर्ज़ा ने सन् १८५९ ई० के एक पत्र में एक बड़े मज़े की बात यह लिखी है—

एक मज़ेदार बात परसों की सुनो। हाफ़िज़ मम्मू निर्दोष साबित हो चुके, छूट चुके। हाकिम के सामने हाज़िर हुआ करते हैं, अपनी जायदाद माँगते हैं। उनके अधिकार का सबूत हो चुका है। केवल आज्ञा की देरी थी। परसों वे हाज़िर हुए थे। मिसिल पेश हुई। हाकिम ने पूछा—हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श कौन? निवेदन किया कि मैं। फिर पूछा कि हाफ़िज़ मम्मू कौन? निवेदन किया कि मैं। असल नाम मेरा मुहम्मद बख़्श है। मम्मू, मम्मू प्रसिद्ध हूँ। कहा—यह कुछ बात नहीं। हाफ़िज़ मुहम्मद बख़्श भी तुम और हाफ़िज़ मम्मू भी तुम, सारा जहान भी तुम, जो कुछ दुनिया में है वह भी तुम। हम मकान किसको दें? मिसिल दफ़्तर में दाख़िल हुई, मियाँ मम्मू अपने घर चले आये।

दिल्ली में चुंगी के जारी होने का हाल मिर्ज़ा ने अपने ६ नवम्बर सन् १८५९ ई० के एक पत्र में नवाब ज़ुलफ़िक़ार उद्दीन हैदर अर्थात् हुसेन मिर्ज़ा को इस प्रकार लिखा है—

पौन टोटी (चुंगी) के विषय में कौंसल हुई। परसों सात नवम्बर से जारी हो गई। शालिग्राम ख़ज़ानची, छुन्नामल, महेशदास तीन व्यक्तियों को यह काम ठीके पर मिला है। अनाज और उपले को छोड़कर कोई और वस्तु ऐसी नहीं है जिस पर महसूल (चुंगी) न हो।

दिल्ली भारत के मुसलमान बादशाहों का भी केन्द्र थी। यही कारण था कि ग़दर के काफ़ी समय के बाद तक वहाँ आना-जाना आसान काम न था, क्योंकि मिर्ज़ा ने २ फ़रवरी सन् १८५९ ई० के एक पत्र में अपने एक शिष्य को लिखा है—

मेरठ से आकर देखा कि यहाँ बड़ी सख़्ती है और यह हालत है कि गोरों के निरीक्षण पर सन्तोष नहीं है। लाहौरी दरवाज़े का थानेदार मोढ़ा बिछाकर सड़क पर बैठता है। जो बाहर से गोरे की आँख बचाकर आता है उसको यह पकड़कर हवालात में भेज देता है। हाकिम के यहाँ से पाँच बेत लगते हैं अथवा दो रुपया जुर्माना लिया जाता है। आठ दिन क़ैद रहता है।

इसी विषय में मिर्ज़ा ने अपने २७ मार्च सन् १८५९ ई० के पत्र में यह लिखा है—

भाई! यहाँ (दिल्ली) का नक़्शा ही कुछ और है। समझ में किसी के नहीं आता कि क्या तौर है। अँगरेज़ी मास के आरम्भ में रोक-टोक की सख़्ती होती थी। आठवीं-दसवीं तक वह कड़ाई कम होती थी। इस मास में बराबर वही सूरत रही है। आज २७ मार्च है। पाँच-चार दिन महीने में बाक़ी हैं। आँच वैसी ही तेज़ है। ख़ुदा अपने बन्दों पर दया करे।

ग़दर के बाद ही कई महल्लों के गिराये जाने और कई सड़कों के निकलने की नौबत आई थी। इस सम्बन्ध में २२ दिसम्बर सन् १८५८ ई० के पत्र में अपने एक शिष्य को मिर्ज़ा ने लिखा है—

लो सुनो! अब तुम्हारे दिल्ली की बातें हैं। चौक में बेगम के बाग़ के दरवाज़े के सामने हौज़ के पास जो कुआँ था उसको पत्थर, ईंट व मिट्टी डालकर बन्द कर दिया। बल्लीमारों के दरवाज़े के पास की कई दूकानें ढाकर मार्ग चौड़ा कर लिया।

२८ जुलाई सन् १८५९ ई० के पत्र में मिर्ज़ा [illegible] यूसुफ़ लिखते हैं—

यहाँ दो सड़कें दौड़ती फिरती हैं। एक ठण्डी सड़क और एक लोहे की सड़क (रेलवे लाइन)। स्थान उनका पृथक्-पृथक्। इससे बढ़कर बात यह है कि गोरों का बैरिक भी शहर में बनेगा और क़िला के सम्मुख जहाँ लालडिग्गी है, एक मैदान निकाला जायगा। महबूब की दूकानें, बहलियों के घर, हाथीख़ाना, बुलाक़ी बेगम के कूचा से ख़ालिस बाज़ार तक यह सब मैदान हो जायगा। इस प्रकार समझो कि अम्मूजान के दरवाज़े से क़िला के ख़न्दक़ तक लालडिग्गी और दो-चार कुओं को छोड़कर किसी घर का चिह्न बाक़ी न रहेगा। आज जाँनिसारख़ाँ के छत्ते के मकान ढहने शुरू हो गये।

इसी विषय के सम्बन्ध में अपने एक शिष्य मीर मेहदी 'मजरूह' को ८ नवम्बर सन् १८५९ ई० के पत्र में वे यह लिखते हैं—

जामा मस्जिद के गिर्द पचीस-पचीस फ़ुट गोल मैदान निकलेगा। दूकानें व हवेलियाँ ढहाई जायँगी। दारुलबक़ा मिट्टी में मिल जायगी। रहे नाम अल्लाह का! ख़ानचन्द का कूचा शाहबूला के बड़ से ढहेगा। दोनों तरफ़ से फावड़ा चल रहा है। बाक़ी ख़ैर व आफ़ियत है।

२ दिसम्बर सन् १८५९ ई० के पत्र में मीर मेहदी को फिर लिखते हैं—

तुम आते हो, चले आओ। जाँनिसारख़ाँ के छत्ते की सड़क, ख़ानचन्द के कूचा की सड़क देख जाओ। बुलाक़ी बेगम के कूचे का ढहना, जामा मस्जिद के गिर्द सत्तर-सत्तर गज़ गोल मैदान निकलना सुन जाओ।

खुदखुदाकर कई महल्लों व कुँओं का जो हाल कुछ काल में हो गया उसका वर्णन मिर्ज़ा के सन् १८६० ई० के एक पत्र में इस प्रकार है—

बड़ी भारी आफ़त यह है कि क़ारी का कुआँ बन्द हो गया। लालडिग्गी के कुएँ बिलकुल बन्द हो गये। ख़ैर! खारी ही पानी पीते, गर्म पानी निकलता है। परसों मैं सवार होकर कुओं का हाल जानने गया था। मस्जिद जामा होता हुआ राजघाट-दरवाज़ा को चला। मस्जिद जामा से राजघाट-दरवाज़ा तक निस्सन्देह एक सुनसान जंगल हो गया है। ईंटों के जो ढेर पड़े हैं, यदि वे उठ जायँ तो वह भयानक स्थान हो जाय। याद करो। मिर्ज़ा गौहर के बाग़ीचा के उस ओर कई बाँस नीचा था, अब वह बाग़ीचा के आँगन के समान हो गया। यहाँ तक कि राजघाट का दरवाज़ा बन्द हो गया। चहारदीवारी के कँगूरे खुले हुए हैं। बाक़ी सब अट गया। कश्मीरी-दरवाज़ा का हाल तुम देख गये हो। अब लोहे की सड़क (रेलवे लाइन) के लिए कलकत्ता-दरवाज़ा से काबुली-दरवाज़ा तक मैदान हो गया। पंजाबी कटरा, धोबीवाड़ा, रामजीगंज, सआदत ख़ाँ का कटरा, जर्नैल की बीबी की हवेली, रामजीदास गोदामवाले के घर, साहबराम का बाग़ व हवेली, इनमें से किसी का पता नहीं मिलता। निदान नगर जंगल हो गया। अब जो कुएँ जाते रहे और पानी का अभाव हो गया तो यह जंगल 'कर्बला' का मैदान हो जायगा।

ग़दर व उसके कुछ समय के बाद तक दिल्ली पर जो आपत्ति अधिकारियों की ओर से रही थी वह तो थी ही, किन्तु दैवी आपत्तियाँ भी दिल्ली पर आईं। सन् १८६० ई० में वर्षा नहीं हुई। वस्तुएँ मँहगी हो गईं। मारहरा (ज़िला एटा) के निवासी चौधरी अब्दुल ग़फ़ूर को मिर्ज़ा सितम्बर सन् १८६० ई० में लिखते हैं—

यहाँ शहर ढह रहा है। बड़े बड़े नामी बाज़ार, ख़ास बाज़ार और उर्दू बाज़ार और ख़ानम का बाज़ार जो कि इनमें से प्रत्येक एक नगर था, अब पता भी नहीं कि कहाँ थे। घर व दूकान के मालिक यह नहीं बता सकते कि हमारा घर कहाँ था और हमारी दूकान कहाँ थी। बरसात में भी पानी नहीं बरसा। अब बसूला व फावड़ा की बाढ़ से घर गिर गये। अनाज मँहगा है, मृत्यु सस्ती है। फल के भाव अनाज बिकता है। उड़द की दाल ८ सेर, बाजरा १२ सेर, गेहूँ १३ सेर, चना १६ सेर, घी डेढ़ सेर, तरकारी मँहगी। इन सब बातों से बढ़कर बात यह है कि कुआर का महीना जिसे जाड़े का द्वार कहते हैं, पानी गर्म, धूप तेज़ और लू चलती है। जेठ-असाढ़ की-सी गरमी पड़ती है।

९ जनवरी सन् १८६१ ई० को मीर मेहदी 'मजरूह' साहब को इसी सम्बन्ध में यह लिखा था—

चार दिन से पुरवाई हवा चलती है। बादल आते हैं, किन्तु केवल छिड़काव होता है। पानी नहीं बरसता। गेहूँ, चना, बाजरा तीनों अनाज एक भाव हैं। नौ सेर साढ़े नौ सेर।

किन्तु सन् १८६२ ई० में वर्षा बहुत ज़्यादा हुई थी, क्योंकि मिर्ज़ा ने २९ जुलाई के एक पत्र में मीर मेहदी को लिखा था—

एक ग़दर कालों का, एक आपदा गोरों की, एक आपत्ति घरों के गिराये जाने की, एक आफ़त बीमारी* की,

*सन् १८६१ ई० में दिल्ली में हैज़ा भी ज़ोरों के साथ फैला था।—लेखक।

एक विपत्ति काल की। अब यह बरसात समस्त बातों से पूर्ण है। आज इक्कीसवाँ दिन है, सूर्य इस प्रकार देखने में आ जाता है, जैसे बिजली चमक जाती है। रात को कभी कभी यदि तारे दिखाई देते हैं तो लोग उनको जुगनू समझ लेते हैं। अँधेरी रातों में चोरों की बन आई है। कोई दिन नहीं कि दो-चार घरों की चोरी का हाल न सुना जाय। अत्युक्ति न समझना, हज़ारों घर गिर गये। सैकड़ों मनुष्य इधर-उधर दबकर मर गये। गली गली नदी बह रही है। निदान वह अन्न-काल था कि पानी नहीं बरसा, अनाज नहीं पैदा हुआ। यह पन-काल है। पानी ऐसा बरसा कि बोये हुए दाने बह गये। जिन्होंने अभी नहीं बोया था वे बोने से रह गये। सुन लिया दिल्ली का हाल। इसके सिवा कोई नई बात नहीं है।

बहुत-से लोगों ने जब यह देखा कि दिल्ली पर फिर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ चाहता है तब उन्होंने झट दिल्ली छोड़ दी। परन्तु जब दिल्ली पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया तब उन्होंने बहुतों को निकाल दिया। यही कारण है कि ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० के पत्र में मिर्ज़ा ने लिखा है—

अपने घर में बैठा हूँ। दरवाज़े से बाहर नहीं निकल सकता। सवार होना और कहीं जाना तो बहुत बड़ी बात है। रहा यह कि कोई मेरे पास आवे! शहर में है कौन, जो आवे? घर के घर बिना दीपक के पड़े हैं।

५ दिसम्बर सन् १८५८ ई० को मिर्ज़ा ने जो पत्र मौलवी अज़ीज़उद्दीन को लिखा था उससे पता लगता है कि उस समय तक आबादी का क्या हाल था—

साहब! कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो। दिल्ली को वैसी ही बसी हुई जानते हो, जैसी पहले थी। क़ासिम जान की गली, मीर ख़ैराती के फाटक से फ़तेहउल्ला बेग ख़ाँ के फाटक तक बेदीपक है। हाँ, यदि आबादी है तो यह है कि ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ की हवेली अस्पताल है और ज़्याउद्दीन ख़ाँ के कमरे में डाक्टर साहब रहते हैं और काले साहब के घर में एक और अँगरेज़ साहब रहते हैं। ज़्याउद्दीन ख़ाँ और उनके भाई अपने बाल-बच्चों-समेत लोहारू में जा बसे। लालकुएँ के महल्ला में धूल उड़ती है, आदमी का नाम नहीं। तुम्हारे मकान में जो छोटी बेगम छिरिंगी की बीबी रहती थी, उसके पास इस इश्तहार को भेजा था। मालूम हुआ, वह लाहौर को गई है। खेमी की दूकान में कुत्ते लोटते हैं। मुफ़्ती सदरउद्दीन साहब लाहौर गये हैं।

अँगरेज़ों ने दिल्ली के मुसलमानों को विशेष रूप से विद्रोही समझा था, इस कारण जब दिल्ली पर विजय प्राप्त की तब उनके साथ कड़ा व्यवहार किया। निदान ५ दिसम्बर सन् १८५७ ई० के पत्र में मिर्ज़ा लिखते हैं—

ख़ुदा की क़सम! ढूँढ़ने पर मुसलमान इस शहर में नहीं मिलता। क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या कारीगर, यदि कुछ हैं तो बाहर के हैं। हिन्दू अवश्य कुछ कुछ बस गये हैं।..........अभी देखा चाहिए, मुसलमानों की आबादी का हुक्म होता है या नहीं।

५ मार्च सन् १८५८ ई० के पत्र में मिर्ज़ा यह लिखते हैं—

तुम्हारे इस ख़त का जवाब न लिख सका। जवाब तो लिख सकता था, किन्तु कल्याण का पैर सूज गया था। वह चल नहीं सकता था। मुसलमान आदमी शहर में सड़क पर बिना टिकट के फिर नहीं सकता। ऐसी मजबूरी से तुमको ख़त न भेज सका। कई दिनों के बाद जब कहार अच्छा हुआ तब मैं तुमको आगरा में समझकर सिकन्दराबाद ख़त न भेज सका।

मिर्ज़ा तथा अन्य बहुत-से बड़े बड़े लोग ग़दर के पश्चात् कितने घोर संकट में पड़ गये थे, इसका भी उल्लेख मिर्ज़ा के पत्रों में पाया जाता है। २८ नवम्बर सन् १८५९ ई० के एक पत्र में उन्होंने लिखा है—

"मेरा सगा भाई पागलपन की अवस्था में मरा। उसकी बेटी, उसके चार बच्चे, उसकी माता अर्थात् मेरी भौजाई जयपुर में पड़े हुए हैं। इस तीन वर्षों में एक रुपया उनको नहीं भेजा। भतीजी क्या कहती होगी कि मेरा भी कोई चचा है। यहाँ धनिकों और बड़े बड़े लोगों की स्त्रियाँ व सन्तानें भीख माँगती फिरें और मैं देखूँ! इस आपत्ति को देखने के निमित्त हृदय चाहिए।" लोहारू के नवाब अलाउद्दीन ख़ाँ बहादुर (जो रिश्ते में मिर्ज़ा की बीबी के भतीजे थे) को मिर्ज़ा १६ फ़रवरी सन् १८६२ ई० के पत्र में लिखते हैं—

ऐ मेरी जान! यह वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुम पैदा हुए हो। वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुमने विद्या प्राप्त की थी। वह दिल्ली नहीं है जिसमें तुम शाबानबेग की हवेली में मुझसे पढ़ने आते थे। वह दिल्ली नहीं है जिसमें सात वर्ष की आयु से आता-जाता हूँ। वह दिल्ली नहीं है जिसमें ५१ वर्ष से ठहरा हुआ हूँ। एक कैम्प है। मुसलमान काम-काजी अथवा हाकिमों के नौकर-चाकर हैं, बाक़ी सबके सब हिन्दू।

पृथक् किये गये बादशाह के घराने के पुरुष जो बचे हुए हैं वे पाँच पाँच रुपये महीना पाते हैं। स्त्रियों में से जो बुढ़िया हैं वे........और युवा........। बड़े बड़े मुसलमानों में से मृतकों को गिनो। हसनअली ख़ाँ बहुत बड़े बाप का बेटा सौ रुपया रोज़ का पेन्शनदार सौ रुपया मासिक की जीविकावाला बनकर मर गया! अमीर नासिरउद्दीन पिता की ओर से उच्च कुलीन और नाना व नानी की ओर से बहुत बड़ा अमीर था। वह निर्दोष मारा गया। आग़ा सुल्तान बख़्शी मुहम्मदअली ख़ाँ का पुत्र जो स्वयं भी बख़्शी हो चुका है। बीमार पड़ा, दवा न भोजन! अन्त में मर गया! तुम्हारे चचा की ओर से मृतक संस्कार हुआ। जीवित लोगों को पूछो! नाज़िर हुसेन मिर्ज़ा जिसका बड़ा भाई मारा गया था उसके पास एक पैसा नहीं, टके की आय नहीं। मकान यद्यपि रहने को मिल गया है, किन्तु देखिए छुटा रहे अथवा ज़ब्त हो जाय। बुड्ढे साहब सब जायदाद बेचकर और सब कुछ खा-पकाकर सीधे भरतपुर चले गये। ज़्याउद्दौला की पाँच सौ रुपया किराया की जायदाद छूट-छाट कर फिर कुर्क़ हो गई। बुरी दशा में लाहौर गया, वहाँ पड़ा हुआ है। देखिए, क्या होता है। निदान क़िला, झज्जर, बहादुरगढ़, बल्लबगढ़ और फ़र्रुख़नगर लगभग तीस लाख रुपया की रियासतें मिट गईं। शहर के अमीर मिट्टी में मिल गये।......

अब अन्त में यह कहना है कि मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों में अनेक साहित्यिक तथा मनोरञ्जक बातें हैं, किन्तु इनके सिवा दिल्ली से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक करुणामय बातें भी हैं और उनसे ऐतिहासिक लाभ हो सकता है तथा तत्कालीन सामयिक बातों पर दृष्टि पड़ सकती है।

पहचान

लेखक, श्रीयुत बलराम दुबे, बी० ए०

(१)

कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।
हिन्दू, इसाई और मुसलिम एक हैं सच मान लूँगा।
आदि-अन्त समान जब तो मध्य भी मैं मान लूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

(२)

देश और विदेश क्या निज देश सब मैं मान लूँगा।
चार दिन के बाद तो यह देह-जग को त्याग दूँगा।
सौख्य-सम्पद, धर्म-बन्धन तक धरा पर वार दूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

(३)

इन दिनों में किन्तु जग का शाप या बरदान लूँगा।
मूल्य अपने कर्म का अपयश-सुयश से आँक लूँगा।
सुन्दर-असुन्दर, लघु-बड़ा जग में इसी से जान लूँगा।
कह नहीं सकता कि कब तक रूप निज पहचान लूँगा।

रिज़र्व बैंक

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल

संसार के सभी मुख्य-मुख्य देशों में उनके अपने प्रधान बैंक हैं जिन्हें सेंट्रल बैंक या कहीं-कहीं रिज़र्व बैंक कहते हैं। सेंट्रल बैंक की बहुत-सी परिभाषायें हैं। आसान भाषा में सेंट्रल बैंक वह संस्था है जो मनुष्यों की चलन और ऋण की माँग को पूरा करता है और राजनीति के प्रभाव या फ़ायदे के लोभ से अलग रहता है।

सेंट्रल बैंक का ख़ास व असली मतलब यह है कि वह रुपये के मूल्य को, जहाँ तक संभव हो, स्थिर रक्खे। आज-कल कुल आर्थिक कार्य उधार किये जाते हैं। माल पैदा करनेवाले को, शुरू शुरू में, मशीन वग़ैरह के लिए रुपये की आवश्यकता होती है। जब माल बनने लगता है तब उसे कच्चा माल ख़रीदने और मज़दूरी देने के लिए रुपये की ज़रूरत पड़ती है। जब माल बिक जाता है तब तत्काल ही उसे उसका रुपया नहीं मिल जाता, क्योंकि थोक ख़रीदनेवाले उधार पर माल ख़रीदते हैं। इतना अधिक रुपया एक मनुष्य अपने पास से नहीं लगा सकता और वह बैंक से उधार लेता है। थोक ख़रीददार माल को रेज़गारी पर बेचनेवाले को उधार देता है और रेज़गारीवाला भी, किसी हद तक, अपने ख़रीददारों से फ़ौरन रुपया नहीं पाता। अब अगर इन सब मनुष्यों को उनकी आवश्यकता के अनुसार ऋण न मिला तो चीज़ों की पैदावार कम होगी, व्यापार मंदा रहेगा और देश ग़रीबी में फँसा रहेगा। इसलिए आवश्यक यह है कि ऋण की सच्ची और बेजोखिम जितनी माँग हो, उतना ऋण अवश्य मिलना चाहिए। इसलिए प्रत्येक देश के लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो ऋण की पूर्ति पर क़ाबू रक्खे।

केंद्रीय बैंक का ख़ास और असली मतलब है ऋण और चलन की आवश्यकता के अनुसार भरती करना। इसके साथ-साथ केंद्रीय बैंक रुपये के बाज़ार को अधिकार में रखता है, दूसरे बैंकों की रक्षा करता है, चेक के प्रयोग और बट्टा-बाज़ार की उन्नति करता है, इत्यादि-इत्यादि।

भारत में रिज़र्व बैंक स्थापित हो गया है। परन्तु इसका क्या महत्त्व है तथा इसका सङ्गठन किस प्रकार किया गया है, इन बातों को सभी लोग नहीं जानते। इस लेख में लेखक महोदय ने इन्हीं बातों की चर्चा की है।

बिना केंद्रीय बैंक के देश की आर्थिक उन्नति और मज़बूती का होना सम्भव नहीं है। इसकी मिसाल हमें संयुक्त-राष्ट्र अमरीका से मिल सकती है। सन् १९१३ के पहले वहाँ कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। नतीजा यह हुआ कि वहाँ बहुत-से आर्थिक संकट आये, जिनमें १९०७ का संकट सबसे ज़्यादा हानिकारक था। अंत में वहाँ फ़ेडरल रिज़र्व-बैंक-प्रणाली क़ायम करनी पड़ी।

भारतवर्ष में एक सेंट्रल या रिज़र्व बैंक खोलने के प्रश्न पर १८३६ में ही विचार हुआ था और इस विषय पर १८५९ में भारतवर्ष के प्रथम और सबसे बड़े आर्थिक मन्त्री जेम्स विल्सन ने एक रिपोर्ट भी दी। १८६७ में डिक्सन महाशय ने, जो बैंक ऑव् बेंगाल के मंत्री थे, तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों के मिला देने का प्रस्ताव किया। इस तरह इस प्रश्न पर बराबर विचार होता रहा, पर उस समय कोई ख़ास परिणाम नहीं हुआ। हाँ, सन् १९२१ में तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर एक 'इम्पीरियल बैंक आव् इंडिया' की स्थापना की गई, जो इस देश के बैंकिंग इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण बात है। पर इम्पीरियल बैंक भी एक केंद्रीय बैंक की ज़रूरत को पूरी न कर सका। वह आधा तो केंद्रीय बैंक था और आधा एक मामूली व्यापारिक बैंक था। इस कारण सन्तोषजनक रीति से यह दोनों में से किसी का भी काम अच्छी तरह न कर सका। केन्द्रीय बैंक की माँग बनी ही रही। फलतः सन् १९०४ में 'रिज़र्व बैंक आव् इंडिया ऐक्ट' बनाया गया और 'रिज़र्व बैंक आव् इंडिया' की स्थापना हुई।

रिज़र्व बैंक का मूलधन ५ करोड़ रुपया है, जो सौ सौ रुपये के हिस्सों में बँटा हुआ है। इसका मूलधन सरकार ने नहीं दिया है। यह एक शेयरहोल्डरों का बैंक है। रिज़र्व बैंक का मूलधन सरकार दे या आम जनता—इस प्रश्न पर काफ़ी बहस हुई। अंत में पिछला प्रस्ताव ही पास रहा। संसार के जिन देशों में केंद्रीय बैंक हैं उनमें से अधिकतर बैंक शेयरहोल्डरों के ही हैं, सरकार के नहीं। बैंक को राजनैतिक प्रभाव से बचाने के लिए ऐसा होना आवश्यक है।

रिज़र्व बैंक को नोट चलाने का पूरा अधिकार दे दिया गया है। गवर्नर-जनरल ने अब नोट निकालना बंद कर दिया है और भारतवर्ष में प्रथम बार एक बैंक को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि वह चलन पर और उसके द्वारा सूद पर, क़ाबू रख सके। अब यह उम्मीद की जाती है कि बीज बोने के समय और पैदावार काटने के समय रुपये की कमी नहीं हुआ करेगी, अब तक इन समयों में इम्पीरियल बैंक केवल १२ करोड़ का चलन बढ़ा सकता था, जिससे माँग पूरी नहीं पड़ती थी। रिज़र्व बैंक को देश के अन्य बैंकों पर कुछ अधिकार देने के लिए यह नियम बना दिया गया है कि जो रुपया उन्हें माँगने पर ही देना पड़ेगा उसका ५ फ़ी सदी और जो कुछ समय के बाद देना पड़ेगा उसका २ फ़ी सदी रुपया वे रिज़र्व बैंक में जमा करें। क़ानून के द्वारा इस प्रकार एक ख़ास प्रतिशत क़ायम कर देना लाभदायक भी है और हानिकारक भी। लाभ तो यह है कि अगर यह क़ानून होगा तो सब बैंक अपनी आर्थिक ज़िम्मेदारियों के पीछे कुछ स्थायी कोष अवश्य रक्खेंगे और रिज़र्व बैंक भी, सच्चे रूप से, बैंकों का 'बैंक' हो सकेगा। नुक़सान यह है कि इससे बैंकों को एक झूठा विश्वास हो जाता है कि ५ फ़ी सदी और २ फ़ी सदी रिज़र्व से अधिक रिज़र्व रखने की आवश्यकता ही नहीं। रिज़र्व बैंक को फ़ायदे के लोभ से अलग रखने के लिए यह क़ानून बना दिया गया है कि शेयरहोल्डरों को मूलधन पर अधिक से अधिक ५ फ़ी सदी फ़ायदा दिया जायगा और अगर किसी साल यह नहीं दिया जा सकता तो दूसरे साल दिया जायगा। शेड्यूल ४ के अनुसार ५ फ़ी सदी के ऊपर किन्हीं दिशाओं में १ फ़ी सदी लाभ और मिल सकता है। यह नियम भी प्रशंसनीय है। यदि फ़ायदा ५ या ६ फ़ी सदी से अधिक हुआ तो वह सब सरकार को दे दिया जायगा बशर्ते कि बैंक का स्थायी कोष मूलधन के बराबर हो गया हो। यदि ऐसा न हुआ तो ५०,००,०००) स्थायी कोष को दे दिया जायगा और यदि कुछ बचा तो सरकार को। जो रुपया सरकार को दिया जायगा उससे सरकार देश की उन्नति के काम और कर का बोझ हलका करेगी।

रिज़र्व बैंक का प्रबन्ध एक बोर्ड के द्वारा होगा। इस बोर्ड में १६ मेम्बर होंगे। उनमें एक गवर्नर और एक सहायक गवर्नर को गवर्नर-जनरल चुनेंगे। इनके सिवा और ४ मेम्बरों को भी गवर्नर-जनरल ही नियुक्त करेंगे और १ सरकारी अफ़सर भी बोर्ड का मेम्बर हुआ करेगा। शेष ८ मेम्बरों को शेयरहोल्डर चुनेंगे। इस तरह बोर्ड में ८ सरकारी मेम्बर और ८ ग़ैर-सरकारी मेम्बर रहेंगे। इतने अधिक सरकारी मेम्बरों का होना किसी दशा में भी उपयुक्त नहीं है और ऐसी हालत में बैंक का राजनैतिक प्रभाव से मुक्त रहना सम्भव नहीं मालूम पड़ता। संसार के अन्य देशों के ऐसे बैंकों के बोर्डों में २ या ३ सरकारी मेम्बरों से अधिक नहीं होते हैं।

काग़ज़ी मुद्रा अर्थात् नोट के पीछे जो स्थायी कोष रक्खा जायगा उसमें ४ फ़ी सदी सोने के सिक्के, सोना और स्टर्लिंग सिक्योरिटियाँ होंगी, बाक़ी ६ फ़ी सदी में रुपये के सिक्के, भारत-सरकार की रुपयेवाली सिक्योरिटियाँ और कुछ ख़ास व्यवस्थित हुंडिया होंगी। अमरीका के संयुक्त-राज्य में भी ४ फ़ी सदी सोना काग़ज़ी मुद्रा के पीछे रक्खा जाता है। जर्मनी में भी ४ प्रतिशत का ही नियम है। इस तरह हम देखते हैं कि हमारे देश का यह नियम संतोषजनक है। बड़ी अच्छी बात तो यह है कि इस विषय में 'रिज़र्व बैंक ऐक्ट' में इँग्लेंड की नक़ल नहीं की गई है, इँग्लेंड में स्थिर स्थायी कोष की प्रणाली है। यह प्रणाली केवल उसी देश के लिए उपयुक्त है, जहाँ रुपये की माँग में अधिक लोच नहीं होता, जिससे रुपया बढ़ाने की साधारणतया ज़रूरत नहीं होती। पर भारतवर्ष ऐसे खेतिहर देश में रुपये की माँग बहुत घटती-बढ़ती रहती है। खेती के समय व उपज कटने और बिकने के समय रुपये की माँग बढ़ जाती है और बाद को घट जाती है। इसलिए यहाँ यह आवश्यक है कि पहली दशा में काग़ज़ी मुद्रा बढ़ा दी जाय और बाद को घटा दी जाय। यदि यहाँ स्थिर-स्थायी-कोष-प्रणाली क़ायम की जाती तो बहुत सम्भव था कि आवश्यकता के अनुसार रुपया न बढ़ाया जा सकता, क्योंकि रिज़र्व बैंक को यदि १०० फ़ी सदी स्वर्ण रखना पड़ता तो उसे मुद्रा बढ़ाने में कोई उत्साह ही न होता। खेतिहर देशों के लिए तो अमरीकावाली प्रतिशत-स्थायी-कोष प्रणाली ही अधिक लाभदायक है।

फिर, यदि ज़रूरत पड़े तो ४ फ़ी सदी सोने का बंधन ढीला भी किया जा सकता है। यदि स्थायी कोष में सोना

४ फ़ी सदी से कम पर ३½ फ़ी सदी से अधिक हो तो बैंक को एक टैक्स देने पर कम कोष रखने की आज्ञा दी जा सकती है। यह टैक्स बैंक-रेट से १ फ़ी सदी अधिक होगा, इसके बाद स्थायी कोष में प्रत्येक २½ फ़ी सदी की कमी के लिए १½ फ़ी सदी कर अधिक देना होगा, इस प्रकार यदि आवश्यकता हो तो बैंक बिना १ रत्ती सोना रक्खे हुए भी काग़ज़ी मुद्रा चला सकता है बशर्ते कि वह क़ानूनी कर देता जाय। इस नियम में अमरीका के संयुक्त-राज्य की पूरी नक़ल की गई है और इसके लिए सरकार बधाई का पात्र है।

वस्तुतः भारत के रिज़र्व बैंक के नियम बहुत अच्छे और उपयुक्त हैं और उनके बनाने में संसार के आर्थिक अनुभवों का पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है। सिर्फ़ एक यही भूल हुई है कि बैंक पर सरकार ने अपना अधिक प्रभाव रक्खा है। इसी लिए डर यह है कि सिर्फ़ इसी नियम की वजह से कहीं रिज़र्व बैंक भी इम्पीरियल बैंक की कहानी को न दुहरावे।

उत्तर

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्म्मा, "चातक", कविरत्न

इन फूलों से उन फूलों पर,
उड़ते फिरते मधु लुब्ध भ्रमर!
मैंने हँस करके कहा "अरे!
क्या यही प्रेम का तत्त्व हरे!"
भनभन कर कहने लगे भ्रमर,
कुछ हुआ क्रुद्ध-सा उनका स्वर।
"मानव! पहले तुम निज चरित्र—
देखो! तब हम पर हँसो मित्र!"
ऐसे दुख की क्या बात दीप!
जलते जो सारी रात दीप!
सिर हिला दीप ने यही कहा—
"मेरा प्रकाश सब व्यर्थ रहा!
मानव! तव मन का अन्धकार—
कब क्षण भर भी मैं सका टार
बस इस चिन्ता ही से अधीर—
युग युग से मैं जल रहा वीर!"
लो! अभी सुनाई पड़ी यहाँ
प्रतिध्वनि विलुप्त हो गई कहाँ?
उड़ गई दूर क्या क्षितिज-पार
निज प्रियतम को करने दुलार?
मेरे मन की हलचल अपार—
क्या समझ गई प्रतिध्वनि उदार?
जो वह मेरे ही संग संग—
बोली करके निज मौन भंग।
"जो कुछ तुम कहते वही कहूँ,
अपनी मैं कुछ भी नहीं कहूँ.
हाँ में हाँ करती रहूँ सदा—
क्या यही भाग्य में हाय! बदा।
मानव! तेरा यह अनाचार—
मुझको असह्य है बार बार।
इससे मैं अबला अवश हाय!
लुक-छिप दिन काटूँ क्या उपाय?"
तट से टकराकर लोल लहर।
जब फोड़ रही थी अपना सर।
मैंने पूछा "यह सर्वनाश—
किससे करती होकर हताश"!
कलकल करके वह बोल उठी
हृद्गत भावों को खोल उठी।
"मानव! तेरा सुन सुयश-गान—
आई थी ले आशा महान।
पर देख तुम्हें यों विकृत, भ्रान्त—
मैं हूँ निराश मरती अशान्त।
जगदीश तुम्हारा करे क्षेम
उपजे तुममें बंधुत्व-प्रेम!"

प्रेम की कहानी

बीच भँवर में

लेखिका, श्रीमती उषादेवी मित्रा

(१)

तेवर नदी के उस पार एक छोटी पहाड़ी थी। ठीक पहाड़ी के बीच में ऊँचे वृक्षों से घिरा एक छोटा-सा सफ़ेद मकान था। उसी मकान की दालान में मुरीला बैठी नदी को एकटक निहार रही थी। ठंडी हवा से हाथ-पैर बर्फ़ जैसे जम रहे थे। किन्तु उसका शरीर जमी हुई बर्फ़-सा स्पन्दनहीन-सा था; उसकी घनी पलकों से घिरी हुई आँखों में एक आग्रह था।

वर्षा की बूँदें झर-झर झर रहीं थीं। नदी का जल कल-कल, छल-छल बह रहा था और दाँड़ पर बैठी मैना गा रही थी—"जल-थल-नभ में एक सपन है"।

मुरीला के आगे-पीछे, आस-पास एक सूनापन था—एकदम सूना और उसी सूनेपन में कभी जुगनू के दिये-सी एक क्षीण आशा जल-सी उठती। बस वही था उसके जीवन का सहारा।

पास ही घनी झाड़ी में दबका हुआ कोई पक्षी चिल्ला उठा—"भूत! भूत! भूत! भूत!" उस पुकार को सुनकर मुरीला रोमाञ्चित होने लगी। वह पुकार केवल पहाड़ी में ही नहीं हुई थी, उसके शरीर के रन्ध्रों में भी सदा होती रहती थी। फिर वह डरती किससे? वह तो स्वयं ही एक भूत थी। और तभी तो इस एकान्त में रह भी सकी थी। भूत?—हाँ, भूत ही तो वह थी। एक अँधेरी रात में नदी से जल लेकर लौटते समय साँप ने उसे डस लिया था और मृतक-लोक से लौटकर उसने भूतयोनि पाई थी। बुड्ढों ने बार बार उसे सतर्क कर दिया था कि मृतक-लोक से लौटा हुआ प्राणी जीवित-लोक में स्थान नहीं पा सकता। तब से वह वन के भीतर पशुओं के साथ उन्हीं का एक व्यक्ति होकर रहने लग गई थी। पशु-पक्षियों ने उसे अपना लिया था।

मृतक-लोक? किन्तु मृतक-लोक की बातें तो उसे कुछ भी स्मरण नहीं थीं। सर्प ने डस लिया था। उसके बाद एक नशे ने उसे आच्छन्न-सा कर लिया था। हाँ, वह सास, श्वसुर, ननद, देवर आदि का रोना सुन रही थी। डाक्टर, वैद्य, झाड़-फूँक—सब चल रहा था। केवल अपने पति हिमांशु को देखने की इच्छा थी। वह रंगून चला गया था। फिर भी मुरीला ने जीना चाहा, अपनी पूरी शक्ति लगाकर जीना चाहा। वह केवल एक बार उन्हें देखना चाहती थी। वह पुकारना चाहती थी कि वह सब तुम्हारी भूल थी, तुम्हारे ही प्रेम में यह छोटा-सा हृदय मग्न रहता है, केवल लज्जावश उसे प्रकाश नहीं कर सकती। किन्तु यह सब न हो पाया। उसकी आँखों के सामने एक अँधेरा छा गया, यहाँ तक कि वह अँधेरा गाढ़ ही होता गया। अन्त में उसी अन्धकार में वह डूब-सी गई। चेतना लौटी तब अपने को नदी के किनारे पाया। सब वस्त्र भीगे हुए थे। हाथों-पैरों में एक भी गहना नहीं था। विस्मय-विमूढ़ होकर वह उठकर बैठ गई। कुछ समझ में नहीं आया—वह नहीं जानती थी कि किसने कौन से अपराध के लिए उसे नदी में बहा दिया।

मुश्किल से वह चली। न जाने कितने ही दिनों वह भूखी-प्यासी चलती चली गई।

मुरीला बैठी सोच रही थी। "भूत! भूत! भूत!" पर्वत पर पक्षी पुकार रहा था। नदी अपनी धुन में मस्त थी। और दाँड़ पर मैना गा रही थी—

"जीवन सपना—
सपने का है जाल।"

(२)

मुरीला सोच रही थी। उसके बाद? हाँ, वह घर लौट जाना चाहती थी। भीख माँगती, रोती, बिलखती लोकालय में पहुँच गई। उसकी ससुराल उस ग्राम के बाद के गाँव में थी। पथ में एक परिचिता स्त्री मिल गई। एक ने दूसरी की ओर देखा। फिर स्त्री चिल्लाकर भागी। विस्मित मुरीला खड़ी रह गई। कुछ समझ ही न सकी। वह देर तक विचारती रह गई।

घर के चरवाहे का लड़का अपनी ससुराल से लौट

रहा था, कजली गाता खुशी में मस्त चला जा रहा था। सुरीला ने उसे देख लिया, उसने आह्लाद से उसे ज़ोर-ज़ोर से पुकारा। वह लौटा, निकट आया, पर दूसरे ही क्षण वह भाग निकला। किन्तु सुरीला उसका साथ नहीं छोड़ना चाहती थी। उसने उसका पीछा किया। वह चिल्लाता जा रहा था—"भूत" ! "भूत" ! लोग 'कहाँ'-'कहाँ' कहते दौड़ पड़े। "पीछे चुड़ैल आ रही है"—वह चिल्ला चिल्ला कर कह रहा था। और तब मन्त्र, फूँक फाँक की धूम मच गई।

अन्त में सब कुछ समझ सकने के बाद सुरीला को जंगल में अपना आश्रय ढूँढ़ना पड़ा। वह जान गई कि वह जीवित नहीं, मृतक है।

सुरीला अपनी चिन्ता में मग्न थी। वर्षा की बूँदें घनी थीं। "भूत ! भूत ! भूत !" पक्षी पुकार उठा। और मैना झूम झूम कर गा रही थी—

"जीना—सपना—मरना—सपना"

हाँ, तो सुरीला ने उस दिन अपने को जाना और साथीस्वरूप जंगली पशु-पक्षियों को अपने संगी-साथी पाया। आहार के लिए जंगली फल थे।

इस उजड़े मकान में उसने डेरा डाल दिया था। कभी जंगल से तोते-मैने पकड़ कर अपने पास रखती थी, और जब अन्न-वस्त्र की ज़रूरत पड़ती थी तब सन्ध्या के अन्धकार में नदी तैर कर उस पार चली जाती और कम दाम में उन्हें बेचकर, अपनी आवश्यकता की पूर्ति करती थी। दिन के प्रकाश से वह डरने लग गई थी। दिन का प्रकाश उसे निगलने-सा लगता था, अपनी छाया उसे निगलने दौड़ती थी। अपनी ही छाया से वह डर जाती थी।

रात का अन्धकार जब मकान में फैल जाता तब सुरीला चुपके से उठती और लेट रहती। आँखें इस तरह दबाती कि दर्द होने लगता। फिर भी उन बन्द आँखों के भीतर अन्धकार पुञ्जीभूत होता रहता और उसी अन्धकार में न जाने कितने भूत-प्रेत चलने-फिरने लग जाते।

रात्रि के समय वह अपने-आप से डरती थी। उसे लगता, उसके हाथ-पैर लम्बे-लम्बे हो गये हैं—हाथ ऐसे लम्बे कि अभी-अभी वे आकाश तक को छू लेंगे और पैर ऐसे कि सामने के वट के शिखर पर एक पैर चला जायगा और दूसरा पहुँचेगा नदी के उस पार—बस, वहीं खड़ी वह झूमती रहेगी और न जाने कितनी नावों को डुबा देगी और यात्रियों का रक्त चूस लेगी।

नानी-आजी तो भूतों की ऐसी ही कथा सुनाया करती थीं। और आज वह सुनी कहानी उसके जीवन में सच्ची हो रही है। वह स्वयं एक प्रेतिनी है।

सुरीला रात्रि में भय से एक-दम काठ-सी हो जाती थी। उसके रोम रोम खड़े हो जाते थे। साँस भारी हो जाती थी। वह शंकित रहती थी कि न जाने कौन से वक्त प्रेतिनी अपने असली रूप में उसके भीतर से निकल आवेगी और तब यह छद्म आवरण मिट्टी पर पड़ा लोटता रहेगा। उस ओर देखकर वह ज़ोर ज़ोर से हँसेगी—शायद तालियाँ भी बजावेगी।

नदी का जल फूल-सा रहा था। मेघ पानी देने में लगे हुए थे। "भूत ! भूत ! भूत" ! का दर्द-भरा स्वर जल-स्थल में व्याप-सा रहा था। सुरीला की चिन्ता अतीत में मस्त थी। और मैना अपने गान में तन्मय थी—"निविड़ सपन का जाल !"

(३)

अतीत का मायामय चित्रपट सुरीला की आँखों के सामने खुला हुआ था। जहाँ सुन्दरी वधू लज्जा से सिमटी पलंग के कोने में अपने अस्तित्व को छिपाना चाह रही थी और उसका पति—एक श्रीमान् युवक पत्नी से एक छोटा शब्द सुनने के लिए व्याकुल हो रहा था।

न जाने कितनी ऐसी रातें आईं और निकल गईं। किन्तु नवोढ़ा की लज्जा लिये वधू नवोढ़ा-सी ही रह गई। वह उस छोटे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी और न पति के निकट असंकोच भाव से ही जा सकी।

पति पत्नी का मुँह देखने के लिए लालायित ही रह गया। किन्तु अवगुंठन की दीर्घता पल भर के लिए भी न घटने पाई।

कभी काम-काज के अवसर पर वधू दबे पैर कमरे में गई तो घड़ी ने रात्रि का एक बजा दिया। वधू ने शंकित किन्तु प्रेम-आग्रह-पूर्ण नेत्रों से चकित दृष्टि से उस सुप्त युवक को एक बार देखा और फिर पलंग के एक ओर एक भीरु बालिका-सी सिमट कर सो रही। उस सुन्दर आकृति को देखने को उसका जी चाहने लगा। किन्तु वह देख न सकी।

निविड़ वर्षा हो रही थी। रात की नारी धरती पर उतर रही थी। "भूत ! भूत ! भूत !" पक्षी पुकार उठा। और मैना के गान को विराम ही न था—

"रोना सपना हँसना सपना—"

अतीत का एक भीषण चित्र सुरीला के सामने था। उस दिन ग्रीष्म-ऋतु की विदा-वेला में बेला फूल पड़ा था। मीठी गन्ध से कमरा भरा हुआ था। चारों ओर विदा की रागिनी बज रही थी। और उस विदा की वेला में भी सुरीला मूक-बधिर-सी रह गई थी। पति सामने खड़ा अन्तिम विदा माँग रहा था। कह रहा था—"मैं जा रहा हूँ और जन्म भर के लिए चला जा रहा हूँ। तुम पूछ सकती हो कि क्यों? और नहीं भी पूछ सकती हो, क्योंकि तुम जानती हो कि इस गूँगी-बहरी पत्थर की मूर्ति को लेकर मेरे दिन नहीं कट सकते। मैंने यह बात क्या तुम्हें नहीं जताई थी? सिर भी न हिलाओगी? अच्छा जाने दो। हाँ, मैं जानता हूँ, मैंने तुम्हें जताया था और कई बार जताया था। नहीं अनुरोध किया था, विनय की थी। मैंने रंगून में नौकरी कर ली है। वहीं रहूँगा। यदि किसी दिन मेरी ज़रूरत तुम्हें पड़ जाय, यदि तुम कभी मन से मुझे पुकारोगी, तो शायद उस दिन चला भी आऊँ—कह नहीं सकता।"

इतना कहने के बाद वह चुप हो गया था। किन्तु सुरीला फिर भी घूँघट हटा न सकी थी, यद्यपि बहुत कुछ कहने के लिए उसका मन मचल रहा था, रोम-रोम में कहने की कथा भरी हुई थी। किन्तु वह मौन ही रह गई थी। और जब कहने के लिए तैयार हुई थी तब आँसुओं ने उसका स्वर रोक लिया था, तब उसे उन आँसुओं को छिपाने की व्यस्तता थी।

अन्त में वह अटारी पर चढ़ गई थी। वहाँ से वह विकराल नदी दीखती थी। काँपते हुए शरीर को दीवार से टिकाकर वह देखती रह गई थी। जहाज़ नदी-तट पर लगा हुआ था। यात्री साफ़ नहीं दिख रहे थे। फिर भी वह दूर से उन्हें पहचान गई थी। देखते ही देखते जहाज़ आँखों के बाहर हो गया था।

उसके बाद कई वर्ष कट गये। फिर तो साँप ने ही डसकर उसके सब कुछ का निपटारा कर दिया। निपटारा? चाहे निपटारा ही रहा हो, किन्तु मन ने तो निपटारा नहीं किया न? इस भूतयोनि में भी उसी आशा के बल पर वह टिकी हुई है। एक दिन वे आवेंगे और जहाज़ इसी नदी पर लगेगा ही। उसी एक दिन की प्रतीक्षा में वह बैठी हुई है। वह उनसे बोलेगी, उनके उस छोटे प्रश्न का उत्तर देगी और फिर प्रेत-शरीर को लेकर प्रेतों के साथ चली जाय। बस।

सुरीला अपने विचार में मग्न थी।

"भूत ! भूत ! भूत ! भूत !" पक्षी एक-सा चिल्ला रहा था। नदी में बाढ़ आ गई। और मैना गा रही थी—

"सपने में है रमा संसार"

(४)

नदी फूली हुई थी और उसके जल में एक नौका उतरा रही थी। और सुरीला के नेत्र उसी नौका में आबद्ध हो रहे थे।

अन्त में? अन्त में नौका किनारे लगी।

सुरीला के द्वार पर अतिथि आकर खड़ा हो गया। उषा के प्रथम प्रकाश में पृथ्वी नवोढ़ा-सी खड़ी थी।

"भूत ! भूत ! भूत ! भूत !" चीत्कार एक-सा था।

सुरीला अपने अतिथि को एकाग्र दृष्टि से देख रही थी। और मैना हँस रही थी—"पाना सपना खोना सपना लुट जाना है सपना"।

"भद्रे, एक अतिथि का स्थान यहाँ हो सकेगा?" आगन्तुक पूछ रहा था।

और सुरीला उसका मुँह निहार रही थी।

"इस भूतवासा में तुम भूतों के साथ रह सकोगे?" सुरीला ने कुछ देर के बाद पूछा।

"भूतवासा को मैं बचपन से जानता हूँ। भूतों के उपद्रव से यहाँ कोई नहीं रह सकता। किन्तु तुम तो मानवी हो।"

"तुम मुझे पहचानते हो?"

"नहीं।"

"बिलकुल नहीं?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

नहीं—उत्तर सुनकर सुरीला का मुँह वेदना से पीला पड़ गया। इसी पति की प्रतीक्षा में वह इस भूत का बोझ वहन कर रही थी। उसने फिर सुना—

"यद्यपि उसका मुँह मैंने अच्छी तरह से नहीं देखा,

फिर भी उसका कुछ सादृश्य तुममें है। किन्तु तुम्हें मैं नहीं पहचानता।"

"मुझे तुम नहीं पहचानते?"—घुमा फिराकर वह पूछने लगी—"बिलकुल नहीं पहचानते?"

"नहीं।"

"मैं जीवित नहीं हूँ।"

यह सुनकर वह व्यक्ति ऐसा काँपा कि वहीं बैठ गया।

"मैं सुरीला की प्रेतिनी हूँ"।

"तुम प्रेतिनी हो?"

"हाँ, प्रेतिनी हूँ। एक दिन तुम्हारा समय आया था। उस दिन तुम्हारे मन का प्रेमी पुरुष प्रेम के लिए उन्मत्त हो गया था और अधीर होकर अपनी बाँह बढ़ा दी थी। याद है न?"

मन्त्रमुग्ध की भाँति उस व्यक्ति ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया।

सुरीला कहने लगी—"किन्तु उस दिन मेरे मन की नारी प्रेम-पिपासा से नहीं जागी थी। उस दिन उसे समय न था। किन्तु आज वह व्याकुल है और बाँह बढ़ाये खड़ी है। उसके मिलन की वेला निकली जा रही है। उसका समय उपस्थित है। इस भूत-लोक में वह केवल तुम्हारी होकर रहना चाहती है।"

और सुधांशु? वह उस प्रेतिनी की ओर देख भी न सका। अपने भय-विवर्ण मुख को दोनों हाथों से छिपाकर बैठ रहा।

सुरीला ने एक, दो, तीन बार उसे देखा और पूर्ण दृष्टि से उसे देखा। उत्तर की प्रतीक्षा की। फिर बोली—"तो आज तुम्हें समय नहीं है? अच्छा तो मृतक-लोक में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। यदि कभी समय हो तो आ जाना। किन्तु यदि उस दिन समय मेरा निकल जाय तो मुझे दोष न देना। अच्छा विदा"।

झर झर झर वर्षा झर पड़ी। भर भर भर नदी बहने लगी। "भूत! भूत! भूत! भूत!" पक्षी चिल्ला उठा। वन के गहन में सुरीला झपटी चली जा रही थी और मैन खुशी में मस्तानी-सी गा रही थी—

'जीवन सपना—
सपने का है यह संसार।'

——

छिपे हुए देवता के प्रति

लेखक, श्रीयुत गिरीशचन्द्र पन्त

नयनों में जाग्रत व्यग्र खोज,
वाणी में अविरल तरुण टेर,
श्वासों में चिन्ता, आतुरता,
प्राणों में करुणा भरी हेर!

मृदु कलियों में सङ्केत बाल,
औ' अलियों में करुणा-गुहार;—
उन जड़ पर्वत का तप गँभीर;—
मानव की निशि-दिन की पुकार!!

× × × × × ×

युग-युग द्रुततर हैं बीत रहे;—
चेतना बनी अर्पित पतङ्ग!
जलकर तुमसें हो भस्म, मौत,
खेलने, कभी से, रास-रङ्ग!!

——

स्वामी दयानन्द और उर्दू

लेखक, श्रीयुत चन्द्रबली पाँड़े

इस लेख के लेखक श्रीयुत पाँड़ेजी हिन्दी-साहित्य के नामी समीक्षक हैं। अपने इस लेख-द्वारा उन्होंने इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत के पंडित और वैदिक धर्म के आचार्य थे। संस्कृत उनकी मातृभाषा[1] थी। पहले संस्कृत में ही व्याख्यान किया करते थे। उनके एक व्याख्यान का अनुवाद पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने अशुद्ध किया। उस[2] दिन से उन्होंने निश्चय कर लिया कि हिन्दी-भाषा-द्वारा ही उपदेश दिया करेंगे।' स्वामी जी ने संस्कृत को छोड़ हिन्दी-भाषा को अपने विचारों का माध्यम केवल इसी लिए बनाया कि वह वस्तुतः आर्य या आर्यावर्त की भाषा थी। स्वामी जी उसी को राष्ट्रभाषा समझते थे। विचार करने की बात है कि श्री लल्लू जी लाल, महात्मा गांधी और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिनकी जन्म-भाषा गुजराती थी, गुजराती का पक्ष न ले हिन्दी-भाषा का पक्ष क्यों ग्रहण किया; और क्यों स्वामी जी ने तथा महात्मा गान्धी ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में काम करना शुरू कर दिया। बात यह है कि सचमुच हिन्दी ही हिन्द की राष्ट्रभाषा थी और उसी के द्वारा जनता तक अपने विचार व्यक्त किये जा सकते थे। पढ़े-लिखे पंडितों का माध्यम संस्कृत-भाषा थी और जनता की लोक-भाषा हिन्दी थी। यदि इसे और स्पष्ट करना चाहें तो आसानी से कह सकते हैं कि संस्कृत हिन्दियों की 'फ़ारसी' और हिन्दी हिन्दियों की 'उर्दू' थी यानी जिस तरह दरबारी या सरकारी लोगों में फ़ारसी और उर्दू का प्रचलन था, उसी तरह जनता या लोक में संस्कृत और हिन्दी का बोलबाला था। स्वामी दयानन्द ने अच्छी तरह देख लिया कि जिन लोगों से उन्हें काम लेना है और जो सचमुच अन्धकार में पड़े हुए हैं उनके उद्धार के लिए उन्हीं की व्यवहार की भाषा से काम लेना उचित है। इतना विचार उठना था कि उन्होंने संकल्प कर लिया कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का अभ्यास करो और उसी को अपने व्याख्यानों तथा विचारों को माध्यम बनाओ। स्वामी जी का हिन्दी के मैदान में आना था कि हिन्दी-भाषा में नवीन जीवन आ गया। वह पनप उठी। यारों ने देखा कि स्वामी जी संस्कृत के पंडित हैं, वैदिक धर्म के प्रचारक हैं, भारत के प्राचीन गौरव का गान करते हैं—संक्षेप में हिन्दी के उपासक और आर्यभाषा के स्तम्भ हैं, इसलिए यह हल्ला करना आवश्यक है कि उन्होंने अरबी-फ़ारसी शब्दों का बहिष्कार किया। उनका अनुमान ठीक निकला। बहुत-से विज्ञ भी उनके चकमे में आ गये और यह निश्चित कर लिया कि सचमुच स्वामी जी ने फ़ारसी-अरबी शब्दों को निकाल फेंका है। इतना भी नहीं सोचा कि जो निकाले और फेंके हुए लोगों को भी अपने समाज में शुद्ध करके दाख़िल कर लेता है वह अपने यहाँ आये हुए शब्दों को क्यों निकाल फेंकेगा। सारांश यह कि श्री लल्लू जी लाल की तरह स्वामी दयानन्द सरस्वती पर भी व्यर्थ ही यह लाञ्छन लगाया गया कि उन्होंने फ़ारसी-अरबी शब्दों का बहिष्कार किया। इस लाञ्छन अथवा अभियोग से यारों का जो हित हुआ उसके निदर्शन की ज़रूरत नहीं। यहाँ तो इतना दिखा देना काफ़ी है कि स्वामी जी ने फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग उचित मात्रा और उचित रूप में बिना किसी संकोच के स्वभावतः किया है। इतना ही नहीं, फ़ारसी और उर्दू के पठन-पाठन का भी विधान किया है। उन्हें देशनिकाला नहीं किया। परन्तु जो लोग नासिख़ (मृ० सं० १८९५ वि) के क़लाम राष्ट्रभाषा की कसौटी ठहराते और आँख-कान तक को मतरूक या सलीस उर्दू के बाहर की गँवारी चीज़ समझते हैं उनके लिए तो स्वामी दयानन्द सचमुच कृतान्त हैं। उनकी ज़बान को ज़रूर देशनिकाला कर दिया, लाख करें, अब वह ज़बान हमारी ज़बान नहीं पकड़ सकती। स्वयं

(१) स्वामी जी संस्कृत को मातृभाषा क्यों कहते थे, इस पर विचार होना चाहिए।

(२) खेद है कि इस तिथि का निश्चित पता न लगा। अनुमान है कि संवत् १९३१ या उससे कुछ पहले यह घटना घटी होगी। (देखिए महर्षि का सक्षिप्त जीवन वृत्तान्त, शताब्दी संस्करणम्, पृ० ३४)

उर्दूवालों ने उनकी ज़बान पर लगाम लगा दी है और उनकी ग़लतियों पर पछता रहे हैं।

हाँ, तो स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्म-भाषा हिन्दी न थी। हिन्दी का उन्होंने अध्ययन भी नहीं किया था। जन्म-भाषा के साथ ही साथ जो राष्ट्रभाषा का परिचय हो गया था उसी के आधार पर स्वामी जी ने हिन्दी-भाषा में लिखना आरम्भ कर दिया। किसी सनदी ज़बान की ज़रूरत उन्हें न पड़ी। उन्होंने स्वयं[1] लिखा है—

"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है इसलिए इस ग्रन्थ को भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया।"

स्वामी जी के ग्रन्थों में कुछ ऐसे भी हैं जिनकी भाषा पंडितों ने बनाई है। श्री हरविलास सारडा[2] ने ठीक ही कहा कि—

"वेदभाष्यों की संस्कृत तो स्वामी जी महाराज की है, परन्तु हिन्दी समग्र स्वामी जी के पास काम करनेवाले पंडितों की बनाई हुई है।"

स्वामी जी के पत्रों से पता चलता है कि स्वामी जी को पंडितों की भाषा पसन्द न आती थी। किसी के लिए लिखते हैं—

"यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता किन्तु घास ही काटता है।"

तो किसी में दोष निकालते हैं—

"अपनी ग्रामीण भाषा लिख देता है।"

साथ ही उन मुंशियों को भी आगाह कर देते हैं जो हिन्दी को फ़ारसी बनाकर उसे बिलकुल किताबी चीज़ बना देते हैं। तभी तो श्री ज्वालादत्त[4] लिखते हैं— "भाषा बनाने के लिए जो गोदगाद शिवदयालु मुंशी से करा रहे हैं वह तनिक सोचविचार के होना चाहिए। इस भाषा बनाने में बहुत जगह कठिन पड़ती और आगे पीछे बहुत ख़याल रखने पड़ता। इस काम में जो आपके पास दो बरस न रहा हो और जिसने आपका ठीक सिद्धान्त न जाना हो उससे इस भाषा का बनवाना इस काम का ढंग बिगड़वाना है।... फ़ारसी शब्दों के बचाने के लिए गमारू[1] शब्द भी मिल जाय तो गमारू शब्द धर देता हूँ। जहाँ तक बच सकते वहाँ तक बचा भी देता हूँ।"

उक्त अवतरणों के आधार पर आसानी से कहा जा सकता है कि भाषा के सम्बन्ध में स्वामी जी का निजी सिद्धान्त था फ़ारसी और 'गमारू' से बचकर प्रचलित राष्ट्र-भाषा में भाष्य करना।

स्वामी जी के उक्त सिद्धान्त को सामने रखकर उनकी भाषा पर विचार कीजिए। आपको स्पष्ट अवगत होगा कि स्वामी जी ने फ़ारसी के किताबी शब्दों और फ़ारसियत को अपनाने की चिन्ता नहीं की है, बल्कि मुंशियों को उनसे सावधान भी कर दिया है। साथ ही फ़ारसी के उन शब्दों को हाथ से जाने भी नहीं दिया है जो जनता या लोकभाषा के शब्द हो गये हैं। उचित होगा, यदि हम यहाँ यह दिखलाने की चेष्टा करें कि स्वामी जी ने निजी, अपने हाथ के पत्रों में कहाँ तक फ़ारसी के शब्दों को जगह दी है और इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं किया है कि वे मुसलमानी या आर्यों की ग़ुलामी के वक़्त के लफ़्ज़ हैं। स्वामी जी ने 'हिन्दू'[2] शब्द को त्याग दिया। इसलिए नहीं कि वह फ़ारसी या इस्लामी शब्द था, बल्कि इसलिए कि उसमें घृणा और अपमान या द्वेष का विधान था और 'आर्य' को इसीलिए अपनाया या चालू किया कि वह वस्तुतः आर्यत्व का द्योतक और मंगल का विधायक

(१) सत्यार्थप्रकाश 'द्वितीय संस्करण' की भूमिका का आरम्भ।

(२) शताब्दी संस्करण, प्रथम भाग, भूमिका पृ० १६।

(३) " " " पृ० १८।

(४) ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार प्रथम भाग, गुरुकुल काँगड़ी पृ० ४१९।

(१) इसी 'गमारू शब्द' को लक्ष्य करके स्वामी जी ने लिखा था, "अपनी ग्रामीण भाषा लिख देता है।" स्वामी जी 'फ़सीह ज़बान' या 'ग्रामीण भाषा' के क़ायल न थे बल्कि प्रचलित भाषा के भक्त थे।

(२) हिन्दू शब्द के 'सांकेतिकार्थ हैं काला, लुटेरा और ग़ुलाम।' देखिए ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन दू० भा० पृ० ७१।

था। स्वामी जी से जब आर्यभाषा के प्रचार के लिए अनुरोध किया गया तब उन्होंने आर्यसमाजों को[1] लिखा—

"यह बात बहुत उत्तम है क्योंकि अभी कलकत्ते में इस विषय की (स्कूलों में कौन-सी भाषा पढ़ाई जाय) सभा हो रही है। इसलिए जहाँ तक बने वहाँ शीघ्र संस्कृत और मध्यदेश की भाषा के प्रचार के वास्ते, बहुत प्रधान पुरुषों की सही कराके कलकत्ते की सभा में भेज दीजिए और भिजवा दीजिए।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि स्वामी जी के सामने कभी फ़ारसी-अरबी शब्दों के बहिष्कार का प्रश्न होता तो इस समय अवश्य ही 'वास्ते' और 'सही' को जगह नहीं देते और अनायास ही 'हेतु' और 'हस्ताक्षर' लिख जाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कारण प्रत्यक्ष है। उन्हें मुसलिम शब्दों से चिढ़ न थी। उन्हें भी प्यार की निगाह से देखते और आर्यभाषा का अंग समझते थे। आर्यभाषा के भीतर आ जाने से उन्हें भी आर्य ही समझते थे। स्वामी जी की दृष्टि में 'वास्ते प्रचार' अनार्य और 'प्रचार के वास्ते' आर्य था। किन्तु पत्र-व्यवहार में इस प्रकार की भाषा को अनुचित नहीं समझते थे। क्योंकि कागजात[2] का जो अर्थ निकलता है वह काग़ज़ों या कागदों में नहीं है। इसी लिए[3] लिखते हैं—

"यहाँ हमारे पास सिवाय एक रजष्टर के दूसरा काग़ज़ात कुछ भी नहीं है।"

इसे स्वामी जी की कचहरी की भाषा समझना चाहिए। कचहरी या हिसाब-किताब की भाषा में फ़ारसी-अरबी के शब्दों की भरमार है। स्वामी जी ने उनका ठीक उसी प्रकार प्रयोग किया है, जिस प्रकार अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का। उदाहरण के लिए उनका यह कथन[1] लीजिए—

"बिल के रुपैयों की पहुँच की रसीद न होने और रसीदों के बिल न होने से जालसाजी उसकी विदित हो जायगी। और उसकी चिट्ठियों से निश्चित है कि कलकत्ते का हिसाब चुकता कर दिया, तो बिल का होना और रसीदों का न होना सिवाय चोरी के क्या कह सकते हैं।"

स्वामी जी उर्दू से अनभिज्ञ थे। उस समय उर्दू का राज्य था। वह सरकारी ज़बान थी। स्वामी जी को भी उर्दू में ख़तकिताबत करनी पड़ती थी। जो लोग हिन्दी-उर्दू में केवल शब्दकोष का अन्तर समझते हैं उन्हें उर्दू की तरकीब और हिन्दी की पदयोजना पर ध्यान देना चाहिए। इन्हीं स्वामी दयानन्द के 'उर्दू ख़त'[2] की उर्दू पर ग़ौर कीजिए और भूल न जाइए कि पद-विन्यास क्या है—

"हस्बुल ईमा आपके मैं यहाँ चन्द्रिका तलाश कर रहा हूँ। अनक़रीब बशरते दस्तयाबी अरसाल ख़िदमत होगी। कैफ़ीयत यहाँ की यह है कि जमीअ असबाब छापेखाने का मय कागज रौशनाई व प्रूफ़ सीट वग़ैरा के कलकत्ता से यहाँ आ गया।" आप कहीं यह न समझ लें कि यह ख़त किसी मौलाना के पास भेजा गया था और इसी लिए इसकी भाषा को यह रूप दिया गया। नहीं, हर्गिज़ नहीं। यह ख़त एक आर्य मुंशी इन्द्रमन साहब के नाम भेजा गया था जो आर्यसमाजी और स्वामी जी के दल के आदमी थे। बात यह थी कि उस समय सरकार की ओर से उर्दू को इतनी मदद मिल रही थी कि लोग जीविका और प्रतिष्ठा के लिए उसी को अपनाते थे। स्वामी जी के उपदेश से बहुत-से मसिजीवी और सभ्य लोग वैदिक तो बन गये, पर उर्दू के साथ ही आर्यभाषा न सीख सके। इसलिए स्वामी जी को उनके पास उर्दू में

(१) पत्र और विज्ञापन चतुर्थ भाग पृ० ३६

(२) उर्दू में तीन तरह से बहुवचन बनते हैं— हिन्दी, फ़ारसी और अरबी। जो लोग हिन्दी और उर्दू के व्याकरण को एक ही बताते हैं उन्हें इस पर विचार करना चाहिए और यह सिद्ध कर देना चाहिए कि हिन्दी में भी उसी प्रकार के बहुवचन बनते हैं अथवा उसी मात्रा में संस्कृत के बहुवचन काम करते हैं। सच तो यह है कि उर्दू के व्याकरण ने भी बहुत कुछ उसे विदेशी बना दिया, चाहे आप उसे स्वदेशी ही समझें।

(३) पत्र और विज्ञापन, तृ० भाग पृ० ३५।

(१) वही पृ० ४७।

(२) पत्र और विज्ञापन चतुर्थ भाग पृ० २

पत्र भेजना पड़ा। इस उर्दू का मतलब था फ़ारसी का[१] वारिस न कि देश-भाषा। इसको समझने के लिए फ़ारसी का जानना अनिवार्य था। निदान स्वामी जी को लाला जीवनदास से कहना[२] पड़ा—

"यहाँ पारसी ख़त पढ़नेवाले बहुत कम हैं, इँग्लिश के पाठक बहुत हैं। इसलिए जब कभी लिखें तब नागरी वा इंगरेजी में लिखें। इस पत्र का मतलब हम ठीक ठीक नहीं समझते हैं।"

स्वामी जी पर रहम कर कुछ उर्दू-भक्तों ने हिन्दी लिखने का साहस किया। चुनांचे जुवाहरसिंह[३] लिखते हैं—

"मुझे हिन्दी लिखनी नहीं आती। यदि लिखता हूँ तो बहुत अशुद्ध लिखी जाती है जैसे इस पत्र से विदित होगा यिस कारण उर्दू वा अँगरेज़ी में पत्र लिखता रहा हूँ और अब भी अँगरेज़ी में लिखने लगा था। प्रन्तू जैसे आई वैसे लिख दी यिस कारण कि शायद तकलीफ़ न हो।"

अब तक जो सामग्री आपके सामने आई है उसमें कहीं भी इस बात का संकेत नहीं है कि स्वामी जी उर्दू या फ़ारसी-अरबी-शब्दों के शत्रु थे। जुवाहरसिंह के कहने से यह मान लेना चाहिए कि सहूलियत और आसानी के लिए लोग हिन्दी को अपनाने लगे थे और स्वयं स्वामी जी से निवेदन करने लगे थे कि देवनागरी में लिखा कर भेजें। सेवकलाल कृष्णदास का[४] अनुरोध है—

"आपके आने विना समाज का मंदिर होना कठीन है और सब समाजों का अँगरेजी वा हिंदि में (देव नागरी लिपि में) लिखा के कृपा कर भेज देना।"

हिन्दी की व्याख्या में देवनागरी-लिपि का निर्देश इस लिए करना पड़ा कि दक्षिण में यही हिन्दी फ़ारसी-लिपि में दक्खिनी के रूप में प्रचलित थी और उर्दू हो जाने पर भी कभी कभी हिन्दी के नाम से याद की जाती थी। हैदराबाद ने आज इसकी जगह फ़सीह उर्दू को पसंद कर लिया है, नहीं तो आरम्भ में वहाँ 'दक्खिनी' हिन्दी का ही प्रचार था। प्रसंगवश इतना स्पष्ट करने की ज़रूरत इसलिए पड़ी कि वस्तुतः हिन्दी ही राष्ट्रभाषा थी और इसी लिए उसके जानकार मुंबई में भी मौजूद थे, जो हिन्दी को देवनागरी में पढ़ते-लिखते थे, फ़ारसी में नहीं।

हिन्दी ही नहीं, संस्कृत में भी पत्र लिखने के लिए स्वामी जी से आग्रह किया जाता था। खानदेश के लक्ष्मण गोपाल देशमुख की[१] आशा है—

"हम इच्छा करते हैं कि आपके पत्र हमकु सब संस्कृत में आवे सो इच्छा आप पूर्ण कीजिए। इससे हमकु भी संस्कृत पत्र-व्यवहार का मार्ग समजा जायेगा।"

इतने पर भी यदि लोग यही कहें कि स्वामी जी हिन्दी और संस्कृत को 'विला वजह, बग़ैर ज़रूरत' राष्ट्र पर लादना चाहते थे तो उनसे हम क्या कहें। उनका इलाज तो हमारे पास नहीं है। पर जो लोग सत्यनिष्ठ और हक़परस्त हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि शांतचित्त से प्रश्न पर विचार करें और ठंडे दिल से देखें कि असलियत क्या है। क्यों स्वामी जी पर यह लांछन[२] लगाया गया कि

"वह तरह तरह से अपनी नई हैसियत और इन्फ़रादियत जताने लगे। और जिस तरह एक बेवक़ूफ़ औरत ने अपनी ख़ूबसूरत अँगूठी दिखाने की ख़ातिर घर को आग लगा दी थी, उन्होंने भी बनेबनाये घर को बिगाड़ना शुरू किया। सबसे पहले नज़ला उर्दू ज़बान पर गिरा।"

जिस देश में बैठकर आज उर्दू के परम प्रचारक मौलाना अब्दुल हक़ उर्दू को मुल्की ज़बान का ख़िताब दे रहे हैं उसी देश से स्वामी जी के पास पुकार आती है कि 'हिन्दी, देवनागरी लिपि में', 'पत्रव्यवहार संस्कृत में' हो। ख़ैर, इस प्रसंग को यहीं छोड़िए और देखिए कि उर्दू पर कौन-सा नज़ला गिरा। स्वामी जी ने उर्दू के लिए क्या किया, इसे भी देख लें। संस्कृत के प्रचार को समाने रखते हुए स्वामी जी[१] लिखते हैं—

"अब इसके साधनार्थ यह होना चाहिए कि कुल पठन-पाठन समय के छः घंटों में ३ घंटे संस्कृत २ घंटे अँगरेज़ी और १ घंटा उर्दू फ़ारसी पढ़ाई जाया करे।" ध्यान देने की बात है कि स्वामी जी ने 'हिन्दी' या आर्यभाषा का विधान न कर 'उर्दू' का उल्लेख किया है। कारण स्पष्ट है। हिन्दी का सामान्य ज्ञान सबको था। संस्कृति के बोध के लिए संस्कृत और सरकार तक पहुँच के लिए अँगरेज़ी और उर्दू की ज़रूरत थी। फ़ारसी के बिना उर्दू का काम ही न चलता, क्योंकि वह 'फ़ारसी की क़ायममुक़ाम' थी। इसलिए उसका भी पठन-पाठन आवश्यक था। इस बात का पता पंडित ज्वालादत्त जी के पत्र से चल जाता है। स्वामी जी ने उनसे फ़ारसी पढ़ने को कहा था। उन्होंने फ़ारसी पढ़ना उचित समझा था, पर किसी कारणवश आरम्भ नहीं किया। निदान[२] लिखते हैं—

"पढ़ने के लिए जो आपसे मैं कह आया था सो फ़ारसी तो मुंशी जी से नहीं पढ़ी और संकृत का अभी प्रारंभ नहीं किया।"

समझ में नहीं आता कि हम उन लोगों की क्या दवा करें जो स्वामी जी पर इस तरह का लांछन लगाते हैं और अपने घर की बात नहीं देखते कि आज भी राष्ट्रभाषा या 'मुल्की ज़बान' के नाम पर किस प्रकार उर्दू में फ़ारसी-अरबी की तरकीब भरी जाती है और हिन्दी तथा भाषा का नाम तक मिटाना[३] इष्ट समझा जाता है। स्वामी जी ने एक अपराध अवश्य किया। वह सीधा और प्रत्यक्ष अपराध यह था कि वे भी चाहते थे कि सरकार देश की भाषा हिन्दी को अपने यहाँ जगह दे और उर्दू के रूप में प्रच्छन्न फ़ारसी से निरीह जनता को मुक्त करे। प्रच्छन्न फ़ारसी से कुढ़ें नहीं, बल्कि उस मसविदा पर ध्यान दें जो स्वामी जी की ओर से सरकार में पेश किया गया था। उसका एक अंश[१] है—

"लिहाज़ा बावजूद मलहूज़ रखने तमामतर एज़ाज़ और आदाब क़ानून मज़कूर हसबज़ैल इलतमास करता हूँ, कि अगरचे एक्ट मज़कूर का असली मंशा सरीह इन्साफ़ और मसलिहत आमा कायिम करना और हिन्दुओं के असली और इन्साफ़ी क़ानून को बमुक़ाबला जायिज़ रस्मोरिवाज के बुनियाद के तरजीह देता है और उसकी तासीर से बेबगान हनूद के झूठे रस्मोरिवाज की पाबन्दी से बचा कर आदिल गवर्नमेंट ने क़ानूनी हक़ उनका बहाल फ़रमाया है।"

यह तो स्वामी जी का आर्य मसविदा[२] है। 'फ़सीह मसविदा' का सामना करना हो तो कचहरी में पहुँच जाइए और अपनी उस मुल्की ज़बान को पहचान लीजिए जो आपकी मादरी ज़बान है। आज नहीं तो कल यही आपके घर की बोली होगी। आज तक खेल में आप 'चे मे' कहा कर छोड़ दिये जाते थे, पर अब सचमुच आपको इसी 'चे मे' का जाप करना होगा। इसी से रोटी नसीब होगी। स्वामी जी के सामने इस रोटी का प्रश्न न था। वे आर्यावर्त की उन्नति चाहते थे और आर्यावर्त की उन्नति में विश्व की उन्नति समझते थे। तभी तो स्पष्ट कहते हैं[२]—

"हम लोगों का तो यही अभीष्ट, यही कामना और यही उत्साह है कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी।" तथा

"[४]हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानंद को छोड़ कर यह कार्य ग्रहण किया है।"

---

(१) मौलाना अब्दुलहक़ साहब ने 'उर्दू' जनवरी सन् ३३, पृ० १४ में फ़रमाया है—

"जिस तरह बाप का जानशीन बेटा होता है उसी तरह फ़ारसी की क़ायममुक़ाम उर्दू हो गई।"

जो लोग उर्दू को राष्ट्रभाषा या मुल्की ज़बान मानते हैं उन्हें ज़रा ठंडे दिल से इस पर ग़ौर करना चाहिए।

(२) पत्र और विज्ञापन प्र० भाग पृ० ३६।

(३) पत्रव्यवहार प्रथम भाग पृ० १२९।

(४) " " पृ० २५०।

---

(१) पत्रव्यवहार प्रथम भाग पृ० २४५।

(२) आल इंडिया मुसलिम एजूकेशनल कान्फ़रेंस की उर्दू-कान्फ़रेंस में गत २८ अप्रेल के व्याख्यान में अलीगढ़ में मौलाना अब्दुलहक़ ने यह दावा पेश किया और फिर उसी महीने की 'उर्दू' पत्रिका में छापा। कहने की ज़रूरत नहीं कि मौलाना हक़ एकता के प्रेमी और राष्ट्र के भक्त हैं। मुल्की ज़बान के फ़ैसले के लिए नेताओं से बराबर मिलते रहते हैं और 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' को 'फूट-नगर' का रास्ता बताते हैं।

---

(१) पत्र और विज्ञापन च० भाग पृ० २८।

(२) पत्रव्यवहार प्र० भाग पृ० ४१८।

(३) उर्दू की जगह हिन्दुस्तानी का प्रयोग इसी लिए ज़ोरशोर से सामने आ रहा है कि वह हिन्दी की हस्ती को हिन्दुस्तान के नाम पर आसानी से मिटा सके। उसके भ्रम में कहीं हम हिन्दी को खो न बैठें, इसलिए उसको खरी कसौटी पर कस कर उसको राष्ट्रभाषा का वाचक बनाना चाहिए।

---

(१) पत्र और विज्ञापन द्वि० भाग पृ० ७४-५।

(२) आर्यसमाजियों की उर्दू आर्यसमाजी उर्दू के नाम से पुकारी जाती है और नजीबों को खटकती है।

(३) पत्र और विज्ञापन प्र० भाग पृ० ६६।

(४) ... च० भाग पृ० १८।

अस्तु, परमार्थ और स्वदेशोन्नति के लिए स्वामी जी अनिवार्य समझते थे कि प्रच्छन्न फ़ारसी यानी उर्दू की जगह आर्य यानी आर्यावर्त (हिन्दुस्तान) की भाषा हिन्दी का प्रचलन हो। याद रहे, स्वामी जी की आर्यभाषा या हिन्दी का अर्थ है हमारी वह राष्ट्र-भाषा जिसमें "मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होय।"[१] यही कारण है कि उनके धार्मिक और पवित्र ग्रंथों में भी फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रयोग हुआ है और उनसे कभी किसी प्रकार का परहेज़ नहीं किया गया है। प्रसंग के अनुसार स्वामी जी ने किस तरह फ़ारसी-अरबी के कितने शब्दों का प्रयोग किया है इसको अच्छी तरह जानने के लिए उनके ग्रंथों का स्वतः अध्ययन करना चाहिए। फिर भी पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ कुछ अवतरण पेश करते हैं और यह जानना चाहते हैं कि स्वामी जी उन्हें किस रूप में रखते कि उर्दू पर नज़ला गिराने और फ़ारसी-अरबी शब्दों के देश-निकाले के अभियोग से बच जाते और राष्ट्रभाषा के पोषक माने जाते। याद रहे, स्वामी जी संस्कृत के पंडित थे और फ़ारसी तथा उर्दू से बिलकुल अनभिज्ञ थे। क्योंकि वे स्वयं[२] कहते हैं—

"जो क़ुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहिले खंडन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे"।

इस्लाम के समीक्षक की भाषा का नमूना[३] यह है—

"जब मुसलमान लोग सिवाय ख़ुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को ख़ुदा का साझी मानते हैं तो पैग़म्बर साहेब को क्यों ईमान में ख़ुदा के साथ शरीक किया? अल्लाह ने पैग़म्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैग़म्बर भी शरीक हो गया।"

गया के पंडों को इन शब्दों में याद[४] करते हैं—

"जो लोग आँख के अंधे गाँठ के पूरे उनके जाल में जा फँसते हैं उनको गयावाले उलटे उस्तरे से ख़ूब हजामत बनाते हैं।"

बस, स्वामी जी की भाषा का कथावाला नमूना भी देख[५] लीजिए—

"कभी एक आधी रात में किसी साहूकार का नौकर एक हज़ार रुपयों की थैली लेके किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्के आकर रुपयों की थैली छीन कर भागे। उसने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने आकर पूछा कि क्या है? उसने कहा कि अभी उचक्के मुझसे रुपयों को छीन कर लिये जाते हैं। सिपाही धीरे धीरे चल के किसी भले आदमी को पकड़ लाये कि तू ही चोर है। उसने उनसे कहा कि मैं फलाने साहूकार का नौकर हूँ चलो पूछ लो।"

चलो चलें हम भी नामधारी राष्ट्रप्रेमियों से पूछ लें कि स्वामी जी की यह भाषा राष्ट्रभाषा या हिन्दुस्तानी है या नहीं। यदि है तो आप स्वामी जी पर यह अभियोग क्यों चलाते हैं कि उन्होंने फ़ारसी-अरबी के शब्दों को देश-निकाला दे दिया? यदि नहीं तो कृपा कर उस 'हिन्दुस्तानी' का नमूना पेश कर दीजिए जिसे आप सचमुच राष्ट्रभाषा समझते हैं। यदि आप सचमुच उसी उर्दू को हिन्दुस्तानी या मुल्की ज़बान समझते हैं जो सरकार में या कचहरियों में बरती जाती है और जो मुल्की ज़बान की उपाधि से दफ़्तरों[२] में दाख़िल हुई है तो हमें आपसे स्पष्ट कह देना है कि वह हिन्दी नहीं, हिन्दुस्तानी नहीं, उर्दू यानी प्रच्छन्न फ़ारसी है। वह राजभाषा भले ही बनी रहे, पर हमारी राष्ट्रभाषा तो नहीं बन सकती। हमारी राष्ट्रभाषा सदा से हिन्दी रही है और आज भी वही है। हिन्दी ने सदा से फ़ारसी-अरबी के 'प्रकट' शब्दों को अपनाया है और स्वामी जी ने अपनी आर्यभाषा में उनका विधान भी किया है। आँख खुले अंधों को सुझा देना हमारा काम नहीं, हक़ की बरकत है। देखनेवाले देखें और सुननेवाले सुनें। भूँकनेवालों की सुनता कौन है।

(१) काव्यनिर्णय, भिखारीदास

(२) सत्यार्थप्रकाश अनुभूमिका ४ पृ० ७०३।

(३) ,, शताब्दी संस्करण पृ० ७३०।

(४) ,, श० सं० पृ० ६२९-३०।

(१) सत्यार्थप्रकाश शताब्दी संस्करण पृ० ७६३।

(२) उर्दू सन् १८३८ ई० में फ़ारसी की जगह सरकारी दफ़्तरों में दाख़िल हुई।

एक ऐतिहासिक कहानी

शीत-भवन

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

नवम्बर सन् १९२७ की बात है। योरपीय महायुद्ध ख़त्म नहीं हुआ था। थोड़े-से साम्राज्यों के बरन उनमें भी थोड़े-से पूँजीपतियों के लाभ के वास्ते सारी दुनिया में मातम मचा हुआ था। योरप में शायद ही कोई घर बचा हो, जहाँ किसी न किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु का शोक-समाचार न पहुँच चुका हो और उससे भी अधिक यह कि हज़ारों लँगड़े-लुंजे अपाहिज बनाकर घर वापस न पहुँचाये गये हों। रूस भी इन्हीं दुर्घटनाओं का शिकार था। परन्तु वहाँ ऐसे लोग पैदा हो गये थे जिन्हें अपने ही देश के कुशासन में अपनी यह दुर्दशा दिखने लगी थी। इन लोगों में सभी श्रेणियों और सभी वर्गों के लोग थे। जहाँ धनपति इस वास्ते उसमें सम्मिलित हुए थे कि ज़ार को निकालकर शासन-भार अपने ऊपर लें, वहाँ मज़दूर-किसान और अन्य दरिद्र और भूखे बेकार लोग अपनी दशा के सुधार के वास्ते सम्मिलित हुए थे। ज़ार को निकालने तक दोनों का उद्देश एक ही था। उसमें वे सफल हो चुके थे और शासन की बागडोर पूँजीपतियों के हाथ आ चुकी थी। करेंस्की का बोलबाला था।

यहाँ से दोनों पार्टियों का उद्देश अलग अलग हो चुका था। परन्तु इसके पहले ही एक के सौभाग्य से और दूसरे के दुर्भाग्य से मज़दूर और किसान-पेशा और अन्य व्यवसायों के लोग शहर शहर और गाँव गाँव 'सोवियेट' या पंचायतें स्थापित कर चुके थे, यद्यपि उनके हाथ में कोई शक्ति नहीं थी। ग़रीब दुखिया जनता या तो सोवियटों (पंचायतों) में सम्मिलित थी या उनसे सहानुभूति रखती थी। करेंस्की के शासनकाल में जब इन ग़रीब मज़दूरों तथा किसानों की दशा में कोई सुधार न हुआ तब इनकी पुकार यह होगई कि युद्ध बन्द किया जाय और ताक़त पंचायतों के हाथ में दी जाय। इस पुकार का घोर विरोध हुआ और शिक्षित समाज भी यहाँ तक कि वे लोग भी जो ग़रीबों की दुर्दशा की दोहाई देते हुए बरसों तक जेल काट चुके थे और ज़ार के काल में तरह तरह के कष्ट भोग चुके थे, पूँजीपतियों की सरकार का साथ देने लगे और आपस में फिर खींचातानी शुरू हो गई तथा ग़रीबों और अमीरों में युद्ध छिड़ गया।

ज़ार के ज़माने में स्मोलनी आम राजा-बाबुओं और पूँजीपतियों की लड़कियों के पढ़ने का केंद्र था। यह नीवा नदी के किनारे बसा है। इस बड़े शिक्षा-भवन में आज पंचायतों का अधिवेशन होने को था और हज़ारों कोस से प्रतिनिधि जमा हो रहे थे। इनमें जहाँ किसानों, मज़दूरों और व्यवसायियों के प्रतिनिधि थे, वहाँ उन लोगों के भी थे जो वर्षों के बाद जेलों से छूटे थे तथा विदेशों से घर लौटने पाये थे। समुद्री और दूसरी फ़ौजें भी प्रतिनिधि भेज रही थीं। रात का समय था। पौने ग्यारह बजे से इन पंचायतों का अधिवेशन शुरू होने को था। शायद रात का समय इस वास्ते रक्खा गया था कि उनके नेता, लेनिन और ज़िनोवियब, जिनकी वर्तमान सरकार शत्रु हो रही थी, आनेवाले थे। इन प्रतिनिधियों में उत्साह भरा था और बड़ी श्रद्धा से ये आज इस शिक्षा-भवन में आ रहे थे। हलकी बर्फ़ पड़ रही थी।

भीतर सौ लैम्प जगमगा रहे थे। फटे मैले कपड़े पहने एक डाढ़ीदार अधेड़ अवस्था का मज़दूर आया। पहले उसने टोपी उतारी और सिर झुका और हाथ फैला कर कुछ प्रार्थना की और एकदम प्रसन्नमुख चिल्ला उठा—"यह जनता का है। क्रान्ति चिरजीवी हो!"

इतना कहकर वह भवन के भीतर घुस गया और अपार भीड़ में मिल गया। इस तरह भीड़ बढ़ती गई। क्रान्ति के गीतों से वह विशाल भवन गूँज रहा था और उसके साथ साथ सिमेंट के फ़र्श पर मशीनगनों का इधर से उधर खींचा जाना और सिपाहियों के टहलने का काफ़ी गुल था। पौने ग्यारह बजे लेनिन और ज़िनोवियब कहीं से ऐसे आगये, जैसे ज़मीन फाड़कर निकले हों। प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। हज़ारों गलों से, बरन गलों-द्वारा दिल से बड़े ज़ोरों के शब्द निकले—"क्रान्ति ज़िंदा-

बाद !" "लेनिन ज़िंदाबाद !" "ज़िनोवियव ज़िंदाबाद !" उस काली अँधेरी रात के ये शब्द सुनकर शत्रुओं के कलेजे बैठ गये।

बोलशेविक पार्टी का ज़ोर था। वहाँ की सरकार अपने किसी वादे को पूरा न कर सकी थी। शायद पूरा करना चाहती भी नहीं थी। वह चाहती थी, युद्ध जारी रहे। जनता युद्ध से थक चुकी थी, वह यह देख चुकी थी कि ज़ार के निकाले जाने के बाद भी उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसने इसी वास्ते आवाज़ उठाई कि "कुल ताक़त पंचायत के हाथ में हो"। यही बात तय करने को आज की सभा एकत्र हुई थी। आज जनता पंचायत को रूस की सरकार बनाने की घोषणा करनेवाली थी। यह बात सरकार और उसके अनुयायी शिक्षित समाज को मालूम थी और वे भी इस तरफ़ से उदासीन न थे, मगर लड़ाई के पहले वे इस सभा में भी अपनी ताक़त आज़माने और हथखंडे चलाने को उपस्थित हो गये थे।

यह शायद दुनिया भर के शिक्षित समाज का दस्तूर है कि जहाँ तक हो सकता है, काम टालने की कोशिश करते हैं, वादविवाद में सारा समय नष्ट कर देना तो उसके बायें हाथ का खेल है। कार्यकारिणी समिति के चुनाव में १४ बोलशेविक और ११ दूसरी पार्टियों के सदस्य चुने गये। पुरानी समिति ने नये सदस्यों के वास्ते जगह ख़ाली कर दी और नये सदस्य जिनमें से कुछ लोग अभी तक छिपे फिरते थे, उनके स्थान पर जा बैठे। मगर करेंस्की-पार्टी के डैन नामक एक सज्जन सभापति थे, जो बहुमत पार्टी के विरोधी थे। यही शिक्षित समाज के वहाँ अगुआ थे।

डैन ने कहा—"मित्रो, यह चुनाव बे-क़ायदा हुआ है। इसकी नामज़दगी ठीक नहीं थी।"

इस विषय पर घंटा भर वादविवाद होता रहा। ऊल-जलूल बहसें पेश हुईं। एक किसान आख़िर में बोला—"भाइयो, इस वाद-विवाद से क्या लाभ? काम करना चाहिए। तू सदस्य है या मैं, इसमें क्या धरा है? कोई भी हो, काम करे।"

उपस्थित जनता ने यह राय पसन्द की। लेनिन ने कहा—"क्या हम सब इस बात पर सहमत हैं कि यह घोषणा कर दी जाय कि यह पंचायत रूस की वर्तमान सरकार है?"

डैन ने इसका विरोध किया—"हम भी प्रतिनिधि और देश के शुभचिंतक की हैसियत से यह कह देना चाहते हैं कि इस प्रस्ताव के स्वीकार होने से हमारी पंचायत बाग़ी संस्था कहलावेगी। वर्तमान सरकार इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकती।"

डैन के पक्ष में कुछ दूसरे सदस्य भी बोले।

लेनिन ने कहा—"मुझे आश्चर्य है कि डैन ऐसे सज्जन ऐसी बात कहें। वे तो स्वयं आज बीस वर्ष से जनता की आज़ादी पर जान दे रहे हैं। कौन-से कष्ट उन्होंने ग़रीबों के वास्ते नहीं उठाये? उन्होंने जेल भोगी, देश से निकाले गये, भूखों तक मरे। फिर आज क्यों ऐसा कायापलट?"

डैन ने कहा—"हमारी देश-भक्ति तो सब पर विदित है। आप लोगों को इसी से समझ लेना चाहिए कि इसमें हमारा स्वार्थ नहीं। हम तो देश का शासन ऐसा चाहते हैं कि जनता के दुख-दर्द दूर हों। भला गँवारों और सिपाहियों में वह दिमाग़ कहाँ, जिसकी आज आवश्यकता है? अब हम आपस की लड़ाई नहीं देखना चाहते। जनता का इसी में भला है। अनपढ़ किसान या मज़दूर या फ़ौज के सिपाही भला कैसे सरकारी काम चला सकेंगे! उन्हें अपनी जगह ही रहना ठीक है।"

मारटोव ने कहा—"भाइयो, कुछ ऐसी बात सोचो कि आपस का यह भावी युद्ध न हो।"

हज़ारों गलों से यह उत्तर मिला—"हमारी जीत ही इसका अंतिम जवाब देगी।"

फ़ौजी अफ़सर कूचिन ने कहा—"पंचायतें अकेली पड़ जायँगी। फ़ौज उनका साथ न देगी।"

एक फ़ौजी सिपाही उठ खड़ा हुआ—"झूठ बात है। फ़ौज पंचायत के साथ है। हाँ, अफ़सर चाहे न हों। हम सिपाही पंचायती राज की तरफ़ हैं।"

जनता बहुत उत्तेजित हो उठी थी। उसने एक स्वर से चिल्लाकर कहा—"वाद-विवाद बंद करो। पंचायती राज की घोषणा करो। अब हम दूसरा प्रस्ताव नहीं चाहते।"

प्रस्ताव स्वीकार हुआ। एबरेमोविच बोले—"अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं। ये लोग ख़ून बहाने पर उतारू हैं। सारे प्रतिनिधि यहाँ से उठ चलें।" यह कह

और ८० आदमी उठ गये। बाक़ी सब वहीं उपस्थित रहे और क्रान्ति की जय पुकारते रहे।

सभा समाप्त भी नहीं हुई थी कि तोपों के चलने के शब्द सुनाई दिये। "हैं! यह क्या?" सभी के मुँह से निकला और सभी चिंतित हो गये। इतने में समाचार मिला कि अरोरा जहाज़ के सिपाही क्रांति की तरफ़ मिल गये और वे ख़ाली बारूद तोपों में भर कर शीत-भवन पर छोड़ रहे हैं, मानो कह रहे हैं—"पंचायत को पूरी ताक़त दो"। ज़रा ही देर में हाँफते हुए कीचड़ में सने दूतों-द्वारा ख़बरें आती गईं कि अमुक फ़ौज, अमुक संस्था पंचायत की तरफ़ आ गई और उसे वर्तमान सरकार मान रही है।

(२)

शीत-भवन उस सभा-भवन से बहुत दूर नहीं था। सैकड़ों वर्षों से ज़ार और उसके चाटुकार दरबारी उस भवन में विहार किया करते थे। वह विशाल भवन जहाँ सैकड़ों आदमी ख़ूब फैलकर रह सकते थे, केवल इस वास्ते बना था कि ज़ार और उनके दरबारी उसमें विहार कर सकें।

उस विशाल भवन के बड़े बड़े कमरे ख़ूब सजे थे और बहुमूल्य रंग और ग़लीचे उनमें बिछे थे। दरवाज़ों और खिड़कियों में बहुमूल्य रंग-बिरंगे पर्दे पड़े थे, आराम से बैठने को गद्देदार कुर्सियाँ रक्खी थीं और सजाने के सोने-चाँदी के सामान स्थान स्थान पर सजे थे। मूल्यवान् धातुओं की मूर्तियाँ भी जगह जगह खड़ी थीं। बाहर कितनी ही सर्दी क्यों न हो, इस भवन में घुसते ही बदन में गर्मी आ जाती थी।

आज यह भवन ज़ार से छीना जा चुका था और वर्तमान सरकार के मंत्री वहाँ इस रात को सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि पंचायत कुछ निर्णय करे तो वे अपनी कार्रवाई शुरू करें। उनके सिपाही जो 'यनकर्स' कहलाते थे, उस भवन के बाहर अँधेरे में उपस्थित जन-समूह को शत्रु मानकर समय समय पर गोली चलाते थे और पंचायत के निर्णय के पहले ही पंचायत के कितने सिपाहियों की हत्या कर चुके थे। जहाज़ अरोरा की तोपों के दगने और सिपाहियों के कम्युनिस्टों से मिल जाने के समाचार ने उन्हें पस्त कर दिया और सबेरा होने के पहले ही वे चिल्ला उठे—

"यनकर्स हार मानते हैं और तुम्हारी शरण में आते हैं।"

लाल सेना के सैनिक (पंचायत की सेना लाल झंडे का प्रयोग करती थी) उन बड़े डीलवाले सिपाहियों के सामने बच्चे लग रहे थे, फिर भी उनके शब्द के पीछे क्रांति का ज़ोर था। सुननेवाले कुछ देर को दहल उठे। एक लंबा-चौड़ा सिपाही एक कम्बल लेकर जाने लगा।

होव ने कम्बल पकड़ लिया और कहा—"रख दो"।

सिपाही ने कम्बल को उससे छीनते हुए कहा—"यह मेरा है। इसे छोड़ दो।"

होव ने उत्तर दिया—"नहीं, यह तुम्हारा नहीं है, यह जनता का है। आज रात को इस भवन से कुछ नहीं जा सकता।"

सिपाही खिन्न होकर बोला—"यह आज ही जायगा। बाहर बारिक में बड़ी सर्दी है।"

होव ने कहा—"भाई, सर्दी खाना उससे अच्छा है कि तुम क्रान्ति को बदनाम करो।"

"तो क्रान्ति हमने किसके वास्ते की है?"

"ठीक है। मगर समय पर तुम्हें सब कुछ मिलेगा। आज नहीं।"

सिपाही बड़बड़ाता हुआ कम्बल छोड़कर चला गया।

दूसरी तरफ़ एक छोटे क़द के बोलशेविक ने एक बड़े भारी भरकम सिपाही को ललकारा—

"ख़बरदार! वह मेज़ न छूना।"

बाहर सेना घेरे खड़ी थी। उसका एक अफ़सर बोला—"हमारी शरण यनकर्स लोग माँगते हैं। फिर भी बड़ी सावधानी से भवन में घुसो। अपने तई बचाते रहो।"

बाहर अँधेरा छाया था, हलकी बर्फ़ पड़ रही थी और सर्दी बढ़ रही थी। उस अँधेरे और सर्दी से लाल सेना भीतर रोशनी और गर्मी में घुसी। शायद उसके सैनिकों ने अपने सारे जीवन में ऐसी रोशनी और गर्मी नहीं देखी थी। कभी उन्हें इतने नर्म फ़र्श पर चलने का अवसर नहीं मिला था कि जहाँ जूतों का शब्द होना तो दूर, जूते स्वयं घुस जाते थे। कुछ लोगों को उसे लूटने की प्रबल इच्छा हुई और कुछ संदूक़ तोड़े भी गये। परन्तु यह मालूम हुआ कि अधिक मूल्य की चीज़ें यनकर्स पहले ही

लूट ले गये हैं। सिपाही कम्बल-कपड़े इत्यादि की लूट में लगे थे और गुल-शोर हो रहा था कि एक गंभीर शब्द करते हुए ठिंगने व्यवसायी होव ने कहा—"ख़बरदार! कुछ न लेना। क्रांति कुछ भी छूने को मना करती है। यह प्रजा का माल है। लूटा नहीं जा सकता।"

उस ठिंगने दृढ़ व्यक्ति के साथ कुछ और भी वैसे ही छोटे वरन दृढ़ लोग सिपाहियों के साथ शीत-भवन में घुसे थे।

"तुम कौन होते हो? जैसे तुम भवन में घुसे, वैसे हम। हम किसी के कहे में नहीं हैं।"

"तुम्हारी ज़िम्मेदारी क्रान्ति के साथ है।"

मेज़ ज्यों की त्यों ही रह गई।

इतने में हुक्म मिला कि भवन ख़ाली कर दो। उसके प्रत्येक दरवाज़े पर एक एक बोलशेविक खड़ा होकर तलाशी लेने लगा और सब चीज़ें ज्यों की त्यों अपने स्थानों पर रख दी गईं।

अब मंत्रि-मण्डल और यनकर्स लोग अपने छिपने की जगहों से ढूँढ़ कर निकाले गये। विजेताओं ने बिना कुछ दुर्वचन कहे उन्हें फाटक तक पहुँचाया। भीड़ के क्रोध से मुश्किल से बचाकर उन्हें निकाला। जाते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे लाल सेना से कभी नहीं लड़ेंगे। परन्तु वहाँ से छुटकारा पाते ही सरकारी सेना में फिर भर्ती हो गये।

स्त्री-सिपाहियों का जत्था सबसे पीछे निकाला गया। जनता ने उन्हें फटकारा—"बड़े लज्जा की बात है कि मज़दूरी पेशा स्त्रियाँ मज़दूरी-पेशा पुरुषों से लड़ें।"

एक स्त्री इतनी लज्जित हुई कि उसी रात को आत्मघात करके मर गई। कुछ समाचारपत्रों ने दूसरे दिन अपनी भावना के अनुसार शीत-भवन की लूट और स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार का समाचार छापा।

दूसरे दिन यानी आठ नवम्बर की सुबह से देश का शासन कम्यूनिस्टों के हाथ में आ गया। शिक्षित समाज ने उनसे सहयोग करने से इनकार किया। शिक्षितों ने कहा—"देखें ये लुटेरे कैसे राजकाज चला सकते हैं? हम इन्हें सहायता नहीं देंगे तो ये सीधे हो जायँगे।" इस पर एक बोलशेविक ने उत्तर दिया—"हाँ, यह सच है। हम पढ़े नहीं, परन्तु जब हम तुम्हारी रक्षा करने को रुधिर में हाथ रँग रहे थे तब तुम हमारे ख़र्च पर पढ़ रहे थे। फिर आज यह नमक-हरामी! ख़ैर, हम काम सँभाल लेंगे।"

जहाँ जहाँ भी पुराने काम करनेवालों ने हड़ताल बोली, वहाँ नये रँगरूट भर्ती होते गये और तीन दिन में पञ्चायत का काम काफ़ी आसानी से चलने लगा।

इस बीच में करेंस्की और उसके अनुयायी जो तीन दिन पहले राजपद से निकाले गये थे, उदासीन नहीं थे। उन लोगों ने गुप्त सभा की, जिसमें यह तय किया कि पेट्रोग्रेड में टेलीफ़ोन के दफ़्तर पर छापा मारा जाय। टेलीफ़ोन का दफ़्तर शहर के बीच में था, जैसे दिल में से नसें चारों तरफ़ बदन में दौड़ी होती हैं, उसी तरह उस भवन से हज़ारों तार शहर बल्कि सारे देश में दौड़े हुए थे। भवन के फाटक पर सिपाहियों का गारद बैठा था और बदली के समय साथियों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में २० यनकर सिपाही जो लाल सेना का भेस बनाये थे, आ पहुँचे और पहरे की बदली करने के बाद उन्हीं के कानों पर तमन्चे तान कर खड़े हो गये।

"भाई, यह क्या?"

"चुप सूअर के बच्चो! इस कमरे में चुपचाप बैठे रहो। नहीं तो तुम्हारी लाश दिखाई देगी।"

(३)

लाल सेना के पास नेताओं की कमी थी। एक के भी पकड़े जाने से उन्हें काफ़ी धक्का पहुँचता था। जिस समय ऊपर लिखी घटना घट रही थी, पञ्चायत के फ़ौजी मन्त्री एनेटोव उस टेलीफ़ोन भवन के पास से मोटर पर जा रहे थे। यनकर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया और एक कमरे में क़ैद कर दिया। अब वे फूले नहीं समाते थे। वे समझते थे कि उन्होंने क्रान्ति को तोड़ दिया। उन्हें क्या मालूम था कि जब परमेश्वर मदद पर होता है तब किसी के काम होने या मरने से कोई अधिक हर्ज नहीं होती।

एनेटोव के पकड़े जाने और टेलीफ़ोन भवन पर यनकर और सफ़ेद सेना के क़ब्ज़ा कर लेने की ख़बर बिजली की तरह शहर में दौड़ गई और कुछ देर के बाद लाल सेना के सिपाही आ पहुँचे। लाल सेना के सिपाही अभी तक जनसमूह से कुछ ही ऊँचे उठे थे। ज़ार के समय ये लोग जब जुलूस निकालते थे तब इन पर गोलियाँ बर्साई जाती थीं। परन्तु ये उस आग की वर्षा के होते हुए भी आगे बढ़ते थे और मुर्दों को भी साथ लिये जाते थे। यह बात अभी भूली न थी। लाल सेना को आते देख फ़ौजी अफ़सर कूचिन ने आज्ञा दी—"भून डालो सूअर के बच्चों को।"

मगर ये भी अब फ़ौजी हथकंडे सीख चुके थे। होव ने तुरन्त ही उन्हें आड़ में छिप जाने की आज्ञा दे दी और छिपे छिपे सारे भवन को घेर लिया और समय समय पर उस पर गोलियाँ बरसाने लगे। बहुत देर अड़े रहने के बाद जब उन्होंने देखा कि लाल सेना का काफ़ी ज़ोर है तब सफ़ेद झंडा दिखाकर सन्धि का प्रस्ताव किया। होव ने कहा—"तीन ही दिन की बात है। हमने तुम्हें क्षमा प्रदान की थी। फिर तुमने दग़ा की। तुम्हारा हमें एतबार नहीं है।"

कूचिन ने कहा—"हम एनेटोव को छोड़ देंगे। तुम हमें जाने दो।"

"हम ख़ुद उन्हें छुड़ा लेंगे। तुम होते कौन हो? यदि एनेटोव का बाल भी बाँका हुआ तो हम तुम लोगों में से एक एक को मार डालेंगे।"

यद्यपि लाल सेना लड़ाई के समय गोली चलाती थी, तो भी घायलों की सेवा करने में बाधा नहीं डालती थी। उसकी यह भलमंसी या कमज़ोरी जो भी समझो सफेद सेना को मालूम थी। उसके पास लड़ाई का सामान ख़त्म हो चुका था और बाहर से मदद आने का कोई समाचार न था। अफ़सरों ने धोखेबाज़ी की सोची। एक 'रेड-क्रास' कार पर कई अफ़सर सवार होकर घायलों के वास्ते मरहम-पट्टी लेने के बहाने चले। लाल सेना ने बाधा न डाली। वहाँ से जब लड़ाई का सामान लेकर भीतर जा रहे थे तब संतरी ने रोका।

"तलाशी होगी।" उसने कहा।

"मरहम-पट्टी का सामान है। घायलों के वास्ते जल्दी जाना है। तलाशी में समय नष्ट होगा।" अफ़सर ने उत्तर दिया।

नाम के वास्ते तलाशी लेकर उसने जाने की आज्ञा दी।

"कैसे गदहे हैं ये लोग"? हँसते हुए अफ़सर लोग भीतर पहुँचे और मदद के वास्ते आरमर्डकार के शीघ्र ही आने का शुभ समाचार सुनाया। मगर थोड़ी देर के वास्ते जो आरमर्डकार सिपाहियों से लदा इनकी सहायता के वास्ते चला था वह लाल सेना से जा मिला, उनकी तरफ़ से लड़ने के बदले उसने उन्हीं पर आग बरसानी शुरू की। भीतर योद्धाओं पर ऐसा डर छाया कि वे सीढ़ियों और अन्य सुरक्षित स्थानों में छिपने लगे। वर्दी, शस्त्र इत्यादि फेंक फेंककर फटे पुराने कपड़े जिस किसी को भी हाथ लगे, पहनने लगे, जिससे वे मज़दूर जान पड़ें। सिपाहियों ने अफ़सरों को पुकारा, परन्तु वे तो जान बचाकर भाग चुके थे। पहले तो उन्होंने लड़कर जान देने की ठानी। एक युवक ने सलाह दी—"देखो, एनेटोव हमारा क़ैदी है। उसकी शरण में चलो। उससे जीवन की भिक्षा माँगो।"

दूसरे ने कहा—"कहता सच है। इस समय लड़ने से काम न चलेगा। ये लोग हमारे ख़ून के प्यासे हैं। और कैसे न हों? हमने धोखा भी तो दिया है। अब तो एनेटोव का ही सहारा है। मौक़ा पड़ने पर फिर इन पाजियों से बदला लिया जायगा।"

कुछ देर से गोली चलनी बन्द थी। भीतर से बंद हुई तो बाहरवालों ने भी बन्द कर दी। एनेटोव एक कमरे में बड़ी चिन्ता में बैठे थे। गोली के शब्द सुनते समय यह समझ रहे थे कि लड़ाई हो रही है। आशा बनी थी। अब सब सन्नाटा था। क्या लाल सेना भाग खड़ी हुई, क्या क्रांति मर गई, क्या थोड़ी देर में उन्हें भी गोली मारी जायगी? वे यह जानते थे कि सफ़ेद सेना के अफ़सर सभी शत्रुओं को गोली मार देते हैं, इस बात का विचार नहीं करते हैं कि लाल सेना की तरफ़ से उन्हें एक दफ़े से ज़्यादा क्षमा प्रदान हो चुकी है। इसी सोच में एनेटोव और उनके साथी अँधेरे में बन्द थे कि उन्हें दरवाज़ा खोले जाने का शब्द सुनाई दिया। अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि उनका अंत समय आ गया है, मगर दरवाज़ा खोलनेवाले ने हर्षनाद में कहा—"बधाई है! अफ़सर भाग गये और यनकर तुम्हारी शरण चाहते हैं।"

एनेटोव सफ़ेद सेना के सिपाहियों के पास आ गये। उन्होंने एक स्वर में कहा—"दोहाई है, एनेटोव! हमें जीवन-प्रदान करो। हमने पाप किया है। हमें अपनी शरण में लो।"

"अच्छी बात है। तुम्हें बचाऊँगा।"

"यदि उन्होंने तुम्हारी न सुनी तो हम क्या करेंगे?"

"तुम्हें मारने के पहले वे मुझे पहले मारेंगे।"

"मगर हम तो मरना नहीं चाहते। हमें उससे क्या लाभ होगा?" लाल सेना ने जब एनेटोव को दरवाज़े पर देखा तब उसके हर्ष का ठिकाना न था। "एनेटोव ज़िंदा-बाद" के नारे लगाने लगे।

एनेटोव ने गम्भीर स्वर में कहा—"भाइयो! अफ़सर भाग गये। सिपाही हमारी शरण में आये हैं।"

शोर हुआ—"सबको फाँसी दे दो। बड़े धोखेबाज़ हैं। शैतान हैं!"

एनेटोव ने फिर कहा—"नहीं, जो हमारी शरण में आया उसे क्षमा ही प्रदान करना क्रान्ति का संदेश है। उन्हें तुम नहीं मार सकते।"

"हम एक को भी जीता न छोड़ेंगे।"

"तुम उन्हें नहीं मार सकते। वे हमारे बंदी हैं।"

भीड़ सहम उठी। फिर एनेटोव ने कहा—"उन्होंने शस्त्र रख दिये हैं, मैंने उन्हें जीवन-प्रदान कर दिया है।"

"परन्तु हम जीवन-प्रदान उन्हें नहीं कर सकते।" एक भारी-भरकम सिपाही ने कहा।

एनेटोव तमंचा निकालकर खड़े हो गये—"मैंने उन्हें जीवन-प्रदान किया है। मैं अपनी बात की रक्षा इस तमंचे से करूँगा।"

"यह क्या? उन शैतानों के वास्ते हमारे ऊपर हथियार चलेगा? बाग़ी!"

"हाँ, मैं तुम पर शस्त्र चलाऊँगा। तुम क्रांति के सिपाही नहीं। तुम निहत्थों को मारने को कहते हो। हत्यारे हो। निहत्थे को मारना क्रांति को मारना है।"

सिपाही समझ गये, मगर जो जन-समूह बाहर खड़ा था, नहीं समझा। तब एक एक आदमी के साथ कुछ सिपाही जाकर उन्हें जेल तक पहुँचा आये। क्रांति की जय हुई। पंचायती राज स्थापित हुआ।

परिवर्तन

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल बी०

आज न वह अतुलित उमङ्ग है
आज न वह मस्ती है
आज न दिल में अरमानों की,
हरी-भरी बस्ती है।
उन उजड़ी अभिलाषाओं का
धुँधला-सा सूनापन,
आज तड़प कर कह जाता है,
तेरी क्या हस्ती है।
आज न उर में पुलक न मन में
आशा का नर्तन है

आज न जीवन में मधु श्वासों में
सुख का स्पन्दन है।
आज न वह मञ्जुल तन्मयता
आज न वह तड़पन है
सिर्फ़ कसक उठता रह रह कर,
प्राणों में क्रन्दन है।
आज नहीं सुन्दर स्वप्नों का,
मधुमय मृदु गुञ्जन है
आज विश्व के निठुर सत्य का
उर में गुरु गर्जन है॥

फ़्रांस में भारत

लेखक, श्रीयुत वासुदेव विष्णुदयाल, बी० ए० (आनर्स)

जो फ़्रांसीसी विद्वान् संस्कृत-भाषा जानता होगा, भारत से प्रेम का नाता अवश्य जोड़ेगा। फ़्रेञ्च-भाषा अँगरेज़ी की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। मुझे इस बात का ज्ञान उस समय हुआ जब सन् १९३५ में मैं काँगड़ी-गुरुकुल में ब्रह्मचारियों को फ़्रेञ्च पढ़ाने में लगा था। मैंने ब्रह्मचारियों को फ़्रेञ्च के कई ऐसे शब्द बताये जो संस्कृत से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उनमें से कुछ शब्द यहाँ लिखता हूँ—

फ़्रेञ्च-शब्द	उच्चारण	अर्थ	संस्कृत-शब्द
Genou	ज़ेनु	घुटना	जानु
Hier	ह्येर	कल	ह्यः
Don	दोन्	दान	दानम्
Tes	ते	तेरा	ते
Mon	मों	मेरा	मम
Dent	दाँ	दान्त	दन्तः
Gravier	ग्राव्ये	कङ्कड़	ग्रावन् (यहाँ कुछ भेद है; ग्रावन् कङ्कड़ नहीं है)
Joug	ज़ु*	दासता	युगः
Sept	सेत*	सात	सप्तन्
Nos	नो	हमारा	नः †
Vos	वो	तुम्हारा	वः †
Oeil-de-boeuf ‡	ओय दे बफ़	गवाक्ष	गवाक्षः
Sommes	सोम	(हम) हैं	स्मः

* Joug में 'ग' तथा Sept में 'प' हैं, परन्तु उच्चरित नहीं होते।

† नः और वः नो और वो हो जाते हैं हश् के परे होने पर।

‡ यहाँ उच्चारण में भेद है, अर्थ में नहीं। इस शब्द का अर्थ है "गौ की आँख"।

मेरा उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य है। किसे नहीं मालूम है कि दे ला वाले पुसें, बेरनुफ़, ज़ाकोल्यो, सिलवें लेवी, मिच्ये प्रभृति फ़्रेञ्च विद्वान् भारत को पूजा की दृष्टि से देखते आये हैं?

कई शताब्दियों से फ़्रांस का कोई न कोई लेखक भारत के सम्बन्ध में लिखता आया है। अठारहवीं सदी में वोल्तेर भारत की प्रशंसा का पुल बाँधते दिखाई देते हैं। जब यजुर्वेद की एक प्रति फ़्रांस में भेजी गई थी तब उन्होंने उसे पश्चिम को भारत का सबसे मूल्यवान् उपहार बताया था।

वोल्तेर के पश्चात् बेरनुफ़ का नाम आता है। उनके लिखे हुए भारत-सम्बन्धी ग्रन्थ आज भी पढ़े जाते हैं।

ज़ाकोल्यो का नाम भारत के बच्चे बच्चे को आदर के साथ लेना चाहिए। उनकी की हुई सेवाओं को भूल जाना अपने ऊपर कृतघ्नता का कलंक पोतना है। उनकी 'भारत में बाईबल' नाम की पुस्तक की पहली पंक्तियों को पढ़कर हर एक भारतीय का हृदय आनन्द से नाच उठता है। ज़ाकोल्यो साहब लिखते हैं—

"हे प्राचीन भारत-भूमि! हे मनुष्य-जाति की आदि जननी! तेरा जयजयकार हो! पूज्य एवं समर्थ धात्री! क्रूर परचक्रों की शताब्दियाँ भी तुझे आज तक विस्मृति-धूलि के नीचे नहीं दबा सकीं—मा! तेरी जय हो! हे धर्म की, प्रेम की, कविता की एवं विज्ञान की पितृभूमि! हम तुझे प्रणाम करते हैं और चाहते हैं कि तेरे भूतकाल का पुनरावर्तन हमारे पश्चिम के भविष्यकाल में होवे।"

यह है प्रार्थना जो एक पक्षपात-रहित विदेशी के हृदय से निकली है। उन इतिहास-लेखकों को जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए भारत को गिराते रहते हैं, इसे पढ़कर अपना हृदय टटोलना चाहिए। ज़ाकोल्यो के अनेक ग्रंथों में से हर एक भारतीय को कम से कम La Bible daus l' Iude ('भारत में बाईबल') तथा Christna et le Chröst (कृष्ण और क्राईष्ट) से अवश्य परिचित होना चाहिए।

एद्वार शुरे का नाम भी उल्लेखनीय है। रोमें रोलाँ की तरह विश्व-प्रेम की स्थापना करने के लिए उन्होंने पर्याप्त कार्य किया है। एक स्थान पर उन्होंने भारत के बारे में यह कहा है—

"जैसे एक आर्य्य सती चितारूढ़ हुई अपनी सन्तति की ओर मोतियों की माला फेंकती है, ऐसे ही भारतमाता मरते मरते अल्प-वयस्क योरप को एक दयायुक्त धर्म और अनेक फल देनेवाले पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उपहार-रूप में समर्पित कर रही है।"

यदि आज फ़्रांस में भारत की घटनाओं को जानने के लिए लोगों में इतनी उत्सुकता है तो अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि उस देश के प्रमुख लेखक तथा विचारक रोमें रोलाँ अपनी लेखनी-द्वारा वहाँ भारत का प्रकाश फैलाते रहते हैं। उन्होंने महात्मा गांधी की जो जीवनी लिखी है वह साठ बार से अधिक छप चुकी है। इसी जीवनी को पढ़कर श्रीमती मीराबेन ने महात्मा जी की शिष्यता ग्रहण की है। रोमें रोलाँ ने स्वामी विवेकानन्द तथा उनके गुरु परमहंस रामकृष्ण का भी जीवन-चरित लिखा है। परमहंस जी के जीवन-चरित में लेखक महोदय ने भारत के अन्य कई सुपुत्रों पर भी थोड़ा-बहुत लिखा है। रोमें रोलाँ ने महर्षि दयानन्द के भारत के प्रति किये हुए उपकार को एक वाक्य में इस तरह लिखा है—

"दयानन्द ने भारत के मृतप्राय शरीर में अपनी प्रबल शक्ति, विश्वास और सिंह-समान पराक्रम का संचार किया।"

रोमें रोलाँ ने संसार का सबसे बड़ा उपन्यास* लिखा है, जिस पर उन्हें 'नोबेल प्राइज़' मिला है। इसके नायक के मुख से उन्होंने गीता का एक श्लोक कहलवाया है।

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डाक्टर राधाकृष्णन की रचनाओं का अनुवाद फ़्रांस में छपता रहता है। पाण्डिचेरी में ज़ाँ एरवेर योगीन्द्र अरविन्द घोष के ग्रंथों तथा लेखों का उल्था करने में लगे हुए हैं। जब 'मदर इंडिया' का फ़्रेञ्च में अनुवाद छपा था, भारत के मित्रों ने सोचा कि इसका उत्तर भी फ़्रेञ्च में छपना चाहिए। मादाम ज़िरेत ने स्वर्गीय लाला लाजपतराय की पुस्तक का भाषान्तर तुरन्त कर दिया और वह प्रकाशित हो गया। उसमें रोमें रोलाँ ने एक लघु भूमिका लिखी थी, जो पठनीय है। भूमिका के अन्त में वे लिखते हैं—

"अपने पददलित देश का परित्राण करते हुए लाजपतराय ने उसे 'दुःखी भारत' कहा है। मैं तो उस भूमि को 'सुखी भारत' कहूँगा जिसने गांधी, दयानन्द, विवेकानन्द तथा इस पञ्जाब-केसरी लाजपतराय को जन्म दिया है।"

L' Humanite तथा कई अन्य समाचार-पत्रों में भारतीय समाचारों का प्रकाशन होता है। फ़्रांस में एक ऐसी वार्षिक पत्रिका है जिसका नाम ही "भारत और उसकी आत्मा" है। वह १९२८ से निकलने लगी है। वर्षों से फ़्रांस के महाविद्यालय* में संस्कृत पढ़ाई जाती है। ये सब बातें बताती हैं कि आज-कल पहले से कहीं ज़्यादा फ़्रांस का ध्यान हमारी ओर आकृष्ट है।

रोमें रोलाँ एक नई दुनिया का स्वप्न देख रहे हैं, जो पश्चिम और पूर्व का मेल होगा। इस दुनिया के निर्माण में फ़्रांस के कई लाल लगे हुए हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" भारत का आदर्श है। अगर वह दुनिया बनी तो उसका स्वागत करने के लिए भारत किसी दूसरे देश से पीछे नहीं रहेगा। इस समय जब यहाँ स्वतन्त्रता का संग्राम हो रहा है, भारत संसार के तमाम अन्य देशों की सहानुभूति का भिक्षुक है। आशा है, भारत और फ़्रांस सरीखे उन्नत देश के बीच जो सम्बन्ध है, हर एक सूर्योदय के साथ दृढ़तर होता जायगा।

* Jean Christophe

* College de France

वस्तु-जगत् और भाव-जगत्

लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न

वयोवृद्ध श्रीयुत सान्याल महोदय सुदूर बंगाल के शान्तिपुर में बैठे हिन्दी की उन्नति की कामना ही नहीं करते रहते, किन्तु उसकी उन्नति के लिए क्रिया-शील भी रहते हैं। उनका यह आदर्श हिन्दी-प्रेम हिन्दीवालों के लिए अनुकरणीय है! अपने इस महत्त्वपूर्ण लेख में उन्होंने भाव-जगत की अच्छी मीमांसा की है।

तीन वस्तुएँ मनुष्य के लिए अपरिहार्य हैं—अन्न, वस्त्र तथा वास-स्थान। अन्न के बिना जीवन-धारण नहीं हो सकता, वस्त्र के बिना लज्जा-निवारण नहीं होता और वास-स्थान के बिना शीत, आतप तथा वर्षा से रक्षा नहीं होती। आदिम-अवस्था में अपनी प्रकृति के उपयोगी जैसा-तैसा खाद्य मिलने से, जैसे-तैसे आच्छादन से शरीर को आवृत कर सकने से और जहाँ-तहाँ थोड़ा-सा आश्रय पाने से मनुष्य सन्तुष्ट रहता था। पर इन सामान्य अभावों की पूर्ति करना भी उसके लिए उस काल में कभी कभी असंभव हो जाता था—अनेक चेष्टाओं के द्वारा, अनेक संकटों का सामना करके उसे अपने अभावों की पूर्ति करनी पड़ती थी। पहले-पहल वह अपने शारीरिक अभावों को दूर करना ही यथेष्ट समझता था। किन्तु क्रमशः वह केवल उसी से सन्तुष्ट नहीं रहा—केवल आवश्यक वस्तुओं में ही उसकी रुचि सीमित नहीं रही। वह पहले से उत्तम खाद्य से अपनी रसना को तृप्त करने का और पहले से अच्छे आच्छादन से अपनी देह को सज्जित करने का अभिलाषी हुआ। अधिक सुखद वास-भवन के सिवा सामान्य कुटीर से उसके मन को सन्तोष नहीं होता था। भोग-प्रवणता उसके मन को अपने अधिकार में करने लगी। उन्नततर जीवन-यात्रा के उपकरणों का संग्रह करना उसका लक्ष्य बना और उन उपादानों के उद्भावन तथा निर्माण में उसे अपने मस्तिष्क को खपाना पड़ा। इस मस्तिष्क-संचालन से उसकी बुद्धि का विकास होने लगा और नये नये आराम के द्रव्य उत्पन्न होने लगे। किन्तु उपभोग-प्रवृत्ति के साथ साथ मनुष्य अधिक ऐश की वस्तुओं के लिए व्यग्र होने लगा। वह पुराने द्रव्यों पर वीतराग और अनावश्यक नवीन द्रव्यों के लिए लालायित होने लगा। मनुष्य-समाज में असन्तोष का आविर्भाव हुआ। ये सब भाव—अर्थात् हृदय के आवेग—के काम हैं। अवास्तव भाव से वास्तव अभाव, अभाव से असन्तोष, असन्तोष से उद्यम और उद्यम से मानव-सभ्यता। सुतरां सभ्यता के मूल में भाव का ही प्रभाव है।

मोटा खाकर, मोटा पहनकर और झोपड़ी में रहकर भी आदमी जी सकता है। तब क्यों लोग पूरी-कचौड़ी, हलुआ-रबड़ी के लिए ललचाते हैं? तब क्यों लोग अद्धी-मलमल, रेशम-पशमीना के लिए व्यग्र होते हैं? तब क्यों लोग वास के लिए मर्मर-मण्डित आलीशान दो-मंज़िले चौ-मंज़िले महल बनवाते हैं? अनावश्यक द्रव्यों में मनुष्य की इतनी रुचि क्यों होती है? बहुत लोग कहेंगे कि विलास-प्रवणता ही इसका कारण है। किन्तु उपभोग-प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम विलासिता है। साधारण वस्तुएँ जब मन को सन्तोष नहीं दे सकतीं तब उत्कृष्टतर वस्तुओं से प्रत्येक इन्द्रिय को तृप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न होती है। आनन्द प्राप्त करने के निमित्त ही यह आकांक्षा है। आनन्द वास्तव पदार्थ नहीं—वह एक भाव-मात्र है।

कुछ वस्तुएँ आवश्यक और कुछ अनावश्यक मानी जाती हैं। जो वस्तुएँ हमारे काम की नहीं हैं वही अनावश्यक हैं। सब कोई अनावश्यक वस्तुओं से बाज़ आना चाहते हैं। किन्तु कौन कौन वस्तुएँ आवश्यक हैं और कौन कौन अनावश्यक, इसका सम्यक् निरूपण होना चाहिए। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो साधारणतः अनावश्यक सिद्ध होती हैं, किन्तु वास्तव में वे आवश्यक हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं जो अनर्थक समझे जाते हैं, किन्तु यथार्थ में उनका प्रयोजन है। जीव-जन्तुओं की श्वास-वायु पौधों के लिए उपकारी है। उसी तरह उद्भिदों के द्वारा दिवा-भाग में परित्यक्त वायु जीव-देह के लिए कल्याणकर है।

दाल, तरकारी तथा फलों के छिलके अनावश्यक गिने जाकर परित्यक्त होते हैं, किन्तु गोरू, बकरे इत्यादि पशुओं के वे उपादेय खाद्य हैं। मनुष्य का ज्ञान सीमित है, इसी से अनेक वस्तुओं को वह अप्रयोजनीय समझता है। जड़ के साथ जड़ के और जड़ के साथ जीव के सम्बन्ध के अनुसन्धान में विज्ञान नियत है। एक दिन ऐसा आनेवाला है जब कोई वस्तु का कार्य अनावश्यक नहीं विवेचित होगा।

जो लोग तापस-जीवन-पथ के पथिक हैं वे कठोर तपःसाधन के निमित्त संसार की जितनी चीज़ें हैं और जितने काम हैं उनका त्याग करते हैं और क्षुत्पिपासा, शीत-ग्रीष्म को हटाकर मनुष्य को जड़ की अधीनता से मुक्त होने का परामर्श देते हैं। वे कहते हैं कि जीवात्मा के लिए बाहर का कोई द्रव्य प्रयोजनीय नहीं। जड़ की अधीनता जीवात्मा को त्याज्य है। तपस्वियों के लिए जो कुछ करना चाहिए वह साधारण लोगों के लिए सम्भव नहीं। यद्यपि मनुष्य को भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी इत्यादि विषयक हज़ारों कष्ट सहने पड़ते हैं, तथापि उस कारण जड़ के भय से एकाएक तपोवन को भागकर अपनी मुक्ति की चेष्टा के बदले जड़ को ही अपना गुलाम बना रखने की चेष्टा करने से अधिक लाभ होता। विज्ञान यही काम साधारण जनों के लिए कर रहा है। अतएव मनुष्य-जाति को यदि स्थायी-रूप से जड़ के बन्धन से छुटकारा पाना हो तो उसके लिए विज्ञान का अनुशीलन सबसे पहले आवश्यक है।

इस क्रम-विकासमान संसार को अधिक आनन्दमय बनाने की प्रवृत्ति मनुष्य-जाति के मन में जाग उठी और वह संबद्ध होकर परस्पर प्रीति का बन्धन स्थापित करने को व्यस्त हो गई। इसी का नाम समाज है। केवल जड़ के साथ मानव का सम्बन्ध-स्थापन और उसका उन्नति-विधान ही मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य नहीं रहा, क्योंकि केवल शुष्क जड़-प्रकृति के गुणागुण से ही विज्ञान का सम्बन्ध है। स्नेह, कृतज्ञता, स्वार्थ-विसर्जन, करुणा प्रभृति कोमल मनोवृत्तियों का उसमें स्थान नहीं। तथापि जीवन को मधुर तथा उपभोग्य बनाने के लिए इन कोमल वृत्तियों को अस्वीकार करने का उपाय नहीं। ये धरातल को नन्दन-कानन में परिणत करती हैं। यदि सभ्यता की चाप से अत्यावश्यक ज्ञान-विज्ञान के सिवा बाक़ी सब चीज़ों को विदा करना पड़े तो समाज का काम—गृहस्थ-जीवन का काम कैसे चल सकेगा?

यद्यपि आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में नारी का हाथ अधिक नहीं है, तथापि जगत् में नारी-जाति नगण्य नहीं—गृहस्थ-जीवन में नारी का स्थान अति उच्च है। शत बाधाओं के भीतर भी कितने माधुर्य के साथ, कितने शान्तत्व में, कितने धैर्य का अवलम्बन कर वह गृह-नौका को खेती है—कितनी क्रीड़ा के साथ वह पग बढ़ाती है, कितने विनय के साथ वह बोलती है, कितनी मिठास के साथ वह हँसती है, कितनी ममता के साथ वह हर काम में प्रवृत्त होती है! प्रकृति ने कोमल तथा मधुर को मिलाकर उसे गढ़ा है। उस स्वाभाविक कोमलता तथा माधुर्य की रक्षा करनी उसका कर्तव्य है। वेश-विन्यास में थोड़ा-सा ध्यान देना उसके लिए अनुचित नहीं। सौन्दर्य का ज्ञान न रहने से क्या वह गृह को इतना उत्तम ढंग से सँवार सकती और हमारी माता का काम, हमारी पत्नी का काम ऐसी चारुता के साथ सम्पन्न कर सकती? वह उदासीन रहती तो असहाय सन्तानों का पालन तथा निरुपाय पुरुषों का सन्तोष-विधान कौन करता? गृहस्थाश्रम के चलाने में वास्तव की अपेक्षा भाव का प्राधान्य अधिक है।

विज्ञान और दर्शन युक्ति तथा तर्क के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। किन्तु केवल युक्ति और तर्क के द्वारा संसार के काम नहीं चल सकते। बुद्धि के जगत् को छोड़कर एक दूसरा जगत् भी है—वह है हृदय का जगत्, भाव का जगत्, वेदना का जगत्, राग का जगत्, रस का जगत्। संसार में युक्ति की अपेक्षा भाव का गुरुत्व अधिक है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, राग, द्वेष, अहङ्कार, धैर्य, क्षमा, दया, स्नेह, स्वार्थ-त्याग इत्यादि का सम्पर्क भाव के साथ है; और चिन्ता, युक्ति, स्मृति, गणित, विज्ञान, दर्शन इत्यादि का सम्पर्क बुद्धि के साथ।

भाव से ही सौन्दर्य आदि मधुर अनुभूतियों की उत्पत्ति तथा सुकुमार वृत्तियों की सृष्टि होती है, और जीवन में सुख की धारा प्रवाहित होती है। यह विश्व सौन्दर्य का एक विशाल सागर है। कवि, चित्रकार, भास्कर इत्यादि शिल्पी इस महार्णव से नाना रत्नों का आहरण करते हैं और अपने अन्तरस्थ भाव के प्रयोग के द्वारा संगृहीत रत्न-समूह का संस्कार करके हमारे सामने उपस्थापित करते हैं। उन रत्नों के सौन्दर्य से हमें चकाचौंध हो जाती है। विभिन्न प्रकार के शिल्पी उनकी उपलब्धि कर विभिन्न प्रकार से उनका उपयोग करते हैं—कवि भाषा के द्वारा, चित्रकार आलेख्य के द्वारा, भास्कर मर्मर-मूर्ति के द्वारा, गायक स्वर-लहरी के द्वारा, नर्तक शारीरिक गतियों तथा भंगियों के द्वारा अपनी अपनी शक्ति के अनुसार विश्व के अनिर्वचनीय तथा अक्षय सौन्दर्य का कथञ्चित् परिचय देने को समर्थ होते हैं; और जन-साधारण को अपने अपने आनन्द का भाग देकर कृतार्थ करते हैं।

कभी कभी वे अपने अन्तर में ही किसी सुन्दर भाव की सृष्टि करते हैं और वास्तव उपादानों की सहायता से उसे स्थायी रूप देकर हमें चमत्कृत करते हैं। वे जगत् से ही उपादान-समूह चयन करते हैं और उन्हें सुन्दर करके व्यक्त करना चाहते हैं। कितनी स्मृतियाँ, कितनी व्यथायें, कितने आवेग, कितने उच्छ्वास जो साधारण लोगों के चित्त में सुख-दुःखों की लहरें उठाकर, उद्योग वा शक्ति के अभाव से, विलीन हो जाते हैं, वे शिल्पी के अन्तर में संचित होते हुए उनके सौन्दर्य के आदर्शानुसार काव्य के, चित्र के, भास्कर्य के, संगीत के अथवा नृत्य के आकार में परिस्फुट होते हैं। जिसकी प्रतिभा जितनी अधिक है उसे उतनी परिमाण में साफल्य मिलता है। अति उच्च प्रतिभावान् शिल्पी की अनेक कृतियाँ अमर हो जाती हैं। रैफ़ेल की मैडोना, शाहजहाँ का 'ताज, शेक्सपियर की नाटकावली, वाल्मीकि का रामायण, कालिदास की शकुन्तला तथा मेघदूत अमर शिल्प के उदाहरण हैं।

सृजन का एक विपुल आनन्द है और उसके वितरण में भी निविड़ तृप्ति होती है। विश्वकर्मा ने इस सौन्दर्यमय विश्व का सृजन करके अपार आनन्द प्राप्त किया था और उसे हमारे उपभोग के लिए देकर आनन्दमय होकर विराज रहे हैं। हम उस सौन्दर्य को प्रत्यक्ष कर चिर दिन आनन्द से अभिभूत होते हैं। सौन्दर्य की अनुभूति वा सृजन भाव का ही कार्य है, बुद्धि का नहीं। प्रबल कल्पना-शक्ति के बिना सौन्दर्य का यथार्थ अनुभव वा सृष्टि सम्भव नहीं।

शिशुगण अवास्तव भाव-राज्य के अधिवासी हैं। उनके खेलों में कल्पना की इयत्ता नहीं। प्राप्तवयस्क व्यक्तिगण मानो वास्तव की अपेक्षा अवास्तव राज्य में विचरण करना अधिक पसन्द करते हैं। जो लोग काव्य, नाटक वा कथा-साहित्य की रचना वा पाठ करते हैं वे सामयिक तौर पर स्वप्निल अनुभूति-समूह के द्वारा परिव्याप्त रहते हैं। नाटकाभिनय-काल में और अवाक् वा सवाक् चलचित्र की प्रदर्शनावस्था में दर्शकगण कल्पना-लोक में स्थानान्तरित होते हैं। गायक जब अपने गान में कोई वेदना परिस्फुट करने को व्यस्त रहता है तब वह वास्तव जगत्-सम्बन्धीय चेतना खो बैठता है। साधक जब अनन्यमना होकर अपने उपास्य देवता के ध्यान में निरत रहता है तब वह इस स्थूल-जगत् के अस्तित्व को भूलकर जिस राज्य को पहुँचता है, वहाँ अपने उपास्यदेवता के अतिरिक्त और कुछ भी उसके देखने में नहीं आता। पागल की बात ही क्या है। वह तो अवास्तव में ही डूबा रहता है। कोई कोई स्वेच्छा से पागल बनते हैं। मादक द्रव्य सेवन का तात्पर्य क्या है? वास्तव-जगत् को छोड़कर अवास्तव-जगत् में रहने की आकांक्षा के सिवा वह और क्या है?

देखा जाता है कि वास्तव को लेकर मनुष्य का जितना कारबार है, अवास्तव को लेकर उससे अधिक है। पैण्डोरा की पिटारी में दुष्ट कीटों के भीतर आशा नाम्नी क्षुद्र परी रक्खी गई थी, इस हेतु जीवन किसी क़दर सहनीय हुआ है। किन्तु यह परी किस उपादान से गठित है? वह उपादान अवास्तव-तन्तु-निर्मित जाल से भिन्न और कुछ भी नहीं। विरहिणी भाव-रूपी बेड़े पर चढ़कर प्रवासी प्रियतम के कण्ठलग्न होती है। मानिनी का मान तो एक प्रकार का नाट्याभिनय है। स्नेह, ममता, सहानुभूति, दया, दान, कृतज्ञता, धैर्य, क्षमा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य इत्यादि सभी हृदय की वृत्तियाँ हैं। अतएव वे भाव से समुत्पन्न हैं। इसी से कहना पड़ता है कि वास्तव-जगत् की अपेक्षा भाव-जगत् के साथ हमारा सम्बन्ध घनिष्टतर है।

सर जगदीशचन्द्र बोस

लेखक, श्रीनाथसिंह

सर जगदीशचन्द्र बोस की मृत्यु वर्तमान समय की एक बहुत भारी दुःखद घटना है। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने लगभग ८० वर्ष की एक ऐसी परिपक्व अवस्था में शरीर-त्याग किया है जिस उम्र तक बहुत कम भारतीय पहुँच पाते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि उन्होंने अपने पूरे पचास वर्ष अपने प्रिय कार्य—वैज्ञानिक अनुसंधान में लगाये और उनके हृदय में कदाचित् ही कोई महत्त्वाकांक्षा रही हो जो उनके जीवन-काल में न पूरी हो चुकी हो। तथापि हम दुःखी हैं, इसलिए कि उनकी मृत्यु से वैज्ञानिक जगत् में भारत का जो स्थान रिक्त हो गया है उसकी पूर्ति होनी अभी सम्भव नहीं जान पड़ती।

संसार में साहित्य में जिस प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत के लिए एक आदरणीय स्थान प्राप्त किया है, संसार की राजनीति में जिस प्रकार महात्मा गांधी ने भारत को दृढ़ स्थान प्रदान कराया है, वैसे ही स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस ने वैज्ञानिक जगत में भारत का मस्तक ऊँचा किया है। सच तो यह है कि विश्व में भारत की धाक उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र और महात्मा गांधी से भी पहले जमाई थी। विश्व को जो सन्देश कवीन्द्र ने अपनी वाणी-द्वारा और महात्मा गांधी ने अपने कार्यों-द्वारा दिया है, वही संदेश सर जगदीश ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा दिया है। उनके वैज्ञानिक अनुसन्धान पाश्चात्य वैज्ञानिकों की भाँति नर-संहारक या सांसारिक सुख-भोग-प्रेरक न थे। उन्होंने उसी चिरन्तन सत्य को वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा प्रामाणिक किया है जिसे भारत के प्राचीन ऋषियों ने अपने तपोवनों में देखा था। सब संसार प्राणमय है, इसलिए सब प्रेममय हो, यही सर जगदीश का सन्देश था और यह सन्देश कोरी कल्पना नहीं था, उन्होंने इसको अपटुडेट वैज्ञानिक प्रयोगों-द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखा दिया था। फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक रोम्याँ रोला ने उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा था—

"ओ जादूगर! तुमने हमें विश्व के उस मूक जीवन के द्वार तक पहुँचाया है जो अभी कल तक मृत और निशा के अन्धकार में विलीन समझा जाता था। यह स्पष्ट है कि इस शताब्दी में भारत बिना कुछ गँवाये योरप के बौद्धिक प्रयत्नों में इतना भाग लेगा कि संसार को आत्मज्ञान हो जायगा।"

वृक्ष-पौधों और घासों में भी जान होती है, वे भी सुख-दुख का अनुभव करते हैं और हँसते तथा रोते हैं, यह भारतीय दार्शनिक कहा अवश्य करते थे, परन्तु इन सबको प्रत्यक्ष दिखा देने का श्रेय सर जगदीश को ही प्राप्त हुआ है। उन्होंने ऐसे भावग्राही नाज़ुक यन्त्र बनाये जिनके द्वारा इन जड़ पदार्थों का सुख-दुःख जानना भी सम्भव हो गया। योरप-अमरीका के अनेक वैज्ञानिकों ने इन यंत्रों की परीक्षा की और इनकी क्षमता को स्वीकार किया।

वनस्पतियों में एक प्रकार की चेतन-शक्ति होती है, इसमें सर जगदीश और महात्मा गांधी दोनों महापुरुषों का बराबर विश्वास रहा है। इस सिलसिले में यहाँ एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। सन् १९१५ ईसवी की बात है। महात्मा गांधी पहले-पहल कलकत्ता में सर जगदीश की प्रयोग-शाला देखने गये थे। जब सूर्य डूबने लगा तब महात्मा गांधी ने अपने नित्य के अनुसार प्रार्थना करने की इच्छा प्रकट की। सर जगदीश और उनके शिष्य भी इस प्रार्थना में सम्मिलित हुए। उस समय इन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब इन्होंने देखा कि स्क्रीन पर एक विद्युत्यंत्र की सुई एक ताड़ की पत्तियों की गति अङ्कित कर रही है। ऐसा जान पड़ता था मानो पत्तियाँ प्रार्थना में निरत मनुष्य की भाँति अपने हाथ जोड़ रही हैं। इस घटना का महात्मा गांधी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसके बाद से उन्होंने अपने किसी अनुयायी को कभी सूर्यास्त के बाद फूल या पत्ती नहीं तोड़ने दिया। उनका ख़याल है कि सूर्यास्त के पश्चात् ये वनस्पतियाँ विश्राम करती हैं या प्रार्थना करती हैं।

विलायत के प्रसिद्ध पत्र 'मनचेस्टर गार्जियन' ने सर जगदीश के सम्बन्ध में एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया है। उसमें उनकी युवावस्था की विलायत की उन यात्राओं का ज़िक्र किया गया है जो वे विश्राम

ग्रहण करने से पूर्व प्रतिवर्ष किया करते थे और पौधों की सजीवता प्रमाणित करने के लिए वहाँ के विश्वविद्यालयों में लेक्चर देते थे। योरपवालों के हृदय में पौधों की चेतन-शक्ति के प्रति सहानुभूति-युक्त-ज्ञान उत्पन्न करने की उन्हें इतनी धुन थी कि उन्होंने २० वर्ष तक प्रतिवर्ष इँगलेंड का दौरा किया था। उक्त लेख में पत्र के संवाददाता की एक मीटिंग का संवाद भी उद्धृत किया गया है, जिससे सर जगदीश के चरित पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उक्त अंश इस प्रकार है—

"गार्जियन के संवाददाता को महायुद्ध के पश्चात् की एक स्मरणीय मीटिंग की याद है। यह मीटिंग 'इंडिया आफ़िस' में तीसरे पहर हुई थी। लार्ड बालफ़ोर सभापति के आसन पर विराजमान थे। सर जगदीश अपने पौधों का संकेत अंकित करनेवाले यंत्र के साथ भाषण कर रहे थे। उस यंत्र को उन्होंने अपने ही निरीक्षण में तैयार कराया था और उसमें बराबर सुधार करते रहते थे। वह यंत्र बहुत ही नाज़ुक था। सर जगदीश का क़द छोटा था, उनके बाल भूरे और घने थे और उनका सिर बङ्गाली के सिर का एक अच्छा नमूना था। वे अँगरेज़ी बहुत शुद्ध लिख सकते थे, परन्तु साफ़ साफ़ अँगरेज़ी बोलने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया। वे अपने विषय में तल्लीन थे और अन्त तक बराबर उत्साह से बोलते रहे। प्रत्येक बात का प्रदर्शन वे बालकों की-सी उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ करते थे और अपने सम्भाषण में हास्य का भी अच्छा पुट देते थे। उनकी जैसी ख्याति किसी भारतीय वैज्ञानिक ने संसार में नहीं प्राप्त की। साथ ही किसी 'रिसर्च' करनेवाले का उसके समय में इतना विरोध भी नहीं हुआ जितना कि उनका हुआ था। परन्तु उनके मित्रों ने उन्हें कभी उदास या आलोचकों के प्रति कटु शब्द का प्रयोग करते हुए नहीं देखा। उनमें बहुत बड़ा आत्मविश्वास था और उन्हें इस बात का विश्वास था कि उनके प्रयोगों और परिणामों को संसार को मानना ही पड़ेगा।"

'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी और प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर मेघनाद साहा उनके शिष्यों में थे। श्री रामानन्द चटर्जी ने उन्हें अपने एक लेख में विज्ञान का योद्धा कहा है और उन



[स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस।]

दिनों के संस्मरण लिखे हैं जब वे प्रेसीडेंसी कालेज में प्रोफ़ेसर थे। रामानन्द बाबू का कहना है कि यदि वे वैज्ञानिक न होते तो बङ्गाल के बहुत बड़े साहित्यकार हुए होते। बँगला-भाषा के वे एक अच्छे लेखक थे और बङ्गीय-साहित्य-परिषद् के सभापति रह चुके थे। वे बहुत ही भावुक थे और कला से उन्हें विशेष प्रेम था। कुरूपता उन्हें ज़रा भी सह्य नहीं थी। वे सदैव साफ़-सुथरी पोशाक में रहते थे। 'बोस-इंस्टीट्यूट' की दीवारों के चित्र उनकी कला-प्रियता के प्रमाण हैं। विज्ञान के क्षेत्र में ही वे देश के सेवक नहीं थे। वे राष्ट्रीयतावादी भी थे और भारतीय संस्कृति के बहुत बड़े भक्त थे। गाँवों के प्रति उनके हृदय में अगाध स्नेह था। इस सम्बन्ध में रामानन्द बाबू ने एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख किया है। एक बार जब वे योरप का भ्रमण करके स्वदेश लौटे और उनके सामने जलपान के लिए अच्छे से अच्छे पदार्थ रक्खे गये तब उन्होंने बिना उनको हाथ लगाये हुए कहा—"पहले लाई और हरा मिर्चा लाओ!" जब ये

चीज़ें लाई गईं तब वे उन पर ऐसे टूटे मानो महीनों के भूखे हों। डाक्टर मेघनाद साहा ने 'लीडर' में उनके प्रति जो श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है उसमें उन्होंने भी लिखा है कि "सर जे० सी० बोस महान् वैज्ञानिक ही नहीं किन्तु महान् देश-भक्त भी थे। हमारी मातृभूमि की प्राचीन संस्कृति से उन्हें अगाध स्नेह था।"

सर जगदीश का जीवन-वृत्तान्त किसी उपन्यास से कम रोचक नहीं है। एक ऐसे समय में जब योरप के वैज्ञानिक यह मानने के लिए तैयार ही नहीं होते थे कि भारतीय भी विज्ञान में चमत्कार दिखा सकते हैं, उनका इस ओर अग्रसर होना उन्हीं के जैसे अजेय साहसी का काम था। उन्हें पग पग पर जो कठिनाइयाँ भोगनी पड़ी हैं उनका भी विस्तार के साथ यहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता।

सर जगदीशचन्द्र वसु का जन्म ढाका-प्रांत के रारीखाल नामक ग्राम में ३० नवम्बर सन् १८५८ को हुआ था। उनके पिता श्री भगवानचन्द्र वसु सब डिवीज़नल अफ़सर थे।

उनके पिता ने उनको गाँव की पाठशाला में ही पढ़ने को भेजा। मातृ-भाषा-द्वारा शिक्षा प्राप्त करने एवं ग़रीब किसानों और मज़दूर बच्चों के साथ पढ़ने से उन पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की गहरी छाप लग गई।

सन् १८७५ में उन्होंने सेंट ज़ेवियर कालिजिएट स्कूल से मैट्रिक, सन् १८७७ में उसी कालेज से एफ़० ए० और १८८० में बी-एस० सी० की परीक्षा पास की।

भारत में बी-एस० सी० पास करने के पश्चात् उन्होंने १८८४ में केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय से नेचरल साइन्स में बी० ए० और १८८३ में लन्दन-विश्वविद्यालय से बी-एस० सी० आनर्स के साथ पास किया। शिक्षा समाप्त कर भारत लौटने पर वे प्रेसीडेन्सी कालेज में सन् १८८७ में विज्ञान के प्रोफ़ेसर हो गये।

कालेज में प्रोफ़ेसर होते ही उन्होंने विद्युत्तरंग-सम्बन्धी खोज आरंभ की। तीन मास में उन्होंने उस यन्त्र का आविष्कार किया जिससे विद्युत्-चुम्बकीय-विकिरण (इलेक्ट्रो मेगनेटिक-रिओलिशन)-सम्बन्धी खोजें हो सकती थीं। उन्होंने एक ऐसा यंत्र बनाया जिससे विद्युत्किरण का ध्रुवीय भवन देखा जा सकता था। अपार दर्शक पदार्थों (ओपेक सब्सटेंस) में अदृश्य विकिरण (इनविज़िबिल रेडियेशन) की वक्रांश संख्याओं की भी खोज की।

उनकी इन खोजों से वैज्ञानिक जगत् चकित हो गया। रायल एशियाटिक सोसाइटी ने उन्हें अपनी खोज जारी रखने के लिए पार्लियामेंट से सोसाइटी को मिलनेवाली ग्रांट का कुछ भाग दिया। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय ने एम० ए० की और लन्दन ने डी० एस० सी० की आनरेरी डिग्रियाँ उन्हें दीं।

सन् १८९५ में उन्होंने बेतार के तार का आविष्कार किया और कलकत्ते में गवर्नर के सामने उसका सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया।

१८९६ में वे लन्दन गये तब 'फ़ाइडे ईवनिंग डिस्कोर्स' नामक व्याख्यान-माला के व्याख्यान देने को आमन्त्रित किये गये।

इसके बाद उन्होंने विद्युत्तरंग-ग्राहक (इलेक्ट्रिकवेव-रिसीवर) का आविष्कार किया, जिसकी ग्राहक-शक्ति सर ओलिवर लाज के यन्त्र से कहीं अधिक थी। इस यन्त्र से बेतार के तार की तारबर्क़ी में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस खोज से एक बार फिर वैज्ञानिक जगत् आश्चर्य में डूब गया।

उन्होंने सिद्ध किया कि क्षुद्र से क्षुद्र वनस्पति में भी मज्जातन्तु हैं और जीवधारियों से उनका इतना साम्य है कि उनकी विभिन्नता का पता लगाना कठिन है। वाह्योत्तेजन का उन पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। शीत से आकुंचन, मादक द्रव्य से नशा और विष से उनकी भी मृत्यु होती है। उन्होंने लीपज़िग-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर विलियम फेफर के सिद्धांत का खण्डन कर यह भी दिखला दिया कि लाजवन्ती के पौधे में भी स्नायु हैं। पौधों में हृदय की-सी धड़कन, उसकी नाड़ियों-द्वारा नीचे से ऊपर को रस-प्रवाह, साँस के साथ कार्बोनिक-गैस खींचना आदि का भी उन्होंने अपने यन्त्रों-द्वारा प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके दिखला दिया।

उन्होंने अनेक यन्त्र बनाये, जिनसे पौधों के हृदय की धड़कन, उनकी वृद्धि का स्वतः लेखन, उनकी संवेदना आदि देखे जा सकते हैं और दुख होने पर रोना भी सुना जा सकता है। पौधों के सोने के घण्टों का भी उन्होंने पता लगाया।

उनका सबसे अद्भुत यन्त्र तो हाई-मेगनिफ़िकेशन-क्रेस्कोग्राफ है, जिससे कोई भी वस्तु १० लाख गुनी बड़ी दीखती है। इससे पौधों की प्रतिमिनिट की वृद्धि देखी जा सकती है।

भारत-सरकार ने उनको ३ बार—(१९००, १९०७ और १९१४ में) अपने आविष्कार संसार के सामने रखने के लिए योरप भेजा। इसी समय इँग्लेंड में २८ मई सन् १९१४ को उन्होंने दूसरी बार फ़ाइडे-ईवनिंग डिस्कोर्स का व्याख्यान दिया। लन्दन में उनकी 'मेडवल-प्रयोगशाला' को देखने के लिए दूर-दूर से प्रसिद्ध वैज्ञानिक देखने आये। इसी समय वे अमरीका भी बुलाये गये। अमरीका में उनको इतनी संस्थाओं ने निमंत्रित किया कि यदि वे प्रतिदिन दो व्याख्यान देते तो भी एक साल में सब जगह व्याख्यान न दे पाते। भारत-मन्त्री ने उनकी अपूर्व खोजों के लिए उनको ३०,०००) रुपये की रिकरिंग ग्रांट ५ साल के लिए दी।

१८ दिसम्बर १९१३ को उनको रायल कमीशन आफ़ पब्लिक सर्विस ने गवाही देने को बुलाया। उन्होंने अपनी गवाही में अँगरेज़ों और हिन्दुस्तानियों के वेतनों के अन्तर का विरोध किया और बिना रंग के पक्षपात के योग्यतानुसार नौकरियाँ देने की अपील की।

सन् १९१३ में उन्होंने ५ लाख रुपये की लागत से कलकत्ता में 'बोसइन्स्टीट्यूट' स्थापित किया। वहाँ अपनी खोजें और आविष्कार संग्रह किये। बाद में यह संस्था उन्होंने देश को दान कर दी।

सर जगदीश बहुत मितव्ययी थे। उनकी वार्षिक आय लगभग ५०,००० रुपया थी। इसमें वे लगभग ४०,००० रुपया बचा लेते थे। परन्तु इस बचे हुए धन को वे व्यक्तिगत कार्यों में न लगाकर भारत में विज्ञान की उन्नति और प्रसार करने में व्यय करते थे। इस सम्बन्ध में अपने जीवन-काल में वे लगभग सवा लाख रुपया दान कर चुके थे। वे चार लाख रुपया छोड़ कर मरे हैं, परन्तु यह भी उन्होंने अपनी मृत्यु के समय शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न संस्थाओं को दान कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा ज्ञान, अपनी सारी शक्ति और अपनी सारी कमाई देश के लिए उत्सर्ग कर दी है। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि वे कितने महान् थे।

कौन ?

लेखक, श्रीयुत रामकुमार अवस्थी

व्यथित मानस ऊर्म्मियों से
खेलती है कौन बाला?
कौन जाने के समय है
दे रही मधुपूर्ण प्याला?

कौन अपने इन्दु-मुख से
खींचती मम लोल लहरें?
कौन पहनाती हमें है
आज नीरव अश्रु-माला?

नीर से नीरज भरे हो
देखते अपलक हमें हैं,
कह रहे हैं मूक भाषा
मैं तुम्हारा प्रण-निराला।

देखिए मैं तो पथिक हूँ
जा रहा अविराम गति से,
यह जगत तो मार्ग में है
ध्येय मेरा दूर वाला!

शनि की दशा

अनुवादक. पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

चौबीसवाँ परिच्छेद

खिन्नता

प्रायः संध्या हो चली थी। देखते ही देखते पूर्व-दिशा प्रभाहीन हो उठी। अस्ताचलगामी मरीचिमाली की किरणों से पश्चिम गगन सिन्दूर-रञ्जित हो उठा। धीरे धीरे अन्धकार फैलने लगा, चारों दिशायें उसमें विलीन हो गईं। सिराजगञ्ज की एक एक सड़क पर अगणित दीप-शिखायें प्रज्वलित हो उठीं। समीप ही नदी-तट पर बँधी हुई नौकाओं के समूह का प्रकाश खद्योत-माला के समान प्रतीयमान हो रहा था। वर्षा के जल से उमड़ी हुई यमुना की जल-राशि उन्नत वेग से ब्रह्मपुत्र के संगम की ओर प्रवाहित हो रही ी। नदी के तट पर वसु महोदय की अट्टालिका के रामदे में खड़ी होकर वासन्ती एकाग्र चित्त से यह सब ख रही थी। उसने एक लम्बी साँस ली और सोचने गी कि मानव-जीवन में भी इसी तरह एक दिन आशा आलोक उज्ज्वल हो उठता है, बाद को वही निराशा अन्धकार से आच्छादित हो जाता है। मेरे जीवन में ी तो एक दिन आशा का आलोक उदित हुआ था, बाद वही आलोक निराशा के अन्धकार में विलीन हो या। क्या उसके फिर से प्रज्वलित हो उठने की कोई ाशा नहीं है? इस यमुना को ही देखो। यह साल भर क विरह के ताप से संतप्त होने के बाद नव-यौवन के र से गर्वित होकर आज प्रियतम के दर्शन की आकांक्षा आकुल हो उठी है। यही कारण है कि अपने दोनों ही तटों को प्लावित करके बहुकाल की सञ्चित व्यथा को प्रियतम के चरणों में अर्पित करने के विचार से दौड़ी चली जा रही है। आज कितने आनन्द से उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा है! इतने दिनों तक प्रिय की विरह-ताप से संतप्त होने के बाद उसे मिलन की जो आशा हुई है उसके कारण उत्कण्ठा से अधीर होकर उसने अपना शरीर डुबो दिया है और चञ्चल-गति से दौड़ रही है। परन्तु क्या मेरी भी आशा के पूर्ण होने का कोई उपाय है? मृत्यु के बिना मेरा छुटकारा नहीं है।

अमावस्या की रात्रि का घोर अन्धकार क्रमशः घनीभूत होने लगा, अन्त में उससे पृथ्वी आच्छादित हो गई। अट्टालिका के समीप जो वृक्ष लगे थे उन पर बैठे हुए चमगादड़ किचमिच किचमिच करने लगे। दूर से दो-एक उल्लुओं का कर्कश स्वर सुनाई पड़ा। ज़रा ही दूर पर नदी के तट पर जो नौकायें बँधी थीं उन पर क्षीण आलोक उस समय भी प्रज्वलित हो रहा था। वासन्ती दोनों हथेलियों पर मस्तक रक्खे हुए सोच रही थी कि शिशु-काल से ही तो मेरा जीवन मरुभूमि हो रहा है। मूलहीन शैवाल के समान संसार-रूपी स्रोत में प्रवाहित होते होते मेरी मा ने मुझे लेकर जब मामा के यहाँ आश्रय लिया था उसके केवल चार वर्ष तक वे जीवित रह सकीं। इस प्रकार शैशव-काल में केवल चार वर्ष तक मैं मातृ-स्नेह से वर्द्धित हुई हूँ। अब वह समय मुझे स्वप्न-सा मालूम पड़ रहा है। बाद को जब माता की मृत्यु होगई तब फिर मामी की अशेष यन्त्रणा सहन करते ही करते बड़ी हुई। मे

उज्ज्वल भविष्य की क्षीण आलोक-रेखा की चर्चा जब जगह जगह होने लगी, सखियाँ तब मुझे घेर कर बैठ गईं और कहने लगीं कि बड़े आदमी की बहू हो जाने पर यह कितनी सुखी होगी, कितने ऐश्वर्य की अधिकारिणी होगी। इसी तरह की न जाने कितनी अद्भुत बातें मेरे सम्बन्ध में कही जाने लगीं। उस समय की बातें मानो परियों की कहानियाँ थीं। यह सब सुन सुनकर मेरा क्षुद्र हृदय किस तरह के अपरिसीम आनन्द का अनुभव कर रहा था। अन्त में जब सचमुच राजप्रासाद के समान विशाल भवन में नववधू का वेष धारण करके मैंने पहले-पहल प्रवेश किया तब मैं यथार्थ ही विस्मित हो उठी थी।

वासन्ती की विचार-धारा पूर्ववत् जारी रही। वह मन ही मन कहने लगी—धीरे धीरे मेरे हृदय में जब ज्ञान का सञ्चार हुआ तब मैंने अपनी अवस्था पर विचार करना सीखा। जिसकी बदौलत मैं इतने बड़े ऐश्वर्य की अधिकारिणी हुई और जिसके हृदय पर अधिकार न कर सकने के कारण सुखोपभोग से वञ्चित रही उसके घृणित व्यवहार से मैं सर्वथा स्तम्भित होगई। जीवन के सहचर से वञ्चित होने के कारण यह बृहत् अट्टालिका मेरे लिए बहुत ही कष्टकर प्रतीत होने लगी। उस समय स्नेह के एकमात्र आधार श्वशुर के अत्यधिक आदर-यत्न के कारण मैं अपने विडम्बनापूर्ण जीवन की असह्य यन्त्रणा को बहुत कुछ भूल गई। परन्तु वे भी जब मुझे त्याग कर चले गये तब मेरे हृदय का कितना अंश शून्य हो गया, यह भगवान् के अतिरिक्त और कोई भी न समझ सकेगा।

वासन्ती के हृदय में स्वामी के प्रति सहानुभूति भी जाग्रत हो उठी। वह फिर सोचने लगी—कदाचित् स्वामी के जीवन की गति को परिवर्तित करने के ही लिए मैं उस दिन श्वशुर के दृष्टिपथ पर पड़ी थी। जिस प्रकार दुष्ट नक्षत्र पर क्रूर ग्रह के आ जाने से मनुष्य का जीवन सङ्कटापन्न हो जाता है, उसी प्रकार उनके भी तरुण जीवन में धूमकेतु के समान उदय होकर मैंने उनके जीवन के सारे सुखों, सारी शांति का हरण कर लिया। आज यदि मेरे साथ उनका इस प्रकार का सम्बन्ध न होता तो सम्भव है कि उनके जीवन की गति परिवर्तित न होती। शायद बाबू जी का स्नेह भी न खो सकते। अतुलित ऐश्वर्य

समान गली गली भटकते न फिरते, अपने जन्म-गृह से इस प्रकार विदा न ले लेते।

दानपत्र के द्वारा वसु महोदय अपनी सारी सम्पत्ति वासन्ती को दे गये थे। उसके लिए भी आज वह दुःखी हो रही थी! मन ही मन वासन्ती कहने लगी—बाबू जी ने ही यह क्या किया? वे यदि सारी सम्पत्ति मेरे नाम न लिख जाते तो वे गृहत्यागी तो न होते! वे यदि घर में रहते तो मुझे इस तरह की अपार वेदना न सहन करनी पड़ती। साँझ तक कम-से-कम एक बार तो इष्ट-देवता के चरणों के दर्शन प्राप्त करके चिर-जीवन की अतृप्त पिपासा निवृत्त कर ही पाती। विवाहिता पत्नी को वे घर से बहिष्कृत तो कर सकते नहीं थे! वैसी दशा में मेरे हृदय के देवता मुझसे इतना दूर दूर तो न रहते। आज मैं एक ऐसे मन्दिर की पुजारिन हूँ जिसमें देवता की मूर्ति नहीं है। परन्तु यदि वे यहाँ होते तो मुझे इस तरह शून्य मन्दिर में रहकर निराशा के अन्धकार में जीवन न व्यतीत करना पड़ता। पता नहीं, और कितने दिन तक, कितने युग-युगान्तर तक, कितने दिन-रात मुझे इस घर में देवता के दर्शन की आकांक्षा से इसी तरह व्यतीत करने पड़ें। यह पत्थर की अट्टालिका तो शून्य है, प्राणहीन है, इसमें निवास करना कितना कष्टकर है! किन्तु उपाय?

यही सब सोचते सोचते वासन्ती की आँखों की पलकें भीग उठीं। अनायास ही कमरे से एक आह निकल पड़ी। तब वासन्ती हाथ जोड़ कर राधा-वल्लभ के मन्दिर की ओर ताकती हुई कहने लगी—हे दयामय, अनाथों के नाथ, दीनबन्धु, तुम कहाँ हो? कितनी दूरी पर छिपे हो? अन्तर्यामी, व्यथाहारी, हे नारायण, मधुसूदन, तुमने मेरी यह कैसी दशा कर दी है? समस्त दिन की असह्य वेदना का भार लेकर जब सन्ध्या के अन्धकार में तुम्हारे चरणों के समीप, तुम्हारे ध्यान में, तुम्हारे नाम-स्मरण के द्वारा तृप्त होने जाती हूँ, तब धीरे धीरे मेरा रुद्ध द्वार उन्मुक्त करके चन्दन से सुशोभित एक मुख, आँखों का एक जोड़ा रूपी तारे, दूर—बहुत दूर—किसकी उज्ज्वल मूर्ति में उदित हो आते हैं? उस समय मैं तुम्हारी यह चराचर को लुभा लेनेवाली अनुपम मूर्ति, अरुण चरण, मधुर नाम तथा समस्त संसार भूल जाती हूँ।

आलोक से हृदय परिपूर्ण हो उठता है ! उस समय पता नहीं, कौन-सी ऐसी मोहरूपी मदिरा मुझे उन्मत्त कर देती है। समस्त दिन का हृदय का असह्य भार लेकर जो कुछ तुम्हारे चरणों में निवेदन करने आती हूँ उसे फिर नहीं निवेदन कर पा सकती। हाथ-पैर निश्चल हो जाते हैं, समर्पित किया हुआ अर्घ्य हाथ में ही पड़ा रह जाता है, जिह्वा अकर्मण्य हो उठती है, तुम्हारा नाम भी नहीं उच्चरित हो पाता, मुँदे हुए नेत्रों से तुम्हारा दर्शन नहीं कर पाती हूँ, व्यर्थता के भार से हृदय दब जाता है, वेदना के ताप से सन्तप्त निःश्वास हृदय को भेद कर निकल पड़ते हैं और विभिन्न दिशाओं में विलीन हो जाते हैं। यह सब क्या तुम्हारे हृदय को स्पर्श करता है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि पूजा का सारा आयोजन ही निष्फल हो गया। वह तो केवल गगन पर से गिरे हुए नक्षत्र के समान अवलम्बनहीन होकर गाढ़ अन्धकार में कहीं पड़ा होगा। कौन उसे खोजेगा जी ? कौन उसे खोजेगा ?

रात्रि अधिक बीत गई। चारों दिशायें नीरव, निस्तब्ध हो उठीं। सड़क पर पथिकों का आना-जाना भी कम हो गया। वासन्ती तब भी नहीं उठी। एक कोच पर बैठी हुई दोनों हथेलियों पर मस्तक रक्खे वह गम्भीर चिन्ता में निमग्न थी। चमेली कब से आकर उसके पास खड़ी थी, इसका उसे पता नहीं चल सका। कुछ देर के बाद वासन्ती की चिन्ता भंग करने के विचार से चमेली ने उसके शरीर पर हाथ रक्खा और कहने लगी—इतनी देर से क्या सोच रही हो भाभी ? परन्तु वासन्ती उस समय चिन्ता से इस प्रकार अभिभूत थी कि चमेली ने क्या कहा, यह उसके कान तक में न पड़ सका। उसके शरीर में केवल किसी के शीतल हाथ का स्पर्श भर हुआ, इसी से वह चौंक पड़ी और कहने लगी—कौन है ? दीदी ? काम से फ़ुर्सत मिल गई ?

चमेली ने हँस कर कहा—इतनी देर के बाद होश आया है ? मैं क्या क्या कह गई, यह सब शायद तुम्हारे कान में नहीं पड़ सका।

वासन्ती ने कहा—क्या कह रही थीं दीदी ? मैं इन माँझियों का तमाशा देख रही थी।

चमेली ने कहा—साँझ से ही तुम आई हो। तब से मैं तुम्हें खोज आई। कहीं पता नहीं चल सका। अन्त में यहाँ आकर देखा तो तुम्हें बैठी पाया। परन्तु तुम मेरे आने की आहट नहीं पा सकीं। रात-दिन इतनी चिन्ता में क्यों पड़ी रहती हो भाभी ?

वासन्ती सहम गई। वह कहने लगी—किसी भी चिन्ता में तो नहीं पड़ी थी दीदी ? चिन्ता किस बात की करूँगी !

वासन्ती चमेली से यह बात कह तो गई, परन्तु अपने मन के सामने वह सच्ची बात छिपा नहीं सकी। सचमुच उस समय वह चिन्ता में पड़ी थी। क्या उसकी चिन्ता की कोई सीमा थी ?

ज़रा देर के बाद चमेली ने कहा—क्या सुषमा कल आवेगी ?

वासन्ती उस समय चिन्ता के जाल में इस तरह फँसी थी कि उसे चमेली के वहाँ रहने की याद तक नहीं रह सकी। एकाएक चमेली के इस प्रश्न से चौंक कर वह कहने लगी—सुषमा दीदी ने चिट्ठी में लिखा तो यही है। देखो दीदी, सुषमा दीदी जब आ जायँ तब हम लोग थोड़े दिनों तक घूम आवें। ताई जी बहुत दिनों से तीर्थ करने के लिए उत्सुक हैं। मैंने बुआ जी को लिखा है कि फूफा जी से पूछ कर जैसा वे कहें वैसा लिख दें। परन्तु अभी तक उनका कोई उत्तर नहीं आया। वे यदि कहें तो थोड़े दिनों तक कहीं घूम आवें। तुम भी चलोगी न ?

चमेली ने कहा—मा की चिट्ठी आई है। तुम जब पूजा के घर में थीं तभी मैं वह चिट्ठी तुम्हारे डेस्क में रख आई हूँ। बाबू जी को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु उन्होंने पूछा है कि तुम लोगों के साथ पुरुष कौन जा रहा है। मा ने यह भी लिखा है कि आज-कल सन्तोष भाई वहीं हैं। उनकी तबीयत बहुत ख़राब है।

एक लम्बी साँस लेकर वासन्ती ने कहा—शायद उन्होंने शरीर की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। इसके सिवा परदेश में वे अकेले रहते हैं। कौन उनके सुख-दुःख की चिन्ता करनेवाला है ? यदि बुआ जी के पास वे कुछ दिन रह जाते—

वासन्ती की बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि चमेली ने कहा—मा ने भी तो यही लिखा है। वे उन्हें कुछ दिनों तक वहाँ रखने का प्रयत्न करेंगी। परन्तु ... अधिक दिनों तक वहाँ रहेंगे नहीं।

वासन्ती ने इन कई वर्षों में स्वामी का मनोभाव ख़ूब अच्छी तरह से परख लिया था। वह चमेली से कहने लगी—मैं समझती हूँ दीदी, उन्हें भय है कि वहाँ कहीं मैं न पहुँच जाऊँ। देखो दीदी, मैंने कहा था न कि मैं जब तक इलाहाबाद में रहूँगी तब तक वे न आवेंगे। उस समय आप लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। अन्त में वही बात ठीक निकली। आप बुआ जी को लिख दें कि उन्हें कोई भय नहीं है। मेरी संगति से यदि वे इस प्रकार दुःखी होते हैं या मुझसे घृणा करते हैं—

चमेली ने कहा—दुर पगली, यह भी कोई बात है ? क्या वे पागल हैं ? उन्हें विवेक-बुद्धि नहीं है ?

वासन्ती ने रुद्ध कण्ठ से कहा—आप लोग उन्हें पहचानतीं नहीं। सुषमा दीदी जब मुझे लेकर उनके पास गई थीं उस समय का उनका व्यवहार जब याद आ जाता है तब दाँतोंतले अँगुली दबानी पड़ती है। साधारण पशु के प्रति मनुष्य के हृदय में जितनी दया रहती है, मेरे प्रति उनके हृदय में उतनी भी नहीं है। इसके सिवा उन्होंने मेरे मुँह पर यह बात स्पष्ट रूप से कह दी है कि मैं तुमसे कभी प्रेम न कर सकूँगा। परन्तु इससे कोई मतलब नहीं है। मैं तो अब उसी बात का प्रयत्न करूँगी जिससे वे सुखी हो सकें। वे मुझे चाहे जितना ही तुच्छ, जितना ही घृणित समझकर दूर रक्खें, मैं उन्हीं की हूँ और वे ही मेरे सर्वस्व हैं। मेरे इस पद पर से मुझे कोई भी हटा न सकेगा। शायद वे भी न हटा सकेंगे। यदि भगवान् मुँह उठा कर देखें, यदि कभी वे लौट कर अपने घर में आवें, तब दीदी उसी समय मैं अपना अधिकार उनके लिए त्याग कर चली जाऊँगी। उनके सुख के मार्ग में मैं कण्टक न बनूँगी।

चमेली ने कहा—क्या कहती है पगली ? तू जायगी कहाँ ?

वासन्ती ने कहा—वे मूर्ख नहीं हैं, शराबी नहीं हैं, बुद्धिहीन नहीं हैं। परन्तु फिर क्या हैं, यह मैं आज तक नहीं खोज पाई। यौवन की उमङ्ग में उनके मन में जो भाव आया था उसी को ध्रुव सत्य मानकर उन्होंने धारण कर रक्खा है। इधर उनके साथ जो एक आदमी चिरदिन के बन्धन में आबद्ध है उसके सम्बन्ध में क्या उन्होंने कैसा विचार करके देखा है ?

वासन्ती सोच रही थी कि क्या मनुष्य मनुष्य से इ[स] प्रकार घृणा कर सकता है, क्या मैं ज़रा-सी भी दया, ज़[रा]-सी भी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकती हूँ, मेरा अपरा[ध] क्या है। यह तो आशातीत व्यथा है, इस व्यथा [की] निवृत्ति नहीं है, इस ज्वाला का अन्त नहीं है, सीमा न[हीं] है, केवल ज्वाला ही सहन करनी है ! चमेली उस[की] वेदना क्लिष्ट मुँह की ओर ताकती हुई स्तब्ध भा[व] से खड़ी रही।

पचीसवाँ परिच्छेद

परिवर्तन

सन्ध्या को रमाकान्त बाबू कचहरी से लौटने के बा[द] बैठे जलपान कर रहे थे। पास ही उनकी पत्नी बैठी थीं। उन्होंने कहा—सुनते हो ? बहू ने चिट्ठी लिखी है कि यदि फूफा जी आज्ञा दें तो मैं मामा जी को साथ में लेते जाऊँ।

रमाकान्त बाबू ने कहा—क्या तुम भी जा रही हो ? तब भला इस बुढ़ापे में मेरी क्या दशा होगी ?

महामाया ने क्रुद्ध स्वर से कहा—तुम्हें तो हर बा[त] में हँसी ही सूझती है। मैं कब कहाँ जाती हूँ। मेरे पैरों में तो तुमने ऐसी बेड़ियाँ डाल रक्खी हैं कि ज़रा-सा हिल डुल भी नहीं सकती, कहीं जाना तो दूर रहा। मैं जो पूछ रही हूँ, पहले उसका उत्तर दो। तुम्हारी जो कुछ सम्मति होगी वह मैं बहू को लिखूँगी, उसी के अनुसार वह अपना प्रबन्ध करेगी।

रमाकान्त बाबू ने कहा—बहू के मामा यदि साथ में जा रहे हैं तो फिर क्या आपत्ति हो सकती है ? परन्तु मैं सचमुच पूछ रहा हूँ कि तुम जा रही हो या नहीं।

महामाया ने कहा—मेरा जाना नहीं होगा। चमेली क्या बहू का साथ छोड़ेगी ? इसके सिवा मेरे चले जाने पर तुम लोगों का घड़ी भर भी निर्वाह नहीं हो सकता। ऐसी दशा में मैं कैसे घर से पैर निकाल सकती हूँ ? उस अभागी का अदृष्ट ही ऐसा है। नहीं तो क्या अभी उसकी तीर्थ करने की अवस्था है ?

यह कहकर महामाया ने अञ्चल से आँखें पोंछ लीं। रमाकान्त बाबू पत्नी के आँसुओं से भीगे हुए मुँह की

ओर ताकते हुए तथा वासन्ती के दुर्भाग्य का स्मरण करके व्यथित कण्ठ से कहने लगे—तो यात्रा की सब व्यवस्था करने के लिए लिख दो।

यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि प्रयाग में जितने भी दर्शनीय स्थान हैं उन सबको देखकर सन्तोष आगया और बाहर के दरवाज़े पर से ही कहने लगा—कहाँ जाओगी बुआ जी ?

बुआ जी ने कहा—जाऊँगी कहाँ बेटा ! तुम जल-पान न करोगे ?

सन्तोष ने कहा—विनय ने आज मुझसे इतने चक्कर लगवाये कि मैं थककर चूर हो गया हूँ।

रमाकान्त बाबू तब तक जलपान समाप्त करके बाहर चले गये। महामाया ने सफ़ेद पत्थर की एक रकाबी में तरह तरह के फल और घर की बनी हुई मिठाई आदि सजाकर एक आसन के पास रख दिया। सन्तोष ने कहा—ज़रा विनय को बुला लूँ। उसके लिए भी ले आइए।

थोड़ी ही देर के बाद दोनों भाई आकर जलपान के लिए बैठे। रकाबी में सजाई हुई थोड़ी-सी सामग्री खा चुकने के बाद बुआ जी की ओर देखा। बुआ जी के हास्य से सदा विकसित रहनेवाले मुखमण्डल पर आज मानो गम्भीर विषाद की रेखा अङ्कित थी। यह नहीं मालूम हो रहा था कि इस कमरे में तीन व्यक्ति विराजमान हैं। उसमें गम्भीर नीरवता थी। कुछ क्षण के बाद सन्तोष ने वह नीरवता भङ्ग करते हुए कहा—कहाँ जाने को कह रही थीं बुआ जी ?

बुआ जी ने रुद्ध कण्ठ से कहा—मैं कहाँ जाऊँगी बेटा ! बड़ी बहू की चिट्ठी आई है। उन्होंने लिखा है कि फूफा जी यदि आज्ञा दें तो एक बार पश्चिम घूम आऊँ। इसी से वे कह रहे थे कि किसी को साथ में लेकर घूम आने के लिए लिख दो। लड़की है, तबीयत ऊबी है, चार जगह घूम फिर कर देखने से बहुत कुछ—

बुआ जी की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि विनय बोल उठा—कौन कौन जा रहे हैं ?

महामाया ने कहा—सभी तो जा रहे हैं। किसको किसको गिनाऊँ ? क्या बहू का अभी इस तरह तीर्थ-धर्म करने का समय है ? लेकिन उसका अदृष्ट तो है ?

विनय ने कहा—तो क्या चमेली भी जायगी ? जाते समय वे लोग यहाँ आवेंगे न ?

महामाया ने सन्तोष को सुनाने के विचार से कहा—यहाँ वे लोग न आवेंगे। पहले-पहल वे लोग पुरी की ओर जायँगे और उस लाइन में जितने भी तीर्थ-स्थान हैं उन सबमें होकर लौटते समय सम्भव है कि यहाँ आवें। और चमेली भला बहू का साथ कब छोड़नेवाली है ? उसने पहले ही चिट्ठी लिखी है। बहू ने लिखा है कि सब तीर्थ करके हमें देश लौटने में सात-आठ मास लग जायँगे। यहाँ का सारा काम-काज मैं दीवान जी को समझाये दे रही हूँ। उन्हें जब किसी प्रकार के परामर्श की आवश्यकता होगी तब वे फूफा जी को पत्र लिखेंगे, फूफा जी का पत्र पाते ही दीवान जी उनके निर्देश के अनुसार सारी व्यवस्था कर लेंगे। आज इन्होंने भी बहू को पत्र लिख दिया है कि तुम जा सकती हो।

महामाया ने सोचा कि सन्तोष बाद को कहीं कोई झंझट न खड़ा कर दे, इससे उन्होंने सारी बातें खोलकर कह दीं।

जलपान से निवृत्त होने के बाद दोनों भाई उठे। बुआ जी ने सन्तोष के मुँह की ओर देखा। पहले वासन्ती की चर्चा सुनने से उसके मुख पर जो विरक्ति की रेखा उदित हो आया करती थी, आज वह नहीं दिखाई पड़ी।

रात्रि के समय सन्तोष शय्या पर पड़े पड़े सोने के लिए निरर्थक प्रयत्न कर रहा था, परन्तु निद्रा किसी प्रकार भी नहीं आती थी। उसके कान में बुआ जी का केवल वही वाक्य "क्या उसकी अभी तीर्थ-धर्म करने की अवस्था है" रह रह कर झङ्कृत हो रहा था। सन्तोष सोचने लगा—क्या सचमुच मेरा ही दोष है ? क्या मेरे ही अत्याचार के कारण आज वासन्ती ने यह कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर रक्खा है ? सुषमा ने जो कुछ कहा था, क्या वही सच है ? क्या मेरे ही उत्पीड़न से आज वासन्ती की इस प्रकार की दुर्दशा है ? परन्तु मैं क्या करूँ ? पिता जी ने इन सब बातों पर क्यों नहीं विचार किया ?

आज सन्तोष की विचार-धारा ने निद्रा को पास तक नहीं फटकने दिया। वह बराबर वासन्ती की ही चिन्ता में पड़ा रहा। ज़रा ही देर में उसके जी में आया—पिता जी का ही क्या दोष है ? मैंने तो उनसे कुछ कहा भी नहीं। सुषमा ठीक ही कह रही थी। मनुष्य के ऊपर मनुष्य बल का प्रयोग कर सकता है, परन्तु क्या बल से

मन भी कहीं वशीभूत हो सकता है ? यदि मैं विवाह के समय कहीं चला जाता तो शायद घटना और ही तरह की होती। परन्तु ऐसा तो मैं कर नहीं सका, पिता से बदला लेने का प्रयत्न करके बदला किससे लिया ? सांसारिक ज्ञान से शून्य एक बालिका के साथ इस प्रकार निष्ठुरता का व्यवहार करके कितनी वेदना मैंने उसे पहुँचाई है ? परन्तु आज इन सब बातों पर विचार करने से लाभ ही क्या है ? सुषमा ने उस दिन कहा भी तो था कि प्रतिहिंसा-परायण पशु के हृदय में भी जितना दया का भाव होता है, मेरे हृदय में उतना भी नहीं है। क्या सुषमा की यह बात सच है ! यदि हाँ तो मेरे हृदय में यह पशुता का भाव किसने उत्पन्न कर दिया है ? मेरे दुर्बल हृदय ने या और किसी ने ! क्या मैं चिरदिन ही ऐसा था।

सन्तोष सोचने लगा—हृदय पर असह्य वेदना का यह गुरु-भार कब तक लाद रखना पड़ेगा ? इस निरानन्दमय संसार के पथ पर कब तक सङ्गीहीन होकर विचरण करते रहना पड़ेगा ? यौवन के प्रारम्भ-काल में जिस समय नवीन आकांक्षा से हृदय को परिपूर्ण करके संसार के द्वार-देश में आकर खड़ा हुआ था, उस समय किसी रुष्ट ग्रह के प्रकोप में पड़ जाने के कारण मेरे हाथ में आई हुई सिद्धि को, हृदय के परिपूर्ण आयोजन को, निमेष भर में किसने व्यर्थ कर दिया था ? यह जो जीवन की अपरिमित क्षति हुई है, यह जो किसी सहचर के बिना एकाकी रह कर जीवन-व्यापी दुःसह वेदना सहन कर रहा हूँ, इसका कहीं अन्त है ? यह विच्छेद यदि विधाता को चिरदिन के ही लिए अभीप्सित था तो दो दिन के लिए संसार के पथ पर हम एक-दूसरे से क्यों मिल गये थे ? व्यर्थता की निर्मम वेदना वक्ष पर धारण करके कितने दिन, कितने वर्ष, मुझे इस प्रकार व्यतीत करने पड़ेंगे, यह कौन जानता है ?

विधाता मङ्गलमय हैं। अपने मङ्गलमय हाथों से ही उन्होंने इस जगत् की सृष्टि की है। उन्हीं के बनाये हुए इस जगत् में जितनी आशा-निराशा, वेदना-विरह और दुःख-शोक है, वह क्या उन्हीं की सृष्टि है ? अपने ही उत्पन्न किये हुए पुत्र-कन्या के प्रति उन्होंने इस तरह के निष्ठुरता के अभिनय की सृष्टि क्यों की है ? जगत् में जो नर-नारी रहते हैं उन सबके हृदय-विदारक हाहाकार के, उन मङ्गलमय भगवान् के, चरणों के समीप पहुँचने की क्या कोई आशा नहीं है ?

आत्मग्लानि के कारण सन्तोष अधीर हो उठा। वह सोचने लगा—विशाल दुःख का चितानल निरन्तर जलते जलते हृदय को भस्मीभूत कर रहा है ! विपुल वेदना के निष्पीड़न से वक्षःस्थल चूर चूर हुआ जा रहा है ! जीवन के प्रभात-काल के प्रथम मुहूर्त में ही निराशा की जिस अत्यधिक व्यथा से वक्ष-पञ्जर जर्जरित हुआ जा रहा था, जीवन के अन्त में भी उसकी निवृत्ति की कोई आशा नहीं है। तो भी मैं किसलिए बचा हूँ ? इस 'किसलिए' को उत्तर में कहाँ से खींच कर निकालूँ ?

निद्रा न आ सकने के कारण सन्तोष खिड़की के समीप आकर खड़ा हो गया। बाहर ज्योत्स्ना की रजतधारा से पृथ्वी उद्भासित हो उठी थी। सन्तोष सोचने लगा कि मेरे हृदय में जो प्रगाढ़ अन्धकार फैला हुआ है उसे भेद कर वहाँ ज्योत्स्ना की उज्ज्वल धारा कब प्रवाहित होगी ? चन्द्रमा के शीतल किन्तु उज्ज्वल प्रकाश से मेरा हृदय कब प्रकाशित होगा ? परन्तु यह तो अब होने का नहीं है। यह मेरा इच्छाकृत है। मैं तो स्वेच्छा से ही यह सब परित्याग करके आया हूँ। तब भला मेरा बुभुक्षित हृदय आज नवीन आशा की मादकता से विह्वल क्यों हो उठा ? वही तो मेरी विवाहिता पत्नी है, जिसके अयाचित प्रेम, हृदय में लबालब भरी हुई आशा को, पैर की ठोकर से चूर चूर करके आया हूँ, जिसे एक ज़रा-सी सान्त्वना की बात तक कहने में घृणा का अनुभव किया था, बाण-विद्ध हरिणी के समान दुर्दशा-ग्रस्त होकर जो तड़फ रही थी और मैं स्वयं नीरव भाव से खड़ा होकर जिसे देख रहा था, छः वर्ष के सुदीर्घ समय तक जिस पत्नी की चिन्ता एक बार भी मैंने नहीं की, आज एकाएक बार-बार उसी अनादृता परित्यक्ता पत्नी की स्मृति क्यों जाग्रत हो रही है ?

सन्तोष बार-बार इस चिन्ता से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करने लगा। परन्तु जैसे जैसे वह उस चिन्ता से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा था, वैसे ही वैसे उसी चिन्ता के अन्तराल से बुआ जी की वही वाणी कि "क्या यह उसकी तीर्थ-धर्म करने की अवस्था है", बार-बार प्रतिध्वनित होने लगी।

कमरे में जो घड़ी लगी थी उसमें एक कभी को बज

चुका था। दो बजने को भी आगये। सुशीतल समीरण आकर सन्तोष के मस्तक के बालों को उड़ाने लगा। वायु का एक प्रबल झकोरा आया, जिसके कारण टेबिल पर रक्खी हुई किताब गिर पड़ी। उसके शब्द से चौंककर वह उठ बैठा। उसने किताब टेबिल पर रख दी और वह शय्या पर फिर लेट रहा। परन्तु आज निद्रा उसे किसी प्रकार भी नहीं स्पर्श कर रही थी। सन्तोष उस समय भी सोच रहा था—मैंने विश्वस्तहृदय बालिका के प्रेम-पूर्ण हृदय पर बड़े ज़ोर का आघात पहुँचाया है। अपने और उसके बीच में इतने बड़े अन्तर की सृष्टि क्या मैंने स्वयं नहीं की? अपना अधिकार क्या मैं स्वयं नहीं छोड़ आया हूँ? वासन्ती के सम्बन्ध में इसी तरह की कितनी ही बातें सोच सोचकर सन्तोष व्याकुल हो रहा था, हृदय की अदम्य इच्छा हृदय में ही घूम घूम कर रह जाती थी। उस इच्छा को वह किसी प्रकार भी नहीं रोक पाता था। उसके लिए आज शय्या कण्टक के समान हो उठी थी। वह बन्द कमरे के भीतर इधर-उधर टहलने लगा।

वर्णन

लेखक, श्रीयुत सी० विजयानन्द

(१)
सूत्रधार ने गगन-मंच पर,
प्रणयनाट्य का कर आयोजन।
सकल प्रकृति को भावुक कवि को,
हर्षित हो भेजा आमन्त्रण॥

(२)
सज्जित हो जब चन्द्र नायिका,
मध्य-निशा में नभ में आई।
लखकर दर्शक मूक मण्डली,
विस्मित, हर्षित हो मुस्काई॥

(३)
सुरभि पवन ने शशिबाला के,
अधरों का जब स्पर्श किया था।
रोषित होकर तब जलदों ने,
भीषण स्वर में नाद किया था॥

(४)
वीजित हो तब वेग पवन से,
करतलध्वनि की तृण तरुवर ने।
परिणत होकर जब प्रवात में,
विजय प्राप्त की वेग अनिल ने॥

(५)
गये उदधि के निकट जलद तब,
अपमानित हो प्रतिद्वन्द्वी से।
प्रकट हुए पर शीघ्र क्षितिज पर,
शक्तिदान पाकर सागर से॥

(६)
इंगित पाकर तब हिमांशु का,
फैल गये घन सद्यः नभ में।
शक्तिपान की विजय हुई, अब
मेघों का साम्राज्य गगन में॥

(७)
स्थगित हुआ पर प्रेम-प्रदर्शन,
लज्जित लखकर चन्द्र प्रिया को।
छिन्न विहत तब किया गगन को,
आच्छादित कर नक्षत्रों को॥

(८)
अस्थिरता से चन्द्र-प्रणय की,
पीड़ित था पर प्रेमी का मन।
आलिंगित कर प्राणेश्वरि को,
किया जलद ने अश्रु-विसर्जन॥

जाग्रत नारियाँ



चीन के रणाङ्गण में नारी

लेखक, श्रीयुत परमेश्वरसिंह

जो आशङ्का थी वह सत्य सिद्ध हो गई। गत १२ दिसम्बर को जापान ने उत्तर-चीन की राजधानी नानकिङ्ग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि चीन पर जापान ने पूरी विजय पा ली, तथापि क्षणभर के लिए यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि एशिया के रणाङ्गण में साम्राज्यवाद जयी हुआ। जापान की इस जय-यात्रा से अनेक व्यक्तियों की यह धारणा हो गई है कि चीन की स्वाधीनता विलुप्त हो गई। किन्तु यह धारणा सत्य नहीं है। जापान की इस क्षणस्थायी विजय से यह समझना कि चीन अब जापान का हो गया, भ्रम है। चीन का स्वाधीनता-संग्राम तो अभी वर्षों अविरत गति से गतिशील रहेगा। चीन के राष्ट्रप्राण जनरल चिआंग काई शेक ने अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणा में कहा है—"चीन को, अंत में, अपनी विजय की पूरी आशा है। क्षण भर की विजय पराजय से वह तनिक भी विचलित नहीं है। चीन तो तब तक लड़ता रहेगा जब तक उसके शरीर में प्राण अवशेष रहेगा।" इस समयोचित घोषणा से स्पष्ट है कि चीन पराजित नहीं हुआ है।

यह न समझना चाहिए कि चीन के इस संग्राम में एकाकी पुरुष ही लड़ रहे हैं। इसमें वहाँ की महिलाओं का भी महत्त्वपूर्ण भाग है।

दो युग पहले की बात है, जब चीनी महिलाओं को अपनी दुःखद और अपमानजनक अवस्था का किंचित् ज्ञान हुआ, जब उनको यह चेतना हुई कि विश्व का अर्द्ध-भाग होकर भी हम किस विषम अवस्था में पड़ी हैं, समाज में हमें क्या स्थान प्राप्त है। इसी सजगता का यह परिणाम हुआ कि चीनी महिलाओं ने अपने स्वत्वों की प्राप्ति के लिए आन्दोलन का सूत्रपात किया। तब से अब तक चीन में जब जब कोई राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर चली, महिलायें दिलोजान से उसमें कूद पड़ीं और अपना कर्त्तव्य-पालन कर आन्दोलन को सबल बनाया। आरम्भ में तो उन्हें समाज, संकीर्णता, रूढ़िवाद आदि के विरुद्ध ज़बर-दस्त मोर्चा लेना पड़ा, पर धीरे धीरे उन्होंने समाज में अपना उपयुक्त स्थान बना लिया। वे केवल सामाजिक क्षेत्र में ही आगे बढ़ी हों, ऐसी बात नहीं है, वे राजनीति के मैदान में भी कूदीं और पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर राष्ट्र के संगठन के कार्य में समुचित योग-दान दिया। यही कारण है कि आज वे साम्राज्यवादी जापान का दर्प खण्ड-खण्ड करने के लिए पुरुषों की तरह रण-क्षेत्र में युद्ध कर रही हैं। चीन की सेना में वहाँ की महिलाओं की भी एक सेना है।

चीन के महिला-आन्दोलन की प्रगति में वहाँ की छात्राओं का प्रमुख भाग रहा है। महिलाओं के स्वत्व-



[आन० मिसेज़ बी० दत्त (लार्ड सिनहा की पुत्री) हाल ही में विलायत का भ्रमण करने गई हैं।]

प्रान्ति के आन्दोलन को अग्रसर करने में इन छात्राओं को समय-समय पर और स्थान-स्थान पर पुलिस की दारुण यंत्रणाओं को वरण करना पड़ा है। गत १९३५ में ९ दिसम्बर को पीपिङ्ग नगर में जो प्रदर्शन चीन की छात्राओं ने किया था उसका नेतृत्व दो बालिकाओं ने किया था। इसके लिए उन्हें भीषण यंत्रणायें सहन करनी पड़ीं, पर वे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुईं। जापान के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए जो सर्वप्रथम राष्ट्रीय मुक्ति-संघ नामक संस्था सन् १९३५ के २१ दिसम्बर को स्थापित की गई थी उसका श्रेय चीन के नारी-समाज को है। स्थापना के दिन जो विराट् सार्वजनिक सभा हुई थी उसमें ओजस्वी भाषण करते हुए सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी चीनी महिला चासियांग नादन ने यह कहा था—

"हम सजग हैं। हमें अब पूर्ण सशस्त्र होकर अधिक काल तक पराधीन बने रहने से इनकार कर देना चाहिए। हमें अब बच्चे पैदा करने की मशीन बने रहना मंज़ूर नहीं। हमें राष्ट्रीय अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पुरुषों के साथ स्वाधीनता-संग्राम में पूर्ण रूप से अपना भाग लेना चाहिए। आओ, हम रणक्षेत्र की ओर पयान करें।"

उक्त संस्था में प्रबल आन्दोलन के परिणामस्वरूप उसकी शाखा-प्रशाखायें समस्त देश में स्थापित हो गई हैं, जिनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलायें महत्त्वपूर्ण भाग ले रही हैं। प्रत्येक प्रदर्शन और युद्ध में वे सम्मिलित हैं। वे जापान के विरुद्ध सर्वस्व अर्पित करके भी लड़ने को कटिबद्ध हैं। किसानों और मज़दूरों की महिलायें भी किसी से पीछे नहीं हैं। वे भी पूँजीवादी और साम्राज्यवादी हथकण्डों से सुपरिचित हैं और अपनी मुक्ति के लिए प्रबल रूप से आन्दोलनशील हैं। वे राष्ट्र के इस संकट-काल में सारे सुखों पर लात मार कर स्वदेश के स्वाधीनता-संग्राम में सम्मिलित हैं।

उन्होंने बन्दूकें उठा ली हैं और पुरुषों के साथ जुट कर रण-चण्डी की तरह लड़ रही हैं। उनमें अधिकांश छात्रायें हैं। कुछ तो सैनिक का काम करती हैं और कुछ घायलों की सेवा-सुश्रूषा, मरहम-पट्टी का काम। इन किशोरियों ने शंघाई के बाहर अनेक घनघोर संग्रामों में भी हिस्सा लिया था और इनमें अनेक स्वाधीनता की वेदी पर अपने प्राणों की बलि भी चढ़ा चुकी हैं। इसके अलावा वास्तविक स्थिति के जानकारों का यह भी कहना है कि चीन की समस्त छात्राओं ने पढ़ना-लिखना छोड़ कर देश की रक्षा के लिए लड़ना आरम्भ किया है। वे सच्चे अर्थ में रण-चण्डी बन गई हैं।

चीन के इस महिला-जागरण और उसको इस स्थिति पर ले आने का अधिक श्रेय चीन के प्रसिद्ध सुँग-परिवार की तीन सगी बहनों को है। सौभाग्यवश तीनों का विवाह ऐसे महापुरुषों से हुआ जिन पर चीन के भाग्य-निर्माण का उत्तरदायित्व था और आज भी है। इन तीनों में सबसे बड़ी चीन के अर्थमंत्री श्री कूँग की धर्मपत्नी हैं। मझली से चीन के उद्धारक डाक्टर सनयातसेन ने विवाह किया था। श्रीमती सनयातसेन का 'जीवन रोमांस' से भरा हुआ है। ये अपनी किशोरावस्था से ही सनयातसेन के कार्यों में

योगदान दिया करती थीं। सेन महोदय इनकी क्रिया-शीलता से इतना अधिक मुग्ध हुए कि इनको अपना सेक्रेटरी बना लिया और बाद को इनसे विवाह कर लिया।

सबसे छोटी बहन चीन के वर्तमान भाग्यविधाता जनरल चिआंग काई शेक की पत्नी हैं। ये उनकी न केवल पत्नी हैं, बल्कि उनकी सहेली, परिचारिका, पाचिका (रसोइया), उनकी भाषा, उनकी राजनैतिक परामर्शदात्री और उनका तन-मन-धन और सर्वस्व हैं। ये सदा अपने पति के साथ रहती हैं। जनरल चिआंग काई शेक चीनी-भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नहीं जानते, अतः विदेशी पुरुषों और पत्रकारों से वार्तालाप करते समय उनकी पत्नी को ही दुभाषिये का भी काम करना पड़ता है। इसके अलावा उनके पत्रों का उत्तर लिखने, उनके लिए वक्तव्य तैयार करने, प्रकाशन का कार्य आदि की जोखिमभरी ज़िम्मेदारी भी इन्हीं पर ही है। इन राजनैतिक कार्य-कलापों के अतिरिक्त ये अपने पति के लिए स्वयं भोजन तैयार करती हैं।

आज चीन के इस स्वत्व-संग्राम के संचालन में सबसे अधिक और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान श्रीमती जनरल चिआंग काई शेक का है। ये बड़ी कूटनीतिज्ञ महिला हैं। इनके स्वातन्त्र्य-प्रेम, लगन, उत्साह, धीरज, पतिपरायणता एवं त्यागमय जीवन का ही यह फल है कि समस्त देश—विशेषतया चीन का नारी-समाज इनके संकेत मात्र पर अपना सर्वस्व समर्पण करने को कटिबद्ध रहता है।

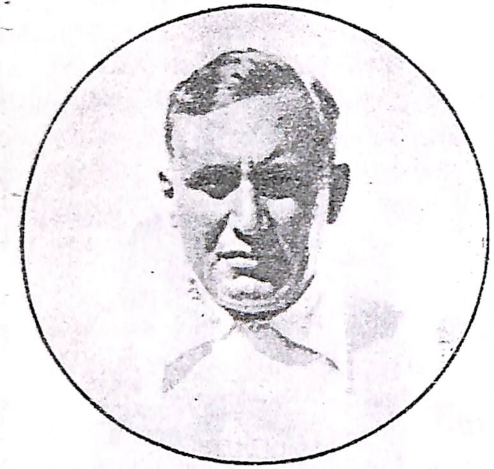
जब चीन के इस विकट एवं भीषण संग्राम में वहाँ का महिला-समाज इस प्रकार क्रियाशील है तब चीन के आख़िर में विजयी होने में सन्देह नहीं है? आशावादी होने के नाते हमारा यह विश्वास है कि चीन इस



['न्यूथियेटर्स' के विद्यापति नामक चित्रपट में छायादेवी।]

संग्राम में अवश्य जयी होगा और इस जय में सर्वाधिक श्रेय वहाँ के महिला-समाज को ही प्राप्त होगा। क्या यह आशा की जाय कि भारतीय महिला-समाज अपनी रूढ़ियों का नाश कर प्रगति-पथ पर अबाध गति से अग्रसर होगा और भारत के 'मुक्ति-आन्दोलन' को सफल बनायेगा?

चित्र-संग्रह



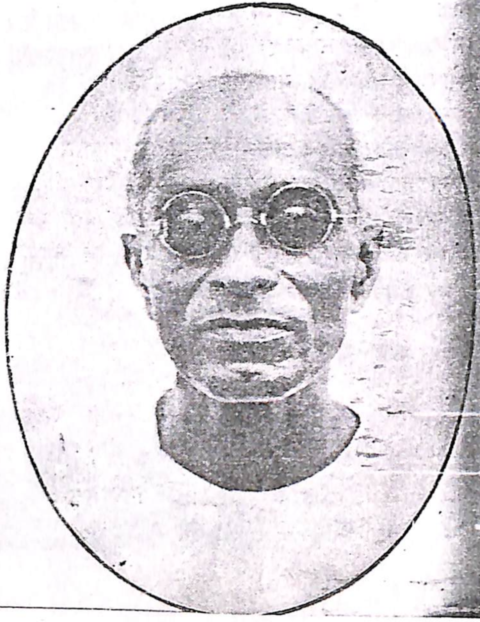
डाक्टर ख़ाँ साहब, सीमा-प्रान्त के प्रीमियर।



आनरेबुल मिस्टर श्रीकृष्णसिंह, बिहार के प्रीमियर।



बङ्गाल के गवर्नर हिज़ एक्सेलेंसी सर जान अंडरसन।





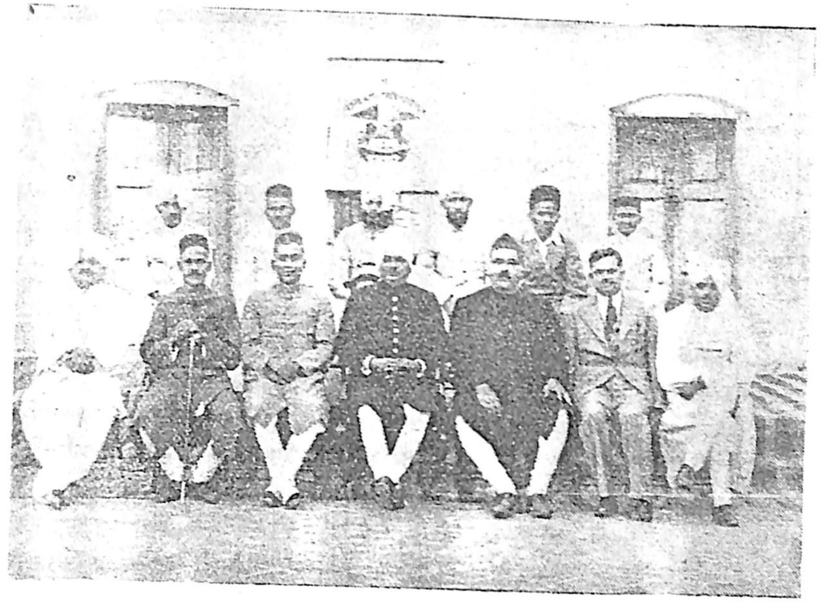
मिस्टर सद्गोपाल एम० एस-सी०--लन्दन के "एस० पी० सी०" के संयुक्त सम्पादक, जिनका लाहौर की ग्रेज्युएट कुमारी कमला बी० ए० से हाल में ब्याह हुआ है।



हवाई जहाज़ से लिया गया शंघाई के एक भाग का चित्र, जहाँ जापानियों ने बम-वर्षा करके एक ही दिन में



युद्ध में हारकर भागे हुए चीनी सैनिकों के अस्त्रों की जापानी सैनिक परीक्षा कर रहे हैं।



श्री वीरेन्द्रकेशव साहित्य-परिषद् की प्रबन्धकारिणी समिति के पदाधिकारी तथा सदस्य. अगली पंक्ति में बाईं ओर से—(१) श्री बालकृष्णदेव जी तैलंग 'साहित्य-रत्न'। (२) प० गौरीशङ्कर जी द्विवेदी 'शङ्कर'। (३) पं० रमाशङ्कर शुक्ल, प्रधान मंत्री। (४) कैप्टेन प० चन्द्रसेन जी। (५) प० लक्ष्मीनाथ जी मिश्र सभापति। (६) कैप्टेन डाक्टर हरिलाल अमृतलाल जी कोठारी। (७) बाबू मनोहरसिंह जी बख्शी। पिछली पंक्ति में दाहनी ओर से—

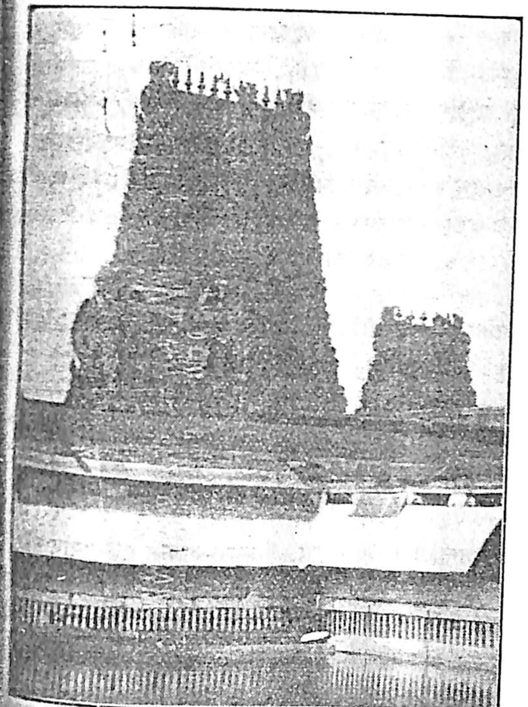
(१) प० ठाकुरदास जी जैन साहित्य-मंत्री। (२) बाबू अम्बिकाप्रसाद जी वर्मा अन्वेषण-मंत्री। (३) मौ० अब्दुलरहमान जी 'मंज़र'। (४) प० दुर्गाप्रसाद जी समाधिया पुस्तकालयाध्यक्ष। (५) बाबू गुरुचरनलाल जी खरे प्रबन्ध-मंत्री। (६) प० वामदेव जी तैलङ्ग।



श्रीयुत हमीरलाल जी मुरड़ा बी० ए०, एल-एल० बी०, ...दयपुर। आपने हस्तरेखा-विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त ... है।



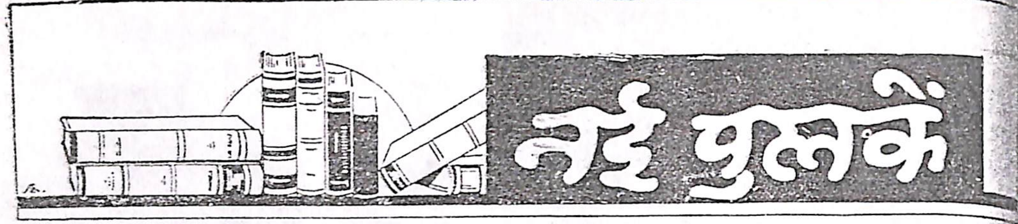
राष्ट्रपति और श्री अब्दुलगफ़्फ़ार ख़ाँ—सीमा-प्रान्त के प्रधान मंत्री के निवासस्थान पर। सीमा-प्रान्त का दौरा आरम्भ करते समय का चित्र।



श्री रङ्गम के प्रसिद्ध मंदिर का गोपुरम



श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस—हाल में आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए ...



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१—राम-रहीम—लेखक, राजा राधिकारमणप्रसाद-सिंह, प्रकाशक, श्री राजराजेश्वरी-साहित्य-मन्दिर, सूर्यपुरा, शाहाबाद हैं। मूल्य ३) है।

२—रसिक-रसाल—रचयिता, प्रोफ़ेसर, कुमारमणि शास्त्री, संचालक, विद्या-विभाग, कांकरोली हैं। मूल्य १॥) है।

३—तीरे-नज़र—सम्पादक, कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १।=) है।

४—मौक्तिकमाल—लेखिका, कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या, प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई हैं। मूल्य १।) है।

५—यथार्थ प्रबोध—लेखक, श्रीयुत रामलगनप्रसाद गुप्त, प्रकाशक, मंत्री श्री परमहंसाश्रम, बरहज-बाज़ार, गोरखपुर हैं। मूल्य ।) है।

६—पत्रकारकला—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत विष्णुदत्त शुक्ल, सत्साहित्य-प्रकाशन-मन्दिर, १२०।१ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य २॥) है।

७—सायंस—लेखक, श्रीयुत ई० जे० होमयार्ड, प्रकाशक, पंजाब एडवाइज़री बोर्ड फ़ार बुक्स, लाहौर, हैं। पृष्ठ-संख्या २७० और मूल्य १=) है।

८—परमात्मप्रकाशः योगसारश्च—सम्पादक, प्रोफ़ेसर ए० एन० उपाध्याय, एम० ए०, प्रकाशक, सेठ मनीलाल रेवाशंकर झावेरी, फ़ार दि परमाश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई हैं। मूल्य ४॥) है।

९-१०—स्वाध्याय सदन मोहनलाल रोड, लाहौर द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) वीरगाथा—लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० और मूल्य १।) है।

(२) अभिषेक नाटक—अनुवादक, श्रीयुत प्रेमनिधि शास्त्री और मूल्य ॥।) है।

११-१६—गीता-प्रेस गोरखपुर की ६ पुस्तकें—

(१) कवितावली—अनुवादक, श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण और मूल्य ॥―) है।

(२) भक्त नरसिंह मेहता—लेखक, श्रीयुत मंग... और मूल्य ।=) है।

(३) श्रीमद्भगवद्गीता भाषा—मूल्य ।) है।

(४) श्री उड़िया स्वामी जी के उपदेश—मूल्य ।=) है।

(५) नवधाभक्ति—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका और मूल्य =) है।

(६) ध्यानावस्था में प्रभु से वार्तालाप—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका और मूल्य ―)॥ है।

१७—सदाचारी बालक—लेखक, पंडित रामसु... पाठक विशारद, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सदन, जहानाबाद (गया) हैं। मूल्य ॥।) है।

१८—मदशाला—लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र', प्रकाशक, चैत्यधाम, मेरठ हैं। मूल्य ॥) है।

१९—दुविधा—लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर हैं। मूल्य ॥) है।

२०—जीवन का सपना—लेखिका, स्वर्गीय श्रीमती रामेश्वरी गोयल, एम० ए०, प्रकाशक, प्रभात-साहित्य-कुटीर, आज़मगढ़ हैं। मूल्य ॥।) है।

२१—फ़िजी-दिग्दर्शन—लेखक, श्रीयुत राम... शर्मा, प्रकाशक, श्री रामचन्द्रपुस्तकालय, मण्डा... बिजनौर हैं। मूल्य ॥) है।

२२—शानदार मोती—अनुवादक, श्रीयुत दीन... वंशधारीलाल, प्रकाशक, सन्त-कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १=) है।

२३—संक्षिप्त जैन-इतिहास भाग ३ खंड १—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन पुस्तकालय, कापड़िया-भवन, सूरत हैं। मूल्य १) है।

२४—वीर-विभूति—लेखक, श्रीयुत न्यायविजय जी, प्रकाशक, श्री जैन-युवक-संघ-घड़ीयाली पोल, बड़ोदा हैं।

२५—स्त्री-रोग-प्रकाश—लेखक व प्रकाशक कविराज ...देव वैद्य, मोहनलाल रोड, लाहौर हैं। मूल्य ॥=) है।

२६—श्याम-बावनी—प्रणेता व प्रकाशक, कविरत्न पंडित लक्ष्मीनारायण शर्मा (कृपाण), मंत्री-सत्यधर्म-...तन-समाज, सीतापुर हैं। मूल्य श्यामप्रेम।

२७—कविवर भूधरदास और जैनशतक—लेखक, श्रीयुत बाबू शिखरचन्द जी जैन, प्रकाशक, श्रीवीर सार्वजनिक वाचनालय, इन्दौर हैं।

१—मानस के दो नये संस्करण—रामचरित-मानस के इधर दो नये संस्करण निकले हैं। एक संस्करण पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने निकाला है, दूसरा लीडर-प्रेस के भारती-भंडार ने प्रकाशित किया है। दोनों संस्करणों के सम्पादकों ने इस बात का दावा किया है कि अब तक के प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा उनके सम्पादित संस्करण अधिक प्रामाणिक हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इन दोनों संस्करणों में भी पाठ-भेद है। ऐसी दशा में इनकी ...र्य प्रामाणिकता पर विश्वास करना सचमुच साहस का काम होगा।

वस्तुतः मानस का एक भी प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं है। प्रामाणिक संस्करण वही कहा जा सकता है जो गोस्वामी जी की लिखी प्रति के अनुसार प्रकाशित हो। दुर्भाग्य से गोस्वामी जी की लिखी एक भी प्रति अभी तक नहीं मिली है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले काशी की सभा ने क़दम उठाया और उसने काशिराज की प्रति के आधार पर सबसे पहले मानस का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया। उसमें यथासम्भव प्रामाणिकता लाने के लिए सभा ने काफ़ी परिश्रम किया। फलतः उस संस्कारण का मानसप्रेमियों में अधिक प्रचार हुआ और आज भी वही संस्करण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उस संस्करण का महत्त्व देखकर इस ओर अन्य लोगों का भी ध्यान गया। प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ ने भी एक संस्करण तैयार किया और उन्होंने भी अपने संस्करण की प्रामाणिकता का दावा किया। और अब वैसे ही ये और दो नये संस्करण अस्तित्व में आ गये हैं। इन सबके प्रकाशन ने यह बात ज़रूर स्पष्ट हो गई है कि मानस के शुद्ध संस्करण के लिए अभी कहीं अधिक खोज करने की ज़रूरत है और सबसे अधिक तो गोस्वामी जी के हाथ की लिखी प्रति के खोजने की ज़रूरत है। इस दिशा में अभी उतने परिश्रम के साथ काम भी नहीं हुआ है। खीरी-ज़िला के धौरहरा के पंडित रामसुख त्रिपाठी 'रसाल' ने हमें हाल में लिखा है कि उस ओर खोज होने से गोस्वामी जी के सम्बन्ध की काफ़ी सामग्री मिल सकती है। उनकी लिखी हुई बालकाण्ड की एक पोथी रामबटी के मन्दिर के महन्त ब्रजमोहनदासजी के पास है। इसके सिवा गोस्वामी जी के हाथ की लिखी सुन्दरकांड की भी एक पोथी दुलही नाम के गाँव में है।

कहने का मतलब यह है कि गोस्वामी जी की लिखी मानस की प्रति मिल सकती है, यदि परिश्रम-पूर्वक खोज की जाय। और तभी मानस का प्रामाणिक संस्करण भी सुलभ हो सकेगा। ऐसी दशा में किसी का यह दावा करना कि मेरा संस्करण सबसे अधिक प्रामाणिक है, विडम्बना-मात्र है।

इन संस्करणों के सम्बन्ध में हम यह ज़रूर कह सकते हैं कि इनके सम्पादकों ने प्राप्त सामग्री का उपयोग करके इनमें यथासाध्य प्रामाणिकता लाने में पूरा परिश्रम किया है। इनमें पंडित रामनरेश त्रिपाठी का संस्करण सानुवाद है और उन्होंने पद्यों का अति सरल अर्थ देने का बहुत यत्न किया है। इस दृष्टि से उनका संस्करण अधिक उपयोगी हो गया है। यह आकार में भारी भरकम है और इसका मूल्य ५) है। त्रिपाठी जी ने अपने संस्करण में जो प्रस्तावना लिखी है वह स्वयं ही एक ग्रन्थ का रूप धारण कर गई है। फिर वह विवादग्रस्त भी है। हमारी समझ से इतनी बड़ी प्रस्तावना का मानस के साथ गँठजोड़ नहीं होना चाहिए था। यदि इस संस्करण में आवश्यकता के अनुसार छोटी-सी प्रस्तावना होती तो पाठकों के लिए उसका आकार अधिक सुभीते का रहता।

लीडर-प्रेस का संस्करण मूल मात्र है। इसका सम्पादन मानस के मर्मज्ञ पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने किया है और बहुत अच्छे ढंग से किया है। उन्होंने तीन-चार पुरानी प्रतियों के फ़ुटनोटों में पाठ-भेद देकर इस संस्करण का

महत्त्व बढ़ा दिया है। यह काफ़ी सुन्दर छापा गया है तथा उसका गेटअप भी बहुत अच्छा है। यह संस्करण पाठ करनेवालों के लिए अधिक उपयोगी है। इसका भी मूल्य ४) है।

२—**ज्योतिष-प्रकाश-निधि**—इस पुस्तक के लेखक ज्योतिर्कुलभूषण तथा ज्योतिषतीर्थ पण्डित नीलकंठ-मंगलजी जोशी हैं। इसका मूल्य ३।) है। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या २१५ है। काग़ज़ साधारण लगाया गया है। तथापि पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में पहली है। जो लोग केवल हिन्दी के द्वारा ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसके प्रणेता ज्योतिष-शास्त्र के निष्णात हैं और उन्होंने अपनी इस पुस्तक की रचना में ज्योतिष-विषय का थोड़े में और सो भी शास्त्रीय रीति से क्रम से वर्णन किया है। यह पुस्तक २१ 'पुंजों में विभक्त है। इन 'पुंजों' में पंचांग देखना, जन्मपत्री आदि बनाना और उनका फल बताना एवं आयु-आरोग्य, कृषि-व्यापार आदि में लाभालाभ आदि के विचार ऐसे ढंग से बताये गये हैं कि एक-मात्र इस पुस्तक को ज्योतिष के किसी पंडित की सहायता से पढ़ जाने पर कोई भी ज्योतिषशास्त्र का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। फलित ज्योतिष के विषय की हिन्दी में यह एक उपयोगी पुस्तक है। इस विषय के प्रेमियों को इसका प्रचार करना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि इसका एक सस्ता संस्करण भी निकाला जाय।

३—**अनुभव**—इस पुस्तक के 'अनुभव' भारतीय वनस्पतियों पर विलायती' डाक्टरों के हैं। इन्हें डाक्टर विश्वपाल ने संग्रह करके हिन्दी जानने वाले चिकित्सकों के लिए इस पुस्तक-द्वारा सुलभ कर दिया है। पुस्तक उपयोगी है। उन देशी चिकित्सकों को तो इसे ज़रूर ही पढ़ना चाहिए जो रोगों के नुस्खे जान लेना भर ही चिकित्सा-शास्त्र का मुख्य ध्येय समझते हैं। पाश्चात्य चिकित्सकों ने एतद्देशीय चिकित्सा-सम्बन्धी जिन वनौषधियों तथा दूसरे द्रव्यों का प्रयोग करके जो अनुभव प्राप्त किये हैं उनमें से कोई १०६ औषधों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। इस पुस्तक से देशी चिकित्सक तथा इतर लोग भी काफ़ी लाभ उठा सकते हैं। इसका मूल्य २) है। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या ५०९ है। मिलने का पता—सुख-संचारक कम्पनी, मथुरा।

४—**हैज़ा**—इस पुस्तक के प्रणेता कविराज प्रभा... वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं। यह पुस्तक उनकी धन्व... ग्रन्थ-माला का तीसरा पुष्प है। 'प्रमेह की अनु... चिकित्सा' और 'नाड़ी-परीक्षा के सरल उपाय' नाम... इसके २ पुष्प निकल चुके हैं। उन्हीं की तरह उनकी... पुस्तक भी भले प्रकार लिखी गई है। हैज़ा-रोग-सम्ब... आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, बायोकेमिक, यूनानी आदि... की आवश्यक जानकारी इसके द्वारा हो जाती है। इस... ९१ पृष्ठों में हैज़े के रोग का निदान और रोगी की च... का विधान बताया गया है। पुस्तक के शेष भाग में... दूर करने के लिए लेप, चूर्ण, तेल, गोलियाँ, रस आदि... के नुस्ख़े, यहाँ तक कि सुधासिन्धु आदि पेटेंट दवाइ... तक के नुस्ख़े भी छाप दिये गये हैं। पेटेंट दवाइयों... नुस्ख़े वैद्यजी को कैसे ज्ञात हो गये, यह उन्होंने न... लिखा है और न आयुर्वेदिक योगों आदि का ही कुछ प... दिया है कि वे कहाँ से लिये गये हैं। यदि ऐसा कर दे... तो पुस्तक की प्रामाणिकता ही अधिक हो जाती। तथापि... पुस्तक उपयोगी और हैज़े की चिकित्सा करने में इस... पुस्तक से काफ़ी सहायता मिल सकती है। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।।) है। पता—मैनेजर, धन्वन्तरि-ग्रन्थ-माला, सदर बाज़ार, सागर (सी० पी०)

५—**आयुर्वेद-दर्शन**—हिन्दी में आयुर्वेद-सम्बन्धी पुस्तकें बहुत प्रकाशित होती हैं। उनमें अधिकांश का... दावा यही रहता है कि उनको पढ़कर लोग घर बैठे... साक्षात् धन्वन्तरि बन जा सकते हैं। और तो और, बड़े... बड़े निष्णात चिकित्सक-चूडामणियों तक ने ऐसे ग्रन्थों... का प्रकाशन किया है। लाचार होकर कहना पड़ता है कि... ऐसी पुस्तकों या ग्रन्थों से आयुर्वेद के न तो गौरव की... वृद्धि हुई है, न उसके ज्ञान का ही प्रचार हुआ है। परन्तु... उपर्युक्त पुस्तक इस कोटि की नहीं है। आयुर्वेद के ज्ञान... के प्रसार के लिए जिस पुस्तक-माला के प्रकाशन की... सबसे अधिक आवश्यकता है उसकी, हमारी तुच्छ सम्मति... में, यह पहली पुस्तक हो सकती है। यह बात बहुतेरे यहाँ... तक स्वयं आयुर्वेद-चिकित्सक भी न जानते होंगे कि... आयुर्वेद का अपना अलग दर्शन भी है, उसमें केवल कोरी... चुटकुलेबाज़ी ही नहीं है। उसी दर्शन की इस आलोच्य... पुस्तक में विस्तार के साथ क्रमपूर्वक चर्चा की गई है। चरक संहिता में प्राचीन कालीन ऐसी परिषदों का उल्लेख है जिनमें तत्कालीन आयुर्वेद के विशेषज्ञ एकत्र होकर अपने अपने मत की स्थापना करते थे और अन्त में परिषद् का अध्यक्ष विवादग्रस्त मसले पर अपना निर्णय देता था। ऐसी ही एक 'यज्जः पुरुषीय परिषद्' बाह्लीक देश में बैठी थी। पुनर्वसु आत्रेय इसके अध्यक्ष थे। इसके वाद-विवाद में वायक, मौद्गल्य, शरलोमा, वार्योविद, कुशिक, कौशिक, भद्रकाप्य, भारद्वाज, कांकायन और भिक्षु आत्रेय आदि विभिन्न मतवादी आचार्यों ने भाग लिया था। यह परिषद् कब बैठी थी, इसका पता तो नहीं लगता, परन्तु इतना स्पष्ट है कि भारतीय युद्ध के पहले इसका अधिवेशन हुआ था। इसमें उपर्युक्त आचार्यों ने अपने मतवादों की जो चर्चा की थी उसका विवेचन चरकसंहिता में विस्तार के साथ हुआ है। उसी को इस पुस्तक के लेखक 'वैद्य महादेव चन्द्रशेखर पाठक' ने अपनी इस पाण्डित्य-पूर्ण रचना में बड़ी ख़ूबी के साथ लिखा है। इसके पढ़ने से प्रकट हो जाता है कि आयुर्वेद का दर्शन कितना बढ़ा-चढ़ा था तथा उसके दार्शनिक विचारों में कैसी भिन्नता थी तथा उनका समन्वय करने की ओर तत्कालीन आचार्यों की कैसी प्रवृत्ति थी। पाठक जी ने इस पुस्तक के परिशिष्ट में वातपित्तश्लेष्मा के प्रकारों के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है उससे इस गवेषणापूर्ण पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। वास्तव में पाठक जी ने यह अनूठी पुस्तक लिखकर इस देश के चिकित्सक-चूडामणियों के लिए पुस्तक-रचना का एक नया आदर्श उपस्थित कर दिया है। चिकित्सकों को इस पुस्तक का संग्रह कर इससे लाभ उठाना चाहिए। इस २१५ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।।) है। पता—७३ जूनी कसेरा बाखल के पते पर लेखक को लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

६-८—**वैदिक पुस्तकमाला की तीन पुस्तकें**—

(१) **दुर्गा सप्तशती**—यह एक प्रसिद्ध धर्मपुस्तक है। सप्तशती के न मालूम कितने संस्करण निकल चुके हैं। परन्तु खेद है कि ऐसी महत्त्व की पुस्तक का अभी तक कोई वैसा प्रामाणिक संस्करण नहीं निकला। बंगाल, मिथिला, बनारस और बम्बई आदि के जो संस्करण उपलब्ध हैं उन सबके पाठ में तथा मंत्र-क्रम में दोनों में अन्तर है। यद्यपि ये अन्तर संख्या में बहुत नहीं हैं, तथापि अन्तर तो है। सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मंत्र में परिगणित है तब उसके एक मंत्र का भी पाठभेद या क्रमभेद अनर्थकर हो सकता है। परन्तु विद्वानों का इस अवस्था की ओर समुचित ध्यान नहीं जा रहा है और लोग अपने अपने मनमाने पाठ के संस्करण निकालते ही जा रहे हैं। वैदिक पुस्तकमाला का यह संस्करण भी ऐसा ही निकला है। हम इसे मैथिल-संस्करण के रूप में ग्रहण कर सकते थे। परन्तु जो एक मैथिल-संस्करण पहले से मौजूद है उसके और इसके पाठ और मंत्रक्रम में अन्तर है। हमने यह सब यहाँ इस कारण लिखने का साहस किया है कि वैदिक पुस्तकमाला सप्तशती का एक प्रामाणिक संस्करण निकाल सकती थी, परन्तु उसने भी इस ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। तथापि उसके इस संस्करण में यह एक विशेषता ज़रूर है कि सप्तशती का संस्कृत टिप्पणी-सहित ऐसा सस्ता संस्करण अभी तक नहीं निकला है। यदि टिप्पणी हिन्दी में होती तो यह संस्करण और भी उपयोगी होता। बड़े बड़े टाइप में छपी हुई सप्तशती के इस संस्करण की एक प्रति का मूल्य केवल =)।। है।

(२) **बलिदानप्रदीप**—धार्मिक अवसरों पर आस्तिक हिन्दू छाग, मेष या महिष का बलिदान करते हैं। इस पुस्तक में छाग और महिष के बलिदान की विस्तृत पद्धतियाँ, संस्कृत-भाषा में दी गई हैं। इसका संग्रह पण्डित श्री गोवर्द्धन झा शर्मा ने किया है और इसके पुनः प्रकाशन आदि का 'सर्वाधिकार' अपने हाथ में रक्खा है। उन्होंने 'सर्वाधिकार' अपने हाथ में रख कर अच्छा ही किया है, क्योंकि इस समय तो सारे देश में पशुबलि-विरोध का ही आन्दोलन छिड़ा हुआ है। बलिदान करनेवालों के लिए यह पुस्तक अधिक उपयोगी है। इस पुस्तक का मूल्य नहीं दिया है। पृष्ठ-संख्या ३६ है।

(३) **एकोद्दिष्टसारिणी**—एकोद्दिष्ट-श्राद्ध-सम्बन्धी यह एक अलभ्य प्रामाणिक निबन्ध है। मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित रत्नपाणि शर्मा ने इसकी रचना की थी। वे तिरहुत के महाराज रुद्रसिंह के राजपण्डित थे। यह निबन्ध अभी तक अप्राप्य था। इसे पंडित श्री गौरीनाथ शर्मा ने टिप्पणी के सहित प्रकाशित करवाया है। कर्मकाण्डियों के काम की पुस्तक है। मूल्य =)।। है।

९—सुन्दर पुस्तक—यह वास्तव में एक सुन्दर पुस्तक है—वस्तु से भी और रूप-रेखा से भी। यह आर्य-समाजी सन्ध्या-वन्दन की पुस्तक है। यह विधि और हिन्दी-अनुवाद के सहित है। इसका प्रत्येक पृष्ठ रंगीन बार्डर देकर छापा गया है। पुस्तक के अन्त में ईश्वर-स्तुति-सम्बन्धी १८ वेद-मन्त्र भी दिये गये हैं। इसके सिवा ६ भजन तथा आरती भी दी गई है। इस प्रकार यह सन्ध्या-पुस्तक अधिक उपयोगी बनाई गई है। परन्तु इसकी विशेषता इसकी सुन्दर सचित्र रंगीन छपाई तथा गेटअप में है। ऐसा सुन्दर छपा हुआ सन्ध्या-वन्दन का संस्करण अभी तक देखने में नहीं आया। सन्ध्या की पुस्तक का ऐसा नयनाभिराम संस्करण निकालने के लिए लाहौर के बागबनपुरा के 'सुन्दर-पुस्तकालय' के अध्यक्ष सवथा प्रशंसा के पात्र हैं। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य नहीं दिया गया है।

१०—श्रीदुर्गासप्तशती—यह दुर्गासप्तशती का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद विविध छन्दों में ब्रजभाषा में किया गया है। सप्तशती के अलावा कवच, अर्गला, कीलक, देवीसूक्त, नैधप्रतीकरहस्य, वैकृतिक रहस्य और मूर्ति-रहस्य आदि तत्सम्बन्धित स्तवों के भी पद्यात्मक अनुवाद इसमें दिये गये हैं। यह इस संस्करण की विशेषता है। प्रत्येक श्लोक का अनुवाद किया गया है, परन्तु हिन्दी-पद्य शिथिल और लयभंग-दोष से युक्त हैं। अनुवाद भी कहीं कहीं भ्रष्ट है। पाँचवें अध्याय में देवताओं की स्तुतिवाला अंश नहीं रक्खा गया है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते ऐसे देवीभक्त इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। अनुवादक पंडित ब्रह्मदत्त दीक्षित ललाम बी० ए०, एल-टी० म्युनिसिपल बोर्ड, मिर्ज़ापुर हैं। मूल्य नहीं दिया है। शायद अनुवादक महोदय को लिखने से पुस्तक मिल सकेगी।

११—धर्म और शिक्षा—संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद भार्गव, प्रकाशक भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या २९६ और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में ऋषि-महर्षियों के वाक्यों से लेकर नीतिशास्त्र के आचार्यों, सन्तों, कवियों तथा कितने ही देशी-विदेशी महापुरुषों के सुभाषितों का संग्रह किया गया है। इसमें जितने भी वाक्य या सुभाषित संग्रह किये गये हैं उनका हिन्दी-भाषान्तर भी साथ ही दे दिया गया है। इसका अधिकांश इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसका मनन करके मनुष्य अपनी ऐहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति कर सकता है।

यह पुस्तक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी तथा सिख आदि सभी धर्मों के अनुयायियों के लिए समान-रूप से उपयोगी है। इसमें भगवद्भक्ति, समाज-सेवा, शिष्टाचार तथा शारीरिक और मानसिक पवित्रता आदि उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। संग्रहकर्त्ता ने इस पुस्तक को आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के लिए समान रूप से उपयोगी बनाने के लिए काफ़ी परिश्रम किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। किन्तु कुछ दुरूह और गूढ़ वाक्यों की यदि थोड़ी व्याख्या भी कर देने का यत्न किया जाता तो इस पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती। जैसे 'धर्म बड़ी बातें सिखलाता है जिनको दिन नहीं जानते' (पृष्ठ १११), "मूर्ख और उसके भाग्य शीघ्र ही पृथक् हो जाते हैं" (पृष्ठ १२३), "भक्ति ही मनुष्य को सदा प्रेरित करती है" (पृ० १३४) तथा "पति के कठोर वचन कहने पर तथा करने पर भी जो स्त्री पति से प्रसन्न रहती है, वह धर्मभागिनी होती है।" (पृ० १९६) आदि ऐसे उद्धरण हैं जिनका अर्थ पाठकों को भली भाँति हृदयङ्गम नहीं हो पाता। पुस्तक सजिल्द है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

१२—नवदल—रचयिता, पंडित गयाप्रसाद द्विवेदी "प्रसाद" प्रकाशक, वाणी-मन्दिर, खरगोन (होलकर राज्य) हैं। मूल्य ॥) है।

"प्रसाद" जी का यह दूसरा प्रयास है। कुछ दिन हुए, उनकी 'हृदय-निकुञ्ज' नाम की कविता-पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उनकी यह रचना भी हृदय-निकुञ्ज की तरह सरस और 'प्रसाद-गुण' से युक्त है। काव्य-प्रेमियों के लिए इसमें काफ़ी मनोरञ्जन का सामान है।

१३—सहेली के पत्र—इसकी लेखिका मिसेज़ क़ासिम-अली बेगम हैं। इसमें २० स्त्रियोपयोगी आवश्यक विषयों की ललित ढंग से चर्चा की गई है। यह सारी चर्चा पत्रों के रूप में है। लेखिका ने इन्हें अपनी सहेली के नाम से लिखा है। पत्रों की भाषा रोचक, साथ ही मानव-विज्ञान की गंभीरता से पूर्ण है। स्त्री-जाति को क्या करना चाहिए और किस आदर्श के साथ अपना जीवन उत्तम बनाना चाहिए, यही इस सुन्दर रचना का लक्ष्य है। कला, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अङ्गों पर जितना प्रकाश डाला गया है, उतना ही दम्पति-जीवन पर भी। इस रचना पर लेखिका को मध्य-प्रान्तीय लिटररी एकेडेमी और कलकत्ता के स्त्रीमंडल ने पुरस्कार दिया है। हिन्दीप्रेमियों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए। पुस्तक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से छपी है। इसका गेट-अप भी अच्छा है।

१४—ग्रामसुधार—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय, एल० एजी० और श्रीयुत रमेशचन्द्र पाण्डेय, एम० ए०, प्रकाशक, कृषि-कार्यालय, जौनपुर यू० पी० हैं। पृष्ठ-संख्या १६६ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अनेक बातों की चर्चा की गई है। इसमें अनेक ऐसे उपाय बताये गये हैं जिनका अनुसरण करके ग्रामीण जनता अपना सुधार आसानी से कर सकती है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में ग्राम-सम्बन्धी अनेक बातों की चर्चा की गई है जो ग्रामीणों के रोज़मर्रा के कामों में आती हैं। यही नहीं, ग्रामों की रचना कैसी होनी चाहिए तथा उनकी व्यवस्था में ग्राम-वासियों का कैसा सहयोग होना चाहिए, जैसी गम्भीर और ऊँची बातों से लेकर खेती-बारी, घरेलू उद्योग-धन्धे, पशु-पालन तथा स्वास्थ्य आदि विषयों पर विस्तार के साथ महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसके एक रचयिता कृषि के विशेषज्ञ भी हैं। अतएव यह पुस्तक अधिक उपयोगी बन सकी है। भाषा बहुत ही सरल और बोधगम्य है। ग्रामीण जनता को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१५-२२—हिन्दी-मंदिर प्रयाग की ८ पुस्तकें—

(१) नेता बुझौवल—इस पुस्तक से बालकों को अपने देश के नेताओं के विषय में काफ़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। मूल्य ।) है।

(२) खोजो, खोज निकालो—इस पुस्तक में फूल, फल, पेड़, नदियाँ, शहर आदि सभी चीज़ों के नाम कविता-द्वारा बताये गये हैं। मूल्य ।) है।

(३) बानर-संगीत—यह बालोपयोगी गीतों का संग्रह है। मूल्य ।) है।

(४) हंसू की कहानी—इस पुस्तक में एक मनोरंजक कहानी कविता में लिखी है। मूल्य ।=) है।

(५) बताओ—(पहला भाग) यह एक मनोरञ्जक चित्रसंग्रह है। मूल्य ॥) है।

(६)-(७) गुपचुप कहानियाँ—पहला और दूसरा भाग—इन दोनों पुस्तकों में कई कहानियाँ चित्रों के रूप में दिखलाई गई हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य ।) है।

(८) कबड्डी—इस पुस्तक में कबड्डी नामक खेल पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य ।) है।

उपर्युक्त आठों पुस्तकें बालोपयोगी हैं। क्या विषय की दृष्टि से और क्या पुस्तक की रूप-रेखा की दृष्टि से, ये सभी पुस्तकें काफ़ी रोचक और रुचिवर्द्धक हैं। बालकों के लिए इनका संग्रह करना ज़रूरी है।

२३—नीतिनिबन्धावली—लेखक, श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, प्रकाशक, चाँदप्रेस लि० चन्द्र-लोक, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या २५० और मूल्य २) है।

इस पुस्तक में नीति-सम्बन्धी १७ निबन्धों का संग्रह है। इसके सभी निबन्ध सुन्दर और सुपाठ्य और उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हैं। लेखक ने प्रत्येक निबन्ध में विषय के सभी पहलुओं पर विद्वत्ता के साथ विचार किया है, जिससे पाठक की समझ में लेखक का मनोभाव भली-भाँति आ जाता है। इसके कुछ निबन्धों की रचना लेखक ने स्वयं की है और कुछ को अँगरेज़ी के निबन्धों के आधार पर लिखा है। निबन्धों की भाषा विषय के अनुसार बहुत साफ़-सुथरी है।

२४-२६—पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय, की ३ पुस्तकें—

(१) बालकों का योरप—लेखक, प्रोफ़ेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या ६८ और मूल्य ।=) है।

इसमें एक मानचित्र, आर्ट पेपर पर छपे हुए २६ चित्र और सचित्र लेख हैं। यह पुस्तक इस ढंग से लिखी गई है कि इसको पढ़कर बालक योरप की भौगोलिक स्थिति की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं तथा अन्य आवश्यक बातें जान सकते हैं।

(२) प्रतापादित्य—लेखक, श्रीयुत परमानन्द दत्त 'परमार्थी' हैं। पृष्ठ-संख्या ७५ और मूल्य ।) है।

इस पुस्तक में बादशाह अकबर के समकालीन वीर प्रतापादित्य की जीवनी लिखी गई है। प्रतापादित्य ने

शक्तिशाली मुग़ल-साम्राज्य से बंगाल को स्वाधीन करने में जो सजीव प्रयत्न किया था उसका इस पुस्तक में सरल और सुन्दर भाषा में वर्णन किया गया है। इसको पढ़कर बालक अपने आचरण को उच्च बनाने में समर्थ हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकें बालकोपयोगी हैं।

(३) झलक—लेखक, श्रीयुत अवधनारायण हैं। पृष्ठ-संख्या ९५ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक पाँच कहानियों का संग्रह है। सभी कहानियाँ मौलिक हैं, पर सभी कहानियाँ उत्तम नहीं हैं। पाँचों कहानियाँ सामाजिक हैं। इसमें 'हृदय' नामक कहानी अधिक अच्छी है। इस कहानी में एक छलहीन हृदय की अवस्था और भावना का सजीव वर्णन है। इसकी कल्पना यदि असंगत नहीं है तो उच्च भी नहीं है। कहानी के पाठकों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए।

२७—महाराणा प्रताप—लेखक, प्रोफ़ेसर लक्ष्मीचन्द, एम० ए०, प्रकाशक, भारतीभवन, मोहनलाल रोड, लाहौर, हैं। पृष्ठ-संख्या १७२ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में महाराणा प्रताप के वंश-परिचय के साथ-साथ उनके जीवन की समस्त घटनाओं का वर्णन किया गया है। महाराणा की इस वीरतापूर्ण गाथा को पढ़कर पाठक के हृदय में पुरुषार्थ का संचार होता है। भाषा सरल और वर्णन आकर्षक है। पुस्तक संग्रहणीय है।

२८—पंजाब-केसरी, महाराज रणजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर हंसराज, एम० ए०, प्रकाशक, दि पंजाब पब्लिशिंग एजेंसी, फ़ीरोज़पुर सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या १९६ और मूल्य १।।) है।

इस पुस्तक में महाराज रणजीतसिंह की जीवन-गाथा लिखी गई है। सिक्खों के उत्थान और महाराज के वंश का परिचय आदि में दिया गया है। महाराज का शासन-प्रबन्ध, राज्य-विस्तार, सैन्यबल, और नौकरों-चाकरों से व्यवहार आदि बातों पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इसके पढ़ने से तत्कालीन अनेक बातों का पता लगता है। भारतीय युवकों के लिए विशेष उपयोगी है।

२९-३० गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ की २ पुस्तकें—

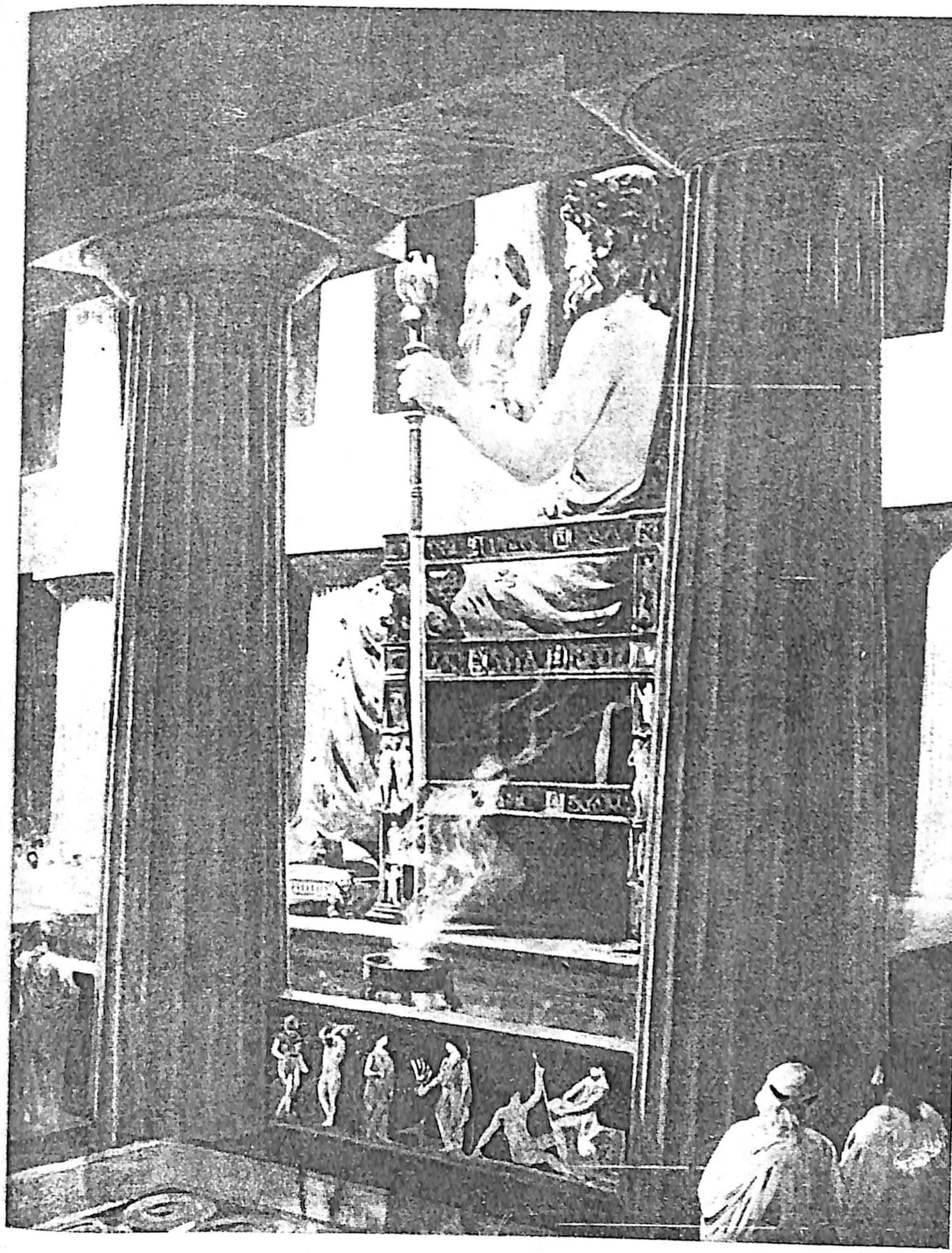
(१)—फूलों की सेज—लेखक, श्रीयुत विजयबहादुरसिंह, बी० ए०। पृष्ठ-संख्या ३३९ और मूल्य २) है।

यह पुस्तक स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। सम्पूर्ण पुस्तक दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में स्त्रियों की यौवनावस्था के प्रारम्भ से लेकर गर्भाधान की अवस्था से पूर्व की सभी बातों का वर्णन है। दूसरे खंड में उस समय से लेकर उनके तमाम गृहस्थ जीवन पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक-रचना उपदेश के रूप में है और एक विदुषी-द्वारा एक नवयुवती को सभी बातें आदि से अन्त तक समझाई गई हैं। इस ढंग की रचना होने के कारण पुस्तक विशेष रोचक हो गई है। नवयुवतियों को क्यों अधिक कष्ट होता है, उनका जीवन क्यों दुखी होता है, उन्हें किस किस तरह के रोगों का शिकार होना पड़ता है आदि बातों पर इसमें स्पष्ट रीति से प्रकाश डाला गया है। युवतियों को किस तरह अपना गृहस्थ-जीवन चलाना चाहिए, बच्चों का पालन-पोषण करना चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए आदि बातों का इसमें पूर्ण विवेचन है। इसे पढ़कर भारतीय स्त्रियाँ अपने जीवन को आदर्श बनाने में समर्थ हो सकती हैं। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। थोड़ी पढ़ी-लिखी बहनें भी इसे आसानी से पढ़ सकती हैं। अतः उनको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

(२) फिर निराशा क्यों ?—लेखक, श्रीयुत गुलाबराय, एम० ए० हैं। मूल्य ।।।) है।

इस पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों में दार्शनिक विचारों की क्रमबद्ध शृंखला उपस्थित करके लेखक इस परिणाम पर पहुँचाते हैं कि हमें किसी भी अवस्था अथवा परिस्थिति में निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अनेक स्थलों पर विचारों की अभिव्यक्ति ऐसी सुन्दर भाषा तथा शैली में हुई है कि वे अनायास हृदयपटल पर अंकित हो जाते हैं। पुस्तक का यह तृतीय संस्करण है, जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। पुस्तक में प्रूफ़-सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर प्रकाशक महोदय को ध्यान देना चाहिए।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०



[redacted]

फ़िडियस ज़ियस की मूर्ति—ओलम्पिया

वर्ग नं० १७ का नतीजा

इस बार दो प्रतियोगियों ने शुद्ध पूर्ति भेजी और ७ प्रतियोगियों ने १ अशुद्धि की। पुरस्कार नीचे लिखे अनुसार बाँटा गया—

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित दो व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १५०) मिला।

(१) सरस्वतीदेवी, ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।

(२) सत्यानन्द तिवारी, कुंजनिवास, जसेडी (बिहार) ई० आई० आर०।

द्वितीय पुरस्कार ११९) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १७) मिला।

(१) श्यामा अग्रवाल c/o डा० जी० पी० अग्रवाल, ४६ गाड़ीवानटोला, इलाहाबाद।
(२) शैलकुमारी c/o ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।
(३) लक्ष्मीदेवी c/o ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।
(४) श्रीकृष्णचन्द्र, पी० एस० जी० आफ़िस, लखनऊ।
(५) सुशीलादेवी गुप्ता, तहसीलदारभवन, तलाक़महल, कानपुर।
(६) भवानीप्रसाद बी० ए०, अजयगढ़ स्टेट (सी० आई०)।
(७) कैलाशचन्द्र, ओरियंटल स्कूल, सीतामढ़ी।

तृतीय पुरस्कार ४४) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २) मिला।

(१) विद्यावतीदेवी गुप्त c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६ पानदरीबा, इलाहाबाद।

(२) कैलाशचन्द्र जैन, ब्रह्मनान मुहल्ला, बिजनौर।

(३) श्रीमती देवी जैन 'चतुर' नाथूराम डोंगरीय, जैन-पाठशाला, बिजनौर।

(४) हरिनाथ मिश्र c/o श्रीमती सावित्रीदेवी, ७८३ ड्रा-परेड, इलाहाबाद।

(५) सरस्वती देवी, १३९, गाड़ीवान टोला, इला-

(६) मोहनकिशन c/o बा० रघुनन्दनप्रसाद सेठ, शीतलागली, आगरा।

(७) पं० सम्पतराम नागर, गनेशगंज, लखनऊ।

(८) मिश्रीलाल शर्मा c/o पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, मदन मोहन फ़ारमेसी, धनकुट्टी, कानपुर।

(९) एस० एल० गर्ग c/o ला० नहनेराम अग्रवाल, बाग़ मुजफ़्फ़र खाँ, आगरा।

(१०) मिसेज़ रघुनन्दनप्रसाद सेठ c/o बा० रघुन-

बाल-सखा का विशेषाङ्क

जनवरी सन् १९३८ में प्रकाशित होगा

इस विशेषाङ्क में सुन्दर मज़ेदार कहानियाँ, कवितायें, अनोखे चित्र और मशहूर विद्वानों के लेखों के अतिरिक्त

लड़कियों के लिए ख़ास

तौर से उपयोगी चीज़ें रहेंगी। बाल-सखा का ऐसा विशेषाङ्क पहले कभी नहीं निकला। इस विशेषाङ्क में साधारण अङ्कों से दूने पृष्ठ होंगे और चित्रों की भरमार रहेगी। यदि आप ग्राहक नहीं हैं तो शीघ्र कार्ड लिखकर ग्राहक बन जाइए।

मैनेजर बाल-सखा,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर १८, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ जनवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बाँयें से दाहिने

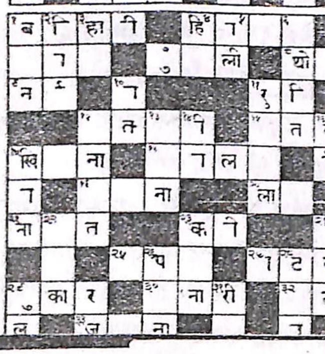
१–प्रेम का भिखारी ही......जाने में आनन्द उठाता है (बलिहारी)। ४–भारतवर्ष का सबसे बड़ा पर्वत।
७–जो स्त्री कि बिलकुल ही यह बनी रहे उसका गृह-प्रबन्ध कब सफल हो सकता है।
८–वह चतुर हैं जो अपना दोष दूसरों पर......देते हैं।
९–जो पुरानी न हो। ११–एक अप्सरा का नाम।
१२–किसी किसी की ज़बान इसकी ही सी चलती है।
१५–घोर आपत्ति से हाल ऐसा हो ही जाता है।
१७–बड़ों का .....उनके फूलने ही से होता है।
१८–बिगड़ जाने से यह हलाहल हानिकारक नहीं।
१९–कन्या का विवाह कर देने पर देना ही पड़ता है।
२०–इससे लोग कठिन से कठिन काम में भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं।
२१–इससे नाचने की गति प्रकट होती है।
२३–बहुत छोटी होते हुए भी असर बहुत बड़ा रखती है।
२५–सांसारिक वासनायें यदि इससे रहित होतीं तो यह संसार कभी का स्वर्ग बन गया होता।
२७–सिनेमा के.....पर, जब तसवीर देखकर दर्शक बाहर निकलते हों, तरह तरह की टिप्पणियाँ आप उनसे सुन सकते हैं।
२९–ईश्वर सच्चे दिल की यह हमेशा सुनते हैं।
३०–यह भाषा भी हिन्दुस्तान ही में बोली जाती है।
३२–इसको उलट कर देखिए तो किनारा समझ में आयेगा।
३३–गर्मियों में पेड़-पौधों का अपने आप, पहाड़ों व जंगलों में......एक अनोखा प्राकृतिक आश्चर्य है।

ऊपर से नीचे

१–इसके देने से एक प्रकार का बंधन-सा हो जाता है।
२–नौ-दस साल तक के बच्चे यह काम बहुत ठीक नहीं कर सकते।
३–गले में यह डाल कर बाज़ार में घूमना भलेमानसों का काम नहीं। ४–भलाई।
५–फूल-वाटिका की सजावट इसी के परिश्रम से है।
६–मुनासिब। १०–कोई कोई..., खाकर भी नहीं टरकते!
११–उजला व चमकदार।
१२–किसी की पेट-पूजा का काल। १३–न जाना।
१४–कहते हैं कि ऐसा रंग चित्त को शान्ति देता है।
१६–मज़दूर भी अगर यह उठाये, तो अनुचित क्यों?
१७–भोजन कराना।
२२–झूठ का यह किसी किसी को ऐसा लगता है कि जन्म भर नहीं भूलता। २३–टुकड़े होना।
२४–बुढ़ापे का सारा रोग इसकी कमी ही तो है।
२६–बिना गर्मी पहुँचे यह मुमकिन नहीं। २८–'टटका'।
२९–युद्ध में दुश्मन इसको भी तोड़ डालता है।
३१–अब भी कोई कोई घराने ऐसे हैं जिनमें कितनी ही पीढ़ी से पुरानी यह चली आती है।

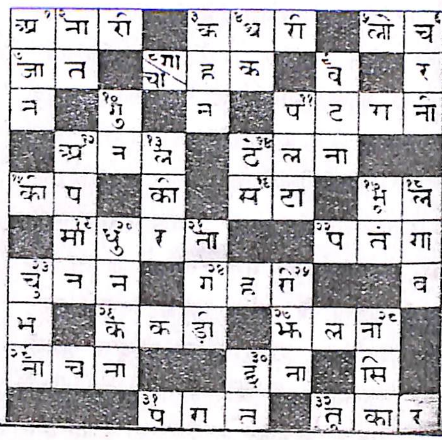
अपनी यादगारत के लिए वर्ग १८ की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।





वर्ग नं० १७ की शुद्धपूर्ति

वर्ग-नम्बर १७ की शुद्धपूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।



वर्ग नं० १७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ________

पता ________

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

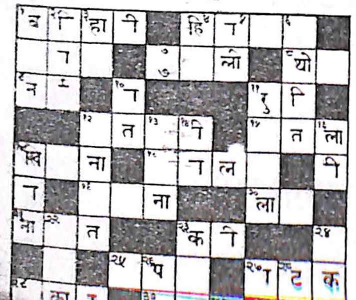
इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० १८

इंडियन प्रेस, लि०,

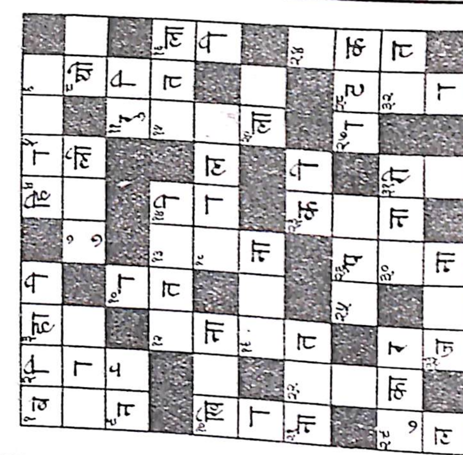
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नकल यहाँ कीजिए।

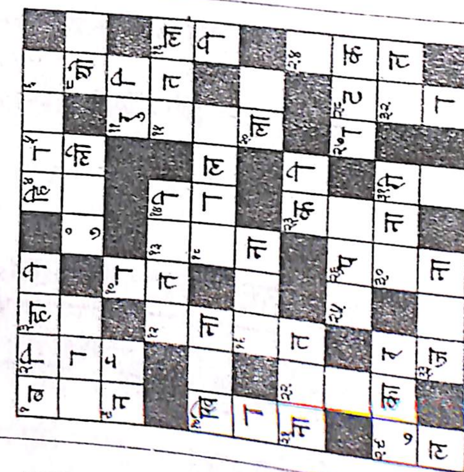


इस लाइन से काटिए

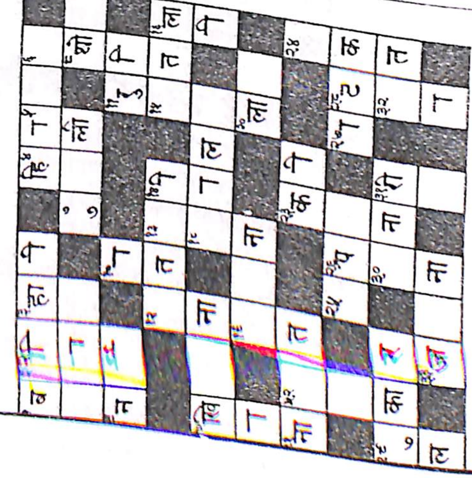
वर्ग नं० १८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम ________ पता ________

प्रतियोगियों के पत्र

(१)

य महोदय,

इस बार दिसम्बर की 'सरस्वती' में जब मैंने प्रथम-स्कार-विजेता की जगह पर अपना नाम छपा देखा तब के ख़ुशी तो हुई ही, आश्चर्य भी बहुत हुआ। आश्चर्य सलिए कि जब जब मैंने सोचा था कि इस बार प्रथम स्कार ज़रूर मिलेगा तब तब मैंने धोखा खाया। इस र मैंने यों ही पहेली भर कर भेज दी तो देखती हूँ कि मयाब हूँ। अब मेरा ख़याल है कि इस पहेली में जो तना ही दिमाग़ लड़ाते हैं उन्हें उतना ही धोखा हो कता है। यह बात मैं अपने अनुभव से कह सकती हूँ। मुझे ख़ुशी है कि इस बार मैंने ही बाज़ी जीती र पिछला सब घाटा वसूल कर लिया। कृपया रुपया घ्र भेजिए और इस पहेली को जारी रखिए। इसमें स्त्रियों का अच्छा जी बहलता है।

मिसेज़ ओंकारनाथ गुप्त

(२)

नवम्बर की 'सरस्वती-पहेली-प्रतियोगिता' में २ ग़ल-तियों पर मुझे आपकी ओर से २५) का जो पुरस्कार मिला उसके लिए धन्यवाद।

वास्तव में ऐसी पहेलियों की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त इन पहेलियों के पुरस्कार-वितरण में पूरी ईमानदारी से काम लिया जाता है और वर्ग-निर्माता के जो संकेत होते हैं वे प्रायः युक्तिपूर्ण होते हैं।

भवदीय

गोपाललाल पांडेय, पानदरीबा, इलाहाबाद।

पिछली शङ्काओं के उत्तर

नवम्बर की 'सरस्वती' में वर्ग नं० १४, की जो नई शङ्कायें किसी महाशय की प्रकाशित हुई हैं उनके उत्तर म संक्षेप में नीचे दे रहे हैं—

१—राह-रात

कायर के अर्थ हैं डरपोक। 'रात' चाहे डरपोक हो या साहसी सभी से किसी न किसी तरह कट ही जाती है। पर मुसीबत यानी कष्ट की 'राह' साहसी ही तय कर सकते हैं न कि डरपोक। 'राह' शब्द शुद्ध है। साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी इसी को पसंद करेगा। अब रहा ऊपर से नीचे। वह तो स्वयम् स्पष्ट है। कोई भी राष्ट्रीय नेता अपनी पहुनाई यानी सत्कार कराने की लालच से किसी पद को ग्रहण नहीं करता। हाँ, 'सहकार' यानी सहायक या मदद जैसा वे चाहते हों जिस काम के लिए पद ग्रहण किया है उसके मुवाफ़िक़ कोई मदद या सहायता नहीं मिल रही हो तो वे निश्चय ही अपने काम या पद से अलग हो जायँगे। इसलिए 'सहकार' शब्द कोई भी नहीं काट सकता।

२—खटाना-हटाना

ठीक है 'हटाना' भी, कोई बुरा नहीं है, परंतु 'खटाना' को अशुद्ध समझना भारी भूल है। 'खटाना' के अर्थ हुए निर्वाह या गुज़ारा होना। लड़नेवाली यानी झगड़ालू स्त्रियों का निर्वाह होना कठिन होता है अस्तु, 'खटाना' ही शब्द शुद्ध है।

३—मटका-लटका

प्रश्नकर्ता ने 'मटका' शब्द को भी अशुद्ध माना है। यों तो अनेक शब्द जैसे—लटका, भटका, अटका, खटका, हटका, सटका इत्यादि बनाने को लोग बना सकते हैं, पर 'मटका' शब्द शुद्ध है। प्रश्नकर्ता ने 'मटका' का अर्थ मिट्टी के घड़े से लगाया है। ठीक है। परन्तु यहाँ तो 'मटका' का अर्थ 'मटक' के भावों से यानी 'मटकना' से 'मटका' लिया गया है न कि मिट्टी के घड़े से। 'लटका' तो मेरी समझ में ही नहीं आता। हाँ 'मटका' समझ में भी आता है तथा शुद्ध भी है।

४—किरका-किनका

प्रश्नकर्ता ने 'किनका' को शुद्ध समझा है। किनका सूजी के नर्म हलवे को भी कहते हैं। इसके लिए तो अवश्य कष्ट उठाना पड़ेगा। ग़रीबों को कहाँ मिले? परन्तु अन्न के टूटे दाने या चावल के खुद्दी के लिए कष्ट उठाना यह हमें नहीं जँचता। 'किरका' ख़ूब जँचता है, क्योंकि जब सड़कें बनने लगती हैं तब बहुतों को कष्ट उठाना पड़ता है। 'किरका' ही शुद्ध है, 'किनका' नहीं।

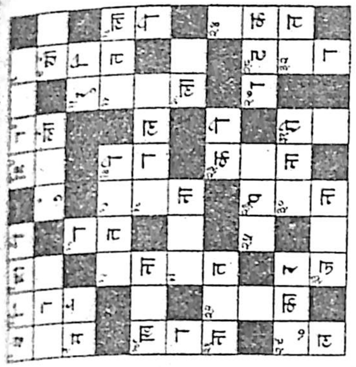
५—कियारी-किनारी

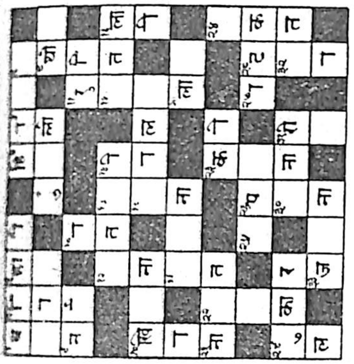
यदि बेलदार 'किनारी' हो तो साड़ी या धोती की शोभा बढ़ जाती है न कि 'किनारी' की। पर यहाँ तो बेल-बूटे से मतलब है। हाँ, 'कियारी' में बेल-बूटे यानी छोटे छोटे पौधे पुष्प इत्यादि के लगाये जायँ तो 'कियारी' की शोभा बढ़ जाती है, क्योंकि 'कियारी' इसी के लिए बनाई जाती है। मेरी समझ में 'कियारी' शुद्ध है, 'किनारी' अशुद्ध।

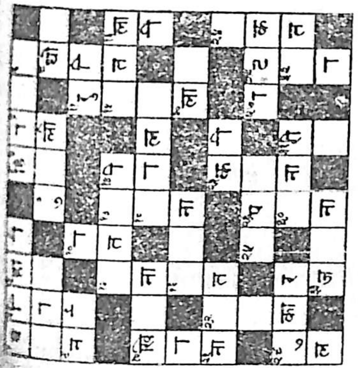
आपका

प्रेमसुन्दरप्रसाद c/o गौरीशंकर सेठ

सी० २४।१५ कबीरचौरा, काशी।



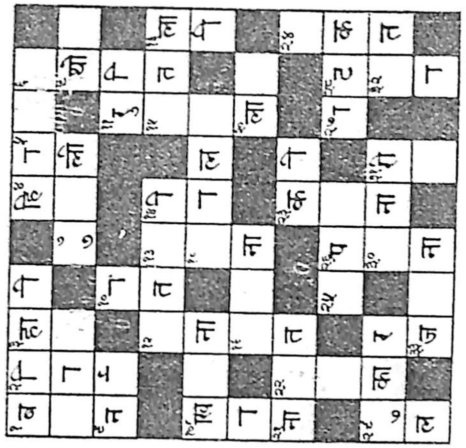




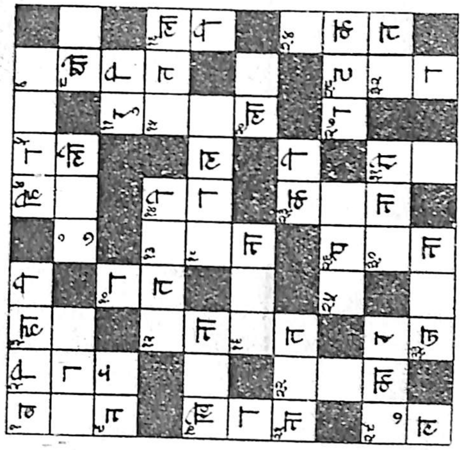
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग १८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

—इस लाइन से काटिए—

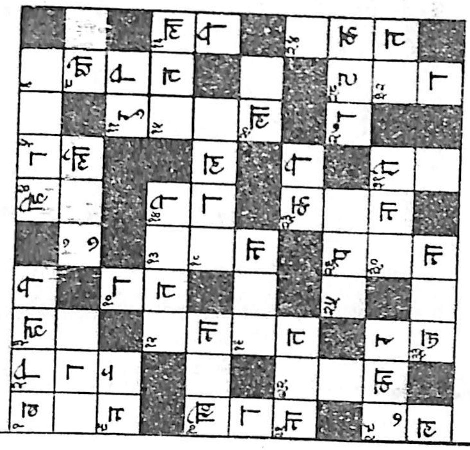
वर्ग नं० १८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० १८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम ———— पता ————

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को ... ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ १०२ पर देखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० १८ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर १८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ जनवरी सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

भारतीय ओलम्पिक

लेखक, श्रीयुत हरिदास माणिक

जीवित जातियाँ खेलों से बड़ा अनुराग रखती हैं। हमारा भारत तो इनका क्रीड़ाक्षेत्र ही रहा है। प्राचीन काल में देश-देशान्तर के लोग भारत में जमा होकर अपने बल-वीर्य का परिचय देते रहते थे। रामायण-महाभारत में नाना प्रकार के खेलों का वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण का कालीदह में कूदकर गेंद को निकाल लाना एक आश्चर्य-जनक खेल था। भीम और जरासन्ध की कुश्ती की कथा कौन नहीं जानता है।

दौड़, तैराकी तथा कुश्ती में भारत संसार का शिरोमणि है। अभी गत वर्ष जर्मनी में जो ओलम्पिक खेल हुए थे उनमें भारत ने भी कई विषयों में बाज़ी मारी थी। हाकी में तो वह सर्वप्रथम रहा। इसके अतिरिक्त वह अन्य खेलों में भी पीछे नहीं रहा। अमरावती की हनुमान-व्यायाम-शाला का मालखम्भ तथा अन्य भारतीय खेलों का जो प्रदर्शन जर्मनी में हुआ था उसको देखकर योरपीय खेलाड़ियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी।

यह सब होते हुए भी भारत को अभी खेल-कूद के सम्बन्ध में बहुत कुछ करना है। प्रयत्न जारी है, पर उसकी रफ़्तार बहुत धीमी है। हाकी की नाईं बंगाल फ़ुटबालों में दुनिया में सबको हरा सकता है। पर गत वर्ष वह जर्मनी के ओलम्पिक में इस कारण नहीं शामिल हो सका कि उसके पास काफ़ी धन नहीं था। अगले ओलम्पिक टूर्नामेंट में शरीक़ होने के लिए वह अभी से यत्न कर रहा है।

भारत में भी ओलम्पिक खेल कई वर्षों से हो रहे हैं। अब आठवाँ अखिल भारतवर्षीय ओलम्पिक खेल कलकत्ता के वृक्षागार्क में होने जा रहा है। भारतीय ओलम्पिक के मंत्री श्री एन० अहमद ने इस सम्बन्ध में जो सूचना निकाली है उसे हम यहाँ देते हैं। आशा है, इससे भारत की जनता कुछ सजग होकर इसकी ओर अपना ध्यान देगी। यह आठवाँ ओलम्पिक खेल १९३८ ई० के फ़रवरी मास में होगा।

यदि सम्भव हो सका तो आर्गनाइज़िंग कमिटी तल्ला-पार्क के पास एक ओलम्पिक गाँव बसावेगी, जहाँ स्त्री व पुरुष खेलाड़ी आराम से रहेंगे। शहर के बीच में यह स्थान ऐसे मौक़े पर है कि वहाँ आधी रात तक मोटर-लारी व गाड़ियाँ आसानी से मिल सकती हैं। अधिकारियों से इस बात की भी लिखापढ़ी हो रही है कि कलकत्ता के प्रत्येक स्टेशन से ट्राम ओलम्पिक गाँवों को दौड़ सके। जहाँ तक हो सकेगा, सब प्रकार की सुविधाओं की वहाँ व्यवस्था की जायगी।

इसके अतिरिक्त खेल में भाग लेनेवाले खेलाड़ियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जायगा। रात्रि में अभ्यास के लिए फ़्लड लाइट की भी व्यवस्था की जायगी।

संसार के नामी नामी तैराकों के सुभीते के लिए आस-पास के तालावों में तैरने की व्यवस्था की जायगी। यदि सम्भव हुआ तो उसमें नाप के मीटर पानी पर अंकित किये जायँगे। इन्हीं तालावों में तैराकी के सब खेल होंगे तथा वाटरपोलो की भी व्यवस्था होगी।

ओलम्पिक गाँव में पोस्टआफ़िस, टेलीफ़ोन व रेडियो की भी व्यवस्था की जायगी।

सारे खेल सम्भवतः फ़रवरी के पहले सप्ताह में होंगे और यह आशा की जाती है कि भारतीय देशी राज्यों के तथा फ़ौजों व प्रांतीय असोसिएशनों के सभी क्लब उसमें भाग लेंगे। निम्नलिखित खेल-कूद होंगे—

मैदानी खेल (पुरुषों के लिए)

१००	गज़ की दौड़
२००	,, ,,
४००	,, ,,
८००	,, ,,
१,५००	,, ,,
५,०००	,, ,,
१०,०००	,, ,,

मोराथेन रेस—४२, १९५ मीटर या २६ मील व ३८५ गज़

स्टीपलीचेन—३००० गज़

हडल रेस—४०० गज़

दौड़कर लम्बी कुदान

पोल वाल्ट

हथौड़े का फेंकना
रिले रेस—४०० गज़
सड़क पर टहलने की रेस—४०,००० गज़
साइकिल ट्रेक रेस—१०,००० गज़
हर्डल रेस—११०
दौड़कर ऊँची कूद
दौड़कर—(हापस्टेप और कूद)
जेवलिन का फेंकना
गोला फेंकना
डिकाथ लोन
रिले रेस—४×४०० मीटर
साइकिल ट्रेक रेस—३०,००० मीटर
साइकिल रोड रेस—१०० किलोमीटर
मैदानी खेल (स्त्रियों के लिए)
१०० गज़ की दौड़
२०० " " दौड़
८० " " (हर्डल रेस)
रिले रेस—४×१००
ऊँची कूद दौड़कर
डिस्कस का फेंकना
जेवलिन का फेंकना

कुश्ती

बैंटम वेट	... ...	१२३ फाउंड तक	...
फ़ेदर	... ...	१३४ ...	...
लाइट	... ...	१४५ ...	...
वेल्टर	... ...	१५८ ...	...
मिडिल	... ...	१७४ ...	...
लाइट हेवी	... ...	१९१ ...	...
हेवी	... ...	१९१ के ऊपर	...

अन्य प्रतिद्वन्द्विताएँ

बास्केट बाल
वालीबाल—(एक ओर)

नेशनल गेम

कबड्डी (व्यूक रूल के मुताबिक़)
या हा-डू - डू - डू

नुमाइशी खेल

स्त्रियों का बास्केट बाल

तैराकी (मर्दों की)

१०० गज़ की दौड़ फ़्री स्टाइल
१०० " " उलटा तैरना व बैक स्ट्रोक
२०० " " ब्रेस्ट स्ट्रोक (मल्लाही)
४०० " " फ़्री स्टाइल ...
१,५०० " " फ़्री स्टाइल ...
कूदना - (३ ज़रूरी व २ अपनी इच्छा पर)

लोबोर्ड या स्प्रिंग बोर्ड १ मीटर

(ज़रूरी) दौड़कर हेडर फ़ारवर्ड (आगे)
मिडिल बोर्ड व स्प्रिंग बोर्ड
३ मीटर (ज़रूरी) बैकवर्ड (पीछे) स्प्रिंग
फ़ारवर्ड (आगे) कूदना

हाई बोर्ड व टाप (सबसे ऊँचा) बोर्ड

खड़े होकर हेडर—फ़ारवर्ड आगे (स्वालो पोज़िशन)
रिले रेस—४×२०० गज़ (फ़्री स्टाइल)
रिले रेस ३×३०० गज़
रिले १०० गज़ (फ़्री स्टाइल)
रिले " " (उलटा तैरकर)
रिले " " (ब्रेस्ट स्ट्रोक) मल्लाही
वाटरपोलो—पानी का फुटबाल तैराकी (स्त्रियों की)
५० गज़ की दौड़ फ़्री स्टाइल
१०० " " फ़्री स्टाइल
१०० " " उलटा तैरना
२०० " " ब्रेस्ट स्ट्रोक
४०० " " फ़्री स्टाइल
कूदना अपनी इच्छा पर
रिले ४×५० गज़ (फ़्री स्टाइल)

जातीय खेलों में हा-डू-डू-डू पहली बार स्त्रियों [illegible] लिए रक्खा गया है।

स्त्रियों के लिए बास्केट बाल का खेल नुमाइशी [illegible] और यदि दो-तीन प्रान्तों ने निम्नलिखित खेलों के र[illegible] की स्वीकृति दे दी तो वे भी खेल रक्खे जा[illegible] (१) वज़न उठाना, (२) पेन्टाथ्लोन, (३) पुरुषों [illegible] लिए मुक्की, (४) स्त्रियों के लिए साइकिल रेस [illegible] (५) लम्बी कूद।

भारतीय ओलम्पिक ऐसोसियेशन शीघ्र ही दिल्ली [illegible] अपनी बैठक करेगा और यदि वहाँ यह निश्चित हो [illegible] तो शीघ्र ही आगामी सिडनी तथा पेलेस्टाइन में होने[illegible] खेलों में वह भाग लेगा।



सर सुन्दरलाल
(वाइस-चान्सलर १९१२-१९१७)



डाक्टर गंगानाथ झा
(वाइस-चान्सलर १९२३-१९३२)



पंडित इक़बाल नारायण गुर्टू

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय

लेखक, श्रीयुत भगवानदास अवस्थी

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय को स्थापित हुए ५० वर्ष हो गये। इस उपलक्ष्य में गत १३ से १६ दिसम्बर तक इस विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। इन पचास वर्षों में इस यूनिवर्सिटी ने कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, यह स्वर्ण-जयन्ती में सम्मिलित होनेवाले संसार के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों, वैज्ञानिकों और अन्य प्रमुख व्यक्तियों के नामों की लम्बी सूची से सहज ही अनुमान किया जा सकता है। पेरिस, आक्सफ़ोर्ड, जेनेवा, ग्लासगो, एडिनबरा, हार्वर्ड, शिकागो, न्यूयार्क आदि अन्य देशीय और कलकत्ता, बम्बई, मदरास, लाहौर, हैदराबाद आदि भारतीय विश्वविद्यालयों ने इस अवसर पर अपनी शुभ कामनायें भेजी थीं। इनमें से अधिकांश के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। अमेरिकन फ़िलासिफ़िकल सोसाइटी, फ़िलाडे-ल्फ़िया और रायल सोसाइटी, लन्दन, जैसी विद्वत्-समि-तियों ने भी अपनी शुभ कामनायें भेजी थीं। सबसे महत्त्व की बात यह थी कि विश्वविद्यालय के प्रत्येक वर्ष के जीवित ग्रेजुएटों में से एक एक उस वर्ष के प्रतिनिधि-स्वरूप आमन्त्रित किये गये थे।

इस अवसर पर प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा-द्वारा लिखा गया विश्वविद्यालय का एक सुन्दर छपा हुआ अप-टु-डेट सचित्र इतिहास भी प्रकाशित किया गया है। इस इतिहास के देखने से ज्ञात होता है कि भारत में अँगरेज़ी-शिक्षा का श्रीगणेश सन् १७९२ ईसवी में हुआ था। पहले-पहल अँगरेज़ी के शिक्षक विलायत से भेजे गये थे। उन दिनों लोगों में अँगरेज़ी सीखने का इतना अधिक उत्साह था कि सन् १८२३ में राजा राममोहन राय ने संस्कृत-शिक्षा पर किये जानेवाले सरकारी व्यय का विरोध किया था। १८३५ ईसवी में लार्ड विलियम बेंटिंक ने एक प्रस्ताव पास करते हुए कहा था कि ब्रिटिश सरकार को भारतीयों में योरपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना चाहिए और शिक्षा के लिए निर्धारित समस्त धन अँगरेज़ी-शिक्षा के प्रचार में ही लगाना चाहिए। बनारस का संस्कृत-कालेज लार्ड कार्नवालिस ने १७९१ में खोला था। १८४४ में यह एंग्लो-संस्कृत कालेज बना दिया गया। १८२४ ईसवी से १८२७ तक में आगरा, दिल्ली और बरेली में अँगरेज़ी के कालेज खोले गये। १८५४ ईसवी से १८७१ ईसवी तक इस प्रान्त में इस प्रकार चार कालेज



[पंडित मदनमोहन मालवीय जिन्होंने हिन्दी में मौखिक दीक्षान्त भाषण कर एक नवीन परम्परा स्थापित की।]

थे और उनका सम्बन्ध कलकत्ता-विश्वविद्यालय से था। ग़दर के दिनों में इनकी अवस्था शोचनीय होगई थी। १८७० ईसवी में इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा उठी। उसी के फल-स्वरूप १८७३ ईसवी में म्योर-सेंट्रल-कालेज की नींव पड़ी। सन् १८८६ ईसवी में यह कालेज बनकर तैयार होगया और लार्ड डफ़रिन ने जो उस समय वाइसराय थे, बाक़ायदा इसका उद्घाटन किया। इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा के साथ साथ उत्तर-भारत के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा भी उठी थी। विश्वविद्यालय की स्थापना १८८७ ईसवी में हुई। सन् १८८९ ईसवी में बी० ए० और एल-एल० बी० की प्रथम बार परीक्षायें यहाँ ली गईं। १८९० ईसवी में इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एम० ए० तक शिक्षा देने-वाले कालेज लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, आगरा, अजमेर, जयपुर, अलमोड़ा, ग्वालियर और मंसूरी आदि में थे। सन् १८८९ ईसवी में एंट्रेंस की जो प्रथम परीक्षा हुई थी उसमें गवर्नमेंट कालेज, अजमेर, महेन्द्र-कालेज पटियाला और बम्बई, अहमदाबाद जैसे दूर के कालेजों के विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। तब इस विश्वविद्यालय के क्षेत्र की सीमा निश्चित नहीं थी। सन् १९०४ में एक क़ानून बना और इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की सीमा निर्धारित कर दी गई। संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, अजमेर मेरवाड़ा, राजपूताना और मध्य-भारत की रियासतों के स्कूल और कालेज इसकी सीमा के अन्दर थे। यह सीमा लगभग ४,५२,८३० वर्ग मील थी, जिसकी जन-संख्या ८,०९,४४,४३२ थी। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय का सीमा-विस्तार सन् १९१५ से कम होना आरम्भ हुआ, जब बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९२० में लखनऊ-विश्वविद्यालय और अलीगढ़-विश्वविद्यालय अस्तित्व में आये। १९२३ में नागपुर और १९२७ में आगरा के विश्वविद्यालय स्थापित हुए। सन् १९२७ के बाद म्योर-सेन्ट्रल-कालेज, ईविङ्ग क्रिश्चियन कालेज और कायस्थ-पाठशाला-कालेज को छोड़ कर शेष सब सम्बद्ध संस्थायें इन पाँचों विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत हो गईं।

सन् १९२१ में सरकार ने एक क़ानून बनाया, जिसके अनुसार इस विश्वविद्यालय का पुनः संगठन किया गया। इसके पहले यह विश्वविद्यालय सिर्फ़ परीक्षायें लेता था। नये संगठन के अनुसार यह शिक्षा की व्यवस्था भी करने लगा और इसके वर्तमान विभिन्न विभाग विकसित हुए।

विश्वविद्यालय की इस स्वर्णजयंती के अवसर पर सबसे महत्त्व की बात यह हुई कि इसके ५० वर्ष के जीवन में प्रथम बार दीक्षान्त भाषण हिन्दी में किया गया। इस कार्य के लिए महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी निमंत्रित किये गये थे। आपने अपने भाषण में अब से ५० वर्ष की पूर्व की अवस्था का उल्लेख इस प्रकार किया—

मेरा पहला अवसर शिक्षा प्राप्त करने का कलकत्ता-यूनिवर्सिटी में था और उसके बाद इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में। ईश्वर को परम धन्यवाद है कि इस यूनिवर्सिटी की गोल्डेन जुबिली के अवसर पर हर्ष में भाग लेने के लिए मैं भी उपस्थित हो सका हूँ।

इस यूनिवर्सिटी का पिछले ५० वर्ष का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। इन ५० वर्षों में इसने जो काम किया है वह बहुत प्रशंसनीय है और उसे आप सब जानते हैं

५० वर्ष पहले इस नगर में बहुत थोड़ी पाठशालायें थीं। जिस पाठशाला में मैंने शिक्षा आरम्भ की थी उसका नाम धर्मज्ञानोपदेश-पाठशाला था और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि वह पाठशाला भी अभी तक चल रही है। इस पाठशाला के स्थापित करनेवाले पण्डित हरदेव जी थे। वे बड़े त्यागी और सन्त पुरुष थे। भिक्षा माँगकर लड़कों को पढ़ाते थे और ग़रीब विद्यार्थियों को भोजन भी देते थे। उनका संकल्प था कि अक्षर-पाठशाला स्थापित करूँ और इस उद्देश की पूर्ति उन्होंने की भी थी। हिन्दी और संस्कृत इसमें पढ़ाई जाती थी, जो अब तक पढ़ाई जाती है। उसके बाद यहाँ गवर्नमेंट स्कूल खुला, जो पहले इस समय के क्लाक टावर के पास चुंगी-घरवाले मकान में खोला गया था। आज उस दशा को देखते हुए मालूम होता है कि यहाँ शिक्षा में कितनी उन्नति हुई है। इस ५० साल में इस यूनिवर्सिटी ने महान् उन्नति की है और उसके लिए मैं इसे धन्यवाद देता हूँ। इस यूनिवर्सिटी ने सार्वजनिक जीवन में तथा जीवन के भिन्न भिन्न मार्गों में कितने ही काम करनेवाले हमें दिये हैं। इसने इस प्रान्त को कितने सार्वजनिक कार्यकर्ता, कितने जज, एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर, अध्यापक और इंजीनियर दिये हैं। इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने जितनी सफलता प्राप्त की है उसके लिए किसी भी यूनिवर्सिटी को गर्व हो सकता है। मैं तो इतना कहूँगा कि जितनी शिक्षा की उन्नति इस प्रान्त में हुई है उसके लिए मेरा रोम-रोम प्रसन्न है और इसमें जितना कार्य इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने किया है उसका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देने की बात पर ज़ोर देते हुए मालवीय जी ने कहा—

कोई देश किसी अन्य देश की भाषा-द्वारा शिक्षा दे, यह नहीं हो सकता। इँग्लेंड में जर्मनी की भाषा-द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती और न जर्मनी इटली की भाषा-द्वारा शिक्षा देता है। सब देश अपनी मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देते हैं। भारत में भी अब अँगरेज़ी-द्वारा शिक्षा देने के दिन गये। (हर्ष-ध्वनि) मुझको अँगरेज़ी-भाषा से वैर नहीं। मैं उसे प्यार करता हूँ। जब मैं ७ वर्ष का था तब से इसे पढ़ता हूँ। ज़्यादातर सभाओं में मैं अँगरेज़ी में ही बोला हूँ। अब तो दशा यह है कि अँगरेज़ी में बोले, लोगों ने तारीफ़ कर दी और ख़ुश हो गये। (हँसी) परन्तु अन्य देशों के लोग ऐसा नहीं करते। अँगरेज़ जर्मन-भाषा में नहीं बोलते और न जर्मन लोग अँगरेज़ी-भाषा में बोलते हैं। केवल हमीं ऐसे हैं जो अँगरेज़ी में बोलना पसन्द करते हैं। मगर जन्म-भर अँगरेज़ी में बोले और फिर भी अँगरेज़ी ठीक ठीक बोलना नहीं आया। (हँसी) मैं एक भी ऐसे हिन्दुस्तानी को नहीं जानता जो यह कह सकता हो कि हमें अँगरेज़ी पूरी आ गई। हम तो केवल नक़ल करते हैं। हमारे अँगरेज़ भाइयों को देखिए कि ३५ वर्ष तक हिन्दुस्तान में रह कर नौकरी की, पर वे अच्छी हिन्दी या उर्दू नहीं बोलते। (ज़ोरों की हँसी) वे हिन्दुस्तानी के पूर्ण ज्ञाता होने की चिन्ता नहीं करते। जापानी लोग अँगरेज़ी बोलना पसन्द नहीं करते। इसी तरह अन्य कोई भी देश विदेशी भाषा पसन्द नहीं करता।

देश में शीघ्र से शीघ्र शिक्षा-प्रचार कैसे हो इस सम्बन्ध में पूज्य मालवीय जी ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया—

आज आपके सामने मैं एक स्कीम रख रहा हूँ। मेरा यह प्रस्ताव है और जिसे मैं सब वाइस-चान्सलरों के सामने रखना चाहता हूँ कि तीन महीने का समय शिक्षा-प्रचार के लिए निर्धारित किया जाय और इस समय में समस्त शिक्षित भारतीय चाहे वे गवर्नर हों, चीफ़ जस्टिस हों, मिनिस्टर हों, कोई बड़े से बड़े और छोटे से छोटे अफ़सर हों, सब यह प्रतिज्ञा कर लें कि किसी न किसी लड़के को अवश्य पढ़ावेंगे। अगर यह आन्दोलन आप शुरू कर देंगे तो देखेंगे कि कितना विद्या का प्रचार इन तीन महीनों में होता है। अविद्या और निरक्षरता दूर होगी, अगर सोलह आने नहीं, तो आठ आने, आठ आने नहीं, तो चार आने तो वह ज़रूर ही दूर होगी। इसलिए मैं सब सज्जनों से अनुरोध करूँगा कि वे इस आन्दोलन को उठावें।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की जयन्ती के समारोह में बड़ी धूमधाम रही और सारा महोत्सव पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके लिए इसके प्रबन्धक सर्वथा बधाई के पात्र हैं।



[पंडित मदनमोहन मालवीय जिन्होंने हिन्दी में मौखिक दीक्षान्त भाषण कर एक नवीन परम्परा स्थापित की।]

थे और उनका सम्बन्ध कलकत्ता-विश्वविद्यालय से था। ग़दर के दिनों में इनकी अवस्था शोचनीय होगई थी। १८७० ईसवी में इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा उठी। उसी के फल-स्वरूप १८७३ ईसवी में म्योर-सेंट्रल-कालेज की नींव पड़ी। सन् १८८६ ईसवी में यह कालेज बनकर तैयार होगया और लार्ड डफ़रिन ने जो उस समय वाइसराय थे, बाक़ायदा इसका उद्घाटन किया। इलाहाबाद में एक केन्द्रीय कालेज खोलने की चर्चा के साथ साथ उत्तर-भारत के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा भी उठी थी। विश्वविद्यालय की स्थापना १८८७ ईसवी में हुई। सन् १८८९ ईसवी में बी० ए० और एल-एल० बी० की प्रथम बार परीक्षायें यहाँ ली गईं। १८९० ईसवी में इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एम० ए० तक शिक्षा देनेवाले कालेज लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, आगरा, अजमेर, जयपुर, अलमोड़ा, ग्वालियर और मंसूरी आदि में थे। सन् १८८९ ईसवी में एंट्रेंस की जो प्रथम परीक्षा हुई थी उसमें गवर्नमेंट कालेज, अजमेर, महेन्द्र-कालेज पटियाला और बम्बई, अहमदाबाद जैसे दूर के कालेजों के विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। तब इस विश्वविद्यालय के क्षेत्र की सीमा निश्चित नहीं थी। सन् १९०४ में एक क़ानून बना और इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की सीमा निर्धारित कर दी गई। संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, अजमेर मेरवाड़ा, राजपूताना और मध्य-भारत की रियासतों के स्कूल और कालेज इसकी सीमा के अन्दर थे। यह सीमा लगभग ४,५२,८३० वर्ग मील थी, जिसकी जन-संख्या ८,०९,४४,४३२ थी। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय का सीमा-विस्तार सन् १९१५ से कम होना आरम्भ हुआ, जब बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९२० में लखनऊ-विश्वविद्यालय और अलीगढ़-विश्वविद्यालय अस्तित्व में आये। १९२३ में नागपुर और १९२७ में आगरा के विश्वविद्यालय स्थापित हुए। सन् १९२७ के बाद म्योर-सेन्ट्रल-कालेज, ईविङ्ग क्रिश्चियन कालेज और कायस्थ-पाठशाला-कालेज को छोड़ कर शेष सब सम्बद्ध संस्थायें इन पाँचों विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत हो गईं।

सन् १९२१ में सरकार ने एक क़ानून बनाया, जिसके अनुसार इस विश्वविद्यालय का पुनः संगठन किया गया। इसके पहले यह विश्वविद्यालय सिर्फ़ परीक्षायें लेता था। नये संगठन के अनुसार यह शिक्षा की व्यवस्था भी करने लगा और इसके वर्तमान विभिन्न विभाग विकसित हुए।

विश्वविद्यालय की इस स्वर्णजयंती के अवसर पर सबसे महत्त्व की बात यह हुई कि इसके ५० वर्ष के जीवन में प्रथम बार दीक्षान्त भाषण हिन्दी में किया गया। इस कार्य के लिए महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी निमंत्रित किये गये थे। आपने अपने भाषण में अब से ५० वर्ष की पूर्व की अवस्था का उल्लेख इस प्रकार किया—

मेरा पहला अवसर शिक्षा प्राप्त करने का कलकत्ता-यूनिवर्सिटी में था और उसके बाद इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में। ईश्वर को परम धन्यवाद है कि इस यूनिवर्सिटी की गोल्डेन जुबिली के अवसर पर हर्ष में भाग लेने के लिए मैं भी उपस्थित हो सका हूँ।

इस यूनिवर्सिटी का पिछले ५० वर्ष का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। इन ५० वर्षों में इसने जो काम किया है वह बहुत प्रशंसनीय है और उसे आप सब जानते हैं।

५० वर्ष पहले इस नगर में बहुत थोड़ी पाठशालायें थीं। जिस पाठशाला में मैंने शिक्षा आरम्भ की थी उसका नाम धर्मज्ञानोपदेश-पाठशाला था और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि वह पाठशाला भी अभी तक चल रही है। इस पाठशाला के स्थापित करनेवाले पण्डित हरदेव जी थे। वे बड़े त्यागी और सन्त पुरुष थे। भिक्षा माँगकर लड़कों को पढ़ाते थे और ग़रीब विद्यार्थियों को भोजन भी देते थे। उनका संकल्प था कि अक्षर-पाठशाला स्थापित करूँ और इस उद्देश की पूर्ति उन्होंने की भी थी। हिन्दी और संस्कृत इसमें पढ़ाई जाती थी, जो अब तक पढ़ाई जाती है। उसके बाद यहाँ गवर्नमेंट स्कूल खुला, जो पहले इस समय के क्लाक टावर के पास चुंगी-घरवाले मकान में खोला गया था। आज उस दशा को देखते हुए मालूम होता है कि यहाँ शिक्षा में कितनी उन्नति हुई है। इस ५० साल में इस यूनिवर्सिटी ने महान् उन्नति की है और उसके लिए मैं इसे धन्यवाद देता हूँ। इस यूनिवर्सिटी ने सार्वजनिक जीवन में तथा जीवन के भिन्न भिन्न मार्गों में कितने ही काम करनेवाले हमें दिये हैं। इसने इस प्रान्त को कितने सार्वजनिक कार्यकर्ता, कितने जज, एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर, अध्यापक और इंजीनियर दिये हैं। इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने जितनी सफलता प्राप्त की है उसके लिए किसी भी यूनिवर्सिटी को गर्व हो सकता है। मैं तो इतना कहूँगा कि जितनी शिक्षा की उन्नति इस प्रान्त में हुई है उसके लिए मेरा रोम-रोम प्रसन्न है और इसमें जितना कार्य इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने किया है उसका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देने की बात पर ज़ोर देते हुए मालवीय जी ने कहा—

कोई देश किसी अन्य देश की भाषा-द्वारा शिक्षा दे, यह नहीं हो सकता। इँग्लेंड में जर्मनी की भाषा-द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती और न जर्मनी इटली की भाषा-द्वारा शिक्षा देता है। सब देश अपनी मातृभाषा-द्वारा शिक्षा देते हैं। भारत में भी अब अँगरेज़ी-द्वारा शिक्षा देने के दिन गये। (हर्ष-ध्वनि) मुझको अँगरेज़ी-भाषा से बैर नहीं। मैं उसे प्यार करता हूँ। जब मैं ७ वर्ष का था तब से इसे पढ़ता हूँ। ज़्यादातर सभाओं में मैं अँगरेज़ी में ही बोला हूँ। अब तो दशा यह है कि अँगरेज़ी में बोले, लोगों ने तारीफ़ कर दी और ख़ुश हो गये। (हँसी) परन्तु अन्य देशों के लोग ऐसा नहीं करते। अँगरेज़ जर्मन-भाषा में नहीं बोलते और न जर्मन लोग अँगरेज़ी-भाषा में बोलते हैं। केवल हमीं ऐसे हैं जो अँगरेज़ी में बोलना पसन्द करते हैं। मगर जन्म-भर अँगरेज़ी में बोले और फिर भी अँगरेज़ी ठीक ठीक बोलना नहीं आया। (हँसी) मैं एक भी ऐसे हिन्दुस्तानी को नहीं जानता जो यह कह सकता हो कि हमें अँगरेज़ी पूरी आ गई। हम तो केवल नक़ल करते हैं। हमारे अँगरेज़ भाइयों को देखिए कि ३५ वर्ष तक हिन्दुस्तान में रह कर नौकरी की, पर वे अच्छी हिन्दी या उर्दू नहीं बोलते। (ज़ोरों की हँसी) वे हिन्दुस्तानी के पूर्ण ज्ञाता होने की चिन्ता नहीं करते। जापानी लोग अँगरेज़ी बोलना पसन्द नहीं करते। इसी तरह अन्य कोई भी देश विदेशी भाषा पसन्द नहीं करता।

देश में शीघ्र से शीघ्र शिक्षा-प्रचार कैसे हो इस सम्बन्ध में पूज्य मालवीय जी ने निम्नलिखित विचार प्रकट किया—

आज आपके सामने मैं एक स्कीम रख रहा हूँ। मेरा यह प्रस्ताव है और जिसे मैं सब वाइस-चान्सलरों के सामने रखना चाहता हूँ कि तीन महीने का समय शिक्षा-प्रचार के लिए निर्धारित किया जाय और इस समय में समस्त शिक्षित भारतीय चाहे वे गवर्नर हों, मिनिस्टर हों, चीफ़ जस्टिस हों, कोई बड़े से बड़े और छोटे से छोटे अफ़सर हों, सब यह प्रतिज्ञा कर लें कि किसी न किसी लड़के को अवश्य पढ़ावेंगे। अगर यह आन्दोलन आप शुरू कर देंगे तो देखोगे कि कितना विद्या का प्रचार इन तीन महीनों में होता है। अविद्या और निरक्षरता अगर सोलह आने नहीं, तो आठ आने, आठ आने नहीं, तो चार आने तो वह ज़रूर ही दूर होगी। इसलिए मैं सब सज्जनों से अनुरोध करूँगा कि वे इस आन्दोलन को उठावें।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की जयन्ती के समारोह में बड़ी धूमधाम रही और सारा महोत्सव पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके लिए इसके प्रबन्धक सर्वथा बधाई के पात्र हैं।

कुछ इधर-उधर की

जीवित महापुरुषों के हस्ताक्षर-संग्रह करने का आज-कल संसार में सर्वत्र फ़ैशन है। हमारे देश में भी प्रायः देखा गया है कि सार्वजनिक सभाओं के अन्त में लड़के-लड़कियाँ अपनी कापियाँ लेकर लोकनेताओं के पास उनके हस्ताक्षर लेने पहुँच जाते हैं। यहाँ यह विनोद अभी बहुत सस्ता है, क्योंकि हस्ताक्षर-संग्रह करनेवालों को सिवा कापी ख़रीदने के और कुछ व्यय नहीं करना पड़ता। सिर्फ़ महात्मा गांधी एक ऐसे नेता हैं जिनके हस्ताक्षर के लिए कभी कभी लोगों को ५) तक व्यय करना पड़ता है। परन्तु पाश्चात्य देशों में यह विनोद बड़ा ख़र्चीला है। वहाँ संग्रह करनेवालों को एक एक हस्ताक्षर के लिए सैकड़ों रुपये तक व्यय करने पड़ते हैं। इँग्लेंड में किपलिङ्ग के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिका करते थे। पर इसका पता स्वयं किपलिङ्ग को नहीं था। यह बात उसने कैसे जानी, इसकी एक मनोरञ्जक घटना है। वह एक पंसारी के यहाँ से जो चीज़ें ख़रीदता था उनके लिए उसके पास बैंक के 'चेक' भेज देता था। परन्तु वह पंसारी उन चेकों को बैंक में भुनाने के लिए कभी नहीं भेजता था। जब किपलिङ्ग का आश्चर्य बहुत बढ़ा तब उसने पंसारी से इसका कारण पूछा। पंसारी ने बताया कि वह उन चेकों को कहीं अधिक दामों पर हस्ताक्षर-संग्रह करनेवालों के हाथ बेच देता है। आधुनिक लेखकों में बर्नार्ड शा के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिकते हैं। शा के हस्ताक्षर मुफ़्त में प्राप्त करने के लिए एक सौदागर ने एक चाल चली थी। वह प्रतिवर्ष शा को एक सभा में भाषण करने के लिए निमन्त्रित करता था। पर शा इनकार कर देता था। इनकार की चिट्ठी के साथ सौदागर को शा का हस्ताक्षर मिल जाता था और उसे वह बेच देता था। इसकी ख़बर शा को बहुत दिन बाद लगी। योरप के आधुनिक प्रसिद्ध पुरुषों में कदाचित् इसका कारण यह है कि ये बहुत उदारतापूर्वक हस्ताक्षर देते हैं।

× × ×

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि वह काशी के स्वर्गीय साहित्यिक श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद जी की एक विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित करना चाहती है। इस सूझ के लिए इस सभा की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस अवसर पर सभा के ध्यान में हिन्दी-साहित्य का एक और अभाव आना चाहिए। वह यह कि हिन्दी में किसी भी साहित्यकार का जीवन-वृत्तान्त स्वयं उसी के शब्दों में उपलब्ध नहीं है। द्विवेदी-युग के बहुत से दीपक अभी प्रकाशमान हैं। यदि वे एक एक करके बुझ गये तो यह कार्य फिर एक पीढ़ी पिछड़ जायगा। इसलिए क्या अच्छा हो कि सभा उन नर-रत्नों से उनका जीवन-वृत्तान्त लिखवाने की चेष्टा करे। नागरी-प्रचारिणी सभा के मुख्य स्तम्भ बाबू श्यामसुन्दर दास जी अभी हमारे बीच में विद्यमान हैं। उन्होंने हज़ारों पृष्ठों के ग्रन्थ लिखे हैं और उनकी लेखन-शक्ति और प्रतिभा अभी क्षीण नहीं हुई है। सभा थोड़ा भी प्रयत्न करे तो वे अपनी एक बृहत् आत्मकथा लिख सकते हैं। वह आत्मकथा हिन्दी-साहित्य के एक युग का जीवित इतिहास होगी। इसी प्रकार महाकवि हरिऔध, पंडित रामचन्द्र शुक्ल से भी उनकी आत्मकथायें लिखाई जा सकती हैं। सुनते हैं, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने पूज्य द्विवेदी जी का जीवन-वृत्तान्त उनके पास बैठकर लिखने की इच्छा प्रकट की है। इसमें सन्देह नहीं, इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चतुर्वेदी जी सर्वथा उपयुक्त हैं। आशा है, वे शीघ्र ही इस कार्य का श्रीगणेश करेंगे।

हमारे देश में दीर्घ आयुवाले मनुष्यों की इतनी कमी हो गई है कि जब कोई दीर्घजीवी मनुष्य मरता है तब वह सार्वजनिक चर्चा का विषय बन जाता है। हाल में सूरत के सबसे वृद्ध व्यक्ति श्री अब्दुलग़फ़्फ़ार का ११५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ है। उनके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में इस आशय का समाचार प्रकाशित हुआ है—

सूरत नगर की ओर शायद तमाम सूरत-ज़िले के वे सबसे वृद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने १८५७ के ग़दर के दृश्य देखे थे और वे उनका बड़ा सजीव वर्णन किया करते थे। ग़दर के समय उनकी अवस्था ३० वर्ष से कुछ अधिक थी।

यद्यपि वृद्धावस्था के कारण वे झुक गये थे, किन्तु कहा जाता है कि असेम्बली के अभी पिछले चुनाव में भी उन्होंने अपने मताधिकार का उपयोग किया था। अगले सप्ताह म्यूनिसिपैल्टी के चुनाव में भी उन्होंने वोट देने का वादा किया था।

१८९९ ई॰ के अकाल में एक अभाव-ग्रस्त मुसलमान स्त्री को उन्होंने अपने यहाँ शरण दिया था और बाद को वह उनकी पत्नी बन गई थी। अपनी इस विधवा की जीविका की ठीक व्यवस्था कर देने के बाद उन्होंने अपनी जायदाद एक मस्जिद के नाम वक़्फ़ कर दी थी। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।

ऐसे दीर्घजीवी मनुष्यों को देखकर उनके आस-पास रहनेवाले लोग आश्चर्य करते हैं, पर उनसे बातें करके और उनकी जीवनचर्या का अध्ययन करके यह पता लगाने की कोशिश नहीं करते कि उनके दीर्घजीवन का क्या रहस्य है। जब तक इस प्रकार के प्रयत्न आरम्भ नहीं होंगे, हमारी आयु के वर्ष बढ़ नहीं सकेंगे।

× × ×

अमरीका के विद्वानों ने राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू के पास इस आशय का तार भेजा है कि भारत में जापानी माल का बहिष्कार किया जाय। इन विद्वानों के तार से यह स्पष्ट है कि अमरीका जैसा सबल राष्ट्र भी इस विपत्ति-काल में चीन की सक्रिय सहायता करने के लिए तैयार नहीं है। जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया था तब भी संसार में इटालियन माल के बहिष्कार की आवाज़ उठी थी। परन्तु उससे इटली का कुछ बिगड़ा नहीं था। और जिस अमरीका के विद्वानों ने यह तार भेजा है, कहते हैं, वह इटलीवालों के हाथ अन्त तक युद्ध-सामग्री बेचता रहा। आज-कल भारतवर्ष के बाज़ारों में जापानी माल की धूम है। उसके आगे अमेरिकन, जर्मन या अन्य योरपीय राष्ट्रों के मालों की खपत नहीं। इस आन्दोलन का यह अर्थ तो नहीं है कि भारतवासी जापानी माल का बहिष्कार करके अमरीकन माल ख़रीदने लगें। भारतवर्ष को स्वदेशी की उन्नति में जुटना चाहिए और उसे सब विदेशी मालों को चाहे वह अमरीकन हो चाहे जापानी, समान दृष्टि से देखना चाहिए।

× × ×

कलकत्ता और कराची में हवाई आक्रमण से बचने के उपाय सोचे जाने लगे हैं। इस समस्या पर विचार करने के लिए उन नगरों में प्रमुख नागरिकों और सरकारी अफ़सरों की बाक़ायदा मीटिंगें भी होने लगी हैं। कहा जाता है कि जनवरी में किसी रात को सारे कलकत्ते की रोशनी बुझा दी जायगी और उसी दिन से ऐसी व्यवस्था कर ली जायगी कि आवश्यकता पड़ने पर सारा शहर बात की बात में प्रकाशहीन बनाया जा सके। रात के अँधेरे में ऊपर से हवाई जहाज़ों-द्वारा कलकत्ते के चित्र भी लिये जायँगे ताकि यह मालूम हो सके कि आक्रमण-कारियों को रात में बम गिराने का कोई मौक़ा तो नहीं है। कराचीवाले और भी आगे बढ़े हैं। वहाँ शहर के विभिन्न भागों में ऐसे कमरे बनाये जाने की चर्चा चल रही है जहाँ ज़हरीली गैसें प्रवेश न पा सकें और गैस-मास्कों की भी व्यवस्था की बात सुनाई पड़ने लगी है। इन सब तैयारियों से यह तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस बार महायुद्ध होगा तो भारतवर्ष के भी बड़े बड़े शहरों और बन्दरगाहों पर हवाई आक्रमण होंगे। यदि इस प्रकार की चर्चा कुछ मास भी गरम रही तो भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में गैस-मास्कों की अच्छी बिक्री होने लगेगी। जान पड़ता है इस बहाने भी भारत का काफ़ी धन विदेशों को जायगा।

× × ×

कुछ इधर-उधर की

जीवित महापुरुषों के हस्ताक्षर-संग्रह करने का आज-कल संसार में सर्वत्र फ़ैशन है। हमारे देश में भी प्रायः देखा गया है कि सार्वजनिक सभाओं के अन्त में लड़के-लड़कियाँ अपनी कापियाँ लेकर लोकनेताओं के पास उनके हस्ताक्षर लेने पहुँच जाते हैं। यहाँ यह विनोद अभी बहुत सस्ता है, क्योंकि हस्ताक्षर-संग्रह करनेवालों को सिवा कापी ख़रीदने के और कुछ व्यय नहीं करना पड़ता। सिर्फ़ महात्मा गांधी एक ऐसे नेता हैं जिनके हस्ताक्षर के लिए कभी कभी लोगों को ५) तक व्यय करना पड़ता है। परन्तु पाश्चात्य देशों में यह विनोद बड़ा ख़र्चीला है। वहाँ संग्रह करनेवालों को एक एक हस्ताक्षर के लिए सैकड़ों रुपये तक व्यय करने पड़ते हैं। इँग्लेंड में किपलिङ्ग के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिका करते थे। पर इसका पता स्वयं किपलिङ्ग को नहीं था। यह बात उसने कैसे जानी, इसकी एक मनोरञ्जक घटना है। वह एक पंसारी के यहाँ से जो चीज़ें ख़रीदता था उनके लिए उसके पास बैंक के 'चेक' भेज देता था। परन्तु वह पंसारी उन चेकों को बैंक में भुनाने के लिए कभी नहीं भेजता था। जब किपलिङ्ग का आश्चर्य बहुत बढ़ा तब उसने पंसारी से इसका कारण पूछा। पंसारी ने बताया कि वह उन चेकों को कहीं अधिक दामों पर हस्ताक्षर-संग्रह करनेवालों के हाथ बेच देता है। आधुनिक लेखकों में बर्नार्ड शा के हस्ताक्षर बहुत महँगे बिकते हैं। शा के हस्ताक्षर मुफ़्त में प्राप्त करने के लिए एक सौदागर ने एक चाल चली थी। वह प्रतिवर्ष शा को एक सभा में भाषण करने के लिए निमन्त्रित करता था। पर शा इनकार कर देता था। इनकार की चिट्ठी के साथ सौदागर को शा का हस्ताक्षर मिल जाता था और उसे वह बेच देता था। इसकी ख़बर शा को बहुत देर बाद लगी। योरप के आधुनिक प्रसिद्ध पुरुषों में कदाचित् इसका कारण यह है कि ये बहुत उदारतापूर्वक हस्ताक्षर देते हैं।

× × ×

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि वह काशी के स्वर्गीय साहित्यिक श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद जी की एक विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित करना चाहती है। इस सूझ के लिए इस सभा की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस अवसर पर सभा के ध्यान में हिन्दी-साहित्य का एक और अभाव आना चाहिए। वह यह कि हिन्दी में किसी भी बड़े साहित्यकार का जीवन-वृत्तान्त स्वयं उसी के शब्दों में उपलब्ध नहीं है। द्विवेदी-युग के बहुत से दीपक अभी प्रकाशमान हैं। यदि वे एक एक करके बुझ गये तो यह कार्य फिर एक पीढ़ी पिछड़ जायगा। इसलिए क्या अच्छा हो कि सभा उन नर-रत्नों से उनका जीवन-वृत्तान्त लिखवाने की चेष्टा करे। नागरी-प्रचारिणी-सभा के मुख्य स्तम्भ बाबू श्यामसुन्दर दास जी अभी हमारे बीच में विद्यमान हैं। उन्होंने हज़ारों पृष्ठों के ग्रन्थ लिखे हैं और उनकी लेखन-शक्ति और प्रतिभा अभी क्षीण नहीं हुई है। हम थोड़ा भी प्रयत्न करें तो वे अपनी एक बृहत् आत्मकथा लिख सकते हैं। वह आत्मकथा हिन्दी-साहित्य के एक युग का जीवित इतिहास होगी। इसी प्रकार महाकवि हरिऔध, पंडित रामचन्द्र शुक्ल से भी उनकी आत्मकथायें लिखाई जा सकती हैं। सुनते हैं, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने पूज्य द्विवेदी जी का जीवन-वृत्तान्त उनके पास बैठकर लिखने की इच्छा प्रकट की है। इसमें सन्देह नहीं, इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए चतुर्वेदी जी सर्वथा उपयुक्त हैं। आशा है, वे शीघ्र ही इस कार्य का श्रीगणेश करेंगे।

हमारे देश में दीर्घ आयुवाले मनुष्यों की इतनी कमी हो गई है कि जब कोई दीर्घजीवी मनुष्य मरता है तब वह सार्वजनिक चर्चा का विषय बन जाता है। हाल में सूरत के सबसे वृद्ध व्यक्ति श्री अब्दुलग़फ़्फ़ार का ११५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ है। उनके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में इस आशय का समाचार प्रकाशित हुआ है—

सूरत नगर की ओर शायद तमाम सूरत-ज़िले के वे सबसे वृद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने १८५७ के ग़दर के दृश्य देखे थे और वे उनका बड़ा सजीव वर्णन किया करते थे। ग़दर के समय उनकी अवस्था ३० वर्ष से कुछ अधिक थी।

यद्यपि वृद्धावस्था के कारण वे झुक गये थे, किन्तु कहा जाता है कि असेम्बली के अभी पिछले चुनाव में भी उन्होंने अपने मताधिकार का उपयोग किया था। अगले साल म्यूनिसिपैल्टी के चुनाव में भी उन्होंने वोट देने का वादा किया था।

१८९९ ई०. के अकाल में एक अभाव-ग्रस्त मुसलमान स्त्री को उन्होंने अपने यहाँ शरण दिया था और बाद को वह उनकी पत्नी बन गई थी। अपनी इस विधवा की जीविका की ठीक व्यवस्था कर देने के बाद उन्होंने अपनी जायदाद एक मस्जिद के नाम वक़्फ़ कर दी थी। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।

ऐसे दीर्घजीवी मनुष्यों को देखकर उनके आस-पास रहनेवाले लोग आश्चर्य करते हैं, पर उनसे बातें करके और उनकी जीवनचर्या का अध्ययन करके यह पता लगाने की कोशिश नहीं करते कि उनके दीर्घजीवन का क्या रहस्य है। जब तक इस प्रकार के प्रयत्न आरम्भ नहीं होंगे, हमारी आयु के वर्ष बढ़ नहीं सकेंगे।

× × ×

अमरीका के विद्वानों ने राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू के पास इस आशय का तार भेजा है कि भारत में जापानी माल का बहिष्कार किया जाय। इन विद्वानों के तार से यह स्पष्ट है कि अमरीका जैसा सबल राष्ट्र भी इस विपत्ति-काल में चीन की सक्रिय सहायता करने के लिए तैयार नहीं है। जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया था तब भी संसार में इटालियन माल के बहिष्कार की आवाज़ उठी थी। परन्तु उससे इटली का कुछ बिगड़ा नहीं था। और जिस अमरीका के विद्वानों ने यह तार भेजा है, कहते हैं, वह इटलीवालों के हाथ अन्त तक युद्ध-सामग्री बेचता रहा। आज-कल भारतवर्ष के बाज़ारों में जापानी माल की धूम है। उसके आगे अमेरिकन, जर्मन या अन्य योरपीय राष्ट्रों के मालों की खपत नहीं। इस आन्दोलन का यह अर्थ तो नहीं है कि भारतवासी जापानी माल का बहिष्कार करके अमरीकन माल ख़रीदने लगें। भारतवर्ष को स्वदेशी की उन्नति में जुटना चाहिए और उसे सब विदेशी मालों को चाहे वह अमरीकन हो चाहे जापानी, समान दृष्टि से देखना चाहिए।

× × ×

कलकत्ता और कराची में हवाई आक्रमण से बचने के उपाय सोचे जाने लगे हैं। इस समस्या पर विचार करने के लिए उन नगरों में प्रमुख नागरिकों और सरकारी अफ़सरों की बाक़ायदा मीटिंगें भी होने लगी हैं। कहा जाता है कि जनवरी में किसी रात को सारे कलकत्ते की रोशनी बुझा दी जायगी और उसी दिन से ऐसी व्यवस्था कर ली जायगी कि आवश्यकता पड़ने पर सारा शहर बात की बात में प्रकाशहीन बनाया जा सके। रात के अँधेरे में ऊपर से हवाई जहाज़ों-द्वारा कलकत्ते के चित्र भी लिये जायँगे ताकि यह मालूम हो सके कि आक्रमण-कारियों को रात में बम गिराने का कोई मौक़ा तो नहीं है। कराचीवाले और भी आगे बढ़े हैं। वहाँ शहर के विभिन्न भागों में ऐसे कमरे बनाये जाने की चर्चा चल रही है जहाँ ज़हरीली गैसें प्रवेश न पा सकें और गैस-मास्कों की भी व्यवस्था की बात सुनाई पड़ने लगी है। इन सब तैयारियों से यह तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस बार महायुद्ध होगा तो भारतवर्ष के भी बड़े बड़े शहरों और बन्दरगाहों पर हवाई आक्रमण होंगे। यदि इस प्रकार की चर्चा कुछ मास भी गरम रही तो भारतवर्ष के प्रत्येक नगर में गैस-मास्कों की अच्छी बिक्री होने लगेगी। जान पड़ता है इस बहाने भी भारत का काफ़ी धन विदेशों को जायगा।

× × ×

असोसिएटेड प्रेस को ज्ञात हुआ है कि मध्यप्रान्त की सरकार ने एक कमिटी बनाई है जो इस बात की जाँच करेगी कि चित्र-पट से बालक-बालिकाओं की शिक्षा में कितनी सहायता मिल सकती है। मध्य-प्रान्त की सरकार को कदाचित् पता नहीं है कि चित्रपटों-द्वारा सफल शिक्षा के प्रयोग विदेशों में हो चुके हैं और हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हीं चित्रपटों के ढङ्ग के भारत में भी भारतीय बालक-बालिकाओं की रुचि और ग्राह्य-शक्ति के अनुसार चित्रपट बनाये जायँ। पर यह काम व्यय-साध्य है और यह तब सम्भव हो सकता है जब समस्त प्रान्तीय सरकारें सम्मिलित रूप से इस प्रश्न पर विचार करें और कुछ व्यय करने के लिए भी तैयार हों।

× × ×

भारतवर्ष में शिक्षा-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल करने के लिए एक अँगरेज़ विशेषज्ञ दौरा कर रहे हैं। हाल में हमने समाचार-पत्रों में उनका एक वक्तव्य पढ़ा है, जिसमें उन्होंने कहा है कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षा की जैसी उत्तम व्यवस्था है वैसी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। इसका कारण कदाचित् यही है कि शिक्षा के अधिकारियों ने ग्रामों में घुसकर इस प्रश्न का अध्ययन करने की कभी कोशिश नहीं की। इस सम्बन्ध में हम यहाँ एक घटना का उल्लेख करते हैं। इसका ज़िक्र श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव ने अपने 'प्रयाग-प्रदीप' नामक हाल के प्रकाशित ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

ग़दर के कुछ दिन पीछे सर विलियम म्योर इस प्रान्त के लेफ़्टिनेंट गवर्नर नियुक्त हुए। वे बड़े विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी थे। उस समय गाँवों में लोग अपने लड़कों को सरकारी मदरसों में भेजने में बहुत संकोच करते थे। उनके प्रोत्साहन के लिए उक्त लाट साहब देहात में पैदल दौरा किया करते थे। किसी एक केंद्र में पड़ाव डाल कर आस-पास के स्कूलों के हज़ारों लड़के सड़क के किनारे मीलों तक बिठाये जाते थे। वे स्वयम् बीच में चलकर लड़कों से इतना सरल प्रश्न करते थे कि उनको उसके उत्तर देने में तनिक भी कठिनाई न हो। जैसे किसी से पूछते "क्यों जी! इलाहाबाद में कौन दो बड़ी नदियाँ मिलती हैं?" वह उत्तर देता, "गंगा और यमुना।" इस पर आप ख़ुश होकर कहते, "शाबाश तुम बड़े होशियार लड़के हो।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद उस समय वहाँ के स्कूलों के इंस्पेक्टर थे। वे साथ-साथ रहते थे। उनको आज्ञा होती थी कि ऐसे लड़कों का नाम इनाम पानेवालों में तुरन्त लिख लिया जाय। इसके अतिरिक्त बड़े दिन की छुट्टियों में थोड़े-थोड़े लड़के ज़िले भर के स्कूलों में बुलाकर "ख़ुसरो-बाग़" में इकट्ठे किये जाते थे और उनको मिठाई बाँटी जाती थी।

प्रान्तों में शिक्षा की समस्या तभी हल हो सकती है जब नये विधान के अनुसार बने हुए शिक्षा-मंत्री उसी उत्साह से पैदल गाँवों का दौरा करें और जनता की आवश्यकताओं को समझें।

सामयिक साहित्य

सरदार नर्मदाप्रसादसिंह का भाषण

गत १८-१९ दिसम्बर को भरवारी में इलाहाबाद-ज़िला राजनैतिक कान्फ़रेंस का जलसा धूम के साथ हुआ था। लगभग ४० हज़ार किसान इस जलसे में सम्मिलित हुए थे और राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री कैलाशनाथ काटजू आदि नेता भी उपस्थित हुए थे। इस कान्फ़रेंस में सरदार नर्मदाप्रसादसिंह जी ने सभापति के आसन से जो भाषण किया वह ज़िला ही नहीं प्रान्त तथा सारे देश की समस्याओं पर भी प्रकाश डालनेवाला है। यहाँ हम उक्त भाषण के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

हमें देखना है कि हमारी नीति आज असली मार्ग से कुछ अलग तो नहीं जा रही है। आपको मालूम है कि हज़ारों किसान असहयोग-आन्दोलन में बेदख़ल किये गये थे। हज़ारों भाई उस आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपनी नौकरियों से पृथक् किये गये थे। सैकड़ों के लाइसेन्स छीन लिये गये थे। यह सब हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई बंद करने के लिए किया गया था।

लगान-बन्दी-आन्दोलन के समय जिन किसानों ने कांग्रेस का साथ दिया था और उस साथ देने के कारण अपनी ज़मीन से जो हाथ धो बैठे हैं, अब उन्हें अपनी ज़मीन वापस पाना उनका वास्तविक हक़ है। जो मुलाज़िम अपनी नौकरी से हाथ धो बैठे हैं उन्हें अब फिर से नौकरी भी मिलनी चाहिए। बम्बई की कांग्रेस-मिनिस्टरी जिन किसानों की ज़मीन आन्दोलन के समय अँगरेज़ी-सरकार-द्वारा नीलाम कर दी गई थी, आज पुनः उन्हीं किसानों को वापस दिला रही है। और इस उचित कार्य के लिए उसे हम आपकी ओर से बधाई देते हैं। हमें भी इस ओर बढ़ना चाहिए। अगर इसके लिए कोई नया क़ानून बनाना पड़े तो शीघ्र ही उसे बनाना चाहिए और सन् ३२ से सन् ३४ तक में बेदख़ल किये गये किसानों को उनकी ज़मीन वापस मिलनी चाहिए।

स्थानीय बोर्डों के वे मुलाज़िम जिनकी न केवल नौकरी ली गई, बल्कि जिनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी ज़ब्त हो गया है उन्हें भी शीघ्र ही उनकी नौकरियाँ मिलनी चाहिए और उनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी उन्हें मिलना चाहिए।

यह ज़ाहिर-सी बात है कि केवल पद-ग्रहण से हमें स्वराज्य न मिलेगा। हमें फिर से बड़ी ज़बर्दस्त लड़ाई लड़नी होगी, इसलिए देश की आज़ादी के लिए हम अपने सैनिकों को इसका विश्वास दिलायें कि लड़ाई में अँगरेज़ी-सरकार तथा उसके समर्थकों-द्वारा किये गये नुक़सानों की पूर्ति स्वराज्य पाते ही हम करेंगे। अगर हम ऐसा नहीं करते तो हम अपने सैनिकों का उत्साह भङ्ग करते हैं।

यह मानी हुई बात है कि जब हमारी लड़ाई फिर से शुरू होगी तब मिनिस्टरी नहीं रहेगी और तब पुनः हमारा साथ देने में किसान बेदख़ल होंगे, मुलाज़िम बरख़ास्त होंगे और लोगों के अख़्तियारात छिनेंगे। अब यह सोचने की बात है कि जब किसान यह देखेंगे कि कांग्रेस का साथ देने पर जो क्षति उनकी हो जाती है उसकी पूर्ति करने लायक़ होने पर भी कांग्रेस नहीं करती तो क्या वे हमारा साथ देंगे? यह लड़ाई की नीति है। इसे हमें सोचना है और इसी के अनुसार हमें चलना है। तभी हमारी सेना बढ़ेगी और जीतेगी।

किसानों के सम्बन्ध में जो सरकारी घोषणा हमारे सूबे में हुई है और जिसके द्वारा पिछला बक़ाया लगान की वसूली मुलतवी की गई है और बक़ाया के लिए बेदख़ली या कुर्की आदि की कार्यवाही बन्द की गई है उसके लिए हमारे मिनिस्टर धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु उसमें थोड़ी-सी कमज़ोरी कतिपय ज़मींदारों के शोर-गुल मचाने से आ गई है, इसका मुझे खेद है। सन् १३४४ की ख़रीफ़ तक का बक़ाया मुलतवी किया गया था, यह आप जानते ही हैं। अब बहुत-से किसानों ने जब रबी का लगान दिया तब वह ख़रीफ़ के पिछले बक़ाया में लगाया गया और रबी की जमा बाक़ी रक्खी गई। हमारी ज़िला-कांग्रेस-कमिटी ने इस ओर कांग्रेस-मिनिस्टरी का ध्यान आकर्षित किया

असोसिएटेड प्रेस को ज्ञात हुआ है कि मध्यप्रान्त की सरकार ने एक कमिटी बनाई है जो इस बात की जाँच करेगी कि चित्र-पट से बालक-बालिकाओं की शिक्षा में कितनी सहायता मिल सकती है। मध्य-प्रान्त की सरकार को कदाचित् पता नहीं है कि चित्रपटों-द्वारा सफल शिक्षा के प्रयोग विदेशों में हो चुके हैं और हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हीं चित्रपटों के ढङ्ग के भारत में भी भारतीय बालक-बालिकाओं की रुचि और ग्राह्य-शक्ति के अनुसार चित्रपट बनाये जायँ। पर यह काम व्यय-साध्य है और यह तब सम्भव हो सकता है जब समस्त प्रान्तीय सरकारें सम्मिलित रूप से इस प्रश्न पर विचार करें और कुछ व्यय करने के लिए भी तैयार हों।

× × ×

भारतवर्ष में शिक्षा-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल करने के लिए एक अँगरेज़ विशेषज्ञ दौरा कर रहे हैं। हाल में हमने समाचार-पत्रों में उनका एक वक्तव्य पढ़ा है, जिसमें उन्होंने कहा है कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षा की जैसी उत्तम व्यवस्था है वैसी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। इसका कारण कदाचित् यही है कि शिक्षा के अधिकारियों ने ग्रामों में घुसकर इस प्रश्न का अध्ययन करने की कभी कोशिश नहीं की। इस सम्बन्ध में हम यहाँ एक घटना का उल्लेख करते हैं। इसका ज़िक्र श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव ने अपने 'प्रयाग-प्रदीप' नामक हाल के प्रकाशित ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

ग़दर के कुछ दिन पीछे सर विलियम म्योर इस प्रान्त के लेफ़्टिनेंट गवर्नर नियुक्त हुए। वे बड़े विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी थे। उस समय गाँवों में लोग अपने लड़कों को सरकारी मदरसों में भेजने में बहुत संकोच करते थे। उनके प्रोत्साहन के लिए उक्त लाट साहब देहात में पैदल दौरा किया करते थे। किसी एक केंद्र में पड़ाव डाल कर आस-पास के स्कूलों के हज़ारों लड़के सड़क के किनारे मीलों तक बिठाये जाते थे। वे स्वयम् बीच में चलकर लड़कों से इतना सरल प्रश्न करते थे कि उनको उसके उत्तर देने में तनिक भी कठिनाई न हो। जैसे किसी से पूछते "क्यों जी! इलाहाबाद में कौन दो बड़ी नदियाँ मिलती हैं?" वह उत्तर देता, "गंगा और यमुना।" इस पर आप ख़ुश होकर कहते, "शाबाश तुम बड़े होशियार लड़के हो।" राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद उस समय यहाँ के स्कूलों के इंस्पेक्टर थे। वे साथ-साथ रहते थे। उनको आज्ञा होती थी कि ऐसे लड़कों का नाम इनाम पानेवालों में तुरन्त लिख लिया जाय। इसके अतिरिक्त बड़े दिन की छुट्टियों में थोड़े-थोड़े लड़के ज़िले भर के स्कूलों में बुलाकर "ख़ुसरो-बाग़" में इकट्ठे किये जाते थे और उनको मिठाई बाँटी जाती थी।

प्रान्तों में शिक्षा की समस्या तभी हल हो सकती है जब नये विधान के अनुसार बने हुए शिक्षा-मन्त्री उसी उत्साह से पैदल गाँवों का दौरा करें और जनता की आवश्यकताओं को समझें।

सामयिक साहित्य

सरदार नर्मदाप्रसादसिंह का भाषण

गत १८-१९ दिसम्बर को भरवारी में इलाहाबाद-ज़िला राजनैतिक कान्फ़रेंस का जलसा धूम के साथ हुआ था। लगभग ४० हज़ार किसान इस जलसे में सम्मिलित हुए थे और राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री कैलाशनाथ काटजू आदि नेता भी उपस्थित हुए थे। इस कान्फ़रेंस में सरदार नर्मदाप्रसादसिंह जी ने सभापति के आसन से जो भाषण किया वह ज़िला ही नहीं प्रान्त तथा सारे देश की समस्याओं पर भी प्रकाश डालनेवाला है। यहाँ हम उक्त भाषण के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

हमें देखना है कि हमारी नीति आज असली मार्ग से कुछ अलग तो नहीं जा रही है। आपको मालूम है कि हज़ारों किसान असहयोग-आन्दोलन में बेदख़ल किये गये थे। हज़ारों भाई उस आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपनी नौकरियों से पृथक् किये गये थे। सैकड़ों के लाइसेन्स छीन लिये गये थे। यह सब हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई बंद करने के लिए किया गया था।

लगान-बन्दी-आन्दोलन के समय जिन किसानों ने कांग्रेस का साथ दिया था और उस साथ देने के कारण अपनी ज़मीन से जो हाथ धो बैठे हैं, अब उन्हें अपनी ज़मीन वापस पाना उनका वास्तविक हक़ है। जो मुलाज़िम अपनी नौकरी से हाथ धो बैठे हैं उन्हें अब फिर से नौकरी भी मिलनी चाहिए। बम्बई की कांग्रेस-मिनिस्टरी जिन किसानों की ज़मीन आन्दोलन के समय अँगरेज़ी-सरकार-द्वारा नीलाम कर दी गई थी, आज पुनः उन्हीं किसानों को वापस दिला रही है। और इस उचित कार्य के लिए उसे हम आपकी ओर से बधाई देते हैं। हमें भी इस ओर बढ़ना चाहिए। अगर इसके लिए कोई नया क़ानून बनाना पड़े तो शीघ्र ही उसे बनाना चाहिए और सन् ३२ से सन् ३४ तक में बेदख़ल किये गये किसानों को उनकी ज़मीन वापस मिलनी चाहिए।

स्थानीय बोर्डों के वे मुलाज़िम जिनकी न केवल नौकरी ली गई, बल्कि जिनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी ज़ब्त हो गया है उन्हें भी शीघ्र ही उनकी नौकरियाँ मिलनी चाहिए और उनका प्राविडेन्ट फ़ंड भी उन्हें मिलना चाहिए।

यह ज़ाहिर-सी बात है कि केवल पद-ग्रहण से हमें स्वराज्य न मिलेगा। हमें फिर से बड़ी ज़बर्दस्त लड़ाई लड़नी होगी, इसलिए देश की आज़ादी के लिए हम अपने सैनिकों को इसका विश्वास दिलायें कि लड़ाई में अँगरेज़ी-सरकार तथा उसके समर्थकों-द्वारा किये गये नुक़सानों की पूर्ति स्वराज्य पाते ही हम करेंगे। अगर हम ऐसा नहीं करते तो हम अपने सैनिकों का उत्साह भङ्ग करते हैं।

यह मानी हुई बात है कि जब हमारी लड़ाई फिर से शुरू होगी तब मिनिस्टरी नहीं रहेगी और तब पुनः हमारा साथ देने में किसान बेदख़ल होंगे, मुलाज़िम बरख़ास्त होंगे और लोगों के अख़्तियारात छिनेंगे। अब यह सोचने की बात है कि जब किसान यह देखेंगे कि कांग्रेस का साथ देने पर जो क्षति उनकी हो जाती है उसकी पूर्ति करने लायक़ होने पर भी कांग्रेस नहीं करती तो क्या वे हमारा साथ देंगे? यह लड़ाई की नीति है। इसे हमें सोचना है और इसी के अनुसार हमें चलना है। तभी हमारी सेना बढ़ेगी और जीतेगी।

किसानों के सम्बन्ध में जो सरकारी घोषणा हमारे सूबे में हुई है और जिसके द्वारा पिछला बक़ाया लगान की वसूली मुलतवी की गई है और बक़ाया के लिए बेदख़ली या कुर्की आदि की कार्यवाही बन्द की गई है उसके लिए हमारे मिनिस्टर धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु उसमें थोड़ी-सी कमज़ोरी कतिपय ज़मींदारों के शोर-गुल मचाने से आ गई है, इसका मुझे खेद है। सन् १३४४ की ख़रीफ़ तक का बक़ाया मुलतवी किया गया था, यह आप जानते ही हैं। अब बहुत-से किसानों ने जब रबी का लगान दिया तब वह ख़रीफ़ के पिछले बक़ाया में लगाया गया और रबी की जमा बाक़ी रक्खी गई। [illegible] रक्खी गई। हमारी ज़िला-कांग्रेस-कमिटी ने इस ओर कांग्रेस-मिनिस्टरी का ध्यान आकर्षित किया

था। मैं लखनऊ गया और मिनिस्टरों से बातें कीं कि एक ऐसा हुक्म निकाल दिया जाय कि जो जमा किसानों ने रबी में दी है उसकी पावती पहले रबी की हाल जमा में लगाई जाय। आज तक ऐसा नहीं हुआ। मैं आशा करता हूँ कि हमारे मिनिस्टर इस पर उचित ध्यान देंगे और उस घोषणा की इस कमी को पूरा करेंगे।

मेरी राय में किसानों का लगान उनकी ग्राम-पंचायतों-द्वारा वसूल कराया जाना चाहिए। इन पंचायतों की इमदाद में हलका पटवारी काम करे और जो १५ फ़ी सदी ज़मींदारों से वसूली के लिए लिया जाय उसी रक़म से इन पंचायतों तथा पटवारियों का ख़र्च चलाया जाय। इस प्रथा के क़ायम होने से सरकारी तहसील के मुहकमें में काफ़ी कमी हो जायगी। इन पंचायतों का हर साल चुनाव होगा। बेदख़ली-सरसरी आदि की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। उधर ज़मींदारों को कोई झंझट न रहेगा, इधर किसान भी ठीक ढंग से पनपेंगे और जो रियायतें उनके साथ की जायँगी उनसे वे पूरा फ़ायदा उठा सकेंगे।

एक बात और ग़ौर तलब है। जिस प्रकार छोटे छोटे गाँवों में किसानों की बस्ती है उसे क़ायम रखते हुए हम किसानों की दशा विशेष नहीं सुधार सकते। किसानों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध, उनका संगठन करना, उनके लिए अस्पताल खोलना, मनोरंजन का प्रबन्ध करना, उनके मवेशियों की नस्ल सुधारना, बेकारी दूर करने के लिए उद्योग-धन्धों का खोलना, ये सब बातें हम उस समय तक नहीं कर सकते जब तक किसान इस प्रकार छोटे छोटे ग्रामों में बिखरे रहेंगे। हमें किसानी क़स्बे आबाद करने चाहिए ताकि हम उन्हें पक्की सड़कें, पार्क, स्कूल, अस्पताल, बाग़ और अच्छे मकान दे सकें। इस ओर भी हमारी कांग्रेस-सरकार को ध्यान देना चाहिए। ग्राम-सुधार-विभाग को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए और एक योजना बना कर इसकी शुरुआत करनी चाहिए।

लगान में कमी करके हम किसानों को थोड़ी राहत पहुँचा सकते हैं। परन्तु यदि हम उनके जीवन का सुख और ऊँचा करना चाहते हैं तो हमें ज़मीन की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ानी होगी ताकि वे थोड़े परिश्रम से अधिक धन पैदा कर सकें। यह वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के तरीक़े से ही हो सकता है। हमारे देश की उपजाऊ शक्ति सब मुल्कों से कम है। उसको बढ़ा कर ही हम किसानों को सुखी कर सकते हैं और राष्ट्र की सम्पत्ति भी बढ़ा सकते हैं।

वैज्ञानिक ढंग से खेती करने की और नवीन ढंग के हलों और कलों से काम लेने के लिए बड़े लम्बे-चौड़े फ़ार्मों की ज़रूरत है। यानी हमें कलेक्टिव फ़ार्म के ढंग पर खेती करनी होगी। इस हेतु भी मौजूदा ढंग की आबादी काम नहीं दे सकती।

लेकिन इन सुधारों में अधिक समय और धन की आवश्यकता है। फ़िलहाल लगान में कमी का होना, रसीदों का देना अनिवार्य करना, बेदख़ली बन्द करना, किसानों को मकान-कुआँ बनाने तथा दरख़्त लगाने का अधिकार देना, जमा के अलावा अन्य सभी करों को बन्द करना, उनके क़र्ज़ की जाँच करके उनका बोझ हलका करना, मवेशियों की नस्ल के सुधारने की चेष्टा करना, पिछला बक़ाया जो मुलतवी किया गया है उसे माफ़ करना और जमा की वसूली के लिए पंचायतें क़ायम करना तत्कालीन आवश्यकताओं में हैं। हमें उम्मीद है कि हमारी कांग्रेसी मिनिस्टरी इन सुधारों को शीघ्र ही करेगी।

भारत के जङ्गलों के सम्बन्ध में वायसराय का भाषण

गत मास के द्वितीय सप्ताह में दिल्ली में जङ्गल कान्फ़रेंस का उद्घाटन करते हुए हिज़ एक्सेलेंसी वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया। नीचे उसका सारांश हम 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के बाद भारत के जङ्गलों की रक्षा और प्रबन्ध का दायित्व पूरी तरह से जनता-द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों के हाथ में चला गया है। मुझे इस अवसर पर यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मुझे इस बात का हार्दिक विश्वास है कि नये मन्त्री भी इन जङ्गलों की रक्षा और उन्नति में उसी उत्साह का परिचय देंगे जिसका उनके पूर्ववर्तियों ने दिया है। मुझे विश्वास है कि अपने इस कार्य में वे फ़ारेस्ट सर्विस के सदस्यों की वास्तविक सहायता और निःस्वार्थ परामर्श प्राप्त कर सकते हैं। अतीत में इन सदस्यों की सेवायें अतिशय महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो चुकी हैं।

आप मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि जङ्गल-विषयक प्रबन्ध-कार्य ऐसा विषय है कि यदि इससे सर्वोत्तम लाभ उठाना है तो इसे एक प्रान्त की सीमाओं में बाँध कर नहीं रख सकते। वर्तमान समय में योग्यता बढ़ाने और उसे स्थायी बनाने का एकमात्र उपाय साधारण अवस्थाओं और नये नये वैज्ञानिक अनुसन्धानों का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त अर्वाचीन बने रहना है। यदि हम इसे एक दूसरे पहलू से जाँचें तो मकान बनाने की लकड़ी संसारव्यापी आर्थिक महत्त्व की वस्तु दिखाई देगी और कोई भी उत्पादक अपने बाज़ार की माँग और अपने प्रतियोगियों की वैज्ञानिक निपुणता की उपेक्षा नहीं कर सकता जब उस वैज्ञानिक निपुणता के द्वारा वे प्रतियोगी बाज़ार में और भी बढ़िया और सस्ता माल रख सकते हैं। यह सत्य है कि प्रत्येक प्रान्त अपने जङ्गलों के लिए ज़िम्मेदार है, लेकिन मेरे विचार से ऐसा होने से भी समय-समय पर परामर्श करने की उपयोगिता और आवश्यकता को कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता। मेरे विचार से इस दिशा में भारत-सरकार प्रान्तों की पूरी सहायता कर सकती है और इस प्रकार के परामर्श की भी पूरी सुविधा हो सकती है जिसका मैंने उल्लेख किया है।

यदि आज-कल के युग में वर्तमान प्रणाली से लाभ उठाना है तो उसमें आधुनिक युग की बातें लानी होंगी और इस दिशा में कान्फ़रेन्स या किसी सदस्य-द्वारा जो भी रचनात्मक प्रस्ताव किया जायगा उस पर सहानुभूति के साथ अच्छी तरह विचार किया जायगा।

बरमा अपने बड़े बड़े जङ्गलों के साथ भारत से पृथक् हो गया है, लेकिन इस पर भी भारत में जङ्गल का क्षेत्र ९९,७४६ वर्ग मील है, जिसमें ७१,३५४ वर्ग मील सुरक्षित है। उस साल (१९३३-३४ में) १ करोड़ १५ लाख जानवर चराये गये। २० लाख रुपये से अधिक मकान बनाने की लकड़ी का निर्यात हुआ। जङ्गल से प्राप्त कुल मालगुज़ारी ३½ करोड़ रुपये से अधिक थी, जिसमें से २ करोड़ रुपये जङ्गल के प्रबन्ध-कार्य में ख़र्च हो गये।

विदेशों में 'वन्दे मातरम्' का प्रभाव

एक ऐसे समय में जब कि भारत में 'वन्दे मातरम्' पर स्वयं भारतीय आपत्ति करने लगे हैं, यह जान लेना मनोरञ्जक होगा कि 'वन्दे मातरम्' का विदेशों में क्या प्रभाव है और विदेशों में बसने-वाले भारतीय चाहे वे हिन्दू हों चाहे मुसलमान, इसका कितने गर्व के साथ उच्चारण करते हैं। विश्वभ्रमणकारी श्रीयुत रामनाथ विश्वास का इस सम्बन्ध में एक लेख 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुआ है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मुझे तेहरान की एक घटना याद आती है। लखनऊ का एक शिया मुसलमान तेहरान में जाकर धन-शून्य हो गया। तेहरान के व्यापारियों में प्रधानतः सिख, पारसी और हिन्दू हैं; पर उनमें कुछ भारतीय मुसलमान भी हैं। इत्तफ़ाक़ की बात कि मुझे उसके साथ एक ही मकान में रहना पड़ा। एक दिन शाम को एक बड़ा जलूस रास्ते से जा रहा था और उसमें उनके अपने राष्ट्रीय नारे लगाये जा रहे थे। हम इस मकान की दूसरी मंज़िल पर खड़े हो गये। मैं नहीं जानता, भारत के उस शिया मुसलमान के मन में क्या भाव आया कि वह ज़ोर से 'वन्दे मातरम्' चिल्लाने लगा। उस दिन तो मैंने उससे नहीं पूछा कि उसने 'वन्दे मातरम्' क्यों कहा था। दो दिन बाद एक बड़े रेस्टोरेंट में उससे फिर मुलाक़ात हुई। तब जिज्ञासावश मैंने पूछा कि उस दिन 'वन्दे मातरम्' चिल्लाने का क्या कारण था। वह ज़रा खिन्न होकर बोला—"भारतीयों को ईरानी, तुर्की और अरब सब हृदय से घृणा करते हैं। ऐसी अवस्था में विपत्ति के अवसर पर यह प्रकट करने को कि अमुक आदमी भारतीय है, उसके पास कौन-सा नारा ऐसा है जिसे वह लगावे। हाँ, केवल एक शब्द है—और वह है 'वन्दे मातरम्'। उसने आगे कहा; देखो बाबू, वे बड़े पेट के लोग चाहे हिन्दू हों, मुसलमान हों या पारसी, उनमें से कोई भी मज़दूरों के हिताकांक्षी नहीं हैं। उनका अल्लाह केवल रुपया है। भूल से भी उन्हें वन्दे मातरम् से कोई वास्ता नहीं। भारतीय मज़दूर तो जहाँ भी जायगा, 'वन्दे मातरम्' उसके साथ ही जायगा।

बग़दाद की बात

एक दिन मैं बग़दाद में साइकल पर घूम रहा था।

एकाएक एक शब्द सुना, बाबू, इधर आओ। साइकल रोकी और वहाँ जाकर देखा कि एक सूरती मुसलमान मक्खन की दूकान लगा कर बैठा है। उस आदमी ने मुझसे पूछा—माखन खाओगे? मैंने कहा—खायँगे क्यों नहीं भाई? पहले दाम तो सुन लूँ। वह एकदम ज़ोर से चिल्ला उठा—'वन्दे मातरम्' 'वन्दे मातरम्'। मैं तुमसे दाम नहीं लूँगा। अरबों ने मेरा बायकाट किया है। तुम हिन्दुस्तानी हो और मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ, तुमको मैं माखन खिलाऊँगा तो मुझे आनन्द होगा। मैंने माखन खाया और उसके बाद जब विदा होने लगा तब उस मुसलमान दूकानदार ने वन्दे मातरम् कहकर मुझे विदा किया, सलाम-वालेकुम नहीं।

'अली' की जगह 'वन्दे मातरम्'

एक भारतीय मुसलमान स्त्री को कर्बला तीर्थ तक ले जाकर वापस लौट जाने के लिए मुझे कर्बला जाना था। मगर रास्ते में उस स्त्री का देश-भाई मिल जाने से मैं उसे वहीं सौंपकर चला आया। रास्ते में जब मैं एक गाड़ी में बैठने लगा तब उस समय कुछ भारतीय फ़क़ीर हमें हिन्दुस्तानी समझ कर 'वन्दे मातरम्' जी कहकर भीख माँगने लगे। मैंने हर एक को कुछ न कुछ दिया। इन फ़क़ीरों का वन्दे मातरम् बोलने का कारण यह है कि वे 'अली के वास्ते' कहकर भीख माँगते थे, पर ईराक़ के मुसलमान हिन्दुस्तान के मुसलमानों से इतनी घृणा करते हैं कि वे उन्हें भीख तक नहीं देते। इससे इन फ़क़ीरों ने रुष्ट होकर वहाँ का रवाज छोड़ कर अपनी भारतीय रस्म अख़्तयार की है।

मस्जिद पर राष्ट्रीय पताका

अदाना तुर्की का एक बड़ा शहर है। वहाँ क़रीब ५० भारतीय मुसलमान हैं। उनमें एक बंगाली मुसलमान हैं। वे उन सबके सरदार हैं। उन्होंने अपने भारतीय समाज में 'वन्दे मातरम्' को चालू किया है। वहाँ भारतीयों की मस्जिद के बाहर तुर्की हर्फ़ों में वन्दे मातरम् लिखा हुआ है। छोटे छोटे तुर्की लड़के उसको पढ़ते हैं और मस्जिद के सामने 'वन्दे मातरम्' बोलकर चिल्लाते हैं। मस्जिद की चोटी पर भारत की राष्ट्रीय पताका फहराती है। हर शुक्रवार की सुबह उस राष्ट्रीय पताका को सफ़ाई की जाती है और जुम्मे की प्रार्थना के समय वन्दे मातरम् की ध्वनि के साथ झण्डा फहराया जाता है, तब कहीं नमाज़ पढ़ते हैं।

'हिप हिप हुर्रे' नहीं 'वन्दे मातरम्'

मैं वियेना गया। वहाँ मैं श्री अग्निहोत्री जी से मिला। उनसे मालूम हुआ कि वहाँ एक 'इन्डो-अमेरिकन असोसिएशन' है। वहाँ मैंने एक भाषण दिया। भाषण के पश्चात् अमेरिकन लोग हिप-हिप-हुर्रे बोल उठे। भारतीय भी चुप नहीं रह सके। वे भी 'वन्दे मातरम्' चिल्ला उठे।

अधीर प्रवासियों का सहारा

एक वृद्ध पंजाबी मुसलमान श्री अलादित्य जो अनातंग शहर में रहते हैं, अपने मुल्क में वापस आने को बहुत इच्छुक हैं। किन्तु वे स्वदेश नहीं आ सकते। कारण कि एक बार वे ग़दर-पार्टी में सम्मिलित हो गये थे। इस बुढ़ापे में जब वह बूढ़ा अपनी दूकान को तीसरी मंज़िल से चीनियों का जुलूस देखता है तब पागल की तरह वन्दे मातरम् बोलकर चिल्लाता है। मैंने उनसे पूछा कि ऐसा क्यों करते हो। वे बोले—मालूम होता है, आप कभी किसी राजनैतिक संकट में नहीं फँसे हैं। हमारा देश हिन्दुस्तान है। मेरा हृदय चाहता है कि एक बार स्वदेश आकर अपने हृदय का दुःख दूर करूँ। मेरी जब देश जाने की इच्छा प्रबल हो उठती है तब मैं अधीर हो उठता हूँ। इसी लिए एकमात्र शान्तिदायक यह देववाणी वन्दे मातरम् चिल्ला उठता हूँ। टियेनसिन और अनातांग शहर के बृहत् भूमिखण्ड के बीच जितने भारतीय रहते हैं, उन्होंने वन्दे मातरम् को अपना चिरसंगी बना रक्खा है। जब उन्हें अपने देश का स्वप्न पागल कर देता है उस समय वन्दे मातरम् उन्हें शान्ति देता है।

राजस्थान-संघ

श्रीयुत हरीभाऊ उपाध्याय और उनके ही जैसे कतिपय अन्य त्यागी कार्यकर्त्ताओं के परिश्रम से राजस्थान-संघ अपने क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है। हाल में उसने अपनी पहली वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है। उसकी कुछ ज्ञातव्य बातें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

वीरभूमि राजस्थान की राष्ट्रीय शक्तियों को संगठित और व्यवस्थित करने की ज़रूरत अर्से से मालूम हो रही थी

और इस दिशा में समय समय पर प्रयत्न भी होता रहता था। हमारे ख़याल से आम तौर पर कार्यकर्ताओं में कोई इतना बड़ा सैद्धान्तिक मतभेद नहीं रहा, जिसकी वजह से आपस में मिल-जुल कर काम करना कठिन होता, तथापि प्रवृत्ति, प्रकृति और पद्धति की भिन्नता के कारण उनका एक संगठन में शामिल होना काफ़ी मुश्किल बना रहा। ऐसी हालत में यह सोचा गया कि जिन कार्यकर्ताओं के मिलने में कम-से-कम कठिनाई है वे फ़िलहाल मिलकर काम करना शुरू कर दें और आगे के लिए आशा रक्खें कि धीरे-धीरे और लोग भी शामिल होते जायँगे। इस विचार के अनुसार गांधी-आश्रम (हटूण्डी) और जीवन-कुटीर (वनस्थली) के कार्यकर्त्ताओं ने ता० २२-१०३६ को वनस्थली में 'राजस्थान-संघ' की योजना स्वीकार कर ली।

'राजस्थान-संघ' उन सार्वजनिक सेवकों की सोसाइटी है जो राजस्थान की सेवा करते रहे हैं और जो आयन्दा मुख्यतया इसी प्रान्त की सेवा करते रहना चाहते हैं। इस संघ का कार्यक्षेत्र 'राजस्थान' है और उद्देश 'राजस्थान का राष्ट्रीय हित-साधन करना' है। सत्य, शान्ति और न्याय इस संघ के आधारभूत सिद्धान्त हैं तथा कांग्रेस की नीति के भीतर रहना इसकी मर्यादा है। संघ का मुख्य काम प्रान्त की राष्ट्रीय सेवा करना चाहनेवाले सेवकों का संग्रह करना और उसके लिए निर्वाह-ख़र्च की सुविधा करना है।

संघ का प्रधान कार्यालय गान्धी-आश्रम, हटूण्डी (अजमेर), में है और व्यवस्था की दृष्टि से 'हटूण्डी शाखा' और 'जीवनकुटीर (जयपुर) शाखा' इस प्रकार संघ की दो शाखायें हैं।

इस वर्ष संघ के पास ख़र्च के मुक़ाबिले में आमदनी कम हुई। १०००) के क़रीब ज़्यादा ख़र्च हुए। सो आयन्दा साल की आमदनी में से चुकाना पड़ेगा। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि माल स्टॉक के खाते में नाम-मात्र की रक़म नाम लिखी गई है, जिसका अर्थ यह हुआ कि 'संघ' के पास चल सम्पत्ति नहीं के बराबर है। 'संघ' के प्रधान कार्यालय और हटूण्डी शाखा के लिए, 'गान्धी-सेवा-संघ' की ओर से गान्धी-आश्रम (हटूण्डी) के मकानात हैं, और जीवन-कुटीर शाखा (जयपुर) का काम किराये के मकानों से निकल जाता है, इसलिए 'संघ' के पास निज की कोई अचल सम्पत्ति भी नहीं है। हम इस स्थिति को इसलिए संतोषजनक मानते हैं कि 'राजस्थान-संघ' में अधिकतर वे 'फक्कड़' लोग शामिल हैं जो व्यक्तिगत-सम्पत्ति से परहेज़ रखने के साथ साथ जहाँ तक सम्भव हो, सार्वजनिक संपत्ति से भी दूर रहना चाहते हैं। इस सिलसिले में यह प्रकट कर देना भी अनुपयुक्त न होगा कि 'जीवन-कुटीर' (वनस्थली) की प्रायः कुल चलाचल-संपत्ति क़ीमत से श्री 'राजस्थान-बालिका-विद्यालय' को दी जा चुकी है।

नये वर्ष के बजट के १५०००) और इस वर्ष की कमी के १०००)—इस प्रकार 'संघ' को कुल १६०००) आयंदा साल इकट्ठा करना है।

दुर्भाग्य से हमारे प्रान्त की स्थिति और प्रान्तों की जैसी नहीं है। 'अजमेर-मेरवाड़ा' को छोड़ कर सारा प्रान्त देशी राज्यों से भरा है। देशी राज्यों की स्थिति में और अजमेर-मेरवाड़ा की स्थिति में हमको विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता है। हमारी राय में सारा प्रान्त राष्ट्रीय दृष्टि से पिछड़ा हुआ रह गया है। चारों ओर का वातावरण अपना कुछ कुछ असर करता है, और कुछ स्वभाव से और कुछ उस असर की वजह से इस प्रान्तवालों के जी में भी दौड़ने की-सी आती है। दौड़ लगनेवाली भी है। और यह सच भी है कि जब सारा देश ही आगे बढ़ेगा तब उसके कुछ 'अङ्ग' पीछे लटकते हुए नहीं रह सकते। फिर भी इसमें कोई शक नहीं है कि जितना काम पिछड़ा हुआ है, उसको पूरा करके बराबर लाने में इस प्रान्त को न केवल समय लगेगा, बल्कि कई झंझटों और मुसीबतों का सामना भी करना पड़ेगा। इसीलिए यह ज़रूरी है कि प्रान्त के बाहर की सहायता की बाट देखे बिना हम लोग प्रान्त के भीतर आगे बढ़ने की ताक़त पैदा करें। रजवाड़ों में शंका, डर और वहम का राज्य है। वहाँ यह कल्पना करना नहीं चाहा जाता है कि रजवाड़ों को भी बदलना ही पड़ेगा और उन्हें आगे भी बढ़ना ही पड़ेगा।

नोटबुक के पन्ने

ऊपर के शीर्षक से काशी के प्रसिद्ध दैनिक "आज" में प्रायः बहुत-सी ज्ञातव्य और मनोरञ्जक

बातें प्रकाशित होती रहती हैं। नीचे हम उसका एक लेख उद्धृत करते हैं—

पाश्चात्य देशों में मुर्दे जलाने की चाल बढ़ रही है। सन् १९३३ से सन् १९३५ तक जर्मनी में ११,४५९, सोवियट रूस में १२,०८३, ब्रिटेन में ९,६१४, फ़्रांस में १,३३०, स्विट्ज़रलेंड में ६,३९७, आस्ट्रिया में ३,११६, डेनमार्क में ३,३०४ और चेकोस्लोवाकिया में ५,६९२ मुर्दे जलाये गये। इन दो वर्षों में सारे योरप में इनकी संख्या १,०५,२८७ से बढ़कर १,१२,८८५ हो गई। जर्मनी में ११५, ब्रिटेन में २९ और स्विट्जरलेंड में २० क्रेमोटेरियम हैं, जहाँ मुर्दे बिजली से जलाये जाते हैं। योरप में इस प्रथा का प्रचार करने के लिए कई समितियाँ बनी हुई हैं। गत सितंबर में लंदन में इनका सम्मेलन हुआ था, जिसमें प्रचार-कार्य के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ स्थापित किया गया है।

× × ×

सन् १९३४ में अमरीका की राष्ट्रीय आमदनी १ खरब २० अरब रुपया हुई। सन् १९३५ में ३६,७१,७७३ आदमियों की १५ हज़ार, ४१ की ३० लाख, २३ की ३० से ४५ लाख, ८ की ४५ से ६० लाख, २ की ६० से ९० लाख, ७ की ९० लाख से १। करोड़ और १ की १। करोड़ से १॥ करोड़ रुपये तक सालाना आमदनी रही। ३० लाख रुपये सालाना आमदनीवालों की संख्या में पिछले साल से ८ की वृद्धि हुई। इन सबने कुल मिलाकर १२ करोड़ ३५ लाख रुपया इनकम टैक्स में दिया। सन् १९३६ में ग्रेट ब्रिटेन और आयरलेंड में २५ हज़ार रुपया साल कमानेवालों की संख्या ८५,४४९ और [illegible] लाखवालों की ८२४ थी। इन दोनों में क्रम से २,०३० तथा ४९ की वृद्धि हुई! देशी नरेशों को छोड़कर ब्रिटिश भारत में केवल ३५५ ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी आमदनी [illegible] लाख रुपया साल है।

× × ×

इँग्लेंड तथा वेल्स में सड़कों की सफ़ाई करने तथा कूड़ा फेंकने के लिए प्रति वर्ष १४ करोड़ ३० लाख रुपया ख़र्च किया जाता है। पिछले वर्ष वहाँ १ करोड़ १५ लाख टन कूड़ा निकला। सन् १९२४ की अपेक्षा इसमें ३॥ लाख टन की वृद्धि हुई। एक टन कूड़ा उठाने का ख़र्च १ रुपये के लगभग पड़ता है। लंदन के साफ़-सुथरे महल्लों में १ हज़ार आदमी पीछे प्रति दिन १६ मन कूड़ा निकलता है। छोटे छोटे शहरों में इसका औसत अधिक होता है। कहीं कहीं तो यह ६० मन तक पहुँच जाता है। अपने यहाँ तो इतना रुपया सारे स्वास्थ्य-सुधार पर भी नहीं ख़र्च होता।

× × ×

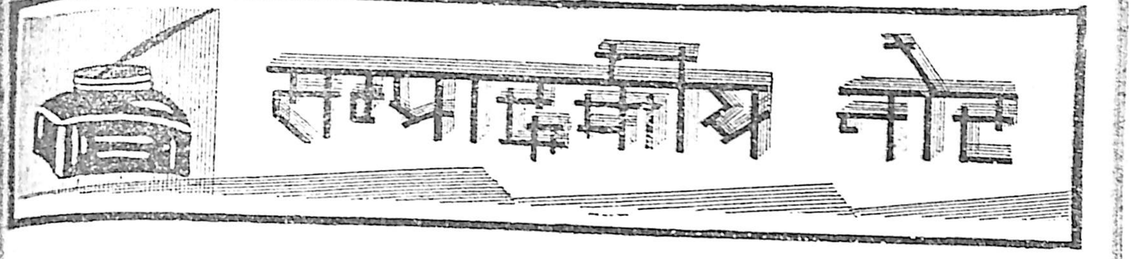
संसार भर में प्रति वर्ष १० करोड़ २५ लाख मन साबुन बनता है, जिसमें से एक तिहाई अमरीका में तैयार होता है। जितना साबुन तैयार होता है उसका ९२ प्रतिशत कपड़ा धोने के काम में आता है। साबुन का सबसे अधिक ख़र्च अमरीका में है। वहाँ आदमी पीछे साल भर में १२॥ सेर का औसत बैठता है। हालेंड में यह औसत १२, ब्रिटेन में १० और सोवियट रूस में ३ सेर है। भारत में इसका ख़र्च आदमी पीछे आध पाव से अधिक नहीं पड़ता। अपने देश में भी अब काफ़ी साबुन बनने लगा है, पर तब भी ३४ लाख रुपये साल का बाहर से आ जाता है।

× × ×

अमरीका की आबादी १२,२७,७५,०४६ है। वहाँ प्रति वर्ष ८,८२,२२,१९,२७२ रुपया शिक्षा पर ख़र्च होता है। स्कूलों की सम्पत्ति का मूल्य ३६ अरब १५ करोड़ रुपया है। उनकी इमारतों की संख्या २,४१,४२८ है। शहर के स्कूलों में पढ़ाई का ख़र्च छात्र पीछे ३०० और गाँवों में १६० रुपया पड़ता है। छात्रों की संख्या २,५६,७८,०१५ और अध्यापकों की १०,१८,००० है।

× × ×

सन् १९३५ में हवाई जहाज़ के यात्रियों की संख्या जर्मनी में २,०९,८२५, ब्रिटेन में २,००,०००, रूस में ९५,०००, फ़्रांस में ५६,३९३ और इटली में ५३,६९४ रही। इनके द्वारा सबसे अधिक माल रूस में भेजा गया। यहाँ इसका औसत ९,०५५, जर्मनी में ३,८३०, ब्रिटेन में १,८९८, फ़्रांस में १,०१९ और इटली में १,११९ टन रहा। हवाई डाक रूस में ४,२३२, जर्मनी में १,३८८, ब्रिटेन में ६१४, फ़्रांस में २७५ और इटली में २७० टन गई। योरप में १४,९३,४२,००० मील की यात्रा हुई। उसमें पिछले साल से ५० प्रतिशत की वृद्धि हुई। एशिया में यात्रियों की संख्या २३,३८५, आस्ट्रेलिया में ५०,८०४ और अफ़्रीका में २२,९२२ रही। माल तथा हवाई डाक का औसत क्रम से २४४, ८,५२३ तथा १८६ टन रहा।



रूस का अभ्युदय

रूस में बोल्शेविकों को राज्य करते हुए बीस वर्ष हो गये। अपने शासन के इस अल्प काल में उन्होंने रूस को कुछ का कुछ बना दिया है। हाल में उनके शासन की २०वीं वर्ष-गाँठ मनाई गई है। इस अवसर पर बताया गया है कि गत दस वर्षों में दो पंचवार्षिक योजनाओं-द्वारा रूस की कितनी अधिक उन्नति हुई है। पहली पंचवार्षिक योजना १९२८ में और दूसरी १९३३ में जारी की गई थी। पहली योजना के फल-स्वरूप जहाँ ३८·८ मिलियर्ड रूबल का माल तैयार हुआ था, वहाँ दूसरी योजना में ८०·९ मिलियर्ड रूबल का माल तैयार हुआ। याद रहे, इन योजनाओं के पहले सन् १९२८ में १६०८ मिलियर्ड रूबल का ही माल तैयार हुआ था। इस प्रकार उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में सोवियट रूस योरप के अन्य सभी देशों के आगे निकल कर दुनिया में दूसरे नम्बर पर पहुँच गया है।

अब शिक्षा-प्रचार की बात लीजिए। ज़ार के समय में सन् १९१४ में रूस में प्रारम्भिक और माध्यमिक स्कूलों में ८०,२५,००० लड़के पढ़ते थे। पर सन् १९२८-२९ में उनकी संख्या १,२६,०४,००० हो गई और १९३६-३७ में तो वह बढ़कर २,८८,४२,००० पहुँच गई है। टेकनिकल स्कूलों में जानेवालों की संख्या सन् १९१४ में ९,२५,००० थी। वही सन् १९२८ में ३७,१७,००० हो गई, जो बढ़कर सन् १९३६ में २,८८,४२,००० जा पहुँची है।

दूसरी पंचवार्षिक योजना के चार वर्षों के भीतर गाँवों में १३,७८४ और शहरों में २,९४१ नये स्कूल बनाये गये। सन् १९२८ में जहाँ विशेषज्ञों और इंजिनियरों की संख्या [illegible],००० थी, वहाँ अब वह ५,८०,००० हो गई है।

रूस में अब ८५,००० किलोमीटर रेलवे लाइन हो गई है। वहाँ खेती में ३,५६,००० ट्रेक्टर काम कर रहे हैं।

ज़ारों के समय में रूस में एक लाख की आबादी से ऊपर के १४ शहर थे, पर आज वहाँ ऐसे ७५ शहर हैं। सन् १९१३ में मास्को की आबादी १०-१२ लाख थी, परन्तु इस समय उसकी आबादी ६० लाख के लगभग है।

परन्तु जहाँ रूस का यह अभ्युदय हो रहा है, वहाँ उसका दूसरा रूप बहुत ही निराशा-जनक है। रूस के वर्तमान भाग्य-विधाता स्टेलिन की सरकार अपनी राजनैतिक संहार-लीला से तो ज़ार की सरकार के भी कान काट रही है। वह स्वयं अपने दल के उन्हीं लोगों का अब विश्वास नहीं कर रही है जिन्होंने अपना सब कुछ लगाकर रूस को इतना उन्नत और शक्तिशाली बनाया है। आज रूस के बड़े से बड़े अधिकारी सन्देह की दृष्टि से देखे जा रहे हैं और ऐसे सैकड़ों व्यक्ति पिछले दिनों तलवार के घाट उतारे जा चुके हैं। सेना के अफ़सर, वैदेशिक विभाग के अधिकारी, इंजीनियर आदि आदि श्रेणी के लोग देशद्रोह के अपराध में पकड़े जाकर मारे जा चुके हैं। कहा जाता है कि ये लोग किसी विदेशी सरकार (अर्थात् जर्मनी) से मिलकर वर्तमान सरकार को उखाड़ फेंकने का षड्यंत्र कर रहे थे। यदि ऐसा ही है तो अब तक जितने लोगों को प्राणदण्ड दिया जा चुका है तथा जो इस सिलसिले में जेलों में पड़े सड़ रहे हैं उनकी विशाल संख्या को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि रूस का बोलशेविक गुड़ सबका सब गोबर हो गया है। और यदि रूस में यह अविश्वास का राज्य और कुछ समय तक अपने वर्तमान त्रासजनक रूप में जारी रहा तो यह दशा रूस के हक़ में अच्छी न होगी। इस समय शक्तिशाली रूस का संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो दयनीय रूप दिखाई दे रहा है उसका एक-मात्र कारण उसकी यह अन्तरङ्ग दशा ही है।

फ़्रांस का सङ्कट

महायुद्ध में विजय प्राप्त करके फ़्रांस योरप का सर्वेसर्वा हो गया था, पर वही फ़्रांस आज बड़े चक्कर में पड़ा दिखाई दे रहा है। इटली और जर्मनी ने अपनी इतनी अधिक शक्ति बढ़ा ली है कि अब उसकी योरप में पहले जैसी

मर्यादा नहीं रह गई है। उसका ब्रिटेन से भी पहले का-सा गाढ़ प्रेम-बन्धन नहीं रहा और मध्य-योरप के नये राज्यों तथा रूमानिया आदि से उसकी जो घनिष्ठता थी उसमें भी इस समय शिथिलता आ गई-सी जान पड़ती है। एक-मात्र रूस ही उसका ऐसा साथी है जो अवसर पर उसका साथ दे सकता है। परन्तु उसके इस साथ का एक यह अनीप्सित परिणाम हुआ है कि स्वयं फ़्रांस में ही एक ऐसा दल उठ खड़ा हुआ है जो फ़्रांस में प्रजातन्त्र के स्थान में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता है। वहाँ की पुलिस ने ऐसे एक षड्यन्त्र का हाल में ही भंडाफोड़ किया है और तलाशी लेने पर उसे काफ़ी युद्ध-सामग्री भी मिली है। इन सब बातों से प्रकट होता है कि फ़्रांस की भीतरी दशा भी सन्तोषजनक नहीं है। उधर उसके उत्तरी अफ़्रीका के अलजीरिया और मोरक्को में असन्तोष का बवंडर उठा हुआ है। अभी अभी वहाँ के २०० आन्दोलनकारी देश-बदर किये गये हैं। ये लोग अलजीरिया, ट्यूनीशिया और मोरक्को को स्वाधीन करने का आन्दोलन कर रहे थे। कहा जाता है कि इन सभी बातों में इटली और जर्मनी का हाथ है। यही देश फ़्रेंच राजतन्त्रवादियों को हथियार जुटा रहे हैं और इन्हीं देशों के जासूस फ़्रेंचों के उत्तरी अफ़्रीका में विद्रोह की भावना का प्रचार कर रहे हैं। और फ़्रांस की सरकार इन सब कठिनाइयों के आगे किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गई है।

परन्तु फ़्रांस उपर्युक्त राजतन्त्रवादियों के षड्यन्त्र से उतना चिन्तित नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रजातन्त्र की भावना इतना अधिक जड़ पकड़े हुए है कि अब उस भूमि में राजतन्त्र का पौधा नहीं पनप सकता। राजतन्त्रवादियों के नेता डक दे गुइसे ने जो यह घोषणा की है वे अपने बाप-दादों के राजसिंहासन को लड़कर पुनः प्राप्त करेंगे उसे फ़्रांस की सरकार एक सनका की सनक भर समझती है। यह सच है कि पेरिस में राजतन्त्रवादियों का एक दल है, परन्तु वह नगण्य है। और यदि फ़्रांस में किसी तरह का राज्य-परिवर्तन होवेगा ही, तो वहाँ ओर्लियन के ड्यूकों के सिरों पर राजमुकुट रखने के स्थान में देशकाल के अनुसार किसी प्रबल राजनैतिक दल के नेता की तानाशाही ही स्थापित की जायगी। निस्सन्देह डक दे गुइसे ओर्लियन के घराने के हैं और ओर्लियन का घराना फ़्रांस के पिछले बोर्बन राजवंश की एक शाखा ही है। परन्तु फ़्रांस को अब राजतन्त्र से अनुराग नहीं है।

फ़्रांस के आगे तो इससे कहीं अधिक भीषण समस्या उपस्थित है। जर्मनी और इटली के गँठजोड़ से वह समझता है कि योरप में उसका प्रभाव नहीं रह गया है। यद्यपि अपना पक्ष प्रबल बनाये रखने के लिए बहिष्कृत रूस को उसने पहले ही जैसा अपना अन्तरङ्ग मित्र फिर बना लिया है, मध्य-योरप के नये राज्य तथा रूमानिया आदि तो उसके साथ पहले से ही बँधे थे। परन्तु इधर जब उसने देखा कि जर्मनी और इटली पोलेंड, ज़ेचोस्लेवेकिया, जुगोस्लाविया को और रूमानिया को भी अपनी अपनी ओर फोड़ने का बार बार प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हें कहीं कहीं सफलता भी प्राप्त हो रही है तब उसके कान खड़े हो गये और वह अब अपने पुराने मित्रों की नाड़ियाँ टटोल रहा है कि कठिन अवसर पर ये साथ देंगे या नहीं। इसी सिलसिले में रूमानिया के बादशाह केरोल ने पेरिस की यात्रा की और स्वदेश लौटने पर उन्होंने प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ टेटेलस्कू को फिर प्रधान मन्त्री बना दिया। ये फ़्रांस के पुराने मित्र हैं। अभी हाल में फ़्रांस के वैदेशिक मन्त्री डेल्बोस साहब भी पोलेंड, ज़ेचोस्लेवेकिया और जुगोस्लाविया गये थे और वे अपनी इस यात्रा से बहुत सन्तुष्ट होकर लौटे हैं। इस तरह फ़्रांस अपने को तोल रहा है कि फ़ैसिस्ट राज्यों के संघ के आगे वह कैसा ठहरेगा। चाहे जो हो, इस समय फ़्रांस काफ़ी विकट समस्याओं के फेर में पड़ गया है।

चीन का पराभव

जापान ने आज इस बीसवीं सदी में चीन के महान् राष्ट्र का जिस निर्दयता से दलन किया है उससे नये युग की ज्ञान-गरिमा का अभिमान करनेवालों की आँखें खुल जानी चाहिए। सन् १९११ में चीन में डाक्टर सनयात सेन के नेतृत्व में इसलिए क्रान्ति हुई थी कि चीन भी सुव्यवस्थित और सुगठित होकर संसार के सभ्य राष्ट्रों के बीच अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे। सन् १९११ से चीन के नेताओं ने जो दायित्व अपने कन्धों पर उठाया था उसका वे अब तक बराबर निर्वाह करते आये हैं। उनके प्रयत्नों से चीन ने सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से उन्नति की है और अधिक महत्त्व की बात यह हुई कि चीन की राष्ट्रीय सरकार मुख्य चीन के अठारहों प्रान्तों में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफलमनोरथ हो गई। यहाँ तक कि अब बोल्शेविक प्रान्तों ने भी केन्द्रीय सरकार की सत्ता को स्वीकार कर लिया है। इस तरह चीन जब अपनी शक्ति के संगठन तथा शान्ति एवं व्यवस्था के कार्य में संलग्न था तब एकाएक जापान ने चीन पर फिर धावा बोल दिया। पहले धावे में वह मंचूरिया को हथिया ही चुका था। इस बार उत्तरी चीन के ५ प्रान्तों तथा शंघाई और नानकिंग पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया है। गत चार महीने के भीषण संघर्ष में ३ लाख के ऊपर चीनी मारे गये हैं और शंघाई तथा नानकिंग जैसे नगर ढहाये गये हैं। और यह सब लीला संसार के उन प्रमुख राष्ट्रों की जानकारी में हुई तथा हो रही है जो संसार की शान्ति और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता क़ायम रखने के लिए वचनबद्ध हैं। परन्तु उन्होंने केवल शाब्दिक विरोध के सिवा और कुछ नहीं किया। यही नहीं, इस युद्ध के कारण फ़्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका के संयुक्त राज्यों के चीन में जो स्वार्थ हैं, स्वत्व हैं, उनको भारी धक्का ही नहीं पहुँचा है, किन्तु समय समय पर उनके नागरिकों तथा अधिकारियों एवं जहाज़ों पर आक्रमण भी हुए हैं और इतने पर भी ये प्रबल राष्ट्र सिवा राजनैतिक लिखा-पढ़ी के कुछ कर-धर नहीं रहे हैं। उधर जापान अपनी आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध-सामग्री के बल पर चीन के विनाश के कार्य में तत्परता के साथ संलग्न है। चीन की राष्ट्रीय सरकार के अधिकारी और राष्ट्रपति चिआंग-काई-शेक नानकिंग को छोड़कर देश के और भीतर चले जाने को बाध्य हुए हैं। तथापि इस भयानक पराजय से उनका उत्साह नहीं भंग हुआ है और वे जापानियों का मार्गावरोध तथा अपने राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा करने के कार्य में जुटे हुए हैं। यह सच है कि जापान के आगे चीन की सेनायें नहीं ठहर सकती हैं, और चीन में अभी ऐसे लोग भी काफ़ी संख्या में मौजूद हैं जो जापान से मिलकर अपनी देशद्रोहिता का नंगा नाच कर सकते हैं, परन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि चीन एक जाग्रत राष्ट्र है और वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए अन्त तक युद्ध करने का उत्साह के साथ आयोजन कर रहा है।

दक्षिण-अमरीका में तानाशाही का ज़ोर

अमरीका के संयुक्तराज्यों की प्रबलता के कारण अमरीका-महाद्वीप के अन्य राज्य संसार की राजनीति से सदैव अलग रहते आये हैं। संयुक्त-राज्यों की यह घोषणा रही है कि अमरीका-महाद्वीप के राज्यों के मामलों में वे बाहर के राज्यों का हस्तक्षेप नहीं सहन कर सकेंगे। परन्तु अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संयुक्तराज्यों की यह नीति अधिक समय तक टिक न सकेगी। इसका मुख्य कारण यह है कि स्वयं अमरीका के राज्य भी संयुक्तराज्यों की उक्त नीति को अपने लिए अपमानजनक समझते हैं और वे स्वयं भी बाहर के देशों की बातों से सहानुभूति दिखलाने लगे हैं। इनमें मेक्सिको तो बहुत पहले से अपनी स्वाधीन भावना व्यक्त करता आ रहा है। कुछ दिन हुए, रूस के निर्वासित ट्राट्स्की को अपने यहाँ आश्रय देकर उसने अपनी सोवियट मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया था। यही नहीं, उसने रूस की तरह स्पेन की सरकार की अपनी शक्ति के अनुसार सहायता भी की है। इसी तरह दक्षिण-अमरीका के ब्रेज़िल, पेरागुआ आदि राज्य भी संयुक्तराज्य की संरक्षा के विरोध में अपनी स्वाधीन भावना व्यक्त कर रहे हैं। ये दोनों राज्य फ़ैसिस्ट भावना के प्रति विशेष अनुराग दिखा रहे हैं। पहले से भी दक्षिण-अमरीका के राज्यों में प्रजातंत्र की भावना नाममात्र को ही रही है, वहाँ तानाशाहों का ही बोलबाला रहा है। तब यदि आज वहाँ जर्मनी या इटली का प्रभाव बढ़ता हुआ दिखाई दे तो यह बात सर्वथा स्वाभाविक ही होगी। पेरागुआ में इस समय सैनिक नेता अधिकारारूढ़ हैं और वे अपने शासन को 'किसानों और मज़दूरों की सरकार' घोषित करते हैं। परन्तु है वहाँ हिटलरशाही ही। यहाँ तक कि वहाँ यहूदियों का प्रवेश निषिद्ध है। समाचार-पत्र सरकार के नियंत्रण में हैं। मज़दूर काम छोड़कर घर बैठने नहीं पाते। उधर सन् १९३० से ब्रेज़िल में गुट्टलिओ वरगास की तानाशाही क़ायम है। ब्रेज़िल में इस समय इटली के फ़ैसिस्ट आन्दोलन का प्राधान्य बढ़ रहा है। अर्जेन्टाइन में भी सन् १९३१ के विप्लव के बाद से प्रेसीडेंट जस्टो के नेतृत्व में तानाशाही दृढ़ता ग्रहण करती जा रही है। और इन राज्यों का मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के दूसरे राज्यों पर प्रभाव नहीं

पड़ेगा, यह कौन कह सकता है ? ऐसी दशा में संयुक्त-राज्यों की उपर्युक्त नीति कहाँ तक स्थिर रह सकेगी, यह तो अलग रहा, उलटा इसकी सम्भावना दिख रही है कि योरप की डिक्टेटरशाही से अमरीका के डिक्टेक्टरों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जायगा और इसका अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असाधारण प्रभाव पड़ेगा। परन्तु संसार की प्रजातंत्रवादी सरकारें कदाचित् ऐसा घटित होने की कल्पना नहीं कर रही हैं या जानबूझकर इस परिस्थिति की उपेक्षा कर रही हैं ! चाहे जो हो, यह स्पष्ट है कि संसार में इस समय तानाशाही का ज़ोर बढ़ती पर है और प्रजातंत्रवाद का नाममात्र का प्रभाव रह गया है।

क्षय-रोग के सम्बन्ध में लेडी लिनलिथगो का सद् प्रयत्न

क्षय-रोग भी भारत का क्षय करने में जुटा हुआ है। इस विषय के जानकारों का कहना है कि यह रोग धीरे धीरे देश में व्यापक रूप धारण करता जा रहा है और केवल नगर-निवासी ही नहीं, किन्तु ग्राम-वासी भी इसके शिकार हो रहे हैं। अनुमान किया गया है कि सारे देश में इस रोग के रोगियों की संख्या बीस लाख के लगभग होगी और प्रतिवर्ष तीन लाख से छः लाख तक लोग इस रोग से मर जाते हैं। अमीर-ग़रीब सभी श्रेणियों के लोग इस रोग से आक्रान्त होते हैं। सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि इस रोग के प्रतीकार के वैज्ञानिक साधनों से यह देश अभी तक वञ्चित ही है। यही नहीं, इसकी रोक-थाम करने को भी यहाँ कोई वैसी व्यवस्था नहीं है, चिकित्सा की समुचित सुविधा तो है ही नहीं। और जो थोड़ी-बहुत है वह सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है। बम्बई में ४ और बम्बई-प्रान्त में ६ सेनिटोरियम अवश्य हैं, जहाँ क्षय-रोग की चिकित्सा के साधन जुटाये गये हैं। बंगाल में कलकत्ते में एक छोटा-सा अस्पताल है तथा कुर्सियांग में एक सेनिटोरियम है। इसी तरह अन्य प्रान्तों में एक-आध सेनिटोरियम या अस्पताल हैं। इनसे इतनी बड़ी संख्या के रोगियों की चिकित्सा की व्यवस्था कैसे सम्भव हो सकती है ?

प्रसन्नता की बात है कि लेडी लिनलिथगो का ध्यान इस दुरवस्था की ओर गया है। हाल में आपने इस सम्बन्ध में चन्दे की जो एक अपील की है उसमें प्रकट होता है कि आप इस भयानक रोग की रोक-थाम के लिए कैसी व्यवस्था करना चाहती हैं। आपने कहा है—

यदि मुझे सफलता मिली जिसकी मुझे आशा है, तो इरादा यह है कि भारत के लिए एक तपेदिक-निवारक संघ स्थापित किया जाय, जिसमें एक केन्द्रीय संस्था हो और प्रान्तीय तथा देशी रियासतों की संस्थाओं की सहायता प्राप्त हो और जिन स्थानों में तपेदिक प्रचलित है वहाँ की दशाओं के अनुकूल एक समान नीति ग्रहण की जाय। प्रान्तों तथा देशी राज्यों में ख़र्च मुख्य रूप से अस्पतालों को जारी रखने में तथा जहाँ सम्भव हो सेनिटोरियम और बीमारी के बाद हिफ़ाज़त रखनेवाले स्थानों पर किया जायगा और केन्द्रीय संस्था का ख़र्च विशेषज्ञों तथा सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधियों के परामर्श से होगा। यह ख़र्च अनुसन्धानों, विशेष सलाह देने और सम्मिलित प्रयत्न तथा दिल्ली के एक केन्द्रीय माडल अस्पताल पर किया जायगा। परन्तु चूँकि प्रयत्न प्रभावशाली और वास्तविक कार्य प्रान्तों तथा देशी रियासतों में होना है, मेरी यह तजवीज़ है कि प्रान्तों और देशी राज्यों में इस अपील-द्वारा एकत्र हुई रक़म का ९५ प्रतिशत भाग स्थानीय ख़र्च के लिए वापस कर दिया जाय और शेष ५ प्रतिशत रक़म और साथ ही जो चन्दे लोग स्वेच्छा से विशेष रूप से केन्द्रीय संस्था को दें वह केन्द्रीय संस्था में रक्खा जाय।

आपके उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में अब कोई न कोई ठोस काम अवश्य होगा। आपकी अपील का देश में जो स्वागत हुआ है उससे भी ऐसा ही भासित होता है।

ग्वालियर के महाराज का सत्परामर्श

ग्वालियर के नवयुवक महाराज श्री जीवाजीराव सिंधिया राज्य-सञ्चालन के कार्यों में तत्परतापूर्वक जिस उत्साह के साथ अपनी कर्तव्य-परायणता का परिचय दे रहे हैं, उसी तरह आप अपने मौलिकता से युक्त उदार विचार प्रकट करने का अवसर भी हाथ से नहीं जाने देते। यही नहीं, आप उन्हें एक स्वाधीन नृपति की ही तरह व्यक्त भी करते हैं। इस समय भारत के देशी राज्यों में

शासक और प्रजा का जो संघर्ष छिड़ा हुआ है तथा उसके जो दुःखद परिणाम हो रहे हैं वह सब यहाँ उल्लेख करने की ज़रूरत नहीं है। इस सम्बन्ध में ग्वालियर के महाराज ने हाल में अपना जो महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया है वह राजनीति की ही दृष्टि से ही नहीं, किन्तु देश-काल की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है। आप बीकानेर के महाराज की रजत-जयन्ती के सिलसिले में बीकानेर गये थे। वहाँ एक अवसर पर भाषण करते हुए आपने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राजाओं के उस परस्पर के एका का क्या मूल्य है, यदि एक राजा का अपने प्रजावर्ग से मेल नहीं है। यदि राजाओं पर उनके प्रजाजनों का विश्वास और प्रेम है तो उनके परम्परागत अधिकारों और मर्तबे को कुछ भी क्षति नहीं पहुँच सकती। अतएव एकता का प्रारम्भ उन्हें अपने घर से करना चाहिए। इससे अधिक उपयोगी सलाह देशी राजाओं के लिए और क्या हो सकती है ? आख़िर उनके वर्तमान सामन्तों तथा प्रजाजनों के पूर्वजों ने ही तो समय समय पर अपना ख़ून बहाकर उनके राज्यों के अस्तित्व की रक्षा की थी। परन्तु आज इनके इस महत्त्व का कोई मूल्य नहीं रहा। इसी का यह परिणाम है कि अधिकांश देशी राज्यों में राजा और प्रजा में कलह छिड़ा हुआ है। ऐसे अवसर पर ग्वालियर के प्रतिभावान् नवयुवक नरेश का उपर्युक्त सत्परामर्श राजाओं और महाराजाओं के ध्यान देने योग्य ही नहीं, कार्य में परिणत करने के योग्य है।

घूसखोरी की व्याधि

घूसखोरी बन्द करने के लिए संयुक्तप्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने एक नया विभाग खोला है। इस विभाग के अध्यक्ष ख़ुफ़िया-विभाग के डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल के असिस्टेंट श्रीयुत टी० पी० भल्ला नियुक्त किये गये हैं। इन्हें कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए पुलिस के तीन सब इन्सपेक्टर दिये गये हैं। देखना है कि यह विभाग अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफलता प्राप्त करता है; क्योंकि घूँस लेने और देने का इस दरिद्र देश में व्यापक प्रचार हो गया है। इस प्रसंग में हम यहाँ एक रोचक घटना का उल्लेख करते हैं, जो दिल्ली के 'अर्जुन' में छपी है। वह घटना बिहार की है और उसका सम्बन्ध वहाँ की सरकार के एक मिनिस्टर माननीय जगलाल चौधरी से है। घटना इस प्रकार है—

एक सख़्ती से पेश आनेवाले रिश्वतख़ोर थानेदार के विरुद्ध लोगों को बहुत-सी शिकायतें थीं। श्री जगलाल तक जब ये बातें पहुँचीं, एक दिन वे थाने में साधारण पोशाक में चुपके से जा पहुँचे और थानेदार साहब को झुककर सलामी बजाते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो गये। थानेदार साहब ने गरज कर पूछा—

"क्या है ?"

श्री जगलाल—सरकार, एक 'रपट' लिखवानी है।

थानेदार—क्या रिपोर्ट है ?

श्री जगलाल—हुज़ूर, एक बछड़ा चोरी हो गया है !

थानेदार—(डाँटकर) चलो यहाँ से। कहीं चरने गया होगा। जाओ, भागो।

श्री जगलाल—(दीनता से) नहीं सरकार, बहुत तलाश कर चुके।

थानेदार—(ऐंठ कर) तुम्हारे बछड़े की हम रिपोर्ट लिखें, उसके बाद उसे ढूँढ़ते फिरें, जैसे हम लोग तुम्हारे नौकर हैं ! बाहर निकलो।

श्री जगलाल—हुज़ूर, बछड़ा बड़ा मोटा और जवान था। हम पर रहम कीजिए।

थानेदार—यह थाना है। कांग्रेस का आश्रम नहीं है। समझा कि नहीं ? कुछ चढ़ाना है तो चढ़ाओ, वर्ना भागो यहाँ से।

इस पर श्री जगलाल चौधरी ने दो रुपये निकाल कर दिये। उन्हें थानेदार साहब ने यह कह कर फेंक दिया कि "मानो हम ख़ैरात माँगते हैं"। इस पर एक रुपया और बढ़ाया गया, मगर वे राज़ी न हुए। तब चार रुपये में फ़ैसला हुआ और थानेदार साहब उन्हें जेब में डाल कर डायरी में रपट लिखने बैठे। कुछ बातें लिख कर पूछा—

"तुम्हारा नाम ?"

श्री जगलाल—सरकार, जगलाल चौधरी !

थानेदार—जात क्या है ?

श्री जगलाल—पासी।

थानेदार—पेशा ?

श्री जगलाल—हुज़ूर, पेशा······? मिनिस्टरी !

थानेदार—क्या कहा, मिस्त्री ?

श्री जगलाल—नहीं सरकार, मिनिस्टरी।

थानेदार—(हैरत में पड़ कर) मिनिस्टरी क्या ?

श्री जगलाल—सरकार, आबकारी की मिनिस्टरी।

थानेदार—(घबराकर) ऐं ! क्या मतलब ?

श्री जगलाल—(दृढ़ता से) मतलब कुछ नहीं। महकमा आबकारी का मंत्री हूँ। मेरा बछड़ा...!

थानेदार—(जल्दी से खड़े होकर काँपते हुए) तुम...आप...हुज़ूर...सरकार...आनरेबिल...मिस्टर जगलाल चौधरी...।

श्री जगलाल—जी हाँ, वही हूँ।

थानेदार को बहुत घबराया देखकर माननीय चौधरी जी ने, सुनते हैं, उसे क्षमा करते हुए आगे के लिए काफ़ी देर तक शिक्षा दी। और अपने स्थान को लौट गये।

इससे प्रकट होता है कि घूँस की महाव्याधि आज भी किस उग्र रूप में फैली हुई है। और वह केवल पुलिस-विभाग में ही नहीं, किन्तु अन्य विभागों में भी उसी रूप में फैली हुई है। कहने का मतलब यह है कि इस महाव्याधि को दूर करने के लिए असाधारण आयोजन की ज़रूरत है।

तिब्बत की राजनीति

दलाईलामा से शून्य और ताशालामा से रहित तिब्बत आज-कल लामाओं की एक कौंसिल तथा रेजेंट के शासन में है। परन्तु इनकी शासन-व्यवस्था से तिब्बत में कोई नई बात नहीं हुई है और वही १४वीं सदी की अवस्था आज भी वहाँ प्रचलित है। उदाहरण के लिए स्वामी अन्नदानन्द बरुआ का हाल का मामला लीजिए। बरुआ महोदय हिन्दू बौद्ध-भिक्षु हैं और चटगाँव के निवासी हैं। वे तिब्बत की तीर्थयात्रा करने गये थे। तिब्बत से वे चीन जाना चाहते थे तथा मार्गगत मठों को भी देखना चाहते थे। लासा में उन्होंने लोगों को बतला दिया कि वे बंगाली हैं। यह भेद खोल देने पर उन पर निगरानी रक्खी जाने लगी, उनको चीन जाने का पासपोर्ट भी नहीं दिया गया और उनसे कह दिया गया कि वे फोटो भी न उतारें। अन्त में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उन्हें स्वदेश लौट आना पड़ा। बरुआ महोदय के साथ जो यह दुर्व्यवहार किया गया है उसका यह कारण बताया जाता है कि तिब्बती लोग स्वर्गीय रायबहादुर शरच्चन्द्र दास के समय से बंगालियों से नाराज़ हैं। स्वर्गीय दास बाबू ने, बहुत दिन हुए, गुप्त रूप से तिब्बत की यात्रा की थी, जिसके कारण तत्कालीन ताशीलामा तक को दण्ड दिया गया था। खेद की बात है कि इतना समय बीत जाने पर भी तिब्बत की अभी वही रफ़्तार है।

भारत में वायुयानों की प्रगति

भारत-सरकार के डायरेक्टर आफ़ सिविल एविएशन ने सन् १९३५-३६ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उससे प्रकट होता है कि भारत-सरकार अब यहाँ वायुयानों का प्रचार अधिकाधिक देशव्यापी कर देना चाहती है। उसने 'एम्पायर-एयर-मेल' नाम की एक नई योजना तैयार की है और १९३८ से इसके अनुसार काम भी शुरू हो जायगा। इस रिपोर्ट का सारांश 'भारत' ने दिया है। उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में फ़र्स्ट क्लास डाक एक देश से दूसरे देश के हवाई जहाज़ों के द्वारा ले जाई जायगी और इस काम में डाक का महसूल भी ज़्यादा न बढ़ेगा।

भारत के लिए पाँच सर्विसें होंगी, जिनमें दो ज़मीन पर उतरनेवाले हवाई जहाज़ों की होंगी। ये दोनों सर्विसें साधारण भूमि-मार्ग से जारी होंगी और कलकत्ते में जाकर समाप्त हो जायँगी। तीन सर्विसें पानी पर उतरनेवाले हवाई जहाज़ों की होंगी। इन सर्विसों का रास्ता भी उत्तरी भारत के ऊपर से प्रायः वही होगा, लेकिन बीच में दिल्ली छूट जायगी और सिंगापुर की सर्विस जारी रहेगी। दो सर्विसें आस्ट्रेलिया को चली जायँगी। इनसे इँग्लैंड से कराची का मार्ग सिर्फ़ २॥ दिन में और कलकत्ते का ३॥ दिन में पूरा होगा।

पानी और हवा दोनों में चलनेवाले २८ हवाई जहाज़ों के लिए फ़र्माइश दे दी गई है। इन हवाई जहाज़ों में चार-चार इंजन होंगे, जो ३॥ टन का बोझ उठाकर १६५ मील फ़ी घंटे की रफ़्तार से उड़ेंगे। इसमें २४ मुसाफ़िर बैठ सकेंगे और जब बैठने का स्थान सोने के स्थान के रूप में परिणत कर दिया जायगा तब १६ मुसाफ़िर इसमें सो सकेंगे।

ज़मीन पर उतरनेवाले १२ हवाई जहाज़ों के लिए

फ़र्माइश दी गई है। इनमें से ८ भारतीय मार्ग में उड़ेंगे। इनमें चार-चार इंजन होंगे, जो कुल ३,५२० हार्स पावर के होंगे। इनमें दिन को २७ मुसाफ़िर बैठ सकेंगे और रात को उतनी ही जगह में २० मुसाफ़िर सो सकेंगे। इनमें २०० मील फ़ी घंटे के हिसाब से उड़ने की ताक़त होगी।

तख़मीना लगाकर देखा गया है कि भारत से जो डाक भेजी जाती है उसका सालाना वज़न लगभग २११ टन होता है, जो प्रत्येक सर्विस के हिस्से ८१ टन पड़ता है। उक्त योजना के लिए भारत और बरमा के ज़िम्मे प्रतिवर्ष १३·७ लाख रुपये डाले गये हैं, जिसमें से बरमा १·१४ लाख देगा। इस प्रकार आकाश-मार्ग से डाक भेजने में भारत का जो ख़र्च पड़ता था उसमें बहुत बड़ी हद तक कमी हो जायगी।

दक्षिण-भारत में हवाई सर्विसों का काम टाटा सन्स लिमिटेड को सौंपा गया है, जो सप्ताह में पाँच बार डाक पहुँचाया करेगी। सीलोन-सरकार के साथ समझौता हो गया है और जिस दिन से उक्त योजना अमल में आयेगी उसी दिन से हवाई सर्विस कोलम्बो तक बढ़ा दी जायगी। आकाश-मार्ग के विस्तार का काम, जिसमें त्रिचनापली में एक एयरोड्रोम बनाना भी शामिल है, हो रहा है। मार्ग के उत्तरी भाग में वायरलेस स्टेशन आकाश-मार्ग और एयरोड्रोम में प्रकाश का प्रबन्ध भी हो रहा है। इस सर्विस में नये हवाई जहाज़ उड़ाये जायँगे जिनमें दो इञ्जनवाले हवाई जहाज़ भी शामिल हैं। ये दो इञ्जनवाले हवाई जहाज़ जिनमें रेडियो भी लगा होगा, कराची-बम्बई-सेक्शन में उड़ेंगे। नये हवाई जहाज़ों में डाक के अलावा मुसाफ़िरों के बैठने की भी जगह होगी।

कराची कोलम्बो के मार्ग से सालाना ५,००,००० पाउन्ड डाक ढोई जायगी जिसके लिए टाटा सन्स लिमिटेड को सालाना १५ लाख रुपये दिये जायँगे।

कराची-लाहौर सर्विस के लिए जो ठेका इंडियन नेशनल एयरवेज़ को दिया गया है उसमें सप्ताह में ५ सर्विसों की व्यवस्था की गई है। इस सर्विस में जो डाक ढोई जायगी उसका तख़मीना सालाना १,३०,००० पाउन्ड लगाया गया है, जिसके लिए इंडियन नेशनल एयरवेज़ को ३.२५ लाख रुपया दिया जायगा।

मार्ग के कराची जैकोबाबाद सेक्शन में एयरोड्रोम बनाये जा रहे हैं और वायुयानों के उड़ने में सुविधा पहुँचाने के लिए मार्ग में प्रकाश का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। इंडियन नेशनल एयरवेज़ की माल ढोने की शक्ति सालाना ३०,००० टन मील से ९४,००० टन मील हो जायगी।

१९११ में ५० हार्स पावर का हवाई जहाज़ २३ पाउन्ड डाक ५० मील प्रतिघंटा के हिसाब से ले जाता था। लेकिन १९३८ में ३,००० हार्स पावर के हवाई जहाज़ ३॥ टन डाक और मुसाफ़िरों को १५० मील प्रतिघंटे के हिसाब से ले जा सकेंगे।

हवाई जहाज़ों पर काम करनेवाले भारतीयों की संख्या बढ़ रही है। सन् १९३६ के अन्त में पाइलट, ग्राउन्ड इञ्जीनियर, वायरलेस आपरेटर या एयर नेविगेटर का लाइसेन्स रखनेवाले भारतीयों की संख्या बढ़कर ५८·५ प्रतिशत हो गई। जिन व्यापारिक हवाई जहाज़ों के चालकों को सन् १९३६ में लाइसन्स मिला था उनमें से ५० प्रतिशत चालकों ने भारत में ही शिक्षा पाई थी जब कि सन् १९३५ में केवल २५ प्रतिशत चालकों को यहाँ शिक्षा मिली थी।

उद्योग-धंधों के लिए एक लाख

प्रांतीय सरकार ने एक लाख रुपया शिक्षित नवजवानों को वज़ीफ़ा देने के लिए मंज़ूर किया है। इसका विवरण समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसका आवश्यक अंश हम 'आज' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

ये वज़ीफ़े उन शिक्षित नवजवानों को मिलेंगे जो किसी ख़ास उद्योग में शिक्षा पा चुके हैं ताकि वे उस उद्योग, व्यापार या व्यवसाय का काम शुरू कर सकें। ये वज़ीफ़े उन लोगों को भी अपने रोज़गार को बढ़ाने और तरक़्क़ी देने के लिए दिये जायँगे जो इस वक़्त कोई रोज़गार या व्यवसाय कर रहे हैं। इस उद्देश के लिए संगठित व्यक्तियों के समूहों को या कोआपरेटिव संस्थाओं को तरजीह दी जायगी।

नीचे के उद्योग-धन्धे मिसाल के तौर पर दिये जाते हैं। धातुओं का ढालना, चाक़ू-सरौते का काम, ख़ुश्क धुलाई, रँगाई और छपाई, तालों का बनाना, चमड़े का काम, टोकरी बनाना, मरम्मत के कारख़ाने, बेल-बूटे काढ़ना,

सूत का रँगना और गोला बनाना, बेंत का सामान बनाना, ब्रश बनाना, ग्रामोफोन और रेडियो सेट तैयार करना, बिजली के लैम्प का शेड बनाना, हैट बनाना, हील-बाल बनाना, कास्मेटिक बनाना, खिलौना बनाना, हाथ से काग़ज़ बनाना, चमड़े का कमाना, महीन सूत कातना, बटन बनाना, पिन बनाना, निब बनाना, चेन बनाना, आरे की छोटी मिल बनाना, पेंसिल बनाना, सेफ़्टीरेज़र के ब्लेड बनाना, सैन्ड पेपर बनाना, तेल का पेरना और साफ़ करना, साबुन बनाना, रस्सी बनाना, रुई धुनना, सूत कातनेवालों को पूनी पहुँचाना, चाक़ू-उस्तरे बनाना, पेंच-कस बनाना, टीन पर छापना, सेल्यूलैड और रबर के खिलौने बनाना, रिबन और फ़ीते बनाना, छाते बनाना, तामचीनी के बर्तन बनाना, ऐनक के फ़्रेम बनाना वग़ैरह वग़ैरह।

ये वज़ीफ़े कुछ शर्तों के साथ दिये जायँगे।

दरख़ास्तों में योजना की तफ़सील निम्नलिखित शीर्षकों के साथ आनी चाहिए—(१) रोज़गार चलाने की जगह, (२) दरख़्वास्त देनेवाले की व्यापारिक और टेकनिकल योग्यता, (३) औज़ारों और मशीनों के नाम, उनका ब्योरा और उनकी क़ीमत, (४) कच्चा माल ख़रीदने के ज़रिये; (५) पूँजी कितनी लगी हुई हैं या लगाना है, (६) उपज के ख़र्च का अन्दाज़ा और मुनाफ़े का अन्दाज़ा, (७) माल जो बनाया जायगा उसकी बिक्री के लिए बाज़ार, (८) जिस तरह से और जिस हद तक आर्थिक सहायता की ज़रूरत हो वह साफ़-साफ़ लिखना चाहिए, (९) इसके अलावा और कोई दूसरी लाभदायक सूचना।

सारी दरख़्वास्तें उद्योग-विभाग और कामर्स के डाइरेक्टर के पास आनी चाहिए।

इलाहाबाद का प्रश्न

संयुक्त-प्रान्त की राजधानी नाम के लिए तो आज भी इलाहाबाद है, पर व्यवहार में राजधानी लखनऊ ही है, क्योंकि प्रान्त के गवर्नर, उनका मन्त्रिमण्डल तथा अन्य उच्च राजकर्मचारी एवं उन सबके दफ़्तर कतिपय वर्षों से लखनऊ में ही अवस्थान करते हैं। प्रान्तीय सरकार की इस नीति का इलाहाबाद के नागरिक बराबर विरोध करते आये हैं। अभी हाल में जब प्रधान मंत्री इलाहाबाद आये थे तब इसी सिलसिले में यहाँ के नागरिकों का एक डेपुटेशन प्रधान मंत्री से मिला था। प्रधान मंत्री ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे इस प्रश्न पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

इलाहाबाद के नागरिकों की इच्छा है कि यदि इस समय यह सम्भव न हो सके कि सारे सरकारी दफ़्तर इलाहाबाद चले आयें तो कम से कम इतना तो ज़रूर होना चाहिए कि कुछ विभागों के दफ़्तर यहाँ लाये जायँ, व्यवस्थापिका सभा का एक अधिवेशन यहीं किया जाय तथा मन्त्री साल में कुछ महीनों तक यहाँ रहा करें।

इलाहाबाद के नागरिकों की इतनी ही माँग है। परन्तु काशी के 'आज' को इलाहाबादवालों की यह माँग ठीक नहीं जँची। उसने सरकारी स्वर में कहा है कि 'लखनऊ को ही राजधानी होने का गौरव मिल गया है। उसमें परिवर्तन करना सर्वथा अनुचित है।' परन्तु उसकी दृष्टि में 'आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्त की सरकार अब काशी की ओर भी कुछ ध्यान दे।' इलाहाबाद की 'इज़्ज़त' का ख़याल करने में 'शासन का व्यय बढ़ जायगा' और काशी की आवश्यकता की पूर्ति करने में क्या बढ़ेगा, इसके बताने की कृपा सम्पादक महोदय ने नहीं की। जहाँ अपनी अपनी बात की लगी होती है, वहाँ न्याय की बात बिरले ही कहते हैं। इसी से 'आज' इलाहाबाद के साथ न्याय नहीं कर रहा है।

प्रसन्नता की बात है कि इलाहाबाद के नागरिक इस अन्याय के प्रतीकार के लिए कटिबद्ध हो गये हैं और इस सम्बन्ध में संगठित आन्दोलन करने के लिए उन्होंने एक कमिटी भी बनाई है। हम उसकी सफलता चाहते हैं।

मैसूर में बिजली की नई योजना

भारत के सुशासित एवं उन्नत देशी राज्यों में मैसूर को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। राज्य तथा प्रजा की आर्थिक दशा के सुधारने में वहाँ की सरकार विशेषरूप से दत्तचित्त रहती है। वर्तमान मैसूर-नरेश के शासन-काल में मैसूर में बिजली की शक्ति का उपयोग करने की ओर विशेषरूप से ध्यान दिया गया है। अभी हाल में मैसूर के महाराजा ने शिमसा में एक नये बिजलीघर के बनाने की नींव रक्खी

है। इसके बन जाने पर राज्य की आय में ख़ासी वृद्धि होगी, साथ ही राज्य में अनेक कारख़ाने खुलेंगे और बेकारों के लिए जीविका के नये साधन प्राप्त हो जायँगे। इस बिजलीघर की योजना के कार्य में परिणत होने पर राज्य को २० लाख रुपया की वार्षिक आय होने लगेगी तथा इसमें ५० शिक्षित एवं १०० कर्मचारियों को काम मिल जायगा। इस बिजलीघर के कारण जो नये कारख़ाने खुलेंगे उनमें ५० से १०० तक शिक्षितों तथा ५०० से ७५० तक श्रमिकों को नौकरियाँ मिल सकेंगी। इस प्रकार राज्य और उसके प्रजाजनों दोनों का काफ़ी हित होगा। मैसूर की यह प्रगति अन्य देशी राज्यों के लिए अनुकरणीय है।

दिल्ली के देहातों में रेडियो

पाश्चात्य देशों में लोकशिक्षण के कार्य में रेडियो का जो उपयोग किया गया उसका कल्याणकारी परिणाम हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि भारत में भी उसके उपयोग की ओर समुचित ध्यान दिया जा रहा है। हाल में दिल्ली के समीप के गाँवों में उसके लगाये जाने का उपक्रम किया जा रहा है। इसका विवरण 'भारत' में दिया गया है जो इस प्रकार है—

दिल्ली के समीप गाँवों में रेडियो लगाने की योजना की जा रही है। इसके द्वारा न केवल प्रान्तों के ही समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे किन्तु विदेशी समाचार भी मिलेंगे। इस प्रकार देहातों में फ़िलस्तीन तथा अफ़्रीका के अन्य प्रान्तों के भी समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे। ऐसा समझा जाता है कि इस योजना के अनुसार देहातों में १२० रेडियो स्टेशन स्थापित किये जायँगे। दिल्ली प्रान्त में इस तरह इसके छः केन्द्र होंगे। हर एक केन्द्र में रेडियो का मेकेनिक और जेंनरेटर (समाचार देनेवाला पत्र) होगा। इस तरह उस केन्द्र से समाचार दिये जायँगे। मेकेनिक आस-पास के गाँवों में लगे हुए रेडियो के यंत्रों की देख-रेख करता रहेगा। और यदि उसमें कुछ ख़राबी होगी तो वह ठीक कर देगा। इसके अतिरिक्त सरकार की ओर से निरीक्षक (सुपरवाइज़र) नियुक्त किये जायँगे। वे इस बात का पता लगायेंगे कि देहात की जनता किस प्रकार के समाचार पसन्द करती है। और वे लोग कुछ ही रुचि के अनुसार समाचार देने का यत्न करेंगे। और इस प्रकार रेडियो की योजना कहाँ तक सफल होती है इसका एक रेकार्ड रक्खा जायगा। लाभदायक सिद्ध होने पर भारत के अन्य प्रान्तों में भी इस योजना को कार्यान्वित किया जायगा। यदि यह योजना स्वीकृत हो गई तो इस कार्य के लिए तीन वर्ष तक का ख़र्च एक लाख से अधिक नहीं होगा। मंज़ूरी मिल जाने पर तीन महीने के भीतर अर्थात् जाड़े के अन्त तक दिल्ली के देहातों में रेडियो लग जायँगे। बहुत सम्भव है कि दिल्ली से सफलता मिलने पर इसके लिए सरकार की ओर से एक सलाहकार रक्खा जायगा जो भारत के अन्य प्रान्तों में जाकर वहाँ के अधिकारियों को इस योजना को लागू करने की सलाह देगा जिससे भारत के सभी प्रान्तों के देहातों के लोग रेडियो से लाभ उठा सकें।

श्रीयुत ब्रजमोहन वर्मा का स्वर्गवास

'विशाल-भारत' के सहकारी सम्पादक श्रीयुत ब्रजमोहन वर्मा का १० दिसम्बर को कानपुर में स्वर्गवास हो गया। इधर वे कई महीने से ज्वरग्रस्त थे और स्वास्थ्य-सुधार के लिए कलकत्ते से इटावा गये थे, जहाँ से कानपुर आये थे। अभी वे ३३ वर्ष के ही थे और अपने इस लघु-जीवन में 'विशाल-भारत' के द्वारा उन्होंने राष्ट्र-भाषा की जो सेवा की है वह किसी भी हिन्दी-प्रेमी नवयुवक के लिए अनुकरणीय है। वे एक प्रतिभाशाली लेखक थे। हमारी उनके दुखी परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना है।

खेद-प्रकाश

दिसम्बर १९३७ की सरस्वती में 'धर्मादा' शीर्षक एक लेख छपा है। उसे इन्दौर के सनावद के पण्डित लक्ष्मीनारायण दीनदयालु अवस्थी ने छपने को भेजा था और उन्होंने हमें यह नहीं लिखा था कि वह लेख मराठी के लेख का अनुवाद है। यह तो तब मालूम हुआ जब हमें उसके सम्बन्ध में पूना के 'सह्याद्रि' के श्रीयुत डी० वी० काले तथा उक्त लेख के लेखक अमरावती के श्रीयुत वी० एल० खरे की शिकायती चिट्ठियाँ मिलीं। हमें खेद है कि उक्त लेख 'सरस्वती' में मौलिक लेख के रूप में छप

गया। पाठक उस लेख को 'सह्याद्रि' में प्रकाशित लेख का हिन्दी-अनुवाद समझें। वहाँ लेखक महानुभावों से हमारा आग्रह-पूर्वक निवेदन है कि वे बिना अनुमति लिये कोई अनुवाद किया हुआ लेख छपने को न भेजा करें, क्योंकि ऐसा करना क़ानून में अपराध है।

कुछ विशेषांक तथा नये पत्र

'प्रताप' का 'विजयाङ्क'—सम्पादक, श्रीयुत हरिशंकर विद्यार्थी, प्रकाशक, प्रताप-प्रेस, कानपुर हैं। इस अंक का मूल्य =) है।

कानपुर के प्रसिद्ध 'प्रताप' का यह विशेषांक उपयोगी लेखों से विभूषित है। मुख-पृष्ठ पर श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस का सुन्दर चित्र दिया गया है। साथ ही कविताओं और कहानियों से इसकी रोचकता बढ़ाई गई है। इसके अतिरिक्त इस अंक में अनेक चित्रों का संग्रह है। पाठकों को यह अंक अवश्य पढ़ना चाहिए।

नव-शक्ति—पटना की यह साप्ताहिक पत्रिका एक राष्ट्रीय पत्रिका है और गत ४ वर्ष से सफलता के साथ निकल रही है। ९ अक्टूबर को इसका 'विजयांक' निकला है, जिसमें सामयिक राजनैतिक विचार-सम्बन्धी कतिपय महत्त्वपूर्ण लेखों एवं मनोरंजनार्थ कविताओं एवं कहानियों तथा दूसरे ज्ञातव्य विषयों के लेखों का संग्रह किया गया है।

नवराजस्थान—यह अकोला से निकलता है। इसका 'दीपावली अंक' ११६ पृष्ठों में बड़ी सज-धज के साथ निकला है। भिन्न भिन्न विषयों के महत्त्वपूर्ण लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। पर राजस्थान-सम्बन्धी केवल २ लेख हैं। अन्य लेखों में सैद्धान्तिक लेखों की ही अधिकता है। कहानियाँ भी हैं। कवितायें भी हैं। चित्र भी अधिक संख्या में हैं। सब तरह सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

'सचित्र दरबार' का 'ग्वालियर-अंक'—सम्पादक व प्रकाशक श्रीयुत ऋषभचरण जैन, रूपवानी प्रिंटिंग हाउस, सिविल लाइन्स, देहली हैं। इस अंक का मूल्य ३) है।

दिल्ली से 'सचित्र दरबार' नाम का एक सचित्र साप्ताहिक निकलता है। इसमें देशी रियासतों के सम्बन्ध में लेख छपते हैं। उपर्युक्त विशेषांक उसका 'ग्वालियर-अंक' है और यह बड़ी सजधज के साथ निकला है। ३०६ पृष्ठों में ग्वालियर-सम्बन्धी अनेक लेखों का सुन्दर संकलन किया गया है। यह अंक अनेक रंगीन और सादे चित्रों-द्वारा भली भाँति सजाया गया है। इसके पढ़ने से पाठकों को ग्वालियर के सम्बन्ध की अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम हो सकती हैं। हिन्दी-प्रेमियों को यह अंक अवश्य पढ़ना चाहिए।

सचित्र भारत—सम्पादक श्रीयुत प्रबोधकुमार समाद्दार एम० ए०, प्रकाशक, आर्ट प्रेस, २० ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट, कलकत्ता, वार्षिक मूल्य ३।।) है।

यह पत्र जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सुरुचिपूर्ण, सुन्दर और सचित्र साप्ताहिक है। इसकी विशेषता यह है कि यह चित्रों-द्वारा प्रत्येक सप्ताह की प्रमुख घटनाओं और व्यक्तियों को उपस्थित करता है। कला-पूर्ण नृत्यों के पोज़, शौक़िया फोटोग्राफरों के लिए विविध चित्रों और प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में से मानव सभ्यता के परिचायक चित्रों के अतिरिक्त इसमें एक सुन्दर सचित्र कहानी भी रहती है। पत्र अपने ढंग का नया है। हम इसका स्वागत करते हैं।

समाज (साप्ताहिक)—सम्पादक व प्रकाशक श्रीयुत ओंकारनाथ शास्त्री, श्री सेवा प्रेस, हेविट रोड, इलाहाबाद हैं। वार्षिक मूल्य ३) है।

यह एक नया पत्र है। इसमें किसानों, मज़दूरों आदि की समस्याओं एवं सामाजिक क्रान्ति की बातों की प्रमुखता रहती है। इन विषयों के पाठकों को इस पत्र का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

फ़रवरी १९३८ | भाग ३९, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ४५८ | माघ १९९४

अश्रुधार

लेखक, श्रीयुत सनेही

वेदना से तड़प रही है यह अन्तर में
अरमान इसका न यों ही रह जाने दो।
कब तक धैर्य-बाँध बाँध बाँध रक्खें इसे
करुणा की कुछ तो कथायें कह जाने दो।
आँसू नहीं ख़ून के हैं क्रान्ति-चिनगारियाँ हैं
पत्थर से हृदय पिघल दह जाने दो।
प्रलय दबाये पद-तल में तरङ्गें भरी
बह रही तप्त अश्रुधार बह जाने दो।

अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-परिषद् और भारत

लेखक, श्रीयुत विनयकुमार 'विनय'

भारत का शक्कर का व्यवसाय इस समय वृद्धि पर है और यदि उसे आवश्यक सुविधायें प्राप्त होतीं तो उसकी और भी अधिक उन्नति हुई होती। लेखक महोदय ने अपने इस महत्त्वपूर्ण लेख में इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है।

संसार की शक्कर की उपज और बाज़ार-बिक्री को व्यवस्थित और नियमित करने की दृष्टि से एक 'अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-परिषद्' ब्रिटेन की प्रेरणा से श्री रेम्जे मेकडानल्ड के सभापतित्व में ५ अप्रैल सन् १९३७ को हुई थी। इस परिषद् में संसार के २१ देशों की सरकारों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, जिनमें मुख्य दक्षिण-अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, ब्रेज़िल, बेलजियम, इँगलैंड, चीन, फ्रांस, जर्मनी, हंगेरी, भारत, पोलैंड, पोर्तुगाल, रूस, अमरीका और युगोस्लेविया आदि थे।

शक्कर का सबसे बड़ा उत्पादक राष्ट्र होने के कारण भारत भी उक्त परिषद् में निमन्त्रित किया गया था। परन्तु यह कहना तो सरासर अन्याय होगा कि भारत ने उस परिषद् में भाग लिया था और अपने विचार प्रकट किये थे। हाँ, यह कहा जा सकता है कि भारत की सरकार ने उस परिषद् में भाग लिया था। ६ फ़रवरी को समाचारपत्रों-द्वारा यह ज्ञात होने पर कि भारत का प्रतिनिधि उक्त परिषद् में बुलाया जायगा, 'इंडियन शुगर मिल्स एसोसिएशन' ने एक नहीं वरन तीन तीन पत्र भेजे और सरकार से प्रार्थना की कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-परिषद् के लिए भारत का प्रतिनिधि चुनने को उसे इजाज़त दे। परन्तु सरकार बिलकुल ख़ामोश रही, यहाँ तक कि यह भी नहीं प्रकट किया गया कि परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व कौन करेगा। मार्च के असेम्बली के अधिवेशन में सेठ गोविन्ददास के प्रश्न पूछने पर सरकार ने यह बताया कि उक्त परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व सर डेविड मीक करेंगे।

अस्तु, उक्त परिषद् में भारत-सरकार के नामज़द प्रतिनिधि ने परिषद् के निर्णय पर अपनी स्वीकृति दे दी। परिषद् के निर्णयानुसार भारत अपने यहाँ पैदा होनेवाली शक्कर को ५ वर्ष तक सिवा ब्रह्मा के और किसी दूसरे देश को नहीं भेज सकता। केन्द्रीय धारा-सभा के गत शिमला अधिवेशन में भारत-सरकार की ओर से उक्त परिषद् के निर्णय के स्वीकारार्थ एक प्रस्ताव रक्खा गया। परन्तु कोई भी दल उसको स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ, अतः सरकार असेम्बली की स्वीकृति उस पर नहीं प्राप्त कर सकी। इसके बाद कौंसिल आफ़ स्टेट के उसी अधिवेशन में उक्त निर्णय के स्वीकार करने का प्रस्ताव सरकार की ओर से रक्खा गया, जहाँ सरकार प्रस्ताव को पास कराने में सफल हो गई। अन्त में सरकार ने उक्त परिषद् के निर्णय पर अपनी स्वीकृति दे दी। इस निर्णय को स्वीकार करते हुए सरकार ने यह कहा है कि भारत को इस निर्णय पर अपनी स्वीकृति दे देने से कोई हानि नहीं हो सकती, क्योंकि भारत में पैदा होनेवाली शक्कर अभी केवल भारत के लिए ही काफ़ी है, अभी भारत उतनी शक्कर पैदा नहीं कर सका है कि वह दूसरे देशों को भेजे। इसके साथ ही सरकार ने यह भी कहा कि भारत में शक्कर की लागत दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक है, इसलिए वह संसार की बाज़ार में प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकता।

सरकार के प्रथम कथन की जाँच करने के लिए हमें भारत के शक्कर-व्यवसाय के इतिहास पर एक नज़र डालनी होगी। निम्न अङ्कों से भारत के शक्कर-व्यवसाय की प्रगति का हमें ज्ञान हो सकेगा—

सन्	शक्कर-उत्पत्ति
१९३१-३२	१,५८,५८१ टन
१९३३-३४	४,५३,९६५ ,,
१९३५-३६	६,१२,१०० ,,
१९३६-३७	१०,७२,५०० ,,

गत ७ वर्षों में शक्कर की उत्पत्ति क़रीब ७ गुना बढ़ गई है। इसको देखकर कौन इस बात से इनकार कर

सकता है कि अगले ५ वर्षों में (जिनमें शक्कर-परिषद् के समझौते के अनुसार भारत अपनी शक्कर बाहर नहीं भेज सकेगा) भारत शक्कर की पैदावार को उतनी नहीं बढ़ा सकेगा, जितनी उसने गत ५ वर्षों में बढ़ाई है। यदि भारत विदेश को अपनी शक्कर नहीं भेज सकता तो आगे के ५ वर्षों में भी वह नहीं भेज सकेगा, यह कहना भारतीय व्यवसाय का गला घोंटना है। सत्य तो यह है कि भारत की शक्कर-मिलें अपनी पूरी शक्ति से काम नहीं करती हैं। निम्न अङ्कों से इस बात की सत्यता स्पष्ट हो जाती है।

	सन्	दिन
(१) भारत में फ़ेक्टरियों से गन्ने से रस निकालने का औसत	१९३२-३३ ...	१३८
	१९३३-३४ ...	१०६

सन्	दिन
१९३४-३५ --	१०४
१९३५-३६—	१२६

	सन्	दिन
(२) भारत में रस निकालने की अधिक से अधिक अवधि।	१९३२-३३ ...	१८४
	१९३३-३४ ...	२०८
	१९३४-३५ ...	१७२
	१९३५-३६ ...	१७९

उपर्युक्त अङ्कों से ज्ञात होता है कि भारत की फ़ेक्टरियाँ गन्ने से रस निकालने का काम औसतन केवल ४ माह करती हैं। अधिक से अधिक समय तक काम करने का भी यदि औसत निकाला जाय तो वह कठिनाई से ६ माह होता है। पूरा पूरा काम होने से दूनी उत्पत्ति होने की आशा की जा सकती है।

दूसरी बात जो भारत के शक्कर-व्यवसाय की प्रगति की द्योतक है वह देश की बेकारी का कम होना और किसानों को गन्ने की पैदावार से अधिक लाभ होना है। सन् ३१-३२ में किसानों को शक्कर के लिए बेचे गये गन्ने से क़रीब ३॥। करोड़ रुपया मिला था। सन् ३३-३४ में क़रीब ४॥। करोड़ से भी अधिक रुपया मिला था। और सन् ३५-३६ में ८॥। करोड़ रुपया मिला। उसी तरह जहाँ सन् ३१-३२ में केवल १६,६४० मज़दूर शक्कर-व्यवसाय में आवश्यक थे और जिन्हें ९,९८,००० रुपया मिलता था, वहाँ सन् ३६-३७ में मज़दूरों की संख्या १० लाख हो गई और मज़दूरी में उन्हें ६० लाख रुपये मिले।

तीसरी बात जिससे भारत के शक्कर-व्यवसाय की आशातीत उन्नति का ज्ञान हो सकता है वह भारत में शक्कर के आयात की कमी है। हमारे शक्कर-व्यवसाय की बढ़ती से भारत में विदेशी शक्कर के बहिष्कार को स्वाभाविक प्रोत्साहन मिल गया है, जिसे देखकर किसी भी भारतवासी का हृदय प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता। परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम ग़ुलाम हैं और इसी लिए भारत के दूसरे नंबर के सबसे बड़े व्यवसाय (प्रथम सबसे बड़ा व्यवसाय भारत का सूती कपड़े का है।) की उन्नति करना तो क्या, उसकी उन्नति में बाधक होनेवाली बातों को हटाने में भी असमर्थ हैं। निम्न कुछ अंक भारत के शक्कर-आयात पर अच्छा प्रकाश डालते हैं—

बंदरस्थान	सन्	भारत में आनेवाली शक्कर की तादाद
बम्बई	१९२९-३०—	२,११,०२८ टन
	१९३६-३७—	२७६ ,,
मदरास	१९२९-३०—	९०,८९९ ,,
	१९३६-३७—	१८९ ,,
कलकत्ता	१९२९-३०—	३,६८,९६९ ,,
	१९३६-३७—	५,६८५ ,,

बम्बई में जहाँ विदेश से सन् ३० में दो लाख टन से अधिक शक्कर आई, वहाँ सन् ३७ में केवल २७६ टन ही शक्कर आई। इसी तरह दूसरे बंदरों के अंक भी शक्कर-व्यवसाय की ऐसी ही आशातीत सफलता का पता देते हैं। सन् ३७-३८ का आय-व्यय का लेखा उपस्थित करते हुए भारत-सरकार के अर्थमन्त्री ने कहा था कि जहाँ शक्कर के आयात से भारत-सरकार को सन् ३० में पौने-ग्यारह करोड़ की आय हुई थी, वहाँ सन् ३६-३७ में २॥ करोड़ से भी कम हुई है। इसी कारण शक्कर की चुंगी ९।-) के स्थान में २) फ़ी हंडरवेट की गई है।

भारत अपनी शक्कर को विदेशी बाज़ार की प्रतियोगिता में ठहरा नहीं सकता, इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह कही जाती है कि भारत में शक्कर की उत्पत्ति की लागत दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक है। परन्तु ऐसा कह भर देने से किसी देश की सरकार के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में बोलते हुए माननीय व्यवसाय-मन्त्री ने भी अर्थ-मन्त्री के इस कथन की कि 'भारत में शक्कर-उत्पत्ति की लागत ज़्यादा है,'

अतः वह अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में नहीं ठहर सकती', पुनरावृत्ति की थी। परन्तु उक्त महोदय ने भारत की तुलना केवल जावा और क्यूबा से ही करके यह निष्कर्ष निकाल लिया था। दूसरे देशों की शक्कर की उत्पत्ति की लागत के सम्बन्ध में कुछ बतलाने का कष्ट न उठाकर केवल उन देशों के उन भावों को ही असेम्बली के सामने रक्खा था जिनसे वे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपनी शक्कर बेचते हैं। संसार के जितने भी शक्कर-उत्पादक देश हैं उनमें केवल जावा और क्यूबा ही ऐसे हैं जिनकी शक्कर की उत्पत्ति की लागत भारत से कम है। अन्य किसी भी देश की शक्कर की उत्पत्ति की लागत भारत से कम नहीं है, परन्तु वे अपनी शक्कर अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेचते हैं और कम भाव में बेचते हैं। अतः इस सचाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे देश घरेलू बिक्री की सहायता लेकर विदेशों में अपने माल को चला देते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपना स्थान बना लेते हैं। इस पर से यह बात भी स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि शक्कर की उत्पत्ति की लागत और शक्कर के अन्तर्राष्ट्रीय क्रय का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। इन सब बातों के होने पर भी भारत की शक्कर की उत्पत्ति की लागत और शक्कर की बिक्री की दर दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। [illegible] भारत की क्रय-दर [illegible] प्रतिमन थी और सन् ३५ में [illegible] सन् ३७ में [illegible] रह गई है। सन् ३६ में ७॥[illegible] थी, पर [illegible] इस कमी से यह आशा की जा शक्कर-बिक्री के भाव में [illegible] भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार-सकती है कि भारत [illegible] प्रतियोगिता में सरलता से सफल हो सकता है। अब रहा प्रश्न शक्कर की उत्पत्ति की लागत का। भारत में गन्ने [illegible] करीब १५ टन है। सन् ३१-३२ से [illegible] उन्नति हुई है, [illegible] प्रति एकड़ [illegible] केवल [illegible] तो भी इस [illegible] नहीं कही जा सकती, इंजीनियरिंग [illegible] सन् ३३ तक इसमें [illegible] रासायनिक प्रयोग, [illegible] आशातीत उन्नति [illegible] ध्यान दिया जाय तो [illegible] प्रतिएकड़ ४५ टन [illegible] अपने यहाँ [illegible] खोज आदि करने [illegible] परन्तु हमारे यहाँ [illegible] प्रतिएकड़ [illegible] देखा गया है कि [illegible] इन अंकों को [illegible] पैदा किया जा सकता है। [illegible] देखते हुए हमें इस निर्णय पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि बिहार और संयुक्त-प्रान्त में प्रतिएकड़ ५० टन [illegible] पैदा करना कठिन नहीं है, यदि कुछ सहूलियतें सरकार [illegible] प्राप्त हो सकें।

इसके बाद हमारे सामने अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार ढूँढ़ने [illegible] समस्या आती है। उसका हल भी बड़ी सरलता से [illegible] जा सकता है। भारत की शक्कर के लिए सबसे [illegible] बाज़ार ब्रिटेन है। ब्रिटेन का सन् ३६-३७ का शक्कर [illegible] ख़र्च क़रीब २३,३७,००० टन है और पैदावार [illegible] ५,४३,००० टन है। अर्थात् क़रीब १७,८७,००० [illegible] शक्कर उसने उस साल विदेशों से मँगाई। एक साल [illegible] ख़र्च और आय पर से साधारणतः प्रतिवर्ष का अन्दाज़ लगा[illegible] जा सकता है। भारत ब्रिटेन को अपनी शक्कर के [illegible] बाज़ार बनाने का पूरा अधिकारी है और वह इसलिए [illegible] कि ब्रिटेन भारत पर शासन करता है, वरन बिलकुल व्य[illegible]सायिक ढंग से। भारत ब्रिटेन को उसके कपड़े, लोहे [illegible] फ़ौलाद आदि के सामान के लिए पूरी सहूलियतें देता [illegible] तब भारत को वहाँ इस तरह की कोई सहूलियत क्यों [illegible] मिलनी चाहिए? भारत-सरकार का यह कर्त्तव्य है कि [illegible] भारत की शक्कर को बिना किसी टैक्स के ब्रिटेन [illegible] बाज़ार में पहुँचाने की सहूलियतें प्राप्त करे। मान लि[illegible] जाय कि ब्रिटेन उतनी सहूलियतें नहीं दे सकता [illegible] इतना तो कर ही सकता है कि जिस प्रकार वह अप[illegible] उपनिवेशों की शक्कर को सहूलियतें देता है, भारत [illegible] शक्कर को भी दे। ब्रिटेन को शक्कर भेजने को [illegible] ९६° डिग्री पोलेरायजेसन की आवश्यकता होती है, [illegible] पर ब्रिटेन क़रीब ८ शिलिंग प्रतिटन के हिसाब से टैक्स [illegible] लेता है। परन्तु उपनिवेशों तथा अन्य उपराज्यों [illegible] विशेष सहूलियतें देकर वहाँ की शक्कर पर ४ शि० [illegible] पें० ही प्रतिटन टैक्स लेता है। उपनिवेशों की प्रामा[illegible] शक्कर पर १ शि० ८ पें० प्रतिटन लेता है। यदि [illegible] टैक्स नहीं तो भारत की शक्कर को कम से कम का प्रमा[illegible] पत्र दिलाने की सहूलियत तो भारत-सरकार कर ही सक[illegible] है। इसके बाद कोई कारण नहीं रह जाता जिससे भारत [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपनी शक्कर के लिए स्थान [illegible] पा सके।

उपर्युक्त सारी बातों से प्रकट हो जाता है कि निक[illegible] भविष्य में भारत अपनी आवश्यकता से काफ़ी ज़्या[illegible]

शक्कर पैदा कर सकेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार की प्रतियोगिता में सरलता से उतर सकेगा। यदि उस समय अपने माल को खपाने के लिए उसके पास कोई बाज़ार नहीं रहा तो भारतीय शक्कर-व्यवसाय का ही नहीं, वरन उससे संबंधित २ लाख किसानों, १ लाख मज़दूरों, २॥ हज़ार ग्रेजुएटों तथा ३० करोड़ रुपया की लगी हुई पूँजी का भाग्य आज ही निश्चित हो गया समझना चाहिए।

हमें अब यही देखना है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-परिषद् ने भारत पर क्या कृपा की है। उसके निर्णय से संसार के सबसे अधिक शक्कर पैदा करनेवाले देश के इस व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलता है या उससे वह एक ज़बर्दस्त गड्ढे में जा गिरता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि उक्त परिषद् के निर्णयानुसार भारत ५ वर्ष तक ब्रह्मा को छोड़ और किसी देश को शक्कर नहीं भेज सकता। भारत-सरकार ने इस परिषद् में प्रतिनिधि भेजते समय जनता के मत की अवहेलना कर एक अन्याय के साथ उस परिषद् को प्रारम्भ किया और परिषद् के निर्णय को स्वीकृत कर डबल अन्याय के साथ उसको ख़त्म किया। भारत के शक्कर-व्यवसाय की उन्नति के लिए जितने भी सम्भव उपाय ऊपर बताये गये हैं उन सबकी अन्त्येष्टि-क्रिया उक्त परिषद् के निर्णय ने पूर्व ही कर दी। भारत के साथ जो अन्याय किया गया है उसे हम अपनी ग़ुलामी के अभिशाप के सिवा और क्या कह सकते हैं?

भारत संसार में सबसे अधिक शक्कर पैदा करता है। संसार की पूरी शक्कर की उपज का २१·८ प्रतिशत भारत उत्पन्न करता है। परन्तु शक्कर-परिषद् में उसके साथ खुल्लमखुल्ला अन्याय किया गया है। भारत शक्कर ख़रीदनेवाले देशों में रक्खा गया है। भारत किसी दूसरे देश को शक्कर नहीं भेज सकता, इसलिए यदि ब्रिटिश उपनिवेशों की शक्कर के निर्यात की तादाद भविष्य में बढ़ाई भी जाय तो भी भारत उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। परिषद् के ऐसे अन्याययुक्त निर्णय का मुख्य कारण यह है कि परिषद् में आर्थिक दृष्टि-कोण से किसी बात पर विचार ही नहीं किया गया।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कि ऐसी परिषदों के निर्णय राजकीय शक्ति पर निर्भर होते हैं, इस परिषद् का स्वयं का निर्णय है। उदाहरण के लिए जर्मनी की सन् ३६-३[illegible] की शक्कर की उत्पत्ति १७,८१,००० टन है और ख़र्[illegible] १६,९२,००० टन है। अर्थात् केवल ८९,००० टन [illegible] बचत है। इन वर्षों में जर्मनी ने कुछ भी शक्कर बाह[illegible] नहीं भेजी। परन्तु परिषद् ने उसे १,२०,००० टन शक्[illegible] का 'एक्सपोर्ट कोटा' दिया है। उसी तरह फ़्रांस [illegible] हाल है। फ़्रांस की सन् ३६-३७ की पैदावार ८,७७,०[illegible] टन है और ख़र्च १०,५९,००० टन है। अर्था[illegible] १,८२,००० टन शक्कर उसे बाहर से मँगानी पड़ी। [illegible] भी वह शक्कर का निर्यात करनेवाला देश माना गया है [illegible] इतना ही नहीं, उसे और भी सहूलियतें प्राप्त हैं। परिष[illegible] के समझौते के १९वें आर्टिकल में लिखा है कि यूगो[illegible] स्लेविया के निर्यात के लिए जितना परिमाण सुरक्षि[illegible] रक्खा गया है उसमें से यूगोस्लेविया के उपयोग करने [illegible] बाद जो बचे उसका उपयोग फ़्रांस कर सकेगा। और यूगो[illegible] स्लेविया के लिए १२,५०० टन शक्कर निर्यातार्थ सुरक्षि[illegible] है। इन सारी बातों से यह निश्चित है कि परिषद् [illegible] निर्णय भारत के प्रति अन्यायपूर्ण है और भारत-सरका[illegible] ने उसे स्वीकार कर भारत पर डबल अन्याय किया है [illegible] साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि उक्त समझौते से भार[illegible] के शक्कर-व्यवसाय को प्रोत्साहन नहीं मिला, वरन ए[illegible] ज़बर्दस्त धक्का बैठा है।

इस समझौते के कारण—

(१) भारत ब्रिटेन में भी किसी प्रकार की सहूलियतें प्रा[illegible] नहीं कर सकता।

(२) शक्कर के कारख़ानों के मालिक भारतीय शक्कर [illegible] अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार की प्रतियोगिता में सफल होने [illegible] लिए निर्यात-भाव को व्यवस्थित या अपने यो[illegible] कर लेने को ऐसे किन्हीं उपायों का भी अवलम्[illegible] नहीं कर सकते जिनका जावा आदि देशों के व्यापार[illegible] किया करते हैं।

यदि भारत-सरकार ने इस समझौते को स्वीकार [illegible] किया होता तथा भारत के इस बढ़ते हुए व्यापार [illegible] सहायता दी होती तो भारत अपनी क़रीब दो लाख ट[illegible] शक्कर के लिए सीलोन, ईरान, अरब, अदन, सोमालीलैं[illegible] मेसोपोटेमिया, ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका तथा श्याम आ[illegible] देशों के बाज़ारों में सरलता से अपना क़ब्ज़ा कर सकता

अतः वह अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में नहीं ठहर सकती', पुनरावृत्ति की थी। परन्तु उक्त महोदय ने भारत की तुलना केवल जावा और क्यूबा से ही करके यह निष्कर्ष निकाल लिया था। दूसरे देशों की शक्कर की उत्पत्ति की लागत के सम्बन्ध में कुछ बतलाने का कष्ट न उठाकर केवल उन देशों के उन भावों को ही असेम्बली के सामने रक्खा था जिनसे वे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपनी शक्कर बेचते हैं। संसार के जितने भी शक्कर-उत्पादक देश हैं उनमें केवल जावा और क्यूबा ही ऐसे हैं जिनकी शक्कर की उत्पत्ति की लागत भारत से कम है। अन्य किसी भी देश की शक्कर की उत्पत्ति की लागत भारत से कम नहीं है, परन्तु वे अपनी शक्कर अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेचते हैं और कम भाव में बेचते हैं। अतः इस सचाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे देश घरेलू बिक्री की सहायता लेकर विदेशों में अपने माल को चला देते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपना स्थान बना लेते हैं। इस पर से यह बात भी स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि शक्कर की उत्पत्ति की लागत और शक्कर के अन्तर्राष्ट्रीय क्रय का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। इन सब बातों के होने पर भी भारत की शक्कर की उत्पत्ति की लागत और शक्कर की बिक्री की दर दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। सन् ३५ में भारत की क्रय-दर ८॥।~) प्रतिमन थी और सन् ३६ में ७॥।≈) थी, पर सन् ३७ में ६।=) रह गई है। शक्कर-बिक्री के भाव में इस कमी से यह आशा की जा सकती है कि भारत निकटभविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार-प्रतियोगिता में सरलता से सफल हो सकता है। अब रहा प्रश्न शक्कर की उत्पत्ति की लागत का। भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज क़रीब १५ टन है। सन् ३१-३२ से सन् ३७ तक इसमें केवल एक प्रतिशत की उन्नति हुई है, जो यद्यपि सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, तो भी इस उपज के सम्बन्ध की खोज, रासायनिक प्रयोग, इंजीनियरिंग आदि बातों पर यदि ध्यान दिया जाय तो आशातीत उन्नति की संभावना है। जावा अपने यहाँ प्रतिएकड़ ४५ टन गन्ना पैदा करता है। परन्तु हमारे यहाँ खोज आदि करने पर बम्बई-प्रान्त में यह देखा गया है कि वहाँ प्रतिएकड़ ११० टन गन्ना पैदा किया जा सकता है। इन अंकों को देखते हुए हम इस निर्णय पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि बिहार और संयुक्त-प्रान्त में प्रतिएकड़ ५० टन पैदा करना कठिन नहीं है, यदि कुछ सहूलियतें सरकार प्राप्त हो सकें।

इसके बाद हमारे सामने अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार ढूँढ़ने समस्या आती है। उसका हल भी बड़ी सरलता से जा सकता है। भारत की शक्कर के लिए सबसे बाज़ार ब्रिटेन है। ब्रिटेन का सन् ३६-३७ का शक्कर ख़र्च क़रीब २३,३७,००० टन है और पैदावार ५,४३,००० टन है। अर्थात् क़रीब १७,८७,००० शक्कर उसने उस साल विदेशों से मँगाई। एक साल ख़र्च और आय पर से साधारणतः प्रतिवर्ष का अन्दाज़ लगा जा सकता है। भारत ब्रिटेन को अपनी शक्कर के बाज़ार बनाने का पूरा अधिकारी है और वह इसलिए कि ब्रिटेन भारत पर शासन करता है, वरन बिलकुल व्यवसायिक ढंग से। भारत ब्रिटेन को उसके कपड़े, लोहे फ़ौलाद आदि के सामान के लिए पूरी सहूलियतें देता है तब भारत को वहाँ इस तरह की कोई सहूलियत क्यों मिलनी चाहिए? भारत-सरकार का यह कर्त्तव्य है कि भारत की शक्कर को बिना किसी टैक्स के ब्रिटेन बाज़ार में पहुँचाने की सहूलियतें प्राप्त करे। मान लि जाय कि ब्रिटेन उतनी सहूलियतें नहीं दे सकता इतना तो कर ही सकता है कि जिस प्रकार वह उपनिवेशों की शक्कर को सहूलियतें देता है, भारत शक्कर को भी दे। ब्रिटेन को शक्कर भेजने को ९६° डिग्री पोलेरायजेसन की आवश्यकता होती है, पर ब्रिटेन क़रीब ८ शिलिंग प्रतिटन के हिसाब से टैक्स लेता है। परन्तु उपनिवेशों तथा अन्य उपराज्यों विशेष सहूलियतें देकर वहाँ की शक्कर पर ४ शि० पें० ही प्रतिटन टैक्स लेता है। उपनिवेशों की प्रामाणि शक्कर पर १ शि० ८ पें० प्रतिटन लेता है। यदि टैक्स नहीं तो भारत की शक्कर को कम से कम का प्रमाण पत्र दिलाने की सहूलियत तो भारत-सरकार कर ही सकती है। इसके बाद कोई कारण नहीं रह जाता जिससे भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपनी शक्कर के लिए स्थान पा सके।

उपर्युक्त सारी बातों से प्रकट हो जाता है कि निकट भविष्य में भारत अपनी आवश्यकता से काफ़ी

शक्कर पैदा कर सकेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार की प्रतियोगिता में सरलता से उतर सकेगा। यदि उस समय अपने माल को खपाने के लिए उसके पास कोई बाज़ार नहीं रहा तो भारतीय शक्कर-व्यवसाय का ही नहीं, वरन उससे संबंधित २ लाख किसानों, १ लाख मज़दूरों, २॥ हज़ार ग्रेजुएटों तथा ३० करोड़ रुपया की लगी हुई पूँजी का भाग्य आज ही निश्चित हो गया समझना चाहिए।

हमें अब यही देखना है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-परिषद् ने भारत पर क्या कृपा की है। उसके निर्णय से संसार के सबसे अधिक शक्कर पैदा करनेवाले देश के इस व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलता है या उससे वह एक ज़बर्दस्त गड्ढे में जा गिरता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि उक्त परिषद् के निर्णयानुसार भारत ५ वर्ष तक ब्रह्मा को छोड़ और किसी देश को शक्कर नहीं भेज सकता। भारत-सरकार ने इस परिषद् में प्रतिनिधि भेजते समय जनता के मत की अवहेलना कर एक अन्याय के साथ उस परिषद् का प्रारम्भ किया और परिषद् के निर्णय को स्वीकृत कर डबल अन्याय के साथ उसको ख़त्म किया। भारत के शक्कर-व्यवसाय की उन्नति के लिए जितने भी सम्भव उपाय ऊपर बताये गये हैं उन सबकी अन्त्येष्टि-क्रिया उक्त परिषद् के निर्णय ने पूर्व ही कर दी। भारत के साथ जो अन्याय किया गया है उसे हम अपनी गुलामी के अभिशाप के सिवा और क्या कह सकते हैं?

भारत संसार में सबसे अधिक शक्कर पैदा करता है। संसार की पूरी शक्कर की उपज का २१·८ प्रतिशत भारत उत्पन्न करता है। परन्तु शक्कर-परिषद् में उसके साथ खुल्लमखुल्ला अन्याय किया गया है। भारत शक्कर ख़रीदनेवाले देशों में रक्खा गया है। भारत किसी दूसरे देश को शक्कर नहीं भेज सकता, इसलिए यदि ब्रिटिश उपनिवेशों की शक्कर के निर्यात की तादाद भविष्य में बढ़ाई भी जाय तो भी भारत उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। परिषद् के ऐसे अन्याययुक्त निर्णय का मुख्य कारण यह है कि परिषद् में आर्थिक दृष्टि-कोण से किसी बात पर विचार ही नहीं किया गया।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कि ऐसी परिषदों के निर्णय राजकीय शक्ति पर निर्भर होते हैं, इस परिषद् का स्वयं का निर्णय है। उदाहरण के लिए जर्मनी की सन् ३६-३ की शक्कर की उत्पत्ति १७,८१,००० टन है और ख़र्च १६,९२,००० टन है। अर्थात् केवल ८९,००० टन बचत है। इन वर्षों में जर्मनी ने कुछ भी शक्कर बाह नहीं भेजी। परन्तु परिषद् ने उसे १,२०,००० टन शक्कर का 'एक्सपोर्ट कोटा' दिया है। उसी तरह फ्रांस का हाल है। फ़्रांस की सन् ३६-३७ की पैदावार ८,७३,०० टन है और ख़र्च १०,५६,००० टन है। अर्था १,८२,००० टन शक्कर उसे बाहर से मँगानी पड़ी। फि भी वह शक्कर का निर्यात करनेवाला देश माना गया है इतना ही नहीं, उसे और भी सहूलियतें प्राप्त हैं। परिषद् के समझौते के १९वें आर्टिकल में लिखा है कि यूगो स्लेविया के निर्यात के लिए जितना परिमाण सुरक्षि रक्खा गया है उसमें से यूगोस्लेविया के उपयोग करने बाद जो बचे उसका उपयोग फ्रांस कर सकेगा। और यूगो स्लेविया के लिए १२,५०० टन शक्कर निर्यातार्थ सुरक्षि है। इन सारी बातों से यह निश्चित है कि परिषद् निर्णय भारत के प्रति अन्यायपूर्ण है और भारत-सरका ने उसे स्वीकार कर भारत पर डबल अन्याय किया है साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि उक्त समझौते से भार के शक्कर-व्यवसाय को प्रोत्साहन नहीं मिला, वरन ज़बर्दस्त धक्का बैठा है।

इस समझौते के कारण—

(१) भारत ब्रिटेन में भी किसी प्रकार की सहूलियतें प्रा नहीं कर सकता।

(२) शक्कर के कारख़ानों के मालिक भारतीय शक्कर अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार की प्रतियोगिता में सफल होने लिए निर्यात-भाव को व्यवस्थित या अपने यो कर लेने को ऐसे किन्हीं उपायों का भी अवलम्ब नहीं कर सकते जिनका जावा आदि देशों के व्यापा किया करते हैं।

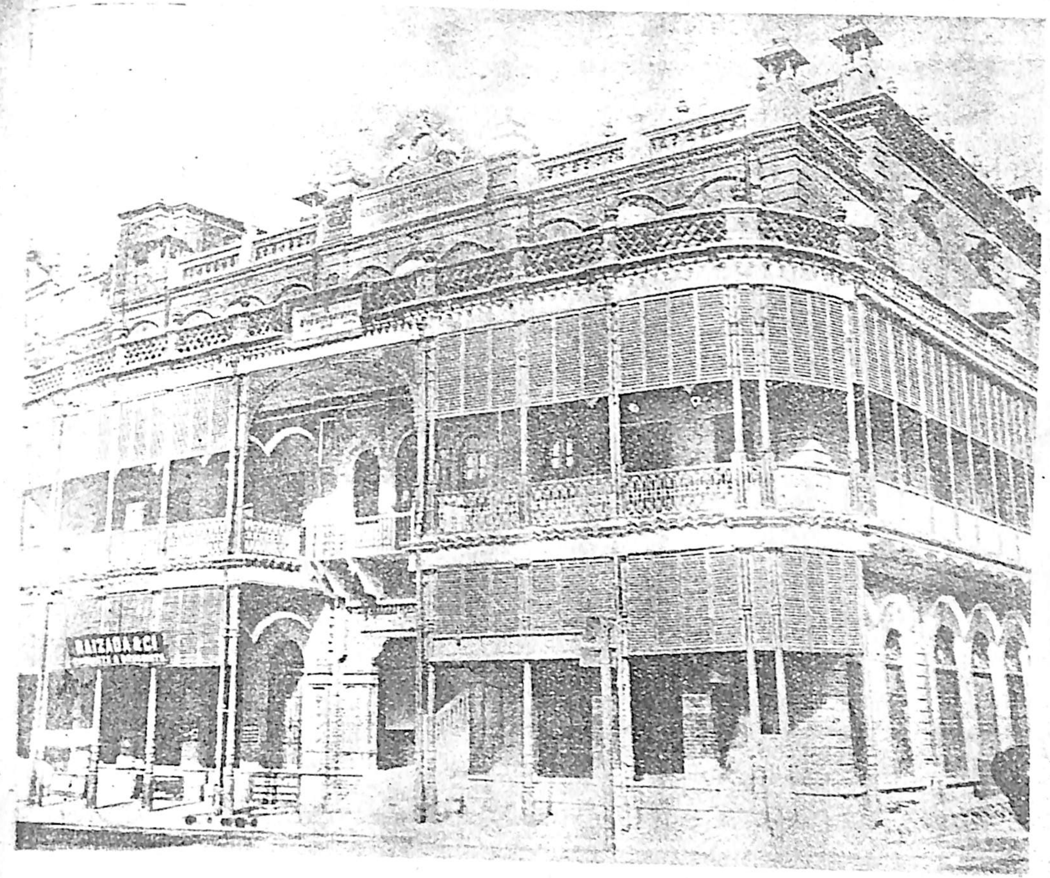
यदि भारत-सरकार ने इस समझौते को स्वीकार किया होता तथा भारत के इस बढ़ते हुए व्यापार सहायता दी होती तो भारत अपनी क़रीब दो लाख शक्कर के लिए सीलोन, ईरान, अरब, अदन, सोमालीलैं मेसोपोटेमिया, ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका तथा श्याम आ देशों के बाज़ारों में सरलता से अपना क़ब्ज़ा कर सकता

ंकि भारत के निकट होने के कारण इन देशों को त को शक्कर सस्ती पड़ती और इस बढ़ते हुए व्यापार दूना प्रोत्साहन मिल जाता, जिसका भारत की आर्थिक स्था पर काफ़ी असर होता। इस समझौते के कारण त को इससे विपरीत परिणाम भोगना पड़ेगा। भारत इस बात का घमंड है कि कपास के अनुसार शक्कर-व्यवसाय का जन्म भी भारत में ही हुआ है और थोड़ी अवधि में ही वह संसार में सबसे अधिक शक्कर-उत्पादक राष्ट्र बन गया है। साथ ही उसे यह भी आशा थी कि इस व्यवसाय से निकटभविष्य में उसे काफ़ी लाभ भी होने लगेगा। परन्तु उसकी गुलामी उसके व्यवसायों को आगे कैसे बढ़ने दे सकती है?

क्या कहिए

लेखक, श्रीयुत अंचल

आदि स्वयं हम जिसके हैं हैं अन्त हमीं में जो होता
तृष्णा के उस चिर उच्छृङ्खल से अफ़साने को क्या कहिए?
है ज्वलन्त यह प्रेम-कहानी सूनी है दिल की बस्ती
जिसने पगध्वनि भी न सुनी उस वीराने को क्या कहिए?
आह उमंगों की वे घड़ियाँ आह सितम की वे रातें!
प्रतिपल आग लगानेवाले अनजाने को क्या कहिए?
और सुनो ओ मस्त नज़रवाले ओ झंझा के वासी
एक बार जल जो न बुझे उस परवाने को क्या कहिए?
जो दुख में पीड़ित हो जाते पर न सुखी सुख में होते
उस अभिशाप उड़ानेवाले मनमाने को क्या कहिए?
आज पिपासा के कुञ्जों में आग लगी है मधु-ऋतु की
नित नूतन हो आनेवाले पहचाने को क्या कहिए?
अपने अन्तर की ज्वाला में जलता जा ओ मोहभरे
नूरभरे अरमानभरे इस मस्ताने को क्या कहिए?
बीत चलेगी जीवन-रजनी टूट चलेंगे उडु सुकुमार
किन्तु अमिट अभिलाषा के कंटक बाने को क्या कहिए?
और सुनो प्रज्वलित विसर्जन प्राण-वधू के मद यौवन
आकर कभी न जानेवाले मधुपाने को क्या कहिए?
है अशेष यह तृषा-कहानी यह जीवन का अग्निप्रपात
सदा अपूरित आकांक्षा के दीवाने को क्या कहिए?



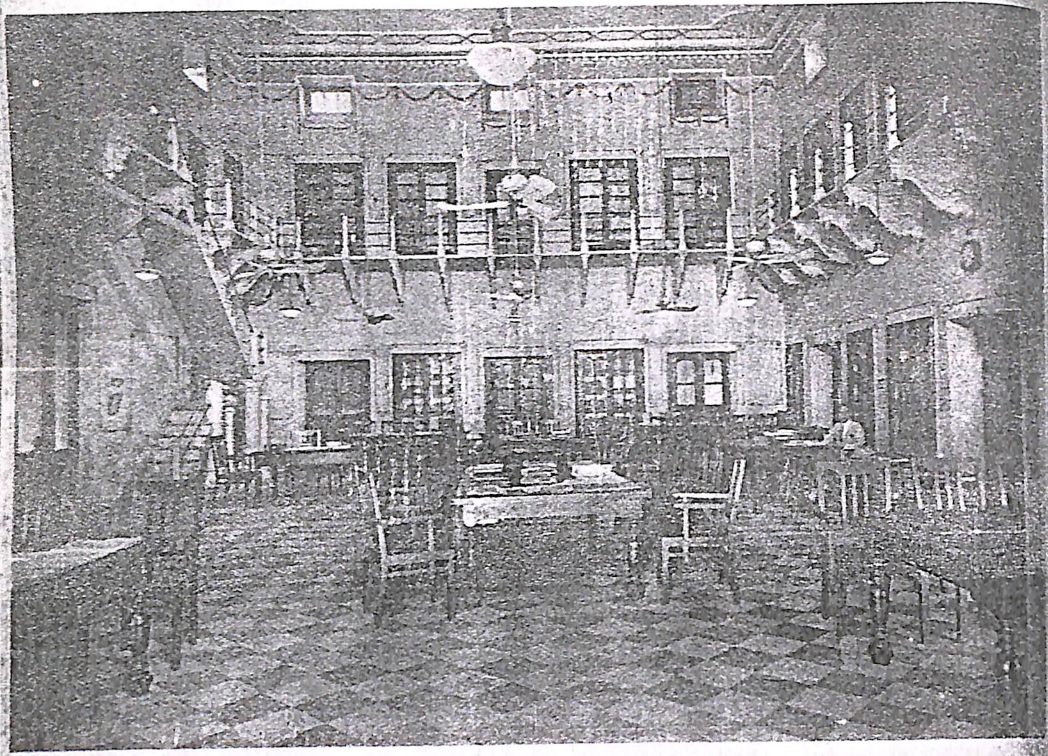
[गयाप्रसाद-पुस्तकालय के भवन का बाहरी दृश्य।

कानपुर का छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट

लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर

संयुक्त प्रान्त एवं अन्य प्रान्तों में भी ऐसे अनेक ट्रस्ट क़ायम हैं जिन्हें उनके संस्थापकों ने लोक-सेवा के लिए स्थापित किया है। परन्तु खेद की बात है कि बहुतों का प्रबन्ध अच्छा नहीं है और उनका धन जैसा चाहिए उस तरह नहीं ख़र्च होता। यहाँ जिस ट्रस्ट का वर्णन किया गया है, प्रसन्नता की बात है कि वह एक आदर्श ट्रस्ट है।

युक्त-प्रान्त की लोकहितैषिणी संस्थाओं में कानपुर का 'छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट' एक अग्रगण्य संस्था है। कानपुर में गयाप्रसाद-पुस्तकालय, बेनीमाधव-धर्मशाला और सरसैयाघाट पार्क, काशी में भास्कर-समाधि-क्षेत्र, राजपूताने की मरुभूमि तथा शिमला-शैल पर कुएँ और लखनऊ-मेडिकल-कालेज का 'ए' ब्लाक—'नेत्र-चिकित्सा-वार्ड' बनवाकर और युक्त-प्रान्त के लिए 'गयाप्रसाद लाइफ़ सेविंग फ़ण्ड' का आयोजन कर ट्रस्ट के अधिकारियों ने अन्य लोकहितैषी ट्रस्टों के लिए एक आदर्श उपस्थित किया है। ट्रस्ट के अधिकारियों ने

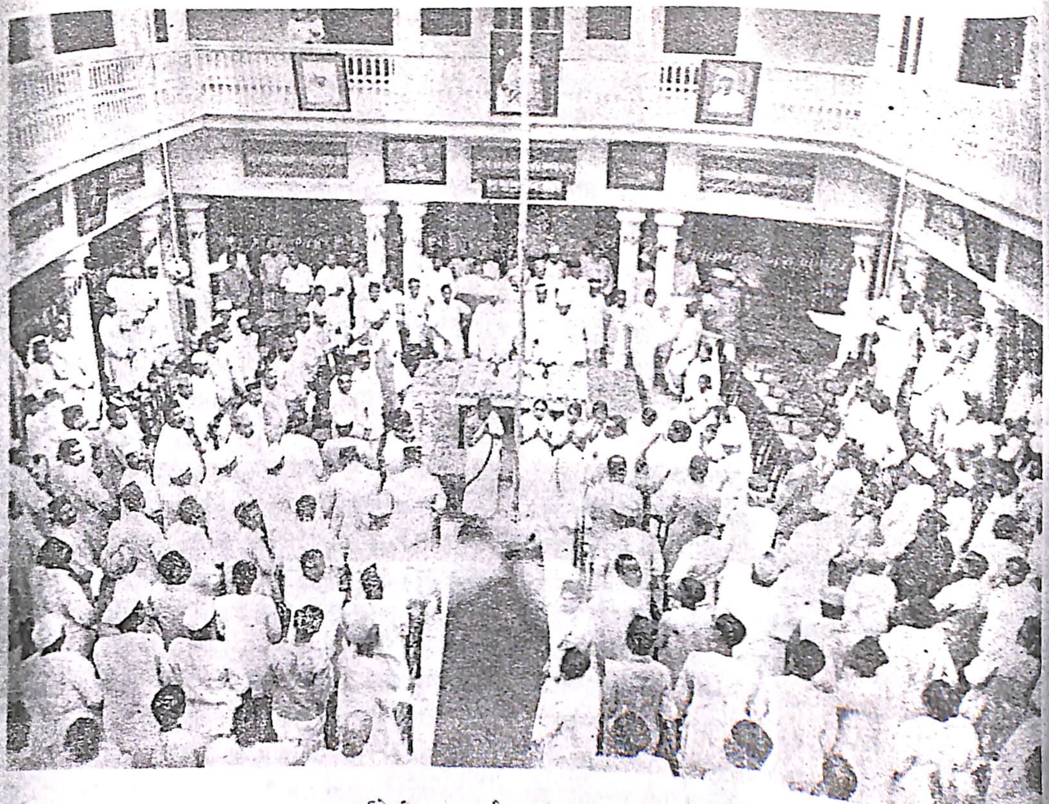


[गयाप्रसाद-पुस्तकालय का भीतरी दृश्य ।]

दीन-हीन और निर्धन भूखों के लिए कानपुर और काशी में अन्नसत्र स्थापित करके, सदावर्त का प्रबन्ध करने के साथ ही पुस्तकालयरूपी ज्ञान-सत्र स्थापित करने का भी समुचित प्रबन्ध किया है। शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता पहुँचाने में यह ट्रस्ट सदैव आगे रहा है। बालिकाओं की शिक्षा के लिए ट्रस्ट के अधिकारियों ने सदैव मुक्तहस्त से दान किया है।

लाला गयाप्रसाद—ट्रस्ट के संस्थापक लाला गयाप्रसाद के पिता लाला छोटेलाल कपूर इटावा के निवासी थे। वहाँ से कानपुर में आकर उन्होंने व्यापार शुरू किया; और शुरू में एक और आदमी के साझे में गोरों को रोटी सप्लाई करने का ठेका लिया। इस ठेके की वजह से वे 'लाला छोटेलाल रोटीवाले' के नाम से मशहूर हो गये। सन् १८५७ के विप्लव के बाद उनका भाग्य चमक उठा। गोरों की फ़ौज को माल सप्लाई करने के लिए उन्हें बहुत-से ठेके मिले। इन ठेकों की बदौलत उन्होंने बहुत सम्पत्ति पैदा की।

लाला छोटेलाल की मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र लाला गयाप्रसाद ने कमसरियट के ठेके के अलावा और भी कई नये रोज़गार किये। इन रोज़गारों से उन्होंने अपने पिता की सम्पत्ति को दूना कर लिया। उनके एकमात्र पुत्र लाला बेनीमाधव बी० ए० की २८ फ़रवरी १८९९ को मृत्यु हो गई। इसके ठीक ४॥ मास के उपरान्त १६ जुलाई १८९९ को लाला गयाप्रसाद का भी शरीरान्त हो गया। मृत्यु के तीन दिन पूर्व १३ जुलाई १८९९ को उन्होंने रजिस्ट्रार के यहाँ जाकर अपने वसीयतनामे की रजिस्ट्री करा दी। इस वसीयत के द्वारा उन्होंने अपनी विधवा पुत्रवधू, विधवा स्त्री और अपनी बहन व बहन के



[बेनीमाधव-धर्मशाला, कानपुर ।]

लड़कों, अपने अहलकारों तथा अन्य छोटे-बड़े कर्मचारियों को थोड़ी सम्पत्ति और रुपया-पैसा देकर अपनी समस्त रियासत और सम्पत्ति को लोकहितैषी कार्यों के लिए दे दिया।

मृत्यु के १५-२० दिन पूर्व लाला गयाप्रसाद के धर्म-गुरु स्वामी भास्करानन्द का भी स्वर्गवास हो गया था। उनके अन्तिम समय वे काशी में ही थे। अपने गुरु की स्मृति में उन्होंने अपनी वसीयत में 'काशी भास्कर-समाधि-क्षेत्र' स्थापित करने का आदेश किया, और इस काम के लिए कुछ जायदाद भी अलग कर दी।

ट्रस्ट—लाला गयाप्रसाद ने मृत्यु के समय सार्वजनिक कार्यों के लिए ६ लाख से कुछ अधिक की सम्पत्ति छोड़ी थी। ट्रस्टियों ने इसे बढ़ाकर क़रीब ९ लाख की कर लिया है। इसमें कानपुर और कुछ दूसरे ज़िलों के गाँव, सरकारी प्रामिसरी नोट, बैंकों में जमा रुपया, नक़दी और व्यापार आदि से मिलनेवाला रुपया सब शामिल है। अपने विल में उन्होंने इस बात की ताक़ीद कर दी है कि ट्रस्ट के अधिकारी केवल ट्रस्ट की जायदाद से होनेवाली आमदनी ही ख़र्च कर सकेंगे। ट्रस्ट के मूलधन और सम्पत्ति में से कोई ख़र्च न किया जायगा। ट्रस्ट को इस समय क़रीब २८ हज़ार रुपया वार्षिक की आय है। अपने विल में उन्होंने ट्रस्ट के प्रबन्ध के लिए ६ सदस्यों की एक कमिटी भी बना दी थी।

सन् १९०६ तक ट्रस्ट कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सका। ट्रस्टियों का अधिकांश समय रियासत पर क़ब्ज़ा करने, उसका प्रबन्ध और हिसाब-किताब, देना-लेना आदि

ठीक करने में लगा। इसके बाद भी १९१७ तक सार्वजनिक विरोध से बचने के उद्देश से ट्रस्ट के तत्कालीन सभापति लाला गोपीनारायण ने अधिकांश काम अधिकारियों के सहयोग से ही किये। इसमें ट्रस्ट का कुछ रुपया ऐसे कामों में भी ख़र्च हुआ जो सार्वजनिक दृष्टि से बहुत उपयोगी नहीं कहे जा सकते। १९१७ में श्री गोपीनारायण की मृत्यु के उपरान्त बाबू रामसनेही सेठ वकील ट्रस्ट के सभापति बनाये गये और ट्रस्ट का अधिकांश प्रबन्ध बाबू रामसनेही सेठ और ट्रस्ट के वर्तमान मंत्री बाबू कालिकाप्रसाद धवन के हाथ में आया। १९१७ से अब तक ट्रस्ट ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं।

१९०६ तक ट्रस्टियों ने काशी में १ अक्टूबर १९०३ को भास्कर-समाधि-क्षेत्र की स्थापना की। इस इमारत के बनवाने में ट्रस्ट ने क़रीब एक लाख रुपया ख़र्च किया। इमारत संगमरमर की बनी है और काशी की दर्शनीय इमारतों में गिनी जाती है। समाधि-क्षेत्र में सदावर्त का भी प्रबन्ध किया गया है। स्वामी जी के जन्मस्थान मैथे-लालपुर में, जहाँ लाला गयाप्रसाद एक पक्का तालाब बनवा गये थे, स्वामी भास्करानन्द की मूर्ति स्थापित की गई और पूजा-पाठ तथा भोग आदि का प्रबन्ध किया गया। यह प्रबन्ध अब तक चल रहा है। इसी बीच कानपुर में 'बेनीमाधव-धर्मशाला' क़ायम की गई और साधु-संन्यासियों एवं निर्धन भूखों को सदावर्त, अन्न-वस्त्र बाँटने का प्रबन्ध किया गया। इसी बीच ट्रस्टियों ने प्रयाग में 'मेकडानल्ड हिन्दू-बोर्डिङ्ग' की स्थापना के लिए ५,०००) और 'प्रिंस आफ़ वेल्स मेडिकल कालेज' की स्थापना के अवसर पर १,०००) का दान दिया।



[स्वामी भास्करानन्द की समाधि, काशी।]

कुएँ और तालाब—१९०८ में ट्रस्ट की ओर से ६,०००) की लागत से पश्चिमी राजपूताने में जैसलमेर रियासत में एक कुआँ बनवाया गया। यह कुआँ कृष्णगढ़ और गोधाला के बीच में स्थित है। उस इलाक़े में मीलों तक पानी के दर्शन नहीं होते और यात्रियों को घोर कष्ट का सामना करना पड़ता है। उसी वर्ष ट्रस्ट की ओर से ७००) की लागत से पशुओं के पानी पीने के लिए कई चरहियाँ बनवाई गईं और थके-माँदे बटोहियों के आराम करने के लिए पक्के चबूतरे बनवाये गये। मैथे-लालपुर में पक्के तालाब की मरम्मत की गई। १९१० में ट्रस्ट की ओर से शिमला में ९,०००) की लागत से एक कुआँ बनवाया गया। इसके अलावा ट्रस्ट ने अपने इलाक़े के गाँवों में भी बहुत-से कुएँ बनवाये हैं। कानपुर में म्यूनिसिपल बोर्ड की मार्फ़त ट्रस्ट ने २५,०००) के लगभग ख़र्च करके सरसैयाघाट में एक पार्क और टट्टियाँ आदि बनवाई हैं।

गयाप्रसाद लाइफ़ सेविंग फ़ण्ड—सन् १९१७ के पूर्व ट्रस्ट ने एक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने २० हज़ार रुपये की पूँजी से एक फ़ण्ड स्थापित किया। इसकी आमदनी से युक्त-प्रान्त में दूसरों के प्राण बचाने वाले व्यक्तियों को स्वर्ण अथवा रजत-पदक एवं आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध किया गया। यह फ़ण्ड 'गयाप्रसाद

लाइफ़ सेविंग फ़ण्ड' के नाम से मशहूर है। इस फ़ण्ड का प्रबन्ध करने के लिए एक सरकारी कमिटी है। इस कमिटी में ५ सदस्य हैं। कानपुर का कलक्टर, प्रान्तीय कौंसिल का एक ग़ैर सरकारी सदस्य, सरकारी रेवन्यू विभाग का एक सदस्य तथा ट्रस्ट का सभापति इस कमिटी के सदस्य हैं। कलक्टर सरकारी तौर पर इसका मंत्री है। यह कमिटी अब तक बाक़ायदा काम कर रही है और इसकी ओर से हर साल दूसरों की जान बचानेवालों को पदक एवं पुरस्कार आदि दिये जाते हैं। युक्त-प्रान्त में परोपकार-वृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए शायद ही किसी दूसरे ट्रस्ट ने ऐसा प्रबन्ध किया हो।

शिक्षा-संस्थायें—ट्रस्ट के सुव्यवस्थित रूप से कार्य आरम्भ करने के समय से अब तक ट्रस्ट का ध्यान शिक्षा-प्रसार-कार्य की ओर विशेष रूप से रहा है। शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर तथा निर्धन विद्यार्थियों को वज़ीफ़े, पुस्तकें, फ़ीस, परीक्षा-फ़ीस आदि देकर ट्रस्ट ने शिक्षा-प्रसार-कार्य में समुचित सहायता पहुँचाई है।

कार्य आरम्भ करते ही ट्रस्ट ने प्रयाग में मेकडानेल्ड हिन्दूबोर्डिङ्ग की इमारत के लिए ५,०००), १९०९-१० में कानपुर के प्रसिद्ध वकील पंडित पृथ्वीनाथ के मेमोरियल फ़ण्ड में पृथ्वीनाथ हाईस्कूल और बोर्डिङ्ग की इमारत के लिए १,१००), १९१३-१४ में मैनपुरी में अमेरिकन प्रिसबिटेरियन मिशन के स्कूल की इमारत के लिए १,०००), कानपुर के डी० ए० वी० कालेज, वी० एन० एस० डी० कालेज, गुरुनारायण खत्री स्कूल और बालिका-विद्यालय इन चारों संस्थाओं में प्रत्येक को पाँच पाँच हज़ार रुपये, सनातनधर्म-कालेज को १०,०००) दिये हैं। कानपुर के क्राइस्ट चर्च कालेज को भी उसने कुछ सहायता की है। कानपुर के अलावा फ़तहपुर के संस्कृत हाई स्कूल की स्थापना के अवसर पर ट्रस्ट की ओर से एक अच्छी रक़म दी गई थी।

लड़कियों की शिक्षा—लड़कियों की शिक्षा में ट्रस्ट आरम्भ से ही दिलचस्पी ले रहा है। बालिका-विद्यालय को उपर्युक्त ५,०००) की रक़म देने के अलावा ट्रस्ट बालिका-विद्यालय की स्थापना के समय से अब तक बराबर वार्षिक सहायता भी दे रहा है। बालिका-विद्यालय की इमारत बनवाने के लिए भी ट्रस्ट ने रुपया दिया है। बालिका-विद्यालय के अलावा ट्रस्ट की ओर से विक्टोरिया गर्ल्स-स्कूल, कन्या-विद्यालय, मन्नालाल कन्या-पाठशाला, हिन्दू इनफ़ैंट्स स्कूल प्रभृति संस्थाओं को बराबर आर्थिक सहायता दी जाती रही है और अब भी दी जाती है। कानपुर के इस ट्रस्ट ने इन संस्थाओं के अलावा कन्नौज के गर्ल्स स्कूल और बिसवाँ के गर्ल्स स्कूल को भी समुचित सहायता की है।

वज़ीफ़े—३० सितम्बर १९३५ तक ट्रस्ट की ओर से लगभग ५४,०००) ग़रीब विद्यार्थियों की शिक्षा में ख़र्च किया जा चुका है। ग़रीब विद्यार्थियों को वज़ीफ़े देने के अलावा ट्रस्ट पुस्तकें आदि ख़रीदने, परीक्षा-फ़ीस देने तथा बहुत ही ग़रीब विद्यार्थियों को कपड़े आदि बनवाकर मदद करता है। वज़ीफ़े केवल बहुत ग़रीब विद्यार्थियों तक सीमित नहीं हैं। मध्यम श्रेणी के गृहस्थों के बच्चों की शिक्षा में भी ट्रस्ट समुचित सहायता पहुँचाता है। वास्तव में इस ट्रस्ट-द्वारा दी गई आर्थिक सहायता की बदौलत अनेक विद्यार्थियों का जीवन बन गया है और वे अपनी रोज़ी कमाने में समर्थ हो गये हैं। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों को वज़ीफ़े देने आदि के सिवा उसने पुरातत्त्व-शास्त्र के सुप्रसिद्ध पंडित डाक्टर प्राणनाथ विद्यालङ्कार को योरप जाकर अध्ययन करने के लिए ४ वर्ष तक १००) मासिक की सहायता प्रदान की थी। ट्रस्ट की ओर से विद्यार्थियों को वज़ीफ़े देने का क्रम अब भी जारी है और ट्रस्ट इस काम में क़रीब २-३ हज़ार रुपया वार्षिक ख़र्च करता है।

पुस्तकालय—कानपुर की 'गयाप्रसाद-लाइब्रेरी' ट्रस्ट का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कानपुर में एक अच्छे सार्वजनिक पुस्तकालय की आवश्यकता बहुत दिनों से थी। ट्रस्ट के तत्कालीन सभापति लाला गोपीनारायण खन्ना का ध्यान कानपुर की इस कमी की ओर आकर्षित किया गया। वे पुस्तकालय के प्रस्ताव से शीघ्र ही सहमत हो गये और उन्होंने दूसरे ट्रस्टियों को भी इस कार्य के लिए तैयार कर लिया। ट्रस्ट ने इस पुस्तकालय की स्थापना के लिए १९१५ से अर्थ-संग्रह का काम शुरू किया। १९२० में ट्रस्ट के वर्तमान सभापति सेठ रामसनेही वकील ने पुस्तकालय की नींव रक्खी। १९२४ में भवन बन जाने पर युक्त-प्रान्त के तत्कालीन गवर्नर सर विलियम मेरिस-द्वारा पुस्त-



[बाबू रामसनेही सेठ, एडवोकेट ।]

कालय का उद्घाटन-संस्कार कराया गया। पुस्तकालय-भवन की इमारत में ट्रस्ट ने १ लाख ८० हज़ार से कुछ अधिक रुपया लगाया है।

पुस्तकालय की इमारत तीन मंज़िल की है। नीचे कई एक बड़ी बड़ी दूकानें हैं। इनके किराये से पुस्तकालय को २००) मासिक की स्थायी आमदनी है। ऊपर एक भव्य हाल है। हाल के चारों ओर एक बरामदा है। हाल के भीतर ऊपर चारों तरफ़ गैलरी है। इस गैलरी में पुस्तकें आदि रखने के लिए अलमारियाँ बनी हुई हैं। हाल में ऊपर जाने का ज़ीना और गैलरी का ज़ीना ये दोनों ही संगमरमर के बने हैं। हाल से मिले हुए सामने की तरफ़ दो बड़े कमरे हैं। इनमें से एक में पुस्तकाध्यक्ष का दफ़्तर है और दूसरा पाठकों के काम में आता है। तिमंज़िले पर भी तीन हवादार कमरे हैं। इन कमरों में अध्ययनशील पाठक शान्ति-पूर्वक अध्ययन कर सकते हैं। इनमें एक कमरा महिलाओं के लिए सुरक्षित है।

ट्रस्ट ने पुस्तकालय का काम चालू करने के लिए १०,०००) पुस्तकों के लिए अलग से भी दिये हैं। पुस्तकालय का प्रबन्ध सात सदस्यों की एक समिति के द्वारा होता है। इस कमिटी में ट्रस्ट के प्रतिनिधियों के अलावा म्यूनिसिपल बोर्ड और स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधि भी शामिल हैं। दूकानों के किराये से २००) मासिक मिलने के अलावा ट्रस्ट को २००) मासिक म्यूनिसिपल बोर्ड से और १००) मासिक सरकार से सहायता मिलती है। पुस्तकालय की पुस्तकें घर पर पढ़ने ले जानेवाले पाठकों से कोई चन्दा नहीं लिया जाता। हाँ, ज़मानत के तौर पर १०) जमा करने पड़ते हैं और पाठक-सूची में नाम दर्ज कराने के लिए एक बार २) प्रवेश-शुल्क देना होता है। इन सदस्यों के अतिरिक्त नित्यप्रति प्रायः ५०० से अधिक व्यक्ति पुस्तकालय के वाचनालय से लाभ उठाते हैं।

धर्मशाला—पुस्तकालय-भवन के निर्माण के बाद बेनीमाधव-धर्मशाला की शानदार तिमंज़िली इमारत बनवा कर ट्रस्ट ने कानपुर के वैभव और समृद्धि को बढ़ाया है। इस धर्मशाला की इमारत में ट्रस्ट ने १ लाख १० हज़ार ३ सौ एकहत्तर रुपये ख़र्च किये हैं। इसका उद्घाटन-संस्कार युक्त-प्रान्त के प्रतिष्ठित नेता माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन-द्वारा कराया गया था।

इस धर्मशाला में २००-२५० से अधिक यात्री बड़े आराम के साथ रह सकते हैं। विवाह-शादी आदि कार्यों तथा धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों के लिए धर्मशाला में समुचित स्थान का प्रबन्ध है। धर्मशाला में अमीर-ग़रीब सब बेरोक-टोक ठहर सकते हैं। धर्मशाला के कर्मचारियों को बिना किसी भेद-भाव के सबको समान रूप से सुविधा पहुँचाने की हिदायत है। सफ़ाई आदि का प्रबन्ध बहुत अच्छा है।

धर्मशाला के प्रवेश-द्वार पर एक ओर स्वर्गीय लाला बेनीमाधव की प्रस्तर-मूर्ति स्थापित है और दूसरी ओर एक सुन्दर शिवालय है। शिवालय से ही मिला हुआ एक औषधालय है। इसमें ट्रस्ट की ओर से यात्रियों के अलावा स्थानीय निर्धन जनता को मुफ़्त में ओषधियाँ दी जाती हैं। ट्रस्ट इस धर्मशाला की व्यवस्था, रोशनी, सफ़ाई और मरम्मत आदि में सितम्बर १९३५ तक क़रीब ३७ हज़ार रुपया ख़र्च कर चुका है। अब भी

धर्मशाला के प्रबन्ध आदि में प्रतिवर्ष १॥-२ हज़ार रुपया ख़र्च होता है।

ट्रस्ट ने विन्ध्याचल पर्वत पर 'सारस्वत खत्री धर्मशाला' बनवाने के लिए भी १५,००) दिये हैं। गोला गोकर्णनाथ की शिवदेई बीबी की धर्मशाला को भी वह कई वर्षों से २००) वार्षिक की आर्थिक सहायता कर रहा है।

लखनऊ मेडिकल कालेज—१९०६ में ट्रस्ट की ओर से लखनऊ के प्रिंस आफ़ वेल्स मेडिकल कालेज की स्थापना के लिए १,०००) दिये गये थे। बाद में ट्रस्ट ने क़रीब २५,०००) की लागत से कालेज का 'ए' वार्ड—नेत्र-चिकित्सा वार्ड बनवाया और उसके लिए आवश्यक सामान आदि ख़रीदने का प्रबन्ध किया। मेडिकल कालेज के अलावा छोटे छोटे क़स्बों में अस्पताल बनवाने में भी ट्रस्ट ने आर्थिक सहायता दी है। १९०७-८ में छपरा में अस्पताल बनवाने के लिए १०१), १९१०-११ में खजुहा में अस्पताल के लिए १००), १९१३ में इसी अस्पताल को और १००), इसी तरह भरथना में अस्पताल बनवाने के लिए २५०) दिये। रेड-क्रास फ़ण्ड में भी ट्रस्ट ने इतनी ही रक़म दान में दी। इन सबके अलावा ट्रस्ट प्रतिवर्ष १५०)-२००) की ओषधियाँ ग़रीबों में बँटवाता है। इनके अलावा स्थानीय सेवासमिति-औषधालय तथा रामकृष्ण-सेवासदन को भी ट्रस्ट बराबर आर्थिक सहायता देता है।

विधवाओं की सहायता—ट्रस्ट का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है ग़रीब विधवाओं की सहायता करना और ग़रीब एवं अनाथ कन्याओं के विवाह आदि तथा ब्राह्मण कुमारों के यज्ञोपवीत आदि में रुपया देना। १९१२ में ट्रस्ट के तत्कालीन सभापति लाला गोपीनारायण खन्ना ने एक लाख चालीस हज़ार रुपया की रक़म खत्री-विधवाओं की सहायता के लिए अलग कर दी थी। इस रक़म से जो आमदनी होती है उससे खत्री-विधवाओं को मदद की जाती है। खत्री-विधवाओं के अतिरिक्त दूसरी अनाथ और निर्धन विधवाओं—विशेषतया ब्राह्मण-विधवाओं को भी ट्रस्ट २००)-२५०) वार्षिक की सहायता देता है। अनाथ और निर्धन कन्याओं के विवाह आदि कराने में भी ट्रस्ट कई हज़ार रुपये ख़र्च कर चुका है। ट्रस्ट लखनऊ की हिन्दू-विधवा-सुधार-समिति को भी कई वर्षों से बराबर एक अच्छी रक़म वार्षिक सहायता के रूप में दे रहा है।



[बाबू कालिकाप्रसाद धवन।]

अकाल, बाढ़ और भूकम्प—अकाल, बाढ़, अतिवृष्टि और भूकम्प-सरीखी आकस्मिक दैवी विपत्तियों के अवसर पर भी ट्रस्ट की ओर से समुचित सहायता प्रदान की जाती है। १९०७-८ में अकाल पड़ने पर ट्रस्ट ने लगभग ४,०००) दान में दिये थे। इनमें ३,०००) युक्त-प्रान्त की सरकार को, ३००) मुसलमानों को, २५०) ईसाई मिशन को दिये गये थे। उस अवसर पर ट्रस्ट ने अपने कर्मचारियों की भी अच्छी मदद की थी। बम्बई में अकाल पड़ने पर ट्रस्ट ने उस क्षेत्र की पीड़ित जनता की मदद के लिए रुपये भेजे थे। काठियावाड़ तथा दूसरे स्थानों पर बाढ़ आने पर ट्रस्ट ने वायसराय-द्वारा बाढ़-पीड़ित जनता की सहायता के लिए १०,०००) दिये थे। १९१४-१५ में अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए ट्रस्ट ने फिर ६००) की सहायता प्रदान की थी। १९१४-१५ में कानपुर में अतिवृष्टि होने पर ग्रामीण जनता की सहायता के लिए २००) दिये गये थे। गुजरात के बाढ़-पीड़ितों

ग्रौर विहार के भूकम्प से पीड़ित जनता के लिए भी ट्रस्ट
ने ५००)-५००) रुपये दिये थे।

अन्य लोकहितैषी संस्थायें—ट्रस्ट ने समय समय
र दूसरी सार्वजनिक एवं लोकहितैषी निम्नलिखित संस्थाओं
का भी आर्थिक सहायता प्रदान की है। इन संस्थाओं में
नातन-धर्म महामण्डल को १०,०००), सर्वेन्ट आफ़ इण्डिया
ोसाइटी को १,०००), इम्पीरियल वार फ़ंड को १,०००),
ानपुर-खत्री कानफ़रेंस स्वागत समिति को १,०००), किंग
डवर्ड मेमोरियल फ़ण्ड को ५,०००), राष्ट्रीय महासभा
वागत-समिति को ५०१), सेवासमिति-प्रयाग, हिन्दू अना-
ालय कानपुर, गौशाला प्रयाग, मलकाना राजपूत-शुद्धि-
ंगठन, गीता-प्रचार-समिति लखनऊ और हरिजन-सेवक संघ
भृति के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कानपुर के हिन्दू-
नाथालय को एकमुश्त दान देने के अलावा ट्रस्ट वार्षिक
हायता भी देता है और समय समय पर अनाथ बालक-
ालिकाओं के लिए अन्न और वस्त्र का भी प्रबन्ध करता है।

धार्मिक कथायें—कानपुर की जनता के लिए ट्रस्ट
की ओर से समय समय पर धार्मिक कथाओं का भी प्रबन्ध
किया जाता है। अब तक ट्रस्ट बहुत-सा धन ख़र्च करके
वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, गीता, तिलक का गीता-
रहस्य और श्रीमद्भागवत की महत्त्वपूर्ण कथाओं का
प्रबन्ध कर चुका है। इनमें से प्रत्येक कथा में ४-६ महीने
से कम समय नहीं लगा। ट्रस्ट के इस सुप्रबन्ध का श्रेय
ट्रस्ट के अवैतनिक सभापति बाबू रामसनेही सेठ वकील
और मन्त्री बाबू कालिकाप्रसाद धवन को प्राप्त है। ट्रस्ट
के अधिकारी कानपुर में एक 'पुअर हाउस' बनवाने
का विचार कर रहे हैं। इसमें क़रीब १५०-२०० अपा-
हिजों—लूले-लँगड़ों और अन्धे मोहताजों के रहने और
भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध किया जायगा।

संक्षेप में ट्रस्ट के अधिकारियों ने ट्रस्ट की सीमित
आमदनी से जनता की प्रशसनीय सेवा की है और इस
सेवा के लिए वे बधाई के पात्र हैं।

प्यार करता हूँ

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

जी भर उसे प्यार करता हूँ।

कैसे प्रेम अमर होता है?
इस पर नित विचार करता हूँ।
पाटल चरण चूमता उसके,
यौवन-दान माँगती बेला।
उसके इंगित पर लग जाता,
पल में रूप-राशि का मेला॥
उसकी पद-लाली लेकर मैं,
मधु-ऋतु का सिँगार करता हूँ।
मेरे प्राण बोलते उसमें,
मुसकाती मेरी ही छाया।
मैंने निज को खोकर ही तो,
उसको इस जीवन में पाया॥
मैं अनिमेष देखकर उसको,
हलका हृदय-भार करता हूँ।

साँस-साँस में मेरा जीवन,
रोम-रोम में मेरी लाली।
उसको दे अनुराग हृदय का,
मैंने एक अमर छवि पाली॥
इसी लिए अपने जीवन का,
प्रतिपल में सँहार करता हूँ।
उसके स्नेह-दीप में प्रतिक्षण,
जल-जल मेरी कोमल काया।
उसमें ही मिलती जाती है,
भूल-भूल जग ममता-माया॥
चिर यौवन की नहीं,
आज मैं मिटने की पुकार करता हूँ।
जी भर उसे प्यार करता हूँ।

अनुसंधान

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

उसकी अवस्था कितनी थी, यह मैं जान नहीं सका, जानने की आवश्यकता भी नहीं थी। वह अपने आप जो कुछ बड़बड़ाया करती थी उसे ही सुनने मैं गया था और उसे सुनकर भौंचक-सा रह गया। मैं बीस वर्ष का नवयुवक नहीं हूँ, न तीस साल का युवक ही हूँ। मेरी अवस्था उस वयस को पार कर चुकी है जब ध्यान बातचीत के शब्दों या उनके अर्थों पर न जाकर बोलनेवाली की भ्रू-भंगी, अधरों की मुस्कराहट या उसके रूप-रंग के परिवर्तन की ओर आकर्षित होता है और फिर, यदि यह पूर्ण सत्य न हो तो भी, उस समय मैं जिस कौतूहल के वश होकर यहाँ आया हूँ उसका सम्बन्ध उसकी बातों—या उसके 'प्रलाप'—से ही है। यही सोचकर मैं उसकी बातें सुनने लगा। वह कह रही थी—"तुम अपने को कलाकार समझते हो—तुम! वाह ऐसी ही विचित्र, ऐसी ही वीभत्स, ऐसी ही पतन करनेवाली सृष्टि को कला कहते हैं और इसी के रचयिता को कलाकार—कलाकार! संख्याओं से तुम 'कला' की परिभाषा करते हो, सैकड़ों, हज़ारों की सृष्टि—असंयत वासनाओं के नाना रूपों की सृष्टि कर देने से ही तुम कलाकार हो गये—कलाकार! और अब मेरी ओर दृष्टि फेरने की भी तुम्हें फ़ुर्सत नहीं—मैं सर्वथा अलंकारविहीना—दीना, हीना पगली हूँ और तुम अलंकारों के, कलाओं के सम्राट् कलाकार! छिः छिः! पाखंडी,—ओ ठग, अपने आपको इस तरह क्यों लूट रहा है! मेरे ऊपर नहीं तो अपने ही ऊपर दया कर! ओ कलाकार! ओ झूठे कलाकार!"

और वह बहुत ज़ोर से चिल्ला पड़ी। अन्तिम शब्दों को वह बार बार दुहराने लगी।

तेज़ी के साथ वह टहल रही थी। कोठरी का दरवाज़ा बन्द था। खिड़कियों से मैंने उसका टहलना देखा और दरवाज़े के बाहर से उसकी बातें सुनीं। वह अपना मुँह उस संकीर्ण कमरे में भी चादर से छिपाये हुए थी और मेरे मन में भी उसे देखने की उत्सुकता जाग्रत नहीं हुई। कहीं भयानक कुरूपता के कारण ही उसकी यह दुर्दशा हुई हो। कल्पना देवी का आश्रय लेकर मैंने उसको अद्भुत सौंदर्य से मंडित कर दिया।

तब अपने मित्र की ओर फिरकर मैंने धीरे से कहा—"अब चलो"।

वे बोले—"वाह, अभी? अभी तो उसने कुछ कहा ही नहीं। अपना हाल वह धीरे धीरे कहा करती है। तुम सुनते जाओ।"

वह अब एक और ही कलाकार के पीछे पड़ी थी। मैंने सुना—

"और तुमने—तुमने महान् सृष्टि रची है। यह भी कला है! काम, क्रोध, मोह, द्वेष, ईर्ष्या—वाह, वाह! कैसी सुन्दर रचना! बलिहारी है! यह फँसाया, वह गिराया—कौन राजनीति-विशारद, कौन अर्थशास्त्र-पिशाच, कौन धूर्ताधिराज, कौन गुंडों का सरताज पार पा सकता है! धन्य, धन्य!

"और—'मूक होहिं वाचाल'—मैं गूँगी से फिर बोलने लगी, प्रत्यक्ष प्रमाण!"

मैं सहम गया! "क्या यह पहले गूँगी थी?" मैंने कुछ घबराहट के भाव के साथ पूछा। मेरे मित्र को मेरी इस दशा पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—"हम लोगों का इसके पूर्व-इतिहास का ठीक ठीक पता अब तक नहीं चला। पर इसकी ऐसी बातों से मालूम होता है कि यह गूँगी थी या संभव है, यह सब इसका पागलपन हो।"

वह कह रही थी—"कैसा जादू किया! गूँगी को गूँगेपन में पढ़वा-लिखवा दिया और फिर उसके गूँगेपन को भी दूर कर दिया! कितने समय तक गूँगी रही मैं। आह! ओ कलाकार! ओ, मुझे गूँगी कर देनेवाले धूर्त कलाकार, तुम कहाँ हो?"

इस बार चिल्लाने के स्थान पर वह रोने लगी। मैंने अपने मित्र से कहा—"चलो, अब जल्दी ही यहाँ से भाग चलो।"

वे मेरे साथ दूर निकल गये। तब मैंने कहा—

"तुम तो जानते ही हो कि मैं भाग्यवादी हूँ। पर मेरा भाग्य-वाद कुछ विचित्र प्रकार का है। मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य के प्रत्येक कार्य और विचार से लहरें उठती हैं और उनका लौटकर आना अनिवार्य है। यही भाग्य है। कब कौन लहर लौटेगी और किस तरह लौटेगी, यह मैं नहीं जानता, पर यह मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि वह लौटेगी अवश्य। एक दिन सभी विज्ञानवेत्ता इसे मान लेंगे। हाँ, सद्कार्यों की लहरें बुरे कार्यों की लहरों पर अपना प्रभाव डाल सकती हैं."

"यह सब अपना दर्शनशास्त्र छोड़ो। मैं यह सब समझ नहीं सकता, न समझना चाहता हूँ। जो कार्य एक जगह अच्छा समझा जाता है वही दूसरी जगह बुरा। मैं तो तुम्हें इस पगली की करुणाजनक दशा को दिखाकर इसके प्रेमी के अनुसंधान में तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।"

"तो पहले मेरी बात समझ लो। यह संसार नैतिक संसार है। नीति के कुछ नियम ऐसे अवश्य हैं जिन्हें समय या स्थान पलट नहीं सकता। बुराइयों की बिभीपिका मैं स्वीकार करता हूँ और उनका कुफल भी—चाहे उसके प्रकट होने में कितनी ही देर हो—पर इसके साथ ही मैं दया का या प्रेम का स्थान ही इस दीवानी दुनिया में सर्वोपरि मानता हूँ। तुम जाकर इस पगली को यही समझाओ।"

मेरे मित्र हँस पड़े। वे बोले—"उसके पास जाकर तुम्हीं यह सब समझा दो न! अगर दो-चार थप्पड़ों और दस बारह अच्छे घूँसों से बच पाओ तो अपने को सौभाग्य-शाली समझना। यह दुबली-पतली स्त्री साधारण नहीं है। साधारण होती तो यह इस तरह कमरे में क़ैद न कर दी गई होती।" यह कह कर वे और ज़ोर से हँसने लगे।

पर मुझे हँसी नहीं आई। हँसने की जगह रोने की ही इच्छा प्रबल हो उठी। "किस कलाकार ने इसके साथ यह दारुण निष्ठुरता की है। वह कैसा है? क्या है? कवि है, चित्रकार है या संगीतज्ञ है? क्यों उसे इससे मिलने का अवकाश नहीं मिला? अपनी वास्तविक कला पर उसने अपने ही हाथों यह कैसा आघात किया है?" अपने मित्र से मैं एक साथ ही यह सब पूछ गया, साथ ही मेरा हृदय-मंदिर बैठने लगा। एकाएक मैंने कहा—"चलो, मैं फिर उसके पास चलना चाहता हूँ। उसके पास चलो।"

आकर जब कुछ न सुना तब खिड़की से देखा। वह चुपचाप खाट पर पड़ी थी और एक छोटे से चित्र को देख रही थी। उसका मुँह खुला हुआ था। देखते ही मैंने कहा—"कमला"!

"कमला! कमला को बुलानेवाला कौन है!" कहती हुई वह तेज़ी से उठ खड़ी हुई। मुझे देखते ही वह वेहोश-सी होकर गिर पड़ी।

"यह तो मेरी ही 'गूँगों के आश्रम' की कमला है। दो साल हुए, यह एक दिन वहाँ से ग़ायब होगई। यह बोलने कैसे लगी? इसे तो मेरे ही आश्रम में पढ़ना लिखना सिखलाया गया था।"

कमरा खोल दिया गया। थोड़ी देर में कमला चारपाई पर सिर रख कर रो पड़ी और बोली—"आप आगये। आप अन्त में अपनी कमला के निकट आगये। मैंने तो यही समझा था कि गूँगियों को पढ़ाने की कला को छोड़कर मुझ तक आने का अवकाश अब आपको कदापि न मिलेगा।" उसके हाथ में अब भी चित्र था और वह मेरा ही फोटो था।

मैंने कहा—"ऐसा कैसे हो सकता था? पर तुम्हें बोलने की शक्ति किसने दे दी?" वह हँस उठी। उसने कहा—"प्रेम ने! मैं जन्म की गूँगी न थी। मेरी दवा हुई और मैं अच्छी होगई।"

"फिर इस तरह पगली कैसे होगई?"

वह चुप रही।

मेरे मित्र ने कहा—"क्या यह भी पूछने की बात है! अनुसंधान की यह पूर्ति ही उस अनुसंधान के आवेश को स्पष्ट कर रही है। पर तुम्हारा उस 'आश्रम' से क्या सम्बन्ध था? क्या तुम वहाँ जाया-आया करते थे?"

मैं इस प्रश्न का क्या उत्तर देता? पर मेरा मुख अवश्य ही पीला पड़ गया होगा। कैसा भारी मेरा दोष था! अन्त में वे लहरें इस प्रकार वापस आगई हैं और यह गूँगी युवती ऐसी मुखरा होकर मेरे उस दोष को इस प्रकार निस्सन्दिग्धरूप से प्रकट कर रही है! कैसा भीषण अनुसंधान है यह! ओ कलाकार! सचमुच तुम्हारी यह कैसी कला है? मैंने तो कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि यह संभव हो सकता है। उन लहरों का यह अनुसंधान!

सुमेरी संस्कृति का भारतीयत्व

लेखक, पंडित सूर्यनारायण व्यास

पुरातत्त्व के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय करीन्दकर की यह स्थापना है कि भारत का नर्मदा-तट ही आदि-सभ्यता का केन्द्र है। यहाँ व्यास जी ने उनकी उसी स्थापना पर संक्षेप में प्रकाश डाला है।

सर्वसाधारण का यह भ्रम हो गया है कि पौराणिक कथानकों में ऐतिहासिक तथ्यों का ढूँढ़ना 'अव्यापारेषु व्यापारः' करना है, किन्तु इधर विद्वानों की खोज से ऐतिहासिक घटनाओं की पुराण-कथाओं से सङ्गति मिलती जा रही है। इस लेख में यह बतलाया गया है कि सुमेर-संस्कृति और जल-प्रलय की घटनायें भारतीय जल-प्रलय के समकालीन हैं, वहाँ-यहाँ के राजाओं में आश्चर्य-जनक समता है। उस समय नर्मदा-तट पर जना-वास था और जल-प्रलय से इस भूभाग की कोई हानि नहीं हुई थी एवं व्यापार-मार्ग आदि चालू थे। पौराणिक कथाओं की इस प्रकार सांस्कृतिक एवं ऐतिह्य साम्य में बड़ी सहायता मिल सकती है। ये ठंडे पहर की ग़पें नहीं हैं। संशोधक बुद्धि से विचार किया जाय तो पुराणों में बहुत-सा ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हो सकता है।

सुमेर लोगों का ऐसा ख़याल था कि जब वे मेसो-पोटेमिया को गये, उनकी संस्कृति पूर्णता को पहुँच चुकी थी। सुमेरिया से जाते समय वे कृषि, लिखने की कला, धातुओं के उपयोग तथा अन्य कलाओं से पूर्णरूप से परिचित थे। वहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने और कोई नया आविष्कार नहीं किया। इस दंतकथा में हमें सत्यता जान पड़ती है। कलाओं तथा विद्याओं का उदय युफ्रेटीज़ नदी के किनारे पर नहीं हुआ, यह इससे ज्ञात होता है, साथ ही यह भी कि इनका जन्म सिंधु नदी के किनारे पर हुआ हो, इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिला है। परन्तु सुमेरी लोगों की संस्कृति युफ्रेटीज़ तथा सिंधु नदी के बीच में कहीं उत्पन्न हुई हो, यह अनुमान ठीक हो सकता है और यह बात खोज के द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

पाश्चात्य पुरातत्त्व-संशोधक मेसापोटेमिया में रहने-वाली सुमेर-जाति की संस्कृति को सबसे अधिक पुरातन गनते हैं। किन्तु उनका मूलस्थान कहाँ था, यह बात वे आज तक निश्चित नहीं कर सके।

हमारे ख़याल में उनका मूलस्थान भारतवर्ष का नर्मदा-तट हो सकता है, और वहीं से वे मेसोपोटेमिया को गये होंगे। नर्मदा-तट पर खोज करने से उनकी संस्कृति का अवशेष अवश्य मिलेगा, क्योंकि—

(१) सुमेरियों की दंतकथा के अनुसार उनकी संस्कृति को 'ओआनिस' नाम के देव ने उस देश में पैदा किया था। 'ओआनिस' और 'पृथुवैन्य' इन नामों में साम्य है। 'ओआनिस' 'वैन्य' का अपभ्रंश है।
(२) जलप्रलय के पश्चात् सुमेर लोगों का नर्मदातट-वासियों से सम्बन्ध हुआ था।
(३) जलप्रलय के पूर्व कई शताब्दियों से नर्मदातट पर लोग रह रहे थे।
(४) पुराणों में 'वरुण' के स्थान का जो वर्णन मिलता है वह प्रदेश 'सुमेर' ही होना चाहिए।
(५) सन् १८२३ में कैप्टन डेंजरफ़ील्ड को महेश्वर के पास ३०-४० फ़ुट नीचे ईंटें तथा मिट्टी के बर्तन मिले थे, जिनसे सिद्ध होता है कि वहाँ अत्यन्त प्राचीन काल में सुसंस्कृत मनुष्य रहते थे।
(६) ईसाई सन् के २००० वर्ष पूर्व की बैबिलन की एक मुद्रा नागपुर के म्युज़ियम में है। वह मुद्रा नर्मदातट पर ही मिली होगी।
(७) जलप्रलय के कुछ समय बाद सिंधु नद क्षार-समुद्र में प्रवाहित हुआ होगा।

ईसा के पूर्व तीसरी सदी में 'बेडासस' नाम का एक पुजारी बैबिलन के मंदिरों में पूजा करता था। इसने लिखा है कि 'ओआनिस' का रूप 'अर्द्धमत्स्याकृति' था और वह 'ईरान' के आखात से आया था। ओआनिस के आने के कोई दस पुश्तों के बाद जलप्रलय हुआ था। ओआनिस का एक मुख मत्स्य का था। उस मुख को निकालकर

मनुष्य-मुख से बोलता था। उसका शरीर मत्स्य सरीखा और उसकी पूँछ से दो पैर निकले हुए थे।

'पृथुवैन्य' प्रायः लौह या मगर के चमड़े का कवच नता रहा होगा। मुख पर का शिरस्त्राण हटाने पर वह च्छे प्रकार बोल सकता होगा। कवच घुटने तक रहता जिससे अर्द्धमत्स्याकृति आकारवाला वर्णन ठीक मालूम ता है। घुटने से नीचे पैर दिखाई देते होंगे। यदि र के चमड़े का कवच के लिए उपयोग किया जाय तो वर्णन यथातथ्य हो सकता है।

उच्चारण में 'वैन्य' और 'ओआनिस' दोनों शब्दों में य है। 'ओ' और 'अ' मिलाकर 'व' तथा 'इ' का होता है।

पुराणों में लिखा है कि पृथुवैन्य जलप्रलय की दस पहले हुआ था। ओआनिस भी सुमेर में जलप्रलय दस पीढ़ी पहले था, ऐसा पता लगता है। यदि यह लिया जाय कि ये दोनों प्रलय एक ही समय में हुए थे 'ओआनिस' और वैन्य का एक ही होना ठीक हो ता है।

पद्मपुराण में यह स्पष्ट लिखा है कि पृथु ने रेवातट अपने नाम से एक शहर बसाया था। इससे प्रकट होता के पृथु का राज्य नर्मदातट पर ही था।

'पृथु' और 'ओआनिस' के कार्यों में बहुत-सा सादृश्य पृथु ने शस्य आदि की खोज की और खेती का प्रारम्भ। पृथु के पहले यज्ञयाग आदिक हुआ करते थे। से वहाँवालों को भूमिति का ज्ञान अवश्य रहा। उसको उसने 'सुमेर' में भी पहुँचाया। समाज-स्था पृथु ने ही की और भारतवर्ष की तरह सुमेर में उसका प्रचार हुआ होगा।

उक्त पुजारी बेरोसस के वर्णन के अनुसार ओआनिस या तीन पीढ़ियों के पश्चात् छोटा ओआनिस सुमेर को गया। 'अन्ने डोटस' ने भी यही सब लिखा है।

पृथुवैन्य के पुत्र 'वृक' को पश्चिम-दिशा का राज्य गया था। वृक के वंशज प्राचीन 'हिंप' ने प्रजापति के को अङ्गीकार किया और समुद्र की कन्या 'सवर्णा' से ह किया। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन 'हिंप' और र्णा' के पुत्र 'प्रचेतस' पश्चिम-दिशा के समुद्र के तट पश्चर्या के लिए गये थे। यह भी लिखा है कि स्वयं पृथु समुद्र का प्रवास करता था, साथ ही उसके वंश का पश्चिमी समुद्र तथा पश्चिमी समुद्र के दूसरे किनारे पर के भूभागों से सम्बन्ध था।

उपरिनिर्दिष्ट कथा के काल में हिन्दुस्तान के अतिरिक्त और कोई भी देश संस्कृत या सभ्य नहीं था। इतना ही नहीं, किन्तु अन्य किसी देश में किसी तरह की संस्कृति या सभ्यता थी, ऐसी कोई दन्तकथा नहीं प्राप्य है। ओआनिस ईरान की खाड़ी से सुमेर में पहुँचा था। अर्थात् वह पूर्व की ओर से ही वहाँ गया था। और पूर्व दिशा में केवल हिन्दुस्तान ही उस समय सुसंस्कृत था, ऐसी दन्तकथायें पुराणों में भी मिलती हैं।

ईसा के पूर्व ३०० वर्ष के लगभग बेरोसस का काल माना जाता है। अधिकांश पुरातत्त्वज्ञ महाभारत का काल भी ईसा के ४०० वर्ष पूर्व मानते हैं। बेरोसस के कथन की सत्यता पुरातत्त्वज्ञों ने सिद्ध की है। ऐसी अवस्था में भारतीय पुराणों में भी सत्य कथायें ग्रथित हैं, यह उपर्युक्त सादृश्यों से भी सिद्ध होता है।

जलप्रलय की कथा के बाद की निम्नलिखित कथायें जिनका सम्बन्ध वरुण-प्रदेश से है, पुराणों में लिखी हुई हैं—

(अ) गरुड़ व नाग— Etana and the Eagle शे के पाताल में जाने की कथा।

(ब) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की कथा से सम्बन्धित नारसिंह और नरम-सिन् Naram-sin की कथाओं में साम्य है।

(क) बलि तथा Bel में भी बहुत साम्य मालूम पड़ता है।

(ड) अगस्त्य ऋषि और इल्वल तथा विल्वल की एक कथा है। इस कथा के इल्वल और विल्वल क्या Illulu और Balulu नामक राजे थे?

(इ) ब्रह्मपुराण में महाशनि नामक पाताल के असुर राजा का नाम आया है। इसका Mesanuipada राजा के नाम से सादृश्य है।

(फ) मनु का २६ वाँ वंशज राजा पुलकुत्स नागों की सहायता करने पाताल गया था। ईसा के १२००-१३०० वर्ष पूर्व इजिप्ट के राजा ने जो प्रान्त मेसोपोटेमिया में जीते थे उनमें Pureekuzzi नाम का एक प्रान्त था। यह नाम असाधारण होने के कारण

उपरिनिर्दिष्ट प्रान्त पुलकुत्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ हो, यह संभाव्य है।

(ग) कार्तवीर्यार्जुन की कथा से सम्बन्धित और्व UrBau, ऋचिक Erech, शूर्पारक Shurrikap इत्यादि नाम सुमेर से सम्बन्धित हैं। इसी के अनुसार हिरण्यपुर और Nippur में भी साम्य है।

३—अत्यन्त प्राचीन काल में नर्मदा के किनारे संस्कृति थी—

(अ) "कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा।
मार्कण्डेयश्च भगवान् विनष्टस्तदा किल ॥"

मत्स्यपुराण अध्याय १८६

इस प्रकार जलप्रलय से नर्मदा-प्रदेश सुरक्षित रहा।

(ब) त्रिपुरासुर का वध नर्मदातट पर ही हुआ था।

(क) विश्रवस ऋषि का आश्रम नर्मदा के किनारे था। उनके पुत्र कुबेर का जन्म वहीं हुआ था।

(ड) मांधाता, पुलकुत्स आदि राजा नर्मदातट पर राज्य करते थे।

(इ) माहिष्मान् राजा ने माहिष्मती की स्थापना की। यह नगरी माहिष्मान् और मुचकुन्द इन दोनों ने बसाई थी। किन्तु माहिष्मान् की माहिष्मती पर्वत पर थी और मुचकुन्द की माहिष्मती नर्मदातट पर थी। रामायण (उत्तरकाण्ड) में लिखा है कि रावण प्रथम माहिष्मती को गया और वहाँ से विन्ध्य पर्वत से होकर नर्मदातट पर आया।

"ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीं प्रभाम्।
संप्राप्तो यत्र सान्निध्यं सदासीद्वसुरेतसः ॥
तुल्यआसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद्वसुरेतसः।
अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डे शयः सदा ॥

उत्तरकाण्डरामायण सर्ग २१.

इस स्थान पर 'वसुरेतस' अर्थात् अग्नि समीप थी। मेरे विचार में यहाँ अग्नि का अर्थ ज्वालामुखी पर्वत का मुख है। साथ ही 'शरकुण्ड' का मतलब जिसमें शरजाति के दर्भ उगे हों, ऐसा 'गड्ढा' किया जाय तो माहिष्मती का स्थान ढूँढ़ना सरल हो जायगा।

रामायण की कथा के अनुसार रावण माहिष्मती देखकर विंध्य-पर्वत पर से होते हुए नर्मदा-तट पर आया। वहाँ उसने स्नान किया और पूजा करने को बैठा। किन्तु अर्जुन ने नर्मदा का प्रवाह नीचे की बाजू में रोक रक्खा था, इस कारण नदी में बाढ़ आ गई और उसकी पूजा-सामग्री बह गई। यह स्थान महेश्वर के समीप सहस्रधारा का होना चाहिए।

ऐसा मालूम पड़ता है कि नर्मदा के किनारे तीन स्थानों पर नदी की रोक की गई होगी—प्रथम ओंकार मान्धाता के समीप 'दरी' नामक स्थान पर, दूसरे 'सहस्रधारा नामक स्थान पर और तीसरे 'हरणकाल' चिखलदा और गरुड़ेश्वर के बीच में।

रावण प्रथम माहिष्मती को गया था, किन्तु वहाँ अर्जुन से भेंट न होने से वह विन्ध्याचल देखते हुए नर्मदा पर स्नान तथा पूजा के लिए आया। माहिष्मती से नर्मदा जाने के लिए ४-५ घंटे लगे होंगे, ऐसा अन्दाज़ किया जाय तो माहिष्मती से नर्मदा अधिक से अधिक २० मील होगी। माहिष्मती और नर्मदा के बीच में विन्ध्याचल का उल्लेख हुआ है, जिससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि माहिष्मती नर्मदा के उत्तर में थी। इसी प्रकार सहस्रधारा पर अर्जुन ने नर्मदा का प्रवाह रोक कर सेतु तैयार करवाया था, यदि यह माना जाय, तो भी माहिष्मती का शोध उत्तर में ही करना आवश्यक होगा। इस शहर के पास ज्वालामुखी पर्वत का मुख था, जिससे यह शहर किसी टेकड़ी पर होना सम्भाव्य है। माहिष्मती का ठीक पता लगाने के लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

१. विन्ध्याचल पर के प्राचीन ज्वालामुखी के मुख के पास। २. सहस्रधारा के समीप १५ से २० मील के भाग में और ३. दक्षिण तथा उत्तर में चलनेवाले व्यापार-मार्ग पर जो शहर होगा वही कार्तवीर्यार्जुन की माहिष्मती होगा।

माहिष्मती नं० २ के सम्बन्ध में दूसरी कथा हरिवंश के विष्णुपर्व के ३८ वें अध्याय में लिखा है कि यदुपुत्र मुचकुन्द ने विन्ध्य और ऋक्ष के बीच में माहिष्मती बसाई थी*।

* स्वर्गीय श्री करंदीकर की विचार-धारा के अनुरूप यह चर्चा है —लेखक।

दीनों के आँसू

लेखक, सरदार नर्मदाप्रसादसिंह

(१)

नहिं वारि विनोद प्रमोद के हैं, विरही की वेदना-बोधक हैं।
जननी के न प्रेमप्रसून हैं ये, नहिं मानिनी-मान-विमोचक हैं॥
शिशु-लोलकपोल के मोती नहीं, प्रभुता की दया के न जोहक हैं।
छुधा गोद के लाड़िले लाल हैं ये, दलितों की व्यथा-कथा-द्योतक हैं॥

(२)

जननी जो कुरीति की थी जग में, उसी रीति में पेखी सुनीति उजागर।
जिस क्रूरता ने ठुकराया इन्हें, पद धोयें उसी के हो नेह के नागर॥
विपदायें अनेक अतीव सहीं, प्रकटे न तऊँ बने तोष के आगर।
इमि नीति सनेह के सीप में ये, रहे बूँद से थे छिपे रोष के सागर॥

(३)

अघ-ओघ-हुताशन-शासन से, तपि दीनता-लोचन-शोले हैं ये।
असमानता-मेरु से मर्दित हो, जन-सागर के विष-गोले हैं ये॥
नित भार-अनादर सादर खा, निधनों के हृदय के फफोले हैं ये।
मत छेड़ो इन्हें धरि खैहैं कहूँ, द्दग-दीन के पाले सँपोले हैं ये॥

(४)

करनाल हैं अस्थि त्यों पंजर की, इनको धन-दुर्ग दिखाओ नहीं।
वड़वानल-दाह के वाहक हैं, इनकी छिपी ज्वाल जगाओ नहीं॥
अगवान हैं क्रान्ति के विप्लव के, इनको अब रोष दिलाओ नहीं।
यह आँसू हैं क्रुद्ध दरिद्रता के, इनसे वसि व्योम हिलाओ नहीं॥

(५)

शशि शीत मरीच हैं ताड़ितों को, अरु ताड़कों को असि-काल भी हैं।
सुचि साम्य सुनीति के स्रोत-सुधा, धनवाद को तो विष-ज्वाल भी हैं॥
द्रुमकल्प हैं पर्ण-कुटीर को ये, नृप-भौन को दाँत कराल भी हैं।
ये पियूष भी हैं त्यों हलाहल हैं, करवाल भी हैं अरु ढाल भी हैं॥

(६)

सदियों से छिपे अब लों ये रहे, प्रकटे हैं तो मोड़े मुरेंगे नहीं।
अनरीति-प्रणीत अतीत से जो, उसको विन तोड़े फिरेंगे नहीं॥
निकले समानता आपने को, असमानता होते दुरेंगे नहीं।
जग में अब रंक त्यों राव के दो, दल एक ही संग रहेंगे नहीं॥

ग्रामोद्धार का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, बी० काम०

प्रसन्नता की बात है कि कांग्रेसी सरकारों ने ग्रामसुधार के कार्य को अपने हाथों में ले लिया है। ऐसी दशा में इस विषय की चर्चा की आवश्यकता है। यह लेख इसी विचार से लिखा गया है।

वर्तमान योरपीय सभ्यता का एक विशेष लक्षण ग्रामों की उपेक्षा करके मुट्ठी भर शहरवालों के जीवन को अधिक सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए उनका यथाशक्ति शोषण करना है। चूँकि भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है, उसकी समस्त सम्पत्ति का उद्गमस्थान उसके लगभग ७ लाख गाँव हैं, इस वास्ते यह अवश्यम्भावी था कि अँगरेज़ी राज्य के फल-स्वरूप योरपीय सभ्यता की शोषण-नीति का प्रभाव हमारे गाँवों पर पड़ता। सीधे और अशिक्षित होने के कारण तथा प्रत्येक कार्य में ईश्वरीय आदेश का अनुभव करने की वजह से ग्रामवासी उस शोषण को चुपचाप सहन करते रहे। उनके पास ऐसे साधनों का अभाव भी रहा जिनके द्वारा अपने दुख-दर्द की मर्म-कथाओं को वे अपने स्वामियों तक पहुँचा सकते। परिणाम यह हुआ कि भारत के गाँवों में दरिद्रता छा गई। योरप की मशीनों की बदौलत सारे उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये और लोगों की जीविका का एकमात्र धन्धा खेती भर रह गया। देश की असंख्य जन-संख्या के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने की किसी में शक्ति हो सकती थी और उसके लिए आवश्यक साधन जुटा सकते थे तो वे थे शहरों के रहनेवाले। परन्तु वे ख़ुद भी योरपीय सभ्यता के मायाजाल में बुरी तरह फँस गये, यहाँ तक कि वे उस शोषण के प्रधान मददगार बन गये और उनको इस बात का ध्यान ही नहीं रहा कि जब ग्रामों की सम्पत्ति सर्वथा नष्ट हो जायगी और गाँव पूर्णरूप से क्षीणावस्था को प्राप्त हो जायँगे तो उसका क्या भयानक परिणाम होगा।

परन्तु जैसे जैसे देश में राष्ट्रीय चैतन्य का उदय होता गया, राष्ट्र के नेताओं का ध्यान ग्रामों की दयनीय दशा की ओर फिरता गया। अन्त में महात्मा गांधी ने राष्ट्र की इस तात्त्विक कमज़ोरी की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। फलतः इस समय समस्त देश में 'ग्रामोद्धार' फ़ैशन-सा हो गया है और यह चिह्न आशाजनक है। सरकार को भी देश की आवाज़ में आवाज़ मिलानी पड़ी, और इस कार्य के लिए अपने बजट में उसे एक निश्चित रक़म तय करके अपनी सद्भावनाओं का परिचय देना पड़ा। इस समय देश के छः मुख्य प्रान्तों में (और सीमा-प्रान्त को मिलाकर ७ प्रान्तों में) कांग्रेस-मंत्रिमंडलों के स्थापित हो जाने से प्रान्तीय सरकारों का ध्यान ग्राम-सुधार की ओर और भी अधिक केन्द्रित रूप धारण कर रहा है और इस ओर किये गये प्रयत्नों को अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित बनाने की चेष्टा की जा रही है। ऐसी दशा में ग्रामोद्धार की चर्चा करना सर्वथा आवश्यक है।

पहले हम ग्रामों की आर्थिक कठिनाइयों तथा उनके कारणों के विषय में विचार करेंगे। भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की ९० प्रतिशत जन-संख्या ग्रामों में ही निवास करती है। देश का सारा आर्थिक संगठन ७ लाख ग्रामों की आर्थिक स्थिति तथा कृषि-उद्योग की सफलता पर ही निर्भर है। जब तक गाँवों में रहने-वालों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं होगा, देश से निर्धनता का अन्त होना असम्भव है। भारत के ग्रामों की ग़रीबी संसार-प्रसिद्ध है। ग्रामों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जन-संख्या का जितना भाग अपनी जीविका उपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है वह भूमि की आवश्यकता से कहीं अधिक है। इसका कारण यह है कि गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने से उनमें लगी हुई जनता को कृषि के अतिरिक्त जीविका-उपार्जन का अन्य साधन ही नहीं रह गया है। और यही भूमि का वह भार है जो कृषि-सुधार का एक प्रमुख प्रश्न बन गया है। कृषि की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि कृषि में उतने ही लोग संलग्न रहें जितने की उसमें गुंजाइश है। शेष लोग जीविकार्थ अन्य धन्धों में लगाये जायँ। कृषि-सुधार की दूसरी मुख्य समस्या भूमि-कर-सम्बन्धी है। जब तक लगान-सम्बन्धी क़ानूनों में आमूल परिवर्तन नहीं किया जायगा, कृषि की उन्नति

असम्भव है। ऋण का प्रश्न तीसरा सवाल है, जिसे हल करना सबसे पहला काम है और जिसका हल कृषकों के जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण में समुचित परिवर्तन हुए बिना असम्भव है। ग्रामों की आर्थिक उन्नति के सिलसिले में हमें गृह-उद्योगों के प्रश्न को भी अपने हाथ में लेना होगा। कृषकों के अवकाश का सदुपयोग तभी हो सकता है जब वे अपनी कृषि के अतिरिक्त कुछ ऐसे सहायक धंधे भी करते रहें जो आर्थिक दृष्टि से सफल हो सकें। बहुत-से उद्योग-धंधे गाँवों में आज भी चालू हैं, पर आर्थिक दृष्टि से वे सफल नहीं हैं। इनका पुनरुद्धार करने की आवश्यकता है, यदि हमें ग्रामों की आर्थिक स्थिति सुधारनी है।

अब ग्रामों की दूसरी प्रमुख समस्या लीजिए। हमारे गाँवों की केवल आर्थिक स्थिति ही नहीं बिगड़ी है, उनका द्रुतगति से जन-ह्रास भी हो रहा है। जन-ह्रास के मुख्य कारण जनता की अशिक्षा, स्वास्थ्य और सफ़ाई के नियमों की अनभिज्ञता, तथा रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ हैं। पहले अशिक्षा को लीजिए। हमारी जन-संख्या का १० प्रतिशत से भी कम भाग शिक्षित है और इसमें उन लोगों की संख्या अधिक है जो केवल भाषा का पढ़ लेना और लिख लेना भर जानते हैं। अधिकांश लोगों की मानसिक शक्तियाँ अविकसित ही रह जाती हैं। इससे देश की जो हानि हो रही है उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। अशिक्षा किसी भी जाति के लिए एक महान् शाप है।

स्वास्थ्य और सफ़ाई के नियमों से तो ग्रामीण लोग सर्वथा उदासीन और अनभिज्ञ हैं ही। गाँव में गलियों की सफ़ाई और गन्दे पानी की नालियों की सफ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गाँव के आस-पास का खुला मैदान भी गन्दगी का घर बना रहता है। बाहर मल-मूत्र के सूख जाने से एक प्रकार के कीटाणु उत्पन्न होते रहते हैं, जो हवा के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ते रहते हैं और जिनके कारण हुक-वार्म नाम की एक बीमारी हो जाती है। ग्रामों में अधिकांश लोग इस बीमारी के शिकार बन जाते हैं। सफ़ाई का घरों के अन्दर भी उतना ही अभाव पाया जाता है, जितना घरों के बाहर। घर में मनुष्य-पशु एक ही स्थान में रहते हैं, जिससे घर का वातावरण सदा गन्दा बना रहता है। चारों ओर कूड़ा और पानी के फैले रहने से अनेक प्रकार के कीटाणु और मच्छर उत्पन्न होते रहते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर सिद्ध होते हैं। रोगों के उत्पन्न होने की जहाँ गाँवों में इतनी सुविधा है, वहाँ उनके इलाज और उनको रोकने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त ग्रामीण स्त्रियों की प्रसव-काल में, दाइयों की लापरवाही और उनकी अनभिज्ञता के कारण, यथेष्ट संख्या में मृत्यु हो जाती है। सारांश यह है कि गाँवों में जहाँ प्रकृति ने स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए शहरों से कहीं अधिक साधन उत्पन्न किये हैं, ग्रामीण जनता की अशिक्षा और अनभिज्ञता के कारण गन्दगी और बीमारी का अटल साम्राज्य स्थापित है।

इसी तरह ग्रामवासियों का रूढ़िवाद और सामाजिक नियमों में फँसा रहना भी एक महाव्याधि है। इनके कारण वे प्रत्येक सुधार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और प्रत्येक प्राचीन कुप्रथा को उसी रूप में बनाये रखना चाहते हैं। इससे भी गाँवों में जन और धन दोनों की हानि हो रही है। मृत्यु या जन्म के अवसर पर जाति-भोज की प्रथा उसी भयंकर रूप में मौजूद है। विवाह के अवसर पर हैसियत से अधिक ख़र्च कर देना प्रतिष्ठा बनाये रखने का मुख्य साधन समझा जाता है। हाँ, इन कुप्रथाओं को दूर करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होगा कि ग्रामवासियों के शुष्क और नीरस जीवन को सरस और आनन्दमय बनाये रखने के लिए उपयुक्त तथा निर्दोष साधनों की सृष्टि करनी होगी।

हमारे गाँवों की यही मुख्य समस्यायें हैं और इनका जल्दी से जल्दी हल होना चाहिए। इसके लिए कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर विचार कर लेना आवश्यक है जिनके आधार पर ग्रामोद्धार का कार्य होना चाहिए।

सबसे पहले तो इस बात का ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि जो भी कार्य किया जाय वह स्थायी बन सके। अभी तक हमारे देश में ग्राम-सुधार की जितनी योजनायें कार्य-रूप में परिणित की गई हैं उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी यही रही है कि उनकी सफलता केवल उनके कार्यकर्ताओं पर निर्भर रही है। जहाँ कार्यकर्ता अपने स्थान से हटे, उनका सारा संगठन और कार्य नष्ट हो गया। इस बात के कार्य को स्थायी बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के लोगों में ही उस कार्य से सहानुभूति और

दिलचस्पी उत्पन्न की जाय, ताकि भविष्य के लिए प्रत्येक गाँव स्वयं अपने कार्यकर्ता उत्पन्न कर लें। इसमें ग्रामीण महिलाओं की सहायता और सहानुभूति विशेषरूप से आवश्यक है, क्योंकि वही ग्रामीण जीवन के केन्द्र हैं।

दूसरी बात इस विषय में ध्यान रखने योग्य यह है कि ग्रामों की जितनी समस्यायें हैं वे एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं कि उनको एक साथ जब तक हल करने का प्रयत्न नहीं किया जायगा, सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। यदि किसी गाँव में केवल सफ़ाई और स्वास्थ्य का कार्य उठाया जाय और किसी में आर्थिक सुधार का तो किसी में केवल शिक्षा का तो ऐसी दशा में कार्य न तो स्थायी रूप से हो सकेगा और न उसमें सफलता ही मिलेगी।

तीसरे, व्यय का भी ध्यान रखना आवश्यक है। भारतवर्ष निर्धन देश है। ग्रामों की संख्या ७ लाख के लगभग है। अस्तु, ग्राम-सुधार के कार्य में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यय का अनुपात लाभ की दृष्टि से हो और ऐसी ही योजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाय जो व्यय-साध्य हों। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो, ग्राम-सुधार का कार्य स्वावलम्बी बने।

उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ग्राम-सुधार का कार्य होना चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि कार्य करने का भार किस पर डाला जाय। क्या यह कर्तव्य राज्य का है कि वह इस समस्या को हल करे या जनता निजी रूप से इस कार्य को अपने ऊपर ले ले या ग्राम-सुधार का उत्तरदायित्व सहकारिता-आन्दोलन को अपने ऊपर लेना चाहिए? कुछ समय से सहकारितावादियों और साधारण जनता में यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि ग्राम-सुधार का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तों पर ही पूर्णरूप से किया जा सकता है। किन्तु यह धारणा वास्तव में ग़लत है। ग्राम-सुधार-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य किसी एक ही संस्था के ऊपर छोड़ देना सर्वथा अनुचित है, चाहे वह स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखती हो या सहकारिता-आन्दोलन से। कारण स्पष्ट है। ग्राम-सुधार के अन्तर्गत अनेक बातों का समावेश होता है और उनको पूर्ण करने के लिए भिन्न-भिन्न साधन काम में लाने होंगे। अतएव सहकारिता या स्थानीय सरकार, यही दो ऐसी संस्थायें हैं जो वास्तव में ग्रामोद्धार के कार्य को कर सकती हैं और जिनके वास्तविक कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में उचित ज्ञान आवश्यक है।

ग्रामों की आर्थिक उन्नति के लिए जिन कृषि-सुधारों की आवश्यकता है उनको हम मोटे रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं—उन्नत कृषि और उन्नत व्यापार। उन्नत कृषि में उन तमाम बातों का समावेश होता है जिनका वैज्ञानिक कृषि करने के तरीक़ों से सम्बन्ध है, जैसे अच्छे हलों का प्रयोग, वैज्ञानिक कृषि-सम्बन्धी शिक्षा और अन्य ऐसी ही बातें। सहकारिता इस कार्य को कदापि नहीं कर सकती, इसका भार तो सरकारी कृषि-विभागों पर ही रहेगा। इसी प्रकार खेतों के टुकड़ों का धीरे धीरे एकीकरण भी सहकारिता के सिद्धान्तों पर उतनी द्रुतगति से नहीं हो रहा है, जितना कि आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सरकार ही क़ानून-द्वारा अधिक सहायता दे सकती है। लगान-सम्बन्धी सुधार तो सरकार पर निर्भर है ही। किन्तु जहाँ तक कृषि की उन्नति के लिए उन्नत व्यापार की आवश्यकता है, सहकारिता इस कार्य को सफलता-पूर्वक कर सकेगी। पूँजी, कृषि-सम्बन्धी औज़ार, अच्छा बीज, कृषि तथा अन्य पदार्थों के क्रय-विक्रय आदि की बातों का प्रबन्ध सहकारिता के सिद्धान्तों पर ही हो सकता है। इसी प्रकार गृह-उद्योग-धंधों को फिर से उन्नत अवस्था में लाने के लिए सरकार और सहकारिता दोनों की सहायता आवश्यक होगी। जहाँ तक वैज्ञानिक अनुसंधान और टेकनिकल बातों का सम्बन्ध है, जैसे तरह तरह के नये डिज़ाइनों का आविष्कार, नये यन्त्रों का आविष्कार और प्रचार आदि, सरकार ही अपनी खोज-सम्बन्धी संस्थाओं-द्वारा इस कार्य को कर सकती है। किन्तु जहाँ माल के बेचने, कच्चे माल के ख़रीदने और आवश्यक पूँजी के जुटाने आदि के प्रश्न उठते हैं, वहाँ सहकारिता की ही सहायता अनिवार्य हो जाती है। जो महाजन उनको उधार रुपया देता है उसी को वे अपना कच्चा माल बेच देते हैं और उसी से तैयार माल भी ख़रीदते हैं, इस प्रकार महाजन को उनका शोषण करने का पूर्ण अवसर मिलता है। यह शोषण उसी समय समाप्त हो सकता है जब सहकारी समितियाँ न केवल पूँजी किन्तु क्रय-विक्रय के प्रश्न को भी अपने हाथ में ले लें। हमारे गाँवों की आर्थिक

उन्नति का प्रश्न पूर्णरूप से उसी वक्त हल हो सकेगा जब प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार इस दिशा में आवश्यक सहायता देने को तैयार होंगी। केवल सहकारिता उस प्रश्न को हल नहीं कर सकती और न वह कृषकों की ऋण-सम्बन्धी समस्या को ही हल कर सकती है।

अब हम गाँवों के शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न को लेते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि सहकारी-शिक्षा समितियाँ हमारी वर्तमान अशिक्षा का अन्त करने में सफल हो सकेंगी। किन्तु ऐसा विचार करना भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि पंजाब में इन समितियों ने कुछ कार्य अवश्य किया है, किन्तु उनको इस विषय में अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। वहाँ १९३१ में जहाँ अनिवार्य-शिक्षा-समितियों की संख्या १०१ थी, अब घट कर केवल ८४ रह गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामों में अशिक्षा का अन्त सहकारिता के सिद्धान्तों पर सम्भव नहीं। इसका एकमात्र उपाय यह है कि गाँवों में पंचायतों का प्रचार किया जाय और उनकी शक्ति और अधिकारों में वृद्धि हो, उनके लिए यथेष्ट आय की सुविधा हो और उनका कर्तव्य उन तमाम सुविधाओं का प्रदान करना हो जिनकी जनसाधारण को आवश्यकता है, जैसे पाठशालाओं, वाचनालयों और पुस्तकालयों का प्रबन्ध, पानी, रोशनी, स्वास्थ्य तथा सफ़ाई का प्रबन्ध आदि। गाँव के प्रत्येक बालिग़ स्त्री और पुरुष को पंचायत के चुनने में मताधिकार हो और पंचायत को कर लगाने के भी कुछ अधिकार हों। स्वास्थ्य और सफ़ाई का कार्य भी पंचायतों और ज़िला-बोर्डों के अधिकार में रहे और उनका इस विषय में कर्तव्य समझा जाय कि वे इस प्रश्न को हल करेंगे। गाँवों में पिट-लेटरीन का प्रबन्ध किया जाय, गन्दा पानी एक स्थान पर इकट्ठा किया जाय तथा उसको निकालने के लिए उचित नालियों का प्रबन्ध रहे। शिक्षित दाइयाँ गाँवों में रक्खी जायँ और चिकित्सा का उचित प्रबन्ध हो। बंगाल में सहकारी-मलेरिया-नाशक समितियों ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ कार्य किया है, किन्तु अब उनमें से कितनी ही संस्थाओं में आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयों के कारण शिथिलता आगई है और कई अनुभवी पुरुषों की यह सम्मति है कि इन समितियों को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय सरकार ही समितियों का प्रबन्ध करे। स्वास्थ्य और सफ़ाई-सम्बन्धी कार्य को स्थानीय सरकार भले प्रकार इस कारण से कर सकती है कि उसे उन लोगों को जो इस कार्य में बाधक हों, दण्ड देने का भी अधिकार रहता है। इसके विपरीत सहकारी संस्थाओं के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं होता।

सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी सहकारिता-आन्दोलन को अधिक सफलता नहीं मिल सकेगी। पंजाब की 'जीवन सुधार-समितियों' ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है, फिर भी पंजाब के सहकारिता-विभाग के रजिस्ट्रार ने सन् १९३२-३३ की रिपोर्ट में यह शंका की है कि न जाने इन समितियों को सामाजिक और धार्मिक उत्सवों पर अपव्यय कम करवाने में जो सफलता प्राप्त हुई है उसके लिए आर्थिक कठिनाई कहाँ तक उत्तरदायी है। सामाजिक सुधार स्थायी रूप से तभी संभव हो सकेगा जब शिक्षा और प्रचार के द्वारा प्रचलित कुरीतियाँ दूर हो जायँगी। यह कार्य सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र से बाहर है।

ग्रामोद्धार के कार्य में जहाँ तक आर्थिक उन्नति का प्रश्न है, सहकारिता-आन्दोलन से हमें सहायता की आशा रखनी चाहिए, किन्तु शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुधार के क्षेत्रों में तो हमें सरकार, विशेषकर स्थानीय सरकार के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ेगा। अस्तु, इस समय देश में गाँवों में पंचायतों का यथेष्ट प्रचार अत्यन्त आवश्यक है, और आवश्यकता है उनके अधिकारों में आवश्यक वृद्धि करने की। सहकारिता-आन्दोलन और पंचायतें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार की आवश्यक सहायता मिलने पर ग्रामोद्धार के प्रश्न को सफलतापूर्वक हल कर सकेंगी। हमें पूर्ण आशा है, हमारे कांग्रेसी-मन्त्रिमण्डल इस ओर ध्यान देंगे।

गूँगापन तथा बहरापन

लेखक, श्रीयुत गोरखनाथ पांड़े, बी० ए०, एल-एल० बी०, एल-टी०

पटना के मूकबधिर-विद्यालय के प्रिंसिपल पंडित गोरखनाथ पांड़े गूँगे और बहरे बच्चों की शिक्षा देने में विशेषता प्राप्त कर चुके हैं और वे इस क्षेत्र में तत्परतापूर्वक निरन्तर लगे रहते हैं। इस लेख में उन्होंने अपने स्तुत्य कार्य का भी कुछ परिचय दिया है तथा मूकता एवं बधिरता के रोकने के कुछ उपाय भी बताये हैं।

सन् १९३१ की जन-संख्या के अनुसार भारत में २,३०,८९५ गूँगे हैं। जो केवल बहरे हैं उनकी संख्या इनसे कई गुना अधिक है। जो जन्म से बहरे हैं अथवा एक-दो वर्ष की आयु में बहरे हो जाते हैं वे प्रायः गूँगे होते हैं। यदि पाँच वर्ष की आयु का भी बच्चा बहरा हो जाय तो वह कुछ दिन में बोलना भूलकर गूँगा हो जायगा। गूँगापन एक बहुत भयंकर रोग है, क्योंकि आज तक डाक्टर लोग इसके दूर करने का कोई उपाय नहीं निकाल सके हैं। प्रश्न यह हो सकता है कि गूँगेपन का कारण क्या है। जन-साधारण को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि गूँगापन स्वयं कोई दोष नहीं है। भाषा-सम्बन्धी जो इन्द्रियाँ हमारे पास हैं, गूँगे के भी होती हैं। यथा, जिह्वा, तालु, कण्ठ, ओष्ठ, दाँत प्रभृति जिन अंगों से हम शब्द उत्पन्न करते हैं वे गूँगों के पास भी समानरूप से वर्तमान हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि हम लोगों के कानों में श्रवण-शक्ति है, परन्तु गूँगे सुनते नहीं। यह परमात्मा की दयालुता तथा बुद्धिमत्ता का उदाहरण है कि गूँगा मनुष्य प्रायः बहरा अवश्य होता है। यदि ऐसा न हो तो वह घबराकर पागल हो जाय और अपने तथा औरों को मार डालने पर उद्यत हो जाय। किंचित् विचार करने से हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि यदि हम औरों की बात सुनें, परन्तु बोलने में असमर्थ हों, तो हमारी क्या दशा होगी।



[पं० गोरखनाथ पांडे, प्रिंसिपल]

हम लोग औरों का बोलना सुनकर ही भाषा सीखते हैं। जो भाषा हम बचपन से सुनते आये हैं वही बोलते हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों के जो निवासी कलकत्ते में बस गये हैं उनके बच्चे हिन्दी और बँगला दोनों भाषायें सुगमता से बोलते हैं। उन्हें न तो किसी ने हिन्दी सिखाई, न बँगला। बचपन से दोनों भाषाओं को सुनते सुनते उन्होंने सीख लिया। यदि कोई बच्चा जन्म से कोई भाषा न सुने तो वह सार्थक शब्द न बोल सकेगा। कहते हैं कि सम्राट् अकबर ने इसकी परीक्षा की थी। उसने दो नवजात शिशुओं को एक एकान्त स्थान में रखवा दिया था, जहाँ किसी मनुष्य की भाषा नहीं पहुँच सकती थी। जो उनको भोजन देने जाता था वह स्वयं जिह्वा-रहित था। फलतः वे बच्चे बहुत दिनों तक कुछ नहीं बोल सके। सोलह वर्ष की अवस्था में वे बाहर लाये गये और उन्होंने थोड़े ही दिनों में बोलना सीख लिया। जो बच्चा बचपन से ही बहरा है वह गूँगा होगा। बहरापन कारण है और गूँगापन उसका फल। दोनों में कार्यकारण का सम्बन्ध है।



[(श्रीमती वेदप्रभादेवी) कन्या-विभाग की प्रधान]

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस बहरेपन का गूँगापन सा भयंकर परिणाम होता है उसका क्या कारण है। हरे दो प्रकार के होते हैं। एक जन्म से बहरे, दूसरे जो कसी कारणवश बड़े होने पर बहरे हो जाते हैं। अब तक ज्ञानिक लोग इस बात का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर के हैं कि मनुष्य जन्म से ही बहरा तथा गूँगा क्यों पैदा ता है। हिन्दुओं के 'कर्म-विपाक' में तो इसका विवेचन स प्रकार है कि जो लोग इस जन्म में अपनी जिह्वा तथा ान का दुरुपयोग कर रहे हैं वे दूसरे जन्म में गूँगे और हरे पैदा होंगे। पराई निन्दा और चुग़ली करने का हुतों को व्यसन-सा होता है। बड़े आदमियों के दरबार ऐसे कितने घृणित मनुष्य होते हैं जो इसी की रोटी ाते हैं। कर्म-विपाक के अनुसार ऐसे लोग दूसरे जन्म में शु या गूँगे होंगे।

रोगों के आधिदैविक कारणमात्र बतलाने से आज-कल पाठक सन्तुष्ट नहीं हो सकते, इसलिए पश्चिमी देशों में स विषय की जो खोज हुई है उसको संक्षेप से यहाँ लिखते । बहरापन कभी कभी परम्परागत होता है। माता-पिता से यदि कोई थोड़ा बहरा है तो संभव है, उनकी कोई सन्तान गूँगी हो। यदि माता अथवा पिता के कुल में कोई बहरा या गूँगा रहा हो तो भी गूँगी सन्तान का होना सम्भव है। मेरे स्कूल में दो गूँगी बहनें पढ़ती हैं। वे मुसलमान हैं। उनके माता-पिता सुनते हैं, परन्तु नाना और नानी गूँगे थे, इससे वे भी गूँगी हैं। दिल्ली में एक परिवार की सब लड़कियाँ गूँगी थीं, परन्तु लड़के सुनने वाले। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि माता बहरी थी।

सपिण्ड विवाह की सन्तानें अधिकतर गूँगी होती हैं। हमारे ऋषियों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखकर यह निर्णय किया था कि सपिंड विवाह ही नहीं, किन्तु सगोत्र विवाह भी त्याज्य है। मुसलमानों में निकट के सम्बन्धियों में विवाह बहुत होते हैं। यहाँ तक कि सौतेली बहन के साथ तथा चचा की लड़की के संग भी विवाह होते हैं। फलतः उनमें गूँगी सन्तानों का होना ज़्यादा सम्भव है। ऐसे विवाहों के बच्चे बुद्धि में भी कुछ कम होते हैं। इसलिए विवाह ठीक करते समय जहाँ इस बात का विचार किया जाता है कि जन्म-पत्र में सूर्य और चन्द्र तथा नक्षत्र किस स्थान पर हैं, वहाँ थोड़ा इसका भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उनके माता तथा पिता के कुल में कोई गूँगा या बहरा तो नहीं था।

प्रसव के समय दाई की असावधानी से कभी कभी बच्चे की श्रवण-इन्द्रिय को क्षति पहुँच जाती है। यथा-संभव होशियार दाई को ही प्रसव-कार्य में नियुक्त करना चाहिए। तदुपरान्त बच्चे को उपयुक्त समय पर शीतला का टीका अवश्य लगवाना चाहिए। यह बात निर्विवाद है कि टीका लगे हुए बच्चे को चेचक नहीं निकलती। सन्निपात अथवा किसी प्रकार के कड़े बुख़ार के बाद बहुत लोगों की श्रवण-शक्ति का ह्रास हो जाता है। अकसर बच्चे ऐसे ज्वरों के बाद गूँगे हो जाते हैं। पहले उनकी सुनने की शक्ति जाती रहती है, दूसरों से सुनकर नये शब्द नहीं सीख सकते। तदुपरान्त वे सीखी हुई भाषा भी भूलने लगते हैं। क्रमशः भूलते भूलते कुछ दिनों में एक-दम गूँगे हो जाते हैं। दिल्ली में एक ऐसा ही बच्चा मेरे स्कूल में पढ़ने को आया था। पिता का कहना था कि उस लड़के को पाँच वर्ष की अवस्था में बहुत कड़ा ज्वर आया था। अच्छा होने पर वह बहरा हो गया। बहुत दिनों तक अपनी कह लेता था, परन्तु दूसरों की नहीं सुन

सकता था। कुछ समय के पीछे वह शब्दों को एक-दम भूल गया और गूँगा हो गया। स्कूल में भर्ती होने के कुछ दिनों के बाद उसको भूले हुए शब्द कुछ कुछ याद आने लगे और उसने भाषा सीखने में औरों की अपेक्षा अच्छी उन्नति की। फिर भी उसका बहरापन तो बना ही रहा। बीमारी के समय यदि थोड़ी सावधानी से काम लिया गया होता तो उसकी यह दशा न होती।

ज्यों ज्यों सभ्यता का विस्तार होता जा रहा है, अनेक प्रकार के नये नये रोग उत्पन्न होते जा रहे हैं। विशेषतः गला, नाक, कान और आँख के रोगों में बहुत वृद्धि हुई है। शहरों की हवा हर समय धूल से भरी रहती है। एक मोटर किसी सड़क से निकला क्या कि अपने पीछे पीछे धूल का बवण्डर उड़ाता चला गया। इस धूल के कणों में अनेक प्रकार के रोगों के कीटाणु लिपटे हुए रहते हैं। साँस के साथ हम लोग इन्हीं कीटाणुओं को अपने फेफड़ों के भीतर ले जाते हैं। शरीर के भीतर पहुँचकर ये अपना घर बना लेते हैं और सर्दी, खाँसी, बुख़ार, क्षय तथा अनेक रोगों के कारण बन जाते हैं। साधारण सर्दी या ज़ुकाम की हम लोग कुछ परवा नहीं करते। परन्तु इससे डरना चाहिए, क्योंकि यदि ज़ुकाम के कीटाणु कान में पहुँच जायँगे तो कान बहरा हो जायगा। सर्दी में नाक और गले को हमेशा गरम पानी से धोते रहना चाहिए। गर्म पानी में थोड़ा साधारण नमक और सोडा मिला देना चाहिए। उस पानी को रख छोड़े और दिन में कई बार गरम कर उसी पानी से नाक में नास ले और गले में गरारा करे। इससे ज़ुकाम जल्दी आराम हो जाता है और दूसरे रोगों का आक्रमण भी नहीं होता। स्वस्थ अवस्था में भी नाक और गले को हमेशा साफ़ रखना चाहिए। दिन में तीन बार पानी नाक में ऊपर चढ़ाया जाय और निकाल दिया जाय। पानी को गले में रखकर गरारा किया जाय। इस प्रकार नाक और गला सम्पूर्ण रूप से मल-रहित रखना चाहिए। जब कभी बाहर से आवें, हमको आँख, कान, नाक, गला जल से ख़ूब साफ़ कर लेना चाहिए, जिसमें बाहर के रोग-कीटाणु जो धूल के साथ हमारे भीतर आ गये हों, बाहर निकल जायँ। आज कल प्राचीन बातों का मज़ाक उड़ाने की प्रथा-सी हो गई है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो आचमन,



[प्रथम स्वर का बोध करा रहे हैं।]

अंगन्यास, करन्यास, हस्तपाद-प्रक्षालन इत्यादि की जो प्रथा परम्परा से चली आती है, कुछ वैज्ञानिक अर्थ रखती है। मैं पहले स्वयं ज़ुकाम से पीड़ित रहा करता था। हर आठवें-दसवें ज़ुकाम हो जाता था। जब से नित्य जल-द्वारा नाक धोने लगा, मुझे ज़ुकाम हुआ ही नहीं।

बचपन में अकसर बच्चों के कान बहते हैं। यदि इसका उपाय न किया जाय तो थोड़े ही दिनों में कान में ख़राबी आ जायगी और थोड़ा बहरापन उत्पन्न हो जायगा। यह भी संभव है कि कुछ दिनों में कान का पर्दा एक-दम सड़ जाय और बच्चा बिलकुल बहरा हो जाय। यदि तीन वर्ष की अवस्था तक का बच्चा बहरा हो जायगा तो वह गूँगा भी हो जायगा। इसलिए उचित है कि बहते हुए कान की देख-भाल सावधानी से की जाय। सबसे अच्छा उपाय तो डाक्टर को दिखाना ही है, परन्तु यह जिनकी शक्ति के बाहर हो उनके लिए यहाँ कुछ नियम बतलाये जाते हैं।

साधारण कान के दर्द में रोगी को लेटाये रक्खो और उसके कान के नीचे बोतल या चमड़े के थैले में गरम पानी भर कर रक्खो। दो-दो घंटे पर थोड़ा गरम पानी



[एक गूँगी कन्या को अक्षर का उच्चारण सिखाया जा रहा है ।]

दो-दो, चार-चार बूँद कानों में डालते रहना चाहिए। यदि कान बहता हो तो उसे पहले साफ़ कर लो। दियासलाई इतनी मोटी एक पतली लकड़ी साफ़ कर लो। उसके एक तरफ़ थोड़ी साफ़ रुई लपेट लो। इसी रुई से कान का मल पोंछकर उसे सुखा दो। फिर नीम की पत्तियों को पानी में उबाल कर उस पानी से कान धो लिया जाय। तदुपरान्त सूखी रुई से कान सुखा कर बोरिक एसिड की बुकनी घाव पर छिड़क दो। शहरों में नीम की पत्ती बहुधा नहीं मिलती। उसके अभाव में बोरिक एसिड की बुकनी ही डालकर पानी गर्म कर लिया जा सकता है। कान धोने के काम में उस पानी का उपयोग करे।

सुननेवाला बच्चा बहरा होकर गूँगा न हो जाय, उसके उपाय तो ऊपर लिख दिये। जो जन्म से गूँगे हैं या जिनकी चिकित्सा नहीं हो सकती उनको किसी 'गूँगा-स्कूल' में भर्ती करा देना चाहिए। ऐसे स्कूल कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद और दिल्ली में हैं। पटने के स्कूल को मैंने तथा मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती वेदप्रभादेवी ने खोला है। बिहार के गवर्नर की पत्नी इसकी संरक्षिका हैं और चीफ़ सेक्रेटरी की स्त्री प्रधान। इसमें कतिपय सज्जनों का सहयोग है, जिसमें आरा के रईस बाबू निर्मलकुमार जैन तथा पटना के मजिस्ट्रेट बाबू कृपानारायणसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस स्कूल में लड़के और लड़कियाँ दोनों को पढ़ाने का प्रबन्ध है। गूँगों को बोलना सिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त हिसाब-किताब, पढ़ना-लिखना और कुछ औद्योगिक धन्धे भी सिखाये जाते हैं, जिससे पाठशाला छोड़ने के उपरान्त वे अपना काम चलाने भर का अर्थोपार्जन कर सकें। दान देने के लिए ऐसी संस्थायें अच्छे पात्र हैं, क्योंकि गूँगों को विद्या देने में सहयोग करना जिससे वे अपने जीवन को उपयोगी बना सकें, एक बड़े पुण्य का काम है।

गान

लेखक, श्रीयुत सुबोध अदापाल

मैं ने गाया।
विश्व चराचर रोमांचित हो
ओस-अश्रु भर लाया।
कोकिल ने रोकी निज वाणी, टहनी पर आ बैठी।
दग्ध पपीहे ने 'पी' को तज अपना प्यार भुलाया॥
तारे हो उन्मत्त व्योम में सूर्य-उदय तक घूमे।
स्वरलहरी ने अपनी लय से सोता वृक्ष हिलाया॥
सर्प तान सुन मुग्ध मग्न हो अपने बिल में डोला।
मृग ने पत्नी, शावक के सँग उत्सुक कान लगाया॥
दूर्वादल भी सिहर उठा; पक्षी नीड़ों में दबके।
समाधिस्थ योगी ने उसमें इष्टदेव को पाया॥
सब कुछ मौन शान्त था नभ में, मोहित मग्न जगत था।
उस दिन मैंने निज जीवन में प्रथम बार था गाया॥

बैल

लेखक, पण्डित मोहनलाल महतो

(१)

अपने बैलों को बाँधते बाँधते सुखाड़ी की आँखें छलक आईं। उसने खली और भूसे से भरे हुए हाथों को ऊपर उठाकर अपने अस्थि-चर्मावशिष्ट बाज़ुओं से अश्रुगत धुँधली आँखों को पोंछ लिया और फिर झुककर वह नाद में हाथ डालकर खली को भूसे में मिलाने लगा। दोनों बैल बड़े ज़ोर ज़ोर से साँस लेकर सानी खाने लगे। अच्छी तरह थुथने डुबाकर वे बड़ी रुचि से सानी खा रहे थे और सुखाड़ी आँसू-भरी आँखों से चुपचाप खड़ा खड़ा अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय बैलों को आँखें भर कर देख रहा था। कभी कभी बैल नाँद से थुथना निकाल कर, उठाकर साँस लेते और फिर पेट भरने की ओर ध्यान देते। सुखाड़ी पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा खड़ा यह दृश्य देख रहा था।

संध्या हो गई थी। सुखाड़ी के झोंपड़े में चूल्हा जल रहा था। मिट्टी के तेल की डिबिया चूल्हे के पास जल रही थी। दो-तीन दुबले-पतले बच्चे भोजन की आशा में बैठे थे। उनकी हिलती-डुलती छाया दीवार पर प्रेत की तरह नाच रही थी और सुखाड़ी की स्त्री मिट्टी की हाँड़ी में भात पका रही थी। दरवाज़े पर लकड़ी के किवाड़ों की जगह पर बाँस की टट्टी लगी हुई थी और आँगन में दो-तीन बकरियाँ, एक कोने में, बैठी ताबड़तोड़ छींक रही थीं।

बैलों को सानी देकर सुखाड़ी ने एक लम्बी साँस ली। उसकी दबी हुई, सिकुड़ी हुई, कमज़ोर छाती से अटकती हुई-सी साँस बड़ी कठिनता से बाहर निकली और चुपचाप हवा में मिल गई। यदि दुखियों के गरम उसासों को हवा में से कोई अलग कर दे तो वह इतनी हवा होगी कि उससे एक छोटा-सा देश उड़ा दिया जा सकता है, उसमें इतनी गर्मी होगी कि आधी दुनिया जला डाली जा सकती है, उसमें इतना ताप होगा कि हिमालय की सारी बर्फ़ जल के रूप में बदल दी जा सकती है।

धीरे-धीरे सुखाड़ी ने अपनी चिलम उठाई और आग लेने के लिए चूल्हे के पास चला गया। सुखाड़ी की स्त्री ने कहा—"भात भी बन चुका है। दो कौर खा क्यों नहीं लेते? सारा दिन तो इधर-उधर रहते हो। गरम-गरम थोड़ा-सा भात खा लेने से थकावट मिट जायगी। ठहरो, परोसे देती हूँ।"

सुखाड़ी अनमना-सा होकर बोला—"ठहरो, अभी मुझे बाहर जाना है। जगन साव ने इसी समय बुलाया है।" इतना बोलते-बोलते उसका गला भर आया और पलकें फिर गीली हो गईं।

सुखाड़ी की स्त्री ने स्नेहपूर्ण आग्रह से कहा—"तुम्हें मेरी क़सम। खा लो तब जाना। सिर में दर्द है, प तुम्हारे ही लिए हाँड़ी चढ़ाई है। खाओगे नहीं तो क्य हवा पीकर जीओगे?"

सुखाड़ी की बड़ी लड़की जो ६-७ साल की थी बोली—"बाबू जी, खा लो, मैं भी तुम्हारे ही साथ खाऊँगी कहाँ जाओगे? अम्मा दिन भर रोती रहीं। तुम तो सुब बिना खाये ही चले गये थे।"

तीनों बच्चे सुखाड़ी को घेरकर खड़े हो गये। हारा-स थका-सा, लुटा-सा सुखाड़ी हाथ में चिलम लिये चुपचा खड़ा रहा।

ग़रीबों का स्वर्ग कैसा होता है? क्या स्वर्ग नरक क कल्पना करनेवाले किसी शास्त्रकार ने इस ओर ध्या दिया है?

× × ×

जैसे-तैसे दो कौर पेट में डालकर सुखाड़ी फिर बैल के निकट गया। दोनों जवान और पुष्ट बैल आराम से खड़े खड़े रोमंथ कर रहे थे। सुखाड़ी की आँखों में फिर जल भ आया। विधि का विधान!

(२)

जगन साव जाति का तेली, कर्म का महाजन, स्वभा का पिशाच और सूरत-शकल से पूरा भेड़िया जैसा था काला शरीर, उभरी हुई चिकनी तोंद, बिना बाल की गोल

खोपड़ी और दो पीली-पीली गोल-गोल छोटी आँखें। इरिया भरे हुए दाँतों को निपोर कर जब वह अपने भागे क़र्ज़दारों की ओर घृणा और अवज्ञा-भरी हुई दृष्टि देखता था तब ऐसा जान पड़ता था कि वह सूद के नाम क़र्ज़दारों के शरीर पर की खाल तक नोच लेने का स्ताव उपस्थित करनेवाला है। पचीस रुपये फ़ी सैकड़ा ाज माहवारी पर क़र्ज़ लगाने की उसकी पैतृक आदत । गाँव भर के ज़ेवर उसके यहाँ एकत्र थे, गाँव भर खेत उसके यहाँ बन्धक थे और गाँव भर में वह शैतान तरह मशहूर था। बड़े-बड़े ठाकुर साव जी के सामने ते ही भीगी बिल्ली बन जाते थे। पैसा न केवल सुख हाँ केन्द्र है, बल्कि बल, मनुष्यता, प्रतिष्ठा, ईमानदारी ादि अनेकानेक देवदुर्लभ सद्गुण भी भगवान् टकाचन्द्र के चरणाश्रित हैं। कदर्य जग्गन साव की बात बिकती , वह नरश्रेष्ठ माना जाता था और उसके गुणों का अन्त हीं था। जग्गन ताड़ी पीने का एक ही शौक़ीन था। सियों को कुछ रुपये देकर ब्याज में वह नित्य ताड़ी पीने लालसा पूरी किया करता था और ताड़ी के नशे में पने क़र्ज़दारों के दरवाज़ों पर जाकर ऊधम मचाया करता । यही उसका दैनिक कर्म था।

एक दिन वह सुखाड़ी के द्वार पर झूमता-झामता हुँचा। सुखाड़ी अपने बैलों को सानी दे रहा था। जग्गन आँखों में उसके दोनों बैल बस गये। अच्छी जाति के चे और नौजवान बैलों को देखकर पापी जग्गन का मन ट्टू हो गया। सुखाड़ी ने बड़े सत्कार से अपने अन्नदाता खाट पर बैठाया। अपने हाथ से चिलम भर कर से दी और आप नीचे बैठकर कुशल-संवाद पूछा।

मुँह बाये हुए हक्का-बक्का-सा जग्गन बैलों को एक क देख रहा था। सुखाड़ी की दी हुई चिलम उसके एक थ में ज्यों की त्यों रह गई। कुछ देर ठहर कर जग्गन कहा—"यह जोड़ी कितने में ख़रीदी है सुखाड़ी भैया?" भैया" सम्बोधन सुनकर भोला-भाला सुखाड़ी प्रसन्न हो गा। जग्गन साव के श्रीमुख से इस पवित्र और आत्मी- ापूर्ण सम्बोधन के सुनने की उसे क़तई उम्मीद नहीं । मन ही मन प्रसन्न होकर सुखाड़ी बोला—"तीन-बीसें भाई साहब। सस्ते में सौदा पट गया वर्ना पाँच और वीस में भी ऐसे जानवर जल्दी हाथ नहीं लगते।"

सुखाड़ी झूठ बोल गया। सच्ची बात तो यह थी कि बैलों का जोड़ा उसने १२५) में ख़रीदा था, पर उसे भय था कि कहीं इतना दाम कहने पर जग्गन उसे अधिक क़ीमत देनेवाला मूर्ख न समझ बैठे। अपनी चालाकी का सिक्का जमाने के विचार से ही सुखाड़ी ने आधी ही क़ीमत बतलाई। जग्गन बैलों को एकटक देख रहा था और बातें कर रहा था सुखाड़ी से। वह बोला—"वाह दोस्त! सस्ते में बढ़िया माल हाथ लगा। सच पूछो तो सौ रुपये से कम क़ीमत के ये जानवर नहीं हैं। वाह, जिसके द्वार पर ऐसी जोड़ी बँधी रहे, वहाँ की शोभा का क्या कहना है! जान पड़ता है, जैसे मांटगुमरी की नस्ल हो। आठों अंगों से सुडौल और पानीदार—भई, तुम भी बड़े भाग्यवान हो। इस गाँव में इस जोड़ी का मुक़ाबला करनेवाला कोई नहीं है।"

सुखाड़ी की छाती गज़ भर चौड़ी हो गई। वह अपनी चिलम की राख फूँकता हुआ मानो आनन्द-सागर में डूबने उतराने लगा। जग्गन एकटक बैलों को भूखे गृद्ध की तरह देख रहा था और दोनों अल्हड़ बैल आराम से सानी खा रहे थे। बैलों के देखते देखते जग्गन यह भूल गया कि उसके हाथ की चिलम ठंडी हो चली है। वह आत्म-विस्मृत-सा सुखाड़ी के सौभाग्य को कोसता हुआ बैलों को कुछ देर तक निहारता रहा। फिर धीरे से बोला—"सुखाड़ी भाई, इन्हें तो किसी राजा-बाबू के दरवाज़े पर रहना चाहिए। तुम इनकी सेवा नहीं कर सकते। पाँच दस बीघे का काश्तकार हाथी के इन बच्चों को क्या खिला सकता है?"

सुखाड़ी दीर्घनिःश्वास त्याग कर बोला—"ठीक कह रहे हो भाई साहब। पर एक बात है। तुम जानते हो भाई, ये बैल तो मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं ही, पर मेरे पास जो पिछले वर्ष बैल थे वे इनसे कम नहीं थे। सच पूछो तो मैं अपने जानवरों को जान से, स्त्री-बच्चों से बढ़कर प्यार से रखता हूँ। शौक़ एक चीज़ है जग्गन भाई! अपना और अपने बच्चों का पेट काट कर मैं इन्हें खिलाता हूँ। जब प्रेम से पाला है तब फिर यदि दिल खोल कर इनकी सेवा नहीं करूँगा तो कैसे बनेगा।"

एक गम्भीर "हूँ" कहकर जग्गन साव खाट से उठा। जाते-जाते उसने मन ही मन सुखाड़ी का पूरा हिसाब

के साथ जोड़ लिया—तीस नक़द और चालीस सूद कुल सत्तर! बस, इतने से ही काम चल जायगा। दो आने फ़ी रुपया माहवार सूद के हिसाब से ३॥।) फ़ी मास। दस महीने में हुए कुल ३७॥)। घटा २॥)। ख़ैर, देखा जायगा। वहीं देखने से दो-चार साल की पुरानी बाक़ी निकल ही आयेगी। बराबर का लेन-देन है। जग्गन मनसूबे गाँठता घर पहुँचा।

मन ही मन सत्तर रुपयों का हिसाब बैठाते बैठाते जग्गन घर की ओर चला और सुखाड़ी के हृदय में चोर बैठ गया, क्योंकि चलते समय जग्गन ने कहा था कि कल आ अपने सूद का हिसाब कर जाना। दस मास से कुछ नहीं मिला है। मूल से अधिक ब्याज बढ़ता जा रहा है। इस तरह काम कैसे चलेगा भाई?

सुखाड़ी का कलेजा धक्क से करके बैठ गया। यह कैसी बात है? जग्गन तो बराबर चैत में सूद का हिसाब करता था। यह असमय में वह क्यों रुपये-पैसे की चर्चा छेड़ना चाहता है? सुखाड़ी ने इसे दाल में काला समझा। वह मन ही मन सिहर उठा और सजल आँखों से बैलों की ओर देखने लगा।

(३)

"भेड़िया आया, भेड़िया आया" का झूठा शोर नित्य सुनने के बाद एक दिन सचमुच गुर्राता हुआ भेड़िया झाड़ियों से निकल कर सामने खड़ा हो गया। अब काटो तो बदन में लहू नहीं। जग्गन ने सुखाड़ी से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसे बैलों की ज़रूरत है। असल ब्याज मिलाकर ७०) सुखाड़ी की तरफ़ उसके निकलते हैं। यदि जग्गन के द्वार पर अपने बैलों को चुपचाप सुखाड़ी बाँध आवे तो वह ७०) की वसूली अपनी बही में लिख देने को प्रस्तुत है, वर्ना इसी सप्ताह नालिश कर घर, खेत, बैल सभी हड़प जाने की व्यवस्था करने में जग्गन साव क़तई आलस्य नहीं करेगा।

सुखाड़ी के हाथ के तोते उड़ गये, उसके पैरों के नीचे से मिट्टी खिसक गई। जग्गन के दरवाज़े पर से लौटकर वह पछाड़ खाकर खाट पर गिरा और मुँह छिपाकर, फूट-फूटकर आठ आठ आँसू, रोने लगा। उसने जग्गन के चरणों में बहुत कुछ अनुनय-विनय की थी, चिरौरी-मिन्नत की थी और कहा था कि तुम मेरे अन्नदाता हो। मैं पाई पाई जोड़कर चुका दूँगा। नहीं दे सकूँगा तो तुम्हारी सेवा करके उऋण होऊँगा। तुम्हारे यहाँ झाड़ू लगाऊँगा, उपले थापूँगा, जूठे बर्तन माँजूँगा। परमात्मा ने तुम्हें बहुत कुछ दिया है। तीन-चार मास की छुट्टी दो। मैं रुपये अदा कर दूँगा। ये बैल मेरे बच्चों से भी प्यारे हैं। इन्हें दरवाज़े पर से हटाने मेरी छाती फटती है।

सुखाड़ी की गिड़गिड़ाहट का कोई फल नहीं हुआ। जग्गन और कठोर रुख़ अख़्तियार करता गया। उसे बैलों की वही जोड़ी चाहिए—वही जो सुखाड़ी के दरवाज़े पर उस दिन हाथी के बच्चों की तरह शान से बँधी हुई थी। उसकी लालची आँखों में, जिन आँखों ने सदा दूसरे की वस्तु को हड़प जाने के ही विचार से देखा, वे बैल बस गये थे। जग्गन उन्हें प्राप्त करने के लिए स्वयं बहुत ही उत्सुक था। सुखाड़ी को चलते समय जग्गन ने ज़रा गम्भीर होकर कह दिया—"अच्छी बात है। कल संध्या-समय आकर 'हाँ' 'न' का जवाब दे देना। यदि बैल देना चाहो तो सबसे अच्छा है, नहीं तो मुझे नाहक़ सदर तक दौड़-धूप करनी पड़ेगी। तुम तो जानते ही हो कि नालिश करने से ख़र्च बढ़ जाता है और ख़र्च पड़ेगा तुम्हारे सिर पर। तिल का ताड़ बनाना बेकार है। यदि तुम चाहोगे तो फिर मुझसे कुछ रुपये लेकर दूसरी जोड़ी ख़रीद लाना। क्या ऐसी जोड़ी अब मिलेगी ही नहीं? पर न जाने क्यों मैं तुम्हारे इन बैलों को पसन्द करने लगा हूँ। एक बात और है भाई। तुमसे इनकी सँभाल भी नहीं हो सकती। ख़ैर, कल संध्या-समय मुझे अन्तिम उत्तर दे देना। विश्वास है, तुम नाहक़ परेशानी में पड़ना पसन्द न करोगे।"

जग्गन के इस उपदेश ने सुखाड़ी के हृदय को छलनी बना दिया। उसे अपनी लाचारी पर बड़ा क्रोध आया। ग़रीबी पर वह झुँझला उठा। रह रह कर सुखाड़ी अपने बैलों को देखता और एक लम्बी साँस खींच कर आँखें फेर लेता। सुखाड़ी की स्त्री से यह कथा अगोचर थी। वह यह नहीं चाहता था कि बैलों की बात अपनी पत्नी से कहे। यह उसकी कमज़ोरी थी या सहृदयता, पर सुखाड़ी ने गाँव में किसी से भी इस दुर्घटना की चर्चा नहीं की। एक-दो मित्रों या साथियों के पास गया भी, पर उसका मुँह नहीं खुला। वह घर से गया तो यही

सोचकर कि उनसे जगन की बर्बरता का हाल सुनावें—सम्भवतः कहीं से ६०-७० क़र्ज़ ही मिल जाय या कोई जाकर जगन को ही समझा-बुझा कर चुप करा दे, पर दुर्बलहृदय सुखाड़ी यद्यपि कई जगह गया, तो भी उसने इस बात की चर्चा नहीं चलाई। एक-आध चिलम तम्बाकू पीकर चलता बना। समस्त दिन अर्धविक्षिप्त की तरह गाँव की गलियों की धूल छानता हुआ वह संध्या-समय घर पहुँचा। उस समय बैल खूँटे पर बँधे अपनी बड़ी बड़ी काली आँखों से दरवाज़े की ओर देख रहे थे, मानो सुखाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हों। उसके हाथों की सानी वे पसन्द करते थे। प्रेम का प्रभाव ही व्यापक होता है। इसमें सुखाड़ी की कौन-सी बात है या बैलों की क्या बिसात है। घूमता-घामता थककर सुखाड़ी जब घर लौटा तब उसने अपने बैलों को उत्सुकतापूर्वक दरवाज़े की ओर ताकते देखा। इस दृश्य ने उसके हृदय को पिघला दिया। वह उच्छ्वसित हृदय से बैलों के निकट गया। दोनों बैल सुखाड़ी की दुबली-पतली देह को चाटने लगे। वह भी बड़े प्रेम से उनकी पीठ सहलाने लगा।

संध्या हो गई थी और आकाश में दो-चार तारे टिमटिमा रहे थे, दरिद्र के चिराग़ की तरह। सुखाड़ी की आँखों में जगन की निष्ठुर मूर्ति घूम रही थी। सामने के मैदान को जो सुखाड़ी की लालसा की तरह धीरे धीरे अन्धकार में डूब रहा था, वह खड़ा खड़ा चुपचाप देख रहा था। उसे कभी-कभी अपने ऊपर बड़ा क्रोध आता था। वह कभी कठोर होकर जगन के प्रस्ताव पर विचार करता और कभी डरकर। कभी वह सोचता कि 'यदि मैं साफ़ शब्दों में उसे कह दूँ कि मैं तुम्हारे हाथों अपने प्यारे बैलों को नहीं बेच सकता तो वह मेरा क्या कर लेगा? दावा करेगा अपने रुपयों का। बस इतना ही न? दावा करने से कौन फाँसी हो जायगी। दो-चार साल तक मुक़द्दमेबाज़ी होगी। तब कहीं वह मेरे खेत वग़ैरह पर ढोल बजवा सकता है। क्या इतने दिनों में मैं रुपये का प्रबन्ध नहीं कर सकूँगा? पर बैल दे देने में ही कौन-सा बिगाड़ है? मैंने ग़लती की जो दाम कम बतलाया।" वह बैलों की ओर आँखों में आँसू भर कर देखने लगता तब उसका निश्चय तत्काल बदल जाता।

(४)

फटा-सा कुर्ता पहने और सिर पर फटी-सी टोपी रक्खे सुबह जगन फिर सुखाड़ी के द्वार पर आया। सुखाड़ी का सारा साहस उसका रूखा-सूखा कठोर चेहरा देखते ही काफ़ूर बन गया। जगन की बग़ल में मैले कपड़े में लिपटा हुआ काग़ज़ों का एक बंडल था। जगन को देखते ही खाट पर से उठकर सुखाड़ी ने उसका स्वागत किया—"आओ भैया, इतना सबेरे कहाँ चले?" यह कह कर वह अपराधी की तरह खड़ा हो गया। जगन बोला—"बैठो बैठो। तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं है। मैं सदर जा रहा हूँ। संध्या-समय तुम नहीं आये सो मैंने सोच लिया कि इस समय न तो तुम रुपये दोगे और न बैलों को देकर हिसाब साफ़ कर लोगे। लाचार मुझे आना पड़ा। सदर जा रहा हूँ। कुछ दूसरा काम भी है। यदि तुमने ध्यान नहीं दिया तो फिर...।"

सुखाड़ी सिर से पाँव तक काँप गया। वह घबराया हुआ-सा होंठ चाटता हुआ बोला—"तो फिर इन बातों का क्या अर्थ है भैया? मैं तो तुम्हारा बसाया हुआ हूँ। हुक्म दो तो अभी खेत-मकान सभी हवाले करके एक कपड़े से गाँव के बाहर हो जाऊँ। नालिश करके मुझ मरे को क्यों मारना चाहते हो? कुछ दिन और ठहरो। रुपये अदा कर दूँगा।"

"इस समय मुझे रुपयों की ज़रूरत है"—गरम होकर जगन बोला और काग़ज़ के बस्ते को सँभाल कर बग़ल में दबाने लगा, मानो वह सुखाड़ी को यह कहना चाहता हो कि 'देख रे अभागा किसान, तेरी मौत मेरी बग़ल में है। अगर ज़रा-सी भी सींग पूँछ हिलाई कि फिर ख़ैर नहीं।'

सुखाड़ी बोला—"भैया, नालिश करने से तत्काल रुपये तो नहीं मिल सकते। कुछ तो समय लगता ही है। तो फिर महीना-दो महीना मेरी बात पर ही क्यों नहीं रह जाते?"

"अभी नहीं रह सकता भाई साहब"—जगन बोला।

"तो फिर तुम्हारी मर्ज़ी"—सुखाड़ी ने गिड़गिड़ाकर और कुछ चिढ़कर कहा। यदि तुम्हारी इच्छा ही है तो तलवार से हमारे बच्चों का गला ही क्यों नहीं काट डालते? मेरी देह तो तुम्हारे यहाँ गिरवीं है। इसे चाहो तो कुत्तों को डाल सकते हो। मैं वह आदमी हूँ कि 'चूँ' भी नहीं करने का।" सुखाड़ी का हृदय घृणा और क्षोभ से भर गया। वह उत्तेजित हो उठा। जगन ने उसे इतना गरम होते आज तक कभी नहीं देखा था। उसे कुछ आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर वह था पक्का बनिया। परिस्थिति को गम्भीर होते देखकर उसने अपना 'टोन' बदला। मिलावट के स्वर में जगन बोला—"क्या मैं नहीं समझता भाई? पर लाचार होकर कचहरी की धूल फाँकने जा रहा हूँ। बिना कुछ पाये महाजन को संतोष कहाँ? इसी जेठ में मुझे मँगरी (जगन की बड़ी लड़की) का ब्याह करना है और सभी रुपये फँस गये हैं। कोई कुछ भी देना नहीं चाहता। रामसिंह तीन मास से टरका रहे हैं। सोमरू के यहाँ तीन सौ पचास चाहिए। वह कलकत्ता भाग गया। खेत ज़मीन ज़मींदार ने हड़प कर फ़ुर्सत पाई। बचा मैं, सो हार रहा हूँ। बोलो इस हालत में काम कैसे चल सकता है? तुमसे कहता हूँ कि बैलों को बेच डालो, झंझट मिटे। तुम भी एक नहीं सुनते। आख़िर मैं दावा न करूँ तो क्या बैठा मक्खियाँ मारा करूँ? ज़माना ऐसा टेढ़ा है कि सीधी उँगली घी नहीं निकलता।"

बैलों का नाम सुनते ही सुखाड़ी फिर काँप उठा। क्या सचमुच बैलों को बेंचे बिना अब कल्याण नहीं? जगन ने हठ पकड़ लिया है तो अब उपाय क्या है? पर इतने सुन्दर और मस्त बैल क्या इस तरह हाथ से निकल जायँगे? १२५) का माल ६०-७० रुपये में ही जाना चाहता है। सुखाड़ी का ध्यान रुपयों की ओर भी था और अपने प्यारे बैलों की ओर भी। वह कुछ देर तक स्तब्ध बना रहा, फिर रूखे स्वर में बोला—"ले लो बैल! जब तुम्हारी यही नीयत है तब इन्हें ले जाओ। मैंने अपने बच्चों की तरह इस जोड़ी को पाला था—इन पर मक्खी भी नहीं बैठने देता। जब तुम बैलों को लेकर ही राज़ी हो तो ले लो भाई! मैं तुम्हारा क़र्ज़दार हूँ— मेरा घर, खेत सभी चीज़ें तुम्हारी ही हैं।" इतना बोलते-बोलते सुखाड़ी का गला भर आया। बड़ी कठिनता से आँसू पीकर वह रह गया। घोर निराशा की हालत में झल्लाहट और क्रोध के हमले भी होने लगते हैं। जगन की इस हृदयहीनता पर सुखाड़ी का जी जल उठा था, पर बेचारे के हाथ दबे थे चट्टान के नीचे। पैंचताव खाकर वह रह गया। बेशर्म की तरह खीस निकालकर जगन बोला—"मेरे यहाँ रहकर भी बैल तुम्हारे ही हैं भाई। इसमें अफ़सोस की क्या बात है? क्या मेरे घर को तुम अपना घर नहीं समझते? लेना-देना क्या है? मैं कौन बड़ा भारी सेठ हूँ जो क़र्ज़ लगाऊँ! बनिया का बेटा हूँ और दो पैसे का रोज़गार करके पेट चला लेता हूँ। तो मैं किस समय बैल ले जाऊँ? तुम विश्वास रक्खो सुखाड़ी भाई। तुम्हारे बैलों को मैं जान से बढ़कर प्यार करूँगा। तुम नित्य आकर देख जाना। एक गाँव की बात ठहरी। इसमें संकोच का क्या काम है?"

जगन बोल तो रहा था सुखाड़ी से, पर उसकी लोलुप दृष्टि बैलों को खोज रही थी। इधर-उधर ताक कर वह बोला—"भाई, बैल नहीं नज़र आते? हाँ, तो अब मैं चला। संध्या-समय बैलों को लेते आना। मैं वहीं निकालकर तुम्हारे सामने वसूली-भरपाई लिख दूँगा। असमय हो गया। अब सदर का मोटर भी तो नहीं मिलेगा। अच्छा जै राम जी की सुखाड़ी भाई। संध्या-समय आकर भरपाई की रसीद भी ले जाना और बैल..."

बार बार जगन के मुँह से बैलों का नाम सुनता-सुनता सुखाड़ी मन ही मन झल्ला उठा। क्रोध और क्षोभ के मारे उसका सिर गरम हो गया। फटे हुए टाट के जूतों को घसीटता हुआ जगन अपने घर की ओर चला और कटे हुए वृक्ष की तरह सुखाड़ी खाट पर गिरा।

दिन उठ रहा था। बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। सामने के मैदान की सड़क पर एक क़तार बैलगाड़ियों की जा रही थी, जो देखने में छोटे छोटे खिलौनों-सी दिखलाई पड़ती थी। मैदान धूप में चमक रहा था और दो-चार ताड़-खजूर के वृक्ष सीधे आकाश की ओर तन कर खड़े थे और तेज़ हवा से मैदान में कभी कभी धूलि भी उड़ जाती थी।

सुखाड़ी खाट पर लेटा लेटा चुपचाप इस दृश्य को देखता रहा। कभी वह जगन की बातें सोचकर क्रोध से भर जाता और कभी सिहर उठता। यदि उसने दावा कर दिया तो? खेत-घर सभी एक-दो-तीन! ख़ैर देखा जायगा। पर यह जगन की हृदयहीनता [illegible] हृदयहीनता है। सचमुच महाजनों का हृदय पथरा जाता है!

(६)

जगन बैल लेकर ही शान्त हुआ!

मुखाड़ी बैलों को ख़ुद हाँकता हुआ जग्गन के द्वार तक ले गया। रास्ते में वह किसी से भी न बोला। सारी रात रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। वह अर्ध-विक्षिप्त-सा अपने बैलों को लिये सीधे जग्गन के घर की ओर चला जा रहा था। सुखाड़ी की सूरत डरावनी हो गई थी—डरावनी लाल और भीतर धुसी हुई आँखें और फूले हुए नथने, अस्वाभाविक चाल और अर्थशून्य दृष्टिनिक्षेप! वह सीधे जग्गन के द्वार पर पहुँचा। अपने बरामदे में एक टाट बिछाये वह बैठा था और दो-चार क़र्ज़दार भी बैठे थे। सूद का हिसाब हो रहा था और पन्द्रह दूने बत्तीस का जोड़ हो रहा था। हाथ में पुराना और गन्दा हुक्का लिये जग्गन बोल रहा था—"शिवप्रसादसिंह ने कल दिया २५)—ख़ैर, यह बच्चों का खेल है। झगड़ू पासी भी अब देखता है तो आँखें बचाकर निकल जाता है।" इसी समय सुखाड़ी ने रूखी आवाज़ लगाई—"जग्गन जी, यह लो बैल हाज़िर हैं। कहो, इन्हें कहाँ बाँध दूँ और वहीं निकालकर वसूली दर्ज करो।" इतना बोलकर सुखाड़ी फ़ौजी सिपाही की तरह तनकर खड़ा हो गया और ज़ोर ज़ोर से साँस लेने लगा। दोनों बैल सहमे हुए से खड़े रहे। जग्गन के दरवाज़े पर जितने मनुष्य बैठे थे वे सभी एक साथ बोल उठे—"वाह, कैसी सुन्दर जोड़ी है! सुखाड़ी भाई, तुमने कहाँ से ऐसी जोड़ी पाई मित्र?" सुखाड़ी कुछ भी नहीं बोला। जग्गन ललाट पर चश्मा चढ़ाकर प्रसन्न होकर बोला—"अच्छा! तुम आ गये! ठीक है। इन्हें वहीं सामने खूँटे पर बाँध दो और यह लो भरपाई की रसीद लिखे देता हूँ। ये बैल तुम्हारे ही हैं सुखाड़ी। इस घर को अपना घर समझो।" आनन्दातिरेक में कई क़समें खाकर जग्गन ने सुखाड़ी को यह विश्वास दिलाना चाहा कि यह (जग्गन का) घर सुखाड़ी का है और सुखाड़ी ही जग्गन के घर-द्वार का प्रकृत अधिकारी है। जग्गन बोलता ही गया, पर सुखाड़ी ज्यों का त्यों खड़ा रहा, मानो वह अचानक पथरा गया हो। कुछ देर के बाद उसकी मुट्ठियों से छूटकर बैलों की डोरी नीचे गिर पड़ी। सुखाड़ी की यह दशा देखकर जग्गन कुछ सहम गया, पर तत्काल चौंक कर वह उठा और बैलों को पकड़कर खूँटे से बाँध दिया। बैलों को बाँधकर जब जग्गन ने सुखाड़ी की ओर ध्यान दिया तब उसे बड़े ज़ोर से खेतों की ओर भागते देखा। फिर वह लौटकर नहीं गया।

× × × ×

वर्षों बीत गये। कितने दिन आये और चले गये, कितनी रातें आईं और चली गईं। जग्गन ने भी बैलों को बेंच दिया, पर कभी-कभी सुनसान रात को गाँव के बाहर एक काली मूर्ति अब तक नज़र आती है जो कराहकर ज़ोर ज़ोर से कहती है—"मैं सत्तर क्या, बीस-सत्तर में भी अपने बैलों को नहीं बेचूँगा।"

कुछ लोगों का मत है कि सुखाड़ी की वह प्रेतात्मा है जो 'हाय, हाय' करती चलती है, क्योंकि वह जग्गन के हाथों में बैल सौंपकर जब भागा तब फिर लौटकर नहीं आया। कुछ लोगों के विचार से वह स्वयम् सुखाड़ी है जो जग्गन से बदला लेने की घात में रात को आता है। सुखाड़ी अभी मरा नहीं है। उसे गाँव के कई चालाकों ने भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रूपों में देखा है। जैसे—कलकत्ता में रिक्शा खींचते, धनबाद में कोयले की खान में काम करते, पटना में भुनी हुई मूँगफलियाँ बेंचते, प्रयाग में अमरूद के बाग़ की रखवाली करते। जो हो, पर जग्गन इतना भयाकुल हो गया है कि वह दिन को भी घर से नहीं निकलता। उसे विश्वास है कि सुखाड़ी निश्चय ही प्रेत हो गया है, पर साथ ही उसे यह भी विश्वास है कि अपने जीवनकाल में सुखाड़ी उससे जितना डरता था, मर कर भी उतना ही डरेगा।

राष्ट्र-भाषा की रचना किस आधार पर हो। विद्वान् लेखक ने इसी बात की इस लेख में उपयुक्त प्रमाणों के सहित चर्चा की है।

'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' में 'संस्कृत' का स्थान

लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

राष्ट्र-भाषा के लिए 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी'-शब्द का जन्म भारतीय साहित्य-परिषद् के जन्म के साथ ही नागपुर के 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के अवसर पर हुआ था। राष्ट्र-भाषा के लिए यह शब्द नया था। जो राष्ट्रीय नेता इस शब्द के व्यवहार से पूर्व इसी अर्थ में 'हिन्दी'-शब्द का प्रयोग करते थे वही इस नामकरण-संस्कार के पुरोहित थे। इसी प्रकार की कुछ विशेषताओं के साथ इस शब्द का प्रादुर्भाव होने से इस नूतन नाम पर ख़ूब चर्चा चली। यदि सत्य-निर्णय की भावना से इस प्रकार की चर्चायें चलें तो परिणाम शुभ ही होता है।

राष्ट्र-भाषा के लिए 'हिन्दी'-शब्द ही उपयुक्त है। परन्तु 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' के शाब्दिक झगड़े में पड़कर हम मुख्य प्रश्न से अपने आपको पृथक् नहीं कर लेना चाहते। जहाँ तक 'भारतीय साहित्य-परिषद्' का सम्बन्ध है, वह इस प्रकार के व्यर्थ के झगड़े को शान्त करने की भावना से ही राष्ट्र-भाषा के लिए 'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' शब्द का प्रयोग करने पर बाधित हुई है, क्योंकि इसमें दो पृथक् शब्दों का समन्वय-मात्र है।

राष्ट्र-भाषा का विचार प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता की संकीर्ण दृष्टि से करना राष्ट्र के साथ और अन्ततो गत्वा अपने साथ द्रोह करना है। राष्ट्र अथवा राष्ट्र-भाषा हिन्दू या मुसलमान और उनकी काल्पनिक भावनाओं के आधार पर नहीं चलाई जा सकती। जो लोग भारत को तथा उसकी राष्ट्र-भाषा को सौतेली मा और उसकी भाषा समझते हैं उनकी सुविधा से हम राष्ट्र-भाषा को बिगाड़ नहीं सकते। किसी से डर कर अथवा किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा प्रान्त का पक्षपात कर देश के माननीय नेता इस प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हैं, ऐसा कहना अथवा लिखना अशिष्टता है। साथ ही किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की बात को आँख मूँद कर मान लेना भी आत्महत्या है।

बात यह है कि कुछ लोग भाषा के प्रश्न को सर्वथा सामयिक और कुछ भाषा को कालातीत समझ कर विचार करते हैं। हमें यह ऐकान्तिकता ठीक नहीं प्रतीत होती। हम जिस समय और परिस्थिति में वास करते हैं उससे सर्वथा निरपेक्ष होकर हम राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न ही ले सकते हैं। साथ ही यह भी ठीक है कि भाषा अथवा लिपि का प्रश्न अति सामयिक राजनैतिक प्रश्न भी नहीं हो सकता। इसका समाधान तो देश की आत्मा की दृष्टि से ही होगा, यद्यपि उस आत्मा का पोषण अथवा संस्कार होगा राष्ट्र-शरीर-द्वारा ही। जो लोग मुसलमानों के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए अरबी-फ़ारसी के ग़लत-शलत कठिन शब्दों का प्रयोग करते हैं और इसी को राष्ट्रीयता समझते हैं, जो कृतज्ञता-प्रकाशन के लिए 'कृतज्ञ' शब्द का प्रयोग न कर 'मशकूर' शब्द का प्रयोग करना धर्म समझते हैं तथा दूसरी ओर जो 'मशकूर' शब्द को सुनने के लिए भी तैयार नहीं, जो 'चेअरमैन' न बनकर 'कुर्सीपुरुष' ही बनना चाहते हैं, वे दोनों राष्ट्र की आत्मा को नहीं समझ सके। हम उनसे कहेंगे कि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'—राष्ट्र की आत्मा का साक्षात्कार करो और ऐसा करने के लिए राष्ट्रीय संस्कृति का—अतीत का—मनन और निदिध्यासन करो। ऐसा किये बिना शीघ्रता करने से हानि ही होगी। हम समूचे राष्ट्र की भाषा को संकुचित नहीं बना सकते। ऐसा करने से तो हम राष्ट्र की आत्मा को संकुचित करेंगे। साथ ही यह भी ठीक है कि केवल अरबी-फ़ारसी के शब्दों के भर देने से ही यह व्यापकता न आ सकेगी। प्रान्तीय भाषाओं तथा विशेषतः उत्तर-भारत की ग्राम्य भाषाओं से अनेक उपयोगी शब्द हमें मिलेंगे, उन्हें भी लेना चाहिए।

परन्तु प्रश्न कुछ शब्दों का नहीं अपितु भाषा के आधार का है। हमारी राष्ट्र-भाषा का आधार 'संस्कृत' होगा अथवा 'अरबी-फ़ारसी', यही विचारणीय प्रश्न है। इस पर विचार करना असामयिक नहीं। 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' का विचार करनेवालों को विशुद्ध राष्ट्रीय भाव से

साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। राष्ट्र-भाषा का आधार राष्ट्र होना चाहिए। हम कुछ व्यक्तियों के सुभीते की भाषा को अथवा उनके द्वारा निर्धारित भाषा को राष्ट्र-भाषा अथवा उसकी आत्मा या आधार नहीं मान सकते। हमारी राष्ट्र-भाषा का अर्थ है अन्तःप्रान्तीय व्यवहार में आनेवाली भाषा। उत्तर-भारत की जनता-द्वारा आसानी से समझी जानेवाली भाषा भी राष्ट्र-भाषा इसी लिए स्वीकार की जाती है कि उसमें और प्रान्तीय भाषाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की अधिक शक्ति है। इसी लिए देशी भाषाओं में यही एक भाषा आज भी अन्तःप्रान्तीय व्यवहार में आ रही है। जो लोग यह कहते हैं कि प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा करके राष्ट्र-भाषा का शब्द-भांडार भरा जाना चाहिए उनका ऐसा समझना भ्रम है। यदि हम देशी भाषाओं की सर्वथा उपेक्षा करके कोई नई भाषा अथवा लिपि बनावेंगे तो अनेक वर्तमान भाषाओं तथा लिपियों में 'एक' संख्या-वृद्धि के अतिरिक्त इससे और कोई लाभ न होगा। नई भाषा का निर्माण केवल साम्प्रदायिकता से बचने के लिए ही किया जाता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि राष्ट्र का तथा भावी सन्तति का विचार करके हमें साम्प्रदायिकता को सर्वथा भुला कर उससे भयभीत भी न होकर भाषा और लिपि के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। साम्प्रदायिकता का निवारण भी अविश्वास अथवा आत्म-समर्पण के द्वारा नहीं हो सकता।

यदि हमारी भाषा में विदेशी भाषा के शब्द आ सकते हैं तो उर्दू के शब्दों को निकाल बाहर फेंकने का कोई कारण नहीं। परन्तु राष्ट्र-भाषा का आधार तो संस्कृत-भाषा ही होगा। भारत की प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन करने से प्रतीत होगा कि उन सबका मूल संस्कृत ही है। यही समानता देश की सभी भाषाओं में—नानात्व में भी—एकत्व का साक्षात्कार करा रही है। संस्कृत को राष्ट्र-भाषा का आधार न मानने का अर्थ है भाषा के द्वारा राष्ट्र की एकता को अस्वीकार करना, क्योंकि हमारे देश की भाषा-सम्बन्धी एकता अब तक संस्कृत के ही आधार पर आश्रित रही है।

डाक्टर ग्रियर्सन के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार आर्यों के बाह्य मंडल की भाषा में से ही वर्तमान पश्चिमी पंजाबी, सिन्धी, कच्छी, मराठी, उड़िया, बिहारी, बंगाली और आसामी भाषायें तथा आर्यों के अन्तर्मण्डल की भाषा में से पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली और पहाड़ी भाषायें निकली हैं। पूर्वी हिन्दी में दोनों का मिलावट है।

'हिन्दी याने हिन्दोस्तानी' के पक्षपाती भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं। भारतीय साहित्य परिषद् के मंत्री श्री कन्हैयालाल मुन्शी 'भारतीय साहित्य और भाषा' शीर्षक निबंध में लिखते हैं—

"असली आर्यों की इसी देश-भाषा का आर्यावर्त में जो बोला जानेवाला शुद्ध रूप है वही संस्कृत है। और इसी संस्कृत की मदद से दस-दस बरस के हिसाब से देश-भाषा के भिन्न-भिन्न प्रकार फिर से विकसित हुए। यानी आज की इन ऊपर की भाषाओं पर संस्कृत की यह प्रधानता ज़बर्दस्ती लादी हुई नहीं है बल्कि क़ुदरती है। ये सारी भाषायें संस्कृत-कुल की नन्दिनियाँ—लाड़ली पुत्रियाँ हैं। संस्कृत की रचना इनकी रचना है। संस्कृत की समृद्धि ही इनकी समृद्धि है। संस्कृत की आत्मा इनकी आत्मा है। संस्कृतमय होना ही इनका सर्वसामान्य तत्त्व है और संस्कृत-द्वारा ही ये अपनी एकता प्रकट कर सकती हैं।"

और भी—

"संस्कृत के सामान्य तत्त्व में से यह ऐश्वर्य पैदा हुआ है। और भविष्य की हिन्दी-भाषा में भी इसी तत्त्व की प्रधानता रही तो साहित्य-समन्वय की भाषा की योग्यता को वह प्राप्त कर लेगी।

"शिष्ट साहित्य और उसकी भाषा बाज़ार की चीज़ नहीं। आम जनता को वह कभी सुलभ नहीं होती। हर कोई कारीगर ताजमहल नहीं बना सकता। हर एक देहाती के रहने लायक़ ताजमहल नहीं बन सकता। जिन्हें प्रान्तीय भाषा और राष्ट्र-भाषा-द्वारा कल्पना का ताजमहल बनाना हो और सुन्दरता की सारे हिन्दुस्तान में पूजा करनी हो उनका संस्कृत के सुरम्य संगमरमर की सामग्री लिये बिना छुटकारा नहीं"।

श्री मुन्शी ने इन शब्दों में संस्कृत की उपादेयता को राष्ट्र-भाषा के लिए स्वीकार किया है। उन्होंने

अन्तिम सन्दर्भ में इस सत्य को भी स्वीकार किया है कि बोल-चाल की भाषा और साहित्यिक तथा विशेषतः ऊँचे साहित्य की भाषा में अन्तर रहेगा ही। राष्ट्र-भाषा पर विचार करनेवाले विद्वानों के समक्ष यहाँ हम पिछली जन-गणना में से भाषा-विषयक संख्यायें उद्धृत करते हैं। स्मरण रहे, इन संख्याओं में बर्मा भी भारत में गिना गया है।

सारे भारत में—

(१) देशी भाषा बोलनेवालों की संख्या ३४ करोड़ १८ लाख ८८ हज़ार है।
(२) संस्कृत-परिवार की भाषा बोलनेवाले—२५ करोड़ ३७ लाख १२ हज़ार हैं।
(३) १२ करोड़ २ लाख ३९ हज़ार व्यक्ति हिन्दी (हिन्दुस्तानी) बोलते हैं।
(४) ११ करोड़ व्यक्ति आसानी से हिन्दी समझ सकते हैं।
(५) देवनागरी में लिखी जानेवाली भाषा बोलनेवाले १४ करोड़ ११ लाख २९ हज़ार हैं।
(६) देवनागरी से मिलती-जुलती लिपि में लिखी जानेवाली भाषा बोलनेवाले ९ करोड़ ३३ लाख ५१ हज़ार हैं।
(७) संस्कृत-प्रधान द्रविड़-भाषा बोलनेवाले—
 (क) मलयालम्—९१ लाख ३८ हज़ार।
 (ख) कन्नड़—१ करोड़ १२ लाख ६ हज़ार।
 (ग) तेलगु—२ करोड़ ६३ लाख ७४ हज़ार।
(८) संस्कृतमय भाषा बोलनेवाले—
 (क) तामिल—२ करोड़ ४ लाख १२ हज़ार।
 (ख) दूसरी भाषायें बोलनेवाले—१० लाख।

इन संख्याओं को देखने से ज्ञात होगा कि—

१—भारतवर्ष में प्रतिदस हज़ार व्यक्तियों में ९,९८२ व्यक्ति देशी भाषाओं में ही व्यवहार करते हैं। (अँगरेज़ी को राष्ट्र-भाषा बनाने के इच्छुकों को इस पर ध्यान देना चाहिए)।

२—उपर्युक्त संख्याओं के आधार पर प्रतिशत भारतीय—
 (अ) संस्कृत-कुल की भाषा बोलनेवाले ६५ प्रतिशत।
 (आ) संस्कृत-प्रधान द्रविड़-भाषा बोलनेवाले १३ प्रतिशत।
 (इ) संस्कृत-प्रचुर द्रविड़-भाषा बोलनेवाले ६ प्रतिशत
 (ई) संस्कृत-भाषा और कोश के आधार पर जिनके साहित्य का समन्वय किया जाता है, ९१ प्रतिशत।
 (उ) देवनागरी लिपि को आसानी से स्वीकार कर सकनेवाले ६७ प्रतिशत हैं।

इन अंकों को देख लेने के बाद कोई भी विचारक यह स्वीकार कर लेगा कि भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा का आधार संस्कृत ही हो सकता है। संस्कृत की उपेक्षा करके बनाई गई राष्ट्र-भाषा समूचे राष्ट्र की भाषा कभी नहीं हो सकती।

श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने राष्ट्र-भाषा के क्षेत्र को तीन भागों में बाँटा है—

(१) प्रचार-क्षेत्र—यह काम राष्ट्र-भाषा-प्रचारक समितियों का है।
(२) उर्दू, फ़ारसी और हिन्दी के साहित्यों के विनिमय का क्षेत्र—यह काम हिन्दुस्तानी एकेडेमी का है।
(३) भारतीय साहित्य का निर्माण-क्षेत्र—यह काम भारतीय साहित्य-परिषद् का है।

भारतीय साहित्य का क्षेत्र ही वास्तव में राष्ट्र-भाषा का मुख्य क्षेत्र है। इसका क्या कार्य है, इस बात को श्री कन्हैयालाल मुन्शी के ही शब्दों में सुनिए। वे लिखते हैं—

"साहित्य की राष्ट्र-भाषा आज 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के पैमाने पर अवलम्बित सरल संस्कृतमय ही हो सकती है। और वह सरल संस्कृत संस्कृत-कुल की भाषाओं के सामान्य तत्त्व पर ही रची जा सकती है। इस भाषा के बाज़ार में हर एक प्रान्त का और उर्दू का साहित्य-भंडार भी आकर जमा होगा। इस विनिमय-स्थान में हर एक प्रान्तीय साहित्य और उर्दू-साहित्य अपने काम की पसन्द की हुई चीज़ को ले जा सकेगा। अन्त में साहित्य और संस्कृति की एकता अधिक विस्पष्ट हो जायगी। यह कार्य भारतीय साहित्यपरिषद् का है।"

इस स्पष्टीकरण से 'भारतीय साहित्य-परिषद्' का उद्देश स्पष्ट हो जाता है; इसलिए उसके कार्य पर किसी प्रकार का सन्देह करना ठीक नहीं।

हमारा तो दृढ़ मत है कि उर्दू-फ़ारसी तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का ज्ञान होना चाहिए, परन्तु राष्ट्र-भाषा के सिर पर ज़बर्दस्ती किसी भाषा के शब्दों को लादना ठीक नहीं, साथ ही आनेवाले शब्दों के लिए राष्ट्र-भाषा के द्वार बन्द कर देना भी ठीक नहीं। राष्ट्र-भाषा को विशाल-हृदय बनाना ही ठीक है, परन्तु उसके हृदय को निकाल देने के आन्दोलन का समर्थन कोई भी नहीं कर सकता।

अमरीका के मेरे अजीब तजुरबे

लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना

इस लेख के लेखक खन्ना जी 'सरस्वती' के पुराने लेखक हैं। आप बी० बी० एंड सी० आई० में इलेक्ट्रिकल इंजीनियर हैं। आपने इस लेख में अपने अमरीका के अनुभव लिखना प्रारम्भ किया है, जो प्रतीत होता है, काफ़ी मनोरञ्जक होंगे।

(१)

करीब पचीस वर्ष पहले की बात है। कालेज छोड़े कई महीने हो गये थे और बीच में एक कारख़ाने में ...म करके देश को लौटने के लिए काफ़ी रुपया भी जमा ...र लिया था। देश को लौटने के पूर्व अमरीका की राज...नी वाशिंगटन के देखने की इच्छा थी। देश छोड़ने के ...र्व इलाहाबाद में अमरीका के मुख्य नेता मिस्टर ब्रायन ... मुलाक़ात करने का अवसर मिला था और उन्होंने ...मरीका आने को मुझे प्रोत्साहित किया था। इसलिए ...नसे मिलकर उन्हें धन्यवाद देना ज़रूरी था। इसके साथ ... अमरीका के राष्ट्रपति मिस्टर विल्सन से भी मुलाक़ात ...रने का विचार था। यह सब सोचकर एक दिन रात भर ...-यात्रा कर बड़े सवेरे वाशिंगटन के स्टेशन पर उतरा। ...त भर की यात्रा के कारण शरीर मैला हो रहा था। ...ढ़ी और मूँछ भी बढ़ रहे थे। इसलिए वेटिंग-रूम में ...कर हाथ-मुँह धोया, नई कमीज़ बदली और नया सूट ...नकर हज्जाम की दूकान पर आया।

हज्जाम की दूकान प्लेटफ़ार्म पर ही थी। बहुत सवेरा ...ने के कारण अभी उसमें एक मनुष्य झाड़ू दे रहा था, ...सलिए मैं बाहर ही टहलता रहा। थोड़ी देर के बाद ...न्दर जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

यह सच है कि ग़ुलामों का अपमान सब जगह है, ...हे अपना देश हो, चाहे विदेश हो। देश में अपमान ...ना नहीं चुभता जितना विदेश में। जिन्होंने विदेश-...त्रा की है उन्हें अनुभव हुआ है कि ग़ुलामी के क्या ...ने हैं। हम ग़ुलामों का कोई रक्षक नहीं और न हमारी ...कार कोई सुननेवाला है।

ख़ैर, कुछ देर के बाद उस हज्जाम की दूकान में ...रे ग्राहक आने लगे और उनकी हजामत भी होने लगी। ... चुपचाप बैठा रहा। अन्त में एक हज्जाम मेरे पास ...या और बोला—क्या चाहिए? मैंने कहा—मुझे अपनी दाढ़ी बनवानी है। मेहरबानी कर बना दीजिए। उसने मुँह चढ़ाकर कहा—स्टेशन के बाहर सामने एक दूकान है। आप उसमें जाकर बनवा लीजिए। मैंने कहा—नहीं, मैं तो इसी दूकान में बनवाऊँगा। यह सुनकर वह अन्दर चला गया और मैं बैठा रह गया। थोड़ी देर के बाद एक और हज्जाम निकला और मेरे पास आकर बोला—आपको क्या चाहिए? मैंने कहा—कितनी बार मुझे कहना पड़ेगा कि मुझे अपनी दाढ़ी बनवानी है। यह सुनकर वह भी चला गया। कुछ देर के बाद एक दूसरा मनुष्य आया और मुझसे बोला—इस दूकान में आपकी दाढ़ी नहीं बन सकती। मैंने कहा—क्यों? उसने जवाब दिया—हम निग्रो लोगों की दाढ़ी नहीं बनाते।

मुझे बैठे हुए काफ़ी देर हो गई थी, कुछ भूख भी लगने लगी थी, अतएव इस प्रकार निग्रो बनाये जाने पर बड़ा ग़ुस्सा आया। जवानी की उम्र थी, ख़ून में तेज़ी थी, बिना सोचे-समझे कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और उस अपमान करनेवाले मनुष्य के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। इस पर बड़ी हलचल मच गई। तमाम ग्राहक अपनी कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये और मेरी ऊँची आवाज़ सुनकर स्टेशन से अनेक स्त्री-पुरुष भी अन्दर आ गये। नियमानुसार एक हट्टा-कट्टा पुलिसमैन भी आ गया और लोगों को हटाता हुआ मेरे पास आकर पूछने लगा—क्या बात है? भीड़ और पुलिस को देख हज्जामख़ाने का मालिक अन्दर से निकलकर आया और पुलिस को समझाने लगा कि कोई बात नहीं है, कुछ भी झगड़ा नहीं हुआ, कुछ नासमझी हो गई है, मेहरबानी कर, आप सब बाहर जायँ, अभी शान्ति हो जायगी। इसी के साथ मेरा हाथ पकड़कर, एक हज्जाम की कुर्सी पर बैठाकर, वह कहने लगा—महाशय, आप क्षमा करें, मेरा सेवक जिसने आपका अपमान किया है, बड़ा मूर्ख है, अनजान होने के कारण और बिना मेरी आज्ञा के उसने आपको निग्रो

कह दिया। इसका मुझे बहुत खेद है और मैं स्वयं आपकी सेवा करूँगा। यह कहकर वह नाईवाला ब्रुश गर्म पानी में डाल मेरे गालों में ख़ूब साबुन लगाने लगा। भीड़ भी पुलिस के साथ हट गई और फिर शान्ति स्थापित हो गई, पर मेरा ग़ुस्सा नहीं दूर हुआ।

मेरी दाढ़ी बनाने के साथ साथ वह पूछने लगा—महाशय, आप निग्रो हर्गिज़ नहीं हो सकते, क्योंकि प्रथम निग्रो की इतनी हिम्मत कहाँ कि वह एक श्वेत वर्ण के मनुष्य को तमाचा लगावे, दूसरे आपके बाल घुँघराले होने के स्थान में बिलकुल सीधे हमारी तरह हैं। मैं ग़ुस्से में था और बोला—चुपचाप मेरी दाढ़ी बनाओ। वह फिर बिना बोले अपना काम करने लगा। पर उससे चुप नहीं रहा गया, कुछ देर के बाद फिर बोला—महाशय, क्षमा करना। मैं बहुत उत्सुक हूँ यह जानने के लिए कि आप किस देश के निवासी हैं। क्या आप इटेलियन हैं या मेक्सिकन अथवा दक्षिण-अमरीका के निवासी? मैंने ग़ुस्से में जवाब दिया—नहीं, मैं इनमें से कोई नहीं हूँ।

इसके बाद उसने शान्ति से मेरी दाढ़ी बनाई और मेरे बाल सँभाले। मैं हाथ-मुँह धोकर उसे दाम देने लगा, पर उसने यह कहकर कि उसके नौकर ने मेरा अपमान किया है, उसने दाम लेने से इनकार कर दिया और कहने लगा कि मैं दाम हर्गिज़ नहीं लूँगा, पर यह जानना चाहता हूँ कि आप किस देश के निवासी हैं। चलते समय मैंने कहा कि मैं तुम लोगों को सदा के लिए यह स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि मैं हिन्दुस्तान का निवासी हूँ और यह कह कर मैं स्टेशन के बाहर आया, एक भोजनालय में जाकर खाना खाया और फिर मुख्य मन्त्री मिस्टर ब्रायन से मिलने के लिए रवाना हुआ।

(२)

कालेज में छुट्टी थी और रेलवे के टिकट के दाम में रियायत हो गई थी, इसलिए मैंने भी जगद्विख्यात नियागरा-प्रपात की सुन्दरता देखने का इरादा किया। पिट्सबर्ग-स्टेशन से रात की गाड़ी पकड़ दूसरे सवेरे बफ़ेलो नाम के नगर में पहुँचा और सवेरे का नाश्ता कर प्रपात को देखने निकला। इस निराले दृश्य को देख प्रकृति की महान् कारीगरी पर आश्चर्य होता है। कैसा सुन्दर दृश्य इस प्रपात का है! जल का असीम वेग, इतने अधिक पानी का इतनी उँचाई से नीचे गिरना और फिर चट्टानों से टकराकर भाफ़ की शकल में बनकर मेह की तरह ऊपर आना कितना अच्छा लगता है! इसकी शोभा देखने को बहुत भारी भीड़ जमा होती है, मेला सा लग जाता है। प्रकृति की इस कारीगरी से केवल हृदय को शान्ति और सुख ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु मनुष्य ने उससे आर्थिक लाभ-प्राप्ति करने के यन्त्र भी लगा रक्खे हैं। बिजली की कितनी शक्ति उससे उत्पन्न की जाती है।

इस नियागरा-प्रपात के एक ओर संयुक्त-राज्य है और दूसरी ओर अँगरेज़ों का कनाडा का देश है। प्रपात से नियागरा नाम की जो नदी बनती है उनके ऊपर लोहे का एक लम्बा पुल है, जिसे पार कर कनाडा में जाना होता है। कनाडा के किनारे से प्रपात का दृश्य और भी अधिक सुहावना दीख पड़ता है। इसलिए मैं भी पुल पार जाने की धुन में कनाडा की तरफ़ आया। पुल पार करने के पहले कनाडा की पुलिस ने मुझे पकड़ा। "तुम कौन हो और कहाँ जाना चाहते हो?" मैंने कहा—मैं एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी हूँ और कनाडा की ओर केवल इस प्रपात का दृश्य देखने जा रहा हूँ। उसने कहा—हिन्दुस्तानी को कनाडा में आने की मनाही है, किन्तु यदि तुम मुझे यह वचन दो कि प्रपात का दृश्य देखकर कुछ देर के बाद वापस आ जाओगे तो मैं तुम्हें जाने दे सकता हूँ। मैंने उसे अपना वापसी रेल का टिकट दिखाकर कहा कि यदि मुझे कनाडा में जाने की मनाही है तो मैं जाना भी नहीं चाहता। यह कहकर मैं वापस आया। दिन भर प्रपात के निकट बिता शाम की गाड़ी से फिलाडेलफ़िया नगर आया। मेरा इरादा था कि रात भर फिलाडेलफ़िया के किसी होटल में बिताकर दूसरे दिन नगर की सैर कर लौट जाऊँ।

इस इरादे से अपना हैन्ड-बेग हाथ में लेकर स्टेशन से बाहर आया और एक होटल में घुसा। होटल के बाबू से कहा कि मुझे एक कमरा चाहिए। उसने मेरी शकल देखकर कहा—अफ़सोस! इस समय तमाम होटल भरा हुआ है और कोई कमरा ख़ाली नहीं है। ख़ैर, उस होटल से निकल थोड़ी दूर पर एक और होटल में गया। "क्यों भाई, रात भर सोने के लिए मेहरबानी कर एक कमरा दीजिएगा?" "बड़ा अफ़सोस! कोई कमरा ख़ाली नहीं है।"

इस प्रकार लगातार चार घंटे साढ़े दस बजे रात तक तमाम शहर में चक्कर लगाता रहा कि कहीं भी सोने के लिए एक कमरा मिल जाय, पर कम्बख़्त काली सूरत ने तबाही डाल रक्खी थी। जहाँ जाता, बस होटल भरा मिलता। कोई भी काले आदमी को पैसा लेकर भी मेहमान बनाने के लिए नहीं तैयार हुआ। मैंने एक होटल-वाले से पूछा—भाई, बात क्या है कि आज रात को सभी होटल भर गये? आख़िर मैं कोई निग्रो तो हूँ नहीं कि आप मेरे आने पर एतराज़ करें। उसने कहा—यद्यपि आपके बाल सीधे हैं और आप निग्रो नहीं हैं, तथापि आपका रंग तो काला है। जो अमरीकन यहाँ होटल में ठहरे हैं वे आपके पास आकर आपके बालों की परीक्षा तो करेंगे नहीं। वे तो दूर से देखेंगे कि इस होटल में काले आदमी भी आने लगे हैं और भाग जायँगे। फिर दुबारा नहीं आयेंगे, होटल बदनाम हो जायगा और हमारी बड़ी आर्थिक हानि होगी। इसलिए कोई होटल इतनी हानि सहने के लिए तैयार नहीं है।

आधी रात हो चली थी, सर्दी काफ़ी थी, घूमते घूमते पैर थक गये थे और शरीर में दर्द हो रहा था। क्या करें, कहाँ जायँ? अपने धार्मिक देश की तरह वहाँ धर्मशाले नहीं थे, न वहाँ प्रकृति ही दयावान् है कि खुले आकाश की छाया में कहीं लेट जायँ। मौसम कठोर, मनुष्य कठोर, सभी बातें अपने प्रतिकूल।

रास्ते में एक लम्बा-चौड़ा पुलिसमैन गश्त लगाता हुआ मिला। निकट जाकर मैंने कहा—कृपा कर क्या आप कहीं इस रात तक ठहरने का स्थान बता सकते हैं? मैं एक विदेशी अनजान यात्री हूँ। तमाम शहर में घूम-फिरा हूँ कि किसी होटल में एक कमरा मिल जाय, पर काला होने के कारण मुझे कोई ठहराने के लिए तैयार नहीं होता। उसने कहा—क्या तुमने अमुक अमुक होटल में कोशिश की। मैंने कहा—तमाम होटल छान डाले, पर सफलता कहीं नहीं हुई। कुछ सोचकर वह बोला—अच्छा, आप मेरे साथ आइए। मैं पुलिस-थाने में चलकर अपने इन्स्पेक्टर से सलाह लूँगा। मैं उसके साथ पुलिस-स्टेशन में आया, जहाँ इन्स्पेक्टर से मुलाक़ात हुई। वे बेचारे बहुत परेशान हुए कि क्या किया जाय। आख़िर में बोले—देखिए, रात ज़्यादा हो गई है। मैं एक सलाह आपके सामने पेश करता हूँ। आप विचार करके बोलें कि आपको मंज़ूर है या नहीं। मेरी राय में सबसे अच्छा यह है कि थाने में कई कोठरियाँ ख़ाली हैं। वे सब साफ़-सुथरी हैं और उनमें स्प्रिंगदार गुदगुदे पलँग लगे हुए हैं। यह कहकर वह मुझे कमरे दिखाने ले गया। यद्यपि वे कमरे क़ैदियों के लिए थे, तो भी उस स्वाधीन देश में क़ैदी भी मनुष्य समझे जाते हैं और उनके भी आराम का ख़याल किया जाता है। इसके अलावा एक सोने का कमरा मुझे मुफ़्त मिल रहा था और पैसे की मेरे पास बड़ी कमी थी, इसलिए मैंने धन्यवादपूर्वक इन्स्पेक्टर साहब की मेहरबानी को स्वीकार किया और हैंडबेग में से अपना सोने का कपड़ा निकालकर कपड़े बदल उस क़ैदी के कमरे में मुलायम पलँग पर जिस पर पता नहीं कितने अपराधी सो चुके होंगे, लम्बी लगाई और निरपराधी की गहरी नींद की तरंगें लीं।

दूसरे दिन आठ बज चुके थे जब एक सिपाही ने कमरे पर खटखट करना शुरू किया। उठकर कमरा खोलने पर मालूम हुआ कि इन्स्पेक्टर साहब ने सलाम भेजी है। दाढ़ी-मूँछ बना, हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, इन्स्पेक्टर साहब के घर पहुँचा। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से मेरा स्वागत किया और पूछा कि खटमलों ने तो रात को नहीं सताया। मैंने कहा—मैं इतना थका था कि पलँग से पीठ लगते ही निद्रा ने ऐसा क़ब्ज़ा किया कि मुझे तीन दुनिया का कुछ भी पता न रहा और यदि सिपाही ने उठाया न होता तो कुछ घन्टे और भी सोता रहता। इस पर वह हँस कर मुझे अपने खाने के कमरे में ले गया, अपने परिवार से परिचित कराया और कलेवा करने को कहा। धन्यवादपूर्वक मैंने पेटपूजा की और फिर शहर घूमने निकला। दिन भर चारों ओर की सैर कर रात की गाड़ी ले अपने यूनिवर्सिटी के शहर पिट्सबर्ग वापस आया और फिर अपने काम में लग गया।

नृत्य-गान मानव-जीवन में कितने महत्त्व का स्थान रखते हैं, इस लेख में उसी की ज़ोरदार चर्चा की गई है।

ब्याह-शादी में नृत्य-गान का निषेध

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

पंजाब अपने सामाजिक जीवन में प्रकृति से दूर हटता जा रहा है। 'सभ्य' बनने के चक्कर में पड़कर वह अस्वाभाविक बनना चाहता है। इससे उसकी घोर हानि होना अवश्यम्भावी है। संभव है, भारत के दूसरे प्रान्तों में भी यह रोग फैल रहा हो, परन्तु उनका यथार्थ ज्ञान न होने से उनके सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ नहीं कह सकता।

गाना-बजाना और नाचना-खेलना मनुष्य का एक स्वाभाविक कर्म है। इसके बिना शायद वह स्वस्थ भी नहीं रह सकता। इसी लिए हम संसार के सभी राष्ट्रों—अँगरेज़, जर्मन, फ्रेंच, चीनी, जापानी—को गाते-बजाते और नाचते-खेलते देखते हैं। भारत के पहाड़ी प्रदेशों में भी स्त्री-पुरुष इकट्ठे मिल कर नाचते और गाते-बजाते हैं।

पंजाब में ब्याह-शादी के अवसर पर स्त्रियाँ मङ्गल-गान गाती हैं और हास्य-विनोद करती हैं। जब बरात आती है तब 'सीठनी' भी गाई जाती है। इसमें लड़केवालों को एक प्रकार की मीठी गाली दी जाती है। कहीं कहीं 'सीठनी' गाते समय मर्यादा का उल्लंघन भी हो जाता है। परन्तु अधिकतर चुभती हुई फ़बतियाँ और निर्दोष हँसी ही होती है। हमारे सुधारकों ने अश्लील गाने रोकने के नाम पर स्त्रियों का गाना ही बन्द कर दिया है। बड़े नगरों में पढ़े-लिखे धनी परिवारों के विवाहों में अब स्त्रियों का गाना बिलकुल सुनाई नहीं देता। इसका अर्थ यह नहीं कि विवाहोत्सव में स्त्रियाँ भाग ही नहीं लेतीं। वे ख़ूब सज-धज कर सम्मिलित होती हैं और कदाचित् अपनी दादियों की अपेक्षा पुरुषों से मिलने का उन्हें अवसर भी बहुत अधिक मिलता है। परन्तु अश्लीलता को बन्द करने के नाम पर उनके लिए गाने का निषेध रहता है। स्त्रियों के बदले आर्यसमाजियों के विवाहों में भजनीकों से भजन गवाये जाते हैं। एक तो जो आनन्द सब स्त्रियों के एक साथ मिलकर गाने में होता है वह भजनीक की टूटी डफली पीटने में कदापि नहीं मिलता। दूसरे भजनीकों के गीत प्रायः बेमौक़ा और निर्जीव होते हैं। उनके हारमोनियम और तबले के साथ गाने का वह प्रभाव नहीं होता जो बाजे और तबले के बिना स्त्रियों के गाने का होता है। स्त्रियाँ आशु कवि भी होती हैं। ब्याह-शादी में मौक़े के अनुसार वे तत्काल ऐसा गीत बना लेती हैं कि उसकी चोट सीधी हृदय पर होती है। स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उनमें मनुष्य-समाज का सहस्रों वर्षों का अनुभव-सिद्ध तत्त्व भरा रहता है। उनका एक एक शब्द मर्म को स्पर्श करता है। भजनीकों के भजन अनुभवहीन तुक्कड़ों की तुकबन्दियाँ मात्र होते हैं। सुना है, एक विवाह के अवसर पर एक आर्यसमाजी भजनीक गा रहा था—

हाय रोती है विधवा बेचारी।
कैसी उस पर मुसीबत है भारी॥

किसी सज्जन ने उसे रोका और कहा कि इस शुभ अवसर पर कोई मङ्गल गीत गाओ, तब वह बोला—कोई उपदेश का गीत ही तो गाना ठीक है। सो मेरे इस भजन में बहुत अच्छा उपदेश दिया गया है। आपको इस पर आपत्ति क्यों है?

आर्यसमाजियों की तरह सिक्ख भी ब्याह-शादी पर स्त्रियों को गाने से रोकते हैं। स्त्रियों के बदले उनका कोई डफली-सारंगीवाला रागी या 'भाई जी' 'शब्द-कीर्तन' करता है। कभी कभी ये 'भाई' लोग ऐसे बे-मौक़ा के भजन गाने लगते हैं कि अनायास हँसी निकल पड़ती है। एक 'भाई जी' विवाह में गा रहे थे—

मर ओ ख़समा मर ओ।
तेरे मरेआँ वसदा घर ओ॥

अर्थात् हे ख़सम (पति और क्रोध)! तू मर जा, तेरे मरने से ही घर बसेगा। किसी ने पूछा—भाई जी, इस शुभ अवसर पर यह असङ्गल वाक्य मुख से क्यों निकाल रहे हो? आप बोले—यहाँ ख़सम का अर्थ क्रोध है। मैं उसे ही मारने का उपदेश कर रहा हूँ। भाई जी को इतनी समझ नहीं कि इस उपदेश के लिए क्या विवाह का ही समय उचित है।

मेरे एक मित्र ने सुनाया कि एक सिक्ख राजा के कुँवर का विवाह था। दूर दूर से रागी बुलाये गये थे। एक रागी गाने लगा—अरे बौरे तैनूँ घड़ी न राखे कोई।

अर्थात् हे बावरे, मर जाने पर तुझे एक घड़ी के लिए भी कोई घर में नहीं रक्खेगा। यह 'शब्द' मृत्यु के समय तो उपयुक्त मालूम हो सकता है, परन्तु विवाह में इसका गाना अतीव अमङ्गल-सूचक है। राजा साहब को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने उस रागी का वाद्य छीनकर भूमि पर दे पटका और उसे धक्के मार कर बाहर निकाल दिया।

थोड़े दिन हुए, मुझे एक घोर आर्यसमाजी परन्तु धनाढ्य सज्जन की कन्या के विवाह पर जाने का अवसर हुआ। वहाँ स्त्रियों के गाने का तो निषेध था, परन्तु फ़ोनोग्राफ़ में "बालम आय बसो मोरे मन में" प्रभृति रिकार्ड ख़ूब चल रहे थे। स्त्रियों के गीतों को अश्लील कह कर नाक-भौं चढ़ानेवाले धर्म-ध्वजी स्त्री-बच्चों-समेत सिनेमा में जाकर गन्दे फ़िल्मों के देखने का लोभ-संवरण नहीं कर सकते। देहात में स्त्रियाँ अब तक व्याह-शादी के अवसर पर नाचती-गाती हैं, पुरुषों के साथ हँसी-मज़ाक में गहरी चुटकी भी ले लेती हैं। पर कौन कह सकता है कि व्याह पर गीत न गानेवाली नागरिक स्त्रियाँ देहाती स्त्रियों से अधिक चरित्रवान् होती हैं ?

हँसी-मज़ाक और खेल-कूद का आवेग मनुष्य के भीतर स्वाभाविक है। समय की बाहरी सभ्यता और दिखावे का सौजन्य चाहे इसे असभ्यता कहकर दबाने का यत्न करे, परन्तु इसके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण प्रकृति का एक प्रबल साधन है। इसके द्वारा वह अपने एक महान् उद्देश को सिद्ध करता है। इस साधन को एक-दम विफल कर देना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। मानव-प्रकृति की लालसायें एंजिन में भाफ के सदृश हैं। इनको निकलने का कोई न कोई अवसर मिलता रहना चाहिए, नहीं तो हृदयरूपी बॉयलर के फट जाने की आशङ्का रहती है। हिस्टीरिया, मूर्छा, उन्माद, संज्ञाहीनता आदि रोग इन प्राकृतिक वेगों के निकास में बाधा पड़ जाने का ही परिणाम हैं। आठों याम धर्म-कर्म में लीन रहनेवाले भक्तों और माला फेरनेवाले मुल्लाओं के भयङ्कर पतन का कारण भी इस निकास को धार्मिकता के आडम्बर से रोक देना ही होता है। सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ ये निकास बन्द होते जा रहे हैं। परन्तु भाफ का निकलना आवश्यक है, इसलिए वह अपने निकलने के लिए दूसरे मार्ग उत्पन्न कर लेती है।

हमारी प्राचीन सभ्यता में इस निकास के लिए पर्याप्त मार्ग रक्खे गये थे। होली में लोग मन भर कर हँसी-मज़ाक और नृत्य-गान कर लेते थे, यहाँ तक कि दीवाली के एक दिन के लिए तो जुआ खेलने की भी छुट्टी रहती थी, ताकि मनुष्य की अन्तर्निहित पशु-वृत्तियाँ बाहर निकल जायँ और वर्ष के शेष दिन शान्ति से बीत जायँ। परन्तु अब पश्चिम के बिना सोचे-समझे अंध-अनुकरण में पड़कर हम स्वास्थ्य-रक्षक तत्त्व को भूल गये हैं। इससे गन्दगी पूर्णरूप से बाहर न निकल कर भीतर ही भीतर बुरी तरह से सड़ाँद पैदा कर रही है।

सुधारकों ने व्याह-शादी में सुधार करने का जो यत्न किया है वह बहुत ही भद्दा है। ऐसे अवसर जीवनरूपी कार्यालय में छुट्टी के दिन थे। इन लोगों ने इनमें से भी गान और प्रेम की चमक निकाल दी है। इससे पहले इन अवसरों पर प्रसन्नता का भाग दूल्हा और दुलहिन को उतना नहीं मिलता था, जितना बिरादरीवालों को। महीना महीना भर पहले से नये कपड़े सिलाये जाते थे, गहने बनवाये जाते थे, और एक-दो दिन ख़ूब आनन्द मनाने के स्वप्न देखे जाते थे। महीना डेढ़ महीना भर पहले से लड़कियों का गाना, उनका आनन्द-मंगल, बरातियों का मार्ग में शर्बत-पानी से सत्कार, बरातियों का मार्ग में किसी कुएँ पर हाथ-मुँह धोना एवं पगड़ियाँ सँवारना, ढोल-ढमक्का, समधियों का परस्पर आलिङ्गन, मकानों की छतों पर से स्त्रियों के हास्यपूर्ण गाने, सालियों और दुलहिन की सहेलियों की गहरी चुटकियाँ, ब्राह्ममुहूर्त में विवाह का संस्कार, डोली में से साथ साथ चलनेवाले घुड़सवार की ओर आँख चुराकर देखना, द्वार पर स्वागत के लिए खड़ी हुई सास, चाव से भरी हुई ननदों की आनन्द-पूर्ण आँखें, लजीले मुखमण्डल के इर्द-गिर्द पड़ोसिनों का झुरमुट, दूल्हा की तलमलाहट, उसका बहाने बहाने इधर आना, अन्त को उस नवयुवक की महारानी का घूँघट उठा देना, उसके उबटन की सफ़ेदी, उसके हाथ-पाँव में महावर की लाली। खेद है, आज ये सब बातें एक स्वप्न-सी जान पड़ती हैं।

हमारे सुधारकों को यदि पश्चिम का अनुकरण ही करना था तो उसकी स्वतंत्रता का अनुकरण करते। वहाँ सत्तर प्रतिसैकड़ा विवाहों पर दस-पाँच रुपये से अधिक व्यय नहीं होता। इन अधूरे सुधारों ने तो उलटा हमारे सामाजिक जीवन को नीरस कर दिया है।

वह गान, वह नृत्य, वह क्रीड़ा, वह सावन के नाच, व बैशाखी के राग-रंग, वह खेल और तमाशे, वर्ष भर के इकट्ठे हुए मैल को धोकर साफ़ कर देते थे, जिससे मन बारह मास तक काम करने के लिए तरो-ताज़ा हो जाता था। यही कारण है कि आज-कल के लोग प्राचीन लोगों के बराबर काम नहीं कर सकते।

पाश्चात्य सभ्यता ने इन प्राकृतिक आवेगों के निकलने के मार्ग को बन्द नहीं किया, बरन जहाँ जहाँ आवश्यकता का अनुभव किया है वहाँ इस निकास को स्वीकार कर लिया है। योरप और विशेषतः अमरीका में ३१ आक्टोबर की रात 'हेलोएन रजनी' कहलाती है। इस रात को प्रत्येक नवयुवक एवं नवयुवती को सामान्य से अधिक स्वतंत्रता दी जाती है। इस रात को दबी हुई और बंद रक्खी हुई वासनाओं को निकालने की खुली छुट्टी रहती है। यदि कोई नवयुवक किसी ऐसी स्त्री के प्रति प्रेम प्रकट करता है जिसके साथ वह विवाह-संबंध स्थापित करने के योग्य नहीं होता अथवा जो विवाहित होती है तो वह उसके घर पर जाकर प्रेम-प्रणय के गीत गा सकता है, उससे भेंट कर सकता है और यदि वह विवाहित न हो तो उससे विवाह के लिए प्रार्थना कर सकता है। उसकी प्रार्थना चाहे स्वीकार न भी हो सके, तो भी उसका संदेश अतीव सम्मान और सत्कारपूर्वक सुना जाता है। कई उदार-हृदय रमणियाँ उसको अपने घर के भीतर निमंत्रित करके उसकी सम्मान-वृद्धि करती हैं। इस रात को जिसके साथ जो चाहे, परिचित हो या अपरिचित, हँसी-विनोद किया जा सकता है। इस रात को सारे नगर में यौवन की उमंगें नाचा करती हैं। नवयुवक-हृदय उछलते, खेलते और गाते दिखाई देते हैं। यद्यपि वृद्ध लोग इस 'प्रेम-क्रीड़ा' में भाग नहीं लेते, तो भी नवयुवकों को हँसते, खेलते और गाते-बजाते देखकर वे भी अपने मन की साध पूरी कर लेते हैं। इस रात को कोई व्यक्ति किसी की किसी बात या चेष्टा को बुरा नहीं मानता। सब द्वार खटखटाये जा सकते हैं। राज्य के गवर्नर की लड़की भी यदि निकट से होकर निकल रही हो, जिसे आवश्यकता हो वह उसके हाथ का चुम्बन माँग सकता है।

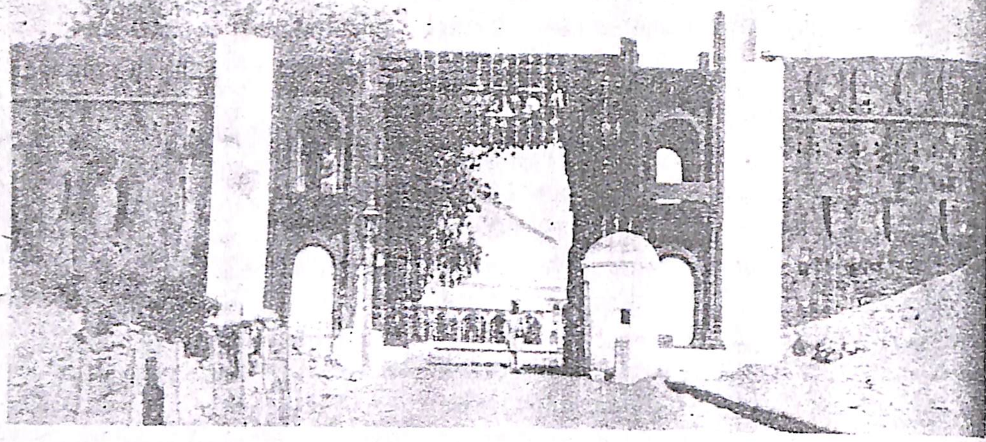
देखा गया है कि इस रात के पश्चात् कितने ही काल तक जोशीले स्त्री-पुरुषों के हृदय सन्तुष्ट और शान्त रहते हैं और चीखना-चिल्लाना बहुत कम हो जाता है।

आज-कल हमारी जो सामाजिक अवस्था है वह न तो प्राचीन है और न अर्वाचीन; वह न तो हमारी अपनी है और न किसी दूसरे की।

आज से कुछ वर्ष पहले गाँव या मुहल्ले की लड़कियाँ गाँव और मुहल्ले के पुरुषों को भाई या पिता के समान समझती थीं और निःसंकोच भाव से परस्पर वार्तालाप कर लेती थीं, काम बताती थीं, जिनके पूरा करने में आनन्द आता था। कोई लड़की या स्त्री ऐसी नहीं थी जिसको गाना न आता हो। आये दिन गाने और नाचने का कोई न कोई पर्व आता ही रहता था और मीठे मीठे सूक्ष्म संस्कारों की लहर अज्ञातरूप से स्त्रियों और पुरुषों के बीच इधर से उधर चलती रहती थी। तब नवयुवक-हृदयों को विशेषरूप से मिलने-जुलने की आवश्यकता वर्तमान काल के समान अधीर नहीं किये रखती थी। घर घर में मूर्छा और हिस्टीरिया इसी अधीरता एवं अशान्ति के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

निर्दोष विनोद और खेल, निर्दोष गान और प्यार मनुष्य की एक विशेष अवस्था में अतीव आवश्यक हैं। जिनको ये समय पर प्राप्त नहीं होते उनके हृदय में से कभी असमय में ये वासनायें निकलकर सबको आश्चर्य-चकित कर देती हैं। वर्षों की तपस्या, वर्षों का संयम, आयु भर का अभ्यास एक क्षण में मिट्टी में मिल जाता है।

सफल और स्वस्थ समाज वही है जिसमें मनुष्य की प्रत्येक अवस्था के लिए गुंजायश है। बच्चे खेलते हैं, नवयुवक गाते एवं प्यार करते हैं, अधेड़ आयुवाले सचाई की तलाश करते हैं, पकी आयुवाले अपने अनुभव अपनी सन्तान को देकर अपनी अवस्थाओं को यात्रा के अन्तिम पड़ाव के निकट पहुँचने की मधुर आशा के साथ धीरे धीरे पग उठाते चले जाते हैं। यही भगवान् की प्राप्ति का सीधा मार्ग और जीवन की तपस्या है।



[पुतरिहा अथवा झूला दरवाज़ा, क़िला रीवाँ।

बघेलखण्ड का कलचुरि-राज्य

लेखक, श्रीयुत लाल भानुसिंहजी बाघेल

डाहल के कलचुरि-नरेश बड़े शक्तिशाली और प्रतापी थे। उत्तर में काँगड़े तक और दक्षिण में गोदावरी तक किसी समय उनकी विजयपताका फहराती थी। उसी राजवंश के सम्बन्ध में इस लेख में कुछ प्रकाश डाला गया है।

वर्तमान 'बघेलखण्ड' प्राचीन 'डाहल-राज्य' का पूर्वी भाग है। नर्मदा और यमुना नदियों के बीच का भूभाग ही डाहल कहलाता था। इसके उत्तर-पश्चिमी भाग को चेदि कहते थे। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में गुजरात से बाघेल लोग यहाँ आये और पूर्वी-डाहल पर अधिकार कर बस गये। तब से उसका नाम बघेलखण्ड पड़ गया। पूर्वी डाहल में पहले कलचुरियों (हैहयों) का राज्य था। रीवाँ-राज्य में उनके भवनों के खण्डहर, उनके बनवाये शिवालय एवं मठ आज भी मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त रीवाँ-राज्य में उनके कई शिलालेख एवं ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए हैं। उनसे भी मालूम होता है कि कलचुरि-वंश एक प्रतापी राजवंश था। इस वंश की १६ पीढ़ियाँ प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों (१२९८ वि०) तक इस प्रान्त पर राज्य करती रहीं[१]। उनमें बीच की तीन पीढ़ियों के गांगेयदेव, कर्णदेव और यशःकर्णदेव नाम के नरेश बड़े प्रतापी हुए हैं।

कर्णदेव को रीवाँ-राज्य में 'करन डहरिया' कहते हैं। 'डहरिया' शब्द डाहल का रूपान्तर है, जिसका अर्थ बघेलखण्डी के व्याकरणानुसार 'डाहल का' अथवा 'डाहल-वाला' होता है, जो कर्ण के डाहलाधिपति होने का ही परिचायक है। रीवाँ-राज्य में कर्ण के समय का एक बहुत बड़ा खण्डहर है, जिसे 'करन डहरिया-टीला' या 'गोर्गी-टीला' कहते हैं। गोर्गी स्थान का नाम है और टीला धुस्स को कहते हैं। अमरकण्टक तीर्थ (रीवाँ-राज्य) में तो अभी तक कर्णेश्वर महादेव का मन्दिर वर्तमान है। करन डहरिया टीला के पत्थरों का शिल्प चन्देलों के खजुराहो (बुन्देलखण्ड) के शिल्प से कम महत्त्व का नहीं है। यह खण्डहर पहले कुछ अच्छी अवस्था में था, किन्तु इसके पत्थर निकाल लिये जाने से अब यह पूर्णरूप से विध्वंस हो गया है। पर राज्य की कृपा से इसका एक दरवाज़ा अब भी अखण्डित रूप से सुरक्षित है। यह पूरा दरवाज़ा उठाकर रीवाँ के क़िले में खड़ा कर दिया गया है। इसमें की पुत-लियों की अधिकता के कारण इसे 'पुतरिहा दरवाज़ा' और पढ़े-लिखे लोग 'झूला दरवाज़ा' भी कहते हैं। इसमें कुछ अश्लील पुतलियाँ भी बनी हुई हैं। कर्णदेव का समय संवत् १०९९ के लगभग निश्चित हुआ है।

यशःकर्णदेव का एक ताम्रपत्र रीवाँ-राज्य में मिला है। उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

स च परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर त्रिकलिंगाधिपति निजभुजोपार्जिताश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति श्रीमद्यशःकर्णदेवः। श्री महादेवी, महाराजपुत्रः, महामन्त्री, महामात्यः महासामन्तः, महापुरोहितः, महाप्रतीहारः, महाक्षपटलिकः, महाप्रमात्रः, महाश्व-साधनिकः, महाभाण्डागारिकः, महाध्यक्षः एतान्याश्च प्रवर्त्तमानग्रामजनपदाञ्चाहूय यथार्हं सम्मानयति, बोधयति, समाज्ञापयति विदितमेतदस्तु भवतां यथा संवत् ८२३* फाल्गुन मासि शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां रवौ संक्रान्तौ वासुदेवो-द्देशे देवग्रामपत्तलायां देउलापंचोलग्रामः ससीमापर्यन्तः चतुराघाटविशुद्धः सजलस्थलः साम्रम धूकः सगर्तोषरः सनि-ष्क्रमप्रवेशः सलवणाकरः सगोप्रचारः सजांगलानूपः वृक्षारा-मोद्भेदोद्यानतृणादिसहितः कान्वसगोत्राय आप्लावन-जामदग्नित्रिप्रवराय वह्वृचशाखिने सो आ पौत्राय छीत पुत्राय गंगाधरशर्मणे ब्राह्मणाय मातापित्रोरात्मनः पुण्ययशोभिवृद्धये अस्माभिः शासनत्वेन सम्प्रदत्तः।

इस ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उस समय के दान कितने निश्चय-पूर्वक एवं स्पष्टता के साथ हुआ करते थे। आज-कल के पाट-पट्टों से इस ताम्रपत्र को मिलाकर देखना चाहिए। आज-कल कितनी गोल-मटोल भाषा का प्रयोग होता है। सचमुच वह सत्ययुग था। इस ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि कलचुरियों का शासन-प्रबन्ध कितने ऊँचे दर्जे का था। उसमें महाराज, महारानी, महाराज-कुमार के अतिरिक्त निम्नलिखित [illegible] कर्मचारी होते थे—

१—महामन्त्री = मुख्य मन्त्री।
२—महामात्य = दीवान या प्राइम मिनिस्टर।
३—महासामन्त = मुख्य योद्धा या सेनापति।
४—महापुरोहित = धर्माचार्य।
५—महाप्रतीकार = राजमहल का मुख्य अधिकारी।
६—महाक्षपटलिक = लेख-विभाग का मुख्य अधिकारी।
७—महाप्रमात्र = न्यायाधीश।
८—महाश्वसाधनिक = रिसाले का मुख्य अधिकारी।
९—महाभाण्डागारिक = मुख्य ख़ज़ांची।
१०—महाध्यक्ष = बड़ा अकाउंटेंट।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात इससे यह ज्ञात होती है कि उस समय स्त्रियों का भी शासन-मण्डल में अधिकार रहता था, जो आज-कल के सभ्य से सभ्य देश में भी कहीं कहीं ही प्रचलित है। उनके महल का मुख्याधिकारी भी शासन-मण्डल का प्रतिनिधि होता था। महारानियों को पर्दा न था। उस समय सेनापति के समान ही महा-श्वसाधनिक का भी मान था।

शासन-मण्डल के इन मुख्य कार्य-कर्ताओं के अति-रिक्त प्रत्येक विभाग में अलग अलग लेखक भी होते थे। और उनका नाम उसी विभाग से सम्बन्धित रहता था, जैसे धर्म-लेखी अर्थात् धर्मविभाग का लेखक। गाँव की सीमायें इतनी निश्चित रहती थीं कि जहाँ कोई प्राकृतिक सीमा नहीं होती थी वहाँ खाई खोद कर सीमा बनाई जाती थी। काग़ज़-पत्र बहुत स्पष्ट लिखे जाते थे। अधिकारों का [illegible] बहुत सूक्ष्म विवेचन किया जाता [illegible]

१—इनकी राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी नगरी थी, जिसे आज-कल तिउरी गाँव कहते हैं। किसी ज़माने में जो राजाओं की राजधानी थी आज वह काछियों का एक गाँव है और जहाँ विद्यापीठ था वहाँ आलुओं के केवल बड़े बड़े खेत हैं।—लेखक।

* यह कलचुरि संवत् है जो ३०६ वि० से प्रारंभ होता है। इस प्रकार इस ताम्रपत्र का समय ११२९ वि० होता है। यही यशःकर्णदेव का समय है।—लेखक

था। दिये हुए गाँवों के दान-पत्रों में जल, स्थल, आम, महुआ, गड्ढा, चुंगी, नमक की खान, गोचर-भूमि, जंगल, कछार, पेड़, बाग़-बग़ीचा और घास तक के दिये जाने का उल्लेख होता था। यह सब देकर भी शासन-प्रबन्ध नहीं दिया जाता था। वह वर्तमान समय की भाँति सुप्रबन्ध के लिए राजाओं के ही हाथ में रहता था। अन्य वृक्षों से आम-महुआ का महत्त्व उस समय भी अधिक माना जाता था। चुंगी उस समय भी लगती थी। नमक गाँव गाँव में बनता था। (जैसा कि अँगरेज़ी राज्य के पहले भारत भर में बनता था) प्रत्येक गाँव में गोचर-भूमि रक्खी जाती थी। गाँव की भूमि दे देने पर भी आज-कल की भाँति उस समय जंगल अलग नहीं माना जाता था, वह भी दे दिया जाता था। धार्मिक कट्टरता उस समय न थी। कलचुरि-नरेश 'परम माहेश्वर परमेश्वर श्री वामदेव-पादानुध्यात' होकर भी अपने दान-पत्रों तक में 'वासुदेवोद्देशे' (विष्णुप्रीतये) शब्द लिखने की उदारता रखते थे। शासन-प्रबन्ध के भी लेखों में संस्कृत-भाषा का व्यवहार होता था। पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट उस समय भी होता था। सर्वसाधारण के लिए नदियों में पुल, पहाड़ों में घाटियाँ और वनों में सड़कें शासकों की ओर से बनाई जाती थीं। औषधालय और विद्यालयों का भी प्रबन्ध रहता था। सदावर्त सब जातियों एवं सब धर्मवालों के लिए समान रूप से मिलता था।

कलचुरियों के राज्य में शिल्प और साहित्य भी अच्छी अवस्था में था। स्थापत्य-कला की उस समय इतनी उन्नति हो चुकी थी कि उनके बनवाये हुए शिवालय सैकड़ों वर्ष बाद आज भी वैसे ही खड़े निज निर्माताओं की यशोराशि अपने शिखरों से विकीर्ण कर रहे हैं! मूर्तियाँ और पुतलियाँ तो उस समय के स्थापत्य-कला की एक विशेष अंग थीं। पत्थर पर खुदे हुए लेखों के अक्षरों की स्वच्छता एवं सुन्दरता का उतना ही ध्यान रक्खा जाता था, जितना आज-कल के अच्छे टाइपों में रक्खा जाता है। संस्कृत-भाषा के बड़े बड़े योग्य पण्डितों को राजा लोग प्रशस्ति-निर्माण के लिए आश्रय दिया करते थे।

कलचुरि-नरेश शैव थे। वे शिवान्त नामधारी (शि[illegible] शिव, प्रभावशिव, प्रशान्तशिव प्रबोधशिव इत्यादि) [illegible] साधुओं के सम्मानार्थ सैकड़ों गाँव देकर उन्हें महन्त ब[illegible] थे।[1] ये साधु लोग आज-कल के गद्दीधर महन्त [illegible] भाँति मठाधीश होते थे। अपनी जागीर का ये लोग [illegible] प्रबन्ध करते थे। सड़क, पुल, घाटियाँ इत्यादि सार्वज[illegible] सुभीते के काम भी बनवाते थे। युद्ध भी करते थे।[2]

शिलालेखों में कलचुरियों की राजधानी त्रिपुरी इन्द्रपु[री] के समान कही गई[3] है। इससे मालूम होता है कि [illegible] समय वह धन-धान्य से पूर्ण एक विशाल नगरी [थी।] उसमें बड़े बड़े गुणी, विद्वान् एवं इंजीनियरों के निवा[स] का भी पता चलता है। त्रिपुरी का समृद्धिशाली हो[ना] संभव भी है, क्योंकि डाहल के कलचुरियों की प्रारम्भ [से] ही वह राजधानी रही है। अतएव जिस नगरी में [illegible] तीन सौ वर्षों तक एक प्रतापी राजवंश की सोलह पीढ़ि[यों] ने राज्य किया हो उसके इन्द्रपुरी के समान समृद्धिशा[ली] होने में क्या सन्देह है?

इन राजाओं का दीवानवंश भी उन्हीं के सम[ान] प्रतापी था[4]। उसके शिलालेख भी रीवाँ-राज्य में, उन[illegible] के बनवाये हुए तालाब पर, प्राप्त हुए हैं।

कलचुरि-वंश का अंतिम राजा त्रैलोक्यवर्मन् १२[illegible] विक्रम में विद्यमान था। उसी समय के लगभग बघे[लों] ने उसकी राजधानी त्रिपुरी पर चढ़ाई करके उसके रा[ज्य] की समाप्ति की थी।

१—अनेकनृपवन्दितः स युवराजदेवेन
यस्तपोधनपतिः कृतः.....................।
युवराजदेव कलचुरियों के तीसरे और सातवें (द्वि[illegible]) राजा थे।—चंद्रेह (रीवाँ-राज्य) के मठ के शिलालेख से।

२—विजितशत्रुवर्गश्च यः।
उक्त शिलालेख से।

३—पौरन्दरीमिव पुरीं त्रिपुरीं पुनानः।

४—यस्यैव बाहोरपि पौरुषेण श्रीकर्णदेवो जित[illegible] रिपूं[illegible]
कस्तरा (रीवाँ-राज्य) में प्राप्त शिलालेख से।

—लेख[क]

धर्मों का भविष्य

लेखक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त

धर्मवादी चाहे कितना ही इस बात को महत्त्वहीन बतलावें, किन्तु सबसे पहली बात जो धर्म के विरुद्ध [कह]ी जाती है, यह है कि संसार में एक से अधिक धर्म हैं और सभी धर्म अभ्रान्त होने का दावा करते हैं। इस [कार]ण से किसी भी व्यक्ति के मन में जिसकी बुद्धि कुसंस्कारों के कारण कुंठित नहीं हो गई है, यह प्रश्न उठेगा कि क्या सभी परस्परविरोधी धर्म सत्य हैं और यदि हैं तो यह कैसे हो सकता है। अवश्य धर्मध्वजियों ने इसका एक टकसाली उत्तर बना लिया है कि सभी धर्म सत्य हैं, फिर भी यह [बात] बुद्धि में ज़रा कम आती है। प्रश्न यह है कि [यदि] सभी धर्म सत्य हैं तो उनकी सम्मतियों में इतना भेद क्यों है तथा इन विभिन्नताओं की आवश्यकता क्या है? धर्मों की विभिन्नता-जनित इस बेढब प्रश्न से बच निकलने के लिए एक आन्दोलन खड़ा किया गया है। इस आन्दोलन को हम सर्वधर्म के ऐक्यसाधन का आन्दोलन कह सकते हैं। सच कहा जाय तो यह आन्दोलन इसी शताब्दी की उपज नहीं है। कबीर, नानक तथा अन्य अन्य लोगों ने अपने अपने ढंग से इस ऐक्य के लिए पहले भी चेष्टा की थी। वर्तमान समय में परमहंस रामकृष्ण इस बात के [प्रवर्त]क समझे जाते हैं। कहा जाता है कि श्री रामकृष्ण परम[हंस] ने सभी धर्मों के मुताबिक़ कुछ दिन साधना की थी तथा [सिद्]धि भी प्राप्त की थी। संयुक्त-प्रान्त के सुप्रसिद्ध दार्शनिक [बाब]ू भगवानदास ने तो अँगरेज़ी में 'सर्वधर्मों की मौलिक [एकत]ा' नामक एक पुस्तक ही लिख डाली है। धर्मों में [विरो]ध तथा विभिन्नता की खाई को जहाँ तक हो सके पाटने [के] लिए तथा उस विभिन्नता के महत्त्व को घटाने के [लिए] ही धार्मिक विद्वानों की यह चेष्टा है। बाबू भगवान-[दास] ऐसे लोगों का आशय स्पष्ट है। वे कहते हैं—"यद्यपि [देख]ने में धर्म विविध तथा विभिन्न हैं, किन्तु असल में वे [एक] ही हैं—कम से कम उनकी मौलिक बातें सब एक ही [हैं; ऊपरी प्र]कार की विभिन्नता से कुछ आता-जाता नहीं है।"

इस प्रकार वे उस सन्देह का निरसन करना चाहते हैं [जो ध]र्मों की विभिन्नता से उत्पन्न होता है। कबीर तथा [नानक] की उच्छवृत्ति से यह समन्वयचेष्टा कुछ विभिन्न है। [कबीर] या गुरु नानक ने अपना अपना अलग सम्प्रदाय स्थापित किया। इसका मतलब यह था कि वे कुछ हद तक प्रचलित धर्मों को गुमराह समझते थे जैसा कि उनके पदों से ज़ाहिर है, जैसे—

अरे इन दोउन ने राह न पाई,
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरुकन की तुरुकाई।
इत्यादि

किन्तु वर्तमान युग की समन्वयचेष्टा में यह उपादान स्पष्ट नहीं है। इसमें तो जिस बात का ढिंढोरा पीटा जा रहा है वह यह है कि अपने अपने ढंग से सभी धर्म उत्तम हैं। इस दृष्टि से मानना पड़ेगा कि वर्तमान युग की यह समन्वयचेष्टा जिसके पैग़ंबर रामकृष्ण परमहंस हैं तथा बाबू भगवानदास आदि जिसके दार्शनिक हैं, कबीर आदि के मतवाद के मुक़ाबिले में अधिक प्राचीनतावादी है। कबीर, नानक आदि व्यक्तियों का, मालूम होता है, यह विश्वास था कि प्रचलित धर्म ग़लत हैं, इसलिए उनको हटाकर एक नवीन मत चलाना चाहिए, किन्तु इन नवीन समन्वय-वादियों में ऐसा कुछ विश्वास नहीं है। तभी तो वे सभी धर्मों को उत्तम बताते हैं। इन लोगों ने शायद अपने पहले के सुधारकों की असफलताओं से भी कुछ शिक्षा ली है।

सभी धर्मवादी इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि वर्तमान युग धर्म के लिए बड़े ख़तरे का युग है। सोवियट रूस में, कहा जाता है, राष्ट्र की ओर से धर्म का तथा धार्मिक मठों आदि का संहार किया जा रहा है, किन्तु धर्म का असली ख़तरा वहाँ नहीं है, क्योंकि तोड़ा हुआ गिर्जा बनने में कुछ विशेष देर नहीं लगेगी। धर्म एक मतवाद है, उसका असली आधार तो अनुयायियों का हृदय है। यदि उसमें उसका तम्बू गड़ा रहेगा तो बाहर के गिर्जे तथा मन्दिर खुदने से कुछ नहीं हो सकता। धर्मवादियों में जो बुद्धिमान् व्यक्ति हैं वे इन बातों से नहीं घबराते। धर्म को असली ख़तरा तो वर्तमान युग के ज्ञानविज्ञान से है। विज्ञान ने एक एक करके धर्म की इमारत से ईंट निकाल-कर फेंक दी है, और अब तो वह एक खण्डहर में परिणत हो गया है। ईसाई आदि धर्मों के अनुसार सृष्टि कोई छः हज़ार वर्ष पुरानी है। विज्ञान ने अब इस बात पर बिलकुल

हड़ताल फेर दी है। धर्मों के अनुसार मनुष्य सृष्टि का मध्यबिन्दु है, किन्तु आधुनिक ज्योतिष ने इस बात को हँसकर उड़ा दिया है। धर्म के अनुसार सदाचार सार्वकालिक है। किन्तु यह भी प्रमाणित हो चुका है कि सदाचार की धारणा न तो सार्वकालिक है, न सार्वदेशिक। स्वयं धर्म के विषय में यह कहा जा रहा है कि वह तो केवल भय का उच्छ्रित रूप है। किन्तु सबसे अधिक भयानक बात तो यह है कि आधुनिक मनोविकलन कह रहे हैं कि सभी धार्मिक महापुरुष ठीक नहीं थे तथा उनकी तुरीयावस्था वग़ैरह केवल मूर्छा की तरह एक अवस्था थी और तुरीय आदि अवस्थाओं को वे दवा की सहायता से प्रत्यक्ष करके दिखा देने का दावा करते हैं।

कहना न होगा कि इन बातों से धर्म को बड़ी चोट पहुँची है, उसकी धज्जी धज्जी उड़ गई है। पहले के ज़माने में जब धर्म का बोलबाला था तब धर्म पर जो आक्रमण होते थे, केवल तर्क-द्वारा होते थे, प्रमाण या प्रयोग-द्वारा नहीं। उस ज़माने में धर्मों की बहुत-सी शक्ति आपस के लतिहाव में क्षय हो जाती थी, उनकी शक्ति उस समय अपरिमित थी। वे ऐसा कर भी सकते थे, किन्तु अब पाँसा पलट चुका है, ज़माना बदल गया है, धर्मों के लिए अपनी ही जान बचानी मुश्किल हो रही है। अब किसी धर्म विशेष का नहीं, किन्तु सब धर्मों के लिए बुरे दिन आये हैं, इसलिए अब पारस्परिक कलह को विसर्जन कर वे सम्मिलित आत्मरक्षा में प्रवृत्त हैं।

धर्मों की इस सम्मिलित आत्मरक्षा का एक स्वरूप सर्वधर्मों का ऐक्यप्रदर्शन है। श्रद्धेय बाबू भगवानदास ने इस ऐक्यप्रदर्शन के लिए वर्षों तक अथक परिश्रम किया है, किन्तु ऐसी चेष्टाओं से धर्म को विशेष लाभ नहीं हो रहा है। बाबू भगवानदास असल में धर्म की आवश्यकता को प्रमाणित करना चाहते हैं तथा यह भी दिखाना चाहते हैं कि धर्म कोई ऊलजलूल चीज़ नहीं बल्कि बिलकुल तर्क-संगत है। इसके लिए वे यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि धर्म से विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। अवश्य इस बात को प्रमाणित करने के पहले उनके लिए यह आवश्यक है कि सब धर्मों की दोस्ती साबित करें। वे ऐसा ही करते हैं। कहना न होगा कि ऐसा करते वक़्त उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार, अर्थात् अपने साध्य के हक़ में धर्मों की ऐसी बातों को थोथी क़रार देकर बिलकुल [छोड़] दिया है जो उनके साध्य के विरुद्ध जाती हैं।

बाबू भगवानदास ने इस प्रकार जो पुस्तक लि[खी है] वह एक वकील की की हुई बहस है, एक विचार[क का] दिया हुआ फ़ैसला नहीं है। उन्होंने एक वकील की [तरह] अपने मुक़द्दमे के दुर्बल भागों को छिपा दिया है [और] सबल भागों पर बड़ा तूमार बाँधा है, जैसे वे ही सब [कुछ] हों। उनकी तरह सुपठित तथा मनस्वी कोई व्यक्ति उन्हीं विषयों पर धर्मों के मौलिक अनैक्य पर कोई पु[स्तक] लिखे तो लिख सकता है, और उसे इसके लिए [और] अधिक धार्मिक ग्रन्थों के वचन मिल जायँगे।

हाँ, तो धर्म को बचाने के लिए जो चेष्टायें हो [रही हैं] उनमें एक यह भी है कि धर्म तथा विज्ञान का सम[न्वय] किया जाय। इस समन्वय शब्द का इस क्षेत्र में व्यव[हार] ज़रा गुमराहकारी होगा, क्योंकि इस 'हाथमिलौवल' [में] गरज़ तो विज्ञान की ज़रा भी नहीं है, अर्थात् वह [चाहे] झगड़ा रहे या न रहे ज़रा भी दबने के लिए तैयार [नहीं] है। सच बात तो यह है कि विज्ञान विज्ञान ही न रहे [यदि] वह दब जाय या अपनी बातों को उससे कम ज़ोर देकर [कहे] जितना उसे कहना चाहिए, अर्थात् प्रयोग-प्रमाण के [बल पर] जितना उसे कहने का हक़ है। धर्मवादी अपने को [धोखा] भले ही दें तथा चाहे दुनिया को भी धोखा देने में [सफल] हो जायँ, किन्तु बात किसी गम्भीर विवेचक की आँख [से] बच नहीं सकती कि यह धर्म तथा विज्ञान के समन्वय [का] रहस्य क्या है। यदि ये लोग धर्म के साथ विज्ञान [के] समन्वय के बजाय धर्म को जहाँ तक हो सके वैज्ञानिक बनाना कहें तो उससे वस्तुस्थिति का अधिक स्पष्ट [निदर्शन] दर्शन सम्भव होगा।

जैसे एक बात को लीजिए कि ईसाई आदि धर्मों [के] अनुसार सृष्टि छः हज़ार वर्ष पुरानी है। अब जब [विज्ञान] ने यह कहा है कि यह बात बिलकुल कपोलकल्पना है, [सृष्टि] इससे कहीं दूर है, तब धर्म ने यह कहा, और कहता [भी] तो मानता कौन कि आओ हम पृथ्वी की उम्र कुछ बढ़ा [दें] तथा तुम कुछ घटा दो। नहीं ऐसी कोई बात नहीं हुई, [बल्कि] धर्म को विज्ञान की बात माननी पड़ी। कुछ धर्मवादियों ने तो इस बात को यों टाल दिया कि धर्म का [मुख्य] साध्य यह नहीं है, इस बात में धर्म की ग़लती साबित [होने] पर उसके मुख्य भाग पर कोई आँच नहीं आती। दूसरों ने कल्पना से काम लिया और उन्होंने कहा कि सृष्टितत्त्व-सम्बन्धी उस अंश का कुछ और ही अर्थ है। एक पादरी ने लिखा है कि ईश्वर ने सृष्टि करने में जो छः दिन लिये उसकी यह व्याख्या है कि वे छः युग थे। इस प्रकार धर्म को विज्ञानानुयायी करने की चेष्टा की गई है।

मुख्यतः धार्मिक विद्वानों की चेष्टायें इस समय आख़िरी दिशा में ही प्रवाहित हो रही हैं। बात यह है कि धार्मिक पुस्तकें ऐसी भाषाओं में लिखी हुई हैं जिनको जन-साधारण नहीं समझते हैं, इसलिए वर्तमान युग के ज्ञान-विज्ञान में सम्पन्न विद्वानों के लिए शास्त्रों का विज्ञानसम्मत अर्थ निकालना बायें हाथ का खेल है। यदि इन महानुभावों का विश्वास किया जाय तो न केवल विज्ञान के छोटे-मोटे सिद्धान्त किन्तु आइनस्टाइन ऐसों के सिद्धान्त भी मुनियों को ज्ञात थे। दिल्लगी यह है कि जब कोई वैज्ञानिक सिद्धान्त निकल जाता है, तभी ये लोग झट पोथी-पत्रा लेकर कहने लगते हैं कि यह तो धर्म को पहले से ही ज्ञात था।

इस क्षेत्र में अर्थात् हिन्दू-शास्त्रों का विज्ञानानुयायी व्याख्या करने में सबसे प्रमुख विवेकानन्द, अरविन्द, भगवानदास तथा राधाकृष्णन हैं। ऐसे लोगों के दो प्रमुख उद्देश हैं। एक तो यह कि धार्मिक पुस्तकों की तथा सिद्धान्तों की विज्ञानानुयायी व्याख्या करना, दूसरा विज्ञान में कमी बतलाकर धर्म के लिए गुंजाइश बनाये रखना। बहुत-से बड़े बड़े वैज्ञानिक भी इस अन्तिम चेष्टा में धर्मवादियों का साथ दे रहे हैं, जिनमें जीन्स, एडिंगटन, ओलिवर लाज आदि प्रमुख हैं।

ऊपर जो बातें बतलाई गईं उनमें कोई भी बात धर्म के लिए अधिक सम्मान की नहीं है, क्योंकि इन सभी क्षेत्रों में विज्ञान के सामने धर्म घुटना टेकता नज़र आ रहा है। इसको धर्म और विज्ञान का सामञ्जस्य कहना बिलकुल सत्य का अपलाप करना है। इसी तरह एक एक करके धर्म के शरीर के अंग कटते जा रहे हैं।

धर्म का मूलोच्छेद एक और तरह से हो रहा है। वह है हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा जैसी घटनायें। इन घटनाओं से विचारशील व्यक्ति के हृदय में जो तुमुल सन्देह का उद्गम होता है उससे धर्म की नींव बिलकुल बैठती जा रही है। लोग धर्म को एक भयङ्कर उत्तेजक या विनाशकारी अफ़ीम जैसी वस्तु समझने को बाध्य हो रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम-दङ्गा ऐसी घटनाओं से एक तरफ़ कुछ लोग कट्टर अवश्य हो रहे हैं, किन्तु दूसरी ओर कुछ लोग बिलकुल धर्म पर सन्दिग्ध होते जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त धार्मिक संस्थाओं की कार्रवाइयों से तथा धार्मिक पुरुषों के आचरण से लोगों के दिल धर्म के प्रति खट्टे हो गये हैं। एक ज़माना था जब इन धार्मिक महन्तों के आचरण में कोई भी अनियमितता होती तो लोग उसे श्रद्धावश नहीं देखते थे या उसको एक अलौकिक दृष्टि से देखते थे। उस ज़माने में ग्यारह शादी करनेवाला महात्मा स्वर्ग का मार्गदर्शक समझा जा सकता था, किन्तु अब वह युग चला गया। लोग तो अब हर एक बात पर तर्क करने को उतारू हैं, लोग अब चाहते हैं कि हमारे आचरण में तथा वाक्य में समता हो। अन्धश्रद्धा तथा विश्वास का युग चला गया, धर्म के लिए अब गुंजाइश कम रह गई है।

इतना होते हुए भी धर्म का कर्तृत्व जारी है, लोग पग पग पर धर्म की शरण में जाते हैं। इसकी वजह क्या है? बाबू भगवानदास जी कहते हैं—

"धर्म को सफलतापूर्वक निर्वासन देने के निमित्त यह आवश्यक है कि वे पहले दुःख तथा मृत्यु को मिटा दें। जब तक मनुष्य इनके शिकार रहेंगे तथा इनसे झिझकेंगे, वे अवश्य ही धर्म से सान्त्वना की आशा रक्खेंगे।"

बाबू भगवानदास ने यहाँ इसी बात को प्रमाणित कर दिया है कि धर्म वास्तव में भय का उच्छ्रित (Sublimated) रूप है। अस्तु।

ऊपर मैंने बाबू भगवानदास की पुस्तक से जो अंश उद्धृत किया है उसमें एक बात द्रष्टव्य है, वह है 'सान्त्वना' शब्द। इसमें सन्देह नहीं कि धर्म झूठी सान्त्वनायें देता है, किन्तु यह भी बात है कि वह पहले कुछ हद तक कृत्रिम दुःख तथा समस्या की सृष्टि करता है, फिर उनका समाधान करता है। जहाँ सान्त्वना नहीं है, वहाँ पहले तो सान्त्वना की आवश्यकता तीव्र रूप से सृष्टि करना, फिर झूठी सान्त्वना देना, यह धर्म का ही काम है।

किन्तु धर्म आज दिन जिस बात पर क़ायम है वह दूसरी ही बात है। कुछ ही विचारशील व्यक्तियों के हृदय में मृत्यु आदि का विचार आता होगा। जनसाधारण तो

धर्म को मानते हैं, क्योंकि उसके बिना माने उनका रोज़-मर्रा का ज़रा ज़रा-सा काम नहीं बनता। धर्म का जाल बड़ा विस्तृत है। उसने हमारे नित्य के काम में अपने को इस प्रकार उलझा रक्खा है कि हम उसके बग़ैर एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। यदि हमारे घर में कोई मर गया तो धर्म की सहायता के बिना अर्थी नहीं उठ सकती, यदि विवाह है तो उसमें भी धर्म की सहायता चाहिए, कोई लड़का उत्पन्न हुआ तो उसमें भी धर्म को बुलाना पड़ेगा। इस प्रकार हमारे सुख में तथा दुख में धर्म ने इस क़दर टाँग उलझा रक्खी है कि उसकी हरकतों को जानते हुए भी हम उसकी शरण में जाने को विवश होते हैं।

यही धर्म की शक्ति का असली रहस्य है। धर्मवादी भी इस बात को ख़ूब समझते हैं। वे जानते हैं कि तर्क तथा विचार के क्षेत्र में धर्म की कितनी ही हेठी हो, किन्तु जब तक जीवन की छोटी छोटी बातों में उसका चलन है तब तक उसको कोई नीचा दिखानेवाला नहीं है। धर्मविरोधी भी इस बात को ख़ूब समझ चुके हैं।

धर्म एक और प्रकार से अपना मायाजाल बिछाता है। यह जाल इतना सूक्ष्म है कि हमें पता नहीं लगता कि हम फँसते जा रहे हैं। धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, एक साथ उठना-बैठना, बड़ी इमारतें, मृतभाषा इत्यादि से हमारे ऊपर एक रोब छा जाता है तथा हमें मालूम होने लगता है कि हम एक दूसरी दुनिया में आ गये।

पर लोगों ने अब हर तरह से धर्म की पोल देख ली है, इस सम्मिलित आक्रमण से आत्मरक्षा करना धर्म के लिए कठिन है। फिर भी कुछ विद्वान् विज्ञान की कुछ कमियों की सुविधा उठाकर धर्म का एक ढाँचा गढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि मान भी लिया जाय कि वे इस उलट-फेर (Distortion) के कार्यक्रम में सफल होंगे तो भी उसमें से धर्म का जो रूप निकलेगा उसका प्रचलित धर्मों के चेहरों से मेल बिलकुल नहीं मिलेगा। यह तो सुनिश्चित है कि वर्तमान रूप में धर्मों का उच्छेद आगामी पचास साल के अन्दर अनिवार्य है।

गीत

लेखक, श्रीयुत श्रीनारायणलाल कटरियार

झन झन झन झन ख़ूब झनक लें आज हमारी प्यारी कड़ियाँ
क्या जाने कल आयेंगी फिर ऐसी पावन सुखमय घड़ियाँ।
थका हुआ दिन भर का पंछी नीडों में अब सोता होगा
तरु पर तिनकों की कुटिया में सुन्दर स्वप्न सँजोता होगा।
लेकर गोद सुलाती थपकी दे दे पत्तों की हरियाली
ओसकणों पर आज़ादी का बीज उषा में बोता होगा।
लूट न जीवन की अभिलाषा तृष्णा यह मोती की लड़ियाँ
झन झन झन झन ख़ूब झनक लें आज हमारी प्यारी कड़ियाँ।
शतदल के अन्तर में बन्दी बनी हुई मधुपों की टोली
चातक बोल न धधक उठेगी ज्वाला दिल में ऐसी बोली।
आज सलोनी राका बचपन की स्मृतियों का चित्र बना दे
इस पत्थर में फूल खिलाकर भर दे मेरी ख़ाली झोली।
आज नहीं कल बिखर पड़ेंगी जीवन की कोमल पंखुड़ियाँ
झन झन झन झन ख़ूब झनक लें आज हमारी प्यारी कड़ियाँ॥

महाकवि अलसानि पेद्दना

लेखक, श्रीयुत जे० योगानन्दम्

दक्षिण-भारत का विजयनगर-राज्य ईसवी सन् की १६ और १७ वीं शताब्दी में अभ्युदय को प्राप्त था। इस राज्य के अधिपतियों में कृष्णदेव राय एक महा-पराक्रमशाली, अतीव मेधाबुद्धिबल-संपन्न और साहित्य के आधारस्तंभ नरेश थे। इनके काल में आंध्र-कविता का पूर्ण विकास हुआ था। इनके दरबार के कवियों में आठ महाकवि थे, जो 'अष्ट दिग्गज' के नाम से विख्यात थे। उनमें महाकवि पेद्दना सर्व-शिरोमणि थे।

कृष्णदेव राय स्वयं भी कवि थे। उन्होंने भी कई एक काव्य लिखे हैं। परंतु उनकी रचनाओं में केवल 'मुक्तमाल्यद' नामक काव्य ही प्राप्य है। और इस एक काव्य पर से ही वर्तमान आंध्र-साहित्याचार्य उन्हें एक श्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकार करते हैं।

महाकवि पेद्दना नंदवरीक वंशी ब्राह्मण थे। वे चोकन्ना-मात्य के पुत्र थे। उन्होंने तत्कालीन प्रथा के अनुसार अपने सभी ग्रंथ-काव्य, प्रबन्ध इत्यादि संस्कृतांध्र-भाषा में लिखे हैं, साधारण बोलचाल में नहीं। उन्होंने 'मनुचरित्र', 'हरिकथासार', 'सीसपद्यशतक' इत्यादि कई कविता-ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु इनका 'मनुचरित्र' अधिक प्रतिष्ठाप्राप्त है।

महाकवि पेद्दना ने 'मनुचरित्र' की रचना मार्कंडेय-पुराण की एक कथा के आधार पर की है और इसमें कुशलता के साथ शृंगार आदि रसों का समावेश किया है। जिस प्रकार राजा दिलीप के वृत्तान्त से कथारंभ कर कालिदास ने 'रघुवंश' को अग्निवर्ण के वृत्तान्त से समाप्त किया है, उसी प्रकार पेद्दना ने मार्कंडेयपुराण के स्वारोचिष मनुसंभव के कथानक को लेकर आदि में क्षितिदेवाग्रगण्य प्रवराख्य तथा वरुथिनि नामक अप्सरा के मिलाप के वृत्तांत को शृंगार-रस-पूरित शैली में वर्णन कर क्रमशः स्वरुचि और स्वारोचिष मनु की गाथा को सरस पद्यों में लिखकर ग्रंथ का अन्त किया है। इस श्रेणी के विच्छिन्न कथामय ग्रंथ संस्कृत अथवा संस्कृतांध्र दोनों साहित्यों में बहुत कम हैं। कारण यह है कि इस नमूने के प्रबन्ध लिखने में अद्वितीय मानवस्वभाव-ज्ञान तथा वाचकों का ध्यान और अनुराग प्राप्त करने की अपूर्व शक्ति आवश्यक है और जो कवि ऐसे कठिन कार्य को रुचिर छन्दों में जीवन के वास्तविक अनोखे चित्रों को गढ़ कर वाचकों को आनन्द प्रदान कर सकता है वह यथार्थ में महाकवि कहलाने के योग्य है। इसी लिए कृष्णदेव राय ने उनकी महत्ता को परख कर, उन्हें आंध्रकविता के पितामह की पदवी दी थी।

पेद्दना केवल ग्रंथकर्ता ही नहीं, बल्कि एक अनुपम आशुकवि भी थे। 'कवि गंडपेंडेर' नामक सुवर्ण कंकण उन्हें इसी प्रतिभा के उपलक्ष्य में मिला था। कहते हैं कि राजा ने उक्त कंकण बनवाकर भरे दरबार में 'अष्ट-दिग्गजों' तथा अन्य पंडितों के समक्ष रखकर यह समस्या दी थी कि जो कोई उसी जगह निष्प्रयत्न कविता-स्वरूप शुद्धांध्र तथा संस्कृतांध्र काव्य की सरसता का वर्णन करेगा उसको वह कंकण प्रदान किया जायगा। उस पंडित-समूह में से केवल पेद्दना ही उठे और उन्होंने धारा-वेग से २९ पंक्तियों की एक अति सरस तथा मधुर कविता उत्पलमाला-वृत्त में बनाकर सुनाई और राजा एवं पंडित-मंडली को विस्मयानन्द-पूरित किया।

आश्चर्य की बात यह है कि बिना पूर्व-विचार या परिश्रम के उन्होंने जो २९ पंक्तियाँ तत्काल रचकर सुनाई थीं उनमें अद्वितीय रचनाचातुर्य भी दिखाया था। पहले की १६ पंक्तियों में शुद्धांध्र काव्य का वर्णन करते समय उन्होंने एक भी संस्कृत-शब्द का प्रयोग नहीं किया और शेष १३ पंक्तियों में संस्कृतांध्र-साहित्य का सौंदर्य बखान करते समय सिवा क्रिया-पद तथा प्रत्ययों के उन्होंने आंध्र शब्द का प्रयोग नहीं किया। फलतः राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें उक्त कंकण से पुरस्कृत किया। उनका ऐसा ही आशुकवित्व था।

पेद्दना की कविता शृंगार-रस से पूर्ण है। आंध्र मनुष्य स्वभावतः शृंगार और सौंदर्य का प्रेमी होता है। क्या आंध्र इमारतें, क्या वहाँ के सोने-चाँदी के काम तथा इतर हस्तकलायें, सबमें एक अप्रतिम सौंदर्य की छटा और झलक दीख पड़ती है। यदि आंध्र कवि शृंगार-रस के प्रेमी न होते तो संस्कृत के शकुंतला और नैषध-काव्य आंध्र-भाषा में परिणत होते समय 'शृंगार शाकुंतल' और

'श्रृंगार नैषध' का रूप न लेते। १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दी के आंध्र ग्रन्थ श्रृंगार-रस-पूरित हैं। श्रीमदांध्र भागवत जैसे धार्मिक तथा भक्तिपरक पुस्तकों में भी अवसरानुकूल श्रृंगार का अति रुचिर वर्णन किया गया है।

परन्तु पेद्दना ने सामाजिक आदि विषयों का भी प्रतिपादन करते हुए वैदिक सम्प्रदाय के चतुर्वर्णात्मक सामाजिक सिद्धान्त को तथा आचार के कट्टरपन को पूर्ण रूप से चित्रित किया है। समाज का वह स्वरूप उत्तर-भारतीयों के विभिन्न-जीवन तत्त्वों की कसौटी पर असंभव अथवा उपेक्षास्पद मालूम हो सकता है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से कवि ने स्वानुभव से वास्तव में देशकालानुसार लोकमान्य सिद्धान्तों या ध्येयों की गंभीर नींव की दृढ़ता ही दिखाई है।

इसी लिए आंध्र-कविता-पितामह अलसानि पेद्दना ने भाषा और भाव के लावण्य से, प्रचलित सामाजिक तत्त्वानुरूप सुपात्रों की सृष्टि से, प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन में तथा मनुष्य-स्वभाव-निरूपण में अलौकिक दृष्टि से 'मनुचरित्र' जैसे वस्त्वैक्यरहित श्रव्यकाव्य को एक महान् रोचक साहित्य का नमूना बनाने में यश पाया है।

इन महाकवि की रचना-चातुर्य का कुछ दिग्दर्शन कराने के लिए यहाँ हम इनके 'मनु-चरित्र' काव्य के कुछ पद्य भावार्थसहित उद्धृत करते हैं।

इस काव्य के द्वितीय आश्वास में प्रवराख्य नामक ब्राह्मण एक सिद्ध के प्रसाद से स्वकामनारूप हिमगिरि पर जाकर फँस जाता है और, वहाँ से लौटने पर स्वग्राम पहुँचने का उपाय सोचते हुए वह पहाड़ों तथा जंगलों में भटकता फिरता है। उस समय वह ऐसे व्यक्ति को खोजना शुरू करता है जो उसे मार्ग बता सके। तब प्रकृति उसकी सहायता करती है और एक ऐसी परिमलव्यान हवा चलती है कि उसे निकट ही बस्ती के होने की सूचना मिल जाती है। वह हवा कैसी थी, इसका वर्णन कवि इस तरह करता है।

मृगमद सौरभ विभव
द्विगुणित, घनसार सांद्र, वीटी गंध
स्थगितेतर परिमलमइ,
मगुव पोॅलुपु ते॑ॅलुपु नोॅक्क मारुत मोॅलसे॑ॅन्.,
(द्वि०आ०२४.)

अर्थात् कस्तूरी के अतीव परिमल से वृद्धि पाई हुई घनसार की शीतलता से भरी हुई, ताम्बूल की सुगंध से आच्छादित और नाना भाँति की सुवासित वस्तुओं के परिमल से भरी हुई कोई विलासयुक्त अप्सरा युवती के स्थान का सूचक ऐसी एक प्रकार की हवा उस समय चली।

तदनन्तर—

अतडा वात परंपरा परिमळ व्यापार लीलन्
जनान्वित मिच्चोॅटनि जेर बोइ कनियेॅन्
विद्युल्लता विग्रहन्, शतपत्रेक्षण, चंचरीक चिकुरन्, चंद्रारव
जक्रस्तनिन, नतनाभिन, नवला, नोॅकानोॅक मरुद्भामा
शिरोरत्नमुन्
(द्वि० आश्वासम्, २५.)

अर्थात् उसने यानी प्रवराख्य ने उस सुवासित हवा के बहने की लीला से उस स्थान को निवसित समझा और वह उस हवा के उद्गम स्थान के लता-कुंज की ओर बढ़ा। उसने बिजली के लता-सदृश शरीरवाली कान्तिमयी, कमल के समान नेत्रवाली, भौंरे जैसे काले केशधारिणी, चक्रवाक पक्षी के समान गोल स्तनवाली, गंभीर नाभिवाली एक नववयस्क अप्सरा को देखा जो साधारणतः देवाङ्गनाओं में भी शिरोरत्न थी।

और देखिए—

उल्लल दलका जल कण
पल्लवित कदंब मुकुळ परिमळ लहरी
हल्लोहल मद बंभर
मल्लध्वनि लेॅसग विसरेॅ मरुदंकुरमुळ्
(द्वि० आ० ६.)

अर्थात् अलका नदी के पानी के छींटे ऊपर उड़ने के कारण भ्रमण करनेवाले भौंरे पल्लवित कदंब वृक्ष की कलियों के सुवास-तरंग-द्वारा आकर्षित हो उन कलियों के मकरंद को पी उन्मादित अवस्था में ज़ोर ज़ोर से भनभना रहे थे। उनके गुंजारव से युक्त हो मंद हवा अव्यक्त ध्वनि पैदा करती हुई चल रही थी।

कितना मधुर और श्रवणानन्द प्रदान करनेवाली रचना है! कवि की दृष्टि नैसर्गिक सृष्टि की घटनायें देखने में कितनी कुशल और तीक्ष्ण है। और भी—

तोॅडमुल् साचि थंदुगु जिगुळकु निक्कु
करुल दंतच्छाय गडलु कोॅनग

तेल बुलु वन दंशमुलु मूगि नेॅरेॅ वेॅट्ट
ओलपुलुल् पोदरिंड्ल गुरक लिडग
सेॅलयेटि इसुक लंकलु वराहंबुलु
मोॅत्तंबु लइ त्रव्वि मुस्त लेॅत्त
निड्डंबु निड्डपु ना पड्डुल गति मनु
विळ्ळु डोॅकल नुंडि क्रेळ्ळु दाट
प्रबल भल्लुक नख भल्ल भयद मथन
शिथिल मधुकोश विसर विशीर्ण मक्षि-
कान्तरान्तर दंतुरितापमुन
वुडमि तिल तंडुल न्यायमुन वेॅलुंग.

अर्थात् हाथी वृक्षों के कोमल पत्तों तक पहुँचने के लिए सूँड़ जब ऊपर बढ़ाते थे उस समय उनके दाँत कान्तिमय हो चमकते थे, सोते समय शेर के होठों के किनारों से बहती हुई लार से आकर्षित हो जंगली मक्खियाँ भिनभिनाती थीं, जंगली सूअर नदी-धारा के बीच में स्थित रेती के छोटे द्वीपों को खोदकर कंद इत्यादि खोदते थे और मृग मोटे बछड़ों के समान बंजर ज़मीन पर दौड़ लगाते थे। भालू जब अपने भयानक नखों से मधुमक्खी के छत्तों को फोड़ते थे तब मधुमक्खियाँ तीव्र धूप के कारण उसके आस-पास ही उड़ती थीं। इस कारण नीचे की भूमि पर धूप छाँह के खेल से तिल और तंडुल के मिश्रण जैसी मालूम होती थी।

यह हिमगिरि का वर्णन है और जंगल तथा पर्वतों के साधारण व्यवहारों को सचाई के साथ बताता है।

तृतीय आश्वास में स्वरोचि के जन्म की कथा है। इस आश्वास में पेद्दना एक स्थान पर सूर्यास्त का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

तरणि यदेॅ क्रुंकु चुन्ना—
डरु देॅम्मनि चंद्रु बिल्व नरिगेॅडु रजनी-
तरुणीमणि दूतिक लन—
नरिगेॅन दूपुनकु नीडलति दीर्घमुलइ.
(त्रि० आ० १३)

अर्थात् प्रतापवान् सूर्य से डर कर चंद्र-रूपी स्त्री मानों छिप गई हो ऐसा चित्र विचार कर कवि कहता है कि वृक्षादि की परछाईं चंद्र-रूपी रजनीमणि की दूतिका बन कर 'वह देखो सूर्य जा रहा है' ऐसा कहते हुए मानों चंद्र को बुलाने के लिए पूर्व-दिशा की ओर बढ़ी जा रही थी।

इस प्रकार के तरह तरह के वर्णन 'मनुचरित्र' काव्य में हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आंध्र-कविता-पितामह अलसानि पेद्दना की कविता मधु के समान रसीली, गंगधार के समान निर्मल और वीणा-रव के समान श्रवणानंदोत्पादक है।

खेद है कि ऐसे महाकवि की पूर्ण जीवनी प्राप्य नहीं है। केवल लब्ध ज्ञान इतना है कि कृष्णदेव राय के मरणानंतर कुछ काल तक ये जीवित रहे थे। उनकी मृत्यु के लिए शोक करते हुए इन्होंने लिखा है—

एदुरैन चो तन मद करीन्द्रमु निलिप केलूत चोॅसगि येॅक्किंचु
कोॅगियेॅ,
कोकटाग्रामाद नेकाग्रहारंबुलडिगिन समिल यंदु निच्चेॅ
मनुचरित्रं बंदुकोॅनु वेळ पुरमेग पल्लकि तन केळ बट्टि येॅत्तेॅ
विरुदैन कविगंड पेॅडेरमुन कीवेॅ तगुदनि ताने पादमुन
तोडिगेॅ
आंध्रकवितापितामह अलसानि पेद्दन कवींद्र
यनि नन्नु पिलुचुनट्टि
कृष्णदेव रायल तो दिवि केग लेक ब्रतिगि युन्नाड
जीवच्छवंबु नगु चु.

भावार्थ—जब जब राजा सामने आ जाते थे, अपने मत्त हाथी को रोक हाथ बढ़ाकर मुझे चढ़ा लेते थे। जहाँ मैंने माँगा वहाँ कोकट आदि अनेक ग्राम मुझे दिये। जिस समय राजा ने 'मनुचरित्र-सुप्रबंध' को ग्रहण किया, उन्होंने स्वयं मेरी पालकी अपने कंधों पर उठा कर मुझे गाँव भर घुमाया और प्रख्यात 'कवि गंडपेॅडेर' नामक सुवर्ण कंकण के योग्य केवल तू ही है यों कहते हुए मेरे पाँव में उसे पहनाया। 'आंध्र-कविता पितामह अलसानि पेद्दना कवीन्द्र' के नाम से मुझे पुकारनेवाले राजन् कृष्णदेव राय के साथ हाय! मैं स्वर्ग न जा सका और जीवित काल में ही मृत के समान अभी तक सड़ रहा हूँ।

पैसे की कमी

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

(१)

मुंशी गुरुदयाल विलक्षण प्रकृति के मनुष्य थे। उनसे दूसरों का दुःख नहीं देखा जाता था। यह वास्तव में मनुष्य का अमूल्य गुण है। पर जब वह सीमा का उल्लंघन करने लगता है तब समय को देखकर उसे अनुचित कहने के लिए विवश होना पड़ता है। मुंशी जी 'नाहीं' करना जानते ही न थे। जो उनके पास आकर अपना दुःख सुनाने लगता था उसे रुपये दो रुपये दे ही बैठते थे। फिर कभी माँगते तक न थे। अब कहिए इसे गुण कैसे समझें। कई लोग बहाना करके उनके पास से रुपये ले जाते थे। जो अपनी ख़ुशी से दे गया वह तो उनके हाथ लगता था शेष सब जिसको दिया उसी का हो जाता था। जब उनका हाथ ख़ाली रहता था तब वे माँगनेवाले को कोई उत्तर न देकर उठ कर अन्दर चले जाते थे। इससे कई लोग बुरा तक मान बैठते थे। घर में स्त्री, पुत्र और बूढ़ी मा के सिवा कोई न था।

(२)

एक दिन मा ने मुंशी जी से कहा—"भैया, नौकरी करते करते इतने दिन हो गये, पर तुमने ज़रूरत के लिए अपने पास कुछ भी नहीं जमा किया। दूसरों को दे देकर सब बरबाद कर दिया। संतान-भार अधिक नहीं है तो क्या हुआ? और भी बहुत-से काम हैं, जो रुपये के बिना नहीं हो सकते। जिसके पास चार पैसे रहते हैं उसे सभी पूछते हैं। नहीं तो काम पड़ने पर कोई पास नहीं खड़ा होता। मैंने तुम्हें कई बार समझाया कि चाहे जिसे बिना सोचे-विचारे रुपया-पैसा न दिया करो। पर तुम मानते नहीं। मैं क्या करूँ?" मुंशी जी ने उत्तर दिया—"मा जी, मैं बहुत हाथ सिकोड़ता हूँ, पर क्या करूँ? मन नहीं मानता। झूठ बोलने का मुझे अभ्यास नहीं है। अनन्योपाय होकर रुपया दे देता हूँ।" मा जी बोलीं—"तभी तो मैं कहती हूँ कि तुम्हारे पास कभी रुपया जमा नहीं हो सकता। मैं इतने दिनों से कह रही हूँ कि मुझे एक बार सब तीर्थों की यात्रा कर आने दो, पर उसका कुछ ठीक ही नहीं पड़ता। तुम कहते हो कि कुछ रुपया हाथ में हो जाने दो तब मन भर कर यात्रा कर लेना। पर वह अगस्त्य की फेरी कब होती है, इसका कोई निश्चय नहीं है। मेरी नैया किनारे पर है। न जाने कब नेत्र बंद हो जायँ। इससे जैसे बने, वैसे मेरी यह लालसा पूर्ण करो।" मुंशी जी ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"अच्छा आज ही रुपये का प्रबन्ध किये देता हूँ। तुम तीर्थ-यात्रा कर आओ।"

मा जी ने मन ही मन पुत्र को आशीर्वाद दिया।

(३)

गुरुदयाल जी की स्त्री की प्रकृति बहुत ही उग्र थी। वह उन्हें सदा आड़े-हाथों लिया करती थी। कारण यही था कि गुरुदयाल जी उसे कभी कुछ देते न थे। बेचारी क्या करे, घर में ही खटपट करके शान्त हो जाती थी। इसमें उसका भी कुछ दोष नहीं था। पर्व-त्योहारों तथा अन्य धार्मिक उत्सवों के समय उसे रुपये-पैसे के लिए भूँकना पड़ता था। साज-शृङ्गार में भी मुँह रह जाती थी। उसे कभी इस बात का पता ही न लगता था कि मुंशी जी को कब वेतन मिला और कहाँ गया। अस्तु, उसके बिना जाने मुंशी जी ने ज़मानत के रुपयों में से सौ रुपये निकलवाये और चुपचाप मा जी को दे दिये। मा जी के नेत्र उत्फुल्ल हो उठे। उनमें वात्सल्य और सहानुभूति की झलक थी। उन्होंने पुत्र को आशीर्वाद दिया और दूसरे दिन सवेरे नगर के अन्य स्त्री-पुरुषों के साथ सानंद तीर्थाटन के लिए प्रस्थान किया। परमात्मा ने उनकी इच्छा पूर्ण कर दी।

(४)

स्त्री ताड़ गई कि मा की तीर्थ-यात्रा के लिए मुंशी जी ने कहीं से रुपया लाकर दिया है। उसने गुप्त रूप से इस बात का पता लगाया। मुंशी जी ने अपने साथ के काम करनेवालों से कह दिया था कि इस बात की चर्चा न की जाय। पर छठे कान में पड़ी हुई बात पेट के बिना नहीं रहती। मुंशी भुवनमोहन की स्त्री से गुरुदयाल जी की स्त्री की अधिक घनिष्ठता थी। दोनों एक साथ

उठती-बैठती थीं। दोनों परस्पर अपना अपना सुख-दुःख सुनाया करती थीं। उससे उसने एक दिन इस बात की चर्चा की और कहा—"जीजी, तुम पता तो लगाना कि मा जी के लिए कहाँ से रुपये लाये गये हैं।" उसने उत्तर दिया—"मुंशी जी के हज़ारों रुपये दूसरों पर आते हैं। किसी से लेकर दे दिये होंगे। अथवा कोई अपनी ख़ुशी से दे गया होगा।" मुंशी जी की स्त्री हँसकर बोली—"ऐसा नहीं हो सकता। लोग दे जाया करते तो मैं एक एक पैसे के लिए क्यों भूँकती रहती?" भुवनमोहन जी की स्त्री ने उत्तर दिया—"अच्छा आज ही पता लगाऊँगी, पर कठिनाई यही है कि मुंशी जी की किसी बात की चर्चा वे करते नहीं हैं। फिर भी उपाय अवश्य करूँगी।" इसके बाद वह उठकर चली गई।

(५)

मुंशी भुवनमोहन कुर्सी पर बैठे काग़ज़-पत्र उलट रहे थे। सामने स्टूल पर 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' रक्खे थे। स्त्री ने चाय का कटोरा लाकर स्टूल पर एक ओर रख दिया। हाथ का धक्का लगने से थोड़ी-सी चाय उछल कर दोनों पत्रों पर गिर पड़ी। मुंशी जी ने उन्हें रूमाल से पोंछते हुए कहा—"मैं कब से इन्हें लाया हूँ। ख़राब हो जायँगे तो दाम देने पड़ेंगे। तुम बड़ी असावधान हो।" स्त्री ने उनके हाथ से दोनों पत्र ले लिये और उलट-पलट कर कहा—"'सरस्वती' मेरे लिए और 'बाल-सखा' भैया के लिए मँगा दीजिए।" मुंशी जी बोले—"यह शौक़ कहाँ से उत्पन्न हुआ?" स्त्री ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"इन्हें देखकर मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है।" मुंशी जी बोले—"अच्छा मँगा दूँगा।" स्त्री ने कहा—"मैं कुन्ती के साथ पढ़ा करूँगी। आज-कल वह अकेली बैठी बैठी उकताती रहती है।" मुंशी जी ने कहा—"हाँ, मा जो तीर्थाटन करने गई हैं।" स्त्री ने मुँह बिचका कर कहा—"तीर्थाटन क्या करेंगी? बीच से ही लौट आयँगी। उनका पैसा भी तो चाहिए। मुंशी जी तो हमेशा ख़ाली हाथ रहते हैं।" भुवनमोहन ने उसके सरल मुख पर दृष्टि डाल कर उत्तर दिया—"नहीं नहीं, मा जी सब तीर्थ देखकर आवेंगी। भगवान् सबकी सहायता करते हैं।" स्त्री ने विरक्ति के भाव से कहा—"आज-कल रुपया-कौन देता है?" मुंशी जी बोले—"उपाय करने से सब हो जाता है। मुंशी जी भी तो सोच-समझ कर ही सब काम करते हैं।" स्त्री ने निःस्पृहता से कहा—"भगवान् जानें। कुन्ती के पास तो एक पैसा नहीं है।" भुवनमोहन चूक गये। उनके मुँह से निकल पड़ा—"तुम नहीं जानतीं, कि हम लोगों के दो दो तीन तीन रुपये कट कर जमा होते रहते हैं। इसे प्राविडेन्ट-फ़ंड कहते हैं।" स्त्री ने सरल भाव से कहा—"उसमें से रुपया लेकर काम किया तो क्या किया? इससे तो काम का न करना ही अच्छा समझती हूँ।" मुंशी जी सँभल कर बोले—"यह अपने अपने सुभीते की बात है। पर इस बात की उधर चर्चा न करना।" स्त्री ने हँसकर उत्तर दिया—"तुम भी क्या मेरे साथ ऐसा ही कपट का व्यवहार करोगे?" भुवनमोहन बोले—"मैं क्यों करूँगा? मुझे जो कुछ मिलता है वह सब तुम्हारे ही हाथ में दे देता हूँ।" स्त्री चुपचाप अंदर चली गई। उस समय उसके मुख पर हास्य की अमिट रेखा अंकित थी। वह विजय की परिचायिका थी। कुन्ती गुरुदयाल की पत्नी का नाम था।

(६)

मुंशी गुरुदयाल जी पाँच बजे शाम को आफ़िस से लौटकर घर आये। उन्होंने कोट उतार कर खूँटी पर टाँग दिया और पंखा उठाकर हवा करने लगे। वे दफ़्तर से लौटकर भोजन करते थे। अतएव नियमानुसार उन्होंने लड़के को पुकारकर कहा—"भैयालाल, भोजन तैयार है?" लड़के ने बाहर आकर खिन्न मन से कहा—"अम्मा की तबीयत ठीक नहीं है। वे चारपाई पर लेटी हैं।" गुरुदयाल धड़कते हुए हृदय से अन्दर गये और स्त्री के पास जाकर बोले—"क्यों क्या हो गया?" स्त्री ने रुखाई से उत्तर दिया—"तुम्हें इससे क्या लेना है? वह सामान रक्खा है। बनाओ और खाओ।" गुरुदयाल समझ गये कि दाल में कुछ काला है। मंद स्वर से बोले—"आख़िर बात क्या है?" स्त्री ने कड़ककर उत्तर दिया—"कह तो दिया। बार बार क्या पूछते हो?" उस समय कुछ अधिक कहना उचित न समझ गुरुदयाल चुपचाप रसोईघर में चले गये और रसोई तैयार करके भोजन करने लगे। भैयालाल भी उनके साथ भोजन करने लगा। इतने में कुन्ती देवी क्रोध में भरी हुई आई और लड़के को एक तमाचा जमाकर बोली—"चल। उस पीछेवाले

कमरे में रसोई का सामान रख। मैं अभी आती हूँ।" गुरुदयाल जी चुपचाप भोजन करके उठ गये। उस दिन से कुन्ती देवी ने गुरुदयाल जी से बातचीत करना बंद कर दिया। जब तक गुरुदयाल घर रहते तब तक वह उनके कमरे में आती तक न थी।

(७)

मुंशी भुवनमोहन बुड्ढे थे। कुन्ती उनसे पर्दा नहीं करती थी। जब कभी वे गुरुदयाल जी की अनुपस्थिति में किसी आवश्यक कार्य के लिए उनके घर पहुँच जाते थे तब वह उन्हें चाय पिलाती, पान-बीड़े से उनका सत्कार करती और जो कुछ वे पूछते उसका उत्तर देकर चली जाती थी। गुरुदयाल जी ने इसके लिए आज्ञा दे दी थी। अस्तु, जब भुवनमोहन जी को इस बात का पता लगा कि कुन्ती गुरुदयाल से लड़कर दूसरे कमरे में रहने लगी है तब वे उसके पास गये और समझाने लगे। कुन्ती ने कहा—"बात इतनी ही है कि मुझे भी चार संबंधियों में बैठने के लिए दो पैसे की आवश्यकता रहती है। पर हाथ में ताँबे का पैसा नहीं है। कहाँ तक मुँह छिपाऊँ? भाई ने मुझसे कई बार कहा कि सौ डेढ़ सौ का प्रबंध कर दो तो मैं नये बैल ख़रीद लूँ। फिर धीरे धीरे चुका दूँगा। पर लाऊँ कहाँ से? भावज जब मिल जाती है, तानें मारती है। किसी रिश्तेदार के पास जाने-आने की इच्छा ही नहीं होती। दो पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं, तभी रूप रहता है। आप ही बतलाइए, इस तरह कैसे चल सकता है? मुझे भी भगवान् ने एक पुत्र दिया है। इसकी क्या दशा होगी? मा जी की तीर्थ-यात्रा को जो रुपये लाये थे वे रक्खे रहते तो किसी दिन काम आते।" भुवनमोहन जी ने प्रबोधन के रूप में कहा—"कोई चिन्ता नहीं है। वह रुपया तो फिर पूरा हो जायगा। गुरुदयाल बड़े ही मातृ-भक्त हैं। मा की आज्ञा टाल नहीं सके। इसी से रुपया दे दिया है। तुम्हें इससे संतोष होना चाहिए, क्षोभ नहीं।" कुन्ती ने कहा—"धृष्टता क्षमा करें। यदि आप ऐसा करते तो जीजी को कितना बुरा लगता।" कुन्ती का यह वाक्य कटाक्षपूर्ण था। पर उसके हृदय को अनुतप्त देखकर मुंशी जी ने कुछ ध्यान न दिया। इतना अवश्य कहा—"पति के विरुद्ध आचरण करना स्त्री के लिए शोभा नहीं देता। जो हुआ सो हुआ, अब दोनों मिलकर रहो। गुरुदयाल जी धार्मिक पुरुष हैं। वे प्रसन्न रहेंगे तो हज़ारों रुपये जमा हो जायँगे। ज़िन्दगी है तो सब कुछ है।" कुन्ती ने कहा—"आप ठीक कह रहे हैं। पर सहन शक्ति की भी सीमा होती है। कहाँ तक धैर्य रक्खूँ? दूसरों के लिए कमाते हैं। घर की ज़रा भी चिन्ता नहीं करते।" अधिक संभाषण के लिए कुन्ती की अनिच्छा देखकर मुंशी भुवनमोहन जी उठ खड़े हुए और बोले—मैं उन्हें समझा दूँगा। घबराओ नहीं।" इतना कहकर वे चले गये। कुन्ती को उनका आना अच्छा नहीं लगा।

(८)

कुन्ती के भाई मणिराम को यह ख़बर लग गई। उसे हाथ डालने का मौक़ा मिल गया। चट बहन को लेने के लिए आ गया। कुन्ती भी तैयार हो गई; वह अपना दुःख भुलाना चाहती थी। गुरुदयाल जी ने भैयालाल को बुलाकर कहा—"बेटा तुम यहीं रहो। मैं तुम्हें कोई कष्ट न होने दूँगा।" उसने कहा—"दादा, अम्मा का कहना है कि मेरे साथ चलो। वे न मानेंगी तो अपने साथ ले जायँगी।" गुरुदयाल जी ने कोई उत्तर न दिया। मा-बेटे दोनों मणिराम के साथ चल दिये। स्त्री का यह व्यवहार गुरुदयाल जी के लिए असह्य हुआ। रात को उन्हें नींद न आई। नाना प्रकार के संकल्प-विकल्पों ने उनका हृदय मथ डाला। वे सोचने लगे—"मैं दीन-दुखियों की सहायता करता हूँ। यह कोई पाप तो नहीं है। भगवान् ने मुझे इसी लिए उत्पन्न किया है। पर स्त्री को भी कोई दोष नहीं दे सकता। ऐसा ही करना था तो गृहस्थाश्रम में आना ही न था। मैं स्त्री-पुत्र की परवा नहीं करता। यही मुझमें भारी दोष है। मा जी का उपदेश सर्वथा मान्य है। अच्छा तो मैं कल से रुपयों का तक़ाज़ा शुरू कर दूँ? धीरे धीरे वसूल हो जायगा। स्त्री को भी पत्र लिखकर बुलवा लूँ और रुपया वसूल होने पर सब उसे सौंप दूँ। मन में ऐसा संकल्प कर वे उठ बैठे और काग़ज़ निकालकर लिखने लगे। दो-चार पंक्तियाँ ही लिख पाये थे कि इतने में सहसा मन का भाव बदल गया। आत्म-शक्ति ने कहा कि 'जो कह रहे हो, उससे पश्चात्पद क्यों होते हो। यह तुम्हारी कायरता है। हज़ारों मनुष्यों का आशीर्वाद निष्फल नहीं हो सकता। तुम्हें अवश्य ही उसका बदला मिलेगा। ऐसा करने से तुम्हारी निंदा होगी। लोग कहेंगे कि स्त्री के भय से मुंशी जी अपना संकल्प छोड़ बैठे।'

इस धारणा के मन में उत्पन्न होते ही उनकी लेखनी हाथ से छूटकर गिर पड़ी। उन्होंने अन्यमनस्क होकर दरवाज़ा खोला और वे बाहर टहलने लगे। अचानक उनके मन में भी तीर्थाटन की इच्छा उत्पन्न हुई। मा उस समय बनारस में थीं। सबेरा होने पर वे भुवनमोहन जी के पास गये और कुछ रुपये उधार लेकर आफ़िस गये। वहाँ से तार द्वारा दो सप्ताह की छुट्टी मंज़ूर कराके चुपचाप बनारस चले गये। भुवनमोहन जी से उन्होंने कुछ नहीं कहा। उन्हें भी पूछने का साहस न हुआ।

(९)

मा जी विश्वनाथ जी के मंदिर में खड़ी हाथ जोड़े पुत्र के कल्याण की प्रार्थना कर रही थीं। ठीक इसी समय गुरुदयाल जी भी वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने भी प्रार्थना में योग दिया। प्रार्थना पूर्ण होने पर मा जी ने पुत्र की ओर देखा और आश्चर्यान्वित होकर बोलीं—"दयालु, तुम यहाँ कैसे आये?" गुरुदयाल जी ने चरण छूकर कहा—"डेरे पर चल कर सारा हाल सुनाऊँगा। चिन्ता की कोई बात नहीं है। विश्वनाथ जी ने बुलाया था, इससे आगया।" पुत्र का उत्तर सुनकर मा जी बड़ी प्रसन्न हुईं। वहाँ से वे गुरुदयाल जी के साथ गोस्वामी तुलसीदास जी का पुण्याश्रम देखने गईं। इसके बाद अन्य सब पवित्र स्थान और आश्रम देखती हुईं शाम को डेरे पर वापस आईं। गुरुदयाल जी ने उन्हें एकान्त में सारा हाल सुनाया। सुनकर मा जी का हृदय विचलित हो उठा। वे पुत्र से कुछ न कह कर भगवान् का ध्यान करने लगीं। गुरुदयाल जी भी संध्या करने लगे। रात को मा जी के शयनस्थ हो जाने पर गुरुदयाल जी उनके चरण चापने लगे। मा जी ने धीरे धीरे कहा—"उसके भाई ने भी तुमसे ले जाने की आज्ञा नहीं माँगी?" गुरुदयाल ने उत्तर दिया—"मा जी, वह मुझसे रुपयों की सहायता चाहता था। उसकी इच्छा मैं पूर्ण नहीं कर सका। इसी से वह मुझसे अप्रसन्न था। मेरा दिल दुखाने के लिए ही वह उसे ले गया है। दूसरा कोई कारण नहीं है। भुवनमोहन जी के मुँह से मैं यह सब सुन चुका हूँ।"

मा जी का हृदय परमात्मा के दिव्यालोक से जगमगा उठा। उसमें उन्हें आशा देवी की भव्य मूर्त्ति दिख गई। उन्होंने तीव्र स्वर से कहा—"तुम्हारा कल्याण होगा।" गुरुदयाल जी ने चरणों की धूल सिर पर चढ़ाते हुए कहा—"स्नेहमयी, तुम्हारा आशीर्वाद कभी निष्फल न होगा।"

(१०)

दूसरे दिन सबेरे गुरुदयाल जी को मुंशी भुवनमोहन का तार मिला। मा जी उन्हें बराबर पत्र भेजती रहती थीं। तार में लिखा था कि तुम्हारी तरक़्क़ी हुई है। तुम सुपरिंटेंडेंट बनाये गये हो। जल्दी आओ।

गुरुदयाल जी का वेतन दूना हो गया। वे उत्फुल्ल मन से मा जी के पास पहुँचे और तार का हाल सुनाकर चरणों पर गिर पड़े। मा जी के नेत्रों से वात्सल्य की पवित्र सलिल-धारा बह निकली। उन्होंने पुत्र को कंठ से लगा लिया। इसके बाद दोनों लौटकर घर आये। गुरुदयाल जी ने अपने नये पद का कार्य-भार ग्रहण किया और आनंद से समय बिताने लगे। वे आधा वेतन लाकर मा जी के हाथ पर रख देते थे और आधे से दीन-दुखियों की सहायता करते थे।

कुन्ती और मणिराम अत्यन्त लज्जित हुए। दोनों आकर मा जी के चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर बोले—"मा जी हमें क्षमा करो। हम नहीं जानते थे कि जो दूसरों की सहायता करता है भगवान् उसकी सहायता अवश्य ही करते हैं।" मा जी के हृदय में दया का संचार हुआ। उन्होंने दोनों को क्षमा-प्रदान किया। मणिराम को उन्होंने दो सौ रुपये देकर विदा किया। पति-पत्नी फिर मिलकर रहने लगे। अब कुन्ती को पैसे की कमी नहीं रही।

गोरखपुर का कवि-सम्मेलन

लेखक, श्रीयुत हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी बी० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न

गत ३,४,५ दिसंबर को गोरखपुर में अखिल भारतीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन सफलतापूर्वक हो गया। इसका श्रेय है उन सहृदय सुकवियों को जिन्होंने मातृ-भाषा के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के लिए दूर-दूर प्रान्तों से आकर गोरखपुर के नागरिकों का दीन-हीन आतिथ्य स्वीकार किया।

इस कवि-सम्मेलन में काशी से ९, प्रयाग से १०, कानपुर से ७, फ़तेहपुर से १, बहराइच से १, गोंडा से २, लखनऊ से १, हमीरपुर से ४, लाहौर से २, रावलपिण्डी से १, कलकत्ता से १, पटना से १, चम्पारन से १, सीतामऊ से १, इन्दौर से २, कोठी से १, रीवाँ से १, बुरहानपुर से १, खण्डवा से १, जबलपुर से १, देहरादून से १, झाँसी से २, हैदराबाद से १ इस प्रकार ५४ कवि बाहर से आये थे। इनके अतिरिक्त स्थानीय कवियों ने भी इस समारोह को सफल बनाने में सहायता की थी।

प्रथम दिन कवि-सम्मेलन की दो बैठकें हुईं—एक दिन में और दूसरी रात में। दोनों के सभापति थे नईगढ़ी (रीवाँ) के ठाकुर गोपालशरणसिंह। सभापति जी ने अपनी कविता ही सुनाई और व्याख्यान का प्रश्न आने पर कहा कि मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि कवि-सम्मेलन में व्याख्यान न होना चाहिए।

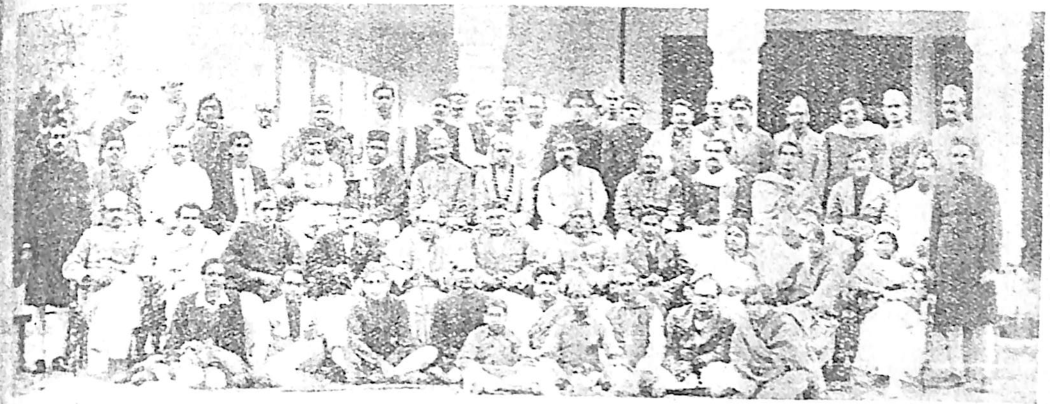
प्रारंभ में आर्यकन्या-पाठशाला की बालिकाओं ने मंगलगान गाया और श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने मंगलाचरण किया। स्थानीय कवि श्री जीवन जी ने अपनी ललित रचना-द्वारा समागत कवियों का स्वागत किया। आज पचीस से ऊपर कवियों ने अपनी अपनी कृतियाँ सुनाईं। सभी अपने ढंग की निराली थीं। जनता ने 'बचन', 'कोकिल', 'प्रदीप' तथा 'चोंच' की ओर विशेष चाव दिखाया।

दूसरे दिन बुद्ध भगवान् के निर्वाण-स्थान कुशीनगर (कसया) की यात्रा का प्रबंध किया गया। कवियों का वह दिन यात्रा में ही बीता। साथ में भदन्त आनन्द कौशल्यायन जी थे। उन्होंने कसया में एक प्रवचन किया।

उस दिन संध्या को पंडित श्रीनारायणजी चतुर्वेदी एम० ए० के सभापतित्व में सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ। कलकत्ते के श्री माधव शुक्ल जी ने स्वागत-गान किया। अनन्तर एक बड़ी जमी हुई बैठक हुई, जिसमें वीर तथा शृंगार रस की कवितायें ख़ूब पढ़ी गईं। सर्व श्री सत्यनारायण, हितैषी, करुणेश, अवधेश, श्याम, प्रदीप, अनूप द्विवेदी आदि ने वीररस की धारा बहा दी। श्रोता शांति से साथ बारह बजे रात तक मंत्रमुग्ध-से बैठे कविता-पाठ सुनते रहे।

तीसरे दिन फिर दो बैठकें हुईं—एक दिन में, दूसरी रात में। सभापति थे काशी के पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल। आज की बैठक भी ख़ूब ही जमी। पुराने और नये दोनों स्कूलों की कवितायें हुईं और सभी प्रेम से सुनी गईं। जनता इतनी तल्लीन और शान्त थी कि कवियित्रियों का कोमल स्वर भी स्पष्ट सुन पड़ता था। वस्तुतः कवियित्रियों की रचनायें भी मार्मिक और रस-पूर्ण थीं।

रात की बैठक में शुक्ल जी ने एक छोटा-सा सुंदर भाषण किया। उन्होंने कहा कि कवि-सम्मेलन से जो सुख मिलता है, शिक्षा मिलती है और कवियों को परस्पर मिलने तथा सौहार्द्र बढ़ाने का अवसर मिलता है, उससे भी बढ़कर हमारे काम की एक बात होती है। वह है 'लोकरुचि का भान'। किसी समय इँग्लैंड में एक आलोचक ने लोकरुचि जानने के लिए कुछ सुंदर कवियों की कृतियाँ चुन लीं और उन्हें बहुत-से लोगों के पास भेजा। उत्तर में इतने अधिक पत्र आये कि उन्हें पढ़ना कठिन हो गया और पढ़ने के बाद भी लोकरुचि की थाह न लग सकी। पर यहाँ कवि-सम्मेलन में आपसे आप भिन्न-भिन्न प्रकृति और रुचिवाले कवि इकट्ठा हो जाते हैं। अतः यहाँ वर्तमान लोकरुचि का बड़ा अच्छा अध्ययन हो सकता है। लोकरुचि के साथ ही हमें कविता के रूप का भी अध्ययन करना चाहिए। काव्य के दो पक्ष होते हैं—एक सिद्धपक्ष और दूसरा साधन-पक्ष। इसी से कविता के ये दो प्रभेद किये जा सकते हैं। लोग अभी किस ढंग की कविता को पसंद करते हैं, यह यहाँ सहज ही देख पड़ता है। सम्मेलन से बड़ा लाभ हो सकता है यदि हम लाभ उठाना जानें।



[गोरखपुर के कवि-सम्मेलन में भाग लेनेवाले कवि और सम्मानित व्यक्ति।]

गोरखपुर बाढ़ के लिए प्रसिद्ध है। आज भी हम देख रहे हैं कि यहाँ कवियों और कविताओं की बाढ़ में सब बह रहे हैं। पर इस बाढ़ की एक विशेषता है। दूसरी बाढ़ों में लौकिक सुख-दुःखों को दूर करने हम आते हैं, किन्तु इस बाढ़ में हम केवल आनन्द लूटने आये हैं। इस गंगा-यमुना के संगम में हमें भी स्नान करने का अवसर मिला। इसके लिए हम आप सबके आभारी हैं।

शुक्ल जी तो रात की ट्रेन से काशी चले गये, अतएव पंडित गौरीशंकर जी मिश्र के सभापतित्व में सम्मेलन की शेष कार्यवाही समाप्त की गई। कवितायें भी हुईं उसी प्रेम और चाव से जो सम्मेलन की समाप्ति के समय देख पड़ता है। कवियों को भी रात की ट्रेन से जाना था और वे जल्दी में थे। किन्तु आश्चर्य है कि इस अवस्था में जो मधुरिमा का विकास हो रहा था वह पहले की सांगोपांग बैठकों में भी नहीं दिखाई दिया। यह अन्तिम बैठक स्वयं एक अनुभूति का विषय बन गई।

अंत में पंडित गौरीशंकर जी मिश्र ने सभापति के आसन से समागत सुकवियों तथा श्रोताओं को धन्यवाद दिया।

इस कवि-सम्मेलन में दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास किये गये। एक प्रस्ताव 'प्रसाद जी' के निधन पर पास किया गया। दूसरा प्रस्ताव था हिन्दी के कवियों और साहित्यिकों की एक सूची बनाने का।

गोरखपुर में गत वर्ष प्रांतीय कवि-सम्मेलन हुआ था। उसकी सुखद स्मृति सहृदय रसिकों के हृदय में बनी हुई थी। एक दिन श्रीमान् ठाकुर यमुनाप्रसादसिंह जी (इनकम टैक्स आफ़िसर, गोरखपुर) ने गत कवि-सम्मेलन की चर्चा छिड़ने पर प्रस्ताव किया कि गोरखपुर में इस बार 'अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन' किया जाय। सहृदय काव्य-रसिकों ने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इस प्रकार इस विराट् आयोजन का सूत्रपात हुआ। ठाकुर यमुनाप्रसादसिंह जी का काव्य-प्रेम अनुपम है। उन्हीं के प्रयत्न से सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका।

तमकुही-नरेश, मझौली-नरेश, सलेमगढ़-नरेश, पंडित गौरीशंकर मिश्र, पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, पंडित दशरथप्रसाद द्विवेदी और बाबू पुरुषोत्तमदास जी आदि ने सम्मेलन को सफल बनाने में पूरा पूरा सहयोग किया। तमकुही-नरेश तो स्वागताध्यक्ष ही थे। वे साहित्य के कितने प्रेमी हैं, इसे ज़िले के सभी रसिक जानते हैं। उनका स्वागत भाषण भावुकता और नम्रता का परिचायक है। श्री पुरुषोत्तमदास जी ने सुकवियों के स्वागत-सत्कार में अपने अनुपम प्रेम का परिचय दिया।

सम्मेलन में आये हुए कवियों के सम्बन्ध में भी कुछ निवेदन करना यहाँ उपयुक्त ही होगा। मुख्यतः कवि तीन ढंग के थे। शृंगार के सुकुमार कवि, हास्य के आकर्षक कवि और वीररस के योद्धा कवि। करुण, शान्त आदि के कवि भी थे, पर उनका उचित प्रदर्शन नहीं हुआ, यद्यपि कानपुर के करुणेश जी का 'भूकंप' वर्णन इसका अपवाद है। यह एक कमी थी जो प्रायः सभी कवि-सम्मेलनों में रहती है और इस अखिल भारतीय सम्मेलन में भी रही।

शृंगार के कवियों में कई भेद हो सकते हैं, पर हम सबको एक में ही रख कर चलते हैं। शृंगार के सुकुमार और मधुर कवियों में कोकिल, बच्चन, कुमार, प्रदीप, मिलिन्द, हृदयेश, नेपाली, ज़ख़्मी आदि की कवितायें ख़ूब जमीं। ठाकुर गोपालशरणसिंहजी भी इसी श्रेणी के कवियों में हैं।

दूसरे ढंग के अर्थात् हास्य के कवियों में दो नाम आते हैं। ठाकुर श्रीनाथसिंह और 'चोंच' जी। ठाकुर साहब ने अधिक कवितायें नहीं पढ़ीं। पर उनकी 'मुसकान' में बड़ा व्यंग्य और हास्य भरा था। हास्य में 'चोंच' जी अपनी 'चोंच' के प्रहार से श्रोताओं का मन चुटीला कर देते थे।

तीसरे ढंग के कवियों में माधव शुक्ल, प्रोफ़ेसर सत्यनारायण, सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण, प्रदीप, मनोरंजन, करुणेश, अनूप, अवधेश, हितैषी आदि के नाम आते हैं। पंडित माधव शुक्ल पुराने देशभक्त कवि हैं और हितैषी जी तो अखाड़े के उस्तादों में ठहरे। सच पूछा जाय तो वीर-रस के सभी कवियों की कवितायें लोगों को पसंद आईं। 'श्याम' की 'हल्दी घाटी' और 'प्रदीप' के 'पानीपत' ने भारत के अतीत का जीवित चित्र सहृदयों के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

इसमें संदेह नहीं कि गोरखपुर जैसे शुष्क मरुप्राय काव्यविहीन प्रांत में तीन दिनों तक कविता-जाह्नवी की अगाध रसलहरी में जनता सराबोर होती रही। यह सम्मेलन सर्वसम्मति से पूर्णतया सफल रहा। शायद ही किसी अन्य कवि-सम्मेलन में हिन्दी के सुकवियों का इतना सुंदर प्रतिनिधित्व हुआ हो।

—— ——

गीत

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुरसिंह

यह जग कितना सुंदर!
प्रणय-थकित आँखें क्या जानें
यह जग कितना सुंदर!
कितने सुंदर इसके सुख-दुख,
नत-चिंतित अथवा सस्मित मुख,
प्रणय-तृषित आँखें अनुमानें—
यह जग कितना सुंदर!

शलभ-प्राण का दीप-शिखा में
जलना कितना सुंदर!
किशलय-दल का रुक-रुक गिरना,
सुरभित मस्त अनिल का फिरना,
सांध्य-अधर पर स्मित रेखा में—
यह जग कितना सुंदर!

प्रभु, देखो लो मानव-उर में
यह जग कितना सुंदर!
राग-रंग-रंजित आशायें,
विधुर मधुर नाना प्रतिमायें
स्मृतियों की, स्वप्निल उर-पुर में—
यह जग कितना सुंदर!

इस जीवन की आँख-मिचौनी
का जग कितना सुंदर!
मृत्यु-सखी को चोर बनाया,
प्राण-सखी को कहाँ छिपाया
हाँ, बतलाओ, सच सच मुझसे
यह जग कितना सुंदर!

जाग्रत नारियाँ



ज्योति-संघ

लेखिका, श्रीमती राजकुमारी मिश्रा 'रमा'

अहमदाबाद की ज्योति-संघ-नामक स्त्री-संस्था का नाम बहुतों ने सुना होगा। यहाँ उसी संस्था के बारे में थोड़ा लिखा गया है। गांधी-युग के आरंभ में सोई हुई नारी-शक्ति जाग्रत् हुई थी। उसे इस बात का बोध हुआ कि नारी का जीवन कितना तिरस्कृत और पराधीन है। अहमदाबाद की कुछ उद्योगी बहनों ने भी सोचा कि यहाँ एक स्त्री-संस्था स्थापित करने की बड़ी आवश्यकता है, जो गुर्जर-स्त्री-मंडल में जीवन का संचार करे। यह विचार सर्व-प्रथम यहाँ के सुप्रसिद्ध धनिक और सुयोग्य व्यापारी श्री अंबालाल साराभाई की विदुषी पुत्री श्री मृदुला बहन के दिल में उठा। वे अपनी धुन की पक्की हैं। जो कार्य आरंभ करती हैं उसमें अपनी समस्त शक्ति से तन्मय होकर संलग्न हो जाती हैं। उन्होंने अपने उक्त विचार को कार्य-रूप में परिणत कर दिया। फल-स्वरूप १९३४ की फ़रवरी में 'ज्योति-संघ' की स्थापना हुई और उसी वर्ष के अप्रैल मास से उसका कार्य विधिवत् चलने लगा। आरंभ से ही संघ का यह ध्येय रहा है कि स्त्रियों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अवसर देकर उनको निडरता, आत्मनिर्भरता, आत्म-विश्वास, विश्वबंधुत्व और राष्ट्रीयता की शिक्षा दी जाय और वे योग्य व्यक्ति बनाई जायँ। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर संघ का कार्य आरंभ किया गया। यहाँ संघ में आनेवाली बहनें केवल संघ के अवलंबित रहकर जीविका चला सकें सो बात नहीं है, बल्कि संघ से अलग रहकर भी अपनी जीविका चला सकें, इस प्रकार की शिक्षा का भी यहाँ प्रबन्ध किया गया है।

संघ में लगभग चार सौ बहनें हैं। उनमें कितनी ही तो अपढ़ हैं और कितनी ही साधारण पढ़ी हैं। अधिकांश बहनें घर, कुटुम्ब और समाज के बंधनों से जकड़ी हुई हैं। वे ज्ञान-हीन हैं। उनमें ज्ञान के पंख पैदा करने का प्रयत्न ज्योति-संघ कर रहा है। उनको सिर्फ़ लिखना-पढ़ना ही नहीं, किन्तु एक स्वतंत्र उद्योग भी सिखाया जाता है। अपने घर में बैठे बैठे वे कम से कम घर के कपड़े सी सकें, इतनी सिलाई तो सभी को सिखा दी जाती है। संगीत और चित्र-कला जैसी ललित कलायें भी उनकी रुचि के अनुसार सिखलाई जाती हैं। समाज के मध्यम वर्ग की बहनों को ज्योति-संघ की प्रवृत्तियाँ ख़ूब ही उपयोगी प्रतीत हुई हैं।

परन्तु संघ को इतने से ही सन्तोष नहीं है। वह देखना है कि अभी विशाल स्त्री समुदाय कोरा पड़ा हुआ है जिसे संघ को अपनाना है। इसी लिए वह ग़रीब मज़दूर बहनों को (मिलों में से बेकार पड़ी हुई बहनों को) प्रामाणिक आजीविका देने का प्रयत्न कर रहा है। उसकी तरफ़ से इस दिशा में दो प्रयत्न हुए हैं। उनमें एक है सिलाई खाते में 'कारीगरवर्ग'। उसमें साधारण शिक्षित बहनें काम करती हैं और अपनी आजीविका प्राप्त करती हैं। इस वर्ग में चालीस बहनें काम करती हैं। जनता की तरफ़ से सिलाई के आर्डर मिलते रहते हैं।



[अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कलकत्तावाले अधिवेशन के अवसर पर उसका उद्घाटन-गान गानेवाली महिलायें और छात्रायें ।]

इसके अतिरिक्त ऊपर लिख आये हैं कि जिन्हें हाथ-कारीगरी सीखने की अनुकूलता नहीं है, ऐसी मज़दूर बहनें संघ-द्वारा स्थापित खाद्य-वस्तु-विभाग में काम करती हैं। और पाँच-छः घंटे की मेहनत के बाद दैनिक पारिश्रमिक पाँच आने प्राप्त कर लेती हैं। इन बहनों को भी अक्षर-ज्ञान देने का यत्न हो रहा है। इन बहनों के द्वारा चलते हुए खाद्य-वस्तु-विभाग में तरह तरह के अचार, मुरब्बे, सेव, पापड़, बिस्कुट आदि वस्तुएँ तैयार कराई जाती हैं। स्वच्छ और ताज़े माल के लिए ख़ास देख-रेख रक्खी जाती है।

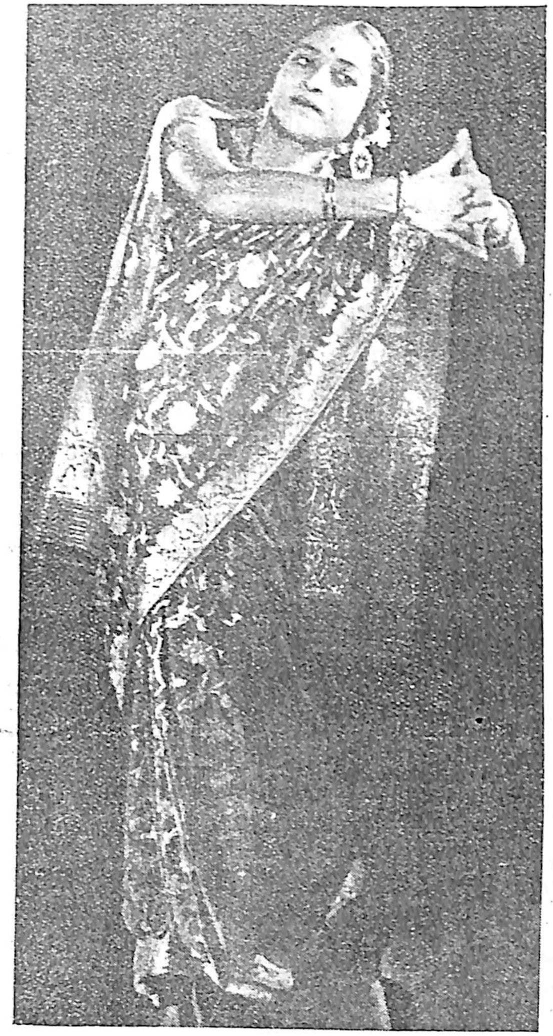
इसके अतिरिक्त संघ की मुख्य प्रवृत्ति है "सामान्य विभाग"। स्कूलों में हज़ारों बहनें पढ़ती हैं, किन्तु उनका अभ्यास पूरा हो कि न हो, पूरी संस्कारिता आये कि न आये, इसके पहले ही परिवार की ज़ंजीर उनके गले में बाँध दी जाती है। पूरी पढ़ाई भी नहीं हो पाती और वे वैवाहिक बंधन में बाँध दी जाती हैं। इस तरह शारीरिक, मानसिक दोनों विकास के द्वार उनके लिए बंद कर दिये जाते हैं। ऐसी बहनों को सामान्य लिखना पढ़ना आता है, तो से उन्हें साहित्य, गुजराती, अँगरेज़ी, आरोग्यशास्त्र, गणित, संगीत, चित्रकला और इसके सिवा उन्हें सामाजिक और राजनैतिक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। इन्हें राष्ट्र-भाषा हिन्दी की भी शिक्षा दी जाती है। जो बहनें अँगरेज़ी व गुजराती का अधिक ज्ञान रखती हैं उन्हें टाइप राइटिंग की शिक्षा दी जाती है और तीन महीने के बाद बम्बई चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स की परीक्षा दिलाई जाती है, जिससे प्रतिघंटे चार आने पैदा करने की शक्ति उनमें आ जाती है।

ललित कला के वर्ग में चित्रकलावर्ग ख़ूब ही सफल यक प्रतीत हुआ है। स्टेन्सीलिंग, पोस्टरिङ्ग, डिज़ाइनिंग और चित्र बनाने की शिक्षा दी जाती है। छः मास की शिक्षा के बाद बहनों को इस विषय का इतना ज्ञान हो जाता है कि वे इसमें अच्छी कमाई करने के योग्य हो जाती हैं।

इस तरह मज़दूरी से लेकर कलापूर्ण चित्रों के उद्योग के द्वारा स्त्रियाँ अवसर के अनुसार आजीविका प्राप्त कर सकें, ऐसी योजना संघ द्वारा काम में लाई जा रही है। अक्षर-ज्ञान से लेकर उच्च भाषा-ज्ञान की भी यहाँ शिक्षा दी जा रही है। किन्तु अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि यहाँ स्त्रियों को चाहें तो वैसी शिक्षा देना भी अनिवार्य है। जिससे किसी भी संस्था का सफल संचालन कर सकें, इस योग्य 'कार्यकर्ता' बनाने की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है।

इस वर्ग में गुजराती के फ़ाइनल का ज्ञान रखनेवाली बहनें दाख़िल हो सकती हैं। जिन बहनों को स्कूलों और कालेजों का पूर्ण शिक्षण नहीं मिला है और जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने की अभिलाषा रखती हैं उनके लिए यह वर्ग विशेषरूप उपयोगी है। इसमें भाषा, साहित्य, गणित, इतिहास, भूगोल, समाज-विज्ञान, राजनीति तथा स्त्री-जीवन के महत्त्व के प्रश्नों का अभ्यास कराया और निबंध लिखना सिखलाया जाता है।

अभी एक और प्रवृत्ति का उल्लेख करना है। संघ का आरम्भ ही इस प्रवृत्ति से हुआ था। स्कूल में पढ़नेवाली लड़कियाँ बहुत-से विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं। किन्तु स्कूली शिक्षण जीवन के विशाल दृष्टिकोण के आगे वैसा महत्त्व नहीं रखता। संगीत, चित्रकला जैसी ललित कलाओं और उद्योगों के ज्ञान के बिना उनका शिक्षण पंगु ही बना रहता है। परीक्षाओं की भरमार में उनका जीवन कुछ ऐसा हो जाता है कि सामान्य ज्ञान और बुद्धि के विकास के बदले, सामाजिक जीवन के महत्त्व के प्रश्नों में दिलचस्पी लेने के बदले, वे बिलकुल निस्तेज बन जाती हैं और निरुत्साह रहती हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए ज्योति-संघ बहुत आशा-जनक है और इसके लिए यहाँ प्रतिशनि, रवि तथा अन्य छुट्टियों के दिनों में वर्ग चलाये जाते हैं।



[कुमारी कनकलता—प्रसिद्ध बङ्ग महिला। इन्होंने प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक नृत्यों का अच्छा अध्ययन किया है और योरप, अमरीका आदि में उनका प्रदर्शन भी किया है।]

संघ के ध्येय, आदर्श और विचार के प्रचार के लिए उसकी अपनी एक 'ज्योतिमूर्ति' नाम की साप्ताहिक पत्रिका है। पहले संघ की बातें यहाँ के राष्ट्रीय दैनिक 'गुजरात समाचार' के गुरुवार के अंक में छापी जाती थीं। किन्तु

अब वह सब 'ज्योतिपूर्ति' में छापा जाता है। इसका मूल्य दो रुपया वार्षिक है।

इसी तरह संघ का अपना पुस्तकालय भी है। इसमें कई एक दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र आते हैं, जिनसे जनता भी लाभ उठाती है। संघ की आर्थिक स्थिति अभी इतनी संतोषजनक नहीं है कि हिन्दी, गुजराती, अँगरेज़ी सभी पत्र मूल्य देकर मँगाये जा सकें। अधिकांश गुजराती पत्र 'फ़्री' आते हैं। हिन्दी-पत्रकारों को हिन्दी-प्रचार की दृष्टि में रखकर इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए। इस पुस्तकालय में अँगरेज़ी और गुजराती पुस्तकें ही अधिक हैं।

प्रतिवर्ष कितने ही विद्वान् और विदुषियाँ 'ज्योति-संघ' में आते हैं और बहनों के सामने भाषण करते हैं। इससे भी बहनों की ज्ञान-वृद्धि में सहायता मिलती है। इस बार अपने गुजरात के प्रवास में राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू भी 'ज्योति-संघ' में पधारे थे और संघ को देखकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी। अपने भाषण में उन्होंने कहा था—"हमें आशा है कि 'ज्योति-संघ' अपनी उन्नति दिन बदिन करता जायगा। जितनी प्रगति गुजरात की स्त्रियों ने कर ली है, उतनी भारत के अन्य प्रान्तों की स्त्रियों ने अभी नहीं की है।" इत्यादि। वर्ष भर में कई उत्सव एवं पर्यटन आदि होते रहते हैं। गांधी जयंती का उत्सव ख़ूब ही धूम-धाम से किया जाता है। इसमें संघ की तरफ़ से प्रदर्शनी खोली जाती है। इस प्रदर्शनी में ख़ास तौर से स्त्रियों-द्वारा बनाई चीज़ें दिखाई जाती हैं और खादी की दूकान, रैस्टोराँ, सिनेमा आदि का भी प्रबन्ध रहता है। सभी कार्य बहनों द्वारा ही कराये जाते हैं। इस बार की प्रदर्शनी में एक ख़ास विशेषता थी। वह यह कि 'स्त्री-उद्योग-तलाश' का चित्र दिखाया गया था। भिन्न-भिन्न कामों में लगी हुई स्त्रियों के चित्र दिखाये गये थे। स्त्रियाँ कितने घंटे कौन काम करके क्या पैदा करती हैं, यह सब सुन्दर पोस्टरों में लिखकर रक्खा गया था।

स्त्रियाँ जितने व्यवसाय करती हैं उन सभी का चित्रमय वर्णन तैयार किया गया है। यह काम आज तक किसी स्त्री-संस्था ने नहीं किया है। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने 'गांधी-सप्ताह-प्रदर्शन' का उद्घाटन करते हुए इस काम की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी।

संघ के संचालन के लिए एक कार्यवाहक समिति नियुक्त है। प्रति तीसरे मास इस समिति की मीटिंग होती है।

यहाँ इस समिति की मुख्य बहनों का नाम लिख देना भी उचित होगा। श्री लीलावती बहन देसाई 'ज्योति-संघ' की प्रमुख हैं। आप मिष्टभाषिणी और सरल स्वभाव की विदुषी महिला हैं। श्री मृदुला बहन कांग्रेस की प्रमुख कार्यकर्त्री हैं। धनाढ्य घर में जन्म लेकर जैसा त्यागमय और सेवामय जीवन आप बिता रही हैं उसे देखकर स्त्रियों को गर्व होना स्वाभाविक है। तप, त्याग और सेवा की वे सजीव प्रतिमा हैं। उनकी वाणी में अपूर्व बल है।

'ज्योति-संघ' की मुख्य मंत्री श्री पुष्पावती बहन हैं। आप बहुत ही मिलनसार हैं। सौम्यता, [illegible]ता की आप अवतार हैं। स्त्री-प्रश्नों में आप विशेष दिलचस्पी रखती हैं। इसी वर्ष के अप्रेल मास में आपने 'विकासगृह' नामक एक 'स्त्रीछात्रालय' खोला है। यह निराश्रित बहनों का आश्रयस्थान है। आज की तिरस्कृत नारी इस 'विकासगृह' में रहकर अपने जीवन का सच्चा विकास कर सकती है। यह संस्था स्त्रियों के लिए आशीर्वाद समान है।

भारत में ऐसी संस्थायें प्रत्येक प्रान्तों में हों और श्री मृदुला बहन और श्री पुष्पा बहन जैसी देवियाँ हों तो भारत का महिला-समाज बात की बात में उन्नत हो सकता है।

इसमें सन्देह नहीं है, 'ज्योति-संघ' का नाम भारत के नारी-जागरण के इतिहास में सुवर्ण-अक्षरों में लिखा जायगा।

आश्वासन

लेखक, श्रीयुत गिरीशचन्द्र पन्त

संकट ही संकट हैं अपार, औ' बन्द ऊर्ध्व के निखिल द्वार!
पर छोड़ रही क्या मौन हेर! अयि रसने, तज ना मन्द टेर!

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

छब्बीसवाँ परिच्छेद

भाग्य का खेल

असी और वरुणा के सङ्गम पर स्नान के लिए आकर बासन्ती ने देखा कि असीश्वरनाथ महादेव के मन्दिर से ज़रा ही दूरी पर एक बेल के पेड़ के नीचे बहुत-से आदमी एकत्र हैं। स्नान से निवृत्त होने पर वह हरिनाथ बाबू से पूछने लगी कि मामा, यहाँ भीड़ क्यों लगी है।

हरिनाथ बाबू ने कहा—यहाँ एक साधु रहते हैं। वे बहुत बड़े ज्योतिषी हैं। तीनों कालों का फल इतनी प्रामाणिकता के साथ कहते हैं कि अक्षर-अक्षर घट जाता है। इसी लिए बहुत-से लोग अपना भविष्य जानने के विचार से उनके पास आये हैं। सुनने में आया है कि उनके पास प्रतिदिन इसी प्रकार की भीड़ एकत्र होती है।

ताई जी और चमेली भी समीप ही खड़ी थीं। चमेली ने यह सुनकर कहा—भाभी, चलो न भाई एक बार हाथ दिखा आवें।

चमेली का उद्देश था किसी प्रकार बासन्ती को उनके पास ले जाना। परन्तु बासन्ती के स्वभाव से वह ख़ूब परिचित थी। वह समझती थी कि उनके सम्बन्ध में यदि कुछ पूछने को मैं कहूँगी तो वे किसी प्रकार जाने को तैयार न होंगी, इससे अपने ही बहाने से उन्हें ले चलूँ।

चमेली की बात पर बासन्ती को कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती थी। सुषमा इस तीर्थयात्रा में नहीं सम्मिलित हो सकी थी। लड़कपन की अपनी एक सखी की बीमारी का हाल पाकर वह गिरिडीह चली गई थी।

चमेली के प्रस्ताव के अनुसार बासन्ती सबको साथ लेकर साधु जी की ओर चली। सीढ़ी से ऊपर चढ़कर ज़रा देर में ही वे सब साधु जी के समीप पहुँच गये। भीड़ बहुत अधिक थी, अतएव दूर ही एक स्थान पर वे खड़े रहे। बड़ी देर में भीड़ ठेलकर हरिनाथ बाबू ने ज़रा-सी जगह कर ली, तब उन तीनों स्त्रियों को ले जाकर वहाँ बैठाला। वे स्वयं उन सबके पीछे खड़े रहे।

साधु जी के समीप पहुँचने पर उन सबने पहले-पहल उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया, बाद को शान्तभाव से बैठ गये। साधु जी उस समय पूजा पर बैठे थे। कुछ समय के बाद जब उनकी पूजा समाप्त हुई तब कहने लगे—भाग्य-फल जानकर क्या करोगी बेटी? विधाता ने जो कुछ लिख दिया है उसे कोई नहीं मेट सकता!

चमेली ने बासन्ती का हाथ पकड़कर साधु जी से कहा—यह तो ठीक है महाराज, परन्तु आप ज़रा-सा कष्ट करके देख दीजिए। आपका नाम सुनकर हम लोग यहाँ बड़ी उत्सुकता से आये हैं।

साधु जी ने हँसकर कहा—अदृष्ट में जो कुछ है वह होगा ही। सुनने से केवल कष्ट ही तो होता है, बेटी।

साधु जी की इस बात से चमेली का आग्रह दूर नहीं

हुआ। तब वे वासन्ती के हाथ की रेखायें ध्यानपूर्वक देखने लगे। उन्होंने क्षण भर के बाद काग़ज़ पर कुछ लिख लिया और रमल फेंक कर कहने लगे—बिटिया, शनि की दशा में तुम्हारा जन्म हुआ है, इसी लिए लुटपन से ही माता-पिता से हीन होकर तरह तरह के दुःख क्लेश सहन करते करते तुम बड़ी हुई हो। बीच के कुछ वर्ष अच्छे जान पड़ते हैं। उसी समय तुम्हारा विवाह हुआ है। परन्तु बिटिया, तुम्हारे जन्म के सप्तम स्थान में रवि हैं, इससे तुम पति के द्वारा परित्यक्त होओगी, यह हमारी गणना से जान पड़ता है। जन्मकाल में बुध उच्च स्थान में थे, इसलिए बिटिया, तुम अतुल ऐश्वर्य की अधिकारिणी होओगी। शनि और रवि तुम्हें जीवन में बहुत क्लेश देंगे।

साधु जी की यह बात सुनकर ताई जी ने कहा—महाराज, क्या इसका कोई प्रतीकार नहीं है?

"है क्यों नहीं माता जी? परन्तु सब लोग उस पर विश्वास नहीं करते। लोग कहते हैं कि कर्म में जो कुछ लिखा है वह होगा ही। परन्तु हम लोग पूजा-पाठ से ग्रह-दोष बहुत कुछ शान्त कर देते हैं।"

चमेली ने कहा—अच्छा महाराज, क्या इनके स्वामी सदा इन्हें त्याग ही रक्खेंगे? जीवन में कभी उनका और इनका मिलन न होगा?

"बिटिया, आज समय बहुत कम है। आप लोग परसों प्रातःकाल आयें। तब मैं सब बतला दूँगा।"

साँझ को विश्वनाथ जी के मन्दिर में आरती देखने के लिए बहुत अधिक भीड़ हो गई थी। मन्दिर के द्वार पर अगणित नर-नारी हाथ जोड़े खड़े थे। उन सबका उस समय का वेदनाक्लिष्ट मुख-मण्डल देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वे लोग आज जीवन भर का दुःख-क्लेश और पीड़ा विश्वपति के चरणों में अर्पित करने के ही लिए आये हैं।

वासन्ती के मामा हरिनाथ बाबू ने पैसा देकर दोपहर होने से पहले ही मन्दिर के द्वार के सामने स्थान प्राप्त कर लिया था। साँझ को सबको लेकर वे दर्शन के लिए उपस्थित हुए। आरती आरम्भ हुई। वासन्ती हाथ जोड़ कर बहुत ही गम्भीर भाव से देवदेव के सामने खड़ी थी। वह चित्त को एकाग्र करके विश्वनाथ की आरती और उनका साज-शृङ्गार देख रही थी। विश्वनाथ की मूर्ति के सामने खड़ी होने पर भाव-विह्वल होकर वासन्ती मन ही मन कहने लगी—हे देवदेव, तुमने अपने बनाये हुए इस विश्व में इतने शोक-दुःख और विरह की सृष्टि क्यों की है? तुम्हारे इस विशाल विश्व में कितनी सौ ऐसी नारियाँ हैं जो पति से परित्यक्त होकर अहर्निश प्रियजन के विरह-ताप की यन्त्रणा सहन करती हुई संसार-पथ में विचरण कर रही हैं? उनकी इस वेदना का अनुभव करके सान्त्वना का एक वाक्य कहनेवाला भी कोई नहीं है। क्या इन असहाय नारियों के कातर कण्ठ का हृदय-विदारक हाहाकार तुम्हारे सिंहासन को कम्पित नहीं कर सकता? यह जो इस दुर्भागिनी को ऐश्वर्य के सर्वोच्च शिखर पर बैठाकर तुमने राजरानी बना दिया है, इसके लिए इस धन-विभव की क्या उपयोगिता है? यह जो इस तरह का अत्यन्त असहाय जीवन व्यतीत कर रही है, इसके बदले में तो यह आजन्म दरिद्र रहने में भी किसी प्रकार के क्लेश का अनुभव न करती। समस्त दिन में यदि एक बार भी इसे प्रियतम का मुख देखने को मिल जाता, यदि इसे इस प्रकार अपने जीवन-धन के दर्शन के लिए तरसने की आवश्यकता न पड़ती, तो यह दरिद्र रहकर भी अपने को कृतार्थ ही समझती।

वासन्ती उस समय बहुत ही अधीर थी। उसे मानो सारी मनोव्यथा देवदेव के चरणों में अर्पित करनी थी। वह मन ही मन कहने लगी—हे प्रभु, इस हतभागिनी को तो इतना जानने का भी अवसर न मिल सका कि किस अपराध के कारण यह उनके स्नेह से वञ्चित हुई है। कितनी विशाल चिता की ज्वाला में यह इतने वर्षों से जलती आ रही है! इस अत्यन्त भयङ्कर विरहरूपी चिता में आज से छः वर्ष पहले जो आग जली थी वह आज भी वैसी की वैसी ही धधक रही है। जिस समय से इस धराधाम में अवतीर्ण हुई हूँ, उस समय से लेकर बराबर ही तो मैं दुःख-दरिद्रता की ठोकर सहती चली आ रही हूँ। दुःख ही सहन करते करते मेरा आधा जीवन व्यतीत हो गया, किन्तु मेरे इस दुःख का भार ज़रा भी हलका न हुआ। तो क्या अन्तिम जीवन में भी इस दुःख का भार वहन करनेवाला साथी मैं न खोज पाऊँगी?

वासन्ती विश्वनाथ के द्वार पर खड़ी होकर एकाग्र

हृदय से अपनी सारी वेदना देवता के चरणों में अर्पित कर रही थी। अकस्मात् किसी के हाथ के स्पर्श से वह चौंक पड़ी। दृष्टि फेर कर उसके देखते ही चमेली ने कहा—भाभी, मामा जी बुला रहे हैं। वे कहते हैं कि ज़रा ही देर में यहाँ भीड़ बहुत अधिक हो जायगी, इसलिए यहाँ से अब चलना चाहिए। वासन्ती उस समय सोच रही थी, मैं कहाँ जाऊँ, मेरा घर कहाँ है, क्या घर कहने योग्य कोई वस्तु मेरे पास है, मैं तो केवल कल्पित संसार में निवास करके मूकराज्य का अभिनय करती जा रही हूँ।

विश्वनाथ के मन्दिर से चलकर वे लोग जैसे ही स्थान पर पहुँचे, एक नौकर ने एक तार लाकर वासन्ती के हाथ पर रख दिया। वासन्ती ने उतावली के साथ उसे खोल कर पढ़ा। चमेली ने देखा तो उसका मुँह बहुत ही गम्भीर हो उठा था और आँखों में आँसू भर आये थे। यह देखकर चमेली बहुत उत्कंठित हो उठी। उसने व्यग्रभाव से पूछा—किसका तार है भाभी? सब कुशल तो है? कहीं बचा की तबीयत तो नहीं ख़राब होगई? माता का हृदय सन्तान के अशुभ की आशङ्का से शङ्कित हो उठा। बचा ही तो उसके निराश जीवन का एकमात्र अवलंबन था।

चमेली के मुखमण्डल पर शङ्का की रेखा देखकर वासन्ती ने कहा—सभी लोग अच्छे हैं। केवल बुआ जी की तबीयत बहुत ख़राब हो गई है। विनय बाबू ने लिखा है कि तुरन्त चले आओ।

माता की रुग्णावस्था का हाल सुनकर चमेली उद्विग्न हो उठी। व्याकुल दृष्टि से वासन्ती की ओर ताक कर उसने पूछा—क्या कुछ लिखा है?

वासन्ती ने कहा—हाँ लिखा है। उन्हें मियादी बुख़ार हो आया है। वे हम लोगों को देखना चाहती हैं।

ताई जी ने कहा—क्या इस समय कोई गाड़ी न मिल सकेगी? यदि गाड़ी का समय हो तो इसी समय चल देना चाहिए। भगवान् जाने, मेरे भाग्य में अभी और क्या क्या बदा है? वे दुःखी होकर रोने लगीं।

ताई जी को सान्त्वना देती हुई वासन्ती कहने लगी—क्या कोई बीमार ही नहीं होता? इसमें घबराने की कौन-सी बात है? चार-छः दिन में अच्छी हो जायँगी। वहाँ बहू के सिवा और कोई है नहीं, इससे सेवा-शुश्रूषा भी ठीक न हो पाती होगी, इसी से उन्हें कष्ट अधिक होता होगा। शायद इसी लिए उन्होंने हम लोगों को बुलवाया है। बेचारी बहू लड़की ही तो ठहरी। उससे अकेले कैसे निभ सकता है?

ज़रा देर के बाद वासन्ती ने फिर कहा—दीदी, मैं क्या करूँगी?

चमेली ने कहा—क्यों? तुम भी चलना।

चमेली के मुँह की ओर ताकती हुई वासन्ती बोली—कहीं फिर न कोई झमेला खड़ा हो जाय?

चमेली ने ज़रा-सा चकित-सी होकर कहा—हाँ, समझ गई। परन्तु इससे क्या हुआ? क्या वे इतने पागल हैं? मा बीमार हैं। तुम न चलोगी तो वे स्वयं और पिता जी अपने मन में क्या कहेंगे?

उस समय वासन्ती मन ही मन कह रही थी, यह कौन-सा खेल तुमने आरम्भ किया दयामय? इस खेल के सिलसिले में तुम मुझे कहाँ ले जाना चाहते हो? क्या यह निष्ठुरता का परिहास है? नहीं, नहीं, मैं कहाँ जाऊँगी? क्या मेरे वहाँ जाने का उपाय है? नहीं, यह नहीं होने का। मैं न जाऊँगी।

सत्ताइसवाँ परिच्छेद

वासन्ती की दुर्बलता

वासन्ती आदि जिस गाड़ी से काशी से रवाना हुई थीं वह इलाहाबाद स्टेशन पर आकर खड़ी हुई। वासन्ती व्याकुलभाव से चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगी। पता नहीं, वह उस समय किसे खोज रही थी। इतने में दूर से ही उसने विनय को देखा तब उसका चित्त स्थिर हुआ। विनय क्रमशः उसके डिब्बे के पास पहुँचा। उसे देखते ही सब लोग व्याकुलभाव से उसकी मा का हाल पूछने लगे।

विनय का कण्ठ सूख गया था। धीमी आवाज़ से वह कहने लगा—आज सात-आठ दिन से उन्हें ज्वर आ रहा है। वे ठीक ठीक बातचीत नहीं कर सकतीं। इससे पिता जी बहुत व्यग्र हो उठे हैं। अब चलिए, विलम्ब करना ठीक नहीं है।

वासन्ती गाड़ी में बैठी बैठी सोच रही थी कि इतने सुदीर्घ काल तक जिसके लिए व्यग्रभाव से प्रतीक्षा कर रही थी, अत्यन्त उत्कण्ठा होने पर भी क्षणमात्र के लिए भी जिसके दर्शन का सौभाग्य नहीं मिल सका, आज वही चिर आकांक्षित मिलन किस तरह अनायास ही हो गया। मैं यहाँ चली ही क्यों आई? जिसे सङ्ग में रखने की अनिच्छा प्रकट करके वे इतने दिनों तक अपने को छिपाये मारे मारे फिरते रहे, उसके इस प्रकार चले आने के कारण वे कहीं फिर न आश्रयहीन हो जायँ। क्षण भर की दुर्बलता के कारण मैंने यह क्या कर डाला? लज्जा तथा घृणा के अत्यन्त प्रबल आवेग के कारण उसका श्वास-मानो रुँधा-सा जा रहा था। उसके क्षुब्ध हृदय में पागल हवा के झकोरे चल चल कर मानो सारे शरीर को हिलाये डालते थे। श्वास-प्रश्वास की क्रिया भी मानो उसे भूलती जा रही थी।

गाड़ी आकर द्वार पर लगी। विनय उस पर से उतर कर नौकरों को बुलाने तथा सामान आदि उतारने की आज्ञा देने लगा। उसकी आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ी। घूँघट से मुँह छिपाकर वह गाड़ी पर से उतरी। अनिच्छा होने पर भी वह लड़खड़ाते हुए चरणों से भीतर की ओर चली।

बुआ जी को देख आने के बाद सब लोग स्नान के लिए गये। सन्तोष उनकी शय्या के पास ही बैठा था। उसकी धारणा थी कि, वासन्ती कभी न आवेगी। वह सोचने लगा कि सुषमा उसे लेकर जब कलकत्ता गई थी तब मैंने उसका क्या क्या अपमान नहीं किया, कौन कौन-सी अकथ्य बातें नहीं कहीं, विशेषतः ऐसी अवस्था में जब कि उसका कोई दोष नहीं था। क्या वह सारा अपमान, सारी लाञ्छना भूल गई होगी? वही लाञ्छित नारीत्व की व्यथा लेकर वासन्ती क्या उसी निष्ठुर प्रतारक के समीप फिर आयेगी? परन्तु सामने आकर जब वह खड़ी हो गई और पति के द्वारा परित्यक्त होने पर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुई तब उस धैर्यशालिनी वासन्ती के प्रति श्रद्धा से उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा।

वासन्ती के आ जाने पर सभी लोगों के हृदय में भय का सञ्चार हुआ था। वासन्ती भी भयभीत न हुई हो, यह बात नहीं थी। फूफा जी ने भी सोचा कि कहीं यह लौंडा फिर न भाग जाय। परन्तु वासन्ती के आ जाने पर भी सन्तोष के कार्यक्रम में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। वह जिस प्रकार बुआ जी की शय्या के पास बैठा करता था, रात-रात भर जागता रह जाता था और समय समय पर बाहर जाया करता था, उसी प्रकार वह सारा काम-काज करता रहा। वासन्ती के आ जाने के कारण उसने किसी प्रकार का सङ्कोच या द्वैविध्य का भाव नहीं प्रकट होने दिया। सन्तोष का इस प्रकार का अविचलित भाव देखकर वासन्ती तथा घर के और सब लोगों ने शान्ति की साँस ली।

सन्तोष ने उन दिनों इलाहाबाद में चिकित्सा का व्यवसाय आरम्भ कर दिया था। इतने ही अल्पकाल में उसकी प्रतिपत्ति भी काफ़ी हो गई थी। बीच में एक बार बुआ जी के समीप उसने एक स्वतन्त्र मकान ले लेने का भी प्रस्ताव किया था। परन्तु स्नेहमयी बुआ जी और फूफा जी को इसमें आपत्ति देखकर उसने वह बात फिर कभी नहीं छेड़ी।

वासन्ती बहुत ही सेवापरायण थी। साथ ही किसी भी अवस्था-विशेष में वह प्रायः हर्ष-विषाद या क्लान्ति का अनुभव नहीं करती थी। इस कारण उसने भी बुआ जी की शय्या के पास ज़रा-सा स्थान प्राप्त कर लिया था। अधिकांश समय वह बुआ जी की शय्या के पास ही व्यतीत किया करती थी। उसके वहाँ पर सदा वर्तमान रहने का एक कारण और था। और लोगों की अपेक्षा रोगिणी की परिचर्य्या वासन्ती कहीं उत्तम ढङ्ग से कर लेती थी। रोगिणी की वह बहुत ही निपुणता के साथ और ठीक समय पर सेवा किया करती थी, साथ ही उसके हृदय में घर के और लोगों की अपेक्षा धैर्य और स्थिरता भी कहीं अधिक थी, वह निरलसभाव से हर प्रकार का सेवा-कार्य करती रहती। रात-रात भर जागती रह जाती, परन्तु कभी किसी ने लेशमात्र भी क्लान्ति की रेखा उसके मुखमण्डल पर नहीं देखी। वह स्वयं भी क्लान्ति या तन्द्रा का अनुभव नहीं किया करती थी।

डाक्टर के निषेध के कारण रोगिणी के कमरे में अधिक लोग नहीं रहते थे। सन्तोष और विनय बारी बारी से रात्रि में जागते रहते थे। बीच बीच में चमेली भी आकर बैठती थी। डाक्टर के परामर्श के अनुसार लोग रोगिणी को खूब सावधानी के साथ रख रहे थे। रोग का प्रकोप क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था, इससे सभी लोगों के मुखमण्डल पर आशङ्का की रेखा सदा ही उदित रहती थी। घर-गृहस्थी का सारा भार ताई जी ने अपने ऊपर ले रक्खा था। सन्तोष की अनुपस्थिति में सुनीता भी कभी कभी सास को देख आया करती, परन्तु अधिक समय तक वह उनके पास नहीं रह पाती थी।

बुआ जी की रुग्णता के कारण वासन्ती बहुत ही चिन्तित हो उठी थी। श्वशुर की मृत्यु हो जाने पर उसने बुआ जी तथा फूफा जी को ही अपना अभिभावक समझ रक्खा था। इन लोगों ने भी वासन्ती को बसु महोदय के अभाव का अनुभव करने का अवसर कभी नहीं दिया। वह सोचने लगी कि यदि कहीं इन स्नेहमयी तथा करुणारूपिणी बुआ जी ने भी सुरधाम की राह ले ली तो फिर मुझे कितनी लाञ्छना, कितना तिरस्कार सहन करना पड़ेगा। उनकी मृत्यु की कल्पना करके वह अपने आपको नितान्त ही असहाय समझ रही थी।

सन्तोष और विनय बैठे भोजन कर रहे थे। सामने ही ताई जी भी बैठी थीं। चमेली बीच बीच में एक एक कौर परोस रही थी। इतने में सन्तोष ने कहा—ताई जी, रोती क्यों हैं? मेरी बात पर विश्वास कीजिए, मैं ठीक कह रहा हूँ, बुआ जी अच्छी हो जायँगी।

सन्तोष की बात सुनकर नेत्रों का जल पोंछते पोंछते ताई जी कहने लगीं—तुम लोग भी मुझसे ठीक बात बताओगे? मेरे अदृष्ट में और भी क्या क्या लिखा है, यह कौन जाने? मृत्यु तो मेरे लिए है नहीं, केवल यन्त्रणा ही पा रही हूँ। आज प्रायः एक मास मुझे यहाँ आये बीत चला, एक बार भी बोल नहीं सकीं।

विनय ने कहा—बहुत निर्बल होगई हैं न। साथ ही दिमाग़ भी कुछ ख़राब होगया है। इसी लिए वे बोल नहीं सकीं। आज सवेरे भैया और डाक्टर साहब कह रहे थे कि यदि और किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो गया तो आठ-दस दिन के भीतर ही मा का कण्ठ खुल जायगा।

ताई जी ने कहा—बड़ी अच्छी बात है बेटा। भगवान् करे यह बात सत्य निकले। मैं अपनी नानी के मुँह की सुनते ही देश जाकर विशेष रूप से राधा-वल्लभ की पूजा करूँगी। मेरे भाग्य में क्या वह दिन भी कभी आवेगा और मैं—

ताई जी की बात समाप्त होने से पहले ही चमेली ने आकर कहा—नानी जी, क्या भाभी को बुलाऊँ! वे ज़रा-सा लेट गई हैं।

ताई जी ने कहा—सारी रात जागते जागते मेरी बच्ची नींद में आगई होगी। परन्तु देर हो जाने पर तो भोजन बिलकुल ठंडा हो जायगा। इसके सिवा उसने कुछ खाया भी तो नहीं है। बुला लाओ, बल्कि खाकर फिर सो जायगी।

विनय ने कहा—नहीं, नहीं उठाना नहीं। आज शायद वे बहुत अधिक थक गई हैं। इसी से वे लेट गई हैं। इतने दिन उन्हें यहाँ आये हो गये। मैंने तो उन्हें एक बार भी लेटते नहीं देखा। वास्तव में रात्रि में इतना अधिक जागनेवाला मुझे और कोई भी नहीं मिला।

विनय की ओर ताकती हुई चमेली कहने लगी—देखो भैया, मा यदि इस बार बच गईं तो भाभी की सेवा और यत्न की ही बदौलत बचेंगी। रोगी के प्रति इस प्रकार की सावधानी करते तो मैंने और किसी भी स्त्री को नहीं देखा। इतना तो भाई हम लोगों से नहीं हो सकता।

ज़रा-सा हँसकर सन्तोष ने कहा—ठीक कहती हो चमेली। तब तो हम लोगों को जो इतनी दवाइयाँ खिलाई जा रही हैं वे सब निरर्थक ही हैं। यश भी बड़े भाग्य से मिलता है भाई। इसी को तो भाग्य कहते हैं। ठीक है न विनय?

विनय ने कहा—हाँ भैया, यदि सच बात पूछो तो मैं भी भाभी की ही तरफ़ होऊँगा। दवा की उपयोगिता अवश्य है, किन्तु रोगी बहुधा शुश्रूषा के ही बल पर आरोग्य-लाभ करता है। वे डाक्टर की स्त्री हैं, यह उनकी सेवा देखकर ही ज्ञात होता है। आप ही देखिए, भाभी जब तक नहीं आई थीं तब तक आपको कितनी चिन्ता करनी पड़ती थी, किन्तु अब तो—

सन्तोष ने कहा—ठीक है भाई, तुम लोगों का दल बड़ा है, मैं ही अकेला हूँ।

अट्ठाइसवाँ परिच्छेद
मुझे मार्ग में कौन खोजता है ?

वासन्ती को इलाहाबाद आये एक मास व्यतीत होगया। तब से रोगिणी की परिचर्य्या में उसने अपने आपको तल्लीन कर दिया था। यदि कोई उससे विश्राम करने को कहता तो वह कह देती कि अभी कोई आवश्यकता नहीं है, नींद आते ही मैं सो जाऊँगी। परन्तु सच पूछिए तो वासन्ती को ज़रा भी आलस्य नहीं आता था, इसलिए वह सबसे अनुरोध करती कि मुझे इसी में आराम मिलता है। मुझे विश्राम की आवश्यकता नहीं है। मेरी एकमात्र यही कामना है कि बुआ जी किसी प्रकार आरोग्य हो जायँ। तभी मैं शान्तिपूर्वक विश्राम कर सकूँगी।

वासन्ती के मन में आता कि कहीं क्षण भर की असावधानी के कारण बुआ जी का रोग बढ़ न जाय। यदि कहीं ऐसा हो गया तो कुछ भी करते न बन पड़ेगा। मुँह से वह किसी से कुछ कहती नहीं थी अवश्य, किन्तु उसके हृदय में यह चिन्ता सदा ही वर्तमान रहती कि बुआ जी के इस संसार से विदा हो जाने पर मेरी क्या दशा होगी, यह स्वार्थ-चिन्ता हृदय से वह किसी प्रकार भी नहीं दूर कर पाती थी।

इतने दिन से वासन्ती बुआ जी की बीमारी के बढ़ने का ही हाल सुनती आ रही थी, इससे उसकी विकलता बराबर बढ़ती ही गई। आज पहला दिन था जब उसने विनय के मुँह से उनकी तबीयत के कुछ सुधरने का हाल सुना। विनय कह रहा था—आज भैया जी और डाक्टर साहब ने मिल कर यह स्थिर किया है कि मा की तबीयत कुछ सुधरी है। विनय की इस बात से वासन्ती ने बहुत कुछ धैर्य-लाभ किया।

रात्रि क्रमशः अधिक व्यतीत हो चली। चमेली वासन्ती से सोने के लिए बार बार अनुरोध कर रही थी। इधर आज बुआ जी की तबीयत के कुछ सुधरने की भी बात उसने सुनी थी, इससे चमेली को सब-समझा-बुझा कर वह सो गई थी। इसी बीच में बुआ जी को देखने के लिए सन्तोष आया। उसके वहाँ आकर बैठते ही चमेली चली गई। रोगिणी के कमरे में सन्तोष के आ जाने पर चमेली प्रायः वहाँ से चली जाया करती थी, विशेषतः ऐसे समय में जब उस कमरे में वासन्ती रहती थी। वह सोचा करती कि शायद इन्हें देखकर इन की तबीयत कुछ बदल जाय। इसी लिए वह उस कमरे से हट जाने में इतनी सावधान रहती थी।

वासन्ती का साथ मिल जाने पर सन्तोष के हृदय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ, यह बात नहीं थी। परन्तु हृदय की इस क्षणिक दुर्बलता पर वह प्रबल भाव से शासन रखता था। परन्तु वासन्ती के यहाँ आ जाने के बाद से ही सन्तोष के मन और शरीर में बराबर हलचल मचा रहता था, इससे वह बहुत अधिक क्लान्ति का अनुभव करने लगा था। पता नहीं क्यों, उसके मन में रह रह कर यही बात आया करती थी कि क्या वासन्ती मुझे प्यार करती है। परन्तु यह कैसे सम्भव है ? वह मुझे से प्यार करने लगी ? मेरे चित्त की भी यह क्या दशा होती है। आज कितने मास से मैं बराबर वासन्ती की ही चिन्ता में रहता हूँ। उसी के सम्बन्ध की तरह तरह की बातें सोचता रहता हूँ। पता नहीं, उसका स्मरण करके आज मैं इतने सुख का अनुभव क्यों करता हूँ। दीन भिक्षुक के समान मेरा हृदय आज उसकी कृपा के लिए प्रार्थना कर रहा है। परन्तु वासन्ती में तो कोई भी परिवर्तन मैं नहीं देख पाता हूँ। उसमें इस प्रकार का असङ्कोच और द्विधाहीन निर्विकार भाव देखकर सन्तोष बड़े आश्चर्य में पड़ता जा रहा था।

सन्तोष सोच रहा था कि वासन्ती संसार के विषम-पथ पर किस प्रकार इतनी स्थिरता के साथ चल रही है ! एक क्षुद्र तरुणी के क्षुद्र हृदय में ऐसी कौन सी शक्ति निहित है जिसके कारण वह अपने आपको इस प्रकार सञ्चालित करती फिर रही है। वासन्ती की उदासीनता मानो सन्तोष को और भी दुःखी कर रही थी। सन्तोष ने इतने दिनों तक इस प्रकार के अहङ्कार को अपने हृदय में स्थान दे रक्खा था कि मैं स्वयं वासन्ती से कभी प्रेम नहीं कर सकूँगा या उसे पत्नी के रूप में ग्रहण कर सकूँगा। आज उसी वासन्ती की उपेक्षा देख कर सन्तोष का हृदय वेदना से परिपूर्ण हो उठना चाहता है ?

अकस्मात् सन्तोष के अबाध्य नेत्र वासन्ती के मुखमण्डल पर जम गये। लाख प्रयत्न करके भी वह उन्हें वहाँ से हटाने में समर्थ न हो सका। सन्तोष ने देखा कि वासन्ती के मुखमण्डल पर बत्ती का उज्ज्वल प्रकाश पड़कर उसे उसको अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित किये हुए है, यद्यपि इस समय वह निरन्तर रोगिणी की सेवा में लगी रहने के कारण बहुत क्लान्त हो गई थी। सन्तोष के तृषित नेत्र उस दिन वासन्ती के मुखमण्डल पर से हटना नहीं चाहते थे। उसके हृदय में रह रहकर यही बात आती कि किस प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य इस प्रकार निर्विकार चित्त हो सकता है।

सन्तोष को वासन्ती की इस प्रकार की गम्भीरता तथा उसके हृदय की विशालता एवं उदारता के कारण बड़ा आश्चर्य हो रहा था। वह सोचने लगा कि इसके हृदय में इस प्रकार की उदारता किसने उत्पन्न की है। क्या मेरा हृदयहीन अत्याचार ही इसकी उत्पत्ति का कारण है ? सन्तोष एक बात पर और विचार कर रहा था। वह सोच रहा था कि वासन्ती ने सभी के बीच में तो अपने आपको विलीन कर दिया है। किसी के प्रति वह ज़रा भी इस प्रकार का भाव नहीं प्रकट होने देती कि उसे भी अपने मान-अपमान या सुख-दुख का कुछ ध्यान है। आख़िर वह मेरे ही प्रति क्यों इस प्रकार निर्मम है ? उसके प्रति मैंने जो अनुदारता का व्यवहार किया है उसे वह अपनी क्षमा-शीलता के कारण क्यों नहीं भूल जाती ? क्या मैं उसकी कृपा का अधिकारी नहीं हो सकता ?

बुआ जी की सेवा-शुश्रूषा के लिए महीना भर वासन्ती ने जो अथक परिश्रम किया है और जिस प्रकार की सावधानी के साथ उसने उनकी परिचर्य्या की है उसे देखकर सन्तोष स्वयं भी बहुत विस्मित हो गया था। वह सोच रहा था कि डाक्टर होने से ही क्या होता है ? मैं भी तो एक डाक्टर हूँ। परन्तु वासन्ती ने बुआ जी की परिचर्य्या में जिस प्रकार की कुशलता प्रदर्शित की है उस प्रकार की सफलता शायद मेरे लिए सम्भव नहीं थी। बैठे बैठे और वासन्ती की उस समय की मूर्ति का ध्यान करने लगा जब निस्तब्ध और गम्भीर रात्रि में वह बुआ जी की शय्या के पास बैठे ही बैठे निद्रित हो जाता और वासन्ती के दोनों ही नेत्र अर्द्धरात्रि के दो नक्षत्रों के समान बुआ जी के मुख पर स्थापित रहते। उसके दोनों हाथ रोगिणी के वेदना से व्यथित विभिन्न अङ्गों का सन्ताप दूर करने के लिए सदा ही व्यग्र रहते। बीच में सन्तोष की आँख जब खुल जाती तब वह वासन्ती की आलस्यहीन सेवा-परायणता तथा आडम्बरहीन और निःसंकोच व्यवहार देखकर दङ्ग रह जाता। वासन्ती के ऊपरी व्यवहारों से जैसे ही जैसे वह परिचित होता जाता उसके अन्तःकरण से परिचित होने के लिए उसका व्याकुल हृदय वैसी ही अधिकता के साथ उत्कण्ठित होता गया।

सन्तोष वासन्ती के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें गम्भीर भाव से सोच रहा था। इतने में वासन्ती करवट बदलकर सोने लगी। उसके मस्तक के पास ही एक टेबिल के ऊपर ओषधियों की शीशियाँ तथा परिचर्य्या-सम्बन्धी अन्य आवश्यक वस्तुएँ सजाकर रक्खी हुई थीं। वासन्ती यदि ज़रा-सा ही हिलती-डोलती और टेबिल के पावे में उसके मस्तक का धक्का लग जाता तो सारी चीज़ें गिर कर टूट जातीं और वासन्ती को भी चोट आ जाती। इससे सन्तोष ने सोचा कि वासन्ती का मस्तक उठाकर एक बग़ल कर दूँ। परन्तु बाद को उसने अपना विचार परिवर्तित कर दिया। वह मन ही मन कहने लगा—होगा। मुझे क्या करना है ? अधिक समय तक उसका यह विचार भी स्थायी न हो सका। क्षण ही भर के बाद उसके जी में आया कि मेरा सारा अहङ्कार तो चूर्ण हो चुका है, दूसरी बात सोचना व्यर्थ है। अब ज़रा भी आना-कानी न करके सन्तोष उठा। वासन्ती के उचित स्थान से हटे हुए मस्तक को उठाकर उसने तकिया पर रख दिया। मस्तक में सन्तोष के हाथ लगाते ही वासन्ती की निद्रा भङ्ग हो गई। उसने आँख खोलकर जब देखा तब सन्तोष उसके मस्तक के पास बैठा था। उसने यह भी देखा कि सन्तोष उसी के मस्तक की ओर विस्फारित नेत्रों से देख रहा है। उसकी दृष्टि से वासन्ती की दृष्टि जैसे ही टकराई, उसने अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर झुका ली।

वासन्ती भी चिन्ता में पड़ गई। सन्तोष उसके पास क्यों बैठा था और अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर क्यों ताक रहा था, जागने पर यह बात किसी प्रकार भी उसकी बुद्धि में न आ सकी। उसके हृदय में रह रह कर केवल यही एक बात उदय होती, क्या यह सच है।

वासन्ती के हृदय में यही सब सङ्कल्प-विकल्प के भाव

उदित हो होकर उसे आन्दोलित कर रहे थे। इधर उसके कान में सन्तोष का कण्ठ-स्वर ध्वनित होने लगा। उसने कहा—मस्तक टेबिल के पाये से टकरा रहा था, यह देखकर मैं उसे एक बग़ल कर रहा था। मैं नहीं जानता था कि इससे तुम्हारी निद्रा भंग हो जायगी।

कान में सन्तोष के ये शब्द पड़ने पर वासन्ती सोचने लगी कि इतने दिनों के बाद विधाता को यह क्या बेतुके ढङ्ग से मेरी खिल्लियाँ उड़ाने की सूझी है। विश्व के रचयिता विधाता ने भी आड़ में छिपे रहकर यह कैसा निष्ठुर परिहास किया है? इतने दिन के बाद इस अत्याचार-पीड़िता के प्रति यह प्रीति का निदर्शन कैसा?

वासन्ती उसी स्थान पर स्थिर भाव से बैठी हुई इस परिवर्तित परिस्थिति पर विचार करती रही। सन्तोष के इस परिवर्तन का कोई अर्थ न समझ सकने के कारण वह बहुत ही अधीरता का अनुभव कर रही थी। सन्तोष के स्पर्श ने उसका शरीर इस प्रकार स्पन्दित होकर ... होता जा रहा था, मानो उसे बिजली का करेंट छू ... हो। समुद्र की उन्मत्त तरङ्गें जिस प्रकार तट के ... वर्ती पत्थर के टुकड़ों पर टकरा टकरा कर अपने आगमन का संवाद सुना जाती हैं, उसी प्रकार आज की इस ... ने भी वासन्ती के हृदय के भीतर सोती हुई चित्तवृत्ति को झकोरे दे देकर जगा दिया। परन्तु क्यों आज ऐसा हुआ? हृदय की इस प्रकार की व्याकुलता किसी प्रकार भी उसके रोके नहीं रुक पाती थी। पता नहीं, कैसे ... अदमनीय अभाव की व्यथा उसे निर्दय भाव से पीड़ित करने लगी। वह वहीं निस्तब्ध होकर बैठी रही।

थककर

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

ऊब स्वप्नों से चला हूँ बात ही क्या जागरण की।

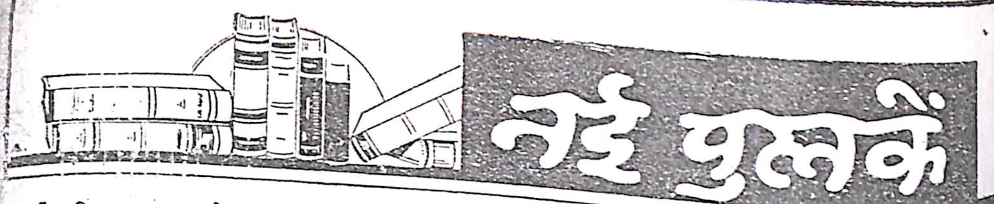
निर्झरों की धार में मिल खेलता है रजत का जग,
हिमकणों पर युक्त बन्धन नाचता उल्लास जगमग।
सूर्य की सौन्दर्य दूती छू रही थी सुमन के मन,
चूमकर मकरंद भरती प्यार में मृदुतिक्त यौवन।
पंख फैलाये इधर ये उड़ रहे थे प्राण चंचल,
पर बँधी जाने कहाँ से आ विषय की आग अंचल।
अग्निमय रवि बन गया अब पहनकर माला जलन की,
ऊब स्वप्नों से गया हूँ बात ही क्या जागरण की॥

चीर कर दिल को बहाती यह धरा सित रुधिर नाले,
चीर कर दिल आस्माँ पानी गिराता छील छाले।
चीर कर दिल कर रहा है प्रेम की बौछार मानव,
निर्झरी उन्मुक्त होकर चूमने मानो चली नभ।

पर क्षितिज यह झुरमुटों से झाँक कैसा हो रहा ...
छिड़ककर अपना जला दिल क्यों अँगारे बो रहा ...
आ गई लें तिमिर प्याले रात पीने साथ मन ...
ऊब स्वप्नों से गया हूँ बात ही क्या जागरण की ...

ये सुमन हँस हँस मरण को वरण करने चल दिये ...
पंखुड़ी के धड़कते दिल लो किसी ने मल दिये ...
कली के नीचे छिपी छाया हँसी पर हँस ...
और ताने सुरभि की उड़ती लहर पर कस रही ...
कब तलक यों फुलझड़ी अपनी बनाते जायँगे ...
कब तलक यों मृत्यु में जीवन बुझाते जायँगे ...
कब तलक यों आग के आँसू बहाते जायँगे ...
कौन जाने कब तलक उच्छ्वास खाते जायँगे ...

ओठ से प्याली लगा क्यों स्मृति जगाते हो क़फ़न की,
ऊब स्वप्नों से गया हूँ बात ही क्या जागरण की॥



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१-१०—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की १० पुस्तकें—

(१) **हिन्दी-गद्य-निर्माण**—सम्पादक, पंडित लक्ष्मी-...र वाजपेयी हैं।

(२) **कबीर-पदावली**—सम्पादक, श्रीयुत रामकुमार ...र्मा, एम० ए० हैं।

(३) **सृष्टि की कथा**—लेखक, डाक्टर सत्यप्रकाश हैं।

(४) **तुलसीदास-कवितावली**—सम्पादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम० ए० हैं।

(५) **हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव**—लेखक, पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी हैं।

(६) **सती कण्णकी**—लेखक, डाक्टर गोपालनाथ '...' हैं।

(७) **अलंकार-प्रकाश**—लेखक, श्रीयुत आर्येन्द्र शर्मा हैं।

(८) **सुदामा-चरित्र**—सम्पादक, श्रीयुत ललिता-...द सुकुल, एम० ए० हैं।

(९) **पार्वती-मंगल**—सम्पादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम० ए० हैं।

(१०) **बिजली**—लेखक, श्रीयुत देवीदयाल चतुर्वेदी '...' हैं।

११-१६—चाँद प्रेस, इलाहाबाद की ६ पुस्तकें—

(१) **गर्भ-विज्ञान**—लेखक, पंडित रवीन्द्र शास्त्री और मूल्य २॥) है।

(२) **गुब्बारे की सैर**—लेखक, श्रीयुत गोपालचन्द्र ...वर्ती और मूल्य २) है।

(३) **चार दिन**—लेखक, श्रीयुत रामविलास शर्मा, एम० ए० और मूल्य ...) है।

(४) **मालके दांत**, लेखक, श्रीयुत शीतलासहाय, बी० ... और मूल्य रुपया १६० है।

(...) **अर्चना**—'तरुण-भा...

(५) **कलियुगी कुबेर**—लेखक, पंडित मोहन ... और मूल्य १॥) है।

(६) **आदर्श-चित्रावली**—मूल्य ४) है।

१७—**अपराधी कौन?**—लेखक, श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक, विजय पुस्तक-भण्डार, देहली हैं। मूल्य १॥) है।

१८—**राष्ट्र-निर्माता मुसोलिनी**—लेखक, आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक, भारती साहित्य-मन्दिर, चाँदनी चौक, देहली हैं। मूल्य ३) है।

१९—**भारतपारिजातम्**—प्रणेता, स्वामी श्री भगवदाचार्य हैं। पता—भारतपारिजात कार्यालय, धौलका, अहमदाबाद (गुजरात) हैं।

२०-२२—दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, कापड़िया-भवन, सूरत की ३ पुस्तकें—

(१) **सहजानन्द-सोपान**—लेखक, ब्रह्मचारी शीतलाप्रसाद जी और मूल्य १) है।

(२) **जैन-बौद्ध-तत्त्वज्ञान** (दूसरा भाग)—लेखक, ब्रह्मचारी शीतलाप्रसाद जी और मूल्य १) है।

(३) **मरणभोज**—लेखक, श्रीयुत परमेष्ठीदास जैन, न्यायतीर्थ और मूल्य ॥) है।

२३—**कमाऊँ का इतिहास**—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत बदरीदत्त पाँड़े, प्रेम-कुटी, अल्मोड़ा, यू० पी० हैं। मूल्य ३) है।

२४-२६—हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, इलाहाबाद की ३ पुस्तकें—

(१) **हिन्दी के कवि और काव्य**—लेखक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी और मूल्य ४॥) है।

(२) **मिना**—अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री और मूल्य १) है।

(३) राजस्व—लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला और मूल्य १) है।

२७—महारानी मैनाबाई—लेखक व प्रकाशक, मु० मोहम्मद इसमाइल ख़ाँ 'नज़्म' तहसीलदार, सरवन हैं। मूल्य ।≡) है।

२८—रक्तरंजित स्पेन—लेखक, श्रीयुत शिवदान-सिंह चौहान, बी० ए०, प्रकाशक, लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

२९—गवरी-कीर्तनमाला—शोधक, श्रीयुत 'मस्त,' प्रकाशक, श्री कमलाशंकर गोपालशंकर भचेच, एलिस-ब्रिज, दिलहरद्वार, अहमदाबाद हैं। मूल्य २) है।

३०—भारत के आदि-निवासियों की सभ्यता—लेखक, श्रीयुत चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु, प्रकाशक, हिन्दू-समाज-सुधार कार्यालय, सआदतगंज रोड, लखनऊ हैं। मूल्य ।-) है।

३१—भगवान् गौतमबुद्ध—लेखकगण, भदंत बोधानंद महास्थविर और पंडित चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु, प्रकाशक, हिन्दू-समाज-सुधार कार्यालय, सआदतगंज रोड, लखनऊ हैं। मूल्य १) है।

३२— आत्मिक आदर्श—लेखक, महर्षि शिवव्रत-लाल, एम० ए०, प्रकाशक, सन्तकार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है।

३३—सौरभ—सम्पादक, श्रीयुत उदयराजसिंह, प्रकाशक, श्री राजेश्वरी-बाल-हिन्दी-पुस्तकालय, सूर्यपुरा (शाहाबाद) हैं। मूल्य =) है।

३४—जुजुत्सु व जापानी कुश्ती—लेखक, प्रोफ़ेसर कालीदास माणिक, प्रकाशक, माणिक-कार्यालय, काशी हैं। मूल्य =) है।

३५—श्री सरस्वती-स्तोत्रम्—सम्पादक, श्री सरयू-प्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, मैनेजर, कविता-शिक्षालय, काशी हैं। मूल्य =)॥ है।

३६—प्रणवीर क्षत्रिय अजीतसिंह और पतिव्रता राजबाला—लेखक, श्रीयुत खूबरामजी अग्रवाल, प्रकाशक, दि रसायन प्रिंटिंगवर्क्स, भिवानी हैं। मूल्य =) है।

१—वीरगाथा—प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० की यह रचना है। ये सात वीरगाथायें साहित्यिक ओजस्विनी वीरभाषा में लिखी गई हैं। सातों गाथ[ायें] ऐतिहासिक हैं। लेखक की यह सामयिक कृति समाज [और] देश की वेदना, आकांक्षा और अभाव की अनुभूति [का] परिणाम है।

हमारा इतिहास हमें यथार्थ रूप में पक्षपात-र[हित] होकर नहीं पढ़ाया जाता। अपने इतिहास के अध्ययन [से] हम आत्मगौरव नहीं, आत्मतुच्छता का अनुभव करते हैं। 'वीरगाथा' के देशभक्त लेखक को भी अपने देश [के] इतिहास की पठन-पाठन-दुर्दशा से दुःख हुआ है। हमा[री] अराष्ट्रीय शिक्षा का ही परिणाम है कि "हमारे अने[क] दिग्भ्रान्त युवक आक्षेप कर रहे हैं कि हिन्दुओं का जीव[न] आज ही नहीं, वरन सदा-सर्वदा से केवल लज्जाजनक [ही] रहा है।"

ऐसे आक्षेपों का लेखक महोदय ने बहुत अ[च्छा] विश्लेषण और विवेचन किया है। सच्चे ऐतिहासि[क] विद्वान् के समान उन्होंने अपने जातीय एवं राष्ट्रीय दो[षों] तथा पराजयों को मुक्तकंठ से निःसंकोच हो केवल स्वी[कार] ही नहीं किया, अपितु उन्हें भर्त्सना-पूर्वक धिक्कारा भी है। 'वीरगाथा' सचमुच वीरगाथा है—उसमें नैराश्य का [लेश] भी नहीं, उसके निरसन और मदान्धता का अभाव अव[श्य] है। प्रकरण, घटना, समय और समाज के अनुकूल [जो] अनेक उपयोगी टीका-टिप्पणियाँ 'वीरगाथा' हैं वे [...] और पठनीय हैं। पुस्तक आद्योपान्त सुन्दर है।

अपने बच्चों और अन्य आत्मीयों की शिक्षा-दी[क्षा] पर ध्यान देनेवाले सज्जन 'वीरगाथा' का पठन-पा[ठन] अवश्य करें। यह पुस्तक बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष [सब] निःसंकोच पढ़ने योग्य है। इस पुस्तक के पाठ से पा[ठकों] के हृदय में नवीन और जीवनदायिनी विचार-धारा [का] उद्गम होगा।

—चेतराम श[र्मा]

कविता की ५ पुस्तकें—

२—विजनवती—यह प्रसिद्ध लेखक और [कवि] पंडित इलाचंद जोशी की १६ कविताओं का संग्रह [है]। जोशी जी नवीन छायावादी कवियों में अपना एक [विशिष्ट] स्थान रखते हैं। उनकी कविताओं [में] कल्पना, भावना [और] अनुभूति की प्रधानता रहती है। 'राजकु[मार]', 'विजन[वती]', 'तारा', 'दमयन्ती', 'नरकनिर्वासी', 'मा[...]', 'शकु[न्तला]' और 'सेविका' आदि कवितायें उत्कृष्ट और गम्भीर भावों से ओतप्रोत हैं। 'दमयंती', 'महाश्वेता' और 'शकुन्तला' पौराणिक कथानक से संबंधित हैं। इनका वर्णन करने में कवि ने व्यापकता का पूर्ण ध्यान रक्खा है। कविताओं में जीवन के हर्ष-विषाद, सुख-दुख, आशा-निराशा, पीड़ा-वेदना आदि आन्तरिक संघर्षों का चित्रण मार्मिकता से अंकित किया गया है। पुस्तक की कुछ कवितायें कवि के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हैं, किन्तु ऐसे स्थलों पर वह व्यक्तिगत भावों को विशेष महत्त्व न दे कर उन्हें कलात्मक और विश्वकल्याण की कामना में परिवर्तित कर देता है। 'विजनवती' की कवितायें उच्च कोटि की हैं, और समझदारों के समझने की चीज़ हैं। इस प्रकार की कवितायें सबके समझने की वस्तु नहीं हैं। कविताओं की भाषा प्रांजल और शुद्ध खड़ी बोली है। अलंकार और रस का परिपाक कई स्थलों पर सुन्दरता के साथ हुआ है। पता—श्री ज्ञानपाल सेठिया, अर्चनामंदिर, बीकानेर है। मूल्य २) है। छपाई सुन्दर और पुस्तक सजिल्द है।

३—निर्झरिणी—श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित 'उषा' हिन्दी की स्त्री-कवियित्रियों में अच्छा स्थान रखती हैं। इस पुस्तक में ६० कवितायें संगृहीत हैं। कवितायें प्रायः सुन्दर और सरस भावों से युक्त हैं। आजकल के कवियों की रच-नाओं की भाँति ही निराशा, वेदना और प्रेम का सम्मिलित रूप इन कविताओं में प्राप्त होता है। 'विवाह के समय', 'नारी-जीवन', 'शिशु से' आदि कविताओं में स्त्री-हृदय-सुलभ मातृत्व का सुन्दर चित्रण दृष्टिगोचर होता है। 'राधिका-उद्धव-संवाद' नामक रचना में प्राचीनता की झलक है, किन्तु नवीनता का सुन्दर जामा पहनाया गया है। पुस्तक की कविताओं को पढ़कर यह निष्कर्ष निकलता है कि कवियित्री जी में काव्य की सुन्दर और उज्ज्वल प्रतिभा है और नवीन भाव और विचार-धारा का उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। भाषा खड़ी बोली है। परिमार्जित और शुद्ध है। काव्य-प्रेमियों के लिए पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। मिलने का पता—श्री-रविशंकर दीक्षित, डिप्टी का पड़ाव, कानपुर है। मूल्य १) है। पृष्ठ-संख्या १६० है। पुस्तक सजिल्द है।

४—अर्चना—'तरुण-भारत-ग्रंथावली' का यह ४०वाँ ग्रंथ है। इसमें बलिया-निवासी बाबू चंद्रभानुसिंह की १०[१] कवितायें संगृहीत हैं। इस काव्य-पुस्तक की कविताओं की भाषा स्पष्ट, सुन्दर और मधुर है। भाव और विचारों की दृष्टि से भी कवितायें हृदयस्पर्शी हैं। कतिपय कविताओं में प्रकृति-सौंदर्य का चित्रण भावपूर्ण ढंग से किया गया है। 'पूज्य देश', 'किसान', 'हँसिया' आदि में सामयिक भावना का संमिश्रण है। इस प्रकार पुस्तक की अधिकांश कवितायें अच्छी और भावपूर्ण हैं। पुस्तक में प्रायः नवीन छंदों का प्रयोग किया गया है। काव्य-रसिकों के लिए यह पुस्तक पठनीय है। पुस्तक सजिल्द है और छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। मिलने का पता—लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागंज, प्रयाग है। मूल्य १।) है।

५—कालिन्दी—कानपुर के नवोदित कवियों में श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल का स्थान सर्वोच्च है। चमत्कृत काव्य-प्रतिभा के साथ ही पठन-शैली भी आपकी बड़ी आकर्षक है। इस पुस्तक में प्रणयेश जी की २४ कवितायें संगृहीत हैं। सभी कविताओं की विचार-धारा नवीन है। भाव और अनुभूति की सुन्दर अभिव्यक्ति छोटी और संगीतमय रच-नाओं में पूर्ण-रूप से हुई है। कवितायें प्रसाद-गुण से पूर्ण हैं। 'अयि तरंगिनि', 'नाविक से', 'जीवन-गान', 'वासना', 'उद्भ्रांत' आदि में मनोभावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'आँख-मिचौनी', 'जाग्रति-गीत', 'कैसी प्रीति', 'फूलों की रानी', 'अदृश्य झाँकी' में हृदय-स्पर्शी सूक्ष्म भावों का अपूर्व मिश्रण है। गीतों की दृष्टि से ये कवितायें अधिक सफल हुई हैं। 'चित्रलेखा' कविता का संबंध पौराणिक कथानक से है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह रचना उत्तम है। काव्य-प्रेमियों को इन कविताओं का रसा-स्वादन करना चाहिए। पुस्तक मिलने का पता—रामदयाल प्रकाशचंद्र, पब्लिशर्स बुकसेलर्स, चौक कानपुर है। मूल्य ॥=) है। पुस्तक सजिल्द और अच्छी छपी [है]।

६—काव्यामृतबिन्दु—इस पुस्तक को [...] ललितचन्द्र रैणा शास्त्री ने विद्यार्थियों के पढ़ने के [लिए] लिखा है। इसमें अलंकार और पिंगल का ज्ञातव्य परि[चय] दिया गया है। पुस्तक पाँच बिन्दुओं में विभाजित की है। पहले बिन्दु में काव्य-विश्लेषण, दूसरे में अलंकार और उसके भेद, तीसरे में अर्थालंकार, चौथे में वक्रोक्ति और पाँचवें में छंद तथा [उस]के भेदों का वर्णन [है]।

है। अलंकारों के समझाने के लिए उनकी परिभाषायें, उपभेद और उदाहरणों का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक से शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के समझने में विद्यार्थियों को आसानी होगी। पिंगल में मात्रिक और वर्णिक छंदों की परिभाषायें बतलाते हुए उदाहरण दिये गये हैं। कविता एवं पद्य-रचना सीखनेवालों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक है। काफ़ी सरलता से समझाकर विषय का ज्ञान कराया गया है। पृष्ठ-संख्या १०० है। मूल्य ॥-) है। मोहन न्यूज़ एजेन्सी, कोटा के पते पर पुस्तक मिल सकती है।

७—उज्ज्वल रत्न—बरेली-कालेज के प्रोफ़ेसर शंकर-सहाय सकसेना, एम० ए०, हिन्दी के विचारवान् और सुयोग्य लेखक हैं। इस पुस्तक में उन्होंने महाराना संग्राम-सिंह, चित्तौड़ का शाका, महाराना प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महाराज छत्रसाल, वीर दुर्गादास और गुरु गोविन्दसिंह के जीवनों पर विस्तृत और सुन्दर प्रकाश डाला है। भारतवर्ष में समय समय पर जाति और देश को गौरवान्वित करने-वाले वीर पुरुषों का जन्म बराबर होता रहा है। उनके त्याग, सेवा, पराक्रम और वीरत्व की कथाओं से हमारा इतिहास पूर्ण है। इन वीरों के कार्यों का वर्णन हृदय में साहस, शरीर में बल और रुधिर में गर्मी लाता है। सोतों को जगाता और राष्ट्र में नव चैतन्य भरता है। लेखक के कथनानुसार विद्यार्थी अपने देश के वीरों के विषय में कुछ जान सकें, इसी उद्देश से इस पुस्तक में सात भारतीय वीरों के वीर-कार्यों का वर्णन किया गया है। वर्णन में ओज-पूर्ण और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। प्राचीन कवियों की सूक्तियों का भी यथास्थान कहीं कहीं प्रयोग हुआ है। लिखने की शैली साहित्यिक और निबंधात्मक है। इससे उच्च श्रेणी के पठित विद्यार्थियों के उपयोग में भी यह पुस्तक भली भाँति आ सकती है। पुस्तक सजिल्द है। पृष्ठ-संख्या २०० है। मूल्य १।) है। श्री एन० एम० ... एंड ब्रदर्स, उदयपुर (मेवाड़) से पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

८-११—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, की ४ पुस्तकें—

(१) काव्यकल्पद्रुम—(प्रथम भाग) लेखक, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार हैं। ...

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक और साहित्यिक हैं। इनका अलंकार-विषयक ज्ञान बहुश्रुत है। इस पुस्तक में इन्होंने नवरसों का विवेचन किया है। इन्होंने इस ग्रंथ की रचना संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों के मतानुसार की है। पुस्तक सात स्तवकों में विभाजित है। पहले स्तवक में काव्य-संबन्धी विचार, दूसरे स्तवक में अभिधा लक्षण, तीसरे स्तवक में व्यंजना तथा इसी प्रकार अन्य स्तवकों में क्रमशः ध्वनि तथा रसों के भेद और उनकी परिभाषा, गुणीभूत व्यंग्य, गुण का सामान्य लक्षण और दोषों का सामान्य लक्षण बताया गया है। इसमें संदेह नहीं है कि लेखक ने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से पुस्तक का प्रणयन किया है। रसों के अंगों और उपांगों की परिभाषा के साथ ही उनका भलीभाँति विवेचन किया है। विवेचन करते समय संस्कृत-साहित्य के आचार्यों का मत निर्देश करते हुए हिन्दी-साहित्य के प्राचीन आचार्यों द्वारा रचित उदाहरणों से विषय को काफ़ी स्पष्टता से समझाया है। इस विषय में लेखक का भी अपना एक मत है और उन्होंने भूमिका में उसे स्पष्ट भी कर दिया है। रसों के बोध में पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करना काफ़ी दुरूह है। श्रीयुत पोद्दार जी ने इस अभाव को दूर करने के लिए प्रत्येक विषय के लक्षण सूत्र-रूप में गद्य में दिये हैं। जहाँ अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता हुई है, वहाँ उसकी वृत्ति लिख दी है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से नवरसों का ज्ञान अच्छी तरह हो सकता है। साथ ही यह भी जाना जा सकता है कि संस्कृत के आचार्यों तथा हिन्दी के प्राचीन कवियों का विभिन्न रसों के संबंध में क्या मत था और उन्होंने उसकी पुष्टि किस प्रकार की है। पुस्तक की भाषा विषय के अनुरूप ही जटिल भी है। पुस्तक की जहाँ इतनी उपयोगिता है, वहाँ यदि हिन्दी के आचार्यों-द्वारा रचित उदाहरण शुद्धरूप में प्रकाशित किये जाते तो बहुत ही उत्तम होता। उदाहरण कहीं कहीं काफ़ी अशुद्ध रूप में व्यवहृत हुए हैं। पुस्तक के अन्त में विषयानुक्रमणिका भी दी गई है, जिससे पुस्तक में विवेचित विषय तथा आचार्यों के नाम आसानी से खोजे जा सकते हैं।

(२) अंगूर की बेटी—लेखक, श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पन्त हैं। मूल्य ॥।=) है।

यह पुस्तक एक सामाजिक नाटक है। इसमें शराब को 'अंगूर की बेटी' का नाम दिया गया है। पन्त जी हिन्दी के माने हुए नाटककार हैं। यह नाटक उनकी एक सुन्दर कृति है। नाटक का कथानक साधारण है। नाटक के नायक मोहनदास का चित्रण काफ़ी सुन्दर किया गया है। दूसरे पात्रों में माधव, हरिहर, विनायक, विनोदचन्द का चित्रण उनके अनुरूप हुआ है। सबसे सुन्दर चरित्र-चित्रण बनवारी बाबा का है, जो एक कृष्णभक्त साधु हैं। स्त्री पात्रों में कामिनी, मिसबिंदु और मिसप्रतिभा का चित्रण समयानुकूल है। सिनेमा में प्रविष्ट होनेवाली स्त्रियों के प्रति एक सुन्दर व्यंग्य भी है। आज-कल प्रायः विद्यार्थी पढ़-लिख कर सिनेमा में कार्य करने के लिए उत्सुक होते हैं। इस प्रकार के विचारवाले स्त्री-पुरुषों के ऊपर एक सुन्दर और विचारक की दृष्टि से लेखक ने अच्छा प्रकाश डाला है। नाटक सुन्दर, सामयिक और सुरुचि-पूर्ण है। इसके लिखने का दृष्टिकोण नवीन है। हिन्दी-प्रेमियों के लिए पठनीय है।

(३) चंद्रकिरण—लेखक, श्रीयुत रामकुमार वर्मा, एम० ए० हैं। मूल्य ।=) है।

श्रीयुत रामकुमार वर्मा हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि हैं। इस पुस्तक में उनकी ३८ कवितायें संग्रहीत हैं। कवितायें प्रायः छोटी हैं, किन्तु सुन्दर हैं। अनुभूति, भाव और कल्पनाप्रधान कवितायें लिखने में उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की है। लेखक के कथनानुसार 'मेरी स्फुट कवितायें दिन भर के परिश्रम से लौटते हुए किसान के गीत हैं।' इस पुस्तक की कविताओं में उल्लास और करुणा का पूर्ण प्रवाह प्रवाहित है। कोमल भावना और सरसता के साथ कवितायें मधुर संगीत की प्रतिध्वनि से भी युक्त हैं। काव्यप्रेमियों के लिए यह संग्रह पठनीय है।

(४) रेलदूत—लेखक, 'पींजरे को पंछी' है। मूल्य -) है।

यह पुस्तक राष्ट्रीय विचारों से पूर्ण कविता में लिखी गई है। लेखक पिछले आन्दोलन में जेल में थे। जेल रेलवे-लाइन के पास ही था। लेखक के मन में 'रेल' को दूत बना कर कुछ सन्देश भेजने की कल्पना उठी। और इसी प्रसंग को लेकर यह छोटी पुस्तिका लिखी गई है। दोहा छन्दों में देश-प्रेम-सम्बन्धी उक्तियाँ 'रेल' को संबोधित करके लिखी गई हैं। कविता ब्रजभाषा में है। काफ़ी सरस और सरल है। पुस्तक में देश की दरिद्रता का कहीं कहीं अच्छा चित्रण हुआ है।

१२—जीवन का सपना—लेखिका, स्वर्गीय श्रीमती रामेश्वरीदेवी गोयल, एम० ए० हैं, प्रकाशक, प्रभात-साहित्यकुटीर, आज़मगढ़ है। मूल्य ।।।) है।

श्रीमती रामेश्वरीदेवी गोयल हिन्दी की स्त्री-कवियित्रियों में काफ़ी सुन्दर कविता लिखती थीं। किन्तु उनका असमय में ही स्वर्गवास हो गया। इस पुस्तक में श्रीमती गोयल की स्फुट कविताओं का संग्रह किया गया है। उन्होंने कुछ गद्य-काव्य भी लिखा था, इसलिए पुस्तक के अन्तिम अंश में उनकी कुछ गद्य-काव्यात्मक पंक्तियाँ भी संगृहीत हैं। प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा के कथनानुसार—"इन कविताओं में अद्भुत भाव भरे हैं। मर्मभेदी भावनायें हैं। आशा और निराशा के बहुरूपी चित्र हैं। एक एक शब्द से सत्य की स्पष्ट-ध्वनि सुनाई देती है। मिथ्या कल्पना का तो कहीं चिह्न भी नहीं है!" तात्पर्य यह कि श्रीमती गोयल की कविताओं पर सामयिक नवीन काव्य की भावनाओं और विचार-धाराओं का सुन्दर प्रभाव पड़ा था और इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर वे कवितायें लिखती थीं। कवितायें प्रायः हृदयस्पर्शी, सुन्दर और भावपूर्ण हैं। गद्य-काव्य में भी कल्पना, अनुभूति और भावना का सुन्दर सामंजस्य प्रदर्शित होता है। श्रीयुत परमेश्वरीलाल गुप्त प्रशंसा के पात्र हैं जिन्होंने श्रीमती गोयल की गद्य-पद्य रचनाओं को एकत्र करने का श्रम किया है। पुस्तक पठनीय और नवीन कविताओं के संग्रहों में आदर-योग्य है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

१३-१४—गुजराती की दो पुस्तकें—

(१) विजयधर्म सूरी—(स्वर्गवास पछी) सम्पादक, मुनिराज विद्याविजय जी, प्रकाशक, विद्याभूषण चूनीलाल शिवलाल गांधी लींबड़ीवाला हैं। पृष्ठ-संख्या ४५०, मूल्य २॥) है। प्राप्ति-स्थान ज्योतिकार्यालय, रायपुर, अहमदाबाद।

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध जैनगुरु श्री विजयधर्म सूरी महाराज के स्मारक-रूप में उनके एक विद्वान् शिष्य श्री विद्याविजय जी ने लिखी है। इस पुस्तक के लेखक गुजराती-साहित्य में

२०-२५ ग्रन्थों का निर्माण करके पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ उनकी विद्वत्ता का एक निदर्शनमात्र है। इस पुस्तक के द्वारा लेखक ने लोगों की सम्मतियों से यह सिद्ध किया है कि श्री विजयधर्म सूरी एक सामान्य साधु या आचार्य हो नहीं थे, अपितु महान् साहित्य-प्रचारक, प्रतिभावान् तथा नवयुग के प्रवर्तक आचार्य थे। लेखक ने उन्हीं सम्मतियों से सिद्ध किया है कि श्री विजयधर्म सूरी जैनसंघ के कीर्तिस्तम्भ, जैनसाहित्य तथा तत्त्वज्ञान के प्रकाशक, जैनधर्म के एक युगप्रधान पुरुष तथा साहित्य के सच्चे पुजारी थे। उक्त महात्मा के स्मारकरूप में आयोजित ग्रन्थमाला का यह प्रथम भाग है। इसमें उनकी मृत्यु के पश्चात् सब ओर से प्रकट की गई श्रद्धाञ्जलियों का संकलन किया गया है। इस पुस्तक में जैनधर्म के अनुयायियों, भारतीय विद्वानों, पाश्चात्य विद्वानों तथा देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा अर्पित की गई व्यक्तिगत श्रद्धाञ्जलियों का संग्रह किया गया है। अभी इस पुस्तक के दो भाग प्रकाशित होने को शेष हैं, जिनमें "संसार की दृष्टि में विजयधर्म सूरी" तथा "विजयधर्म सूरी तथा उनके काम" विषयों पर विचार-संकलन होगा। जैनधर्मावलम्बियों के लिए यह पुस्तक संग्रहणीय है।

(२) **सामाजिक-टुंकी वार्ताओं**—प्रस्तुत पुस्तक सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद तथा बम्बई-द्वारा प्रकाशित विविध ग्रन्थमाला के २५ वें वर्ष की भेंट है। ग्रन्थांक २८७-८८ है। उक्त कार्यालय गत २५ वर्षों में अपनी इस ग्रन्थमाला के द्वारा २८६ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुका है। हमारे यहाँ हिन्दी में पुस्तकरूप में निकलनेवाले मासिक साहित्य का अभाव-सा है। इसका कारण यह है कि हमारे यहाँ राष्ट्र-भाषा हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकायें ही सन्तोषपूर्ण गति से नहीं चल पातीं और अन्तिम दम तक घाटा घाटा चिल्लाती हैं। तब यहाँ मासिक पुस्तकों की आयोजना किसके मस्तिष्क में आये? इसके विपरीत प्रान्तीय भाषाओं विशेषतः बँगला, गुजराती तथा मराठी में साहित्य की इतनी प्रगति है कि वहाँ पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त साहित्यिक पुस्तकों को भी नियमित रूप से पाठकों के सामने लाया जाता है। इस क्रम से पुस्तकों की खपत की समस्या का एक निश्चित तथा सरल मार्ग मिल जाता है। स्पष्ट प्रमाण यह है कि यह पुस्तक एक दम ५,००० ऊपर छपी है तथा इस सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है। हमारे हिन्दी-साहित्य में ४०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य इससे कहीं दुगुना तो अवश्य होगा।

इस पुस्तक का विषय नाम से ही प्रकट है। छोटी छोटी सामाजिक कहानियों का सन्निवेश है। पुस्तक में कुल मिलाकर ५६ कहानियाँ संगृहीत हैं। कहानियाँ गुजराती पत्र-पत्रिकाओं से उद्धृत की गई। संग्रह के आदि की चार वार्तायें तो हमारे धर्म-ग्रन्थों पतः रामायण, महाभारत के आधार पर ली गई हैं। कथायें भी सामयिक हैं तथा सामयिक लेखकों की लिखी हैं। कई कहानियाँ ऐसी भी हैं जो किसी अन्य भाषा से गुजराती पत्रिकाओं में अनूदित करके प्रकाशित की गई। कहानियों का संकलन योग्यतापूर्वक किया गया है। हर प्रकार की सामग्री पढ़ने को मिलती है। हास्य-रस भी तथा गंभीर भी। वर्तमान समस्याओं पर डालनेवाली कहानियाँ भी इसमें हैं तथा प्रचारात्मक गल्पें भी। संक्षेप में इन गल्पों में सामाजिक, धार्मिक मनोवैज्ञानिक गतिविधि पर अच्छा प्रकाश डाला है। 'छोकरानी रमत' तथा 'होका परिषद्' में हास्य-रस अच्छा पुट है। 'शुकशिक्षा' के द्वारा हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति का खोखलापन अर्थात् तोतारटन्त का नग्न चित्र खींचा गया है। रवि बाबू की 'माता की गोद' परन्तु सुन्दर वार्ता है। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य 'गोविन्द नो खतेर' वार्ता भी अपनी शैली की अच्छी है। प्रयत्न करने पर उनकी इससे अच्छी कहानी भी की जा सकती थी। संग्रह में दो-तीन एकांकी नाटक संकलित हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा माननेवालों को प्रान्तीय भाषाओं, विशेषतः बँगला, गुजराती तथा मराठी की प्रगति का अध्ययन करना तथा उससे लाभ उठाना चाहिए। अभी हमारा हिन्दी-साहित्य अपनी दलबंदी तथा गंदी समालोचना के कारण बहुत कम फूला-फला है। हिन्दी में अभी ऐसी पुस्तकों का अभाव-सा है तथा इनकी आवश्यकता भी काफ़ी है।

—उदयशंकर

[illegible]

लन्दन के 'टाइम्स' में वायना (आस्ट्रिया) का एक मज़ेदार समाचार छपा है। शहर के पास ही एक बँगले में एक चोर घुसा। मालिक सुख की नींद सो रहा था। चोर ने घर की बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्र कीं और उन्हें लेकर जाने ही वाला था कि मकान-मालिक का कुत्ता उस पर टूट पड़ा, उसे गिरा दिया, उसकी छाती पर चढ़ बैठा, उसका पायजामा फाड़ डाला और उसके शरीर से कुछ मांस भी काट लिया। शोर-गुल सुनकर मालिक जागा, मुहल्लेवाले भी जागे और चोर पकड़ा गया। उस पर मुक़दमा चला और उसे सज़ा हो गई। उस समय तो चोर ने सब चुपचाप सह लिया, पर जेल में उसे काफ़ी सोचने का मौक़ा मिला। उसने सोचा कि कुत्तों को भौंकने का अधिकार तो है, पर काटने का अधिकार उन्हें कोई बुद्धिमान् गवर्नमेंट कैसे दे सकती है। बिना काटे भी वह भौंक कर मकान-मालिक को जगा सकता था। उसने ऐसा कुत्ता रखने के लिए मकान-मालिक पर मुक़दमा चलाया और हर्जाने की माँग पेश की। दोनों ओर के बयान सुनने के बाद जजों ने चोर के पक्ष में फ़ैसला किया और मकान-मालिक को उसे हर्जाना देना पड़ा। आस्ट्रिया के इन न्यायाधीश की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

× × ×

समाचार-पत्रों और पुस्तकों आदि के पाठक अब अपने लिए एक नया शब्द व्यवहार करने के लिए तैयार रहें। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् बाबू भगवानदासजी ने एक पत्र में 'आज' के पाठकों को 'पठक' कहकर सम्बोधित किया है और कहा है कि यही शब्द शुद्ध है। 'पाठक' का अर्थ पढ़ानेवाला होता है न कि पढ़नेवाला। पढ़नेवाले का यथार्थ बोध 'पठक' शब्द से ही हो सकता है। बाबू साहब ने अपने पक्ष में अकाट्य प्रमाण दिये हैं। इसमें संदेह नहीं कि बाबू साहब ने बहुत ठीक बात कही है। पर लोग जब किसी शब्द को एक ख़ास अर्थ में प्रयोग करने के अभ्यासी हो जाते हैं तब दूसरे अर्थ में उसका प्रयोग बड़ी कठिनता से हो सकता है।

× × ×

जो कठिनाई बाबू भगवानदास के सामने है, कुछ कुछ वैसी ही कठिनाई बङ्गाल-गवर्नमेंट के मिनिस्टरों के सामने पेश है। बंगाल की असेम्बली में कालकोठरी का स्मारक हटा देने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, क्योंकि प्रस्तावक के पास इस बात के प्रमाण हैं कि नवाब सिराज-उद्दौला ने १२३ अँगरेज़ों को एक छोटी-सी कोठरी में कदापि बन्द नहीं कराया था। इतने आदमी इतनी छोटी कोठरी में एक साथ बन्द किये भी नहीं जा सकते। और सिराजउद्दौला जादूगर नहीं था जो उन्हें उस तंग घेरे में बन्द कर देता। फिर भी तमाम हिन्दुस्तान के लोग पुश्त दर पुश्त से इतिहास के पाठ्य ग्रन्थों में पढ़ते चले आ रहे हैं कि ऐसा भीषण काण्ड हुआ था। इसके विरुद्ध उक्त प्रस्तावक प्रोफ़ेसर हिमायूँ कबीर ने जो तर्क उपस्थित किये हैं उनमें एक यह भी है कि वह काण्ड मिस्टर हालवेल का नवाब के विरुद्ध मिथ्या अभियोग था, जिसे उन्होंने अपने एक पत्र में स्वीकार भी किया है। संस्कृत-शब्दों के हिन्दी में यथार्थ रूप में रखने के पक्षपाती सोचते होंगे कि 'पाठक' में 'आकार' वैसे ही अनधिकारपूर्ण स्थान बनाये हुए है जैसे कलकत्ते में यह कालकोठरी का स्मारक। क्या अच्छा हो कि वे दोनों मिट जायँ।

× × ×

पूज्य मालवीयजी प्रयाग में आज-कल कायाकल्प कर रहे हैं। आप एक कुटी में बन्द हो गये हैं और ४५ दिन तक उसके बाहर न निकलेंगे। कुटी के अन्दर एक साधु जिनकी अवस्था १७५ वर्ष बताई जाती है, औषधोपचार-द्वारा महामना मालवीयजी को नवजीवन प्रदान करेंगे। कहते हैं, इस क्रिया के पश्चात् वे युवा हो जायँगे और 'भारत' की सेवा में युवकों की ही भाँति नये सिरे से

लगेंगे। हम चाहते हैं कि ऐसा ही हो और मालवीय जी नवयौवन और दीर्घ जीवन प्राप्त करें।

कदाचित् महात्मा गांधी की इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करने की ओर रुचि नहीं है। आज-कल वे काफ़ी अस्वस्थ हैं, परन्तु जब उनसे कुछ विश्राम करके स्वास्थ्य सुधारने के लिए कहा गया तब उन्होंने उत्तर दिया—"अगर कोई मुझसे यह कहे कि मृत्यु से बचने के लिए इस वर्ष के अन्त तक तुम हिमालय की किसी कंदरा में बैठ जाओ तो मैं ऐसा कभी भी नहीं करूँगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि एक न एक दिन मौत का आना अनिवार्य्य है। मैं अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना जानता हूँ। पर अपना काम पूरा करने के लिए जब तक ज़रूरत होगी उससे एक क्षण भी अधिक ईश्वर मुझे जीवित नहीं रहने देगा।"

इस प्रकार शरीर-रक्षा और कर्तव्यपालन के सम्बन्ध में अकस्मात् इन दोनों महापुरुषों के कार्य्यों के रूप में दो आदर्श उपस्थित हो गये हैं। इसमें संदेह नहीं कि कर्मयोगी शरीर की परवा नहीं करता और वह सामने आये हुए कार्य में तत्काल लग जाता है। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि बुद्धिमान् व्यक्ति आवश्यक विश्राम करके अधिक बल के साथ कार्य में लगता है। यदि ये महापुरुष अपने सिद्धान्तों को और स्पष्टता करके रखते तो लोगों को अपना मार्ग स्थिर करने में अधिक आसानी होती।

× × ×

संयुक्त प्रान्तीय असेम्बली के स्पीकर माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन इस नियम को नहीं मानते कि स्पीकर को किसी पार्टी की राजनीति में न पड़ना चाहिए। वे कांग्रेस में सक्रिय भाग लेते हुए भी असेम्बली में बराबर निष्पक्ष बने रहते हैं। पर विरोधी दल को उनकी यह नीति सह्य नहीं है, इसलिए इस पर विचार करने के लिए उस दिन एक सदस्य ने 'काम रोको' प्रस्ताव उपस्थित किया। माननीय टंडन जी ने इस प्रस्ताव को नहीं आने दिया और इस सम्बन्ध में जो बात कही वह उनके निष्पक्ष व्यक्तित्व का पूर्ण परिचायक है। उन्होंने कहा—"मैंने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि जो व्यक्ति सारे हाउस का विश्वास-पात्र न हो सकता हो और जो राजनीति में भाग लेते हुए भी निष्पक्ष न रह सकता हो वह अध्यक्ष पद पर बैठने का अधिकारी नहीं है।" प्रस्तावक ने कुछ कहना चाहा, पर आपने कहा—"मैंने अपनी शर्त आपके सामने रख दी है। आप केवल अपनी सूचना भर दे दीजिए, मैं त्याग-पत्र दे दूँगा।" प्रस्तावक को इस पर चुप हो जाना पड़ा और उक्त प्रस्ताव जहाँ का तहाँ रह गया।

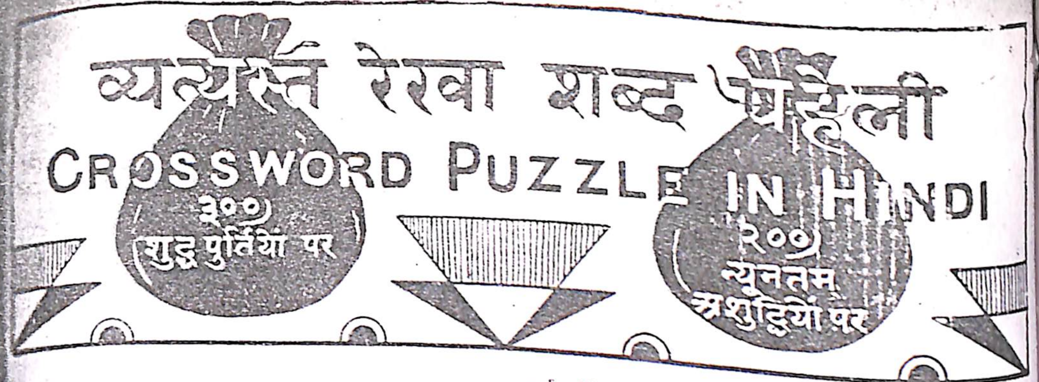
× × ×

'भारत' में पटना का एक मज़ेदार समाचार प्रकाशित हुआ है। जी० बी० कालेज, मुज़फ़्फ़रपुर (विहार), का एक मुसलमान विद्यार्थी मोहम्मद अयूब अपने होस्टल के कमरे में बिलकुल मौन-अवस्था में पाया गया। सहपाठियों के प्रश्न करने पर न वह कुछ सुन सका, न बोल सका।

उपस्थित लोगों ने मोहम्मद अयूब से लिखकर उसकी दशा के विषय में पूछा। उत्तर में उसने एक बड़ी आश्चर्यपूर्ण घटना का वर्णन किया। उसने लिखा कि गूँगे और बहरे होनेवाली रात को उसे एक भयंकर स्वप्न दिखाई दिया। उसने देखा कि चंद सफ़ेदपोश दीर्घकाय मनुष्यों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और उससे कहा 'मोहम्मद, अब तुम सुन और बोल न सकोगे।' यह कहकर वे सब अन्तर्धान हो गये।

कहा जाता है कि मोहम्मद अयूब बड़े धार्मिक विचारों का नवयुवक था। वह प्रतिदिन शाम को सात बजे स्नान करके अपने कमरे को भीतर से बन्द कर लेता था और घंटों किसी धर्म-पुस्तक की आयतें पढ़ा करता था। कुछ विद्यार्थियों के अनुसार वह बड़ा नमाज़ी और इबादत पसंद था, परन्तु उसके एक घनिष्ठ मित्र से ज्ञात हुआ कि वह किसी जिन को वश में करने के लिए अमल कर रहा था और उस अमल में ही कोई त्रुटि हो जाने के कारण यह दुष्परिणाम हुआ।

बहुत सम्भव है कि स्नायुओं पर विशेष ज़ोर पड़ने के कारण उसके इन अङ्गों को लकवा मार गया हो। पर यदि और विद्यार्थी इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे तो अयूब का यह बलिदान व्यर्थ न जायगा।



नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर १९, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २२ फ़रवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २२ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

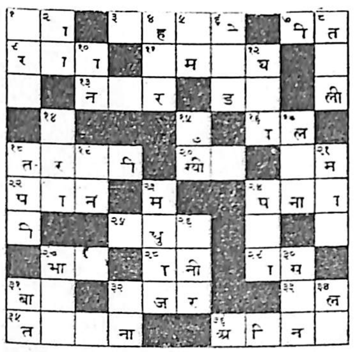
बाँयें से दाहिने

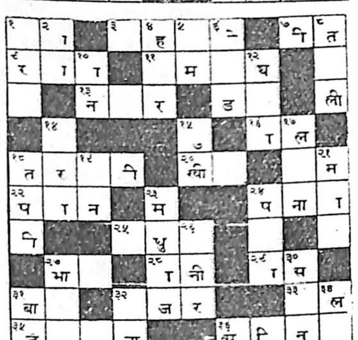
१–यह आलसी हैं जो सदा अपने के इसका पात्र बनाये रखते हैं (दया)। ३–पियक्कड़ प्रायः......रहते हैं।
७–वसन्त के दिन इससे मनोरंजन ख़ूब होता है।
९–तारका के सर पैर काटकर बेडौल जोड़े गये हैं।
११–योग्य।
१३–यह ज़रूरी नहीं कि इसके किनारे बसनेवालों को वायु स्वच्छ ही मिले। १६–बन्दूक़ की नली।
१८–एक उँगली।
२०–किसी की बेमौक़ा यह उसका मान कम कराने की सम्भावना रखती है। २२-पत्थर।
२४–पानी निकलने का रास्ता।
२५–वही जो २३ ऊपर से नीचे है।
२७–जो......का भूखा हो उसको अपनी सम्पत्ति की झलक दिखाना उसे मुँह चिढ़ाना है।
२८–राजा की स्त्री। २९–एक प्रकार की लम्बी घास।
३१–एक शिकारी पक्षी। ३२–सफ़ेद।
३३–खेती के लिए यह भी ज़रूरी है।
३५–झल्लाना। ३६–ढिठाई।

ऊपर से नीचे

१–परमात्मा जिसे यह दें उसे फिर किस बात की कमी।
२–दिवरानी।
४–यह रहस सीधी तरह से समझ में न आयेगा।
५–जो बहुत न हो। ६–उलटने से डरते रहना चाहिए
८–केवल लोहे की नहीं बल्कि पीतल की भी यह देखने आती है। १०–शरीर का एक अंग।
१२–दिन भर खेलने के बाद भी बहुधा बच्चे, मालूम होता है कि, खेल से......जानते ही नहीं।
१४–कितने ही होनहार युवकों का जीवन इसने कुछ से कुछ कर दिया है।
१५–सिनेमा पर टैक्स लग जाने से तमाशा देखनेवाले कुछ......नहीं हुए।
१७–इससे कमज़ोरी प्रकट होती है।
१८–इसका अग्नि से विशेष सम्बन्ध है। १९–एक लो[illegible]
२१–नदी-किनारे बरसात में कभी कभी इसकी तान[illegible] विशेष आनन्द मिलता है। २३–भौंरा।
२४–थका हुआ मनुष्य इसके सहारे अपनी कमर सीधी करता है।
२६–वह दूध या दही जिसमें से पानी निचोड़ लिया गया हो।
२७–आधार या योग्य।
३०–यदि यह न हो तो स्त्री के सब गुण बेकार समझिए! ३२–रंज। ३४–अनुराग।

अपनी यादाश्त के लिए वर्ग नं० १९ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।





वर्ग नं० १८ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर १८ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में [illegible] लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

ब	लि	हा	री	■	हि	मा	ल	य
ट	पा	र	■	पुँ	त	ली	■	घो
न	ई	■	ना	■	■	■	रु	चि
■	■	क	त	र	नी	■	प	त
खि	ल	ना	■	ह	ला	ल	ह	■
ला	■	ग	व	ना	■	■	ला	ग
ना	च	त	■	■	क	नी	■	■
■	स	■	लु	प	ट	■	फां	ट
पु	का	र	■	क	ना	गं	■	ट
ल	■	ज	ल	ना	■	स	■	का

वर्ग नं० १८ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १८ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। १, २, ३, ४, ५ हैं।
मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

दस्तख़त

पता

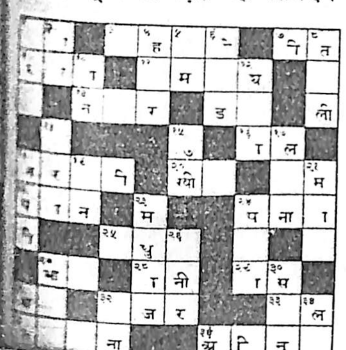
बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ तारीख़ के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

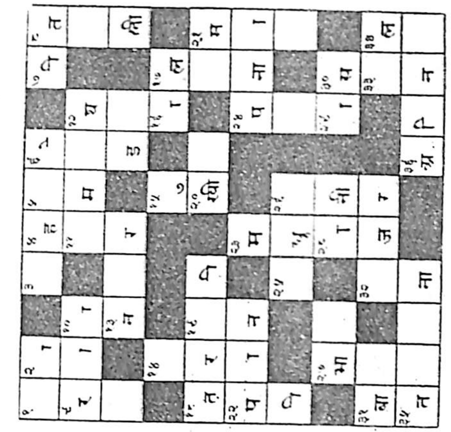
मैनेजर वर्ग नं० १९
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

उस कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

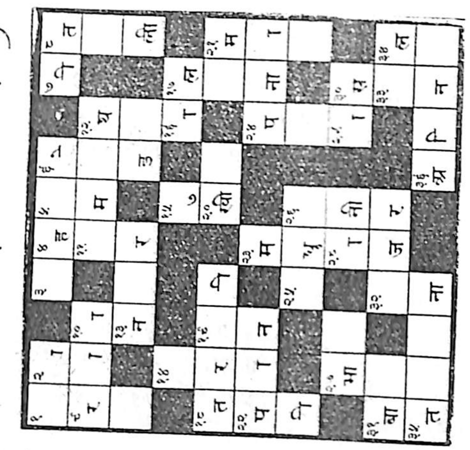


इस लाइन से काटिए

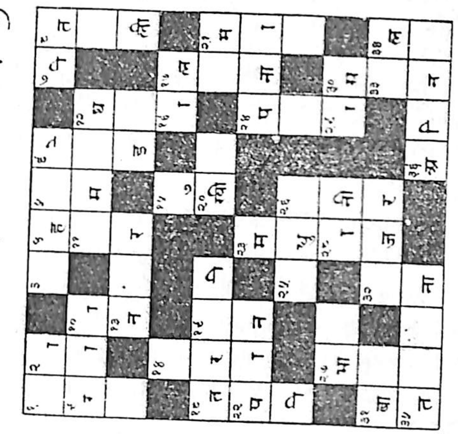
वर्ग नं० १९ पूर्ति नं०... कूपन कूपन



वर्ग नं० १९ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० १९ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहां एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को या दो छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) रु० में ३ कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ २१४ पर देखिए।

आवश्यक सूचना

वर्ग १७ के पुरस्कार-वितरण में भूल-सुधार

वर्ग नम्बर १७ का नतीजा प्रकाशित होने के बाद नियमानुसार आये हुए जाँच के फ़ार्मों के अनुसार नतीजे की फिर से जाँच की गई और जो नाम प्रकाशित हो चुके हैं उनके अतिरिक्त निम्नलिखित लोगों का भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ।

द्वितीय पुरस्कार (१ अशुद्धि पर)

(१) लक्ष्मीदेवी २१ नयापुरा उर्फ़ राबिनसनगंज, इलाहाबाद। (२) गुरुसरन c/o श्रीकृष्णचन्द्र पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ। (३) विद्यावतीदेवी गुप्त c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद।

तृतीय पुरस्कार (२ अशुद्धियों पर)

(१) सतीशचन्द्र c/o श्रीकृष्णचन्द्र पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ। (२) विनोदकुमार c/o श्रीकृष्णचन्द्र पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ। (३) आर० जे० सिंह टीचर नार्मल स्कूल जशपुर स्टेट ई० एस० ए० via, राँची। (४) नारायणदत्त फुलोरिया पोखरावाली बलटौरी अलमोड़ा, यू० पी०। (५) रामनारायणलाल गुप्त c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद। (६) दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद। (७) गोपाललाल पाण्डेय c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद। (८) मिसेज़ चन्द्रपाल शुक्ल c/o दामोदरस्वरूप गुप्त, ७६, पानदरीबा, इलाहाबाद। (९) ओंकारनाथ गुप्त, ७९, पानदरीबा, इलाहाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार

श्री हरिश्चन्द्र c/o श्रीकृष्णचन्द्र पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ का उत्तर भी दुबारा जाँचा गया और उन्हें १) का कूपन प्रदान किया गया।

पुरस्कार वितरण में संशोधन

इनमें से अधिकांश व्यक्तियों के नाम चतुर्थ पुरस्कार पानेवालों की सूची में छप चुके थे। नई सूचियाँ बनाने में चतुर्थ पुरस्कार में ७ रुपये बच रहे। इन रुपयों में से ४) द्वितीय पुरस्कार में और ३) तृतीय पुरस्कार में शामिल कर दिये गये। इस प्रकार द्वितीय पुरस्कार बजाय ११९ के १२३) का हो गया और १० व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १२।-) मिले। तृतीय पुरस्कार बजाय ४४) ४७) का हो गया और बजाय २२ के २९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १।।=) मिला।

नोट—इन सब व्यक्तियों ने जो १) जाँच की जमा की थी वह भी पुरस्कार के साथ वापस भेज दी गई है।

प्रतियोगियों के पत्र

(१)

प्रिय महोदय,

मुझे वर्ग नम्बर १७ में, पहली ही बार के प्रयत्न में एक अशुद्धि पर द्वितीय पुरस्कार मिला जिसके लिए धन्यवाद। मेरा ध्यान आपके वर्गों की ओर पिछले महीने आकर्षित हुआ जब कि मैंने एक अशुद्धि पर ३००) इनाम एक ही प्रतियोगी को पाते हुए देखा। परन्तु इस बार अभाग्यवश जब कि मेरी एक अशुद्धि निकली केवल १७) ही बँटे। ख़ैर, यही क्या कम है। पहली ही बार की सफलता से मुझे तो पूरा विश्वास हो गया कि आपका निर्णय बहुत ही ठीक होता है और जो शब्द सबसे अधिक उपयुक्त होता है वही रखा जाता है। कहीं धोखे-धड़ी का नाम तक नहीं है। यदि ऐसा ही रहा तो शीघ्र ही आपकी पहेलियाँ अँगरेज़ी की बड़ी बड़ी पहेलियों का मुक़ाबला करने लगेंगी।

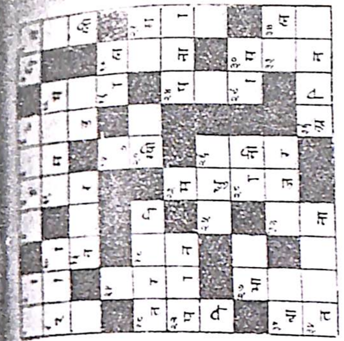
श्रीकृष्णचन्द्र पी० एम० जी० आफ़िस, लखनऊ

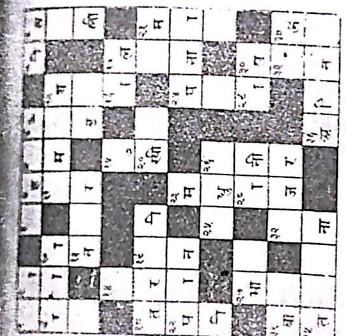
(२)

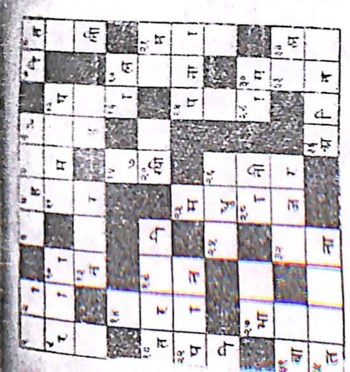
प्रिय महोदय,

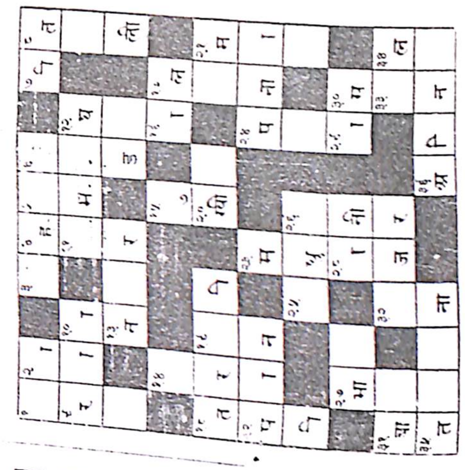
मैं आपकी प्रतियोगिता में सफल अथवा असफल रहा यह मैं नहीं बता सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि 'सरस्वती' के किसी भी पेज पर आज तक मैंने अपने नाम को नहीं देखा। आपकी इस व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली से आर्थिक वृद्धि की ही नहीं ज्ञान-वृद्धि की भी आशा रहती है। मैंने तो इन पहेलियों को हल करने में सहस्रों बिलकुल नये हिन्दी के शब्दों से जान पहचान कर ली है और आशा है किसी दिन मैं ही 'हिन्दी संक्षिप्त शब्दसागर' हो जाऊँगा। आपको इस प्रहेलिका के लिए हार्दिक धन्यवाद।

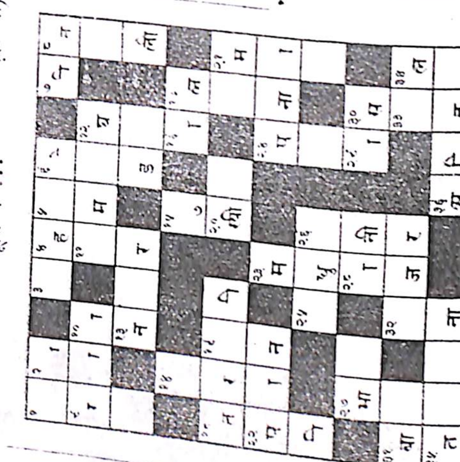
पन्नालाल गर्ग, ६७, गाड़ीवान टोला, इलाहाबाद

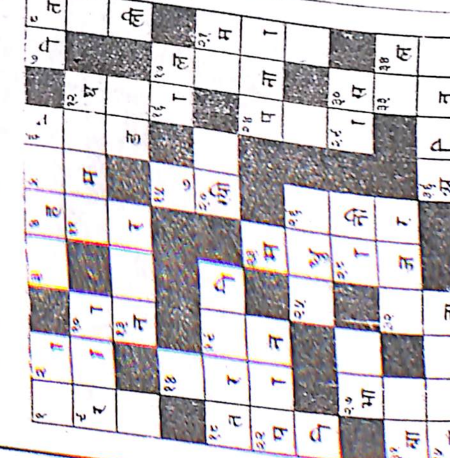












आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० १६ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो आने ख़ाली देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस से पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर १९ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २५ फ़रवरी सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें वहाँ उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

कल्लोलिनी*

लेखक, श्रीनाथसिंह

कवित्त और सवैया आदि छंद काफ़ी पुराने पड़ गये हैं। नवीन युग के भावों को उनके द्वारा व्यक्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इन छन्दों के बारे में बहुत-से लोग कुछ ऐसा ही विचार रखते हैं। यही कारण है कि इनमें की गई कविताओं की ओर हमारा ध्यान तत्काल नहीं जाता। तो भी इधर कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इन छन्दों का मोह नहीं छोड़ा और अपनी अनोखी भाव-व्यञ्जना, रस की तीव्रता और अर्थ के चमत्कार से हमें इन छन्दों के पढ़ने के लिए विवश किया है। इस श्रेणी के कवियों में स्वर्गीय जगन्नाथदास रत्नाकर, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', ठाकुर गोपालशरणसिंह और श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' प्रमुख हैं।

रत्नाकर जी का 'उद्धवशतक' यद्यपि कहने को गोपियों का विरह-वर्णन मात्र है, तथापि थोड़ा भी विचार करने पर उसका वास्तविक संदेश स्पष्ट हो जाता है। वे महात्मा गांधी के सिद्धान्तों के हामी थे, परन्तु अपनी बात को स्पष्ट कहने का साहस उनमें नहीं था, इसलिए उन्होंने गोपी-उद्धव की प्राचीन कथा का सहारा लिया था। पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' राष्ट्रीयता के प्रचारक हैं। उन्होंने कितने ही राष्ट्रीय कवि भी उत्पन्न किये हैं। रत्नाकर जी की भाँति उनमें साहस की कमी नहीं है, इसलिए वे अपनी बात को स्पष्ट कहते हैं। ठाकुर गोपालशरणसिंह जी का भी दृष्टि-कोण राष्ट्रीय है और अपनी रचनाओं में वे उस निर्भीकता का परिचय भी देते हैं जो कवि-स्वभाव के अनुरूप है, तथापि वे कविता में सनेही जी का-सा स्पष्टवाद नहीं पसन्द करते और रत्नाकर जी की भाँति पौराणिक कथानकों का आवरण भी नहीं चाहते; इसलिए उन्होंने नये छन्दों को पहले की ही भाँति फिर अपनाया है। श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' का भिन्न ही मार्ग है। रत्नाकर जी की भाँति वे छिपे नहीं रहना चाहते, सनेही जी की भाँति वे कोरे गायक बने रहना उचित नहीं समझते और ठाकुर गोपालशरणसिंह की भाँति स्पष्टवाद-छायावाद का आपसी समझौता भी नहीं चाहते, इसलिए इस शैली के इन कवियों से सर्वथा भिन्न रूप में वे हमारे सामने आते हैं। उन्होंने देश के दर्द को कवि की दृष्टि से देखा ही नहीं, कवि के हृदय से उसका अनुभव भी किया है। उन्होंने दूसरे कवियों की भाँति देश की स्वाधीनता के संग्राम को दूर से ही नहीं देखा, अपने आपको उसमें झोंक भी दिया है। यही कारण है कि उनकी कविता में दर्द ताज़ा है, अनुभूति वास्तविक है और कल्पना सजीव और सार्थक है। इसलिए वे प्रातःकाल में वियोगियों और संयोगियों के साथ साथ स्वतंत्रता चाहनेवालों को भी उठता हुआ देखते हैं। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों पर ज़रा ध्यान दीजिए—

सुख-भोग के भोगी उठे, दुख-रोग के रोगी कराहनेवाले उठे।
जो वियोग के मारे वियोगी उठे तो सँयोग सराहनेवाले उठे।
तृण-सा जिन्हें जीवन है वह भी, प्रण-पूर्ण निवाहनेवाले उठे।
अभिमंत्रित मंत्र से देश के भक्त स्वतंत्रता चाहनेवाले उठे॥

अच्छी कविता की कसौटी क्या है, यह बताना कठिन है। प्रायः ऐसा होता है कि परिस्थिति के अनुकूल जो कविता होती है वह हमें पसन्द आ जाती है और उससे जो भिन्न होती है वह काव्य के सम्पूर्ण नियमों से युक्त होने पर भी हमें स्पर्श नहीं करती। उदाहरण के लिए हमारी वर्तमान परवश अवस्था में जब हमारे हृदय में एक हाहाकार मचा हुआ है और हमारी हँसी केवल कृत्रिम है, तब हम तो किसी विश्व-विश्रुत महाकाव्य को न पढ़कर हितैषी जी के इन पद्यों जैसी रचनाओं को ही पढ़ना सार्थक समझेंगे—

* लेखक श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी, प्रकाशक, श्री प्यारेलाल शर्मा शारदा-सेवक-सदन, कानपुर हैं। मूल्य २) है।

बाहर ही बाहर बनाव है पै भीतर से,
देह घुने डालता है घुन अनिवार एक।
मौखिक सभी हैं तुकतानें ये 'हितैषी' यहाँ,
अन्तर में गूँजती है करुण-पुकार एक।
उमँगे उत्साही नेत्रों की ही ओट में है भरा,
अगम अपार आँसुओं का पारावार एक।
प्रकट प्रसन्नता है, ओठों पै हँसी है पर,
हृदय हमारे में मचा है हाहाकार एक ॥

दैव से दलित हृदयों की हूँ 'हितैषी' हाय,
सरबस खोनेवाले का मैं सूनापन हूँ।
मृतक युवक के कुटुम्बियों का क्रन्दन हूँ,
पुत्र शोक पीड़ित पिता का दग्ध मन हूँ ॥
खाली हुई गोदी जिस माँ की उसकी हूँ व्यथा,
विधवा विलापिनी का व्याकुल वचन हूँ।
फाँसी पा गया जो उसका हूँ मैं सँदेशा एक—
पागल शहीद का अपूर्ण रहा प्रण हूँ ॥

व्रजभाषा के प्राचीन कवियों ने अन्योक्तियाँ लिखने में कमाल किया है। परन्तु वे आधुनिक राष्ट्रीयता से परिचित न थे और उन्होंने अपने को भारतीय राष्ट्र का एक अङ्ग या सेवक कभी नहीं समझा था, इसलिए आज उनकी अन्योक्तियाँ हितैषी जी की निम्न अन्योक्तियों के आगे उतना नहीं जम सकेंगी। देखिए—

रात को ओस के आँसुओं रोये,
'हितैषी' भिगोये दिगञ्चल सारे।
पीले पड़े मिटी पूर्व की लाली भी,
नीचे गिरे जब ऊँचे सितारे।
यादे हुए दिन देख ये. साँझ को—
खून उमंगों का सिन्धु किनारे।
हाय री, आत्मविशालता तूने ही
हैं ये किये बुरे हाल हमारे।

प्रति वासर रौप्य ही रौप्य दशो-
दिग-मण्डलों में बरसाता हूँ मैं।
प्रति रात्रि जवाहिर-मोतियों की,
मणिमालों की भेंट चढ़ाता हूँ मैं।



पंडित जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'

प्रति प्रात या सन्ध्या 'हितैषी' सदा,
बन कर्ण ही स्वर्ण लुटाता हूँ मैं।
यश विश्व से पाता यही तब भी,
कि सभी विधि शून्य कहाता हूँ मैं।

आतप-तप्त था पान्थ, जिसे,
बिठलाया बिछाकर अञ्चल छाया।
पा के प्रस्वेदित, खेद से खेदित,
पल्लव-पंखा 'हितैषी' डुलाया।
पत्र औ पुष्प की भेंट दी, देख
क्षुधार्त्त जिसे फल मिष्ट खिलाया।
हा! हा!! उसी जड़ मानव ने
मुझको जड़ काट के काट गिराया!

भारतवर्ष आकाश सा ही मणिमंडित होते हुए भी आज संसार के अन्य देशों के मुक़ाबिले में शून्य समझा जाता है। अभाव का यह दद बिना दिल में पैदा हुए इस के पहले छंद की रचना सम्भव नहीं है और दूसरा छंद वृक्ष का नहीं साक्षात् स्वदेश का ही उपालम्भ है—भारतीयों के प्रति भी और विदेशियों के प्रति भी।

भारतीयों में स्वाधीनता के लिए जो व्याकुलता है उसको वही कवि सार्थक रूप से व्यक्त कर सकता है जो स्वतंत्रता के संग्राम में कूदा हो और जिसे जेलख़ाने की हवा खानी पड़ी हो। बङ्गाल के बरहमपुर-जेल में बन्द होने पर हितैषी जी ने इन पंक्तियों में भारतीयों की इस भावना को किस सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है—

पाँव थके किसके बिना ये हाथ हैं बेहाथ,
ताप से तपित त्वचा तन की है मुख म्लान?
आहें भरती है नासा किसके बिना 'हितैषी',
तरसते हैं किसकी बानी सुनने को कान?
किसकी सदैव नयनों में नाचती है छवि,
मन-मतवाला किसका ये करता है ध्यान?
है नहीं ठिकाने बुद्धि किसकी विवेचना में,
व्याकुल न जाने किसे पाने के लिए हैं प्रान?

ग़रीब और अमीर का भेद भी आज-कल की एक समस्या है। हितैषी जी जैसे राष्ट्रीय कवि का ध्यान इधर जाना स्वाभाविक ही था। वे लिखते हैं—

जिसने दुनियाँ को दिया दुख दर्द,
मसीह के हाथों इलाज दिया।
सिखलाई है नाज़ुकी आशिक़ों को,
जिसने बुतों को ये मिज़ाज दिया।
है बिगाड़ा अभी कल ही किसी को,
जिसने किसी को बना आज दिया।
उसी ने मोहताज किया है हमें,
जिसने तुम्हें तख़्त औ ताज दिया।

तुम्हें मेवा-मिठाई है दी पै हमें—
जुड़ता नहीं अन्न का भी इक कौर।
तुम्हें तो ज़मींदार किया पै हमें—
कहीं भी नहीं है खड़े होने का ठौर।
कहें क्या 'हितैषी' बुरा किसी को,
समझे मन में करके यही ग़ौर।
कि अमीर का है परमेश्वर और,
ग़रीब का है परमेश्वर और!

और आधुनिक युग में भारतीयों का सुख क्या हो सकता है, यह भी सुन लीजिए—

पेय होके प्यासे पथिकों का पय--शीतल है—
वायु, विरहाकुलों पै व्यजन डुलाने से।
आहतों की आह होके अनल— चमक उठा—
नभ, दीन—शीश— छत्र-छाया बन जाने से।
धूलि-कण होकर, 'हितैषी' है धरा भी धन्य,
प्रेमी पागलों के प्यारे पग-तल पाने से।
दुःखमय जगत में आने से सुखित हूँ मैं,
दुख, बना सुख, दुखियों को अपनाने से।

यह सब होते हुए भी हितैषी जी निराश नहीं हैं जैसा कि कोई राष्ट्रीय कवि निराश नहीं हो सकता। किरणों को सम्बोधन करके वे कहते हैं—

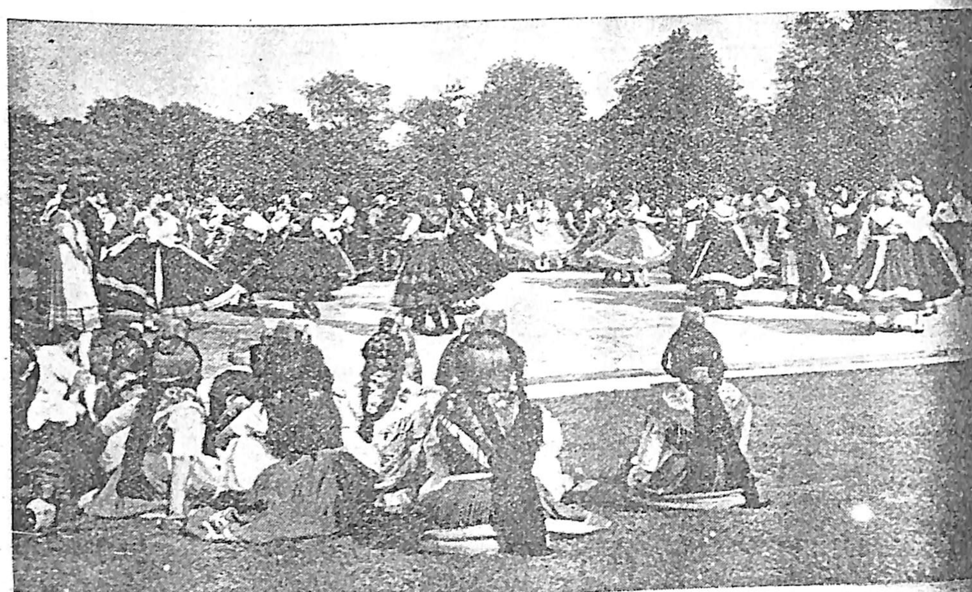
निशि छाई विपत्ति की जो इसके,
उर तेज का तीर हनो चमको।
दल द्वन्द्व दो मन्द नक्षत्रगणों के,
अमन्द हो, ऐ किरनो! चमको।
हर म्लानता को, मुझ कंज पै
उज्ज्वलता का वितान तनो चमको।
तम को कर दूर कुभाग्य के मेरे
सुभाग्य का सूर्य बनो चमको।

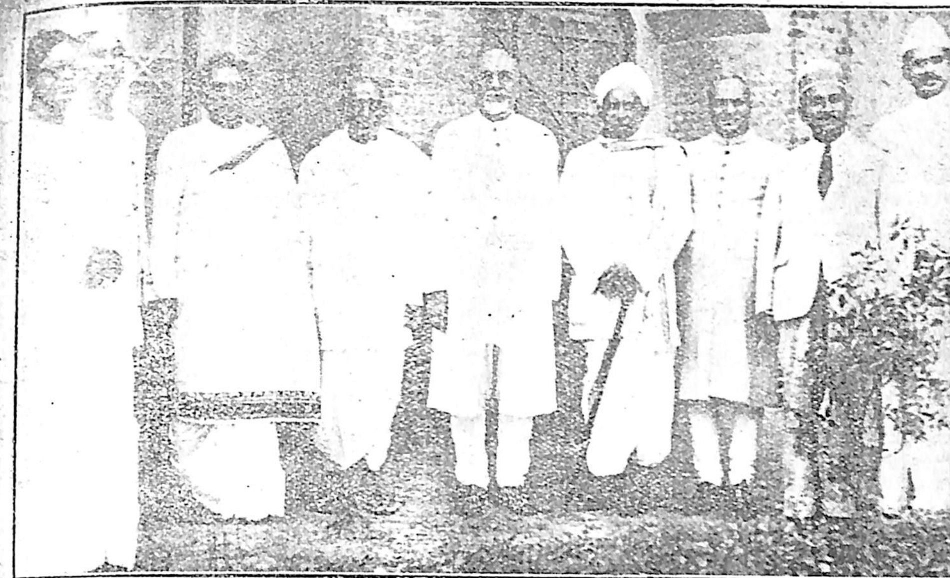
कहते हैं, कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है। अपने समय के सुख-दुख को व्यक्त करके वह निराश मानवों के हृदय में आशा का संचार करता है और उन्हें आगे बढ़ने के लिए उत्तेजित करता है। इस दृष्टि से हितैषी जी सफल कवि हैं और उनकी कविताओं का स्वागत करना युग के संदेश का स्वागत करना है।

चित्र-संग्रह



पिछले दिनों दिल्ली में राजनैतिक बंदियों को छुड़ाने के सम्बन्ध में एक कान्फ़रेंस हुई थी। यह चित्र उसी अवसर का है। दाहनी ओर से श्री शचीन्द्रनाथ बख़्शी, श्री योगेशचन्द्र चटर्जी, श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और श्री रामकृष्ण खत्री



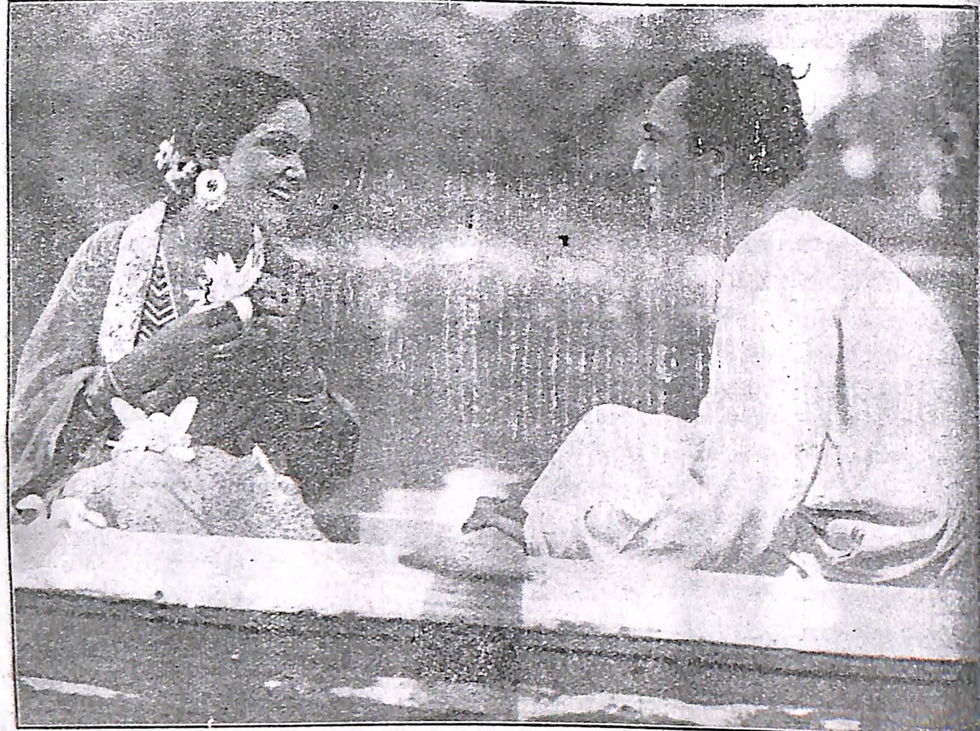


मदरास-प्रान्त का कांग्रेसी मंत्रिमंडल। बाईं ओर से सर्वश्री रामनाथन, के० रमन मेनन, टी० प्रकाशम, सी० राजगोपालाचारियर (प्रधान मंत्री), याकूब हसन, डा० राजन, वी० वी० गिरि, मुनिस्वामी पिलई और गोपाल रेड्डी।





ससेक्स के एक स्कूल में लड़कों को धनुष चलाना सिखाया जा रहा है। इस व्यायाम में १२ वर्ष तक के बच्चे शरीक किये जाते हैं।





सामयिक साहित्य

एक महत्त्व-पूर्ण फ़ैसला

लाहौर-हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सर डगलस यंग और श्री अब्दुल रशीद ने एक पुलिसमैन की हत्या करने के अपराध में आजीवन कालेपानी की सज़ा पाये हुए एक व्यक्ति को बरी कर दिया है. यद्यपि उसने पुलिस से अत्यधिक सताये जाने पर उसकी हत्या की थी। न्यायाधीशों की राय में उसे इस प्रकार आत्मरक्षा करने का अधिकार था। श्रीमहादेव देसाई ने 'हरिजन' में इस फ़ैसले के सम्बन्ध में एक विचार-पूर्ण लेख लिखा है। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

यह मुक़दमा संक्षेप में इस प्रकार था। रावलपिंडी की फ़ौजी छावनी में एक काफ़ी की दूकान पर कीरू नाम का एक चौकीदार था। दूकान में एक दिन चोरी होगई। शक यह था कि उसमें कीरू का हाथ है। उसे पकड़कर पुलिस ने घंटों इतनी निर्दयता से उसकी पिटाई की कि कीरू ने अपराध स्वीकार कर लिया। यह बतलाने के लिए कि चोरी का माल कहाँ रखा हुआ है, पुलिस वग़ैरह को वह एक जगह ले गया। वहाँ एक पेटी रखी हुई थी। उसे खोलकर उसने छुरा निकाला, और पुलिस कांस्टेबिल तथा दूकान के मालिक को मारा और इसके बाद अपने शरीर पर भी वार किया। कांस्टेबिल तो मर गया, पर कीरू और दूकान का मालिक ये दोनों बच गये। रावलपिंडी के सेसन जज ने कीरू को पुलिस कांस्टेबिल की हत्या करने और दूकान के मालिक को सख़्त चोट पहुँचाने के जुर्म पर अपराधी ठहराया, और इसके लिए उसे आजीवन कालेपानी की और १८ महीने की क़ैद की सज़ा दी। कीरू को सौभाग्य से पाइप मेजर स्टुअर्ट नामक एक फ़ौजी अफ़सर गवाह मिल गया। उसने इसे पीटते हुए ख़ुद देखा था, और उसके दिल पर काफ़ी चोट पहुँची थी। यह सुबूत मिलने पर भी सेसन जज ने यह फ़ैसला किया कि यह कारण साबित नहीं हो सका कि कीरू को अपनी रक्षा करने के लिए इतना ज़्यादा ग़ुस्सा चढ़ आया था या यों ही एकाएक। पर जब हाईकोर्ट में अपील हुई तो वहाँ यह फ़ैसला सुनाया गया :—

"जो हक़ीक़तें सामने आई हैं उनसे यह साबित होता है कि कीरू का अपनी रक्षा करने के लिए वार करने का पूरा अधिकार था।.........अभियुक्त बड़ी निर्दयता के साथ पीटा और सताया गया था, और उसकी इतनी देर तक पिटाई की गई थी कि उसकी कल्पना से भी दिल दहल जाता है। अधिकांश मामलों में जिन अभागे व्यक्तियों पर सन्देह होता है उनके साथ इतने वाहियात और ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से बर्ताव होता है कि बेचारे लाचार और निराश हो जाते हैं। जब तक उनसे सहा जाता है, वे इस उत्पीड़न को बर्दाश्त करते हैं। उसके बाद, सच हो या झूठ, चोरी करना 'स्वीकार' कर लेते हैं और चोरी का माल बता देने के लिए वचन दे देते हैं।......इस तरह की 'तहक़ीकात' के परिणाम-स्वरूप कई आदमियों के मर जाने के उदाहरण ऐसे नहीं हैं कि जिनका पता न हो, और हम ख़ुद भी ऐसे कुछेक उदाहरणों को जानते हैं।........ हमारी राय यह है कि इस अभियुक्त पर जो भयानक मार पड़ रही थी उसे रोकने की कोशिश करने में उसको मारनेवाले की जान ले लेना तक उचित था।.........पुलिसवालों के लिए 'तहक़ीकात' का यह तरीक़ा लज्जाजनक है, और न्याय करने के काम में यह भयानक विघ्नरूप है, साथ ही न्याय की व्यवस्था के बारे में लोगों के मन में खुल्लम-खुल्ला तिरस्कार का भाव पैदा करता है। यह वाहियात तरीक़ा रोका जा सकता है, और रोकना चाहिए।"

यह फ़ैसला पुलिस की तहक़ीकात के तरीक़ों पर भयानक प्रकाश डालता है, और जो बेचारे अक्सर पुलिस के ज़ुल्मों के शिकार हो जाते हैं उन्हें यह फ़ैसला अपनी रक्षा करने का अधिकार साफ़-साफ़ शब्दों में देता है। इसका असर दूसरी दिशाओं में भी होगा और होना चाहिए। अपनी रक्षा के अधिकार के विषय में भारतीय दंड-विधान

की दफ़ा बहुत ही सादी है। "आदमी अपनी रक्षा के लिए अगर कुछ करे तो वह जुर्म नहीं है।" पर आत्म-रक्षा का अधिकार किन परिस्थितियों में इतना अधिक स्पष्ट समझना चाहिए ऐसी कोई बात इस क़ानून में कहीं गई मालूम नहीं पड़ती।

भारतवर्ष का क़ानून इँग्लेंड के क़ानून का प्रतिबिम्ब है, और इँग्लेंड के क़ानून में तो यह चीज़ बहुत ही स्पष्ट है। "जहाँ एक आदमी दूसरे आदमी पर भयानक और हिंसक हमला करे, वहाँ जिस आदमी पर हमला हुआ हो, उस आदमी का अथवा उसके नौकर का या जो आदमी उस जगह हाज़िर हो उसे बलप्रयोग करके हमला करनेवाले को हटा देने का और ज़रूरत पड़े तो उसकी जान ले लेने तक का हक़ है।" (हॉल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इँग्लेंड, जिल्द ९) और इस दफ़ा के विवरण में साफ़ कहा है कि किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न करनेवाले आदमी को मार डालने का उस स्त्री को पूरा अधिकार है।

——

हरदुआगंज में क्या देखा

पिछले दिनों हरदुआगंज (अलीगढ़) में संयुक्त-प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन बड़ी धूम-धाम से हुआ था। उपर्युक्त शीर्षक से 'संघर्ष' में बाबू सम्पूर्णानन्द ने उसका बड़ा ही सजीव संस्मरण लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ हम उसके कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

क़रीब एक लाख आदमी जमा थे। प्रायः सभी किसान थे और अधिकतर बुलन्दशहर और अलीगढ़ ज़िलों के रहनेवाले थे। इस सर्दी में इतने आदमियों का घर के काम-धन्धों को छोड़कर एकत्र होना कोई साधारण बात न थी। सम्मेलन के पहले दिन रातभर पानी बरसा। हम नेता लोग डेरों में पड़े पड़े इन्द्रदेव के गणों को कोस रहे थे क्योंकि कुछ न कुछ पानी छनकर हमारे लिहाफ़ों और कम्बलों पर टपक रहा था। पर इन किसानों ने खुले मैदान में ही रात काट दी। बहुत-से घर चले गये ज़रूर। इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि उन्होंने नुमाइश देख ली, लाउड स्पीकर देख लिया, जवाहरलाल जी और पन्त जी के भाषण सुन लिये और स्वयंसेवकों के लाख रोकने पर भी लीडर्स कैम्प में घुसकर नेताओं को मामूली आदमियों की तरह नहाते और खाते देख लिया। इतना तमाशा काफ़ी था।

× × ×

लेकिन फिर भी कई हज़ार रह गये। नीचे ज़मीन तर और बैठने के टाट पर चारों ओर कीचड़, ऊपर से रुक-रुककर वृष्टि, उस पर से शरीरवेधी बर्फ़ीली हवा के थपेड़े फिर भी ये लोग अड़े रह गये। बैठ न सके। लगभग ... घण्टे खड़े खड़े गुज़ार दिये पर सब प्रस्तावों को सुना और अन्त में सभापति को धन्यवाद देकर तब मण्डप से निकले। यह उनके उत्साह का एक नमूना था।

× × ×

एक किसान साहब कह रहे थे, "जब तें पन्त जी मिनिस्टर है गये हैं, तब तें द्वय-द्वय इञ्च रोज मोटे होत जातु हैं।" मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने मिनिस्टर होने के पहले कभी पन्त जी बेचारे को देखा भी था या नहीं। स्यात् नहीं देखा होगा, नहीं तो ऐसी बात न कहते। पर मोटेपन के बढ़ने की बात सच हो या झूठ, उसकी तह में जो विचारधारा है वह ग़ौर करने की चीज़ है। उसको एक और महाशय ने अपने शब्दों में और स्पष्ट कर दिया। मैं उनके शब्दों को न दुहराकर उनका भाव लिखता हूँ। वे यह कह रहे थे कि कांग्रेसी नेताओं ने जो बोया था वह काट लिया, अपने तप का फल पा लिया। अब तो हमें बोना और काटना है। उनका आशय यह था कि ये लोग तो मेम्बर, मिनिस्टर आदि हो गये। अब तो हमको आगे बढ़ना है और अपने हाथ में अधिकार लेना है।

× × ×

एक साहब को कहीं सम्मेलन के सभापति श्री मोहन-लाल सक्सेना का बिस्तर छूने का अवसर मिल गया। उन्होंने उनके गद्दे को टटोला तो उसमें लगभग दो इञ्च मोटी रुई पाई। अपनी अँगुलियों से वे ऐसा ही बता रहे थे। सच तो यह है कि हममें बहुतेरे मोहनलाल जी की ही भाँति अपराधी थे पर ख़ैरियत हुई कि हमारे गद्दे टटोलने से बच गये। गद्दा तो एक प्रसंगमात्र था। उससे और बातों का पता चल गया। बाबू मोहनलाल भी हम सबके प्रतीक मात्र थे, उनके बहाने हम सबकी तलाशी हो गई। टटोलक जी ने गोवर्धन में भरी सभा में कहा, ग़रीब-अमीर सब एक हैं, चाहे कांग्रेस में हों, चाहे बाहर। मिलने पर एक दूसरे को आदाब अर्ज़ करते हैं, एक साथ चाय पीते हैं, सिगरेट पीते हैं। ग़रीबों की वहाँ पूछ नहीं। अब सब ग़रीबों को, चाहे वे कांग्रेस में हों चाहे उसके बाहर, अपने को एक समझना चाहिए। इसमें यह भाव छिपा है कि ग़रीबों को कांग्रेस के पैसेवाले नेताओं से भी लोहा लेना होगा।

× × ×

एक सोई हुई शक्ति को हमने जगा दिया है। जो किसान सैकड़ों बरसों से मोहनिद्रा में पड़ा था, वह अँगड़ाइयाँ ले रहा है, उठनेवाला है। वह अपने आपको कुछ कुछ पहचानने लगा है। उसकी वर्गचेतना सतर्क हो उठी है। चुनाव ने उसकी आँखें खोल दी हैं। उसको यह पता चल गया है कि वह सरकारों को बना बिगाड़ सकता है। बड़े बड़े नेताओं ने, स्वयं मन्त्रियों ने, उससे सहायता की अपील की है। वह लोगों की बातों और कामों को परखने लगा है। जो लोग उसको बेवक़ूफ़ देहाती समझते हैं वे भूल करते हैं। वह देहाती है पर काम की बातों को ख़ूब समझता है। वह गोली बन्दूक़ से दबाया जा सकता है पर अब उसको नाराज़ रखकर कोई बहुत दिनों तक शासन नहीं कर सकता।

——

किसान-सभायें और कांग्रेस

बिहार में कहीं कहीं किसान-सभाओं का कांग्रेस के मुक़ाबले में संगठन किया जा रहा है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने एक वक्तव्य निकाल कर इसे अनुचित कहा है, क्योंकि इससे राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो सकती है। इस पर 'आज' ने एक लम्बा अग्र लेख प्रकाशित किया है। विषय महत्त्व का है। 'आज' के उक्त लेख का कुछ आवश्यक अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद जी ने बिहार के किसान-आन्दोलन और किसान-सभाओं के सम्बन्ध में जो लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया है वह समस्त देशहितैषियों और कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के लिए गम्भीर विचार का विषय है। हमारा अपना विश्वास है कि किसान सभाओं का संघटन कांग्रेस की राजनीतिक प्रगति के लिए आवश्यक है। किसानों का स्वार्थ यद्यपि वर्गविशेष का स्वार्थ कहा जा सकता है फिर भी देश की जन-संख्या के बहत्तर प्रतिशत किसान होने के कारण उनकी समस्या दूसरी सब समस्याओं से अधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ है। किसान-सभाओं का संघटन इस-लिए आवश्यक है कि देश के इतने विशाल वर्ग के हितों की रक्षा की जा सके। इसमें तो सन्देह नहीं कि किसानों की प्रभुता कांग्रेस पर है क्योंकि कांग्रेस के सदस्यों में सबसे अधिक संख्या इनकी ही है। पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि कांग्रेस में दूसरे वर्ग भी हैं जिनका स्वार्थ किसानों के स्वार्थ का विरोधी हो सकता है अथवा जिन्हें कम से कम किसानों की समस्या से कोई प्रेम नहीं है। आज अधिकतर कांग्रेस नेता और कार्य-कर्ता किसानों के हितों के पक्षपाती हैं पर सम्भव है कि वे जितनी दूर तक जाने के लिए तैयार हैं उससे किसानों को सन्तोष न होता हो। इस परिस्थिति को देखते हुए कोई निष्पक्ष द्रष्टा यही सलाह देगा कि कांग्रेस की मनोदशा, उसकी विचारधारा, उसके दृष्टिकोण, उसकी नीति और उसके कार्यक्रम में किसानों के हित और उनकी माँग के लिए आवश्यक परिवर्तन कराना किसानवर्ग को अभीष्ट हो सकता है और यह काम तभी पूरा हो सकता है जब व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि सामूहिक और वर्गरूपेण किसान कांग्रेस में सम्मि-लित हों। अतः इस प्रतिनिधित्व के लिए किसान-सभाओं की आवश्यकता पड़ सकती है। फिर अपनी आर्थिक और सामाजिक माँगों के आधार पर किसान सरलता से संघटित हो सकते हैं और उनके इस युद्ध का सम्बन्ध स्वतन्त्रता-संग्राम से जोड़कर कांग्रेस का आधार व्यापक बनाया जा सकता है। निस्सन्देह इसके द्वारा स्वतन्त्रता के आन्दोलन में जनवर्ग का सम्मिलन होगा और उसकी दृढ़ता तथा व्यापक शक्ति की सहायता प्राप्त होगी। पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है अतः हम समझते हैं कि किसान-सभाओं का संघटन उचित और आवश्यक है।

किसान-सभाओं के समर्थक होने के कारण बिहार-प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के निर्णय को सुनकर हमें कुछ संदेह और कुछ खेद हुआ था। आज उसी के सम्बन्ध में राजेन्द्र बाबू का प्रकाशित वक्तव्य हमारे सामने है। हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि बिहार-प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी ने

अपने प्रांत की किसान-सभाओं और किसान कार्य-कर्ताओं पर किसी प्रकार की रुकावट लगाने की अथवा उनका दमन करने की चेष्टा नहीं की है। उसने जो कुछ किया है उसका अर्थ केवल इतना ही है कि किसान कार्य-कर्ताओं ने जिस ग़लत आधार पर अपना काम आरंभ किया है उससे उन्हें आगाह करते हुए कांग्रेसजनों को ऐसी कारवाइयों से बाज़ आने की सलाह दी है। राजेन्द्र बाबू के वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि किसान कार्य-कर्ताओं ने कांग्रेस की प्रतिष्ठा को ख़तरे में डाल देने की चेष्टा की है। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद ज़मींदार और कांग्रेस को एक श्रेणी का घोषित करके कांग्रेस के प्रति जनता में एक प्रकार की अप्रीति फैलाने की चेष्टा की है। जनवर्ग में, जो सब बातों की पेचीदगियों को समझने में समर्थ नहीं है, बुद्धि-भेद उत्पन्न करना कभी वांछनीय नहीं हो सकता। कांग्रेस तो वह डाल है जिस पर बैठकर किसान भी अपना हित-साधन करेगा। पर आज यदि उसी डाल को काट डालने की चेष्टा की गई तो फिर किसानों के हित की रक्षा भी किस प्रकार होगी? कांग्रेस-नेताओं को ज़मींदारों का एजेण्ट कहना, कांग्रेसी मन्त्रियों के प्रति अविश्वास उत्पन्न करना, कांग्रेस को ज़मींदारों की संस्था कहना क्या उसकी जड़ खोदना नहीं। उस अवस्था में आगे चलकर यदि किसान ही कांग्रेस के सुनाम तथा प्रतिष्ठा से लाभ उठाना चाहेंगे तो किस प्रकार उठा सकेंगे? फलतः हमारा यह दृढ़ मत है कि किसान-सभाओं की स्थापना का लक्ष्य होना चाहिए कांग्रेस को शक्ति-वृद्धि करना तथा उसकी प्रतिष्ठा-वृद्धि करना। कांग्रेस को आप अधिकाधिक प्रभावित करके आगे बढ़ाने की चेष्टा अवश्य करें पर उसके विरुद्ध प्रचार करके ग़लत धारणा उत्पन्न करना तो दुर्नीति ही है। हम राजेन्द्र बाबू की इस राय से सहमत हैं कि कांग्रेसजन को कम से कम ऐसी कारवाइयों से बाज़ आना चाहिए और ऐसे लोगों का विरोध करना चाहिए जो कांग्रेस की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। हम आशा करते हैं कि किसानों में कार्य करनेवाले कांग्रेस-कार्य-कर्ता जोश के साथ साथ होश से भी काम लेंगे।

१९३६ में रेलवे

१ अप्रैल १९३६ से ३१ मार्च १९३७ की रेलवे की रिपोर्ट पर 'हिन्दुस्तान' ने एक ज्ञातव्य अग्र… प्रकाशित किया है। नीचे हम उसे उद्धृत करते हैं—

निमेयर-निर्णय के कारण रेलवे की आमदनी … प्रान्तीय सरकारों की विशेष नज़र है। क्योंकि राष्ट्र-निर्माण के कार्यों के विकास को रेलवे की आमदनी का मुहताज बना दिया गया है। दूसरी बात यह है कि भारतीय … की विशाल पूँजी रेलवे में लगी हुई है। इसलिए रेलों के संचालन को यदि जनता बारीकी से परीक्षा करे तो … स्वाभाविक है।

कपास, गेहूँ, जूट, गन्ना, पेट्रोल आदि की … बढ़ने से माल की ढुलाई बढ़ी है और इस कारण … रेलवे से रिपोर्ट के साल ४$\frac{3}{4}$ करोड़ रुपये की पिछले … की अपेक्षा अधिक आमदनी भी हुई है। मुसाफ़िरों … संख्या में ४०,००,००० बढ़ती हुई है, मगर आमदनी … २७ लाख रुपया घट गई है। इसका कारण यह है … तीसरे और ड्योढ़े दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या जहाँ … है, वहाँ दूसरे दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या में कमी … है। १९३५-३६ में दूसरे दर्जे में सफ़र करनेवालों … संख्या ४७ लाख ६३ हज़ार थी और १९३६-३७ में … कर वह ४५ लाख ९० हज़ार रह गई। दूसरे दर्जे … मुसाफ़िरों में १७३ हज़ार की कमी नगण्य नहीं कही … सकती। इस कमी का यदि रेलवे आमदनी पर प्रभाव … पड़ा हो तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

पिछले पचीस साल में मुसाफ़िरों में कितनी वृद्धि हुई है, यदि इस ओर हम नज़र दौड़ाते हैं, तो मालूम होता … है कि रेलवे की जनता में लोकप्रियता घटती जाती है। हमारी इस बात का समर्थन निम्न तालिका से … होता है :—

दर्जा	१९१०	१९३७
तीसरा	३१,५८,३९,०००	४९,३८,३५,०००
ड्योढ़ा	१,०७,०२,०००	१,१०,८५,०००
दूसरा	२७,८४,०००	४५,९०,०००
प्रथम	६,८५,०००	४,०६,०००

भारत की आबादी १९१० से १९३७ के बीच … करोड़ बढ़ गई है, मगर तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों में केवल १,७३,६६,००० की वृद्धि हुई है। आबादी जिस अनुपात … से बढ़ी है रेलवे के तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या उसी अनुपात से नहीं बढ़ी है, इससे स्पष्ट है कि मोटरों के मुक़ाबले रेलवे की जनता में लोकप्रियता घटती जाती है।

दूसरी बात यह मालूम होती है कि पहले दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या घट रही है। यही नहीं १९३५ की अपेक्षा १९३६ में दूसरे दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या भी घटी है। इसके अलावा तीसरे दर्जे में मुसाफ़िरों की संख्या … जितनी बढ़नी होनी चाहिए, उतनी बढ़ती नहीं हुई है। इसलिए रेलवे का ख़र्च घटाने और जनता में रेलवे को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए यह अधिक आवश्यक है कि पहला और ड्योढ़ा दर्जा तोड़ दिया जाय। दूसरे दर्जे को इसी … में पहला दर्जा बना दिया जाय और तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों को वे सब सुविधायें दी जायँ, जो … आज ड्योढ़े दर्जे को प्राप्त हैं। हमारा अपना विचार है कि यदि रेलवे बोर्ड हमारे प्रस्ताव के अनुसार कार्य करेगा, तो उसे नई लाइनें बनवाने के समय मोटर-प्रतियोगिता के … से प्रान्तीय सरकारों से इस प्रकार की शर्तें करवाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, कि रेलवे लाइन की सहायक सड़कों के अलावा और सड़कें नहीं बनवाई जायेंगी।

रिपोर्ट से यह भी प्रकट होता है कि रेलवे मुसाफ़िरों के आराम की ओर उसी जगह ध्यान देती है, जहाँ मोटर-प्रतियोगिता तीव्र होती है। इसलिए मोटर-प्रतियोगिता को कम करने के लिए रेलवे द्वारा क़ानून का सहारा लेने का कहाँ तक समर्थन करना चाहिए यह विचार-णीय है। हमारा ख़याल है कि रेलवे की आमदनी बढ़ाने के लिए मोटरों और बसों पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगाने से रेलवे जनता की इस समय से भी और अधिक उपेक्षा करने लगेगी। इसलिए रेलवे को क़ानून की लाठी न पकड़ाई जाय तो जनता की भलाई की दृष्टि से अधिक अच्छा होगा।

रेलवे भारत की है। भारत की पूँजी से ये बनी हैं। मगर आश्चर्य है कि इनका इन्तज़ाम सात समुद्र पार से आकर कुछ व्यक्ति करते हैं। रेलवे के उच्च पदा-धिकारियों में अब भी विदेशियों की संख्या आधे से ज़्यादा है। १९२५ में शाही रेलों में उच्च रेलवे अफ़सरों में भारतीयों की संख्या २८·०२ प्रतिशत थी और कम्पनी की

रेलों में १७·७४ प्रतिशत थी। अब यह बढ़कर १९३७ में क्रमशः ४७·४४ और ४०·६७ हो गई है। इसको सन्तोषजनक प्रगति नहीं कहा जा सकता। भारत चाहता है कि रेलों का संचालन शत-प्रतिशत भारतीयों के हाथ में हो। इस दृष्टि से यह प्रगति अत्यन्त असन्तोषजनक है।

भारत-सरकार कम्पनी को रेलों को अवधि समाप्त होने के बाद भी ख़रीदते हुए हिचकिचाती रहती है। मगर रिपोर्ट को देखने से पता लगता है कि शाही रेलों से पिछले तेरह साल में भारत को लगभग ५८ करोड़ रुपये का लाभ हुआ है। इसलिए यह कहना ग़लत है कि शाही रेलों की अपेक्षा कम्पनी की रेलवे अधिक किफ़ायत से चलती हैं; इसलिए कम्पनियों के हाथ में ही रेलवे को रहने दिया जाय।

दूसरी बात यह है कि फ़ौजी रेलवे लाइन से रेलवे को २४॥ करोड़ का पिछले तेरह सालों में घाटा रहा है। हमारा विचार है कि यह घाटा सेना पर पड़ना चाहिए। जनता की यह माँग बहुत पुरानी है। मगर रेलवे बोर्ड अपने को व्यावसायिक संस्था कहते हुए भी यह घाटा सह रहा है। इससे मालूम होता है कि रेलों का संचालन मुख्यतः भारतीय व्यवसाय और उद्योग-धंधों के विकास और उनकी उन्नति को लक्ष्य में रखकर नहीं किया जाता है, बल्कि फ़ौजी हित को ध्यान में रखकर किया जाता है। जब तक रेलवे बोर्ड की यह मनोवृत्ति बनी हुई है, उस समय तक रेलवे की प्रगति सन्तोषजनक नहीं हो सकती।

रोग, बुढ़ापा और मृत्यु

बनारस के 'हिन्दीकेसरी' में उपर्युक्त शीर्षक से एक मज़ेदार लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका एक अंश इस प्रकार है—

विज्ञान की उन्नति होने से आजकल की दुनिया बहुत आगे बढ़ी है। यह सुनकर बहुतों को आश्चर्य होगा कि कुछ वैज्ञानिक बुढ़ापा और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की ज़ोरों से कोशिश कर रहे हैं। मनुष्य-समाज की ओर से ऐसे प्रयत्न होने के ऐसे उदाहरण नये नहीं हैं। बहुत पुराने ज़माने में भारत के विद्वान् और तपस्वी ऋषियों ने इस प्रश्न को बहुत अंशों में हल किया था। भारतीय ऋषियों की ऐसी सफलताओं के बहुतेरे प्रमाण प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं। महाभारत पढ़ने से मालूम होता है कि बुढ़ापे

में भी भीष्म जी की शारीरिक शक्ति नवयुवकों की तरह थी और मृत्यु उनके वश में थी। इस प्रसंग में यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि आजकल के लोग बुढ़ापा और मृत्यु पर विजयी होने के लिए शरीर को ही आधार मानते हैं और अपनी कुल ताक़त शरीर पर ही लगा देते हैं, परन्तु प्राचीन युग के ऋषियों का कार्यक्रम कुछ दूसरे ढंग का था। वे शरीर को स्वस्थ रखने की उपयोगिता अच्छी तरह समझते थे और स्वास्थ्य-रक्षा पर बहुत ज़्यादा ज़ोर देते थे। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' याने 'शरीर-रक्षा मुख्य धर्म है'—यह उपदेश उनके ही मुख से निकला था।

ऋषियों का यह विचार था कि रोग, शोक, बुढ़ापा और मरना—ये सब शरीर के स्वभाव हैं। ये स्वाभाविक नियम केवल स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों से नहीं हटाये जा सकते। आत्मा पर रोग, बुढ़ापा और मृत्यु आदि का कुछ असर नहीं पड़ता। वह तो अजर अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता और न तो उस पर बुढ़ापे का ही कुछ वश चलता है। यदि शरीर को आध्यात्मिक भावों से पूर्ण कर दिया जाय और आत्मा की शक्ति के साथ उसके स्वभाव को शरीर के अन्दर पहुँचा दिया जाय तो मृत्यु को वश में करने में सफलता मिल सकती है। इस प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा बुढ़ापा और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का रास्ता उन्होंने बताया था और इस मार्ग से चलकर आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने का मुख्य उपाय ईश्वराराधन माना था। शरीर को स्वस्थ रखने के सब नियम और उपाय ऋषियों को अच्छी तरह मालूम थे तथा शरीर से ही ईश्वर की आराधना करने की विधि उन्हें मान्य थी। वे जानते थे कि भीतरी तपस्या के साथ शारीरिक तपस्या के साधन अच्छी बातें सोचना, ब्रह्मचर्य्य और साधु महात्माओं की सेवा आदि हैं। लेकिन इस प्रकार के सभी प्रयत्न ईश्वर के आश्रित होकर करना चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है—'जीव मेरे आश्रित होकर बुढ़ापे और मृत्यु से बचने की कोशिश करते हैं।'

संसार का सर्वश्रेष्ठ पेय

इंडियन टी मारकेट एक्सपैंसन बोर्ड की ओर से चाय के सम्बन्ध में बराबर ज्ञातव्य बातें प्रकाशित होती रहती हैं। नीचे हम उसका एक हिन्दी उद्धृत करते हैं।

अँगरेज़ी के विख्यात कवियों में टेट एक सु[illegible] माना जाता है। पर चाय के सम्बन्ध में वह भी ए[illegible] जनिक उक्ति कह देने से बाज़ नहीं आया। उसने [illegible] प्रशंसा करते हुए कहा है—

स्वास्थ्य और सुख देनेवाला पेयों का राजा

अतएव चाय के सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ पेय का जो [illegible] लगाया गया है वह ख़ूब सोच-समझ कर। सब त[illegible] आबोहवा और ऋतु में तथा सभी समयों में चाय निश्च[illegible] एक सर्वोत्तम पेय है। अफ़्रीका के जङ्गलों में जहाँ [illegible] गरमी पड़ती है तथा आर्कटिक ज़ोन जहाँ शीत वारापार नहीं है, इन सभी स्थानों में चाय ही एक [illegible] पेय प्रमाणित हुआ है जो अति अधिक शीत और उष्ण[illegible] भी मनुष्यों की शारीरिक शान्ति और मानसिक दृढ़ता [illegible] रखने में सहायता पहुँचाता है।

ठीक ठीक बनी, बढ़िया चाय, संसार का सर्वो[illegible] स्वादिष्ट पेय है। यह वह पेय है जिसका उसके [illegible] गुणों के कारण आदर होता है। तैयार पेयों में चाय ही [illegible] वह पेय है जिसे मनुष्य तरल रूप में सबसे अधिक [illegible] हैं। पानी के अलावा चाय एक ऐसी चीज़ है जि[illegible] खपत आज सभी तरल पेयों की अपेक्षा ज़्यादा होती है।

मानव-समाज का अधिकांश भाग अन्य पेयों [illegible] अपेक्षा चाय को ही पसन्द करता है। समस्त संयुक्त[illegible] और ब्रिटिश साम्राज्य, चीन, जापान तथा सोवियट [illegible] चाय ही उनका राष्ट्रीय पेय है।

सरकारी अन्तिम आँकड़ों से पता लगता है कि [illegible] को छोड़कर समस्त संसार में १,१७,६२,५०० मन चा[illegible] औसतन पाँच वर्षों में खपत होती है। ज़रा बता[illegible] संसार के अधिकांश मनुष्यों में कोई दूसरा पेय भी [illegible] तरह जनप्रिय हो रहा है।

भारत में कितनी ही बढ़िया चाय पैदा होती है। [illegible] कई वर्षों से यहाँ के रहनेवालों का भी चाय का अ[illegible] इतनी तेज़ी से बढ़ रहा है कि यह संसार का स[illegible] पेय यहाँ के मनुष्यों की भी एक सबसे अधिक [illegible] सामग्री हो जायगा।

सम्पादकीय नोट

इस युग की राजनीति

इस समय संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का रूप अति [illegible] हो गया है। योरप में राजनीतिज्ञों का पिछले दिनों [illegible] राजधानी से दूसरी राजधानी को जो आना-जाना हुआ [illegible] उससे भी यही प्रकट होता है कि दाल में कुछ काला [illegible] है और लोग अपने अपने दल को अधिकाधिक [illegible]शाली बनाने का उपक्रम कर रहे हैं ताकि आनेवाले [illegible] में वे कमज़ोर न पड़ें। परन्तु इस प्रयत्न में ब्रिटेन [illegible] फ़्रांस सफलमनोरथ नहीं हुए। ब्रिटेन जर्मनी को [illegible] पक्ष में नहीं ला सका। उधर फ़्रांस के पक्षपाती [illegible]निया के प्रधानमंत्री को अपने पद से इस्तीफ़ा ही [illegible] दे देना पड़ा, किन्तु रूमानिया में पूर्णरूप से फ़ेसिस्ट-[illegible] के हिमायतियों की सरकार स्थापित हो गई है। मुसो-[illegible] ने पहले ही कह दिया था कि मध्य-योरप और [illegible] के राज्यों में उसका प्रभाव बढ़ रहा है और वह [illegible] निकट आ रहा है जब वहाँ की सरकारें रोम और [illegible] को ही अपने अपने अस्तित्व का आधार मानेंगी। [illegible]निया के शासन में उपर्युक्त आकस्मिक परिवर्तन से [illegible] की भविष्यवाणी अधिकांश में सत्य सिद्ध हुई है। और अब तो जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया के सूत्रधार [illegible] राज्यों में और भी अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित [illegible] का यत्न कर रहे हैं। इन सब बातों से प्रतीत होता है कि योरप का राजनैतिक वातावरण परस्पर के अविश्वास [illegible] बहुत ही अधिक विषाक्त हो गया है।

और यही क्यों? अब तो संसार के सभी शक्तिशाली [illegible] खुल्लमखुल्ला अपना सामरिक बल बढ़ाने में जुट गये [illegible] अभी तक अमरीका के संयुक्त-राज्य तथा ग्रेट ब्रिटेन [illegible] ओर उतना यत्नशील नहीं थे। पर अब इन दोनों [illegible] ने भी अपना अपना नौबल बढ़ाना शुरू कर दिया [illegible] ब्रिटेन में १४८ नये जहाज़ों के बनने का हुक्म हो गया [illegible] संयुक्त-राज्य भी ३९ नये जंगी जहाज़ बना रहे हैं। [illegible] भी १४ नये जंगी जहाज़ बना रहा है। वहाँ नई पनडुब्बियाँ भी इस हिसाब से बन रही हैं कि उनकी संख्या १०० हो जाय। जर्मनी का जहाज़ी बेड़ा बिलकुल नया है ही और ऐंग्लो-जर्मन-सन्धि के अनुसार वह जितने जहाज़ रख सकता है उतने सबके सब बना लेने में पहले से ही लगा हुआ है। रूस के पास १५० पनडुब्बियाँ हैं। इतनी अधिक पनडुब्बियाँ किसी भी देश के पास नहीं हैं, और तो भी वह ६ नये जहाज़ बना रहा है। जापान भी, कहा जाता है, २९ नये जहाज़ बना रहा है। यह सब क्या है? यह महायुद्ध की तैयारी के सिवा और क्या हो सकता है? तो भी राष्ट्रों के सूत्रधार यही कह रहे हैं कि उनके ये प्रयत्न संसार में शान्ति क़ायम रखने के लिए ही हैं। इस युग की राजनीति का यह कैसा सुन्दर रूप है!

कांग्रेस का महत्त्व

स्वाधीनता का युद्ध स्थगित करके कांग्रेस ने शान्ति और कर्तृत्व का जो नया दायित्व अपने ऊपर लिया है, प्रान्तीय कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों-द्वारा उसका महत्त्व दिन प्रति-दिन स्पष्ट होता जा रहा है। जो लोग कांग्रेस के पद-ग्रहण में उसका पीछे पैर हटाना देखते थे वे भी आज उसकी महान् ज़िम्मेदारियों का विराट् रूप देखकर एक बार स्तब्ध हुए बिना नहीं रहेंगे। प्रान्तों का शासन-सूत्र परिचालित करते हुए भी कांग्रेस अपने लक्ष्य से च्युत नहीं है, किन्तु वह उसकी ओर और भी अधिक सरगर्मी के साथ बढ़ती जा रही है। इसी से वह प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकों एवं साम्यवादियों को अपने हाथ में रखने का आयोजन कर रही है ताकि सारा राष्ट्र एकता के सूत्र में आबद्ध रहे। इस दृष्टि से जब हम उसके दायित्व की ओर ध्यान देते हैं तब हमें यह कहना ही पड़ता है कि कांग्रेस ने अब अपनी शक्तियों का अनुभव किया है और वह अपने अनुरूप ही अपने कर्त्तव्य-पालन की ओर विशेष रूप से अग्रसर है। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस का बल आज कहीं अधिक बढ़ा-

चढ़ा है और वह राष्ट्रीय भावना का तद्वत् प्रतिनिधित्व भी कर रही है। निस्सन्देह देश की एक विशाल जनता का उसे बहुमत प्राप्त है। शायद ही किसी अन्य देश की कोई राष्ट्रीय सभा इस सम्बन्ध में उसकी बराबरी कर सके। तो भी उसके आगे वैसी ही विकट समस्यायें भी उपस्थित हैं, जिनमें किसान और श्रमिक के प्रश्न अधिक महत्त्व पकड़ गये हैं। यह सभी जानते हैं कि कांग्रेसी मंत्रियों को अभी परिमित अधिकार ही प्राप्त हैं, तो भी वे अपने कर्तव्य के पालने में अपने भरसक कुछ उठा नहीं रख रहे हैं। वे अपने निश्चयों और मन्तव्यों पर अडिग हैं और अपने गन्तव्य पथ पर पहले की ही तरह धैर्य और शान्ति के साथ चले जा रहे हैं। उनकी ऐसी ही कार्यप्रणाली पर कांग्रेस की सफलता निर्भर है। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि कांग्रेस-मंत्रि-मंडल अब कोई ऐसा ठोस काम करे जिससे देश के 'दरिद्रनारायणों' का उद्धार हो जाय। कांग्रेस से समय की यही माँग है और इसी की पूर्ति में उसका महत्त्व है।

संयुक्त-प्रान्त के दो नये क़ानून

प्रसन्नता की बात है कि संयुक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार शासन-सम्बन्धी महत्त्व के सुधार करने जा रही है, जिनमें से उसके दो कार्य अति उपयोगी जान पड़ते हैं। उनमें एक काश्तकारी क़ानून है। अभी तक इस प्रान्त में दो-तीन तरह के काश्तकारी क़ानून जारी हैं। अवध के लिए एक है, तो आगरा के लिए दूसरा है, तो काशी के लिए तीसरा है। अब सारे प्रान्त के लिए एक ही क़ानून होगा और उसमें सभी किसानों को भूमि पर स्वामित्व का अधिकार दिया जायगा। इसके सिवा लगान भी इतना कम कर दिया जायगा कि किसान कम से कम अपने उदर की तो पूर्ति कर सकेंगे। यदि ऐसा हो जायगा तो यह सचमुच बड़ा भारी कार्य होगा। दूसरा है म्युनिसिपल तथा ज़िला बोर्डों का सुधार एवं उन जैसी संस्थाओं का देहातों में भी विस्तार करना। इस सम्बन्ध का क़ानून बन जाने पर देहात के लोगों को भी आवश्यक अधिकार प्राप्त हो जायँगे, जिससे वे अपनी असुविधाओं को दूर करने के अधिकारी हो जावँगे, देहातों के लोग एक युग से पुलिस एवं तहसील के अमलों के शिकार बने हुए हैं। परन्तु इस क़ानून के अनुसार जब देहातों में उपयुक्त स्थानीय बोर्ड अर्थात् पंचायतें क़ायम हो जायँगी और उन्हें गाँव की व्यवस्था करने के आवश्यक अधिकार प्राप्त हो जायँगे तो आज के पददलित देहातियों में भी आत्मसम्मान की भावना इतनी अधिक भर जायगी कि वे राष्ट्र के सबल अंग बन सकेंगे। उपर्युक्त दोनों क़ानून यदि आशाओं के अनुसार बन सके जिनकी पूर्ण सम्भावना है तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि प्रान्त के निवासियों का कायापलट हो जायगा।

स्वर्गीया माता स्वरूपरानी नेहरू

पंडित जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू का गत १० जनवरी को स्वर्गवास हो गया। आप कुछ समय से पक्षाघात से पीड़ित थीं।



[स्वर्गीया माता स्वरूपरानी नेहरू]

दिन आप पर उसका तीसरा आक्रमण हुआ और आपने अपनी इहलीला संवरण की। मृत्यु के समय आप ६८ वर्ष की थीं।

श्रीमती जी एक आदर्श गृहिणी थीं और आपने आजीवन अपने पति त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू के क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक सभी कार्यों में उत्साहपूर्वक सहयोग दिया, आप उनके मार्ग में अवरोधक रोड़े कभी नहीं बनीं। सत्याग्रह-संग्राम में आपके पूज्य पति और प्रिय पुत्र दोनों के जेल में बन्द हो जाने पर आपने तेजस्विता के साथ आन्दोलन का नेतृत्व किया था और एक बार तो आपको पुलिस के किसी अधिकारी का प्रहार तक सहना पड़ा था। आप ऐसी ही कर्तव्यपरायण वीर महिला थीं। परन्तु इधर जब आपके पतिदेव का निधन होगया तब आप सार्वजनिक कार्यों से अलग हो गई थीं। आपका स्वभाव सरल और शान्त था, परन्तु कर्तव्य की प्रेरणा होने पर आप साहस और स्वाभिमान प्रकट करने से कभी विमुख नहीं होती थीं। आप वास्तव में वीरपत्नी और वीरमाता थीं। त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू जैसे व्यक्ति को पतिरूप में पाकर और अन्यतम देशभक्त पंडित जवाहरलाल जैसे पुत्र को जन्म देकर आज मृतक होकर भी आप अमर हैं। आपके पुत्र और कन्याओं के प्रति इस दुःखद अवसर पर हम अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं।

भारत में क्षय-रोग

सर यू० एन० ब्रह्मचारी ने हाल में अपने एक लेख में यह सिद्ध किया है कि सभी सभ्य देशों में क्षय-रोग से मरनेवालों की संख्या में दिन दिन कमी आती जा रही है, परन्तु यहाँ भारत में उनकी संख्या में वृद्धि हो रही है। यह बात उन्होंने आँकड़े देकर सिद्ध की है। इस सम्बन्ध के उनके आँकड़े इस प्रकार हैं—

सन् १९३६ में मदरास के अस्पतालों में ७५,२७९ क्षय रोग के रोगियों की दवा की गई, जिनमें १,०१७ मर गये। बङ्गाल में (कलकत्ते को छोड़कर) ४३,१९० रोगी चिकित्सा के लिए आये, जिनमें १३,६६८ मर गये। बङ्गाल में सन् १९३१ में इस रोग से मरनेवालों की संख्या ६,५४३ ही थी। संयुक्त-प्रान्त में (इलाहाबाद और लखनऊ को छोड़कर) सन् १९३५ में इस रोग से ६,१७७ आदमी मरे जब कि १९३१ में उनकी संख्या ४,५४९ ही थी। बम्बई में (बम्बई शहर को छोड़कर) जहाँ १९३१ में इनकी संख्या २१,१२० थी, वहाँ १९३५ में २२,८६५ हो गई। मध्य-प्रदेश में (नागपुर को छोड़कर) जहाँ १९३१ में मृत्युसंख्या ८१६ थी, वहाँ १९३४ में वह ३,९४८ हो गई।

अब शहरों के आँकड़े लीजिए—

सन् १९३६ में कलकत्ते में २,८४७ मृत्युसंख्या थी, जब १९३१ में वह २,६६२ ही थी। इलाहाबाद में जहाँ १९३१ में मृत्युसंख्या ४२१ थी, वहाँ १९३५ में ४११ रही। पर बम्बई में जहाँ १९३१ में मृत्युसंख्या १,५५ थी, वहाँ १९३५ में वह १,९१३ हो गई। नागपुर में १९३१ में मृत्युसंख्या ३४ थी, वहाँ १९३५ में ११ हो गई।

दिल्ली-प्रान्त में इस रोग से हिन्दू स्त्रियों की मृत्युसंख्या मुसलमान स्त्रियों की अपेक्षा ज़्यादा रही। इसका कारण उनका दूषित प्रोटीन खाद्य बताया गया है।

यह अवस्था चिन्ताजनक है, तथापि यह सन्तोष की बात है कि इस समय लेडी लिनलिथगो क्षय-रोग निवारण के लिए विशेष रूप से यत्नशील हैं, जिससे आशा की जाती है कि इस सम्बन्ध में कोई न कोई देशव्यापी आयोजन अवश्य ही कार्य में परिणत होगा।

घी का वर्गीकरण

भारतीय भोजन में घी-दूध को अधिक महत्त्व प्राप्त है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि शहरों में इन दोनों का शुद्ध रूप में मिलना कठिन हो गया है। इस अवस्था की ओर भारत-सरकार के इकानोमिक एडवाइज़र डाक्टर एफ० सी० राइट का ध्यान बहुत पहले से रहा है। उन्होंने अपनी हाल की रिपोर्ट में लिखा है कि दूध-दही के धंधे की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि शुद्ध घी की उपज के सम्बन्ध में समुचित ध्यान दिया जाय। उन्होंने बड़ी खोज के बाद एक स्कीम तैयार की है, जिसमें उन्होंने घी के वर्गीकरण की व्यवस्था की है। उनकी योजना के कार्य में परिणत होने पर वर्गीकरण किया हुआ घी बाज़ार में मिलने लगेगा। यदि ऐसा हो गया तो बाज़ारों में शुद्ध घी मिलना सम्भव हो जायगा और यह बात भारत के शाकाहारियों के लिए बड़े लाभ की होगी।

उक्त स्कीम के अनुसार घी की जाँच सात भिन्न-भिन्न क्रियाओं से होगी। तब वह चार वर्गों में निर्दिष्ट किया जायगा। एक वर्ग में गाय का, दूसरे में भैंस का, तीसरे

में गाय और भैंस का मिश्रित घी होगा। तीसरा वर्ग विशेष और सामान्य नाम के वर्गों में वर्गीभूत रहेगा और इन चारों के लिए अलग-अलग लेबल रहेंगे। और इस प्रकार वर्गीभूत घी लाइसेंसदार दूकानदारों के द्वारा बाज़ारों में बिकेगा। यदि कोई विक्रेता जाली लेबल लगावेगा और घी में किसी तरह की मिलावट करेगा तो उसे कड़ा दंड दिया जायगा। घी की शुद्धता की जाँच के लिए उपयुक्त स्थानों में जाँच-कार्यालय खोले जायँगे।

कानपुर और आगरा में कुछ दूकानदारों की ऐसी रसायनशालायें पहले से स्थापित हैं जो निजी तौर से घी का वर्गीकरण करके शुद्ध घी बेचने का प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। अब सरकारी एग्रीकल्चरल मार्केटिंग एडवाइज़र की निगरानी में पाँच हज़ार रुपया लगाकर कानपुर में घी की जाँच का कार्यालय छः महीने के लिए खोला जा रहा है। संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी १५ हज़ार रुपया वार्षिक ख़र्च करके एक रसायनशाला शिकोहाबाद में खोल रही है, जहाँ घी का वर्गीकरण किया जायगा और बेचने के लिए उसकी पैकिंग की जायगी। साथ ही वह इस विषय का एक उपयोगी क़ानून बनाने जा रही है। निस्सन्देह इस सारी व्यवस्था का घी के धन्धे पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। घी का धन्धा एक बहुत बड़ा धन्धा है। भारत में दो करोड़ मन घी तैयार होता है और ८० लाख से सौ करोड़ रुपये तक वह बिकता है।

इंडियन साइन्स कांग्रेस की जुबली

पिछले दिनों कलकत्ते में इंडियन साइन्स कांग्रेस की रौप्य जुबली मनाई गई थी। इसके समारोह का उद्घाटन वाइसराय महोदय ने किया था। इसमें भाग लेने के लिए संसार के नामी नामी वैज्ञानिक बुलाये गये थे। भारत के वैज्ञानिक तो शामिल हुए ही थे। इसका जलसा बड़ी धूमधाम से हुआ और विज्ञान के सभी विभागों की अलग अलग बैठकें हुई और उन सभी बैठकों में पांडित्य-सूचक ही नहीं, किन्तु अत्यधिक उपयोगी लेख पढ़े गये। प्राच्य और पाश्चात्य के भारी से भारी विद्वानों का यह सम्मेलन अपने ढंग का अनोखा था। इस महोत्सव के अध्यक्ष ब्रिटेन के ख्यातनामा विज्ञानाचार्य सर जेम्स जीन्स बनाये गये थे। उन्होंने अपने अध्यक्ष के भाषण में इस बात को प्रशंसात्मक शब्दों में स्वीकार किया कि भारत ने भी विज्ञान के क्षेत्र में गत २५ वर्ष के अल्प काल में अभूतपूर्व उन्नति की है और उसके रामानुजम, जगदीश बोस, रमण, शाहा और कोठारी जैसे विज्ञानाचार्यों ने अपने आविष्कारों से संसार को उपकृत और चकित किया है। विज्ञान-विशारदों का यह महोत्सव बहुत ही सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके अध्यक्ष महोदय ने एक जगह भाषण करते हुए कहा है —

भोजन और पानी की कमी जैसे वैज्ञानिक प्रश्नों के सम्बन्ध में भारत के लोगों की सहायता करने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं। ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि विज्ञान लोगों के लिए अधिक भोजन और सिंचाई के लिए अधिक जल क्यों न प्रस्तुत करे, साथ ही मलेरिया तथा दूसरे रोगों का क्यों न निवारण करे जिनके भारत के लोग शिकार हो रहे हैं।

इन विचारों का कौन स्वागत नहीं करेगा? परन्तु यहाँ तो यह हाल है कि अन्धा जब आँखें पावे तब पतियाय। तथापि इस सम्मेलन के फलस्वरूप जो निबन्धात्मक साहित्य प्रस्तुत हुआ है उसकी ओर यहाँ के कार्य-कर्ताओं का ध्यान जाना चाहिए। उसमें राष्ट्र-निर्माण के कार्यों का विविधरूप से निर्देश किया गया है, और वह परिस्थिति और समय दोनों के लिए अनुकूल भी है।

ब्रिटेन के लोगों की आर्थिक दशा

मैनचेस्टर के प्रोफ़ेसर डैनियल्स और मिस्टर कैम्पियन ने ब्रिटेन के निवासियों की आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में बड़ी मेहनत से जाँच-पड़ताल की है। उन्होंने इस सम्बन्ध में जो आँकड़े दिये हैं वे 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित हुए हैं। उनसे प्रकट होता है कि ब्रिटेन के २५ वर्ष की उम्र से ऊपर के २,२३,३५,००० लोगों में १,७०,५२,००० लोगों के पास सौ पौंड से कम पूँजी है और उनकी बचत राष्ट्र की पूँजी में ३·२ फ़ी सदी है। उधर राष्ट्र की पूँजी में से २३·८ फ़ी सदी रक़म उपर्युक्त उम्र के ११ हज़ार लोगों के पास है, अर्थात् उनके पास १ लाख पौंड से ऊपर रक़म है। सौ पौंड से एक हज़ार पौंड तक के स्वामियों की संख्या ३८,६२,००० है और एक हज़ार पौंड से पाँच हज़ार पौंड तक के स्वामियों की संख्या १०,३५,००० है।

उपर्युक्त उम्र के शेष ३,८६,००० लोगों के पास राष्ट्र की पूँजी में से ६८ फ़ी सदी है, यद्यपि संख्या में ये १·८५ फ़ी सदी ही हैं।

ये आँकड़े काफ़ी रोचक ही नहीं, ज्ञानवर्द्धक भी हैं। इनसे यह भी प्रकट होता है कि ब्रिटेन के अर्थशास्त्री अपने राष्ट्र की आर्थिक अवस्था की कैसी देख-भाल रखते हैं। एक भारत भी है, जहाँ के बेकारों की यथार्थ संख्या के आँकड़े अभी तक प्राप्त नहीं हैं, यद्यपि अर्थशास्त्र के 'डाक्टरों' की यहाँ काफ़ी अधिक संख्या है।

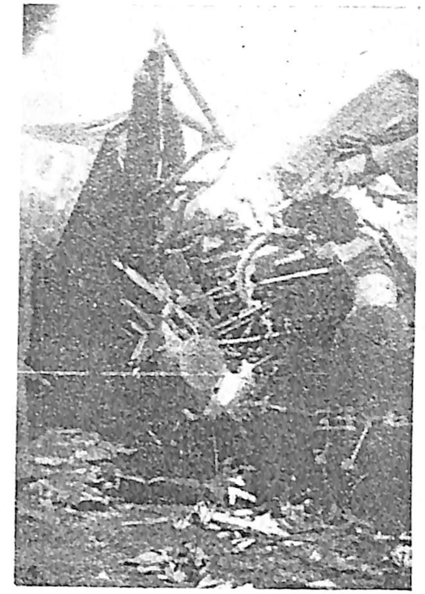
बमरौली की रेल-दुर्घटना

बिहटा की रेल-दुर्घटना की जाँच अभी समाप्त भी न हो पाई थी कि इलाहाबाद के पास बमरौली-स्टेशन में वैसी ही भीषण दुर्घटना फिर घटित हो गई। प्रसिद्ध तूफ़ान मेल



[बमरौली में तूफ़ान मेल के टूटे हुए डिब्बों का एक दृश्य।]

बमरौली-स्टेशन पर मालगाड़ी से लड़ गया, जिसके फल-स्वरूप मेल के ड्योढ़े दर्जे का १ डिब्बा, तीसरे दर्जे के तीन डिब्बे तथा माल के ३ डिब्बे ध्वंस हो गये। इस



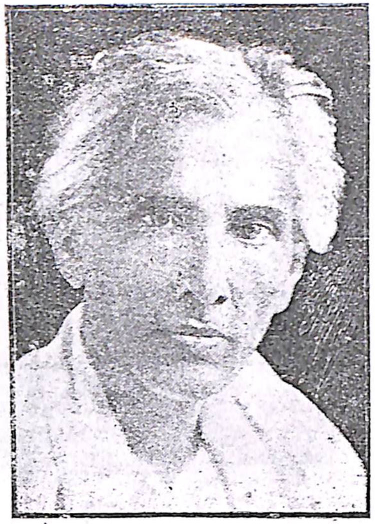
[बमरौली में तूफ़ान मेल के टूटे हुए डिब्बे का दूसरा दृश्य।]

संघर्ष में ७ यात्रियों की जान गई, १३ विशेष रूप से घायल हो गये तथा बहुतों को साधारण चोट आई। इस दुर्घटना की ख़बर पाते ही रेलवे के कर्मचारियों ने तुरन्त ही घटनास्थल पर पहुँच कर आहतों की देख-भाल की। शहर में इसकी ख़बर बहुत देर में पहुँची। और जब पहुँची तब हज़ारों की संख्या में लोग बमरौली देखने को दौड़े गये। इसमें सन्देह नहीं है कि दुर्घटना बहुत ही भीषण हुई है। सन्तोष इतना ही है कि जनहानि वैसी नहीं हुई है। कहा गया है कि यह दुर्घटना उस दिन के भयानक कुहरे के कारण घटित हुई है। चाहे जो हो, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि ऐसी घटनाओं का होना असम्भव हो जाय।

स्वर्गीय शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बंगाल के क्या, सारे भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का गत १७ जनवरी को १० बजे सवेरे स्वर्गवास हो गया। आपकी आँतों में फोड़ा हो गया था और उसी से कोई २१ दिनों तक पीड़ित रह कर आपका 'कलकत्ता नर्सिङ्ग होम' में स्वर्गवास हो गया।

आपके निधन से बँगला-साहित्य का एक अद्वितीय महारथी उठ गया है। आप साहित्य-क्षेत्र में जब आये, आते ही सबसे आगे हो गये। आपने अपने उपन्यासों और कहानियों से वह चमत्कार कर दिखाया कि बँगला के साहित्य



[स्वर्गीय डाक्टर शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय।]

की गति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। यही नहीं, उसका प्रभाव अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य पर भी काफ़ी अधिक पड़ा। यह उसी प्रभाव का परिणाम है कि हमें सभी प्रान्तीय भाषाओं का कथा-साहित्य अधिक प्राञ्जल और अधिक परिष्कृत रूप में आज दिखाई दे रहा है। शरत् बाबू ने अपने उपन्यासों और कहानियों में बंगाल के सामाजिक जीवन का कलात्मक ढंग से जो यथार्थ चित्रण किया है वही आपकी विशेषता आपको उपन्यास के क्षेत्र में सर्व-श्रेष्ठता का गौरव प्रदान करती है।

शरत् बाबू का जन्म हुगली ज़िले के देवनन्दपुर में हुआ था। आप १५ सितम्बर सन् १८७६ को उत्पन्न हुए थे। आपका लालन-पालन नाना-नानी के यहाँ भागलपुर में हुआ था, और वहीं आपने शिक्षा पाई थी। आप इन्ट्रेंस पास कर कालेज में भर्ती हुए थे, पर सेकेंड इयर तक ही पढ़ सके। पढ़ना छोड़कर आपने नौकरी कर ली। बाद में आप रंगून चले गये और वहाँ गवर्नमेंट सेक्रेटरियेट में नौकर हो गये। परन्तु वहाँ भी आप अधिक दिन तक टिक नहीं सके। दूसरी नौकरियों की भाँति उसे भी छोड़ दिया और स्वतंत्र होकर साहित्यकार का जीवन-यापन करने लगे!

साहित्य से आपका छात्रावस्था से ही प्रेम हो गया था और आपने पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ लिखना तभी से शुरू कर दिया था। आपका लिखने का क्रम बराबर जारी रहा और आप कल्पित नाम से ही लिखते रहे। जब आपकी रचनाओं का आदर होने लगा तब आपने अपना नाम प्रकट किया। आपने कहानी और उपन्यास लिखने में अभूतपूर्व कीर्ति प्राप्त की थी। कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आपको 'जगत्तारिणी पदक' और ढाका-विश्वविद्यालय ने डाक्टर की पदवी देकर आपका सम्मान बढ़ाया। आपने पिछले कांग्रेस-आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया था।

आज ऐसे ही उत्कृष्ट साहित्यकार के निधन से भारत-भूमि अपने को लुटी हुई समझ रही है। आपकी स्थान-पूर्ति करनेवाला दूसरा व्यक्ति नहीं दिखाई दे रहा है।

भूल-सुधार

(१)

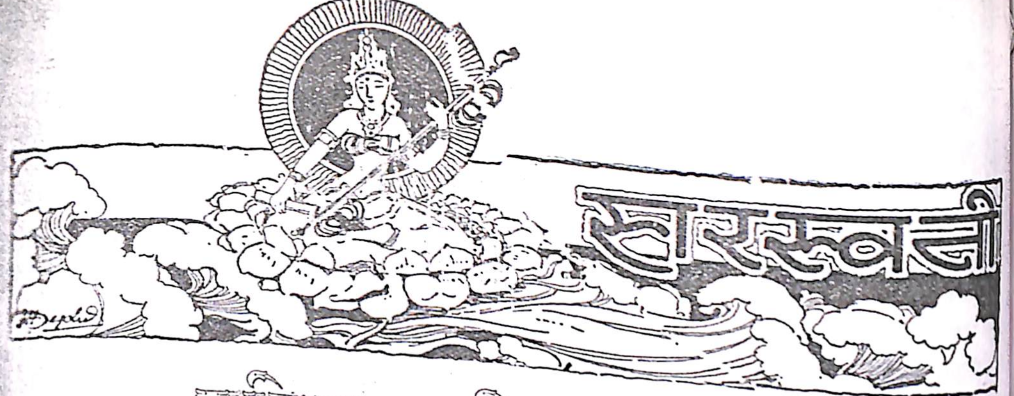
जनवरी १९३८ की 'सरस्वती' के पृष्ठ ४९ और ५० में जहाँ ४ प्रतिशत, ६ प्रतिशत और ३½ प्रतिशत (या शतसदी) लिखा है, वहाँ ४० प्रतिशत, ६० प्रतिशत और ३३½ प्रतिशत होना चाहिए।

पृष्ठ ४८ पर दूसरे कालम में—"फलतः सन् १९०४ में रिज़र्व बैंक आव इंडिया एक्ट बनाया गया।" यहाँ १९०४ के स्थान पर १९३४ होना चाहिए।

(२)

पृष्ठ ६१ की 'शीतभवन' कहानी की सबसे पहली लाइन है—"यह १९२७ की बात है"। यहाँ १९२७ के बदले १९१७ होना चाहिए।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मार्च १९३८ } भाग ३९, खंड १
संख्या ३, पूर्ण संख्या ४५९ { फाल्गुन १९९४

फिर किसी की याद आई

लेखक, श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव

आज सन्ध्या-काल फिर से यह बयार प्रमाद लाई;
फिर किसी की याद आई।

हो चुका, कब का, हृदय को घोलकर आँसू बनाना;
बन्द है इस बाग़ में अर्से से बुलबुल का तराना;
याद भी बेगानगी है—यह नया अपवाद लाई;
फिर किसी की याद आई।

वाह! कैसे वक़्त पर पापी पपीहा हूक बैठा,
आप तो जल ही रहा था वह—मुझे भी फूक बैठा;
पास दोनों की बढ़ी—किस काम यह फ़रियाद आई,
फिर किसी की याद आई।

इस अभागे पींजड़े को छोड़ने में हर्ज क्या है!
हो चुके बन्धन शिथिल तब तोड़ने में हर्ज क्या है!
मुक्त होने की घड़ी भी किन्तु कुछ अवसाद लाई!
फिर किसी की याद आई।

भूलने के यत्न ने ही, है मुझे यह दिन दिखाया;
लाख की तदबीर, पर क्या भूलकर भी भूल पाया?
आज अन्तिम रात या चिर-प्रात का संवाद लाई—
फिर किसी की याद आई।

नागौद की प्राचीन मूर्तियाँ

लेखक, रायबहादुर पंडित व्रजमोहन व्यास

प्रयाग का म्युनिसिपल-म्युज़ियम श्रीमान् व्यास जी की लगन का फल है। वे यहाँ की म्युनिसिपेल्टी के एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर हैं, तो भी अपने म्युज़ियम के लिए कितना परिश्रम करते रहते हैं, यह उनके इस लेख के पढ़ने से ज्ञात होता है।

२१ मार्च से २४ मार्च तक दफ़्तर में मोहर्रम की छुट्टी थी। यह सोच रक्खा था कि इस छुट्टी में नागौद से म्युज़ियम के लिए उस प्रान्त की प्राचीन मूर्तियाँ लाऊँगा। पहले से नागौद के दीवान साहब को पत्र-द्वारा इसकी सूचना दे दी थी। २१ मार्च को प्रातःकाल बाम्बे-मेल से सवार होकर १२ बजे मध्याह्न के लगभग सतना पहुँच गया। महाराज साहब की कृपा से स्टेशन पर स्टेट का मोटर आ गया था। मैं आध घंटे में नागौद पहुँच गया और वहाँ के 'स्टेट-ग्येस्ट-हाउस' में ठहरा। सतना से नागौद १६ मील है। सड़क पक्की और अच्छी अवस्था में है। मार्ग में किसी प्रकार का क्लेश नहीं हुआ।

नागौद के वर्तमान महाराज परिहार-वंशीय हैं। संवत् १४०१ में परिहार राजे नागौद में आये और वहाँ अपना राज्य क़ायम किया। नागौद आने से पहले उनकी चार पीढ़ियाँ 'कौटराह' में राज्य कर चुकी थीं। इसके पहले परिहार राजाओं का केन्द्र कन्नौज था, जहाँ से उन्होंने कई पीढ़ियों तक उत्तर-भारत के एक विशाल राज्य पर शासन किया था। नागौद का परिहारों का राजघराना ऐसे ही इतिहास-प्रसिद्ध राज-घराने का स्मारक है। वर्तमान नागौद-राज्य का रक़बा ५०१ वर्ग मील है और उसकी जन-संख्या लगभग ७५,००० है।

वर्तमान नागौद-नरेश का शुभ नाम महाराज श्री महेन्द्रसिंह जी देव है। अभी आप नवयुवक हैं। गत वर्ष आपने अपने राज्य का शासन-दण्ड ग्रहण किया है और निरन्तर प्रजा-हित-चिन्तन के कार्यों में संलग्न रहते हैं। आपके दीवान साहब श्री लाल भागवेन्द्रसिंह एक कर्तव्य-निष्ठ कुशल राजकर्मचारी हैं और महाराज को वही परामर्श देते हैं जिसमें राज्य का कल्याण हो और प्रजा सुखी रहे। महाकवि भारवि ने ठीक ही कहा है—

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम्
हिताच्च यः संशृणुते स किम्प्रभुः।
सदानुकूलेपु हि कुर्वते रतिम्
नृपेष्वमात्येपु च सर्वसम्पदः॥

अर्थात् वह मंत्री बुरा है जो राजा को सदुपदेश नहीं देता और वह राजा निन्दनीय है जो अपने हित की बात नहीं सुनता। राज्य में जब राजा और मंत्री दोनों अनुकूल होते हैं और एक-दूसरे की क़द्र करते हैं तभी सब प्रकार की सम्पत्ति राज्य में निवास करती है।

और भी—

विपमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेपदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥

राजनीति कठिन होने पर भी समझी जा सकती है और उसका व्यवहार किया जा सकता है। जिस प्रकार सीढ़ी-द्वारा गहरे तालाब में लोग उतर सकते हैं। दुर्लभ तो वह व्यक्ति है जो सीढ़ी बनाता है, जो उपदेश-द्वारा राजनीति को सुलझा देता है।

दीवान साहब को पुरातत्त्व से भी प्रेम है। वे प्राचीन स्थानों का जीर्णोद्धार, प्राचीन भग्न मूर्तियों की रक्षा और उनकी खोज किया करते हैं। आज से लगभग एक वर्ष हुआ, मैं पहली बार नागौद गया था। वर्तमान महाराज से मैंने यह प्रस्ताव किया कि नागौद-राज्य की भग्न प्राचीन मूर्तियों का एक संग्रह 'इलाहाबाद-म्युनिसिपल-म्युज़ियम' में होना चाहिए और वे सब एक मंडप के अन्दर रक्खी जायँ, जिसका नाम 'नागौदमंडप' हो। प्रयाग तीर्थराज है, जहाँ लाखों आदमी प्रतिवर्ष आते हैं। वह शिक्षा का भी प्रमुख केन्द्र है। यदि इस प्रकार का संग्रह प्रयाग में होगा तो बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा और महाराज यश के भागी होंगे।

महाराज ने मेरे प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस यात्रा में महाराज ने बहुत-सी मूर्तियाँ दीं, जो 'नागौद-मंडप' में सुरक्षित होकर आपकी उदारता का परिचय दे रही हैं।



[नागौद के महाराज श्रीमान् महेन्द्रसिंह जी देव]

इस दूसरी बार की यात्रा में सन्ध्या-समय 'जसो' गया। जसो नागौद से ८ मील पर एक जागीर है। जागीरदार साहब दीवान रामप्रतापसिंह जी एक सज्जन और मिलनसार सहृदय पुरुष हैं। जसो में भी अनेक जैन-मूर्तियाँ हैं। प्रयाग-म्युनिसिपल-म्युज़ियम में एक मंडप जसो की मूर्तियों के लिए अलग निर्धारित कर दिया गया है। जागीरदार साहब ने पारसाल कुछ जैन-मूर्तियाँ देने की कृपा की थी। इस बार उन्होंने दिल खोलकर मेरी सहायता की। म्युज़ियम के 'जसो-मंडप' के लिए इस बार उन्होंने लगभग २० मूर्तियाँ प्रदान की हैं। ये प्रायः सब जैन-मूर्तियाँ हैं।

२२ मार्च को 'भरहुत' गया। लाल साहब साथ थे। नागौद से सतना होकर भरहुत जाना होता है। भरहुत के विषय में विशेष कहना नहीं है। अपनी प्राचीनता के लिए वह काफ़ी प्रख्यात है। परन्तु अब वहाँ कुछ अवशेष नहीं रह गया है। मुख्य मुख्य चीज़ें कलकत्ते के 'इंडियन म्युज़ियम' में पहुँच गई हैं। कुछ भग्नावशेष इतस्ततः पड़े हैं। वे विशेष महत्त्व के नहीं हैं, क्योंकि बहुत टूट गये हैं। तो भी उनकी रक्षा होनी चाहिए। हाँ, भरहुत के सन्निकट के गाँवों में अब भी भग्न मूर्तियाँ जहाँ-तहाँ पड़ी हुई हैं और कहीं कहीं दीवारों में चुनी हुई हैं। मैंने उनमें से कई एक प्राप्त कीं, जो 'नागौद-मंडप' में सुरक्षित हैं। नागौद-राज्य में कई ऐसे स्थान हैं जिनकी यदि खुदाई की जाय तो बड़े महत्त्व की मूर्तियाँ मिल सकती हैं। दीवान साहब का ध्यान इस ओर है।

सन्ध्या-समय महाराज साहब से भेंट हुई और थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं, जिनसे आपकी उदारता, सुजनता और बड़प्पन का विशेष परिचय मिला।

२३ मार्च को प्रातःकाल अम्बकुई गया। सुना था कि उसके सन्निकट कोई बड़ा प्राचीन भग्न मंदिर एक निर्जन स्थान में है और वहाँ भग्न मूर्तियाँ भी बहुत हैं।

अम्बकुई नागौद-राज्य में है और जसो होकर जाना पड़ता है। नागौद से जसो ८ मील और वहाँ से अम्बकुई ४ मील है। जंगल के बीच से होता हुआ अम्बकुई पहुँचा। जंगल का दृश्य बहुत चित्ताकर्षक था। प्रातःकाल का समय था, मन्द मन्द वायु बह रहा था, आकाश में थोड़े से बादल आ गये थे और यों ही नाम-मात्र को फुहारें पड़ने लगी थीं। प्रातःकाल के सूर्य एक ओर अपने करों से बादलों में अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे चित्र बना रहे थे और पक्षिगण अपने कलरव से उसकी सराहना कर रहे थे। घोर वन था। लाल साहब के आने की ख़बर तमाम प्रान्त में एक दिन पहले ही पहुँच गई थी, इसलिए कोलों ने हम लोगों के लिए जंगल में मार्ग बना दिया था। मैं नहीं जानता था कि जंगल में रास्ता कैसे बनाया जाता है। कोल एक जंगली जाति है। उन लोगों को जंगल का कोना कोना मालूम रहता है। वे जानते हैं कि कहाँ समस्थल भूमि है और कहाँ खड्ड और गड़े हैं। वे जंगल में पेड़ों पर दोनों तरफ़ मुर्छलाकार फूस लटका देते हैं, इसलिए यद्यपि कहीं कहीं ऊँची घास के कारण भूमि भी नहीं दिखाई देती, तो भी यदि मुर्छलों



[भुमरा से प्राप्त हर-गौरी की मूर्ति]

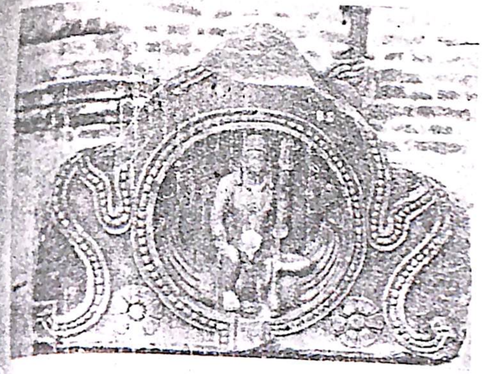


[भरहुत से प्राप्त शुंगकालीन हाथी]

के बीच से मोटर ले जायँ तो निर्विघ्न जा सकता है। इसी रास्ते से हम लोग मोटर पर चले और अम्बकुई पहुँच गये।

अम्बकुई से थोड़ी दूर पर एक प्राचीन मन्दिर का भग्नावशेष है। पास में एक कुआँ है। मंदिर के चारों ओर बड़ी-छोटी भग्न मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं। मूर्तियों से ज्ञात होता है कि कोई बहुत प्राचीन मंदिर रहा होगा। सुना कि कुआँ बनवाने में जो बीस-पचीस वर्ष का बना हुआ है, बनवानेवाले ने इस मंदिर के पत्थरों और मूर्तियों का ख़ूब उपयोग किया है। यह कहाँ तक सही है, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। परन्तु हमारे यहाँ की पुरानी बहुमूल्य मूर्तियाँ इस भूल का शिकार हो चुकी हैं, इसलिए यदि ऐसा हुआ हो तो आश्चर्य नहीं। सारनाथ के स्तूप के पत्थरों से काशी के जगतगंज की इमारतें और वरुणा का पुल बन गया, इसे सब जानते हैं। लाल साहब आज्ञा दे आये हैं कि वहाँ की सब मूर्तियाँ 'उचहरा' पहुँचा दी जायँ और जो इलाहाबाद-म्युनिसिपल-म्युज़ियम जाने योग्य होंगी वे वहाँ जायँगी। बाक़ी सब नागौद के रामदेवालय में सुरक्षित रहेंगी।

वहाँ ख़बर लगी कि जंगल के और भीतर एक 'नकटी दाई' है, जहाँ कुछ भग्न मूर्तियाँ हैं। पर मार्ग विकट है। थोड़ी दूर तक तो मोटर जा सकेगा, फि[र] पैदल चलना होगा। मोटर जायगा, इससे पाठक यह [न] समझ लें कि वहाँ भली-बुरी किसी प्रकार की सड़क होगी। नहीं, कोई पगडंडी भी नहीं थी। केवल मोटर पर कं[कड़] पत्थरों की परिक्रमा करते रहिए और जहाँ रास्ता मि[ले] चलते जाइए। अस्तु, जहाँ तक मोटर ले जा सकते [थे] ले गये। फिर पैदल चलने लगे। हम लोग चार आद[मी] थे—लाल साहब, मैं, नागौद पुलिस के एक मुसलमा[न] सब-इन्स्पेक्टर और एक ठाकुर ज़मींदार। हम लोग [उस] घोर जंगल में क़रीब डेढ़ मील चले गये, पर नक[टी] दाई के दर्शन न हुए। ज़मींदार साहब ने कहा [कि] मालूम होता है, रास्ता 'बगद' गये। हम लोग चले जा [रहे] थे कि एक वृक्ष पर कुछ गिद्ध बैठे दिखाई दिये [और] पास ही कुछ कौए काँव काँव कर रहे थे। मैंने उस [पर] ध्यान भी नहीं दिया। परन्तु लाल साहब थे पक्के शिका[री]। वे सतर्क हो गये। हम लोगों से चुपके से कहा—ख़ामोश रहो। मालूम होता है कि यहाँ 'मरी' हुई है। ज़मींदार साहब से उन्होंने फ़ुर्ती से अपनी बन्दूक़ ले ली और उसे भर कर सतर्कता से जहाँ गिद्ध पेड़ पर बैठे थे जाने लगे। खड़बड़ाहट सुनकर जंगली सूअरों का एक झुंड जो थोड़ी दूर पर आड़ में खड़ा था, भागा। मैं



[...से प्राप्त मयूराधिष्ठित स्वामिकार्तिक की मूर्ति]



[भरहुत से प्राप्त शुंगकालीन एक यक्षिणी का सिर]

[स]ोचा कि मैं अच्छे झंझट में आ पड़ा। लाल साहब के हाथ में बन्दूक़ थी और वे शिकारी और क्षत्रिय भी थे। [और] मैं एक ब्राह्मण था और हाथ में केवल एक खुरपी थी। यदि कोई पूछता कि क्यों शिकार खेलने आये थे कि [घा]स खोदने तो क्या जवाब देता। ख़ैर, अगर कोई पूछता तो उसे या तो कुछ न कुछ समझा देता या लज्जित हो जाता, परन्तु इस समय यदि बाघ महोदय नाले से निकल कर पूछते कि तू कौन है रे, जो हमारे भोजन के समय में [विघ्न] करने आया है और वह भी इस खुरपी के बिरते पर तो मैं क्या जवाब देता। वे हज़रत कैसे समझते कि मैं [उन]से लड़ने नहीं आया हूँ और मैं उनका शुभचिन्तक [हूँ]। और मान भी लिया जाय कि वे समझने की कोशिश [भी] करते तो मुझमें इतना हवास ही कहाँ बाक़ी था कि मैं उन्हें समझा सकता। अलबत्ता उस वक़ उनको मेरी [चे]ष्टा से परिस्थिति का ज्ञान हो सकता था। परन्तु उनमें इतनी समझ होगी, इसकी मुझे आशा न थी, उनकी उदारता [प]र तो और भी कम। यह तो मैं स्वीकार करूँगा कि मैं प्रायः प्राचीन मूर्तियों के शिकार की खोज में निकलता हूँ, परन्तु [न]ज़र हमेशा नीचे ही रहता है। यदि कोई चीज़ पृथ्वी पर [प]ड़ी हुई या थोड़ी गड़ी हुई दिखलाई पड़ी तो इसमें मेरा [क्य]ा क़सूर। मैंने उसको चुपके से—और यह ख़ास बात [है]—खुरपी की मदद से निकाल कर झोले में रख लिया और [भ]ले आदमी की तरह फिर नीची निगाह कर चलने लगा। [य]ह बात और है कि जब मैं ऐसा काम करता हूँ तब बजाय नीचे देखने के इधर-उधर भी देखता रहता हूँ। अस्तु, अब आप ही सोचिए कि ऐसी शालीनता पर बाघ महोदय का मुझ पर क्रोध करना या मुझे छेड़ना सरासर अन्याय होता या नहीं, परन्तु मुझे उनकी न्यायशीलता पर भरोसा न था। यह सोच कर मैंने लाल साहब से कहा कि जाने भी दीजिए, आगे चलिए। लाल साहब मेरी बात मान गये और बाघ का अनुसंधान छोड़कर आगे चले। नकटी दाई का पता न चला। थोड़ी दूर जाकर वापस लौटे।

लाल साहब अपनी धुन में थे। वे ज़मीन की तरफ़ देखते जाते थे और रायफ़ल उनके हाथ में थी। और मेरे हाथ में वही खुरपी। वे ज़मीन की तरफ़ देखते चले जा रहे थे और मैं वृक्षों की ओर ताकि अवसर पड़ने पर सुगमता से किसी पेड़ पर भाग कर चढ़ सकूँ। किसी किसी वृक्ष पर तो क्रोध आ जाता था कि यह कैसा नामाक़ूल है कि सीधा आकाश की ओर चला गया है और ऊपर चढ़ने का कोई जुगाड़ ही नहीं रक्खा। यह सोच ही रहा था कि लाल साहब ने कहा कि यह देखो ज़मीन पर बाघ के पैर के साफ़ निशान हैं और पट्ठा बाघ है। लाल साहब के मुँह में पानी भर आया, परन्तु मेरे गले का जल रफ़ूचक्कर हो गया।

पाठक आप मुझे कायर न समझिएगा। यदि आपके हाथ में भी केवल एक खुरपी होती और १० हाथ पर एक



[भुमरा से प्राप्त एक अतीव सुन्दर द्वार-स्तम्भ]

पट्ठा बाघ होता तो आपकी भी यही दशा होती। ख़ैर, वे बन्दूक़ में कारतूस भर कर मरी के क़रीब दबे पैर चले। मैंने भी पाँचवें सवारों में उन्हीं के साथ साथ रहने में अपनी ख़ैरियत समझी। इतनी एहतियात ज़रूर की कि खुरपे के बेंट को जो ढीला था, ठोककर कस लिया और पहले उसे हिलाता-झुलाता ले चलता था ताकि कोई बसियार समझ बैठे, मुट्ठी में ज़रा कसकर पकड़ लिया और बढ़ा। पेड़ों के बीच से जाते-जाते हम लोग एक नाले पर पहुँचे, जहाँ निकटवर्ती वृक्ष पर पहले गिद्धों देखा था। अब वे गिद्ध नीचे उतर आये थे। हम के आने से फड़फड़ा कर उड़े। हम लोगों ने देखा नाले में एक मोटा-ताज़ा जंगली सूअर मरा पड़ा है आधे के क़रीब खाया जा चुका है। वह ताज़ा मारा था, क्योंकि वहाँ कोई दुर्गंध नहीं थी। लाल साहब कहा—मालूम होता है, बाघ ने उसे प्रातःकाल ही है। उसके पैर के निशान भी मैंने देख लिये और बड़े सूअर को सिवा बाघ के और कोई जानवर नहीं सकता। जब हम लोग आ रहे थे तब गिद्ध और कौए पेड़ के ऊपर बैठे थे। इससे अनुमान होता है कि वक़्त बाघ वहाँ था और हम लोगों की आहट खसक गया है। उसके चले जाने पर गिद्ध और उतर आये थे। लाल साहब को थोड़ी निराशा तो परन्तु साहब बाघ की इस शिष्टता पर मैंने तो उसे ही दी। ख़ैर जान बची, लाखों पाये। नकटी दर्शन नहीं हुए तो यह हुआ। अगर हो जाते तो नहीं, क्या होता। म्युज़ियम के फेर में अभी कुछ होना बाक़ी है। ईश्वरेच्छा।

वहाँ से हम लोग लौटे। रास्ते में कोलों की एक सी मिली। जैसे ही मोटर पहुँचा, बहुत-सी कोल-स्त्रियाँ पर जल-भरा मंगल-कलश लेकर अपना ग्रामगीत गाती लाल साहब का स्वागत करने के लिए आईं। उस झुंड वृद्धा, युवती, बालिकायें सभी थीं। ऐसा हृदयङ्गम मैंने पहले कभी नहीं देखा था। उनके मनोहर ग्राम की मंद, मधुर ध्वनि, बहुतों के सिर पर मंगल-कलश उनकी भोली शिष्टता इन सबों ने एक ऐसी समा बाँध कि कुछ दिन हृदय पर अङ्कित रहेगा। झुंड की स्त्रियाँ गाती हुईं मोटर के सन्निकट आ गईं। साहब ने प्राचीन आर्य-संस्कृति के अनुसार मंगल-कलश कुछ द्रव्य छोड़ा और उन लोगों का दुख-सुख पूछा। उनमें से एक जो सबसे वृद्धा थी, लाल साहब से रही थी; बाक़ी सब स्त्रियाँ गा रही थीं। लाल साहब ने इस प्रकार उनसे नम्रता और शिष्टता से बातें कीं, जैसे वे उनकी बहू-बेटियाँ हों। सब स्त्रियाँ निहाल हो गईं और मार्ग छोड़ कर क़तार बाँधकर खड़ी हो गईं और मोटर चल निकला। बड़ा मनोहर दृश्य था।

लौटते हुए रास्ते में जसो के जागीरदार साहब से मुलाक़ात हुई। उनसे मालूम हुआ कि उस दिन पहले वहीं क़रीब में उस बाघ ने एक गाय की 'मरी' की थी। बाघ के आगमन का वृत्तान्त सुनकर वहाँ के सरदारों की भुजायें फड़कने लगीं। मैंने देखा कि सभी अपनी अपनी बन्दूक़ें उसके स्वागत के लिए सीधी कर रहे थे, रात्रि में उसकी खोज में जाने के लिए प्रस्तुत दिखलाई पड़ते थे और गाँव में ख़ूब चहल-पहल थी। जहाँ देखो उसी की बात हो रही थी। जसो गाँव में भी एक अतीव प्राचीन मंदिर है। उसको लोग 'कुम्हड़ामठ' कहते हैं। मंदिर इधर-उधर गिर रहा है। उसका जीर्णोद्धार होना अत्यन्त आवश्यक है। मंदिर के भीतर भगवान् आशुतोष का एक लिंग है, परन्तु बाहर दीवारों पर अन्य देवताओं की सुन्दर मूर्तियाँ हैं।

दूसरे दिन 'भुमरा' गया। भुमरा के मन्दिर के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल 'माडर्न रेव्यू' में एक लेख लिख चुके हैं। भुमरा नागौद-राज्य में एक निर्जन पहाड़ी पर है। जाने का रास्ता बड़ा 'बीहड़' है, परन्तु रास्ते के प्राकृतिक सौंदर्य का कहना ही क्या है। भुमरा का मंदिर बहुत प्राचीन है। देखने से मालूम होता है कि बहुत बड़ा रहा होगा। इस समय लगभग सम्पूर्ण गिर गया है, केवल बीच के मंदिर का भाग खड़ा है। लाल साहब ने उसकी थोड़ी मरम्मत भी कराई है। इसी कारण भीतर की मूर्ति पूर्णतया सुरक्षित है। मूर्ति भगवान् पार्वतीवल्लभ त्रिशूलधर की है। आकार एकमुखी लिंग का है। लाल पत्थर की यह मूर्ति अतीव सुन्दर है। मूर्ति कम से कम तीन साढ़े तीन फ़ुट लम्बी है और सजीव बनी हुई है। भुमरा की कई अतीव सुन्दर मूर्तियाँ महाराज ने म्युज़ियम के लिए प्रदान की हैं, जिनके चित्र इस लेख में मैंने दिये हैं।

साधना

लेखिका, श्रीमती राजरानी चौहान

प्रणय-सागर में उठतीं नित्य, तरंगें भाव-भरी उद्दाम।
उसी में आशा का जलयान, जा रहा है मेरा अविराम॥

कटीं वर्षों-सी घड़ियाँ कठिन,
दिवस भी युग-से हुए व्यतीत।
आज भी अरमानों के साथ,
गा रहीं आँखें दुख के गीत॥

समझती थी पागल है विश्व,
नहीं जब तुमसे थी पहचान।
किन्तु मैं सचमुच पगली हुई,
देव! जब हुआ तुम्हारा भान॥

दिखाई दिये अदेखे रहे,
न जी भर तुम्हें विलोका आह।
रही मन में मन की अभिलाष,
न पूरी हुई आज तक चाह॥

तुम्हारी पद-पूजा के लिए,
अनोखे चुन रक्खे थे फूल।
सोचती थी मन में विधि वाम,
देखिए कब तक हो अनुकूल॥

अग्रसर होना चाहा किन्तु,
किया माया ने प्रबल विरोध।
अचानक पुलक उठे ये प्राण,
भूल सब अपने-पन का बोध॥

हृदय-मन्दिर में तब से नाथ!
तुम्हारी प्रतिमा है आसीन।
उसी का करती पूजन और,
साधना में रहती हूँ लीन॥

क्लर्कों का जीवन सर्वथा नीरस और शुष्क होता है, यह कहना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि उनमें भी रस है और वे भी ख़ूब हँस-हँसा सकते हैं।

क्लर्कों के मज़ाक़

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए०, एल-एल० बी०

पण्डित तेजभान क्लर्कों की पार्टी की जान थे। आपमें मज़ाक़ करने और दूसरों के मज़ाक़ को सहने की शक्ति पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। किसी ज़िन्दादिल के बिना पार्टी पार्टी ही कहाँ कही जा सकती है? रस के बिना ईख को ईख कौन कहेगा? हमारी पार्टी भी शुष्क और नीरस लोगों का गिरोह न थी। इसमें अधिक व्यक्ति—ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है—इसी मत के अनुयायी थे। पण्डित तेजभान इस टोली के नायक थे। लम्बे-चौड़े, छः फ़ुट तीन इंच के जवान, पगड़ी बाँधते हैं तब किसी रियासत के राजा मालूम देते हैं, किन्तु यारों के लिए वे महज़ विनोद के सामान हैं। सब उनकी हँसी उड़ाने में मस्त, सब उनको ज़क पहुँचाने के दरपै! और वे ऐसे हैं कि किसी की बात का ठीक उत्तर दे रहे हैं, किसी के व्यङ्ग्य को सुना-अनसुना कर रहे हैं और किसी के तीक्ष्ण प्रहार पर एक क़हक़हा छोड़ रहे हैं। और वह क़हक़हा—वह भी एक हथियार से कम नहीं। जब वे निरुत्तर होकर बात का रुख़ पलटना चाहते हैं तब क़हक़हा मार देते हैं और वह भी साधारण क़हक़हा नहीं। उनका क़हक़हा अपनी विशेषतायें रखता है, और इसका भी एक छोटा-सा इतिहास है।

पण्डित तेजभान का क़हक़हा सारे सिविल सेक्रेटेरियेट में प्रख्यात है। वे ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की भाँति जब एक बार हँसते हैं तब हँसते ही चले जाते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो उन्हें चाबी मिल गई हो और कभी समाप्त न होगी। हँसते समय उनकी आँखें चढ़ जाती हैं, और मुँह इस तरह खुल जाता है कि हलक़ तक दिखाई देता है। सिर को वे ऊपर उठा लेते हैं। प्रायः हँसते समय उनकी पगड़ी ने धरती पर गिरकर इस नामाक़ूलियत के विरुद्ध ज़बर्दस्त प्रोटेस्ट किया है।

यारों को इसमें भी मज़ाक़ की सूझती है। एक बार का ज़िक्र है—वे इस प्रकार जब हँसने लगे तब लाला जी ने उनके मुँह में ईसबगोल का छिलका फेंक दिया। वह इस भाँति तालू और हलक़ के साथ चिपटा कि सन्ध्या तक वे उसे नीचे उतार देने का प्रयास करते रहे, पर वह नहीं उतरा। उन्होंने दो-चार बार पानी भी पिया। पर नीचे खिसकने की जगह वह और फूल गया। फिर उन्होंने इस बदमज़ाक़ी पर जो दार्शनिक भाषण लाला जी को पिलाया वह सुनने से ही सम्बन्ध रखता था। वास्तव में उनको 'दर्शन' का भी दौरा होता है। ऐसा ही दौरा उनको उस दिन हुआ जब 'प्रास्पेक्ट-हिल' की एक पार्टी में क़हक़हा लगाते समय उनके मुँह में रङ्ग फेंक दिया गया था और ज्यों-ज्यों वे पानी पी पीकर कुल्ले करते थे, दाँत और मुँह नीले होते जाते थे। उस वक़्त इस तरह के भोंड़े मज़ाक़ के विरुद्ध उन्होंने जो भाषण किया वह आज तक मुझे स्मरण है। उसमें पण्डित जी ने फ़तवा दिया कि उनके सब मित्र हास्य रस के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। ख़ैर, उनके इन भाषणों का उनके मित्रों पर उतना ही प्रभाव पड़ता है, जितना तूती की आवाज़ का नक्क़ारख़ाने में, क्योंकि ज्यों ही वे फिर इसी प्रकार मुँह खोले, सिर ऊपर को उठाये, आँखें बन्द किये हँसे, यारों ने फिर किसी न किसी वस्तु से उनके क़हक़हे का स्वागत किया।

कसुम्पटी से सी० पी० को जाते हुए उनके सम्बन्ध में जो मनोरञ्जक बातें सुनने में आईं वे भी उल्लेख के योग्य हैं। एक बार का ज़िक्र है कि सेक्रेटेरियेट के क्लर्कों की एक पार्टी ने 'कुफ़री' जाने का विचार किया। पण्डित तेजभान जी को भी निमन्त्रण दिया गया। उस दिन ठंड कुछ अधिक थी। उन्होंने बहुतेरा तबीयत की नासाज़ी का रोना रोया, पर सुनता कौन? घसीट ही लाये गये। हँसते-हँसाते पार्टी कुफ़री पहुँची। रास्ते में वर्षा होने लगी थी। शिमले में वर्षा का क्या ठिकाना, और विशेषकर जून-जुलाई के महीने में तड़ातड़ पड़ने लगती है। उस दिन कुछ ओले भी पड़े थे, शीत में वृद्धि हो गई थी। कुफ़री पहुँचकर

यारों ने वहाँ सराय में डेरा डाल दिया। ९ मील चलकर कुफ़री की सैर के निमित्त आनेवालों के लिए यह उस शीत में ठिठुरते हुए के लिए लिहाफ़ से कम नहीं। बरसातियाँ उतार दी गईं। छतरियाँ निचुड़ने के लिए टाँग दी गईं और 'डाँकी' खेली जाने लगी। ताश के इस खेल में लाला जी को ख़ासी निपुणता प्राप्त है। वे सदैव सबसे पहले जीत जाते हैं। उस दिन पण्डित तेजभान की जब शामत आई तब आप डाँकी बन गये। लाला जी ने यह दंड तजवीज़ किया कि नाक पर रुपया रखकर एक कंकड़ी ऊपर को इस तरह उछाली जाय कि उससे रुपये का निशाना हो जाय। यह न करना हो तो एक रुपया पार्टी के फंड में दिया जाय। पण्डित जी ने बीसियों तरह की फ़िक़रेबाज़ी सुनते हुए रुपया दे दिया। नाक या आँख कौन तुड़वाता? इस पर मालूम होता है, लाला जी को शरारत सूझी। उन्होंने कहा—भई, इज़ारबन्द अथवा निक्कर की पेटी में कीफ़ रख कर, ऊपर को मुँह कर, कंकड़ी को ऐसा उछाले कि वह कीफ़ में गिरे। जिसे सफलता मिले उसे इनाम दिया जाय। इनाम का नाम सुनकर पण्डित जी बोल उठे—क्या पुरस्कार?

लाला जी ने कहा—सब लोग कोशिश करें। जो असफल रहें वे आठ-आठ आने दें। इस प्रकार जो रक़म इकट्ठी हो जाय वह सफल रहनेवालों में बराबर बराबर बाँट दी जाय। और यह कहते हुए लाला जी ने जानकीनाथ को आँख से इशारा किया।

प्रस्ताव अत्यन्त मनोरञ्जक था। पण्डित जी बोले—पर कीफ़ कहाँ से आयेगी?

महता ने कहा—पिछले दिनों मैंने दूकानदार के यहाँ कीफ़ देखी थी। यह कहकर वे दूकानदार से छोटी सी कीफ़ ले आये। तब पण्डित जी ने एक लम्बा क़हक़हा छोड़कर इस तजवीज़ को पास कर दिया और इतनी देर में लाला जी और महता साहब में कानोंकान मशविरे हो गये।

सबसे पहले लाला जी ने अपनी निक्कर में कीफ़ रखकर कंकड़ी फेंकी। वह उनकी नाक पर इस ज़ोर से लगी कि आँखों से पानी निकल आया। सब लोग हँसने लगे और पण्डित जी तो बहुत देर तक ग्रामोफ़ोन बने रहे। लाला जी ने तत्काल आठ आने निकालकर पण्डित झंडालाल के हाथ में दे दिये, जो सदैव ऐसे मौक़ों पर ख़ज़ानची का फ़र्ज़ बजाते थे। इसके बाद सबने बारी-बारी प्रयत्न किया। सब असफल रहे। केवल रामभरोसे किसी न किसी तरह सफल हो गये। इन्होंने कंकड़ी जब फेंकी तब कोई आशा ही नहीं थी कि वह कीफ़ तो क्या सिर पर भी गिरेगी, पर ये पीछे को कुछ ऐसा भागे कि वह ठीक कीफ़ में ही गिरी। उस वक़्त सबने तालियाँ बजाईं। बाईस आदमियों की पार्टी थी। दस रुपया जुर्माना आ चुका था। केवल पण्डित तेजभान जी रह गये थे। यदि ये जीत गये तो क्या कहना! पाँच रुपये उनके हो गये। उस दिन वर्षा और ठंड के कारण उन्होंने चूड़ीदार पायजामा पहन रक्खा था। झट उसमें कमीज़ कसी, इज़ारबन्द और कमीज़ के मध्य में कीफ़ रक्खी और क़हक़हा लगाकर ऊपर को मुँह करके ज्यों ही कंकड़ी फेंकने लगे, जानकीनाथ ने जो पहले से ही तैयार थे, गडुवा भर चश्मे का पानी (जो पहले से ही चुपचाप ले आये थे) कीफ़ में उड़ेल दिया। एक तो बर्फ़ से भी ठंडा पानी, फिर चूड़ीदार पायजामा, न उतारा जा सके, न रक्खा जा सके। दोनों पाँवों से पानी बह रहा था, फ़बतियों पर फ़बतियाँ कसी जा रही थीं और पण्डित जी पूरे जोश से अपना दार्शनिक भाषण झाड़ रहे थे। इसके बाद उन पर क्या गुज़री और वे किस प्रकार ठिठुरते-ठिठुरते ९ मील चल कर कसुम्पटी पहुँचे, यह एक लम्बी कथा है।

× × ×

विचित्र बात तो यह है कि ऐसे समय में दैव भी पण्डित जी का विरोधी बन जाता है। शायद उसे भी ऐसे लाल बुझक्कड़ से मज़ाक़ करने में आनन्द आता है। एक बार का ज़िक्र है कि लाला जी जो पण्डित तेजभान के घनिष्ठ मित्र होते हुए भी सब शरारतों के बानी होते थे, जानकीनाथ के साथ कार्यवश स्टेशन को जा रहे थे। मार्ग में एक कुली ने जो ख़ुशबूदार आमों का टोकरा उठाये हुए था, उनके हाथ में काग़ज़ का एक पुर्ज़ा दिया ताकि वे उन महाशय का पता बता दें जिनका नाम उस पर लिखा था। पुर्ज़ा देखते ही लाला जी की आँखें मुस्करा उठीं। हँसते हुए बोले—हम तो उधर ही जा रहे थे। फिर जानकीनाथ की ओर देखकर कहने लगे—लो पण्डित जी कष्ट से बच गये। यह उनके आम आ रहे हैं। आप इस काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दीजिए और आमों का टोकरा ले जाइए। आपके दोस्त ने आपको स्टेशन पर आने का कष्ट न देकर,

स्वयं ही आपके घर भेज दिये। आप कह भी तो वहाँ आये थे कि यदि मैं वक्त पर न पहुँचूँ तो कृपा कर मेरे घर भिजवा देना, चलो इस तकलीफ़ से बच गये, वर्ना पूरा घंटा नष्ट हो जाता। जानकीनाथ को चुपचाप खड़े देखकर आँख का इशारा करते हुए बोले—तो फिर अब खड़े काहे को हो ? मैं तो जाता हूँ माल-रोड को। उन वकील साहब से मिल आऊँगा। अब तुम जानो और तुम्हारे आम।

महता जानकीनाथ जो ऐसे मामलों में लाला जी के दायें हाथ थे, झट सब मामला समझ गये। आँखों आँखों में सब कुछ तय हो गया। उन्होंने काग़ज़ पर हस्ताक्षर किये और कुली से अपने साथ आने को कहा।

लाला जी ने माल-रोड को मुड़ते हुए हँसकर कहा—क्यों न हो भाई ! स्टेशन के बाबू मित्र हों और इतना भी आराम न रहे। यह कहकर वे मानो उछलते हुए माल-रोड की ओर चल दिये। पण्डित तेजभान बड़ी मुद्दत से इस बात का ज़िक्र कर रहे थे कि सहारनपुर से उनके साले साहब बढ़िया आमों का एक टोकरा भेज रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्य देखिए कि जब आम आये तब उनको उनकी सुगन्ध भी न मिली, क्योंकि लाला जी के पहुँचते ही महता साहब के मकान में सब मित्रों को निमन्त्रण दिया गया और बड़े मज़े से दावत उड़ाई गई। जब आम समाप्त हो चुके तब पण्डित जी भी घबराये हुए पहुँच गये। जिस समय निमन्त्रण दिया गया, वे घर पर नहीं थे। आते ही इधर-उधर देखे बिना बोले—यार बुरा हुआ। किसी ने आमों को मार्ग में ही हथिया लिया। मुझे कुछ काम था, इसलिए बिल्टी स्टेशन पर देकर काम से चला गया। अपने घर का पता देकर माल बाबू से कह आया था कि टोकरा मेरे घर पहुँचा देना। जब घर आया, मालूम हुआ कि कुली आया नहीं। काफ़ी प्रतीक्षा की, फिर भागा भागा स्टेशन पर पहुँचा। मालूम हुआ, रास्ते में ही कोई मेरे हस्ताक्षर करके टोकरा ले गया है।

एक साहब बोले—यानी आपने हस्ताक्षर भी किये और आपको आम भी न मिले। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि सोते में ही आपने दस्तख़त कर दिये हों और आप को ऊँघते देखकर कुली टोकरा को अपने साथ ही लेता गया हो।

इस पर फिर एक क़हक़हा पड़ा। दूसरे साहब ने कहा—चलिए यह अनिवार्य भेर हो गई। दस मील [illegible] चक्कर पड़ गया होगा। आप बाहर निकलने से जो [illegible] हैं उसी की यह सज़ा परमात्मा ने आपको दी है।

सब फिर हँसने लगे। इतनी देर में पण्डित जी [illegible] कुछ कुछ भाँप गये। उन्हें महता साहब पर शक [illegible] उनके हस्ताक्षर वे भली भाँति पहचानते थे और [illegible] साहब नीचा सिर किये हुए आम की गुठली ऐसा चूस [illegible] थे जैसे उन्हें कुछ ख़बर ही न हो। महता साहब [illegible] दृष्टि उठाकर जब पण्डित जी ने लाला जी की ओर [illegible] तब उन्होंने चुपके से महता साहब की ओर संकेत [illegible] दिया। जानकीनाथ ने भी देख लिया, मुस्करा दिया [illegible] उस टोकरे की ओर इशारा करके जिसमें गुठलियाँ [illegible] छिलके पड़े थे, कहने लगे—उठा ले जाओ।

उसी समय लाला जी बोल उठे—ख़ुशक़िस्मत हो [illegible] भान। वक्त पर ही पहुँच गये। यह एक आम बच गया [illegible] लो, स्वाद तो चक्खो ! यह कहते हुए उन्होंने आम [illegible] फाँकें करनी शुरू कीं और जैसे बेख़ुदी में एक एक [illegible] सबको बाँटने लगे। जब गुठली हाथ में रह गई [illegible] बोले—ओहो सब बँट गया, मैं तुमसे बातें करने में [illegible] मग्न रहा। अच्छा यह गुठली ही देख लो, हिस्सा तो [illegible] मेरा होता है, लेकिन ख़ैर तुम्हारे लिए कब कौन [illegible] क़ुर्बानियाँ नहीं कीं और फिर गूदा तो सारा इसी में है।

पण्डित जी लहू के घूँट भर रहे थे। उनकी आँखों [illegible] पानी उतर आया। एक चोरी दूसरे सीनाज़ोरी ! आम [illegible] स्वाद चखने को जी तो चाहा, पर जैसे चोरों से लुटा [illegible] निराश व्यक्ति क्रोध में बाक़ी के चन्द पैसे भी उनके [illegible] फेंक देता है कि यह भी ले जाओ, उसी तरह क्रोध [illegible] जब पण्डित जी ने कहा—इसे तुम्हीं रक्खो, इतनी [illegible] क़ुर्बानी क्यों करते हो, तब—तुम्हारी क़िस्मत में इन सुगन्धि[illegible] सुस्वादु आमों का मज़ा चखना लिखा ही नहीं, यह [illegible] हुए लाला जी ने गुठली को चूसना आरम्भ कर दिया।

उस समय फिर पण्डित जी का दार्शनिक भाव [illegible] आरम्भ हुआ। दावत की हक़ीक़त खुलने पर यारों ने [illegible] क़हक़हे लगाये। वे सब अभी तक यही समझे हुए थे [illegible] बच्चे की वर्ष-गाँठ पर महता साहब ने यह पार्टी दी है।

पण्डित जी के क्रोध का सब नज़ला लाला जी [illegible] गिरा। लाला जी ने झट उठकर पण्डित जी के कान [illegible]

[illegible] कहा, जिससे वे कुछ शान्त-से दिखाई देने लगे और [illegible] महता साहब को बदले की धमकी देते हुए लाला जी के साथ चले गये।

× × ×

यहाँ से इस नाटक का दूसरा अंक आरम्भ होता है। लाला जी ने पण्डित जी के सिर की क़सम खाकर उन्हें यह विश्वास दिला दिया कि सब बदमाशी महता जानकीनाथ की थी। वे बोले—तुमने देखा नहीं हस्ताक्षर महता के ही थे। मैं तो जैसे दूसरे गये, वैसे निमन्त्रण पाने पर चला गया।

पण्डित जी महता साहब के हस्ताक्षर पहचानते थे, इसलिए लाला जी की बातों में उन्हें सत्य की बू आई। इसके साथ ही लाला जी ने महता साहब को बुरा-भला कहकर उनसे बदला ले देने का यक़ीन भी पण्डित जी को दिला दिया था।

इसके पश्चात् एक दिन सन्ध्या समय लाला जी ने पण्डित तेजभान के कान में कहा—लो भई, तुम्हारा बदला लेने का समय आगया है।

"कैसे ?"

"आज महता ने मुझे बताया है कि उसके एक मित्र देहरादून से उसके नाम आम भेज रहे हैं। उसने मुझे बिल्टी (रेल की रसीद) भी दिखाई है। बस वह आम आयें, मैं उसे अपने कमरे में बुलाकर बातों में लगा रक्खूँ, तुम उसके कमरे से टोकरा उठवाओ और ब्राह्मण [illegible]गाऊ बन जाओ।"

पण्डित जी की आँखें चमक उठीं। लाला जी के हाथ पर हाथ मारते हुए हर्ष के उन्माद में उन्होंने कहा—'टिट फ़ॉर टैट' (जैसे को तैसा)। और इतना लम्बा क़हक़हा लगाया कि पहले कभी न लगाया होगा। लाला जी की ओर से उनके दिल पर जो घाव थे वे सब भर गये। प्रसन्नता से बोले—ऐसे टोकरा उड़े कि बचा जी के देवताओं को भी पता न लगे।

लाला जी ने कहा—बस, बत्ती गुल और पगड़ी ग़ायब। वह हमारे कमरे में और आमों का टोकरा आपके घर !

बात तय हो गई कि लाला जी महता को अपने कमरे में बुला लेंगे और पण्डित तेजभान उसके कमरे से टोकरा उठवाकर घर ले जायँगे। इस शर्त पर कि कम से कम एक चौथाई आम लाला जी के घर पर अवश्य भेजे जायँ।

उस दिन के बाद रोज़ पण्डित तेजभान दफ़्तर में लाला जी के कान में कुछ पूछने लगे। एक दिन लाला जी ने बताया कि टोकरा आ गया है और महता साहब के कमरे में पड़ा है। तुम कुली का प्रबन्ध कर आओ। तब मैं महता को अपने कमरे में बुला लूँगा। पण्डित तेजभान कमरे से निकलते समय इतने प्रसन्न थे, मानो उनके हाथ कोई निधि आ गई हो। दफ़्तर के बाहर एक कुली भी जाता हुआ मिल गया। उसे वहाँ खड़े रहने की आज्ञा देकर उन्होंने लाला जी को सूचना दी कि कुली का प्रबन्ध हो गया है और फिर अपने कमरे में जाकर गम्भीरता से बैठ गये। मन में तो लड्डू फूट रहे थे, काम में कैसे जी लगता ? बेसब्री उन्हें महता जी के कमरे के सामने ले आई। वे अभी काम कर रहे थे, पण्डित जी ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। कोने में एक टोकरा रक्खा था। दिल की ख़ुशी को दिल में ही दबाते हुए वे फिर अपने कमरे में जा बैठे। उन्हें एक एक पल एक एक वर्ष के समान बीत रहा था। फिर महता साहब के कमरे की ओर गये। वे अब भी बैठे काम कर रहे थे। पण्डित जी दिल ही दिल में लाला जी को गालियाँ देने लगे। ये मेरा मज़ाक़ उड़ा रहे हैं और कुछ नहीं। मुझे उल्लू बनाना चाहते हैं। उसी समय उन्होंने देखा, लाला जी का चपरासी आया और महता साहब उसके साथ हो लिये। पण्डित जी कन्नी कतरा गये थे। उनसे आँख न मिला सके। चोर की दाढ़ी में तिनका। जब महता साहब निकल गये तब पण्डित जी भाग कर कुली को बुला लाये। उसका नम्बर लिया, धड़कते हुए दिल के साथ टोकरा उठवाया, अपना पता दिया और उसे रवाना करके अपने कमरे में जा बैठे। ऐसे चुप जैसे साँप सूँघ गया हो। पूरी तरह गम्भीर बने बैठे थे, पर मन का आह्लाद चेहरे पर फूटा पड़ता था। दिल में बीसियों मनसूबे बाँधे जा रहे थे। क्यों न अभी सिर-दर्द का बहाना करके खिसक जायँ और देहरादूनी आमों का स्वाद चक्खें। नहीं यह ठीक नहीं, कोई सिर हो जायगा। यह महता भी ख़ूब याद रक्खेगा। चला था तेजभान से मज़ाक़ करने। मेरा टोकरा तो ख़ैर आध मन का ही था। यह तो एक मन से

कम न होगा। आम भी अच्छे मालूम होते हैं। क्यों न हों! देहरादूनी हैं।

इसी तरह की बीसियों कल्पनाओं में फँसे पण्डित तेजभान प्रकट रूप में बड़ी तन्मयता से काम में लगे हुए थे। जब महता साहब ने बिलकुल समीप आकर उनकी ठोढ़ी पकड़कर मुँह ऊपर उठाया और बोले—वाह कैसे काम में लगे हुए हो, जैसे यहीं शहीद हो जाओगे? तो और भी गम्भीर होकर पण्डित जी ने कहा—नहीं, नहीं। आओ आओ बैठो। योंही आज ज़रा काम ज़्यादा है, यह कह कर उन्होंने महता साहब को कुर्सी दी।

उनकी इस धूर्त्तता पर जलकर महता ने कहा—मियाँ, सीधे हाथों टोकरा वापस कर दो। इन उड़नघाइयों से काम न चलेगा।

पण्डित जी ने ऐसा मुँह बनाया, जैसे कोई समझ में न आनेवाली बात सुन रहे हों। आँखें फैलाकर और मुँह को तनिक-सा खोलकर हैरानी से बोले—क्या कहा? टोकरा! कैसा टोकरा? किसका टोकरा?

"मेरा आमों का टोकरा। और किसका टोकरा? पक्का एक मन देहरादूनी आम थे। यों आसानी से हज़म न होंगे।"

पण्डित जी ने आवाज़ में ज़रा सहानुभूति लाने का प्रयास करते हुए कहा—किसने उठा लिया तुम्हारा टोकरा। ज़रा बैठो। कुछ ठीक तरह बताओ तो कुछ पता लगे। मुझे तो कुछ ख़बर ही नहीं कि बात क्या है? यह कहते हुए उन्होंने कुर्सी महता साहब के आगे खिसका दी।

महता ने खड़े खड़े ही कहा—बात यह है कि आज देहरादून से पक्का मन भर आम आये थे। मैं घर भिजवाने को था कि लाला जी ने बुलवा भेजा। एक ज़रूरी काम था। वापस आया तब आम नदारद!

यह कहते हुए महता साहब ने कुछ ऐसा निराशा भरा मुँह बनाया कि पण्डित जी अपनी हँसी न रोक सके, क़हक़हा छोड़कर बोले—तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था। भगवान् ने मेरा बदला चुका दिया।

महता साहब जैसे गिड़-गिड़ाते हुए बोले—'परमात्मा की सौगन्ध' उसमें मेरा ज़रा भर भी क़सूर न था। सब शरारत लाला जी की थी। मैं तो एक टूल (साधन) था। उनके हाथ का महज़ एक औज़ार!

पण्डित तेजभान को अचानक एक बात सूझी। ... होकर बोले—बताऊँ? यह भी लाला जी की ही ... है। मुझसे क़सम ले लो। तुम्हारे आमों के आने ... भी नहीं।...

"अच्छा उनसे पूछ देखता हूँ।" यह कहते ... महता साहब मुँह लटकाये तेज़ी से बाहर निकल गये। ... बाहर बरामदे में उनके पैरों की चाप दूर होते होते ... बन्द हो गई तब पण्डित तेजभान ने एक लम्बा ... लगाया और कुर्सी में धँस गये। उन्होंने कहा— ... मालूम होगा बच्चा जी को कि किस तरह दूसरे की ... उड़ाई जाती है।

शाम को मित्रों ने बहुतेरा ज़ोर दिया कि बड़े ... तक हो आयें, पर पण्डित जी ने एक न सुनी। उनके ... में तो आमों के देखने की, उनका स्वाद चखने की ... थी। कहने लगे आज घर में (पत्नी की) तबीयत ... है, नौकर के हाथ कहलवा भेजा था कि जल्दी आना ... भाई जा रहा हूँ। मन तो तुम्हारे ही साथ रहेगा, पर ... किया जाय? मजबूरी है। ऐसे ही पीछा छुड़ा ... पण्डित जी सरपट घर की ओर इस तरह भागे, जैसे ... की शाम को स्कूल से छुट्टी मिलने पर मिठाई के ... में लड़के भागते हैं।

घर जाते ही बड़े रोब से उन्होंने पत्नी से पूछा— ... आमों का टोकरा भेजा था मैंने।

"पड़ा है। मैंने तो छुआ भी नहीं।"

"तो उठो! क़ैंची दो। ज़रा खोल कर देखें।"

पत्नी जल्दी से उठी। मशीन में देखा, पर क़ैंची ... न थी। और जगह भी देखा, पर क़ैंची दुर्भाग्य से ... मिली। डरते हुए बोली—मैंने बहुतेरा ढूँढ़ा है। क़ैंची ... मिलती। पता नहीं, किसी के घर चली गई।

भूखे सिंह की तरह पण्डित जी गरजे—तुम्हें ... मालूम भी होता है। जो चीज़ माँगो, नहीं मिलती। ... चाक़ू दो।

पत्नी को भी इस डाँट का उत्तर देने का मौक़ा ... गया, बोली—चाक़ू आपने कब लाकर दिया? बीस ... तो कह चुकी हूँ, एक चाक़ू ला दो। लेकिन यहाँ तो ... निगोड़ी कर्द भी कभी लाकर न दी, फिर चाक़ू की तो ... ही दूसरी है। वह द्रान्ती पड़ी है। उससे काट लो।

पण्डित जी मानो ख़ून के घूँट भर कर रह गये। ऐसे बढ़िया देहरादूनी आमों का टोकरा, ऐसी अच्छी तरह सिया हुआ और काटा जाय मैली पुरानी द्रान्ती से। दौड़ कर पड़ोस से चाक़ू माँग लाये और बड़ी सावधानी से पार्सल की रस्सियाँ काटने लगे। कभी कभी पत्नी की ओर गर्व से देख भी लेते थे, मानो कह रहे हों, तुम्हारे मैके से भी आम आया करते हैं, इनको देखोगी तो आँखें खुल जायँगी। पण्डित जी की वृद्धा माता भी पास आ बैठीं। उत्सुकता की नीरवता छा गई।

पत्नी ने खड़े ही खड़े कहा—बदबू-सी आ रही है। शायद आम सड़ गये हैं।

पण्डित जी ने अन्तिम रस्सी काटते हुए कहा—तुम्हारी नाक सड़ गई है। देहरादूनी आम हैं देहरादूनी।

और जब पार्सल खुला तब दिमाग़ भन्ना गया। कमरे में सड़ान्द फैल गई। ऊपर दो आने पँसेरीवाले आम थे और नीचे वह सब कुछ था जो महता साहब ने जमादार को ४ आने देकर भरवाया था।

पत्नी ने नाक पर हाथ रक्खे और—'देख लिये तुम्हारे देहरादूनी आम', यह कहती हुई दूसरे कमरे में चली गई। और पण्डित जी महता साहब और लाला जी को हज़ार हज़ार सलवातें सुनाते और शून्य में ही अपना दार्शनिक भाषण झाड़ते मकान से बाहर निकल आये ताकि किसी को दस-बारह आने देकर उस गन्दगी के पुलन्दे को कहीं दूर फिकवायें।

कहना न होगा कि महता साहब और लाला जी के सिवा बाक़ी सब मित्रमंडली अपनी नासुमिग्रत दिखाने और जले पर नमक छिड़ने के लिए मौजूद थी।*

* लेखक की अप्रकाशित 'एक रात का नरक' नामक पुस्तक से।

ग़रीबों की दुनिया

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

है यही ग़रीबों की दुनिया
छोटी-छोटी-सी जीर्ण-शीर्ण हैं घास-फूस की झोपड़ियाँ।

इनमें रहनेवाले ग़रीब—
हैं अशन-हीन हैं वसन-हीन।
दाने-दाने चिथड़े-चिथड़े—
इनका जीवन, ये दुखी-दीन॥
इनकी अभिलाषा मुट्ठी भर
वह भी हो पाती नहीं सफल।
जलती रहती होती न शान्त।
इनके हृदयों की क्षुधा-अनल॥
क्या इसे बुझाने आती हैं—
आँखों से आँसू की झड़ियाँ?
है यही ग़रीबों की दुनिया।

इनकी दुनिया में कब आते—
त्योहार-हर्ष-उत्सव के दिन।
इनका न दशहरा—नहीं ईद
इनका जीवन है सदा मलिन॥
क्या पाक-शास्त्र का काम यहाँ—
इनको भोजन का स्वाद नहीं।
क्या खायें झगड़ा है इसका—
पकने का यहाँ विवाद नहीं॥
मिटती इनकी उद्भ्रान्ति नहीं—
आती न शान्ति की दो घड़ियाँ।
है यही ग़रीबों की दुनिया।

कृषि पर आय-कर

इस समय भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, साथ ही वे कृषकों की दशा भी सुधारना चाहती हैं। इस लेख में लेखक महोदय ने जिस आय-कर की बात उठाई है उससे प्रान्तीय सरकारों के दोनों उद्देशों की सिद्धि हो सकती है।

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल

ऊँची आय पर कर लगाना प्रत्येक सभ्य देश में सरकारी आमदनी का एक प्रधान ज़रिया है। सन् १९१३-१४ में कुल सरकारी आमदनी का आय-कर ग्रेट ब्रिटेन में २९%, संयुक्तराष्ट्र में ११%, जापान में ९% और भारतवर्ष में ४% था। इन देशों में यही आँकड़े सन् १९३३-३४ में ४०%, ५०%, १५% और १४% हो गये। १९२९ के आर्थिक संकट के पूर्व, अर्थात् सन् १९२७-२८ में तो सरकारी आय का और भी अधिक भाग आय-कर-द्वारा ही प्राप्त किया गया था।

कृषि-द्वारा प्राप्त की गई आय में कोई ऐसी ख़ास विशेषता नहीं है जिसके कारण उस पर आय-कर न लगाया जाय। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि यदि कृषि-आय पर कर नहीं लगाया जाता और दूसरी आयों पर कर लगाया जाता है तो यह अन्याय है। संसार के सभी देशों में मालगुज़ारी के अतिरिक्त कृषि-आय पर भी कर लगाया जाता है; और अक्सर पिछले कर से सरकार को पहले कर के मुक़ाबिले में अधिक आमदनी होती है। बहुत-से देशों में तो सरकार मालगुज़ारी को पूर्णतया उड़ा देने की सोच रही है और केवल कृषि-आय-कर को ही रखना चाहती है। सन् १९२४ में फ़िनलैंड की सरकार ने ऐसा ही किया था।

परन्तु हमारे देश में कृषि-आय पर कर नहीं लगाया जाता। यह हमारे आय-कर में एक बहुत बड़ा दोष है। इस दोष को दूर करने के लिए देश के राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री बहुत दिनों से प्रयत्न कर रहे हैं। सन् १९२४ में कर-जाँच-कमिटी ने इस बात को लिखा था कि कृषि-आय पर कर न लगाना सिद्धान्त के विरुद्ध है और इतिहास के ख़िलाफ़ है। पर उस समय से अब तक इस सुधार को कोई क्रियात्मक रूप नहीं दिया गया। प्रान्तीय सरकारों ने अब तक इस कर को लगाने की कभी इच्छा ज़ाहिर नहीं की। यह शायद इसलिए कि ज़मींदार लोग ब्रिटिश सरकार की मज़बूती के खम्भ समझे जाते हैं और सरकार उनको अप्रसन्न नहीं करना चाहती। पर कांग्रेस के शासन-भार ग्रहण करने से स्थिति बदल गई है। कृषि-आय-कर तो जहाँ का तहाँ रहा, ज़मींदारी-प्रथा के अस्तित्व पर भी संकट के बादल मँड़राते दीख पड़ते हैं। ख़ैर, वह तो जब होगा, होगा, अब कृषि-आय-कर लगाये जाने की तो पूर्ण सम्भावना दिखती है।

सन् १८६० में हिन्दुस्तान में पहले-पहल आय-कर लगाया गया था। सन् १८८६ के पूर्व तक यह कर कभी कभी लगाया जाता था, और जब सरकार को अधिक रुपये की आवश्यकता न होती तब यह बन्द कर दिया जाता। पर जब कभी यह कर लगाया जाता, कृषि-आय को इस कर से छूट नहीं दी जाती थी। पर सन् १८८६ में जब सरकार ने आय-कर लगाया तब कृषि-आय को इस कर से माफ़ी दे दी गई, जो अब तक चली आती है। सन् १९१८ में असेम्बली में इस दोष को दूर करने की चेष्टा की गई, पर कोई परिणाम नहीं हुआ। सन् १९२४ की कर-जाँच-कमिटी की राय ऊपर दी जा चुकी है। पर इस कमिटी ने राजनैतिक कारणों की वजह से कृषि-आय-कर को सरकारी आमदनी का अन्तिम ज़रिया रक्खा। साइमन-कमीशन ने इस विषय में कुछ वीरता दिखलाई और स्पष्ट शब्दों में कहा कि कृषि-आय पर कर न लगाया जाना घोर अन्याय है। नये गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया ऐक्ट ने इस क़िस्से का निपटारा-सा ही कर दिया है। अब प्रान्तों को यह कर लगाने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई है। ऐसी दशा में और ख़ास कर जब कांग्रेस ने मंत्रित्व ग्रहण कर लिया है, इन बातों पर प्रकाश डालना कि यह कर क्यों, कैसे और किस हिसाब से लगाया जाय, बहुत आवश्यक हो गया है।

कृषि-आय-कर और मालगुज़ारी का चोली-दामन का साथ है। कुछ मनुष्यों का मत है कि मालगुज़ारी स्वयं एक कर है, इसलिए अब एक और दूसरे टैक्स की क्या ज़रूरत है। इसके विपरीत कुछ लोग कहते हैं कि सब भूमि की मालिक सरकार है और मालगुज़ारी भूमि का किराया-मात्र है। इसलिए कृषि-आय पर किसी प्रकार का भी कर नहीं लग रहा है। इस कारण कृषि-आय पर भी कर लगाना चाहिए।

मालगुज़ारी कर है या किराया, यह प्रश्न बहुत दिनों का है। इस विषय पर वाद-विवाद, बैडेन-पावेल के शब्दों में, कोरा 'निष्फल वाग्-युद्ध' है। मालगुज़ारी को चाहे कुछ भी समझो। पर इससे मामले की असलियत में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। असलियत यह है कि मालगुज़ारी छोटे छोटे ज़मींदारों व किसानों के ऊपर एक बहुत बड़ा आर्थिक बोझ है जिसे वे बहुत कष्ट के साथ उठा पाते हैं। इसके विपरीत वह बड़े बड़े ज़मींदारों की आमदनी का थोड़ा-सा ही भाग होती है। इस दशा में ज़रूरत इस बात की है कि मालगुज़ारी बहुत काफ़ी सीमा तक घटा दी जाय और सरकारी आय की कमी एक ऐसे कृषि-आय-कर के द्वारा पूरी की जाय जो उन्नतिशील हो, अर्थात् जैसे जैसे कृषि की आय बढ़ती जाय, वैसे वैसे उस कर की दर भी बढ़ती जाय। ऐसा करने से छोटे ज़मींदारों को कुछ साँस लेने के लिए वायु मिलेगी और बड़े ज़मींदारों पर न्याय-पूर्वक टैक्स लगाया जा सकेगा।

इस समय सरकार को रुपये की बहुत आवश्यकता है। देशोन्नति के विभागों की उन्नति के बिना देश की दशा नहीं सुधर सकती, और बिना रुपये के इन विभागों के कार्य की गति तेज़ नहीं हो सकती। अगर प्रान्तीय सरकारों को रुपया न मिला तो नया शासन-विधान निरर्थक हो जायगा और कांग्रेस-सरकार को भी देश की उन्नति करने का मौक़ा न मिलेगा। इसलिए कृषि-आय पर कर लगाना नितान्त आवश्यक है। सर वाल्टर लेटन की गणना के मुताबिक़ यदि कृषि-आय पर आय-कर लगा दिया जाय तो सरकारी आमदनी में ५ करोड़ रुपये की वृद्धि हो जायगी। सन् १९३१ में प्रसिद्ध भारतीय अर्थ-शास्त्री वी० के० आर० वी० राव ने लिखा था कि कृषि आय-कर से केवल स्थायी बन्दोबस्तवाले स्थानों से ही २½ करोड़ रुपये की आमदनी हो सकती है।

खेती-द्वारा प्राप्त होनेवाली आमदनी पर कर न लगाना रीति के भी विरुद्ध है। प्रत्येक सभ्य देश में आय-कर कृषि-आय और दूसरी आमदनियों दोनों पर ही लगाया जाता है। इस कर का न होना नीति के भी ख़िलाफ़ है। जब दूसरी आमदनियों पर टैक्स लगाया जा रहा है तब क्या कारण है कि कृषि-आय पर ही यह कर न लगे?

कृषि-आय के कर का निम्नलिखित रूप होना चाहिए। सबसे पहले तो मालगुज़ारी में कमी करनी चाहिए। एक विद्वान् की राय में मालगुज़ारी की वर्तमान दर में, भूमि की दशा के अनुसार और एक निष्पक्ष कमिटी की राय के मुताबिक़, २५% से ५०% तक कमी करनी चाहिए। इसके पश्चात् एक कृषि-आय-कर ऊँची आमदनियों पर लगाना चाहिए। आय-कर में आज-कल २,०००) तक की आमदनी पर कोई कर नहीं लगता। यदि यही हाल कृषि-आय-कर में रहा तो ज़्यादा आमदनी नहीं हो सकेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि छूट की हद में और कमी की जाय। सचमुच कृषि-आय-कर में केवल १,०००) की वार्षिक आय के ऊपर, बल्कि ५००) की वार्षिक आमदनी के ऊपर की सब आमदनियों पर कर लगाया जाना चाहिए। क्योंकि एक शहर के २,०००) रुपया कमानेवाले मनुष्य की वस्तुतः आय और एक गाँव के ५००) कमानेवाले की वस्तुतः आय लगभग बराबर ही होगी।

स्थायी बंदोबस्तवाले स्थानों में कृषि-आय-कर के अतिरिक्त एक और कर लगाना चाहिए, क्योंकि वहाँ के ज़मींदारों की आय का बहुत बड़ा भाग अनुपार्जित वृद्धि का फल है या उन भागों में एक दूसरे आय-कर की दर लागू की जाय। अच्छे अच्छे और बड़े बड़े ज़मींदारों की भूमि की आमदनी का आधा भाग तक सरकार न्यायपूर्वक ले सकती है। छोटी छोटी और कम लाभदायक ज़मींदारियों में यह हिस्सा कम होना चाहिए।

१८६० में जब पहले-पहल आय-कर लगा था तब भी शासन-सम्बन्धी कठिनाइयों का प्रश्न उठाया गया था। भारतीय-कर-जाँच-कमिटी और साइमन-कमीशन ने इस पहलू पर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि वास्तव में कठिनाइयाँ इतनी अधिक और पेचीदा नहीं हैं जिनके कारण कृषि-आय-कर का लगाना सम्भव या उचित न हो।

———

ब्रज-बाला

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

तेरे मानस-मन्दिर में, किसकी पूजा है होती।
भावों की सुख-शय्या पर, किसकी मृदु-स्मृति है सोती।
गम्भीर नीर-निधि में है, नीरवता रहती जैसे।
वेदना छिपी क्या कोई, तेरे उर में है वैसे।

चिर सुख के वास-स्थल में
तू कौन दुःख है सहती।
आनन्द-अम्बुनिधि में भी,
तू क्यों प्यासी है रहती।
तेरे स-स्मित अधरों पर,
है किस विषाद की रेखा।
है छिपा कौन शोभा-निधि,
तेरे उर में अनदेखा।

जब प्रेम-स्पर्श पुलकित हो,
तू मूँद दृगों को लेती।
किसकी मधुर-स्मृति आकर,
तब तुझे जगा है देती।
थपकी देकर मलयानिल,
जब तुझे सुला है जाती।
सपने की कौन कहानी,
तब तुझे रुला है जाती।

पति की गोदी में लेटी तू किसे याद है करती।
सुमनों की सुख-शय्या पर, क्यों आह सदा है भरती।
उन्मना दीखती है क्यों तू प्रचुर-प्रेम-बन्धन में,
वासना कौन अन्तर्हित, है तेरे मनोभवन में।

सुख की लहरों में बहता, तेरा अतृप्त उर-सागर।
किस सुध-समीर से दोलित कँपता रहता है थर थर।
करके सर्वस्व समर्पण क्या मोल लिया है तूने।
तन किसे दिया है तूने मन किसे दिया है तूने।

हो प्रेम-सुधा-सिञ्चित भी,
तू क्यों न प्रफुल्लित रहती।
तेरे उर में हरदम क्या
उलटी गंगा है बहती।
तेरे मधु की प्याली में
है किसने विष-रस घोला।
तेरी मृदु उर-वल्ली पर
है गिरा कहाँ से ओला।

इस शुभ्र शरद-रजनी में,
तू क्यों उदास है दिखती।
एकान्त बैठ आँसू से,
तू किसे पत्र है लिखती।
मधुऋतु लाकर निज निधियाँ
है तुझे भेंट कर जाती।
तो भी तेरी मन-कलिका
क्यों नहीं भला खिल पाती।

तेरे विलोचनों में है किस छवि की छटा समाई।
यत्नों से भी किसकी सुध, है जाती नहीं भुलाई।
मृदु-भावों की लहरों से होकर नर्तित मदमाता।
तेरा उर-सागर किसका, अनुराग-राग है गाता।

जो बालपने में तूने, था पिया प्रेम-रस-प्याला।
क्या किया उसी ने तेरा, मन यौवन में मतवाला।
क्या साथ साथ माखन के माधव ने मन भी तेरा।
था चुरा लिया ब्रज-बाले, मधुपुर में किया बसेरा।

जो कुञ्ज-गली में तुझको,
कंकड़ी श्याम ने मारी।
क्या कसक रही वह अब भी,
तेरे उर में सुकुमारी।
आता था जो तेरे घर,
होता था जहाँ सवेरा।
वह धेनु चरानेवाला,
गोपाल कहाँ है तेरा।

आहें भरती रहती हैं,
नित चटक चटक कर कलियाँ।
सुमनों के अश्रु गिराकर
रोती हैं वृक्षावलियाँ।
ले तुझे डाल गलबाहीं
झूले जिस पर बनमाली।
है झुकी दुःख से तेरे
सूनी कदम्ब की डाली।

गो-धूलि साथ गो-गण के, अब भी ब्रज में है आती।
क्यों तू उसके स्वागत को, अब नहीं दौड़कर जाती।
कर मान न अब तू मानिनि, है कौन मनानेवाला।
तेरे कोमल चरणों पर निज शीश झुकानेवाला।

है निरा व्यर्थ ब्रज-बाले यह तेरा मौन विलपना।
तूने जिसको सच माना, वह निकला केवल सपना।
क्या कभी किसी की रहती, हैं बालपने की बातें।
सब काल बदलती रहती, हैं जीवन की दिन-रातें।

क्या कभी भूल सकती तू,
पनघट का आना जाना।
रस-सागर नट-नागर का,
गागर का वहाँ गिराना।
क्या भूलेगी गायों का
वह दुहना और दुहाना।
चितवन की मृदु डोरी से
दो हृदयों का बँध जाना।

बनमाल पहनकर बाले,
तू बनमाली कहला ले।
धर ध्यान श्याम का मन में,
तू अपना मन बहला ले।
मृदु मोर-मुकुट धारण कर,
वर वसन पहन कर पीले।
प्रिय वंशी बजा रसीली,
बन जा तू श्याम रसीले।

मत खोज कहीं कुञ्जों में, हो छिपा वहीं बनमाली।
मत हरना लता समझ, जो ले घेर तुझे मधुपाली।
प्रति गेह गली गिरि बन में, हैं चिह्न श्याम के मिलते।
हर लता वृक्ष वल्ली में, स्मृति के प्रसून हैं खिलते।

केवल शरीर है तेरा, वृन्दावन में ब्रज-बाले।
मन तो मधुपुर में पीता, है सदा प्रेम-मधु-प्याले।
कह दे यमुना से जाकर, तेरा सन्देश सुना दे।
उलटी बहकर मथुरा से, शुभ समाचार भी ला दे।

ब्रज-वल्लभ को भी तेरी, क्या याद कभी है आती।
तू व्यर्थ निदाघ-लता-सी, है नित्य सूखती जाती।
आवेंगी कभी नहीं फिर, वे रास-रङ्ग की रातें,
तू उन्हें भुला दे बाले, हैं वे सपने की बातें।

सुख-अंबर में दुख-घन का गर्जन है जीवन तेरा।
तेरे अशान्तिमय उर का, स्पन्दन है जीवन तेरा।
कह सकती भी न कभी कुछ, तू है ऐसी दीवानी।
परवशता ही है तेरे, जीवन की करुण कहानी॥

भारतवर्ष में सिकन्दर का पराभव

लेखक, पंडित बनमालीप्रसाद शुक्ल

हमें इतिहास की पुस्तकों में यही पढ़ाया जाता है कि विश्वविजयी सिकन्दर ने भारत को जीत लिया था, परन्तु अब इतिहास के खोजी विद्वान् उसकी इस जीत का दूसरा ही रूप प्रकट कर रहे हैं। इस लेख में शुक्ल जी ने उसी रूप का रोचक वर्णन किया है।

आरम्भ-काल के इतिहास-लेखकों ने सिकन्दर को असाधारण वीर लिखा है। इस परम्परागत धारणा को आज के भी कतिपय योरपीय इतिहास-वेत्ता भी मान देते हैं। यह सच है कि जिस ईरान-साम्राज्य ने पिछली शताब्दियों में यूनान पर अनेक बार घोर आक्रमण हुए थे उसे सिकन्दर ने अपनी विजय-वाहिनी सेना के वीर-पद-भार से कम्पित कर दिया था। उसका सारा वैभव लूट-कर उसे तहस-नहस कर डाला था। इतना ही नहीं, उसे पददलित करके कई खण्डों में विभक्त भी कर दिया था। परन्तु उसके साथ ही उन लोगों का यह भी मान लेना कि ईरान की ही भाँति भारतवर्ष में भी सिकन्दर विजयी हुआ था, न्याय-संगत नहीं जँचता। दुर्भाग्य से उस समय के भारतवर्ष के इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली किसी प्रकार की ऐसी भारतीय सामग्री उपलब्ध नहीं है जिससे यूनानी और रोमन इतिहासकारों के भारतवर्ष-विषयक इतिहास के सत्यासत्य का ठीक-ठीक निर्णय हो सके। फिर भी प्रोफ़ेसर एच० सी० सेठ, एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन) ने प्रारम्भिक युग के ख्यात-नामा योरपीय इतिहासकार यथा—एरियन, कर्टियस, डाय-डोरस, प्लूटार्च और जस्टिन-द्वारा लिखित बातों का पूर्ण मनोयोग से अध्ययन करके सिद्ध किया है कि भारतवर्ष से सिकन्दर विजयी होकर नहीं गया। सेठ महोदय के इस कथन की बुनियाद बड़ी पक्की मालूम पड़ती है। अतः इतिहास-प्रेमियों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करने के अभिप्राय से हम यहाँ उसकी संक्षेप में चर्चा करते हैं।

भारतवर्ष में हिन्दूकुश और सिन्ध नद के अन्तर्गत राज्यों पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ था। उन दिनों वहाँ अश्वक क्षत्रिय लोग जिन्हें यूनानी 'एसाकेनोस' कहते थे, निवास करते थे। उन लोगों में शौर्य्य था, शक्ति थी और सबसे बड़ी बात आर्योचित आत्मगौरव था। उनके राज्य में प्रवेश करने से पूर्व सिकन्दर के मन में आर्यों के सम्बन्ध में जो धारणा थी वह उनसे मुठभेड़ होने पर हवा हो गई। उसने जान लिया कि जैसा उनके मुख पर शिशु-सारल्य है, वैसा उनसे युद्ध में पार पाना सरल नहीं है, उनकी देह में वज्र-तुल्य शक्ति है और वक्षःस्थल में आँधी जैसा साहस है। अतः यहाँ से बिना बाधा के दिग्विजयी होकर लौट जाना बहुत कठिन होगा। वास्तव में बात ऐसी ही हुई। अश्वकों ने पग-पग पर यूनानी सेना से ज़बरदस्त मुक़ाबला किया। फल यह हुआ कि उन लोगों को वशीभूत करने में सिकन्दर को नौ महीने लग गये। उसने ईरान के ताज और परसोपोलिस में जल-विप्लव की भाँति कराल एवं दुर्भिक्ष के तुल्य निष्ठुर अत्याचार का जो परिचय दिया था उसका एक बार इस राज्य में फिर प्रदर्शन किया। यहाँ भी बड़े बड़े समृद्धिशाली नगर जलाये गये और कतिपय स्थानों के बाल-वृद्ध नर-नारी तलवार के घाट उतारे गये। इसमें सन्देह नहीं कि सिकन्दर के इन अमानुषीय कर्मों ने राज्य के लोगों के मन से उसके प्रति सहानुभूति की भावना का पूर्णतः बहिष्कार कर दिया होगा। अश्वक लोगों ने किसी एक जगह एकत्र होकर शत्रु का सामना नहीं किया; कारण कि उन्हें सिकन्दर के अत्याचारों से प्रत्येक स्थान की रक्षा करनी पड़ती थी। उन्होंने शत्रु से अन्तिम सामना आर-नोस के क़िले में किया, जो सिन्ध नद के समीपवर्ती स्थान में स्थित था और सुदृढ़ तथा युद्ध के लिए उपयुक्त था। कुछ दिनों के घेरे के बाद जब अश्वक लोग पहाड़ पर हट गये, सिकन्दर ने क़िले पर क़ब्ज़ा किया। कार्टियस लिखता है—"सिकन्दर ने केवल क़िले पर विजय पाई, लोगों पर नहीं"। इसके बाद क़िले के संरक्षण का भार शशिगुप्त को दिया गया, जो उस भाग के किसी राजवंश का व्यक्ति था। सिकन्दर की यह नीति थी कि जिस स्थान को वह जीतता उसका संरक्षण-भार पराजित शासक या उसी के समान

प्रभावशाली किसी अन्य व्यक्ति को सौंप देता था। तक्ष-शिला के महाराज तथा पुरु के साथ उसने इसी नीति का व्यवहार किया था। इसके सिवा उसके पास कोई दूसरा उपाय था भी नहीं, जिससे वह सताये गये लोगों से अपने आगे बढ़ने के कार्य में सहायता प्राप्त कर सकता। एरियन ने शशिगुप्त को अश्वकों का मण्डलेश्वर लिखा है। जान पड़ता है कि वह साहसी और सुयोग से लाभान्वित होने-वाला असाधारण व्यक्ति था। वह युद्ध में ईरानियों को सहायता प्रदान करने के निमित्त वेक्ट्रिया गया था। परन्तु जब अन्तिम युद्ध में ईरानियों के पैर उखड़ गये तब वह सिकन्दर से जा मिला, जिसने उसे सिंध नद के पश्चिमी राज्य का संरक्षक नियुक्त कर दिया। वह स्थान युद्ध-सम्बन्धी बात के लिए बहुत ही उपयुक्त था और वहीं पञ्जाब से ईरान जानेवाले मार्ग के द्वार पर आरनोस का क़िला था। इसके बाद की किसी भी घटना के सम्बन्ध में जो हिन्दूकुश और सिन्ध नद के मध्यवर्ती प्रान्त में हुई, उल्लेख करने के पूर्व हमें निम्नाङ्कित तीन व्यक्तियों का विचार करना होगा—(१) शशिगुप्त, (२) हिन्दूकुश के तट-वर्ती भाग का ईरानी सूबेदार टायरियस्पस और (३) यूनानी सेनाध्यक्ष निकेनर जिसे सिकन्दर यहाँ छोड़ गया था।

सिकन्दर ने तक्षशिला के महाराज अम्भी से मैत्री स्थापित कर ली थी, इससे सिकन्दर को आगे बढ़ने के लिए सिन्ध नद के पूर्व का मार्ग सुगम हो गया। महाराज अम्भी का ऐसा स्वदेशद्रोहात्मक कार्य करने का कारण महाराज पुरु के प्रति उसका द्वेष-भाव ही जान पड़ता है। क्योंकि सिकन्दर के भारतवर्ष में आने के पूर्व महाराज पुरु ने अपने निकटवर्ती दूसरे राज्यों पर विजय पाने की अभि-लाषा से अभिसार के महाराज से मैत्री स्थापित कर ली थी। इधर अभिसारराज्य तथा उसके पड़ोसी अश्वकों में पहले से ही मित्रता थी। इसी से महाराज अभिसार ने सिकन्दर के विरुद्ध लड़ने के लिए अश्वकों को सेना दी थी और सिन्धनद के पश्चिम से भागकर आये ए लोगों को आश्रय दिया था। यद्यपि महाराज अभिसार ने सिकन्दर के पास उपहार भेजकर उसके प्रति अपनी सद्भावना प्रकट की थी, तथापि सिकन्दर के भेजे हुए राजदूत को उसने वापस नहीं जाने दिया और भीतर ही भीतर महाराज पुरु की सहायता के लिए आयोजन करने लगा। उसकी यह दोहरी चाल सिकन्दर से छिपी नहीं रही और अभिसार-राज्य से सहायता पहुँचने के पूर्व वह महाराज अम्भी-सहित झेलम नदी के तट पर पुरु से सामना करने के लिए बड़ी तत्परता से जा डटा।

महाराज पुरु ने सिकन्दर के साथ घमासान युद्ध किया। यूनानी सेना के छक्के छूट गये। प्लूटार्च ने इस युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि पुरु-दल के आक्रमण ने यूनानी सैनिकों के उत्साह को एकदम भङ्ग कर दिया। यद्यपि पुरु-दल में केवल बीस सहस्र प्यादे और दो सहस्र अश्वारोही सैनिक थे और सिकन्दर के साथ एक लाख बीस हज़ार प्यादे और पन्द्रह हज़ार घुड़सवार थे, फिर भी पुरु पर विजय पाने में उसे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। पाठकों के मन में इस बात का सन्देह होना सम्भव है कि सिकन्दर के पास इतनी बड़ी सेना कहाँ से आई। इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ईरान का बृहत् साम्राज्य जिस पर वह विजय प्राप्त कर चुका था, उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफ़ी था।

झेलम के इस युद्ध के सम्बन्ध में किसी भारतीय का लिखा हुआ वृत्तान्त नहीं मिलता है। परन्तु यूनानी और रोमन इतिहासकारों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है उससे इतना ज़रूर मालूम होता है कि युद्ध का अन्त सिकन्दर के पक्ष में जैसा चाहिए वैसा निर्णयात्मक नहीं हुआ। कर्टियस ने लिखा है कि पुरु के हाथियों ने यूनानियों के मन में बड़ा आतङ्क उपस्थित कर दिया। उनकी कर्णकटु एवं दिल दहलानेवाली चिंघाड़ से न केवल घोड़े ही भड़के, किन्तु सैनिकों में भी हलचल मच गई। सेना की पंक्ति छिन्न-भिन्न हो गई और जो सैनिक थोड़ी देर पहले विजयी कहलाते थे वे अब भाग निकलने के लिए अपने इधर-उधर मार्ग ढूँढ़ने लगे। तब सिकन्दर ने अग्रीनिया और थ्रेसिया के सैनिकों को हाथियों से संग्राम करने के लिए आगे बढ़ाया। उन्होंने हाथियों तथा महावतों पर भालों-बर्छों की भयंकर वर्षा की और जब विरुद्ध दल में भगदड़-सी मचने लगी तब वे आक्रमण करते हुए आगे बढ़ते गये। उनमें से कतिपय सैनिकों ने उत्सुकता से पीछा करते हुए हाथियों को ऐसा कुछ घायल कर दिया कि वे उत्तेजित हो उठे और आक्रमणकारियों को लेने के देने

पड़ गये। हाथियों ने क्रोध में आकर शत्रुओं को पैरों से रौंद दिया और उन्हें इस बात से सचेत कर दिया कि हाथियों से भिड़ना हँसी-खेल नहीं है। इन सबसे अधिक भयंकर दृश्य हाथियों का सशस्त्र मनुष्यों को सूँड़ से पकड़-कर अन्तरिक्ष में घुमाते हुए महावतों के अधीन करना था। इस प्रकार युद्ध संशयात्मक रहा। कभी सिकन्दर की सेना हाथियों का पीछा करती और कभी हाथियों के आक्रमण से भयभीत होकर दूर भागती। दिन भर युद्ध का यही क्रम जारी रहा।

इसके पश्चात् की घटनाओं से भी यह स्पष्ट नहीं होता कि झेलम के युद्ध का अन्त सिकंदर के पक्ष में हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि पुरु स्वतन्त्र राजा माना गया था। अतः यह अधिक सम्भव है कि इसके बाद से पुरु ने पश्चिमी राज्यों पर विजय पाने के निमित्त सिकन्दर को अपना सहायक बनाया हो जैसा कि महाराज अम्भी ने पुरु के पराभव के लिए उसे बनाया था। बात चाहे कुछ भी हो, पर यह सच है कि इस युक्ति से पुरु अपने राज्य को व्यास नदी तक विस्तृत करने में सफलीभूत हुआ।

झेलम के युद्ध के पश्चात् तक्षशिला के महाराज अम्भी की चर्चा सुनने में नहीं आती। सम्भवतः जिन कारणों से उसने सिकन्दर से मैत्री स्थापित की थी उन्हीं कारणों से वह अब उससे अलग हो गया हो। क्योंकि इधर महाराज पुरु पहले से अधिक शक्तिशाली बन बैठा था और सिकन्दर के स्वदेश लौटते समय भी उसी स्थिति में था। अब रही बात महाराज अभिसार की। सिकन्दर ने उसे अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए कहला भेजा था और इस बात की उसे धमकी भी दी थी कि आज्ञा-उल्लंघन करने पर उसके राज्य पर चढ़ाई की जायगी। परन्तु उसने इसकी तनिक परवा नहीं की। उसकी इस निर्भीकता का कारण था, जिसका स्पष्टीकरण आगे चलकर किया जायगा।

झेलम और रावी के बीच में सिकन्दर को युद्ध नहीं करना पड़ा। चिनाव और रावी पार करने में भी उसके सामने कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि वहाँ तक महाराज पुरु का राज्य पहले से ही था। परन्तु रावी और व्यास के बीच में क्षत्रिय लोगों से भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण पहले ही बताया जा चुका है कि महाराज पुरु ने सिकन्दर के साथ मिलकर रावी और व्यास के अन्तर्गत पूर्वी राज्य पर आक्रमण किया और उसे अपने अधीन कर लिया। परन्तु जब सिकन्दर की सेना व्यास के तट पर पहुँची, सैनिकों ने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सिकन्दर के साम-दाम और अनुनय-विनय का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः विवश होकर उसे सैनिकों को लौटने की आज्ञा देनी पड़ी। इस सम्बन्ध में यूनानी और रोमन इतिहासकारों का कहना है कि सिकन्दर के सैनिक बहुत थक गये थे और स्वदेश लौटने के लिए अधीर हो रहे थे। यह कितनी लचर दलील है! जो सैनिक और सेनापति अब तक बराबर सफल होते रहे उनके इस बर्ताव के सम्बन्ध का ऐसा समाधान उपयुक्त नहीं जँचता।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सिकन्दर अपने थके-माँदे और घर की याद में परेशान सिपाहियों को उत्तर-पश्चिम की ओर के जिस रास्ते से होकर वह आया था और जहाँ उसके जीते हुए राज्य थे, उससे न ले जाकर सिन्ध और मकरान से होकर जानेवाले एक अपरिचित मार्ग से क्यों ले गया। क्योंकि वह जानता था कि पुरु के राज्य से जो दक्षिण में रावी और चिनाव के सङ्गम तक सम्भवतः फैला था, पार होते ही शत्रुओं के नाशकारी आक्रमण का सामना करना पड़ेगा। परन्तु यूनानी और रोमन इतिहास-कार अपने दैवी शक्ति-सम्पन्न महावीर की इस कमज़ोरी को छिपाने के लिए लिखते हैं कि नूतन विजय की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर वह उस भयंकर एवं दुर्गम मार्ग का पथिक बना। जिन सैनिकों ने व्यास के तट पर अपने स्वामी के विरुद्ध क्रान्ति उपस्थित कर उसे लौट चलने के लिए विवश किया था वे निश्चय ही अपने जीते हुए राज्यों में से होकर चलने के लिए भी उस पर दबाव डाल सकते थे। अपने जीते हुए राज्यों में से होकर लौटना तो उनके लिए गौरव की बात हुई होती। परन्तु उस समय हिन्दूकुश और सिन्धनद के बीच के राज्यों में जहाँ सिकन्दर के अत्याचारों ने लोगों के रक्त को खौला दिया था, जैसी तैयारी हो रही थी उसे जान-सुनकर सिकन्दर और उसके सैनिकों की हिम्मत उत्तर-पश्चिम के मार्ग से जाने की नहीं हुई और उन्हें विवश होकर सिन्ध और मकरान के वीरान मार्ग से ईरान लौटना पड़ा।

जिस समय सिकन्दर का पड़ाव रावी के समीप था, अश्वकों ने उसके विरुद्ध सिंधनद के पश्चिमी भाग में बलवा मचा दिया। प्रान्त का सूबेदार निकेनर मारा गया। कहा जाता है, एक ईरानी सूबेदार टायरियस्पस तथा तक्षशिला के यूनानी सैनिकों ने क्रान्ति का दमन किया। परन्तु यह सत्य नहीं जान पड़ता। पहली बात तो यह है कि टायरियस्पस सम्भवतः क्रान्तिकारियों का एक अंग था। तभी तो सिकन्दर ने उसके स्थान में दूसरे यूनानी सूबेदार की नियुक्ति की, जो जान पड़ता है कि अपने नूतन पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए वहाँ तक गया हो नहीं। दूसरी बात यह है कि जिन अश्वकों को वश में करने में नौ महीने तक सशक्ति प्रयत्न करके भी सिकन्दर विफल हुआ उनका इतनी आसानी से दमन किया जाना विश्वसनीय नहीं जान पड़ता।

सम्भवतः इस बलवे का आयोजन-प्रयोजन बहुत बड़ा रहा होगा। कारण कि अश्वकों को संगठित होने के लिए काफ़ी समय मिल गया था। शशिगुप्त जो समय का रुख़ देखकर कार्य करने में पटु था, बलवाइयों का नायक बना था। ध्यान रहे कि शशिगुप्त और चन्द्रगुप्त मौर्य्य अलग अलग व्यक्ति नहीं हैं। प्रबल महाराज अभिसार बलवाइयों के पक्ष में था ही। तभी तो उसने सिकन्दर की आज्ञा की अवहेलना की थी। तक्षशिला के महाराज ने भी बलवे की अभिवृद्धि में पूर्ण योग दिया होगा; क्योंकि वह पुरु के साथ सिकन्दर की मैत्री हो जाने से बहुत असन्तुष्ट था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अश्वकों को सिकन्दर के सैन्य-बल के बराबर सैनिक शक्ति-संगठन करने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ और उसमें वे पूर्णतः सफल भी हुए। झेलम के युद्ध में सिकन्दर को आर्यों के शौर्य का पूरा पूरा अनुभव प्राप्त हो ही चुका था, इस हेतु उसे अपने परिचित मार्ग से यूनान लौटने की हिम्मत नहीं हुई। वह जानता था कि अश्वकों के बृहत् सैनिक समूह से युद्ध करने में यदि किंचित् भूल हुई तो उसका सर्वनाश होना अनिवार्य है। इन सब कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिकन्दर की सेना व्यास के तट पर क्यों विचलित हुई और सिन्ध तथा मकरान के अज्ञात एवं दुर्गम मार्ग से यथाशीघ्र लौट जाने के लिए क्यों तत्पर हो गई।

इसमें सन्देह नहीं कि लौटती बार यूनानी सिपाहियों में सैनिक धर्म का सर्वथा लोप हो गया था। जब मार्ग में मल्लियों से उनका मुक़ाबिला होने को था तब एक बार फिर उन्होंने अपने स्वामी के विरुद्ध बग़ावत करने की ठानी। इस अवसर पर सिकन्दर ने कई बार अपनी जान को जोखिम में डालकर सिपाहियों को संगठित रूप में रखने का प्रबल उद्योग किया। मल्लियों के साथ के युद्ध में सिकन्दर किस प्रकार दीवार फाँदकर क़िले में दाख़िल हुआ और शत्रुओं की वार से मृत्यु-मुख में पहुँच कर भी किस तरह जीवित निकल आया आदि बातों का वर्णन 'सरस्वती' के किसी पिछले अंक में मैंने विस्तार से किया है। अतः उन्हीं बातों को यहाँ दोहराकर पाठकों का समय नष्ट करना मैं उचित नहीं समझता।

जैसा समस्त सिन्ध में यूनानियों ने पाशविक अत्याचार किया, वैसा मानव इतिहास में ढूँढ़ने से भी मिलना कठिन है। वहाँ सर्वत्र सैनिकों के प्रति घृणा का कटु भाव उग्र रूप से जाग्रत हो गया। उससे त्राण पाने के लिए केवल रक्त-पात ही आवश्यक था। पहले सिकन्दर की इच्छा जल-मार्ग से प्रस्थान करने की थी। परन्तु वर्षा के आरम्भ हो जाने से उसने अपना विचार बदल दिया और नियारचस के संरक्षण में कुछ सेना जल-मार्ग से भेज कर आप अधिकांश सैनिक सहित मकरान के मरुस्थल से होते हुए आगे बढ़ा।

बिलोचिस्तान में भी कतिपय जातियों के लोगों ने सिकन्दर के विरुद्ध सिर उठाया। उन्हें शांत करने तथा उनसे रसद पाने में उसे बड़ी कठिनाई हुई। परन्तु जब वह आगे निकल गया, उसका सूबेदार एपेलोफेनस मार डाला गया और सिकन्दर को यदा-कदा जो रसद मिल जाया करती थी वह भी बंद होगई। मकरान के मरुस्थल में सिकन्दर पर कैसी कैसी आपत्तियाँ आईं उनका दिग्दर्शन कराने के लिए स्ट्राबो के लेख का संक्षिप्त सारांश यहाँ दिया जाता है।

सिकन्दर को सिंध भर में मुसीबतें उठानी पड़ीं। उसे ऐसे वीरान मार्ग से होकर जाना पड़ा जहाँ भोज्य सामग्री का प्राप्त होना दुर्लभ था। जो कुछ रसद मिलती थी वह बड़ी दूर से लाई जाती थी और सो भी इतने थोड़े परिमाण में कि सैनिकों को प्रतिदिन भोजन मिलना कठिन हो गया। क्षुधा की यंत्रणा से सैनिकों की बड़ी दुर्दशा हुई। कितने तो कच्चे खजूर खाकर मर गये। मनुष्यों की

अपेक्षा बोझा ढोनेवाले मूक पशुओं की और भी बुरी हालत हुई। मार्ग-कष्ट एवं भोजन के अभाव से उनकी संख्या बेतरह घटती गई और उन पर लदनेवाली वस्तुएँ लावारिस माल की तरह जहाँ-तहाँ छूटती और नष्ट होती गईं।

क्षुधा के अतिरिक्त मार्तण्ड की प्रखर रश्मि, तप्त बालुका और मार्ग के उतार-चढ़ाव ने सैनिकों को और भी परेशान कर दिया। रेत में सैनिकों के पाँव इतनी गहराई तक धँसते थे कि उन्हें चलना कठिन हो गया। जलाशय बहुत दूर दूर होने के कारण उन्हें रात-रात भर चलना पड़ता था। इधर तृषा की यातना उन पर और भी ग़ज़ब ढहा रही थी। यद्यपि उनके पड़ाव कुओं से दूर रक्खे जाते थे, जिसमें प्यास की व्याकुलता से सैनिकगण अधिक जल पीकर मर न जायँ, फिर भी सैनिक प्यास से अधीर होकर ज़िरह-बख़्तर पहने हुए कुएँ में कूद ही पड़ते थे और जल पीकर वहीं मर मिटते थे। फल यह होता था कि दूसरे सैनिक जल-पान से वञ्चित रह जाते। ऐसे लोग हताश होकर खुली धूप में पड़ रहते और झुलस कर ऐंठ जाते थे। इस तरह क्षुधा, पिपासा, मार्गश्रम, धूप, सर्दी, सर्पदंश आदि अनेक कारणों से सिकन्दर के अधिकांश सैनिक अकाल में ही मृत्यु के मुख में चले गये।

नियारचस की अध्यक्षता में नावों का जो बेड़ा भेजा गया था उसकी भी कुछ कम दुर्दशा नहीं हुई। परन्तु सिकन्दर के इतिहासलेखकों ने उस बेड़े की भी यात्रा की चर्चा अधिक अंशों में अनुमान से ही लिखी है। विचारने की बात है कि जिस बेड़े की नौकायें पंजाब की नदियों में डूबने लगी थीं वे बरसात के दिनों में समुद्र की उत्तुंग लहरों के थपेड़ों को किस प्रकार सह सकी होंगी। जब नियारचस सिकन्दर के पास पहुँचा तब उसकी हालत इतनी बिगड़ चुकी थी कि वह पहचाना ही नहीं जाता था। उसका चेहरा काला पड़ गया था और उसके वस्त्रों ने चीथड़ों का रूप धारण कर लिया था।

इस प्रकार सिकन्दर का भारतवर्ष का आक्रमण समाप्त हुआ और उसके कुछ दिन बाद निराशा, शिथिलता और असंयम से जर्जर होकर युवावस्था में ही वह संसार से चल बसा।

अन्तिम समय में प्लूटार्च उससे कहलवाता है—"मैं सर्वत्र आर्यों के क्रोध एवं आक्रमण का भाजन बना। मेरे कांधे और जाँघ के घाव पूरी तरह भर भी नहीं पाये थे कि मल्लियों ने मेरी छाती को अपने तीर का और गर्दन को अपनी गदा का निशाना बनाया। इतना ही नहीं, मेरी जीवन-लीला समाप्त कर देने में उन्होंने कोई बात भी नहीं उठा रक्खी।"

अपने अन्त-समय में महान् विजयी सिकन्दर ने अपनी भारत-विजय का इसी प्रकार वर्णन किया है और इतिहास के आधुनिक खोजी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं।

गीत

लेखक, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

अर्थ ही क्या ?
दृष्टि की प्रिय तुष्टि
है यह व्यर्थ ही क्या ?

सृष्टि—पल भर मिलन की चिर-क्षीण कारा—
छिन्न होती मृत्यु ने ज्यों ही निहारा,
तिमिर में बुझती दृगों की दीन तारा,
लीन जीवन, जन्म, जन-जन—
अर्थ ही क्या ?

आह भरता है पवन असहाय वन-वन,
भीम भी उर में उदधि के व्याप्त कम्पन,
सूख जाते सुमन, है क्षय-शील यौवन,
शोक-मय सब ओक—
इसका अर्थ ही क्या !

भोटियों की शिल्प-कला

लेखक, डाक्टर शिवदर्शन पन्त

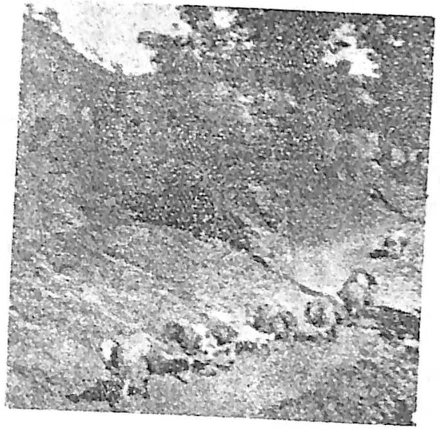
लेखक महोदय ने पश्चिमी हिमालय का अच्छा अध्ययन और भ्रमण किया है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सोशियल एकानोमी आफ़ दि हिमालयंस' की देश और विदेश के अनेक पत्रों और विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। आशा है, उनके इस लेख से पाठकों को हिमालय के एक अत्यन्त मनोरंजक और अल्पज्ञात भूभाग का रोचक परिचय प्राप्त होगा।

हिमाच्छादित दुर्गम नन्दादेवी की विशाल छाया में पले हुए श्रम और सन्तोष से जीवन व्यतीत करते हुए भोटिया लोग बिखरे हुए आबाद हैं। इनकी संख्या भी यहाँ अल्प है। अतीत काल से ये लोग भारतवर्ष तथा तिब्बत के बीच के इस ठण्डे स्थल को—जो साल के कुछ ही महीने हिम से रहित रहता है—अपना घर बनाये हुए हैं। इस भूभाग में पेड़-पौधे तथा और पैदावारें प्रायः नहीं के बराबर हैं।

भेड़ें और बकरियाँ ही भोटियों की धन-सम्पत्ति हैं। उन्हीं पर इनका अस्तित्व निर्भर है। वे इनका भार ढोते हैं, उन्हीं की ऊन से इनको वस्त्र तथा आच्छादन प्राप्त होता है और उन्हीं पर इनका समस्त शिल्प और कला निर्भर है।

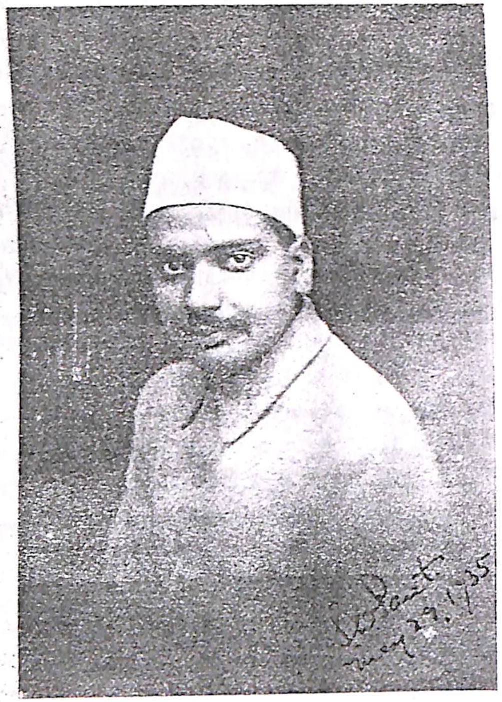
भोटिये प्रायः तीन प्रकार के ऊन का उपयोग करते हैं—(१) हिमालय के इस पार की भेड़-बकरियों का ऊन—ये भारवाही पशु उष्णतर प्रदेश में रहते हैं तथा निम्नतर भागों की सत्वहीन घास चरते हैं। इस कारण इनका ऊन मोटा, सूखा, कमज़ोर और छोटा होता है। इनसे रस्से, तम्बू, थैले और तीसरे दर्जे के वस्त्र बनाये जाते हैं। (२) 'ब्यून' का ऊन—ब्यून उन बकरियों के झुण्ड को कहते हैं जो स्टॉक बढ़ाने के उद्देश से पाली जाती हैं। इनका ऊन मध्यम श्रेणी का होता है और उसी श्रेणी की वस्तुओं के बनाने के काम आता है। (३) पशम या शाल का ऊन—हिमालय के उस पार तिब्बत के पशुओं का श्रेष्ठ होता है। ठण्डी आबहवा और उत्तम घास के कारण यह ऊन बहुत मज़बूत, महीन और लम्बा होता है। यह पशुओं के बाहरी बालों से ढँका होता है। यह सर्वोत्तम श्रेणी का है, इससे मूल्यवान् माल तैयार किया जाता है। भोटिये प्रतिवर्ष तिब्बत से इस ऊन का एक बड़ा भाग ख़रीदते हैं।

भेड़-बकरियों के बाल काटने की भोटियों की रीति बहुत सरल और साधारण है। अगर बाल छोटे-छोटे होते हैं तो वे हाथ से ही बालों को नोच-नोचकर जमा कर लेते हैं। यदि घने होते हैं तो क़ैंची या छुरा जो भी हाथ आया, उसी से काट लेते हैं। भारवाही पशुओं के बाल साल में दो बार काटे जाते हैं। एक बार ग्रीष्म में और दूसरी बार नीचे उतरने से पहले। ब्यून के बाल साल में तीन बार काटे जाते हैं। सुविधा के अनुसार मार्च, अगस्त और आक्टोबर में। शीत की अधिकता के कारण तिब्बत में वर्ष में केवल एक ही बार ये बाल काटे जाते हैं।



[उष्णतर प्रदेश के भारवाही पशु]

तिब्बत से भोटिये प्रतिवर्ष इस ऊन का बहुत बड़ा भाग ख़रीदते हैं। सन् १९२३ में कुल मिलाकर २७,०००



[डाक्टर शिवदर्शन पंत, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०]

मन ऊन ख़रीदा गया था। भोटिये लोग अपने व्यवहार के लिए इसमें से ऊन छाँट कर रख लेते हैं और उसे कात-बुन कर भाँति-भाँति के वस्त्र बनाते हैं। बाक़ी बचा हुआ ऊन कानपुर की मिलों को बेच दिया जाता है, जो इसे ३०) से लेकर ५०) मन ख़रीदती हैं।

भोटिये लोग ऊन को सबसे पहले गरम पानी में डुबोते हैं, फिर लकड़ी की छोटी-छोटी टहनियों से उसे पीटते हैं। इसके बाद उसे धोकर सुखाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न प्रकार के धागों में उसे कतुआ से कातना आरम्भ करते हैं। कातने का काम केवल हाथ से किया जाता है।

भोटिये लोग दिन भर अपना कतुआ या तकली घुमाते रहते हैं। ये यात्रा करते हों या बकरी चराते हों, तब भी कातते ही रहते हैं। दीर्घकालिक अभ्यास के कारण उन्होंने इस काम में चमत्कारिक दक्षता प्राप्त कर ली है। उन... एक आँख तकली पर और दूसरी पथ पर रहती है। ... मजाल कि कहीं सूत्र टूट जाय या ठोकर लगे! वे सदैव ... हाथ में आभूषण की तरह ऊन की लटें पहने रहते हैं ... चलते-फिरते, हँसते-बोलते, उठते-बैठते कातते रहते हैं।

उनमें दो प्रकार का ऊन काता जाता है—(१) ए... झाइ का—इसे दाहनी ओर से बाईं ओर को बटते हैं। (२) दो-झाइ का—यह एक-झाइ के दो तागों को मिला... बाईं ओर से दाहनी ओर को बटा जाता है।



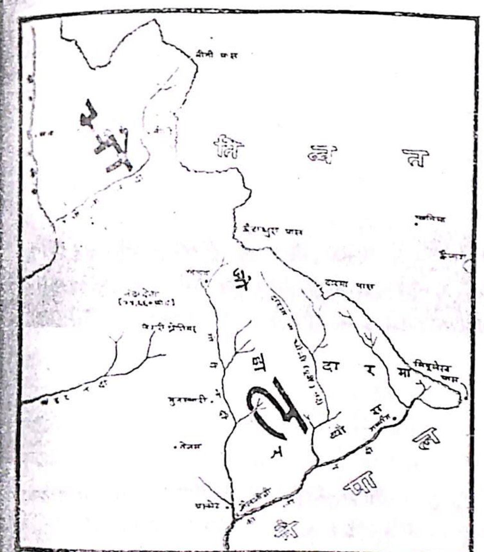
[ऊन कातता हुआ भोटिया]

अधिकतर पुरुष ही कातते हैं। एक पुरुष यदि ... कातता ही रहे तो दिन भर में आधा सेर ऊन कात ... है। परन्तु प्रायः दिन भर की कताई चार छटाँ... बालक इसका आधा कात लेते हैं। भोटियों की १३,... की आबादी में ११,५०० स्त्री-पुरुष वस्त्र बनाने ... व्यवसाय करते हैं।

बुनने का काम स्त्रियाँ करती हैं। वे अधिकतर ... ही रहती हैं। वे अपने हेमन्त-निवासों में बहुत कम ... करते हैं। उनका मुख्य पेशा कताई-बुनाई ही है। ... यह श्रम-विभाग इसके बिलकुल विपरीत है। वहाँ ... बुनाई और स्त्रियाँ कताई का काम करती हैं।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक स्त्रियाँ 'चानों' पर ... कम्बल, कपड़ा या थैले बुनती रहती हैं। वे बुनने की ... में बहुत प्रवीण हैं। यह उनके द्वितीय स्वभाव में ... हो गया है। रङ्गों और रेखाओं के रहस्यों का ज्ञान उनमें परम्परागत है। वे ऊन के विविध संस्कारों—रँगाई आदि में भी ख़ूब पटु हैं।

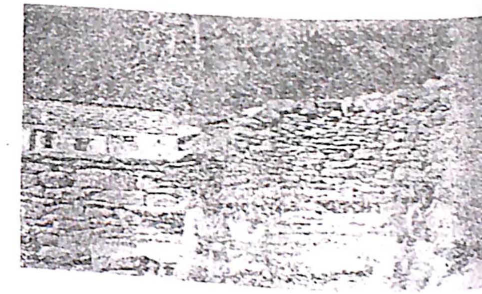
'चान' उनके करघे का नाम है। उनके इस करघे में लकड़ी के दस-बारह डण्डे, कुछ डोरा और कुछ चमड़े के फ़ीते—बस! लकड़ी बहुत हलकी उपयोग में लाई जाती है। धातु के नाम से एक चपटा लोहा होता है, जो



[भोट का नक़शा]

बुनाई को ठोंक उसे सघन बनाने के काम आता है। पूरे करघे का भार तीन या चार सेर से अधिक नहीं होता।

बुनाई सदैव खुले आँगन में धूप में की जाती है। जब धूप तेज़ होती है तब किसी कपड़े या पत्तीवाली डाल से छाया कर ली जाती है। आम तौर पर विशेष-विशेष गृह-समूहों की स्त्रियाँ किसी एक ही ख़ास आँगन में अपने चान स्थिर करती हैं। वे आपस में बातचीत करते और गाते हुए काम करना पसन्द करती हैं। दारमा और ब्याँस में तो यह सामूहिक जीवन-क्रम ख़ूब ही विकसित है। वहाँ बुनने के लिए विशेष मञ्च बनाये जाते हैं। उन्हें 'राँथ' कहते हैं।



[पुरुष बुनने नहीं पाते]

हिमालय के इस प्रान्त की महिलाओं ने बुनने के काम पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है। पुरुष बुनने नहीं पाते! जोहार-प्रान्त में तो इस स्वत्व की यहाँ तक रक्षा की गई है कि यदि कोई पुरुष वहाँ बुनता हुआ पाया जाता है तो उसे बुननेवालियों को धन या पानीय के रूप में बिना किसी विरोध-आपत्ति के दण्ड देना पड़ता है।

जीवन के आरम्भ में कन्याओं को पहली शिक्षा बुनने की ही दी जाती है। वे अपना ही बुना हुआ कपड़ा पहनना अपना बहुत बड़ा कर्त्तव्य समझती हैं। दारमा और ब्याँस की महिलायें अपने लिए बाँह-हीन 'फ़्रॉक' बनाती हैं। वे फ़्रॉक गहरे नीले या लाल ज़मीन पर सफ़ेद धारियों से युक्त होते हैं। जोहार की स्त्रियाँ 'कामिला' बनाती हैं। उसे वे सूती 'स्कर्ट' के ऊपर पहनती हैं। यह श्रेष्ठ काले तिब्बती ऊन से बनाया जाता है।

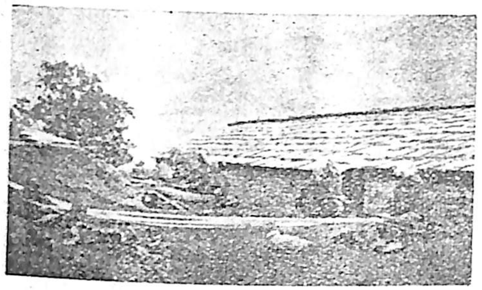


[महिलाएँ ताना पूर रही हैं]

भोटिये लोग अधिकतर ये वस्तुएँ बनाते हैं—(१) पट्टू,

(२) थुल्मे, (३) पंखियाँ, (४) चुटके, (५) दन, (६) आसन, (७) करबोजे, (८) लम और (९) छ्यूँटे।

(१) पट्टू—यह मोटे ऊन की सर्ज है। यह लगभग एक हाथ चौड़ा होता है। इस कपड़े से पुरुषों के 'बक्कू' आदि कपड़े बनते हैं। एक थान में प्रायः आठ या नौ गज़ कपड़ा होता है। तीन-चार सेर ऊन में एक थान तैयार



['चानों' पर]

होता है। मूल्य ६) से लेकर १०) तक होता है। एक दिन में दो गज़ तक बुना जाता है।

(२) थुल्मे—ऊन के मोटे कम्बलों को कहते हैं। ये काले या सफ़ेद ऊन के प्राकृतिक रङ्गों में ही होते हैं। इनका अर्ज़ भी पट्टू जितना ही होता है। तीन-चार टुकड़े सीकर एक कम्बल बना लिया जाता है। बुनने के बाद उनके छेद बंद करने को वे गरम पानी में उबाले या गरम पत्थर पर रक्खे जाते हैं। फिर उन पर कंघी की जाती है। कंघी करना बड़े कौशल का काम है। इससे थुल्मे के बाल बाहर की ओर निकाले जाते हैं। काले थुल्मे सफ़ेद से अधिक क़ीमती होते हैं। कंघी की समानता, ऊन की श्रेष्ठता और भार का विचार कर इनका मूल्य १२) से ३५) तक होता है। जोहार के भोटिये इस कला में अधिक प्रवीण हैं।

(३) पङ्खियाँ—मोटे ऊन की गरम चादरों को कहते हैं। ये शायद ही कभी रङ्गीन बनाई जाती हैं। इकहरी और दोहरी दो प्रकार की होती हैं। दो अर्ज़ की इकहरी पंखियाँ ३) से ७) तक बिकती हैं और तीन अर्ज़ की दोहरी १४) तक। ये थुल्मों से हलकी होती हैं, उतनी गरम भी नहीं। अधिकतर पर्वत-प्रदेश के मध्यम श्रेणी के लोग इनका व्यवहार करते हैं।

(४) चुटके—ऊन के मोटे बालोंवाले कम्बलों को कहते हैं, जिनके ताने में २ इञ्च तक लम्बे बाल बुन दिये जाते हैं। उनके एक तरफ़ बाल रहते हैं और दूसरी तरफ़ साफ़ और समतल रहता है। इनका मूल्य थुल्मों से हलका होता है—६) से २०) तक। इनको प्रायः दारमा और ब्याँस के भोटिये बनाते हैं।

(५) दन—छोटे-छोटे गलीचों को कहते हैं। इनका साइज़ प्रायः सिङ्गार-मेज़ के बराबर होता है। भोटिये लोग तिब्बती डिज़ाइनों का अनुकरण करते हैं, पर रेखा और रङ्गों के सामञ्जस्य में उनकी बराबरी नहीं कर पाते। पहले वे बिलकुल स्वदेशी वानस्पतिक रङ्ग बनाकर उनका उपयोग करते थे, लेकिन अब एनीलाइन रङ्गों ने उन प्राकृतिक रङ्गों का स्थान लेना आरम्भ कर दिया है। रेखाओं पर भी अन्य देशों का प्रभाव पड़ने लगा है।



[ग्वालों की गोद में 'ब्यून' के बच्चे। (इनका ऊन मध्यम श्रेणी का होता है)]

(६) आसन—प्रायः वर्गाकार होते हैं। इनकी लम्बाई दनों की आधी होती है और उन्हीं की तरह बुने जाते हैं। इन पर बैठ कर लोग सन्ध्या-पूजन करते हैं।

(७) करबोजे—ऊन के थैलों को कहते हैं। ये आपस में जुड़े हुए दो थैले होते हैं। इनको भरकर भेड़-बकरियों की पीठ पर इधर-उधर लटका देते हैं। इन्हीं में माल भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ढोया जाता है। ये कुमाऊँ में पली हुई भेड़-बकरियों के बालों से बनाये जाते हैं। बटे हुए ऊन से ख़ूब ही बारीक बुनाई की जाती है। कभी-कभी इन थैलों को सुन्दर और आकर्षक भी बनाते हैं। स्त्री-पुरुष आवश्यक चीज़ें भरकर इन्हें अपनी बाँहों में लटका लेते हैं। इस श्रेणी के करबोजों में तिब्बती ऊन का ही उपयोग होता है।



[जौलजीबी का मेला]

(८) लम—घुटनों तक के ऊनी बूटों को कहते हैं। इन्हें अक्सर दारमा और ब्याँस के स्त्री-पुरुष पहनते हैं। ये सुरुचिपूर्ण आकृतियों में अनेक रङ्गों में बनाये जाते हैं और इनमें चेक की बुनाई होती है। इनके तल्ले रस्सी या चमड़े के बनाये जाते हैं।

(९) छ्यूँटे—बहुत मामूली कम्बलों को कहते हैं। इनका व्यवहार ग़रीब लोग करते हैं। ये पङ्खियों से छोटे होते हैं। इनमें बहुत साधारण कोटि का ऊन काम में लाया जाता है।

ऊपर लिखी वस्तुओं के अतिरिक्त भोटिये लोग ऊन के कमरबन्द, टोपे, रस्सियाँ भी बनाते हैं। कभी-कभी काश्मीर-निवासियों की भाँति पश्मीने भी बुनते हैं।

यह सारा माल जौलजीबी, बागेश्वर और थल के मेलों में बिकने आता है। इन स्थानों में प्रतिवर्ष मेले लगते हैं। जौलजीबी का मेला नवम्बर में, बागेश्वर का जनवरी में और थल का अप्रेल में लगता है।

गीत

लेखक, श्रीयुत विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

क्या सुनोगे गान मेरे ?

विजन वन में मञ्जरीमय आम्रतरु-सा फल रहा था।
साध के मैं शुभ करों में चिर युगों से पल रहा था॥
किन्तु निष्ठुर राहगीरों ने मुझे जब देख पाया!
मुग्ध हो निधि ख़ूब लूटी फल लुटाया ख़ूब खाया!!
ले गई झञ्झा-निराशा, हाय! आशा वञ्चना से—
हा! बिलगते रह गये अब! अति व्यथित ये प्राण मेरे!!
क्या सुनोगे गान मेरे ?

दर्शनीया, कारुणिक, मेरी दशा हा हो रही है।
खो गई थी पूर्व आशा अब निराशा खो रही है॥
साधना अविकल, विकल हृत् की बढ़ी है, नित नई है!
वेदिका सम ईप्सितों की अन्ततः अब बन गई है!!
आह भरते, सिर झुकाये शून्य को अनिमेष लखते—
हृत् मसोसे सिसकते हैं तड़पते अरमान मेरे!!
क्या सुनोगे गान मेरे ?

स्कूलों में हिन्दी का अध्यापन

लेखक, प्रोफ़ेसर रामजीलाल, एम० ए०, 'साहित्यरत्न'

इस समय प्रान्तीय शिक्षा-प्रणालियों में भारी परिवर्तनों की सम्भावना है। ऐसी दशा में यह लेख उपयोगी सिद्ध होगा। लेखक महोदय ने इसमें जो विचार व्यक्त किये हैं वे विचार करने योग्य हैं।

देश की बदली हुई हालत को देखते हुए इस समय शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के होने की सम्भावना है। इन परिवर्तनों का थोड़ा-बहुत स्वरूप यद्यपि जनता के सामने आ रहा है, तथापि उनका पूर्ण स्वरूप अभी भविष्य में गर्भित है। जो कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि भविष्य की किसी भी शिक्षा-योजना में देशी भाषाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जायगा। इसके कई कारण हैं। सर्वप्रथम तो यह है कि विदेशी भाषा अँगरेज़ी के द्वारा न तो सारे राष्ट्र की शिक्षा-समस्या हल हो सकती है और न उन्नति के लिए प्रयत्नशील भारत विदेशी भाषा के सीखने-सिखाने में अब अधिक शक्ति और समय बर्बाद कर सकता है। अब भारतीय राष्ट्र जल्दी से जल्दी और कम से कम ख़र्च में शिक्षित हो जाना चाहता है।

भविष्य के मार्गनिर्णय में वर्तमान की आलोचना बड़ी लाभदायक है। इसी न्याय से आज यह देख लेना ज़रूरी है कि वर्तमान शिक्षाक्रम में देशी भाषाओं का क्या स्थान है, उनमें क्या क्या पढ़ाया जाता है, किस किस तरह पढ़ाया जाता है, जो कुछ पढ़ाया जाता है उससे विद्यार्थी कहाँ तक संतुष्ट हैं और वह आवश्यक है अथवा अनावश्यक। उपर्युक्त समस्याओं का उत्तर देने के लिए हमने यहाँ देशी भाषाओं में से हिन्दी को चुना है, क्योंकि अपने विस्तार तथा लोकप्रियता के कारण हिन्दी ही देशी भाषाओं में सर्व-प्रमुख है।

इस दिशा में सबसे पहले विचारने योग्य बात पुस्तकों का चुनाव है, क्योंकि इनके अन्तर्गत बहुत-से प्रश्न उठ खड़े होते हैं। पुस्तकों में भी काव्य-पुस्तकों का प्रश्न ज़्यादा ज़रूरी है। इस समय स्कूलों में जो काव्य-पुस्तकें प्रचलित हैं वे ज़्यादातर संग्रहमात्र हैं। सामान्यतः कबीर से लेकर आधुनिक कवियों तक की थोड़ी-सी कवितायें उनमें संग्रहीत मिलती हैं। फिर भी अधिकतर पुराने कवियों की कवितायें ही अधिक होती हैं। नये कवियों की कवितायें रहती तो हैं परन्तु या तो 'छुटी' हुई होती हैं या पुस्तक के अन्त में [illegible]ने समयाभाव के कारण छोड़ दी जाती हैं या 'छायावादी' कहकर टाल दी जाती हैं अथवा शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों ही उन्हें परीक्षा की दृष्टि से अनावश्यक समझ कर छोड़ देते हैं। इस तरह, वस्तुतः हाई स्कूल की कक्षाओं तक पुराने कवियों का ही अध्ययन होता है।

पुराने काव्य की अपनी कुछ विशेषतायें हैं। सर्वप्रथम बात तो यह है कि वह प्रायः सारा का सारा ब्रजभाषा या अवधी में है, दूसरे उसमें से बहुत-सा सूक्तिमय है और तीसरी बात यह है कि उच्च कलापूर्ण होते हुए भी वे अधिकांश में धार्मिक हैं। अब प्रश्न यह है कि सूर और तुलसी की कवितायें पढ़ाते समय बालकों को ब्रज एवं अवधी का व्याकरण जानने की आवश्यकता है या नहीं। पर इसका एक यह परिणाम स्पष्ट दिखाई देता है कि इन भाषाओं के व्याकरण का बोध न होने से हाई स्कूल में [illegible] हिन्दी पढ़कर भी बालक इस योग्य नहीं हो पाते कि ब्रज या अवधी की किसी सामान्य-सी कविता का अर्थ भी सरलतापूर्वक लगा सकें। इस प्रकार जहाँ तक भाषा सिखाने का उद्देश है वह तो ख़त्म हो जाता है। कबीर आदि की कविता के विषय में विद्वत्तापूर्ण वादविवादों को एक ओर रखकर बड़ी सरलता से यह कहा जा सकता है कि सदाचार की शिक्षा से पूर्ण होते हुए भी वह बालकों को रोचक नहीं लगती। हम आलोचना के क्षेत्र में आदर्श-वाद, यथार्थवाद, उपदेशवाद आदि 'वादों' की गम्भीरता-पूर्ण चर्चा करते हैं, पर स्कूल में बालक किस वस्तु को कैसे समझकर ग्रहण करते हैं, इस पर विचार नहीं किया जाता।

बालकों की रुचि के प्रश्न पर भी यहाँ कुछ कह देना आवश्यक है। इस समय शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के स्थान पर बालक को अधिकाधिक महत्त्व दिया जा रहा है। शिक्षक की रुचि को प्रधान और बालक की रुचि को गौण स्थान देने का कोई मनोवैज्ञानिक कारण नहीं है। हाँ, प्राचीन

जनता के बीच पले हुए शिक्षक का विरोध अवश्य है। हमारे देश में विचारोत्तेजक साहित्य का अध्यापन काफ़ी हो चुका है। पर अब कल्पनोत्तेजक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता है।

धार्मिक साहित्य के सम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि आज अनेक कारणों से धर्म की जड़ उखड़-सी गई है। आज सीधे धर्म की शिक्षा देना लाभदायक नहीं माना जाता। इसी लिए उस दिन कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था कि यदि धर्म की शिक्षा देनी है तो पाठशालाओं में धर्म का वातावरण उत्पन्न करो। धर्म या सदाचार ऊपर से नहीं लादा जा सकता। इस धर्म-साहित्य में जितना सूक्तिपक्ष है उसे छोड़कर कलापूर्ण पक्ष पर आवें तो पता चलेगा कि छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को कला का सौन्दर्य दिखाना न तो सरल है और न सम्भाव्य।

ठीक यही दशा गद्यभाग की है। प्रेमचन्द आदि की कहानियाँ स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में आ तो गई हैं, परन्तु स्कूल के पण्डित जी सिवा इस बात के कि उनका 'वाचन' कराकर कुछ कठिन शब्दों के अर्थ बता दें, आगे नहीं बढ़ पाते हैं। किसी भी देश में भाषा पढ़ाने का यह ढङ्ग शोचनीय समझा जा सकता है। इसमें सुधार सुझाये जा सकते हैं और हो सकते हैं। परन्तु देखना तो यह है कि देश की वर्तमान दशा में क्या हम इस बात को गवारा कर सकते हैं कि हाई स्कूल के ६ या ७ वर्ष केवल भाषाशिक्षण के ही अर्पण कर दिये जायँ।

वर्तमान शासनविधान के अनुसार हाई स्कूल-परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी को एक नागरिक के प्रायः सारे अधिकार मिल गये हैं। अधिकांश विद्यार्थी इस परीक्षा के बाद पढ़ना छोड़ देते हैं। अँगरेज़ी का अध्यापक हमें भाषाज्ञान कराकर संतुष्ट हो जाता है। भूगोल का अध्यापक हमें यह भी बताता है कि भारत से गेहूँ बाहर भेजा जाता है, पर यह बताना आवश्यक नहीं समझता कि भूखा होने पर भी भारत इतना गेहूँ क्यों भेजता है तथा वह कैसे रोका जा सकता है। ऐसी अवस्था में जीवनक्षेत्र में प्रवेश करनेवाले नागरिक को हम केवल भाषाज्ञान कराकर कैसे छोड़ दें? आज की अवस्था में तो हमें उसे कुछ और भी देना चाहिए।

स्कूलों में हिन्दी के अध्यापन में उलझन में डालनेवाला दूसरा प्रश्न व्याकरण का है। यों चाहे अँगरेज़ों के पूर्व के कुछ व्याकरण भी हिन्दी में मिल जायँ, पर उनकी विधिवत् रचना अँगरेज़ों के आने पर अँगरेज़ों के लिए और अँगरेज़ों के द्वारा हुई है। उस समय आज की तरह स्कूलों में हिन्दी नहीं पढ़ाई जाती थी। जो स्कूल खोले गये थे उनमें अँगरेज़ी को ही मुख्य स्थान दिया गया था। अनेक कारणों से जब हिन्दी ने स्कूलों में स्थान पाया तब हिन्दी के विधायकों ने अँगरेज़ी के ढङ्ग पर ही हिन्दी का पढ़ाया जाना ठीक समझा। देशी और विदेशी भाषा के पढ़ाने के ढङ्ग में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ होना चाहिए। परन्तु उस समय बेबसी की हालत थी। देश की प्रचलित भाषा को पढ़ाने का कोई ढङ्ग सामने था ही नहीं। अतः हिन्दी को अँगरेज़ी का ढङ्ग पकड़ना पड़ा और सबसे अधिक दुर्भाग्य की यह बात हुई कि विदेशियों-द्वारा विदेशियों के लिए लिखा गया व्याकरण हमें भी पढ़ना पड़ा। पर उस समय धुन तो यह थी कि जिस प्रकार अँगरेज़ी में व्याकरण पढ़ाया जाता है, उसी तरह हिन्दी में भी पढ़ाया जाय।

यदि सचमुच में देखा जाय तो किसी प्रचलित देश-भाषा का व्याकरण उतने मनोयोग-पूर्वक पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती, जितने मनोयोग से विदेशी या मृतभाषा का व्याकरण पढ़ा जाता है। यदि हिन्दी के उस काल में हिन्दी का व्याकरण संस्कृत के आधार पर तथा अँगरेज़ी की थोड़ी-सी उदार दृष्टि को लेकर लिखा जाता तो अच्छी परम्परा स्थापित हो जाती। पर वैसा नहीं किया गया। अतः आज बालकों को हिन्दी का व्याकरण पढ़ना हास्यास्पद लगता है। विशेषकर जब वे यह देखते हैं कि अँगरेज़ी का व्याकरण पढ़कर तो वे कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं और हिन्दी का व्याकरण उन्हें वहीं का वहीं रखता है। बालक आज इस बात में अपना अपमान समझता है कि उसे यह बताया जाय कि 'चाँदी' शब्द स्त्रीलिंग है और 'सोना' पुँल्लिंग। परन्तु अभाग्यवश व्याकरण के क्षेत्र में अदूरदर्शिता की परम्परा केवल यहीं आकर नहीं रुक गई। आज तो हिन्दी में अँगरेज़ी के ढंग पर 'पदव्याख्या' और 'वाक्य-विश्लेषण' तक चल पड़े हैं।

क्षण भर के लिए यह मान भी लें कि ये सब बातें आवश्यक हैं, पर विचारणीय बात यह है कि क्या इनसे

अधिक आवश्यक बातें हिन्दी के माध्यम-द्वारा बालकों तक जाने के लिए ऊँची पुकार नहीं मचा रही हैं? पर एक तो अँगरेज़ी के घटाटोप के बीच हिन्दी की पुकार यों ही नहीं सुनी जाती और जो कुछ साधन मिल भी गये हैं उनका ठीक ठीक उपयोग नहीं हो पाता।

हिन्दी के अध्यापन में सबसे आवश्यक प्रश्न लेखन-शक्ति को प्रोत्साहन देने का है। अब तक इस विषय का समुचित महत्त्व न तो समझा गया है और न समझने का प्रयत्न किया गया है। यदि हम स्कूलों की परीक्षा के विचार को ही लें तो हिन्दी की अच्छी लेखनशक्ति होने का शुभ परिणाम कई विषयों में दिखाई पड़ सकता है। इतिहास, भूगोल आदि में अच्छी सफलता प्राप्त करने का साधन तो एक बड़ी सीमा तक अच्छी हिन्दी लिख लेना ही है। फिर साधारणतः सामान्य भारतीय को बी० ए० पास कर लेने तक पर अँगरेज़ी की इतनी योग्यता नहीं हो पाती कि वह अपने विचारों को अच्छे प्रकार प्रकट कर सके। अतः हम कह सकते हैं कि मातृभाषा में लेखनशक्ति का अभ्यास न करने पर उसके पास अपने विचार व्यक्त करने का कोई साधन ही नहीं रह जाता। हमारे अशिक्षित भाई तो अभी अपनी पुकार मचा ही नहीं सकते। जो पढ़े लिखे कहलाते हैं वे भी इस शक्ति को प्राप्त नहीं कर पाते।

स्कूलों में लेखन का जो कुछ भी प्रयत्न किया जाता है उसका एकमात्र लक्ष्य परीक्षा होती है। अतः हिन्दी के अध्यापक तो बहुत कुछ बरी हो जाते हैं। जिन अध्यापकों ने प्राचीन परिपाटी से संस्कृत पढ़ी है और जो भाग्यचक्र से संस्कृत के साथ ही हिन्दी भी पढ़ाते हैं उनमें से तो बहुत-से कह सकते हैं कि उन्होंने अपने जीवन भर में कभी कोई लेख या निबन्ध नहीं लिखा। जिन लोगों ने कालेजों में हिन्दी का अध्यापन किया है उनमें से भी ९५ प्रतिशत ऐसे निकल आवेंगे जिन्होंने सिवा परीक्षा के कभी लिखने का कोई अभ्यास नहीं किया।

यदि केवल कुछ कविताओं या शब्दों के अर्थ जानने तक ही हिन्दी के अध्ययन को सीमित रखना है तो कोई भी हिन्दी का अध्यापकत्व कर सकता है। परन्तु यदि राष्ट्र को इस योग्य बनाना है कि वह जगत् को अपनी आत्मा की पुकार सुना सके तो हमें अवश्य ही स्कूलों में लेखन-शक्ति को प्रोत्साहन देना होगा।

लेखन-शक्ति को स्कूलों में कहाँ तक प्रोत्साहन [illegible] जाता है, यह समझने के बाद अब इस प्रश्न पर [illegible] विचार कर लेना चाहिए कि वास्तव में लिखाया क्या [illegible] है। 'सवेरे उठने के लाभ', 'सच बोलने के लाभ', [illegible] की आज्ञा मानना' आदि हिन्दी के अध्यापकों के [illegible] विषय रहे हैं और हैं। पर आज के बच्चों को ये [illegible] प्रिय नहीं हैं। हमें तो समय के साथ चलने की आव[illegible] कता है। जिन विषयों पर हम लिखें अथवा लिखा[illegible] उनका हमें और हमारे बच्चों को जीवन में साक्षात्कार [illegible] चाहिए। 'म्युनिसिपल शासन', 'गाँवों की सफ़ाई', [illegible] भोजन', 'हमारे पड़ोसी देश' आदि ऐसे विषय हैं, [illegible] बालकों को अधिक रोचक मालूम पड़ते हैं, यदि अध्या[illegible] इनका थोड़ा-सा विवेचन कर दें। पर शर्त यह है [illegible] अध्यापक को भी तो ऐसे विषयों से प्रेम होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि हमारी पाठशालाओं में हिन्दी की क्या अवस्था है। जब हम [illegible] को दिनोंदिन उन्नति के पथ पर अग्रसर होती हुई दे[illegible] चाहते हैं तब हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम [illegible] प्रकार प्रारम्भ से ही हिन्दी की अवस्था सुधारें। [illegible] अवस्था-सुधार के कई साधन और मार्ग हो सकते हैं।

पुस्तकों के चुनाव एवं अध्यापन के ढंग में इस [illegible] की भारी ज़रूरत है कि पुराने कवियों पर कम और आ[illegible] निक कवियों पर अधिक ज़ोर दिया जाय। कवितायें [illegible] से अधिक कल्पनोत्तेजक होनी चाहिए। स्कूल की कक्षा[illegible] में लेखक का यह व्यक्तिगत अनुभव है कि बालक [illegible] कविताओं में अधिक रस लेते हैं। पंडित अयोध्या[illegible] उपाध्याय के 'प्रियप्रवास' में से वसंत-वर्णन और [illegible] की 'बादल' नामक कविताओं को बालक सूर के [illegible] कृष्ण-वर्णन' से अधिक चाव और उमंग से पढ़ते हैं।

इसी प्रकार व्याकरण के क्षेत्र में यह पाया गया है [illegible] यदि व्याकरण के साथ ही साथ भाषाविज्ञान के [illegible] नियम भी बताये जायँ अथवा व्याकरण ही भाषाविज्ञान [illegible] रंग देकर पढ़ाया जाय तो व्याकरण अधिक रोचक हो [illegible] है और बालकों को रस भी अधिक मिलता है। उदाहरण के लिए लेखक ने अपनी कक्षाओं में भाषा की उत्पत्ति [illegible] दो-चार सिद्धान्त, संयुक्त व्यञ्जनों का विप्रकर्ष, संस्कृत [illegible] आदि 'य' या 'ज' में परिवर्तन आदि बताये हैं [illegible] [illegible]कों ने उन्हें बड़ी सरलता से ग्रहण कर लिया है। [illegible]सों के उदाहरण भी यथाशक्य हिन्दी के शब्दों-द्वारा [illegible] दिये गये हैं और बालकों को समासों का ज्ञान भी [illegible] हो गया है तथा समास का विषय उनके लिए [illegible] नहीं रह गया है।

इसी प्रकार निबन्ध-लेखन आदि के क्षेत्र में भी कुछ [illegible] किये गये हैं। 'जाड़े के फूल', 'ग्रामों की सफ़ाई', [illegible]निसिपैलिटी के कार्य' आदि विषयों पर निबन्ध लिखाये [illegible] हैं और बालकों को स्वतन्त्र अन्वेषण करना पड़ा है। [illegible] के सम्बन्ध में भी कुछ नया ढंग अपनाया गया है। [illegible] को इस बात के लिए उत्साहित किया गया है कि [illegible] बिलकुल घरेलू भाषा लिखें। उस भाषा में कुछ सामान्य [illegible]वर्तन करके यह देखा गया है कि वह सामान्यतः अच्छी [illegible] बन जाती है। इस तरह एक नहीं अनेक प्रयोग किये [illegible] हैं और उनमें सफलता ही मिली है।

परन्तु यदि इस प्रकार के प्रयोग इष्ट हैं तो उनके लिए [illegible] शिक्षा-विभाग की ओर से होनी चाहिए। क्योंकि [illegible] की कक्षाओं में जो कुछ भी करना पड़ता है वह परीक्षकों की तुष्टि के लिए और परीक्षक प्रायः विश्वविद्यालयों के अध्यापक होते हैं, जो लड़कों की कापियों को इस दृष्टिकोण से देखते हैं कि कालेज की कक्षाओं में चलने योग्य हिन्दी का ज्ञान संपादित हो गया है या नहीं। इस दृष्टि में परिवर्तन की भारी आवश्यकता है।

परन्तु सबसे भारी आवश्यकता है हिन्दी के प्रति शिक्षाविभाग का जो दृष्टिकोण रहा है वह बदल जाय। शिक्षा का विषय आज हिन्दुस्तानियों के हाथ में है। इस अवस्था में भी यदि हम हिन्दी के उद्धार की याचना न करें तो और कौन-सा उपयुक्त समय होगा। सभा एवं सोसाइटियों में हम हिन्दी-प्रेम के नारे लगा सकते हैं। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि स्कूलों में हिन्दी-अध्यापक का स्थान कहीं नीचा है। उसे वेतन कम दिया जाता है, ट्रेनिंग कालेजों में जाकर अपने ज्ञान की वृद्धि करने का अवसर नहीं, पुराने से पुराना होकर भी किसी संस्था का मुख्याध्यापक बनकर अपने विचारों को कार्यान्वित करने के साधन नहीं हैं। इस प्रकार एक नहीं, परन्तु अनेक बाधायें उसके मार्ग में हैं।

— —

गीत

लेखक, श्रीयुत विश्वम्भरनाथ

[illegible] के संसार में, प्रियतम अहो कल पास आये!
स्वप्न में प्रिय पास आये!
[illegible] थे मेरे नयन, मुझको मृदुल स्वर में बुलाया!
[illegible] में कुछ खोजती थी, थपथपा मुझको जगाया!
[illegible]र मेरे बन्द थे, प्रियतम कहाँ से पास आये?
स्वप्न में प्रिय पास आये!
[illegible] रोम सिहर उठा, प्रिय के मृदुल संस्पर्श से री!
प्राण पुलकित हो उठे, उन्माद से औ हर्ष से री!
सद्यस्नाता चाँदनी-सा, ओंठ पर वे हास लाये!
स्वप्न में प्रिय पास आये!
मिलन की मंगल घड़ी थी, क्या कहूँ प्रिय से न जाने?
पूछती थी वेदना, क्यों कर रही इतने बहाने?
खो गये निश्वास मेरे, प्रिय अतुल उल्लास लाये!
स्वप्न में प्रिय पास आये!

विजया

लेखक, श्रीयुत शङ्करलाल शर्मा 'विजय'

"बेटी विजया !" जब मलिना टहलने जा रही थी तब सड़क के किनारे की एक छोटी झोपड़ी से करुण स्वर से पूर्ण यह अस्फुट पुकार उसके कानों में पड़ी। शरद् की दशमी का चन्द्रमा उस समय अपनी चाँदनी से पृथ्वी की सारी वस्तुओं को उज्ज्वल कर रहा था।

मलिना एक धनिक की लाड़ली बेटी थी। विदेश में पढ़ती थी, पूजा की छुट्टियों में घर आई थी। जब से वह आई है, अपने महल्ले के एक कोने की उस छोटी-सी टूटी-फूटी झोपड़ी के प्रति उसके मन में एक अव्यक्त ममता ने घर कर लिया है। जब से उसने यह झोपड़ी देखी है, उसका मन प्रायः उसी में लगा रहता है। ऐसी दशा में जब उसने करुण स्वर से भरी हुई उक्त अस्फुट पुकार सुनी, उसके मन में तरह तरह के प्रश्न उठने लगे। एक भिखारिन और उसकी बेटी विजया उस टूटी-फूटी झोपड़ी में रहती है। विजया में न जाने क्या मोहनी शक्ति है कि उसने मलिना को मोह लिया है। मलिना मन ही मन सोचने लगी—"अहा ! यह भिखारिन की बेटी कैसी सुखी और सुन्दर है ! मा-बेटी भिक्षा का पात्र लेकर घर घर फिरती हैं और जो कुछ भी मिलता है उसी से सन्तुष्ट रहती हैं। अहा ! ये सुखी हैं !"

दशहरे की छुट्टी में मलिना घर के काम-काज में ही व्यस्त रही। घर में पूजा होती थी। मलिना मातृहीना थी और वही घर की प्रथम सन्तान भी, अतएव घर के सारे काम-काज का दायित्व उसी पर था। वह बहुत ही बुद्धिमती लड़की थी।

विजया-दशमी के दिन प्रतिमा-विसर्जन करके मलिना उस झोपड़ी के पास से होकर लौट रही थी। ऐसे समय झोपड़ी से उक्त अस्फुट करुणपूर्ण पुकार सुनकर वह ठिठक गई। सहसा उसके मन में एक आशङ्का उत्पन्न हुई, जैसे वहाँ कुछ अमंगल घटित हुआ है। उसके साथ उसका भाई माखन और बहन प्रीति भी थे। उन्होंने कहा—सुना है, आज दो दिन से विजया को ज्वर है। हमने भिखारिन और उसकी बेटी विजया को बाहर निकलते नहीं देखा। यह सुनकर मलिना का चेहरा पीला पड़ गया। "केवल मा-बेटी दो प्राणी हैं, जिनका आधार भिक्षा-मात्र है और ऐसी अवस्था में विजया ज्वरग्रस्त है। इन दोनों प्राणियों की क्या दशा होगी"—यही सब सोचकर मलिना के गालों पर दो बूँद आँसू लुड़क पड़े। उसकी आँखों में आँसू देखकर माखन और प्रीति स्तम्भित-से हो गये। उन्होंने पूछा—क्या हुआ बहन ? मलिना ने कहा—विजया को एक बार देखे बिना मैं घर नहीं जाऊँगी। मालूम होता है कि उसकी दशा शोचनीय हो गई है। तुम दोनों घर जाओ। मैं अभी झोपड़ी के भीतर जाकर देख आती हूँ। बड़ी बहन की बात सुनकर प्रीति ने घबराहट की आवाज़ में कहा—बहन, यह भिखारिन घर से निकाली हुई है। महल्ले का कोई भी इसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखता। कहते हैं, यह पापिष्ठा है। ऐसे के घर तुम्हें नहीं जाना चाहिए। यह कहकर माखन और प्रीति दोनों अपने मुँह फुला लिये और मलिना को वहीं छोड़कर बड़बड़ाते हुए पिता जी से यह बात कहने को चले गये।

(२)

मलिना ने सोचा—आज यह बेचारी भिखारिन कैसी असहाय अवस्था में पड़ी है। वह और खड़ी नहीं रह सकी। वह धीरे-धीरे उस झोपड़ी के निकट गई और दरवाज़े से झाँकते हुए काँपती हुई आवाज़ में बोली—विजया बहन !

भीतर से केवल एक दीर्घ निःश्वास का आभास मिला। मलिना की बोली सुनकर भिखारिन डर गई। किसी अमङ्गल की सूचना समझकर उसने भीतर से उत्तर दिया—कौन है, जो इस असमय में यहाँ आया है ? भला चाहो तो यहाँ से चले जाओ ! मलिना काँप उठी; पर अपने आपको सँभालकर और दरवाज़े पर आघात कर बोली—... बहन ! मैं तुम जैसी ही एक नारी हूँ और तुम्हें देखने आई हूँ। धीरे-धीरे द्वार खोलकर उसने भीतर प्रवेश किया।

मलिना को अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी में देखकर भिखारिन अवाक् रह गई। यह सत्य है या स्वप्न देख रही है, यह वह सोचने लगी। जिसकी छाया पड़नें से लोग स्नान करके शुद्ध होते हैं ऐसे आदमी के घर मलिना ने स्वेच्छा से अपनी पद-धूलि गिराई है, क्या यह सत्य है ? मलिना जैसी शिक्षिता लड़की के आगमन से झोपड़ी के दोनों प्राणी गद्गद हो गये। रोगिणी विजया ने कातर दृष्टि से देखकर केवल यही कहा—तुम्हारे आगमन से मैं अपनी अन्तिम अवस्था में भी अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रही हूँ। कृतज्ञता-स्वरूप मलिना की आँखों से दो बूँद आँसू निकल पड़े। मा भी गद्गद होकर बोली—बेटी, तुम देवी हो ! तुम इस कपटी संसार की नहीं हो।

एक जीर्ण शय्या पर विजया पड़ी थी। पास ही मिट्टी का दीपक टिम टिम कर जल रहा था। टूटे हुए छप्पर से शारदीय चन्द्रमा की चाँदनी आकर झोपड़ी को प्रकाशपूर्ण कर रही थी। रोगिणी के पीले चेहरे पर भी उसकी किरणें पड़ रही थीं, वह मानो उसके रुग्ण शरीर पर हाथ फेर रही थी और उसे सान्त्वना दे रही थी। कैसा करुण दृश्य था ! मलिना की आँखों के सामने कभी ऐसा दृश्य नहीं आया था। आज सहसा ऐसा दृश्य देखकर उसका कोमल हृदय पिघल उठा। धीरे धीरे जाकर वह विजया के सिरहाने बैठ गई। रोगिणी के कपाल पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—बहन, कैसी हो ?

उस ज़मींदार-कन्या के 'बहन' सम्बोधन से ज़रा भी संकोच न कर उसने अपने स्वाभाविक भाव से टूटी फूटी बोली में उत्तर दिया—मेरे भले-बुरे की विशेष क्या चिन्ता है ? मेरे मंगल-अमंगल की बात तो कोई भी पूछने नहीं आता। आज मेरी यह शय्या चिर 'शान्ति की शय्या' हो, यही कामना कर रही हूँ।

रोगिणी की ऐसी करुणापूर्ण उक्ति सुनकर मलिना धैर्य नहीं धर सकी; उसकी आँखें छलछला आईं। उसने अपने मन में कहा, हाय ! यह असहाय बालिका भी ... रूप से समझती है कि इस संसार में उनके लिए कोई नहीं है, विधाता की ऐसी लिखन्त पर कुछ अर्थहीन युक्तियाँ लेकर ही वह केवल प्रलाप कर रही है, मानो चारों ओर से निराशा ही निराशा के बादलों ने उसे आ घेरा हो।

मलिना ने आवेश में आकर उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। धीरे धीरे हाथ फेरती हुई बोली—ऐसी निराशा की बात न करो। मैं सर्वस्व समर्पण करके तुम्हें नीरोग करने की चेष्टा करूँगी। तुम इस विषय में कुछ भी चिन्ता न करो। दरिद्र-सेवा का सुअवसर पाकर मलिना का हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

रोगिणी ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर एक अर्थहीन कातर दृष्टि मलिना पर डाली। उसने कहा—मुझ जैसी हतभागिनी के लिए आपको इस तरह दुःख करना उचित नहीं है। फिर मेरा अब यह अन्त-समय है। हाँ, मेरी मा अकेली हो जायगी। इसका उन्हें बेशक दुख है।

मलिना ने भिखारिनी पर एक प्रश्नभरी दृष्टि डाली। कुछ क्षणों तक भिखारिनी निस्तब्ध रही, परन्तु सहसा वह उत्तेजित स्वर में बोली—अवश्य मैं यही कामना कर रही हूँ बेटी ! मैं पिशाचिनी हूँ, जो अपनी सन्तान की मृत्यु चाह रही हूँ। परन्तु तू जीवित रहकर इस रसातल से उद्धार नहीं पा सकेगी। मेरी ही तरह तुझे घृणित जीवन बिताना पड़ेगा और उस समय उस पाप की भागिनी भी मैं ही होऊँगी, जो सौ जन्मों तक उस पाप से उद्धार नहीं पा सकूँगी। मैं आज पिशाचिनी हूँ, किन्तु बेटी, यह भी जान रख कि इस सभ्य संसार में ऐसे बहुत हैं जो अपनी परिणीता पत्नी और पुत्री को पथ की भिखारिन बनाकर खुद नई पत्नी और उसकी पुत्र-कन्या और धन-जन के साथ आनन्दपूर्वक कालयापन कर रहे हैं। क्या वे लोग दयालु हैं ? आज मैं अपनी सन्तान के लिए दूसरे जन्म की मंगलकामना करके उसकी मृत्यु की कामना कर रही हूँ, इसलिए मैं पिशाचिनी नहीं हूँ ! आजन्म भिखारिनी की कन्या रहकर जीवन व्यतीत करने और अपने धर्म की रक्षा के लिए पद पद पर लांछन सहन करने से क्या मृत्यु श्रेष्ठ नहीं है बेटी ?

(३)

भिखारिनी की उत्तेजनापूर्ण बातें सुनकर मलिना चकित हो गई। उसने सोचा—इस भिखारिनी के जीवन में अवश्य बहुत-से गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। नहीं तो ऐसा

अस्वाभाविक परिवर्तन अचानक क्यों होता ? मलिना के हृदय में तुमुल चिन्ता की लहरें उठने लगीं। उसने देखा कि भिखारिनी अपनी एकमात्र सन्तान विजया की सद्गति के लिए परमेश्वर के चरणों में विनती कर रही है कि उसकी बेटी को वह शीघ्रातिशीघ्र उठा ले। यह भिखारिन कोई भी क्यों न हो, मलिना के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। सेवा-भाव दिखाते हुए उसने कहा—मा, मुझे क्षमा करना ! तुम्हारी जैसी आत्मत्यागिनी जननी अब भी हैं; इस मरुसदृश संसार में आज भी प्रेम, स्नेह तथा ममता मौजूद है। कहो मा, विजया किसकी कन्या है। मैं शपथ खाकर कहती हूँ, किसी से न कहूँगी।

भिखारिन चौंक उठी। उसकी आँखों के सामने उसका सारा अतीत मूर्त्तिमान् हो गया। उसकी वे दो दिन की आशायें—एक स्वप्न-संसार—धन-जन सभी कुछ प्रकट-सा हो गया। और आज ?—आज तो वह गम्भीर रसातल में पड़ी हुई है। बहुत देर के बाद कुछ धैर्य धर सकने पर उसने कहा—बेटी, तुम मलिना हो, धनी की लड़की हो। अधिक कहने की शक्ति नहीं है। सुनो, यह विजया तुम्हारी सहोदरा भगिनी है; और मैं—मैं तुम्हारी प्रथमा मा हूँ। यह कहकर भिखारिन अचेत-सी हो गई।

मलिना पत्थर की मूर्ति की नाईं निश्चल खड़ी रही, मानो अपने आपको भूल गई हो। परन्तु विजया के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही वह चमक उठी। यह क्या ? विजया की दाहनी आँख के नीचे एक तिल है और ठीक उसी जगह मलिना के पिता के भी ! एक ही क्षण में उसके मन का सारा सन्देह दूर हो गया। भिखारिन के पैरों पर गिरकर वह बोली—मा—मा ! इन दोषों को क्षमा करो ! मैं नहीं जानती थी कि तुम मेरी मा हो—महिमामयी देवी !

कुछ होश में आने पर भिखारिन फिर कहने लगी—नहीं बेटी ! मैं देवी नहीं हूँ। नारी नहीं हूँ।—मैं पिशाचिनी हूँ। नहीं तो—। कहते कहते वह फिर बेहोश हो गई। मलिना उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गई। न जाने किस लज्जा और दुःख से वह गड़ी-सी जा रही थी। इतने में रोगिनी ने पानी माँगा—बहन ! ज़रा-सा पानी। मलिना ने विजया को पानी पिलाया और फिर भिखारिन के पास आकर उसे सचेत किया।

क्षीण-स्वर में विजया ने मा से पूछा—मा, [illegible] विजया दशमी नहीं है ?

"हाँ बेटी, आज विजया-दशमी ही है ! ए[illegible] बेटी, तूने भी राजप्रासाद तुल्य ज़मींदार के भवन में [illegible] विजया-दशमी की रात्रि में जन्म ग्रहण किया था—[illegible] आज बेटी, विजया-दशमी को ही इस भिखारिन [illegible] टूटी-फूटी झोपड़ी में छटपटा कर अनन्तधाम का ध्यान [illegible] रही हो। हाय बेटी, यही अदृष्ट का परिणाम है !"

"मा, इसका मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। मैं [illegible] सुख के साथ जा रही हूँ। मा, बताओ तो मेरा नाम [illegible] रक्खा था। कैसा सुन्दर जँचता है ?"

"मेरी बेटी, यह सुन्दर नाम उन्होंने ही रक्खा [illegible] जिन्होंने उसकी सार्थकता समझी थी।"

मलिना ने पूछा—अच्छा, किसने रक्खा था मा !

"उन्होंने, तुम्हारे पि—ता—जी—ने—।"

उस समय मध्यरात्रि सारी पृथ्वी को निस्तब्ध [illegible] रही थी।

(४)

इतने में बाहर से पदध्वनि की आहट आई और दे[illegible] देखते एक और एक से तीन प्राणियों ने भीतर [illegible] किया। प्रथम आगन्तुक को देखकर भिखारिन [illegible] उठी। मलिना ने देखा, उसके पिता जी स्वयं उपस्थि[illegible] और उनके साथ माखन तथा प्रीति भी। उन्होंने [illegible] आकर मलिना के विषय में पिता जी को ख़बर दी [illegible] और तीनों मलिना को ढूँढ़ते ढूँढ़ते वहाँ आये।

धीरे से मलिना ने पिता से पूछा—पिता जी, [illegible] भिखारिनी हमारी क्या लगती है ?

ज़मींदार के अन्तस्थल पर मानो किसी ने घोर [illegible] किया। वे निश्चलभाव से खड़े हो सोचने लगे। वे [illegible] दार थे; कोई भिखारिन उनकी चहार-दीवारी के पास [illegible] फटकने नहीं पाती थी। परन्तु आज किसी अज्ञात ममता [illegible] वशीभूत होकर वे भिखारिन कन्या की बाहें पक[illegible] उसके चेहरे पर हाथ फेरते फेरते टूटी हुई आवाज़ में [illegible] लगे—विजया, मेरे असंख्य अपराधों को क्षमा [illegible] बेटी ! और मलिना, यह विजया तुम्हारी सहोदरा [illegible] भगिनी है और यह देखो—यह तुम्हारी प्रथमा मा है [illegible]

(५)

इस अपूर्व क्षण में विजया के पीले चेहरे पर एक अभूतपूर्व आनन्द की रेखा की झलक झलक उठी। हर्ष-दुख के बीच अति कष्ट से वह बोली—पिता जी, ईश्वर की इच्छा पर मनुष्य का कुछ भी अधिकार नहीं है। आज मेरा परम सौभाग्य है कि मैं अपने माता-पिता और भाई-बहनों के स्नेह-सम्भाषण के बीच सुख से चिरनिद्रा में सो रहूँगी—मा—मा !

विजया की आँखें पलट गईं। उसने अनन्तधाम की यात्रा कर दी।

शव की छाती पर अपने आँचल से मुँह ढँककर मलिना फूट फूट कर रोने लगी।

विजया की मा के एक दीर्घ निश्वास ने चारों ओर की हवा के साथ मिलकर झोपड़ी को और भी गम्भीर कर दिया।

विजया-दशमी का चन्द्रमा भी उस समय चाँदनी छिड़कना भूल गया।*

---

* शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले लेखक की आगामी कहानियों के संग्रह की एक कहानी का हिन्दी-रूपान्तर।

आशा

लेखक, श्रीयुत हरशरण शर्मा

जीवन में आशा प्रतिपल है।

उसकी रश्मि-राजि से संतत, मानव का उर है आलोकित।
अखिल-विश्व के प्राणों में है आशा का कोमल स्वर मुखरित ॥
जर्जर है वसुधा की तरणी, इसमें हैं असंख्य जग-प्राणी।
पार हो रहे दुख-सागर से, कहकर अपनी करुण-कहानी ॥
उनके आँसू की सरसी में, हँसता आशा-अरुण-कमल है।

भू पर स्वर्ग रचा करती है, शिल्पी-सी मानव की आशा।
कठिन-शोक-संतप्त हृदय पर, लिखती जीवन की परिभाषा ॥
क्षण में मन को पुष्पित करती, भर देती स्वासों में परिमल।
दुर्गम भय-प्रद जीवन-पथ में साहस का देती है संबल ॥
उसकी अनुपम कनक-किरण से रँगती कला धवल अंचल है ॥

ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ाँ

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

"अब तो सेगाँव में गांधी जी और 'सरहदी गांधी' दोनों ही रह रहे हैं; फिर देश का ख़याल सेगाँव की ओर होना क़ुदरती ही है"—एक दिन मैंने ख़ान साहब से हँसी में कहा। पिछले साल जेल से छूटने पर वे महात्मा जी के साथ ही कई महीने तक सेगाँव में रहे थे। मैं भी गांधी जी के आज्ञानुसार हर रविवार को सेगाँव जाता था, इसलिए मुझे ख़ान साहब के सम्पर्क में आने और उनसे बातचीत करने का मौक़ा मिला।

ख़ाँ साहब मेरी बात सुनकर ज़रा मुस्कराये; फिर गम्भीर होकर बोले—

"भाई, गांधी तो एक ही है; 'सरहदी गांधी' कोई नहीं। मैं तो मुल्क का एक मामूली ख़िदमतगार हूँ; चाहे ख़ुदा का ख़िदमतगार समझो।"

ख़ान साहब के इन शब्दों में उनके सारे चरित्र और जीवन का सार भरा हुआ है। उनकी भाषा कभी दिखावटी नहीं होती, और जैसे जैसे मेरा सम्पर्क उनसे बढ़ा, मैंने उनके उन शब्दों को अक्षरशः सत्य पाया।

× × ×

जिस दिन ख़ान साहब जेल से छूट कर वर्धा आनेवाले थे उस दिन मैं भी स्टेशन पर गया था, क्योंकि पहले मैंने उनको कभी नहीं देखा था। स्टेशन पर काफ़ी भीड़ थी, लेकिन जब ट्रेन आई तब ख़ान साहब नहीं दिखलाई दिये। वे एक तीसरे दर्जे में सोये हुए थे। जब गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो गई तब वे उठे और जल्दी से अपना बिछाने का मोटा चादर घरी करके डिब्बे के बाहर निकल आये। हम लोग उनका सामान निकालने के लिए डिब्बे के अन्दर गये, लेकिन एक छोटी-सी गठरी के सिवा कुछ न पाया। ख़ान साहब ने जब भीड़ देखी तब ज़रा सकुचाये, किन्तु सेठ जमनालाल जी को देखकर उनकी ओर तेज़ी से बढ़े और उनको ज़ोर से गले लगा लिया। यह दृश्य देखने ही लायक़ था।

ख़ान साहब बहुत मोटी खादी का पायजामा और कुर्ता पहने हुए थे। सिर पर कुछ न था और पैर में मोटे चमड़े की एक पुरानी चप्पल थी। बहुत दिन जेल में कष्ट उठाने



[ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ाँ]

के कारण उनका चेहरा पीला-सा पड़ गया था। ख़ाँ सा… और जमनालाल जी साथ साथ चले और सारी भीड़ … पीछे धीरे-धीरे चली। स्टेशन से बाहर निकलकर … नेता मोटर में रवाना हो गये।

ख़ान साहब की मेरे लिए यह पहली झाँकी … कितनी सरल, सुन्दर और हृदयस्पर्शी थी, यह तो मैं … जानता हूँ।

मुहम्मदज़ई जाति के ख़ान-परिवार में इनका जन्म … १८९० में हुआ। इनके पिता ख़ान साहब बेहराम … उतमानज़ई गाँव के ख़ान (सरदार) थे। उतमानज़ई … वर-ज़िले की चरसद्दा तहसील में है और स्वात नदी … किनारे यह एक बहुत रमणीक स्थान है। ख़ान साहब … बड़े भाई डाक्टर ख़ान साहब (जो सरहदी प्रांत के … प्रधान मंत्री हैं) तो पंजाब-विश्वविद्यालय की मेट्रिक … पास कर और एक साल बम्बई के ग्रांट मेडिकल … में अभ्यास कर अपनी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करने … लिए इँग्लेंड गये थे। लेकिन ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार …

कई कारणों से अधिक अध्ययन न हो सका। वे … पड़े। बाद में कुछ समय अलीगढ़ में रहकर … अभ्यास किया। ख़ाँ साहब का स्वभाव शुरू से ही … सरल और सेवापरायण था। वे एक उच्च और धनी … के होते हुए भी बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। … के बाद हिन्दुस्तानियों की सेवा के फल-स्वरूप जब … बिल आया, तब वे निःसंकोच उसके ख़िलाफ़ महात्मा … के आन्दोलन में कूद पड़े। ख़ान साहब १९२० की नागपुर … कांग्रेस में शरीक हुए और ख़िलाफ़त-आन्दोलन में … प्रमुख भाग लिया। नागपुर-कांग्रेस से लौटकर उन्होंने … त्मक कार्य की नींव डाली और अपने गाँव उतमानज़ई … एक राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किया, जिसकी प्रान्त … शाखायें खोलने की योजना थी। उन्होंने १९२१ … सत्याग्रह-आन्दोलन में यही रचनात्मक कार्य किया … उसके लिए उन्हें कड़ी सज़ा भोगनी पड़ी। लेकिन … ज्यों ज्यों कठोर होती गई, त्यों त्यों उनकी राष्ट्रीय … प्रज्वल्यमान हुई। हिन्दू और सिक्ख मित्रों से … सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्होंने जेल में ही … और ग्रन्थसाहब का अध्ययन शुरू किया। शुरू में … उनको कठिन मालूम हुई; बाद में अंडमन से आने … पंडित जगतराम ने सन् १९३० में उन्हें गीता पढ़ाई … इसी समय से उनका नाम 'सरहदी गांधी' पड़ा। … १९२४ से १९२९ तक हिन्दू-मुसलमानों की तनातनी … समय में भी वे संकीर्ण साम्प्रदायिक फंदों में नहीं … उनकी हमेशा यही धारणा रही कि यक़ीन और … ही इस्लाम है।

उतमानज़ई में राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना के बाद … से अनेक कार्यकर्ता तैयार हुए। कुछ वर्षों के बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों के नाम से जो विस्तृत संगठन हुआ उसका … श्रेय इन्हीं कार्यकर्ताओं को था। इन कार्यकर्ताओं … 'लालकुर्ती दल' का नाम जान-बूझ कर बदनाम करने … दिया गया। वास्तव में इन लोगों का एक स्वयंसेवक दल बनाया गया था, जिसका उद्देश शुरू में केवल समाज-सेवा और संगठन ही था। इस दल ने कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने का निश्चय तो सन् १९२९ … किया। इस दल में शामिल होनेवाले सदस्यों को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि—



[गांधी और सीमान्त गांधी]

(१) ईश्वर, जाति और मातृ-भूमि के प्रति मैं वफ़ादार रहूँगा।

(२) हमेशा और हर समय अहिंसक रहूँगा।

(३) किसी ख़िदमत के बदले पुरस्कार की कोई आशा न रक्खूँगा।

(४) निर्भय होकर किसी भी क़ुर्बानी के लिए तैयार रहूँगा।

(५) शुद्ध जीवन बिताऊँगा।

अप्रैल १९३० में ५०० से अधिक ख़ुदाई ख़िदमतगार नहीं थे; किन्तु ख़ान साहब की गिरफ़्तारी से आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला। गोली और लाठी के कांडों के बाद यह संस्था अधिक लोकप्रिय बनती गई। हिंसा का दोषारोपण करके सरकार ने इस आन्दोलन को दबाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन ख़ुदाई ख़िदमतगारों की संख्या बढ़ती ही गई और उनके द्वारा सारे प्रान्त में अपूर्व जाग्रति हो गई।

ख़ान साहब के जीवन की एक अत्यन्त मार्मिक घटना मुझे उनके एक पुत्र-द्वारा मालूम हुई। जब ख़ान साहब हज के लिए गये थे तब वहाँ ठोकर खाकर गिर पड़ने से उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इससे ख़ान साहब को बहुत धक्का पहुँचा और वे जीवन से निराश हो गये। अपने भविष्य के सम्बन्ध में बहुत सोचा, किन्तु कोई रास्ता साफ़ नज़र न आया। अन्त में एक रात को जब वे सोये तब निश्चय किया कि जो स्वप्न उनको दीखेगा उसी के मुताबिक़ वे अपनी ज़िन्दगी बसर करेंगे। उसी रात को नींद में उन्होंने आवाज़ सुनी 'इनक़िलाब आ रहा है! उठो'! ख़ान साहब ने उसी समय अपने देश में लौट जाने का निश्चय किया और अपनी पूरी शक्ति समाज के संगठन और जन-सेवा में लगाने का व्रत ले लिया।

ख़ान साहब शुरू से सेवा-वृत्ति के तो थे ही। इस 'इनक़िलाब' की आवाज़ को उन्होंने ख़ुदा का पैग़ाम समझा और 'ख़ुदाई ख़िदमतगार' बन गये। इसी लिए वे अपने को हमेशा देश की जनता-रूपी ख़ुदा का सेवक समझते हैं—कभी नेता के रूप में अपने को नहीं रखना चाहते। उनके जीवन की उत्कट धार्मिकता किसी से छिपी नहीं रह सकती। यद्यपि वे कट्टर मुसलमान नहीं हैं, तो भी इस्लाम के नमाज़ इत्यादि सब नियमों की बराबर पाबन्दी करते हैं। उनका जीवन प्रार्थनामय है और उनकी रग रग में सेवा-भाव और प्रेम भरा हुआ है।

× × ×

एक दिन सेगाँव में देश की सामाजिक परिस्थिति पर बातें होने लगीं। मैंने कहा छुआछूत का प्रश्न तो हमारे गाँववालों के लिए बहुत कठिन है। बापू जी के होते हुए भी सेगाँव के लोगों में कोई अन्तर नहीं हुआ है। वे छुआछूत हटाने की बात ही नहीं सुनना चाहते।

"मैं तो महात्मा जी से कहता हूँ कि छुआछूत का सवाल इस तरह शान्ति से हल नहीं होनेवाला है। हमारे लोगों में और भी बहुत-सी बुराइयाँ हैं; समाज अन्दर तक बीमारी से सड़ गया है। यह बीमारी इस तरह शान्ति से दूर नहीं होनेवाली है। जब तक एक दफ़ा सामाजिक बलवा या बाढ़ नहीं पैदा होगी और सारे कचरे को जला या बहाकर ख़त्म नहीं कर देगी तब तक यह बीमारी दूर नहीं होनेवाली है।"

ख़ान साहब अहिंसा में विश्वास रखते हैं, [illegible] अहिंसात्मक क्रान्ति चाहते हैं। शान्तिपूर्वक और [illegible] सामाजिक कुरीतियों को हटाने का काम उनको पसन्द [illegible] है। आख़िर वे पठान हैं न! सेगाँव में उनकी त[illegible] नहीं लगती थी। अपने प्रान्त में जाकर गाँवों में [illegible] करने को उनका हृदय तड़पता रहता था। जब सरकार [illegible] उनको अपने प्रान्त में जाने की परवानगी दे दी तब [illegible] तुरन्त अपने कार्य में लग गये।

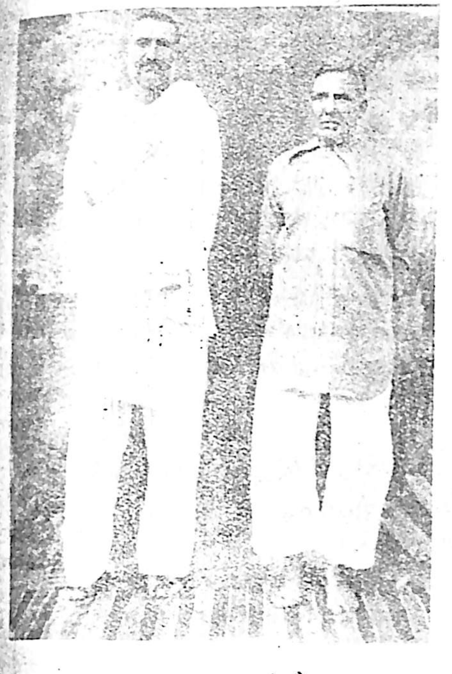
× × ×

दूसरी बार राजनैतिक चर्चा चल पड़ी। ख़ान साहब [illegible] कहा—जानते हो कि सरकार मुझसे इतना क्यों [illegible] है? इसलिए नहीं कि मैं पठान हूँ और तुम्हारे [illegible] नेताओं से डील-डौल में बड़ा हूँ, लेकिन इसलिए कि [illegible] काम गाँवों में होता है, शहरों में नहीं।

"तो आपके प्रान्त में शहरों में कुछ राजनैतिक [illegible] ही नहीं होता?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जितना तुम्हारे दूसरे प्रान्तों में गाँवों में काम हो[illegible] है, उतना ही हमारे सूबे के शहरों में—वह 'नहीं' के [illegible] समझो। यहाँ तो शोरग़ुल मचानेवाले चन्द नेता हैं जो शहरों में बड़े बड़े लेक्चर देते हैं और अख़बारों [illegible] लेख लिखते हैं। इस अख़बारी हलचल का गाँवों में [illegible] पता भी नहीं लगता। लेकिन हमारे सूबे में राजनैतिक [illegible] गाँवों से ही—मुल्क के दिल से—शुरू हुआ है। [illegible] दिल का ख़ून साफ़ हो जायगा तब सारा शरीर भी [illegible] ही तन्दुरुस्त हो सकेगा। इसी लिए तो सरकार हम [illegible] ख़ुदाई ख़िदमतगारों से इतना डरती है। वह जानती [illegible] कि हम लोग ऊपरी शोरग़ुल मचानेवाले नहीं हैं।"

थोड़ी देर चुप रहकर ख़ान साहब फिर कहने लगे—"हमारे नेता लोग आज़ादी की तलाश में इधर-उधर मारे [illegible] हैं। कभी विलायत में जाकर अपनी माँग पेश करते [illegible] कभी अपनी कठिनाइयों का हाल दुनिया के दूसरे मुल्कों [illegible] कहते हैं और समझते हैं कि इस तरह का प्रोपेगेण्डा कर[illegible] से अँगरेज़ लोग डरकर हमको स्वराज्य दे देंगे। यह [illegible] उस हिरन जैसी बात है जो कस्तूरी के लिए चारों [illegible] दौड़ता फिरता है। मैं तो दावे के साथ कहता हूँ [illegible] आज़ादी हमारे पास है, लेकिन हम उसको पाने की तरकीब [illegible] नहीं जानते। हमको चाहिए कि अपने गाँवों में बैठ[illegible]



[ख़ान-बन्धु—ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ाँ और डा० ख़ान साहब]

[illegible]ज़मीन पर मेहनत करें और किसानों की ग़रीबी को दूर करने की कोशिश करें। यह ठीक है कि स्वराज्य के बिना हम उनके सारे दुःख दूर नहीं कर सकते, लेकिन अगर हमारे नेता गाँवों की ओर सचमुच ज़्यादा ध्यान दें तो गाँववालों की माली और मानसिक हालत काफ़ी सुधर सकती है। अभी तो हमारा मुल्क क़रीब क़रीब मुर्दे की तरह है। एक बार उसकी रगों में—यानी गाँवों में—ख़ून दौड़ने लगा तो फिर कौन-सी ताक़त हमारी आज़ादी को छीन सकती है?"

ख़ान साहब काफ़ी गम्भीर होकर थोड़ी देर चुप रहे। मौक़ा पाकर मैंने पूछा—हिन्दू और मुसलमानों की बेइत्तफ़ाक़ी के बारे में आपका क्या ख़याल है?

"कुछ लोग समझते हैं कि हिन्दू और मुसलमानों में इतना फ़र्क़ है कि दोनों में कभी इत्तफ़ाक़ हो ही नहीं सकता। लेकिन यह तो एक बे-सिर-पैर की बात है। आख़िर दोनों एक ही ख़ुदा के बन्दे हैं। अपने अपने मज़हब को ठीक तौर से मानकर भी दोनों मुहब्बत से क्यों नहीं रह सकते, यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर हम एक-दूसरे के ज़्यादा नज़दीक आ जायँ और एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें तो कोई सबब नहीं कि हिन्दू-मुसलमानों में इत्तफ़ाक़ न हो। लेकिन अगर हम इस इत्तफ़ाक़ के लिए एक तीसरे आदमी की तरफ़ देखते रहेंगे, जो हमें आपस में लड़ाते रहना चाहता है और इसी में जिसका फ़ायदा है तो हमें क़यामत तक इसी तरह मुर्दे की तरह सड़ता रहना पड़ेगा।"

ख़ान साहब का हिन्दू-मुस्लिम-एकता में दृढ़ विश्वास है और वे हमेशा कोशिश करते रहते हैं कि दोनों सम्प्रदायों में मेल बढ़े। उनकी भाषा भी 'हिन्दुस्तानी' का एक सुन्दर नमूना है। वे जहाँ तक हो सकता है ऐसी भाषा बोलते हैं जो हिन्दू-मुसलमान सभी समझ सकते हैं। अगर किसी हिन्दू मित्र से बात करते हैं और उनकी समझ में कोई हिन्दी-शब्द नहीं आता तो वे निःसंकोच उसके मानी पूछ लेते हैं और एक-दूसरे के अधिक नज़दीक आने के लिए अपना शब्द-भांडार बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

× × ×

पठान लोगों के बारे में आम तौर से हम लोगों में बहुत ग़लतफ़हमियाँ हैं। साधारणतः पठानों को ख़तरनाक और अमानुषिक समझा जाता है, जो हमारे गाँवों में ग़रीब किसानों को ब्याज पर रुपया देकर उनको चूसते हैं और सरहदी प्रान्त में हिन्दू स्त्रियों का अपहरण करते हैं। अँगरेज़ी कहावत के अनुसार काली भेड़ें तो हर एक झुंड में रहती ही हैं, लेकिन उनके कारण सभी को बदनाम करना अनुचित है।

"सरहद में हमेशा सरकार और पठानों में लड़ाई क्यों चलती रहती है?" मैंने एक दिन ख़ान साहब से पूछा।

"यह अँगरेज़-सरकार की कूट-नीति के सबब से है। अँगरेज़-सरकार उत्तर-पश्चिम-सरहद को विदेशी चढ़ाई से महफ़ूज़ रखने के लिए पठानों के देश को अपने क़ाबू में करना चाहती है और वहाँ के बाशिन्दों को हमेशा तकलीफ़ देती रहती है। ग़ुस्से में आकर पठान लोग भी अँगरेज़ों पर हमला करते रहते हैं। मैं यक़ीन दिलाता हूँ

कि पठान बड़े नरम और सच्चे दिल के होते हैं। उनमें ताक़त और हिम्मत भी बहुत है। अपने को क़ाबू में रखने की भी अजीब शक्ति है। पिछली राष्ट्रीय लड़ाई में वे अहिंसा का पालन कर सके, यह क्या कम ताज्जुब की बात है? लेकिन अँगरेज़-सरकार तो उनको हमेशा बदनाम ही करती रहती है।"

ख़ान साहब के सम्पर्क में आकर कौन पठानों को प्रेम और मुहब्बत की नज़र से न देखने लगेगा?

× × ×

हाल में जब ख़ान साहब अपने प्रान्त को वापस ... तब उनका कितना ज़ोर का स्वागत हुआ! सचमुच ... अपने प्रान्त के बिना ताज के बादशाह हैं और ... लिए वहाँ के पठान अपना सर्वस्व अर्पित करने को ... तैयार रहते हैं। इतने सीधे, सादे, मुहब्बत से भरे '... ख़िदमतगार' के लिए किसको श्रद्धा न होगी? ... प्रान्त क्या, आज तो सारा हिन्दुस्तान उनको ... राष्ट्रपति बनाने को तैयार है। लेकिन वे तो जनता ... ख़िदमत में ही अपना आनन्द मानते हैं।

—— ——

घंटारव

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी'

टन् टन् टन्, रुक जा घंटारव, बीती रात, तनिक सोने दे,
चिन्ता को चुपचाप स्वप्न में पछताने दे, अब रोने दे।
रात शेष हो चली देख ले अलसा रहे गगन के तारे,
दिन से चली अंक भर मिलने अब विभावरी हाथ पसारे।
तम का मिलन तेज से क्या है अन्धकार का पूर्ण समर्पण,
साईं की नगरी जाना है पुण्य-पाप रख एक किनारे।
जीवन के ऊसर खेतों में आँसू के मोती बोने दे,
टन् टन् टन्, रुक जा घंटारव, बीती रात, तनिक सोने दे।
दुनिया कहती दीवाना है, मैं कहता दुनिया दीवानी,
हम दोनों दोनों के पगले, पर दोनों की भिन्न कहानी।
दुनिया कहती, मैं सोऊँगी, मैं कहता, है जीवन थोड़ा,
हवा उड़ा देगी इठलाकर बची राख की शेष-निशानी।
व्यर्थ नियति से ये झगड़े हैं जो कुछ सो संभव होने दे,
टन् टन् टन्, रुक जा घंटारव, बीती रात, तनिक सोने दे।
हिले पैर, जंजीरें झनकीं, नींद रूठ कर अब क्यों जाती है
ऐसी पुण्य घड़ी जीवन में प्रेयसि, एक बार आती है।
मान मानिनी, परदेशी प्रीतम का प्रेम तुनुक होता है,
यह सुख मिटते अरमानों की फ़क़त दो घड़ी की थाती है।
हर्ष-शोक के दाग़ हृदय के गरम ख़ून से अब धोने दे,
टन् टन् टन्, रुक जा घंटारव, बीती रात, तनिक सोने दे।

अदालत में गवाही कैसे देनी चाहिए

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

अदालत में गवाही देना बहुत होशियारी का काम है। जिन लोगों को कभी साक्ष्य देने के लिए न्यायालय में जाना पड़ा है वे जानते हैं कि विपक्षी-दल का वकील जिरह करके किस प्रकार गवाह को भूत-फेरी में लाने का यत्न करता है। कई बार ... भोला-भाला गवाह जिरह से इतना तंग आ जाता है ... वह मन में निश्चय कर लेता है कि मैं फिर कभी गवाही देने नहीं आऊँगा। परन्तु गवाही देना आपकी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं करता। अनेक बार आपको मजबूरन जाना पड़ता है। आपको पता भी नहीं होता, मुक़द्दमेवाला व्यक्ति, आपको पूछे बिना, आपका नाम गवाहों की सूची में दे देता है और आपके नाम हाज़िर होने के लिए मजिस्ट्रेट की ओर से सम्मन आ जाता है। अब आप जाने से इनकार नहीं कर सकते। इसलिए यदि आपको अब तक कभी अदालत में जाकर गवाही देने का अवसर नहीं हुआ तो यह नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में भी आपको कभी गवाही देने नहीं जाना पड़ेगा। यदि आपको मालूम नहीं कि गवाही कैसे देनी चाहिए तो आप वहाँ घबरा जायँगे और जिरह करनेवाला वकील आपसे ऐसी बातें कहलवा लेगा जो आपके अभिप्राय के सर्वथा विपरीत हैं। उसके ... में फँसने से बचने के लिए आपको उसके वाक्छल और झाँसे को जानना आवश्यक है। यदि आप थोड़ी-सी ... चालें सीख लेंगे तो आप जिरह करनेवाले के प्रयत्न को विफल करके जज और ज्यूरी को प्रभावित कर सकेंगे। यदि आप ये चालें नहीं सीखेंगे तो सत्य कहने का निश्चय रखते हुए भी आप कुछ का कुछ कह जायँगे।

एक मर्तबा एक महाशय को किसी मुक़द्दमे में गवाही देने जाना पड़ा। वे बड़े ईमानदार मनुष्य थे। उन्होंने प्रश्नों का उत्तर तो ठीक ठीक दे दिया, परन्तु जिरह करनेवाला वकील एकदम उनसे लड़ने लगा, जैसे वह गवाह की सच्ची गवाही से झुँझला उठा हो। वह गरज कर बोला—"इस मुक़द्दमे के विषय में आपने किससे चर्चा की है और किसने आपसे कहा है कि इस तरह का साक्ष्य देना?"

यह एक ऐसा चालाकी का सवाल है जो प्रायः जिरह करनेवाले पूछा करते हैं। रोज़ हम गवाहों को इस प्रश्न से घबराया हुआ पाते हैं। इसका ठीक उत्तर यह है—"मैंने इस मुक़द्दमे के सम्बन्ध में बहुतेरे लोगों से बात की है, परन्तु किसी ने भी मुझे नहीं कहा कि इस प्रकार की गवाही देना। सबने सत्य कहने को ही कहा है।"

परन्तु वे महाशय घबरा गये। उन्होंने दूसरा मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने उत्तर दिया—"किसी ने नहीं।" उनका अभिप्राय यह था कि किसी ने भी मुझे नहीं कहा कि गवाही में यह बात कहना।

जिनकी ओर से वे गवाही दे रहे थे उन्होंने प्रश्न के इस रूप पर आपत्ति की। जिरह करनेवाले ने कहा—"तब बहुत अच्छा।" जैसे उसने विजय प्राप्त कर ली हो। इसके साथ ही उसने गवाह की ओर रोष-दृष्टि से देखा—"तब आपने अपनी गवाही के बारे में बात की है?"

बेचारा गवाह अब बिलकुल घबरा गया और यह सोच कर कि वकील का इशारा यह है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, मुक़द्दमेवाले की फुसलाहट में आकर कह रहा हूँ, बे-सोचे-समझे बोल उठा—"नहीं!"

जिरह करनेवाले ने विजय-भाव-सूचक स्वर में कहा—"यदि आपने श्री लालचन्द से अपने साक्ष्य के सम्बन्ध में बात नहीं की तो उन्होंने आपको गवाही के लिए बुलाया क्यों है?"

गवाह ग़ोते खाने लगा। वह बोला—"मेरा यह अभिप्राय नहीं था। मेरा अनुमान है, मैंने ज़िक्र किया है, परन्तु—"

जिरह करनेवाले ने कठोरता से कहा—"आपने प्रश्न का उत्तर दिया है।" और फिर जज की ओर मुड़कर एक विशेष ढङ्ग से कहा—"देखा? यह जन्मसिद्ध झूठी गवाही देनेवाला है।" इसके बाद उसने गवाह पर ऐसे प्रश्नों की बौछार कर दी जिनसे उसके चरित्र एवं आचार के सम्बन्ध में कई प्रकार के सन्देह उत्पन्न होते थे। गवाह ने उन सबसे इनकार किया, परन्तु जज और ज्यूरी को उसका विश्वास नहीं हुआ। इसलिए जिस पक्ष ने उससे गवाही दिलाई थी वह मुक़द्दमा हार गया।

वह मनुष्य गवाह के रूप में बहुत ही बुरा था। उस पक्षवाले उस पर बहुत आशायें लगाये बैठे थे। अदालत के कमरे के अनोखे वातावरण में वह डर गया था और उसकी बुद्धि ने काम करना बन्द कर दिया था। उसके पक्ष के वकील के चाहिए था कि उससे उन प्रश्नों का पूर्वाभिनय करा लेता जिनके जिरह करनेवाले वकील द्वारा पूछे जाने की संभावना थी और जो कुछ होनेवाला था उसके सम्बन्ध में उसे सावधान कर देता। वास्तव में ऐसा मनुष्य बहुत दुर्लभ है जो अच्छा गवाह होना जानता है।

यद्यपि सभी ईमानदार गवाहों के साथ दुर्व्यवहार नहीं होता, फिर भी अधिकांश वकीलों का दृष्टि-बिन्दु यह रहता है कि मेरे मवक्किल के प्रति मेरा कर्तव्य है कि जीतने के यत्न में मैं प्रत्येक ऐसे कौशल से काम लूँ जिसका मेरे लिए निषेध नहीं। अधिकांश जज जिरह करनेवाले के ऊट-पटाँग प्रश्न करने की अनुमति दे देते हैं। बहुत थोड़े ऐसे क़ानून हैं जो गवाहों के अधिकारों का स्पष्ट रूप से लक्षण करते हों या जो गन्दी-गन्दी बातें पूछने के लिए जिरह करनेवाले को दण्डनीय ठहराते हों। जजों का कहना है कि "अनुचित जिरह की अनुमति देने के कारण हाई कोर्ट हमारे फ़ैसले के रद नहीं कर देता।" यह बात शब्दशः सत्य तो नहीं, परन्तु इतनी सत्य अवश्य है कि जज इस जिरह में दख़ल न दें तो उन पर कोई आपत्ति नहीं आती।

वकील लोग इस कल्पना पर काम करते हैं कि क्योंकि मनुष्य का मन हत्या के दृश्य के देखकर या किसी स्तब्ध-कारी स्थिति में विमूढ़-सा हो जाता है, इसलिए वह किसी दूसरी गवाही के सम्बन्ध में भी ठीक वैसी ही भूल कर सकता है। गवाह के तब तक झूठा ही समझा जाता है जब तक वह जिरह की बौछार में यह प्रमाणित न कर दे कि वह सत्य कह रहा है। लोगों ने यह बात यों ही मान रक्खी है कि गवाह को नम्रतापूर्वक बैठे रह कर दण्ड भोगना चाहिए। परन्तु मैं समझता हूँ, यह सब ग़लत है।

यदि वकील देखता है कि वह आपकी गवाही के क्षति नहीं पहुँचा सकता तो वह आपके चरित्र के क्षति पहुँचाने का यत्न करता है। परन्तु यदि आप अपने होश गुम नहीं होने देंगे तो हो सकता है कि उसे सफलता न हो। एक हर्जाने के मुक़द्दमे में जिरह करनेवाले ने एक ऐक्ट्रेस की गवाही के अविश्वास्य ठहराने के उद्देश से यह सिद्ध करना चाहा कि वह अपनी आयु बहुधा ग़लत बताती रही है। ऐक्ट्रेस नहीं चाहती थी कि उसकी ठीक उम्र समाचार-पत्रों में छपे। इसलिए उसने जल्दी से सोचा।

जिरह करनेवाले ने उससे पूछा—"आप कितने वर्ष की हैं?"

उसने उत्तर दिया—"मुझे मालूम नहीं। मैंने न कभी अपने जन्म का सार्टिफ़िकेट लिया है और न अपनी जन्मपत्री ही देखी है।"

"परन्तु आपके माता-पिता ने तो आपको अवश्य बताया होगा कि आप कितनी बड़ी हैं।"

इस पर वह बोली—"यह तो सुनी हुई बात है। मुझे विश्वास है, आप सुनी हुई बात को गवाही नहीं मान सकते।"

जज ने खीस निकाली और उसका अनुमोदन किया।

सबसे अच्छा गवाह एक फेरीवाला देखने में आया है। वह मोटरगाड़ी में कपड़ा सीने की मशीनें रखकर घर घर बेचता फिरा करता था। निडरता से उत्तर देने के कारण वह क़ानून की चक्की में से अछूता निकल गया। उसकी सामान्य बुद्धि बहुत अधिक थी। सीधा सवाल पूछने पर उसने बताया कि किस प्रकार वह ३० मील की गति से मोटर चला रहा था, किस प्रकार उसकी ओर आती हुई कार सड़क की ग़लत तरफ़ दौड़ गई और उससे टकरा गई जिससे उसे और उसकी भार्या को चोटें आईं। दूसरे पक्ष के वकील ने कहा कि फेरीवाला बड़ी बे-परवाही से मोटर चला रहा था और ५० मील की गति से सड़क की ग़लत तरफ़ जा रहा था। जिरह करनेवाला जज और ज्यूरी को यह विश्वास कराने का यत्न करने लगा कि फेरीवाला बदमाश है, जो लोगों के घरों में घुसकर चालाकी से गृहिणियों से इक़रारनामों पर हस्ताक्षर करा लेता है। फेरीवाले ने शिष्टाचारपूर्वक इन सब बातों से इनकार किया और कहा कि वकील महोदय अपने सम्बन्धियों और आत्मीयों की गृहिणियों से पूछ लें, मैंने उनके हाथ मशीनें बेची हैं। जिरह करनेवाला वकील कुछ हड़बड़ाया और बोला—"क्या यह सत्य नहीं कि आप मोटर को तेज़ चलाने के लिए गिरफ़्तार हुए हैं?"

"हाँ, महाशय, पर इस घटना से दो सप्ताह पहले।"

"और कितनी बार आप गिरफ़्तार हो चुके हैं?"

"एक बार सफ़ेद लकीर के आगे निकल जाने के कारण।"

फ़ेरीवाले ने स्वीकार किया कि दुर्घटना के ठीक पहले वह ३० मील से अधिक की गति से जा रहा था, और हो सकता है कि वह पहले सफ़ेद लकीर से परे चला गया हो। जिरह करनेवाले ने समझा कि मैं जहाँ गवाह को लाना चाहता था वहाँ ले आया हूँ।

अब वह बिजली की तरह कड़क कर बोला—"यदि आप बता सकते हैं तो ज्यूरी को बताइए कि यह कैसे हुआ कि जिस समय तक आपका कार प्रतिवादी के कार से नहीं टकराया तब तक यद्यपि आप मोटरकार को बहुत तेज़ी से चला रहे थे और सफ़ेद लकीरों को पार कर रहे थे, फिर भी आप उस विशेष समय में क़ानून का पालन कर रहे थे।"

फ़ेरीवाला कुछ हँसा और बोला—"सुनिए, मेरी पत्नी की दृष्टि संयोग से पीछे की ओर जा पड़ी और वह चिल्ला उठी, "आपके पीछे सिपाही है! ईश्वर के लिए फिर चालान न करा लेना।" इस पर मैंने कार को धीमा कर दिया और फिर कर दाईं ओर को हो गया। इसके कोई आधा मिनट बाद वह कार लकीर के ऊपर से झूलकर मुझसे टकरा गया।" जब दर्शकों का हँसना बन्द हुआ तब वह फिर बोला—"इससे मेरा १,०००) रुपये का हर्ज हो गया।"

इस उत्तर से ही वह जीत गया और प्रतिवादी पर डिग्री हो गई।

जिरह करने की दो रीतियाँ हैं। एक तो त्योरी चढ़ा कर बात करने की रीति है जैसी कि उपर्युक्त दोनों अभियोगों में दिखाई गई है, दूसरी है चालाकी से गवाह को फँसाना। बहुत-से वकील पिछली बात को अधिक पसंद करते हैं। वे गवाह को विश्वास करा देते हैं कि हम तुम्हारे मित्र हैं और यह जिरह केवल एक गुप्त बातचीत है, जिसका कोई विशेष महत्त्व नहीं। इससे पहली बात तो यह होती है कि गवाह ढीला पड़ जाता है और शस्त्र रख देता है, और कई ऐसी बातें मुँह से निकाल देता है जो उसका अभिप्राय नहीं होता। तब भेड़िया अपने पंजे बाहर निकालता है और मारने के लिए उस पर झपटता है।

इस बात के कभी मत भूलिए कि जिरह करनेवाला चाहे ऊपर से कितना ही मित्रोचित व्यवहार क्यों न दिखला रहा हो, आपको अविश्वास्य सिद्ध करने के यत्न में है। यदि वह आप पर यह प्रकट कर रहा है कि वह आपको बड़ा बुद्धिमान् और महत्त्वशाली समझता है तो देखना कहीं उसके फन्दे में न आ जाना। क्रमशः वह आपसे ही कहलवा देगा कि आप कितने पुण्यात्मा हैं। आप चाहे अपने यश और कीर्ति के कामों का थोड़ा-बहुत बखान कर लें और जब वह आपके एक साधु पुरुष के रूप में चित्रित करे तो आप थोड़ा प्रसन्न भी हो लें! परन्तु उसे ऐसा मत करने दीजिए, लज्जाशील ही बने रहिए। कारण यह है कि वह निर्दय पाशविक तथ्यों को लिये हुए बिलकुल तैयार बैठा है।

इस बात की परीक्षा करने के लिए कि आप कहाँ तक विश्वास-योग्य हैं, हो सकता है कि आपसे पूछा जाय, "आप कितनी बार जेल जा चुके हैं?" अब यदि आप एक बार भी बहुत तेज़ मोटर चलाने के लिए गिरफ़्तार हो चुके हैं और जब तक कोई ज़मानत देनेवाला नहीं पहुँचा तब तक आपको हवालात में रहना पड़ा है, चाहे पीछे से आप बरी ही हो गये हों, जब आप उत्तर में कहेंगे, "नहीं", तब आप फँस जायँगे। आपसे पूछा जा सकता है कि क्या आप कभी झूठ बोले हैं, आपको नौकरी से क्यों जवाब मिला था, आपकी अपनी स्त्री से क्यों नहीं पटती, क्या आप मद्यप हैं। जो बातें सत्य हों उन सबको मान लो, जो झूठ हो उसे स्वीकार न करो। यह बात मन में समझ लो कि जो बात आप छिपाना चाहते हैं, जिरह करनेवाले के वह सब मालूम है।

हो सकता है कि वह आपसे पूछे कि क्या बालकृष्ण के अतिरिक्त आपका कोई दूसरा नाम भी है। जब आप कहेंगे कि "नहीं" तब वह नाक-मुँह सिकोड़ता हुआ कहेगा, "क्या यह सत्य नहीं कि लोग आपको 'लाडा' भी कहते हैं?" कालेज में पढ़ने के दिनों में आपको लोग लाडा कहते थे, क्योंकि आपके बड़े भाई होस्टल में आकर आपको इस नाम से पुकारते थे, और यह एक प्यार का नाम था। आप मान लेंगे कि हाँ, मुझे लोग लाडा भी कहते थे। तब बाक़ी सारी जिरह के दौरान में जिरह करनेवाला बनावटी मुस्कराहट के साथ आपको संबोधन करके कहेगा—"अच्छा लाडा जी महाराज, कृपया जज साहब को बताइए कि।" इत्यादि इत्यादि। इसका

प्रकार से गवाही नहीं दी जैसे कि जिरह करनेवाला कहता है। इस प्रकार गवाह के मुँह से वह दो परस्पर-विरोधी बातें निकलवा लेगा। जिरह करनेवाला आपकी कही बात को ग़लत या और का और न कहने पावे।

एक सुदक्ष गवाह का कहना है—"मुझे एक ऐसी विधि आती है जिससे जज और ज्यूरी पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है। जब जिरह करनेवाला मेरी कोई ऐसी परस्परविरोधी बात पकड़ लेता है जो मैंने जान-बूझकर नहीं कही होती या मेरी गवाही को तोड़-मरोड़ कर पेश करता है तब मैं वास्तविक उद्वेग के साथ कहता हूँ, 'वकील साहब, मुझे डर है कि मैं अपनी बात को स्पष्ट नहीं कर सका। ऐसा जान पड़ता है कि आप मेरा आशय ठीक नहीं समझे। सचाई यह है—'। यदि मैं अपने बयान को एक बार फिर दुहराता हूँ तो जज के मुंशी को उन्हें लिख लेना पड़ता है। यदि वकील मुझे दुबारा कहने से रोकता है तो जज और ज्यूरी समझने लगते हैं कि वह सचाई को सुनने से डरता है।

"यदि जिरह करनेवाला आपके अतीत जीवन की ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में प्रश्न करे जिनसे जज के आपके विरुद्ध हो जाने का डर हो तो ऐसी दशा में क्या करना चाहिए?"

"यदि आप साफ़ साफ़ कह देंगे तो कोई भी ... आपको हानि न पहुँचा सकेगी। एक मर्तबा एक ... का मोटर को अधिक तेज़ चलाने के अपराध में चालान हुआ। उसने अपने अपराध को इतनी हिचकिचाहट ... साथ स्वीकार किया कि जज तत्काल उसके विरुद्ध ... गया। इसके विपरीत, एक दूसरे व्यक्ति ने जो मनुष्य-हत्या के अपराध में २० वर्ष की क़ैद काट चुका था, ... बात इतनी स्पष्टता से कही कि जज और ज्यूरी दोनों ... हो गये।

"जिरह करनेवाले को सदा नाम से सम्बोधन कीजिए और कहिए, 'हाँ जी' या 'नहीं जी'। जज शिष्ट और ... गवाह को पसन्द करता है। गवाही देने में सारी चालाकी इस बात में है कि जज और ज्यूरी में आपके प्रति ... भाव उत्पन्न हो जाय।

"आपका काम ज्यूरी को यह अनुभव कराना है कि आप सत्य कह रहे हैं। और इसकी एकमात्र रीति ... है कि आप नम्रतापूर्वक, निष्कपटतापूर्वक बात कीजिए। और जब आपको मालूम न हो तो बिना किसी संकोच या अतिशयोक्ति के कह दीजिए—"मुझे मालूम नहीं।"

बेबसी

लेखक, श्रीयुत पन्नालाल महतो 'हृदय'

संध्या का लुनाई आज छाई घेर भूतल को,
सोच में विचारी चकई है उड़ती नहीं।
बुलबुल फ़िदा है वसन्त की छटा को देख,
छोड़ कर मौसिमे-बहार चलती नहीं।

फाग में बजाके चङ्ग हम हैं सुनाते जिसे,
खोजते हैं प्राण पर वह मिलती नहीं।
लोहे के-से सीखचों में बन्द है बेचारा भौंर,
शतदल-दल भी तो हाय खुलते नहीं।

अरावली की घाटी में

लेखक, श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

अरावली की घाटी में बड़ा आकर्षण है। हरित वनों, स्वच्छ सरोवरों और दुर्गम मार्गों से युक्त अद्भुत प्राकृतिक दृश्यों के साथ साथ अपने प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति-चिह्नों से युक्त वह निरंतर एक वीर और करुणगाथा कहती-सी प्रतीत होती है। ऐसी दर्शनीय भूमि के दर्शन सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं। पिछले बड़े दिन की छुट्टियों में कांकरोली में वहाँ के 'विद्या-विभाग' का दशाब्दि महोत्सव हुआ था। इस अवसर पर हिन्दी विद्या-विभाग का कवि-सम्मेलन भी किया गया, जिसके संयोजक 'सुधा'-संपादक श्री दुलारेलाल भार्गव थे। बाहर के कुछ साहित्यिक बुलाये गये थे। प्रयाग से मेरे अतिरिक्त ठाकुर श्रीनाथसिंह और श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' भी गये थे। कानपुर में श्री दुलारेलाल भार्गव के साथ पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पंडित जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी', पंडित शिवरत्न शुक्ल 'सरस' और श्री प्रणयेश जी आदि भी उसी गाड़ी में सवार हुए। कांकरोली पहुँचने पर हमें पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और श्री चतुरसेन शास्त्री के भी दर्शन हुए। हम सब लोग कांकरोली के प्रसिद्ध सरोवर राजसागर के तट पर बने एक भव्य भवन में एक साथ ठहराये गये। दो दिन कांकरोली में रहकर हम लोगों ने मोटरलारी से मेवाड़ के भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा की, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य और गौरव-पूर्ण ऐतिहासिक स्थल देखे तथा उदयपुर में पहुँचने पर महाराना के दर्शन भी किये। इस प्रकार यह यात्रा बहुत सफल और मज़ेदार रही।

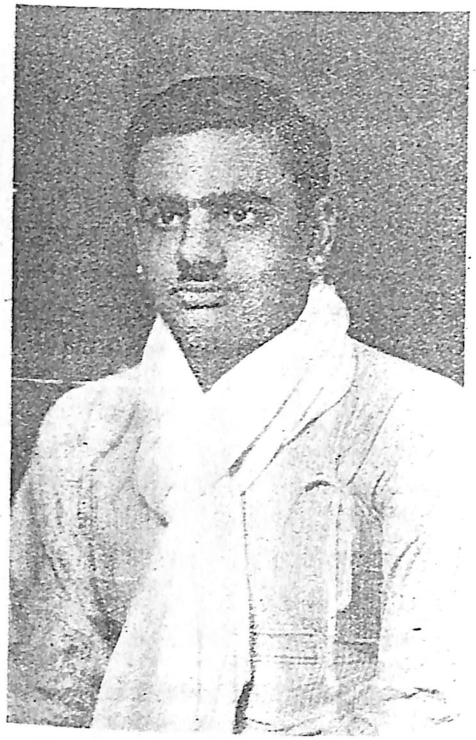
पहले हम यहाँ कांकरोली का उल्लेख करेंगे। कांकरोली एक बहुत सुन्दर और रमणीक स्थान है। यह नगर एक पहाड़ी के ऊपर बसा हुआ है। दूर से कांकरोली-नरेश की ऊँची और धवल अट्टालिकायें बहुत ही भव्य मालूम होती हैं। कांकरोली का सबसे अधिक दर्शनीय दृश्य राजसागर का है। इसका घेरा कई मील का है। इसका निर्माण संवत् १७३५ विक्रमी में महाराना राजसिंह ने कराया



[हिज़ हाइनेस महाराना सर भूपालसिंह जी, जी० सी० एस० आई०]

था। दूसरे दिन लगभग ४ बजे सन्ध्या को हम यह अद्भुत ऐतिहासिक स्थान देखने गये। सागर के दो किनारों पर क्रमशः गोल होते हुए दो सुन्दर पहाड़ खड़े हैं। पर्वतों के बीच में संगमरमर की शिलायें क़तार की क़तार ऐसे सुन्दर ढंग से बिछाई गई हैं कि देखते ही बनता है। इन शिलाओं के चबूतरों पर खड़ी बारादरियों और तोरणों पर की गई खुदाई को देखकर हमने तत्कालीन उन्नति की शिखर पर पहुँची हुई हिन्दू-शिल्पकला का कुछ अनुमान किया। दो गोल पहाड़ियों के बीच में यह एक ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति-रमणी अपने वक्षःस्थल से

महाराना राजसिंह ने कराया
किया। दो गोल पहाड़ियों के बीच में
होता है, मानो प्रकृति-रमणी अपने वक्षःस्थल से



[गो० विट्ठलनाथ शर्मा]

नीचे सरोवर के विशाल दर्पण में चुपचाप अपना सौन्दर्य निहार रही हो।

यों तो यह सागर स्वयं अपनी महत्ता रखता है, पर अब दिन-प्रतिदिन और भी अधिक महत्त्व ग्रहण करता जायगा, क्योंकि यहाँ हवाई जहाज़ों का अड्डा बन रहा है।

कांकरोली के जिस 'विद्या-विभाग' के निमंत्रण पर हमें अरावली के परिदर्शन का अवसर मिला वह एक नई संस्था है। उसकी स्थापना संवत् १९८५ विक्रमी में वहाँ के श्रीमान् गोस्वामी व्रजभूषणलाल जी ने की थी। और उसके संचालन का भार पोतकूर्चि पंडित कंठमणि शर्मा शास्त्री और पंडित जटाशंकर शास्त्री पर है। इसके उपाध्यक्ष गोस्वामी जी के अनुज श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी हैं। 'विद्या-विभाग' का कार्य्य-क्षेत्र काफ़ी विस्तृत है। गत दस वर्षों में उसने बहुत अच्छा कार्य किया है। इस संस्था के द्वारा संस्कृत के पठन-पाठन के साथ लोक-सेवा तथा स्वास्थ्य-व्यवस्था का उस अंचल में अच्छे ढंग से प्रचार हो रहा है। संस्था का निजी भवन है। उसका नाम 'श्री बालकृष्ण-विद्या-भवन' है। इसके दशाब्दि-महोत्सव में उदयपुर के महाराना अपने मंत्रियों सहित शामिल हुए थे। इस सिलसिले में संस्कृत और हिन्दी के कवि-सम्मेलन भी हुए। संस्कृत-कवि-सम्मेलन के सभापति गोस्वामी श्री व्रजभूषणलाल जी हुए थे। हिन्दी-कवि-सम्मेलन दो दिन हुआ। पहले दिन के सभापति कविवर पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और दूसरे दिन के पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी थे। प्रायः वीर तथा भक्तिपूर्ण कवितायें अधिक पढ़ी गईं। यहीं हमें उदयपुर के प्रसिद्ध चारण कवि श्री केसरीमल जी बारहट की कवितायें सुनने को मिलीं। आप वृद्ध हैं और डिंगल-भाषा के पंडित हैं।

कांकरोली से हम श्रीनाथद्वारा को गये। मार्ग बीहड़ जंगलों और पहाड़ों से गया है। पहाड़ों की तराई में कहीं कहीं ठिकानेदारों की सफ़ेद कोठियाँ दिखाई पड़ जाती हैं। यहाँ के निवासी भेड़ें और बकरियाँ चराते हुए और कहीं खेती करते हुए दिखाई देते थे। ज़मीन के पथरीली होने के कारण हरे-भरे खेतों के वैसे सुन्दर दृश्य नहीं दिखाई देते थे जैसे युक्त-प्रान्त में।

श्रीनाथद्वारा हमें व्रज के प्राचीन वैभव की स्मृति दिलाता है। यहाँ की सुन्दर-स्वस्थ गायों और बाज़ार के चारों ओर दिखाई पड़नेवाला दूध, दही, मक्खन, रबड़ी और मलाई का बाहुल्य इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उचित रीति से गोपालन के व्यवसाय को प्रोत्साहन देने से हमारे स्वास्थ्य और धन की कैसी वृद्धि हो सकती है। श्रीकृष्ण भगवान् के नाम पर यहाँ हज़ारों गायें स्वच्छंद विचर रही हैं। कहते हैं कि जब उत्तर-भारत में आक्रमण और मार-काट जारी थी और मूर्तियों और शिवालयों का विध्वंस हो रहा था तब वल्लभ कुल के गोस्वामी जी महाराज श्रीकृष्ण जी की मूर्ति के साथ यहाँ आ बसे थे और मेवाड़ के महाराना ने उनकी रक्षा का भार लिया था। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी का यहाँ का निवास उनका प्रवास-काल माना जाता है। चाहे इसी लिए हो, चाहे और किसी कारण से, मंदिर का वह भाग जिसके नीचे भगवान् रहते हैं, बिलकुल वैसा ही है जैसा गाँवों में खपरैलनुमा मकानों के घर होते हैं। धार्मिक दृष्टि से श्रीनाथद्वारा का चाहे जो महत्त्व हो, हमें तो यह राष्ट्रीय दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दीखता है और वर्तमान ग्रामोद्धार-आन्दोलन का एक अच्छा नमूना यहाँ देखने को मिलता है।

श्रीनाथद्वारा वैष्णव-सम्प्रदाय का प्रसिद्ध तीर्थ है। गुजरात, बम्बई, मारवाड़ के धनिक यात्रियों की यहाँ अधिक संख्या रहती है। प्रतिदिन श्रीनाथ जी को एक हज़ार से अधिक रुपये की सामग्री का भोग लगता है। यहाँ की वार्षिक आय लगभग १४ लाख रुपया है। मंदिर की गोशाला में लगभग ५ हज़ार गायें हैं। मंदिर में इन्हीं के मक्खन, मलाई, रबड़ी और दही-मट्ठे का भोग लगता है। भोग के प्रसाद का भोजन यहाँ पत्तलों में सस्ते मूल्य में बिकता है। चार-पाँच आने के पत्तल का भोग दो व्यक्ति पेट भर खा सकते हैं।

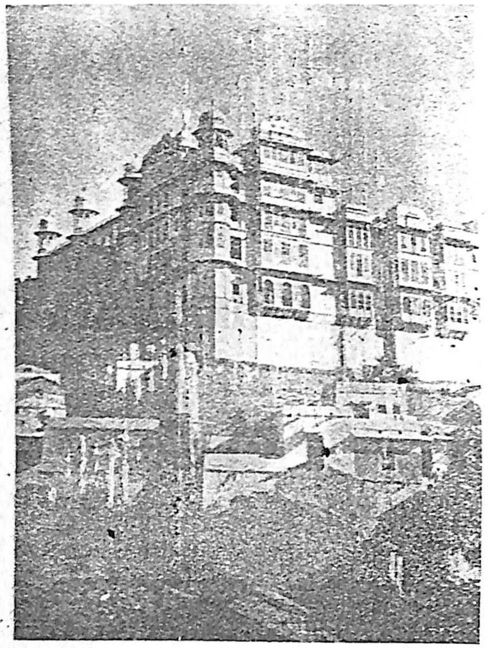
यहाँ के मुंसरिम श्री यमुनालाल जी बड़े सज्जन और कार्यकुशल व्यक्ति हैं। अँगरेज़ी और संस्कृत के विद्वान् हैं। आपने हम लोगों को श्रीनाथ जी का दर्शन भली-भाँति कराया।

दर्शन करने के अनन्तर हम लोग यहाँ के बाल महंत और आचार्य गोस्वामी गोविन्दलाल जी से मिलने गये। गोस्वामी जी की अवस्था अभी ११ वर्ष की है। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। वर्तमान महंत के पिता गोस्वामी दामोदरलाल जी यहाँ काफ़ी लोकप्रिय हैं। उनकी मृत्यु के बाद से मंदिर का प्रबन्ध कोर्ट आफ़ वार्ड्स के अधीन हो गया है। हमने महन्त जी की कोठी और उसके भीतर के भागों को भी देखा। पूरा राजसी ठाट है। कमरों की सजावट अपूर्व है। प्राचीन तथा अर्वाचीन चित्रकला की अनेक सुन्दर बानगी यहाँ देखने को मिली। मेवाड़ के प्रसिद्ध चित्रकार श्री काशीनाथ के चित्रों का यहाँ अच्छा प्रचार है। इसके बाद मुंसरिम साहब तथा यहाँ के एक प्रधान पुजारी ने ऐसे अन्तर्गृहों के दर्शन कराये जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं का अपूर्व संग्रह है। ये कोठरियाँ सुरङ्ग की भाँति लगातार बनी हुई हैं। बिजली की रोशनी से भीतर जाना होता है। खद्दर और देशी कपड़ों से कोठरियाँ भरी हुई हैं। तरह तरह के छोटे-



[पंडित यमुनालाल दशोरा, मैनेजर, कोर्ट आफ़ वार्ड्स श्रीनाथद्वारा (मेवाड़)]

बड़े बर्तन सहस्रों की संख्या में रक्खे हैं। गद्दों, रज़ाइयों, तोशकों, तकियों का तो ठिकाना नहीं। खाद्य-पदार्थों में सभी प्रकार के अन्नों की बोरियों के ढट लगे हैं। कई कमरों में रात-दिन आटा पिसता रहता है। दूध की भिन्न-भिन्न प्रकार की चीज़ें बनाये जाने के लिए अलग अलग स्थान हैं। तरह तरह के तेल, गुड़, घी और मेवों का भांडार देखने योग्य है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-मात्र के उपयोग में आनेवाली छोटी से छोटी और क़ीमती से क़ीमती वस्तुओं का यहाँ विशाल संग्रह रहता है। पूछने पर मालूम हुआ कि श्रीनाथ भगवान् को जो वस्तु एक बार चढ़ाई जा चुकती है उसका दुबारा उपयोग नहीं होता। इसलिए कपड़ों तथा उनसे बनी हुई वस्तुओं का इतना



[सुन्दरनिवास प्रासाद, कांकरोली]



[श्रीनाथद्वारा के नाबालिग़ महन्त गोस्वामी श्री गोविन्दलाल जी]

बड़ा संग्रह एकत्र हो गया है। इनका उपयोग आगत व्यक्तियों के सत्कार आदि के अवसरों पर किया जाता है। सोने-चाँदी की कारीगरी की वस्तुएँ तथा तीन सौ वर्ष की पुरानी एक बड़ी लम्बी-चौड़ी दवात भी दिखाई गई, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह भगवान् के साथ यहाँ आई है। यहाँ का दफ़्तर पुराने ढंग का है। बहियों पर सारी लिखा-पढ़ी होती है। मुनीम, ख़ज़ांची आदि ज़मीन पर बैठकर बहियाँ लिखते हैं।

यहाँ 'साहित्यमंडल' नामक हिन्दी की एक संस्था है, जिसमें समय समय पर आनेवालों के भाषण तथा कवि-सम्मेलन आदि हुआ करते हैं। इसके सभापति पंडित शिवकुमार एम० ए०, एल-एल० बी० हैं, जो यहाँ जुडीशल आफ़िसर और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट भी हैं। यहाँ की संस्कृत-पाठशाला में भी संस्कृत की ऊँची परीक्षाओं के लिए अध्ययन का अच्छा प्रबन्ध है।

श्रीनाथद्वारा से हम लोग लारी पर उदयपुर के लिए रवाना हुए। यहाँ से उदयपुर लगभग ३५ मील है। अरावली के पहाड़ों के बीच से गुज़र रहे थे। निगाह दौ से चारों ओर ऊँचे पहाड़ों के सिवा कुछ नहीं दिखाई था। यदा-कदा चलते-फिरते भीलों के दर्शन हो जाते कहीं कहीं घाटियों में झोपड़ियाँ और पत्थर के बने छोटे घर दिखाई दे जाते थे। इस भूमि के दर्शन से ही हृदय में एक अपूर्व उत्साह और ओज उत्पन्न था। यह वही भूमि है जहाँ महाराना प्रताप ने युद्ध अनेक बार मुग़लों के दाँत खट्टे किये थे। सीसौदिया की रक्षा इन्हीं घाटियों और पहाड़ों ने की है। हमारे श्रीनाथद्वारा के मुंसरिम साहब भी थे। वे मार्ग के दुर्गम स्थानों का परिचय कराते जाते थे। अरावली ऊँचे पहाड़ कोसों फैले हुए हैं। इसकी दुर्गम कंदरा



[पं० जटाशंकर शास्त्री और पो० कण्ठमणि शास्त्री महोपदेशक संचालक-विद्याविभाग, कांकरोली]



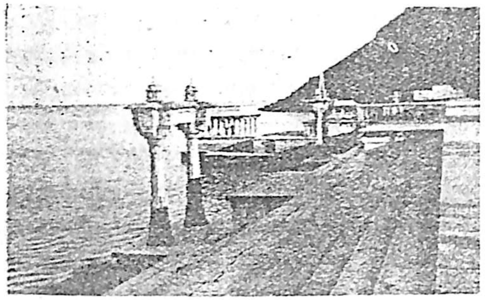
[श्री विद्याविभाग के सभापति गोस्वामी आचार्य व्रजभूषणलाल महाराज]

देखकर भय उत्पन्न होता था। प्राकृतिक दृश्यों का सौंदर्य देखने लायक़ है। मार्ग में कविवर पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने एक ओजपूर्ण कवित्त की रचना कर डाली, जो इस प्रकार है—

बापा का विरुद और सांगा का सुयश-गीत,
पद्मिनी का सत पढ़ते हैं प्रेम-पाटी में।
कुंभ के विजय-खंभ खड़े हैं, पटी पड़ी है,—
महिमा प्रताप की ज़मीन मेदपाटी में॥
मुग्ध मन होता एक जादू-सा 'सनेही' भरा,
अभय सिसौदी शीश-दान परिपाटी में।
चूम रहे धूलि-कण, मस्त होके झूम रहे,
घूम रहे सुकवि अरावली की घाटी में॥

बहुत दूर चले आने के बाद लारी ने एक विकट घाटी में सुदृढ़ पत्थरों से बने हुए विशाल फाटक के अंदर प्रवेश किया। इसी स्थान पर सीसौदिया-वंश के कुल-देवता श्री एकलिंग जी का मंदिर है। मेवाड़ के शासक श्री एकलिंग जी माने जाते हैं और महाराना उनके दीवान। यह मंदिर बहुत प्राचीन है। पहाड़ क़िले की भाँति चारों ओर से इसकी रक्षा करता है। मंदिर का घेरा बहुत बड़ा नहीं है। दीवारों पर पत्थर की अद्भुत कारीगरी दर्शनीय है। मंदिर एकान्त स्थान में है। श्री एकलिंग जी के प्रताप की मेवाड़ में बड़ी महिमा है। मंदिर से पश्चिम की ओर पहाड़ पर राजा भर्तृहरि के तप करने का स्थान है। यहाँ एक महात्मा रहते हैं। पूर्व की ओर ऊँचा पहाड़ है। इस पर छोटे छोटे सैकड़ों घर बने हैं। यहाँ के निवासी इन्हीं में रहते हैं। यह स्थल बहुत सुरक्षित है।

श्री एकलिंग जी के स्थान से उदयपुर तक का मार्ग



[राजसमुद्र, कांकरोली]

बहुत भयानक और दुर्गम है। आगे चलने पर फिर एक फाटक मिला। फाटक के बाद पहाड़ों को काट कर सुदृढ़ और सँकरा मार्ग बना है, जो चक्करदार है। केवल एक लारी या गाड़ी ही आ या जा सकती है। ड्राइवर या गाड़ी चलानेवाला यदि तनिक भी चूक जाय तो सैकड़ों फुट नीची कंदराओं में किसी का पता भी न लगे। बड़ा भयानक मार्ग है। ज़िन्दगी में ऐसा दुर्गम स्थल कभी नहीं देखा था। हमारे साथ एक ऐसे वृद्ध सज्जन थे जो इस मार्ग में भय से मीलों तक आँख बंद किये हुए चुपचाप 'राम' 'राम' की रट लगाये रहे। क़रीब ४ बजे शाम को हम लोग उदयपुर पहुँच गये और 'फ़तहनिवास' नाम के गेस्ट-हाउस में ठहराये गये। इसे आगत मेहमानों के ठहराने के लिए स्वर्गीय महाराना फ़तहसिंह ने बनवाया था।

उदयपुर एक सुन्दर शहर है। शहर के चारों ओर सुदृढ़ ऊँची दीवार है। आने-जाने के फाटक हैं। ११ बजे रात को फाटक बंद हो जाते हैं। तब कोई व्यक्ति भीतर-बाहर आ-जा नहीं सकता। यहाँ का बाज़ार भी सुन्दर है। बाज़ार के बीच में क्लाकटावर है। यहीं हमें मेवाड़ के प्रसिद्ध भील-जाति की स्त्रियाँ भी दिखाई पड़ीं। वे काफ़ी मोटी-तगड़ी और तन्दुरुस्त थीं। पैर के ऊपर घुटने तक और आधे हाथ में कड़े के क़िस्म के आभूषणों से लदी थीं। उनके हाथ में लम्बे लम्बे लट्ठ थे। पैदल बड़ी तेज़ी से चलती हुई नज़र आती थीं। भील मेवाड़ की मर्दानी क़ौम है। उनकी स्त्रियों में भी वही मर्दानगी टपकती थी।

उदयपुर हम लोग एकमात्र महाराना के दर्शन करने के ही उद्देश से गये थे। हमारे इस काम में उदयपुर के शेसन्स जज श्रीयुत जोशी सहायक हुए। उन्होंने महाराना तक यह ख़बर पहुँचाई और १२ बजे दिन को महाराना ने हम लोगों से मिलने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। वहाँ के लोगों से हमने यह सुना कि बड़े बड़े व्यक्ति यहाँ आकर महीनों पड़े रहते हैं तब भी उन्हें महाराना के दर्शन नहीं होते। मिलनेवाले लोग महीनों पहले से समय निश्चित कराते हैं तब उनकी महाराना से मुलाक़ात होती है। इस दृष्टि से हम लोग काफ़ी सौभाग्यशाली सिद्ध हुए। ठीक समय पर श्रीयुत जोशी जी हम लोगों को लेकर महाराना से मुलाक़ात कराने चले।

उदयपुर का राजमहल विस्तृत और विशाल है। महल के बाहर जूते उतार कर हम लोग भीतर घुसे। कई ज़ीनों, चक्करदार मार्गों और कमरों को पार करते हुए महाराना के ख़ास महल के विशाल आँगन में हम लोग लाये गये। सिपाही और पहरेदार पगपग पर मिलते थे। आँगन में जाज़िम बिछी हुई थी। कमर में तलवार बाँधे, लम्बे अँगरखे पहने और चढ़ी हुई दाढ़ी और मूँछोंवाले कार्यकर्ता इधर-उधर आ-जा रहे थे। हम लोग वहीं बैठाये गये। यह समय महाराना के भोजन का था। हम लोगों को ख़बर दी गई कि भोजन के बाद महाराना दर्शन देंगे। थोड़ी देर में क्या देखते हैं कि कई सरदार थाल में भोजन सजाये हुए महल के भीतर जा रहे हैं। भोजन ले जानेवालों के मुँह पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। हमें वहीं यह भी बताया गया कि भोजन ले जानेवालों में भोजनगृह के प्रधान कार्यकर्ता भी हैं। महाराना के भोजन की ज़िम्मेदारी उन्हीं पर रहती है। इसी बीच में वहाँ के एक प्रतिष्ठित सरदार ने स्वर्गीय महाराना फ़तहसिंह के बनवाये हुए महल के उत्तरी भाग का भीतरी हिस्सा दिखलाया। इसकी सजावट अपूर्व थी। प्राचीन तथा अर्वाचीन चित्रों की यह चित्रशाला थी। सारी दीवारों पर क़ीमती शीशे जड़े हुए थे।

महल से निकलकर हम लोग महाराना के ख़ास महल के भीतर दाख़िल हुए। यहाँ सामने ही सोने का बना हुआ सूर्य का भव्य मुखमण्डल देखा। इसकी उज्ज्वल किरणें इसके भीतर किरचें लगाकर बनाई गई हैं। भीतर बिजली की बत्तियाँ हैं। रात को बत्ती

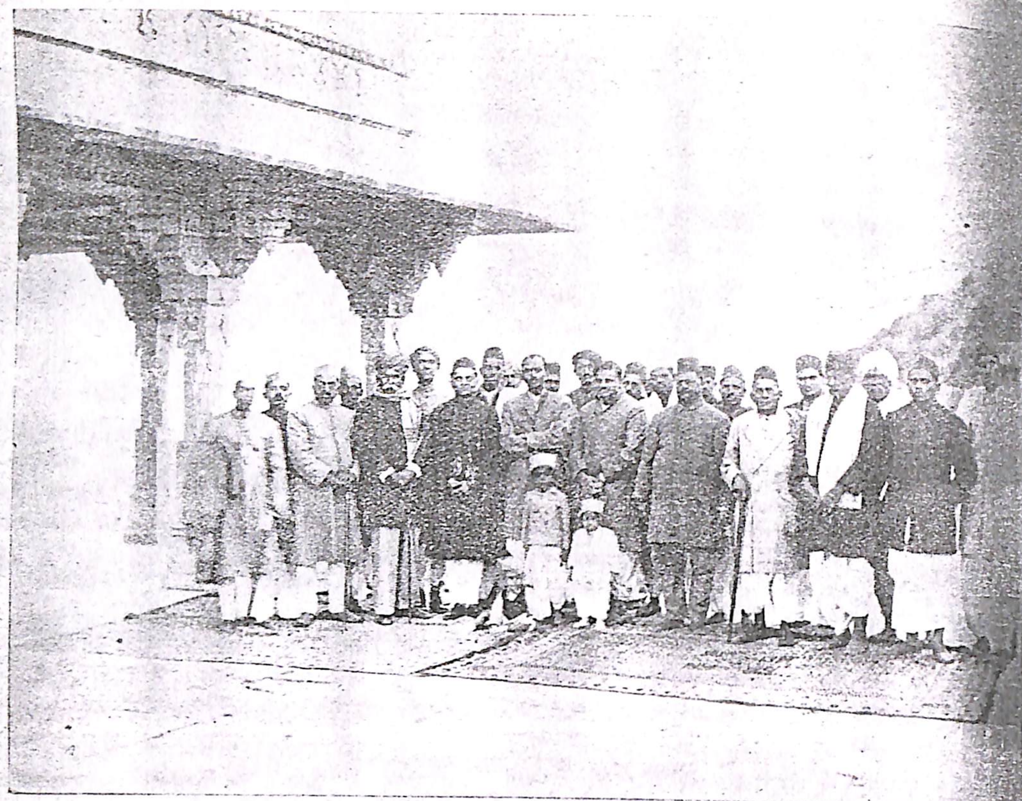
जल जाने से किरचें सूर्य की उज्ज्वल किरणों के समान चमकती हैं। सूर्य का यह मुखमण्डल किसी अच्छे कलाकार की कला-कृति है। महाराना के महल में सूर्य का यह भव्य मुखमण्डल विशेष महत्त्व रखता है। उदयपुर का राजवंश सूर्यवंशी है और सूर्य का उक्त भव्य रूप इसी बात का सूचक है। हम लोग घूमकर यहाँ की कला-कृतियों को देख ही रहे थे कि कुछ सरदारों ने महाराना के दर्शनार्थ चलने के लिए कहा। हम लोग सीढ़ियों पर चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे। सामने महाराना उत्तर की ओर मुख किये एक सुन्दर और सुसज्जित कुर्सी पर बैठे थे। उनके पीछे और बग़ल में सरदार खड़े थे। एक तिनके की भी आवाज़ नहीं होती थी। महाराना के सिर पर पाग थी। वे क़ीमती अँगरखे और हीरों-मोतियों से सुसज्जित थे। हम लोगों ने वहाँ के नियमानुसार एक-एक करके महाराना को नज़र भेंट की और सब पास ही बिछे क़ालीन पर बैठाये गये। इसके बाद श्रीयुत जोशी जी ने हम लोगों का एक एक करके महाराना से परिचय कराया। हममें से कई कवियों ने महाराना को कवितायें भी सुनाई। वे प्रसन्न दिखाई देते थे। इस प्रकार हम लोगों का समय महल में बड़े आनंद और प्रसन्नता के साथ बीता। हम लोग महाराना का अभिवादन करके बाहर आये।



[गोशाला तथा उसके कार्यकर्ता श्रीनाथद्वारा (मेवाड़)]

इसके बाद हम यहाँ के उदय-सागर में पानी के बीच में बने हुए महलों को देखने के लिए गये। उदय-सागर के दक्षिणी किनारे पर गगनचुम्बी महलों की क़तारें दर्शनीय हैं। यहाँ से हम जंगली जानवरों और सुअरों का युद्ध-गृह देखने गये। यह स्थल पहाड़ पर है। इस पर से सैकड़ों फुट नीचे भूमि पर हज़ारों सुअर अन्न खाते और लड़ते हुए दिखाई दिये। शाम हो चुकी थी। इसलिए हम लोग अपने स्थान पर लौट आये। उसी दिन शाम को यहाँ 'हिन्दीविद्यापीठ' का उद्घाटन ठाकुर श्रीनाथसिंह ने किया। इस सिलसिले में हिन्दी-प्रेमियों की एक सभा भी हुई, जिसमें उदयपुर के गण्य-मान्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल हुए थे।

मेवाड़ की इस यात्रा में चित्तौड़ का प्रसिद्ध और प्राचीन क़िला देखने की विशेष इच्छा थी। इसलिए सवेरे ही हम लोग चित्तौड़ की ओर रवाना होगये। रेल की इस यात्रा में उदयपुर और चित्तौड़ की भूमि अधिक उपजाऊ दिखाई पड़ी। इस बीच में पहाड़ उतने नहीं हैं जितने जंगल। रेल से—चित्तौड़-स्टेशन के दो-एक स्टेशन पहले से ही—ऊँची पहाड़ी पर मीलों के घेरे में चित्तौड़ का क़िला दिखाई देता है। क़िले पर महाराना कुंभा का कीर्ति-स्तम्भ दूर से ही यात्रियों का आह्वान करता हुआ जान पड़ता है। हम चित्तौड़ स्टेशन पर उतरे। स्टेशन से पश्चिम की ओर यहाँ का प्रसिद्ध गुरुकुल है। हम लोग स्टेशन से गुरुकुल में गये। यह गुरुकुल चित्तौड़ के क़िले के नीचे के भू-भाग पर मैदान में स्थित है।



[कांकरोली के हिन्दी-कवि-सम्मेलन में एकत्र हुए कुछ प्रतिष्ठित कवि। बीच में बालगोपाल के साथ कांकरोली-नरेश खड़े हैं।]

इसके संस्थापक स्वामी व्रतानंद जी संन्यासी बड़े उद्योगी, अध्यवसायी और विद्वान् व्यक्ति हैं। महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने चित्तौड़ में गुरुकुल स्थापित करने का जो स्वप्न देखा था उस स्वप्न को सत्यसिद्ध करने में स्वामी जी ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। गुरुकुल के आचार्य स्वामी व्रतानंद जी बाहर गये थे। हम लोगों का गुरुकुल के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने बड़ा सत्कार किया। लगभग एक घंटे के बाद ही हम लोग चित्तौड़ का क़िला देखने चले। हमारे साथ गुरुकुल के हिन्दी-अध्यापक श्रीकनक 'मधुकर' भी थे। इससे वहाँ जाने और ऐतिहासिक वस्तुओं की जानकारी में अधिक सुविधा हुई।

हम लोग ताँगे पर सबसे पहले गंभीरी नदी के पुल के पार गये। यह नदी मालवा-प्रांत से आई है और चित्तौड़ के पास बेड़च नदी से मिली है। इस पुल को सन् १३... ईसवी में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी के शाहज़ादे ख़िज़िर ख़ाँ ने बनवाया था। चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करने के बाद वह यहाँ का सूबेदार बनाया गया था। चित्तौड़गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है और मीलों के गिर्द में है। क़िले के चारों ओर पहाड़ी पर सात मील के घेरे की सुदृढ़ दीवार बनी हुई है। दीवार इतनी मज़बूत बनी है कि आज भी टस से मस नहीं हुई है। इस पर ८४ छोटे-बड़े तालाब हैं। यहाँ पैर रखते ही अतीत की कितनी ही ऐतिहासिक कहानियाँ, राजपूतों के बहादुरी के वृत्तान्त और सती स्त्रियों के जौहर की कथायें हृदय

पटल पर अंकित हो उठीं। समय कम था, इसलिए हम लोगों ने केवल विशेष विशेष स्थलों के ही दर्शन किये।

चित्तौड़ के क़िले में अब भी कुछ किसान आबाद हैं और खेती-बारी करते हैं। फिर भी अनेक महलों, मंदिरों और जलाशयों के विस्तृत ध्वंसावशेषों में वे छिपे-से प्रतीत होते हैं। जब हम लोग यह क़िला देखकर लौटे तब संध्या हो गई थी। सूर्य नहीं डूबा था, पर पश्चिम-दिशा के एक मेघखंड में वह उलझ गया था, जिससे सारी दिशा रक्तवर्ण हो उठी थी। उस समय क़िले में सन्नाटा छा गया था और हमारे ताँगे की गड़गड़ाहट के सिवा और कुछ सुनाई न पड़ता था। क़िले की विध्वंसता की मनहूसियत और उसकी पश्चिमी सीमा पर डूबते सूर्य की प्रज्वलित लाली हमें उस समय की याद दिला रही थी जब वीर राजपूत बाहर रण में कट मरे थे और भीतर महारानी पद्मिनी आदि नारियाँ लपटों के भेंट हो गई थीं। जो कुछ देखा था, उससे हमारे हृदय भरे हुए थे और प्रकृति की शोकपूर्ण मौनता हम पर इतनी व्याप्त हो गई थी कि हम सब भी अतीत के उन वीर शहीदों के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ मूक-भाव से चढ़ाते हुए नीचे आये।

इस यात्रा में काफ़ी दिन लग गये थे, इसलिए अन्य दर्शनीय स्थानों को देखने की इच्छा रह ही गई। उसी दिन हम लोग घर की ओर रवाना हो गये। बाँदीकुई, अजमेर और आगरा में ट्रेन बदलते हुए दो दिन में घर वापस आ गये। जाते समय पैसेंजर-ट्रेन की यात्रा से जितनी परेशानी उठानी पड़ी, आते समय मेल-ट्रेन ने मार्ग को उतना ही अधिक सुगम बना दिया।

संसार

लेखक, श्रीयुत व्रजमोहन गुप्त

किसे पहचाना रे संसार
हरा जिस जिसने तेरा त्रास?
हुए जो जो तुझ पर बलिदान
किया उनका तूने उपहास!

दिया ईसा को शूली-दंड,
यही पाने आया मंसूर;
उन्हें था तेरा हित ही ध्येय
गये तेरी झोली कर पूर!

हलाहल का प्याला सुकरात
गया पी तेरी इच्छा जान;
लिखा तेरे हाथों पर देख
अमर वर शङ्कर का बलिदान।

धधकते अंगारों का ढेर
दिया था ब्रूनो को उपहार,
यही तो था उसका अपराध
सुनी उसने सत् की झंकार!

सभी लेते वह कलिका तोड़
सुरभि का जिससे पाते दान,
मसलकर उसको देते फेंक
यही होता उसका सम्मान!

यहाँ जिसने भी खोजा प्यार
मिला उसको तुझसे अभिशाप!
कहाँ पाऊँगा तुझमें शांति
यहाँ फैला केवल परिताप!

उद्धार

लेखक, श्रीयुत अलखमुरारी हजेला, बी० ए०

नाटक के पात्र

विनीत--एक २० वर्ष का युवक
नरेश बाबू—विनीत के पिता
रमेश—विनीत का मित्र
मोहन—विनीत का मित्र
डाक्टर—
जुक्खू—विनीत का नौकर
सुमन—एक नवयुवती
विमला—एक विधवा युवती

(साढ़े आठ बजे रात का समय, विनीत का कमरा—विनीत सोफ़े से उठ बैठता है, इधर-उधर टहलने लगता है।)

विनीत—अबोध विमला! उसका उद्धार! आह! एक ओर उसका उद्धार, दूसरी ओर हृदय का प्रेम! सुमन के चरणों की रज! एक का ग्रहण, एक का त्याग—दो पथ और एक विनीत। किधर चलूँ? एक पर कंटक, दूसरे पर पुष्प।

(रमेश का प्रवेश)

रमेश—मित्र, आज भावुकता कैसे जाग पड़ी?

विनीत—(चौंक पड़ता है) कैसे? क्यों? स्वयं नहीं जानता। मेरे हृदय में तूफ़ान उठ रहा है। विमला अबोध है, उसका उद्धार करना मेरा कर्तव्य है, पर समझ में नहीं आता रमेश! आज एक प्रार्थना करता हूँ। क्या वरदान दे सकोगे?

रमेश—प्रार्थना! उससे जो सर्वदा आज्ञाओं का उपासक रहा। विनीत, यह बहुत ही भयानक शब्द है! तुम तो उदारहृदय हो, देव-तुल्य हो। बताओ, यह सेवक क्या सेवा कर सकता है?

विनीत—अधिक लज्जित न करो। पथ से भटक गया हूँ। प्रेम में उत्साह है, शक्ति है, त्याग है। किन्तु क्या मुझसे प्रेम का ही त्याग कराया जायगा? असंभव है, उसे भूल नहीं सकता। सब कुछ खोकर उसको पाया। उसी का त्याग सिखाते हो रमेश?

रमेश—(कुछ विचलित होकर) कुछ कह नहीं पाता। बहुत दिनों से विमला के विवाह की चिन्ता थी। वह भी तुमसे प्रेम करती है। न जाने कितनी बार उसके नेत्रों से तुम्हारे लिए प्यार टपका है? विमला सुन्दर है, कोमल है। उसका उद्धार आवश्यक है। एक तुम्हीं से आशा है। फिर उसका त्याग क्यों?

विनीत—इस कलुषित संसार में उसे अकेला न छोड़ सकूँगा। उद्धार का मार्ग तो साफ़ है। उन करों को स्वयं ग्रहण न कर तुम्हारे हाथों में दूँगा।

रमेश—(कुछ रुक कर) नहीं विनीत, वह तुमसे प्रेम करती है। (स्वगत) विमला! उससे न जाने कब से प्रेम करता हूँ, किन्तु नहीं। (प्रकट) वह तुम्हारे योग्य है।

(मोहन का प्रवेश)

मोहन—विनीत, बधाई! हार्दिक बधाई! आज तिलक चढ़ेगा। कैसी शुभ रात्रि है?

विनीत—तिलक! तिलक नहीं। मैं समझता हूँ, अग्नि सामने जल रही है, जैसे मेरी मृत्यु का आवाहन कर रही हो।

रमेश—विनीत का चित्त ठिकाने नहीं है। मैं तो बहुत सुन चुका हूँ, अब चलता हूँ। लेकिन ध्यान रहे, विनीत को इस समय एक भारी मानसिक पीड़ा है।

(प्रस्थान)

मोहन—रमेश क्या कह गया? मुझे समझा दो विनीत। मैं भी सब सुनूँगा।

विनीत—जाओ, खिझाने की चेष्टा मत करो।

मोहन—जानते हो विनीत? तुम्हारे पिता ने सरला के पिता को विवाह की अनुमति दे दी है। आज तुम्हारा तिलक है। उसी की बधाई!

विनीत—भूल—बड़ी भूल! अच्छा होता यदि यह सत्य न होता। न जाने कितना धन्यवाद देता।

मोहन—पिता जी ने तुम्हें जल्द बुलाया है।

विनीत—विवाह? विवाह? नहीं। पिता जी से कह दो, विनीत विवाह न कर सकेगा।

मोहन—हा विनीत! पिता जी कहते थे, विधाता ने विनीत और सरला को एक-दूसरे के लिए बनाया है।

विनीत—विधाता ने बनाया है। झूठ बात। विनीत और सरला, एक दूसरे के लिए! यदि यह सत्य भी हो तो वह स्वयं भूल गया। विनीत और........सरला—नहीं.. नहीं।

मोहन—सरला तो रूप और गुण की देवी है। फिर भूल कैसी?

विनीत—नहीं, विनीत के लिए नहीं। एक नहीं, ऐसी सहस्रों सरलायें उसे पथ से विचलित नहीं कर सकतीं। मैं विवाह न कर सकूँगा, यह समाचार जगत् को सुना सकते हो? विनीत को विवाह की प्यास नहीं।

मोहन—विवाह स्वर्ग का द्वार है।

विनीत—नहीं, बन्धन है। संसार मुक्ति चाहता है, किन्तु बन्धन में बँधकर। क्या ही अच्छा खेल है? मुक्ति का भिखारी बन्धन की इच्छा करे......

मोहन—कविता करते हो?

विनीत—निर्वाण का आदर्श सेवा है। सेवा तो कोई बहुत बड़ी वस्तु नहीं, भय-रूपी संकट नहीं, जीवन-बलि नहीं, किन्तु मनुष्य-जीवन का सार है।

मोहन—क्या इससे माता-पिता की इच्छा-पूर्ति हो सकेगी? संसार तुम्हें क्या कहेगा? स्मरण करो। माता ने अन्तिम समय अपनी टूटी हृद्-वाणी से यही इच्छा प्रकट की थी।

विनीत—संसार रुष्ट हो सकता है तो हो जाय, माता-पिता की इच्छा का यदि बलिदान हो तो हो जाय, जीवन का सुख छिन जाय, किन्तु विनीत......विवाह नहीं करेगा। वह पुजारी है।

मोहन—यह कैसा परिवर्तन है? ईश्वर की पूजा! कब से?

विनीत—हा! हा! हा! ईश्वर क्या कोई पूजने की वस्तु है? 'यदि ज्ञान से देखें तो ईश्वर ध्यान में दिखाई देता है।' किन्तु ऐसे एक नहीं सैकड़ों ईश्वर दिखाई दे सकते हैं। किसे किसे पूजा जाय?

मोहन—विनीत, इस तरह ईश्वर को चिढ़ाना तुम्हें नहीं भाता।

विनीत—नहीं मित्र, तुम भी तो कहते हो कि संसार सुन्दर है। हम सुन्दरता के पुजारी हैं। यदि वह सर्वसुन्दर हो तो उसकी पूजा करें, किन्तु यह तो कपोल-कल्पना है।

मोहन—क्यों अनुचित शब्दों का प्रयोग करते हो? अनेक पुस्तकों में उसके रूप का वर्णन है।

विनीत—(हँसकर) यही कि ईश्वर सर्वसुन्दर है। इसी से संसारी जीव उसकी पूजा करते हैं। जिसका रूप कभी देखा नहीं, जिसकी वाणी कभी सुनी नहीं, हृदय ने कभी परखा नहीं, उसे सुन्दर कह दूँ? नहीं। सब मिथ्या है।

मोहन—तो फिर?

विनीत—हाँ, ईश्वर से मिलना चाहते हो तो हे जगत् के भूले-भटको, आओ, मैं तुम्हें ईश्वर के दर्शन कराऊँगा। तुम्हें ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा, न बलिदान ही करना होगा। सुख से ही सुख का अनुभव होगा।

मोहन—ऐसा ज्ञान नहीं।

विनीत—प्रेम और सेवा से ईश्वर-मिलन होता है। (स्वगत) तुम सेवा करना...उसकी, तुम्हें सुख मिलेगा। ईश्वर के दर्शन होंगे, उन्हें पहचान लेना—(प्रकट) सामर्थ्य चाहिए। ईश्वर के दर्शन हो जायँगे।

मोहन—क्या सोचते हो, क्या कहते हो, कुछ स्पष्ट नहीं। तुम्हारी मानसिक गति बहुत भ्रंश प्रतीत होती है!

विनीत—ऐसा ही हो। सर्व शक्तियाँ अपने में पैदा कर लूँगा। यदि पहले से होंगी तो उनका अनुभव कर लूँगा। किन्तु विवाह नहीं करूँगा। यह बन्धन है, जिसमें बँधकर मनुष्य एक अथाह सागर में डूब जाता है, जिससे उबारनेवाला आज तक न देखा, न सुना। यही निर्णय है। मैं...वह—सुन्दर सुमन...उनकी सेवा...यही जीवन का लक्ष्य हो।

मोहन—पिता की आज्ञा, माता की आज्ञा और अपने कर्तव्य का उल्लंघन—विवाह से इनकार क्यों? तुम्हें इसका अधिकार है?

विनीत—जानते हो? जीवन कई मार्गों की एक भूलभुलैया है। जो सीधे रास्ते का पता लगा ले उसे उस पर चलने का अधिकार है। संसार उससे वंचित रहे, फिर भी वह छिनता नहीं—और यह अधिकार ऐसा है। दान माँगने से मिलता नहीं।

मोहन—विवाहित जीवन से हर्ष प्राप्त होता है। इसे खोकर अपना सुख स्वयं खो बैठोगे।

विनीत—मिथ्या है।

मोहन—हठ छोड़ दो विनीत नहीं तो पछताना होगा।

विनीत—(कुछ सोचकर) मोहन, मनुष्य में इच्छा होती है, शक्ति होती है और दृढ़ता होती है। एक के भी कम होने से मनुष्य-शब्द का प्रयोग अनुचित है। फिर मैंने तो सदैव दृढ़ता को महत्त्व दिया है।

मोहन—ईश्वर ने सब कुछ दिया—साथ में एक छोटा-सा हृदय दूसरों की पीड़ाओं का अनुभव करने के लिए। पिता की पीड़ा का अनुभव करना तुम्हारा धर्म है, जिसकी अवहेलना करके पुत्र को सुख और हर्ष के दर्शन नहीं होते।

विनीत—(हँसकर) ईश्वर ने हृदय दिया है, इस वाद-विवाद का समय नहीं—हृदय मिला है कायरता के लिए नहीं, मिथ्या पीड़ाओं पर आँसू बहाने के लिए नहीं, किन्तु अपनी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए। कर्तव्य से न हट सकूँगा...सुन्दर सुमन और...उसकी सेवा।

मोहन—सुमन को तो पा न सकोगे। कैसी मूर्खता है? विवाहित जीवन की बलि! किसलिए?

विनीत—(कुछ सोचकर)...एक अद्भुत कहानी है...जिसे पा न सके, उसकी सेवा-पूजा सब अनुचित है।—(आवेश में आकर कुर्सी से उठ बैठता है)...यदि चन्द्र को पा न सकूँ, उसे शीतल कहना छोड़ दूँ, उसके रूप का गान छोड़ दूँ, उसकी ओर देखना छोड़ दूँ।

(वेग में प्रस्थान)

मोहन—(कुछ देर चुप रहता है)—तो विनीत...विवाह न करेगा। मैं उसका, उसके पिता का जीवन सुखी देखना चाहता था। किन्तु नहीं। पिता को सुनना ही होगा, विनीत विवाह न कर सकेगा।

(नरेश बाबू का प्रवेश)

नरेश—क्यों मोहन, क्या सोच रहे हो?

मोहन—(चुप रहता है)

नरेश—विनीत कहाँ है? उससे भेंट हुई?

मोहन—हाँ, हुई। पिता जी, आपका सब कुछ लुट गया। इतने दिन विनीत के साथ रहकर भी उसे न [illegible] सका। वह विवाह न करेगा—सब चेष्टायें [illegible] उसे सुमन के प्रेम ने पागल कर दिया है। [illegible] सब भूल गया। इस विवाह का भार स्वयं [illegible] मैं देर तक ठहर न सकूँगा, आज्ञा दीजिए। [illegible] जाता हूँ।

(प्रस्थान)

नरेश—(बहुत देर तक चुप रहते हैं)—क्या [illegible] क्या हो गया? मान मर्यादा और प्रतिष्ठा [illegible] बैठा। सत्य है, वृद्धों के लिए यह संसार नहीं।

(रमेश का प्रवेश)

रमेश—पिता जी, विनीत कहाँ है? (विनीत [illegible] हिचकिचाता है)

नरेश—सुना रमेश, विनीत ने विवाह के लिए [illegible] साफ़ इनकार कर दिया है।

रमेश—आज उनका चित्त ठिकाने नहीं था। कुछ [illegible] और ठहर जाइए।

नरेश—किन्तु रमेश, सब तय कर चुका हूँ। आज [illegible] तिलक है। बाहर सब परिवार देखने को जमा है [illegible] संसार को क्या मुँह दिखाऊँगा?

रमेश—संसार से क्या मतलब? यह अपनी कहानी है।

नरेश—नहीं, उपाय सोचना होगा। वह उसी [illegible] सुमन के प्रेम में पागल है। जाति-बिरादरी और [illegible] सबकी लाज पर पानी फेर रहा है। (कुछ [illegible]) जो असंभव है उसी की चेष्टा कर रहा है। [illegible] भाग्य को धोखा दे रहा है।

(गुस्से में प्रस्थान)

रमेश—दुनिया एक खेल है, जिसका रंग-ढंग [illegible] जान पाता। कब किसकी जीत होगी, यह भी [illegible] पाता। मनुष्य कितना दुर्बल है?

(विनीत का प्रवेश)

विनीत—वह भाग्य-चक्र का आश्रय लेता है। कितना [illegible] है?...कर्तव्य, कार्य, सबकी शरण छोड़ देता है।

रमेश—मनुष्य तो प्रकृति से ही स्वाधीन है। इसकी [illegible] हेलना करने से उसे पाप लगता है। फिर भा[illegible] होने की चेष्टा क्यों करता है?

विनीत—वह अधम है, पतित है। जिस संसार [illegible] जीव उसी में अपने को शक्तिहीन समझता है [illegible]—स्वयं स्वाधीनता खोकर दुर्बल भाग्य की शरण लेता है।

रमेश—पहली भूल तो कर्तव्य-पथ से गिरने में करता है और दूसरी तब जब वहाँ से उभरने के लिए भाग्य का मुँह ताकता है।

विनीत—वह तो उसके अधीन है। भाग्य केवल उसके पिछले कर्मों का फल है, जो आगे के लिए सुन्दर बना सकता है। किन्तु जाने दो इस बात को। विनीत, बताओगे, तुमने क्या निश्चय किया है।

विनीत—निर्णय तो कई घड़ियों पहले ही कर चुका हूँ।

रमेश—वह अन्तिम क्या कुछ और रुदन होगा? मैं जानता हूँ, तुम सुमन से प्रेम करते हो, किन्तु तुम तो कर्तव्य के भी पुजारी हो। सुमन को शायद न पा सको, किन्तु विमला का उद्धार तो कर सकोगे।

विनीत—नहीं। बहुत ही कठिन राग है। न गा सकूँगा। बहुत ही विशाल धारा है। न ठहर सकूँगा। मैं नहीं चाहता, एक आँधी से दो नीड़ उजड़ जायँ, एक लहर से दो प्राणी बह जायँ...सुमन के चरणों की रज न छोड़ सकूँगा।

रमेश—और विमला? वह विधवा है। वैधव्य का उद्धार होगा।

विनीत—तुम पर भरोसा है। उसे पाकर खिल उठोगे। वह तुम्हारी सूनी रातों का चन्द्रमा बन जायगी।

रमेश—अपने ही वाक्यों को मिथ्या बना रहे हो, यह प्रमाणित कर रहे हो कि प्रेम अन्धा है।

विनीत—नहीं, प्रेमी के लिए केवल अपनी प्रेयसी को अपने प्रेम का परिचय देने में ही आनन्द है। सफलता-विफलता की ओर देखना उसका कार्य नहीं।

रमेश—किन्तु प्रेम प्रेमी को वह मदिरा पिला देता है कि वह अन्धा हो जाता है।

विनीत—नहीं, वह प्रेम को मदिरा नहीं समझता कि पीकर उसके खुमार को देखे। प्रेम उसके लिए अमृत है।

रमेश—(कुछ सोचकर) प्रेमी अभागा है, उसका जीवन दुखमय है। हृदय देकर हृदय-शून्य होने का अप-राधी है।

विनीत—सब मिथ्या है। उसका जीवन दुखमय हो, यह संभव नहीं। उसके हृदय है, किन्तु केवल हृदयेश्वरी के लिए। उत्साह, मधुरता और स्वाधीनता का संगठन है। फिर कैसा दुख? फिर भी वह अभागा है?

रमेश—तो यही अन्तिम निर्णय है?

विनीत—यदि वही प्रश्न है तो यही उत्तर है।...... अच्छा रमेश, जाओ, विमला को बुला लाओ।

रमेश—(चकित होकर) कैसा विचार है विनीत?

विनीत—कुछ नहीं। विधवा का उद्धार होगा।

रमेश—ऐसा ही हो।

(जाता है)

विनीत—(चुपचाप मेज़ पर हाथ रखकर बैठ जाता है, मेज़ पर पड़े हुए काग़ज़ पर दुखित मन से कुछ रेखायें बनाने लगता है) तमाम चित्र खींच डाले, दृश्य लिख डाले, रूप-रंग भर डाले, किन्तु और कहीं नहीं, केवल अपने हृदय में उस उज्ज्वल मुख, उस पवित्र आत्मा की छाया पा सका।

(झुक्खू का प्रवेश)

झुक्खू—भैया, बाबू जी रमेश बाबू को बुला रहे हैं।

विनीत—उन्हें यहीं भेज दो।

झुक्खू—जो आज्ञा।

(जाता है)

विनीत—हे हृदयेश्वरी! तुम कितनी सरल हो, कितनी सलोनी? तुममें बालोन्माद है और नवीन हर्ष। तुम मधुर हो, प्रिय हो। तुममें तरुण उत्साह है और अमर जीवन। तुम उज्ज्वल हो, पवित्र हो! सुमन, तुम रवि से भी अधिक तेजमयी और चन्द्र से भी अधिक शीतल हो।

(नरेश बाबू का प्रवेश)

नरेश—(स्वगत) कैसी भूल है? रमेश से मिलना था, विनीत से भेंट हो गई। उसे यह भेद कैसे सुना सकूँगा? (प्रकट) हे ईश, इस भूले बालक को बुद्धि दो, पथ दिखा!

विनीत—पिता जी, यह आप क्या कह रहे हैं? एक अनजाने से भिक्षा! पथ और उसे जिसे सर्वश्रेष्ठ देवी ने स्वयं सुनहरा पथ दिखा दिया है।

नरेश—तू अभी बालक है। इस विकराल पथ पर न चल पायेगा। इसमें वे गड्ढे हैं जिनमें गिरकर उठ न सकेगा, जगह जगह धोखा खायगा, घाट घाट पर

भटक जायगा, हर लहर में बह जायगा, सँभल न सकेगा।

विनीत—मैं मनुष्य हूँ, शक्ति में किसी से कम नहीं।

नरेश—भूल है। तू अभी एक नन्हा कुसुम है, जिसका रस हर तरह के भौंरे चख जायँगे और तुझे नीरस बना, एक मुर्झाया पुष्प जान सर्वदा के लिए त्याग कर पृथ्वी की धूलि बनने को छोड़ जायँगे। (पुत्र-प्रेम से गद्गद हो) मेरी आशाओं के लाल, तुझे एक भटका बालक जान (रोने लगते हैं), नहीं, एक उन्मत्त पागल मान तुझ पर न मालूम कितने कठोर शब्दों का प्रयोग होगा। उसे कैसे सह सकोगे?

विनीत—पिता जी, शब्दों में विभाग कैसा? वर्जित और निकृष्ट मनुष्य के खींचे हुए दो घेरे हैं, जो उसके घुमाने से घूमते और रोकने से रुकते हैं। यदि वह चाहे तो दोनों को एक ही ओर घुमा सकता है या दोनों को छुआता हुआ एक स्पष्ट रेखा खींच सकता है। तब किस बात का भय हो?

नरेश—(खिन्न होकर) ज़िद्दी बालक, जिसे प्रेम-मधु जानकर प्यास से पीड़ित हो रहा है उसी सागर में गिरकर तुझे विषपान करना पड़ेगा। पुत्र, यह हठ छोड़ दे।

विनीत—सत्य पथ का त्याग! किसलिए? पिता के दो शब्दों से विवश होकर या संसार का झूठा सुख देखने के हेतु?

नरेश—संसार और समाज में पिता का हास्य होगा, इसका भी ध्यान है विनीत?

विनीत—संसार और समाज क्या है? पाप की मूर्ति, दीन, मलीन और निर्दोषों पर अत्याचार और दुर्बल जीवों का सर्वनाश करनेवाली एक रचना, जीवन का सुख मिटानेवाली एक कृपाण और दुखी जीवों के रक्त से सिँची हुई म्यान।

नरेश—संसार जितना सुन्दर है, उतना ही कलुषित समझ रहे हो?

विनीत—हाँ, समझ गया। संसार एक प्रेम-स्वप्न है, जिसे देखने का अवसर प्रतिक्षण प्रतिमनुष्य को दिया जाता है। किन्तु कौशल तो उसे जीवन भर याद रखने में है, जिसे मूर्ख जन दो-चार पल तक ही देखकर भूल जाते हैं।

नरेश—विनीत! (गुस्से में) यह हठ! पछताना होगा।

(प्रस्थान)

विनीत—संसार तो केवल एक कामना है, किन्तु ... ध्यान में लाने का उपाय?—हाँ, है प्रिय प्रेम। (... देर टहलता है, फिर कुर्सी पर बैठ जाता है, ... सोचने लगता है)

हाँ, सुमन! तुम कहीं जा रही थी। ... देखकर लजा गई। नीलाम्बर वस्त्रों में तुम्हारा ... पूर्णचन्द्र के समान चमक उठा, सुन्दर हृदय ... चला, कर-कमलों में मेंहदी का रंग झलकने लगा ... अधर कुछ खुले, किन्तु सुन्दर दाँतों का स्वरूप ... फिर तुरन्त मिल गये, कपोल लज्जा से रँग गये, ... में जल आ गया—काले केश लज्जावश बड़ी ... से उज्ज्वल चरणों के स्पर्श में मग्न हो गये। ... सुन्दर रूप था? (उठता है, थोड़ी देर परेशानी की हालत में इधर-उधर टहलता है, फिर मेज़ के पास आकर खड़ा हो जाता है)

सुमन! तुम सरल हो, सलज्ज हो, सबल हो, सुन्दर हो, सुशील हो, जगत् की मणि हो। तुम ... प्रकाशपूर्ण मूर्ति हो जिस पर सर्वसंसार मुग्ध हो सकता है। तुम संसार की शोभा हो, मुझ अन्धे की आँखें हो, डूबती नौका की पतवार हो, सत्य जीवन का अवतार हो।

(फिर कुछ देर चुप रहता है)

इस लोक में न पा सका, किन्तु दूसरे में शायद दुर्लभ न हो। चलो। पिता की चिन्ता, कलंक, सब का अन्त होगा। उनकी मर्यादा बच जायगी—और—यदि हो सका तो प्रिये, वहीं मिलन होगा। यह ... अन्धकारमय जीवन की अन्तिम रात्रि हो। झुक्खू! झुक्खू!

(झुक्खू का प्रवेश)

झुक्खू—जी सरकार।

विनीत—ठहरो। (जाता है क़रीब के कमरे से विष की शीशी ले आता है) जाओ, थोड़ा पानी ले आओ।

(झुक्खू जाता है)

(विष की शीशी अलग हटा देता है)—किन्तु इससे पहले कुछ और करना होगा। अन्त से पहले

आदि की ओर देखना होगा। अभी तो विधवा का उद्धार शेष है।

(झुक्खू आता है)

झुक्खू—भैया, पानी मौजूद है।

विनीत—(पानी लेकर मेज़ पर रखता है) जाओ, शीशी अन्दर रख दो।

(झुक्खू शीशी ले जाता है)

(कुछ सोचने लगता है)

(झुक्खू फिर आता है)

झुक्खू—भैया, तुम्हारा तिलक है। बाहर तमाम लोग जमा हैं। तुम क्यों नहीं जाते?

विनीत—हाँ, जाऊँगा। तुम जाओ।

(झुक्खू जाता है)

सर्वदा के लिए जाऊँगा—इस लोक के बाहर। (पानी उठाता है, थोड़ा-सा पीकर रख देता है) यदि यही विष होता। (कुछ सोचकर) किन्तु नहीं सुमन, यह पहेली तुमने छेड़ी है, तुम्हें पूर्ण भी करनी होगी। (मेज़ पर से पत्र लिखने का काग़ज़ उठाता है, क़लम निकालता है)

सुमन, यह प्रथम और अन्तिम पत्र है। (लिखकर पढ़ता है) प्रिये सुमन,

(पत्र रख देता है) क्या लिखूँ.....(थोड़ी देर चुप रहता है, फिर लिखता है और पढ़ता है)

"यह पत्र एक तड़पते हृदय की विकल भावनाओं की सेज है, जो तुम्हारे विश्राम के लिए उन सजीव शब्द-रूपी फूलों से सजाई गई है, जिनको अश्रु जैसे निमल जल ने सींचा है।

"संभवतः कोई त्रुटि हो, कदाचित् तुम्हारा कोमल मन इस अप्रिय लेख को पढ़ते पढ़ते ऊब जाय तो उसे एक पगला उन्माद समझना।—परन्तु प्रेम... पागल—समझ में नहीं आता। उसमें सत्य है, जीवन है। फिर क्या यही पागलपन है? प्रेम और पागलपन दो रेखायें हैं, जो एक ही धरातल से बढ़कर समानान्तर रूप से एक-दूसरे के विरुद्ध हो जाती हैं।

(फिर कुछ सोचने लगता है) क्रोध भी तो संभव है—(कुछ लिखने लगता है, लिखकर पढ़ता है)

"यदि पढ़ते पढ़ते क्रोध आ जाय तो यही विनय है—केवल यही भीख—उस आभा को छिपाना नहीं—तुम्हारे वाक्य उस सुरीले कण्ठ को सहारा देंगे, हृदय में पवित्र अग्नि उत्पन्न हो जायगी, अधरों पर स्वर्ण की तेजमयी कान्ति बिखर जायगी, कोमल कपोलों की प्रभा तमतमा कर दुगुनी हो जायगी, नासिका पर नई छवि छा जायगी, नयनों पर चौगुनी आब आ जायगी, तेवर चढ़ जायँगे, भाल पर तीन रश्मियाँ खिल जायँगी, चन्द्रमुख पूर्ण रूप से चमक उठेगा, चमकते हुए केशों में बल पड़ जायँगे और प्रतिमा प्रकाशमान हो जायगी।

(पत्र मेज़ पर रख देता है).....प्रिये! और क्या लिखूँ.....हाँ! एक भेद लिखना है। (फिर लिखने लगता है लिख चुकता है तब पढ़ता है)

"यदि चार सखियों के बीच इसे पढ़ोगी तो यह पत्र उन झिलमिल तारों के बीच तुम्हारे चन्द्रमुख का पूर्ण प्रकाश बन जायगा। तुम्हारा चित्र और उज्ज्वल हो जायगा—अपनी सखियों के बीच एक पहेली बन जाओगी, जिसे सुलझाने के हेतु शायद वे मुझे मूर्ख बतायें, परन्तु नहीं, केवल प्रेयसी के ही अपशब्दों में आनन्द है, किन्तु हाँ, सखियों के लिए भी तो! वह तो केवल प्रिय का प्रतिबिम्ब है। प्रिया को जिनसे आनन्द मिले, जिनसे प्रिया की शोभा बढ़े, उनके वाक्य मधुर हों या कटु, उनमें भी प्रेमी के लिए हर्ष है, फिर यह कटु कहाँ—इस 'मूर्ख' शब्द में उत्साह है, मधुरता और सलोनापन ...चाहे वह प्रिया के मुख से निकले, चाहे उसके आभूषणों की झंकार से।

(पत्र पढ़कर मेज़ पर रख देता है)—प्रिये, सारा ज्ञान भूल गया। क्या लिखना था, क्या लिख रहा हूँ? कुछ ज्ञात नहीं, किन्तु हाँ (फिर पत्र उठा लेता है, आगे लिखने लगता है। लिख चुकता है तब पढ़ता है)

"पत्र पढ़कर, केवल एक बार पढ़कर फेंकना नहीं। यह किसी की लेखनी का नहीं, प्रत्युत एक प्रेमी के हृदय की स्फूर्ति है, जो इसलिए व्यथित नहीं कि प्रेमिका को पा नहीं सकता या उससे मिल नहीं सकता, बल्कि जो अपनी प्रेयसी को उसके रूप, गुण का ज्ञान

कराने, उसको जगत् में सबसे उच्च स्थान पर ले जाने और उसकी क्रोधित आभा देखने में ही मुग्ध है।

"सुमन, जब जब इसे पढ़ोगी एक सान्त्वना की रेखा तुम्हारे श्यामल नयनों से खिँचकर उस लोक में भी मेरे हृदय से आ मिलेगी।

(फिर पत्र रख देता है)...(कुछ सोचता है)... शायद तुम्हें कष्ट हो— (फिर लिखता है, लिखकर पढ़ता है)

"तुम्हारे नाम यह मेरा प्रथम और अन्तिम पत्र है। इसे सोचना नहीं—पढ़कर भूल जाना। मैं केवल तुम्हारे रूप का भिखारी नहीं, किन्तु तुम्हारी अमर रज का पुजारी हूँ।

तुच्छ विनीत जिसे तुम भूल सकती हो पत्र लिख चुका, कुछ शेष नहीं, समझ लेना सुमन, अन्तिम है......।"

किन्तु हाँ (पत्र मोड़कर लिफ़ाफ़े में रखता है) पता शेष है—अच्छा (लिखता जाता है, पढ़ता जाता है) श्री सुमनकुमारी बी० ए० (लिखकर लिफ़ाफ़ा मेज़ पर रख देता है) जुक्खू! जुक्खू!

(जुक्खू आता है)

जुक्खू—जी भैया।

विनीत—सुमनकुमारी का निवास तो जानते हो। जाओ, जल्दी यह पत्र दे आओ।

जुक्खू—(कुछ हँसकर) क्या भैया तिलक में बुलाना भूल गये थे? इसी से पत्र भेज रहे हो?

विनीत—(गम्भीरतापूर्वक) हाँ जुक्खू, लेकिन ध्यान रहे, पत्र उन्हीं को मिले।

जुक्खू—अच्छा भैया।

(एक दरवाज़े से जाता है)

विनीत—जाओ। सुमन को ही देना। उसे पढ़ लेना सुमन। वही अन्तिम है।

(बड़े वेग में दूसरी ओर से मोहन का प्रवेश)

मोहन—भारी अनर्थ हुआ! समझ में नहीं आता विनीत, कैसे सुनाऊँ!

विनीत—क्या हुआ मोहन?

मोहन—उसे सुन न सकोगे। ईश्वर कितना निर्दय है? तुम्हारे जीवन का सार छीन लिया।

विनीत—(घबरा जाता है) यानी—

मोहन—सुमन का देहान्त हो गया।

विनीत—तो मोहन, मैं भी जाऊँगा, वहीं जाऊँगा। उन्हें ढूँढ़ने—उन चरणों का प्रथम प्यार लेने।

मोहन—विनीत, इस समय कहाँ जाओगे? उसका शरीर तो पोस्ट-मार्टम के लिए कलकत्ते गया। आत्म-हत्या का शक हुआ है।

(नरेश का प्रवेश)

नरेश—कैसा भयानक समाचार है! विनीत, इसे कैसे सुन सकेगा?

विनीत—पिता जी, यह असह्य है। इससे अच्छा था कि थोड़ी देर बाद—केवल कुछ घड़ियों के पश्चात्.....

नरेश—पुत्र, यह ईश्वर की लीला है, किसी प्रकार सहना ही होगा।

विनीत—पिता जी, यह उतना आसान नहीं, जितना आप विचार करते हैं।

नरेश—मनुष्य की शान्ति के लिए ही उसने गृहस्थ-जीवन रचा है। शायद विमला को पाकर तुम इसे भूल सको। चलो पुत्र, आज तुम्हारा तिलक है। रुदन से उसे अशुभ न करो।

विनीत—नहीं पिता जी, मुझसे न हो सकेगा। चित्त अस्थिर हो गया है।

नरेश—क्या कहते हो? कर्तव्य से पीछे हटते हो, चित्त का बहाना रचते हो। कैसी चेष्टा है? पिता के लगाये का प्रबन्ध! चलो। वीरों की भाँति सदा के लिए विमला को ग्रहण करने का प्रण करो।

विनीत—वज्रपात हुआ है! भूलने योग्य दुख नहीं।

नरेश—मनुष्य को कायरता शोभा नहीं देती।

विनीत—क्या सोचा था, सब भूल गया। क्या कह रहा हूँ, इसका भी ज्ञान नहीं। अच्छा, मुझे जाने दीजिए। अभी एक उद्धार शेष है।

(जाना चाहता है)

नरेश—कहाँ जाओगे विनीत?

विनीत—जाता...वहीं जाता...किन्तु नहीं, जहाँ कर्तव्य ले जायगा। यह अन्तिम हो! सुमन, सर्वदा तुम्हारे चरणों की ओर देखा किया। आज क्या पदचिह्न पहचान सकूँगा? पिता, यह संसार नीरस है। इसमें जीवन नहीं।

(वेग में प्रस्थान)

मोहन—क्या सोचा था, क्या हो गया?

नरेश—कितनी चेष्टाओं के बाद समझ में आया? परन्तु वह भी भूल।

मोहन—मित्र से धोखा! प्रियतमा की मृत्यु की झूठी सूचना! किस लिए मोहन? कितना अधम है, कितना नीच?

नरेश—नहीं मोहन, तुमने यह सब उसका जीवन सुखी बनाने के लिए किया, किन्तु यदि भाग्य ही उसके विरुद्ध हो......हाँ, दुख है केवल इसका कि अन्तिम अवस्था में विनीत ने मुझे समाज में लज्जित किया, मेरे स्वीकृत किये हुए प्रस्ताव से इनकार किया।

मोहन—नहीं पिता जी, आप भूल गये। विनीत का प्रेम आदर्श है।

नरेश—हो न सकेगा। विनीत को विवाह के लिए बाध्य होना होगा।

(जाता है)

मोहन—मित्र से धोखा! यह कलंक है जो सहस्रों बार धोने से भी न छूटेगा। प्रेम में शक्ति है, सत्यता है।

(दूसरे दरवाज़े से रमेश और विमला का बहुत वेग में प्रवेश, दो नौकर विनीत को सँभालकर उठा ला रहे हैं और सोफ़े पर लिटा देते हैं)

रमेश—मोहन, मेरा संसार लुट गया! इन्हीं करों से अपना जीवन खो दिया। भाई विनीत के भारी चोट आई है! मैं विमला को ला रहा था, मोटर तेज़ी में थी।......ये उन्मादियों की भाँति वहीं जा रहे थे। मोटर धीमा किया, रोक न सका...ये गिर पड़े। अन्य जन समझ तेज़ी से उठाने उतरा......तब सुनाई दिया—"यही अन्त हो......किन्तु विमला का उद्धार"। मैं पहचान गया, जल्दी से यहाँ ले आया।

(विनीत को सँभालता है)

मोहन—(घबराकर विनीत को पकड़ लेता है, कुछ सँभाल कर लिटा देते हैं। विनीत पीड़ा से चिल्लाता है, मोहन चुपचाप अलग खड़ा हो जाता है)।

विमला—(विनीत के समीप आकर) हे भगवान्, अपनी आँखों से क्या देख रही हूँ? विनीत, प्यारे विनीत, एक बार आँखें खोल दो। देखो तुम्हारी सेविका तुम्हारे लिए कितनी व्याकुल है। डाक्टर को बुलाओ।

विनीत—(स्वगत) तुमने सुधा से स्नान किया था। कितनी मधुर थीं, कितनी सुन्दर, कितनी प्रिय और कितनी सरल!......निद्रा में ही आकर निशा देवी ने तुम्हारा शृंगार किया था! तुम सोकर जागी थीं—आँखों ने निद्रा का मधुपान किया था, उषा ने लाल वस्त्र पहनाये थे, हृदय पर मुस्कान खिली थी। चाल हंस के समान मतवाली थी, वाणी कोकिल के समान प्रिय......नेत्र सजल थे, पग सुगम थे, कण्ठ सुन्दर था, शब्द धीमे थे......मुख पर सूर्य का तेज था, अधरों पर चन्द्र की प्रतिमा, कपोलों पर उषा की लालिमा, नासिका पर मधुर पुष्प की कुसुमता और केशों में बाल-उन्माद .....करों में कमल की आभा और चरणों में एक नया यौवन।......

विमला—ये क्या बक रहे हैं? मानसिक अवस्था कैसी हो गई है? हाय विनीत!—जल्दी से डा—क्ट—र—ज—ल—दी—बुलाओ।

रमेश—जाओ मोहन, चोट बहुत गहरी है। जल्दी डाक्टर को ले आओ। किन्तु इससे भी अधिक मानसिक चोट है। मैं यहीं हूँ।

विनीत—डाक्टर! अब डाक्टर मिलना कठिन है। ढूँढ़ लूँगा।

विमला—एक वाटिका उजड़ चुकी थी। सहारा प्रतीत हुआ था......पर आज वह भी दुर्लभ है।

मोहन—(कुछ देर घबराया हुआ चुप खड़ा रहता है, फिर स्वयं चला जाता है)।

रमेश—विनीत, विमला आई है।

विमला—रहने दो। मुझ अभागिनी की याद न दिलाओ।

विनीत—हाँ, पहचान लिया......विमला, ज़रा समीप आ जा। सिरहाने बैठ जा। (विमला बैठ जाती है) मैं जानता हूँ, तुम्हारा प्रेम कितना उच्च है और जीवन कितना स्वच्छ, किन्तु इसका सुलझाना एक भारी रहस्य है। मैंने तुम्हें भरोसा दिया था, उद्धार का प्रण किया था, किन्तु यह अन्तिम है।

विमला—विनीत बाबू, क्या कहते हो ?......कितनी बार आत्मघात को जी चाहा था, फिर भी एक एक आशा में लिप्त होकर कितनी धीरता से अब तक जीवन व्यतीत किया। किन्तु अब शक्ति से अधिक भयानक है। ऐसा ज्ञात होता है, संसार सूना है, प्रलय निकट है।

विनीत—(पीड़ा का अनुभव करके) नहीं विमला। ज्ञात है, इस समय तुझे क्यों बुलाया है ?

विमला—यह दुःखमय दृश्य दिखाने को। इसलिए कि अपनी आँखों से अपना सर्वनाश देखूँ !

विनीत—नहीं विमला......

विमला—विनीत, इस जीवन से ऊब गई हूँ। इतना भयङ्कर तो कभी न था।

विनीत—आज की रात बड़ी सुहावनी है। इस जीवन का उद्धार। आओ रमेश, सर्वदा के लिए तुम्हें यह कर सौंप दूँ (विनीत के एक ओर विमला बैठी है। रमेश, सोफ़े का सहारा लेकर विनीत के पीछे खड़ा हो जाता है)—(विनीत पीड़ा का अनुभव करके करवटें बदलने की चेष्टा करता है)—किन्तु ध्यान रहे, यह एक दुखी हृदय है, यह अङ्ग कोमल है, इसे दुःख न होने पावे। सेवा आदर्श हो। यह देवी-हृदय है, जिससे सुन्दर स्थान रहने को न मिल सकेगा।

विमला—विनीत बाबू, क्या कह रहे हो ?

विनीत—रमेश तुमको प्यार करते हैं।

विमला—क्या अब भी इस हृदय की वाणी को नहीं समझ पाये ?

विनीत—कोई भेद है ?

विमला—हाँ विनीत, तुम्हारे अन्त के साथ मेरा भी......

विनीत—स्वयं प्रेम-परिचय दे चुकी। अब एक भिक्षा है। अन्तिम। दान दोगी ?

(विमला सिसकती है)

अच्छा लाओ हाथ। (विमला कुछ सोचते सोचते विनीत के हाथ में अपना हाथ रख देती है) रमेश, तुम भी दो। (रमेश वैसा ही सोफ़े के पीछे खड़ा रहता है और विनीत के ख़ाली हाथ में अपना हाथ देकर विमला की ओर देखने लगता है) ये दोनों प्यारे हाथ...इन हाथों का संयोग दो प्राणियों के हृदयों को मिला दे (दोनों हाथों को प्यार करता है) विमला, रमेश तुमसे प्रेम करते हैं। इस अँधेरे [illegible] में दोनों एक-दूसरे के नेत्र बन जायँ।

(सुमन का प्रवेश)

सुमन—(घबराई हुई आवाज़ में) विनीत ! विनीत ! [illegible] जीवित हो तो एक बार पुकार दो 'सुमन'।

(रमेश विनीत के पास से हटकर अलग कुर्सी पर बैठ जाता है। विनीत अचरज में आ जाता है, उठने की चेष्टा करता है, थोड़ा-सा उठ पाता है। सुमन पास आकर उसी सोफ़े पर बैठ जाती है। विमला यह सब देखकर विनीत के सोफ़े से उतर कर फ़र्श पर बैठ जाती है)।

विनीत—सुमन, यदि इस संसार में हो तो एक बार कह दो 'यह स्वप्न नहीं', 'यही उद्धार है'।

सुमन—क्या कहते हो विनीत ? तुम्हीं से मिलने यहाँ आई—शायद इस आशा से कि फिर न मिल सकूँ।

विनीत—(सुमन का हाथ पकड़ कर और समीप [illegible] लेता है) सुमन, तुमसे मिलने, केशों को बनाने, ([illegible] का अनुभव करता है) हृदय को एक बार, [illegible] एक बार कुसुम-हार पहनाने की अभिलाषा न [illegible] कब से उदय हुई........कब अपना बालापन गँवाया और कब......................

सुमन—रहने दो, विनीत, संसारी जीवन बहुत ही विकराल है। सब सुन चुकी हूँ। कई बार मुझे शक हुआ था, [illegible]

विनीत—हाँ सुमन, जीवन एक अनोखा खेल है, फिर भी कितना सुन्दर, कितना स्वच्छ ?.........यह प्रथम मिलन है।

सुमन—तुम्हारा पत्र पढ़कर मैं घबरा गई। आत्महत्या का भ्रम हुआ......सोचा, यदि हो सके तो एक प्राणी का उद्धार कर दूँ, जीवन बचा लूँ।

विनीत—आत्महत्या ! आत्महत्या !

सुमन—तो क्या सचमुच भ्रम था ?

विनीत—नहीं। किन्तु हाँ, जब तुम, तुम्हारा रूप और गुण सब अमर हैं तब दूसरे लोक की सैर की क्या अभिलाषा ? (विकट पीड़ा अनुभव करके) हाँ सुमन,—

सुमन—अच्छा होता विनीत, यदि डाक्टर के आने तक चुप रहते। तुम्हें बोलने में कष्ट हो रहा है।

विनीत—नहीं सुमन, ऐसा प्रतीत होता है, मानो संसार तुम्हारी पवित्र आत्मा की, स्वच्छ हृदय की, सुशील कण्ठ की, मधुर शब्दों की महिमा का वर्णन कर रहा हो.....(आवेश में आकर उठ बैठता है)...... पवन, मुझे भी ले चल...मैं भी वहीं गाऊँगा.. ....।

[illegible]—अन्तिम बार ईश्वर का स्मरण करो।

विनीत—(सुमन की ओर देखकर बार बार उठने की चेष्टा करके) हाँ सुमन, मैं निस्सहाय, नितान्त निर्बल, सुख से वञ्चित, दुःख से पीड़ित, सदा से प्रिय रज का अभिलाषी हूँ......अपनी आराध्य देवी का पुजारी हूँ।

सुमन—कभी अनुभव न कर पाई कि इतना प्रेम करते हो विनीत !

(नरेश, मोहन और डाक्टर का प्रवेश)

मोहन—विनीत, डाक्टर साहब आये हैं, पल भर को स्थिर हो जाओ।

(डाक्टर आगे बढ़कर अच्छी तरह देखता है)

विनीत—(करवटें बदलकर, पीड़ा का अनुभव करके) पिता जी, मुझे डाक्टर की आवश्यकता नहीं—अब निकट है।

डाक्टर—नरेश बाबू, बहुत देर हो चुकी। चोट बहुत भयानक है। कोई आशा नहीं—देखिए ! (मरहम-पट्टी करता है) चोट सीने पर आई है। हृदय की धड़क अब तक कम नहीं हुई। किन्तु इनके बातें करने से तो रोग और बढ़ेगा।

मोहन—डाक्टर साहब, इससे भी अधिक चोट मानसिक है।

रमेश—कभी कभी तो वैसे ही बकने लगते हैं, मना करने पर भी नहीं मानते।

डाक्टर—पल-विपलों के ही मेहमान हैं।

विमला—डाक्टर साहब......किसी भाँति..(कण्ठ रुँध जाता है)।

नरेश—(विनीत के समीप आकर उसकी चोट को बार बार देखता है) पुत्र, सबसे बड़ा अपराधी मैं हूँ। पागल हो गया था। मस्तिष्क खो बैठा था।......तुम्हारे विवाह की इच्छा से तुम्हारी प्रतिज्ञाओं का दमन—मूर्ख पिता को क्या अधिकार था ?.........भारी भूल हुई।

विनीत—पिता जी, आपकी भूल नहीं। एक दृश्य को देखने के—(पीड़ा से व्याकुल हो जाता है, फिर कुछ देर बाद) कई कोण होते हैं—क्षमा कीजिए (बहुत जल्दी जल्दी साँस लेने लगता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है)...अधिक...बोलने को...शक्ति नहीं।

सुमन—आज की रजनी कितनी भयानक है !

विनीत—(हँसने की चेष्टा करता है) ऐसा...न कहो। (साँस की तेज़ी और पीड़ा से विकल होकर) मेरा अन्तिम...समय है (सुमन विकल होकर विनीत के हृदय पर हाथ रखती है, विनीत एक-सा सुमन की ओर देखता है)......मेरे......विवाह का......शकुन है सुमन।

(पटाक्षेप)

गीत

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

रहे प्रीति की रीति हमारी।

बनकर सजल श्यामघन सींचें,
हम सबके उर की फुलवारी।
बरसावें अविरल जलधारा,
शीतल हो यह अगजग सारा;

सुख की बहे समीर रसीली,
हरी हो उठे क्यारी क्यारी।
तप्त-हृदय को कंठ लगावें,
तन मन जीवन प्राण जुड़ावें;
सब अपना हो, अपना सबका,
रहे न गति-मति न्यारी न्यारी।

महात्मा गांधी की नवीन शिक्षा-योजना

लेखक, श्रीनाथसिंह

महात्मा गांधी की नवीन शिक्षा-योजना में बहुत बड़ी क्रान्ति छिपी हुई है। उनकी इस योजना पर ज़रा भी ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने देश में जो अशिक्षा का अन्धकार छाया हुआ है उसको तुरन्त दूर करने का एक सुन्दर और सहज-गम्य मार्ग निकाल लिया है। उनकी इस योजना में करोड़ों भारतीयों को साक्षरता प्रदान करने का ही नहीं, उनके अन्दर फैली मुर्दनी दूर करके उन्हें स्वावलम्बी बनाने का अद्भुत बल भरा हुआ है। यह प्रसन्नता की बात है कि महात्मा गांधी इस ओर एक ऐसे समय में प्रयत्नशील हुए हैं जब भारत के सात प्रान्तों में जहाँ कांग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित हैं, वे अपना पूरा प्रभाव डाल सकते हैं।

इस योजना की सबसे बड़ी बात यह है कि शिक्षा किसी न किसी उद्योग के द्वारा दी जायगी और राष्ट्र के सब बालकों को दी जा सकेगी। जो भारतीय बालक यह शिक्षा प्राप्त कर लेंगे वे कदापि बेकार न रह सकेंगे, क्योंकि उन्हें काम देने का भार राज्य पर रहेगा। यह तो इसका प्रत्यक्ष परिणाम होगा। इसका एक परिणाम यह भी होगा कि शिक्षितों के हृदय में हाथ के काम के प्रति आदर उत्पन्न होगा और उच्च और निम्न पेशे का भेद-भाव मिट जायगा।

महात्मा गांधी की इस योजना पर विचार करने के लिए १९३७ के अक्टूबर में वर्धा में एक अखिल भारतीय शिक्षा-परिषद् हुई थी, जिसका नेतृत्व भी महात्मा गांधी ने ही किया था। महात्मा जी का निमंत्रण पाकर इस परिषद् में लगभग १०० शिक्षा-शास्त्री उपस्थित हुए थे, जिनमें कांग्रेसी शिक्षा-मंत्री, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के संचालक और अन्य विज्ञ स्त्री-पुरुष थे। परिषद् की चार बैठकें हुई और उनमें शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर वाद-विवाद हुआ। अन्त में सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि देश के सब बच्चों को मातृभाषा द्वारा सात बरस तक अनिवार्य्य रूप से निःशुल्क शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए और इस शिक्षा का मध्य-विन्दु कोई न कोई उत्पादक दस्तकारी होना चाहिए। यह भी निश्चय किया गया कि दस्तकारी का चुनाव बच्चों के वातावरण और स्[illegible] परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया जाय। परिषद् [illegible] भी आशा की कि इस ढङ्ग से क्रमशः अध्यापकों के [illegible] का व्यय भी निकल आयेगा। इन मंतव्यों के अनु[illegible] पाठ्य-क्रम तैयार करने के लिए महात्मा गांधी की [illegible] से डाक्टर ज़ाकिरहुसैन के सभापतित्व में एक शिक्षा-[illegible] नियुक्त की गई। परिषद् का कार्य्य-विवरण और [illegible] शिक्षा-कमिटी की रिपोर्ट दोनों चीज़ें प्रकाशित हो गई [illegible] कार्य्य-विवरण के साथ 'हरिजन' में इस विषय के [illegible] समय पर प्रकाशित होनेवाले महात्मा गांधी के लेख [illegible] दिये गये हैं। इससे योजना की सारी पक्ष-विपक्ष की [illegible] भी मालूम हो जाती हैं और उसका आशय भी [illegible] जाता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस [illegible] विचार हो और उसके अनुसार कार्य्य आरम्भ किया जा[illegible]

यदि इस पद्धति के अनुसार कार्य्य आरम्भ हो [illegible] तो बालक-बालिकाओं को सबसे पहले यह अनुभव [illegible] उनके सिर से एक बहुत बड़ा बोझा उतर गया, [illegible] उन्हें स्कूल में सिर्फ़ साढ़े पाँच घंटे रहना पड़ेगा। [illegible] ने स्कूल का कार्य्य-विभाजन करने की यह [illegible] की है—

बुनियादी दस्तकारी	३ घंटा २०	मिनट
संगीत, ड्राइङ्ग और हिसाब	४०	"
मातृभाषा	४०	"
समाज-शास्त्र और साधारण विज्ञान	३०	"
व्यायाम	१०	"
बीच की छुट्टी	१०	"

इस क्रम से बच्चों को सिर्फ़ सात वर्ष तक शिक्षा [illegible] जायगी। आजकल की प्राइमरी, अपरप्राइमरी और [illegible] स्कूल की सारी शिक्षा इन्हीं सात वर्षों में दे दी जा[illegible] और वह प्राथमिक शिक्षा कही जायगी, जिसका प्रा[illegible] लड़के-लड़कियों की ७ वर्ष की आयु से होगा।

इस प्रकार ७ वर्ष की शिक्षा समाप्त करके जो वि[illegible] स्कूलों से निकलेंगे उन्हें जो दस्तकारी सिखाई जा[illegible] उसमें उन्हें इतनी योग्यता हो जायगी कि वे पढ़ाई [illegible]

[illegible]ने के बाद उसे पेशे के तौर पर अपना सकेंगे। उदा[illegible]हरण के लिए जो लड़का कताई-बुनाई सीखेगा वह स्कूल [illegible]ने पर इस योग्य हो जायगा कि अपना चर्खा आप [illegible] सकेगा और अपना ताना-बाना आप बना लेगा, [illegible] रुई धुन सकेगा, सूत कात सकेगा और कपड़ा बुन [illegible]गा। हाथ के काम की शिक्षा देने के लिए कमिटी ने [illegible] दस्तकारियों की सूची तैयार की है वे ये हैं—कताई-[illegible], बढ़ईगीरी, खेती, फल और साग-सब्ज़ी पैदा [illegible], चमड़े का काम और कोई भी दस्तकारी जो भौगो-[illegible] वातावरण के अनुसार अनुकूल होगी। किन्तु कमिटी [illegible] अभी पाठ्य क्रम सिर्फ़ कताई-बुनाई का ही तैयार किया [illegible]। कदाचित् यह इसलिए कि यह एक परमावश्यक कला [illegible] और इसके शिक्षक तैयार करने में कठिनाई नहीं होगी।

उपर्युक्त क्रम से शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी मातृभाषा [illegible] इतना ज्ञाता हो जायगा कि वह छपे हुए निबन्ध, पत्र-[illegible] पढ़ सकेगा, पुस्तकालयों से लाभ उठा सकेगा, [illegible] और सही लिख सकेगा, अपना निजी पत्र-व्यवहार [illegible] सकेगा और नामीगिरामी लेखकों की कृतियों का भी [illegible]नन्द ले सकेगा। गणित में उसे इतनी योग्यता होगी [illegible] घरेलू या सामाजिक जीवन के हिसाब-किताब और नाप-[illegible] समझ सकेगा और बही-खाते तथा व्यापार-धंधे [illegible] भी थोड़ी जानकारी रख सकेगा। समाज-शास्त्र की [illegible] उसे इस प्रकार दी जायगी कि उसे मानव-समाज के [illegible] और भारतवर्ष की उन्नति से दिलचस्पी पैदा हो [illegible] नागरिकता के हक़ों का उसे ज्ञान हो और सब धर्मों [illegible] वह आदर करे। उसे साधारण विज्ञान का भी [illegible] प्राप्त रहेगा। वनस्पति-विज्ञान, पशु-विज्ञान, शरीर-[illegible]न, आरोग्य और सफ़ाई, कसरत, रसायनशास्त्र, [illegible] का इल्म आदि का भी उसे ज्ञान रहेगा। ड्राइङ्ग [illegible] शिक्षा का फल यह होगा कि बच्चों को प्रकृति की ओर [illegible] की ख़ूबसूरत चीज़ों को जानना और उनसे आनन्द [illegible]ना आ जायगा। दस्तकारी में जो चीज़ें बनानी हैं [illegible] ड्राइङ्ग भी वे कर सकेंगे। संगीत का फल यह होगा [illegible] बच्चों को अच्छे गीत याद हो जायँगे और उन्हें अच्छे [illegible] की पहचान और शौक़ हो जायगा।

इस योजना के द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा मातृभाषा के ही [illegible] दी जायगी। अँगरेज़ी इच्छित विषय में भी न रहेगी। उसकी जगह पर 'हिन्दुस्तानी' की शिक्षा दी जायगी, जिससे बच्चे बड़े होने पर हिन्दुस्तान के दूसरे सूबों के साथ आसानी से काम कर सकें। जिन इलाक़ों में हिन्दुस्तानी बोली जाती है वहाँ बच्चों को नागरी और फ़ारसी दोनों लिपियाँ अनिवार्य्य रूप से सीखनी पड़ेंगी। परन्तु जहाँ सूबे की मातृभाषा में शिक्षा दी जायगी, वहाँ बच्चों को एक लिपि चुनने का अख़्तियार होगा।

पाँचवीं कक्षा तक बालक-बालिकाओं के लिए एक ही प्रकार का कोर्स होगा। हाँ, चौथे और पाँचवें दर्जे में लड़कियों को साधारण विज्ञान की जगह घर के काम-काज की शिक्षा दी जायगी। छठे और सातवें दर्जे में लड़कियों को यह अधिकार होगा कि वे दस्तकारी की जगह घर-गिरस्ती के काम का ऊँचा कोर्स लें।

कमिटी ने अध्यापकों की शिक्षा का भी तीन वर्ष का कोर्स रक्खा है। यह शिक्षा इस प्रकार दी जायगी कि अध्यापक योग्यतापूर्वक बालकों को वह शिक्षा दे सकें जिसका ऊपर उल्लेख हुआ है। इस नवीन शिक्षा-प्रणाली में परीक्षा का भी ढङ्ग बदल जायगा। वर्तमान पद्धति के अनुसार परीक्षा न होगी। काम के ठीक ठीक हिसाब के आधार पर अध्यापकों की एक कमिटी विद्यार्थियों को एक दर्जे से दूसरे दर्जे में तरक़्क़ी देगी। इस बात की व्यवस्था रहेगी कि किसी विद्यार्थी को अपने दर्जे की पूरी पढ़ाई दो बार न करनी पड़े। प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या तीस से अधिक नहीं होगी और स्त्रियों को विशेष सुविधा प्रदान की जायगी ताकि वे शिक्षा देने का पेशा अख़्तियार कर सकें।

एक तो वर्तमान शिक्षा-प्रणाली स्वयं दोषयुक्त है। दूसरे वह इतनी ख़र्चीली है कि उसके द्वारा सारे देश में व्यापक रूप से शिक्षा-प्रचार का कार्य्य सम्भव नहीं हो सकता। यह नई शिक्षा-प्रणाली जहाँ सब दोषों से मुक्त होगी, वहाँ इतनी सस्ती भी होगी कि ज्यों ज्यों शिक्षक मिलते जायँगे, त्यों त्यों नये स्कूल खुलते चले जायँगे। नये स्कूल खोलने में सरकार को सिवा स्कूल की इमारत बनवा देने या स्कूल के लिए ज़मीन दे देने के और कोई व्यय नहीं करना पड़ेगा। कमिटी की रिपोर्ट में बच्चों के प्रति वर्ष के कार्य्य का हिसाब लगाकर यह दिखाया गया है कि इस पद्धति के द्वारा प्रत्येक स्कूल को इतनी आम-

दनी होगी कि मास्टरों की तनख़्वाह उससे आसानी से निकल आवेगी।

अनेक लोगों का यह मत है कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना राज्य का कर्तव्य है। इसके लिए उनसे मज़दूरी कराना ठीक नहीं। प्रोफ़ेसर शाह और अन्य कई शिक्षाशास्त्रियों ने बड़े ज़ोर के साथ यह बात कही है कि इससे बच्चों का अहित भी हो सकता है, क्योंकि जैसे अध्यापकगण आज-कल इम्तहान पास कराने के उद्देश से बच्चों से कठिन परिश्रम लेते हैं, वैसे ही नवीन शिक्षाप्रणाली में वे अपनी तनख़्वाह निकालने के उद्देश से उनसे और भी परिश्रम लेंगे और उन्हें एकदम ग़ुलाम ही बना डालेंगे। कुछ लोगों ने यह भी कहा है कि एक ही काम बराबर करने से बालकों की बुद्धि का समुचित विकास न होगा। फिर यदि बालकों की बनाई चीज़ें बाज़ारों में बिकने लगेंगी तो देश में इस प्रकार के पेशेवालों को भीषण प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा और वे तो मर ही जायँगे। यह भी कहा गया है कि वर्तमान युग मशीन का युग है। भारतवर्ष भी क्रमशः मशीनों को अपना रहा है। यह शिक्षण-पद्धति इस युग के अनुकूल नहीं पड़ती। क्यों न ऐसे प्रयोग किये जायँ जैसे रूस आदि में हुए हैं? इन सब आशङ्काओं और विरोधों का महात्मा गांधी और उनके समर्थकों ने बड़ी सुन्दरता के साथ समाधान किया है। उनका कहना है कि गाँववालों को इस शिक्षाप्रणाली में इतनी दिलचस्पी होगी कि अध्यापक उनके लड़कों से आवश्यकता से अधिक काम न ले सकेंगे। बुनियादी दस्तकारी की एक समय में एक ही बात बताई जायगी। किसी दर्जे में कपास चुनना, किसी में तकली चलाना, किसी में चर्खा चलाना और किसी में वस्त्र बुनना। इससे बालकों का जी नहीं ऊबेगा और उनके ज्ञान की बराबर वृद्धि होती रहेगी। पेशेवालों से प्रतियोगिता का भय नहीं रहेगा, क्योंकि इन चीज़ों को सरकार ख़रीद लेगी और उनका अधिकतर अपने ही काम में जैसे कर्मचारियों की वर्दी आदि में उपयोग करेगी। फिर इन विद्यार्थियों में भी तो अधिकांश पेशेवालों के लड़के ही होंगे और जहाँ बाप की आमदनी घटेगी, वहाँ बेटे की बढ़ेगी भी तो। और रही मशीन की बात, सो भारत ऐसे देश में जहाँ करोड़ों हाड़-मांस की जीवित मशीनें हैं, वहाँ पहले उन्हीं के चलाने की फ़िक्र होनी चाहिए।

पूरे विवरण को और महात्मा गांधी के लेख... पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय ... प्रवृत्ति प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की ही ओर है और ... शिक्षा व विश्वविद्यालयों आदि पर जो धन व्यय ... जाता है वह व्यर्थ समझा जा रहा है। महात्मा जी ... कहते हैं—

प्राथमिक शिक्षा को मैं सबसे ज़्यादा महत्त्व देता ... मेरे विचार में यह शिक्षा अँगरेज़ी को छोड़कर और ... में आज-कल की मैट्रिक तक होनी चाहिए। अगर ... के सब ग्रेजुएट अपना पढ़ा-लिखा एकाएक भूल ... और इन कुछ लाख ग्रेजुएटों की याददाश्त के यों एक ... बेकार हो जाने से देश का जो नुक़सान हो उसे एक ... पर रखिए और दूसरी ओर उस नुक़सान को ... पैंतीस करोड़ स्त्री-पुरुषों के अज्ञानान्धकार में घिरे ... आज भी हो रहा है तो साफ़ मालूम होगा कि दूसरे नुक़सान के सामने पहला कोई चीज़ नहीं है। देश में ... और अनपढ़ों की जो संख्या बताई जाती है उसके ... से हम लाखों गाँवों में फैले हुए घोरतम अज्ञान का ... अनुमान नहीं कर सकते।

कुछ सदस्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि उच्च शिक्षा ... पर सरकारें जो व्यय कर रही हैं वह एकदम बन्द कर ... जाय और प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में लगाया ... परिषद् में महात्मा गांधी के जिन मूल प्रस्तावों पर ... हुआ उनमें एक यह भी था—

उच्च शिक्षा का भार ख़ानगी प्रयत्नों पर छोड़ ... चाहिए। इस शिक्षा में तरह-तरह के उद्योगों की, ... कौशलों की, साहित्य और ललितकला आदि की राष्ट्रीय ... शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है।

सरकारी विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने... संस्थायें रहें, और परीक्षाओं की फ़ीस में से अपना ... निकालकर स्वावलम्बी बनें।

कुछ भी हो यह निश्चित है कि इस नवीन ... योजना के कार्य्य रूप में परिणत होते ही भारतवर्ष में ... नवीन सुखद युग आरम्भ होगा। अतएव हम सहर्ष ... स्वागत करते हैं।



जाग्रत नारियाँ

नारी-स्वतन्त्रता की समस्या

लेखिका श्रीमती कुमारी विश्वमोहिनी, व्यास

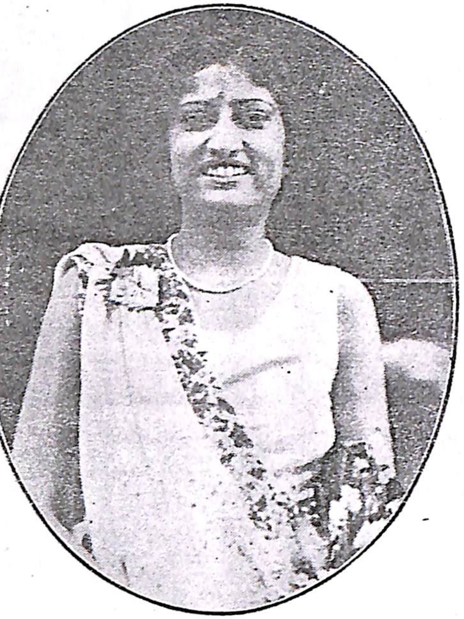
पराधीनता एक अभिशाप है। पराधीन होकर जहाँ मनुष्य अपने सांसारिक सुखों से हाथ धो बैठता है, वहीं उसका प्रभाव उसकी मनोवृत्तियों पर इतना बुरा पड़ता है कि उसमें से स्वाभाविक मनुष्योचित गुण भी लुप्त हो जाते हैं। उसकी विचार-शक्ति का ह्रास हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसका जितना भी पतन हो जाय, थोड़ा है। उसकी अधोगति की कोई सीमा नहीं रहती।

परम्परागत परतन्त्रता के पाश में बँधकर भारतीय नारी की जो दुर्दशा हुई है वह अत्यन्त लज्जा और दया का विषय है। अपनी परतन्त्रता को उसने रक्षा करनेवाली दीवार के रूप में स्वीकार किया है। उसके हृदय में अपनी दुर्बलता के विरुद्ध कभी ग्लानि तक उत्पन्न नहीं होती। इसे वह एक प्राकृतिक नियम के रूप में देखती है और इसका परिणाम यह हुआ है कि उसका सारा जीवन दूसरों की दया पर अवलम्बित है। वह इसी जीवन को अपना वास्तविक जीवन समझ बैठी है और इसी में अपना समय बिता देना वह जीवन का परम सौभाग्य समझती है। उसको अपनी स्थिति का बिलकुल ही ध्यान नहीं रहा। समाज में उसका क्या स्थान है, क्या होना चाहिए, इन प्रश्नों पर तो उसने भूलकर भी कभी विचार नहीं किया।

घर के बाहर भारतीय नारी तो कुछ कर-धर ही नहीं सकती है। परन्तु यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि घर के अन्दर भी वह अपनी इच्छा से कोई कार्य करने का अधिकार नहीं रखती। केवल रोटी बनाना ही उसका मुख्य कार्य है। जो लोग कुछ धनी होते हैं उनके घरों में नौकर रोटी बनाता है तो वे और दूसरे लोग यह समझते हैं कि उनके घर में स्त्रियों को बड़ी स्वतन्त्रता है। परन्तु क्या केवल रोटी बनाना ही स्त्री के जीवन का ध्येय है? कुछ घरों में तो स्त्रियों की बड़ी ही दयनीय अवस्था होती है। पति के मरने के बाद तो विधवाओं पर तो और भी अधिक अत्याचार होने लगते हैं। भारतीय समाज में स्त्री का मुख्य कार्य समझा जाता है बच्चे पालना और पति की सेवा करना। पति अंधा हो, चाहे निर्बल, अशक्त हो अथवा शक्तिमान् वही स्त्री के जीवन का सर्वस्व है। परन्तु यदि स्त्री में किसी भी प्रकार की त्रुटि होगी तो वह त्याज्य समझी जाती है। कितनी अधिक स्वार्थपरता है? धनी से धनी घर में और निर्धन से निर्धन घर में सभी जगह यह बात अधिक या कम रूप में अवश्य पाई जायगी। एक लखपती के घर में भी स्त्री का वही स्थान है जो एक मज़दूर के घर में।

इस विषम परिस्थिति का क्या कारण है? हमारे समाज-सुधारक शास्त्र की दुहाई देकर धर्म-ग्रन्थों की आड़ में अत्याचार करते रहते हैं, फिर भी लोग उनके

विरुद्ध आवाज़ तक नहीं उठाते। इसका कारण लोगों की धर्म-भीरुता है। धर्म की अवज्ञा के डर से लोग कुछ भी नहीं करते। जहाँ हमारे पूर्वजों ने प्राचीन तथा



[कुमारी गिल्डर, बम्बई सरकार के स्वास्थ्य-विभाग के मंत्री आनरेबुल डाक्टर गिल्डर की पुत्री। आप ओषधि-विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत गई हैं।]

धार्मिक ग्रन्थों में कई उत्तमोत्तम तथा खोज-पूर्ण बातें जनता के सम्मुख रक्खी हैं, जिनसे समय समय पर लाभ भी होता रहा है, वहीं उन ग्रन्थों में कई प्रकरण ऐसे हैं जिनसे जनता को लाभ के बदले हानि हो रही है। यह कहा जा सकता है कि ऐसे सारे ग्रन्थ आद्योपान्त ही आदरणीय तथा माननीय नहीं। तो भी धर्म की हानि के भय से लोग सुधार का कुछ भी प्रयत्न नहीं करते।

हमारे सर्वश्रेष्ठ धर्म-ग्रन्थ मनुस्मृति में भी इस प्रकार की बातें मिलती हैं जो शताब्दियों से समाज में प्रचलित हैं, यद्यपि वे अनुचित और हानिकर हैं! जनता के मस्तिष्क में वे हानिप्रद बातें इतना घर कर गई हैं कि उनको दूर करना आसान कार्य नहीं, और इसके लिए भी काफ़ी समय और प्रयत्न की आवश्यकता है।

आज-कल जब कोई भी अन्याय-पूर्ण कार्य मनुष्य करता है और यदि उससे उसका कारण पूछा जाता है तो वह कहता है कि हमारे शास्त्रों में ऐसा ही लिखा है। यह वाक्य सुनकर उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस बहुत कम लोग करते हैं। मनुस्मृति में स्त्रियों के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में एक जगह पर लिखा है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि॥

अर्थात् स्त्री बालिका हो, युवती हो अथवा वृद्धा उसको स्वतन्त्रता से घर का भी कोई कार्य करने का अधिकार नहीं। जब घर में भी कोई कार्य करने का अधिकार नहीं तब उसे घर के बाहर कार्य करने की स्वतन्त्रता कैसे मिल सकती है?

इसके आगे एक स्थान पर कहा है—



[श्रीमती अनसूया बाई काले, सी० पी० लेजिस्लेटिव असेम्बली की डिपटी स्पीकर।]

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्॥

अर्थात् बाल्यकाल में तो स्त्री को पिता के वश में रहना चाहिए, यौवन-काल में पति के अधिकार में, पति के मरने के बाद पुत्रों के अधिकार में रहना चाहिए। स्त्री को कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए। परन्तु किसी जीवित व्यक्ति को एक अस्तित्वहीन पशु में परिणत कर देना क्या न्यायसंगत है? क्या स्त्री स्वतन्त्र रूप से अपनी रक्षा नहीं कर सकती?

मनु जी महाराज स्त्रियों को तथा पुरुषों को आज्ञा देते हैं—

आसीतामरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥

अर्थात् पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री पतिव्रता स्त्रियों का धर्म-पालन करती हुई, सब कुछ सहन करते हुए, ब्रह्मचारिणी का जीवन व्यतीत करे और अपने पति में ही अपनी आस्था रक्खे। इसी के मुक़ाबले में दूसरा श्लोक देखिए—

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वाग्नीनन्त्यकर्मणि।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च॥

अर्थात् जिसकी पत्नी मर गई हो वह पुरुष पत्नी की अन्त्येष्टि-क्रिया करके निवृत्त होते ही, फिर अपना पुनर्विवाह कर ले।

स्त्रियों को तो आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने को कहते हैं और पुरुषों को एक पत्नी की मृत्यु के बाद शीघ्र दूसरा विवाह कर लेने की आज्ञा देते हैं। इसी के परिणाम-स्वरूप हम देखते हैं कि एक ओर तो ६० वर्ष का बूढ़ा १२ वर्ष की बालिका के साथ विवाह कर लेता है और दूसरी ओर उस वृद्ध पति की मृत्यु के बाद उस १२ वर्ष की बालिका की सारी आशाओं को निर्दयता से कुचल डाला जाता है। आज भारत में ऐसी ही धर्माज्ञाओं की बदौलत न जाने कितनी बाल-विधवायें अपने पवित्र जीवन की मिट्टी पलीद कर रही हैं!

जब हम शास्त्र की ऐसी विषमताओं पर विचार करते हैं तब हमें पता लगता है कि हमारे समाज की रचना में मनु जी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हीं के उपदेशों पर लोग बिना विचार किये आँख मीचे जीवनयापन कर रहे हैं, क्योंकि उनका पालन करने से पुरुषों की स्वार्थसिद्धि होती है। हमारे समाज की रचना पुरुषों-द्वारा हुई है और आज भी वही समाज-सुधारक बने हुए हैं, इसी लिए उन्होंने अपने लाभ की ओर अधिक ध्यान दिया। इस प्रकार की स्थिति में सुधार की आशा आकाश के पुष्प के समान है। जब तक स्त्रियाँ स्वयं मज़बूत संगठन बनाकर अपने पैरों पर आप खड़ी न होंगी तब तक स्त्रियों की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। संगठित होकर स्त्रियों को शीघ्र ही सुधार का प्रयत्न करना चाहिए। सुधार के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता है। लोगों के मस्तिष्क से ऐसे विचारों को दूर करना और प्रयत्न-द्वारा उनको उचित मार्ग दिखाना सरल नहीं है। सबसे पहला कार्य तो यह होना चाहिए कि लड़कियों को उनकी स्थिति का पूरा ज्ञान कराकर आगे तथा उचित मार्ग का निर्देश किया जाय, जिससे वे कुपथ की ओर न जाकर अपने वास्तविक जीवन को उपयोगी बनाने में समर्थ हो सकें। क्योंकि समाज ने स्त्रियों को जो मार्ग दिखाया है तथा जिस पर वे शताब्दियों से आँख मीच कर चली आ रही हैं, उसके अन्त में विनाश की खाई है, जो अब निकट आ गई है। आज स्त्रियाँ जो कुछ भी कर रही हैं अथवा उनसे ज़बर्दस्ती करवाया जा रहा है उसमें उनका कुछ भी लाभ नहीं, केवल पुरुषों की स्वार्थ-सिद्धि होती है। अपने विषय में जब स्त्रियों को पर्याप्त ज्ञान हो जायगा तब वे अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न अधिक प्रभाव दिखाकर कर सकेंगी। इस विषय में जितना अधिक भाग स्त्रियों-द्वारा सम्पन्न होगा वह अधिक महत्त्व का होगा।



माता का हृदय

लेखक, श्रीयुत विनय दत्त

श्रीयुत विनय दत्त बँगला के एक श्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं। इस कहानी में आपने माता के कोमल हृदय का सुन्दर चित्रण किया है।

प्रणव और आपेल। परिवार में केवल दो ही प्राणी थे।

आज सन्ध्या के आकाश की ओर ताकते ताकते आपेल की आँखें जल से भर आईं। प्रणव के साथ उसका विवाह हुए बहुत दिन बीत चुके, परन्तु हृदय में एक आशा लिये हुए प्रणव और आपेल दोनों ने ही कितने दिन, कितनी रातें काट दीं, पर भगवान् ने उनकी वह आशा पूर्ण नहीं की। उनकी अन्तरात्मा रात-दिन केवल एक ही बात की कामना करती रही—केवल एक सन्तान, कम से कम एक कन्या! बस, और कुछ नहीं।

आपेल उस समय भी खिड़की के सीख़चों के बीच में हाथ रक्खे हुए बाहर की ओर ताक रही थी। पीछे से धीरे धीरे प्रणव आया और आपेल के मस्तक पर हाथ रखकर कहने लगा—"क्या सोच रही हो आपेल? ओ आपेल! बोलती क्यों नहीं हो?"

"कुछ तो नहीं।"

"मुझसे छिपाना मत। मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ!"

"अच्छा बतलाओ, क्या समझ सके हो।"

"अच्छा बताता हूँ। आज जब तुम्हारी सखी आई थी, उसकी लड़की को गोद में लेकर बार-बार चूमते चूमते उसके लाल लाल होठों को और भी लाल कर दिया था!"

आपेल को अब सचमुच फफक फफक कर रोने की इच्छा हो रही थी। वह सोचने लगी मैं क्या करूँ! अपने प्रिय स्वामी से क्या कहूँ?

प्रणव के हृदय में भी बहुत दिन से इस बात की कामना न रही हो, यह बात नहीं थी। किन्तु इसमें आपेल क्या कर सकती थी?

हाँ, आपेल एक काम कर सकती थी। उसे करने का उसने प्रयत्न भी किया, किन्तु प्रणव उसकी बात पर किसी प्रकार भी सहमत नहीं हो सका। यहाँ तक कि अप्रसन्नता का भाव प्रकट करने के लिए एक दिन वह आपेल के पास गया भी नहीं। अन्त में जब आपेल की आँखें डबडबा आईं तब प्रणव का मान भङ्ग हुआ। उस दिन आपेल ने प्रणव से केवल एक बात कही थी। उसने कहा था—तुम एक विवाह और कर लो, नहीं तो...। मेरा हाथ देखकर ज्योतिषी जी ने क्या कहा था, जानते हो? उन्होंने कहा था कि तुम्हारे कोई बच्चा न होगा। उस समय मैं उनकी बात पर विश्वास नहीं करती थी, और डाक्टर साहब का जो कुछ कहना है वह तो तुम जानते ही हो।

इसके आगे आपेल का मुँह बन्द हो गया। अब बारी आई प्रणव के मान-भङ्ग होने की।

इस घटना के ठीक दो-चार दिन बाद ही आपेल की सखी डालू आई उसके यहाँ घूमने के लिए। उसकी गोद में थोड़ी ही अवस्था की एक सुन्दरी बालिका थी। बालिका का सौन्दर्य विशेषतः उसके कोमल और रङ्गीन होठ देखकर नेत्र शीतल हो जाते थे।

आपेल ने उस दिन उस लड़की को गोद से उतरने नहीं दिया। उसे लिये हुए कभी वह इस घर में जाती, कभी उस घर में। इसी तरह उसने समस्त दिन व्यतीत कर दिया।

बालिका के प्रति आपेल को इस प्रकार का अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित करते देखकर डालू ने हँसी हँसी में कहा—आपू, मातृत्व का स्वाद मिले बिना ही तुम्हारे हृदय में इतना अधिक स्नेह है। भगवान् यदि तुम्हारी गोद में एक बच्चा दे देते तो तुम न जाने क्या करतीं?

आपेल इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकी। इस छोटी-सी बालिका को गोद में लिये हुए वह उत्तर की ओर के एकान्त कमरे में चली गई। उस समय आपेल के हृदय में पता नहीं कैसी कैसी भावनायें आने लगीं। उसके हृदय में यह बात आई कि यदि ऐसी ही एक बालिका मुझे भी मिल जाती! सुन्दरी चाहे न भी होती, काली ही कलूटी होती, तो भी कोई हानि नहीं थी!...

नहीं, यह नहीं सम्भव है।

आज वही चार वर्ष की पुरानी बात आपेल को स्मरण हो आई। वह बात थी ज्योतिषी जी की। उन्होंने आपेल का हाथ देखकर कहा था कि तुम्हारे कोई लड़का-लड़की न होगा। उस समय आपेल का विवाह भी नहीं हुआ था। ज्योतिषी जी की बात सुनकर आपेल ने कहा था—हे भगवान्, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, तुम मुझे मेरे अनुकूल स्वामी देना। और मुझे कुछ न चाहिए।

बाद को आपेल का विवाह हुआ और देवता के समान उसे स्वामी मिल गया। घर में किसी प्रकार का अभाव नहीं था। इस प्रकार आपेल शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के सुख प्राप्त करने में समर्थ हो गई।

एक एक करके तीन वर्ष बीत गये।

इससे ठीक एक वर्ष के पहले।

नया नया विवाह होने पर दो वर्ष तो हँसी-ख़ुशी में ही बीत गये। स्वामी-स्त्री में से किसी को भी किसी प्रकार की उद्विग्नता, किसी प्रकार की अरुचि नहीं हुई। उनके दाम्पत्य जीवन का वह समय बहुत ही आनन्द के साथ व्यतीत हुआ।

अब आवश्यकता पड़ी जीवन में कुछ विचित्रता लाने की, कुछ परिवर्तन की। कुछ नवीन परिवर्तन के बिना एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते तबीयत ऊब गई थी। अब वे चाहते थे जीवन को मधुमय बनाना, पवित्र बनाना।

एक दिन की बात है। दोपहर के समय आपेल के उदर में व्यथा उत्पन्न हुई। समीप ही नगर था। वहाँ से एक बहुत ही कुशल और नामी डाक्टर बुलाकर लाया गया। उसने आपेल की चिकित्सा की।

डाक्टर की चिकित्सा से आपेल की पीड़ा शान्त नहीं हुई, वह ज़रा-सा कम होकर रह गई।

इसी प्रकार एक मास व्यतीत हो गया। एक दिन डाक्टर ने प्रणव को बुलाकर कहा—देखिए प्रणव बाबू, इस प्रकार की पीड़ा जिन स्त्रियों को हुआ करती है, उनको सन्तान आदि नहीं होते। आप इन्हें एक बार कलकत्ता ले जाकर दिखला लाइए।

प्रणव का हृदय काँप उठा। उसने किसी प्रकार अपने आपको सँभाल लिया।

प्रणव ने जब यह बात आपेल से बतलाई तब एकाएक उसके नेत्रों में दो बूँद छलछला आये। अञ्चल से उन्हें पोंछते पोंछते आपेल स्वयं भी......

रात में प्रणव और आपेल बिस्तरे पर जाकर लेटे। आपेल ने मुँह से कोई बात नहीं निकाली। प्रणव के वक्ष पर मुख रक्खे हुए तरह तरह की कल्पनायें करते करते वह रोती रही। प्रणव भी अपने आप को सँभालने में समर्थ न हो सका।

इस रात को आपेल ने नेत्रों से जल बहाया था प्रणव की उपस्थिति में......किन्तु इससे पहले उसने कितनी सन्ध्या, कितनी रातें काट दी थीं, इसी प्रकार की चिन्ता में, इसी प्रकार नेत्रों से जल बहाते बहाते! परन्तु अपनी इस प्रकार की अवस्था उसने किसी से प्रकट नहीं होने दी।

× × ×

एक दिन साँझ को प्रणव ने आकर कहा—आपू,

गाँव के लड़कों ने एक छोटी-सी लड़की पाई है। स्टेशन के पास से जो सड़क गई है उसी की मोड़ पर वह रो रही थी। किसी ग़रीब आदमी की लड़की होगी। लड़के उसे पुलिस के हवाले करने जा रहे हैं। तुम यदि उसे एक बार देखतीं तो तुम्हारी आँखें शीतल हो जातीं।

"मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मुझे एक बार दिखला दो।"

बाद को ज़रा-सा सोच कर आपेल ने कहा—"क्या उसे हम ले नहीं सकते? जब वह पड़ी ही मिली है तब तो किसी न किसी को उसका भार लेना ही पड़ेगा।"

× × ×

स्वामी-स्त्री ने इस लड़की का भार ले तो लिया, किन्तु पुलिस के दफ़्तर में प्रणव को इस बात का प्रतिज्ञा-पत्र लिखकर देना पड़ा कि जब कभी इस लड़की के मा-बाप का पता चल जायगा तब इसे वापस दे देना होगा।

लड़की को गोद में पाकर आपेल मारे आनन्द के रो पड़ी।

× × ×

आज-कल आपेल ने सारा काम-काज एक प्रकार से छोड़ ही दिया था। प्रणव के भोजन के समय भी वह उसके पास नहीं बैठती थी। इसके विरुद्ध पहले प्रणव जब तक थाली पर बैठा रहता तब तक वह क्षण भर के लिए भी नहीं हटती थी। चौके में बैठी बैठी कभी वह कहती—'यह चीज़ खाओ', कभी कहती—'वह चीज़ खाओ।' कभी कहती—'मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इसे खाये बिना मत उठो।' एक दिन ऐसी ही चुहल के बाद अभिमान-मिश्रित कण्ठ से उसने कहा—'देखो, मैं सच कहती हूँ, इसे न खाओगे तो दो घंटे तक मैं तुमसे बात न करूँगी, सचमुच बात न करूँगी, देखना फिर—'

प्रणव भी शेख़ी में आ गया। वह कहने लगा—अच्छा, देखता हूँ, मुझसे बातें किये बिना तुम्हारा काम कैसे चलता है?

भोजन किये एक घंटा बीत गया। आपेल और प्रणव में इस बीच में बोलचाल नहीं हुई।

प्रणव ने कहा—क्या तुम सचमुच मुझसे दो घंटे तक बातें न करोगी, आपू?

आपेल ने तीन बार मस्तक हिलाकर अपने निश्चय की सूचना दी।

अब प्रणव को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। उसने कहा—अच्छा आपेल, एक गिलास जल और रसोईघर से एक टुकड़ा मछली ले आओ, खाये लेता हूँ।

आपेल ने पाँच उँगलियाँ दिखलाकर सूचित किया कि पाँच टुकड़े खाने होंगे। एक टुकड़ा मछली खाने से काम न चलेगा।

प्रणव ने कहा—अच्छा, यही सही, तब तक मैं ... का पान कूच लूँ।

यह बात सुनकर आपेल ने ज़ोर से मस्तक हिलाया। अपने इस इशारे से उसने सूचित किया—यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता।

आपेल कटोरी भर मछली ले आई। वह कटोरी प्रणव के सामने रखकर उसने इशारे से उसे सूचित किया कि इसे खाये बिना हमारी तुम्हारी बोलचाल न होगी।

प्रणव ने एक एक करके पाँच टुकड़े खाये।

प्रणव ने कहा—अच्छा भाई, अब तो बोलो।

आपेल ने कहा—बोलती तो हूँ!

इसी प्रकार की लीला भोजन के समय प्रतिदिन ही हुआ करती थी। ये दोनों ही प्राणी मानों एक ही गुच्छे के दो फूल थे, एक ही स्थान पर रहकर मनुष्य का मन मुग्ध कर रहे थे। इस संसाररूपी पथ पर ये दोनों छोटे बच्चे की तरह खेलते हुए विचरण कर रहे थे। किन्तु इस बालिका के आ जाने पर वह सारी लीला न जाने कहाँ अदृश्य हो गई। वे पति-पत्नी स्वयं भी जीवन के इस प्रकार के परिवर्तन का कारण नहीं समझ सकते थे। जो आपेल प्रणव को छोड़कर और कुछ जानती ही न थी वही अब केवल कुनू की चिन्ता में अपना सारा समय व्यतीत करने लगी। उसकी दृष्टि में कुनू के सिवा मानों और कोई था ही नहीं। आपेल ने ही प्यार के मारे बालिका का नाम कुनू रक्खा था।

× × ×

जिस दिन बालिका घर में लाई गई थी उसके दूसरे ही दिन की बात है। दोपहर को कुनू को गोद में लेकर आपेल ने कहा—"कहो, कौन-सा गहना पहना कर कुनू को देखें? हार कहाँ है, बाला कहाँ है? इस तरह बात नहीं बना जाता। समझे?"

"तो क्या इस तरह का बना जाता है, आपू?"

"तो क्या मैं मुफ़्त में मा बनी हूँ? इसने मेरी गोद में स्थान प्राप्त कर लिया है। यही तो इसके लिए बहुत बड़ा अलङ्कार है?"

"किन्तु तुम्हारी गोद में इसे ले कौन आया है?"

"यह सब मैं नहीं जानना चाहती। अब इसके लिए हार ला दो, बाला ला दो, टिकली ला दो; तब देखना, कुनू कितनी सुन्दरी मालूम पड़ती है?"

"अभी क्या वह कम सुन्दरी मालूम पड़ रही है, जो उसे सुन्दरी बनाने की ज़रूरत है?"

आपेल हँस पड़ी। वह कहने लगी—नहीं, ये सब निरर्थक बातें रहने दो। इस समय मैं जो कुछ आदेश कर रही हूँ उसी के अनुसार कार्य्य करो।

"तो यह सब तुम्हारा आदेश है, आपू?"

"और नहीं तो क्या?"

प्रणव को उस आदेश के अनुसार कार्य्य करना पड़ा। दिन पर दिन बीतने लगे। अब स्वामी-स्त्री कुनू के सम्बन्ध की ही बातों में दिन काटने लगे।

एक वर्ष में 'मा मा' कह कर पुकारना कुनू ने सीख लिया। वह मा के सिवा और कुछ भी नहीं जानती थी।

× × ×

उससे और भी दो वर्ष के बाद।

इतने दिन के बाद प्रणव के हृदय में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। कुनू के लिए उसके हृदय में मानों अब किसी प्रकार की भी माया-ममता नहीं रह गई थी। जिस कुनू के सम्बन्ध में वे स्वामी-स्त्री रात-दिन तरह तरह की सुखमय कल्पनायें करते रहते, जिस कुनू का लाड़-प्यार करने में ही वे सुखपूर्वक अपना दिन काट दिया करते थे, उसी कुनू के द्वारा अब प्रणव को ज़रा भी तृप्ति नहीं मिलती थी। परन्तु आपेल के मनोभाव में अभी तक किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि कुनू को गोद में लेकर प्यार करने में उसे पहले की तरह का आनन्द नहीं मिलता था। इसका कारण था प्रणव की सहानुभूति का अभाव। परन्तु मन ही मन दुःखी रह कर भी आपेल कुनू का लाड़-प्यार करती ही रही।

× × ×

आपेल कुनू के सेवा-यत्न में इस तरह व्यस्त रहती कि ठीक समय पर अब भी भोजन न हो पाता। अपने लिए सफ़ाई न देने पर भी प्रणव आज-कल प्रायः रुष्ट हो जाया करता।

मान लो कि प्रणव कोई काम-काज करके बाहर से आया। आते ही उसने पूछा—आपेल, भोजन तैयार है?

"हाँ, भात हो गया है। तुम स्नान कर लो। मैं मछली का झोल बनाये देती हूँ।"

"तुम भी ख़ूब हो! बजे कितने हैं, कुछ ख़बर है?"

आपेल उस समय भी कुनू को लिये हुए गेंद खेल रही थी। कुनू कह रही थी—मा, मा, इधर गेंद फेंको। और खेलूँगी, और खेलूँगी—......

प्रणव ने क्रुद्ध होकर कहा—नहीं, नहीं, अब खेल न होगा। जा, जा। इस कमरे से निकल जा। कहता हूँ कि निकल जा। अभी जा।

बिलकुल ही मुँह टेढ़ा करके कुनू दीवार के पास से घूमी और कोने में पड़ा हुआ गेंद लेकर वह दूसरे कमरे में चली गई।

ऐसे दृश्य देख-देखकर आपेल दुःखी हो जाती थी।

× × ×

और एक दिन साँझ हो जाने के बाद।

कुनू उस समय भी अँधेरे कमरे में बैठकर पुकार रही थी—मा, ओ मा! आती नहीं हो? मैं सचमुच डर रही हूँ। आओ मा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मेरे पास आकर लेटो। मैं जब सो जाऊँ तब तुम फिर चली जाना।

"कुनू, मैं दीपक जलाये देती हूँ, तुम अपने बिस्तरे पर अकेली अकेली गेंद खेलो बेटी। मैं जल्दी से सारा काम-काज किये लेती हूँ। तब आकर तुम्हें कहानी सुनाऊँगी और लोरियाँ गा गाकर सुलाऊँगी?"

"नहीं मा, मैं इस तरह न मानूँगी। मा! मा!..."

इतने में आ गया प्रणव। वह कहने लगा—मा मा करके चिल्लाती रहेगी, तो गला दबाकर मार डालूँगा। रात-दिन मा मा...

"छिः छिः तुम्हें क्या हो गया है? इतनी ज़रा सी बच्ची को कहीं कोई इस तरह की बात कहता है? अवश्य तुम्हारा दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया है।"

"देखो आपेल, तुम निरर्थक बातें मत किया करो। कम से कम इसके सम्बन्ध में। जाति-पाँति और मा-बाप का कोई ठिकाना नहीं है, घर में लाकर रख लिया, इस

तरह का आदर करने लगे, सिर चढ़ गई। देखना, किसी न किसी दिन इसको मैं कहीं छोड़ न आऊँ। तब कहना।"

मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। इस तरह की बात मुँह से मत निकालो। ज़रा सोचकर देखो। जिस दिन यह पड़ी हुई मिली है, उस दिन हमारी सैकड़ों कामनाओं के फल-स्वरूप भगवान् ने लाकर इसे हमारी गोद में डाल दिया था। तब से लेकर इतने दिन तक तुमने भी इसे मेरी अपेक्षा कम प्यार नहीं किया। अब जब भगवान् ने हमारे ऊपर कृपा की है और हमें यह आशा हो गई है कि शीघ्र ही हमारी गोद में एक और बच्चा आ जायगा तब क्या यह धर्म की बात है कि हम लोग इसका तिरस्कार करें? इसलिए कि यह माता-पिता की गोद से बिछुड़ी हुई है, पराई लड़की है! कहते कहते आपेल का कण्ठ-स्वर रुद्ध हो गया।

"रहने दो तुम अपनी यह लम्बी-चौड़ी वक्तृता। खाने को देना हो तो देओ।"

यह कह कर क्रुद्ध होकर प्रणव वहाँ से चला गया।

कुनू उस समय चारपाई के एक कोने में पड़ी थी। तकिया से मुँह छिपाये हुए वह दुःखी भाव से रो रही थी। प्रणव की बातों से उसके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा था।

बाद को आपेल धीरे से कुनू के पास खिसक गई। स्नेह-पूर्वक उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई वह पुकारने लगी—बेटी कुनू।

कुनू उस समय केवल तीन वर्ष की बालिका थी। परन्तु इतनी अवस्था में भी वह अभिमान का मूल्य जानती थी। कदाचित् इसी लिए उसके रोने का स्वर और ज़ोर से सुनाई पड़ने लगा।

आपेल अब सोचने लगी कि मेरे गर्भ में जो सन्तान है वह जब जन्म ग्रहण करेगी, तब पता नहीं, प्रणव का मनोभाव कैसा होगा। सम्भव है कि उस समय कुनू के प्रति उनका अनादर और तिरस्कार और भी बढ़ जाय।

मन ही मन आपेल बोल उठी—हे भगवान्, देखना, एक दिन के लिए भी मेरे मनोभावों में परिवर्तन न होने पावे। मेरे व्यवहारों के कारण एक बार भी उसे यह अनुभव करने का अवसर न मिले कि मैं उसकी मा नहीं हूँ।

× × ×

डाक्टर साहब और ज्योतिषी जी की बातें मिथ्या प्रमाणित होने के लक्षण स्पष्ट हो गये। यह निश्चित रूप से मालूम पड़ने लगा कि प्रणव और आपेल की गोद में शीघ्र ही कोई न कोई बालक या बालिका विराजमान होगी।

प्रणव नें कहा—"देखो आपेल, मैं एक बात कहे देता हूँ। तुम इस लड़की का अब इतना आदर न किया करो। इसका दुलार अब ज़रा कम कर दो।"

"कम क्यों कर दूँ?"

"क्या अब भी इसका कारण बतलाने की आवश्यकता पड़ेगी?"

इधर कुछ दिनों से प्रणव के हृदय में जिस प्रकार के भाव का उदय हुआ था वह आपेल को पहले से ही विदित था। आपेल यह भी जानती थी कि इस प्रकार का मनोभाव उत्पन्न होने के ही कारण प्रणव अब कुनू को देख नहीं सकते। प्रणव के हृदय में कदाचित् यह धारणा बद्धमूल हो गई थी कि कुनू के वर्तमान रहने पर यदि अपना बच्चा पैदा होगा, तो शायद उसे उस प्रकार का आदर-यत्न न मिल सकेगा।

आपेल का हृदय फिर काँप उठा—इस माता-पिता की गोद से बिछुड़ी हुई बालिका की दशा पर विचार करते करते उसके नेत्रों में जल भर आया।

× × ×

"यह क्या है कुनू? तुम वहाँ क्या कर रही हो?"

"कुछ तो नहीं मा, मैं कटोरी धो रही हूँ।"

"नहीं बिटिया, रहने दो, तुमसे टूट जायगी! मेरी रानी, तुम रहने दो, मैं अभी धो लूँगी।"

"तुम्हें कष्ट होगा मा! तुमसे तो उठा भी नहीं जाता।"

"ढन ढन, झन झन, झनाक......"

"क्या टूट गया रे?"

"मैंने जून-बूझ कर नहीं तोड़ा मा। अपने आप टूट गई।"

इतने में वहाँ प्रणव आ गया। उसने आते ही कहा—अपने आप टूट गई है रे चाण्डालिन? क्या मैं खड़े खड़े देखता नहीं था?—

यह बात समाप्त होते ही चट चट करके कुनू की पीठ पर तीन-चार थप्पड़ जमा दिये।

आपेल ने कहा—बस, बस, हो चुका। तुम्हें अब दिखाने की ज़रूरत नहीं है!

"इसका मतलब?"

"कुछ नहीं, कहती हूँ कि यहाँ से चले जाओ। हमें भुन भुन कर खाने को रहने दो!....."

प्रणव चुपचाप चला गया।

जिस दिन यह घटना हुई थी उससे कई दिन के बाद आपेल को एक कन्या हुई। वह कन्या बहुत ही सुन्दरी थी। आपेल से उसकी आकृति बिलकुल मिलती-जुलती थी।

प्रणव तो उस कन्या को देखकर आह्लाद की अधिकता के कारण अधीर ही हो उठा!

आज कितने वर्ष की उसकी कामना पूर्ण हुई!

× × ×

एक दिन कुनू ने आकर कहा—मा, ओ मा! मैं अपनी बहन को गोद में लूँगी। ले लूँ मा?

"तुम कहीं गिरा दोगी कुनू!"

"नहीं मा, गिराऊँगी नहीं। दो, मेरी गोद में बैठा दो। मेरी गोद में बैठा दो, मेरी मा।"

आपेल बच्ची को उठा कर कुनू को देने ही जा रही थी कि कुनू ने उसे स्वयं जगा लिया और दोनों हाथ लगाकर उसे उठाने लगी। बच्ची के शरीर का भार कुनू से सँभाला न गया। इससे वह उसे लेकर चारपाई से नीचे गिर पड़ी। इससे कुनू भी रोने लगी और बच्ची भी।

आपेल ने स्वयं हाथ बढ़ाकर बच्ची को उठा लिया। वह उसे हिला-झुला कर और चुमकार चुमकार कर चुप कराने लगी।

कुनू उस समय चारपाई का पावा पकड़े खड़ी थी। उसने जो गुरुतर अपराध कर डाला था उसे वह उस समय अनुभव कर रही थी।

आपेल बोल उठी—क्यों रे हत्यारिन, मैंने तुझे रोका था न? मैंने कहा था न कि वह तुझसे न उठेगी।

कुनू ने रोते रोते कहा—तो क्या मैंने जून-बूझ कर गिरा दिया है? तुम्हीं ने तो हाथ हिला कर गिराया है!

"क्यों रे हत्यारिन! तू इस तरह का जाल करती है? अभी से ही इस तरह झूठ बोलना सीख लिया है? बड़ी होने पर तो न जाने क्या करेगी?"

इस तरह की चिल्ल-पों सुनकर हाथ में ख़बर का काग़ज़ लिये हुए प्रणव वहाँ आ पहुँचा। वह कहने लगा—क्या है आपेल?...यह क्या? बच्ची का माथा कैसे कट गया? इसके तो ख़ून बह रहा है!

"पता नहीं क्या लग गया?"

"जानती क्यों नहीं हो? बतलाओ न क्या हुआ?

"हुआ मेरा सिर।"

कुनू अभी तक डर के मारे काँप रही थी। प्रणव की आँख बचाकर धीरे धीरे वह बग़लवाले दरवाज़े से निकल कर भाग जाना चाहती थी।

प्रणव ने कर्कश स्वर से कहा—इस शैतान लड़की से तो जी ऊब गया। कहता हूँ कि आगे एक क़दम भी न बढ़ाना नहीं तो हड्डी भुर्ता कर दूँगा।

बाद को ज़रा-सा रुक कर वह आपेल से कहने लगा—बोलो आपेल, इस ज़रा-सी बच्ची को किसने इस तरह मारा है?

"देखो, मुझे चिढ़ाओ न। कहे देती हूँ। तुम लोगों के मारे तो मैं हैरान होगई। तुम मेरा दुःख क्या समझोगे? एक न एक बखेड़ा रात-दिन खड़ा ही किये रहते हो।"

"मुझे यह सब रोआ-धोई पसंद नहीं है। मैं यह स्पष्ट रूप से जानना चाहता हूँ कि इसका माथा किस तरह से कट गया?"

आपेल निश्शब्द थी।

"बतलाओ आपेल, बतलाओ! अभी मैं सीधी तरह से पूछता हूँ, नहीं तो—"

"इस तरह चिल्लाने को रहने दो। नीचे गिर पड़ी थी, इसी लिए कट गया है।"

"गिर पड़ी थी या गिरा दी गई थी? क्या मैं वहाँ से यह सब देख नहीं रहा था? खड़ी रह, अभी मैं इस हरामज़ादी लड़की को मज़ा चखाता हूँ।"

कहते कहते हाथ में जो ख़बर का काग़ज़ था, उसे लपेट कर प्रणव ने डंडा-सा बना लिया और उसी से कुनू की पीठ पर सात-आठ बार मारा। कुनू वहाँ से हट कर धीरे धीरे पासवाले कमरे में चली गई। वहाँ उसने फफक फफक कर रोना आरम्भ किया।

आपेल उसी एकान्त कमरे में बैठी हुई कुनू तथा अपनी कन्या के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें सोचने लगी। धीरे धीरे उसने बच्ची के होंठ, गाल और मस्तक का चुम्बन किया। बच्ची मा की गोद में बैठी ही बैठी सो

गई थी। उसे बिस्तरे पर सुलाकर आपेल स्वयं भी उसके पास ही लेट गई। मुट्ठी बँधा हुआ हाथ टेहुने के बल खड़ा करके उसी के ऊपर उसने मस्तक रख लिया और दृष्टि बाहर की ओर डाल कर उस समय की विराट् शून्यता में एकाग्र मन से अपने आपको डुबा दिया। बाहर की धूप मानो केवल खाँव खाँव कर रही थी।

ठीक उसी समय डालिम ने आकर कहा—कहो भाई, लड़की को लेकर दुलार चुकी हो?

"एक का दुलार करने की साध एक तरह से मिट चुकी है, सम्भवतः दूसरी के सम्बन्ध में भी यही हाल होगा।" यह कहते कहते आपेल का कण्ठ कम्पित हो गया। एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा—"डालू, तुमसे एक बात कहनी है। मानोगी बहन!"

"कौन-सी बात है? पहले बतलाओ भी तो।"

"तुम कुनू का भार लोगी? जिस तरह तुम्हारे मित्र को वह नहीं सुहाती, उसी तरह मैं भी उसके पीछे बहुत परेशान हो गई हूँ!"

"नहीं, नहीं, कोई ऐसी बात तो नहीं है। यह सब तो एक स्थान पर रहने से होता ही रहता है।"

"नहीं डालू, अब मुझसे नहीं सहा जाता। कुनू को लेकर यह तीन वर्ष जैसे मैंने सुख से काटे हैं, आज उससे सौगुना अधिक दुःख और अशान्ति आकर मेरे मार्ग में उपस्थित होगई है। यह सारी अशान्ति कुनू के ही कारण है। तुम उसका भार लेकर मेरी अशान्ति दूर करो, इस विपत्ति से मेरा उद्धार करो बहन!"

ज़रा देर तक रुक कर आपेल फिर कहने लगी—डालू एक वह भी दिन था, जब कुनू को अपने यहाँ ले जाने की तुम्हारे हृदय में बड़ी इच्छा थी। आज मैं स्वयं आग्रह करके उसे तुम्हें दे रही हूँ।

"मैं तुम्हारा जैसा सुख तो उसे दे नहीं सकती हूँ बहन!"

"उससे तुम कहीं अधिक सुख उसे दे सकोगी। तुम्हें तो मा होने का स्वाद एक बार मिल चुका है। तुम्हीं अच्छी तरह मातृत्व का मर्म समझती हो। इसके सिवा तुम्हारे पास रहने से उसका किसी प्रकार का भी तिरस्कार न होगा, यह मैं जानती हूँ, इसी लिए मैं तुमसे इतना आग्रह कर रही हूँ। मेरी बात मान लो भाई, मैं तुम्हारे हाथ छूकर कहती हूँ।"

आपेल के इस प्रकार के परिवर्तन का कारण ... की समझ में न आ सका। उसे उस दिन की याद आ गई जब डालू की गोरी गोरी छोटी-सी ... विदा हुई थी और कुनू को गोद में लेकर आपेल सान्त्वना देने उसके घर पर गई थी। लौटते समय ... ने आपेल से कहा था—कुनू को मेरे पास न ... जाओगी बहन? आपेल इस पर कुछ बोली ही नहीं ... तब डालू ने फिर कहा था—मैं सदा के लिए इसे ... माँग रही हूँ। केवल दो-चार दिन के लिए इसे मेरे ... छोड़ जाओ। अन्त में आपेल ने उत्तर दिया था ... कुनू को लेकर प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ आया करूँगी। ... चिन्ता मत करो। इसके सिवा इतना अधिक अधीर ... तुम्हें शोभा नहीं देता। कुनू का शरीर अच्छा नहीं ... इसी लिए मैं इसे नहीं छोड़े जा रही हूँ। अन्यथा ... जब कहती ही थीं, तो मुझे इसे छोड़ जाने में ... आपत्ति न थी।

धीरे धीरे आपेल उठकर बैठ गई। बाद को ... का हाथ पकड़कर उसने कहा—बतला बहन, मुझे ... दे, तू कुनू का भार लेगी?

"तुम इस तरह व्यग्र क्यों हो रही हो? प्रणव ... आ जायँ, देखूँ उनका क्या विचार है?"

प्रणव मानो इस बात की प्रतीक्षा ही कर रहा था। आते ही वह पूछने लगा—"कहो डालू, कब लिये ... रही हो?"

"किसको?"

"इसी शैतान लड़की को। यह मेरे घर का जञ्जाल है।"

"छिः! प्रणव बाबू, इस तरह की बात मुँह से न निकालनी चाहिए। याद आती है बात उस दिन की ... आप लोगों की गोद एकदम सूनी थी। उस समय इस कुनू ने ही आप लोगों को सान्त्वना और तृप्ति प्रदान की थी। इसी की बदौलत आप पति-पत्नी ने अपार्थिव आनन्द का अनुभव किया था। आज भगवान् ने आपकी गोद जब एक दूसरी सन्तान से भर दी तब क्या इसका इस तरह का तिरस्कार करना उचित है प्रणव बाबू?"

प्रणव इस बात का कोई उत्तर न दे सका। वह धीरे धीरे वहाँ से उठ कर चला गया।

आपेल की दोनों आँखों के दोनों कोनों से जल चूने ...। उसके हृदय में जब यह बात आई कि कुनू को विदा देना पड़ेगा तब उसका हृदय काँप उठा। एक बार ... करुण दृष्टि से उस बालिका की ओर देखा। उसे ... स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा कि कुनू की निद्रामय आँखें ... बार कम्पित हो उठती हैं।

"आपेल!"

"क्या भाई?"

"जो बात कहती थी क्या वह सच है?"

"हाँ?"

"तो क्या सचमुच कुनू को निकाल देगी?"

"हाँ भाई।"

"अच्छी बात है। कल आकर ले जाऊँगी। आज ... अच्छा नहीं है।"

"अच्छा, तो कल ही ले जाना भाई।"

आपेल ने मुँह से यह बात निकाल तो दी, किन्तु ... अपने को स्थिर न रख सकी। दोनों घुटनों के बीच ... उसने मुँह छिपा लिया। डालू ने और कुछ कहा ...। वह चुपचाप उठ खड़ी हुई।

× × × ×

आज कुनू के विदा होने का दिन था।

आपेल एक एक करके कुनू की सारी चीज़ें एकत्र ... रही थी। सवेरे ही वह उठी थी। तब से वह उसके ... तथा खिलौने आदि ढूँढ़ ढूँढ़ कर एक स्थान पर ... रही थी। कल से प्रणव के साथ आपेल की बोल- ... बन्द थी।

× × × ×

सारे घर में एक प्रकार का सूनापन, एक प्रकार की ...स्तब्धता विराजमान थी। घर के एक एक स्थान से ...दाई का, छोड़ कर चले जाने का, भाव व्यक्त हो रहा था। इस घर में भी मनुष्य का वास है, इस बात का आज आभास तक नहीं मिल रहा था। यहाँ तक कि दोनों ...ड़ियों ने भी ज़रा-सा चूँ नहीं किया।

आपेल प्रतिक्षण ही डालू के आगमन की प्रतीक्षा ... रही थी। वह सोचने लगी कि डालू अभी ही आ ... होगी। वह आई नहीं कि मैं निश्चिन्त हुई। घर में ... छोड़ कर खाने को और कुछ नहीं बनाया गया था।

प्रणव ने वह नहीं खाया। दूकान से खाद्य-सामग्री लाकर उसने खाया और बाहर चला गया। दोने में मिठाई के दो एक टुकड़े पड़े थे।

आपेल चारपाई पर से उठी। मिठाई के टुकड़ों को उठाकर उसने कुनू के मुँह से लगाया। कुनू ने हाथ से एक धक्का मारकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। आपेल ताड़ गई कि बतलाये बिना भी कुनू को कुछ न कुछ मालूम होगया है।

आपेल कुछ बोली नहीं। वह अपनी कन्या के पास जाकर लेट गई। धीरे धीरे ज़रा-सा तन्द्रा का भाव आया। बाद को वह खुर्राटे लेने लगी।

× × × ×

आपेल ने स्वप्न में देखा कि कोई उसी के समान थोड़ी ही अवस्था की युवती चारपाई के पास खड़ी उसकी ओर ताक रही है।

आपेल ने उससे कहा—क्या चाहती हो दीदी?

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया। उँगली के इशारे से उसने कुनू को दिखला दिया। कुनू चारपाई की दूसरी ओर खड़ी होकर रो रही थी। युवती के नेत्र करुण हो गये। बाद को एक हृदय-विदारक आह भर कर वह कहने लगी—देखो बहन, तुम इसकी रक्षा करो। पहले मैं इसकी मा थी, आज यह स्थान तुमने ग्रहण कर लिया है।

आपेल ने अपनी कन्या को बाहर एक फटी हुई चटाई पर मुर्दे के रूप में पड़ी देखा।

आपेल तड़फड़ा कर जाग पड़ी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी कन्या उसके बिस्तरे पर नहीं है! चिल्ला कर वह बोल उठी—बच्ची, बच्ची-रानी!

नहीं, यह उसकी अपनी ही भूल थी। बच्ची तो ठीक वैसे की वैसी ही लेटी थी।

अब आपेल का हृदय व्याकुल हो उठा कुनू के लिए। पास के अन्धकारमय कमरे से रोने का शब्द सुनाई पड़ा। आपेल उठकर उस कमरे में गई। कोने में एक बेंच पड़ी थी। उसी पर लेटी कुनू मा मा कह कर पुकार रही थी।

आपेल ने कहा—क्या है कुनू? क्या है बिटिया? क्या मैं कहीं गई हूँ? मैं तो तुम्हारे पास ही हूँ।

"तुम मुझे अब नहीं प्यार करती हो, मुझे अब नहीं चाहती हो। मेरी मा आज आई थी। मैं चली जाऊँगी। मा मा ... ..."

कुनू इससे अधिक कुछ न कह सकी।

आपेल ने कहा—नहीं बिटिया, किसने यह बात कही है? मैं तुम्हें प्यार क्यों नहीं करती?

प्रणव इससे पहले ही आगया था। वह द्वार के पास खड़ा था। उसके नेत्रों में भी अब आँसू आगये। मा और कन्या के समीप जाकर कुनू की ओर ताकता हुआ वह बोला—कौन कहता है बिटिया कि मैं तुम्हें नहीं चाहता हूँ? तुम तो हमारी ही हो!

अब आपेल ने कुनू को दोनों हाथों से लिपटा लिया और वह फफक फफक कर रोने लगी।...

पड़ोस के ठाकुरद्वारे से सायङ्कालीन पूजा की शङ्ख-ध्वनि सुनाई पड़ी।

वायु और आकाश में मानो फिर उत्सव का कल्लोल मच उठा।

वसन्त

लेखक, श्रीयुत ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' साहित्यरत्न

(१)

फिर मानिनियों में मान जगे,
मधुपों की मधुमय तान जगे,
संसृति का स्वर्ण विहान जगे,
मुखरित जिससे हो दिगदिगन्त,

(२)

अवनी के नील दुकूलों पर,
नव नव किसलय के झूलों पर,
क्षण क्षण पर चञ्चल फूलों पर,
है नाच रही सुषमा अनन्त,

(३)

कलियों का यह सविकास हास,
मृदु मंजरियों का मदिर वास,
नियति का यह सुविलास लास,
कितना अनूप! कितना अनन्त!

(४)

हे भावुक के उर तरुण जाग,
कल्पना-लोक के अरुण जाग,
जागो कोकिल के करुण राग,
अब वन वन में विकसित वसन्त।

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१—उपपत्तीन्दुशेखर—लेखक, पंडित दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक, श्री पो॰ गिरजाशंकर हरिशंकर जोशी, अहमदाबाद हैं। मूल्य ३) है।

२—गीता का व्यवहार-दर्शन—लेखक, श्रीयुत रामगोपाल जी मोहता, प्रकाशक, श्रीसत्यनारायण प्रिंटिंग प्रेस, फ़्रियर रोड, कराची हैं। लेखक के पास ॥=) डाक-खर्च भेजने पर पुस्तक मुफ़्त मिल सकती है।

३—सगर-विजय—नाटककार, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य १) है।

४—बैस क्षत्रियेतिहास—लेखक, ठाकुर भगवान् बख्शसिंह बैस, गाँव पेड़रिया, पो॰ शिवरतनगंज, ज़िला रायबरेली हैं।

५—व्याख्यान-वाटिका—संग्राहक, श्रीयुत उत्तमचन्द करीमचन्द गोसलिया, प्रकाशक, श्री पुंगलिया सरदार ग्रन्थमाला, इतवारी बाज़ार, नागपुर सिटी हैं। डाक-व्यय =) है।

६—पूजा—लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी, प्रकाशक, शंकरसदन, आगरा हैं। मूल्य १) है।

७—पर्णिका—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, प्रमोद-पुस्तकमाला, कटरा, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

८—इस जगत् की पहेली—लेखक, श्रीयुत अरविन्द, प्रकाशक, श्रीअरविन्द-ग्रन्थमाला, ४, हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥=) है।

९—अभिनव हिन्दी-व्याकरण—लेखक, पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक, श्रीयुत उपेन्द्रनारायण वाजपेयी, १०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य १) है।

१०—प्रिया या प्रजा—लेखक, पंडित गोविन्ददास 'विनीत', प्रकाशक, विनीत-ग्रन्थ-माला, तालबेहट, झाँसी हैं। मूल्य ॥) है।

११—सन्धि-समास-विचार—लेखक, श्रीयुत ललितचन्द्र रैणा, प्रकाशक, रैणा ब्रदर्स, कोटा, (राजपूताना) हैं। मूल्य ।=) है।

१२—दिस सिविलाइज़ेशन (अँगरेज़ी)—लेखक, श्रीयुत पी॰ आर॰ कैकिनी, प्रकाशक, न्यू बुक कम्पनी, किताब महल, हार्नबी रोड, बम्बई हैं। मूल्य १॥) है।

१३—एजूकेशन थ्रू म्युज़ियम (अँगरेज़ी)—लेखक, श्रीयुत जे॰ सी॰ बासक, ३६३, अपर चितपुर रोड; पो॰ आ॰ बीडन स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ।=) है।

१४—डाली—प्रकाशक कवि-कोविद-संघ, फर्रुख़ाबाद हैं। मूल्य ॥-) है।

१५—संगीत-अलंकार-मञ्जरी—लेखक व प्रकाशक, प्रोफ़ेसर आनन्दस्वरूप त्रिपाठी, 'आनन्द', नाईमण्डी, आगरा हैं। मूल्य ॥) है।

१६—विवाह-रहस्य—लेखक, पंडित सरयूप्रसाद पाण्डे, प्रकाशक, हितैषी-पुस्तकालय, नीचीबाग़, काशी हैं। मूल्य ॥) है।

१७—सचित्र श्रीबदरी केदारमाहात्म्य—प्रकाशक, पंडित रामचन्द्र नम्बूरी शर्मा, बद्रिकाश्रम, पो॰ जोशीमठ, गढ़वाल हैं। मूल्य ।) है।

१८—पुराण-चित्रा—अनुवादक, पंडित के॰ एम॰ कृष्णमाचारी, हिन्दी-प्रचारक, काकिनाड़ा हैं।

१९—मनुष्य-सतसई—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत महेशचन्द्रप्रसाद, एम॰ ए॰, अध्यापक, देवाश्रम, आरा (ई॰ आई॰ आर॰) हैं। मूल्य ॥) है।

२०—राष्ट्र-भाषा क्या हो?—लेखक व प्रकाशक,

श्रीयुत चन्द्रगुप्त वेदालंकार, गुरुदत्तभवन, लाहौर हैं। मूल्य ।।) है।

२१—प्रथम-पिंगल-अलंकार—लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद कसौर 'विशारद', प्रकाशक, रामकार्यालय, बालाघाट सी० पी० हैं। मूल्य =) है।

२२—ग्राममूर्ति का व्यायाम—लेखक, प्रोफ़ेसर कालीदास माणिक, प्रकाशक, माणिक-कार्यालय, बनारस सिटी हैं। मूल्य =) है।

२३—निर्दोष क़त्ल—लेखक, श्रीयुत जगदीशप्रसाद तिवारी, प्रकाशक, जगदीश-ग्रन्थमाला-बम्बई-पुस्तकालय, चौक, कानपुर हैं।

२४—विधवा-विवाह-विचार—लेखक, श्रीयुत सुमेरचन्द्र जी कौशल, बी० ए०, प्रकाशक, दिगम्बर जैन, स्याद्वादप्रचारिणी सभा, नं० १ वैसाख लेन, बड़ा बाज़ार कलकत्ता हैं। मूल्य 'शीलधर्मप्रचार' है।

२५—प्राचीन भारतवर्ष का सिंहावलोकन—लेखक, श्रीयुत आचार्य विजयेन्द्र सूरि, प्रकाशक, श्री यशोविजय ग्रन्थमाला, हेरिसरोड, भावनगर हैं। मूल्य १।।) है।

२६—हरिपदाञ्जलि—लेखक, श्रीयुत लाला मुंशीलाल वैश्य, प्रकाशक, सेक्रेटरी, सेन्ट्रलबोर्ड आफ़ रेवन्यू, न्यू देहली हैं। मूल्य =) है।

२७—चौरासी छेदन (स्तोत्र)—लेखक, महात्मा शहन्शाह, मिलने का पता—लाइब्रेरियन, इंजीनियरिंग लाइब्रेरी, कैसरबाग़, लखनऊ हैं। मूल्य -) है।

२८—प्रीतमती, प्यास (गुजराती)—लेखक, श्रीयुत दिव्यानन्द बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक नवचेतन साहित्य-मन्दिर, २४५६, अहमदाबाद हैं।

२९—काव्य मुकुल (बँगला)—रचयिता, श्रीयुत प्रफुल्लकुमार मित्र, पगला, श्यामनगर, खुलना हैं। मूल्य ।।) है।

१—डूँगरपुर-राज्य का इतिहास—महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा इतिहास के महारथी विद्वानों में हैं। आपने अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं से हिन्दी के रिक्त भाण्डार को पूर्ण ही नहीं किया है, किन्तु उसका गौरव-वर्द्धन किया है। आप हिन्दी के उन इने-गिने प्रेमी भक्तों में हैं जो एकमात्र हिन्दी में ही लिखना अपना धर्म समझते हैं। गत १५ वर्ष से आप राजपूताने का खोजपूर्ण इतिहास लिख रहे हैं, जिसकी दो जिल्दें प्रकाशित हो गई हैं। यह आलोच्य ग्रन्थ उसकी तीसरी जिल्द का पहला भाग है। इसमें आपने डूँगरपुर-राज्य का इतिहास विस्तार के साथ लिखा है। इस तरह आप अपने 'राजपूताने का इतिहास' के विराट् आयोजन को एक क्रम से [illegible] का कार्य कर रहे हैं, यद्यपि अब आप काफ़ी वृद्ध हो गये हैं। हम चाहते हैं कि श्रीमान् ओझा जी दीर्घजीवी हों और वे अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने जीवन-काल में ही पूर्ण करने में सफलमनोरथ हों। डूँगरपुर-राज्य का अभी तक कोई इतिहास-ग्रन्थ नहीं था और इस राज्य के सम्बन्ध में अनेक भ्रममूलक बातें इधर-उधर [illegible] मिलती थीं। आपने इस ग्रन्थ की रचना करके एक [illegible] की ही नहीं पूर्ति की है, किन्तु डूँगरपुर-राजघराने-सम्बन्धी उक्त भ्रान्तियों का भी निरसन कर डाला है। इतिहास-प्रेमियों को ओझा जी की इस अमूल्य रचना का [illegible] करना चाहिए।

इस ग्रन्थ का मूल्य ४) है। पुस्तक सजिल्द है। पता—व्यास एंड संस, बुकसेलर्स, अजमेर।

२-३—भूगोल-कार्यालय, इलाहाबाद, की [illegible] पुस्तकें—

प्रयाग के पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, [illegible] विषय के विशेषज्ञ हैं। यही नहीं, गत १४-१५ वर्षों के भीतर उन्होंने हिन्दी में इस विषय का ख़ूब प्रचार किया है। वे गत १४ वर्ष से 'भूगोल' नाम का एक मासिक पत्र बड़ी लगन के साथ निकाल रहे हैं। भूगोल-विषयक उनकी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। यहाँ उनके 'भूगोल' के 'भूगोल-एटलस' और 'बाल-संसार' नामक विशेषाङ्कों का परिचय दिया जाता है।

(१) 'भूगोल-एटलस'—'भूगोल-एटलस' 'भूगोल' के बारहवें वर्ष के विशेषाङ्क के रूप में निकला है। इसके प्रारम्भ में नक्षत्र-लोक-सम्बन्धी नक़्शे हैं। उसके बाद संसार के भिन्न-भिन्न खंडों और देशों के प्राकृतिक एवं राजनैतिक नक़्शे दिये गये हैं। एक उपयोगी एटलस में जितने और जैसे नक़्शों की आवश्यकता होती है वह सब मसाला इस एटलस में दिया गया है।

(२) बाल-संसार—'भूगोल' के १४वें वर्ष के विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसमें पाँच भाग हैं। पहले में भारत, दूसरे में एशिया, तीसरे में योरप, चौथे में अमरीका और पाँचवें में अफ़्रीका-आस्ट्रेलिया के भिन्न-भिन्न देशों की रोचक बातों का बड़े अच्छे ढङ्ग से वर्णन दिया गया है। प्रत्येक देश के बालक की एक कहानी लिखी गई है और उस कहानी के बहाने उस देश की रहन-सहन एवं भौगोलिक आदि बातों का रोचक ढङ्ग से वर्णन किया गया है, साथ ही आवश्यक चित्र भी जगह जगह दिये गये हैं। इसको पढ़कर लड़के कहानी का आनन्द लेते हुए सारे संसार का आसानी से परिचय प्राप्त कर सकते हैं। 'भूगोल' के अब तक अनेक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्क निकल चुके हैं, परन्तु उसका यह विशेषाङ्क अपने ढंग का अनूठा अंक निकला है। भूगोल पढ़नेवाले बालकों को इसका संग्रह करना चाहिए।

मिलने का पता—प्रकाशक, भूगोल-कार्यालय, इलाहाबाद।

४—शिक्षा मनोविज्ञान—'मनोविज्ञान' आधुनिक युग का एक नया 'शास्त्र' है। पाश्चात्य देश के विद्वानों ने मनोविज्ञान-विषय पर इतना गवेषणापूर्वक विचार किया है कि उसे शास्त्र का रूप प्राप्त हो गया है। परन्तु हमारे यहाँ इस विषय की पुस्तकों का अभाव-सा है, पढ़नेवाले भी कम हैं। कुछ ही विद्वानों ने इस विषय पर भी पुस्तकें लिखी हैं और एक लेखक ने तो अपनी रचना पर 'मंगलाप्रसाद-पुरस्कार' भी प्राप्त किया है। प्रसन्नता की बात है, लेखक महोदय ने इस पुस्तक में शिक्षा के पहलू पर मनोविज्ञान के विषय का वर्णन किया है और मन की वृत्तियों आदि का विश्लेषण एवं विवेचन करते हुए शिक्षा के प्रभाव से उनके विकास आदि का विवरण लिखा है। इस प्रकार यह पुस्तक अधिक व्यावहारिक हो गई है। मनोविज्ञान के प्रेमियों को इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए। इसके लेखक प्रोफ़ेसर हंसराज भाटिया ने इसे बड़े परिश्रम से लिखा है। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३३३ और मूल्य २।।) है।

पता—दि न्यू इरा पब्लिशर्स, लैंग्ले रोड, लाहौर।

५-६—काशी-विद्यापीठ, बनारस, की दो पुस्तकें—

(१) संसार की समाज-क्रांति और हिन्दुस्तान—लेखक, डाक्टर गजानन श्रीपति खैर। मूल्य १।।) है।

श्रीयुत खैर भारतवर्ष के इने-गिने विद्वानों और विचारकों में हैं। उन्होंने योरप के विभिन्न देशों का भ्रमण किया है और वहाँ की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया है। यह पुस्तक उनके ऐसे ही अध्ययन का परिणाम है। यह पुस्तक चार अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय में अमेरिका की तीन सौ वर्षों की नई संस्कृति, दूसरे में रूस में पन्द्रह वर्षों की क्रांति, तीसरे में जर्मनी, इँगलेंड और इटली की प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा और चौथे अध्याय में संसार और भारतवर्ष के वर्तमान विचार-प्रवाह का तुलनात्मक दृष्टिकोण से वर्णन किया है। पुस्तक में वर्णित विषय मनोरञ्जक हैं, साथ ही जानने और मनन करने योग्य हैं। अमेरिका में बच्चों के न्यायालय, सुधारगृह, वृद्धाश्रम, जेलों में अध्ययन की सुविधा, रोटी-तरकारी बेचने के यन्त्र, बैलगाड़ी से हवाई जहाज़ तक यान के उपकरणों में क्रमिक उन्नति, रूस का श्रमजीवी समाज, वहाँ के पुराने और नये जेलों का हाल, रूस के स्त्री-समाज की अन्य देशों से भिन्नता, रूसी और अँगरेज़ के स्वभाव, रूस में पारलौकिक धर्म और विश्वास का विरोध, जर्मन में हिटलर-पूजा, रूस की औद्योगिक, यांत्रिक उन्नति, जर्मनी में सैनिक वाद का प्रसार, लन्दन के ग़रीब, नई पुश्त के युवकों की मनोवृत्ति, ऐसी ऐसी बहुतेरी बातों का बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। अमेरिका और रूस की काफ़ी प्रशंसा की गई है तथा अन्य योरपीय देशों के भी गुणों की चर्चा है। दोष भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में 'समाजवाद' की भी चर्चा की गई है। पुस्तक का चौथा अध्याय विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें संसार की वर्तमान क्रांति का दिग्दर्शन कराते हुए लेखक ने भारतवर्ष की वर्तमान राजनैतिक उथल-पुथल से तुलना की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतीयों को अपनी सामाजिक और राजनैतिक उन्नति में किस मार्ग का अनुकरण करना चाहिए।

लेखक ने अपने अनुभवों के आधार पर संसार की क्रांति का मननशील विवेचन किया है। पश्चिम की नई विचार-धाराओं और सामाजिक अवस्थाओं का प्रभाव भारत पर कितना पड़ रहा है, कितना पड़ना चाहिए और कितना न पड़ना चाहिए, इन पर ध्यान देने की सामग्री और प्रेरणा भी इस पुस्तक से प्राप्त होती है। हिन्दी-प्रेमियों

को इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए। छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। पृष्ठ-संख्या ३०० से अधिक है। संसार में क्रांति उत्पन्न करनेवालों के चित्र भी दिये हैं।

(२) जापान-रहस्य—मूल-लेखक, श्रीयुत चमनलाल, अनुवादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव। मूल्य १॥) है।

जापान संसार का एक शक्तिशाली और महान् राष्ट्र है। उसने अपनी राजनैतिक, सामाजिक, व्यापारिक और सैनिक शक्ति और संगठन का परिचय देकर संसार के अन्य राष्ट्रों को चकित कर दिया है। इस पुस्तक में ऐसे ही जापान का आँखों देखा वर्णन किया गया है। इसके रचयिता भारत के प्रसिद्ध पत्रकार श्री चमनलाल हैं। वे जापान में रहे भी हैं।

पुस्तक अठारह अध्यायों में विभक्त है। लेखक ने जापान के वास्तविक आन्तरिक रहस्यों को प्रकट करने में वहाँ के प्रतिदिन के जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं का सहारा लिया है। उन्होंने जापान की वर्तमान अवस्था, उसकी प्रत्येक दिशाओं में उन्नति करने के तथ्यों तथा रहस्यों का इसमें वर्णन किया है। वहाँ के युवकों की प्रगति, वहाँ के निवासी किस प्रकार सारे संसार में अपने व्यवसाय को फैला रहे हैं, जापानी जनता कितनी प्रगतिशील है और अंध-विश्वास और कुरीतियों का वह किस प्रकार विनाश कर रही है, शिक्षा का जापान में क्या रूप है और जन-साधारण के लिए वह कितनी उपयोगी बनाई जा रही है तथा जापानियों में ऐसी कौन-सी विशेषतायें हैं जिनके कारण वह छोटा-सा राष्ट्र होते हुए भी उन्नत राष्ट्रों में गिना गया है, इन सभी बातों को लेखक ने सजीव भाषा में लिखा है। यह पुस्तक रोचक और सामयिक दोनों है। पाठक इसे पढ़कर अपना मनोरञ्जन कर सकते हैं, साथ ही जापान के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें जान सकते हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग २५० है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

७-९—छात्रहितकारी पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग, की तीन पुस्तकें—

(१) मेरी तिब्बत-यात्रा—लेखक, महापंडित राहुल सांकृत्यायन। मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में राहुल जी ने अपनी तिब्बत-यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है। पुस्तक पाँच खंडों में विभाजित की गई है। प्रत्येक खंड का विवरण पत्र-रूप में लिखा है। इससे लेखन-शैली काफ़ी मनोरंजक हो गई है। इन से तिब्बत के कितने ही दुर्गम स्थानों का पता चलता है जहाँ पहुँचना साधारण जन के लिए अत्यन्त कठिन है। वहाँ की सामाजिक, व्यावहारिक, खान-पान आदि रस्मों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। राहुल जी की इस प्रकार की यात्रा-पुस्तकों से हिन्दी-भाषा के एक अंग की बहुत कुछ पूर्ति हुई है पुस्तक पढ़ने पर उपन्यास का आनंद आता है। पुस्तक में ३३ चित्र भी दिये गये हैं जिससे पुस्तक के विषय को पढ़ कर समझने में और आसानी होती है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

(२) अहिंसाव्रत—लेखक, महात्मा गांधी हैं। मूल्य ॥।) है।

महात्मा गांधी ने समय समय पर 'नवजीवन', 'यंग इंडिया', और 'हरिजन' में अहिंसा के संबंध में लेख लिखे हैं। महात्मा जी के ऐसे ही २४ लेखों का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। इन लेखों में अहिंसा की रूपरेखा बताई गई है और भिन्न भिन्न अवसरों पर लोगों के द्वारा की गई शंकाओं का समाधान किया गया है। इनके संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इनकी उपयोगिता, लोकप्रियता स्वंय सिद्ध है। अहिंसावादियों के लिए तो पुस्तक पठनीय है ही। जन-साधारण भी पुस्तक को पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं।

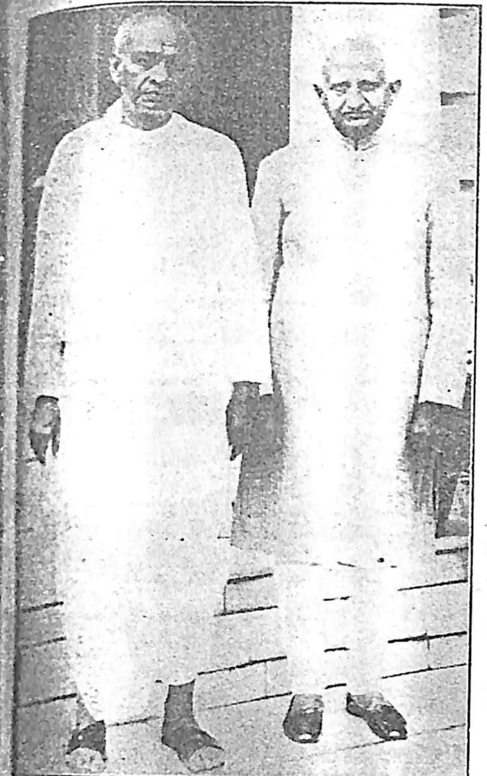
(३) दूध ही अमृत है—लेखक, श्रीयुत हनुमान प्रसाद गोयल, बी० ए०, एल-एल० बी०। मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में दूध-संबंधी विस्तृत विवरणों का रोचक संग्रह किया गया है। पुस्तक बारह अध्यायों में समाप्त हुई है। अध्यायों में क्रमशः भोजन की आवश्यकता, दूध सेवन की विधि, दूध की उत्पत्ति, संक्षिप्त इतिहास, दूध के रोगाणुओं से बचने के साधन, दूध के स्वरूप, इससे बनने वाले अन्य पदार्थ, चिकित्सा, गो-दोहन और इसके संबंध के ज्ञातव्य आँकड़ों का वर्णन है।

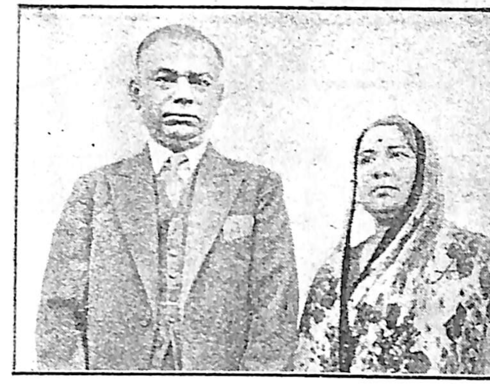
पुस्तक अँगरेज़ी के कुछ उपयोगी ग्रंथों और स्वानुभव के आधार पर लिखी गई है। इसे पढ़कर कितनी ही नई बातें मालूम होती हैं।

—ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

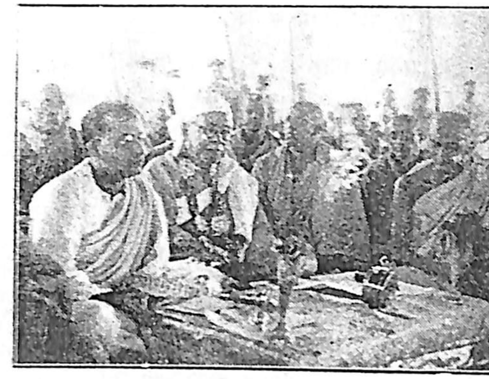
चित्र-संग्रह



सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री भूलाभाई देसाई, जिन्होंने हरिपुरा की कांग्रेस में प्रमुख रूप से भाग लिया।



आनरेबुल पंडित प्रकाशनारायण सप्रू और श्रीमती प्रकाशनारायण सप्रू जो हाल में ही आस्ट्रेलिया गये हैं।



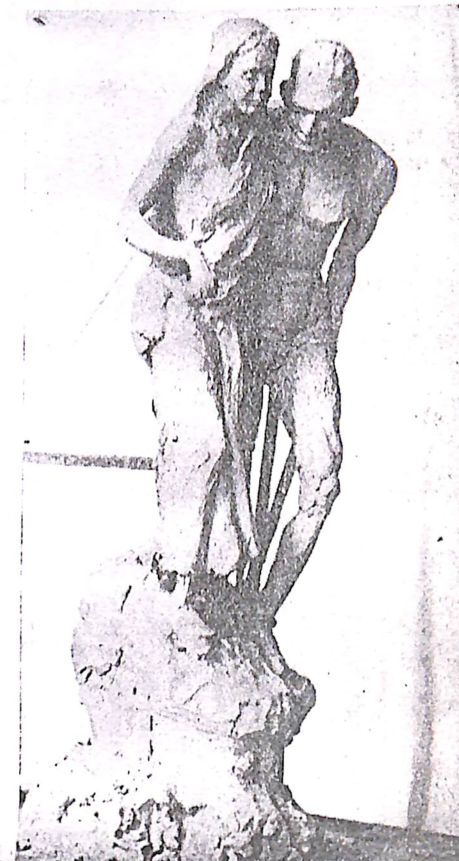
बर्मा के श्री यू० धिन जिन्होंने सारनाथ के मूलगंध-कुटी-विहार के षष्ठ वार्षिकोत्सव का सभानेतृत्व किया।



श्रीयुत प्रदोष दास गुप्त ने कलकत्ता, लखनऊ और मदरास के सरकारी कला-विद्यालयों में रहकर मूर्ति-निर्माणकला में अच्छी योग्यता प्राप्त की है। इसी विषय का विशेष अध्ययन करने के लिए वे विलायत गये हैं। मामूली मिट्टी से बनाई गई उनकी मूर्तियों के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं।





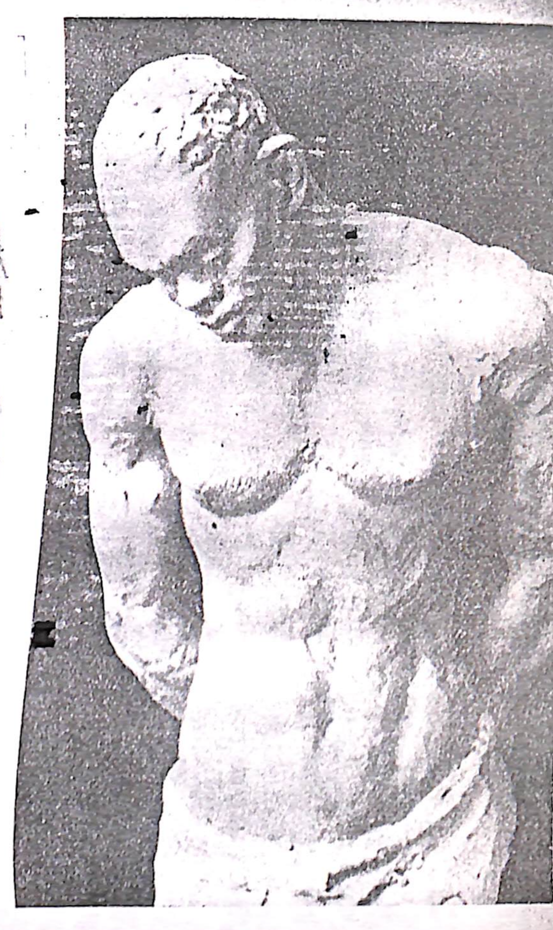




कुमारी कमला पोड्डवाल



अफ़ीमची



आधुनिक भीम







महात्मा गाँधी। दाहनी ओर ऊपर पंडित गोविन्द-वल्लभ पंत प्रीमियर यू० पी० और नीचे श्री श्रीकृष्णसिंह प्रीमियर विहार। वर्तमान विषम राजनैतिक परिस्थिति पर इनके वक्तव्य हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा विगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस फ़ार्म के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २०, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

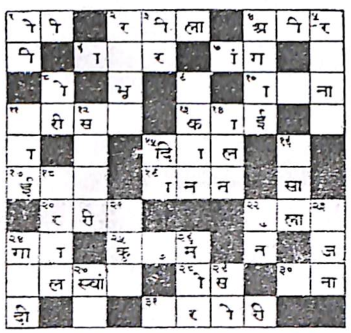
(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

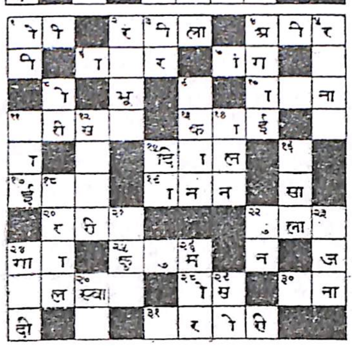
(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ मार्च तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बाँयें से दाहिने

१–'कृष्ण सँग खेलत......' (होरी)
२–होली में बूढ़े से बूढ़ा भी यह मालूम पड़ता है !
४–कृष्ण ने अवश्य इससे होली खेली होगी।
६–होली के मतवालों की सेरी......भरा रंग उलच कर भी नहीं होती !
७–कोई कोई होली में यह केसरिया बनाती हैं।
१०–इसका प्रभाव मनुष्य की लोक-प्रियता पर अवश्य व शीघ्र पड़ता है।
११–यह मसहरी ठीक नहीं लगी।
१३–अगर इसमें सकत न होगी तो भरभर पिचकारी कोई कैसे मारेगी।
१५–कञ्जूस, होली पर भी कुछ......नहीं होते।
१७–यह चकई बिचारी उलट गई है।
१९–मुखड़ा। २०–यह रसरी टूट गई।
२२–होली में जिधर देखिए उधर यही दिखाई देता है।
२४–होली की ख़ुशी में आप अक्सर बड़े बूढ़ों को भी......हुआ पायेंगे।
२५–होली में यह अपना रङ्ग दिखाते हैं।
२८–जो खोखला न हो।
३०–होली के दिन भी जो आपकी हँसी में शरीक़ न हो उससे पूछिए कि उसे क्या..... है।
३१–किसी किसी से होली इसी तरह खेली जाती है।





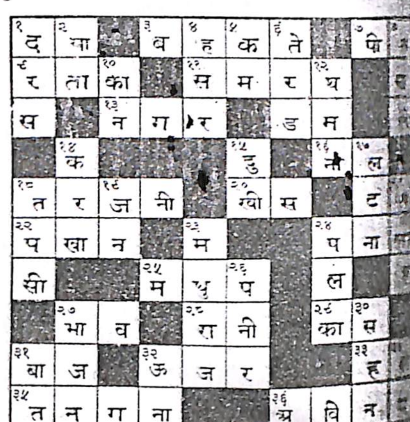
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २० की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

ऊपर से नीचे

१–जिसका दिल ही मुरझाया हुआ हो, उसको इस[illegible] क्या परवाह !
२–जो जगह नाच रङ्ग के लिए बनाई जाय।
३–होली में कहीं कहीं बड़ी मधुर सुनने में आती है।
४–होली मिलने जाइए तो लोग अक्सर यह करते हैं।
५–कुछ लाल।
८–वह कायर हैं जो इस पर छापा मारने की [illegible] रखते हैं।
९–और चाहे जब बने लेकिन होली पर ज़रूर बनता है।
११–हास्य या ठठोली प्रायः......होती है।
१२–ललिता भी राधा की एक यह थी।
१४–प्यार। १५–यह प्रकाश फैलाता है।
१६–रङ्ग चोखा लाना हो तो इसमें कसर उठा न रखिए।
१८–होली में इसकी ध्वनि ख़ूब सुनाई देती है।
२१–लाज।
२२–संसार में इससे भी लोग अपना नाम पैदा कर लेते हैं।
२३–किसी नव-वधू की पहली होली पर......देखिए।
२४–इससे हर दिल्लगीबाज़ ठठोली करने को तैयार हो जाते हैं। २६–दही की मटकी।
२७–होली में मनोरञ्जन के लिए कोई कोई यह भरते हैं।
२९–बनो ठनो।

वर्ग नं० १६ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर १६ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।



वर्ग नं० १९ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १६ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है।
१, २, ३, ४ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ मार्च के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

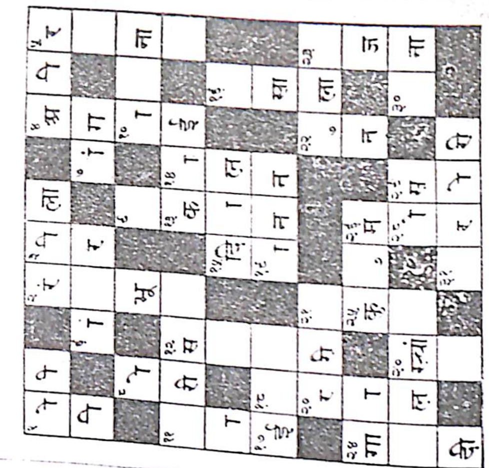
मैनेजर वर्ग नं० २०
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

शुद्ध कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

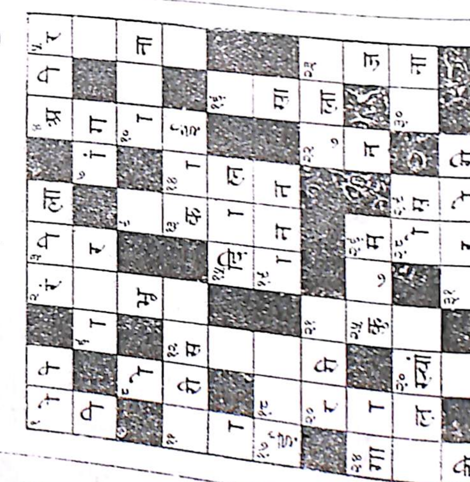


इस लाइन से काटिए

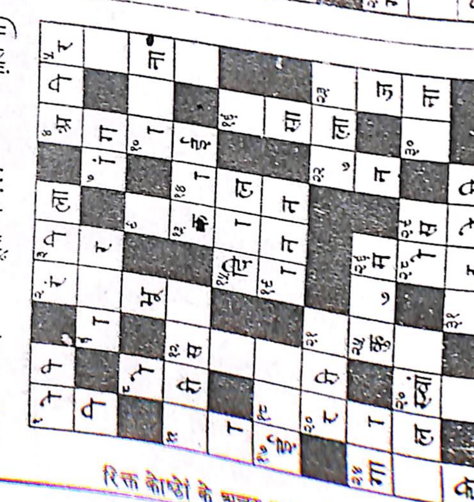
वर्ग नं० २० पूर्ति नं०... मुफ़्त कूपन



वर्ग नं० २० पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० २० पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

नाम——— पता———

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ३२६ पर देखिए।

प्रतियोगियों के पत्र और शङ्कायें

महाशय !

मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ कि 'सरस्वती' के वर्ग नं० १८ में मुझे प्रथम पुरस्कार (२०१ रु०) मिला है।

मैंने और एक बार एक वर्ग भेजा था परन्तु कृतकार्य न हुआ। इस बार यह पुरस्कार पाने से मुझे बहुत ख़ुशी हुई। आपके वर्ग बहुत कठिन नहीं हैं। केवल थोड़ी देर सोचने का काम है। आशा है कि परीक्षा के बाद और भेज सकूँगा।

मुनीन्दलाल मितरा कक्षा १०
बी आर इन्टर कालिज, आगरा।

वर्ग नं० १७ की दो शङ्कायें

(१)

गठरी नहीं, गहरी क्यों ?

यदि अँधेरी रात्रि हो, नदी हो तो पथिक को नदी देखकर ही मुसीबत हो जाती है और वह यह समझ लेता है कि जब नदी है अवश्य गहरी भी होगी। यदि वह तैरने का साहस भी करे चाहे नदी गहरी हो या नहीं, तो 'गठरी' पास होने पर उसकी मुसीबत बढ़ जाती है। अँधेरे में नदी का कम या गहरा होना इतना दुःखदायी नहीं जितना कि गठरी का साथ होना है, क्योंकि गठरी के साथ वह पार जा ही नहीं सकता। कृपया इसका उत्तर छाप कर कृतार्थ कीजिए।

(२)

ठटना नहीं बटना क्यों ?

नये फ़ैशन ने मूँछों का ठटना (सजाना) जड़ ही से उड़ा दिया, जब नये फ़ैशन में मूँछें रक्खी ही नहीं जातीं तो ठटी कैसे जायँगी। पहले सजावट होगी फिर बटना होगा। मेरे ख़याल में ठटना भी उतना ही अच्छा है जितना 'बाटना'।

आपका
रामचन्द्र अग्रवाल

वर्ग नं० १८ की शङ्कायें

आपने वर्ग नम्बर १८ की शुद्ध पूर्ति फ़रवरी मास की पत्रिका में दी है जिसमें मुझे शंका है। आशा है शङ्काओं का समाधान करेंगे।

(१) नं० १ ऊपर से नीचे 'इसके देने से एक प्रकार का बन्धन सा हो जाता है' जिसका आपने शुद्ध उत्तर 'बटन' लिखा है। बचन, देने से बन्धन होना चाहिए या बटन ?

(२) नं० २ ऊपर से नीचे का सही उत्तर 'लिपाई' लिखा है, नौ, दस साल के बच्चे लिपाई को अच्छी तरह से कर सकते हैं। लिपाई कोई कारीगरी का काम नहीं है जिसे कि ठीक तौर पर न कर सकें। हाँ लिखाई का काम अवश्य ही ठीक तरह से नहीं कर सकते। ख़याल करें।

(३) नं० १० ऊपर से नीचे 'कोई कोई... खाकर भी नहीं 'टरकते' शुद्ध उत्तर 'बात' लिखे हैं, जिसका कि 'लात' या 'मात' होना चाहिए ! नात खाकर कैसे नहीं टरकते, समझावें ! "नात" किसे कहते हैं ?

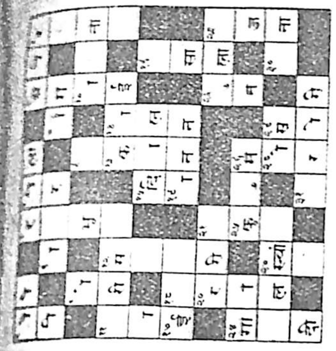
(४) नं० ३ ऊपर से नीचे का सही उत्तर 'हार' लिखे हैं ! क्या हार डाल कर अगर कोई घूमे तो आप उसे भला मानस न समझेंगे। हार डाल कर घूमना कोई ख़राब बात नहीं है। हाथ डालकर घूमना अवश्य ही भला चिह्न नहीं है।

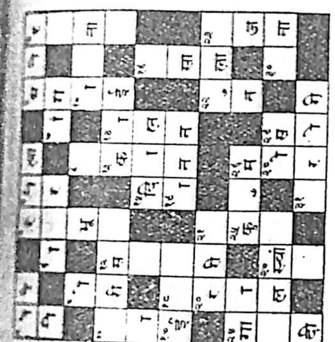
(५) नं० ३१ ऊपर से नीचे:—रीस याने गुस्सा। गुस्सा पीढ़ी दर पीढ़ी, चले आना कोई आवश्यक नहीं। बल्कि 'रीत' पीढ़ी दर पीढ़ी, चालू रहती है।

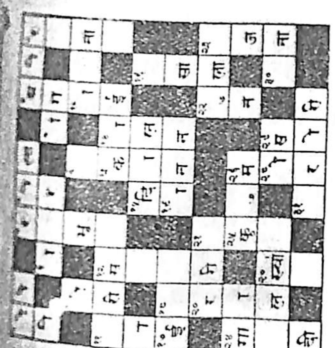
(६) नं० २४ ऊपर से नीचे:—सही उत्तर 'सब' लिखे हैं। परन्तु रकत की कमी होगी जभी तो सबक कम होगी।

भवदीय
राधाकिसन गुप्ता

आशा है जिन्होंने सही उत्तर भेजा है वे गुप्त जी का भ्रम दूर करेंगे।—सम्पादक



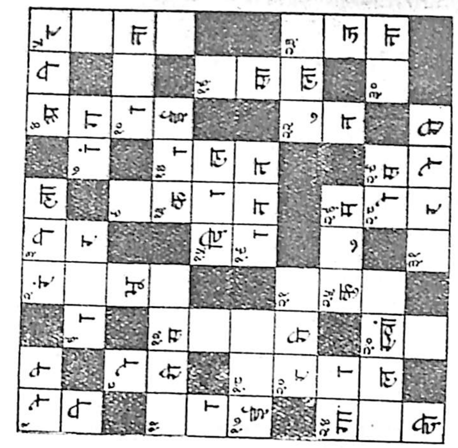




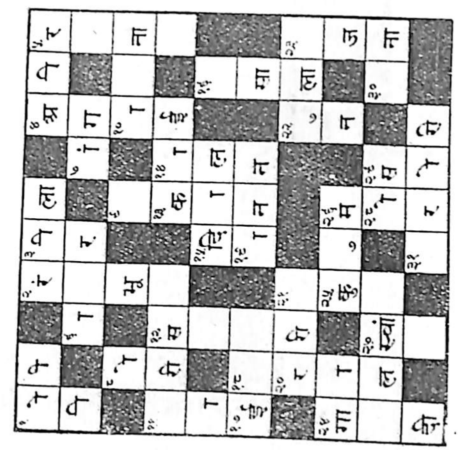
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २० की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

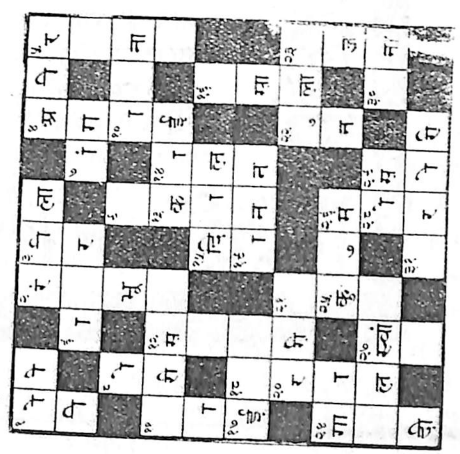
वर्ग नं० २० मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० २० पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)



वर्ग नं० २० पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)



नाम पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ३२६ पर देखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २० की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २० का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ मार्च सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।



बुद्धिमत्तापूर्ण समझौता

इसी स्तम्भ में अन्यत्र प्रकाशित सरकारी विज्ञप्ति और कांग्रेसी नेताओं के वक्तव्यों से पाठक उस संकट-पूर्ण स्थिति का अनुमान कर सकते हैं जो सारे देश में उत्पन्न हो जाती यदि इस प्रान्त के प्रीमियर और गवर्नर में राजनैतिक क़ैदियों को रिहाई के सम्बन्ध में मतभेद बना रह जाता। यह प्रसन्नता की बात है कि देश में बुद्धिमत्तापूर्ण समझौता हो गया है। नीचे हम उनका संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित करते हैं—

"हम लोगों ने आपस में मौजूदा हालत के बारे में ख़ूब बहसें कीं। हम लोग एक राय पर आ गये हैं, अतः माननीय मंत्रिगण अब अपना काम शुरू कर देंगे। कुछ राजनैतिक बंदियों के मामलों पर व्यक्तिगत रूप से विचार किया गया और गवर्नर अब शीघ्र ही मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार उन क़ैदियों को क़ैद की अवधि के पहले ही छोड़ने के लिए आज्ञा जारी करेंगे। बाक़ी क़ैदियों के मामलों पर माननीय मंत्री विचार कर रहे हैं और इसी प्रकार की आज्ञा उनके लिए भी शीघ्र ही जारी की जायगी।

हम लोगों ने गवर्नर तथा मन्त्रियों के पारस्परिक संबंध के प्रश्न पर भी देर तक विचार किया और वायसराय के हाल के वक्तव्य तथा तत्सम्बन्धी महात्मा गांधी के विचारों पर ग़ौर किया। पिछले गरमी के दिनों में वायसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था तथा मंत्रियों के इस्तीफ़े पर हरिपुरा में जो प्रस्ताव पास हुआ है उनके बारे में भी हमने विचार किया।

यह शङ्का करने का कोई कारण नहीं है कि उत्तरदायी मंत्रियों के न्यायोचित कार्यों में हस्तक्षेप किया जायगा। हम दोनों ही अच्छी परम्परा को क़ायम रखना चाहते हैं और दोनों ही तरफ़ से सद्भावना होने के कारण हमें विश्वास है कि हम सफल होंगे।

— —

राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र वसु का भाषण

हरिपुरा-कांग्रेस में राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र वसु ने सभापति के आसन से जो भाषण किया उसमें उन्होंने बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से कांग्रेस के कार्य्य-क्रम और उसकी भावी नीति का निर्देश किया है। उनके भाषण के कुछ विशेष विचारणीय अंश इस प्रकार हैं—

पदग्रहण का प्रश्न

ग्यारह प्रान्तों में से सात प्रान्तों में कांग्रेस-दल ने मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया है। अतः अब इसका विरोध या निरोध करने में कोई अर्थ नहीं है। अब हमें इससे कांग्रेस का बल बढ़ाने का यत्न करना चाहिए। मैं उन लोगों में था जो पदग्रहण के विरोधी थे। हमारा विरोध इसलिए नहीं था कि पदग्रहण करना ही कोई बुरा काम है अथवा इससे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता, बल्कि हम समझते थे कि पदग्रहण करने से जो भलाई हो सकेगी उससे अधिक बुराई होगी। अब प्रश्न यह है जब तक हमारे अपने आदमी मन्त्री हैं तब तक हम कांग्रेस का बल कैसे बढ़ावें। हमें पहला काम यह करना चाहिए कि नौकरशाही के संघटन और स्वभाव को बदल दें। यह न किया जायगा तो कांग्रेस-दल को कभी न कभी धोखा खाना पड़ेगा। प्रत्येक देश में मन्त्रिमण्डल बदलते रहते हैं, पर स्थायी कर्मचारी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। अतः यदि कर्मचारियों की रचना और मति न बदल दी गई तो मन्त्रिमण्डल और उसका दल अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप देने में असमर्थ ही रहेगा। महासमर के बाद जर्मनी में सोशियल-डेमोक्रैट

पार्टी की यही दशा हुई और सम्भवतः सन् १९२४ और १९२९ ई० में ब्रिटिश मज़दूर दल की भी यही दशा हुई। प्रत्येक देश में वस्तुतः शासन का काम स्थायी कर्मचारी ही करते हैं। भारत में अँगरेज़ों ने इन्हें नियुक्त किया है और उच्च पदों पर अधिकतर अँगरेज़ ही हैं। इनकी दृष्टि और मनोवृत्ति अधिकतर बातों में न भारतीय है न राष्ट्रीय। राष्ट्रीय नीति तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकती जब तक स्थायी कर्मचारियों की दृष्टि और वृत्ति राष्ट्रीय न हो जाय। पर शासन-विधान के अनुसार उच्च कर्मचारी भारत सचिव के अधीन हैं, प्रान्तीय सरकारों के नहीं, इसलिए इनकी रचना में परिवर्तन करना सहज काम न होगा।

द्वितीयतः, भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को, जब तक वे अधिकारारूढ़ हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य, मादक-द्रव्य-निषेध, जेलसुधार, आबपाशी, उद्योग-धन्धे, भूमि-सुधार, श्रमजीवियों का कल्याण आदि क्षेत्रों में पुनः संघटन की योजनाओं को कार्यान्वित करना चाहिए। इन विषयों में, जहाँ तक हो सके, समस्त भारत में एक प्रकार की नीति से काम होना चाहिए। यह समानता दो में से किसी एक उपाय से लाई जा सकती है। एक तो यह कि कांग्रेसी मन्त्री किसी एक स्थान में एकत्र हों, जैसे अक्टूबर सन् १९३७ में श्रम-विभाग के मन्त्री कलकत्ते में एकत्र हुए थे, और सब मिलकर एक-सी नीति ठहरावें। इसके सिवा कांग्रेस-कार्य-समिति, जो कांग्रेस की सबसे बड़ी कार्यकारिणी संस्था है, भिन्न-भिन्न कांग्रेसी सरकारों को, अपने निजी विशेषज्ञों-द्वारा प्राप्त ज्ञान के अनुसार, भिन्न-भिन्न विषयों में सलाह देती रहे। इससे यह सिद्ध है कि कार्यसमिति के सदस्यों को उन सब विषयों का ज्ञान होना चाहिए जो भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सरकारों के सामने आते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि वे शासन की सारी छोटी-मोटी बातें समझें। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रश्नों के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान होना चाहिए जिसमें वे नीति की साधारण रूपरेखा निर्धारित कर सकें। इस सम्बन्ध में कांग्रेस-कार्य-समिति ने अब तक जो कुछ किया है उससे वह बहुत अधिक कर सकती थी, और यदि अब भी वह ऐसा न करेगी तो भिन्न-भिन्न कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का नियन्त्रण कैसे कर सकेगी, यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

संघ-शासन

कांग्रेसी सरकारों के अच्छी तरह काम करने की अपेक्षा शासन-विधान के संघ-सम्बन्धी अङ्ग के कार्यान्वित किये जाने का प्रश्न अधिक महत्त्व का है।

प्रस्तावित संघ का हम इस कठोरता के साथ जो विरोध कर रहे हैं, इसके कुछ और कारण मैं बताना चाहता हूँ। संघ-योजना की एक अत्यन्त आपत्तिजनक विशेषता है व्यापार और अर्थ के सम्बन्ध के [illegible] अधिकार। केवल यही नहीं कि जनता को देश की [illegible] और परराष्ट्र-नीति के सम्बन्ध में कोई अधिकार न होगा, संघ का अधिकांश व्यय भी लोक नियन्त्रण के बाहर रहेगा। सन् १९३७-३८ ईसवी के बजट के अनुसार [illegible] व्यय ४४ करोड़ ६१ लाख रुपया और केन्द्रीय सरकार का कुल ख़र्च ७७ करोड़ ९० लाख रुपया होगा, [illegible] केन्द्रीय सरकार के कुल ख़र्च का प्रतिशत लगभग [illegible] अंश सेना पर ख़र्च होता है। मालूम होता है कि केन्द्रीय सरकार के ख़र्च का प्रतिशत ८० अंश 'संरक्षित' होगा, [illegible] गवर्नर-जनरल के नियन्त्रण में रहेगा। इसके सिवा [illegible] बैङ्क और फ़ेडरल रेलवे अथारिटी जैसी संस्थायें भी [illegible] गई हैं और बनाई जायँगी, जिन पर संघ-व्यवस्थापक मण्डल का कुछ भी अधिकार न होगा, ये 'राज्य के [illegible] राज्य' का काम करेंगी। आज व्यवस्थापक मण्डल [illegible] रेलवे की नीति ठहराने की जो सुविधा प्राप्त है [illegible] उससे छीन ली जायगी और देश के सिक्के और [illegible] हुण्डी के सम्बन्ध में भी, जिनका आर्थिक उन्नति से [illegible] सम्बन्ध है, उसे कुछ भी अधिकार न होगा।

चिन्ताजनक अवस्था

मित्रो, आज हमारी अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है। कांग्रेस के भीतर दक्षिण और वाम पक्षों में ऐसे मतभेद [illegible] गये हैं जिनकी उपेक्षा करना व्यर्थ है। बाहर [illegible] साम्राज्यवाद चुनौती दे रहा है। इस संकट में [illegible] कर्त्तव्य क्या है? क्या मेरे यह कहने की आवश्यकता [illegible] कि हमें दृढ़ता के साथ खड़े होकर इस तूफ़ान का [illegible] करना चाहिए और अपने शासकों की सब चालों को [illegible] करते रहना चाहिए? जन-युद्ध का आज कांग्रेस ही [illegible] और अद्वितीय साधन है। उसमें दक्षिण पक्ष भी हो [illegible] है और वाम पक्ष भी, पर वही एक भूमिका है [illegible]

देश के उद्धारार्थ यत्न करनेवाली सारी साम्राज्य-विरोधिनी संस्थायें एकत्र हो सकती हैं। मैं विशेषकर वाम पक्ष से अनुरोध करता हूँ कि वह कांग्रेस को अधिक लोकतन्त्रात्मिका बनाने और अधिकतम व्यापक साम्राज्यवाद-विरोधी आधार पर उसका पुनःसंघटन कराने के काम में अपनी सारी शक्ति और सारे साधनों को एकत्र करके लगा दे। यह अपील करने में मुझे ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं के भाव से बड़ी सहायता मिलती है, जिनकी भारत-सम्बन्धी नीति मुझे कांग्रेस की नीति से मिलती-जुलती मालूम होती है।

अन्त में मैं यह कहकर आप सबका भाव प्रकट करूँगा कि महात्मा गांधी दीर्घजीवी हों और हमारे राष्ट्र को बहुत वर्षों तक उनका नेतृत्व प्राप्त होता रहे, यही समस्त भारत की आन्तरिक कामना और हार्दिक प्रार्थना है। भारत उन्हें खो नहीं सकता और इस समय तो हर्गिज़ नहीं। लोगों को एक बनाये रखने के लिए हम उन्हें चाहते हैं। अपने युद्ध को कटुता और घृणा से बचाये रखने के लिए हम उन्हें चाहते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हम उन्हें चाहते हैं। यही नहीं मनुष्यमात्र के हित के लिए हम उन्हें चाहते हैं। हमारा युद्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं है—वह संसार भर के साम्राज्यवाद से है, जिसका आधार ब्रिटिश साम्राज्यवाद है। अतः हम केवल भारत के लिए नहीं, वरन मनुष्यमात्र के हित के लिए लड़ रहे हैं। भारत की स्वाधीनता का अर्थ है मानव-जाति का भयमुक्त हो जाना।

——

पद-त्याग के सम्बन्ध में माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पंत का वक्तव्य

यह दुःख की बात है कि थोड़े-से राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई जैसे मामूली प्रश्न पर संयुक्त-प्रान्त और बिहार में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का गवर्नरों से मतभेद हो गया, जिसके फलस्वरूप इन कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को पदत्याग करने के लिए विवश होना पड़ा। इस सम्बन्ध में पंत जी ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उसका एक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

राजनैतिक बन्दियों की रिहाई का प्रश्न कांग्रेस-कार्यक्रम में सर्वदा प्रमुख स्थान रखता रहा और कांग्रेस-दल ने पदग्रहण करते ही इस मामले में आवश्यक कारस्वाई की। काकोरी के क़ैदियों की रिहाई के बाद प्रान्त में जो प्रदर्शन हुए उनकी ओर सरकार ने ध्यान दिया और कुछ दिनों तक इस सवाल को टाल दिया। काकोरी के क़ैदियों में से एक तथा अन्य ५ क़ैदी अक्टूबर के आख़िरी सप्ताह में रिहा किये गये, पर मन्त्रिमण्डल ने इस रिहाई के बाद पुनः पहले जैसे प्रदर्शन न होने देने के लिए कारस्वाई की और प्रसन्नता की बात है कि मन्त्रि-मण्डल उसमें सफल हुआ।

वास्तव में काकोरी के क़ैदियों में से एक सबसे प्रमुख क़ैदी श्री दुर्गलिस जब नवम्बर के प्रथम सप्ताह में रिहा किये गये तब कोई प्रदर्शन नहीं हुआ और जहाँ तक मैं जानता हूँ उन्होंने कोई सार्वजनिक भाषण तक नहीं किया।

इसी समय से लोगों ने यह अनुभव कर लिया कि रिहाइयाँ शांति के साथ होनी चाहिए।

हमें यह विश्वास है कि इन बन्दियों का हिंसा में विश्वास नहीं रह गया है और उनमें से प्रत्येक ने अपने अपने मत को बदल दिया है। जो १५ बन्दी आज भी जेल में हैं उनमें से दो अपनी सज़ा के समय १७ वर्ष की उमर के, एक १८ वर्ष और सात १८ से २५ वर्ष की उमर के बीच के थे। उनमें से कइयों ने लम्बी अवधि तक सज़ा भुगती है। कई ऐसे हैं जिनकी रिहाई का समय आ पहुँचा है और ९ महीने के भीतर ही उनकी अवधि पूरी होनेवाली है।

मन्त्रिमण्डल ने इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त स्थिर करने के बाद क़ैदियों की रिहाई का प्रश्न जेल-विभाग के मन्त्री के ऊपर छोड़ दिया ताकि वह उन सिद्धांतों को कार्यान्वित करे। उक्त मन्त्री ने क़रीब ३ हज़ार क़ैदियों को रिहा किया। इसी प्रकार सरकार ने इन १५ क़ैदियों के सम्बन्ध में भी कुछ सिद्धान्त स्थिर करने के बाद उनकी रिहाई के प्रश्न को उक्त विभाग के मन्त्री के ऊपर छोड़ने का विचार कर रक्खा था ताकि इससे यह मामला भी सरलता से तय हो जाय और व्यर्थ की लम्बी बहसों से जिनसे कोई अर्थ निकलनेवाला नहीं, सरकार बच जाय।

हमारा यह विश्वास है कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में फ़ैसला करने का हमें पूरा अधिकार है। यह कहना बिलकुल बेमतलब है कि इस मामले में मन्त्रियों के निर्णय में हस्तक्षेप करने का अधिकार गवर्नर या गवर्नर-जनरल को है। हमने ३ हज़ार क़ैदियों को रिहा किया और कभी किसी ने एक के भी मामले की जाँच करने की आवश्यकता न समझी। फिर अब जिनकी रिहाई का प्रश्न है वे कुल १५ से ज़्यादा नहीं हैं। किसी के लिए यह समझना असम्भव हो रहा है कि कैसे १५ आदमियों की रिहाई भयंकर ख़तरे की बात हो सकती है जब ३ हज़ार क़ैदियों की रिहाई एक महीने के भीतर हो गई है। संभवतः किसी एक दिन सैकड़ों क़ैदी एक साथ रिहा किये गये हैं। यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार १५ आदमियों की रिहाई शान्ति और व्यवस्था के लिए भीषण ख़तरे का कारण हो सकती है।

इन सब प्रश्नों के साथ साथ इसका एक वैधानिक पहलू भी है। प्रांत में शांति और व्यवस्था के लिए मन्त्रि-मण्डल उत्तरदायी है, अतः उसे अधिकार है कि इन मामलों में वह अपने निश्चय के अनुसार काम करे।

श्री श्रीकृष्णसिंह का बिहार के गवर्नर को पत्र

बिहार के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के इस्तीफ़े के साथ प्रधानमंत्री श्री श्रीकृष्णसिंह जी ने गवर्नर के पास इसी सिलसिले में एक लम्बा पत्र भी भेजा था, जिसका एक अंश यह है—

आप यह स्वीकार करेंगे कि मैंने इसमें कोई जल्दबाज़ी नहीं की। छः-सात महीने तक बराबर मैंने आपका मत जानने की कोशिश की और ऐसा करने में मेरे मित्रों में मेरे बारे में बड़ी ग़लत फ़हमी फैली, पर मैं समझता था कि अगर मुझे सरकार चलानी है तो ऐसी ग़लत-फ़हमियों का सामना करना ही पड़ेगा। मैं राह देखता था और बहुत समय तक राह देखता रहा और जब विश्वास हो गया कि अब अधिक राह देखना ख़तरनाक होगा तब जाकर मैंने अन्तिम निर्णय किया।

बर्मा में राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये गये हैं। वहाँ सिर्फ़ साधारण हिंसा के ही नहीं, रक्तमय विद्रोह करने के अपराधी क़ैदी भी छोड़ दिये गये हैं। अगर अख़बारों की ख़बर सच हो तो मैसूर जैसे देशी राज्य में भी राजबन्दी छोड़ दिये गये हैं। बंगाल में भी १ हज़ार से अधिक नज़रबन्द छोड़ दिये गये हैं। पंजाब में मारशल ला के क़ैदी रिहा कर दिये गये। हम लोग तो अधिक काम कर सकते थे। सार्वजनिक हित की दृष्टि से मैं वह काम करने जा रहा था, पर आपने मुझे रोक दिया। आपके दो पत्रों से मालूम हुआ कि आप सोचते हैं कि राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई से सिर्फ़ इसी प्रान्त में ही नहीं, वरन सारे भारत में शान्ति-भंग की आशंका है। मैं नहीं समझता कि इन थोड़े से युवकों की रिहाई से शान्ति-भंग होगी। मैं यह भी नहीं समझता कि गवर्नर और गवर्नर-जनरल को जो विशेषाधिकार दिये गये हैं उनका उपयोग ऐसे समय में इस प्रकार हो सकता है।

हम लोग जब पदग्रहण के लिए हिचकिचा रहे थे तब हमें आश्वासन दिया गया था कि अत्यन्त आवश्यक समय में ही विशेषाधिकारों का प्रयोग किया जायगा। हिंसा-सिद्धान्त का पूर्णरूप से त्याग किये हुए दो दर्जन से कम युवकों की रिहाई से प्रान्त के अमन क़ानून में कैसे बाधा पड़ेगी? आपकी चिट्ठियों से यह मालूम होता है कि आप भी इसको अधिक महत्त्व नहीं देते। बन्दियों की रिहाई से दूसरे प्रान्तों में शान्ति भंग होगी, यह बात समझ में नहीं आती। भारत-शासन-विधान की धारा १२६ (५) का उपयोग करने का यह अवसर नहीं है। कुछ समय पहले यह सवाल सिर्फ़ कुछ युवकों को छोड़ने का था। अब यह बड़े वैधानिक महत्त्व का सवाल हो गया है।

इसलिए मैंने और मेरे साथी मन्त्रियों ने इस्तीफ़ा देने का निश्चय किया है। इसके साथ इस्तीफ़ा है। सार्वजनिक महत्त्व का विषय होने के कारण मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ।

सरकारी विज्ञप्ति

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सरकारी विज्ञप्ति भी प्रकाशित हुई है—

संयुक्त-प्रान्त में कुल १५ राजबन्दी गिरफ़्तार थे और उनकी रिहाई पर प्रान्त के मन्त्रिमण्डल और गवर्नर के बीच देर तक बात-चीत होती रही। इसके फलस्वरूप पहले तो वे राजबन्दी रिहा किये गये जिनका हिंसात्मक आन्दोलनों से कोई सम्बन्ध नहीं था।

बाद में मन्त्रि-मण्डल ने यह माँग पेश की कि हिंसात्मक आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले बन्दी भी रिहा कर दिये जायँ। काकोरी-षड्यन्त्र-केस के बन्दियों को रिहा करने पर विशेष बल दिया गया। बहुत देर तक विचार करने के बाद अगस्त के अन्त में गवर्नर १० बन्दियों के एक जत्थे को, जिनमें ६ काकोरी-केस के भी थे, रिहा करने के लिए राज़ी हो गये। वे रिहा कर दिये गये और जनता ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उनकी रिहाई के बाद जो प्रदर्शन हुए और जनता में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई उसे देखते हुए यह निश्चय किया गया कि हिंसात्मक आन्दोलन के बंदियों को शनैः शनैः रिहा करने की नीति फ़िलहाल मुल्तवी कर दी जाय।

अक्तूबर के अन्त में फिर यह सवाल उठा और गवर्नर ने ५ और बन्दियों को रिहा करना मंज़ूर कर लिया। बाद में बन्दियों का शनैः शनैः रिहा करने की नीति देर से छोड़नी पड़ी, क्योंकि अक्तूबर और नवम्बर में काकोरी के मुक्त बन्दियों ने स्थान स्थान पर घूम कर जो भाषण किये वे एकदम आपत्तिजनक तथा हिंसा को प्रोत्साहन देनेवाले थे। लाचार होकर दिसम्बर के अन्त में काकोरी के बन्दियों को चेतावनी देनी पड़ी। इन बन्दियों में जो बहुत ज़्यादा जोशीले थे वे दिल्ली में गिरफ़्तार कर लिये गये। इस तरह प्रान्त का वातावरण शान्त हो गया।

जनवरी के आरम्भ में मन्त्रिमण्डल ने शेष बन्दियों को रिहा करने की फिर आवाज़ उठाई। मन्त्रिमण्डल ने आश्वासन दिलाया कि शेष बन्दी आइन्दा हिंसामय आन्दोलनों में हिस्सा नहीं लेंगे, इसलिए गवर्नर ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं एक एक बन्दी के मामले पर विचार करूँगा और देखूँगा कि एक एक बन्दी का पुराना रिकार्ड कैसा रहा है। मगर मन्त्रिमण्डल नहीं माना और १५ बन्दियों को फ़ौरन रिहा करने की सलाह दी, इनमें से ६ आतङ्कवादी आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा लेते रहे हैं, ४ आतङ्कवादी-दल के सदस्य समझे जाते हैं और १ प्रसिद्ध पार्टी संगठनकर्त्ता है। बाक़ी में से १ कम्यूनिस्ट है तथा दूसरे लूट या डकैती के अभियुक्त हैं।

यही अवस्थायें थीं जिनसे बाधित होकर मन्त्रिमंडल ने गवर्नर को राजबन्दियों को फ़ौरन रिहा कर देने की सलाह दी थी। मगर गवर्नर ने मन्त्रिमण्डल के सामने स्थिति की गम्भीरता, क़ानूनी प्रतिबन्धों के महत्त्व को ध्यान में रखना, क्रान्तिकारी आन्दोलनों को शह देने का ख़तरा और सरकार के कर्तव्य आदि पर अपनी राय प्रकट की। मन्त्रिमण्डल के रवैये में कोई फ़र्क़ नहीं आया। इस पर गवर्नर ने गवर्नर-जनरल तक यह मामला पहुँचा दिया और उन्होंने नये विधान की दफ़ा १२६ (५) के अनुसार युक्त-प्रान्त के गवर्नर को हिदायत दे दी, जिसके अनुसार गवर्नर ने मन्त्रिमण्डल की सलाह को नामंज़ूर कर दिया, इस पर मन्त्रिमण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया।

महात्मा गांधी का वक्तव्य

इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने भी देशी-विदेशी पत्र-प्रतिनिधियों के द्वारा कई वक्तव्य प्रकाशित कराये हैं उनमें एक जो उन्होंने लन्दन के 'डेली हेराल्ड' को दिया है, इस प्रकार है—

भारत-शासन विधान की १२६ (५) धारा को मैंने पढ़ा और उसके अर्थ को भली भाँति सोचा-समझा है। इस धारा में गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया है कि भारत या उसके किसी भाग की शान्ति के लिए किसी बात से 'भारी ख़तरा' पैदा हो रहा हो तो अपने विशेषाधिकार से काम लेकर उसे रोक दें। राजनैतिक उद्देश से किये गये हिंसात्मक अपराधों के लिए सज़ा पाये हुए लोग इसके पहले छोड़े जा चुके हैं।

मुझे मालूम हुआ है कि उक्त दोनों प्रान्तों के मन्त्रियों ने क़ैदियों को छोड़ने का अनुरोध करने के पहले उनके भाव बदल जाने का इतमीनान कर लिया था। निश्चय ही विधान के अनुसार सबसे पहले वही शान्ति और व्यवस्था की रक्षा के लिए ज़िम्मेदार भी हैं और अगर कांग्रेसी मन्त्रियों की सारी कोशिशों के बाद भी उपद्रव मच ही गया तो गवर्नर और सारी ब्रिटिश शक्ति सदा उसके लिए तैयार ही है। निश्चय ही इस मामले में कांग्रेसी मन्त्रियों के सुविचारित निश्चय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई भी उचित कारण नहीं था। और मैं यह मानने को लाचार हो रहा हूँ कि मन्त्रियों ने पदत्याग करके कार्य-समिति के आदेशानुसार उसी मार्ग का अनुसरण किया है जो उनके लिए एकमात्र मानयुक्त मार्ग था।

सम्पादकीय नोट

फिर संकट

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में फिर संकट उपस्थित हो गया है। बिहार और संयुक्त-प्रान्त के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने राजनैतिक बन्दियों के छोड़े जाने के प्रश्न पर गवर्नर से मतभेद हो जाने पर एकाएक पद-त्याग कर दिया है। इस परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने की, ख़ासकर इस प्रश्न पर, ज़रा भी सम्भावना नहीं थी, क्योंकि अब तक उक्त प्रान्तों में सैकड़ों की संख्या में राजनैतिक क़ैदी छोड़े जा चुके हैं और अब जेलों में उनकी संख्या बहुत ही अल्प रह गई थी। खेद की बात है कि एक तयशुदा मामले पर यह विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई। कहाँ यह सोचा जाता था कि ब्रिटिश सरकार संघ-शासन की स्थापना के लिए एक ओर राजाओं से तो दूसरी ओर लोकनेताओं से विचार-विनिमय कर रही है, कहाँ एक मामूली बात पर यह वैधानिक संकट उठ खड़ा हुआ है। जान पड़ता है, इसके पीछे कोई गहरी बात है, कदाचित् अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की भयानकता हो, अन्यथा ब्रिटिश सरकार कांग्रेस से बैठे-बिठाये झगड़ा न मोल लेती। इस घटना का कांग्रेस के हरिपुरा के अधिवेशन पर बड़ा प्रभाव पड़ा है और कांग्रेस के सूत्रधारों ने इस परिस्थिति का सामना धैर्य के साथ किया है। इस घटना के कारण उन पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आ गई है। इसमें सन्देह नहीं, सदा की भाँति वे इस संकट का भी दृढ़ता के साथ सामना करेंगे। हरिपुरा-अधिवेशन में सबसे बड़ी समस्या कांग्रेस के दक्षिण और वाममार्गियों में मेल कराने तथा मुसलमानों से एक नया पैक्ट और संघ-योजना का विरोध करने की थी, पर अब यह नया संकट उपस्थित हो गया है, जिसके और भी अधिक उग्ररूप धर जाने की सम्भावना हो सकती है। अतएव कांग्रेस ने सबसे पहले इसी प्रश्न को अपने हाथ में लिया है।

देखना है कि यह समस्या कैसे हल होती है।

इधर और उधर

इधर चीन में जापान अपने नर-संहार के काम में पूर्ववत् लगा हुआ है। कहा जाता है कि अब तक चीन में चार लाख से ऊपर लोग मारे जा चुके हैं तथा कई एक बड़े बड़े नगर ढहा दिये गये हैं तथा उत्तर चीन में २,६०,००० वर्गमील और मध्य-चीन में २७,००० मील भूमि छिन गई है। और लड़ाई वैसे ही ज़ोरों से जारी है। अनुमान किया गया है कि यदि चीन ऐसी ही दृढ़ता से अन्त तक लड़ता रहेगा तो यह युद्ध चार वर्ष से अधिक समय तक जारी रह सकता है। और तब तक चीन का कितना संहार हो जायगा, यह एक खुली बात है। चीन समझता था कि उसे इस युद्ध में कम से कम रूस से तो ज़रूर ही सहायता मिलेगी। हाल में वहाँ जो नया रूसी राजदूत आया है उसने तो सहायता का आश्वासन भी नहीं दिया है। सो चीन को उस ओर से भी निराशा हुई है। अमरीका के संयुक्त-राज्य ने भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि वह किसी बाहरी झगड़े-बखेड़े में भाग न लेगा, परन्तु संसार की अवस्था को देखते हुए आत्म-रक्षा के विचार से वह तदनुकूल अपना सामरिक बल ज़रूर बढ़ाता जायगा। ब्रिटेन से भी मदद की आशा नहीं है। भूमध्य-सागर का प्रश्न उसे नींद तक नहीं लेने देता। भूमध्य-सागर में ब्रिटेन के जहाज़ों पर वार हो ही जाता है। ऐसी दशा में ब्रिटेन को चीन की ओर ध्यान देने को कहाँ फ़ुर्सत मिल सकती है? सारांश यह कि पिछले बार की तरह इस बार भी चीन को अकेले ही जापान से लड़ना पड़ेगा। जापान यह सब जानता था और यह सब देखकर उसने चीन पर आक्रमण किया है और विजय पर विजय प्राप्त करता जा रहा है। यही नहीं, उसने इस युद्ध में यह भी दिखला दिया है कि उसे ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य या रूस का भी डर नहीं है। ऐसे अवसर आये हैं जब इनमें से सभी देशों से उसका संघर्ष हो जाता, परन्तु उसकी नौबत नहीं पहुँची। जापान के सैनिकों ने उक्त देशों के नागरिकों का अपमान किया, उनकी सम्पत्ति नष्ट की, उन पर तथा उनके जहाज़ों पर गोलाबारी भी की, परन्तु कोई घटना होने पर प्रत्येक बार माफ़ी माँगकर जापान संघर्ष बचा गया। इससे प्रकट होता है कि जापान कितना बलशाली है। ऐसा ही जापान आज निर्दयता से चीन की स्वाधीनता का अपहरण कर रहा है और यह सब उन महाशक्तियों के आगे हो रहा है जो अपने को राष्ट्र-संघ का सदस्य बताती हैं और जो सदस्य राज्य की स्वाधीनता की रक्षा करने को प्रतिज्ञाबद्ध हैं। असल बात यह है कि जापान ज़बर्दस्त है और इधर एशिया में भी ज़बर्दस्त का ठेंगा सिर पर है।

उधर योरप में दूसरा ज़बर्दस्त हिटलर सामने आया है। जर्मनी की सारी सेनाओं का वह ख़ुद प्रधान सेनापति बन गया है। उसने सेना के प्रायः सभी पुराने सेनापतियों को छुट्टी दे दी है और उनके स्थान पर नौजवान लोगों को नियुक्त कर दिया है। प्रारम्भ से ही उसकी यह इच्छा है कि आस्ट्रिया जर्मनी में शामिल हो जाय, क्योंकि दोनों देशों में एक ही जाति के लोग निवास करते हैं। परन्तु आस्ट्रिया को उसकी रक्षा की गारंटी फ़्रांस, ब्रिटेन, इटली आदि से मिली हुई थी, अतएव वह अपनी ऐंठ में रहा और जर्मनी में नहीं शामिल हुआ। इसी फ़रवरी की १५ तारीख़ को आस्ट्रिया के शुशनिग ने जर्मनी जाकर हिटलर से भेंट की, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यह दिखाई दिया कि शुशनिग ने वायना आकर अपना नया मंत्रिमण्डल बनाया और उसमें नाज़ी-दल के एक नेता को मंत्रिपद देकर पुलिस का विभाग सौंप दिया। जिस समय वायना में नये मंत्रिमण्डल का संघटन हो रहा था उस समय आस्ट्रिया की सीमा पर जर्मन सेनायें मँड़रा रही थीं। इस प्रकार सैनिक प्रदर्शन के द्वारा हिटलर ने एकाएक आस्ट्रिया पर अपना आतङ्क स्थापित कर लिया। उसकी इस कार्रवाई को देखकर फ़्रांस और ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ चौकन्ने हो गये हैं। वे पता लगा रहे हैं कि हिटलर और आस्ट्रिया के शुशनिग में क्या बातचीत हुई है और आस्ट्रिया के मंत्रिमण्डल में ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ है।

वस्तुतः योरप की राजनीति नित्य नया रंग लाती रहती है। रूमानिया की सरकार फिर बदल गई है और वहाँ जो नया मंत्रिमण्डल बना है वह राष्ट्र-संघ का हिमायती है जब कि इसके पहले का मंत्रिमण्डल फ़ैसिस्टवादी था। उस समय ऐसा जान पड़ा था कि अब सारा का सारा मध्य योरप फ़ैसिस्टवादी हो जायगा। परन्तु रूमानिया ने फिर आड़ लगा दी। तो भी फ़ैसिस्ट हतप्रभ नहीं हुए जैसा कि आस्ट्रिया में हिटलर की कड़ी कार्यवाही से प्रकट होता है।

चाहे जो हो उधर योरप, इधर एशिया में दोनों जगहों में 'दण्डावाद' का ज़ोर है।

सिन्ध-सरकार का सद्कार्य

दहेज़ की कुप्रथा के कारण हिन्दू-समाज में जो अनाचार फैला हुआ है वह इतनी गम्भीर स्थिति को पहुँच गया है कि उसकी ओर देश की सरकार का भी ध्यान जाना लाज़िमी हो गया है। झाँसी की एक भीषण दुर्घटना का उल्लेख करते हुए हमने गत वर्ष संयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकार से निवेदन किया था कि यदि वह इस बुराई की रोक-थाम नहीं कर सकती है तो दहेज़ पर ऐसा आय-कर तो लगा ही सकती है जिससे दहेज़ का लेना परोक्ष रीति से बन्द हो जाय। प्रसन्नता की बात है कि सिन्ध की प्रान्तीय सरकार ने एक ऐसे क़ानून के मसविदे को स्वीकार किया है जिसमें दहेज़ की सीमा ५००) तक बाँधी गई है। इस समय वह व्यवस्थापक सभा में विचारार्थ उपस्थित है। सिन्ध में भी यह दहेज़-प्रथा ग़ज़ब ढा रही है। कुछ दिन हुए, पत्रों में छपा था कि वहाँ की कोई २० कन्याओं ने दहेज़ की प्रथा से क्षुब्ध होकर आजीवन कुमारी रहने की प्रतिज्ञा की है। सिन्ध की सरकार दहेज़ की प्रथा के सम्बन्ध में क़ानून बना रही है, जो अभिनंदनीय है। इसके यथाशीघ्र क़ानून का रूप प्राप्त हो जाने में देरी नहीं होनी चाहिए। यही नहीं, अन्य प्रान्तीय सरकारों को भी चाहिए कि वे इस सम्बन्ध में सिन्ध का अनुकरण करें और जल्दी से जल्दी।

सारडा-क़ानून

बाल-विवाह रोकने के लिए जो सारडा-क़ानून बनाया गया था वह एक प्रकार से बेकार ही सिद्ध हुआ है। उसके रहते हुए भी बाल-विवाह धूमधाम से होते रहे। उसको अमल में लाने के लिए यदि पुलिस को अधिकार

दिया गया होता तो शायद वह क़ानून सार्थक होता। अभी हाल में केन्द्रीय असेम्बली में उस क़ानून में एक संशोधन किया गया है। जो लोग अभी अँगरेज़ी भारत के बाहर जाकर बाल-विवाह कर लाते थे वे अब इस संशोधन के अनुसार दण्डनीय समझे जायँगे। परन्तु इस संशोधन का क्या प्रभाव पड़ेगा, जब बाल-विवाह खुले आम अँगरेज़ी भारत में ही हो रहे हैं? इस क़ानून की सार्थकता तो तभी होगी जब उसके जारी करने के लिए ख़ुद सरकार यत्नशील होगी। जिस रूप में यह क़ानून आज-कल जारी है उससे बाल-विवाह की रोक-थाम कदापि नहीं हो सकेगी।

—

भारत और पंचवार्षिक योजना

पिछले दिनों रूस में स्टेलिन के शासन में लोक-निर्माण की कई योजनायें कार्य में परिणत की जा चुकी हैं, जिनके फलस्वरूप रूस एक स्वावलम्बी ही नहीं, किन्तु संसार का एक प्रमुख सम्पन्न तथा शक्तिशाली देश हो गया है। उसकी उक्त योजनाओं को कार्यान्वित करने में भारत के श्रीयुत ए० के० शाहा ने काफ़ी योग-दान दिया है। वे वहाँ औद्योगिक इंजीनियर थे और उन्होंने वहाँ की दो पंचवार्षिक योजनाओं को सफल बनाने में प्रमुख भाग लिया है। १२ वर्ष तक रूस में रह कर वे अब अपनी रूसी पत्नी के साथ स्वदेश लौटे हैं और स्थायी रूप से भारत में ही रहना चाहते हैं। उन्होंने ढाका-विश्व-विद्यालय से साइंस की डिग्री पाई थी। १९२६ में वे रूस चले गये। बिलकुल ख़ाली हाथ थे। कई महीने तक मास्को में भटकते फिरे। अन्त में उन्हें वहाँ एक विज्ञान-शाला में काम करने को मिल गया। कोयला तथा गैस के सम्बन्ध में नई खोजें करने से उनका वहाँ नाम हो गया। उनकी प्रतिभा को देखकर रूस-सरकार ने उनको पंचवार्षिक योजनाओं को कार्यान्वित करने में नियुक्त किया।

ऐसे ही अनुभवी शाहा महोदय का कहना है कि भारत तो रूस से कहीं अधिक अच्छे ढंग से पंचवार्षिक योजना को कार्यान्वित कर सकता है। रूस ने सन् १९२९ में जिस अवस्था में पंचवार्षिक योजना को कार्य में परिणत किया था उससे भारत कहीं अच्छी दशा में है, ज़रूरत है तो केवल इच्छाशक्ति की।

कांग्रेसी सरकारों के प्रोग्राम में ग्रामोद्धार के कार्य को प्रमुख स्थान दिया गया है। ग्रामोद्धार के कार्यकर्ताओं को शाहा महोदय के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए। वे तो उन विशेषज्ञों में हैं जिन्होंने एक महान राष्ट्र की वर्षों के भीतर काया पलट दी है।

—

जापान का मुसलिम सम्पर्क

जापान-सरकार ने हाल में मुसलमान-राज्यों से सम्पर्क बढ़ाने के सम्बन्ध में अपना निश्चय प्रकट किया है। उसके इस निश्चय के प्रकाशित होते ही एक भारतीय मुसलमान सज्जन को आश्चर्य हुआ है और उन्होंने 'लीडर' में एक लेख लिखकर जापान के असली रूप पर अपने ढंग से प्रकाश डालने का यत्न किया है। उन्होंने बताया है कि जापान में एक भी 'जापानी' मुसलमान नहीं है, न वहाँ मुसलिमधर्म-सूचक कोई मस्जिद ही है। कुछ दिन हुए बाहरी मुसलमानों के विशेष प्रयत्न से कोबे में एक छोटी सी मस्जिद बनाई जा सकी है। उक्त सज्जन ने इस सिलसिले में यह भी बताया है कि एशिया के उस भाग में कहाँ कितने मुसलमान हैं। वे लिखते हैं—

सुदूर के पूर्वी देशों में अर्थात् जहाँ पीतवर्ण के लोग निवास करते हैं और जिनमें 'डच इस्ट इंडीज़' भी शामिल है, मुसलमानों की काफ़ी महिमा है। मंचूरिया में जापानियों का जिन चीनी सेनाओं ने दृढ़ता से विरोध किया था उनका सेनापति मा चनशान मुसलमान था। उसकी उम्र अभी २८ वर्ष है और अब वह चीन की राष्ट्रीय सरकार के पक्ष में लड़ रहा है। निंगशा, कंसू और चहार के प्रान्तों के गवर्नर सदा मुसलमान रहे हैं, क्योंकि इन प्रान्तों में ७५ फ़ी सदी से भी अधिक मुसलमान बसे हैं। शेंसी, शान्सी और होपी के प्रान्तों में तो उतने ही मुसलमान होंगे जितने बंगाल और पंजाब में हैं। ये प्रान्त उत्तरी चीन में हैं और इन्हीं प्रान्तों के हड़पने में जापान इस समय लगा हुआ है। इसी से उसे मुसलमानों से सम्पर्क बढ़ाने की इच्छा हुई है, क्योंकि उत्तरी चीन में मुसलमानों का प्राधान्य है।

इसके सिवा चीनी तुर्किस्तान के मुसलमान अपना अलग महत्त्व रखते हैं। और इस समय वे स्वतन्त्र भी हैं। इधर मंगोलिया में भी एक-तिहाई मुसलमान हैं और सभी बड़े लड़ाक हैं।

दक्षिणी चीन में मुसलमान अल्प-संख्या में हैं। परन्तु यूनान और ज़ेचुआन के प्रान्तों में उनकी बहु-संख्या है। इसी प्रकार तिब्बत के लासा में उनकी एक बड़ी संख्या है, जहाँ का सारा व्यापार उनके हाथ में है। तुर्कों में भी मुसलमान बड़ी संख्या में हैं। सारांश यह कि चीन में मुसलमान ५ करोड़ के लगभग निवास करते हैं। उनकी यही विशाल संख्या जापान को मुसलमानों से सम्पर्क बढ़ाने के लिए प्रेरित कर रही है।

—

चीन की दुर्दशा

औरंगज़ेब के मरने पर उसके साम्राज्य के सूबेदार जिस प्रकार मनमानी करके मुग़ल-साम्राज्य के विनाश के कारण बने थे, बहुत कुछ इतिहास की वह बात २०वीं सदी के गत २० वर्षों के भीतर चीन में दोहराई गई है। सन् १९११ की क्रान्ति के बाद चीन में जब प्रजातंत्र-राज्य की स्थापना हुई थी तब वहाँ के सूबेदारों के कुचक्रों के कारण चीन में सुदृढ़ प्रजातंत्र की स्थापना नहीं हो सकी, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज वह जापान के साम्राज्यवाद का शिकार हो रहा है। वहाँ के सूबेदार कैसे कुचक्री रहे हैं इसका एक सुन्दर उदाहरण वहाँ के प्रख्यात ईसाई जनरल फ़ेंग यू-सियांग हैं। सन् १९२४ में उत्तरी चीन में मार्शल यू-पी-फ़ू की तूती बोल रही थी। पर जब फ़ेंग यू-सियांग ने उनके साथ विश्वासघात किया तब उनका पराभव हो गया और वहाँ फ़ेंग यू-सियांग की तूती बोलने लगी। रूस से धन की सहायता पाकर वे मंचूरिया के सूबेदार चंग सो-लिन से भिड़ने की तैयारी करने लगे। परन्तु चंग सोलिन यू-पी-फ़ू से मिल गये और फ़ेंग यू-सियांग मास्को भाग गये। १९२७ में चियांग कै-शेक ने हैंकाऊ पर अधिकार कर लिया। उस समय कैंटन के कुओमिंटंग के वामपक्ष ने फ़ेंग को हैंको का गवर्नर बना दिया। परन्तु फ़ेंग बाद को चियांग-कै-शेक के पक्ष में हो गये, जिसने उन्हें अपना फ़ौजी मंत्री बना लिया। इसके बाद फ़ेंग ने चियांग के भी विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया, जिससे कियांग-सी में वर्गवादियों का ज़ोर बढ़ गया। अन्त में चियांग से उनका समझौता हो गया और ये चियांग की फ़ौजी कौंसिल के वायस चेयरमैन बनाये गये। चीन के गवर्नरों का यह एक उदाहरण है। चीन में ऐसे ही गवर्नर रहे हैं और आज भी हैं। यही कारण है कि आज चीन में जापान खुलकर खेल रहा है। और वह दिन दूर नहीं है जब सारे चीन पर जापान का अधिकार स्थापित हो जायगा। निर्बल, अव्यवस्थित, छिन्न-भिन्न चीन जापान जैसे परम देशभक्त और शक्तिशाली राष्ट्र के आगे कैसे ठहर सकता है?

संघ-योजना

संघ-शासन-योजना के कार्य में परिणत होने का समय दिन प्रतिदिन समीप आता जा रहा है। भारत-सरकार इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई कर रही है। अँगरेज़ी भारत में इस योजना के विरुद्ध कांग्रेस और मुस्लिम लीग प्रारम्भ से ही हैं। आज भी इन दोनों संस्थाओं के प्रमुख नेता उसका स्पष्ट शब्दों में विरोध कर रहे हैं। उधर देशी राज्य भी उससे भड़के हुए हैं। वे संघ में शामिल होने से पहले इस बात का पक्का वचन ले लेना चाहते हैं कि उनके अधिकारों में बाद को किसी तरह का व्याघात न पहुँचे और वे अक्षुण्ण बने रहें। भारत-सरकार, जैसा कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है, उनका समाधान करने को आवश्यक कारवाई कर रही है और ठीक समय तक वे संघ में शामिल होने को एकाएक तैयार हो जायँगे। उक्त योजना के वे चाहे जितना विरुद्ध हों, शक्तिशाली सरकार की इस महत्त्व-पूर्ण योजना को निष्फल करने के एक प्रमुख कारण कैसे बन सकते हैं? अब रहा कांग्रेस और लीग का विरोध। सो उनका भी विरोध वैधानिक है। वे उस योजना से सहयोग करने की अपनी स्वीकृति कैसे दे सकती हैं जिसमें देशी राज्य जैसे अनियन्त्रित शासन-प्रणाली के देश भारत के शासन में उनके साझीदार बनेंगे? यदि देशी राज्यों में भी अँगरेज़ी भारत जैसी ही शासन-प्रणाली प्रचलित हो जाती तो संघ-योजना के कार्य में परिणत किये जाने का ये संस्थायें कदाचित् इतना विरोध न करतीं। परन्तु अब तो कांग्रेस से सरकार का संघर्ष भी हो गया है। ऐसी दशा में वह संघ-योजना का मौखिक विरोध करके ही शान्त न होगी। उधर लीग का विरोध बना बनाया है ही। तब संघ-योजना के अपने निर्दिष्ट समय में कार्य में परिणत होने में अवश्य देर लगेगी। ऐसी दशा में संघ-योजना लोक-भावना के विरुद्ध कैसे अस्तित्व में आती है, यह देखने की बात होगी।

—

राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र वसु

गुजरात के सूरत ज़िले के हरिपुरा नामक गाँव में कांग्रेस का ५१ वाँ वार्षिक अधिवेशन सफलतापूर्वक हो गया। इस बार के अधिवेशन के सभापति श्रीयुत सुभाषचन्द्र वसु बनाये गये थे। सुभाष बाबू ने यह गौरवपूर्ण पद एकमात्र अपने अपूर्व त्याग, खरी देशभक्ति और लोकसेवा के प्रचण्ड उत्साह से प्राप्त किया है। आपने भी



[नवीन राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र वसु]

पण्डित जवाहरलाल नेहरू की ही भाँति देश के नवयुवकों का सम्मान प्राप्त किया है। यदि आपको इस वर्ष राष्ट्रपति का उच्च पद प्रदान किया गया तो यह सर्वथा उपयुक्त ही हुआ है। इस समय देश जिस क्रान्तिकाल को पार कर रहा है उसके लिए चोटी के क्रियाशील नेता को ही राष्ट्रपति का पद ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टि से भी आप... राष्ट्रपति होना समय के सर्वथा उपयुक्त हुआ है। ... देश में मंत्रियों के पद-त्याग से जो वैधानिक सकट ... उपस्थित हो गया है और जिसके कारण भविष्य ... संकटपूर्ण दिखाई देने लगा है उस सबका मुका... करने के लिए सुभाष बाबू जैसे लोक-सेवा की अग्नि ... अनेक बार तपाये हुए लोकनायक की ही ज़रूरत ... आशा है, आपके नेतृत्व में कांग्रेस वर्तमान वर्ष में और ... अधिक गौरवपूर्ण सिद्ध होगी।

भारतीय समुद्र-तट का व्यापार

केन्द्रीय धारा सभा में सर ए० एच० गज़नवी का ... अति महत्त्वपूर्ण बिल पेश है। इस पर सेलेक्ट कमिटी ... इस समय विचार हो रहा है। उक्त कमिटी को 'इंडियन ... शिपिङ्ग कम्पनीज़' की ओर से एक वक्तव्य दिया गया ... जिसमें यह बताया गया है कि—

भारत का समुद्र-तट चार हज़ार मील है। उसका ... व्यापार २० करोड़ पौंड का है। परन्तु उसके पास ... जहाज़ नहीं के बराबर हैं। फ़िनलेंड, पनामा, युगोस्लेविया ... जैसे छोटे देशों के पास भारत की अपेक्षा ज़्यादा ... हैं। नार्वे का व्यापार भारत के समुद्री व्यापार से ... तिहाई से भी कम है, पर उसके पास भारत से १८ ... अधिक जहाज़ हैं। इसी प्रकार यूनान, डेन्मार्क, स्पेन, ... गाल, रूस जिनका समुद्री व्यापार भारत की अपेक्षा कम ... भारत से अधिक जहाज़ रखते हैं। संसार में ३२ देश ... जिनके अपने समुद्र-तट हैं। इनमें २७ देशों ने ... अपने समुद्र-तटों को अपने देशी जहाज़ों के चलने ... रक्षित रक्खा है। परन्तु 'इंडिया-ऐक्ट' के अनुसार ... सरकार भारतीय समुद्र-तट को भारत के लिए रक्षित ... कर सकती।

यही सब देख कर गज़नवी साहब ने उक्त बिल उपस्थित ... किया है। देखना है कि सेलेक्ट कमिटी उस बिल को ... कहाँ तक लोकोपयोगी बनाती है। इस क़ानून के ... जाने तथा देशी जहाज़ी कम्पनियों को उन्नति करने ... मौ..। देने से देश का भारी लाभ होगा, इसमें ... सन्देह नहीं है।



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अप्रेल १९३८ | भाग ३९, खंड १ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४६० | चैत्र १९९५

क्षणिका

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

कल खिली थी कामिनी;
आज ही रज में मिली
मेरे हृदय की स्वामिनी!

कल जगत के मंच पर थी:
वर्ण में लावण्य; विकसित
रूप के मा लक्ष्य पर थी!
आ गई लो, आज सहसा
मृत्यु - वदना यामिनी!

कल खुले दृग-कलि-कमल-दल;
प्राण प्रिय-दर्शन - पिपासित,
अंग में छवि-गन्ध-परिमल!
जलद में पल-भर चमक कर
मिट गई सौदामिनी!

दो दिनों का आ चिर यौवन,
विश्व की मधु-वीथिका में
भ्रमर, कर ले प्रणय-गुंजन!
आज की मुसकान, कल के
अश्रु की अनुगामिनी!

कन्नौज के संकलन

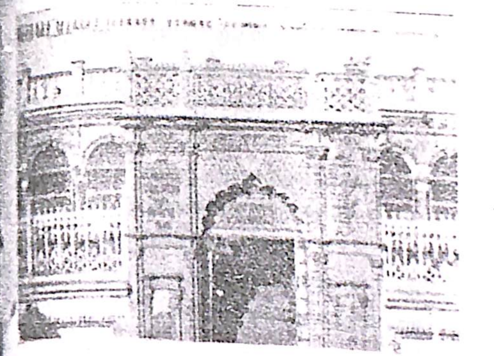
लेखक, श्रीयुत उमेशचन्द्रदेव साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति

कन्नौज उत्तर-भारत का एक प्राचीन नगर है। यही नहीं, वह एक ऐतिहासिक नगर है। मौखरियों, बैसों, परिहारों और गहरवारों ने यहाँ से सदियों तक उत्तर-भारत के एक बड़े भाग पर शासन किया था। गत ८०० वर्ष से वही नगर ध्वंसप्राय है। उसी का दिग्दर्शन इस लेख में लेखक महोदय ने बड़े रोचक ढंग से कराया है।

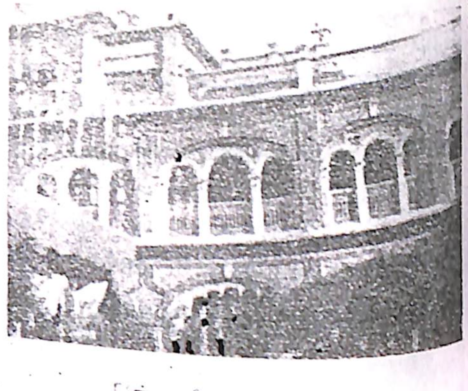
"कस्तूरी और कन्नौज की सरस नाक से अधिक होती है, आँख से कम", यह कहावत बहुत कुछ सत्य है। कन्नौज के चारों ओर लगभग चालीस वर्गमील के भूखण्ड में सैकड़ों फूलबाग़ हैं। इन बाग़ों में फूलों की कोई-न-कोई फ़सल हर समय तैयार रहती है। ये बाग़ अपनी मनोहारिणी छटा और सुगंध के द्वारा कन्नौज की ओर आनेवाले अतिथि का स्वागत चार-पाँच मील आगे से ही कर चलते हैं। फूलों की भीनी बास नगर के समीप लहरों और उसके बीच तक पहुँचते-पहुँचते लपटों में बदल जाती है। उर्दू के लेखकों ने कन्नौज को इसी लिए 'फूलों का शहर' लिखा है। मनों इत्र-गुलाब प्रतिदिन तैयार होकर यहाँ से देश-विदेश जाया करता है। शताब्दियों से यही कन्नौज का प्रधान उद्यम और व्यवसाय रहा है। इत्र, गुलाब और सुगंधित तैल बनानेवाली फ़ैक्टरियों की संख्या भी यहाँ चार सौ से अधिक है। बाज़ार में जितनी भी दूकानें हैं, या तो इत्र की हैं या इसी व्यापार से सम्बन्धित बारदाना, यथा—शीशी, कंटर, इत्रदान, सन्दूक़ची, टीन का डिब्बा व कुप्पी आदि की। इसी कारण यहाँ सैकड़ों कारीगर डिब्बे, सन्दूक़चियाँ और इत्रदान आदि ही बनाया करते हैं।

फ़ैक्टरियों में से बारह तो ऐसी हैं जिनके यहाँ हज़ारों रुपये का माल हर समय तैयार रहता है और जिनके पास सैकड़ों प्रशंसापत्र व पदक गवर्नरों, कलेक्टरों, राजा-महाराजाओं, तअल्लुक़ेदारों तथा भारतीय व इँग्लैंड, फ़्रांस, जर्मनी एवं अमेरिकन गवर्नमेंटों तथा प्रदर्शनियों के दिये हुए मौजूद हैं। शेष फ़ैक्टरियाँ भी दस-पाँच हज़ार का माल तैयार करके बेंच लेती हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ सन्दल का एक मिल भी है। इस मिल में चार-पाँच वर्ष पहले तो छोटे परिमाण में पुराने ढंग से बड़ी बड़ी डेगों व भभकों के द्वारा 'सन्दल' और 'तेल सन्दल' तैयार किये जाते थे, प्रायः कन्नौज की कोठियों में ही खप जाते थे, [illegible] रुहें और बहुमूल्य इत्र 'सन्दली ज़मीन' पर ही [illegible] जाते हैं। पर जब से मैसूर-गवर्नमेंट ने अपनी सन्दल फ़ैक्टरी खोल दी है तब से प्रतियोगिता के कारण इस मिल का काम भी बहुत अधिक बढ़ गया है। अब [illegible] नये ढंग के डिस्टिलर गैस प्रोड्यूसर तथा बड़े-बड़े [illegible] लगाये गये हैं और सब काम आधुनिक वैज्ञानिक ढंग [illegible] मशीनों-द्वारा ही किया जाता है। अपने संचालित कार्य को इतना विशाल रूप देने के पूर्व इस मिल के स्वामी [illegible] सूरजप्रसाद जी को कई बार योरप का भ्रमण करके अनुभव प्राप्त करना पड़ा था। अब यह मिल यद्यपि पहले की अपेक्षा कई गुना माल तैयार करता है, फिर भी मैसूर-गवर्नमेंटवाली फ़ैक्टरी से पीछे ही है। इस समय इस मिल में १७५ टन चन्दन की लकड़ी मलाबार, कुर्ग, [illegible] आदि से मँगाकर पेरी जाती है और लगभग बीस-[illegible] हज़ार पौंड सन्दल तैयार करके कन्नौज की फ़ैक्टरियों [illegible] विदेशों को दिया जाता है। सन्दल के अतिरिक्त अन्य इत्र-तेलों के निर्माण में अद्यावधि परंपरागत प्रणाली [illegible] ही अनुसरण हो रहा है। वही हज़ारा भभके, दसनी डेगें, एक बैल के कोल्हू, काठ की ढेंकी और क़लईदार कड़ाव सभी जगह हैं। हाँ, अनुचित दिशा में आधुनिकता का अनुसरण इन व्यापारियों ने अवश्य आरम्भ कर दिया है। शुद्ध स्वदेशी रूहों के स्थान पर बगबगे विलायती [illegible] और शुद्ध धोयी तिलों के तैल के स्थान पर ह्वायट आयल की खपत दिन-दिन यहाँ बढ़ रही है। यह मिलावट कन्नौज के यश के लिए निकटभविष्य में ही घातक प्रमाणित होगी।

पुरातत्त्व की दृष्टि से भी कन्नौज का बड़ा महत्त्व [illegible]



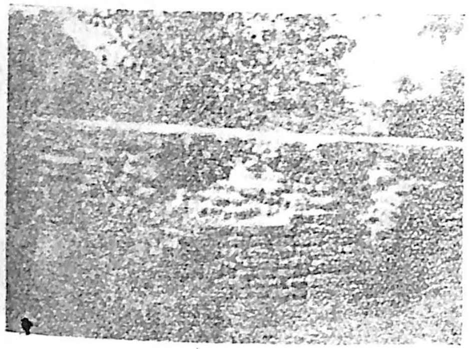
[इत्र की एक बड़ी फ़ैक्टरी।]



['संदल मिल' का आफ़िस।]

यद्यपि यहाँ अनुसन्धान-कार्य अभी तक नहीं के बराबर ही हुआ है। संस्कृत-गाथाओं से प्रमाणित होता है कि लगभग सात सौ ईसवी तक कान्यकुब्ज संस्कृत की विद्याओं का प्रख्यात विद्यापीठ था। बौद्ध-काल के अन्तिम सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय में यहाँ एक बहुत बड़ा विहार था, जिसमें उत्तरी भारत के प्रसिद्ध श्रमण और दार्शनिक रहा करते थे। इसका उल्लेख सुयेनच्वांग ने अपनी यात्रा-पुस्तक में बड़े सम्मान के साथ किया है। पुराणों के अनुसार कन्नौज चारों युगों में क्रमशः महोदयनगर, गाधिपुरी, कुशस्थली और कान्यकुब्ज के नामों से विद्यमान रहा है। उत्तर-भारत के अनेक प्रतापी राजाओं ने जिनमें गाधि, [illegible], हर्ष और जयचन्द के नाम उल्लेख्य हैं, इसे अपनी राजधानी बनाया था। जयचन्द के पश्चात् राजलक्ष्मी तो इसे छोड़ गई, पर उद्योग-व्यवसाय-द्वारा यह अपना नाम [illegible] ज्यों का त्यों बनाये हुए है। इस नगर में ऐतिहासिक वस्तुएँ अधिकतर पूर्व की ओर हैं। कन्नौज से ५ मील पूर्व दायीपुर नाम का एक गाँव है। यहाँ शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को हराकर अपनी विजय के स्मारक-स्वरूप शेरगढ़ आबाद किया था और एक मस्जिद बनवाई थी। मस्जिद तो अभी तक बनी है, पर शेरगढ़ का अन्तिम मीनार भी [illegible] वर्ष की अतिवृष्टि में भूमिसात् हो गया है। दायीपुर से [illegible] मील पश्चिम रिजिगिर का खेड़ा है। यहाँ महाराज जयचन्द का एक महल था। परमाल से तिरस्कृत होकर [illegible] के प्रख्यात धवल आल्हा-ऊदल जब जयचन्द के यहाँ नौकर हुए थे तब वे यहीं ठहराये गये थे। खेड़े के ऊपर पश्चिम की ओर वह इमली है जो ऊदल की लगाई बताई जाती है। इसी प्रकार खेड़े के नीचे उत्तर की ओर पीपल का एक पुराना अखण्डित वृक्ष है। प्रसिद्धि है कि महाराज जयचन्द इटावे में ग़ोरी की सेना से हार जाने पर इसी वृक्ष पर से गंगा की धारा में कूद पड़े थे, जो उस समय यहीं बहती थी। अब संगम (काली व गंगा) के दो मील पूर्व हट जाने से यहाँ काली नदी की तराई हो गई है।

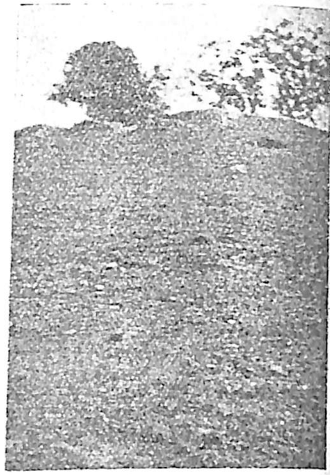
उक्त पीपल के समीप ही एक खोह से दो-तीन वर्ष पूर्व कुछ खंडित मूर्त्तियाँ निकली थीं। इनमें एक शिव जी की मूर्त्ति है, जिस पर आघात के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। नन्दी की मूर्त्ति का सिर कटा हुआ है। दूसरी मूर्त्ति नव-दुर्गा की है, जो अत्यन्त सुन्दर व कलापूर्ण है। रिजिगिर में एक चबूतरे पर टूटी-फूटी सुन्दर मूर्त्तियाँ लगभग बीस गाड़ियाँ रक्खी हुई हैं। ये मूर्त्तियाँ समय-समय पर इसी खेड़े में प्राप्त हुई थीं। उक्त अंगभंग मूर्त्तियों में विशेष उल्लेख्य एक स्तम्भमूर्त्ति है, जिसके स्तम्भ पर प्राचीन लिपि में 'जाममान' उत्कीर्ण है। उन मूर्त्तियों में विष्णु तथा शिव की अनेक चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी मूर्त्तियाँ भी हैं। यहीं से कुछ दूर पश्चिम ग्राम के बाग़ में एक कच्चे चबूतरे पर एक अनोखी मूर्त्ति देखने को मिली। यह काले चमकीले पत्थर की गणेश की दशभुजी मूर्त्ति है। गणेश जी नृत्यमुद्रा में बड़ी कुशलता से बनाये गये हैं। इनके नीचे एक पंक्ति में आठ और दूसरी पंक्ति [illegible]



[राजा वलि का कुवाँ।]

नौ स्त्रियाँ भाँति भाँति के बाजे बजाती हुई दिखाई गई हैं। ये सम्भवतः सिद्धियाँ व ऋद्धियाँ हैं। सामने ही भगवान् शंकर उमा जी को जंघा पर बिठाये गणेश जी की ओर संकेत करते हुए मुसकरा रहे हैं। उमा जी भी मुसकराती हुई एकटक गणेश जी की ओर देख रही हैं। शिव जी का नन्दी और देवी जी का सिंह भी यथास्थान बड़ी कुशलता से दिखाये गये हैं। यह मूर्त्ति सजीवता के इतने सन्निकट है कि दर्शक कुछ क्षण के लिए स्वयं भी उस लोकोत्तर दृश्य में निमग्न हो जाता है। इस मूर्त्ति को अपने यहाँ रखने में कोई भी अजायबघर अभिमान कर सकता है। रिजिगिर से चार सौ गज़ पश्चिम एक बड़ा पुराना पक्का कुआँ है, जिसे लोग 'बलिवामन का संगम' कहते हैं। इसी की पंक्ति में ५१ कुएँ और भी हैं, जो अब दो-एक को छोड़ कर शेष सब मुँद गये हैं। कहा जाता है कि यही वह स्थान है जहाँ राजा बलि ने वामन को वसुधादान किया था। यहाँ इन्दलद्वादशी (भाद्र शुक्ल १२) को मेला होता है, जिसमें दूर-दूर के यात्री स्नान करने आते हैं। राजा लोग इस कुएँ की ईंट मँगाकर राजकीय ख़ज़ाने में रक्खा करते हैं।

उक्त कुएँ के नीचे बरसाती नाला है, जिसे पार करने पर 'ऋतुकाला' नाम का एक खेड़ा मिलता है। यहाँ किसी समय एक भव्य महल था, जिसके सुन्दर पत्थर अब तक चारों ओर बिखरे पड़े हुए हैं। पत्थरों की कारीगरी से उस स्थान के गत वैभव का अनुमान किया जा सकता है। इन्हीं पत्थरों के असामञ्जस्य-योग से किसी ने वहाँ एक



[महाराज जयचन्द का क़िला।]

मस्जिद बनवा दी है। कहते हैं कि राजा जयचन्द की रानियाँ आर्त्तवकाल में यहाँ के महल में निवास करती थीं। कन्नौज यहाँ से दो मील पश्चिम की ओर है।

कन्नौज में पूर्व की ओर से प्रवेश करने पर सबसे पहले 'मख़दूम जहानियाँ' नाम की एक भव्य इमारत मिलती है, जो बड़ी ऊँचाई पर बनी हुई है। इसमें दक्षिण की ओर तीन द्वार हैं, जिन पर संगतराशी का दर्शनीय काम है। बाहरी दीवार दिल्ली के लाल क़िले के ढङ्ग की गुम्बददार है। सुलतान बहलोल लोदी के समय में जलालुद्दीन साहिब नामक एक पहुँचे हुए फ़क़ीर थे। उन्होंने पैदल ही विस्तृत भ्रमण किया था। बादशाह ने उन्हें 'मख़दूम जहानियाँ जहाँगश्त' की उपाधि दी थी। उनका शरीर कन्नौज में छूटा था। अतएव वे यहाँ दफ़न किये गये और उनकी क़ब्र पर बादशाह ने यह इमारत किसी हिन्दू-मन्दिर के मसाले से बनवा दी। यह इमारत सुन्दरता व विशालता में दिल्ली के हुमायूँ के मक़बरे के टक्कर की है।

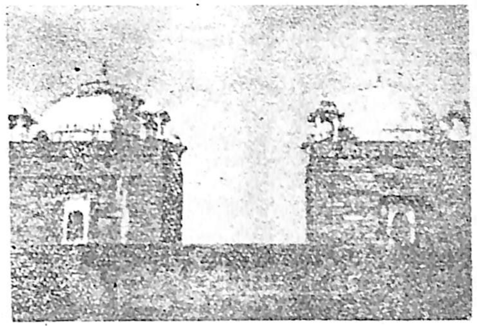
'मख़दूम जहानियाँ' के पश्चिम में गङ्गा की पुरानी धार के किनारे महाराज जयचन्द का क़िला भूमि-चुम्बन कर रहा है। खुदाई होने पर इसमें भव्य भवनों की पाषाण-निर्मित नीवें निकलती हैं। सन् १[illegible]४० फ़सली तक इसका कुछ भाग खड़ा था, जिसमें सरकारी तहसील की कचहरी



[फूलमती देवी—यह राजा जयचन्द की पूज्य देवी थीं। इसका मन्दिर उसी समय का बना हुआ है।]

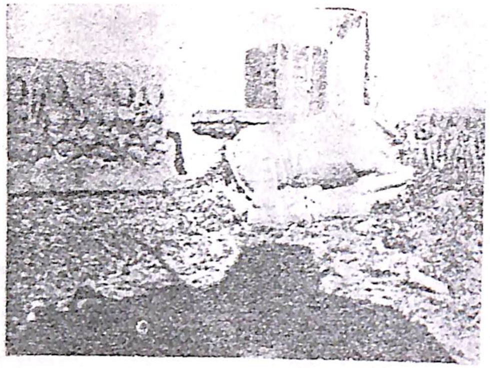
होती थी। उसी साल तहसील के लिए नई इमारत बन गई और क़िले को सरकार ने नीलाम कर दिया। दिनों का फेर देखिए कि चक्रवर्त्ती राजा वेन का क़िला ६००) में एक धानुक ने ख़रीदा! उसने मकान उसी साल गिरा दिया और उसके ईंट-पत्थर बेंच लिये। इस प्रकार महाराज जयचन्द का क़िला मिट्टी का ढूहा-मात्र रह गया।

सावन-भादों के दिनों में जब मूसलधार पानी गिर रहा हो, इस खेड़े की ओर देखने पर दस-बीस काली मूर्त्तियाँ इधर-उधर घूमती दिखाई देंगी। वृष्टि का वेग बढ़ने पर ये मूर्त्तियाँ निर्जीव पत्थर की हो जाती हैं, पर उसके घटते ही ये फिर चलने-फिरने लगती हैं। सम्भवतः आप इन्हें चरवाहा समझेंगे। वास्तव में ये पुराने खिलाड़ी होते हैं, जो माल मारने की धुन में बादल-बिजली की परवा नहीं करते। इनका हाथ प्रायः ख़ाली नहीं जाता। किसी को ताँबे के दस-पाँच पैसे-धेले मिल जाते हैं, किसी को चाँदी के दो-चार रुपये। किसी-किसी भाग्यशाली को सोने का सिक्का भी मिल जाता है। कई बार तो लोगों को सोने के टुकड़े, बहुमूल्य मोती, नीलम और पन्ने की पिटारियाँ तक मिली हैं। इस प्रकार महादानी राजा जयचन्द का क़िला मिट्टी का ढेरमात्र रह जाने पर भी अपने स्वामी की दान-शीलता का स्मरण कराता रहता है। जयचन्द के कोट से सिक्कों का निकलना ऐसी साधारण बात है कि इधर जनता की यह धारणा बन गई है कि यदि कोई भूखा मनुष्य प्रातः से सायंकाल तक उक्त खेड़े पर



[बालापीर।]

घूमता रहे तो उसे कम-से-कम खाने भर को तो अवश्य मिल जायगा। यहाँ सन् १८३२ ई० में ख़ुरशेद अली नामक एक मुसलमान को सोने की बाईस ईंटें मिली थीं, जिनमें प्रत्येक ढाई पाव (५० तोला) के लगभग थी। इन ईंटों का एक-एक कोना कटा हुआ था और उन पर पुरानी लिपि में 'गाधि' लिखा था। यह स्मरण रखना चाहिए कि गाधि विश्वामित्र मुनि के पिता का नाम था। इनमें से सात ईंटें तो सरकारी कोष में पहुँच गईं, शेष पानेवाले के पास रहीं। सन् १८२३ ई० में हंसा नामक एक कुरमी को खेत खोदते समय रत्नों की एक मञ्जूषा मिली थी। इसमें नीलम, चुन्नी, पन्ना आदि थे। सोने के दस-दस तोले के टुकड़े तो लोगों को कई बार मिल चुके हैं। इसी खेड़े से भिन्न भिन्न प्रकार के सिक्के एक लाख से ऊपर अब तक निकल चुके हैं। एक हज़ार से ऊपर सिक्के तो यहाँ के कुछ इतिहास-प्रेमियों के भी पास हैं। इनमें से सोने के सिक्के तो सिकन्दर तथा मौर्यवंशीय राजाओं के हैं और चाँदी के सिक्के प्रायः हर्षवर्धन, भोज, गुप्तवंशी तथा मुसलमान बादशाहों के समय के हैं। दिल्ली और जौनपुर के बादशाहों में शायद ही किसी का सिक्का इनमें न हो। बहुत-से सिक्के ऐसे भी हैं जो लन्दन के इण्डिया-हाउस से लेकर भारतीय अजायबघरों तक किसी में नहीं हैं। पुरातत्त्व-विशारदों-द्वारा इन सिक्कों का अध्ययन हो जाने पर भारत के अँधेरे काल के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। ज्योतिषियों ने गणित लगाकर बतलाया



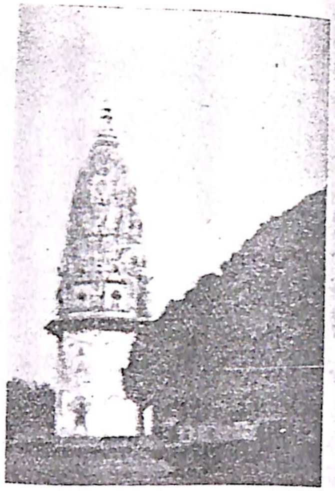
[रिजिगिर से निकली हुई खण्डित मूर्त्तियाँ जिन पर आघात के चिह्न स्पष्ट हैं]

है कि रघुवंश महाकाव्य[१] में वर्णित स्वर्णवृष्टि कन्नौज में ही हुई थी। ताम्रपत्र और शिलालेख भी यहाँ से दर्जनों निकल चुके हैं, जिनका विवेचन डाक्टर रामशङ्कर त्रिपाठी ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ़ कन्नौज' नामक ग्रन्थ में किया है। इस खेड़े पर खेती ख़ूब होती है। यहाँ खेतों की दर चालीस रुपया बीघे तक है।

क़िले पर एक पक्की सुरङ्ग के दो द्वार अब तक दिखाई देते हैं। लोगों का अनुमान है कि यह उसी सुरङ्ग का भाग है जो कम्पिला से काशी तक गई है। क़िले के पूर्वोत्तर-कोण पर क्षेमकली देवी का मन्दिर है। यह महाराज जयचन्द के रनवास की पूज्य देवी थीं। रासो में लिखा है कि संयुक्ता इसी की पूजा करके पृथ्वीराज के प्रेम का वरदान माँगा करती थी।

क़िले से पश्चिम उतनी ही ऊँचाई पर 'बालापीर' है। इसमें दो रौज़े लाल पत्थर के बने हुए हैं। ऊपरी बुर्जी संगमरमर की है। बालापीर चुनारगढ़वाले क़ासिम सुलेमान के लड़के थे। इनकी जन्मतिथि व रौज़े की निर्माण-तिथि द्वार पर पत्थर में इस प्रकार अंकित है—

"उनवाने फ़ैज़ बूद सनीने तवल्लुदश,
आदम कि शुद हबीब हम इस्मे मुहम्मदी।
करद इख़्तियार योमे अहद वा सबअ् सफ़र
तारीख़े ख़त्म याफ़्त व ख़तमे मुहम्मदी।



[जयचन्द के समय का अवशिष्ट एक सुन्दर हिन्दू-मन्दिर।]

व अहदे सलतनत अबुल मुज़फ़्फ़र शहाबुद्दीन साहबे क़िर आने सानी तामीर याफ़्त।"

शहाबुद्दीन शाहजहाँ का नाम था। यह इमारत १०१७ हिजरी में बनी।

इससे कुछ पश्चिम एक और विशाल भवन है, जो शान-शौक़त में मख़दूम जहाँनियाँ से दूसरे नम्बर का है। इसका नाम हिन्दू 'सीता की रसोई' और मुसलमान 'जामा मसजिद' बतलाते हैं। सम्प्रति यह मुसलमानों के अधिकार में है और इसमें नमाज़ पढ़ी जाती है। पूरी इमारत श्वेत पत्थर की छप्पन खम्भों पर बनी हुई है। इसकी छत चौरस है और पीठ क़ाबे की ओर न होकर ठीक पश्चिम की ओर है। द्वार पर निर्माण-तिथि इस प्रकार लिखी है—

"शुक्रे अल्लाह कि ब तौफ़ीक़े ख़ुदावन्द करीम,
अबुल मुज़फ़्फ़र शहे शाहाने जहाँ इबराहीम।
हम दमे ईसा ओ हम नामे ख़लीलुल् रहमान,
ज़ाँ कि बिनमूद जहाँरा यदे बैज़ा चु कलीम।
मसजिदे साख़्त मुरत्तिब कि बदीं रफ़अ़तो औज
च असास अस्त मुअल्ला च बिना अस्त अज़ीम।
सलख़े ज़ीक़ाद सन् हफ़्त सद व नवद
सरफ़राज़े हमा ज़ेरे क़दमश गश्त मुक़ीम।"



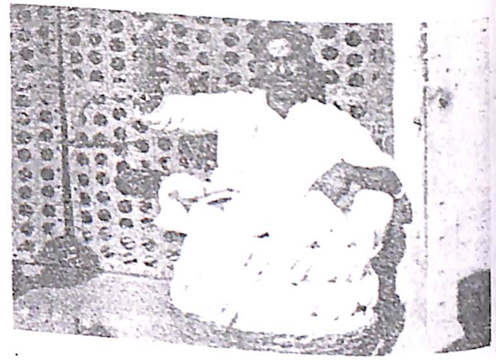
[मुगलिया (?) तेल भेजने के लिए ऊँट की खाल की कुप्पियाँ बन रही हैं।]

इस प्रकार यह इमारत सन् ७९० हिजरी में ज़ीक़ाद महीने की पहली तारीख़ को मसजिद के रूप में आई।

इस मसजिद के पश्चिम मीरे बंगाला की हवेली है। इसकी केवल उत्तरी दीवार शेष है। मीर बंगाला मीर …उद्दीन का नाम था, जो सरफ़राज़ख़ाँ के यहाँ रसालदार और नवाब अलीवर्दीख़ाँ के मुसाहिब रहे थे। यही कन्नौज के चकलेदार (गवर्नर) थे। 'आईने अकबरी' में कन्नौज को 'हवेली कन्नौज' लिखा है। चकलेदार के रहने के नगर को उस समय 'हवेली' कहते थे। सराय मीराँ इन्हीं ने बनवाई थी।

यहाँ से कुछ और आगे बराह भगवान् की साढ़े पाँच फ़ुट ऊँची एक मूर्ति रक्खी है। बराह भगवान् पृथ्वी का उद्धार करते हुए बनाये गये हैं। देव, गन्धर्व और दो नारी-मूर्तियाँ स्तुति-मुद्रा में बनाई गई हैं। मूर्ति बड़ी सुन्दर और कला-पूर्ण है। बराह भगवान् की ऐसी सुन्दर मूर्ति शायद ही किसी अजायबघर में हो। यह दो वर्ष पूर्व वृष्टि-काल में गंगा जी के किनारे निकली थी।

कन्नौज के उत्तरी मुहल्लों में कई रौज़े और मज़ार हैं। इनमें से मीर सैयद मुहम्मद का रौज़ा और चन्दन पीर का मज़ार विशेष उल्लेख्य हैं। मीर साहब औरङ्गज़ेब के उस्ताद और उन तीन व्यक्तियों में थे जिन्हें शाहजहाँ के साथ क़ैद में रहने की आज्ञा मिल गई थी। पीर साहब अकबर के गुरु थे। दोनों इमारतें सफ़ेद पत्थर की गुम्बददार और विशाल बनी हुई हैं।



[कन्नौजी गट्टे।]

महाराज जयचन्द का बनवाया हुआ अजयपाल का मन्दिर मीर साहब के रौज़े के पास उतनी ही ऊँचाई पर खड़ा हुआ है। इसमें लाल पत्थर की अजयपालदेव की, जो महाराज जयचन्द के गुरु थे, मूर्ति है। यह मूर्ति हाथ में शूल पकड़े है। श्रावण में इस पर शरबत और बताशे चढ़ाये जाते हैं।

गणेश और बराह की उक्त मूर्तियों के अतिरिक्त मुझे तीन मूर्तियाँ और भी अधिक पसन्द आईं। ये राम, लक्ष्मण और सीता जी की मनुष्य के आकार की मूर्तियाँ हैं। तीनों मूर्तियाँ पृथक्-पृथक् हैं। प्रत्येक के पीछे एक ज्योतिश्चक्र-सा बना है, जिसमें विष्णु के सब अवतार तथा सूर्य, यम, कुबेर आदि दिखाये गये हैं। निर्माण-कौशल का अनुमान आप इतने से ही कर सकते हैं कि इन मूर्तियों के नखों को देखकर सजीव मनुष्य के नखों का भ्रम हो जाता है। इन्हीं मूर्तियों में दुर्गा की एक अष्टभुजी सिंहवाहिनी मूर्ति है, जो महिष के साथ युद्ध कर रही है। श्वेत पत्थर के खड्ग में तथा संगमूसा-निर्मित महिष के कटे हुए शिर व धड़ में लाल पत्थर की पच्चीकारी-द्वारा रुधिर की धार दिखलाने में कारीगर ने कमाल कर दिया है। ये मूर्तियाँ भगवान् के विराट्‌रूप की हैं और निर्माता ने इन तीन पत्थर-खण्डों में समस्त-विश्व की चेतनता एकत्र कर देने का सफल तथा प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

तीन टूटे-फूटे बौद्ध-मन्दिरों के अतिरिक्त, जो अब ब्राह्मण पुजारियों के हाथ में शेष जीवन किसी न किसी

---

१ प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोशगृहे नियुक्ताः।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः॥
रघु० ५।२९

प्रकार धकेल रहे हैं, बौद्ध-काल का यहाँ कोई चिह्न नहीं रहा।

कन्नौज के प्रसंग में 'परवर' का खेड़ा नहीं भूला जा सकता। यह कन्नौज से २४ मील दक्षिण में आरिन्द नदी के किनारे पर है। यहाँ तालाब में पत्थर का एक दिया पड़ा हुआ है। कहते हैं कि इस दीपक का प्रकाश कन्नौज तक पहुँचता था। लाखन की रानी पद्मा को यह असह्य था और 'आल्हा-मनौआ' के पश्चात् जब उपर्युक्त सामंत महोबे को जाने लगे तब पद्मा ने उनसे उस दीपक [illegible] गिरा देने का वचन माँगा था। बड़ी लड़ाई के [illegible] 'परवर' विध्वंस कर दिया गया और दीपक उतार [illegible] फेंक दिया गया, जो आज तक पड़ा हुआ है।

कन्नौज के 'गट्टे' प्रसिद्ध हैं। ये छः आने सेर से [illegible] रुपये सेर तक के बनते हैं। अँगरेज़ लोग इन्हें बहुत [illegible] करते हैं और सौग़ात के रूप में बड़े दिनों में विलायत भेजते हैं। गट्टों की यहाँ कई बड़ी बड़ी दूकानें हैं।

ओस की बूँदों का गीत

लेखक, श्रीयुत रामइक़बालसिंह 'राकेश'

हम सजल सजल
हम सरल तरल
हम अमल धवल
शीतल कोमल

रजनी की अलकों की सुन्दर
मोती-लड़ियों से बिखर-बिखर
हिलतीं-डुलतीं हिलमिल जो भर

तृण-तृण, मृदु-दल, कुड्मल-कुड्मल
दूर्वा-दल पर ढलमल ढलमल
कल-कल छल-छल प्रतिपल टलमल

आँसू-फुहियों की झड़ियों-सी
कोमल गीतों की कड़ियों-सी
तरु के उर पर किन्नरियों-सी

चुम्बन-सुख में मद से मातीं
अधरों से अधर मिला गातीं
जग का मल धोतीं, मुसकातीं

जीवन बुद्बुद-सा चञ्चल रे
को जाने क्या होगा कल रे
हँस ले आ. खिल-खिल दो पल रे

हम सजल सजल
हम सरल सरल
हम मचल मचल
हँसती प्रतिपल

जेलर का हृदय

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

पिछले साल की बात है।

माघ का महीना था। हवा में रुखाई और दिन के प्रकाश में उदासी आ गई थी। रात को कभी-कभी ठंडी हवा बहुत ही भली जान पड़ती थी, क्योंकि माघ का अन्त हो चला था। मैं अपने एक जेलर मित्र के साथ संध्या-समय टहलने निकला। मुझे शहर के कोलाहल से दूर जाकर कुछ देर विश्राम करने से बहुत शान्ति मिलती है। उस दिन अचानक मेरे जेलर मित्र आये और वे भी साथ चलने को प्रस्तुत हो गये। हम बातें करते इतनी दूर चले गये कि लौटते लौटते संध्या हो गई।

माघ की संध्या थी और वसन्त के सुरभित निस्वास की तरह हवा के हलके-हलके झोंके खेतों से होकर आ रहे थे। बाँसों के झुरमुट में बसेरा लेनेवाले पक्षियों का कोलाहल भरा हुआ था। खेतों के उस पार, पहाड़ की नीली दीवार के पीछे, सूर्यास्त हुआ था। रास्ते में चराई पर से लौटनेवाले गायों के झुंड दिखलाई पड़ते थे। उनके गले की घंटियाँ दूर-दूर तक साफ़ सुनाई पड़ती थीं। ऐसा जान पड़ता था, मानो वनदेवी पैरों में घुँघरू बाँधकर हौले-हौले नाच रही हो। कहीं-कहीं सघन वृक्षों में से झिल्ली-रव सुन पड़ता था और हम चुपचाप चले जा रहे थे।

सन्ध्या और धूमिल हो गई। अभी हम शहर से काफ़ी दूर थे। दूर-दूर से गीदड़ के रोने की और उसके बाद कुत्तों के भोंकने की आवाज़ आने लगी। हम न जाने क्यों चुपचाप आगे बढ़ते जाते थे। वातावरण ही इतना शान्त था कि हमारा मन अलसा गया था और जी नहीं चाहता था कि ज़बान खोलें। कुछ दूर जाने के बाद हम एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ एक पुराना और गिरा हुआ मन्दिर था और उससे भी पुराना सूखा हुआ एक तालाब, जिसके तल में हरा-सा जल जमा हुआ रहता था और उस जल में सूअर लोटा करते थे। तालाब की सीढ़ियों को फाड़कर पीपल और बड़ के दो-तीन वृक्ष उग आये थे, जो मानो मनुष्य की कारीगरी पर प्रकृति के ज़बर्दस्त अधिकार की घोषणा कर रहे थे। मन्दिर का कलश ग़ायब था और देवमूर्त्ति का भी हरण हो चुका था। पहले भी कभी-कभी संध्या-समय इस मन्दिर के आँगन में जाता तो वहाँ मुझे प्रायः बकरियों का झुंड आराम से बैठकर या तो जुगाली करते या छींकते हुए दिखलाई पड़ता था। इस समय अन्धकार में डूबता हुआ-सा वह भग्न-मन्दिर मानो एक विशालकाय पिशाच की तरह दिखलाई पड़ रहा था। हम चुपचाप आगे बढ़े।

इस नीरवता के भार को हमारा मन नहीं सह सका। हम दोनों निश्चय ही कुछ दिलचस्प चर्चा चलाने को मन ही मन कोई बात सोच रहे थे, पर कोई बात खोजे ही नहीं मिलती थी। कुछ दूर आगे बढ़ने पर रास्ते से कुछ हटकर एक छोटी-सी झोंपड़ी मिली, जिसके दरवाज़े पर एक नन्हा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। अन्धकार के अविच्छिन्न शासन को निरादर करता हुआ-सा वह दीपक अपने जीवन के चन्द मिनटों को सिर धुनधुन कर बड़ी बेकली से काट रहा था। मेरे जेलर मित्र एका-एक सहमकर खड़े हो गये और धीरे से अस्फुट स्वर में बोले—"उफ़, कहीं वह फिर न आकर मुझे सतावे।"

मैं इन शब्दों के हलके झटके से चौंक उठा। साहस करके मैंने पूछा—"क्या तुम्हें भूतप्रेत पर विश्वास है? यहाँ तुम भूतों के रहने का संदेह करते हो?" जेलर ने अघाकर साँस ली, क्योंकि हम कुटिया से आगे बढ़ आये थे और उस कुटिया से आगे बढ़ जाना जेलर के लिए सुखद बात थी। उसने धीरे से कहा—"मित्र, यही तो बात है कि मैं मौत से भी अधिक इस कुटिया से डरता हूँ। तुम जानते नहीं, हमारे जैसे हृदयहीन मनुष्यों का जीवन भी

कितना करुणापूर्ण होता है।" इतना कहकर जेलर ऐसा चुप हो गया, मानो वह मेरे साथ हो ही नहीं या किसी मायाबल से अचानक लोप हो गया हो। मैंने मुड़कर देखा तो उसे सिर झुकाकर चुपचाप आगे बढ़ते पाया। मन शंका से लबालब भर गया। इतना ही नहीं, वह शंका अधिक होकर प्रश्नों के रूप में मुँह से छलकने भी लगी। जेलर ने लम्बी साँस लेकर उस कुटिया की कहानी कहनी आरम्भ की और मैंने साँस रोक कर उसे सुनना।

संध्या का रङ्ग काफ़ी गाढ़ा हो चुका था। गोधूलि की पुण्यवेला विभावरी के रूप में परिणत हो गई थी। पूर्व की ओर, वृक्षों के उस पार, चाँद का टुकड़ा नज़र आया। दूर-दूर तक फैला हुआ मैदान मानो सफ़ेद भाफ से भर गया। बहुत दूर से कोयल की, थकी हुई-सी, कूक उस जनहीन मैदान को गुँजाती हुई ठहर-ठहरकर सुन पड़ने लगी। हम धीरे-धीरे आगे बढ़े।

(२)

अच्छी तरह इधर-उधर देखकर जेलर बोला—"मित्र, पिछले साल की बात है, और इसी मास की। हमारे जेल में एक नवजवान क़ैदी आया। उसे फाँसी की सज़ा हो गई थी, पर वह रहता था बहुत ही प्रसन्न। यों तो जेलों में यही सब होता ही रहता है, पर कभी कभी एक-आध ऐसी असाधारण घटना भी हो जाती है कि उसकी याद खुरच-खुरचकर निकालने पर भी दिल से नहीं निकलती या यों कहो कि उससे छुटकारा पाने का जितना प्रयत्न किया जाता है, वह घर करती जाती है। उस क़ैदी को मैंने अच्छी तरह देखा। नई उम्र और हँसता हुआ चेहरा था। अभी मसें भींग रही थीं। चौड़े पुट्ठे और उन्नत शरीर बरबस उसकी ओर आकर्षित कर लेते थे। हाँ, तो क़ैदी जब हमारे अधिकार में आया तब हमें बतलाया गया कि यह एक घोर अपराधी है, अतः कड़ी निगरानी रहनी चाहिए। शायद डकैत या कोई ख़ूनी रहा हो। डबल ताले और डबल पहरे की व्यवस्था करके भी मैं निश्चिन्त नहीं हुआ, बल्कि मेरे मन में यह उत्सुकता भर गई कि इस लड़के में ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिससे........"

"संध्या-समय मैं भी नित्य इसी ओर टहलने आता था। एक दिन इसी कुटिया के आगे पहुँचा तब एक बु... छड़ी टेकती हुई मेरे सामने आई और तन कर ... गई। मैं आगे बढ़ गया। उसकी धँसी हुई आँखें ... सी चमक रही थीं। वह भूखी शेरनी की तरह मुझे ... रही। उसकी तेज़ नज़रों से मैं बचना चाहता था। आगे बढ़ने पर भी मुझे ऐसा जान पड़ता था कि उसकी ... आँखें मेरी पीठ में बर्छी की तरह चुभ रही हैं। दूसरे दिन मैं फिर इसी ओर आया। वह बुढ़िया फिर झपटकर कुटिया से निकली और आँखें तरेर कर मुझे घूरने लगी। यही ... कोई एक सप्ताह तक रहा। मैं मन ही मन डर सा गया। एक दिन जब मैं दफ़्तर जाने के लिए घर से निकला ... देखता क्या हूँ कि वही बुढ़िया मेरे दरवाज़े के सामने खड़ी है। इस बार जी कड़ा करके मैंने उससे इस ... पीछा करने का कारण जानना चाहा तब वह बोली—... जेलर है? अच्छी बात। तेरे जेल में एक नया ... आया है जवान-सा हट्टाकट्टा? याद है न पिछले ... भागलपुर से बदल कर आया है? उसे तुम लोग फाँसी देना चाहते हो। कहने का तात्पर्य यह कि गला घोंट कर उसकी जान लेना चाहते हो। यह बात सही है कि वह अवश्य फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा, पर तू यह बता कि किस दिन लटका दिया जायगा।

"मैं अकचका कर खड़ा रह गया। आज तक इस बात को जानने के लिए किसी ने ऐसी उत्सुकता नहीं दिखलाई थी। मैं कोई पन्द्रह साल से यमलोक का चौकीदार हूँ, पर यह नया अनुभव हुआ। मैंने पूछा—तुम्हें इन बातों से मतलब? ख़बरदार, ऐसे प्रश्न फिर मत पूछना, नहीं तो पुलिस के हवाले कर दूँगा!

"पुलिस का नाम सुनते ही वह बच्चों की तरह खिल-खिला कर हँस पड़ी और बड़बड़ाती हुई चलती बनी। फिर संध्या-समय टहलने निकला तब उस मनहूस बुढ़िया को अपनी पुरानी जगह पर फिर देखा। वह निधड़क मेरे निकट चली आई और बोली—सुन ले तू भी मनुष्य है और मैं भी मनुष्य ही हूँ। जिस तरह तेरी मा ने तुझे पालपोस कर इतना बड़ा किया है, उसी तरह मैंने भी उस अभागे लड़के को, उसके पिता के मर जाने के बाद, पाल-पोस कर आदमी बनाया और खेत, घर, गहने बेच कर पढ़ाया। तू ऊब रहा है। संक्षेप में कहती हूँ, ठहर ...

... है मेरी कथा। जब वह बड़ा हुआ और पढ़-लिखकर ... तब घर में खाने के लिए छप्पर पर दो मुट्ठी और ... ढेर चावल के अतिरिक्त और कुछ न था। उसने ... 'मा, क्या खाऊँ;' मैंने कहा, 'बेटा, गम खा और ... पी'। उसने तमक कर उत्तर दिया, 'यह तो मुझसे न ...। मैं नौकरी करूँगा और प्रत्येक मास तेरे सामने ... रुपयों का अम्बार लगा दूँगा। डिप्टी नहीं तो ... तो ज़रूर ही बनूँगा।' मैंने उसे आशीर्वाद दिया और वह दो दिन ठहर कर चला गया। फिर चार मास ... उसका मुँह देखने को तरसती रही। मैंने सोचा, रुपये जायँ चूल्हे-भाड़ में। मेरी गोद का धन लौट आवे तो आँखें जुड़ाऊँ। पर न तो वह लौटा और न रुपयों का अम्बार देखा। चार-पाँच मास के बाद वह बीमार होकर घर आया। फूल-सा शरीर सूखकर काँटा हो गया था और आँखें धँस गई थीं। मैंने सिर पीट लिया। घर में न तो खाने को अन्न और न हाथ में ... पैसा था कि दवादारू हो। हाथ मलकर रह गई। भगवान् ने किसी तरह उसे धरती पर रक्खा तब मेरे जी में जी आया। आराम होते ही वह फिर शहर की ओर भागने के लिए उतावला हो गया और कहने लगा कि 'कहीं नौकरी नहीं मिलती। डिप्टीगीरी क्या, चपरासी-गीरी भी मोहाल है'। मैं बोली, 'बेटा, यहीं रह, भीख माँग कर तुझे पाला है तब फिर भीख माँग कर या दुखड़ा-मजूरी करके खिलाने में क्या लाज है'। मेरी बातें सुन कर वह बच्चों की तरह रोने लगा और आँखें पोंछते-पोंछते घर से बाहर हो गया। एक साल तक प्रत्येक मास मेरे पास कुछ रुपये मनिआर्डर से नियमितरूप से आते थे, पर इधर कोई आठ महीनों से वह भी बन्द हो गया। मैं रुपयों की भूखी नहीं थी। मेरी आत्मा बच्चे को एक नज़र देखे बिना बेचैन थी। न मुझे पता मालूम था और न ठिकाना। लाचार शहर गई। तब पगली की तरह गलियों की ख़ाक छानती फिरी। कुछ दिनों के बाद लौट कर फिर गाँव चली गई।"

इतना कह कर जेलर ने एक लम्बी साँस ली। मैं चुपचाप इस कहानी को सुनता हुआ आगे बढ़ रहा था। धीरे-धीरे रात का रूप गम्भीर होता जाता था और जनहीन मैदान पर हम चल रहे थे।

(३)

अपने मन को स्वस्थ करके जेलर ने फिर कहना आरम्भ किया—"भाई, उस बुढ़िया ने कहा कि यहाँ आकर मुझे एक लम्बा-सा सरकारी पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि तुम्हारे लड़के को डकैती और ख़ून के अपराध में फाँसी की सज़ा हुई है। मिलना चाहो तो दरख़्वास्त करो, और न जाने क्या-क्या लिखा था जो मैं भूल गई हूँ। पढ़नेवाले ने इतना ही बतलाया। मैं बहुत कुछ जानना चाहती थी, पर उसने कुछ बतलाया ही नहीं। मुझे बड़ा बुरा लगा। जब वह चिट्ठी लिखने ही बैठा था तब दो क़लम लिखकर उसका कुशलसमाचार भी लिख देता। पर मुझे बतलाया गया कि यह पत्र सरकार की ओर से आया है तब मैं अकचका कर रह गई। मैंने डाकिये से पूछा तब उसने रूखासूखा उत्तर दिया कि मैं यह सब कुछ नहीं जानता, जेलर से पूछो। सो भैया, मैं तुमसे यह जानना चाहती हूँ कि उसे कब फाँसी दोगे और इसके पहले यह बतला दो कि वह शरीर से तो सकुशल है न। बीमार तो नहीं है और उसे किसी बात की तकलीफ़ तो नहीं है। हाँ, खाने का कष्ट ज़रूर होगा। वह नित्य मूँग की दाल खाता था। क्या जेल में मूँग की दाल नहीं मिलती? लो मैं पैसे देती हूँ, मँगवा कर खिलाना।

"इतना कह कर बुढ़िया अपने फटे हुए आँचल से कुछ पैसे निकालकर मुझे देने लगी। मैं चाहता तो यह था कि कान बन्द करके भाग जाऊँ, पर मेरे पैरों को मानो लकवा मार गया था। पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा रहा। वह पगली बलपूर्वक मेरे हाथ में पैसे देकर हँसी और आप न जाने क्या बड़बड़ाती हुई कुटिया में चली गई। होश में आकर मैं भी बड़े ज़ोर से भागा।

जेलर ने कहा—"वह एक अत्यन्त कष्टदायक परि-स्थिति थी। यद्यपि इस तरह के दृश्यों को देखते रहने से हमारा मन पथरा जाता है, हृदय अनुभवशून्य हो जाता है, भावुकता नष्ट हो जाती है, तो भी उस बुढ़िया का पागलपन-मिश्रित प्रेम अनोखा था। दो-चार दिन के बाद वह फिर मुझे जेल के रास्ते में मिली। मैं चाहता तो यह था कि आँखें बचाकर निकल जाऊँ, पर वह तो मुझे ही खोज रही थी। मैंने देखा, फटी-सी साड़ी और हाथों में आलमोनियम का एक टूटा-सा कटोरा लिये चुपचाप खड़ी

है। मेरी सूरत देखते ही ज़ोर से हँस पड़ी और धीरे-धीरे निकट चली आई। मैं न जाने क्यों खड़ा रह गया। वह बोली, तू जानता है कि मेरा बच्चा इस समय क्या कर रहा होगा। अच्छा उसे यह टोपी दे देना। इस टोपी को मैंने कल ख़रीदा है। भीख माँग कर कुछ पैसे संग्रह किया, खाया नहीं।

"इतना कहकर उसने चीथड़ों में से एक टोपी निकाल कर मेरे हाथों में धर दी। मैं कुछ भी बोल न सका। न जाने क्यों उसके सामने जाते ही मेरी मति मारी जाती थी। मैं चाहता तो उसे समझा देता कि जेल में बाहर की चीज़ें नहीं जातीं, पर मैंने उसके भावों पर आघात पहुँचाना उचित नहीं समझा या मुझमें इतना बल नहीं था कि मैं उस अभागी को साफ़-साफ़ शब्दों में समझा देता। मेरे हाथों में टोपी देकर वह परम प्रसन्न हुई और बच्चों की तरह ताली पीटकर खिलखिलाती हुई चली गई। मैं टोपी लिये हक्काबक्का-सा चुपचाप खड़ा रहा। मेरी जेब में उस दिन के पैसे पड़े ही थे कि यह दूसरी बला सिर पर आई। मैंने हिम्मत करके सोचा कि दूसरी बार बुढ़िया को टोपी और पैसे लौटा दूँगा और उसे डरा दूँगा कि फिर इतनी हिम्मत न करे। उस दिन से वह टोपी बराबर मेरी जेब में ही रहने लगी। कोई एक सप्ताह के बाद ठेठ मेरे दरवाज़े पर ही वह बुढ़िया फिर मिली। मैं उसकी सूरत देखते ही मन ही मन सिहर उठा। सच पूछो तो मैं मन ही मन उस बुढ़िया से डरने लगा था। इस बार फिर वह मेरे सामने आई और तनकर खड़ी हो गई। संध्या को उसे धुँधले प्रकाश में ठीक से दिखलाई नहीं पड़ता था, इसी लिए वह मेरे मुँह के सामने आकर और आँखें सिकोड़ कर देखने लगी। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो भरी हुई दुनाली बन्दूक़ का निशाना बना हुआ हूँ। कुछ देर ठहर कर वह बोली, 'अरे जेलर, तू मेरे बच्चे का समाचार क्यों नहीं कहता? वह कैसा है? देख उसे तकलीफ़ न होने पावे! दुबला न होने पाये। मैंने अपना सरबस बेच कर उसे आदमी बनाया है। अपनी अम्मा से पूछ। मा कितने प्यार से उस अभागे बच्चे को पालती है जिसका बाप छुटपन में ही चल बसता है। वह बच्चा उसके शेष जीवन का पतवार होता है। सो जेलर, मुझ अन्धी का सहारा तुम्हारे यहाँ है। उसे तकलीफ़ न हो, इस पर ध्यान देना और ये ले चार आने पैसे। उसे दे देना। शायद कभी कोई ज़रूरत ही पड़ जाय। डर तो नहीं है। हाँ, एक बात बतला। उसे कब फाँसी होगी? मैं उसे देखना चाहती हूँ......।'

"मेरी सारी दृढ़ता हवा हो गई। पैसे मुझे लेने ही पड़े। बुढ़िया उस दिन बहुत ही उदास-सी थी। वह रह-रह कर कराह उठती थी। कल ही उस अभागे नव-जवान के जीवन का अन्तिम दिन था। रात भर उसे और धराधाम पर रहना था। उसकी अभागी अम्मा को अनजा-नते भी इस मनहूस भावी दुर्घटना ने उदास बना दिया था। मैं उस दिन भी उस बुढ़िया की बात नहीं टाल सका और पैसे लेकर संक्षेप में इतना ही कहा कि अभी फाँसी नहीं होगी। कौन जानता है कि वह न भी फाँसी पावे। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा बच्चा स्वस्थ है।

(४)

"आख़िर एक दिन उस नवजवान को लटक जाना ही पड़ा! उसकी गोरी और पुष्ट गर्दन में फाँसी की रस्सी डालते समय मैंने देखा कि जल्लाद की भी आँखें छलक उठी हैं। वह शान्त भाव से लटकने को प्रस्तुत हो गया। मेरे प्रश्न करने पर उसने कहा कि मित्र, मैंने डाके डाले और ख़ून किये तो इस पापी पेट के लिए। संतोष से संसार की दूसरी ज़रूरतें मिटती हों, पर पेट को संतोष से तृप्ति नहीं होती। मैंने बी० ए० पास किया और उसका परिणाम हुआ मेरी अम्मा का गली गली भीख माँगकर गुज़र करना। ख़ैर, जो होनेवाला था हुआ, पर यह तो मैं कहूँगा कि मैंने केवल पेट भरने के लिए ही अपने हाथों को ख़ून से रँगा। लांछित और अपमानित जीवन से यह अच्छा ही है कि.........ख़ैर, आप इतना नोट कर लें कि मेरी अम्मा को मेरा मृत शरीर न देखने दें। उसने मुझे जन्म दिया है। मेरे मुँह में आग देने की अवस्था का स्वागत करने के लिए यह बात असंभव है। मैं चुपके से जला दिया जाऊँ या फेंक दिया जाऊँ, पर मेरी अम्मा को कानोकान इसकी ख़बर न हो। यही मेरी प्रार्थना है।

"उस नवजवान की प्रार्थना पर ध्यान दिया गया। वह ठीक समय पर लटका दिया गया और कुछ देर तक घुट घुट कर मर गया। उसकी आँखें निकल आईं।

गर्दन लम्बी हो गई थी, छाती फूल उठी थी, पर होठों पर मुसकान खेलती ही रही। वह अपने वर्तमान जीवन से ऊब उठा था। जीवित रहने से मर जाना ही उसे पसन्द था। उस नवजवान को ख़ून-ख़राबी करके डाके डालकर जीना नापसन्द था, पर पेट भरने के लिए केवल यही एक उपाय उसके लिए बाक़ी था। लाचार उसने इस पापपथ पर चलना पसन्द किया। ख़ैर, जिस दिन उसे फाँसी दी गई, मैं अपने घर से नहीं निकला। मन अस्वस्थ-सा हो गया था। दूसरे दिन फिर बुढ़िया आई। उसकी सूरत देखते ही मैं काँप उठा। वह मुझे देखते ही बच्चों की तरह हँसने लगी और बोली, 'मेरे बच्चे को तुमने टोपी दे दी होगी। वह कैसा है? प्रसन्न तो है न? यह लो थोड़ी-सी मूँगफलियाँ उसे दे देना और कह देना कि अगले सप्ताह तक यदि पैसे जमा कर सकी तो एक बढ़िया कमीज़ भेजूँगी। वह वहाँ आराम से रहे। मैं भीख माँग-माँग कर वहीं उसे आराम पहुँचाऊँगी।"

"इतना कह कर उसने काग़ज़ का एक छोटा-सा पैकेट मेरे हाथों में धर दिया। मैंने न हाँ की और न ना। आज जिस बच्चे के लिए वह मूँगफलियाँ दे रही है वह तो राख की ढेर बन चुका है। प्रातः ५ बजे वह लटकाया गया था और संध्या-समय उसकी अम्मा उसके लिए मूगफलियाँ दे रही थी। मैं अपनी निर्बलता पर झुँझला उठा। मुझे चाहिए था कि उस अभागी को सच्ची बातों से अवगत करा दूँ, पर मन को इतना बल कहाँ। उस माता के भोले स्नेह ने मेरे मन को भी पिघला दिया था। मैं उसकी कोमल-भावनाओं को कैसे कुचलूँ? बेचारी को अपने बच्चे के विषय में केवल इतना ही जानकर कि वह जीवित है, ख़ुशी होती है, कितनी तृप्ति होती है। इस मिथ्या को मैं सत्य से अधिक प्यार करने लगा और एक सप्ताह बाद वह कमीज़ लेकर भी हाज़िर हुई। इस बार मैंने साहस किया कि सच्ची बात ज़ाहिर करके इस वृद्धा को भ्रम से परे कर दूँ, पर जब उसने आँखों में आँसू भर कर अपने बच्चे का कुशल-संवाद पूछा तब 'सकुशल है' के स्थान पर 'मर गया' मेरे मुँह से नहीं निकला। मैंने लाख कोशिश की कि जी कड़ा करके सभी बातें कह दू, पर उस वृद्धा माता पर वज्रपात करने की हिम्मत नहीं हुई। सच पूछो तो फाँसी पर लटका देने से भी यह भयंकर कर्म था, जो मैं करना चाहता था। कमीज़ देकर जब वृद्धा अपने बच्चे का कुशल-संवाद पूछने लगी तब मेरी आँखों के सामने उस अभागे नवजवान की मूर्ति नाच उठी। कमीज़ रखकर वह चलती बनी और रास्ते भर मुस्कराती गई। मेरा मन इतना विकल हो उठा कि मैंने घर से निकलना बन्द कर दिया, पर वह दो चार-दिन पर कुछ न कुछ लेकर ज़रूर आती और अपने बच्चे का कुशल-संवाद पूछ जाती। यह क्रम कुछ दिनों तक चला। मैं जान बचाने के लिए घबरा उठा।

"एक दिन मैंने एक उपाय सोचा। उस वृद्धा के प्रति मेरे हृदय में भी करुणा की लाख लाख धारायें आज भी छलक रही हैं। मैंने एक दिन संध्या-समय वृद्धा की कुटिया की ओर जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँचा तब वह बैठी कुछ सी रही थी। मैंने पुकारा तब काँपती हुई आई। उसके हाथ में एक रूमाल था। मैं समझ गया कि वह अपने बच्चे के लिए रूमाल सी रही है। बात सही निकली। उसने नज़दीक आकर मेरे मुँह की ओर अच्छी तरह ताका और कहा—तू है रे? अच्छी बात! कल मैं ही तेरे घर पर आती। एक रूमाल उसे दे देना। वह इस रंग के रूमाल को बहुत पसन्द करता है। यही लाल ख़ून से भी लाल। मैंने कहा—अम्मा, तुम्हारे बच्चे की जेल में नौकरी हो गई है। यह लो। उसने कुछ रुपये भेजे हैं। इतना कह कर मैंने पच्चीस रुपये उस वृद्धा के हाथों में रख दिये। मैंने देखा कि उसकी आँखों से गंगा-यमुना उमड़ पड़ी हैं। वह कुछ बोलना चाहती थी, पर आनन्द से उसका गला भर आया। मैंने उसे समझा दिया कि तुम्हारे बच्चे को वहाँ काफ़ी कपड़े मिलते हैं। उसे कपड़ों की आवश्यकता नहीं है। अगले महीने फिर आकर रुपये दे जाऊँगा। तुम यहीं रहना।

"भाई, मैंने उस वृद्धा को समझा भी दिया, तो भी वह कभी-कभी कुछ मिठाइयाँ वग़ैरह लाकर मुझे देती ही रही। मैं भी प्रत्येक मास उसे नियमित रूप से १५) उसके बच्चे के नाम पर देता हूँ, फिर भी मैं उस वृद्धा की सूरत देखते ही काँप उठता हूँ। हाय री अभागी माता! यह सामने उसी की कुटिया है। मैंने एक नौकर रख दिया है, जो उसकी सेवा करता है। इस तरह उसके मृतपुत्र के नाम पर

सब कुछ कर रहा हूँ। वह भोली-भाली अम्मा अब तक यह नहीं जानती कि उसका इकलौता ग्यारह मास पहले ही फाँसी पर चढ़ा दिया गया है। मैं चाहता हूँ कि जीवन भर उसे इस भयानक सत्य का सामना करना न पड़े।"

जेलर कहानी कहकर मौन हो गया और मैं भी विचारों की तरङ्गों में डूबता-उतराता घर पहुँचा। रात की पहली किश्त दुनिया को मिल चुकी थी। इस ... का स्वागत बचों ने जँभाइयाँ लेकर किया। सड़कों ... बत्तियाँ जल गई थीं और शहर धीरे धीरे दिन के ... हल से दूर होता जा रहा था।

मैं अनमना-सा, थका-सा, अलसाया-सा, घर पहुँचा और जेलर की बातों को सोचता सोचता सारी रात ... थका। मानवजीवन का आधार आशा ही है! बस।

अतीत

लेखिका, श्रीमती सत्यवती, हिन्दीप्रभाकर

अतीत! तुम गौरवमय, चिरमहान।

सुमनों-सा छवि पर भोलापन
सागर पर किरणों-सी थिरकन
हर्ष भरा मन, पुलक भरा तन
शैशव का क्रीड़ामय जीवन
उल्लसित हुई कर जिसका चिन्तन
हो गया स्वप्न आज अनजान!
अतीत! तुम गौरवमय, चिरमहान।

पट में कुछ नूतनता आई
नभ में फैल गई अरुणाई
बिहँसे पुष्प कली मुसकाई
उर में एक मधुरिमा छाई
स्मृति ने वह झाँकी झलकाई
हैं मचलते रहते अब भी प्राण।
अतीत! तुम गौरवमय, चिरमहान।

जीवन ने फिर करवट बदली
यौवन की चपल समीर चली
उपवन में मस्त हुई तितली
थी भ्रमरों की गुंजार भली
यौवन भी निकला एक छली
होगया निमिष में अन्तर्धान।
अतीत! तुम गौरवमय, चिरमहान।

कष्टों से कम्पित प्राण हुआ
कोमल मन भी पाषाण हुआ
सद्भावों का अवसान हुआ
उल्लास सभी म्रियमाण हुआ
निःशेष सकल अब गान हुआ
सुखद केवल अतीत का ज्ञान।
अतीत! तुम गौरवमय, चिरमहान।

जापान, आग़ाख़ान और इस्लाम

लेखक, श्री भाई परमानंद जी एम० ए०, एम० एल० ए०

मुस्लिम राजनीति एक बहुत दिलचस्प एवं शिक्षाप्रद समस्या है। अभी-अभी जापान की पार्लियामेंट में जापान-गवर्नमेंट से एक सदस्य ने प्रश्न किया—"क्या जापान मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कोशिश कर रहा है?" इसके उत्तर में परराष्ट्र-सचिव की तरफ़ से कहा गया—"हाँ, जापान-गवर्नमेंट को इस बात का ख़याल है कि चीन के उस भाग को जहाँ मुस्लिम आबादी ज़्यादा है, अपने प्रभाव-अधीन रखकर एक मुस्लिम स्टेट क़ायम कर दी जाय। (इस सिलसिले में मिस्र के राजवंश से बातचीत हो रही है कि क्या वह कोई ऐसा शाही सदस्य दे सकता है जो चीनी मुसलमानों का हेड बन सके।) इसके अतिरिक्त जापान-गवर्नमेंट मुसलमान विद्यार्थियों से संबंध जोड़ रही है।"

यहाँ प्रश्न उठता है कि जापान को मुसलमानों के सहयोग की क्या ज़रूरत है? यही तो लुत्फ़ की बात है। यद्यपि मुसलमानों की अधिकतर आबादी हमारी तरह मोहताजी की हालत में है, तथापि वे दो-तीन देशों में अपना राज्य रखते हैं। परंतु इससे भी बड़ी बात यह है कि दुनिया के मुसलमान अपने आपको 'एक जाति' समझते हैं। इसको मज़हबी जोश कहिए या मज़हब के आधार पर 'खरा जातीय जोश', पर यह एक गुण है, जो दुनिया में मुसलमानों के महत्त्व को बढ़ा देता है।

हम कई बार हैरान होते हैं कि यह क्या बात है कि मुसलमानों को अपने देश भारत की कोई चिंता नहीं हालाँकि वे इसमें पैदा हुए हैं और इसी की मिट्टी से बने हैं; परन्तु सीमा-प्रांत से परे रहनेवाले पठानों आदि के आज़ाद क़बीलों की उन्हें चिन्ता रहती है, पैलस्टाइन के मुसलमानों की चिन्ता रहती है, तुर्की और मिस्र की चिन्ता रहती है। हमारी हैरानी का कारण साफ़ है। हम हिंदुओं के अन्दर हिंदूत्व के लिए प्रेम का भाव या तो मिट चुका है या मिटाया जा रहा है, इसलिए हम मुसलमानों के इस व्यवहार को समझ ही नहीं सकते।

वास्तव में बात यह है, और इसी में मुसलमानों की शक्ति है कि उनके दिलों में एक ही भाव है और वह है इस्लाम से प्रेम। संसार में जहाँ कहीं मुसलमान हैं वे सभी 'इस्लाम' को अपना स्वदेश समझते हैं। भारत के मुसलमान न तो कांग्रेस की फ़िलासफ़ी को समझते हैं और न उसकी आज़ादी की क़द्र कर सकते हैं। हिन्दुस्तान के मुसलमानों को आज़ादी से प्यार है, परन्तु एक शर्त के साथ। आज़ादी हो तो मुसलमानों की। अगर मुसलमानों की आज़ादी नहीं है तो चाहे वह कांग्रेस की ही क्यों न हो, ग़ैर-मुस्लिम की है और इसलिए हिंदुओं की है, जिसके लिए मुसलमान कोई सहानुभूति नहीं रखते। मुसलमान नेता चाहते हैं कि कांग्रेस आज़ादी के पीछे लगी रहे और वे तबलीग़ आदि के द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाते रहें। पिछले दिनों जब डाक्टर अंबेडकर ने अछूतों से कहा कि तुम हिन्दू-धर्म को छोड़ दो तब मुसलमान नेता बहुत ख़ुश हुए। यही कारण था कि उन्होंने डाक्टर अंबेडकर को साफ़ बता दिया कि उनका उद्देश यह है कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की संख्या किसी न किसी तरह हिन्दुओं के बराबर कर दी जाय। जब ऐसा होगा तब भारत में मुसलमानों का राज्य होगा, क्योंकि वे हिन्दुओं का शासन कभी नहीं बर्दाश्त कर सकते। इससे पूर्व मौलाना शौकतअली के भाई मौलाना मुहम्मद-अली ने भी काकनाडा में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर इसी ख़याल को प्रकट किया था। उन्होंने कहा था कि कांग्रेस हिन्दुस्तान के अछूतों को दो भागों में बाँटने के बाद एक हिस्सा मुसलमानों के हवाले कर दे। जब स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने इस तजवीज़ के बारे में कांग्रेस-कमिटी से यह कहा कि कांग्रेस अछूतोद्धार के काम को उन (लाला जी) के सुपुर्द कर दे तब मौलाना मुहम्मदअली ने यह धमकी दी—"अब हमारे अंदर एक और श्रद्धानंद पैदा होने लगा है।" इस पर लाला जी की तजवीज़ एक तरफ़ हटा दी गई।

मुसलमानों की इस पोज़ीशन को कांग्रेसी नेता कभी समझ नहीं सकते। इसी कारण वे संसार की मुस्लिम



[श्रीभाई परमानन्दजी]

स्थिति को भी नहीं समझ सकते। इस समय योरप में क्या हो रहा है? पैलस्टाइन के झगड़े का कारण क्या है? इँग्लैंड का साम्राज्य प्रायः सभी जगह फैला हुआ है। बहुत-से देशों में इस साम्राज्य का वास्ता मुस्लिम आबादी से पड़ता है। इँग्लैंड की इच्छा सदा यह रहती है कि वह मुसलमानों को ख़ुश करके अपने प्रभाव-अधीन रक्खे। और इसका मतलब ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा है। इँग्लैंड ने मिस्र के मुसलमानों को सेल्फ़-गवर्नमेंट देकर उनको राज़ी करने की कोशिश की। परन्तु मिस्र का रास्ता और स्वेज़-नहर अगर इँग्लैंड के असर से निकल जायँ तो ब्रिटिश साम्राज्य को एक बड़ा भारी ख़तरा पैदा हो जाय। इसका एक इलाज सन् १९२६ में ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ कर्नल वेजवुड ने बताया था। वह यह कि इँग्लैंड मिस्र के रास्ते का ख़याल छोड़कर पैलस्टाइन में अपना प्रभुत्व बढ़ाये और हवाई जहाज़ों का मार्ग मज़बूत करे। उस पर आचरण करते हुए इँग्लैंड को पैलस्टाइन में यहूदी-पार्टी को उन्नत करने की ज़रूरत महसूस हुई। लेकिन उधर इटली इँग्लैंड का बड़ा प्रतिस्पर्धी बन रहा है। इटली जगह-जगह इँग्लैंड के साथ छेड़ख़ानी में मशगूल है। रोमसागर पर प्रभुत्व जमाने के लिए वह इँग्लैंड का सामना कर रहा है। स्पेन में वह अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता है। इसलिए कि इँग्लैंड का प्रभाव कम किया जाय। इधर पैलस्टाइन और अरबों में मुसोलिनी ने अपने आपको इस्लाम का संरक्षक बताकर बड़ा ज़बर्दस्त प्रोपेगंडा शुरू किया है। यहाँ तक कि अब इँग्लैंड को इटली का मुक़ाबिला करने के लिए लंदन से रेडियो आदि के द्वारा अरबों में अपना ख़ास प्रोपेगंडा करना पड़ रहा है।

इस सम्बन्ध में हमारी दिलचस्पी की एक और विशेष बात भी है। वह यह कि मुसोलिनी ने अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्ला को अपना मेहमान बना रक्खा है। कुछ दिन हुए जब इटली का डिक्टेटर मुसोलिनी हवाई जहाज़ों का प्रदर्शन देखने के लिए गया तब यह देखा गया कि मुसोलिनी और इटली के बादशाह के दर्मियान अमानुल्ला जा रहे हैं। कई बार



[सर आग़ा ख़ाँ]

यह ख़बर भी फैली है कि सीमाप्रांत की लड़ाइयों के बग़ावत में अमानुल्ला का हाथ काम कर रहा है। एक तरफ़ मुसोलिनी अमानुल्ला को हाथ में लेकर मुसलमानों के अंदर इँग्लैंड के विरुद्ध प्रोपेगंडा कर रहा है, दूसरी तरफ़ इँग्लैंड अपने राजभक्त सर आग़ाख़ान को अपने प्रोपेगंडे के लिए इस्तेमाल करता है। यही कारण है कि इँग्लैंड ने सर आग़ाख़ान को लीग ऑव नेशन्स का प्रेसिडेंट बनाकर एक अंतर्राष्ट्रीय पोज़ीशन दे दी है। आग़ाख़ान इटली भी गये। यों बाहर से वे मुसोलिनी को यह कहते रहे कि अगर वह (मुसोलिनी) मुसलमानों का हितैषु होगा तो मुसलमान उसकी पीठ पर हो जायँगे। आग़ाख़ान भारत भी आये और महात्मा गांधी के साथ ...नों का आन्दोलन शुरू किया। परन्तु जल्द ही वापस चले गये, अब वे मिस्र गये हैं।

मिस्र में इस समय ख़िलाफ़त का सवाल छेड़ दिया गया है। एक समय तक तुर्की के सुलतान ख़लीफ़ा रहे हैं। लेकिन जब से कमालपाशा ने ख़िलाफ़त को तुर्की से ख़ारिज किया है, ख़लीफ़ा की गद्दी ख़ाली रही है। इस्लाम के क़ायदे के मुताबिक़ जो मुसलमान बादशाह बहुत शक्तिशाली होता है वह ख़लीफ़ा बना दिया जाता है। यों तो आज मुस्लिम देशों में सबसे ज़्यादा शक्तिसंपन्न तुर्की है। परन्तु वह तो ख़िलाफ़त का शत्रु बन गया है और इस्लाम के मज़हबी पक्ष को वह महत्त्व नहीं देता। इसलिए स्वभावतया मिस्र के बादशाह फ़ारूक़ के अंदर ख़लीफ़ा बनने की इच्छा पैदा होना आश्चर्य की बात नहीं है। फ़ारूक़ की शादी अभी हुई है। इसलिए आग़ाख़ान का मिस्र में जाना राजनैतिक मिशन से कहाँ तक संबंध रखता है, यह शीघ्र ही प्रकाश में आ जायगा।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हिन्दू सोचें कि दुनिया किधर जा रही है और वे किधर।

मधुगीत

लेखक, श्रीयुत अंचल

आज मधुपाकुल चपल वनवाल।
आज पुलकावृत समीरण कर गया अंग अंग उन्मन,
आज शेफाली सुवासित पीतिमा से भर गया वन,
आज कलियों पर गया फिर सरसता का विमल पानी,
आज केशर की कसक से गति शिथिल झंकृत हिमानी,
आज खग कूजित बकुल की डाल।
ये प्रखर कुंकुम कलश छलछल बहाते गन्ध गुंजन,
आज नूतन कोंपलों से नील अमराई अचेतन,
और बेहोशी न पूछो झूमते जड़ भी मदालस,
आज दक्षिण का प्रवासी अन्ध परिमल गा उठा रस,
रेणु से आरक्त करतल लाल।
गीत गुंजित आज पुरवा किस व्यथा से भर गई दृग,
नीरजा की नील कुन्तल रश्मियों से दीप्त मधुपथ,
आज की कैसी तरंगें आज कैसा स्वप्न अविदित,
आज पहली बार सुख से हो उठा अन्तर पिपासित,
आज मधुपाकुल चपल वनवाल।

'१६वीं अप्रैल'

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

'१६वीं अप्रैल' के आकर्षक शीर्षक से कुँवर साहब ने शिवाजी का रोचक चरित लिखा है। अपना लेख कुँवर साहब प्रायः किसी प्रामाणिक पुस्तक के आधार पर ही लिखते हैं। यह लेख भी 'ग्रेंड रेवल' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखा गया है और विस्तार के साथ सरस शैली में लिखा गया है।

१६ वीं अप्रैल भारतवर्ष के इतिहास में एक स्मरणीय तारीख़ है। ३२१ वर्ष पहले इसी दिन शिवाजी का जन्म हुआ था। वे लोग रोज़ रोज़ नहीं पैदा होते हैं जो संसार में अपने पद-चिह्न छोड़ जाते हैं। वैसे तो यह दुनिया है, कोई आया और कोई गया, परन्तु सबका आना-जाना बराबर नहीं होता है। अपने लिए ज़िन्दा न रहनेवाले मर करके जीवित होते हैं। और एक वे हैं जिनकी गणना ज़िन्दगी में ही 'अनजीवित सम चौदह प्रानी' में होती है। बड़े आदमियों का रास्ता पुष्प-पूर्ण नहीं होता है। उनको ऐसे विरोध का सामना करना पड़ता है कि उनका दिल ही जानता है। संसार में प्रशंसा तो किसी की भी नहीं हुई है और यदि हुई है तो 'किन्तु' और 'परन्तु' के साथ और आक्षेप बड़ी उदारता के साथ। जिस असाधारण व्यक्ति को साधारण मनुष्य नहीं समझ पायँगे उस पर शाब्दिक आक्रमण अवश्य होंगे। उनसे भयभीत होना आत्मदौर्बल्य की सबसे बड़ी पहचान है। आक्षेप करनेवालों का यह काम कभी नहीं रहा है कि बुरा-भला कहने के पहले परिस्थिति पर भी ध्यान कर लिया करें। उन्हें मतलब तो सिर्फ़ इससे रहता है कि किसी न किसी तरह बुराई करने का मौक़ा मिल जाय। ऐसों से कोई कहाँ तक बच सकता है। शिवाजी पर भी ख़ूब आक्षेप होते हैं।

शिवाजी के जीवन पर यदि क्षिप्र दृष्टि न डाली जाय तो मालूम होगा कि उनके रास्ते में कितनी बड़ी कठिनाइयाँ थीं और कैसा प्रशंसनीय उनका साहस था। यह भी तो देखना पड़ेगा कि उस समय देश की परिस्थिति क्या थी और हिन्दू-जाति किस शोचनीय दशा में पड़ी हुई थी। गहरी नींद में सोये हुए किसी एक आदमी को जगाना मुश्किल पड़ जाता है। फिर उस जाति को जगाना कितना कठिन था जो अपने को भूली हुई सैकड़ों बरसों से पड़ी सो रही थी? वह समय हिन्दू-जाति के जीवन-मरण का था। महान् शक्तिशाली मुग़ल-साम्राज्य का सिर्फ़ हाथ-पैरों से मुक़ाबिला करना शिवाजी का ही काम था।

कुछ लोग शिवाजी को धोखेबाज़ और विश्वासघाती कहते हैं। अगर भीमकाय अफ़ज़ल ख़ाँ के बग़ल के नीचे वे अपनी गर्दन तुड़वा डालते तो यह उपाधि उन्हें न मिलती। प्रत्येक जीवधारी अपनी रक्षा करने का यथाशक्ति प्रयत्न करता है। यही सबकी प्रकृति होती है। भय का बोध प्राकृतिक ज्ञान-द्वारा प्राप्त होता है। शिवाजी पर अवश्य विश्वासघात का उचित दोष लगाया जा सकता था, यदि उन्होंने पहले आक्रमण किया होता। जब जान पर बन आने की नौबत आई तब उन्होंने 'बाघनख' से काम लिया।

सन् १२९४ से महाराष्ट्र देश पर अफ़ग़ानों के आक्रमण प्रारम्भ हुए थे और सन् १३१३ तक उन्हें पूर्ण विजय प्राप्त हो गई थी। मराठों को अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करने के लिए अभी साढ़े तीन सौ वर्ष ठहरना था। मालोजी राव अहमदनगर के बादशाह के यहाँ नौकर थे और उस दरबार के एक उच्च पदाधिकारी की बहन के साथ उनकी शादी हुई थी। उनके पुत्र शाहजी का जन्म सन् १५९४ में हुआ था। इनका विवाह विचित्र ढंग से तय हुआ था। उस समय अहमदनगर में लाखोजी नाम के एक बहुत धनी आदमी रहते थे। उनका शाही दरबार में बड़ा सम्मान था। उनके मकान पर होली में बड़ी धूम-धाम होती थी। सन् १५९९ की होली में लाखोजी की लड़की जीजाबाई मालोजी के लड़के शाहजी पर दौड़ दौड़ करके रंग डालने लगी और वह भी उसको पकड़ने के लिए दौड़ता था और रङ्ग डालता था। दोनों रङ्ग में भीगे हुए थे और दोनों खड़े हुए हँस रहे थे कि इतने में

लाखोजी कहीं उधर से आ निकले और उन दोनों को इस तरह ख़ुश देखकर ख़ुद भी बहुत ख़ुश हुए और कह पड़े कि 'कैसी जोड़ी है'। आकांक्षायें आँखों पर पर्दा डाल देती हैं। मालोजी ने अपने मित्रों का ध्यान इन शब्दों की ओर आकर्षित किया। लाखोजी का स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि उनके साधारण शब्दों के कोई असाधारण अर्थ लगाये जायँगे। सामाजिक दृष्टि से लाखोजी और मालोजी में बड़ा अन्तर था। उस समय लाखोजी लाखोजी हो रहे थे और मालोजी सिर्फ़ एक सिपाही थे। मालोजी की बात को लाखोजी ने उस समय हँसकर टाल दिया, समझा होगा कि होली में ऐसी अनर्गल बातें हुआ ही करती हैं। मालोजी कब माननेवाले थे। उनकी निगाह बहुत ऊँची उठी। उन्होंने दूसरे दिन बाक़ायदा शादी का पैग़ाम भेजा। लाखोजी बहुत नाख़ुश हुए और उस प्रस्ताव को मानहानिकारक समझकर कहला भेजा कि इस अपमान का फ़ैसला द्वन्द्व-युद्ध करेगा। इस झगड़े की ख़बर बादशाह तक पहुँची। उनको बड़ी फ़िक्र हुई। वे दोनों में से एक को भी असन्तुष्ट नहीं किया चाहते थे। लाखोजी का हिन्दुओं में बड़ा नाम था और मालोजी वीरता में विख्यात थे। बादशाह ने मालोजी को पंच हज़ारी (उस समय यह पद बहुत ऊँचा समझा जाता था। पाँच हज़ार फ़ौज का वह अफ़सर होता था) का पद प्रदान किया और जागीर भी दी और लाखोजी को समझा-बुझा कर लड़की की शादी शाहजी के साथ कर देने पर राज़ी कर लिया। पाँच-छः साल के बाद जीजाबाई की शादी शाहजी से हो गई। उनके प्रथम पुत्र का नाम सम्भाजी था, जो एक मामूली लड़ाई में मारा गया था। शाहजी ने भी अपने पिता मालोजी की तरह अहमदनगर के बादशाह की नौकरी कर ली थी और सन् १६३६ में जब उस राज्य का ध्वंस हो गया तब बीजापुर चले गये और वहाँ के बादशाह ने उनको उनके बाप की जागीर दे दी। बीजापुर एक पुराना मुसलमानी राज्य था। कहने भर को केवल स्वतन्त्र था। वास्तव में देहली के सम्राट् के अधीन था। शाहजहाँ ने अहमदनगर के राज्य को इसी वजह से लड़कर जीत लिया था कि बीजापुर पर हाथ बढ़ाने में आसानी हो जाय। शाहजी की जागीर आक्रमण के रास्ते में पड़ती थी। जब देहली से आक्रमण हुआ तब थोड़े दिन तक शाहजी शाही फ़ौज से लड़ते रहे। परन्तु कब तक सामना करते? कहाँ शाहजी और कहाँ शाही फ़ौज? जब कुछ न बन पड़ा तब अपने लड़के सम्भाजी को लेकर बीजापुर चले गये। जागीर छोड़ दी और अपनी स्त्री जीजाबाई को भी छोड़ दिया, जिनसे उनकी बनती नहीं थी। जीजाबाई शिवनेर की छोटी-सी गढ़ी में चली गई और वहीं रहने लग गई। साथ में सिर्फ़ दस-पाँच विश्वासपात्र नौकर थे। बुरे दिन में कौन किसका साथ देता है? जब पति ने ही साथ छोड़ दिया था तब फिर किससे शिकायत की जाती? दिन भर गढ़ी का दरवाज़ा बन्द रहता था। देहली और बीजापुर की फ़ौजों के सिपाही इधर-उधर लूट-मार किया करते थे। वेतन किसी को मिलता नहीं था। तब और करते ही क्या! वे फ़सलें बरबाद कर डालते थे, जानवर हाँक ले जाते थे, औरतों और लड़कों को उठा ले जाते थे। हिन्दू रिआया पर ये सब अत्याचार होते थे। जीजाबाई गर्भवती थीं और हर वक़्त लड़ाइयों का हाल सुना करती थीं। विज्ञान-द्वारा भी यह सिद्ध होगया है कि सगर्भा जो कुछ देखेगी या सुनेगी उसका प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। शिवाजी पैदा होने के पहले से ही बहादुर बन रहे थे। यही हाल नेपोलियन का भी हुआ था। शिवाजी की माता ने कई बार स्वप्न में देखा था कि जैसे भगवती कह रही हो कि जिस पुत्र को वह गर्भ में धारण किये हुए है वह महान् पराक्रमी और प्रतापी होगा और हिन्दू-जाति का उद्धार करेगा। १६ अप्रैल सन् १६२७ को "शाह को ललन, दिल्ली दल को दलन, अफ़जल को मलन शिवराज आया सरजा।" शाहजी अपने ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी के साथ बीजापुर में थे, इसलिए शिवाजी के लालन-पालन का समस्त भार जीजाबाई पर पड़ा। चारों तरफ़ अशान्ति फैली हुई थी। इसी परिस्थिति में धीरे धीरे शिवाजी छः वर्ष के हुए।

मुग़ल-फ़ौज अब भी शाहजी की खोज में थी, परन्तु वे और सम्भाजी बीजापुर में सुरक्षित थे। उसे अपना ग़ुस्सा तो किसी पर उतारना ही था, अतएव उसे जब यह पता चल गया कि जीजाबाई और शिवाजी कहाँ छिपे हैं तब अचानक धावा कर दिया गया और जीजाबाई पकड़ ली गईं, लेकिन शिवाजी हाथ नहीं आये। उनको लेकर एक नौकर पीछे के दरवाज़े से जंगल में भाग गया था। पालकी में सवार कराके जीजाबाई मुग़ल-सेना के साथ त्र्यम्बक में लाई गईं। तीन साल तक नौकर शिवाजी को

जंगलों में छिपाये रहा और जीजाबाई एक गढ़ी में क़ैद रहीं। चौथे साल जब शिवाजी की उम्र दस साल की थी तब मौक़ा पाकर जीजाबाई गढ़ी से भाग निकलीं और वहीं पहुँच गईं जहाँ शिवाजी छिपे हुए थे।

देहली और बीजापुर में आये दिन छेड़छाड़ हुआ करती थी। लेकिन क्या मुक़ाबिला था? कहाँ मुग़ल साम्राज्य और कहाँ बीजापुर! जब सन्धि की बातचीत हो रही थी तब शाहजहाँ ने बीजापुर के नाममात्र के सुलतान को एक घोड़ा भेजा। उत्तर में जो पत्र गया वह साहित्यिक अतिशयोक्ति का नमूना था। घोड़े की और तारीफ़ों के साथ उस पत्र में यह भी लिखा था कि उसकी दुम लैला के बालों से ज़्यादा ख़ूबसूरत है। अस्तु, सन् १६३७ में देहली और बीजापुर के बीच संधि हो गई। अब शाहजी ने जीजाबाई और शिवाजी को बीजापुर बुला लिया। शाहजी ने दूसरी शादी कर ली थी और उससे भी एक लड़का हुआ था, जिसका नाम व्यंकोजी या विनायकोजी था। शाहजी ने जीजाबाई को साथ रखने की गरज़ से तो नहीं बुलाया था। उनका मतलब यह था कि शिवाजी को लिखा-पढ़ाकर बीजापुर में नौकर रखवा दें और उनकी शादी भी कर दें। आज-कल के भी पिताओं का यही दृष्टिकोण है कि चाहे गोद में ही लेकर भाँवरें हों लेकिन शादी हो जाय और पिता को यह सन्तोष हो जाय कि उसको अपने कर्तव्य से छुट्टी मिल गई। क्या ख़ूब कर्तव्य पालन होता है! जीजाबाई शिवाजी की शादी के ख़िलाफ़ थीं। वे यह नहीं चाहती थीं कि बीजापुर में शादी हो, क्योंकि वहाँ के हिन्दू उस समय आचार और विचार से भ्रष्ट थे। शिवाजी के माता और पिता में मत-भेद था ही और वे माता के पक्ष में थे। शाहजी शिवाजी से प्रसन्न भी थे और नहीं भी थे। वे इससे तो ख़ुश थे कि लड़का कुशाग्रबुद्धि है। शिवाजी बचपन से ही बजाय खेलने-कूदने के बाप से शासन-विधान के सम्बन्ध में प्रश्न किया करते थे। वे शिवाजी से नाख़ुश इस वजह से रहते थे कि उसमें वह ऐंठ और ज़िद थी जिसके सामने किसी की भी कुछ नहीं चलती थी। एक रोज़ शाहजी शिवाजी को सुलतान से मिलाने ले गये। प्रथानुसार लोग इतना झुककर सलाम करते थे कि फ़र्श पर सिर लग जाता था। शाहजी को भी यही करना पड़ता था और उस रोज़ भी उन्होंने वही किया। शिवाजी ने सिर्फ़ हाथ जोड़ करके नमस्कार कर लिया, जैसा मराठे अपने से बड़ों का अभिवादन करते थे। पिता के समझाने-बुझाने पर भी शिवाजी ने माथा टेक करके सलाम नहीं की। दरबार में शाहजी का अच्छा सम्मान था और इसी वजह से शिवाजी दंड से बच गये। शाहजी बहुत नाख़ुश हुए और उस रोज़ से शिवाजी से कोई वास्ता नहीं रक्खा। शिवाजी जो चाहते थे, करते थे। पर बीजापुर में करने को था ही क्या। वे दिन भर इधर-उधर घूमा करते थे। उस समय वहाँ के हिन्दू इतना दबे हुए थे कि सब कुछ सहते थे। गो-वध होता ही रहता था, पर किसी से ज़बान खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। शिवाजी यह कब देख सकते थे? उन्होंने इसका विरोध किया और एक दिन बलवा कर दिया। इस बार फिर बाप की वजह से बच गये। जब शाहजी ने देखा कि अगर यही हालत रही तो उनका भी कुशल नहीं है तब उन्होंने शिवाजी को उनकी माता के साथ जागीर में रहने को भेज दिया।

जागीर कहने भर को रह गई थी। दिल्ली और बीजापुर के बीच में अनबन होने से फ़ौजें इधर से उधर आया जाया करती थीं, जिससे फ़सलें चौपट हो जाती थीं, किसान लूट लिये जाते थे और हर तरह के उपद्रव होते थे। कोई ज़मीन का जोतने-बोनेवाला नहीं रहा था—लोग घर-द्वार छोड़ कर भाग गये थे और डाके डाल कर अपनी गुज़र-बसर करते थे। जो कुछ कसर रह गई थी उसे १६३१–१६३२ के सूखे ने पूरा कर दिया था। भेड़िये भी आफ़त मचाये हुए थे। मुसीबत अकेली कभी नहीं आती है। शिवाजी की उम्र अब १३ साल की थी। उनको पढ़ाने के लिए उनके पिता ने दादाजी कोंडदेव नामक एक पंडित को नियुक्त किया। दादाजी केवल महात्मा और विद्वान् ही नहीं थे, वरन बहुत सुयोग्य प्रबन्धक भी थे। उन्होंने शिवाजी की शिक्षा के साथ ही साथ जागीर के प्रबन्ध पर भी समुचित ध्यान दिया। खोये हुए एतबार की तरह उजड़ा हुआ गाँव बहुत देर में बसता है। फिर लोग बस करके करते ही क्या? ज़मीन बहुत दिनों से उजड़ी पड़ी थी, रोटी का कोई सहारा नहीं था और भेड़ियों की वजह से जान के लाले पड़े हुए थे। दादाजी ने भेड़िये मारने के लिए अच्छे इनामों की घोषणा की। ज़मीन का लगान बहुत कम कर दिया। जागीर के लोग फिर आये। भेड़ियों का भय गया, उजड़े गाँव बस गये और खेतों में फ़सलें होने लगीं। शिवाजी की जागीर का सबसे प्रसिद्ध गाँव पूना था। लूट-मार के भय से वह बिलकुल उजड़ गया था। सिवा दो-चार घरों के जिनमें [illegible] रहते थे, वहाँ और कोई नहीं रह गया था। जब आख़िर दफ़े मुसलमानी फ़ौज उधर से निकली थी तब सेनापति ने वहाँ के वे घर भी गिरवा दिये थे और हल में गधे जोतवा कर सब गाँव जोतवा दिया था और बीच गाँव में लोहे का एक खम्भा गड़वा दिया था। जब दादाजी ने देखा कि अन्धविश्वास के कारण लोग उस गाँव में बसने से डरते हैं तब उन्होंने खम्भे को उखड़वा डाला और सोने के हल से जिसमें सफ़ेद बैल जुते हुए थे गाँव को फिर जुतवा दिया। इससे लोग सन्तुष्ट हो गये और उनका सन्देह दूर हो गया। दादाजी ने शिवाजी के लिए वहाँ एक मकान बनवाया, जिसका नाम 'रंगमहल' रक्खा। शिवाजी अपने देश के पुराने वीरों की गाथायें सुनने के बड़े प्रेमी थे। उनको क्या पता था कि एक दिन उन्हीं वीरों की सूची में उनका भी नाम लिखा जायगा। शिवाजी को अपने साहस और निर्भीकता की परीक्षा लेने का बहुत शौक़ था। वे पहाड़ की उन चोटियों पर चढ़ा करते थे और उन घाटियों में उतरा करते थे जहाँ उनके साथी पैर बढ़ाने से हिचकते थे। यह आदत भावी घटनाओं की छाया के समान थी। जन्म-पर्यन्त उन्होंने ऐसे साहस का परिचय दिया जिसकी इनी-गिनी दो ही चार मिसालें संसार के सामने हैं। शिवाजी के हाथ बहुत लम्बे थे। अपने यहाँ ऐसे हाथवाले को 'आजानबाहु' कहते हैं और यह लक्षण असाधारण पराक्रम-सूचक समझा जाता है।

शिवाजी की अवस्था अब १९ वर्ष की थी। कहा जाता है कि १९ वर्ष की अवस्था में मनुष्य जो कुछ होता है वही वह जीवन-पर्यन्त रहता है—चाहे मूर्ख हो या विद्वान्। इस उम्र में विचारों में परिपक्वता आ जाती है। अगर शिवाजी चाहते तो बाप और दादे की तरह बीजापुर में ऊँची से ऊँची जगह पर नौकर हो जाते और समस्त जीवन सानन्द व्यतीत होता। परन्तु उनके देह-धारण का उद्देश कुछ और था। वे प्रारम्भ से ही अपना 'हिन्दू राज्य' स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे। उस समय की परिस्थिति पर ध्यान देने से यह एक असम्भव बात मालूम होती है, परन्तु यह भी तो है कि असम्भव को सम्भव बनाना बड़े आदमियों का ही काम है। फ़्रांस के एक सचिव के पास एक महिला एक दरख़्वास्त लेकर गई। सचिव ने कहा कि यह असम्भव है। महिला ने चिढ़कर उत्तर दिया कि अगर कोई बात सम्भव है तो वह हो गई और यदि असम्भव है तो उसे करना है। अब शिवाजी के सामने यह प्रश्न था कि अपने स्वप्नों को वे किस तरह क्रियात्मक स्वरूप दें। अपने इरादों में सफल होने के लिए यह आवश्यक था कि कम से कम एक गढ़ी पर तो उनका अधिकार हो। पूना के पश्चिम पहाड़ों पर बहुत-सी गढ़ियाँ थीं और उनमें से तोरनगढ़ी का विशेष महत्त्व था। इस पर अधिकार प्राप्त करने से शिवाजी के लिए बहुत सी सुविधायें हो जातीं। परन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण गढ़ी पर अधिकार प्राप्त करना कोई हँसी-खेल नहीं था। एक तरफ़ मुसलमानों की बहुत बड़ी फ़ौज और दूसरी तरफ़ शिवाजी के सौ-पचास अनुयायी थे जिनको फ़ौज का काम वे ख़ुद ही सिखलाते थे। कहाँ ज़मीन और कहाँ आसमान! परन्तु विधि का विधान कुछ और था। तोरनगढ़ी की भौगोलिक अवस्थिति ऐसी थी कि गर्मियों में तो वहाँ ठंड रहती थी, लेकिन बरसात आते ही बड़ी तकलीफ़ होने लगती थी। खाने-पीने की भी चीज़ों के मिलने में कठिनता होती थी। बरसात में अपनी जान पर खेलकर ही उधर कोई आता-जाता था। वहाँ रहनेवाली सेना और उसका सेनापति बहुत कष्ट में पड़ जाते थे। सन् १६४६ की वर्षा में तो इन लोगों के नाक में दम हो गया था। अतएव सेनापति ने यह निश्चित किया कि बरसात भर के लिए यहाँ से हट चलना चाहिए। चारों तरफ़ शान्ति थी ही, किसी तरह के भय की आशंका नहीं थी। बग़ैर राजधानी से आज्ञा मँगाये दूसरे साल की बरसात में गढ़ी ख़ाली कर दी गई और फ़ौज नीचे उतर आई। शिवाजी का मुँह-माँगी मुराद मिली, जिसकी उम्मीद नहीं करते थे वही मौक़ा हाथ आ गया। शिवाजी ने दूसरी तरफ़ से आकर गढ़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया। गढ़ी के सारे अस्त्र शस्त्र हाथ आये और भरा-पुरा ख़ज़ाना भी मिल गया। शिवाजी ने दिल खोल कर अपने साथियों को इनाम दिये।

शिवाजी के इस साहस के काम से उनके गुरु दादाजी भी भयभीत हुए और अपने एक पत्र में अप्रसन्नता

भी प्रकट की। उन्होंने शाहजी को भी ख़त लिख भेजा। शाहजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे पहले से ही समझे बैठे थे कि एक न एक दिन शिवाजी की वजह से उन पर आफ़त आयेगी। मुसलमान-सेनापति ने बीजापुर को शिवाजी की शिकायतों का एक पूरा दफ़्तर लिख भेजा। शिवाजी ने भी सुल्तान की सेवा में पत्र भेजा और लिखा कि मेरा इरादा गढ़ी लेने या विद्रोह करने का नहीं था। मेरा अभिप्राय केवल यह था कि दिखला दूँ कि इस गढ़ी का सेनापति नितान्त अयोग्य पुरुष है, जो बरसात की तकलीफ़ों से बचने के लिए सेना को लेकर वहाँ से चला गया। शिवाजी का मतलब था कि इस पत्र-व्यवहार से कुछ समय मिल जाय। अब रुपया हाथ में था ही। उन्होंने बीजापुर के दरबारियों को रिश्वत दी कि जल्दी कोई फ़ैसला न होने पावे। इधर पत्रवाहक पूना और बीजापुर के बीच दौड़ रहे थे और उधर शिवाजी अपने काम में लगे हुए थे। वे राजगढ़ पहाड़ी के मोर्चों की मरम्मत करवा रहे थे कि बीजापुर की तरफ़ से उस पर आक्रमण न हो सके।

सिंहगढ़ की गढ़ी पूना से ११ मील पर थी। शिवाजी ने वहाँ के कर्मचारी को रिश्वत दी कि वह उनको गढ़ी में आने-जाने दिया करे। बस फिर क्या था? वह गढ़ी भी उनके हाथ में बिना किसी परिश्रम के आ गई।

क़िस्मत शिवाजी का साथ दे रही थी, असुविधायें मिट रही थीं और रास्ता साफ़ हो रहा था। पुरन्दरगढ़ी के शासक की मृत्यु हो जाने पर उसके तीन लड़कों में यह झगड़ा उठा कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। यह शासक बड़ा निर्दयी था। एक दफ़ा वह अपनी स्त्री से नाख़ुश हो गया और उसे तोप से उड़वा दिया। शिवाजी ने कहला भेजा कि वे फ़ैसला कर देंगे कि तीनों में से कौन भाई बाप की जगह पर हो। शिवाजी का भाग्य उनकी आँखों पर पर्दा डाले हुए था। उन लोगों ने शिवाजी को पंच मान लिया। बरसात के बाद गढ़ी की मरम्मत शुरू हुई। वेष बदल करके शिवाजी के सिपाही गढ़ी के मज़दूरों में शामिल हो गये। दिवाली में शिवाजी निमंत्रित किये गये। उनकी दावत की गई। दोनों छोटे भाई बड़े भाई को धोखा देना चाहते थे। जैसे ही वह शराब के नशे में हुआ, वैसे ही उसे रस्सियों से बाँध दिया और शिवाजी से मामला तय करने की बात-चीत शुरू की। शिवाजी ने कहा कि सवेरे सोच कर जवाब देंगे। उस जगह एक पहाड़ी नाला था। दोनों भाइयों को शिवाजी ने दूसरे दिन नहाने के लिए बुलाया। सब लोगों ने साथ स्नान किया और हँसी-मज़ाक होता रहा। जब नहाकर सब लोग गढ़ी के फाटक की तरफ़ चले तब दोनों भाइयों ने देखा कि बीजापुर का झण्डा ग़ायब है और फाटक पर दूसरे ही सिपाहियों का पहरा है। उनके पैर के नीचे से ज़मीन निकल गई होगी। लेकिन हो तब क्या सकता था? "समय चूकि पुनि का पछिताने।" शिवाजी ने बहुत थोड़े शब्दों में समझा दिया कि दूसरे के लिए कुआँ खोदनेवाले ख़ुद उसी कुएँ में गिरे हैं। उन्होंने शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली। अगर न करते तो करते ही क्या? गढ़ी में जितने सिपाही थे उनसे कहीं ज़्यादा शिवाजी के सिपाही कुलियों के वेश में वहाँ पहुँच चुके थे। शिवाजी ने तीनों भाइयों को छोटी छोटी जागीरें दे दीं और वे भी सन्तुष्ट हो गये। मजबूरी का नाम सब्र है।

यहाँ एक के बाद दूसरी गढ़ी क़ब्ज़े से निकली जाती थी और बीजापुर से अभी पहली ही गढ़ी का फ़ैसला नहीं हुआ था। शिवाजी ने रुपया से दरबारियों का मुँह भर दिया था। सबसे बड़ी वजह फ़ैसला में देर होने की यह थी और दूसरी यह थी कि शिवाजी बराबर बीजापुर के सुलतान को लिखा करते थे कि उनकी राजभक्ति में किसी तरह की कमी नहीं है और वे सबसे ज़्यादा राजस्व वसूल करके भेजेंगे। बीजापुर को अपनी ही जान बचाने की फ़िक्र पड़ी हुई थी और जो शक्तियाँ थीं उन्हीं को एकत्र करने की कोशिश हो रही थी। ऐसे समय में शिवाजी से छेड़छाड़ करने की किसे सूझती? दूसरी बात यह भी थी कि सुल्तान बीमार पड़ गये थे और उनके अच्छे होने की किसी को कोई आशा नहीं थी। व्यथितहृदय को किसी न किसी के सहारे की आवश्यकता होती ही है। अगर कुछ न सही तो अन्ध-विश्वास ही सही। जब हकीमों ने जवाब दे दिया तब झाड़ फूक की सूझी। एक ने अपनी उम्र के कुछ साल सुल्तान को दिये तब जान बची। ऐसे क़िस्से सभी ने सुने होंगे, परन्तु आज तक यह समझ में न आया कि इनमें यथार्थता का अंश कितना था और यदि कुछ था तो क्या यह सम्भव है? "रात को चाहे दिन तू कर दे, नामुमकिन को मुम्किन कर दे"। यह ईश्वर कर सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह सिवा उसके और भी कोई कर सकता है। अस्तु।

शिवाजी के गुरु दादाजी बीमार पड़े और संसार से प्रस्थान करने का समय आ गया। उन्होंने शिवाजी से कहा कि तोरनगढ़ी पर क़ब्ज़ा करने के समय उन्होंने जो आलोचना की थी उससे बुरा नहीं मानना चाहिए, क्योंकि उनके शब्दों की कठोरता उनके प्रति प्रेम की प्रबलता का सूचक है। शिवाजी ने अपने अपराधों की क्षमा माँगी। दादाजी ने आशीर्वाद दिया कि उनके द्वारा हिन्दू-जाति का उद्धार हो। यह आशीर्वाद देकर दादाजी ने सदैव के लिए आँखें बन्द कर लीं। शिवाजी को अकथनीय दुःख हुआ। दुःख क्यों न होता? उनके लिए तो वे सब कुछ थे। कृतज्ञता महान् आत्माओं की एक पहचान है।

शिवाजी का विवाह हो गया था। उनकी स्त्री का नाम सिवाई था। वे आदर्श महिला थीं। उनका कार्य-क्षेत्र उनका गृह था। सास की सेवा करना और उनकी आज्ञा पर चलना वे अपना प्रथम कर्तव्य समझती थीं।

मनुष्य को सफलता से अधिक और कोई चीज़ सफल नहीं बनाती है। अब शिवाजी की चारों तरफ़ धूम थी। हिन्दू-जाति में पुनः रक्त का संचालन-सा होने लगा था। अब उनको अनुयायियों की कमी नहीं थी। फ़ौज बढ़ती जाती थी। फ़िक्र अब यह थी कि कहीं से रुपया मिले। ईश्वर ने वह भी इन्तिज़ाम कर दिया। कल्यानगढ़ी के प्रबन्धक का यह ख़याल नहीं था और न किसी दूसरे का कि रास्ते में इस साल कोई आफ़त आयेगी। वहाँ से जैसे बीजापुर को रुपया भेजा जाता था, उसी तरह उस साल भी भेजा गया। शिवाजी पहले से ही मौक़े की तलाश में थे। धावा कर दिया और रुपया लूट लिया। गढ़ी की बहुत कुछ फ़ौज ख़ज़ाने के साथ गई थी। गढ़ी पर भी चढ़ाई कर दी और उस पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ के गवर्नर की स्त्री भी वहीं थी। वह शिवाजी के सामने लाई गई। वह अपने सौंदर्य के लिए विख्यात थी। उसे आते देखकर शिवाजी ने उठकर सलाम किया और उनकी ख़ूबसूरती की तारीफ़ की। कहने लगे कि अगर मेरी मा में आपकी आधी भी ख़ूबसूरती होती तो मैं ऐसा कुरूप न होता। फिर उनको बहुमूल्य पदार्थ भेंट किये और उनको और उनके पति को सम्मान के सहित बीजापुर भेजवा दिया। उसने शिवाजी के ख़िलाफ़ बीजापुर के सुल्तान के ख़ूब कान भरे। उनके ग़ुस्से की सुलगती हुई आग प्रज्वलित हो गई। जब और गढ़ियों पर शिवाजी ने क़ब्ज़ा कर लिया था तब तो बातें बनाकर उन्होंने काम चला लिया था, लेकिन इस बार ख़ज़ाना लूटे जाने से उन बातों से काम चलने की उम्मीद नहीं थी। सुल्तान के हुक्म से शिवाजी से जवाब माँगा गया। जवाब आने के पहले सुल्तान को याद आ गया कि शिवाजी के बाप शाहजी यहीं नौकर हैं और उन्हें गिरफ़्तार करवा लिया। मुसलमान दरबारी शाहजी से चिढ़ते थे कि एक हिन्दू इतने उच्च पद पर है। अवसर की प्रतीक्षा थी। मौक़ा ढूँढ़नेवालों को मौक़ा मिल ही जाता है। अब क्या था? सुलतान के कान ख़ूब भरे गये। शाहजी से कहा गया कि वे ज़िन्दा दीवार में चुनवा दिये जायँगे अगर शिवाजी दरबार में हाज़िर न हुए। उनको हुक्म दिया गया कि ख़त भेज कर शिवाजी को बुलावें। स्वभावतः शाहजी अत्यन्त भयभीत हुए और शिवाजी को सब हाल लिख भेजा कि उन पर क्या आफ़त आई है और यह भी लिखा कि उनके चारों तरफ़ दीवारें उठाई जा रही हैं और अब सिर्फ़ कसर इतनी है कि एक-दो ईंटें और जोड़ दी जायँ और उनका जीवन समाप्त हो।

शाहजी के इस पत्र ने शिवाजी के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित कर दी। कर्तव्य शिवाजी को जाने का आदेश दे रहा था और देश-प्रेम उन्हें रोक रहा था। शिवाजी की पत्नी रोक रही थी, जानती ही होगी कि बीजापुर जाना मौत के मुँह में जाना है। माता की ममता भी जाने देने पर राज़ी नहीं थी। जीजाबाई का यह भी ख़याल था कि हिन्दू-जाति की जाग्रति शिवाजी के जीवन पर अवलम्बित है। यह सब जानते हुए भी शिवाजी को सन्तोष और परितोष नहीं होता था। वे इस संकल्प-विकल्प में ही थे कि उन्हें ईश्वर-प्रेरणा हुई। उन्होंने फ़ौरन दिल्ली को एक घुड़सवार भेजा और पत्र में लिखा कि वे मुग़ल-सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि उनके पिता को यदि स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाय तो

बीजापुर जाने के रास्ते में जो गढ़ी पड़ती है उसे वे सम्राट् को भेट कर देंगे। बीजापुर पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए मुग़ल-सम्राट् को उस गढ़ी की बड़ी आवश्यकता थी। शाहज़ादा मुरादबख़्श ने जो मध्य-भारत में बादशाह के प्रतिनिधि थे, उन्होंने शिवाजी को फ़ौरन ख़त लिखा और उसमें यह लिखा कि शाही ख़िलअ़त उनके लिए भेजी जा रही है। और उसी के साथ बीजापुर को भी हुक्म गया है कि शाहजी फ़ौरन छोड़ दिये जायँ। बीजापुर-दरबार को यह बात पसन्द तो नहीं आई, लेकिन 'ज़बरदस्त की राह सर पर'। शाहजी को छोड़ना पड़ा। शाहजी को देहली के दरबार में एक जगह देने का भी वादा किया गया। इसका मतलब यह था कि अब शाहजी की रक्षा का ज़िम्मेदार बीजापुर-दरबार था।

शिवाजी के सामने अब दूसरी समस्या थी। अगर वे मुग़ल-सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर लेते और गढ़ी दे देते तो हिन्दू-जाति के उत्थान का जो स्वप्न वे देख रहे थे वह स्वप्न ही रह जाता और अगर वे अधीनता न स्वीकार करते तो जो कहा था उसके लिए करते क्या। शिवाजी ने कूट-नीति से काम लिया। वे दिल्ली को बराबर ख़त भेजा करते थे और जो पहले लिखा था उसे दोहराया करते। इसी प्रकार बहलावे में रक्खा, गढ़ी नहीं दी और न बीजापुर के ख़िलाफ़ ही कोई काम किया। बीजापुर-दरबार भी डरता था कि शिवाजी के ख़िलाफ़ कुछ करने से मुग़ल-सम्राट् अप्रसन्न होंगे।

सन् १६५६ में बीजापुर के सुल्तान की मृत्यु हो गई। उस समय उनके लड़के की अवस्था केवल १९ वर्ष की थी। राज्य में अशान्ति फैल गई। औरंगज़ेब को अब बहाना मिल गया और शाहजहाँ को बीजापुर पर हमला करने के लिए राज़ी कर लिया। सन् १६५७ में बादशाही फ़ौजें सीमाप्रान्त को पारकर बीजापुर-राज्य में घुस गईं। शिवाजी चुप थे। चुप न रहते तो करते क्या? कहाँ शिवाजी के अनभ्यस्त थोड़े से आदमी और कहाँ शाही सेना! परन्तु शिवाजी अपने मौक़े की घात में थे और जैसे ही वह हाथ आया, हज़ार घोड़े ग़ायब करवा दिये और फिर पहाड़ियों पर छिप गये। औरङ्गज़ेब बहुत चिढ़ गया और हुक्म दिया कि शिवाजी के गाँव उजाड़ दिये जायँ और उनके जो आदमी मिलें वे सब मार डाले जायँ।

परन्तु क़िस्मत दूसरा नाटक तैयार कर रही थी। बरसात शुरू हो गई और उस समय मुग़ल-सेना शिवाजी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती थी। बरसात ख़त्म होते ही शाहजहाँ बीमार पड़ गये और उनकी मृत्यु की ख़बर फैल गई। औरङ्गज़ेब दिल्ली को रवाना हो गया और पराजित बीजापुर से सन्धि कर ली। इस वजह से औरङ्ग़ज़ेब को शिवाजी पर गुस्सा उतारने का मौक़ा नहीं मिल रहा था, यद्यपि दिल्ली और बीजापुर दोनों की निगाहों में वे काँटे की तरह खटक रहे थे।

सन् १६५९ में बीजापुर की राजमाता ने अपने सरदारों को इकट्ठा करके कहा कि आप लोगों में से कौन इसका प्रण करता है कि शिवाजी को परास्त करके पुराने अपमान को धोयेगा। राजमाता के बहनोई अफ़ज़लख़ाँ ने जो महान् बली, पराक्रमी और भीमकाय था, इस बात का बीड़ा उठाया। पर जब जोश ठंडा पड़ा तब अफ़ज़लख़ाँ को भय हुआ। अफ़ज़लख़ाँ को अब हर एक बात अपशकुन मालूम होती थी। उन्होंने राजमाता से परामर्श किया और यह सलाह ठहरी कि उन्हें छल और कपट से काम लेना चाहिए। सबके सामने तो वे बहुत लम्बी-चौड़ी बातें करते थे, लेकिन दिल बैठा जाता था। मस्जिद में दुआ माँगने गये। वहाँ का मुल्ला उन्हें देखकर चकित हो गया और कहा कि आपके तो सिर ही नहीं है। इससे अफ़ज़लख़ाँ की रही-सही हिम्मत भी जाती रही। अब चारों तरफ़ उनको मौत ही मुँह फैलाये दिखलाई देती थी। शेक्सपियर ने ख़ूब कहा है कि कायर मौत के पहले बहुत दफ़े मरते हैं और बहादुर एक ही दफ़े मौत का मज़ा चखता है। अफ़ज़लख़ाँ के महल में चौंसठ औरतें थीं और उन्होंने उन सबको दरिया में डुबवा दिया कि उनके मरने के बाद उन पर किसी की बुरी निगाह न पड़े। एक बड़ा पिंजड़ा बनवाया कि इसी में वे शिवाजी को पकड़कर लावेंगे। एक बहुत बड़ी फ़ौज लेकर वे रवाना हुए। रास्ते में जो मन्दिर पड़ता था वह खोद कर ज़मीन के बराबर कर दिया जाता था और मूर्तियाँ तोड़ दी जाती थीं। कई मुसलमान इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि शिवाजी ने कभी किसी मस्जिद को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया और जब कभी उनके हाथ में क़ुरान पड़ गई है तब उसकी वही इज़्ज़त की है जैसे उनके धर्म्म का कोई ग्रन्थ हो।

शिवाजी को सब पता था कि अफ़ज़लख़ाँ क्या संकल्प करके और किस दल-बल से आ रहे हैं। मराठे घबरा गये। शिवाजी भी चिंतित थे। फ़ौज के उच्चपदाधिकारी भी सलाह दे रहे थे कि जिस तरह हो, सन्धि कर ली जाय। शिवाजी इस पर राज़ी नहीं होते थे। उनका यह कहना था कि अगर एक दफ़े भी मुसलमानों से मुठभेड़ नहीं हुई तो स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त होगी। कहीं भी सन्धियों से स्वतन्त्रता नहीं मिली है? परन्तु कठिन प्रश्न यह था कि मुसलमानी सेना का कैसे मुक़ाबिला किया जाय। लोगों के दिल दहल रहे थे और हिम्मत साथ छोड़े हुए थी। शिवाजी की भी समझ में कुछ नहीं आता था। उन्होंने अपनी माता को बुला भेजा और उनसे पूछा कि उनकी क्या राय है। मुसलमानी फ़ौज का सामना किया जाय या दबकर सन्धि कर ली जाय। जीजाबाई संधि करने के पक्ष में नहीं थीं।

इधर यह संकल्प-विकल्प था, उधर अफ़ज़लख़ाँ को सफलता की पूर्ण आशा और लम्बी-चौड़ी बातें थीं, पर डर उस तरफ़ भी था। अफ़ज़लख़ाँ को राजमाता का उपदेश याद आ गया और छल-कपट से काम लेने का इरादा किया। शिवाजी के पास आदमी भेजा कि यदि वे बीजापुर की अधीनता स्वीकार कर लें तो वे उन्हें सुल्तान से क्षमा करवा देंगे और जितनी गढ़ियाँ और जितनी ज़मीन उनके पास है वह सब भी दिलवा देंगे। अफ़ज़लख़ाँ की निर्दयता और कठोरता के क़िस्से शिवाजी सुन ही चुके थे, इस वजह से उन्हें और भी शक हुआ। जो सन्धि का पैग़ाम लाये थे उनमें से एक ब्राह्मण भी था। शिवाजी ने इन सबका उचित आदर सत्कार किया और यह कहा कि इस प्रस्ताव पर वे सोच विचार कर उत्तर देंगे। वे लोग चले गये। रात को शिवाजी वेष बदल कर उसी ब्राह्मण के ख़ेमे में गये और स्पष्ट शब्दों में उससे अपना संदेह प्रकट कर दिया जो उनको सन्धि के विषय में था। ब्राह्मण तो पहले हिचका, परन्तु यह हिचक जाती रही जब शिवाजी ने मन्दिर गिरवाने और मूर्तियाँ तोड़वाने की याद दिलाई। बस, फिर क्या था! ज़बान खुल गई और उसने बतला दिया कि सन्धि का प्रस्ताव एक धोखे की टट्टी है। शिवाजी के लिए सिर्फ़ इतना इशारा काफ़ी था। उन्होंने ब्राह्मण से कहा कि वे अफ़ज़लख़ाँ से बराबर यही कहते रहें कि शिवाजी इतना डर गये हैं कि उनकी हिम्मत नहीं पड़ेगी कि वे ख़ाँ से मिलने आवें, अतएव ख़ाँ ही वहाँ उनसे मिलने क्यों न चलें। अफ़ज़लख़ाँ ख़ुद उस फंदे में फँस गये जिसमें शिवाजी को फाँसा चाहते थे। ब्राह्मण के मुँह से शिवाजी के डर जाने की बात सुन कर ख़ाँ फूले नहीं समाते थे। प्रशंसा ने किसकी आँखों पर पर्दे नहीं डाले हैं? ब्राह्मण के उपदेशानुसार सिंहगढ़ गढ़ी के नीचे पहाड़ पर खुले मैदान में शिवाजी और ख़ाँ के मिलने का इन्तिज़ाम होने लगा।

शिवाजी ने जङ्गल कटवाकर रास्ता साफ़ करवा दिया था, परन्तु सड़क के दोनों तरफ़ बाक़ी जंगल में शिवाजी के सिपाही छिपे हुए थे। जो दिन मिलने के लिए नियत था उस दिन शिवाजी ने तमाम रात भर भगवती का पूजन किया और सुबह पूजन समाप्त कर सफ़ेद कपड़े पहने (शिवाजी प्रायः सफ़ेद ही कपड़े पहनते थे)। चलने के समय बाघनख पहन लिया कि न मालूम क्या ज़रूरत पड़ जाय। माता ने आशीर्वाद दिया कि विजय हो, परन्तु नेत्र प्रवाहित हो गये। शब्द देश-प्रेम के थे और आँसू माँ की ममता के। शिवाजी एक सुसज्जित शामियाने के नीचे अफ़ज़लख़ाँ का स्वागत करने के लिए खड़े थे। एक तरफ़ शिष्टता थी और दूसरी तरफ़ उद्दंडता। आते ही ख़ाँ ने फ़बतियाँ कहनी शुरू कर दीं कि एक लुटेरे गँवार के पास इतना रुपया कि इस तरह शामियाने को सजावे। शिवाजी चुप रहे। ख़ैर, दोनों गले मिलने के लिए आगे बढ़े। कहाँ भीमकाय अफ़ज़लख़ाँ और कहाँ वामनरूपी शिवाजी। मिलने में अफ़ज़लख़ाँ की बग़ल के नीचे शिवाजी की गर्दन आगई। उन्होंने वही किया जो सोचे हुए थे: और इस तरह गर्दन दबाई कि शिवाजी को मालूम हुआ कि वे मूर्छित हो जायँगे। वे गर्दन छुटाने की ज्यों ज्यों कोशिश करते, त्यों त्यों वे उसे अधिक बल से दबाते जाते थे। आत्म-रक्षा के लिए कायर भी शूर बन जाते हैं। इसी दाँव-पेंच में शिवाजी का दाहना हाथ स्वतन्त्र हो गया और शिवाजी ने बाघनख से काम लिया, जिससे ख़ाँ की सब पीठ भर खुल गई। दर्द से पकड़ ढीली पड़ी और दूसरा हाथ भी आज़ाद हो गया और उससे उन्होंने अफ़ज़लख़ाँ पर कटार से वार किया। ख़ाँ घायल होकर गिर पड़े और दोनों तरफ़ के सिपाही आ गये और अच्छी मुठभेड़ हुई। सरदार के गिरते ही सैनिकों के हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं। उधरवालों को अब यह

फ़िक्र थी कि ख़ाँ की लाश उठा ले जायँ। परन्तु इसमें भी वे असफल हुए। एक ने ख़ाँ का सिर काटकर एक बहुत ऊँचे बाँस पर टाँग दिया। शिवाजी ने बिगुल बजा-कर विजय की घोषणा की और गढ़ी से तोपें छूटने लगीं। जो मुसलमानी फ़ौज के सरदार और सिपाही पकड़े गये उनको शिवाजी ने उचित मान के साथ रुपया देकर बीजा-पुर भेज दिया। अपनी तरफ़ के सिपाहियों को इनाम और जागीरें दीं। शिवाजी के हाथ चार हज़ार घोड़े, पैंसठ हाथी और बारह सौ ऊँट आये और जो नक़द रुपया और सामान मिला वह इनके अलावा था।

बीजापुरवाले अब इतना भयभीत हो गये थे कि वे डर रहे थे कि कहीं शिवाजी चढ़ाई कर बीजापुर-राज्य पर पूर्ण अधिकार न कर लें। यह केवल भय था। यह सम्भव कैसे था? जिस राज्य ने मुग़ल-सेना का सामना किया था उसके सामने शिवाजी की फ़ौज क्या थी? अब बीजापुर-दरबार ने शिवाजी के पिता शाहजी को सन्धि करने के पूर्ण अधिकार दे करके भेजा। जब शिवाजी ने सुना कि पिता जी आ रहे हैं तब आगे जाकर मिले और जो सिर बीजापुर के सुल्तान के सामने सलाम करने में न झुका था वह पिता के चरणों पर था। उनकी पालकी के साथ शिवाजी पैदल थे और हाथ जोड़कर और सिर नीचा कर हर एक बात का जवाब देते थे। शाहजी भी चकित थे कि जिस पुत्र को अपुत्र समझते थे वह ऐसा सुपुत्र हुआ कि उससे सन्धि करने के लिए आये हैं। शिवाजी क्षमा माँग रहे थे कि उनके कामों से उन्हें जो दुख हुआ हो उसके लिए क्षमा कर दें।

सन्धि हो गई। बीजापुर ने शिवाजी की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और जितनी गढ़ियाँ और ज़मीन उनके पास थीं वह उन्हीं के पास रहीं। शाहजी और शिवाजी की यही अन्तिम भेट थी। इसके थोड़े ही दिनों के बाद शाहजी के शिकार खेलने में चोट लग गई और उसी से उनकी मृत्यु हो गई।

(अगले अङ्क में समाप्त)

कवि

लेखक, श्रीयुत वन्दे अली फ़ातमी

ओ सौन्दर्य-उपासक?
उठती जिधर दृष्टि तब तकते रहते हो तुम इकटक,
जाने क्या-क्या देखा करते तुम ओ गुनगुन-गायक?
रूप, कुरूप, अरूप सकल हैं तव 'सुन्दर' के रूपक,
सुरुचि कहे या कुरुचि कहे या अरुचि इसे निर्णायक।
नाटक के तो पात्र-पात्रियों का घूरना न पातक,
जगन्नाट्य के सूत्रधार के पर, क्या रे तुम दर्शक?
सुख को अमर बनाते हो तुम और दुःख के नाशक,
पतित-शरीर कहूँ तुमको या आत्मा के उन्नायक?
पाप-पुण्य को तुम निकालते अहो सत्य के साधक?
विश्व-काव्य के अशिव अंग औ' मानो हैं ये क्षेपक।

बैंकिंग तथा रुपये का लेन-देन

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

सन् १९३८ के प्रवेश के समय भारत की रुपये के बाज़ार तथा बैंकिंग की परिस्थिति पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इसी दृष्टि से लेखक महोदय ने इस लेख को लिखा है। आशा है, आर्थिक विषय के प्रेमियों का यह लेख रुचिकर प्रतीत होगा।

रुपये के बाज़ार का रुख़ समझने के लिए यह आवश्यक है कि बैंकों के विषय में कुछ जानकारी हासिल कर ली जाय। अधिक विस्तार से इनका ज़िक्र करना संभव नहीं है, पर संक्षेप में कुछ बतला देना ज़रूरी है। इस समय भारत में सबसे प्रमुख बैङ्क 'रिज़र्व बैङ्क आफ़ इण्डिया' है। १९३४ के 'रिज़र्व बैंक ऐक्ट' के अनुसार इसकी रचना हुई थी तथा इसका मुख्य कार्य बैंक-ऐक्ट में वर्णित कार्यों के सिवा गवर्नर-जेनरल-इन-कौंसिल से 'मुद्रा-चलन' का कार्य अपने हाथ में लेना था। इस समय इसे मुख्यतः निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार और कर रहा है—

(१) बिना सूद के रुपया जमा करना।

(२) भारत में ही चालू तथा भारत में ही वाजिबुल अदा हुण्डियों को या 'विनिमय के बिलों' को ख़रीदना, बेचना, भुनाना इत्यादि। पर ये ऐसी ही माननीय संस्थाओं के होने चाहिए जो औद्योगिक या व्यापारिक हों तथा जिन पर सरकार-द्वारा स्वीकृत बैंकों में से दो या अधिक के ज़ामिनी हस्ताक्षर हों तथा यदि कृषि को रुपया देने के लिए हों तो प्रान्तीय कोआपरेटिव बैङ्क का हस्ताक्षर हो।

(३) स्टाक व अचल-सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य चल सम्पत्ति की ज़मानत, स्वर्णमुद्रा, सोना या ऐसी ही अन्य उचित ज़मानत पर ऋण देना या रुपया पेशगी देना—पर ऐसी रक़म को अधिक से अधिक ९० दिन के भीतर चुका देना होगा।

(४) निश्चित बैङ्कों के लिए या उनसे कम से कम एक लाख रुपये के स्टर्लिङ्ग ख़रीदना या बेचना।

(५) सपरिषद् गवर्नर-जेनरल या प्रान्तीय सरकारों को अधिक से अधिक तीन महीने के भीतर वापस होने के वादे पर रुपया पेशगी देना।

(६) ग्रेटब्रिटेन की १० वर्ष के भीतर वाजिबुल अदा होनेवाली सिक्यूरिटी ख़रीदना-बेचना।

(७) सोने-चाँदी की ख़रीद-बिक्री, 'बिल्स आव एक्सचेञ्ज' आदि की ख़रीद-बिक्री के लिए सपरिषद् सेक्रेटरी आव स्टेट, सपरिषद् गवर्नर-जेनरल अथवा प्रान्तीय सरकारों की एजेण्टी करना, रुपया वसूल करना इत्यादि।

(८) उपरिलिखित सरकारों की ओर से उनका पावना वसूल करना, विनिमय का कार्य करना, उनके ऋण का प्रबन्ध करना इत्यादि।

(९) भारत-सरकार अथवा प्रान्तीय सरकार की सिक्यूरिटी की ख़रीद-बिक्री करना।

(१०) बैंकिंग विभाग से पृथक् एक नोट चालू करने का विभाग करना, क्योंकि नोट चालू करने का अधिकार एकमात्र इसी को है।

(११) अपनी प्रमुख शाखाओं-द्वारा किसी व्यक्ति के लिए लन्दन में अदायगी के लिए स्टर्लिंग ख़रीदना-बेचना। पर इस स्टर्लिंग की दर अधिक से अधिक १८ शि० ६ $\frac{३}{१६}$ पें० तथा कम से कम १७ शि० $\frac{४९}{६४}$ पें० होनी चाहिए। पर कोई भी व्यक्ति १०,००० पौंड से अधिक क़ीमत का स्टर्लिंग न तो ख़रीद सकता है, न बेच सकता है।

ऊपर जिस प्रकार के 'शेडूल्ड बैंक' का ज़िक्र है उसके लिए यह आवश्यक है कि अपनी माँग का ५ प्रतिशत तथा निश्चित समय पर वाजिब होनेवाली पावने की रक़म का २ प्रतिशत सदैव रिज़र्व बैंक में जमा रक्खे। इन पर सूद न मिलेगा। रिज़र्व बैंक को भारत में सरकारी बैंक-रेट भी प्रकाशित करना होगा।

ये तो इस बैंक के प्रमुख कार्य हुए। इसकी चुकती पूँजी ५ करोड़ रुपये की है। १००) का एक शेयर है, जिसको केवल भारत-निवासी, ब्रिटिश सम्राट् की भारतीय प्रजा, देशी रियासत की प्रजा या उन देशों के व्यक्ति ख़रीद सकते थे जो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हों तथा ग्रेट

ब्रिटेन के या ऐसे उपनिवेशों के वाशिन्दे हों जिन्होंने सम्राट् की भारतीय प्रजा के प्रति कोई पक्षपात-पूर्ण व्यवहार न किया हो तथा १९१३ के क़ानून के अनुसार संघटित बैंक या १९१२ के क़ानून के अनुसार संघटित कोआपरेटिव सोसायटियाँ या पार्लियामेंट या ब्रिटिश उपनिवेशों के क़ानून के अनुसार (जिनके देश में भारतीयों के विरुद्ध कुछ क़ानून न हो) बनी कम्पनी ख़रीद सकती थी। कहना न होगा कि जिस दिन शेयर चालू किये गये उसी दिन ख़रीद के लिए भगदड़ मच गई थी। पर हर एक प्रान्त का अलग हिस्सा बाँट दिया गया था। बम्बई को १५० लाख, कलकत्ते को १४५ लाख, दिल्ली को ११५ लाख, मदरास को ७० लाख तथा रंगून को ३० लाख के शेयर मिले। ५ शेयर लेनेवाला वोट दे सकता है और इसी प्रकार के वोटरों से ८ डाइरेक्टर चुने जाते हैं। ४ डाइरेक्टर सपरिषद् गवर्नर-जेनरल नामज़द करते हैं। तथा एक सरकारी डाइरेक्टर नामज़द करता है और इस बोर्ड की सिफ़ारिश को ध्यान में रखते हुए एक गवर्नर तथा दो डिप्टी गवर्नर नियुक्त करता है। प्रान्तीय बोर्डों को छोड़कर यही केन्द्रीय बोर्ड बनता है, जो इस बैंक का सञ्चालन करता है। प्रथम गवर्नर—डिप्टी गवर्नर सरकारी हैं। इस प्रकार इस बैंक की रचना करते समय सरकार ने यह ध्यान रक्खा है कि उसका बोर्ड एक प्रकार से पूर्णतः उसके (सरकार के) नियंत्रण में रहे। बैंक अधिक से अधिक ५ प्रतिशत तक 'डिवेडेण्ड' दे सकता है और इसके ऊपर की बचत का एक अंश सपरिषद् गवर्नर-जेनरल को उसे देना होगा। पिछले वर्ष उसका डिविडेण्ड ३½ प्रतिशत था। इस प्रकार यह बैंक इम्पीरियल बैंक का अधिकांश तथा भारत-सरकार का प्रायः सभी आर्थिक कार्य-सञ्चालन कर रहा है। इसके कार्यों की तालिका परिशिष्ट में दी गई है।

अन्य बैंक

रिज़र्व बैंक के बाद प्रधान स्थान 'इम्पीरियल बैंक आव इण्डिया' का है। सन् १८०६ में क्रमशः बंगाल, सन् १८४० में बम्बई और सन् १८४३ में मदरास के प्रेसीडेन्सी बैंक स्थापित हुए थे। इन्हीं को मिलाकर सन् १९२० में इस इम्पीरियल बैंक की रचना हुई और २१ जनवरी सन् १९२१ को इसका जन्म हुआ। इन तीनों बैंकों की ५००) के पूर्ण चुकता शेयरों की कुल पूँजी मिलाकर इसकी पूँजी आज ३,७५,००,०००) है। इसके अलावा सन् १९२० के क़ानून के अनुसार ५००) मूल्य के ७,५०,००,००० रुपये की पूँजी चालू की गई, जिसमें केवल १२५) फ़ी शेयर लिया गया है, यानी कुल पूँजी आज ११,२५,००,०००) है, जिसमें से ५,६२,५०,०००) चुकता है। हर एक प्रान्त के लिए इसके प्रबन्ध के लिए अलग अलग बोर्ड हैं। इन बोर्डों से एक प्रतिनिधि चुनकर तथा इनके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सेक्रेटरी, केन्द्रीय बोर्ड-द्वारा नियुक्त डाइरेक्टर तथा डिप्टी डाइरेक्टर तथा सरकार-द्वारा नामज़द दो ग़ैर सरकारी व्यक्तियों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक का संचालक केन्द्रीय बोर्ड बनता है। इस बैंक का काम अधिकतर रिज़र्व बैंक से मिलता-जुलता है तथा जो काम रिज़र्व बैंक बड़े दायरे में करता है वही काम इम्पीरियल बैंक छोटे दायरे में करता है। इसका कार्य-क्षेत्र अब डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, कोर्ट आफ़ वार्ड्स तथा कम्पनियों व बैंकों के लेन-देन में सीमित है। यह सूद पर रुपया भी जमा करता है और अब भी अनेक स्थानों में सरकारी ख़ज़ाना रखने का काम करता है। रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद इम्पीरियल बैंक ने उससे यह ठीका कर लिया है कि १५ वर्ष तक (दोनों ओर से ५ वर्ष का नोटिस देकर यह ठीका टूट सकता है) अपनी हर एक शाखाओं-द्वारा वह उसकी 'सोल एजेन्सी' करेगा, जिसके लिए प्रथम दस वर्ष तक रिज़र्व बैंक उसे २५० करोड़ रुपये तक के काम के लिए एक प्रतिशत का एक-बटा सोलहवाँ हिस्सा तथा उसके ऊपर ₁/₃₂ अंश कमीशन देगा। पिछले ५ वर्षों के लिए एक विशेषज्ञ समिति-द्वारा जाँच कराकर ऐसे कार्यों में बैंक का जो वास्तविक व्यय होगा वही दिया जायगा। १५ वर्ष की मीआद पूरी हो जाने पर मीआद बढ़ाई भी जा सकती है। रिज़र्व बैंक की स्थापना के समय तक इम्पीरियल बैंक की जितनी शाखायें थीं उनको वह १५ वर्ष तक बिना तोड़े हुए ज्यों का त्यों रहने देगा, इसलिए रिज़र्व बैंक १५ वर्ष में ५ वर्ष की हर एक अवधि के लिए उसे क्रमशः ९,६ तथा ४ लाख रुपये देगा। पर इसके एवज़ में इम्पीरियल बैंक भी अपनी वर्तमान शाखाओं में से किसी को खोलने-बन्द करने के पहले रिज़र्व बैंक की अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य है। आज इसकी २०० से अधिक शाखायें भारत, बर्मा, सीलोन में फैली हुई हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका सञ्चालन पूर्णतः अँगरेज़ों के हाथों में होते हुए भी उसने भारत की काफ़ी सेवा की है तथा भारतीय बैंकिंग को उसके द्वारा विशेष लाभ पहुँचा है। बैंक के ठोसपन के विषय में तो कोई सन्देह है ही नहीं, न हो सकता है!

इम्पीरियल बैंक के बाद सबसे बड़ा भारतीय बैंक जो पूर्णतः भारतीय प्रबन्ध व सञ्चालन में है, 'सेण्ट्रल बैंक आव इण्डिया' है। सन् १९११ में (सर) सोराबजी पोचखानवाला (स्वर्गीय) ने इसकी स्थापना की थी और आज यह उन्नति के शिखर पर है। इसकी अद्भुत प्रगति का हाल नीचे दिये अङ्कों से मालूम हो जायगा—

	१९११—१२	१९३१—३६
	रुपये	रुपये
चालू पूँजी	३०,००,०००	३,३६,२६,४००
चुकता पूँजी	१,५०,००,०००	१,६८,१३,२००
रिज़र्व	१,००,००,०००	७० ००,०००
जमा	८३,५६,०००	२५,००,००,०००

ज्वायंट स्टाक बैंकों में सबसे अधिक चुकता पूँजी इसी बैंक की है और इसकी शक्ति का प्रधान कारण सर सोराबजी की अद्भुत् व्यापारिक क्षमता के अतिरिक्त इसी के साथ 'ताता इण्डस्ट्रियल बैंक' के कारोबार का शामिल हो जाना है। अब इसने लन्दन में प्रथम 'भारतीय एक्सचेंज बैंक' भी खोल दिया है।

इसके बाद प्रसिद्ध बैंक 'इलाहाबाद बैंक' है, जो सबसे पुराना ज्वायंट स्टॉक बैंक है तथा जिसकी स्थापना सन् १८६५ में हुई थी। इसका प्रधान कार्यालय इलाहाबाद से उठकर कलकत्ता चला गया है। 'बैंक आव इण्डिया' सन् १९०६ में स्थापित हुआ था तथा बड़ोदा के महाराज के उद्योग से 'बैंक आव बड़ोदा' की स्थापना हुई थी। इस प्रकार भारत के ५ प्रधान बैंक—'बिग फ़ाइव'—आज बहुत ही उन्नति पर हैं। ये पाँचों, रिज़र्व बैंक को छोड़कर, इम्पीरियल, सेण्ट्रल, इलाहाबाद, बैंक आव बंगाल तथा 'बैंक आव बड़ोदा' हैं। इनके बाद छठा नम्बर 'पंजाब नेशनल बैंक' का है, जिसकी इस समय ४१ शाखायें भारत में फैली हुई हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई उल्लेखनीय बैंक हैं, पर स्थानाभाव से उनका यहाँ ज़िक्र करना उचित नहीं है।

इनके अतिरिक्त भारत में कई प्रमुख 'एक्सचेंज बैंक' भी हैं, जो मुख्यतः विलायती हुण्डियों के लेन-देन का काम करते हैं। इनमें सबसे पुराना 'चार्टर्ड बैंक आव इण्डिया, आस्ट्रेलिया एण्ड चाइना' है। यह सन १८५७ में स्थापित हुआ था। इसके अतिरिक्त सन् १८६३ में 'नेशनल बैंक आव इण्डिया', सन् १८९३ में 'मर्कैंटाइल बैंक आव इण्डिया', सन् १९१० में 'ईस्टर्न बैंक' तथा सन १९२१ में 'पी० एण्ड० ओ० बैंकिंग कारपोरेशन' आदि प्रमुख एक्सचेंज-बैंक स्थापित हुए। इनके अतिरिक्त लॉयड (लन्दन) बहुत बड़ा काम कर रहा है तथा 'हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन' (१८६७) तथा 'नेशनल सिटी बैंक आव न्यूयार्क' का स्थान भी साधारण नहीं है।

बैंकों के कार्य और लाभ – पिछला वर्ष भारतीय बैंकों के लिए बुरा नहीं था। सन् १९३६ में विश्व का व्यापार फिर चमकने लगा था। फलतः इन बैंकों को भी लाभ हुआ। उद्योग-धन्धों के लिए रुपये की माँग बढ़ गई थी तथा बैंकों को लेन-देन काफ़ी करना पड़ा। रुपये की औसत दर भी ३ प्रतिशत पर बनी रही और इस माँग का प्रभाव 'रिज़र्व बैंक' के नक़द-कोष पर भी पड़ा। सन् १९३५ के दिसम्बर में जहाँ उसके पास २१½ करोड़ रुपया नक़द था, वहाँ १९३६ के दिसम्बर में ११⅓ करोड़ ही रह गया। ३१ दिसम्बर १९३६ को साल तमाम करते समय इस बैंक को ५३,४२,१००) का लाभ रहा। सभी बैंकों के शेयरों का भाव चढ़ा ही रहा और उनके ख़रीदारों को लाभ ही रहा। ज़्यादा ख़रीदारों ने काफ़ी काम किया, फलतः कुल मिलाकर पहली अप्रैल सन् १९३६ को शेयर होल्डरों की संख्या जहाँ ९२,०४७ थी, वहाँ ३१ दिसम्बर १९३६ को ६६,२७३ हो गई। 'इम्पीरियल बैंक' के पूर्ण चुकता के ५००) के शेयर का भाव जिनका शुरू साल में ५८०) का भाव था, अन्त में १,५८६) हो गया। 'सेण्ट्रल बैंक' तथा 'पंजाब नेशनल बैंक' के शेयर अवश्य क्रमशः ३७¼ तथा १२५) से गिरकर ३५½ तथा ११०) हो गये। रिज़र्व बैंक का १००) का शेयर १३०) पर था, जो बढ़कर १३९) हो गया। यह व्यापारिक अभ्युदय सन् १९३७ में भी पूर्णतः स्पष्ट है, अतः १९३७-३८ में भी भाव बढ़ने की ही सम्भावना है। पिछले वर्ष रुपये

का लेन-देन कितना काफ़ी था, यह इसी से पता लग जायगा कि केवल कलकत्ता तथा बम्बई में क्रमशः ८,६२,५७,७६,०००) तथा ७,२१,२६,५२,०००) के चेकों का भुगतान हुआ। दिसम्बर सन् १९३६ में 'रिजर्व बैंक' के पास ९·५५ करोड़ रुपया सरकार का तथा २५·३५ करोड़ बैंकों का जमा था। इम्पीरियल बैंक के पास भी काफ़ी रुपया जमा था। बैंकों की क्षमता का अन्दाज़ लगाने के लिए इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि शेडूल्ड बैंकों के पास केवल सरकारी हुण्डी ही ५०·६८ करोड़ रुपये की थी। इससे बैंकों की क्षमता का अन्दाज़ लग जाता है। रिज़र्व बैंक ने सन् १९३६ की अपनी रिपोर्ट में बैंकों के मुनाफ़े तथा सापेक्षिक अधिक माँग का अच्छा ज़िक्र किया है। लेख समाप्त करने के पहले यहाँ पिछले दस वर्षों में बैंकों की सूद की दर का उतार-चढ़ाव भी बतला देना उचित होगा। इससे यह पता चलेगा कि रुपये का बाज़ार कितना ढीला रहा। उद्योग-धन्धों की कमी के कारण रुपये की माँग कम, अतः रुपया ज़्यादा जमा होने लगा, फलतः सूद की दर गिर गई।

सन्	प्रतिशत दर का वार्षिक औसत
१९२७.	५·७.
१९२८	६·२.
१९२९	६·३.
१९२३	५·९.
१९३१	७.
१९३२	·५.
१९३३	३·५.
१९३४	३·५.
१९३५	३·५.
१९३६.	३.

इस गिरती हुई दर से रुपया जमा करनेवालों को हानि भले ही हो, पर रुपया जमा रखने से देश का कल्याण कभी नहीं होता। अतः रुपये का 'द्रवित' रहना ही ठीक है।

रुपये का बाज़ार

सन् १९३७ में भी रुपये की दर उपरिलिखित रही और इसी परिस्थिति का लाभ उठाकर भारत-सरकार ने प्रान्तीय सरकारों तथा अन्य संस्थाओं ने काफ़ी आसानी से ऋण प्राप्त किया। सन् १९३६ में जो थोड़ा-बहुत औद्योगिक विकास हुआ उससे भी लाभ न हुआ। ट्रेज़री बिल की दर भी शुरू साल के १ प्रतिशत से घटकर अब ६ आना ११ पाई तक आ गई है। फिर भी भारत-सरकार ने सन् १९३६ में ७९ करोड़ रुपये का ट्रेज़री बिल बेचा था। पर सन् १९३४ में तो १०३·८० करोड़ रुपये की बिक्री हुई थी। हाँ, विनिमय-एक्सचेञ्ज, का बाज़ार, स्वर्ण-निर्यात तथा विदेशी व्यापार में सन् १९३५ की तुलना में तिगुने भारतीय लाभ के कारण दृढ़ रहा। सन् १९३५ में २४ करोड़ के मुक़ाबिले में सन् १९३६ में ६०·६३ करोड़ का रोज़गार हुआ! सन् १९३५ में ४०·६३ करोड़ का सोना विदेश गया, सन् १९३६ में ३३·१६ करोड़ का ही गया। पर विदेशी व्यापार बढ़ा था।

विदेशी व्यापार भारतीय पक्ष में होने के कारण स्टर्लिंग की ख़रीद भी ४२,६६,९० लाख पौंड की हुई। विनिमय की इस शक्ति के कारण ही भारत सरकार ने अपना सब सालाना ब्रिटिश पावना चुका दिया। इसके अलावा १९३६-३८ में वाजिब होनेवाले ५½ प्रतिशत के १,६८,५८,००० पौंड के 'इण्डिया पौंड' का भुगतान कर दिया और इसके लिए कोई ऋण भी नहीं लिया। लन्दन के भारतीय कोष में भी ३७,५०,००० पौंड बढ़ गया।

सन् १९३८ में प्रवेश के समय ताज़े से ताज़े प्राप्त आँकड़ों-द्वारा अपने देश की 'रुपये' की मुद्रा की वास्तविक परिस्थिति का चित्र देख लेना हर एक देश-हितैषी के लिए आवश्यक है। इसी लिए हमने यहाँ कुछ विस्तार के साथ उसका दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की है।

श्रेष्ठ वैज्ञानिक लार्ड रदरफ़ोर्ड

लेखक, श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, विशारद

हम जीवित होते हुए भी मृतप्राय हैं, अपना अस्तित्व रखते हुए भी अस्थिर हैं, विभिन्न वस्तुओं पर अधिकार जमाते हुए भी आधिपत्य-हीन हैं। जीवन का सार न आज तक किसी ने जाना, न जान सकेगा। जो आया है सो जायगा। गगनस्पर्शी प्रासादों में रहनेवाले राजाओं से लेकर पृथ्वीतल चुम्बन करनेवाली झोपड़ियों के दरिद्रदेव तक काल का चक्र बिना किसी भेदभाव के चलता है और उनमें साम्य स्थापित करता है। बड़े बड़े ऐश्वर्यवानों का ऐश्वर्य तथा मर्मज्ञों का ज्ञान उनको इससे मुक्त नहीं कर सकता। आश्चर्य है कि तत्त्वों का विश्लेषण कर उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म कण का पता लगानेवाले वैज्ञानिक स्वयं अपना विश्लेषण कर अपना ही हल न जान सके! लार्ड रदरफ़ोर्ड की मृत्यु ने एक बार फिर मनुष्य की शक्तिहीनता का परिचय दे दिया। रदरफ़ोर्ड संसार के एक बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने अणु का विश्लेषण कर उसका स्वरूप निर्धारित किया था। उनके समान प्रयोग करने में दक्ष, नवीन यन्त्र बनाने में कुशल तथा वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन देने में विख्यात सम्भवतः कोई विरला ही होगा। परन्तु उन्होंने भी संसार की असारता का ही प्रमाण दिया।

लार्ड रदरफ़ोर्ड की मृत्यु से भारतवर्ष को विशेष खेद हुआ है। वे यहाँ की वैज्ञानिक कांग्रेस के जयन्ती-अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे। काशी-विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण करना भी उन्होंने स्वीकार कर लिया था। वहाँ उनको साइंस के डाक्टर की उपाधि देकर सम्मानित करने का आयोजन भी हो रहा था। परन्तु यह सब होता ही रहा और वे चल बसे।

अर्नेस्ट रदरफ़ोर्ड का जन्म न्यूज़ीलैंड के नेल्सन नामक शहर में ३० अगस्त सन् १८७१ को हुआ था। उनके पिता एक साधारण स्थिति के किसान थे, जिनके ग्यारह बच्चे थे। रदरफ़ोर्ड अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। घर पर ही प्रारम्भिक शिक्षा पाकर वे नेल्सन-कालेज तथा कैंटरबरी कालेज क्राइस्ट चर्च में पढ़ते रहे। न्यूज़ीलैंड-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हो जाने पर उन्होंने वहाँ 'बेतार के तार' के सम्बन्ध में अन्वेषण करना आरम्भ किया। सन् १८९५ में उनको एक छात्रवृत्ति मिली, जिससे उनके लिए इँग्लैंड जाना सुगम हो गया। वहाँ कवेंडिश प्रयोगशाला में रहकर उन्होंने विश्व-विख्यात वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन की देख-रेख में अन्वेषण-कार्य आरम्भ किया। टामसन साहब ने अपने शिष्य की प्रतिभा तथा लगन को देखकर जान लिया कि अवश्य ही रदरफ़ोर्ड एक बड़ा वैज्ञानिक होगा।

सन् १८९८ में वे कनाडा के मैकगिल-विश्वविद्यालय के मैकडानल्ड प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। वहाँ भी उन्होंने अपना अनुसन्धान-कार्य पूर्ववत् जारी रक्खा। अभी तक उन्होंने गैसों में विद्युत्-शक्ति के प्रवेश तथा इलेक्ट्रन के सम्बन्ध में खोज की थी। परन्तु जब मैडेम क्युरी और उनके पति ने अविरत परिश्रम कर 'रेडियम' नाम के एक नये तत्त्व को ढूँढ़ निकाला तब वैज्ञानिकों के लिए एक नवीन मार्ग खुला। रदरफ़ोर्ड ने प्रोफ़ेसर साडी के साथ इस विषय का अन्वेषण करना आरम्भ किया। सन् १९०३ में उन्होंने इस विचित्र तत्त्व के विषय में एक नई व्याख्या उपस्थित की, जिसने औरों की समस्त विपरीत कल्पनाओं का अन्त कर दिया। इस खोज के लिए रदरफ़ोर्ड को सन् १९०८ में विख्यात नोबेल-पुरस्कार मिला। इसी वर्ष उनको ब्रीसा-पुरस्कार भी मिला। २९ वर्ष की अवस्था में उन्होंने क्राइस्टचर्चनिवासिनी मेरी न्यूटन से विवाह कर लिया और सन् १९०७ में कनाडा से इँग्लैंड लौट आये। वहाँ वे मैनचेस्टर-विश्वविद्यालय में प्रकृति-विद्या के 'लैङ्गवर्दी-प्रोफ़ेसर' नियुक्त हुए। उनके आने से उस विश्वविद्यालय की इतनी ख्याति बढ़ी कि वहाँ दूर देशों के वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए आने लगे। डेन्मार्क के धुरंधर वैज्ञानिक सर नील्सबोर ने उन्हीं के साथ वहाँ अनुसन्धान करके अणु का स्वरूप निर्धारित किया। बड़े परिश्रम के बाद उन दोनों ने यह निश्चय किया कि अणु में 'पाज़िटिव इलेक्ट्रीसिटी' का कण मध्य में स्थित है और 'निगेटिव इलेक्ट्रीसिटी' के कण इस न्यूक्लियस के चारों ओर जैसे दायरे में बड़े वेग से घूमते हैं। यह ठीक





[लार्ड रदरफ़ोड]

उसी प्रकार है जैसे मध्य में स्थित सूर्य के चारों ओर ग्रह घूमा करते हैं। इस खोज से रदरफ़ोर्ड की और भी अधिक ख्याति हुई।

सन् १९१९ में जब सर जे० जे० टामसन ने अवकाश ग्रहण किया तब उनके स्थान पर रदरफ़ोर्ड कवेंडिश प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष नियुक्त हुए। अब उनका अनुसन्धान-कार्य और भी विस्तृत रूप से होने लगा। उनको नये नये प्रयोग करने का चसका लगा हुआ था, और ऐसे प्रयोगों के लिए वे बहुत सोच विचार कर नये नये यन्त्र बनाते थे। इँग्लेंड के वैज्ञानिक उनको अपना प्रधान मानते थे। अमरीका, डेन्मार्क, रूस, फ्रांस, जर्मनी आदि के बहुत-से वैज्ञानिक भी उनसे सहायता लेते तथा साथ कार्य करने के लिए उनके पास आते थे। वे जब कभी किसी नये वैज्ञानिक को मिलते तब उसे प्रोत्साहन देते और आवश्यकता पड़ने पर मानसिक तथा आर्थिक सहायता भी करते। एक बार रूस के कैपिज़ा नामक वैज्ञानिक उनसे मिले। बातों बातों में कैपिज़ा ने एक विस्तृत चिम्बक-क्षेत्र के बनाने की योजना बताई। उनको इनकी बात पसन्द आगई और कैपिज़ा से कहा कि हमारे पास रहकर इस विषय का अनुसन्धान करो। हम सब प्रकार की सहायता करेंगे। कैपिज़ा के लिए उन्होंने एक नई प्रयोगशाला बनवा दी, जहाँ वे कई वर्ष तक अनुसन्धान करते रहे। परन्तु रूस की सरकार ने अपने देश के वैज्ञानिक को इँग्लेंड में रहने की आज्ञा नहीं दी, जिससे कैपिज़ा रूस लौट गये। रदरफ़ोर्ड ने कवेंडिश-प्रयोगशाला को बढ़ाने का भी प्रयत्न किया। इसके लिए रुपये की आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपील निकालने का विचार किया। परन्तु एक दिन प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन से भेंट हो गई और वे प्रधान मन्त्री को प्रयोगशाला में लिवा लाये। दूसरे ही दिन सर हेनरी आस्टिन के यहाँ से ढाई लाख का चेक आ गिरा। इस प्रकार रुपया इकट्ठाकर उन्होंने प्रयोगशाला की इमारत बढ़वाई और उसमें नये नये यन्त्रों को लगवाया। अन्त में वे एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिवर्तन करने के उपाय की खोज में लगे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अमूल्य बातें लिखी हैं, जो आगे अनुसन्धान में बहुत लाभप्रद सिद्ध होंगी और सम्भवतः पुराने वैज्ञानिकों के सोना बनाने के ध्येय को पूरा करें।



[सर जे० जे० टामसन]

रदरफ़ोर्ड को निःस्वार्थ भाव से विज्ञान की सेवा करने के लिए अनेक उपाधियाँ तथा पुरस्कार मिले। सन् १९१४ में 'सर' की उपाधि, सन् १९२२ में 'कापले पदक', सन् १९२४ में 'फ्रैंकलिन-पदक' तथा सन् १९२५ में 'आर्डर आफ़ मैरिट' मिला। सन् १९३१ में वे 'लार्ड रदरफ़ोर्ड आफ़ नेल्सन' हुए। इसके अतिरिक्त अनेक संस्थाओं ने उनको पुरस्कार तथा उपाधियाँ देकर सम्मानित किया।

रदरफ़ोर्ड में दो बड़ी विशेषतायें थीं। पहली निरन्तर नये नये प्रयोग करते रहने की धुन और दूसरी नेतृत्व ग्रहण करने की शक्ति। नवीन प्रयोगों के लिए वे अपने आवश्यकतानुसार सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्र बना लेते थे। उसी प्रकार के बहुत-से वैज्ञानिकों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया। फ्रांसीसी वैज्ञानिक डी बोगली ने लिखा है कि "उन वैज्ञानिकों की नामावली जिन्होंने लार्ड रदरफ़ोर्ड से सहायता लेकर उनके आदेशानुसार कार्य किया है, बहुत लम्बी है, जिनमें से अधिकांश आज विश्व-विख्यात हैं।" संसार के बड़े बड़े वैज्ञानिकों का गुरु होना ही लार्ड रदरफ़ोर्ड की प्रतिभा तथा विद्वत्ता का स्पष्ट प्रमाण है। गत आक्टोबर में उनकी मृत्यु हो जाने से संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र का एक महान् व्यक्ति उठ गया है। प्रकाण्ड वैज्ञानिक होने के अतिरिक्त न्यूज़ीलेंडवासी उनको अपना सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानते थे। उनकी मृत्यु से रिक्त हुए स्थान की पूर्ति होना सहज नहीं है। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।

ग्राम

लेखक, श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह

प्रकृति सुन्दरी की गोदी में
खेलरहा तू शिशु-सा कौन ?
कोलाहलमय जग को हरदम,
चकित देखता है तू मौन ॥
जग के भोलेपन का प्रतिनिधि,
सहज सरलता का आख्यान।
विमल स्रोत मानव-जीवन का,
तू है विधि का करुण-विधान ॥

छिपा मही के मृदु अञ्चल में,
जग का मूर्तिमान अनुराग।
तुझसे ही सीखता जगत है,
औरों के हित करना त्याग ॥
भोली ललनाओं से लालित,
विश्व-पुष्प का पुण्य पराग।
कृषकों के श्रम-जल से सिंचित
जग का छोटा-सा है बाग़ ॥

लघु होकर भी तू विशाल है,
है छू गया न तुझे ग़रूर।
जग-सर का पङ्कज है पर तू
मलिन पङ्क से रहता दूर ॥
भव्य-भाव-भाण्डार अलौकिक
सत्यशीलता का आगार।
पारावार प्रेम का तू है
दुःख-दीनता का आधार ॥

होकर भी असभ्य तू ही है,
विश्व-सभ्यता का आधार!
स्वावलम्ब की समुचित शिक्षा,
पाता तुझसे है संसार ॥
होता है अङ्कुरित सर्वदा,
खेतों में ही तेरा ज्ञान।
भू-शय्या पर तू करता है,
शीतल सोम-सुधा का पान ॥

सरल बालकों का क्रीड़ास्थल,
जगती के कृषकों का प्राण।
करता है इस विपुल विश्व का,
तू ही सदा क्षुधा से त्राण ॥
ईश्वर से डरता है हरदम,
होकर भी तू सच्चा शूर।
दीन-हीन है तो भी रहता,
है तू लोभ-क्षोभ से दूर ॥

मानवता का प्रेम-निकेतन,
आदि-सभ्यता का इतिहास।
भ्रातृ-भाव-समता-क्षमता का,
तू है अवनी में अधिवास ॥
छिपा व्योम में लघु तारा-सा
तू है अपने ही में लीन।
लोल-लोल लहरों से लोलित,
विश्व-वारिनिधि का है मीन ॥

भोली चितवन से तू जग को,
सदा देखता है अविकार।
सबके लिए खुला रहता है,
सन्तत तेरे उर का द्वार ॥
दया, क्षमा, ममता आदिक हैं,
तेरे रत्नों के भाण्डार।
है निर्मल जल शुद्ध वायु ही,
तेरे जीवन के उपहार ॥

छल से रहता दूर किन्तु तू,
बल-पौरुष में है भरपूर।
तेरे जीवन-धन हैं जग में,
बस किसान एवं मजदूर ॥
कोयल तुझे सुना जाती है,
मधुमय ऋतुपति का सन्देश।
खेतों में पौधे उग-उग कर,
देते हैं तुझको उपदेश ॥

जग को जगमग करनेवाला,
है तुझमें न प्रकाश महान।
पर मिट्टी के ही दीपक से,
रहता है तू ज्योतिष्मान ॥
सह सकता है कभी नहीं तू
बाह्य जगत की तीव्र बयार।
तुझे प्राण-सम प्रिय है हरदम,
निज भोला-भाला संसार ॥

काँटे चुभते ही रहते हैं,
उड़ती रहती तुझ पर धूल।
तो भी तू न मलिन होता है,
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !
रखकर सबसे निपट निराला,
जगतीतल में निज व्यक्तित्व।
करता है तू सफल सर्वदा,
अपना छोटा-सा अस्तित्व ॥

विद्युत्-नेत्र

लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, ए० एम० आई० ई० ई०

श्रीयुत खन्ना जी विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। 'सरस्वती' में उन्होंने विज्ञान-विषयक अनेक उपयोगी लेख लिखे हैं। उनका यह लेख भी वैसा ही उपयोगी तथा रोचक है।

विद्युत्-नेत्र एक बिजली का यन्त्र है, जिसे 'फ़ोटो एलेक्ट्रिक सेल' भी कहते हैं। जिस प्रकार हमारी आँखों पर रोशनी पड़ने से संसार की तरह तरह की वस्तुएँ दिखलाई पड़ने लगती हैं, उसी प्रकार इस बिजली के छोटे-से यन्त्र पर रोशनी पड़ने से तरह तरह के विचित्र काम होने लगते हैं। इस यन्त्र पर जिस समय थोड़ी-सी रोशनी डाल दीजिए अथवा उस पर से कुछ रोशनी हटा दीजिए, उसी समय सैकड़ों प्रकार से यह यन्त्र मनुष्य का गुलाम बन जाता है।

यह छोटा-सा यन्त्र बिजली के लैम्प या यों कहिए बेतार के लैम्प की शकल का होता है। इस लैम्प के भीतर से तमाम वायु क़रीब क़रीब निकाल ली जाती है और काँच के भीतर के हिस्से में आयने की तरह पालिश कर उस पर थोड़ा-सा पोटेशियम नामक रासायनिक द्रव्य लगा देते हैं। फिर इस लैम्प के दोनों सिरों में धातु के तार लगाकर इसे बन्द कर देते हैं।

इस यन्त्र का गुण यह है कि यदि इसके तारों के सिरे किसी बैटरी से जोड़ दिये जायँ और यह यन्त्र अँधेरे में रक्खा रहे तो इसमें बिजली की धारा नहीं होगी, किन्तु यदि इस यन्त्र पर रोशनी डाली जाय तो बिजली बहने लगेगी। इस पर रोशनी पड़ते ही इसके भीतर का पोटेशियम बारीक़-बारीक़ भागों में टूटकर लैम्प के दो सिरों को जोड़ देता है, जिससे बिजली का बहाव होने लगता है और बिजली अपना काम करने लगती है। इसी प्रकार यदि इस यन्त्र पर किसी वस्तु की छाया पड़े और रोशनी हट जाय तो बिजली का रास्ता टूट जाता है और बिजली का बहना बन्द हो जाता है और वह अपना काम करना बन्द कर देती है।

जो लन्दन गये हैं उन्होंने साउथ केन्सिंग्टन के अजायबघर में देखा होगा कि एक गली में एक दरवाज़ा है, जिसके निकट जाते ही वह दरवाज़ा अपने आप खुल जाता है और जब कोई अन्दर चला जाता है तब वह अपने आप बन्द हो जाता है। इस दरवाज़े के बाहर रास्ते में रोशनी की किरणें पड़ती हैं और इन किरणों के सामने जो विद्युत्-नेत्र यन्त्र लगा हुआ है उस पर जब तक रोशनी की किरणें पड़ती रहती हैं तब तक बिजली का प्रवाह होता रहता है और बिजली अपनी शक्ति से दरवाज़े को बन्द किये रहती है। ज्यों ही कोई मनुष्य सामने आता है और उसकी छाया इन किरणों को काट देती है, उसी समय बिजली का प्रवाह बन्द हो जाता है और दरवाज़े का [illegible] अपनी शक्ति से उसे खोल देता है।

कुछ दिन हुए पेरिस में नुमायश हुई थी। उसमें ईरान के बड़े क़ीमती शाही जवाहरात रक्खे गये थे। चोरों से बचाने के लिए उनके सामने विद्युत्-नेत्र लगा दिया गया था और उसके साथ बिजली की घंटी भी लगी थी। ज्यों ही किसी मनुष्य का हाथ जवाहरात के निकट आता और हाथ की छाया विद्युत्-नेत्र की किरणों के सामने पड़ती त्यों ही बिजली का प्रवाह बन्द हो जाता और घंटी में बिजली का प्रवाह होने लगता, जिससे घंटी ज़ोर से बजने लगती और चौकीदार तुरन्त सावधान हो चोर को पकड़ सकता। इसी प्रकार बड़े बड़े बैंकों की तिजोरियों के सामने यह औज़ार बिजली की घन्टी के साथ लगाया जाता है, जिससे चोर के पास आते ही घंटी बजने लगती है और चोर पकड़ जाते हैं। मज़ा यह है कि इस औज़ार पर ऐसी रोशनी की किरणें डाली जा सकती हैं जो मनुष्य के नेत्रों के सामने अगोचर होती हैं जिससे चोर को पता नहीं लगता कि उसके पकड़ने का प्रबन्ध किया गया है।

इस विद्युत्-नेत्र का उपयोग पहले-पहल लन्दन में एक बिजली की कम्पनी ने सड़कों पर बिजली के लैम्पों के जलाने के काम में किया था। इसके द्वारा ज्यों हीं सड़कों पर अँधेरा होने लगता, वैसे ही इस यन्त्र-द्वारा स्विच

बन्द हो जाती और सब लैम्प जल जाते। इससे यह लाभ है कि बादल या कोहरे के कारण दिन के किसी समय अँधेरा होते ही रोशनी हो जाती है।

इस यन्त्र का सबसे अधिक उपयोग फ़ोटो के कैमरा के सम्बन्ध में चित्र लेते समय होता है। अच्छे चित्र लेने के लिए कितनी रोशनी की ज़रूरत है, यह हमारे नेत्र ठीक ठीक नहीं बता सकते। इसलिए इसे कैमरा को रोशनी खोलने और बन्द करने के दरवाज़े से लगा देते हैं, जिससे वह उतनी ही रोशनी आने पर दरवाज़ा खोलता है जितनी चित्र के लिए ठीक होती है।

यह देखा गया है कि कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों के हाथ की उँगलियाँ मशीनों के पास आने पर प्रायः कट जाया करती हैं। इन्हें बचाने के लिए विद्युत्-नेत्र का उपयोग योरप के कारख़ानों में अब करते हैं, जिससे हाथ या अन्य अंग के मशीन के निकट आते ही घंटी बजने लगती है और मज़दूर सावधान हो जाता है।

न्यूयार्क नगर में हडसन नाम की नदी के नीचे और इँग्लैंड में मर्सी नदी के नीचे मोटरगाड़ियों के लिए लम्बी गुफा बनाई गई है। उनके मुख की एक ख़ास ऊँचाई पर विद्युत्-नेत्र के यन्त्र लगाये गये हैं। जब कोई मोटर जिसकी ऊँचाई ऐसी होती है कि वह गुफा में नहीं जा सकता और टकरा कर चकनाचूर हो जा सकता है, इस गुफावाली सड़क के मुँह के पास आता है तब उसकी परछाईं रोशनी को काटती है जिससे बिजली की धारा बन्द हो जाती है और घंटी की धारा जारी हो जाती है और वह बजने लगती है, जिससे गाड़ी चलानेवाला सावधान होकर अपनी गाड़ी वापस कर लेता है।

जहाज़ों के तहख़ाने इतने नीचे और अन्धकारपूर्ण होते हैं कि यदि किसी कारण उनमें आग लग जाती है तो बड़ी देर तक उसका पता लगना मुश्किल हो जाता है। जब तक आग का पता लगता है तब तक बड़ी हानि हो जाती है और अकसर जहाज़ तबाह हो जाते हैं। इसलिए तहख़ाने की छत पर हवा जाने के नल में विद्युत्-नेत्र के यन्त्र को लगा देते हैं, जिससे इसके सामने धुवाँ की परछाईं पड़ते ही बिजली की घंटी बजने लग जाती है और सबको मालूम हो जाता है कि तहख़ाने में आग लग गई है, जो फ़ौरन बुझा दी जाती है।

उन्नतिशाली देशों में ऐसे क़ानून बनाये गये हैं कि नगरों में कारख़ानों की चिमनियों से ऐसा धुआँ न हो कि नागरिकों के स्वास्थ्य पर असर पड़े। कारख़ानों में कोयले का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए जिससे कोयला अच्छी तरह जल जाय और अधिक धुआँ न निकले। यदि धुआँ चिमनी से निकलता नज़र आता है तो कारख़ाने के मालिक को दंड दिया जाता है। इस दंड से बचने के लिए चिमनी के ऊपर एक विद्युत्-नेत्र जिसमें एक तेज़ घंटी लगी होती है, रख देते हैं। जब तक धुँवे की शक्ल सफ़ेद रहती है तब तक ख़ैरियत है, किन्तु जैसे ही उसमें से बिना जला हुआ काला कोयला लिये हुए धुवाँ निकलने लगता है, वैसे ही बिजली की घंटी में प्रवाह होने लगता है और घंटी बजने लगती है, जिससे कारख़ाने का इञ्जीनियर सावधान हो जाता है और कारख़ाने के ब्वायलर की मरम्मत कर देता है, जिससे धुँवे के साथ कोयले का उड़ना बन्द हो जाता है।

अभी कुछ दिनों की बात है। विलायत में इस बात के जानने की ज़रूरत हुई कि अमुक सड़क पर २४ घंटों में कितने मोटर गुज़रते हैं। ऐसी बात का पता लगाना कितना मुश्किल है, यह वे जानते हैं जो विलायत की सड़कों पर मोटर चला चुके हैं। एक के बाद दूसरी और दूसरी को पार कर तीसरी और तीसरी के सम्मुख चौथी मोटरगाड़ी का आना-जाना सड़कों पर इस क़दर होता है कि उनकी गिनती करना मनुष्य के लिए असम्भव हो जाता है। किन्तु विद्युत्-नेत्र के यन्त्र-द्वारा मोटरों की संख्या लेना चुटकी बजाने का खेल-सा है।

सड़क के दोनों ओर विद्युत्-नेत्र लगाकर उस पर रोशनी डालते हैं। उससे लगी हुई एक मशीन होती है, जिसमें एक काग़ज़ का फ़ीता लपटा रहता है। इस फ़ीते को बराबर घुमाते रहते हैं। विद्युत्-नेत्र पर ज्यों-ज्यों गुज़रते हुए मोटरों की परछाईं पड़ती जाती है, त्यों-त्यों काग़ज़ के फ़ीते पर एक निशान बनता जाता है। चौबीस घंटे के बाद फ़ीते को निकाल कर ऊपर बने हुए निशानों को गिन कर बता देते हैं कि कितने हज़ार मोटर सड़क पर से गुज़रे। इस विचित्र विद्युत्-नेत्र-द्वारा और भी अनेक काम निकलते हैं, जिनका उल्लेख इस छोटे से लेख में करना असम्भव है।

एक मनोवैज्ञानिक सुन्दर कहानी

संन्यासी समदर्शी

लेखक, श्रीयुत दयानन्द गुप्त, बी० ए०, एल-एल० बी०

संन्यासी समदर्शी एक तालाब के किनारे तपस्या कर रहे थे। उनकी कुटी विन्ध्याचल की एक ऊँची चोटी पर बनी हुई थी। विन्ध्य-पर्वत के हृदय में स्नेह-सा हिलोरें लेता हुआ वह तालाब एक अत्यन्त रमणीक स्थान पर स्थित था। उसके किनारे-किनारे फल-फूलों के वृक्ष लगे हुए थे, जो अनेकानेक पक्षियों के वासस्थान थे। संन्यासी गत तीन दिन-रात से तालाब के किनारे अपनी तपस्या में निरत थे। उनके श्वेत केश हवा में किसी भग्नावशेष की बढ़ी हुई घास की तरह उनके सिर पर लहलहा रहे थे। विहग शरीर पर फुदक-फुदक कर कलरव करते थे, लेकिन उनका ध्यान भग्न नहीं होता था। सारी देह तृण, ओस, धूल और बीट से आच्छन्न थी। चौथे दिवस की प्रथम किरण संन्यासी को और अधिक घोर तपस्या का सन्देश लाई। उनका शरीर विन्ध्य-पर्वत की भाँति अचल, वाणी मूक और मन स्थिर था। वृक्ष की एक-दो टहनियों के विरल पल्लव उनके ऊपर तपस्या के सफल वरदान की भाँति आशीर्वाद का हाथ खोले हुए झुक गये थे। संसार की कारा से मुक्ति की याचना अभी हो ही रही थी कि एक तोते का बच्चा फुदक कर संन्यासी के सिर पर आ बैठा। उसका नीड़ पास के वट-वृक्ष में ही था। सघन पत्तों के बीच से शिशिर की अरुण उष्ण किरणों का आनन्द पूरा पूरा नहीं उठाया जा सकता था। उसके पर अभी हाल में ही उगे थे। उसका चंचल बाल-हृदय शिशिर की शीतल लम्बी रजनी में किसी प्रकार तो शान्त रह सका, लेकिन सूर्योदय में फुदकने के औत्सुक्य को वह अगला-बद्ध न कर सका। सामने संन्यासी समदर्शी एक पैर से खड़े हाथ जोड़े उपासना कर ही रहे थे। उसने इस शिला-लाट पर बैठ कर ही धूप और जल-कल्लोलों का आनन्द लेने का निश्चय किया। उससे सुन्दर दूसरा स्थान हो ही क्या सकता था?

तोते का बच्चा अभी पूर्ण उड़ान नहीं भर सकता था, अभी उसे गगन के गान गाने नहीं आये थे। वह कभी फुदक कर संन्यासी के कंधों पर जा बैठता, कभी सिर पर और कभी जुड़े हुए हाथों की अँगुलियों पर बैठकर खेल करता। वह संन्यासी को एक उजड़ा हुआ पल्लव-हीन वट का पेड़ समझ रहा था। उनकी केश-मालाओं को उसने वट-वृक्ष की जटायें समझा और जुड़े हुए दोनों हाथों को दो मिली हुई शाखायें। उसे इस स्थान में सभी गुण दिखलाई दिये। जल भी निकट था, धूप भी खुल कर पड़ती थी और गिरने का भी भय नहीं था, क्योंकि वह वट-वृक्ष कभी हिलता ही न था। वह वृक्ष उसे अपने वृक्ष से कहीं अधिक सुन्दर प्रतीत हुआ। उसी की तरह यह वृक्ष भी नन्हा-सा था, मानो सृष्टि के रचयिता ने उसे उसी के लिए बनाया था। फिर उस पर से नीचे कूदने पर चोट भी नहीं लगती थी, क्योंकि फ़ासला भी बहुत कम था।

तोते का बच्चा अपने माता-पिता से अपना नीड़ इसी तरु में बनाने के लिए कहने का विचार कर रहा था और हर्ष से अपना 'टाँय-टाँय' का गान गाता जा रहा था। उसे इस पेड़ की जटाओं में नीड़ बनाने के लिए तृण भी संचित दिखाई दिये। सभी बातें उसके निवास के अनुकूल थीं। इतने में संन्यासी का ध्यान भग्न हो गया। पहले उन्हें धृष्ट शुक-शावक पर असीम क्रोध आया और वे उसके नाश की याचना करनेवाले ही थे कि उनकी उत्सुकता ने उसके खेल देखने के लिए उनके रोष को रोक दिया। उनको उस निरीह-शावक की क्रीड़ा में बड़ा आनन्द आया। उनका रोष उसके लिए वात्सल्य में बदल गया। वे उसको पितृ-तुल्य आश्रय दिये हुए थे। कदाचित् सृष्टि-कर्ता ने ही उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। तब वे उस पर क्रोध किस भाँति कर सकते थे? संन्यासी स्थिर शिला की भाँति खड़े रहे। वे शुक-शावक के खेल में बाधा नहीं डालना चाहते थे। संन्यासी के खुले हुए दृग शुक-शावक के दो लघुकोटरों की भाँति प्रतीत हुए। उनकी आँखों के पलक भी अचल थे और वे तोते के बच्चे पर दृष्टि गड़ाये हुए उसे प्यार से देख रहे थे। प्रकृति उनके लिए एक नवीन रहस्य खोल रही थी। उसके इस मनोहर चित्र का उन्हें अभी तक बोध नहीं हुआ था।

सन्यासी समदर्शी बहुत देर तक शुक-शावक को फुदकते हुए देखते रहे। उनके अतिरिक्त एक बाज़ भी उसकी अल्हड़ता को लोलुप दृष्टि से देख रहा था और उसकी जीभ भीतर ही भीतर शिकार के स्वाद से चटाख़े ले रही थी। तोते का बच्चा संन्यासी के सिर पर फुदककर आ बैठा और बाज़ ने भीषण वेग से उस पर आक्रमण किया। वह पृथ्वी पर संन्यासी के चरणों पर गिर पड़ा; और बाज़ उससे लिपटा हुआ था। संन्यासी के हृदय में सारा प्रेम एकत्र होकर उमड़ पड़ा। उन्होंने तोते के बच्चे को एक क्षण में बाज़ से छुड़ा लिया।

शुक-शावक आहत हो गया था और दुख से 'टाँय-टाँय' कर रहा था। संन्यासी के सम्मुख एक और समस्या उपस्थित हो गई। वे उसे लिये हुए निकटवर्ती गाँव में दौड़े हुए गये। आज तक उन्होंने विश्वकर्ता से महाप्रलय की याचना की थी, अब वे उससे तोते के प्राण-रक्षा की याचना कर रहे थे। वैरागी अनुरागी हो गया था। उन्होंने शीघ्रता से वहाँ एक पिंजड़ा और कुछ दूध प्राप्त किया। अपने चिथड़ों की पिंजड़े में एक गद्दी बिछा दी और कुछ पत्तियों के रस का उसके घावों पर लेप कर दिया। वे जनक-हृदय की कोमलता का अनुभव कर रहे थे।

तोते का बच्चा कुछ दिनों में अच्छा हो गया। संन्यासी को अब प्रतिदिन ग्राम को दूध आदि माँगने के लिए जाना पड़ता था। उनकी तपस्या में बाधा आ खड़ी हुई थी। उन्होंने इस कठिनाई को एक गाय पालकर दूर करने का निश्चय किया। उनको किसी प्रकार एक गाय मिल गई। कुछ दिनों तक सब ठीक चलता रहा। उन्होंने तोते का नाम 'सुबोध' रक्खा और उसे 'राम राम', 'सीताराम' आदि पढ़ाना प्रारम्भ किया। तोते की प्रकृति ही अनुकरण करने की होती है। फिर वह तोता बालकाल से ही संन्यासी के निकट रहा था। उसने शिक्षा-ग्रहण में अद्भुत कुशलता दिखलाई। तोता संन्यासी को ब्रह्म-मुहूर्त में नित्य ध्यान करने के लिए 'चलो साधु, पिता पास, पिता आश, पिता आश' कह कर जगा देता, लेकिन ईश-वन्दना न होकर तोते का शिक्षण ही प्रारम्भ होता था। पाठन-कार्य के पश्चात् संन्यासी गाय का दूध निकालते और उसे चरने के लिए मुक्त कर देते। एक दिन संन्यासी को एक ग्रामीण ने गाय की रक्षा के लिए एक कुत्ता पालने की राय दी। उनकी कुटी के चारों ओर सघन वन था और हिंसक पशुओं की कमी न थी। अन्ततः संन्यासी ने एक दीर्घकाय स्वस्थ कुत्ता भी गाय की रक्षा के लिए पाल लिया।

अब संन्यासी का कुटुम्ब बढ़ता जा रहा था और साथ में योजनायें तथा चिन्तायें भी। अब उन्हें ध्यान-धारण करने के लिए बहुत कम समय मिलता था। सन्यासी का कार्य-क्षेत्र भी बढ़ गया था। अन्न लाना पड़ता था और ग्रामीणों से व्यर्थ का वार्तालाप भी करना पड़ता था। उनके बालक अब उनकी कुटी में निःसंकोच आने लगे थे। वे उनके लिए अन्न-वस्त्र आदि लाते थे और उनसे व उनके तोते से खेलते तथा बातचीत करते थे। कुछ गृहस्थों से उन्होंने मासिक बाँध लिया था और परिवर्तनार्थ वे उनके बच्चों को शिक्षा देते थे। अब वे धीरे धीरे फिर एक बार संसार में प्रवेश करने लगे। संसार को उन्होंने माया कहकर त्यागा था, किन्तु अब वे स्वयं उसी माया में बँधे जा रहे थे। तोते के प्रेम ने ब्रह्मानुराग को दबा दिया था।

संन्यासी जी अब भी उसी तालाब पर स्नान करने जाया करते थे, लेकिन पहले की वह कठोर तपस्या अब नहीं थी। अब तो नहाते समय ही 'राम राम', 'सीताराम' कहते जाना पर्याप्त था। वे अपनी आत्मा को यों ही समझा लेते थे। अनायास उन्हें पूर्व की घटनाओं का स्मरण हो आया। इसी स्थान पर एक चरण से खड़े होकर उन्होंने कठोर तपस्या की थी और उनके प्रिय शुक-शावक पर यहीं बाज़ ने आक्रमण किया था। उनका हृदय तोते को देखने के लिए उद्विग्न हो उठा। वैसे तो उनकी व्याकुलता का कोई विशेष कारण उनकी समझ में नहीं

आया। पूर्व की भाँति शुक-शावक का पिंजड़ा उनकी कुटी में उनके चलते समय तक ठीक टँगा हुआ था, तो भी न जाने क्यों उनका मन उसके लिए अधीर हो रहा था। इतने समय के बाद आज भी उसके माता पिता करुण-ध्वनि से वट-वृक्ष के चारों ओर उड़कर क्रन्दन कर रहे थे; संन्यासी को एक तोते के जोड़े का स्वरोच्चारण सुनाई देता था। उनके हृदय ने सन्तान-वियोग की हलकी टीस का अनुभव किया। वे शीघ्र ही नहाकर कुटी को लौटे। कुछ लड़के उनकी कुटी में घुसे हुए थे और कुछ बाहर गुरु-शिष्य का खेल खेल रहे थे। उन्हें देखकर लड़के कुटी से बाहर भाग खड़े हुए। कुटी में घुसते ही उन्होंने सबसे पहले पिंजड़े पर दृष्टि डाली। पिंजड़ा ख़ाली था। उनकी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। उनके शरीर से प्राण निकलने-से लगे। उन्होंने पिंजड़े को बाँस पर से उतार लिया। देखा, खिड़की खुली हुई है। नटखट लड़कों ने पिंजड़े की खिड़की खोल कर तोते को उड़ा दिया था, लेकिन उन्हें विश्वास था कि जिसे उन्होंने पुत्र-तुल्य पाला है, प्राण-दान दिया है, वह उन्हें छोड़कर कभी नहीं जायगा। क्या हुआ यदि एक-दो घंटे के लिए उसने स्वच्छन्द विहार कर भी लिया? वह फिर बुलाते ही वापस आ जायगा।

संन्यासी समदर्शी ख़ाली पिंजड़ा लिये हुए कुटी से बाहर निकले। उनका धैर्य धँसा जा रहा था, आशा कभी आती और कभी साथ छोड़ जाती थी। एक बालक ने अँगुली उठाकर बतलाया कि सामने के वृक्ष पर उनका प्रिय तोता बैठा हुआ है। उन्होंने पिंजड़े को भूमि पर खिड़की खोल कर रख दिया और 'बेटा सुबोध', 'बेटा सुबोध' कहकर बुलाना प्रारम्भ किया। संन्यासी कभी पुचकार कर कहते थे—"कहो पटुये सीताराम, राम राम, सीताराम।" तोता भी वही वाक्य दोहरा देता था, लेकिन वृक्ष की डाल पर से नीचे उतर कर नहीं आता था। वे बहुत देर तक उसे दूध और आटे आदि का प्रलोभन देते रहे, लेकिन तोते पर किसी युक्ति का प्रभाव न पड़ा। अन्त में वे पिंजड़ा लिये हुए धीरे धीरे उसे पकड़ने के लिए वृक्ष पर चढ़े। वे तोते के निकट पहुँच ही गये थे कि वह पंख फड़फड़ाकर दूसरे वृक्ष पर उड़ गया। वे वृक्ष से उतरे और फिर वहाँ भी जाकर प्रलोभन का वही जाल तोते के सामने बिछाया। वे अपने पढ़ाये हुए पाठ की तोते को याद दिलाते, तोता कई बार उन वाक्यों को दोहराता और एक से दूसरे वृक्ष पर उड़ जाता। इसी तरह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक संन्यासी भी पिंजड़ा लिये हुए तोते का पीछा करते जाते थे। तोता धीरे धीरे अपने पूर्व-परिचित वृक्ष के निवास-स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ उसके जनक-जननी इतने दीर्घ काल के बाद भी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वन में सन्ध्या आ चुकी थी और उस वृक्ष को तिमिर ने अपनी गोद में सुला लिया था। संन्यासी उस वृक्ष के नीचे पिंजड़ा लिये हुए खड़े खड़े 'बेटा सुबोध', 'बेटा सुबोध', 'कहो पटुये सीताराम', 'राम राम', 'सीताराम' आदि वाक्य व्याकुलतापूर्ण कण्ठ से, शून्य का हृदय चीरती हुई आवाज़ में, कहते थे, लेकिन उसी की प्रति-ध्वनि के अतिरिक्त और कोई उत्तर उन्हें नहीं मिलता था। शुक-शावक मूक हो गया था, मानो अभी मिले हुए उसके माता-पिता ने उसे अपने पंखों के सुकोमल तल्प पर सुला लिया हो। पंखों की एक फड़फड़ाहट के बाद वह शान्त हो गया।

संन्यासी ने भी आज की रात वृक्ष के नीचे ही व्यतीत की—नयनों में जागरण-क्लान्ति और क्लेद भर कर। उनके प्राण रात भर कलपते रहे। अपनी ही आहें उन्हें भयभीत कर रही थीं। उनकी निशा ईश्वर के ध्यान में डूबकर व्यतीत होती थी, पर आज वही एक साधारण पक्षी के वियोग में उतराकर। उन्हें विश्वास न होता था कि तोता कहावत की भाँति आँखें फेर लेगा। दोष उन्हीं का था, तो भी वे अपनी भावनाओं से विवश थे। मध्याह्न से उन्होंने सन्ध्या पर आशा लगाई थी और सन्ध्या से उषा पर। किसी प्रकार रजनी बीती, उषा आई लोहित रंग अपनी माँग में भर कर। कोई तोता उन्हें वृक्ष पर नहीं दिखलाई दिया। दिन निकलने से बहुत पूर्व ही शुक और उनके जनक-जननी उस स्थान को विपद्पूर्ण समझ कर वहाँ से प्रवास कर गये थे। संन्यासी के हाथों के तोते उड़ गये, उन्हें जीवन निर्जीव मालूम हो रहा था। वहाँ बहुत देर तक प्रतीक्षा और खोज की, लेकिन सब व्यर्थ हुआ। निराशा का थैला कंधे पर लादे हुए वे अपनी कुटी को वापिस आये।

संन्यासी समदर्शी कई दिवस तक अनशन किये कुशासन पर पड़े रहे। उन्होंने गाय और कुत्ता ग्रामीणों को दे दिये, उनका जुटाया हुआ अन्न तथा अन्य वस्तुएँ वितरण कर दीं। एक तोते के न होने से अब उनकी कुटी में कुछ भी नहीं रहा। पर तोता संन्यासी को एक पाठ पढ़ा गया था। विश्व-सेवा तोते के बहाने ही उन्होंने सीखी थी। ग्रामीणों के बच्चों को पढ़ाना नहीं छोड़ा। उन्हीं नटखट लड़कों ने ख़ाली पिंजड़े की तीलियाँ भी एक दिन शव के पंचतत्त्वों की भाँति अलग अलग बिखरा दीं। संन्यासी ने शुक-शावक के स्मृति-स्वरूप उस पिंजड़े को रख छोड़ा था, लेकिन यह स्मारक-चिह्न भी नष्ट हो गया। उनके स्नान-ध्यान, संध्या आदि धार्मिक कर्म अब नियम से न होते थे। जीवन ही विशृंखल हो चुका था। उनकी दशा दयनीय हो गई थी। ग्रामीणों ने एक दिन एकत्र होकर उनके दुख को दूर करने का निश्चय किया। कुछ चिड़ीमार चारों ओर लासा, काँपा, जाल आदि लेकर उसी तोते की खोज में रवाना हुए।

संन्यासी ने एक पक्ष इसी प्रकार दुःखों में उतराते अपने प्रिय तोते का गुणगान करते बिता दिया। कुछ बहेलिये निराश लौट आये थे। सैकड़ों तोते पकड़े गये और उनके सम्मुख लाये गये, किंतु 'राम राम', 'सीताराम' का रटनेवाला तोता हाथ न लगा। अभी एक-दो बहेलिये नहीं लौटे थे। उन्हीं के आने की प्रतीक्षा संन्यासी को प्राण-दान दिये सी मालूम होती थी। आशा की लकुटी के सहारे उनका जीवन चला जा रहा था। उन्हें अपनी दुर्बलता और परवशता पर क्रोध आने लगा था, स्नेह के सारे बन्धन, उनका हृदय चाहता था, छिन्न भिन्न करके फेंक दे।

एक दिन सूर्यास्त से कुछ पूर्व एक बहेलिया संन्यासी की कुटी के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। वह दिन भर का चला हुआ थका मालूम होता था। पर उसके मुख पर सफलता के हर्ष की कान्ति जगमगा रही थी। उसके एक हाथ में पिंजड़ा था और दूसरे में एक बाँस। पीठ पर लासा-काँपा बँधा हुआ था और कंधे पर जाल पड़ा हुआ था, कमर से डोरियाँ लिपटी हुई थीं। उसने संन्यासी को मुस्कराते हुए पुकारा—"लो बाबा, तुम्हारे सुबोध को मैं ले आया"। संन्यासी के उदास अँधेरे मुख पर सैकड़ों बिजलियों के एक साथ चमकने की ज्योति फैल गई। उन्होंने हाथ बढ़ाकर झट पिंजड़े के कुंडे को पकड़ लिया। उनका दूसरा हाथ पिंजड़े की खिड़की पर था। वे पुचकारते हुए बोले—"बेटा सुबोध, इतने दिन तक कहाँ रहे?"

तोता कुछ पाठ भूल चुका था, उसे केवल एक वाक्य का शेषांश याद था। वह ज़ोर से बोल उठा—"पिता पास, पिता पास"। संन्यासी ने कहा—"कहो पटुए रामराम, राम राम सीताराम"।

तोते ने दोहराया—"राम राम, सीताराम, पिता पास, पिता पास"। संन्यासी का भूला हुआ अतीत उनके सम्मुख जाग उठा, एक पवित्र भावना आँखों में नाच गई, उनके पिछले संस्कार प्रबल हो उठे। उन्होंने तोते की खिड़की खोलते हुए कहा—"बेटा सुबोध, उड़ जाओ, उड़ जाओ। तुम्हें बन्धन में बाँधकर मैं स्वयं बन्धन में बँध गया था। तुम अपने पिता के पास जाओ और मैं भी अपने परम-पिता के पास जाऊँ।" खिड़की खोलकर उन्होंने पिंजड़ा हिला दिया। तोता फुर्र से बाहर उड़ गया। संन्यासी समदर्शी कुशासन पर बैठे वन्दना कर रहे थे और तोता सामने वृक्ष पर "राम राम, सीताराम" गा रहा था।

गीत

लेखक, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

चल रहे सब मौन!
कुछ न कह पाते
कहाँ जाते—वहाँ वह कौन?

छन्द नव, आनन्द अभिनव,
कौन यह आह्वान नीरव,
सुन रहे, जाते बहे
सब मौन—निष्ठुर मौन?

ज्ञान में अज्ञान में चिर,
ज्योति में फिर तिमिर में स्थिर,
प्रश्न शाश्वत कौन—
पर उत्तर निरन्तर मौन!

किसान क्या पालें—गाय या भैंस ?

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

हिन्दुओं का विश्वास है कि पृथ्वी बैल के सींगों पर स्थित है। बैल का वैदिक साहित्य में क्या अर्थ है, इसकी गहराई तक हम चाहे न भी जायँ, तो भी भारतवर्ष के सम्बन्ध में तो यह ठीक ही है कि कम से कम भारतवर्ष को तो बैल ही धारण किये हुए है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश का आधार कृषि का देवता बैल ही हो सकता है। जिस प्रकार हिन्दुस्तान की ९० प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती है और उन्हीं की उन्नति पर देश की उन्नति निर्भर करती है, उसी प्रकार ग्रामीणों का जीवन ९० प्रतिशत गौ और बैल पर ही आश्रित है, इसी लिए गोवंश की उन्नति के बिना ग्रामों की दशा उन्नत नहीं हो सकती, यदि ऐसा कहा जाय तो ग़लत न होगा। वैसे तो कोई भी बात ली जाय तो कहा जा सकता है कि उसके बिना ग्रामों का सुधार ही नहीं हो सकता। ग्रामीणों को शिक्षित करना, अत्याचार—अन्याय—सहन करने के विरुद्ध उनमें जद्दोजहद करने की भावना जाग्रत करना, सफ़ाई आदि सभी बातें ऐसी हैं जिनमें से एक के बिना भी ग्रामों की दशा नहीं सुधर सकती। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि यदि ग्रामवासी इनमें से एक भी बात मान लें तो उनके जीवन में—सामाजिक—आर्थिक और राजनैतिक स्थिति में—आकाश-पाताल का अन्तर आ सकता है। यदि ग्रामवासी अपने सब झगड़ों का निपटारा ग्राम की पंचायत-द्वारा कर लें तो उनके लाखों रुपये बच सकते हैं, उनकी सामाजिक दशा सुधर सकती है, वे अपना समय कृषि की उन्नति में लगा सकते हैं। इसी प्रकार यदि गाँववाले गोबर के उपले न बना कर वैज्ञानिक रीति से उसका उपयोग करने लगें तो उनके सब दुख दूर हो सकते हैं। यदि ऐसा कोई कहे तो वह भी ग़लत नहीं। मैं इन सबकी उपादेयता कम नहीं करना चाहता। मैं तो यह कहता हूँ कि ग्रामों की दशा सुधारने का मुख्य आधार गोवंश की वृद्धि ही है। औरों के बिना ग्राम जीवित रह सकते हैं, यद्यपि रहेंगे बीमार की दशा में ही, परन्तु गोवंश के बिना तो कृषि का स्वरूप ही नष्ट हो जायगा। अन्य बातों के सम्बन्ध में तो ग्रामीणों को बहुत समझाने की आवश्यकता है, परन्तु गो-वंश की उपादेयता निर्विवाद है। इसी लिए ऋग्वेद में गाय को 'उस्रा' अथवा 'उस्रिया' कहा है, जिसका अर्थ है सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि का क्षेत्र। उत्स्राविणोऽस्यां भोगा निरुक्त ने स्पष्ट कहा है।

जिस प्रकार यह बात निर्विवाद है कि गाय भारतीय जनता का आधार है, उसी प्रकार यह भी निर्विवाद है कि भारतीय जितना गो-वंश का ह्रास कर रहे हैं, उतना और कोई नहीं कर रहा है। आज भी देश में मन्दिरों के बाद यदि किसी काम के लिए सबसे अधिक दान मिलता है तो वह गोशाला अथवा गो-सम्बन्धी काम है। परन्तु इस धन से गो-वंश की वृद्धि नहीं होती, देश का स्वास्थ्य नहीं बढ़ता और कृषि में सुधार भी नहीं होता। भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान और ग्रीष्मप्रधान देश में बैल ही काम आ सकते हैं, इसलिए किसानों को उनकी ज़रूरत रहती है। वे स्वयं बैलों को कम तैयार करते हैं। प्रतिवर्ष उन्हें बैल ख़रीदने पड़ते हैं। जो किसान जग को बड़ा करता है, पालता है, वह अपने पशुओं को नहीं पाल सकता, इसका क्या कारण है? स्वयं किसान इस पहेली को नहीं समझ रहा है। और इस पहेली को सुलझाये बिना ग्रामों की दशा सुधर नहीं सकती।

किसान बाज़ार से ख़रीदे हुए बैलों के बल पर आर्थिक दृष्टि से सदा ऋणी रहेगा। आज जो किसान ऋण लेता है और जिसको न चुका सकने के कारण कहा जाता है कि किसान का बेटा ऋण में ही पैदा होता है और ऋण में ही मर जाता है। इसका कारण मुख्य तया ख़रीदे हुए पशुओं से खेती करना ही है। और कामों को—जैसे विवाह आदि को किसान कुछ समय के लिए टाल भी सकता है, परन्तु यदि उसका बैल मर जाय तो उसे शीघ्र ही नये बैल का प्रबन्ध करना पड़ेगा। क्योंकि ऐसा किये बिना वह साल भर निठल्ला बैठा रहेगा, भूखों मरेगा। फ़सल बोने के दिन चले गये तो वह फिर क्या कर सकता है? ऐसे अवसरों पर ही उसे बनिये की शरण लेनी पड़ती है। यही बैल का बोझ किसानों को ले डूबता है। किसानों की दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि किसान को यह समझाया जाय कि उसके लिए हितकर यही है कि वह बाज़ार से अथवा किसी दूसरे किसान या ज़मींदार से रुपया लेकर बैल न ख़रीदे, किन्तु वह ख़ुद गाय पालकर बछड़े तैयार करे। ऐसा किये बिना उसकी दशा नहीं सुधर सकती। परन्तु किसान को कोई बात समझा देना कितना कठिन कार्य है, यह बात भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। समझा जाता है कि ग्रामीण बुद्धू होते हैं, कुछ नहीं समझते, परन्तु आप कभी किसानों की विश्वस्त एकान्त बातों को सुनें तो आपको मालूम हो जायगा कि किसान शहरातियों का कितना उपहास करते हैं। जब कोई शहरी जाकर गाँववालों को उपदेश देता है तब वे उसके उपदेश को वहीं तक तो चाव से सुनते हैं जहाँ तक उनका मन-बहलाव होता है, परन्तु जहाँ किसी शहरी बाबू ने उनकी अन्दरूनी बातों पर आक्षेप करना शुरू किया और 'यों करना चाहिए' 'ऐसा करना चाहिए' आदि कहने लगे, वहीं वे झट कह देते हैं कि मेज़-कुर्सी पर बैठनेवाले ये बाबू हमारे घर की क्या जानें। इसलिए किसान को समझाना हमारे विचार से कुछ कठिन है। किसान को यदि यह बताया जाय कि ऐसा करने से तुम अधिक आर्थिक लाभ उठा सकते हो, तुम्हारी हालत अच्छी हो सकती है तो ऐसी बात सुनने के लिए वह राज़ी हो सकता है। यह ठीक है कि आज तक सरकारी और ग़ैर सरकारी व्यक्तियों और समितियों ने ग्रामीणों की दशा सुधारने का जो कार्य किया है उसका आधार आर्थिक ही रहा है, फिर भी ग्रामीणों ने उस पर अमल करने की बात कभी नहीं सोची। उसका कारण है ग्रामीणों की शहरी लोगों पर सन्दिग्ध दृष्टि। आज तक जो भी ग्रामीणों के पास गया है वह उनसे कुछ दुहने के ही लिए गया है, देने कोई नहीं गया है। सरकार ग्रामों में गई तो केवल मालगुज़ारी और आबियाना लेने के लिए। कांस्टेबल-थानेदार, चौकीदार-पटवारी, पुजारी-साधु—जो भी ग्रामीणों के पास गया यही कहता गया कि जो कुछ तेरे पास है, हमें दे दे। ऐसा न करने पर किसी ने किसान को जेल का डर दिखाया और किसी ने नरक का। इस प्रकार किसान के हृदय में एक प्रकार का यह भय-सा बैठ गया है कि उसके पास जो कोई भी आता है, कुछ लेने के लिए ही आता है। इन्हीं कारणों से आज तक जो भी गाँवों में कार्य किया गया है वह सफल नहीं हो सका। परन्तु हर्ष का विषय है कि कांग्रेस के सम्बन्ध में ग्रामीणों के हृदय में विश्वास है, क्योंकि कांग्रेस ने मिनिस्टरी ग्रहण करते ही किसानों को कुछ दिया है।

ख़ैर मैं कह रहा था कि किसान स्वयं ही अपने पशुओं को पाल कर बढ़ावें। इसके लिए इस बात की आवश्यकता है कि किसान को समझाया जाय कि ऐसा करने से उसकी आर्थिक दशा सुधर सकती है। ऐसा हुए बिना गौ को माता समझते हुए भी, बैल की उपयोगिता जानते हुए भी, किसान किसी उपदेशक के उपदेश के अनुसार आचरण नहीं कर सकता। वर्तमान स्थिति में किसान का यह कहना कि स्वयं बैल तैयार करना उसके लिए बाज़ार से ख़रीदे हुए बैल की अपेक्षा मँहगा पड़ता है, ठीक है। उसके दो-तीन कारण हैं।

प्रथम और मुख्य कारण तो यह है कि कृषि पर जितने मनुष्य आश्रित होने चाहिए उनकी अपेक्षा अधिक व्यक्तियों के कृषि पर अवलम्बित हो जाने से आवश्यकता से अधिक ज़मीन खेती के कार्य में लाई जाती है। ग्रामों की तथा ग्रामीणों की दशा को—स्वास्थ्य आदि को—ठीक रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक ग्राम में क़ानूनन कुछ न कुछ ज़मीन पशुओं के चरने के लिए छोड़ी जाय। मनुष्य ने अपने ही हित को सामने रखकर पशुओं को उनके अधिकार से वञ्चित करके अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारी है, क्योंकि पशुओं के अधिकार सुरक्षित करने का अर्थ अन्ततः अपने अधिकार सुरक्षित करना ही है। दूसरा कारण यह है कि आज की स्थिति में किसान को बछड़े के पालने की तो आवश्यकता हो भी सकती है, परन्तु बछड़ी का उसके लिए कोई भी उपयोग नहीं। इसलिए यदि वह बछड़ों को पाले तो भी बछड़ियों को तो उसे बेचना ही पड़ेगा, अन्यथा उस पर आर्थिक बोझ पड़ेगा, जिसका प्रभाव बैल पर ही होगा, क्योंकि किसान के काम की चीज़ है तो केवल बैल ही, गाय नहीं। यदि किसान बछड़ों को अपने पास रखकर बछड़ियों को बेच दे तो फिर किसान को गाय भी मोल लेनी पड़ेगी, क्योंकि ऐसा किये बिना वह बछड़ों को भी नहीं पाल सकता। इन सबका बोझ बैल के

ही कन्धे पर है। उसी के लिए इन सबका भी पालना आवश्यक है। अतः किसान ने इन सब झंझटों से मुक्त होने के लिए यही सुगम समझा है कि वह बैल को मोल ले लिया करे इस प्रकार विचार करने से प्रतीत होगा कि किसानों को बैलों को तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि केवल बैल अथवा बछड़े ही नहीं अपितु गाय अथवा बछड़ी भी किसान के लिए उपयोगी बनाये जायँ। इसका एक ही प्रकार है और वह है गाय के दूध का उपयोग बढ़ाना, दूसरे शब्दों में गाय को स्वावलम्बी बनाने के लिए उसे इस योग्य बना देना कि वह अपने दूध से ही आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन जाय। हिन्दुस्तान के लोग प्रमाद, तन्द्रा और आलस्य के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि वे गाय को दुधारी बनाने के लिए नये नये प्रयोग नहीं करना चाहते। इसी लिए उन्होंने दूध के लिए भैंस को अपनाकर समझ लिया है कि उनकी चिन्ता टल गई। परंतु ऐसा करते समय उन्होंने यह नहीं सोचा कि इस प्रकार उन्हें लेने के देने पड़ जायँगे। इस सबका प्रभाव किसान पर ही पड़ता है। दूध के लिए किसान भैंस पाले और बैल के लिए गाय पाले, यह दोहरा बोझ किसान के कमज़ोर कन्धे नहीं उठा सकते और यह बोझ उस पर डाला गया है, इसी लिए किसान बेचारा बैठ गया है। वह गाय को जीवित रखने के लिए बाधित है, साथ ही गाय की बछड़ियों का उसके लिए कोई भी उपयोग नहीं, इसलिए उसे ५०) की गाय बननेवाली बछड़ी को ५) में बेचने के लिए विवश होना पड़ता है। साथ ही दूध के लिए भैंस का रखना अनिवार्य-सा हो गया है। परन्तु उनके बच्चों का खेती में कोई उपयोग नहीं अथवा नहीं के बराबर है। भैंसा मेहनत का कार्य विशेषतः गर्मी में नहीं कर सकता। इसलिए किसान को भैंसों की हिंसा पर भी बाधित होना पड़ता है। यह दोहरी हिंसा हो रही है, जो अन्ततः किसान की हिंसा है। हिंसा शब्द मैंने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर नहीं किया है, अपितु शुद्ध आर्थिक दृष्टि से, क्योंकि यदि ५०) की चीज़ ५) में बिकेगी तो ४५) का घाटा सहना तो पड़ेगा किसान को ही। और किसान का घाटा होगा पृथिवी माता को, क्योंकि पृथिवी तो उतनी ही घास तब भी पैदा करेगी जब पशु मारे जायँगे और उतनी ही तब भी जब वे पाल-पोसकर राष्ट्र की सम्पत्ति बनाये जायँगे। इस प्रकार थोड़ा सोचने से प्रतीत होगा कि गाय को स्वावलम्बी बनाने के लिए आवश्यक है कि भैंस का बहिष्कार किया जाय। भैंस का भी हित इसी में है। दो प्राणियों को पूरी तरह से न पाल सकने के कारण दोनों को मारना, और एक की पूरी तरह से रक्षा करना, इन दोनों में मुझे दूसरी ही बात पसन्द है। दया का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य अनावश्यक बोझ अपने ऊपर उठाकर अपने साथ निर्दयता करे और उसे बोझिल बना दे। ऊँची दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि मनुष्य को संसार के प्राणियों का व्यर्थ रक्षक बनने की भावना आत्म-विडम्बना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हमें अपने अधिकार-क्षेत्र से ऊपर की बात सोचनी भी चाहिए कि नहीं, मैं इसमें नहीं के पक्ष को ही धर्म की ऊँची स्थिति के अनुकूल समझता हूँ। ख़ैर, दुनियादारी भी यही बताती है कि दो को अधूरा पालने से एक को पूरा पालना ही उचित है, श्रेयस्कर भी है।

महात्मा गान्धी ने भी कहा है कि "मैं दो प्राणियों की हिंसा की अपेक्षा एक की उपेक्षा को पसन्द करता हूँ। हिन्दुस्तान के किसान गाय और भैंस दोनों की रक्षा नहीं कर सकते, अतः उन्हें भैंस को छोड़ना पड़ेगा।" सरकारी इम्पीरियल डेरी के भूतपूर्व विशेषज्ञ श्री डब्ल्यू० स्मिथ ने भी गान्धी जी के पास भेजे गये अपने निम्न नोट में इस सत्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है—

"जिस पशु में दोहरा गुण न हो, अर्थात् जिस पशु की मादा में दूध देने की और नर में हल चलाने की या गाड़ी खींचने की शक्ति न हो, ऐसे किसी भी पशु का रखना हिन्दुस्तान के लिए भार है। साधारणतया भैंसा (भैंस का नर) खेती का काम करने या गाड़ी खींचने के क़ाबिल नहीं होता और इसी लिए उस भैंसे के जिसकी ज़रूरत साँड़ के रूप में है, शेष सब जन्म के साथ ही क़त्ल कर दिये जाते हैं। और यदि ऐसा न किया जाय तो वे देश पर भार-रूप होकर ही रहेंगे। हिन्दुस्तान के अधिकांश लोगों को किसी भी जाति के पशु की हत्या करना पसन्द नहीं है। भैंस को उसके मांस के लिए पालकर मारना भी आर्थिक दृष्टि से भार-रूप है। क्योंकि इस क़िस्म के मांस में उत्पत्ति पर जितना व्यय होता है, उसकी आय का पैसा कम आयगा। हिन्दुस्तान में गायें दूध कम देती हैं, इसी लिए यहाँ भैंसों का अस्तित्व है और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है इसलिए पशु पालने के लिए जो प्रचार किया जाय उसमें इस प्रकार का प्रचार करना चाहिए जिससे सब जाति की गौओं की दूध देने की शक्ति बढ़े। यही ध्येय होना चाहिए जिससे वे इतना दूध दे सकें कि अच्छे मज़बूत तन्दुरुस्त बछड़े तैयार हो सकें। इतना ही नहीं, जितना ख़र्च गायों के खिलाने-पिलाने पर हो, उतना वे दूध भी दें। इतना जब हो जायगा तब भैंस की ज़रूरत न रहेगी। आज तो हिन्दुस्तान के अनेक भागों में किसान बैलों के लिए दो-तीन गायें रखता है और दूध-घी के लिए एक-दो भैंसें। यह स्थिति नहीं चल सकती। यह तरीक़ा बहुत ही ख़र्चीला है। ऐसी व्यवस्था हो सकती है कि आज जो गायें बछड़ों के लिए रक्खी जाती हैं वे भविष्य में गायें व बैल दे सकें और इसके अतिरिक्त जितने दूध की आवश्यकता हो वह भी दें। हमारे पशुओं की उनके मांस की दृष्टि से नगण्य-सी क़ीमत है या कुछ भी नहीं है। हमें यह नहीं सुझता कि गाय तो बैलों के लिए रक्खें और भैंस दूध व घी के लिए। गाय अकेली ही इन दोनों कामों को पूरा कर सकती है। और उसे ऐसा करना चाहिए।"

श्रीयुत स्मिथ का कथन स्पष्ट है। यदि योरप और अमरीका में कुछ ही वर्षों के परिश्रम से गायों की नस्ल सुधर गई है और २०-२५ सेर तक दूध देनेवाली पुष्ट से पुष्ट क़ीमती से क़ीमती गायें पैदा हो गई हैं तो कोई कारण नहीं कि हमारे देश में जहाँ गोपाल कृष्ण के भक्त करोड़ों की संख्या में विद्यमान हैं, जिस देश की आधार ही गौ है, गायों की नस्ल संसार में सबसे अच्छी न हो। गायों की नस्ल की उन्नति करने का अर्थ है बैलों की नस्ल सुधारना, जिसका अर्थ होगा ग्रामों का पुनर्निर्माण।

सौभाग्य से हमारे प्रान्त में कांग्रेसी गवर्नमेंट है। युक्त-प्रान्तीय सरकार ने ग्राम-सुधार का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु गो-वंश की वृद्धि और सुधार के बिना ग्रामीणों की आय-वृद्धि और ग्राम-सुधार न हो सकेंगे। सरकार को ऐसा क़ानून बनाना चाहिए जिससे गाय जहाँ बैल पैदा करने के उपयोग में आये वहाँ वह गाय के रूप में भी स्वावलम्बी हो जाय। इसके लिए भैंसों की वृद्धि के रोकने का उपाय करना चाहिए। गायों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिए—तथा ग्रामीणों की मुख्य आवश्यकता का ध्यान रखते हुए—तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी—गवर्नमेंट को इस बात का प्रबन्ध करना चाहिए कि प्रत्येक ग्राम में पशुओं के लिए चरागाह अवश्य क़ायम किये जायँ। जिन ग्रामों में जो सरकारी ज़मीन हो वह पशुओं के चरने के लिए मुफ़्त छोड़ दी जाय तथा जो ज़मीन्दार अपनी ज़मीन चरागाहों के लिए ग्रामों में देना चाहें उनकी उतनी ज़मीन की मालगुज़ारी माफ़ कर दी जाय।

यह तो सरकार का काम है। जनता का भी कर्तव्य है कि गाय के ही दूध के प्रयोग की प्रतिज्ञा ले। सच्ची गो-पूजा इसी का नाम है। पंजाब प्रान्त के मुलतान-इलाक़े में वर्ष में कई उत्सव और मेले होते हैं, जिनमें बैलों की प्रदर्शनी होती है और अच्छे बैलों के मालिकों को इनाम दिया जाता है। युक्तप्रान्त में भी ऐसे बड़े बड़े मेले होते हैं। इस प्रकार के मेले प्रत्येक ज़िले में होने चाहिए और इनमें गायों के प्रदर्शन का ख़ास प्रबन्ध किया जाय। कितने दुःख की बात है हमारे देश में जितनी क़ीमत के कुत्ते मिल सकते हैं, उतनी भी क़ीमती गायें नहीं मिल सकतीं। देश की सरकार, जनता और किसान सबको सोचना है कि वह भैंस को रक्खेगी कि गाय को। दोनों का रखना तो ख़तरनाक है। आशा है, युक्तप्रान्त की सरकार हमारे इस विचार पर ध्यान देगी।

याद

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

(१)

जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद
भरती रहती है अन्तर में क्षण क्षण नव उन्माद।
आ जाती है याद जवानी
जीवन का आह्लाद जवानी
मेरी वह बर्बाद जवानी
और घटाओं-सा घिर आता प्राणों पर अवसाद
जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद।

(२)

मैंने उस सरिता को रोते देखा है दिन-रात
चट्टानों से सतत पूछते हम बिछुड़ों की बात
कहाँ गये वे दो दीवाने
पागल सौदाई मस्ताने
गाते जो उल्फ़त के गाने
किसने कर डाला उस सुन्दर दुनिया को बर्बाद
जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद।

(३)

हँस लेता हूँ यह भी सच है पर अदम्य अवसाद
हो उठता है झूठे संयम से सहसा आज़ाद
और उमड़ आता है सावन
जीवन से हारा मेरा मन
वह आता है आँसू बन बन
ज्वार उठा कर कहाँ बहा ले जाता मुझे विषाद!
जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद।

(४)

अहह अश्रुओं के सागर में बहता जीवन-यान
उसे देखकर जगत हो रहा चकित और हैरान
नहीं समझता क्यों रोता हूँ
क्यों अपना तन-मन खोता हूँ
क्यों इतना कातर होता हूँ
बना हुआ है जग से जाना, जब आने के बाद
जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद।

(५)

नहीं देवता लेकिन मैं तो हूँ निर्बल इंसान
रो पड़ता हूँ, दिल रखता हूँ नहीं क्रूर पाषाण
कहो चैन मैं कैसे पाऊँ
कैसे मैं मन को समझाऊँ
कैसे मैं आँसू न बहाऊँ
उजड़ गई जब मेरी दुनिया होते ही आबाद
जीवन की सूनी घड़ियों में एक तुम्हारी याद।

जीवन का सपना

लेखक, श्रीयुत रुस्तम सैटिन

'जीवन का सपना' स्वर्गीय श्रीमती रामेश्वरी गोयल की रचनाओं का संग्रह है। लेखक महोदय ने उसी पुस्तक का परिचय इस लेख में कवित्व-पूर्ण शैली में दिया है। स्वर्गीय देवी जी एक होनहार कवियित्री थीं। खेद है, उनका अकाल में ही निधन हो गया।

'जीवन का सपना' में एक विप्लवकारी हृदय का वास्तविक चित्र है। इसकी रचयित्री श्रीमती रामेश्वरी जी से मेरा कुछ परिचय था। मैंने तो बरसों मुझे उनके निकट रहने का अवसर मिला है, परन्तु उन रामेश्वरी जी से जो अपने जीवन के सपने की चिर-क्रीड़ा में लय हो चुकी थीं, जिनका संघर्ष-पूर्ण हृदय किसी पूर्णता की खोज किया करता था, मेरा परिचय अनेकों में अधिक होने पर भी थोड़ा ही था।

आज चारों ओर करुणनाद ही सुनाई पड़ता है। युवक-हृदय अपने काल्पनिक जीवन की असत्यता के अनुभव से व्याकुल हो उठा है। हमारा सामाजिक जीवन इतना दूषित हो चुका है कि संलग्न होकर चेष्टा करने पर भी जीवन का साधारण सुख अप्राप्य ही रहता है। वर्तमान समाज का मूल-मंत्र 'स्वार्थ' है। रूढ़ि के रूप में या सुधार के नाम से यह विष हमारी उच्च से उच्च भावना की जड़ों तक फैल चुका है। युवक का निर्मल प्रेम-पूर्ण सरल हृदय अपनी और सामाजिक जीवन की स्वाभाविक असफलता को निश्चित देखकर इतना व्यग्र हो उठता है कि वह उस प्रकृति-सौन्दर्य-जनित कल्पना-शक्ति की ही हत्या कर डालना चाहता है जिसने उसे अप्राप्य सुख से आभासित कर अन्त में धोखा दिया है। देखिए—

"मधुमास के मधुप थिरक रहे हैं—वसन्त कछारों तक में छाया है। मैं इस करुण-नाद से थक गया हूँ, इस हलचल से विश्राम लेने के लिए मुझे विस्मृति का सङ्गीत सुनाओ। मैं उस अथक संग्राम को भूल जाऊँ—जीवन की निराश घड़ियों को छिपा लूँ... ।"

इतना ही नहीं, सामाजिक जीवन की असफलता के चिर-तांडव को देखकर उसको विश्वास हो जाता है कि उसका लक्ष्य, उसका वह पूर्ण-सत्य इस दुःख-कलित संसृति की परिधि से बाहर इस जीवन के अन्त में, और उसकी कल्पना के अन्त में ही प्राप्त हो सकता है। कहा है—

"पथिक, उस पार मिलन नहीं है—वहाँ है आत्म-विसर्जन......चलोगे?"

श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी अपनी एक रचना में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

तरी को ले जाओ मझधार,
डूब कर हो जाओगे पार।
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार॥

मुझे याद है कि रामेश्वरी जी का सरल हृदय सांसारिक स्वार्थमय आडम्बर से कितना व्याकुल हो उठता था। इतना ही नहीं, उन्हें तो वर्तमान जीवन की असत्यता ने इतना प्रभावित कर दिया था कि कभी कभी तो वे बहुत गम्भीरता-पूर्वक सोचने लगती थीं कि कवि-कथित स्वार्थ-रहित सच्चे प्रेम का कोई वास्तविक अस्तित्व है भी या नहीं। वास्तव में आज हमारी सभ्यता और हमारे सामाजिक विचार इतने दूषित हो चुके हैं कि हमने स्वार्थ-जनित आडम्बर को ही सभ्यता की कसौटी मान लिया है। यदि किसी ग़रीब की दशा पर हमें दुःख हो या उस पर होने-वाले अन्याय को देखकर हमारा हृदय जल ही क्यों न उठे, हमें अपनी उस अन्याय-विरोधी उच्च भावना को लोक-नीति के विकृत नियमों की बलिवेदी पर भेंट करना ही पड़ता है। हमारा जीवन तो प्रतिक्षण स्वाँग रचने में और मानव-हृदय की सहज सबलता को कुचलने में ही बीतता है। वे लिखती हैं—

"यहाँ विचित्र व्यापार है—कोई वस्तु, अथवा व्यक्ति, तुम्हारी रुचि के अनुकूल होने पर भी तुम उस भाव को व्यक्त करने के अधिकारी नहीं हो। तुम्हें स्नेह-भाव दिखाना ही होगा। लाख अनिच्छा होने पर भी हृदयगत पीड़ा को छिपाकर तुम्हें मुस्कराना ही होगा—रोते हुए हृदय से भी होठों पर कुछ सुख की झलक दिखानी ही होगी! अच्छा यह जीवन है!! संसार में इस ढोंग का

कितना अधिक महत्त्व है, यह देखकर हँसी आती है और दुख भी होता है"।

रामेश्वरी जी की इन पंक्तियों में कितना सत्य भरा है ? यहाँ हम उनकी उस प्रबल शक्ति का दर्शन करते हैं जिसके सहारे वे जीवन के जटिल बन्धनों के काट, उसके ऊपर उठ सांसारिक नाटक पर निर्लिप्त भाव से मनन करती थीं। उनके मानसिक वैराग्य ने उनके विचारों के इतना दृढ़ कर दिया था कि वे साहस-युक्त हृदय से दूसरों के चेतावनी दे सकी हैं—

"सुनने की उत्कण्ठा क्यों,
पीड़ा की अकथ कहानी,
पीछे से पछताओगे,
कैसी थी यह नादानी ?"

परन्तु उनका यह मानसिक वैराग्य केवल कल्पना की कलामात्र ही न था। वह तो वर्तमान सामाजिक जीवन के कटु अनुभवों से उत्पन्न वह सत्य था जिसका प्रकाश चिरकाल तक न जाने कितने भूले हुए पथिकों के जीवन के अंधकारपूर्ण मार्ग में पड़े हुए भीषण कंटकों से बचायेगा।

रामेश्वरी जी का विश्वास था कि हमको सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए जीवन के संघर्ष को अपनाना ही पड़ेगा—संसार से भागनेवाला व्यक्ति तो कभी भी सच्चा वैराग्य प्राप्त कर ही नहीं सकता। क्योंकि जो केवल अपने व्यक्तिगत सुख और शान्ति के लिए इस महान् संग्राम से भागता है, जिसने अपने ही सुख स्वार्थ के वश में होकर सब कुछ ठुकरा दिया है; वह वैरागी के उच्च पद को पा ही नहीं सकता। रामेश्वरी जी के अनुभवों ने तो यह सिद्ध कर दिया था कि हमारे दुखों से ही उस महान् सुख का जन्म होता है—

"हास्य का मृदु अवगुण्ठन डाल,
राग से सीखा आज विराग,
न जर्जर कर दे यह अभिसार,
वेदना का व्याकुल अनुराग।"

स्वदेश-प्रेम तो रामेश्वरी जी में कूट कूट कर भरा था। जिन दिनों हमारे देश में स्वाधीनता का संग्राम चल रहा था, उनका भावुक हृदय देशानुराग से पागल-सा हो उठा था। वे रात-दिन उस महान् यज्ञ में अपनी शक्ति भर आहुति देने में मग्न रहती थीं। उनकी कविता का जिसने कोरी कल्पना का सहारा न लेकर उनके हृदय की वास्तविक स्थिति को ही सदैव चित्रित किया है, उनके उस देश-प्रेम की व्याकुलता से झंकृत हो उठना सर्वथा स्वाभाविक ही था—

"देशानुराग का पागलपन,
रग रग में फड़काकर धड़कन,
बलिवेदी पर बलि दे जीवन,
भारत स्वाधीन बनायेगा।"

वैसे तो उन दिनों हिन्दी में हज़ारों राष्ट्रीय कवितायें लिखी गईं, और इसमें भी सन्देह नहीं कि कुछ तो अवश्य ही बहुत सुन्दर हैं, परन्तु अधिकांश ऐसी हैं जिनको स्थायी साहित्य में स्थान नहीं दिया जा सकता, पर रामेश्वरी जी की राष्ट्रीय कविताओं में भाव, भाषा और संगीत का इतना अच्छा सम्मिश्रण हुआ है कि उनकी राष्ट्रीय कवितायें सर्वकालीन और सर्वदेशीय होने का गौरव प्राप्त कर सकती हैं।

व्यक्तिगत जीवन की असफलता और कष्टों को शान्तिपूर्ण भाव से सहन करना उदार और महान् हृदयों का सर्वदा से एक साधारण-सा गुण रहा है। रामेश्वरी जी अपने व्यथित और अपमानित हृदय के गंभीरतापूर्वक इस प्रकार सान्त्वना दे सकती थीं—

"नीरव जीवन पतझड़ का
ऋतुराज नहीं फिर आता,
भूली-सी तू फिरती क्यों
जग का थोड़ा यह नाता ?"
जग हँसता है...ले सो जा !
आ...! आ...! मतवाली सो जा।

पर सामाजिक रूप से होनेवाले अत्याचारों और दूसरों के दुख के देखकर उनके पवित्र हृदय में उस पाप-पुंज का दहन करने के लिए क्रान्ति की वह महान् ज्वाला धधक उठती थी जिसके शाब्दिक प्रतिबिम्ब में इतना बल है कि वह असंख्य निर्बलों के सबल बनाता रहेगा—

"पीड़ा का मूक रुदन बन शर,
दुष्टों का रक्त बहायेगा,
निर्धन प्राणों का आह-पुज,
भूतल पर क्रान्ति मचायेगा,"

रामेश्वरी जी के एक एक शब्द में जीवन का रस भरा हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के नये जीवन का सन्देश दिया है।

'ग्रामीण हिन्दी' और बघेलखण्डी

लेखक, श्रीयुत लालभानुसिंह बाघेल

इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने 'ग्रामीण हिन्दी'[१] नाम की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। इसमें हिन्दी-भाषा की बोलियों का संक्षिप्त विवेचन देकर उनके नमूनों का उत्तमता से सम्पादन किया गया है। साथ ही हिन्दी-भाषा के क्षेत्र का एक नक़शा और बोलियों का संक्षिप्त व्याकरण भी दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक हिन्दी-भाषा के विस्तृत क्षेत्र के ज्ञान के लिए अत्युपयोगी एवं संग्रहणीय बनाई गई है। बोलियों के नमूने कुछ नये संग्रह किये गये हैं और कुछ भारतीय भाषा-सर्वे की रिपोर्ट से लिये गये हैं। बघेलखण्डी का नमूना भी रिपोर्ट से ही लिया गया है। परन्तु उक्त नमूना ठेठ 'बघेली' का नहीं, 'दक्षिणी बघेली' का है। बघेलखण्डी या बघेली बोली 'अवधी' की सीमा से लेकर 'छत्तीसगढ़ी' की सीमा तक बोली जाती है। इतने लम्बे क्षेत्र में इसके कई भेद हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु पुस्तक में जिस प्रकार बुन्देलखण्डी आदि बोलियों के भिन्न-भिन्न भेदों के नमूने दिये गये हैं, उस प्रकार बघेली के नहीं दिये गये हैं। कदाचित् बघेली बोलनेवालों की उदासीनता के कारण ही वर्मा जी बघेलखण्डी का केन्द्र रीवाँ-राज्य लिखकर भी वहाँ की ठेठ बघेली बोली के नमूने नहीं दे सके हैं।

हमारी समझ में बघेलखण्डी बोली के तीन भेद हो सकते हैं। १—इलाहाबाद और मिर्ज़ापुर के ज़िलों के पश्चिम-दक्षिण में बोली जानेवाली बोली, २—ठेठ बघेलखण्ड की बोली और ३—बघेलखण्ड के दक्षिण-पश्चिम में बोली जानेवाली बोली। यहाँ 'ठेठ बघेलखण्डी' का नमूना दिया जाता है—

एक सिपाही एक मजूर से एक मेटका[१] घिउ लेवाय के चला। गैल[२] मा मजूर विचार करै लाग कि सिपाही से चार पैसा पाउब तौ मुरगी लेब। मुरगी के बच्चा होइहीं तब उनका बिकान[३] के बोकरी[४] लेब। बोकरी बड़ी होई, बिअई[५] तब उनहीं बिकनि के उहै रुपिया लगाय के आपन काज[६] करब। मेहेरिया[७] आय जइ तब लड़िका होइहीं। लड़िका बड़े होइहैं तब कहिहैं, दादा[८] चला[९] खाय[१०]। तब हम कहब कि अबै न औब। इया बात के सोच-विचार मा मजूर का इया बिसरिगा कि मूड़े[११] मा घिउ कर मेटवा लये हन। गिरहस्ती के सुख मा बूड़ि के पाछे केर "न औब" शब्द जब मन मा कहिसि तब मूड़ डोलिगा[१२] जैसन कि प्रत्यक्ष बात करत मा डोलि जात है। तब मूड़े से मेटवा गिरिगा, घिउ अड़ाय[१३] गा। सिपाही मारै-पीटै लाग, तब मजूर बोला कि न मारा तोहाँर तौ घिऐ भर अड़ान, हमार तौ सलगी गिरहस्तिन बहिगै[१४]।

१—मटका, २—रास्ता, ३—बेंचकर, ४—बकरी, ५—बच्चा देगी, ६—ब्याह, ७—स्त्री, ८—पिता, ९—चलो, १०—खाने, ११—शिर पर, १२—हिल गया, १३—ढरक गया, १४—ख़तम हो गई।

—लेखक

१ हमारी समझ में पुस्तक का नाम 'ग्रामीण हिन्दी' से अच्छा 'प्रान्तीय हिन्दी' होता; क्योंकि वह ग्रामों में ही नहीं, प्रान्त के नगरों में भी बोली जाती है।

—लेखक

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

उन्तीसवाँ परिच्छेद

प्रत्याख्यान

साँझ का समय था। अँधेरा फैल चुका था। सुषमा ने जो फुलवाड़ी सजा रक्खी थी उसी में बैठी हुई वह अपनी एक बाल्यकाल की सहचरी के साथ बातें कर रही थी। उसकी सखी मिस दास ने कहा—हाँ भाई, आज-कल तू इस तरह की कैसी होती जा रही है? ज़रा बतला तो। उस दिन अणिमा कह रही थी कि आज-कल सुषमा दीदी टेनिस खेलने प्रायः नहीं आतीं। पहले तो वे रातदिन टेनिस खेलने की ही चिन्ता में रहा करती थीं। वे बराबर प्रतीक्षा करती रहती थीं कि कब समय आवे कि रैकट लेकर खेल के मैदान में पहुँचें। हाँ सुषमा, सच तो है। भला आज-कल खेलने क्यों नहीं आतीं?

सुषमा ने कहा—आज-कल मैं इस आश्रम की ही चिन्ता में पड़ी रहती हूँ। कितनी जगहें देखीं, परन्तु मन में एक भी नहीं जमी। आज-कल जगह खोजने में ही मेरा सारा समय व्यतीत हो जाता है।

"हाँ, अच्छी याद आगई सुषमा दीदी। तुमने आज-कल कितने झञ्झट मोल ले रक्खे हैं? यह सब क्या हो रहा है? क्या विवाह वर न होगा?"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद सुषमा ने कहा—विवाह शायद मेरे भाग्य में नहीं लिखा है।

मिस दास चकित होगई। आश्चर्य में आकर उसने कहा—यह कैसी बात कह रही हो सुषमा दीदी? भला विवाह क्यों न करोगी?

ज़रा-सा हँसकर सुषमा ने कहा—कर तो सकती हूँ। परन्तु वर कहाँ है?

"क्यों? सुधा तो तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए आया है। क्या वह तुम्हें पसन्द नहीं है?"

सुषमा और मिस दास में ये बातें हो ही रही थीं कि अनादि बाबू भी टहलकर आगये। आते ही उन्होंने कहा—सुषमा, तुम्हारी उस जगह का मोल-तोल मैं कर आया हूँ।

सुषमा ने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा—जगह तय होगई हो तो अब मकान बनवाना आरम्भ कर दीजिए बाबू जी। परन्तु आपको बड़ा कष्ट होगा। भैया जा ही रहे हैं। आप अकेले ही रह जाते हैं।

कन्या के मुँह की ओर ताकते हुए अनादि बाबू ने कहा—मुझे क्या कष्ट होगा बिटिया? परन्तु यह सब तुझसे क्या सँभल सकेगा? अनिल रहता तो वह बहुत कुछ तेरी सहायता कर सकता। वह तो परसों विलायत चला। हाँ रे सुषमा, सुधा और अनिल अभी तक घूमकर आये नहीं!

सुषमा ने कहा—भैया वग़ैरह न जाने क्या क्या ख़रीदने गये हैं। और बाबू जी, आप जो अकेले की बात कह रहे हैं उसके लिए कोई चिन्ता नहीं है। मिसेज़ दास हैं। कभी कभी बासन्ती आ जाया करेगी। सब लोग मिल-जुल कर सँभाल लेंगी। इस प्रकार मुझे ज़रा भी कष्ट न होगा।

"इस तरह के कामों में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। तेरा शरीर उतना अच्छा नहीं है।"

पिता के चिन्तायुक्त मुँह की ओर ताकती हुई सुषमा

ने धीरकण्ठ से कहा—आप चिन्ता न कीजिए बाबू जी। मैं सब ठीक कर लूँगी। ख़ाली हाथ अकेले बैठे बैठे जी नहीं लगता।

मिस दास ने सुषमा से कहा—आठ बज रहे हैं भाई। अब मैं उठती हूँ। घर जाने से पहले ज़रा देर के लिए मुझे मिसेज़ राय के यहाँ जाना होगा।

सुषमा फाटक तक आकर उसे पहुँचा गई।

मनुष्य के शरीर में हृदय नामक जो एक वस्तु है वह किसी प्रकार भी शून्य करके नहीं रक्खी जा सकती। हृदय की इस शून्यता को दूर करने के लिए सुषमा के कई आत्मीय थे। परन्तु इस प्रकार अकेले ही जीवन व्यतीत करते रहने के कारण उसका हृदय और मन सदा ही विक्षुब्ध-सा रहता था। उसके मन में बार बार यही बात आती कि नितान्त आत्मीय व्यक्ति के अपरिमित स्नेह का दान प्राप्त करके भी मैं हृदय की इस शून्यता को दूर करने में समर्थ न हो सकूँगी। यही कारण था कि हृदय की इस शून्यता को निकाल फेंकने के विचार से ही कोई न कोई उपाय खोजने के लिए वह व्यग्र हो उठी थी। यही कारण था कि उस दिन मिसेज़ दास ने जब एक आश्रम बनाने का आग्रह प्रकट किया तब वह तन-मन से उसी काम में लग गई।

पिता को अपना यह अभिप्राय सूचित किये उसे बहुत दिन होगये थे। आज उसकी इतने दिनों की आशा सफलता की ओर अग्रसर हुई है, यह देखकर सुषमा अत्यधिक तृप्ति का अनुभव कर रही थी।

घूम-फिर कर लौटने के बाद आहार आदि से निवृत्त होकर रात को नौ बजे सुधा और अनिल बैठक में बैठे। ज़रा देर के बाद अनिल पिता की खोज में बैठक से निकला। बरामदे में आते ही उसने देखा, उसके माता-पिता बैठे हैं। पिता की कुर्सी के पास ही एक कुर्सी खींचकर अनिल भी बैठ गया। उसने कहा—मैं आपसे एक बात कहने आया हूँ।

अनादि बाबू ने उत्कण्ठित होकर कहा—कौन-सी बात है बेटा?

अनिल ने धीमे स्वर से कहा—कोई वैसी बात नहीं है। सुधा का कल यहाँ से चले जाने का विचार है।

अनिल के माता-पिता एक साथ ही बोल उठे—क्यों?

अनिल ने कहा—पता नहीं, क्यों। वह कहता है कि सुषमा के साथ विवाह करना केवल उसे दुःख ही देना है। इससे तो कहीं अच्छा होगा कि वह जो कुछ चाहती है—

रुँधे हुए स्वर से अनादि बाबू ने कहा—क्यों? सुषमा ने क्या विवाह करना अस्वीकार कर दिया है? नहीं तो! इस सम्बन्ध में तो उसने कभी कुछ कहा ही नहीं। तो सुधा क्यों आपत्ति कर रहा है?

"नहीं, सुषमा ने कोई आपत्ति नहीं की। तो भी पता नहीं, वह क्यों कहता है कि शायद उसके यहाँ आने से सुषमा कुछ दुःखी-सी हो उठी है। उसका यह भी अनुमान है कि विवाह का प्रस्ताव करने पर सुषमा शायद अस्वीकार भी कर दे।

मन ही मन दुःखी होकर अनादि बाबू ने कहा—उसने जब कुछ कहा नहीं है तब एक बार उससे पूछ लेने में हानि ही क्या है?

संयत कण्ठ से अनिल ने कहा—यह बात मैंने भी सुधा से कही थी। परन्तु इस पर वह सहमत नहीं हुआ। उसका कहना है कि इस सम्बन्ध में सुषमा से आग्रह करके उसे सङ्कोच में डालना ठीक नहीं है। इससे वह उससे कुछ भी नहीं कहना चाहता है। कल उसका यहाँ से चले जाने का विचार है।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद अनिल ने कहा—मेरा भी यही विचार है कि अभी आप उसके विवाह के लिए इतने चिन्तित न हों। कुछ दिनों तक उसे और ऐसी ही रहने दें। मैं तब तक विलायत से लौट आऊँगा। मैं तो जा ही रहा हूँ। सुषमा का भी यदि विवाह होगया और वह अपने पति के यहाँ चली गई तो भला आप लोगों से इस घर में रहा जायगा?

सुषमा की माता ने कहा—यह तो ठीक कहते हो बेटा, परन्तु सुषमा के सुख के लिए हम लोग अपनी यह हानि भी सह लेने में कष्ट का अनुभव नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इस प्रकार वह सुखी तो होगी। उसे इसी अवस्था में छोड़कर आज यदि हम मर जायँ तो भला उसकी क्या दशा होगी बेटा?

अनिल ने कहा—यह तो मैं भी समझता हूँ। किन्तु यदि सुषमा को सचमुच विवाह करना स्वीकार नहीं है तो ज़ोर देकर विवाह कर देने में क्या वह सुखी हो सकेगी?

मेरी तो धारणा है कि इससे उसके दुख की ही वृद्धि होगी, उसके सुखी होने की तो इसमें कोई बात ही नहीं है।

कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद अनादि बाबू ने कहा—तो यही सही बेटा। सुधा यदि कहता है कि इस समय विवाह के सम्बन्ध में कोई बात करने की आवश्यकता नहीं है तो मैं भी यही माने लेता हूँ। तब तक तू भी विलायत से लौट आ। बाद को जो कुछ होगा, होता रहेगा।

अनिल उठकर खड़ा हो गया। वह कहने लगा कि सुधा से मैं एक बार फिर इस सम्बन्ध में बातें करूँगा। उससे पूछूँगा कि सुषमा से बातें कर लेने में उसे आपत्ति क्यों है। यह कहकर वह अपने सोने के कमरे में चला गया।

तीसवाँ परिच्छेद

विलायत-यात्रा

बंबई के ताजमहल होटल के एक कमरे में चार प्राणी बैठे थे। वे चारों ही नीरव थे, किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकल रही थी। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता थी।

सामने अरब-सागर की उन्मत्त अशान्त जल-राशि नाच-नाच कर कल्लोल कर रही थी। जहाँ तक दृष्टि पहुँचती, केवल असीम अनन्त जल-राशि ही दिखाई पड़ती। जान पड़ता कि समुद्र की यह नील जल-राशि दिग्दिगन्त में विस्तृत होकर आकाश से मिल गई है। उस समय एक विराट् निस्तब्धता मानो दिग्दिगन्त में विस्तृत थी।

मनोरमा सोच रही थी कि मेरा प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र कल मेरी ही स्नेहमय गोद से विलग होकर किसी अज्ञात अपरिचित देश में अपने भाग्य का अन्वेषण करने के लिए चला जायगा। पुत्र की इस यात्रा के सम्बन्ध में सहमत होने पर भी पता नहीं क्यों उनके हृदय में एक प्रकार की शून्यता की सृष्टि हो रही थी। उनका व्याकुल चित्त एक प्रकार की विपत्ति की आशङ्का से अधीर होता जा रहा था। विदाई के दृश्य की कल्पना करते ही उनके हृदय में जिस अत्यन्त प्रबल तूफ़ान की सृष्टि हो रही थी वह वर्णन से परे थी।

चार-पाँच दिन हुए, अनादि बाबू परिवार-सहित बंबई में आ गये थे। अनिल दूसरे ही दिन 'चायना' जहाज़ से विलायत जा रहा था, इसी से सब लोग उसे जहाज़ पर बैठाने के लिए आये थे।

बड़ी देर की निस्तब्धता के बाद सुषमा की माता ने पुत्र की ओर दृष्टि फेरी। अनिल माता की ही ओर देख रहा था। मनोरमा ने कहा—इस तरह एकाग्र भाव से क्या देख रहा है अनिल?

अनिल ने शान्त कण्ठ से कहा—आपको ही देख रहा हूँ मा। इन्हीं तीन-चार दिनों में पता नहीं, आप कैसी हो गईं। आप इतनी चिन्ता क्यों कर रही हैं? यदि यही हाल रहा तो आप कितने दिनों तक जीवित रह सकेंगी?

आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ से माता ने कहा—पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगता है कि शायद मैं तुझे फिर न देख सकूँगी।

अनादि बाबू ने स्थिर कण्ठ से कहा—शान्त होओ। तुम यदि इस तरह अधीर होओगी तो परदेश में इसे अकेले कितना कष्ट होगा?

अनिल ने देखा कि माता के मुख की आभा एकदम ग़ायब है। वह स्वयं भी माता को प्राणों से अधिक प्रिय समझता था, एक क्षण के लिए भी माता से विलग होना उसके लिए असह्य था। इससे उसे यह अनुभव करने में विलम्ब न हुआ कि इतने दीर्घकाल के व्यवधान की आशङ्का से माता के हृदय में कितने ज़ोर का तूफ़ान उठ रहा होगा। परन्तु वह कर क्या सकता था? उसे तो माता की स्नेहमय गोद त्याग कर यात्रा करनी ही थी और यात्रा करनी थी उस अनन्त असीम जल-राशि को चीर कर एक निर्दिष्ट स्थान पर अपने भाग्य को अधिकार में करने के लिए। आज यह भारत-भूमि उसे कितनी मधुर, कितनी प्रिय मालूम पड़ रही थी! आज माता, पिता, बहन, यहाँ तक कि जन्मस्थान की मिट्टी तक सजीव होकर उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। वह सोचने लगा कि मा जो कुछ कह रही हैं वही यदि सच हो गया तो मैं क्या करूँगा? गौरव प्राप्त करके विदेश से लौटने पर क्या माता के चरणों पर मस्तक रखने का सौभाग्य मिलेगा? यदि इसमें सन्देह है तो सफलता की ही मुझे क्या आवश्यकता है?

मनोरमादेवी ने कोई बात नहीं कही। यह देखकर अनादि बाबू ने कहा—अनिल से बातें करो। तीन-चार वर्ष की कोई बात नहीं है। वे तो देखते ही देखते कट जायँगे। इस तरह अधीर क्यों हो रही हो?

माता के मुख की ओर ताककर सुषमा ने कहा—तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो मा? भैया शीघ्र ही लौट आवेंगे। तुम्हें तो ज़रा भी धैर्य नहीं है।

मनोरमादेवी ने गम्भीर और खिन्नतापूर्ण दृष्टि से कन्या की ओर देखा। वेदना से व्यथित कण्ठ से वे कहने लगीं—तुम दोनों मेरे क्या हो, यह बात वे अन्तर्यामी ही जानते हैं।

सुषमा ने कहा—मा, तुम तो भैया के सम्बन्ध में सदा से ही कहती आ रही हो कि इन्हें विलायत भेजूँगी। फिर आज इस तरह अधीर क्यों हो रही हो?

मुँह से कहना और बात है, लेकिन सन्तान की विदाई का दिन जब आ जाता है तब वह माता के लिए बहुत ही कठोर, बहुत ही निर्मम होता है। यह बात सुषमा-जैसी अनुभवहीन बालिका को किस तरह समझाई जाय, यह उसकी मा की समझ में न आया। उनके सामने जो विराट् विस्तृत समुद्र था उसका आदि कहाँ है और अन्त कहाँ है, यह बात बतलाना सम्भव नहीं था। ठीक इसी प्रकार प्राणों से भी अधिक प्रिय एकमात्र पुत्र के वियोग की आशङ्का से माता के हृदय की चिन्ता ने कितना अधिक विस्तार कर लिया था? क्या वह इस सीमाहीन अगाध सागर के ही समान नहीं थी? इस चिन्ता का क्या कहीं अन्त था? सुषमा पागल थी। उसे वे कैसे समझातीं कि उनके हृदय में किस प्रकार की अपरिसीम व्याकुलता का पवन बह रहा है?

एक दिन की बात है। उस समय अनिल बहुत छोटा था। वह दौड़ता हुआ घर में आया और भयभीत होकर माता की गोद में बैठ गया। पिता के बहुत आग्रह के बाद, व्याकुल भाव से, बुलाने पर भी वह उनके पास नहीं गया। अपने छोटे-छोटे दोनों बाहुओं से मा का गला पकड़कर तोतली बोली में उसने कहा—नहीं, मा के पास से मैं न जाऊँगा। उस दिन की वह सुखमय घटना मनोरमादेवी के स्मृति-रूपी सागर के तल-देश में पड़ी थी। आज वह वर्तमान के प्रगाढ़ अन्धकार को भेदकर उनके मानस पर उदित हो आई। जिस दिन वह घटना हुई थी, अतीत के आलोक से कितना उज्ज्वल था, कितना आनन्ददायक था। अनिल की उस समय की तोतली बोली, उसके मुँह से अस्पष्ट रूप से निकला हुआ अधूरा शब्द आज भी उसकी मा के कर्ण-कुहर में गूँज रहा था। मनोरमादेवी सोचने लगीं कि यदि मैं वह दिन फिर लौटा पाती, आज यदि अनिल उसी तरह उस दिन का अस्पष्ट रूप से उच्चारण किया हुआ शब्द, नहीं मैं न जाऊँगा, दोहरा देता, तो क्या ही अच्छा होता। क्षण भर में वे फिर सोचने लगीं—नहीं, नहीं, ऐसा क्यों हो? वह जाय। इससे तो अनिल सुखी होगा, इसी में मुझे भी सबसे अधिक शान्ति मिलेगी, यों मुझे चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े।

समय किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करता। देखते देखते अनिल को यात्रा का दिन आ पहुँचा। तट-भूमि से दूर अगाधजल में सुसज्जित होकर 'चायना' नामक जहाज़ धुआँ उगल रहा था। तट पर नौका सजी थी, जिस पर यात्री लोग आ-आकर बैठ रहे थे। मनोरमादेवी अनिमेष दृष्टि से इस नौका की ओर ताक रही थीं। आज वे मानो इसी नौका पर अपना सर्वस्व चढ़ा देने आई थीं। पुत्र को विदा करते समय माता का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। उस समय वे सोच रही थीं कि अरब-सागर की उन्मत्त तरङ्गें मानो तरणी की दीवारों पर आ-आकर गिर पड़ती हैं। तो क्या उनके हृदय के अन्तस्तल में भी ये तरङ्गें एक उत्ताल तरङ्गमाला की सृष्टि कर रही थीं?

अनिल माता से विदा लेने के लिए आया। उस समय उनका मुखमण्डल किसी मरी हुई स्त्री के मुख के ही समान निस्तेज और रक्तहीन हो गया था। सारा शरीर वायु के झकोरों का आघात पाये हुए कदली के वृक्ष के समान थर थर काँप रहा था। अनिल आगे बढ़ा और माता के कन्धे पर मस्तक रखकर भर्राई हुई आवाज़ से कहने लगा—मा...अब...समय— ”

मनोरमादेवी पुत्र से लिपट गईं। उसे दृढ़ आलिङ्गन में आबद्ध करके वेदना से व्यथित कण्ठ से उन्होंने कहा—अनिल, बेटा, शायद मैं अब...तुझे...

माता की छाती से मस्तक लगाए हुए अनिल चुपचाप आँसू बहाता रहा।

माता की ओर अग्रसर होकर सुषमा ने कम्पितकण्ठ

से कहा—मा जाने के समय भैया को कष्ट न दो। देखो न मा, भैया...

कम्पित चरणों से अनादि बाबू भी पत्नी की ओर बढ़ गये। उन्होंने कहा—क्या कर रही हो तुम? यात्रा के समय लड़के को रुला दिया न?

मनोरमादेवी पुत्र के वियोग की व्यथा से व्याकुल हो उठी थीं अवश्य, किन्तु वे थीं बहुत ही कर्तव्यपरायणा और धैर्यशालिनी महिला। अपने हृदय को संयत रखने तथा अपने कर्तव्य-कर्म से कभी विचलित न होने का उनका स्वभाव था। इससे ज़रा ही देर में अपने अशान्त हृदय को उन्होंने शान्त कर लिया और पुत्र को सान्त्वना देकर वे स्वाभाविक स्वर में कहने लगीं—अनिल, देरी न कर बेटा!

माता के आभाहीन और निस्तेज मुख पर दृष्टि स्थिर करके रुद्धकण्ठ से अनिल ने कहा—जितनी जल्दी हो सकेगा, उतनी ही जल्दी मैं लौट आऊँगा मा। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करना। यदि तुम मन में दुःखी होओगी तो मुझे बड़ा कष्ट मिलेगा।

पुत्र का मस्तक चुम्बन कर माता नीरव भाव से अश्रु-विसर्जन करने लगीं। पिता के समीप आकर अनिल ने उनसे भी विदा माँगी।

दोनों बाहु फैलाकर अनादि बाबू ने अनिल को दृढ़ आलिङ्गन में आबद्ध कर लिया। उन्होंने अत्यन्त ही करुण स्वर से कहा—जाओ बेटा, ख़ूब सावधानी से रहना, पत्र देने में विलम्ब न करना। अपनी मा की दशा तो तुम देख ही रहे हो।

सुषमा ने कहा—आप भी रो रहे हैं बाबू जी!

सुषमा की ओर ताक कर अनिल ने कहा—सुषमा!

भर्राई हुई आवाज़ से सुषमा ने कहा—भैया! कि··· स...त...र...ह मा...को...

सुषमा के काँपते हुए दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर अनिल ने कहा—सुषमा, तू भी रो रही है? तेरा हृदय तो लोहे से भी कड़ा है। आज तू इस तरह विह्वल क्यों हो रही है? तुम लोगों को छोड़कर मैं बहुत दूर देश में जा रहा हूँ। मुझे अब कष्ट मत दो। ये बातें याद आने पर मुझे वहाँ कितना कष्ट होगा?

जल से भरे हुए दोनों ही नेत्रों को भाई के मुख पर आबद्ध करके सुषमा ने कहा—मा को और बाबू जी के किस तरह......

इतने में जहाज़ का अन्तिम घण्टा बजा। सवार लोग दौड़ दौड़कर सीढ़ियाँ हटाने का उद्योग करने लगे। जहाज़ के डेक पर तमाम गर्द जमी थी। सुषमा उसी पर बैठ गई। आज से पहले उसने एक बार भी नेत्रों से आँसू नहीं गिरने दिये। परन्तु आज वह उन्हें रोकने में किसी प्रकार भी समर्थ न हो सकी। इतने दिनों से मानो उसने आँसुओं का एक बहुत बड़ा कोष सञ्चित कर रक्खा था। आज वह कदाचित् शून्य होकर ही रहेगा। सुषमा सोचने लगी कि भैया को विदा करके हम किस प्रकार इस आनन्द-हीन घर में निवास कर सकेंगे।

जहाज़ छूट रहा था। अनिल ने बड़ी कठिनाई से रोती हुई सुषमा को शान्त करके माता-पिता को सान्त्वना दी और सबको वापस किया। वे सब जब दृष्टिपथ से अतीत हो गये तब वह केबिन में गया और बिस्तरे पर लेट रहा।

इकतीसवाँ परिच्छेद

चिन्ता का आरम्भ

समस्त दिन व्यतीत हो गया। प्रायः सन्ध्या हो आई। सन्तोष बराबर वासन्ती की प्रतीक्षा में बैठा रहा, परन्तु उस समय तक भी वह उसके दृष्टिपथ पर नहीं आ सकी। उस दिन रोगिणी की परिचर्या के लिए जो जो वस्तुएँ आवश्यक होती थीं वे सब चमेली ही ला लाकर सन्तोष के समीप उपस्थित कर देती थी। किन्तु सन्तोष की तृष्णापूर्ण दृष्टि आज केवल कमरे के द्वार की ही ओर लगी रही। उसने यह अनुभव किया कि मुहूर्त भर की दुर्बलता के कारण आज इस तरह मेरे हृदय को पराजय स्वीकार करनी पड़ी है। आज उसका हृदय वासन्ती के लिए व्याकुल हो उठा था। उसके शरीर का अणु-परमाणु तक आज वासन्ती के लिए व्याकुल हो उठा था।

जो मुख सदा घूँघट से ढँका रहता है, मनुष्य की कौतूहलपूर्ण दृष्टि सदा ही उस पर निपतित होने के लिए प्रयत्नशील रहती है। लोग सोचते हैं कि कदाचित् इस घूँघट की आड़ में छिपे हुए मुख में कोई अपरिमित सौन्दर्य-निधि निहित होगी। उसे देखने के लिए पुरुष की दृष्टि जब व्याकुल होती है तब स्वभावतः हृदय

आग्रह उत्पन्न कर देती है। वासन्ती की प्रतिदिन की मुलाक़ात के कारण सन्तोष के हृदय में भी उसी प्रकार का आग्रह उत्पन्न हुआ और वही धीरे धीरे विकसित होकर तीव्र आकांक्षा के रूप में परिवर्तित हो उठा। वासन्ती निरलस थी, सेवापरायण थी। वह बहुत ही शान्त, स्निग्ध तथा मधुर भाव से दृष्टिपात करती और हर एक काम असङ्कोच के भाव से करती रही। उसके मुख-मण्डल पर से प्रसन्नता का भाव कभी दूर नहीं होने पाता था। इस प्रकार अविराम गति से घर के लोगों की सुख-सुविधा तथा रोगिणी की परिचर्या के कार्यों में वह बराबर लगी रहती थी। सन्तोष के साथ उसका जो एक सम्बन्ध था उसे मानो वह भूल ही गई थी। किस प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य की चित्तवृत्ति इस रूप में लाई जा सकती है?

पहले सन्तोष का हृदय वासन्ती की ओर आकर्षित नहीं हुआ था। परन्तु बाद को धीरे धीरे उसके हृदय में वासन्ती के प्रति एक प्रकार की प्रगाढ़ श्रद्धा का भाव उत्पन्न होने लगा। वह अनुभव करने लगा कि वासन्ती को मैंने जिस प्रकार की अश्रद्धा के साथ अपने से दूर कर रक्खा है, सम्भवतः वह इतनी हेय नहीं है। आज रह रहकर पिता के मृत्युकाल के समय की उसके क्षीण कण्ठ से निकली हुई वाणी सन्तोष के कान में गूँज उठती थी। आज सन्तोष की वह प्रतिज्ञा कहाँ है? कहाँ गया उसका वह अहङ्कार? मूर्छित और चेतनाहीन अवस्था में भी एक दिन जिसकी अवहेलना करने में उसने द्विविधा का अनुभव नहीं किया, जिसकी निष्कपट हृदय की व्याकुल प्रार्थना भी उसको प्रतिज्ञा से विचलित करने में समर्थ नहीं हो सकी, इतने वर्ष तक जिसकी ओर दृष्टिपात करने की आवश्यकता का उसने अनुभव नहीं किया, आज सन्तोष का मन उसी वासन्ती के मन के द्वार पर किस वस्तु की भिक्षा के लिए हाथ जोड़े खड़ा था?

जिस प्रकार के विचार को सन्तोष हृदय में स्थान तक नहीं देना चाहता था, आज वही घूम-फिरकर उसके हृदय पर प्रबल भाव अधिकार किये जा रहा था। वासन्ती के हृदय में जो इस प्रकार का परिवर्तन हो गया था उसमें जो इतना अधिक उदासीनता का भाव आ गया था उसके लिए उत्तरदायी कौन था? जो कुछ स्त्री नहीं कर सकती, वासन्ती ने वह भी किया था। किन्तु उसके बदले में उसने पाया क्या था? अत्याचार, अन्याय और उत्पीड़न, और कुछ नहीं। लोग मुँह से ख़ातिरदारी कर देते हैं, परन्तु सन्तोष से तो उतना भी नहीं बन पड़ा। यह क्यों? वासन्ती का क्या अपराध था?

आज सन्तोष के हृदय में वासन्ती के सम्बन्ध की एक एक बात उदय हो रही थी। वह मन ही मन सोचने लगा कि नवपुष्पित यौवन में स्वच्छ, निष्कपट और कल्मषहीन हृदय लेकर स्वेच्छा से वह मेरे समीप गई थी अपनी दुःख-दुर्दशा का हाल बतलाकर शरण माँगने के लिए। उस समय मैंने उसे क्या दिया था? केवल दुःख, केवल कष्ट और उसके साथ ही साथ व्यङ्ग्य—ऐसा व्यङ्ग्य जो हृदय को कुचल दे। क्या इतने दिनों में वासन्ती वह सब भूल गई होगी? तो आज वही यह उपयुक्त अवसर हाथ से क्यों जाने दे? परन्तु यह बात कहाँ है? उसके व्यवहार में तो किसी प्रकार की त्रुटि मालूम नहीं पड़ती?

सन्तोष को मन ही मन बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगा कि मैं अपने इस अशिष्ट और निर्लज्जतापूर्ण आचरण को किस तरह स्वाभाविक आत्मीयता के आवरण से ढँक कर घूमता फिरता हूँ। आज मैं समस्त हृदय से वासन्ती से प्रेम करता हूँ। क्या न्याय की दृष्टि से मैं इसके लिए अधिकारी हूँ? विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब सुदीर्घकाल तक मैंने उसी को दूर कर रक्खा था, उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा हूँ, अपने हाथ से ही मैंने अपने इस व्यवधान के लिए चहारदीवारी खड़ी की है और मैं स्वयं इस चहारदीवारी को फाँदने के लिए व्यग्र हूँ।

बड़ी देर के बाद अपना समस्त सङ्कोच दूर करके सन्तोष ने चमेली से पूछा—वे आज कहाँ गईं रे?

संशयपूर्ण कण्ठ से चमेली ने कहा—किसके सम्बन्ध में कह रहे हो भैया?

"वही नया आदमी रे। तुम लोगों की भाभी।"

ज़रा देर तक चुपचाप बैठी रहने के बाद चमेली ने कहा—पता नहीं, क्या बात है! वे सवेरे से ही लेटी हुई हैं। कहती हैं कि शरीर अच्छा नहीं है। शरीर ख़राब होने का काम भी उन्होंने किया है। डेढ़ डेढ़ महीने हो गये, रात रात भर वे बराबर जागती आई हैं। इस तरह भी कहीं कोई रात में जागता है?

सन्तोष उस समय सोच रहा था कि वासन्ती आज मिथ्या के आवरण में अपनी सारी व्यथा छिपा रखना चाहती है या सचमुच उसकी तबीयत ख़राब है।

सन्तोष ने जब देखा कि चमेली रोगिणी के कमरे में बैठी है तब वह उस कमरे से निकल आया और सीधे दो तल्ले पर गया। वहाँ एक कमरे में जाकर उसने देखा कि वासन्ती सिर से पैर तक एक चादर ताने हुए सोई हुई है।

सन्तोष ने दबे पैर से कमरे में प्रवेश किया। ज़रा-सा दरवाज़ा भिड़ाकर जैसे ही वह पीछे फिरकर खड़ा होने लगा, उसने देखा कि वासन्ती उठकर बैठने जा रही है। यह देखकर उसने कहा—नहीं, नहीं, मैं यहीं—बिस्तरे पर, जगह काफ़ी है। फिर भी धूलि से भरे हुए कमरे के फ़र्श पर वह बैठ गया। वहाँ बैठे बैठे बहुत-सा समय व्यतीत हो गया। परन्तु वासन्ती ने अपनी ओर से कोई भी बात नहीं छेड़ी। यह देखकर सन्तोष ने सोचा कि अब सारी बातें अपने आप ही कह डालना मेरे लिए उचित है। कातर दृष्टि से वासन्ती की ओर ताक कर उसने कहा—क्या तुम्हारी तबीयत कुछ ख़राब है या मुझसे रुष्ट होकर तुम इस तरह पड़ी हो?

वासन्ती ने कहा—तबीयत! नहीं, तबीयत नहीं ख़राब है। और मेरे रुष्ट होने के सम्बन्ध में जो आप पूछ रहे हैं सो मैं रुष्ट क्यों होऊँगी? क्या रुष्ट होने का अधिकार मुझे है?

सङ्कोचपूर्वक ज़रा मुसकराकर सन्तोष ने कहा—तो क्या रोष में भी किसी का अधिकार होता है, किसी का नहीं होता?

वासन्ती ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसे चुप देखकर पत्नी के सूखे हुए मुँह की ओर सन्तोष की दृष्टि गई। अन्त में वह कहने लगा—मुझे जब इस बात का विश्वास हो जायगा कि आप मुझसे रुष्ट नहीं हैं तब मेरे जी में जी आवेगा। मैं सोच रहा था कि कल रात की—

उस समय वासन्ती के मन में यह बात आती थी कि उसके इतने दिनों के रोष या अभिमान के कारण सन्तोष को क्या लाभ या हानि हुई है, यह बात उससे पूछ ली जाय। वह यह भी पूछ लेना चाहती थी कि इतने दिनों के बाद अकस्मात् आज ही क्यों मेरे लिए तुम्हारा हृदय व्यग्र हो उठा है? परन्तु सन्तोष की बात का कोई भी उत्तर न देकर वासन्ती ने केवल इतना ही कहा कि मैं जाती हूँ।

सन्तोष ने कहा—नहीं, नहीं, इस समय जाने की आवश्यकता नहीं है। बुआ जी की तबीयत आज बहुत अच्छी है। जिस तरह भी होगा, आज की रात का प्रबन्ध वे लोग कर लेंगे।

पृथिवी की ओर ताकती हुई वासन्ती बैठी रही। सन्तोष ने उसके जाने में जो आपत्ति की थी उसका खण्डन करने का वासन्ती ने कोई उद्योग नहीं किया। कुछ देर तक उसके मौन-मुख की ओर ताकते रहने के बाद असहिष्णु भाव से सन्तोष ने कहा—तुमसे ज़ोर करके उत्तर प्राप्त करने की शक्ति मुझमें नहीं है, तो भी यदि बतलाओ तो एक बात पूँछूँ।

उसी तरह शान्त और संयत कण्ठ से वासन्ती ने कहा—कहिए।

"मैंने कल जो अपराध किया है उसके लिए तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

वासन्ती ने अपना झुका हुआ मस्तक ऊपर की ओर उठाया। उसने देखा तो सन्तोष उसी की ओर ताक रहा था। इससे वासन्ती की आँखों की पलकें अपने आप ही झुक गईं। सन्तोष के इस लज्जाहीन दृष्टिपात के कारण उसका मुख रक्तवर्ण हो उठा। किन्तु उसका यह भाव भी सन्तोष की दृष्टि को बच सका। उपेक्षिता पत्नी की वह लाजभरी चितवन ही आज सन्तोष को बहुत मधुर लग रही थी। उसके कारण उसे इतना सुख मिल रहा था, जितना शायद दृष्टिहीन हो जाने के बहुत दिन बाद नई दृष्टि-शक्ति पा जाने पर भी किसी को न होता हो। वासन्ती जो कुछ कहने जा रही थी उसे वह कह न सकी।

निस्तब्धता भंग करके सन्तोष ने कहा—कहो न! क्या कहती थीं? रुक क्यों गईं? बोलो, मेरा अपराध क्षमा कर सकी हो।

लज्जा के कारण रुँधे हुए कण्ठ से वासन्ती ने कहा—आप बार बार वह बात क्यों कह रहे हैं? मैं—

उस समय सन्तोष को यह इच्छा हो रही थी कि वासन्ती का झुका हुआ मुख उठाकर एक बार देख ले कि इस शान्त सुन्दर और मौन अधरोष्ठ के बीच में कौन सी भाषा उसने रुद्ध कर रक्खी है। धीरे धीरे वह कमरे से निकल गया।

——

बत्तीसवाँ परिच्छेद
उलटी हवा

बुआ जी का शरीर उत्तरोत्तर आरोग्य होने लगा। वे सबको पहचानने लगीं। उनकी स्मरण-शक्ति भी ठिकाने पर आगई। इधर चार-पाँच दिन से उन्हें ज्वर आना भी बन्द होगया था। डाक्टर कह गये थे कि कल इन्हें भोजन दिया जाय। आज-कल वे दस-पाँच मिनट उठकर बैठने भी लगी थीं। विनय की मा का शरीर ज़रा कुछ अच्छा होते ही ताईजी सिराजगंज चली गईं।

एक दिन दूसरे वक्त वासन्ती अनार का रस निचोड़कर बुआजी को पिलाने जा रही थी। इतने में उन्होंने कहा—कितने दिनों तक यह रस पीती रहूँगी बिटिया? एक स्त्री को इस तरह बचा लेने की क्या आवश्यकता थी? तुम लोग जिस तरह खा-पीकर—

इतने में मुसकराते हुए कमरे में प्रवेश करके सन्तोष ने कहा—किसकी बात कह रही हो बुआ जी?

बुआ जी ने सन्तोष को अपने पास बैठने की आज्ञा देकर कहा—तुम लोगों के पागलपन की बात कह रही थी। क्या एक स्त्री को भी बचाने के लिए इतना उद्योग करना आवश्यक होता है? देखो न घंटे घंटे पर औषध और फल का रस देते देते बड़ी बहू तंग आगईं। मेरे पीछे चौबीस घंटे उन्हें परेशान रहना पड़ता है। मैं मानो उनकी छोटी-सी लड़की हूँ। तुम लोगों की भी यही दशा थी।

सन्तोष ने कुछ खिन्न भाव से कहा—क्यों बुआ जी, क्या स्त्री मनुष्य ही नहीं है? क्या स्त्री के प्राण प्राण ही नहीं हैं?

बुआ जी ने दुःखमय स्वर में कहा—परन्तु इसका तुम लोग कहाँ अनुभव करते हो?

सन्तोष ने समझ लिया कि यह ठोकर बुआ जी ने मेरे ही ऊपर जमाई है, तो भी इस बात को उसने टाल देने का ही प्रयत्न किया। वह कहने लगा कि आपकी बीमारी के कारण फूफा जी की कैसी अवस्था हो गई थी, उन्हें देखे बिना आप न अनुभव कर सकेंगी।

बुआ जी ने कहा—यह बात ठीक है बेटा, परन्तु उन्हें और तुम लोगों को छोड़कर मैं मर सकती तभी अच्छा था। भाग्य में कब के लिए क्या लिखा है, यह कौन बतला सकता है?

सन्तोष ने कहा—ज़रा देर के लिए मुझे बाहर जाना है। यह कहकर जैसे ही वह उठकर खड़ा हुआ, उसकी पिपासाकुल दृष्टि क्षण भर के लिए वासन्ती पर निपतित हुई। उसने देखा तो वासन्ती शान्त और स्निग्ध दृष्टि से उसी की ओर ताक रही थी। उतावली के साथ अपने अबाध्य चरणों को जूतों में डालकर वह कमरे से निकल पड़ा।

इधर कुछ महीनों से एक प्रकार की प्रबल चिन्ता सन्तोष के हृदय को बराबर ही व्यथित करती आ रही थी। प्रयत्न करके भी हृदय से उस चिन्ता को दूर करने में सन्तोष सफल नहीं हो सका। वह बराबर इसी बात पर विचार करता रहता कि वासन्ती मुझसे प्रेम करती है या नहीं! आज जो आँख बचाकर वासन्ती उसकी ओर ताक रही थी उसके कारण उसके इस प्रश्न का उत्तर बहुत कुछ मिल गया। वासन्ती की उस समय की चितवन ने सन्तोष के क्षणभंगुर और निराशापूर्ण हृदय में थोड़ी-सी आशा का बीज वपन किया, ऐसा प्रतीत होने लगा। रात्रि में जब शय्या पर लेटा तब भी सन्तोष के हृदय-रूपी आकाश पर वासन्ती की आँखें दो उज्ज्वल नक्षत्रों के समान उदित हो आईं।

यह घटना हुए कई दिन व्यतीत हो गये। साँझ का समय था। वासन्ती थोड़े से पान लेकर बना रही थी। इतने में सुजाता आई और पूछने लगी—क्यों दीदी, क्या तुम कल चली जा रही हो?

पान में कत्था लगाते लगाते मुँह नीचा किये ही हुए वासन्ती ने कहा—क्या करूँ बहन? भाग्य ही खींचे लिये जा रहा है। जाऊँ न तो करूँ क्या?

कुछ कृत्रिम रोष का भाव दिखलाती हुई सुजाता कहने लगी—नहीं दीदी, आप न जाने पावेंगी। आपके चले जाने पर मैं क्या करूँगी?

वासन्ती ने धीरे से हँसकर कहा—इतने दिनों तक तो तुम्हीं लोग घर-गृहस्थी का सारा काम-काज सँभालती आ रही हो, अब तुमसे क्यों न सँभल सकेगा? किसी के बिना किसी का कोई काम रुका नहीं रहता रे! मैं तो घुमक्कड़ हूँ सुजाता। मेरे दिन इसी तरह भटकते भटकते बीत जायँगे।

सुजाता ने कहा—यह सब मैं नहीं सुनना चाहती दीदी। आपके चले जाने पर काम न चलेगा।

सुजाता मुँह नीचा किये हुए बैठी थी। वासन्ती ने उसे पकड़कर उसका झुका हुआ मुँह ऊपर की ओर उठाया और हँसी हँसी में कहने लगी—तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक तो हैं ही, उनसे भी तो तुम बहुत से काम करवा ले सकती हो। इस तरह के प्रेमी जहाँगीर जिसके हैं उसके लिए इस प्रकार की चिन्ता करने की कौन-सी बात है सुजाता?

सुजाता ने वासन्ती का हाथ छुड़ा लिया। वह कहने लगी—चलिए, चलिए! मुझे कहने के लिए आप भी बहुत हैं। इधर आपके जगतसिंह जो आज-कल इस तरह गोते खा रहे हैं, उनकी ओर मानो आपका कोई ध्यान ही नहीं है।

वासन्ती ने एक हलकी सी साँस लेकर कहा—कौन कहता है रे? नहीं तो। मेरी समझ में तो ऐसी कोई बात है नहीं। परन्तु लोग कहते हैं। सुनने में भी ज़रा-सा सुख है। वही मुझे भी......।

रहस्यपूर्ण दृष्टि से वासन्ती के मुँह की ओर ताककर सुजाता ने कहा—भुनी हुई मछली फिर उठ कर खाना नहीं जानती। यह जो इतने अधिक चक्कर लगाये जाते हैं, किसलिए?

वासन्ती ने कहा—बाप रे, ऐसी बात! बिल्ली के भाग्य से एक दिन सिकहर टूट गया था, राह भूल कर कुराह में पड़ गये थे, उसी में तुम लोगों को इतना आनन्द आ गया।

सुजाता ने कहा—ठहरिए, ठहरिए। यह सब हम समझती हैं। साँप की फुफकार मदारी से छिपी नहीं रह सकती।

वासन्ती ने वक्र दृष्टि से ज़रा-सा ताककर कहा—यह तो तुम समझोगी ही। वशीकरण का मन्त्र तुम लोगों को सिद्ध है न! तुम लोग जो कामरूप का चलानी माल हो। विनय बाबू की वर्तमान दशा ही इसका प्रमाण है। देखो न, वे कैसे भेड़ बने रहते हैं।

सुजाता ने कहा—आप ही क्या कम हैं?

वासन्ती ने कहा—इसका भी प्रमाण है। सात वर्ष में तो कुछ कर नहीं सकीं। अब तुम्हें देखने को जो कुछ बाक़ी हो।

इतने में चमेली के लड़के मंटू ने आकर कहा—छोटी मामी, छोटे मामा बुला रहे हैं।

वासन्ती हँसते हँसते लोट-पोट हो गई। सुजाता ने यह देखकर कहा—उन्हें बुलाने का और कोई समय ही नहीं था?

यह सुनकर वासन्ती और हँसी। वह कहने लगी—इसके लिए भी कोई समय-असमय होता है? घड़ी की ... जिस समय जिस ओर घूम पड़े।

मुँह दबाकर हँसते हँसते वासन्ती ने कहा—अच्छा अच्छा, मैं भी देख लूँगी। अभी जल्दी तो मरी नहीं ... रही हूँ।

सुजाता ने कहा—देखना।

मंटू का हाथ पकड़े हुए सुजाता कमरे से निकल गई।

कितना समय इसी तरह बीत गया, वासन्ती यह ... न सकी। उस समय वह सोच रही थी कि निःसङ्ग, ... हीन और नीरस जीवन को ज़रा-सी शान्ति प्रदान ... की आशा से तीर्थभ्रमण के निमित्त जिस घर का ... छोड़कर स्वेच्छा से चली आई हूँ, आज फिर उसी ... में, उसी घर में, मुझे लौटकर जाना पड़ेगा।

वासन्ती का इस तरह अकेले रहकर जीवन व्य... करना कितना कष्टकर था! इतने बड़े बड़े दिन, ... बड़ी बड़ी रातें वह कितने क्लेश से व्यतीत किया ... थी! उसकी दुःखमय अवस्था का क्या और भी ... अनुभव करनेवाला था?

एकाएक के शब्द से उसका विचार प... हो गया। बिजली की तेज़ रोशनी में उसने ... दरवाज़े के पास सन्तोष उसी की ओर ताकता हुआ है। वासन्ती की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही ... मुस्कराकर उसने कहा—बुआजी को दवा दे चुकी ...

वासन्ती के मस्तक हिलाकर अपनी स्वी... प्रकट करते ही सन्तोष ने मृदु कण्ठ से कहा—ए... कहने आया था।

वासन्ती उस समय सोच रही थी कि ये ... इतने अच्छे आदमी कैसे हो गये। फिर भ... की यह बात उसके कान में व्यङ्ग्यमय हँसी के ही ... आघात पहुँचाने लगी। अपने मन का भाव ... यथासाध्य संयत कण्ठ से उसने कहा—कौन-सी बात ...

सन्तोष ने कम्पित कण्ठ से कहा—तो क्या ... जा रही हो?

ज़रा-सा सङ्कोच का भाव प्रदर्शित करके मुँह नीचा ... हुए वासन्ती ने कहा—हाँ।

"क्यों जा रही हो, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ?"

वासन्ती ने असहिष्णु भाव से कहा—ताई जी की ... तबीयत ख़राब है। बाबू जी के श्राद्ध का भी समय ... रहा है—

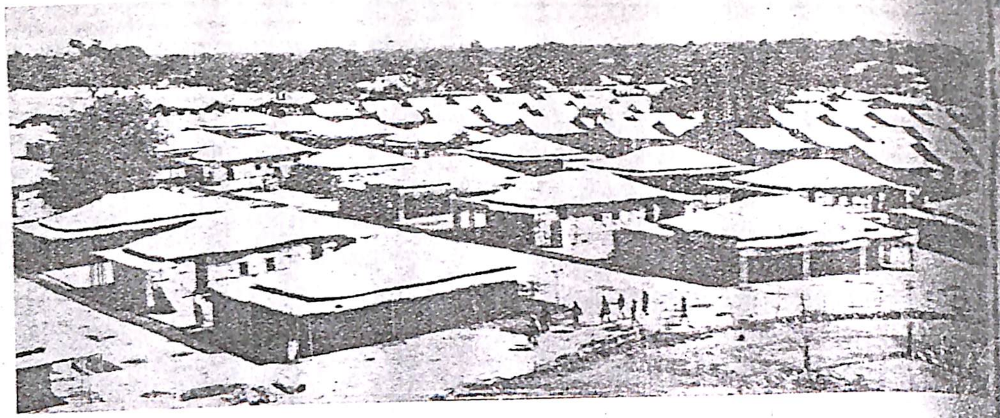
मृदु स्वर से सन्तोष ने कहा—क्या इस समय न ... तो काम न चल सकेगा? बुआ जी तो अभी अच्छी ... हुई हैं।

वासन्ती ने मुँह नीचा किये हुए कहा—गये बिना ... तरह—

सन्तोष ने मृदु स्वर से कहा—नहीं, मैं रोकता नहीं ... केवल—सन्तोष और नहीं खड़ा रहा।

डिब्बे के भीतर समेट समेट कर पान रखते हुए ... वासन्ती ने मन ही मन कहा—अब क्या हो गया है? साफ़ ... तो उन्होंने कोई बात कही नहीं, साथ ही उनके ... आने का उद्देश्य क्या था, यह भी मैं न समझ सकी। ... कुछ दिनों से स्वामी के भावों में उसे बहुत कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा था, परन्तु यह परिवर्तन वासन्ती के मन में जमता नहीं था। बात यह थी कि सन्तोष एक सनकी आदमी था, यह बात वह अच्छी तरह समझ गई थी। इससे वह सोचने लगी कि यह भी शायद उनकी एक प्रकार की सनक ही है। परन्तु एक बात हुई। सन्तोष के विषादमय और सूखे हुए मुख का प्रतिबिम्ब वासन्ती के निराश हृदय में उदित हो आया।

सन्तोष के हृदय का पवन आज-कल विपरीत दिशा की ओर बहने लगा है, यह बात वासन्ती अच्छी तरह से तो नहीं, लेकिन कुछ कुछ समझने लगी थी। परन्तु पति की बुद्धि में जो इस प्रकार का परिवर्तन हुआ है, उस पर उसे विश्वास नहीं होता था। इस कारण सन्तोष के मन की बात बहुत कुछ समझकर भी प्रायः उसकी उपेक्षा कर देना चाहती थी। वह सोचती कि शायद आकाश-कुसुम की माला गूँथना ही उनका उद्देश्य हो। ऐसी दशा में उनके हृदय की बात न जानना ही अच्छा है। मैं गँवारिन हूँ, गँवारिन की ही तरह पड़ी रहूँ, यही ठीक होगा।



[विठलनगर का एक कोना

तासीतट का विठ्ठलनगर

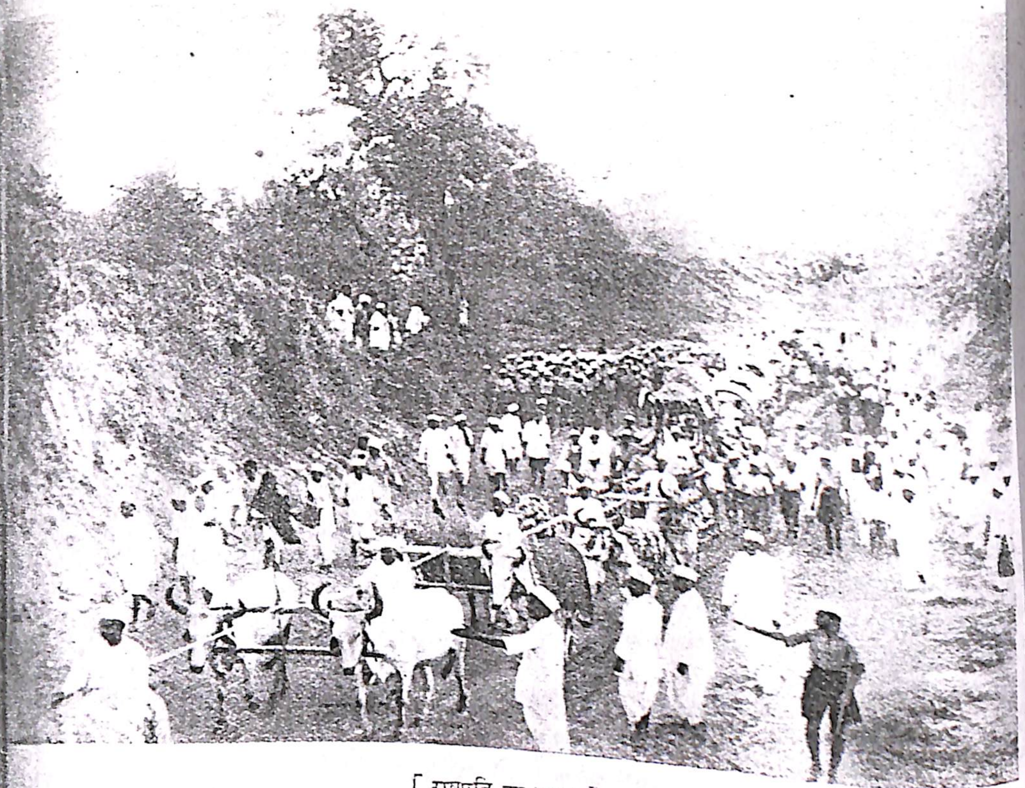
[दिल्ली की 'हिन्दी-समाचार-समिति'-द्वारा प्राप्त]

यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं कि विठलनगर १६३८ की कांग्रेस का नवीन और मौलिक आविष्कार था। वास्तव में वह था कविकल्पना से भी मधुरतम, चित्रकार की कला से भी अधिक कलापूर्ण तथा उदीयमान कांग्रेस के भविष्य का विराट् रूप में दिग्दर्शन। आज तक लोगों ने कांग्रेस के विषय में जितनी कल्पनायें की होंगी, सब पर पानी फिर गया और हरिपुरा का केन्द्रस्थल विठलनगर कांग्रेस-राज्य के एक आकर्षक चित्र के रूप में दिखाई दिया।

एक हरे-भरे वन्य प्रान्त में, नगर-कोलाहल से ३० मील की दूरी पर वह विशाल राष्ट्रीय नगर बसाया गया था जो उस समय भारत की राजधानी दिल्ली से भी शान में बढ़ा-चढ़ा दिखाई दे रहा था। अगर दिल्ली में साढ़े तीन लाख आदमी रहते हैं तो वहाँ भी इससे अधिक संख्या पाई गई, जो एक दिन उमड़ कर पाँच लाख तक हो गई थी। जिस नाम की याद आते ही एक पवित्र आत्मा की मूर्ति हृदय-पटल पर आ उपस्थित होती है उन्हीं महान् नेता स्वर्गीय श्री विठलभाई पटेल की पुण्य-स्मृति में १९३८ में कांग्रेस का विठलनगर बनाया गया था।

पूर्व-इतिहास— लेकिन उसका पूर्वइतिहास बहुतों को न मालूम होगा जिस विठलनगर ने पिछले दिनों भारत ... गौरव का प्रदर्शन किया था, ६ मास पूर्व तासी-तट का ... भू-भाग हरे-भरे खेतों तथा कटीले करीलों और सैकड़ों ... के जङ्गली पौधों से लहराता था और जब सावन-भादों ... तासी उमङ्ग पर आती थी तब यह वन्य प्रान्त जलमग्न ... जाता था। लेकिन कांग्रेस के दिनों में वहाँ जन-समुद्र हिलोरें मार रहा था। सारा वन्य प्रान्त आगन्तुकों को राष्ट्री... और स्वतन्त्रता का मौन सन्देश सुना रहा था। लेकिन ... भूमि का भी वह क्रांतिकारी दिवस था, जिस दिन ... की महान् विभूति महात्मा गान्धी ने ५ मास पूर्व इस ... पर पदार्पण किया और तासी की चंचल तरङ्गों और ... पर की हरी-भरी सुन्दरता में तपस्वी का मन उलझ ... और उन्होंने वहाँ की सुन्दरता से प्रभावित हो ... ही दिया कि हरि के नाम पर बसे हुए हरिपुरा की ... भूमि पर हरि का नाम लेकर नगर बनाने में ... होगी।

इसके कुछ ही सप्ताह बाद एक भारी भरकम ... और सैकड़ों की संख्या में ग्रामीण मज़दूर उस स्थान ... पहुँचे। झाड़ी-झंखाड़ काटकर और ऊबड़-खाबड़ ...

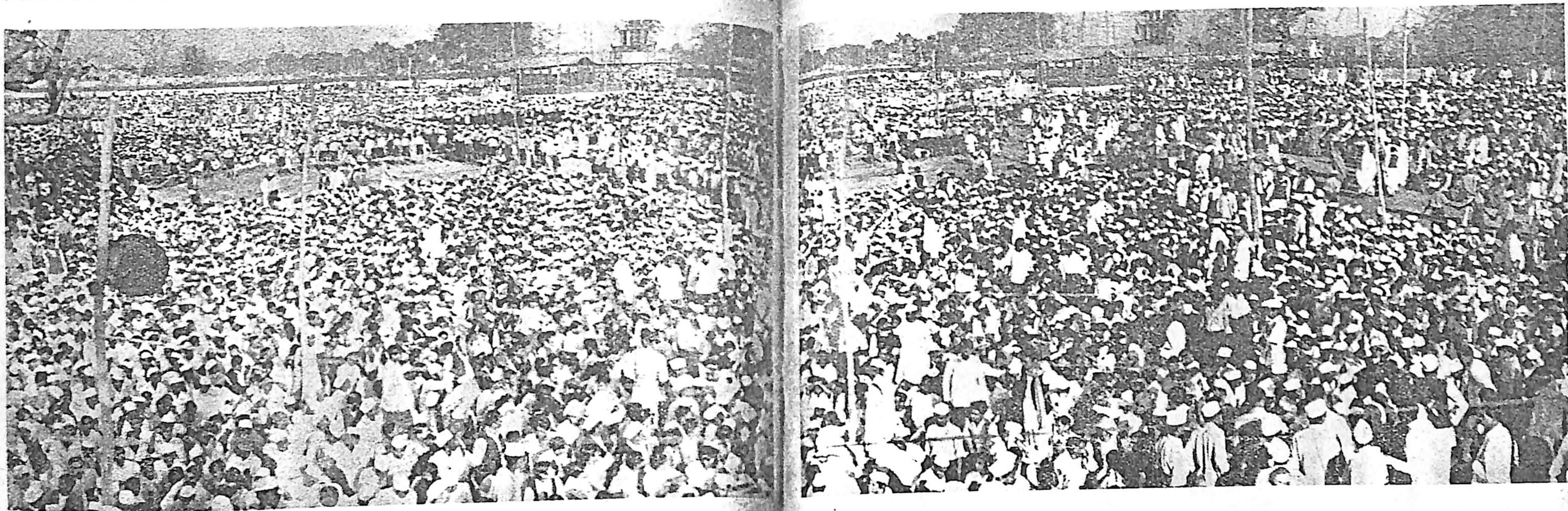


[राष्ट्रपति का रथ।]

...बर कर यह स्थान दिन प्रतिदिन नगर के साँचे में ढाला ...ने लगा।

और उस दिन—लेकिन उस दिन जब मैं ५ फ़रवरी ... सूरत से टी० वी० रेलवे की लाइन पर एक गाड़ी में ...गति से विठलनगर की विभिन्न दृष्टि-कोणों से कल्पना ... हुआ उसी की ओर बढ़ा जा रहा था, मेरे सामने एक ... दृश्य उपस्थित था। स्वयंसेवकों के जत्थे के जत्थे ... नर-नारियों तथा दूकानदारों के झुंड के झुंड मेरे ... गाड़ी में सवार थे। अभी वैसे तो कांग्रेस के अधि...वेशन को दस दिन थे, फिर भी उस दिन ऐसी भीड़ थी कि ... में मुश्किल से खड़े होने को स्थान मिल रहा था। ... इस कशमकश में सभी के हृदय में एक राष्ट्रीय ... हिलोरें मार रही थी। सारे गुजरात-प्रान्त और ..., अहमदाबाद आदि बड़े बड़े शहरों से भी स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं के जत्थे के जत्थे पहुँच रहे थे और महिलायें भी इन में कम नहीं दिखाई दे रही थीं।

रेलवे कम्पनीवाले भी इस अवसर पर भाग्य की सरा-हना कर रहे थे। बहुतों को यही कहते सुना कि कम्पनी को कांग्रेस की कुछ सेवा करने का आज यह पहला मौक़ा मिला है, इसलिए इस अवसर पर वह अपना प्रबन्ध पूरी ताक़त के साथ प्रदर्शित करेगी। इसी लिए जहाँ एक ओर ताप्ती-तट पर विठलनगर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ, वहाँ बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे ने सूरत से मढ़ी तक के स्टेशनों का जीर्णोद्धार करना प्रारम्भ कर दिया। सभी स्टेशनों के प्लेटफ़ार्म सुधार कर ऊँचे बना दिये गये थे। आज इस लाइन पर एक मनोरञ्जक दृश्य सामने दृष्टिगोचर हो रहा था, जो बड़े बड़े जङ्क्शनों पर घटनेवाली घटनाओं से कम मनोरञ्जक नहीं था। स्टेशन



[हरिपुरा कांग्रेस में अपार जनसमूह का दृश्य।]

पर रेलवे की पटरियों की तादाद भी काफ़ी बढ़ा दी गई थी। स्टेशनों पर माल-गाड़ियाँ पैसेञ्जर ट्रेनों के कारण रुकी खड़ी थीं। स्टेशनों के बाहर यात्रियों के ठहरने के लिए चटाइयों के मुसाफ़िरख़ाने बनाये गये थे। जिन स्टेशनों पर कभी मुश्किल से पानी पीने को मिलता था, आज वहाँ बड़े बड़े 'लाज' और 'विश्रान्तिगृह' बने हुए थे। चाय-पानी की तो हर स्टेशन पर भरमार थी। बारडोली स्टेशन पर पहुँचते ही न जाने क्यों स्वतः ही गुजरात का गौरव आँखों के सामने नाच उठा था। सन् २१ की एक एक घटना कल्पना बनकर सामने आ उपस्थित हो रही थी। यह बात स्पष्ट हो रही थी कि गुजरात जो करके न दिखा दे, थोड़ा है। बारडोली स्टेशन के सामने मोटरों की लम्बी क़तार यात्रियों को विठ्ठलनगर ले जाने के लिए तैयार खड़ी थी। काफ़ी जनता यहीं उतर पड़ी।

स्टेशन के ठीक सामने की ओर छोटे झोपड़े भी दिखाई दे रहे थे, जो रेलवे के उन कर्मचारियों के लिए बनाये गये थे जो यहाँ स्टेशनों पर ख़ास प्रबन्ध के लिए बाहर से आये थे। इसके बाद सफ़र का आख़िरी स्टेशन मढ़ी आया। सूरत से रेल की पटरी के किनारे किनारे चले आनेवाले लालरङ्ग से पुते हुए बिजली के खम्भे बारडोली से सीधे विठ्ठलनगर की ओर चले गये थे। लेकिन मढ़ी ही विठ्ठलनगर के यात्रियों के लिए सबसे विस्तृत और विशाल स्टेशन था। वह सब प्रकार से किसी बड़े जंकशन के मुक़ाबिले का बनाया गया था और विठ्ठलनगर को आने वाली स्पेशल ट्रेनें यहीं तक जाती थीं। स्टेशन के बाहर मोटर और सवारियाँ बहुत बड़ी संख्या में खड़ी थीं। प्रत्येक गाड़ी से पाँच सौ के लगभग यात्री उतरकर विठ्ठलनगर की ओर जाते थे। रेलवे कर्मचारी सैकड़ों की संख्या में व्यस्त भाव से इधर-उधर आ-जा रहे थे। साथ ही साथ बहुत स्वयं-सेवक भी उपस्थित थे, जो यात्रियों की कोई विशेष आवश्यकता पूर्ण करने के लिए रक्खे गये थे। कुलियों और छोटे-मोटे अन्य कर्मचारियों की तो गिनती ही नहीं थी।

मढ़ी-स्टेशन में उतरकर मैं दक्षिण की ओर बढ़ा। उधर ओर एक बाज़ार-सा लगा हुआ था, जहाँ आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उपस्थित थीं और भोजनालयों और विश्रान्ति-घरों की काफ़ी भरमार दिखाई दी। यहाँ मैदान में मुसाफ़िर-ख़ाना भी इतना बड़ा बना हुआ था कि उसमें पचास हज़ार से अधिक आदमी बैठ सकते थे। लेकिन अभी वह एकदम ख़ाली ही सा था, क्योंकि अभी जो आते, दूसरे ही क्षण मोटर उन्हें विठ्ठलनगर की ओर ले उड़ती। इसलिए जब कुली ने सामान एक मोटर में रख दिया तब मैंने एक सरसरी निगाह एक क़तार में खड़े मोटरों पर फेंकी। सभी भारी-भरकम थे और बीस से लेकर तीस तक सवारियाँ ले जा सकते थे। प्रायः सभी मोटर भर गये थे और जब वे स्टेशन से चले तब लगभग पचास मोटरों की एक लम्बी लैनडोर बन गई। मोटरों की वह लम्बी पंक्ति उस हरीभरी तारकोल की सड़क पर जिसके दोनों ओर आम, महुआ और बरगद के वृक्ष लगे हुए थे, टेढ़ी-मेढ़ी, कभी ऊँची-नीची होकर जब दौड़ती हुई दिखाई देती थी, एक पूरी रेलगाड़ी के समान जान पड़ती थी।

सबसे बड़ी विशेषता उस सड़क पर यह थी कि एक एक फ़र्लांग के अन्तर से स्टेशन से लेकर नगर तक सड़क के दोनों ओर गैसबत्तियाँ लगाई गई थीं। मील दो दो मील पर छोटी-छोटी चौकियाँ भी सड़क पर बनी हुई थीं, जो शायद गैसबत्तियों की देख-भाल करनेवालों के लिए बनाई गई थीं। इस प्रकार उस घूम-घुमाव की लगभग साढ़े दस मील लम्बी सड़क को पार कर जब हम विठ्ठलनगर के समीप-वर्ती गाँव में पहुँचे तब उसका प्रारम्भिक स्वरूप और भी स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगा। औरतें और बच्चे बड़ी उत्सुकता और उल्लास से आने-जानेवाले यात्रियों के धूम-धड़क्के को देख रहे थे। गाँव के अधिकांश आदमी तो उस समय विठ्ठलनगर में ही काम कर रहे थे, इसलिए औरतें और बच्चे ही आने-जानेवाली सवारियों से लदी हुई मोटरों को अपने ग्राम से गुज़रते देखकर आनन्द-विभोर हो रहे थे और ख़ुशी के मारे जय के नारे लगाने लगते थे। तरसाडा ग्राम से पश्चिम की ओर, विठ्ठलनगर की ओर बढ़ने पर सड़क के किनारे दोनों ओर बाँस और चटाई की झोपड़ियाँ इधर-उधर बिखरी-सी दिखाई दीं।



[आस-पास के गाँवों की महिलायें जो हरिपुरा में कांग्रेसी मेहमानों के लिए धान कूटने आई थीं।]

इनमें पुलिस-कर्मचारियों और पी० डब्ल्यू० डी० विभाग के कर्मचारियों के डेरे लगे हुए थे। मार्ग में एक-दो पुलिस के सिपाही बड़ी सतर्कता के साथ आने-जानेवाली लारियों को इस आशा से घूर रहे थे कि कहीं एक-आध शिकार हाथ लग जाय तो उसका चालान भी कर दिया जाय। लेकिन यहाँ तो सारे मोटरलारीवाले कांग्रेस की आज्ञाओं का पालन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने ज़्यादा सवारी भरना भी कांग्रेस को धोखा देना ही समझा था और कांग्रेस के नियम के विरुद्ध मोटरों का किराया भी नहीं बढ़ाया था। उसी छः आनावाले रेट से सवारियाँ ढो रहे थे जब कि लोग पहले पहुँचने के लोभ में एक एक रुपया तक देने को तैयार थे। उन्होंने अधिवेशन के दिनों में भी जब वे मनमाना दाम वसूल कर सकते थे, एक पैसा भी अधिक नहीं बढ़ाया। मैंने एक ड्राइवर से पूछा तब उसने बतलाया कि कांग्रेस की तख़्ती लगाकर हम कांग्रेस को धोखा नहीं दे सकते। विट्ठलनगर की सीमा से एक मील की दूरी पर पुलिस की अंतिम चौकी मिली और वहीं से उस राज्य की इतिश्री-सी हो गई। इधर-उधर वालंटियर ख़ाकी कमीज़, नीली खादी का पेन्ट और सिर पर सफ़ेद गांधी कैप लगाये नियुक्त थे।

विट्ठलनगर में—बस यहीं से आधे मील की दूरी पर बसे हुए चटाइयों के विट्ठलनगर की झलक दिखाई देने लगी। नगर का प्रमुख प्रवेश-द्वार 'सरदार-गेट' दूर से ही अपनी विशालता का परिचय दे रहा था। जिस प्रकार प्राचीन ज़माने में नगर-प्रवेश की ड्योढ़ियाँ रहती थीं, ठीक उसी आधार पर विट्ठलनगर में भी दो द्वारों की रचना की गई थी, जिनमें से एक का नाम 'सरदार' और दूसरे का नाम 'दरबार' गेट था। पश्चिमी गेट 'दरबार-गेट' था,



[सफ़ाई के कार्य में लगी हुई महिला स्वयंसेविकायें।]

जहाँ से बारडोली की ओर से आनेवाले यात्रियों को प्रवेश करना पड़ता था। इसके अलावा एक तीसरा गेट भी उत्तर की ओर ताप्ती पार कर आनेवाले यात्रियों के लिए था। सरदार-गेट पर दो सैनिक सतर्कतापूर्वक द्वार-रक्षक का कार्य कर रहे थे। उन्होंने हाथ दिया नहीं कि मोटर वेग से द्वार पार कर नगर के भीतर जा पहुँचा। एक नई दुनिया में मानो हम उस समय पहुँच गये थे। दूर तक सामने की ओर नज़र दौड़ाने पर बिलकुल सीधी सड़क थी, जिसके दोनों ओर बरगद के बड़े बड़े झाड़ और अन्य हरे वृक्ष छाया कर रहे थे। उसके दोनों ओर बाँस और चटाइयों के उस विशाल नगर का छोर भी नहीं दिखाई देता था। यहाँ-वहाँ दोनों ओर सफ़ेद खादी पहने लोग दौड़-धूप करते दिखाई दे रहे थे। स्वयं-सेवक भी पचास पचास गज़ के अन्तर से खड़े हुए सड़क पर पहरा दे रहे थे और सीटी-द्वारा आने-जानेवाली मोटर-लारियों को आगे जाने के लिए हाथ दे रहे थे।

बग़ल में सबसे पहले किसान-निवास के झोपड़े दिखाई दिये, जिनमें पचास हज़ार तक किसानों को ठहरने के लि[ए] स्थान था। ठीक इसी के बग़ल में विट्ठलनगर का सी० बाज़ार नाम का एक बाज़ार दिखाई दे रहा था, जिसमें होट[ल] और भोजनालयों के अलावा अन्य आवश्यक वस्तुएँ मिलती थीं। 'किसान-निवास' के सामने की ओर विस्तृ[त] 'प्रेक्षक-निवास' दृष्टिगोचर हो रहा था, जिसमें बाहर आनेवाले अतिथियों के आराम के साथ रहने का स[ब] प्रकार का प्रबन्ध था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक खा[ट] और पानी के लिए एक घड़ा तथा ज़मीन पर बिछानेवाली चटाइयों का प्रबन्ध था। इस हिसाब से प्रत्येक 'निवास' में ६ आदमियों के रहने का प्रबन्ध था। प्रेक्षक-निवा[स] अलग अलग खंडों में विभाजित था और प्रत्येक खंड का नामकरण वर्णमाला के अक्षरों पर किया गया था, जिससे पता लगाने में असुविधा न हो। प्रत्येक विभाग में डेढ़ सौ से लेकर दो सौ से भी ऊपर कमरे थे। अधिवेशन के दिनों में तो प्रेक्षक-निवास से लेकर नगर के दूसरे छोर तक जहाँ कांग्रेस की सारी कार्रवाइयाँ हो रही थीं, मोटर-बस चल[ती]



[आस-पास के गाँवों की महिलायें जो हरिपुरा में कांग्रेसी मेहमानों के लिए धान कूटने आई थीं।]

में पुलिस-कर्मचारियों और पी० डब्ल्यू० डी० विभाग कर्मचारियों के डेरे लगे हुए थे। मार्ग में एक-दो लस के सिपाही बड़ी सतर्कता के साथ आने-जानेवाली रियों को इस आशा से घूर रहे थे कि कहीं एक-आध कार हाथ लग जाय तो उसका चालान भी कर दिया य। लेकिन यहाँ तो सारे मोटरलारीवाले कांग्रेस की ज्ञाओं का पालन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने ज़्यादा सवारी ना भी कांग्रेस को धोखा देना ही समझा था और ग्रेस के नियम के विरुद्ध मोटरों का किराया भी नहीं या था। उसी छः आनावाले रेट से सवारियाँ ढो रहे जब कि लोग पहले पहुँचने के लोभ में एक एक या तक देने को तैयार थे। उन्होंने अधिवेशन के नों में भी जब वे मनमाना दाम वसूल कर सकते थे, एक भी अधिक नहीं बढ़ाया। मैंने एक ड्राइवर से पूछा तब उसने बतलाया कि कांग्रेस की तख़्ती लगाकर हम कांग्रेस को धोखा नहीं दे सकते। विट्ठलनगर की सीमा से एक मील की दूरी पर पुलिस की अंतिम चौकी मिली और वहीं से उस राज्य की इतिश्री-सी हो गई। इधर-उधर वालंटियर ख़ाकी कमीज़, नीली खादी का पेन्ट और सिर पर सफ़ेद गांधी कैप लगाये नियुक्त थे।

विट्ठलनगर में—बस यहीं से आधे मील की दूरी पर बसे हुए चटाइयों के विट्ठलनगर की झलक दिखाई देने लगी। नगर का प्रमुख प्रवेश-द्वार 'सरदार-गेट' दूर से ही अपनी विशालता का परिचय दे रहा था। जिस प्रकार प्राचीन ज़माने में नगर-प्रवेश की ड्योढ़ियाँ रहती थीं, ठीक उसी आधार पर विट्ठलनगर में भी दो द्वारों की रचना की गई थी, जिनमें से एक का नाम 'सरदार' और दूसरे का नाम 'दरबार' गेट था। पश्चिमी गेट 'दरबार-गेट' था



[सफ़ाई के कार्य में लगी हुई महिला स्वयंसेविकायें।]

जहाँ से बारडोली की ओर से आनेवाले यात्रियों को प्रवेश करना पड़ता था। इसके अलावा एक तीसरा गेट भी उत्तर की ओर ताप्ती पार कर आनेवाले यात्रियों के लिए था। सरदार-गेट पर दो सैनिक सतर्कतापूर्वक द्वार-रक्षक का कार्य कर रहे थे। उन्होंने हाथ दिया नहीं कि मोटर वेग से द्वार पार कर नगर के भीतर जा पहुँचा। एक नई दुनिया में मानो हम उस समय पहुँच गये थे। दूर तक सामने की ओर नज़र दौड़ाने पर बिलकुल सीधी सड़क थी, जिसके दोनों ओर बरगद के बड़े बड़े झाड़ और अन्य हरे वृक्ष छाया कर रहे थे। उसके दोनों ओर बाँस और चटाइयों के उस विशाल नगर का छोर भी नहीं दिखाई देता था। जहाँ-वहाँ दोनों ओर सफ़ेद खादी पहने लोग दौड़-धूप करते दिखाई दे रहे थे। स्वयं-सेवक भी पचास पचास गज़ के अन्तर से खड़े हुए सड़क पर पहरा दे रहे थे और सीटी-द्वारा आने-जानेवाली मोटर-लारियों को आगे जाने के लिए हाथ दे रहे थे।

बग़ल में सबसे पहले किसान-निवास के झोपड़े दिखाई दिये, जिनमें पचास हज़ार तक किसानों को ठहरने के लिए स्थान था। ठीक इसी के बग़ल में विट्ठलनगर का सी० बाज़ार नाम का एक बाज़ार दिखाई दे रहा था, जिसमें होटलों और भोजनालयों के अलावा अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी मिलती थीं। 'किसान-निवास' के सामने की ओर विस्तृत 'प्रेक्षक-निवास' दृष्टिगोचर हो रहा था, जिसमें बाहर से आनेवाले अतिथियों के आराम के साथ रहने का सभी प्रकार का प्रबन्ध था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक खाट और पानी के लिए एक घड़ा तथा ज़मीन पर बिछानेवाली चटाइयों का प्रबन्ध था। इस हिसाब से प्रत्येक 'निवास' में ६ आदमियों के रहने का प्रबन्ध था। प्रेक्षक-निवास अलग अलग खंडों में विभाजित था और प्रत्येक खंड का नामकरण वर्णमाला के अक्षरों पर किया गया था, जिससे पता लगाने में असुविधा न हो। प्रत्येक विभाग में डेढ़ सौ से लेकर दो सौ से भी ऊपर कमरे थे। अधिवेशन के दिनों में तो प्रेक्षक-निवास से लेकर नगर के दूसरे छोर तक जहाँ कांग्रेस की सारी कार्रवाइयाँ हो रही थीं, मोटर-बस चलने



[महात्मा गांधी और राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस (हरिपुरा कांग्रेस) ।]

प्रबन्ध-मंत्री के कार्यालय से प्रबन्ध के सम्बन्ध में आदेश प्राप्त किये जा रहे थे। स्वयंसेवकों का एक दल हर समय तैयार रहता था ताकि आदेश प्राप्त होने पर तुरन्त आवश्यकतानुसार काम पर भेजा जा सके। ६,००० स्वयंसेवकों की बस्ती तो ख़ाली इसी छावनी में थी। स्वयंसेवकदल की छावनी के ठीक सामने की सड़क के दूसरी ओर प्रतिनिधि-निवास से सटा हुआ 'भोजनालय' था। भोजनालय में प्रवेश के लिए दो काफ़ी बड़े गेट थे। भोजन के समय भोजनालय के द्वार पर उतनी ही भीड़ देखी जाती थी, जितनी भीड़ अधिवेशन के समय पंडाल में प्रवेश करने

लगी थी, जो एक आना में कुछ ही मिनटों में नगर के इस छोर से उस छोर तक पहुँचा देती थी। इसलिए किसी को यह कहने का अवसर तक न आया कि अधिवेशन के पंडाल से प्रेक्षक-निवास दूर था।

प्रेक्षक-निवास से ही सटा हुआ 'प्रतिनिधि-निवास' बनाया गया था। प्रतिनिधि-निवास के प्रवेश-द्वार के सामने बट का एक बहुत पुराना वृक्ष था, जिसकी सघन छाया के कारण वहाँ की सुन्दरता और भी बढ़ गई थी। प्रतिनिधि-निवास में प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए अलग अलग निवास-स्थान बनाये गये थे। इसमें दो हज़ार से ऊपर व्यक्तियों के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था और सुविधायें भी कुछ अधिक थीं।

प्रतिनिधि-निवास के ठीक सामने स्वयं-सेवकों की छावनी थी। स्वयं-सेवकों की छावनी में साधारण आदमी नहीं जा सकता था। इसके लिए कड़ा पहरा था। दरवाज़े पर ही सेनापति का आफ़िस था, जहाँ से आज्ञा लेकर छावनी में प्रवेश किया जा सकता था। सेनापति का दफ़्तर आधुनिक ढङ्ग से सजा हुआ था। उसमें टेलीफ़ोन भी लगा हुआ था, जिससे आज्ञा प्राप्त होते ही स्वयंसेवक-दल विशिष्ट स्थानों को भेजे जा सकें। इधर सेनापति की ओर से

वालों की होती थी। चार-पाँच खिड़कियों से भोजन-टिकट देने का प्रबन्ध था। टिकट का दाम ६ आने था। ६ आने में इतना अच्छा भोजन मिलना विट्ठलनगर में कहीं भी नहीं प्राप्य था। होटलवालों ने तो अधिवेशन के दिनों में दूने दाम बढ़ाकर बारह आने कर दिये थे। भोजनालय में पचास हज़ार आदमियों तक के लिए दिन में तीन बार भोजन खिलाने का प्रबन्ध किया गया था। यहाँ भोजन करने के लिए बाँस की लम्बी-लम्बी झोपड़ियाँ बनाई गई थीं। प्रत्येक झोपड़ी का फ़र्श सीमेंट का था, जिस पर चार क़तारों में बैठकर लोग भोजन करते थे। प्रत्येक क़तार में डेढ़ सौ से लेकर दो सौ तक व्यक्ति एक साथ भोजन के लिए बैठ सकते थे। इस प्रकार प्रत्येक झोपड़ी में एक साथ ५०० आदमी भोजन कर सकते थे। भोजनालय में ऐसी लगभग एक दर्जन झोपड़ियाँ बनी हुई थीं। खाना भी एक ही प्रकार का नहीं था। पंजाबी, युक्तप्रान्तीय और दक्षिणी भोजन का अलग-अलग इन्तज़ाम था, लेकिन गुजराती भोजन का आधिक्य सब जगह था।

भोजनालय से कुछ आगे बढ़ने पर 'कुटुम्ब-निवास' थे, जिनमें सौ रुपया देकर लोग सकुटुम्ब रह सकते थे।



[श्री सुभाषचन्द्र बोस, राजकुमारी अमृत कौर, सेठ जमनालाल बजाज़ और श्रीमती मीराबाई (शेगाँव में)।]

प्रेक्षक-निवास और प्रतिनिधि-निवास की अपेक्षा इन 'गृहों' के निवासियों को अधिक सुविधायें प्राप्त थीं।

कुटुम्ब-निवास के सामने सड़क के दूसरी ओर 'सफ़ाई-विभाग' के स्वयंसेवकों की छावनी थी। यहाँ इस विभाग का कार्य देखकर सभी को आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ा। इस विभाग के स्वयंसेवकों की संख्या १२०० थी। इस विभाग के सभी कार्यकर्त्ताओं की पोशाक सफ़ेद खद्दर की थी। उनका बैज रंगीन था, जिस पर कमल का फूल अंकित था। विट्ठलनगर के अतिथियों को सबसे अधिक इस विभाग का आभार मानना पड़ा। नगर के कोने कोने में इसकी महिमा दिखाई दे रही थी। स्थान-स्थान पर कचरा डालने के लिए पात्र रक्खे हुए थे, जिन पर कमल का फूल तथा गुजराती और हिन्दी में लिखा हुआ था कि 'कृपया कचरा यहीं डालिए'। 'स्वच्छता-विभाग' के स्वयं-सेवक इन पात्रों से कचरा उठाकर एक गाड़ी-द्वारा कचरे को नगर के बाहर बने हुए गड्ढों में ले जाकर जला देते थे। इस विभाग के स्वयंसेवक हाथ में झाड़ू लिये नगर के विभिन्न स्थानों में झाड़ू लगाते दिखाई देते थे। क्या बात जो सड़क या किसी स्थान पर ज़रा-सी भी गन्दगी फैलने पावे? सबसे बड़ा असर लोगों पर जहाँ-तहाँ चिपकाये गये पोस्टरों ने डाला। जहाँ-तहाँ पेशाब न करने और न थूकने का आदेश देनेवाले इन पोस्टरों में दिखलाया गया था 'पेशाब-घर' का स्वरूप और उसमें पेशाब करने के बाद मिट्टी लेकर डालनेवाला एक आदमी और साथ ही हिन्दी व गुजराती में लिखा हुआ था कि 'कृपया शौच के बाद मिट्टी भर कर डालिए'। इस विभाग के स्वयं-सेवक भी इस ओर लोगों का ध्यान दिलाते रहते थे। हरिद्वार में कुंभ हो रहा है। लोग भूमि को क्या,

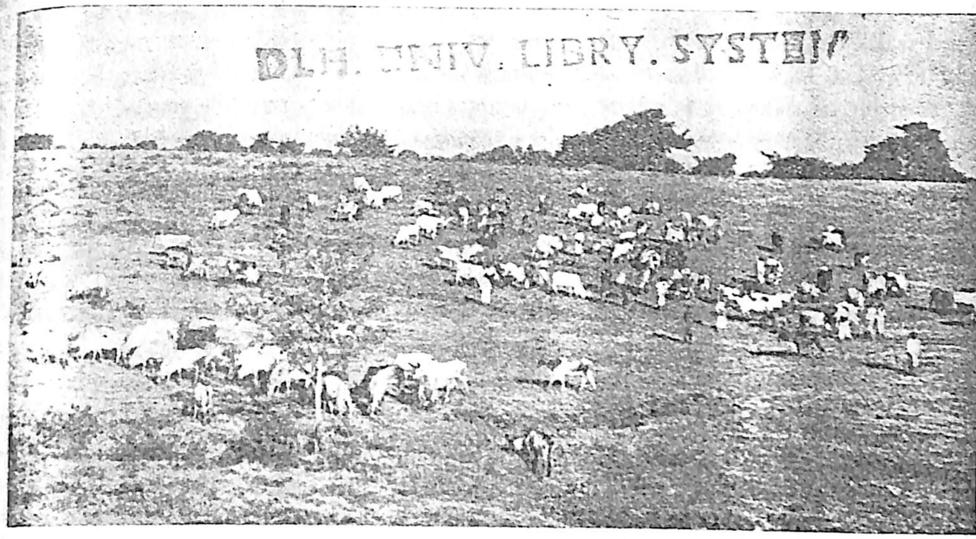
पवित्र गङ्गा को भी दूषित कर देते हैं। लेकिन हरिपुरा में इतनी धूम रहने पर भी ताप्ती-तट पर गन्दगी का ज़रा भी नाम नहीं था। इसका पहले से ही स्वच्छता-विभाग ने इन्तज़ाम कर रक्खा था। टट्टियाँ आवश्यकता से भी अधिक जहाँ-तहाँ, सभी स्थलों पर बना दी गई थीं। साथ ही अन्य पोस्टरों की तरह एक पोस्टर लगाया गया था, जिसमें ताप्ती का चित्र बनाया गया था और लिखा हुआ था कि 'कृपया ताप्ती-तट गन्दा न कीजिए।'

स्वच्छता-विभाग के सामने कुछ दूर आगे चलकर महिला-स्वयं-सेविकाओं की छावनी का प्रवेश-द्वार था, जिसका नामकरण स्वर्गीय कमला नेहरू के नाम पर हुआ था। इस छावनी में गुजरात की ८०० महिला देश-सेविकायें थीं। इन्होंने यहाँ यह सिद्ध करके दिखला दिया कि भारत की महिलायें पुरुषों से किसी प्रकार पीछे नहीं हैं। विषय-निर्धारिणी-समिति के अधिवेशन के समय इन्हीं के द्वारों के नियंत्रण का भार सौंपा गया था। नेतानिवास, प्रदर्शनी, स्वागत-समिति के दफ़्तर आदि में जहाँ आदमियों की भीड़ साधारण स्वयंसेवकों को थकियाकर आगे निकल जाया करती थी, जब महिला-स्वयंसेविकायें नियत की गईं तब सभी स्थान सुव्यवस्थित और सुरक्षित हो गये। सारी रात इन स्वयंसेविकाओं ने ताप्ती-तट पर बने हुए नेताओं के निवासस्थानों पर हाथ में लालटेन लटकाये और एक डंडा लिये बड़ी बहादुरी के साथ पहरा दिया। भोजन-भंडार में, डेयरी में, खुले अधिवेशन में सभी जगह इन महिलाओं का राज्य था, जहाँ उनकी हर एक बात चलती थी। लेकिन इन सबके बीच नवजीवन फूँक देनेवाली एक और शक्ति थी। वह फूलों में पलनेवाली अहमदाबाद के एक लखपती सेठ की पुत्री श्री मृदुला बेन थीं जिन्होंने गुजरात की महिलाओं में नया जीवन भर दिया है। जहाँ देखो मृदुला बेन की पुकार थी।

स्वयंसेविकाओं की छावनी से आगे विषयनिर्धारिणी-समिति का चारों ओर से बन्द चौकोर पंडाल था, जिसका प्रमुख द्वार दक्षिण की ओर था। इस चौकोर पंडाल में प्रवेश करने के लिए छः द्वार बनाये गये थे। नेताओं के जाने के लिए मंच के पीछे की ओर एक छोटा-सा अलग द्वार था। इसके सभी दरवाज़े तिरङ्गी झालर से सजाये गये थे। ऊपर सफ़ेद खद्दर की चाँदनी और लाल झालरें लगी हुई थीं। सामने उत्तर की ओर साढ़े चार फ़ुट ऊँचा मंच बनाया गया था, जिस पर दूध-सी सफ़ेद खादी सजाई गई थी। मंच के पृष्ठ-भाग में सिनेमाहाल के स्क्रीन की तरह एक खादी का चौकोर पर्दा लगा हुआ था, जिसके किनारों पर तिरङ्गी गोट लगी थी। बीच में लगभग तीन फ़ुट चौड़ा और चार फ़ुट लम्बा एक तैलचित्र टँगा था। वह डाँडी-यात्रा का ऐतिहासिक चित्र था। अधिवेशन के समय लगभग ८,००० आदमियों ने इस पंडाल में बैठकर सब्जेक्ट कमिटी का कार्य देखा।

सब्जेक्ट कमिटी के पंडाल के आगे स्वागत-समिति का कार्यालय था, जहाँ दिन और रात के अठारह घंटे एक अजीब चहल-पहल देखने को मिलती थी। प्रवेश-द्वार साधारण था, लेकिन बीच में एक विस्तृत बग़ीचा था और उसके चारों ओर दफ़्तर बनाये गये थे। दरवाज़े में प्रवेश करते ही सामने स्वर्गीय विठ्ठलभाई पटेल की भव्य मूर्ति दिखाई देती थी। इसे विख्यात मूर्तिकार श्रीयुत पँढे ने बनाया था।

इस स्थान के दरवाज़े से बिलकुल सटा हुआ 'इन्क्वायरी आफ़िस' था। विठ्ठलनगर के सारे प्रोग्रामों और प्रगतियों का यहाँ आसानी से पता मिल जाता था। यदि आपको अपने किसी भी मित्र का विठ्ठलनगर में पता लेना है तो उसका भी पता यहाँ से मालूम किया जा सकता था। परन्तु सबसे बड़ी बात यह थी कि अगर किसी की कोई भी चीज़ गुम हो जाती थी तो इन्क्वायरी आफ़िस में रिपोर्ट लिखाने से उसकी तलाश फ़ौरन जारी हो जाती थी और मिलते ही वह उसको दे दी जाती थी। विठ्ठलनगर में जेबकतरों का जब ज़ोर बढ़ा तब सबसे अधिक कर्तव्यपरायणता इन्क्वायरी-विभाग ने ही दिखलाई। लगभग १५० से ऊपर जासूस वालंटियर इसी काम पर नियुक्त किये गये थे, जो चोर-लफंगों को पकड़ कर, गुमशुदा माल को बरामद कर, इन्क्वायरी आफ़िस में लाते थे और जब वहाँ के तूफ़ानी दिनों में रोज़ दर्जनों आदमी जेबकतरों का शिकार बनने लगे तब इन्क्वायरी आफ़िस के लगभग डेढ़ दर्जन कर्मचारियों को साँस तक लेने की फ़ुर्सत नहीं मिली। ख़ुफ़िया-विभाग के स्वयंसेवकों ने तो एक एक दिन में दस दस बारह बारह बदमाशों को गिरफ़्तार किया, यहाँ तक कि



[शुद्ध दूध के लिए लाई गई गायें कांग्रेस-कैम्पों के निकट शान्ति लाभ कर रही हैं।]

आधे दर्जन बदमाशों को तो प्रेक्षक-निवास में पकड़ा, जो वहाँ से लोगों का सामान उड़ा चुके थे। पुलिस से भी अधिक सतर्कता दिखलाकर रोज़ सैकड़ों का माल बरामद किया जाने लगा और उनके अधिकारियों को उनका माल दिया जाने लगा। लगभग एक दर्जन खिड़कियों पर लोगों की भीड़ सदा लगी रहती थी। कोई दुपट्टा गुमने की रिपोर्ट लिखा रहा है तो कोई अपनी गुमी हुई चीज़ें वापस ले रहा है। अगर विठ्ठलनगर में इस प्रकार का इन्क्वायरी विभाग और इस प्रकार का ख़ुफ़िया-विभाग न होता तो कितने ही लड़के-बच्चे तक गुम हो जाते और कितने ही लुटकर हाथ मलते हुए घरों को वापस जाते। लेकिन ९० प्रतिशत आदमियों का माल ढूँढ़कर इन्क्वायरी-आफ़िस से दिया गया।

'इनक्वायरी' से ज़रा-सा आगे 'बैंक आफ़ इण्डिया' का स्थान था। सप्ताह भर के लिए अपने पास का क़ीमती माल इसमें जमा होता था। काफ़ी लोगों ने इससे भी लाभ उठाया।

बैंक से दो ही क़दम आगे 'सरभरा' अर्थात् रहने के लिए इन्तज़ाम करनेवाला विभाग था, जहाँ आ-आकर लोग अपने रहने का प्रबन्ध करवाते थे। इसी से लगा हुआ फ़ाइनेन्स-विभाग था, जहाँ गोदरेज़ की तिजोड़ियाँ रक्खी हुई यह बतला रही थीं कि यह 'ख़ज़ाना' है। यहाँ आठ-दस आदमी हिसाब-किताब करने में हर समय जुटे हुए दिखाई देते थे। प्रदर्शनी-टिकटों और करों से आनेवाला सभी रुपया इन्हीं के पास जमा हो रहा था। 'फ़ाइनेन्स' से कुछ आगे स्वागत-समिति का दफ़्तर था, जहाँ आधा दर्जन मशीनें टाइप करती हुई बारहों घंटे अजीब शोर-गुल मचाये रहती थीं। प्रधान मंत्री श्री कान्हीयाभाई देसाई अपने कार्य में रात-दिन व्यस्त दिखाई पड़ते थे। सारी ज़िम्मेदारी का काम यहीं से संचालित हो रहा था।

इसके बाद आ० इं० का० क० का दफ़्तर था और इसके बाद विठ्ठलनगर का वाचनालय था, जहाँ सुबह से शाम तक अख़बार पढ़नेवालों की धूम रहती थी। गुजराती, हिन्दी, मराठी और तामिल आदि विभिन्न भाषाओं के पत्र यहाँ संग्रह किये गये थे। विठ्ठलनगर से प्रकाशित होनेवाला हस्तलिखित समाचार-पत्र 'विठ्ठलनगर' भी इसी वाचनालय में देखने को मिल जाता था, जिसमें प्रतिदिन

को घटनाओं का एक तिरङ्गे चित्र के साथ उल्लेख रहता था। 'प्रकाशन-विभाग' भी इसी के बग़ल में था, जहाँ से नगर के सम्बन्ध में छोटी-मोटी विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की जाती थीं। थोड़ी ही दूर आगे बढ़ने पर विठ्ठलनगर का विशाल 'विठ्ठलमुद्रणालय' था, जिसमें एक सलिन्डर मशीन और एक ट्रेडिल चौबीसों घंटे खटाखट चलती हुई दिखाई देती थी। अधिकतर हाथ का बना हुआ स्वदेशी काग़ज़ ही यहाँ काम में लाया जाता था। यह इस प्रेस की सबसे बड़ी विशेषता थी।

इसके बाद विठ्ठलनगर का 'कांग्रेस-कैम्प-डाकख़ाना' था, जिसमें लगभग दो-तीन दर्जन आदमी काम करते रहते थे। यहाँ शहरों की तरह दिन में दो बार डाक बाँटी जाती थी और तीन बार विठ्ठलनगर से जाया करती थी। ख़ासकर डाक-सर्विस के लिए पाँच-छः दिन के लिए हवाई जहाज़ का भी स्टेशन यहाँ बनाया गया था। सबसे बड़ी विशेषता तो यह थी कि तार-सर्विस का भी बहुत बड़ा इंतज़ाम यहाँ के चटाइयों के डाकख़ाने में था। तार भेजने के लिए यहाँ २२ मशीनें फ़िट की गई थीं और अधिवेशन के दिनों में पूरे आदमी लगातार अविराम गति से इन मशीनों पर खटाखट तार भेजने का काम करते रहे।

प्रदर्शनी—यहाँ पचास क़दम के बाद प्रदर्शनी का प्रवेश-द्वार था, जो सड़क से दाहनी ओर पड़ता था। यह दरवाज़ा 'मगन-दरवाज़ा' के नाम से प्रसिद्ध था। ज़्यादातर लोग 'गांधी-गेट' से ही प्रदर्शनी में प्रवेश करते थे, जो प्रदर्शनी के पश्चिम की ओर बड़े कला-पूर्ण ढङ्ग से बनाया गया था। इस दरवाज़े से केवल प्रमुख कार्यकर्ता ही प्रवेश करते थे और साधारण जनता के लिए यह बाहर आने का मार्ग था। यह दरवाज़ा लगभग तीस फ़ुट ऊँचा था। हज़ारों बिजली के बल्वों, तिरङ्गे झंडों और प्राचीन तथा ग्राम्य-कला के नन्दलाल बोस-द्वारा बनाये गये सजीव चित्रों से सजाया गया था। इसी दरवाज़े के एक ओर दर्जनों टिकट लेने की खिड़कियाँ थीं, जिनमें दो आने का प्रदर्शनी-प्रवेश का टिकट मिलता था। टिकटघर की खिड़कियों पर हमेशा भीड़ लगी रहती थी। ग्रामीण बंधुओं ने इस कला-प्रदर्शनी में अधिक दिलचस्पी ली। टिकट लेकर प्रवेश करने के लिए जहाँ आगे बढ़े कि झंडा-चौक के विशाल मैदान में जा पहुँचे। तीन लाख आदमियों के खड़े होने लायक़ वह झंडा-चौक था। इसी झंडा-चौक के पूर्व में प्रदर्शनी का पश्चिमी तथा प्रमुख प्रवेश-द्वार गांधी गेट दिखाई पड़ता था। दस तारीख़ को महात्मा जी ने इसी गांधी-गेट के सम्मुख प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए प्रदर्शनी और सूत कातने का महत्त्व बतलाकर लाखों आदमियों को प्रतिज्ञाबद्ध करवा दिया था।

ठीक सामने की ओर पहले से ही ध्यान आकर्षित कर लेनेवाला खादी-प्रदर्शन का विराट् भवन था। इसके भीतर प्रवेश करने पर लोग दूसरी दुनिया में पहुँच जाते थे। सारे भवन में खद्दर की आज तक की कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन था, जिसको देखकर लार्ड सेमुअल तथा अमेरिका से आये हुए हमारे दो मित्रों ने आश्चर्यचकित होकर कहा—

आह! वन्डर फ़ुल इन्डिया! (आश्चर्यजनक भारत)!

इसके बग़ल में पर्णकुटी के समान श्री नन्दलाल बोस का कलाभवन था। बोस महोदय की कला सारे विठ्ठलनगर में फूटी पड़ रही थी। उसी को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। शान्तिनिकेतन के अपने संग्रहालय के सभी कलापूर्ण चित्र उन्होंने यहाँ लाकर रख दिये थे। उनके चित्र-संग्रह में आज से दो हज़ार वर्ष से पूर्व की कला का नमूना भी था। योरप की कला का क्रम-विकास भी यहाँ चित्रों-द्वारा दिखाया गया था। रोम और इटली तथा इराक आदि की कलाओं के नमूने भी यहाँ थे। बौद्धकालीन, मुग़लकालीन तथा राजपूतों की चित्रकला के अमूल्य चित्र इस कलाभवन में रक्खे गये थे।

बोस के कला-प्रदर्शन के सामने ही गुजरात का कला-भवन था, जिसमें प्राचीन समय के बर्तन और मूर्तिकला तथा काठियावाड़ की मूर्तिकला तथा कपड़ा आदि का कला-चित्रण था। इनके अलावा इसमें तीन सौ वर्ष पुराने कालीन, फ़र्श तथा पहनने के कपड़े आदि बड़े यत्न के साथ रक्खे गये थे। मध्यकाल और आधुनिक कला-कौशल का भी यहाँ परिचय मिलता था।

यहीं प्रदर्शनी में उत्तर की ओर वह स्थान भी था, जहाँ महात्मा जी प्रतिदिन शाम को सात बजे संध्याकालीन प्रार्थना के लिए पधारते थे तथा हज़ारों आदमी उस प्रार्थना में भाग लेते थे। यहाँ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा मंच था।

पर लगभग पचास आदमी बैठ सकते थे। जब महात्मा जी के आने का समय होता तब उस पर दूध के समान सफ़ेद दरी बिछा दी जाती। यहाँ एक माइक्रोफ़ोन तथा दो लाउड स्पीकर लगे रहते, जिससे प्रार्थना में भाग लेनेवालों को सुनने में किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होती थी।

यहीं प्रदर्शनी का रोज़ का गरबा-नृत्य तथा गवैयों का गाने-बजाने का प्रोग्राम भी लगभग दो-तीन घंटे तक होता था। गरबा-नृत्य तथा पुरुषों के काठियावाड़ी नृत्य ने लोगों का काफ़ी मनोरञ्जन किया। साबुन तथा काग़ज़ बनाने की कला का प्रदर्शन भी विठ्ठलनगर में अपने ढङ्ग की एक निराली चीज़ थी। इसके अलावा सोने-चाँदी की दूकानों से लेकर स्वदेशी-कला की सभी दूकानों का विराट् प्रदर्शन था। एक भवन था, जिसमें मद्य-निषेध का बड़े बड़े चित्रों-द्वारा प्रदर्शन किया गया था। अगर प्रदर्शनी की प्रत्येक दूकान की विशेषता का उल्लेख किया जाय तो एक किताब बनाई जा सकती है। सभी प्रसिद्ध जगहों की खादी की दूकानें यहाँ आई थीं।

यहाँ से दर्शक लोग भारतीय कला-शिल्प की अमिट छाप लेकर लौटते तब झंडा-चौक का वही विशाल मैदान फिर सामने आ जाता, जिसके बीचोंबीच ७५ फ़ुट ऊँची राष्ट्रीय पताका एक काष्ठ-स्तम्भ पर लहरा रही थी। सारा भाग केवल काष्ठ का ही था, जो बीच बीच में ताँबे और पीतल के पत्रों से मढ़ा गया था। इसके सिरे पर का ध्वज और राष्ट्रीय तिरङ्गा झंडा नगर के किसी भी भाग से देखा जा सकता था।

झंडा-चौक के उत्तर में स्वर्गीय श्रीविठ्ठलभाई पटेल की सत्रह फ़ुट ऊँची विशाल प्रस्तर-मूर्ति खड़ी थी, जो दूर से एक पर्वताकार चट्टान के समान मालूम पड़ती थी। पास से देखने पर ही उस मूर्ति और मूर्तिकार की कला का पता लगता था। बम्बई के कलाकार श्री करमरकर ने इस मूर्ति का सीमेंट को साँचे में ढालकर निर्माण किया था। आज तक किसी भी भारतीय नेता की इतनी बड़ी मूर्ति नहीं निर्मित हुई है।

झंडा-चौक के पश्चिम में दो विशाल गेट मस्तक ऊँचा किये आकाश से बातें करते दिखाई देते थे। सामने जाते हुए बाईं ओर के गेट का नाम 'सुभाष-दरवाज़ा' और दाहनी ओर के गेट का नाम 'जवाहर-दरवाज़ा' था। इनके बीच से उत्साह और उमंग में सराबोर लाखों किसानों ने पंडाल में प्रवेश किया था। ये दरवाज़े अन्य दरवाज़ों की ही तरह सुन्दरतापूर्वक सजाये गये थे। इन दरवाज़ों से प्रवेश कर भीतर की ओर नज़र फेंकी तब एक घिरा हुआ विस्तृत मैदान दिखाई दिया, जिसमें चालीस लाऊड स्पीकर लगे हुए थे। रात में अधिवेशन होने के कारण हज़ारों विद्युद्दीप लगाये गये थे। चारों ओर की चटाइयों की चहारदीवारी पर वही ६ फ़ुट चौड़ी तिरङ्गी झालर लटकाई गई थी। सामने दक्षिण की ओर बीचोंबीच में भाषण-मञ्च बना हुआ था, जिसके सिरे पर तिरङ्गी पताका लहरा रही थी। यह २० फ़ुट ऊँचा था। इसके सिरे पर राष्ट्रध्वजा लहराती थी। मञ्च तक पहुँचने के लिए २० के लगभग सुन्दर सीढ़ियों का ज़ीना था। इस मैदान में या कहिए पंडाल में बैठकर लगभग दो लाख आदमियों ने खुले अधिवेशन की कार्यवाही देखी। इस प्रकार सारे पंडाल की यही विशेषता थी कि वह इतना विस्तृत था, जितना विस्तृत कोई भी कांग्रेस-पंडाल अब तक नहीं बना था।

पंडाल के पश्चिमी दरवाज़े से आगे कांग्रेस-नगर की आदर्श डेयरी थी, जिसमें लगभग ६०० गायें थीं। आस-पास के ग्रामवासियों ने कांग्रेस के अतिथियों को दूध-घी खिलाने के लिए चार मास से ये गायें दे रक्खी थीं। यहाँ भी लगभग सौ कर्मचारी इन गायों की देख-भाल के लिए थे और रोज़ स्वच्छता के साथ दूध दुहा जाता तथा दही और थोड़ा बहुत घी भी बनाया जाता था। दूध अधिकतर खाने-पीने और दही जमाने के काम आता था। यह गोशाला आधुनिक ढंग की बनाई गई थी। इतनी गायों के होने पर भी यहाँ किसी प्रकार की गन्दगी का नाम नहीं था। किसानों के लिए गोपालन की शिक्षा देने के लिए भी यहाँ व्यवस्था की गई थी और गोपालन के तरीक़े बतलाये गये थे तथा पशुओं के रोगों की देहाती दवाइयाँ भी संग्रह की गई थीं, जिससे किसान अपने पशुओं की अच्छी तरह दवा भी कर सकें। इस प्रबन्ध से विठ्ठलनगर दूध और घी से पूर्ण रहा। यहीं भोजनालय के दाल, चावल, आटे और घी का विशाल भंडार था। आटा यहाँ बैलों-द्वारा चक्कियों में पीसा

रहा था और सैकड़ों स्त्रियाँ दाल-चावल कूटने तथा फ़ करने में दो मास से जुटी थीं। बस यही विट्ठलनगर अंतिम छोर का प्रमुख उल्लेखनीय स्थान था। इसके द दूर तक पश्चिम की ओर झोपड़ियों की लम्बी क़तार लाई देती थी।

परन्तु विट्ठलनगर का यह विवरण अधूरा ही रह यगा, यदि उसके उत्तरी भाग का उल्लेख नहीं किया यगा, जहाँ नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ताप्ती ती है, जिसके गर्भ में बीस-बीस फ़ुट के दो कुएँ खोदे थे, जिनके द्वारा ताप्ती नदी का जल तीन सौ फ़ुट ची टंकी तक दो जलाशयों में साफ़ करके जनता तक हुँचाया जाता था।

महात्माजी की कुटी यहीं ताप्ती-तट पर ही थी। इस सामने की ओर एक सुन्दर छोटा-सा बग़ीचा था। भार की उस महान् विभूति ने १२ दिन इसी कुटी में विश्राम किया था।

रात में यह विशाल नगर एक प्रज्वलित नगरी-सा मालूम पड़ता था। हवाई जहाज़ पर बैठ कर यदि कोई विट्ठलनगर की शोभा रात्रि के समय देखता तो पागल होकर कह उठता कि स्वर्ग तो यही है।

५१वीं कांग्रेस का अधिवेशन ऐसे ही विशाल नगर में हुआ था, जिसकी महान् कार्यवाहियों का उल्लेख करने के लिए इस लेख में स्थान नहीं है।

बेगानापन

लेखक, श्रीयुत चतुर्भुज माहेश्वरी 'चतुर'

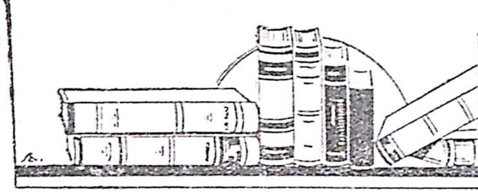
ऋतुपति को अर्पित कर देती
पिक पंचम-स्वर-धन।
किन्तु मिला करता वियोग का
उसको सूनापन॥
शलभ दीप पर कर देते हैं
न्यौछावर तन-मन।
असिट पिपासा लिये हुए ही
खो देते जीवन॥
मुकुल लुटाता बेसुध होकर
मादक मधु-यौवन।
बिगड़े वैभव पर क्या पाता
वह मधुपालिंगन॥
लीन अटल निष्ठा में रहता
चातक-मन प्रतिक्षण।
किन्तु साधना सारी उसकी
बनती आँसू-कण॥
कोमल किरणों में खो देते
सरसिज अपनापन।
मिलता है प्रतिदान उन्हें क्या
सतत व्यथा-साधन॥
निरखा करता है चकोर शशि
भर अपलक लोचन।
तृषा-ज्वाल से रहता है पर
दग्ध, जर्जरित तन॥
अलसाई कलियों में भरता
मलय-पवन चुम्बन।
किन्तु वही क्षण में कर देता
रज-कण में मिश्रण॥
मुक्ता-वन्दनवार सँजोता
जग पर नित्य गगन।
ख्याति शून्यता की ही देते
पर कवि-कोविद-गण॥
दे देते प्राणोपहार
बन उन्मन प्रेमी जन।
प्रतिफल में पाते हैं क्या वे
केवल चिर-विछुड़न॥
कहीं करें हम दृष्टिपात
है जीवन में तड़पन।
विधि ने सृजन किया है जग में
बस बेगानापन॥

अन्तिम पत्र

लेखक, श्रीनाथसिंह

[१५ फ़रवरी सन् १९३७ ईसवी को जोहन्स इगर्ट नामक जर्मन युवक को ३९ वर्ष की अवस्था में राजद्रोह के दंड में बर्लिन-जेल में फाँसी दी गई। इस अपराध में जनवरी १९३५ में वह गिरफ़्तार हुआ था। नाज़ी सरकार को उसके विरुद्ध फ़ैसला तैयार करने में २० मास लगे। उसकी पत्नी लूसी को रूस भाग जाना पड़ा। उसका मुक़द्दमा बंद कमरे में हुआ और मुक़द्दमे का समाचार एक भी जर्मन-पत्र में नहीं छपा। उसका अपराध सिर्फ़ यह था कि वह युद्ध-विरोधी हो गया था और फ़ैसिज़्म का समर्थक न था। यद्यपि सन् १९१५ में वह १७ वर्ष की अवस्था में युद्ध-भूमि में गया था और वीरता के लिए 'आयरन क्रास' प्राप्त कर चुका था। तीन जगह उसे गोली भी लगी थी। शान्ति स्थापित होने पर वह युद्ध-विरोधी होकर घर लौटा था। यही उसका अपराध था। फाँसी से कुछ घंटे पूर्व उसने अपनी प्रवासिनी प्रियतमा को एक पत्र लिखा था। उसी का भावानुवाद इन पङ्क्तियों में देने का प्रयास किया गया है।]

हर्ष-विषाद भरे जीवन की आ पहुँची हैं अन्तिम घड़ियाँ।
आज न मुझको बाँध सकेंगी लोहे की निर्दय हथकड़ियाँ॥
मेरे मृत तन को छूकर के आज वायु कुछ शीतल होगा।
तुम उसको संतप्त न करना व्यर्थ बहा आँसू की लड़ियाँ॥
मैंने यह संवाद सुना है उसी धैर्य से जो है मेरा।
मन में है ताज़गी वही जो देता जग को सदा सवेरा॥
यह है अंतिम पत्र प्रियतमे! बाक़ी केवल यह अभिलाषा।
बहुत दिनों तक रहे न तुम पर विरहव्यथा का बादल घेरा॥
कई बार मैं बता चुका हूँ आज पुनः यह हूँ बतलाता।
मृदुभाषिणि! मैं नहीं मृत्यु के आलिङ्गन से कुछ भय खाता॥
इससे तुम मत चिन्तित होना धैर्य न खोना बहुत न रोना।
मरने के हैं विविध बहाने उनमें मुझको यही सुहाता॥
महायुद्ध में जिस साहस से मैंने खेल मृत्यु से खेला।
इस पथ में भी सुदृढ़ बनाने को काफ़ी है वही अकेला॥
जिस दृढ़ता की मैं अपनी पत्नी से कर सकता हूँ आशा।
प्रिये उसे तुम रक्षित रखना समाचार पाना जिस बेला॥
याद मुझे उस दिन की आती जब हम दोनों प्रथम मिले थे।
कूक उठी थी कोयल तरु पर वन में अगणित सुमन खिले थे॥
एक देह थी एक प्राण था एक ध्येय था हम दोनों का।
द्रुम-वल्लरियाँ ईर्ष्या करतीं हम दोनों इस भाँति मिले थे॥
व्याकुलता यदि बढ़े हृदय में याद उन दिनों की कर लेना।
बहा व्यथा को साथ अश्रु के तुम चुपचाप धैर्य धर लेना॥
जो नौका मँझधार पड़ी है जिस पर थे सवार हम दोनों।
साहस रखना क्योंकि तुम्हें है उसे अकेले ही अब खेना॥
तीव्र बहेगी दुख की आँधी पर उसमें तुम छिप मत जाना।
सब साहस समेट कर रखना और धैर्य को नहीं भुलाना।
दुःख बँटाने को सम्बन्धी हैं विश्वास मुझे आयेंगे।
और न आयें तो भी तुमको तो है आगे बढ़ते जाना॥
जग में ऐसे लोग बहुत हैं जिन्हें मिला है अप्रिय जीवन।
पर उनको जीवित रहना है और धैर्य करना है धारण॥
एक प्रश्न है सम्मुख रखना किसका क्या कर्तव्य जगत में?
है मुझको संतोष कि मैंने समझा उचित किया प्रण-पालन॥
सरस सहास चन्द्रमुख लूसी व्यर्थ तुम्हें है यह बतलाना।
जीवन का पर्याय मृत्यु है जग सुख-दुख का ताना-बाना॥
आज तुम्हारा आलिङ्गन मैं करता हूँ स्मृति के आँगन में।
स्वच्छ मोतियों में निज दृग के लखना तुम मेरा मुस्काना॥



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा]

१-२—साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, की दो पुस्तकें—

(१) मङ्गल-घट—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त और मूल्य २) है।

(२) नारी—लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त और मूल्य १॥) है।

३—तुलसी और उनकी कविता (पहला और दूसरा भाग)—लेखक, पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। पहले भाग का मूल्य २) और दूसरे का २॥) है।

४—एक भूल—लेखक, श्रीयुत शिवदेव उपाध्याय, 'सतीश', बी० ए०, बी० एल०, प्रकाशक, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा हैं। मूल्य १॥) है।

५—पशु-चिकित्सा—लेखक, डाक्टर रामोप्रसाद वर्मा, प्रकाशक, किसान-हितकारी-पुस्तक-माला, छपरा हैं। मूल्य ।॥) है।

६-७—जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, की दो पुस्तकें—

(१) कामकला—मूल्य ३) है।

(२) स्वास्थ्यशिक्षा—मूल्य १॥) है।

८—दोषी कौन—लेखक, श्रीयुत शम्भूरत्न दुबे, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, दिल्ली-पुस्तक-भण्डार, बाज़ार सीताराम, दिल्ली हैं। मूल्य २॥) है।

९—कवि प्रसाद की काव्य-साधना—लेखक, श्रीयुत रामनाथ सुमन, प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य २॥) है।

१०-१३—गंगा-ग्रंथागार, ३० अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ, की ४ पुस्तकें—

(१) शिवाजी (नाटक)—लेखक, श्रीयुत मिश्रबन्धु और मूल्य १।) है।

(२) विजय (द्वितीय भाग) (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव और मूल्य २) है।

(३) ग्राम-सुधार—लेखक, पण्डित अश्विनीकुमार शुक्ल और मूल्य ॥=) है।

(४) विचित्र जीव-जन्तु—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल दीक्षित और मूल्य ॥) है।

१४—असली पृथ्वीराजरासो—सम्पादक व टीकाकार, पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित, प्रकाशक, दयानन्द [illegible] चङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर हैं। मूल्य १) है।

१५—पत्र-पुष्प (दूसरा संस्करण—लेखक, श्रीयुत देवीसिंह, चौमूँ हैं, मिलने का पता—जयपुर-प्रिंटिंग-वर्क्स, जयपुर है।

१६—ज्वर के कारण व चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत युगलकिशोर चौधरी, पो० नीमका थाना, [illegible] स्टेट हैं। मूल्य =) है।

१७—निज अज्ञान—लेखक, श्रीयुत अज्ञान, प्रकाशक, अज्ञान-'दास', महेश्वर हैं।

१—जययात्रा (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत [illegible]नाथ गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या १५४ और मूल्य १।) है।

इस उपन्यास की कहानी इस प्रकार है—विशन एक बङ्गाली प्रोफ़ेसर अपनी युवती पत्नी के साथ [illegible] के एक मुसलमानी मुहल्ले में रहते हैं। स्वभावतः पत्नी को अपना अधिक समय नहीं दे सकते। [illegible] अधिकांश समय एक बुढ़िया नौकरानी के साथ [illegible] होता है। कानपुर के प्रसिद्ध हिन्दू-मुस्लिम दंगे में [illegible] परिवार की शान्ति भङ्ग हो जाती है। उपद्रवी मुसलमानों का एक दल प्रोफ़ेसर साहब की ग़ैरहाज़िरी में उनके [illegible] में घुस आता है। उनकी पत्नी पर अत्याचार होता [illegible]

[illegible] धीरकण्ठ से कहा—आप चिन्ता न कीजिए बाबू जी। [illegible] सब ठीक कर लूँगी। ख़ाली हाथ अकेले बैठे बैठे जी नहीं लगता।

मिस दास ने सुषमा से कहा—आठ बज रहे हैं भाई। [illegible] मैं उठती हूँ। घर जाने से पहले ज़रा देर के लिए मुझे मिसेज़ राय के यहाँ जाना होगा।

सुषमा फाटक तक आकर उसे पहुँचा गई।

मनुष्य के शरीर में हृदय नामक जो एक वस्तु है वह किसी प्रकार भी शून्य करके नहीं रक्खी जा सकती। हृदय की इस शून्यता को दूर करने के लिए सुषमा के कई आत्मीय थे। परन्तु इस प्रकार अकेले ही जीवन व्यतीत करते रहने के कारण उसका हृदय और मन सदा ही विक्षुब्ध-सा रहता था। उसके मन में बार बार यही बात आती कि नितान्त आत्मीय व्यक्ति के अपरिमित स्नेह का दान प्राप्त करके भी मैं हृदय की इस शून्यता को दूर करने में समर्थ न हो सकूँगी। यही कारण था कि हृदय की इस शून्यता को निकाल फेंकने के विचार से ही कोई न कोई उपाय खोजने के लिए वह व्यग्र हो उठी थी। यही कारण था कि उस दिन मिसेज़ दास ने जब एक आश्रम [illegible]ने का आग्रह प्रकट किया तब वह तन-मन से उसी [illegible] में लग गई।

पिता को अपना यह अभिप्राय सूचित किये उसे बहुत दिन होगये थे। आज उसकी इतने दिनों की आशा सफलता की ओर अग्रसर हुई है, यह देखकर सुषमा अत्यधिक [illegible] का अनुभव कर रही थी।

घूम-फिर कर लौटने के बाद आहार आदि से निवृत्त होकर रात को नौ बजे सुधा और अनिल बैठक में बैठे। [illegible] देर के बाद अनिल पिता की खोज में बैठक से निकला। बरामदे में आते ही उसने देखा, उसके माता-पिता बैठे हैं। पिता की कुर्सी के पास ही एक कुर्सी खींच-कर अनिल भी बैठ गया। उसने कहा—मैं आपसे एक बात कहने आया हूँ।

अनादि बाबू ने उत्कण्ठित होकर कहा—कौन-सी बात है बेटा?

अनिल ने धीमे स्वर से कहा—कोई वैसी बात नहीं है। सुधा का कल यहाँ से चले जाने का विचार है।

अनिल के माता-पिता एक साथ ही बोल उठे—क्यों?

अनिल ने कहा—पता नहीं, क्यों। वह कहता है कि सुषमा के साथ विवाह करना केवल उसे दुःख ही देना है। इससे तो कहीं अच्छा होगा कि वह जो कुछ चाहती है—

रुँधे हुए स्वर से अनादि बाबू ने कहा—क्यों? सुषमा ने क्या विवाह करना अस्वीकार कर दिया है? नहीं तो! इस सम्बन्ध में तो उसने कभी कुछ कहा ही नहीं। तो सुधा क्यों आपत्ति कर रहा है?

"नहीं, सुषमा ने कोई आपत्ति नहीं की। तो भी पता नहीं, वह क्यों कहता है कि शायद उसके यहाँ आने से सुषमा कुछ दुःखी-सी हो उठी है। उसका यह भी अनुमान है कि विवाह का प्रस्ताव करने पर सुषमा शायद अस्वीकार भी कर दे।

मन ही मन दुःखी होकर अनादि बाबू ने कहा—उसने जब कुछ कहा नहीं है तब एक बार उससे पूछ लेने में हानि ही क्या है?

संयत कण्ठ से अनिल ने कहा—यह बात मैंने भी सुधा से कही थी। परन्तु इस पर वह सहमत नहीं हुआ। उसका कहना है कि इस सम्बन्ध में सुषमा से आग्रह करके उसे सङ्कोच में डालना ठीक नहीं है। इससे वह उससे कुछ भी नहीं कहना चाहता है। कल उसका यहाँ से चले जाने का विचार है।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद अनिल ने कहा—मेरा भी यही विचार है कि अभी आप उसके विवाह के लिए इतने चिन्तित न हों। कुछ दिनों तक उसे और ऐसी ही रहने दें। मैं तब तक विलायत से लौट आऊँगा। मैं तो जा ही रहा हूँ। सुषमा का भी यदि विवाह होगया और वह अपने पति के यहाँ चली गई तो भला आप लोगों से इस घर में रहा जायगा?

सुषमा की माता ने कहा—यह तो ठीक कहते हो बेटा, परन्तु सुषमा के सुख के लिए हम लोग अपनी यह हानि भी सह लेने में कष्ट का अनुभव नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इस प्रकार वह सुखी तो होगी। उसे इसी अवस्था में छोड़कर आज यदि हम मर जायँ तो भला उसकी क्या दशा होगी बेटा?

अनिल ने कहा—यह तो मैं भी समझता हूँ। किन्तु यदि सुषमा को सचमुच विवाह करना स्वीकार नहीं है तो ज़ोर देकर विवाह कर देने में क्या वह सुखी हो सकेगी?

मेरी तो धारणा है कि इससे उसके दुख की ही वृद्धि होगी, उसके सुखी होने की तो इसमें कोई बात ही नहीं है।

कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद अनादि बाबू ने कहा—तो यही सही बेटा। सुधा यदि कहता है कि इस समय विवाह के सम्बन्ध में कोई बात करने की आवश्यकता नहीं है तो मैं भी यही मान लेता हूँ। तब तक तू भी विलायत से लौट आ। बाद को जो कुछ होगा, होना रहेगा।

अनिल उठकर खड़ा होगया। वह कहने लगा कि सुधा से मैं एक बार फिर इस सम्बन्ध में बातें करूँगा। उससे पूछूँगा कि सुषमा से बातें कर लेने में उसे आपत्ति क्यों है। यह कहकर वह अपने सोने के कमरे में चला गया।

तोसवाँ परिच्छेद

विलायत-यात्रा

बंबई के ताजमहल होटल के एक कमरे में चार प्राणी बैठे थे। वे चारों ही नीरव थे, किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकल रही थी। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता थी।

सामने अरब-सागर की उन्मत्त अशान्त जल-राशि नाच-नाच कर कल्लोल कर रही थी। जहाँ तक दृष्टि पहुँचती, केवल असीम अनन्त जल-राशि ही दिखाई पड़ती। जान पड़ता कि समुद्र की यह नील जल-राशि दिग्दिगन्त में विस्तृत होकर आकाश से मिल गई है। उस समय एक विराट् निस्तब्धता मानो दिग्दिगन्त में विस्तृत थी।

मनोरमा सोच रही थी कि मेरा प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र कल मेरी ही स्नेहमय गोद से विलग होकर किसी अज्ञात अपरिचित देश में अपने भाग्य का अन्वेषण करने के लिए चला जायगा। पुत्र की इस यात्रा के सम्बन्ध में सहमत होने पर भी पता नहीं क्यों उनके हृदय में एक प्रकार की शून्यता की सृष्टि हो रही थी। उनका व्याकुल चित्त एक प्रकार की विपत्ति की आशङ्का से अधीर होता जा रहा था। विदाई के दृश्य की कल्पना करते ही उनके हृदय में जिस अत्यन्त प्रबल तूफ़ान की सृष्टि हो रही थी वह वर्णन से परे थी।

चार-पाँच दिन हुए, अनादि बाबू परिवार-सहित बंबई में आ गये थे। अनिल दूसरे ही दिन 'चायना' जहाज़ से विलायत जा रहा था, इसी से सब लोग उसे जहाज़ पर बैठाने के लिए आये थे।

बड़ी देर की निस्तब्धता के बाद सुषमा की माता ने पुत्र की ओर दृष्टि फेरी। अनिल माता की ही ओर ताक रहा था। मनोरमा ने कहा—इस तरह एकाग्र भाव से क्या देख रहा है अनिल?

अनिल ने शान्त कण्ठ से कहा—आपको ही तो देख रहा हूँ मा। इन्हीं तीन-चार दिनों में पता नहीं, आप कैसी हो गईं। आप इतनी चिन्ता क्यों कर रही हैं? यदि यही हाल रहा तो आप कितने दिनों तक जीवित रह सकेंगी?

आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ से माता ने कहा—पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगता है कि शायद मैं तुझे फिर न देख सकूँगी।

अनादि बाबू ने स्थिर कण्ठ से कहा—शान्त होओ। तुम यदि इस तरह अधीर होओगी तो परदेश में इसे अकेले कितना कष्ट होगा?

अनिल ने देखा कि माता के मुख की आभा एक-दम ग़ायब है। वह स्वयं भी माता को प्राणों से अधिक प्रिय समझता था, एक क्षण के लिए भी माता से विलग होना उसके लिए असह्य था। इससे उसे यह अनुभव करने में विलम्ब न हुआ कि इतने दीर्घकाल के व्यवधान की आशङ्का से माता के हृदय में कितने ज़ोर का तूफ़ान उठा होगा। परन्तु वह कर क्या सकता था? उसे तो मा की स्नेहमय गोद त्याग कर यात्रा करनी ही थी और यात्रा करनी थी उस अनन्त असीम जल-राशि को चीर कर एक निर्दिष्ट स्थान पर अपने भाग्य को अधिकार में करने के लिए। आज यह भारत-भूमि उसे कितनी मधुर, कितनी प्रिय मालूम पड़ रही थी! आज माता, पिता, बहन, यहाँ तक कि जन्मस्थान की मिट्टी तक सजीव होकर उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। वह सोचने लगा कि मा जो कुछ कह रही हैं वही यदि सच हो गया तो मैं क्या करूँगा? गौरव प्राप्त करके विदेश से लौटने पर क्या माता के चरणों पर मस्तक रखने का सौभाग्य मिलेगा? यदि इसमें सन्देह है तो सफलता की ही मुझे क्या आवश्यकता है?

मनोरमादेवी ने कोई बात नहीं कही। यह देख अनादि बाबू ने कहा—अनिल से बातें करो। तीन-चार वर्ष की कोई बात नहीं है। वे तो देखते ही देखते कट जायँगे। इस तरह अधीर क्यों हो रही हो?

माता के मुख की ओर ताककर सुषमा ने कहा—तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो मा? भैया शीघ्र ही लौट आवेंगे। तुम्हें तो ज़रा भी धैर्य नहीं है।

मनोरमादेवी ने गम्भीर और खिन्नतापूर्ण दृष्टि से कन्या की ओर देखा। वेदना से व्यथित कण्ठ से वे कहने लगीं—तुम दोनों मेरे क्या हो, यह बात वे अन्तर्यामी ही जानते हैं।

सुषमा ने कहा—मा, तुम तो भैया के सम्बन्ध में यह सदा से ही कहती आ रही हो कि इन्हें विलायत भेजूँगी। फिर आज इस तरह अधीर क्यों हो रही हो?

मुँह से कहना और बात है, लेकिन सन्तान की विदाई का दिन जब आ जाता है तब वह माता के लिए बहुत ही करुण, बहुत ही निर्मम होता है। यह बात सुषमा-जैसी अनुभवहीन बालिका को किस तरह समझाई जाय, यह उसकी मा की समझ में न आया। उनके सामने जो विराट् विस्तृत समुद्र था उसका आदि कहाँ है और अन्त कहाँ है, यह बात बतलाना सम्भव नहीं था। ठीक इसी प्रकार प्राणों से भी अधिक प्रिय एकमात्र पुत्र के वियोग की आशङ्का से माता के हृदय की चिन्ता ने कितना अधिक विस्तार कर लिया था? क्या वह इस सीमाहीन अगोप सागर के ही समान नहीं थी? इस चिन्ता का क्या कहीं अन्त था? सुषमा पागल थी। उसे वे कैसे समझातीं कि उनके हृदय में किस प्रकार की अपरिसीम व्याकुलता का पवन बह रहा है?

एक दिन की बात है। उस समय अनिल बहुत छोटा था। वह दौड़ता हुआ घर में आया और भयभीत होकर माता की गोद में बैठ गया। पिता के बहुत आग्रह के साथ, व्याकुल भाव से, बुलाने पर भी वह उनके पास नहीं गया। अपने छोटे-छोटे दोनों बाहुओं से मा का गला पकड़कर तोतली बोली में उसने कहा—नहीं, मा के पास से मैं न जाऊँगा। उस दिन की वह सुखमय घटना मनोरमादेवी के स्मृति-रूपी सागर के तल-देश में पड़ी थी। आज वह वर्तमान के प्रगाढ़ अन्धकार को भेदकर उनके मानस पर उदित हो आई। जिस दिन वह घटना हुई थी, अतीत के आलोक से कितना उज्ज्वल था, कितना आनन्ददायक था। अनिल की उस समय की तोतली बोली, उसके मुँह से अस्पष्ट रूप से निकला हुआ अधूरा शब्द आज भी उसकी मा के कर्ण-कुहर में गूँज रहा था। मनोरमादेवी सोचने लगीं कि यदि मैं वह दिन फिर लौटा पाती, आज यदि अनिल उसी तरह उस दिन का अस्पष्ट रूप से उच्चारण किया हुआ शब्द, नहीं मैं न जाऊँगा, दोहरा देता, तो क्या ही अच्छा होता। क्षण भर में वे फिर सोचने लगीं—नहीं, नहीं, ऐसा क्यों हो? वह जाय। इससे तो अनिल सुखी होगा, इसी में मुझे भी सबसे अधिक शान्ति मिलेगी, यों मुझे चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े।

समय किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करता। देखते देखते अनिल की यात्रा का दिन आ पहुँचा। तट-भूमि से दूर अगाधजल में सुसज्जित होकर 'चायना' नामक जहाज़ धुआँ उगल रहा था। तट पर नौका सजी थी, जिस पर यात्री लोग आ-आकर बैठ रहे थे। मनोरमादेवी अनिमेष दृष्टि से इस नौका की ओर ताक रही थीं। आज वे मानो इसी नौका पर अपना सर्वस्व चढ़ा देने आई थीं। पुत्र को बिदा करते समय माता का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। उस समय वे सोच रही थीं कि अरब-सागर की उन्मत्त तरङ्गें मानो तरणी की दीवारों पर आ-आकर गिर पड़ती हैं। तो क्या उनके हृदय के अन्तस्तल में भी ये तरङ्गें एक उत्ताल तरङ्गमाला की सृष्टि कर रही थीं?

अनिल माता से विदा लेने के लिए आया। उस समय उनका मुखमण्डल किसी मरी हुई स्त्री के मुख के ही समान निस्तेज और रक्तहीन हो गया था। सारा शरीर वायु के झकोरों का आघात पाये हुए कदली के वृक्ष के समान थर थर काँप रहा था। अनिल आगे बढ़ा और माता के कन्धे पर मस्तक रखकर भर्राई हुई आवाज़ से कहने लगा—मा...अब...समय—"

मनोरमादेवी पुत्र से लिपट गईं। उसे दृढ़ आलिङ्गन में आबद्ध करके वेदना से व्यथित कण्ठ से उन्होंने कहा—अनिल, बेटा, शायद मैं अब...तुझे...

माता की छाती से मस्तक लगाये हुए अनिल चुपचाप आँसू बहाता रहा।

माता की ओर अग्रसर होकर सुषमा ने कम्पितकण्ठ

से कहा—मा जाने के समय भैया को कष्ट न दो। देखो न मा, भैया...

कम्पित चरणों से अनादि बाबू भी पत्नी की ओर बढ़ गये। उन्होंने कहा—क्या कर रही हो तुम? यात्रा के समय लड़के को रुला दिया न?

मनोरमादेवी पुत्र के वियोग की व्यथा से व्याकुल हो उठी थीं अवश्य, किन्तु वे थीं बहुत ही कर्तव्यपरायणा और धैर्यशालिनी महिला। अपने हृदय को संयत रखने तथा अपने कर्तव्य-कर्म से कभी विचलित न होने का उनका स्वभाव था। इससे ज़रा ही देर में अपने अशान्त हृदय को उन्होंने शान्त कर लिया और पुत्र को सान्त्वना देकर वे स्वाभाविक स्वर में कहने लगीं—अनिल, देरी न कर बेटा!

माता के आभाहीन और निस्तेज मुख पर दृष्टि स्थिर करके रुद्धकण्ठ से अनिल ने कहा—जितनी जल्दी हो सकेगा, उतनी ही जल्दी मैं लौट आऊँगा मा। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करना। यदि तुम मन में दुःखी होओगी तो मुझे बड़ा कष्ट मिलेगा।

पुत्र का मस्तक चुम्बन कर माता नीरव भाव से अश्रु-विसर्जन करने लगीं। पिता के समीप आकर अनिल ने उनसे भी विदा माँगी।

दोनों बाहु फैलाकर अनादि बाबू ने अनिल को दृढ़ आलिङ्गन में आबद्ध कर लिया। उन्होंने अत्यन्त ही करुण स्वर से कहा—जाओ बेटा, ख़ूब सावधानी से रहना, पत्र देने में विलम्ब न करना। अपनी मा की दशा तो तुम देख ही रहे हो।

सुषमा ने कहा—आप भी रो रहे हैं बाबू जी!

सुषमा की ओर ताक कर अनिल ने कहा—सुषमा!

भर्राई हुई आवाज़ से सुषमा ने कहा—भैया! कि··· स...त...र...ह मा...को...

सुषमा के काँपते हुए दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर अनिल ने कहा—सुषमा, तू भी रो रही है? तेरा हृदय तो लोहे से भी कड़ा है। आज तू इस तरह विह्वल क्यों हो रही है? तुम लोगों को छोड़कर मैं बहुत दूर देश में जा रहा हूँ। मुझे अब कष्ट मत दो। ये बातें याद आने पर मुझे वहाँ कितना कष्ट होगा?

जल से भरे हुए दोनों ही नेत्रों को भाई के मुख पर आबद्ध करके सुषमा ने कहा—मा को और बाबू जी को किस तरह......

इतने में जहाज़ का अन्तिम घण्टा बजा। खलासी लोग दौड़ दौड़कर सीढ़ियाँ हटाने का उद्योग करने लगे। जहाज़ के डेक पर तमाम गर्द जमी थी। सुषमा उसी पर बैठ गई। आज से पहले उसने एक बार भी नेत्रों से आँसू नहीं गिरने दिये। परन्तु आज वह उन्हें रोकने में किसी प्रकार भी समर्थ न हो सकी। इतने दिनों से मानो उसने आँसुओं का एक बहुत बड़ा कोष सञ्चित कर रक्खा था। आज वह कदाचित् शून्य होकर ही रहेगा। सुषमा सोचने लगी कि भैया को विदा करके हम किस प्रकार इस आनन्द-हीन घर में निवास कर सकेंगे।

जहाज़ छूट रहा था। अनिल ने बड़ी कठिनाई से रोती हुई सुषमा को शान्त करके माता-पिता को सान्त्वना दी और सबको वापस किया। वे सब जब दृष्टिपथ से अतीत हो गये तब वह केबिन में गया और बिस्तरे पर लेट रहा।

इकतीसवाँ परिच्छेद

चिन्ता का आरम्भ

समस्त दिन व्यतीत हो गया। प्रायः सन्ध्या हो आई। सन्तोष बराबर वासन्ती की प्रतीक्षा में बैठा रहा, परन्तु उस समय तक भी वह उसके दृष्टिपथ पर नहीं आ सकी। उस दिन रोगिणी की परिचर्या के लिए जो जो वस्तुएँ आवश्यक होती थीं वे सब चमेली ही ला लाकर सन्तोष के समीप उपस्थित कर देती थी। किन्तु सन्तोष की तृष्णापूर्ण दृष्टि आज केवल कमरे के द्वार की ही ओर लगी रही। उसने यह अनुभव किया कि मुहूर्त भर की दुर्बलता के कारण आज इस तरह मेरे हृदय को पराजय स्वीकार करनी पड़ी है। आज उसका हृदय वासन्ती के लिए व्याकुल हो उठा था। उसके शरीर का अणु-परमाणु तक आज वासन्ती के लिए व्याकुल हो उठा था।

जो मुख सदा घूँघट से ढँका रहता है, मनुष्य की कौतूहलपूर्ण दृष्टि सदा ही उस पर निपतित होने के लिए प्रयत्नशील रहती है। लोग सोचते हैं कि कदाचित् इस घूँघट की आड़ में छिपे हुए मुख में कोई अपरिमित सौन्दर्य-निधि निहित होगी। उसे देखने के लिए पुरुष की दृष्टि जब व्याकुल होती है तब स्वभावतः हृदय में आग्रह उत्पन्न कर देती है। वासन्ती की प्रतिदिन की मुलाक़ात के कारण सन्तोष के हृदय में भी उसी प्रकार का आग्रह उत्पन्न हुआ और वही धीरे धीरे विकसित होकर तीव्र आकांक्षा के रूप में परिवर्तित हो उठा। वासन्ती निरलस थी, सेवापरायण थी। वह बहुत ही शान्त, स्निग्ध तथा मधुर भाव से दृष्टिपात करती और हर एक काम असङ्कोच के भाव से करती रही। उसके मुख-मण्डल पर से प्रसन्नता का भाव कभी दूर नहीं होने पाता था। इस प्रकार अविराम गति से घर के लोगों की सुख-सुविधा तथा रोगिणी की परिचर्या के कार्यों में वह बराबर लगी रहती थी। सन्तोष के साथ उसका जो एक सम्बन्ध था उसे मानो वह भूल ही गई थी। किस प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य की चित्तवृत्ति इस रूप में लाई जा सकती है?

पहले सन्तोष का हृदय वासन्ती की ओर आकर्षित नहीं हुआ था। परन्तु बाद को धीरे धीरे उसके हृदय में वासन्ती के प्रति एक प्रकार की प्रगाढ़ श्रद्धा का भाव उत्पन्न होने लगा। वह अनुभव करने लगा कि वासन्ती को मैंने जिस प्रकार की अश्रद्धा के साथ अपने से दूर कर रक्खा है, सम्भवतः वह इतनी हेय नहीं है। आज रह रहकर पिता के मृत्युकाल के समय की उसके क्षीण कण्ठ से निकली हुई वाणी सन्तोष के कान में गूँज उठती थी। आज सन्तोष की वह प्रतिज्ञा कहाँ है? कहाँ गया उसका वह अहङ्कार? मूर्छित और चेतनाहीन अवस्था में भी एक दिन जिसकी अवहेलना करने में उसने द्विविधा का अनुभव नहीं किया, जिसकी निष्कपट हृदय की व्याकुल प्रार्थना भी उसको प्रतिज्ञा से विचलित करने में समर्थ नहीं हो सकी, इतने वर्ष तक जिसकी ओर दृष्टिपात करने की आवश्यकता का उसने अनुभव नहीं किया, आज सन्तोष का मन उसी वासन्ती के मन के द्वार पर किस वस्तु की भिक्षा के लिए हाथ जोड़े खड़ा था?

जिस प्रकार के विचार को सन्तोष हृदय में स्थान तक नहीं देना चाहता था, आज वही घूम-फिरकर उसके हृदय पर प्रबल भाव अधिकार किये जा रहा था। वासन्ती के हृदय में जो इस प्रकार का परिवर्तन हो गया था उसमें जो इतना अधिक उदासीनता का भाव आ गया था उसके लिए उत्तरदायी कौन था? जो कुछ स्त्री नहीं कर सकती, वासन्ती ने वह भी किया था। किन्तु उसके बदले में उसने पाया क्या था? अत्याचार, अन्याय और उत्पीड़न, और कुछ नहीं। लोग मुँह से ख़ातिरदारी कर देते हैं, परन्तु सन्तोष से तो उतना भी नहीं बन पड़ा। यह क्यों? वासन्ती का क्या अपराध था?

आज सन्तोष के हृदय में वासन्ती के सम्बन्ध की एक एक बात उदय हो रही थी। वह मन ही मन सोचने लगा कि नवपुष्पित यौवन में स्वच्छ, निष्कपट और कल्मषहीन हृदय लेकर स्वेच्छा से वह मेरे समीप गई थी अपनी दुःख-दुर्दशा का हाल बतलाकर शरण माँगने के लिए। उस समय मैंने उसे क्या दिया था? केवल दुःख, केवल कष्ट और उसके साथ ही साथ व्यङ्ग्य—ऐसा व्यङ्ग्य जो हृदय को कुचल दे। क्या इतने दिनों में वासन्ती वह सब भूल गई होगी? तो आज वही यह उपयुक्त अवसर हाथ से क्यों जाने दे? परन्तु यह बात कहाँ है? उसके व्यवहार में तो किसी प्रकार की त्रुटि मालूम नहीं पड़ती?

सन्तोष को मन ही मन बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगा कि मैं अपने इस अशिष्ट और निर्लज्जतापूर्ण आचरण को किस तरह स्वाभाविक आत्मीयता के आवरण से ढँक कर घूमता फिरता हूँ। आज मैं समस्त हृदय से वासन्ती से प्रेम करता हूँ। क्या न्याय की दृष्टि से मैं इसके लिए अधिकारी हूँ? विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब सुदीर्घकाल तक मैंने उसी को दूर कर रक्खा था, उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा हूँ, अपने हाथ से ही मैंने अपने इस व्यवधान के लिए चहारदीवारी खड़ी की है और मैं स्वयं इस चहारदीवारी को फाँदने के लिए व्यग्र हूँ।

बड़ी देर के बाद अपना समस्त सङ्कोच दूर करके सन्तोष ने चमेली से पूछा—वे आज कहाँ गईं रे?

संशयपूर्ण कण्ठ से चमेली ने कहा—किसके सम्बन्ध में कह रहे हो भैया?

"वही नया आदमी रे। तुम लोगों की भाभी।"

ज़रा देर तक चुपचाप बैठी रहने के बाद चमेली ने कहा—पता नहीं, क्या बात है। वे सवेरे से ही लेटी हुई हैं। कहती हैं कि शरीर अच्छा नहीं है। शरीर ख़राब होने का काम भी उन्होंने किया है। डेढ़ डेढ़ महीने हो गये, रात रात भर वे बराबर जागती आई हैं। इस तरह भी कहीं कोई रात में जागता है?

सन्तोष उस समय सोच रहा था कि वासन्ती आज मिथ्या के आवरण में अपनी सारी व्यथा छिपा रखना चाहती है या सचमुच उसकी तबीयत ख़राब है।

सन्तोष ने जब देखा कि चमेली रोगिणी के कमरे में बैठी है तब वह उस कमरे से निकल आया और सीधे दो तल्ले पर गया। वहाँ एक कमरे में जाकर उसने देखा कि वासन्ती सिर से पैर तक एक चादर ताने हुए सोई हुई है।

सन्तोष ने दबे पैर से कमरे में प्रवेश किया। ज़रा-सा दरवाज़ा भिड़ाकर जैसे ही वह पीछे फिरकर खड़ा होने लगा, उसने देखा कि वासन्ती उठकर बैठने जा रही है। यह देखकर उसने कहा—नहीं, नहीं, मैं यहीं—बिस्तरे पर, जगह काफ़ी है। फिर भी धूलि से भरे हुए कमरे के फ़र्श पर वह बैठ गया। वहाँ बैठे बैठे बहुत-सा समय व्यतीत हो गया। परन्तु वासन्ती ने अपनी ओर से कोई भी बात नहीं छेड़ी। यह देखकर सन्तोष ने सोचा कि अब सारी बातें अपने आप ही कह डालना मेरे लिए उचित है। कातर दृष्टि से वासन्ती की ओर ताक कर उसने कहा—क्या तुम्हारी तबीयत कुछ ख़राब है या मुझसे रुष्ट होकर तुम इस तरह पड़ी हो?

वासन्ती ने कहा—तबीयत! नहीं, तबीयत नहीं ख़राब है। और मेरे रुष्ट होने के सम्बन्ध में जो आप पूछ रहे हैं सो मैं रुष्ट क्यों होऊँगी? क्या रुष्ट होने का अधिकार मुझे है?

सङ्कोचपूर्वक ज़रा मुस्कराकर सन्तोष ने कहा—तो क्या रोष में भी किसी का अधिकार होता है, किसी का नहीं होता?

वासन्ती ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसे चुप देखकर पत्नी के सूखे हुए मुँह की ओर सन्तोष की दृष्टि गई। अन्त में वह कहने लगा—मुझे जब इस बात का विश्वास हो जायगा कि आप मुझसे रुष्ट नहीं हैं तब मेरे जी में जी आवेगा। मैं सोच रहा था कि कल रात की—

उस समय वासन्ती के मन में यह बात आती थी कि उसके इतने दिनों के रोष या अभिमान के कारण सन्तोष को क्या लाभ या हानि हुई है, यह बात उससे पूछ ली जाय। वह यह भी पूछ लेना चाहती थी कि इतने दिनों के बाद अकस्मात् आज ही क्यों मेरे लिए तुम्हारा हृदय व्यग्र हो उठा है? परन्तु सन्तोष की बात का कोई भी उत्तर न देकर वासन्ती ने केवल इतना ही कहा कि मैं जाती हूँ।

सन्तोष ने कहा—नहीं, नहीं, इस समय जाने की आवश्यकता नहीं है। बुआ जी की तबीयत आज बहुत अच्छी है। जिस तरह भी होगा, आज की रात का सारा प्रबन्ध वे लोग कर लेंगे।

पृथिवी की ओर ताकती हुई वासन्ती बैठी रही। सन्तोष ने उसके जाने में जो आपत्ति की थी उसका खण्डन करने का वासन्ती ने कोई उद्योग नहीं किया। कुछ देर तक उसके मौन-मुख की ओर ताकते रहने के बाद असहिष्णु भाव से सन्तोष ने कहा—तुमसे ज़ोर करके उत्तर प्राप्त करने की शक्ति मुझमें नहीं है, तो भी यदि बतलाओ तो एक बात पूँछूँ।

उसी तरह शान्त और संयत कण्ठ से वासन्ती ने कहा—कहिए।

"मैंने कल जो अपराध किया है उसके लिए तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

वासन्ती ने अपना झुका हुआ मस्तक ऊपर की ओर उठाया। उसने देखा तो सन्तोष उसी की ओर ताक रहा था। इससे वासन्ती की आँखों की पलकें अपने आप ही झुक गईं। सन्तोष के इस लज्जाहीन दृष्टिपात के कारण उसका मुख रक्तवर्ण हो उठा। किन्तु उसका यह भाव भी सन्तोष की दृष्टि को बच सका। उपेक्षिता पत्नी की वह लाजभरी चितवन ही आज सन्तोष को बहुत मधुर लग रही थी। उसके कारण उसे इतना सुख मिल रहा था, जितना शायद दृष्टिहीन हो जाने के बहुत दिन बाद नई दृष्टि-शक्ति पा जाने पर भी किसी को न होता हो। वासन्ती जो कुछ कहने जा रही थी उसे वह कह न सकी।

निस्तब्धता भंग करके सन्तोष ने कहा—कहो न? क्या कहती थीं? रुक क्यों गईं? बोलो, मेरा अपराध क्षमा कर सकी हो।

लज्जा के कारण रुँधे हुए कण्ठ से वासन्ती ने कहा—आप बार बार वह बात क्यों कह रहे हैं? मैं—

उस समय सन्तोष को यह इच्छा हो रही थी कि वासन्ती का झुका हुआ मुख उठाकर एक बार देख लूँ कि इस शान्त सुन्दर और मौन अधरोष्ठ के बीच में कौन सी भाषा उसने रुद्ध कर रक्खी है। धीरे धीरे वह कमरे से निकल गया।

———

बत्तीसवाँ परिच्छेद
उलटी हवा

बुआ जी का शरीर उत्तरोत्तर आरोग्य होने लगा। वे सबको पहचानने लगीं। उनकी स्मरण-शक्ति भी ठिकाने पर आगई। इधर चार-पाँच दिन से उन्हें ज्वर आना भी बन्द होगया था। डाक्टर कह गये थे कि कल इन्हें भोजन दिया जाय। आज-कल वे दस-पाँच मिनट उठकर बैठने भी लगी थीं। विनय की मा का शरीर ज़रा कुछ अच्छा होते ही ताईजी सिराजगंज चली गईं।

एक दिन दूसरे वक्त वासन्ती अनार का रस निचोड़कर बुआजी को पिलाने जा रही थी। इतने में उन्होंने कहा—कितने दिनों तक यह रस पीती रहूँगी बिटिया? एक स्त्री को इस तरह बचा लेने की क्या आवश्यकता थी? तुम लोग जिस तरह खा-पीकर—

इतने में मुस्कराते हुए कमरे में प्रवेश करके सन्तोष ने कहा—किसकी बात कह रही हो बुआ जी?

बुआ जी ने सन्तोष को अपने पास बैठने की आज्ञा देकर कहा—तुम लोगों के पागलपन की बात कह रही थी। क्या एक स्त्री को भी बचाने के लिए इतना उद्योग करना आवश्यक होता है? देखो न घंटे घंटे पर औषध और फल का रस देते देते बड़ी बहू तंग आगईं। मेरे पीछे चौबीस घंटे उन्हें परेशान रहना पड़ता है। मैं मानो उनकी छोटी-सी लड़की हूँ। तुम लोगों की भी यही दशा थी।

सन्तोष ने कुछ खिन्न भाव से कहा—क्यों बुआ जी, क्या स्त्री मनुष्य ही नहीं है? क्या स्त्री के प्राण प्राण ही नहीं हैं?

बुआ जी ने दुःखमय स्वर में कहा—परन्तु इसका तुम लोग कहाँ अनुभव करते हो?

सन्तोष ने समझ लिया कि यह ठोकर बुआ जी ने मेरे ही ऊपर जमाई है, तो भी इस बात को उसने टाल देने का ही प्रयत्न किया। वह कहने लगा कि आपकी बीमारी के कारण फूफा जी की कैसी अवस्था हो गई थी, उन्हें देखे बिना आप न अनुभव कर सकेंगी।

बुआ जी ने कहा—यह बात ठीक है बेटा, परन्तु उन्हें और तुम लोगों को छोड़कर मैं मर सकती तभी अच्छा था। भाग्य में कब के लिए क्या लिखा है, यह कौन बतला सकता है?

सन्तोष ने कहा—ज़रा देर के लिए मुझे बाहर जाना है। यह कहकर जैसे ही वह उठकर खड़ा हुआ, उसकी पिपासाकुल दृष्टि क्षण भर के लिए वासन्ती पर निपतित हुई। उसने देखा तो वासन्ती शान्त और स्निग्ध दृष्टि से उसी की ओर ताक रही थी। उतावली के साथ अपने अबाध्य चरणों को जूतों में डालकर वह कमरे से निकल पड़ा।

इधर कुछ महीनों से एक प्रकार की प्रबल चिन्ता सन्तोष के हृदय को बराबर ही व्यथित करती आ रही थी। प्रयत्न करके भी हृदय से उस चिन्ता को दूर करने में सन्तोष सफल नहीं हो सका। वह बराबर इसी बात पर विचार करता रहता कि वासन्ती मुझसे प्रेम करती है या नहीं? आज जो आँख बचाकर वासन्ती उसकी ओर ताक रही थी उसके कारण उसके इस प्रश्न का उत्तर बहुत कुछ मिल गया। वासन्ती की उस समय की चितवन ने सन्तोष के क्षणभंगुर और निराशापूर्ण हृदय में थोड़ी-सी आशा का बीज वपन किया, ऐसा प्रतीत होने लगा। रात्रि में जब शय्या पर लेटा तब भी सन्तोष के हृदय-रूपी आकाश पर वासन्ती की आँखें दो उज्ज्वल नक्षत्रों के समान उदित हो आईं।

यह घटना हुए कई दिन व्यतीत हो गये। साँझ का समय था। वासन्ती थोड़े से पान लेकर बना रही थी। इतने में सुजाता आई और पूछने लगी—क्यों दीदी, क्या तुम कल चली जा रही हो?

पान में कत्था लगाते लगाते मुँह नीचा किये ही हुए वासन्ती ने कहा—क्या करूँ बहन? भाग्य ही खींचे लिये जा रहा है। जाऊँ न तो करूँ क्या?

कुछ कृत्रिम रोष का भाव दिखलाती हुई सुजाता कहने लगी—नहीं दीदी, आप न जाने पावेंगी। आपके चले जाने पर मैं क्या करूँगी?

वासन्ती ने धीरे से हँसकर कहा—इतने दिनों तक तो तुम्हीं लोग घर-गृहस्थी का सारा काम-काज सँभालती आ रही हो, अब तुमसे क्यों न सँभल सकेगा? किसी के बिना किसी का कोई काम रुका नहीं रहता रे! मैं तो घुमक्कड़ हूँ सुजाता। मेरे दिन इसी तरह भटकते भटकते बीत जायँगे।

सुजाता ने कहा—यह सब मैं नहीं सुनना चाहती दीदी। आपके चले जाने पर काम न चलेगा।

सुजाता मुँह नीचा किये हुए बैठी थी। वासन्ती ने उसे पकड़कर उसका झुका हुआ मुँह ऊपर की ओर उठाया और हँसी हँसी में कहने लगी—तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक तो हैं ही, उनसे भी तो तुम बहुत से काम करवा ले सकती हो। इस तरह के प्रेमी जहाँगीर जिसके हैं उसके लिए इस प्रकार की चिन्ता करने की कौन-सी बात है सुजाता?

सुजाता ने वासन्ती का हाथ छुड़ा लिया। वह कहने लगी—चलिए, चलिए! मुझे कहने के लिए आप भी बहुत हैं। इधर आपके जगतसिंह जो आज-कल इस तरह गोते खा रहे हैं, उनकी ओर मानो आपका कोई ध्यान ही नहीं है।

वासन्ती ने एक हलकी सी साँस लेकर कहा—कौन कहता है रे? नहीं तो। मेरी समझ में तो ऐसी कोई बात है नहीं। परन्तु लोग कहते हैं। सुनने में भी ज़रा-सा सुख है। वही मुझे भी......।

रहस्यपूर्ण दृष्टि से वासन्ती के मुँह की ओर ताककर सुजाता ने कहा—भुनी हुई मछली फिर उठ कर खाना नहीं जानती। यह जो इतने अधिक चक्कर लगाये जाते हैं, किसलिए?

वासन्ती ने कहा—बाप रे, ऐसी बात! बिल्ली के भाग्य से एक दिन सिकहर टूट गया था, राह भूल कर कुराह में पड़ गये थे, उसी में तुम लोगों को इतना आनन्द आ गया।

सुजाता ने कहा—ठहरिए, ठहरिए। यह सब हम समझती हैं। साँप की फुफकार मदारी से छिपी नहीं रह सकती।

वासन्ती ने वक्र दृष्टि से ज़रा-सा ताककर कहा—यह तो तुम समझोगी ही। वशीकरण का मन्त्र तुम लोगों को सिद्ध है न! तुम लोग जो कामरूप का कलानी माल हो। विनय बाबू की वर्तमान दशा ही इसका प्रमाण है। देखो न, वे कैसे भेड़ बने रहते हैं।

सुजाता ने कहा—आप ही क्या कम हैं?

वासन्ती ने कहा—इसका भी प्रमाण है। सात वर्ष में तो कुछ कर नहीं सकीं। अब तुम्हें देखने को जो कुछ बाक़ी हो।

इतने में चमेली के लड़के मंटू ने आकर कहा—छोटी मामी, छोटे मामा बुला रहे हैं।

वासन्ती हँसते हँसते लोट-पोट हो गई। सुजाता ने यह देखकर कहा—उन्हें बुलाने का और कोई समय नहीं था?

यह सुनकर वासन्ती और हँसी। वह कहने लगी—इसके लिए भी कोई समय-असमय होता है? घड़ी की सुई जिस समय जिस ओर घूम पड़े।

मुँह दबाकर हँसते हँसते वासन्ती ने कहा—अच्छा, अच्छा, मैं भी देख लूँगी। अभी जल्दी तो मरी नहीं जा रही हूँ।

सुजाता ने कहा—देखना।

मंटू का हाथ पकड़े हुए सुजाता कमरे से निकल गई।

कितना समय इसी तरह बीत गया, वासन्ती यह जान न सकी। उस समय वह सोच रही थी कि निःसङ्ग, कर्म-हीन और नीरस जीवन को ज़रा-सी शान्ति प्रदान करने की आशा से तीर्थभ्रमण के निमित्त जिस घर का सान्निध्य छोड़कर स्वेच्छा से चली आई हूँ, आज फिर उसी गाँव में, उसी घर में, मुझे लौटकर जाना पड़ेगा।

वासन्ती का इस तरह अकेले रहकर जीवन व्यतीत करना कितना कष्टकर था! इतने बड़े बड़े दिन, इतनी बड़ी बड़ी रातें वह कितने क्लेश से व्यतीत किया करती थी! उसकी दुःखमय अवस्था का क्या और भी कोई अनुभव करनेवाला था?

एकाएक के शब्द से उसका विचार परिवर्तित हो गया। बिजली की तेज़ रोशनी में उसने देखा तो दरवाज़े के पास सन्तोष उसी की ओर ताकता हुआ खड़ा है। वासन्ती की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही ज़रा-सा मुस्कराकर उसने कहा—बुआजी को दवा दे चुकी हो!

वासन्ती के मस्तक हिलाकर अपनी स्वीकारोक्ति प्रकट करते ही सन्तोष ने मृदु कण्ठ से कहा—एक बात कहने आया था।

वासन्ती उस समय सोच रही थी कि ये एकाएक इतने अच्छे आदमी कैसे हो गये। फिर भी स्वामी की यह बात उसके कान में व्यङ्ग्यमय हँसी के ही समान आघात पहुँचाने लगी। अपने मन का भाव दबाकर यथासाध्य संयत कण्ठ से उसने कहा—कौन-सी बात है?

सन्तोष ने कम्पित कण्ठ से कहा—तो क्या तुम कल जा रही हो?

व्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २१, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २३ अप्रेल तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

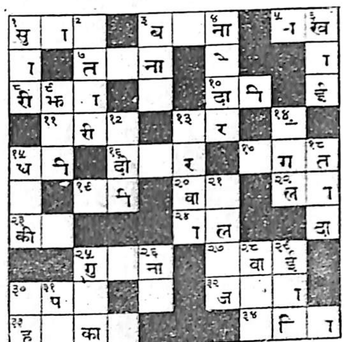
बाँये से दाँये

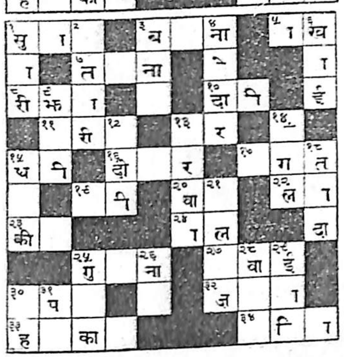
१—कोई कोई इसकी ही आड़ में शिकार खेलते हैं (सुधार)
३—गंदे हाथों से औषधि का······उसे हानिकारक बना देता है।
५—एक अच्छे पैमाने पर व्यौपार बिना इसके के दिन चलेगा!
७—कपटी और कुचाली मनुष्य सांसारिक मोह में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उसे······असम्भव होता है।
८—मोहित होना।
१०—आवश्यकता पड़ने पर इससे सभी सहायता की आशा करते हैं।
११—यह ग़रीब आपके देखने के लिए उलटा लटका है।
१३—······रोज़ देर से पहुँचनेवाले को प्रायः नित नये बहाने ढूँढ़ने पड़ते हैं।
१५—रक्खी हुई। १६—यह दो से मिलकर बनती है।
१७—ईश्वर की महिमा का बखान यह, समझनेवाले के लिए, सहस्र जिह्वा से करता है।
१९—इसको बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करके जानवरों को खिलाते हैं। २०—सुगन्ध। २२—मिला।
२३—इसके लगने से एक बने-ठने मनुष्य का सारा ठस्सा धरा रह जाता है।
२४—परमात्मा न करे कि किसी का······बुरा हो।
२५—बाँहों का यह अकसर किसी के लिए स्मारक बन होता है। २७—जिसमें कुछ तत्त्व न हो।
३०—पुलिस का काम इसी से चलता है।
३२—देश के नेता प्रायः सरकार को इसका भय दिखाते हैं।
३३—शत्रु यदि और कुछ न कर सका तो यह कर देता है। ३४—मिरचा टूट गया।

ऊपर से नीचे

१—सच्चे मनुष्य का जीवन ऐसा ही होता है।
२—लाल।
३—मानना पड़ेगा कि विदेशी यह बढ़िया बने हैं।
४—बेईमान व्यौपारी को इसकी आँख में धूल झोंकने में कुछ संकोच नहीं होता।
६—अधिक खानेवाले को इससे प्रायः हानि उठानी पड़ती है।
९—लम्बे बालवाली। १२—हथेली।
१३—कठिन मालकिन प्रायः इसके नाक में दम कर देती है। १४—दर्प का प्रेरक।
१५—कायर के लिए एक ही यह काफ़ी है।
१८—माँग।
२१—इस पर आपके बड़प्पन की धाक जमनी नहीं।
२५—एक प्रकार की पुस्तक।
२६—मनुष्य इसे घर से बाहर ही पैदा करते हैं।
२८—बंदर। २९—यहाँ मिताई उलट गई।
३१—मिनट का भाग।

अपनी यादगार के लिए वर्ग २१ की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।





वर्ग नं० २० की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २० की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।



वर्ग नं० २० (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २० के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३, ४ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ अप्रैल के बाद नहीं लिया जायगा।

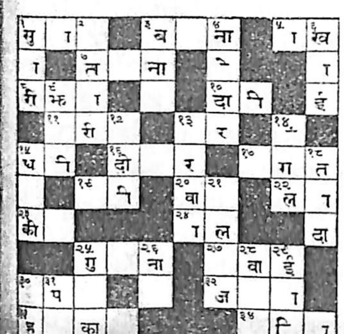
इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २१

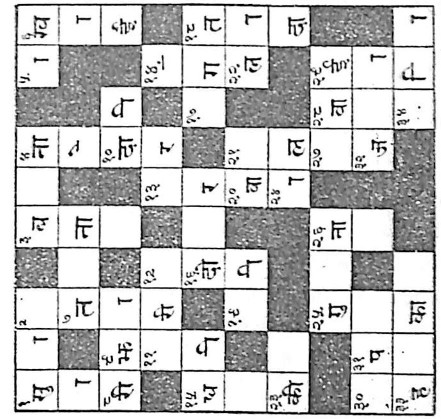
इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नकल यहाँ कीजिए।

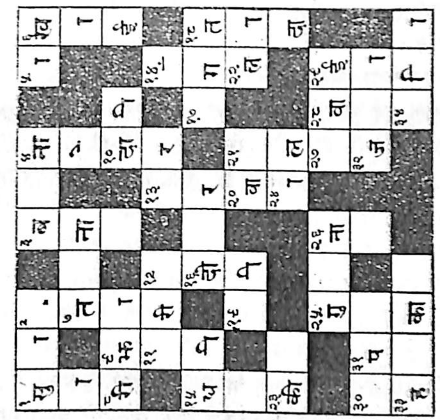


वर्ग नं० २१ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

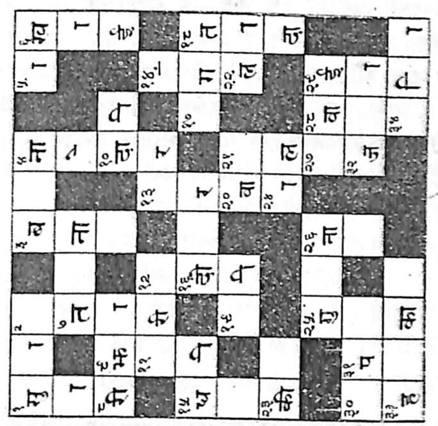


इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २१ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० २१ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ४३२ पर देखिए।

वर्ग नं० १७ की शङ्काओं का समाधान

सीतामढ़ी, ओरियन्टल स्कूल
२०-३-३८

महाशय,

भाई रामचन्द्र जी अग्रवाल ने मार्च मास की सरस्वती में वर्ग नं० १७ की शुद्धपूर्ति पर दो शङ्कायें प्रकाशित कराई हैं। चूँकि उस वर्ग की मेरी पूर्ति पूर्णतः शुद्ध निकली थी, अतएव मेरा कर्तव्य बाध्य करता है कि मैं इन शङ्काओं का यथोचित समाधान कर दूँ।

शङ्का नं० १

गठरी नहीं, गहरी क्यों?

अङ्क-परिचय सावधानी से पढ़ने से यह शङ्का आपही आप काफूर हो जायगी। देखिए, परिचय कहता है, "रास्ते में नदी हो,......हो, तो......।" यदि 'गठरी हो' लिखिए, और वाक्य को पढ़िये तो झट पता चल जायगा कि वाक्य-विन्यास कैसा भद्दा हो जाता है। जब तक 'गठरी हो' के ठीक पूर्व 'पास में' नहीं जोड़ें, वाक्य का अर्थ होगा—'रास्ते में नदी हो, और (रास्ते में) गठरी हो तो......।' भला रास्ते में गठरी होने से मुसाफ़िर की मुसीबत के बढ़ने-घटने का क्या सम्बन्ध? हाँ, रास्ते में नदी हो, और हो गहरी, तो मुसाफ़िर के लिए निस्सन्देह बड़ी मुसीबत का मुक़ाम होगा, ख़ासकर अँधेरी रात्रि में, जब कि पथ प्रायः सर्वथा निर्जन रहता है। भाई साहब फ़रमाते हैं—'......पथिक यह समझ लेता है कि जब नदी है, अवश्य गहरी भी होगी।' कहना न होगा, दलील लचर है। भला मुसाफ़िर ऐसा क्यों समझने लगा? यदि घुटने भर पानीवाली नदी हो, तो मुसाफ़िर हँसता हँसता रास्ता नापेगा। अँधेरे में रास्ते में एक छिछली नदी या सोता मिल जाय, और पास में गठरी भी हो तो कोई मुज़ायक़ा नहीं। परन्तु गठरी के नहीं रहने पर भी अँधेरी रात में गहरी नदी का मिलना मुसीबत का घर है। एक तो तैरना सबको आता नहीं, दूसरे अँधेरे में गहरी नदी में तैरने के लिए मजबूर होना मुसीबत नहीं तो क्या है?

शङ्का नं० २

ठटना नहीं, बटना क्यों?

यहाँ भी भाई साहब ज़रा चूक गये हैं। आपका यह कहना कि 'नये फ़ैशन में मूँछें रखी ही नहीं जातीं' तथ्य से रहित है। केवल 'कर्ज़न फ़ैशन' ही तो नया फ़ैशन नहीं है। 'फ्रेंच-कट', 'बटर फ़्लाई' वग़ैरह भी तो मूँछों के नये फ़ैशन हैं। इस दूसरे प्रकार की मूँछें रखना भी मूँछें का ठटना या सजाना है। ख़्वाह कैंची से सजिए, ख़्वाह कंघी या उँगलियों से, बात एक ही है। इसलिए नये फ़ैशन ने मूँछों का ठटना जड़ से हर्गिज़ नहीं उड़ाया है। हाँ, लम्बी मूँछें रखना पुराना फ़ैशन है, और ऐसी ही मूँछें 'बट' (ऐंठी जा) सकती हैं। नये फ़ैशन की कटी-छटी या बिलकुल सफ़ाचट मूँछों में बटने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इसलिए केवल 'बटना' ही शुद्ध उत्तर होगा।

—सरस्वतीदेवी
ओरियन्टल स्कूल सीतामढ़ी

वर्ग नं० १८ की शङ्काओं का समाधान

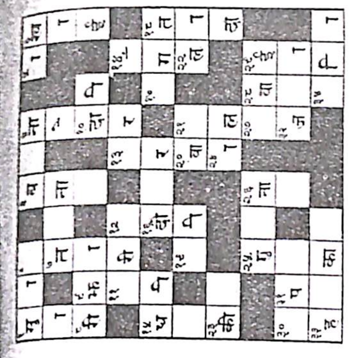
श्री राधाकिसन जी की शङ्कायें जो पहेलियाँ वर्ग नं० १८ के बारे में हैं वे निर्मूल नहीं हैं और उन्होंने जो शब्द लिखे हैं वे अपनी दृष्टि से ठीक हैं परन्तु गुप्त जी के ध्यान को इस ओर आकर्षित करूँगा कि उन्होंने थोड़ा सा कष्ट नहीं उठाया कि उसी से मिलते-जुलते और भी शब्द बन सकते थे यदि गुप्त जी एक कूपन में ये दूसरे शब्द भी भर देते तो शायद ऐसी शङ्कायें न करते।

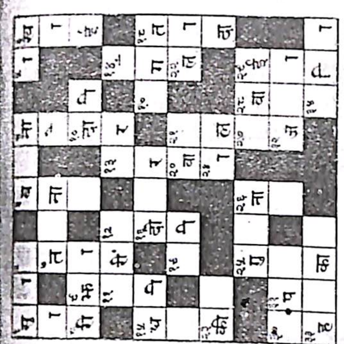
ये (Puzzles) यानी पहेलियाँ हैं जो सदैव मनुष्य के मस्तिष्क को भ्रम में डाला करती हैं और (Compiter) संग्रहकर्त्ता महोदय सदा ऐसे ही शब्द रखते हैं जिनमें कि प्रतियोगी भ्रम में पड़ जावें।

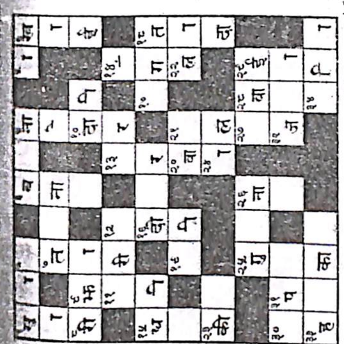
(१) नं० १ 'इसके देने से एक प्रकार का बन्धन हो जाता है' क्या 'बटन' देने से बन्धन नहीं होता जितने भद्र पुरुष हैं वे संसार में बटन से बद्ध कपड़े पहनते हैं और 'बटन' एक प्रकार से सांसारिक बन्धन है और जो लोग बटन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं वे संन्यासी हैं संन्यासी बटन लगे कपड़े नहीं पहनते और वे ही इस बन्धन से दूर हैं इसलिए बटन शब्द अधिक ठीक है। बन्धन है।

(२) नं० २ लिपाई भी नौ-दस साल के बच्चे भी ठीक से नहीं कर सकते हैं श्री गुप्त जी पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं इसलिए लिखाई का उन्हें पूर्ण अनुभव है कि नौ-दस साल के बच्चे नहीं कर सकते लिपाई का उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया।

—ऋषीशंकर दुबे

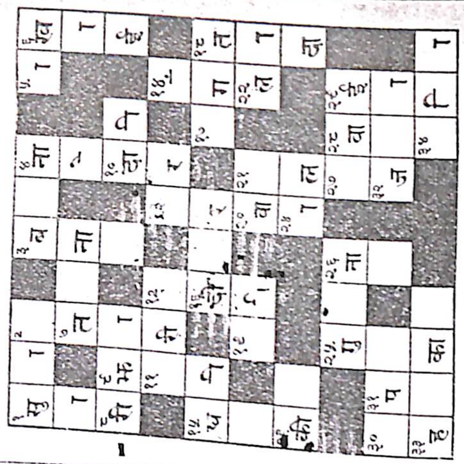




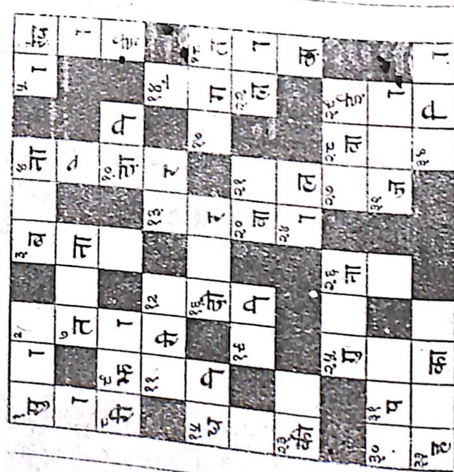


अपनी याददाश्त के लिए वर्ग नं० २१ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २१ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

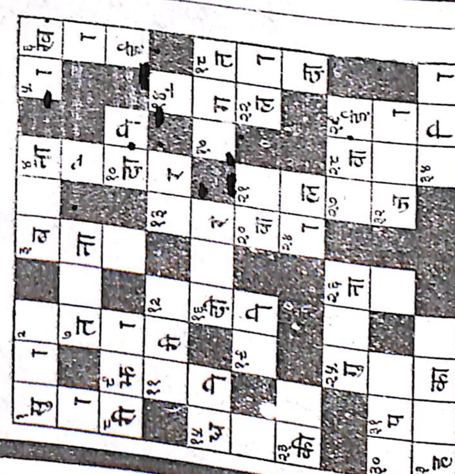


वर्ग नं० २१ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २१ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम .... पता ....

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २१ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २१ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २६ अप्रेल सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सबसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

हिन्दी अखबार अखबार की

'वर्तमान' के 'होली-अङ्क' में बिस्मिल इलाहाबादी ने लिखा है—

क़ुदरत से देखता हूँ ख़ुशी ग़म के साथ है।
होली यही सबब है मुहर्रम के साथ है॥

परन्तु ख़ुशी और ग़म का यह साथ अनेक स्थानों पर क़ुदरती नहीं साबित हुआ। बनारस, जबलपुर और इलाहाबाद आदि स्थानों में ख़ासी मारपीट जारी हो गई। कुछ भी हो, इस सामयिक सूझ के लिए बिस्मिल साहब बधाई के पात्र हैं।

× × ×

इस वर्ष जिन पत्र-पत्रिकाओं ने अपने अपने 'होलिकाङ्क' निकाले हैं, सुरुचि, सूझ और सामयिकता की दृष्टि से 'वर्तमान' उन सबसे बाज़ी मार ले गया है। नमूने के लिए नीचे हम कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं—

जी हुजूर की कहै गेहरिया या का हुइगा नाथ।
गुंडन को सुराज मिलिगा तुम आये खाली हाथ॥
डियर यह कैसी उलटि-पलटि हैंगै॥
जमींदार की ऐसी तैसी हम हैं बीर किसान।
फिर 'सैय्याँ कोतवाल है गये' ठिंगा देयँ लगान॥
यार सचौ सुराज मिल गवा हमैं॥

पिछले चुनाव में कांग्रेस की जीत और संयुक्त-प्रान्त में कांग्रेसी मिनिस्ट्री का इस्तीफ़ा और इस्तीफ़े की वापसी का प्रान्त की जनता पर जो प्रभाव पड़ा उसका कैसा मधुर व्यङ्गय उपर्युक्त कबीर में किया गया है।

× × ×

लखनऊ से 'चकल्लस' नाम का हास्य-रसप्रधान एक नया साप्ताहिक निकलने लगा है। श्री नरोत्तम जोशी और श्री अमृतलाल नागर इसके सम्पादक हैं। यों तो इस पत्र के सभी अङ्क होलिकाङ्क होते हैं, पर होली के अवसर पर इसमें और भी अधिक सामग्री एकत्र की गई है। इस 'होलिकाङ्क' में पूरे पूरे पृष्ठ के कई एक मज़ेदार व्यङ्गय चित्र प्रकाशित किये गये हैं। उन चित्रों को तो हम यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते, पर उनके साथ प्रकाशित निम्न पंक्तियों से उनकी सरसता का कुछ अनुमान किया जा सकता है—

क्या ख़ूब जोश कि पिचकारी तानी।
पर अफ़सोस वह 'मेहरारू' थी गाँव की॥
: : : : : :
तमीज़ ख़ाक नहीं पर हैं क़ातिल।
जी हाँ ये हिन्दी के 'समालोचक' हैं॥
: : : : : :
तेवर चढ़ा के कहते हैं इसमें जगह नहीं।
गोया कि ट्रेन मोल ली हो उनके बाप ने॥

× × ×

पत्र-पत्रिकाओं के 'होलिकाङ्कों' की बात छिड़ी है तो थोड़े से और पत्रों पर भी विचार कर लीजिए। काशी के 'ख़ुदा की राह पर' ने भी अपना 'होली-अङ्क' प्रकाशित किया है। यदि 'वर्तमान' और 'चकल्लस' की उनसे तुलना की जाय जो रंग से होली खेलते हैं तो 'ख़ुदा की राह पर' की तुलना उनसे करनी पड़ेगी जो कीचड़ से होली खेलते हैं। इस होलिकाङ्क का सम्पादन ख़ास तौर से पांडेय बेचन शर्मा उग्र ने किया है। कदाचित् इसी लिए इसमें ये पंक्तियाँ प्रकाशित हुई हैं—"महादेव उग्र को छोड़ और सभी देव मुझे तो इस होली में गधे-से नज़र आते हैं।" अब इसकी सुरुचि का एक नमूना देखिए—

"धोबी हैं ज़रूर शिवगाँव के सरठ महात्मा गान्धीजी जिन्होंने भारतवर्ष के लक्ष-लक्ष-लक्षहीन पोपटलालों के मन की गुलामी का सदसाला मैल चन्द सालों ही में धो बहाया! गान्धी जी के बाद उन्हीं की नक़ल में नीम की चटनी चाटनेवाले सारे के सारे हग-मूत-पसन्द लीडर मुझे तो गधे नज़र आते हैं।"

× × ×

परन्तु ऐसा जान पड़ता कि कलकत्ते के 'जागृति' काशी के 'ख़ुदा की राह पर' से एक क़दम भी पीछे नहीं रहना

चाहती। एक नमूना लीजिए। महामना मालवीय जी का एक व्यङ्गय-चित्र प्रकाशित करते हुए उसके नीचे इस पत्रिका ने लिखा है—

छोकड़ा हमें बना दो राम।
तोड़ा जोड़ा सब कुछ ले लो दमड़ी और छदाम।
मरते दम तक रहे जवानी और नहीं कुछ काम॥

देश के नेताओं के साथ इस भद्दे ढङ्ग से मज़ाक करना 'जागृति' या सुप्त अवस्था का परिचायक है, यह एक प्रश्न है।

× × ×

आगरे के 'सैनिक' ने भी अपना 'होलिकाङ्क' प्रकाशित किया है और इसमें सन्देह नहीं कि उसने शिष्ट और रोचक सामग्री जुटाई है, परन्तु पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के गम्भीर अग्रलेख ने पूरे 'होलिकाङ्क' को छाप-सा लिया है। पिछले दिनों पालीवाल जी के सम्बन्ध में पत्रों में कुछ प्रिय और अप्रिय चर्चा हुई थी। इस लेख में पालीवाल जी ने उसी के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य दिया है। आरम्भ में ही वे लिखते हैं—

"ईश्वर को धन्यवाद है कि ग्रामसुधार अफ़सरी से मेरा इस्तीफ़ा मंज़ूर हो गया और अब मैं फिर आज़ादी की साँस ले सकता हूँ।"

× × ×

"इस अफ़सरी में मेरे ऊपर क्या बीती, यह मैं ही जानता हूँ। मेरी ग़लती थी जो मैंने यह मुसीबत मोल ली और मेरा विश्वास है कि मैंने अपनी ग़लती का भरपूर नतीजा भी पा लिया!"

श्री पालीवाल जी का यह वक्तव्य देखकर हमें बचपन में पढ़ी एक कविता याद आई—

नाचो बच्चू धिनकधिना मज़ा ब्याह का चक्खोगे।
जब तक याद रहेगी सिर पर मौर नहीं तुम रक्खोगे!

× × ×

कानपुर के प्रसिद्ध 'प्रताप' ने भी 'होलिकाङ्क' निकाला है। 'सैनिक' की भाँति इसने भी एक अत्यन्त गम्भीर और लम्बा सम्पादकीय अग्रलेख प्रकाशित किया है। उसका एक अंश यह है—

"हम गाली बकते हैं, औरतों के सामने फ़ोश कहते हैं, रङ्ग डालकर पागल हो जाते हैं, कीचड़ उछालते हैं, गोबर फेंकते हैं, कोलतार पोत देते हैं और इन कारनामों का नाम हम त्योहार रखते हैं।"

बेशक यह डूब मरने की बात है।

× × ×

होली के अवसर पर दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' ने भी एक (छायावादी?) मज़ेदार कविता प्रकाशित की है। उस पद्य उसके भी पढ़ लीजिए।

पहली सखी—

महलों ऊपर उड़ी पतङ्ग;
बाकी हवा लगी मोरे अङ्ग।
जो न लगाती झपट किवार;
तो उड़ जाती केस हजार।
मैं सुकुमार हूँ, मैं सुकुमार॥

दूसरी सखी—

मेरी पड़ोसिन कूटे धान;
बाकी भनक पड़ी मेरे कान।
जो न लगाती झपट किवार;
तो फट जाती दिल दीवार।
मैं सुकुमार हूँ, मैं सुकुमार॥

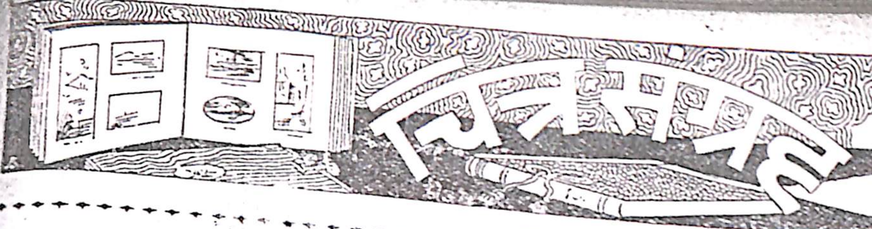
तीसरी सखी—

मैं सुकुमार हूँ, मैं सुकुमार।
पश्चिम मुलुक में पड़ी फुहार;
ताको पड़ लो मैंने तार।
सर्दी लग्गी किया चीत्कार;
पारा १०६ के पार।
मैं सुकुमार हूँ, मैं सुकुमार॥

चौथी सखी—

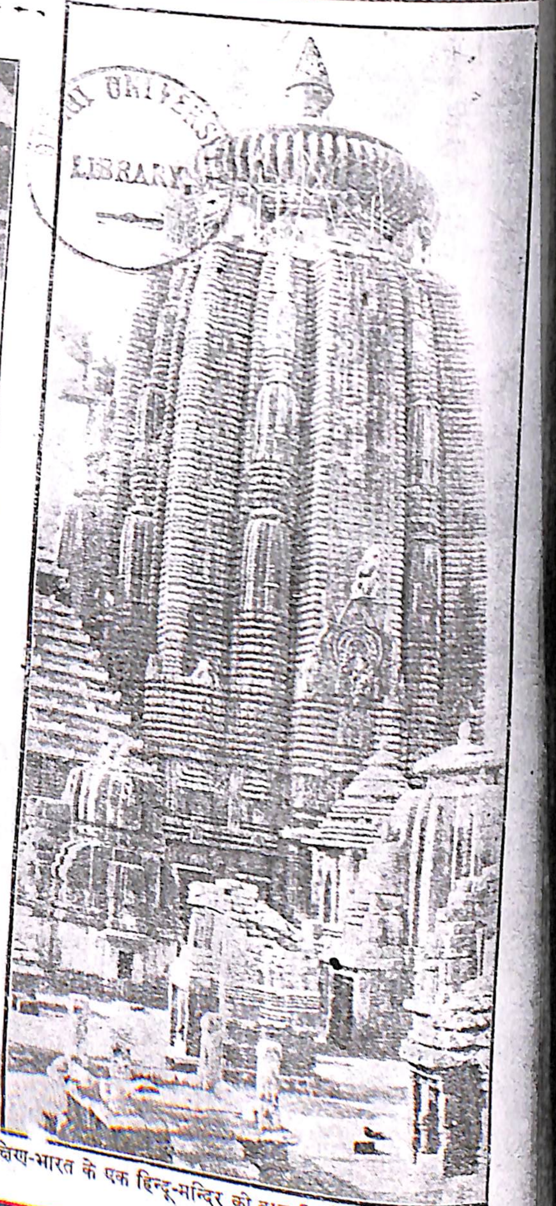
मोर पिय उरवा दे गलबाँह;
बैठे जाय आम की छाँह।
मधुकर पर से चली बयार;
मैं जा गिरी समन्दर पार।
मैं सुकुमार हूँ, मैं सुकुमार॥

—

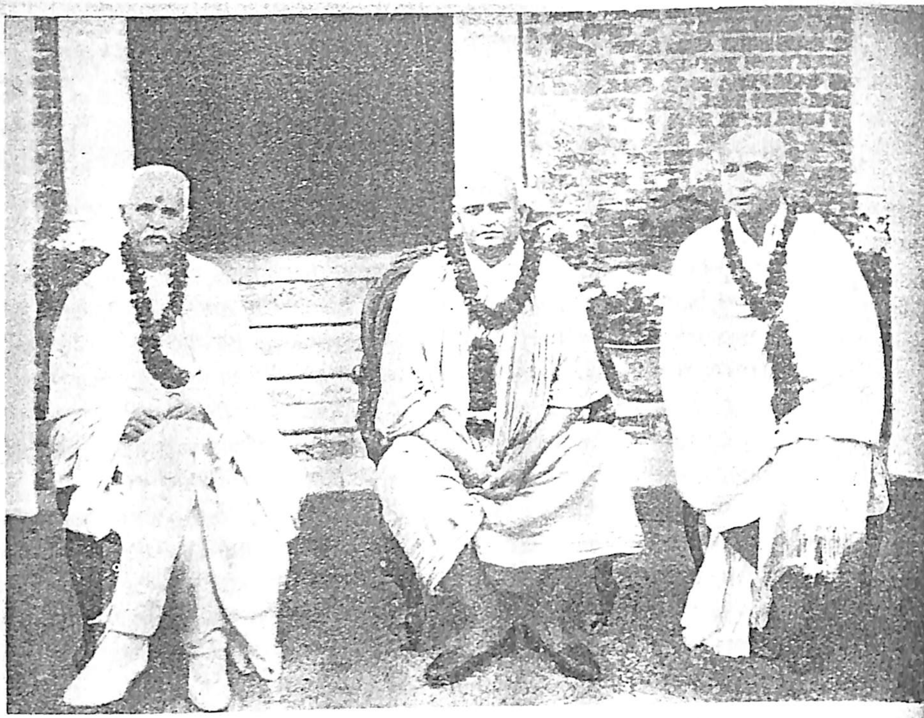




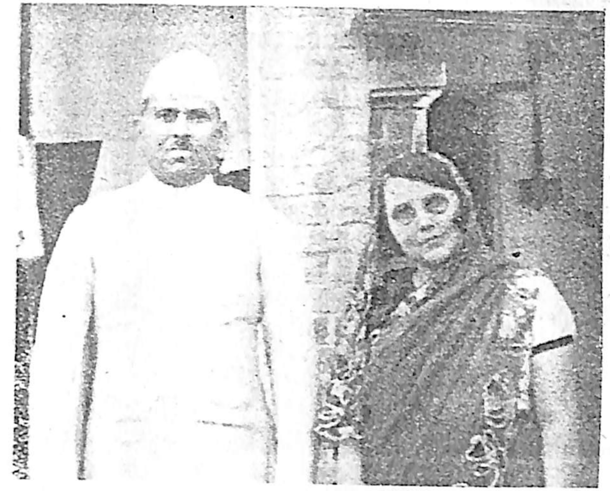
मिस्टर और मिसेज़ आरंडेल।



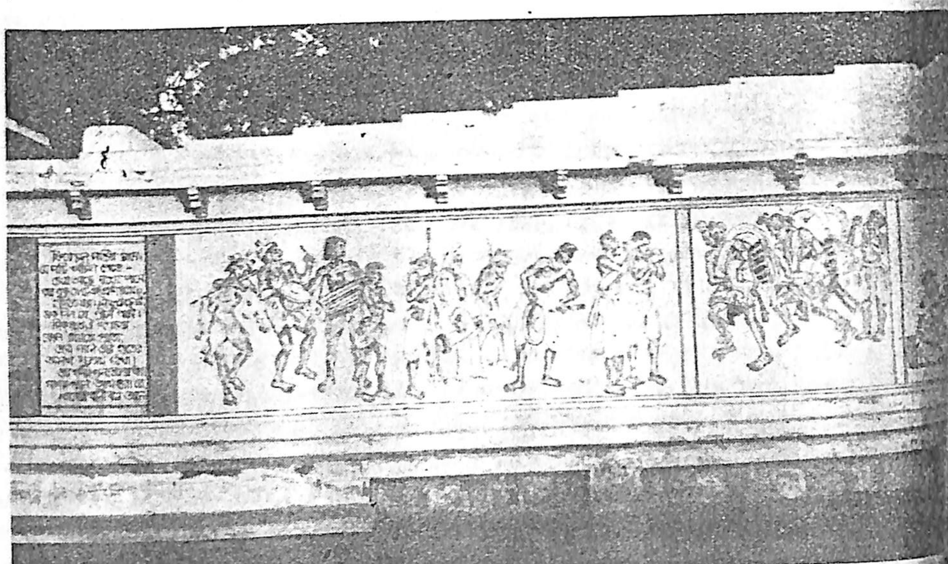
दक्षिण-भारत के एक हिन्दू-मन्दिर की बाह्य निर्माण-कला का एक नमूना

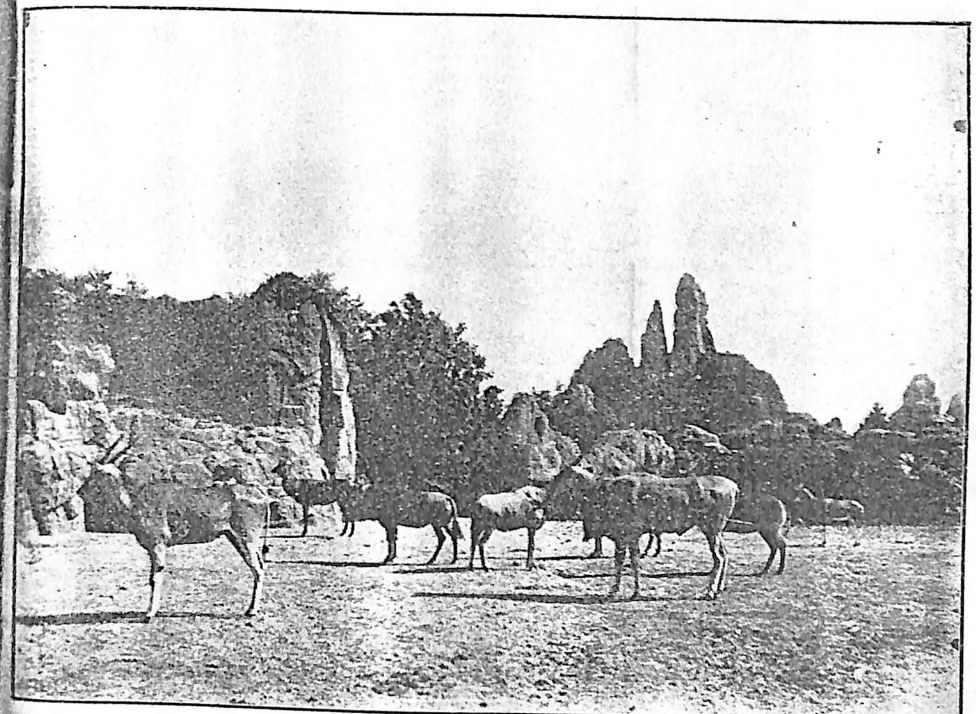


महामना मालवीय जी, तपसी बाबा और राजगुरु पंडित हरदत्त शास्त्री। यह चित्र प्रयाग के प्रसिद्ध फ़ोटोग्राफर श्रीयुत पी० एन० वर्मा ने पूज्य मालवीय जी के कायाकल्प के बाद खींचा था।

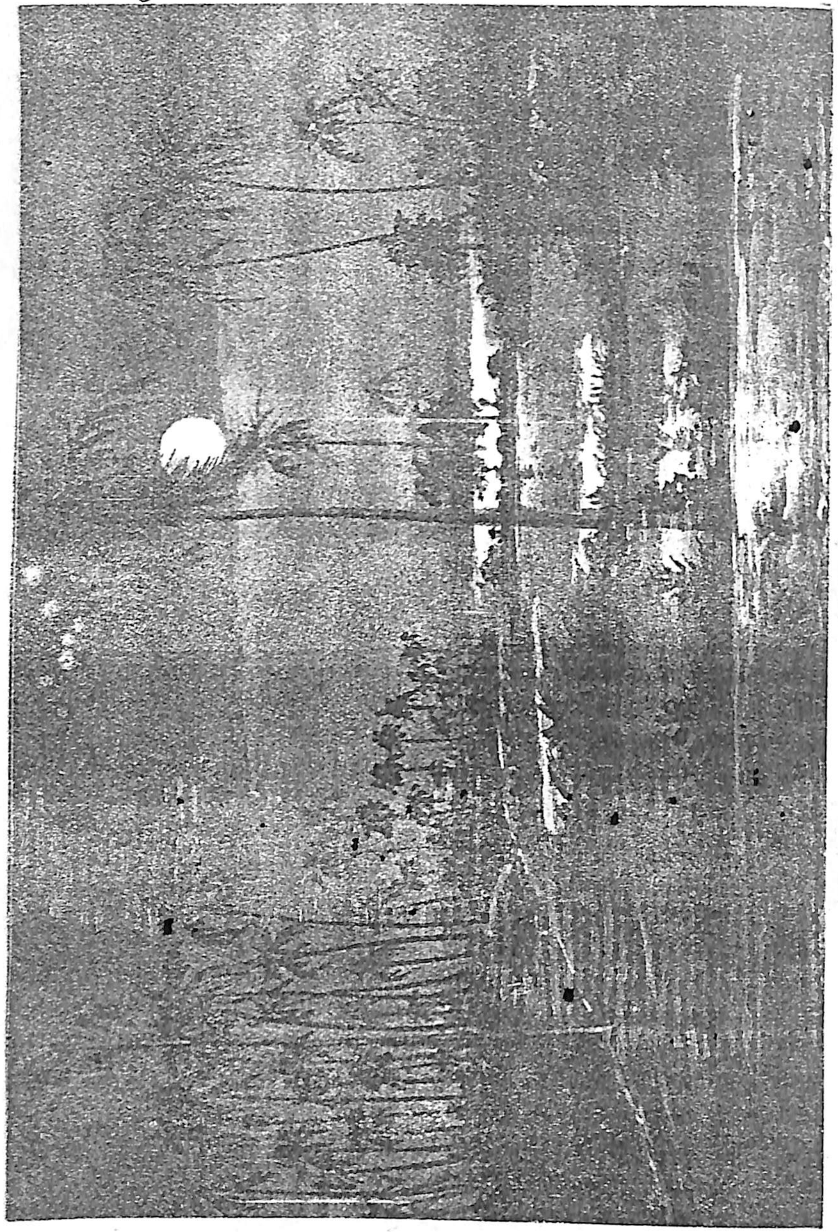


लाहोर के श्रीयुत केदारनाथ तिवारी और उनकी पत्नी श्री राजकुमारी तिवारी जो भद्र आयरिश महिला हैं और जिन्होंने अपना रहन-सहन सर्वथा भारतीय बना लिया है।





दक्षिणी अफ़्रीका का एक जन-शून्य स्थान।



एक कल्पित प्राकृतिक दृश्य। [चित्रकार—श्रीयुत भगवतीशरण, उरई

सामयिक साहित्य

राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस और लिपि का प्रश्न

राष्ट्रभाषा किस लिपि में लिखी जाय, इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस ने अपने हरिपुरावाले भाषण में रोमन लिपि की काफ़ी प्रशंसा की है। वे कहते हैं—

राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि

राष्ट्रीय एकता-संवर्द्धन के लिए एक राष्ट्रीय भाषा और लिपि की आवश्यकता होगी। इसके सिवा विमान, टेलीफ़ोन, रेडियो (ध्वनिक्षेपक यन्त्र), सिनेमा, टेलीविज़न (दूरदर्शन) आदि वैज्ञानिक साधनों-द्वारा भारत के भिन्न भिन्न भागों में घनिष्ठता स्थापित करनी होगी तथा शिक्षा-द्वारा देश भर में एक भाव उत्पन्न करना होगा। जहाँ तक राष्ट्र-भाषा का सम्बन्ध है, मेरे मत से, हिन्दी और उर्दू का भेद कृत्रिम है। सबसे अधिक स्वाभाविक राष्ट्र-भाषा इन दोनों के मिश्रण से होगी, जो आज भी देश के अधिक भागों में बोली जाती है। यह भाषा नागरी में भी लिखी जा सकती है और उर्दू में भी। बहुत-से ऐसे लोग हैं जो नागरी को ही या उर्दू को ही चाहते हैं। हमें किसी एक का त्याग न करना चाहिए। दोनों लिपियों के व्यवहार को अधिक से अधिक अवसर देना हमारी नीति होनी चाहिए। साथ ही मैं समझता हूँ कि हमारी अन्तिम और उत्तम योजना वही होगी जिससे हम शेष संसार के निकट हो जायँ। सम्भवतः हमारे अनेक देशबन्धु यह सुनकर खेद-चकित हो जायँगे कि हमें रोमन-लिपि से काम लेना चाहिए। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे इस पर विज्ञान और इतिहास की दृष्टि से विचार करें। ऐसा करने से मालूम हो जायगा कि लिपि में पवित्रता वा धार्मिक भाव कुछ भी नहीं है। आज की नागरी-लिपि अनेक संशोधनों और परिवर्तनों के बाद उत्पन्न हुई है। इसके सिवा भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े प्रान्तों की अपनी अपनी स्वतन्त्र लिपि है। इनके अतिरिक्त उर्दू-लिपि भी है, जिसका उपयोग उर्दू-भाषी लोग सर्वत्र तथा पञ्जाब और सिन्ध में हिन्दू और मुसलमान दोनों करते हैं। इस विविधता के रहते हमें भावी लिपि का चुनाव निर्विकार चित्त से पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर ही करना चाहिए। एक समय था जब मैं भी समझता था कि किसी विदेशी लिपि का ग्रहण करना अराष्ट्रीयता है। पर सन् १९३४ ईसवी में मैं तुर्की गया और वहाँ जो कुछ देखा उससे मेरा मत बदल गया। उस समय पहले पहल मैंने देखा कि सारे संसार की जो लिपि है उसे अपनाने में कितनी सुविधा है। हमारी जनता में प्रतिशत ९० निरक्षर हैं अतः उन्हें शिक्षा देते समय हम चाहे जो लिपि सिखा सकते हैं, उन्हें उसमें आपत्ति न होगी। रोमन-लिपि के जानने से कोई भी योरपीय भाषा सीखने में सुविधा होगी, इसका स्मरण रखना चाहिए। मैं जानता हूँ कि रोमन-लिपि का अङ्गीकार शुरू शुरू में बहुत अलोक-प्रिय होगा। फिर भी मैं देशबन्धुओं से प्रार्थना करता हूँ कि अन्ततो गत्वा सबसे अच्छा क्या होगा, इस पर विचार करें।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त का वक्तव्य

बाबू शिवप्रसाद गुप्त देवनागरीलिपि के कितने प्रेमी हैं, यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रपति के भाषण के इस अंश पर उनका आपत्ति करना स्वाभाविक ही है। इस सम्बन्ध में बाबू साहब ने 'आज' में एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित कराया है। नीचे हम उसका एक अंश उद्धृत करते हैं—

राष्ट्रपति महोदय ने भारतवर्ष के लिए 'रोमनलिपि के' व्यवहार का ज़िक्र करते हुए उसके गुणों का वर्णन किया है। मुझे अत्यन्त खेद है कि उन्हें स्वीकार करने में मैं अपने को सर्वथा असमर्थ पाता हूँ। 'रोमनलिपि में' उन सब उच्चारणों को व्यक्त करने की शक्ति नहीं है जिनके बिना भारतीय भाषाओं का ठीक ठीक उच्चारण हो ही नहीं सकता। मैं इस बात को दावे से कह सकता हूँ कि जो व्यक्ति भारतीय भाषायें नहीं जानता वह 'रोमन अक्षरों में'

लिखी हुई किसी भी भारतीय भाषा का शुद्ध उच्चारण कदापि नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, वरन रोमनाक्षरों में लिखी जानेवाली योरपीय भाषाओं का उच्चारण भी उन भाषाओं से अनभिज्ञ पुरुष नहीं कर सकता। एक व्यक्ति जो फ्रांसीसी भाषा नहीं जानता वह रोमन-अक्षर जानते हुए भी फ्रांसीसी भाषा नहीं पढ़ सकता। इसके विपरीत 'नागरी' अक्षरों में लिखी हुई संसार की किसी भी भाषा का उच्चारण नागरीलिपि जाननेवाला कर सकता है। यह बहुत बड़ा दावा है, पर कोई भी निरपेक्ष व्यक्ति इसे परीक्षा की कसौटी पर कसकर इसकी परीक्षा कर सकता है।

राष्ट्रपति महोदय ने यह भी कहा है कि देश की भिन्न भिन्न लिपियों के कारण जो कठिनाइयाँ पड़ती हैं उनको सुलझाने में भी यह व्यवस्था सहायक होगी। क्या देश की भिन्न भिन्न आर्यलिपियाँ देवनागरी अक्षरों में नहीं लिखी जा सकतीं? वास्तव में देश की सभी आर्यभाषाओं के लिखने के लिए जो लिपियाँ व्यवहृत होती हैं वे सभी नागरी-लिपि हैं या उसी का रूपान्तर हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी, तेलुगू अक्षर जो देखने में भिन्न भिन्न जान पड़ते हैं, वास्तव में एक ही हैं और सभों की 'बारहखड़िया' एक ही हैं। हाँ, भिन्न भिन्न प्रान्तों में व्यवहृत होने के कारण उनकी रूप-रेखा में थोड़ा थोड़ा भेद पड़ गया है, जो थोड़ा-सा यत्न करने से और आपस में सद्भाव होने से बहुत जल्द मिटाया जा सकेगा।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि कोई अक्षर ऐसे हैं जो सारे संसार की वर्णमाला बन सकने की योग्यता रखते हैं तो वह 'देवनागर अक्षर' ही हैं। पर मैं यह मानता हूँ और जानता हूँ कि इसकी वर्तमान 'बारहखड़िया में' कतिपय अन्य अनेक उच्चारणों के वर्णों को बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि इसमें पाँच पाँच अक्षरों की जगह आठ आठ अक्षर एक एक वर्ग में कर दिये जायँ तो संसार के सब उच्चारण इसमें अङ्कित किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अगर 'क' वर्ग में 'क़ाफ़, ख़े, ग़ैन' के उच्चारणों के लिए अक्षर बढ़ा दिये जायँ, 'च' वर्ग में 'ज़े, ज़े,' के उच्चारण बढ़ा दिये जायँ, और इसी प्रकार वर्गों में भिन्न भिन्न भाषाओं के उच्चारणों को एकत्र करके अक्षर बढ़ा दिये जायँ तो यह लिपि पूर्ण 'वैज्ञानिक' लिपि हो जायगी, जैसी कि 'रोमन-लिपि' कदापि नहीं बनाई जा सकती।

भाषा और अक्षर का चोली-दामन का-सा साथ है, वह क्षणिक आवेश और ज़रा ज़रा-सी बात पर बदला नहीं जा सकता। हाँ, मैं यह मानने को अवश्य तैयार हूँ कि जहाँ कहीं इन अक्षरों में कमियाँ हों या कठिनाइयाँ हों, उन्हें सुधार लेना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि आज-कल की छपाई में ऊपर-नीचे की मात्राओं में असुविधा होती हो तो छपाई के लिए ऊपर-नीचे की मात्राओं को आगे-पीछे लगाकर, जैसे बँगला में एकार लगाई जाती है, यह दिक्कत दूर की जा सकती है, पर इनका आमूल परिवर्तन बुद्धिमत्ता न होगी। मैं इसकी ओर भाई जवाहरलाल और श्री रणजीत सीताराम पण्डित का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, क्योंकि आप लोग रोमन-अक्षरों के बड़े पक्षपाती एक समय थे और स्यात् अब भी हो सकते हैं और उनसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि इस विचारधारा के लाभ और हानि की ओर विचार करके अपनी सोची हुई सम्मति देने की कृपा करें।

प्रान्त की आर्थिक स्थिति कैसे बिगड़ी?

संयुक्त प्रान्तीय सरकार की आर्थिक स्थिति कैसे बिगड़ी। प्रधान-मन्त्री ने विरोधियों को उत्तर देते हुए बजट पर जो भाषण किया है उसमें इस प्रश्न पर भी प्रकाश डाला है। नीचे हम उनके भाषण का इस सम्बन्ध का अंश उद्धृत करते हैं—

हमारी पहले की सरकार पानी से बिजली पैदा करनेवाली योजना और सड़क-सुधार के सम्बन्ध में १ करोड़ १८ लाख रुपये का क़र्ज़ हमारे ऊपर लाद गई है। यह कहना बहुत ही अन्याय है कि वर्तमान सरकार ने इस प्रान्त की आर्थिक स्थिति को बिगाड़ा है। ट्यूबवेल और सड़क-सुधार के लिए और एक करोड़ रुपया क़र्ज़ लेने के लिए जो ज़रूरत पड़ रही है उसके लिए हम लोग ज़िम्मेदार नहीं हैं।

सन् १९२१ में जब मांटफ़र्ड योजना जारी की गई तब यह आशा की गई थी कि इस प्रान्त को मेस्टन निर्णय के अनुसार १ करोड़ ५७ लाख रुपया अधिक ख़र्च करने को मिलेगा। २ करोड़ ४० लाख रुपया सरकार की ओर से केन्द्रीय सरकार को देना ठहराया गया था, वह १९२५-२७ में हटा दिया गया। इस प्रान्त के लिए मोटे तौर पर ४ करोड़ रुपये साल का सुभीता हुआ। एक सुधार-सम्बन्धी क़र्ज़ और दूसरे क़र्ज़ लिये गये। इस ४ करोड़ की सुविधा के रहते हुए भी हर साल घाटा बना रहा और १९३६ तक घाटा चरम-सीमा को जा पहुँचा। पुलिस के लिए और कौंसिल की इमारतें बनवाने और कई ऐसे कामों के लिए क़र्ज़ लिया गया, जो निश्चय ही अनुत्पादक था। कुल क़र्ज़ १५ करोड़ से बढ़ते-बढ़ते ३४ करोड़ तक पहुँच गया। क़रीब २० करोड़ तक क़र्ज़ लिया गया और घाटा तो गोया बजट की हर साल के लिए ख़ास बात हो गई। इस अवधि में लोकोपकारी विभागों का कुल ख़र्च ७३ लाख रुपये साल तक बढ़ा। वर्तमान सरकार ने एक टुकड़ा क़र्ज़ नहीं बढ़ाया है और तिस पर भी १ करोड़ २५ लाख रुपये की व्यवस्था लोकोपकारी कामों में ख़र्च करने के लिए की है। उसे सिर्फ़ २५ लाख रुपया केन्द्रीय सरकार से मिला है।

हमने जो कुछ किया है उससे मैं असन्तुष्ट नहीं हूँ। मेम्बर लोग हमारा यह कहना ग़लत न साबित कर सकेंगे कि गत कई महीने में इस प्रान्त की जनता के ट्रस्टी और जनता के धन के अभिभावक के तौर पर पहले की सरकार के मुक़ाबले अधिक अच्छा हिसाब दिया है।

जेलों का सुधार

संयुक्त-प्रान्त के जेलों में क्या सुधार किये जायँ, इस सम्बन्ध में एक योजना तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की गई थी। उक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी है। उसकी मुख्य सिफ़ारिशें ये हैं—

१—क़ैदियों की 'ए', 'बी' और 'सी' वाला इस समय का श्रेणी-विभाग उठा दिया जाय, मगर जिनका रहन-सहन ऊँचा है उनके भोजन और वस्त्र के लिए और अच्छा सुभीता कर दिया जाय।

२—राजनैतिक क़ैदी एक अलग जेल में रक्खे जायँ और वे 'ए' डिवीज़न के क़ैदी माने जायँ जैसा कि इँग्लेंड में है।

३—क़ैदियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए अलग अलग जेलख़ाने होने चाहिए। दो सेन्ट्रल जेल दाग़ी क़ैदियों के लिए रहें और चार इत्तफ़ाक़िया क़ैदियों के लिए। उनमें से ख़ास करके लखनऊ सेन्ट्रल जेल सिर्फ़ 'स्टार' श्रेणी के क़ैदियों के लिए रहे।

४—इत्तफ़ाक़िया क़ैदियों में से जो अच्छा बर्ताव दिखावें वे स्टार श्रेणी में रक्खे जायँ।

५—जेलख़ानों से नीचे लिखे काम उठा दिये जायँ—

(क) कोल्हू पेरना, (ख) चह से पानी खींचना, (ग) मूँज कूटना।

६—क़ैदियों को मज़दूरी के बदले पैसा देने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

जेल के कामों की उन्नति के लिए इस बात की ज़रूरत है कि सभी सरकारी विभाग सिर्फ़ जेलों की बनी चीज़ें ख़रीदें।

७—जेल में 'साँसतघर' की सज़ा उठा दी जाय। अदालतें भी साँसतघर की सज़ा न दें।

८—जेल में कोड़े लगने की सज़ा क़ायम रहे।

९—४५ वर्ष तक की उम्र के सब क़ैदियों के लिए लिखना-पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाय।

१०—ताले बन्द होने के बाद क़ैदियों को आधे घंटे तक गाने दिया जाय।

११—स्टार श्रेणीवाले जेलख़ाने और बोर्स्टल संस्था (बालक कारागार) में रेडियो लगाया जाय। स्टार श्रेणी के क़ैदियों को ग्रामोफ़ोन भी चूड़ियों के साथ रखने दिया जा सकता है।

१२—जो क़ैदी तम्बाखू खाते या पीते हैं उन्हें सरकारी पैसे से तम्बाखू दी जाय और जो तमाखू नहीं खाते-पीते उन्हें गुड़ दिया जाय।

१३—जाड़े में हर एक क़ैदी को ३ कम्मल दिये जायँ। इस समय दो दिये जाते हैं।

१४—'स्टार' श्रेणी के क़ैदियों को सिर्फ़ चिट्ठी भेजने और मँगाने की अधिक सुविधा की जाय। उन्हें महीने में एक बार चिट्ठी मँगाने और लिखने दिया जा सकता है।

१५—हवालातें जेल-विभाग के अधीन कर दी जायँ बशर्ते कि सरकार की ओर से प्रबन्ध और निरीक्षण के लिए अलग कर्मचारी मिलें।

महाराज होलकर की घोषणा

इन्दौर-राज्य के हरिजनों की असुविधायें दूर करने के सम्बन्ध में महाराज होलकर ने निम्नलिखित घोषणा की है—

(१) रियासत भर में तमाम सरकारी मंदिर मंज़ूरशुदा नियमों के अनुसार हरिजन लोगों के लिए दर्शन के लिए खोल दिये जायँ।

(२) तमाम मौजूदा आम कुएँ और आइन्दा सरकार की तरफ़ से बनाये जानेवाले तमाम कुएँ सब जातियों के उपयोग के लिए हमेशा एक से खुले रहें।

(३) हरिजन लोग तमाम सार्वजनिक स्थानों का, जैसे होटल, उपहारगृह आदि और तमाम किराये की सवारियों का बिना किसी क़िस्म की रोक-टोक के उपयोग कर सकें, ऐसी हमारी इच्छा है और इसकी पूर्ति के लिए जिन लोगों का सम्बन्ध हो उन्हें सहयोग देना चाहिए।

(४) हमारे म्युनिसिपैलिटियों के विभाग के मिनिस्टर को चाहिए कि किसी ख़ास जगह की हालतों व ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए हरिजन लोगों को उन तमाम मोहल्लों और जगहों में जहाँ ऊँची जाति व समाज के लोग रहते हैं मकान बनाने या मिल्कियत हासिल करने की इजाज़त दें।

(५) रियासत की शिक्षा-संस्थाओं में हरिजनों के बच्चों को बे-रोकटोक भर्ती करने के सम्बन्ध में जो मौजूदा हुक्म हैं उनकी पूरी पूरी और तहेदिल से तामील की जाय।

(६) सिवा उन जगहों के जिन पर किसी ख़ास क़ौम या जाति का शख़्स मुक़र्रर करना ज़रूरी हो, रियासत की नौकरियों में भर्ती करने के मुताल्लिक़ हरिजनों के लिए किसी क़िस्म की रुकावट न रहे।

(७) तमाम सरकारी दफ़्तरों व सार्वजनिक इमारतों में हरिजनों को आने दिया जाय।

(८) ज़ेवर पहनने, जुलूस निकालने और किसी रस्म-रवाज के मानने के बारे में उन पर किसी तरह की रोकटोक न की जाय।

हमारी असफलता

महात्मा गांधी 'हरिजन' में लिखते हैं—

इलाहाबाद में—जो महासभा (कांग्रेस) का सदर मुक़ाम है—साम्प्रदायिक दंगा होने और उसके लिए पुलिस ही नहीं, बल्कि फ़ौज को भी बुलाने की ज़रूरत पड़ने से मालूम पड़ता है कि महासभा अभी इस योग्य नहीं हुई कि ब्रिटिश सत्ता का स्थान ले ले। यह बात चाहे जितनी नागवार लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हम इस नग्नसत्य को महसूस करें और उसका मुक़ाबला करें।

महासभा सारे भारत के प्रतिनिधित्व का दावा करती है, न कि सिर्फ़ उन थोड़े-से लोगों का जो उसके सदस्य हैं। इसलिए जो लोग इसके विरोधी हैं और जो हो सकें तो इसे कुचल भी डालें, उनका भी इसे प्रतिनिधित्व करना चाहिए। जब तक हम इस दावे को इस अच्छाई के साथ सिद्ध न करें तब तक हम ऐसी स्थिति में नहीं हो सकते जो ब्रिटिश सरकार को हटाकर स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपना काम चला सकें।

ब्रिटिश शासन को चाहे हम हिंसा से हटाना चाहें या अहिंसा से, यह बात तो दोनों ही सूरतों में लागू होती है।

अब तक याने सत्रह साल तक अहिंसा पर अमल कर लेने के बाद महासभा को इतना समर्थ तो हो ही जाना चाहिए कि वह कुछ हज़ार नहीं बल्कि लाखों ऐसे स्वयंसेवकों की अहिंसक सेना खड़ी कर सके जो उन सब अवसरों पर काम आ सके जिनके लिए पुलिस और फ़ौज की ज़रूरत पड़ती है। इस प्रकार हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि शान्ति-स्थापना के लिए मरनेवाले एक वीर पुरुष ही नहीं, बल्कि सैकड़ों सामने आ सकें और अहिंसक सेना हथियारबन्द सैनिकों की तरह न केवल दंगे के वक़्त बल्कि शान्ति के समय भी काम करे। ये सैनिक बराबर ऐसी रचनात्मक हलचलों में लगे रहें जिनसे दंगों का होना ही नामुमकिन हो जाय।

जिस हद तक कि कांग्रेसी मंत्रियों को पुलिस या फ़ौज का सहारा लेना पड़ा है उस हद तक, मेरी राय में, हमें अपनी असफलता मंज़ूर करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल ठीक है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अतः मेरी ही तरह अगर हर एक कांग्रेसवादी और कांग्रेस-कार्य-समिति भी यह सोचते हों कि हम असफल हुए हैं तो मैं चाहूँगा कि वे इस बात पर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए।



सम्पादकीय नोट

योरप का संकट

योरप में जो घटनायें आये दिन घटित हो रही हैं उनके देखते हुए यह कहना ही पड़ता है कि वहाँ की महाशक्तियों में एक बार फिर खुलकर बजनेवाली है। वहाँ की अवस्था अब ऐसी ही विभीषण हो गई है। पहले से ही यह समझा जाता था कि जब जापान और इटली अपनी मनमानी कर रहे हैं और राष्ट्र-संघ के अपने साथी राज्य पर ही अपना अधिकार जमाने के लिए बल का प्रयोग कर रहे हैं तब हिटलर का जर्मनी अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। फलतः इसी ११ वीं मार्च को उसने अपने पड़ोस के आस्ट्रिया के अति प्राचीन ऐतिहासिक राज्य को बलपूर्वक अपने राज्य में मिला लिया और दुनिया देखती रह गई। इस घटना के इस तरह घटित होजाने की किसी ने स्वप्न भी न देखा होगा। परन्तु हिटलर ने वही कर दिखाया, और कुल तीन घंटे के भीतर सारे आस्ट्रिया को बिना एक भी गोली छोड़े जर्मनी-राज्य के अन्तर्गत करके एक चमत्कार का कार्य किया। यद्यपि फ़्रांस और ब्रिटेन ने कड़ाई के साथ उसके इस अन्यायपूर्ण कार्य का तत्काल ही विरोध किया, तथापि उसने उन्हें फटकार बताकर चुप कर दिया।

अख़बार पढ़नेवालों को मालूम ही है कि १४ फ़रवरी को हिटलर ने डाक्टर शुशनिग को जर्मनी में बुलाकर भेंट की और उन्हें मजबूर किया कि वे अपने मंत्रिमंडल में आस्ट्रिया के नाज़ियों के नेता हर सेसिन क्वार्ट को अपना गृह-मंत्री बनावें और पुलिस विभाग भी उन्हें सौंप दें। शुशनिग को हिटलर की आज्ञा माननी पड़ी, परन्तु बाद को चाहे अपने स्वाभिमान के कारण, चाहे किसी कूटनीतिज्ञ की सलाह से उन्होंने दूसरा रुख़ ग्रहण किया और यह जानने के लिए कि लोकमत उनके साथ कहाँ तक है, उन्होंने जनता को मत देने के लिए एक दिन नियत कर दिया। आस्ट्रिया के नाज़ियों ने इसका विरोध किया। और जब शुशनिग नहीं माने तब हिटलर ने आदेश किया कि उक्त मत-संग्रह स्थगित किया जाय और शुशनिग चैंसलर के पद से इस्तीफ़ा दें। हिटलर के आदेश से डर-कर शुशनिग ने मत-संग्रह तो स्थगित कर दिया, पर अपना त्यागपत्र नहीं दिया। इस पर हिटलर ने फिर आदेश दिया कि शुशनिग तीन घंटे के भीतर पदत्याग करें और उनके स्थान पर हर सेसिन क्वार्ट को चैंसलर का पद दिया जाय। अब शुशनिग को पदत्याग करना पड़ा और हर सेसिन चैंसलर बनाये गये। इन्होंने हिटलर को तार देकर आस्ट्रिया में शान्ति बनाये रखने के लिए जर्मन-सेनायें बुला लीं। आस्ट्रिया के प्रधान सेनापति ने जर्मन-सेनापति के पास जाकर वश्यता स्वीकार की। यह सब देखकर डाक्टर मिक्लास ने भी राष्ट्रपति के पद से इस्तीफ़ा दे दिया। इसी समय हिटलर भी आस्ट्रिया में आ पहुँचे और वे आस्ट्रिया के जर्मनों के 'फ़ुहरर' घोषित किये गये और आस्ट्रिया जर्मनी का एक भाग बन गया।

परन्तु हिटलर की इस कार्रवाई से फ़्रांस और रूस विशेष रूप से उत्तेजित हो गये हैं और जर्मनी को युद्ध के लिए ललकार रहे हैं। वे कह रहे हैं कि यदि जर्मनी ऐसी ही कार्रवाई ज़ेचोस्लोवेकिया के साथ करेगा तो वे दोनों तत्काल युद्ध की घोषणा कर देंगे। और जर्मनी अपनी राह चला जा रहा है। वह जानता है कि इस समय योरप में इटली और जर्मनी का कितना अधिक प्रभाव है। यदि ऐसा न होता तो क्या ग्रेट ब्रिटेन जैसा शक्तिशाली राज्य उनकी मित्रता के लिए लालायित होता और क्या जर्मनी इस तरह आस्ट्रिया के ऐतिहासिक नाम को मिटा देने का दुस्साहस कर सकता? कदापि नहीं। परन्तु फ़्रांस, ब्रिटेन और रूस में आज वैसा मेल नहीं है। फ़्रांस अपने गृह-कलह से अभी तक मुक्त नहीं हुआ है। आये दिन वहाँ की सरकार उलटती-पलटती रहती है। कभी किसी दल की सरकार क़ायम होती है, कभी किसी दल की। रूस में स्टेलिन के विरुद्ध षड्यंत्र पर षड्यंत्र हो रहे हैं, जिनके फलस्वरूप अब तक वहाँ के सैकड़ों योग्य से योग्य व्यक्ति तलवार के घाट उतारे जा चुके हैं,

और अभी उनका ख़ात्मा नहीं हुआ है। ऐसी दशा में ब्रिटेन अकेले इटली और जर्मनी जैसे प्रबल राष्ट्रों के संघर्ष में पड़कर जोखिम कैसे उठा सकता था? अतएव उसने पैतरा बदल दिया। ध्वनित कर दिया कि राष्ट्र-संघ सामूहिक रक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकता और शान्ति तथा व्यवस्था की रक्षा के लिए—नहीं ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए—यह आवश्यक है कि जल्दी से जल्दी इटली और जर्मनी से मेल किया जाय। परन्तु जर्मनी और इटली काफ़ी समझदार हैं। वे मेल-मिलाप के लिए उतना उत्सुक नहीं हैं। वे मेल करेंगे, परन्तु अपनी शर्तों के साथ। इटली भूमध्य-सागर को अपने घर की 'झील' समझता है और स्वेज़-नहर को अपने साम्राज्य का 'राजपथ'। उधर प्रबल जर्मन अपने सजातियों को दूसरे राज्यों के प्रजाजनों के रूप में देखना नहीं सहन कर सकते। वे उन सभी भूखण्डों को जहाँ जर्मन लोग बसते हैं और जो इस समय अन्य देशों के अन्तर्गत हैं, अपने जर्मन-राज्य में मिला लेने के लिए कटिबद्ध हैं, साथ ही वे अपने उपनिवेशों के लेने की भी दृढ़ता से माँग कर रहे हैं। इन महत्त्वाकांक्षाओं का समाधान होने पर ही उक्त मेल-मिलाप हो सकेगा। और यह सब जानते हुए भी ब्रिटेन फ्रांस से अलग होकर इटली और जर्मनी से समझौता करने में संलग्न हुआ था। परन्तु अब तो योरप में युद्ध के बाजे बजने लग गये हैं। रूस और फ्रांस ज़ेचोस्लेवेकिया की बात उठाकर तन गये हैं। उधर स्पेन में राष्ट्रीय पक्ष-वालों की जीत पर जीत हो रही है। फ्रांस को आशंका हो गई है कि इनकी जीत से फ्रांस का सीमा प्रान्त जोखिम में पड़ जायगा, क्योंकि राष्ट्रीय पक्ष की जीत को वह जर्मनी और इटली की जीत समझता है। उसने साफ़ कह दिया है कि इस अवस्था को वह अब अधिक समय तक नहीं सह सकेगा।

इन सब बातों को देखकर कौन नहीं कहेगा कि योरप एक बार फिर भीषण नर-संहार के काम में लगना चाहता है।

कांग्रेस और संघ-व्यवस्था

फ़रवरी के महीने में संयुक्तप्रांत और बिहार में जो वैधानिक सङ्कट उपस्थित हो गया था उसके निपटाने में ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस दोनों ने बुद्धिमत्ता और संयम से काम लिया है। यह इसी व्यावहारिक बुद्धि का सुपरिणाम हुआ है कि उन प्रान्तों के मंत्रिमण्डलों ने अपने अपने इस्तीफ़े वापस ले लिये और जिन राजनैतिक क़ैदियों के छोड़े जाने की बात पर यह सङ्कट उपस्थित हो गया था वे छोड़े जाने लगे हैं और शासन का काम पूर्ववत् चलने लगा है। इस आकस्मिक संघर्ष के उपस्थित हो जाने पर ऐसी आशङ्का हो गई थी कि क़ैदियों के छोड़ने के मसले को लेकर कहीं ब्रिटिश सरकार का कांग्रेस से देशव्यापी संघर्ष न हो जाय। परन्तु महात्मा गांधी की धैर्यशालिता से वह सब कुछ नहीं होने पाया और ब्रिटिश सरकार भी समय के पहले ही सँभल गई और समझौता हो गया। इस संघर्ष के फलस्वरूप कांग्रेस की मर्यादा की अधिक वृद्धि हुई है और उसे पहले से अधिक बल प्राप्त हो गया है। उधर ब्रिटिश सरकार के प्रति भी जनता में काफ़ी अधिक विश्वास बढ़ गया है और उसे आशा हो गई है कि अब ब्रिटिश सरकार लोकमत की उपेक्षा नहीं करेगी। उसकी इस भावना का इस बात से भी समर्थन हो रहा है कि ब्रिटिश सरकार संघ-शासन की स्थापना के लिए आज उतना आतुर नहीं दिखाई दे रही है। वह जानती ही है कि संघ व्यवस्था के पक्ष में भारत का लोक-मत नहीं है। अतएव यही वह समय है जब कांग्रेस को इस प्रश्न को भी अपने हाथ में लेकर आगे आना चाहिए ताकि संघ शासन-सम्बन्धी समस्या हल हो जाय और कांग्रेस अपने लक्ष्य की ओर द्रुतगति से आगे बढ़े। इस समय ब्रिटिश सरकार भी अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए उसके भिन्न भिन्न राज्यों के प्रश्नों की मीमांसा करने में लगी हुई है। मिस्र का प्रश्न उसने मिस्रियों की माँग के अनुसार हल ही कर दिया है। इस समय वह आयलैंड के मसले का निपटारा करने में संलग्न है। कांग्रेस को भी ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिए जिससे ब्रिटिश सरकार भारतीय उलझन के सुलझाने की ओर अपना ध्यान दे। वर्तमान राष्ट्रपति सुभाष बाबू का भी यही कहना है कि यह समय इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है और भारत को इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। कुछ लोग कह सकते हैं कि कांग्रेस ने शासन-सम्बन्धी उत्तरदायित्व ग्रहण करके अपने ऊपर बड़ी भारी

ज़िम्मेदारी ले ली है, अतएव उसका एकमात्र यही कर्तव्य है कि वह सर्वप्रथम इस नये कार्य को पूर्णता प्रदान कर ले और तब दूसरा कार्य अपने हाथ में ले। परन्तु ऐसे लोगों को जान लेना चाहिए कि कांग्रेस अपने ऊपर इससे भी अधिक भारी ज़िम्मेदारी पहले से लिये हुए है और वही उसके अस्तित्व का एकमात्र लक्ष्य है। फिर कांग्रेस एक ऐसी शक्तिशाली संस्था है कि इस दायित्व को पूर्ण करते हुए भी वह अन्य वैसे ही महत्त्व के कार्यों का संचालन ख़ूबी के साथ कर सकती है। अतएव उसे संघ-शासन-सम्बन्धी समस्या को हल करने के लिए इस अवसर का अवश्य उपयोग करना चाहिए।

सम्मेलन का सभापति कौन हो?

'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' का अगला अधिवेशन इस बार शिमला में होगा। हाल में ही उसकी तिथियों में परिवर्तन करने की सूचना प्रकाशित हुई है और उसका अधिवेशन इस आक्टोबर में होगा। स्वागत-समिति के कार्यकर्ताओं का कहना है कि शिमला में सभाओं आदि के करने के लिए अन्य महीनों की अपेक्षा आक्टोबर का महीना अधिक उपयुक्त है। यही सब सोच-समझ कर अधिवेशन की तिथियों में फेरफार किया गया है, जो अधिवेशन की सफलता की दृष्टि से अच्छा ही हुआ है। आशा है, सम्मेलन के सभापति के चुनाव की कार्रवाई शीघ्र ही शुरू होगी। अच्छा होता यदि इस बार काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त एक मत से सम्मेलन के सभापति बनाये जाते। हिन्दी के लिए भारतेन्दु बाबू के अस्त हो जाने के बाद यदि किसी ने कुछ किया है तो वे बाबू शिवप्रसाद गुप्त हैं। उनका 'ज्ञानमण्डल', उनका 'आज', उनका 'हिन्दी-विद्यापीठ', और इन सबसे अधिक उनका 'अडिग हिन्दी-प्रेम' उनको हिन्दी का द्वितीय 'भारतेन्दु' पहले से ही बनाये हुए है। उनको तो अब से बहुत पहले ही उस पद पर आसीन कर हमें हिन्दी को गौरवान्वित करना चाहिए था। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस ओर समुचित ध्यान देंगे और और गुप्त जी को सम्मेलन के अगले अधिवेशन का सभापति बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

समालोचना के लिए दो पुस्तकें

'समालोचना के लिए दो पुस्तकों की माँग' के विरुद्ध श्रीयुत सियारामशरण गुप्त ने एक लेख कई पत्र-पत्रिकाओं में छपवाया है और सम्पादकों से उनका उत्तर माँगा है। इस सम्बन्ध में हमारा इतना ही निवेदन है कि दो प्रतियों के आने से पुस्तक की 'अख़बारी समालोचना' ज़रूर हो जाती है। इसके पहले जब 'समालोचनार्थ' एक ही प्रति आती थी तब उस एक प्रति के खो जाने या 'हज़म' हो जाने से सम्पादक लोग उस आई हुई पुस्तक की समालोचना अपने पत्र में नहीं छाप पाते थे और पुस्तकप्रेषक महोदय के कोपभाजन बनते थे। अब वह बात नहीं है। जो पुस्तक-प्रेषक यह चाहते हों कि उनकी पुस्तक की समालोचना पत्र-पत्रिकाओं में छपे उन्हें तो अवश्य ही दो प्रतियाँ भेजनी चाहिए। अब रहा गुप्त जी का 'चुनौती', 'अपमानजनक', 'धमकी' 'लाइब्रेरी भरना' आदि का आरोप करना, सो वे कवि हैं और कवि लोग भावप्रवण ही होते हैं, अतएव वे इन सब बातों की कल्पना कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में तो हम इतना ही कह सकते हैं और, सो भी अपने अनुभव के बल पर ही, कि इन 'अख़बारी समालोचनाओं' से हिन्दी की पुस्तकों का जनता में काफ़ी अधिक प्रचार हुआ है तथा उनके प्रणेताओं की कीर्ति हुई है। दो प्रतियों के माँगने का 'रहस्य' यही है कि समालोचना लिखने को दी गई पुस्तक के गुम या हज़म हो जाने पर सम्पादक अपने पास रक्खी हुई पुस्तक से समालोचना लिखकर सुविधानुसार उसे अपने पत्र में छाप सकता है। और हाँ, हिन्दी के सम्पादकों के लिए वह दिन सचमुच गौरव का होगा जब उनकी निजी लाइब्रेरियाँ होंगी।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार के शिक्षा-मंत्री

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-मंत्री माननीय पंडित प्यारेलाल शर्मा ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया है। आप मेरठ के प्रसिद्ध कांग्रेस-नेता हैं और अपनी एकनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता तथा ईमानदारी के लिए प्रख्यात हैं। खेद है, कुछ निजी कारणों से आपको पदत्याग करना पड़ा और आपके सद्गुणों से प्रान्त समुचित लाभ नहीं उठा सका। प्रसन्नता की बात है कि आपके स्थान पर काशी के प्रसिद्ध साम्यवादी नेता बाबू सम्पूर्णानन्द जी शिक्षा-



[माननीय बाबू सम्पूर्णानन्द, एम० एल० ए० ।]

मंत्री बनाये गये हैं। आपका परिचय देने की यहाँ ज़रूरत नहीं है। लोक-सेवा में ही आपने अपना जीवन व्यतीत किया है और उसके लिए कष्ट सहे हैं। आप एक प्रमुख राजनैतिक नेता ही नहीं हैं, हिन्दी के उच्च कोटि के लेखक तथा उसके प्रेमी भी हैं। आपके कार्यकाल में आशा है, हिन्दी की हकतलफ़ी न होने पायेगी और उसका नैसर्गिक स्वत्व भी प्राप्त होगा। हम आपकी सफलता के इच्छुक हैं।

गोपालन का महत्त्व

अख़बारों में अक्सर पढ़ने में आया है कि पाश्चात्य देशों में पशुपालन की आदर्श व्यवस्था प्रचलित है और वहाँ के पशु हृष्ट-पुष्ट होते हैं तथा गायें बहुत अधिक दूध देती हैं और उनके मुक़ाबिले में यहाँ के पशु अतीव दैन्यावस्था को प्राप्त हैं तथा गायें दूध भी बहुत कम देती हैं। परन्तु उस दिन दिल्ली में सर आर्थर ओलवर ने इसके विपरीत बात कही है। सर आर्थर भारत-सरकार के पशु-विशेषज्ञ हैं, अतएव वे पशुओं के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने के अधिकारी हैं। दिल्ली की पशु-प्रदर्शिनी में भाषण करते हुए उन्होंने कहा है कि अच्छी जाति की भारतीय गायें पाश्चात्य देशों की नामी नामी डेरियों की गायों की अपेक्षा अधिक दूध ही नहीं देती हैं, किन्तु उनके दूध में मक्खन का भी अंश अधिक होता है। उन्होंने बताया है कि भारतीय गायें-भैंसें प्रतिवर्ष ८० करोड़ मन दूध देती हैं, जिसका मूल्य ३ अरब रुपये होता है। परीक्षा करके देखा गया है कि यदि ठीक ठीक खिलाई-पिलाई की जाय तो दूध की उपज और अधिक बढ़ाई जा सकती है और इस वृद्धि से राष्ट्र की सम्पत्ति की ही वृद्धि होगी।

सर आर्थर के उपयुक्त कथन का प्रत्येक भारतीय समर्थन करेगा। पशुओं के सुधार और उनके चारे की व्यवस्था करने की पुकार यहाँ एक लम्बे समय से हो रही है, परन्तु आज तक उस ओर जैसा चाहिए ध्यान नहीं दिया गया। यह इसी उपेक्षा का भयानक परिणाम हुआ है कि आज इस देश में पशुओं का जीवन-निर्वाह तक कठिन हो गया है और उनके लिए यहाँ बारहों महीने अकाल पड़ा रहता है। ऐसी दशा में यदि यहाँ की गायें काफ़ी दूध न दें और काफ़ी दूध न मिलने के कारण यदि निरामिषभोजी भारतीय अल्पायु और अल्पवीर्य हो जायँ तो इसमें आश्चर्य करने की क्या बात होगी? तथापि हमें सर आर्थर को उनके सत्परामर्श के लिए धन्यवाद देना चाहिए, साथ ही अपने जीवन के सहायक अपने पशुओं को उपयुक्त भरण-पोषण न कर सकने के लिए दुःख। इसके सिवा और हमारे हाथ में है ही क्या?

संयुक्त-प्रान्त की सरकार का एक सर्क्यूलर

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने १८वीं मार्च को एक नया सर्क्यूलर जारी किया है। इस सर्क्यूलर के अनुसार—'जंगलों के पास-पड़ोस में, विशेषकर पहाड़ी ज़िलों तथा तराई और भभर की सरकारी रियासतों में बसनेवाले' लोगों में से उपयुक्त व्यक्तियों को 'अपनी फ़सल की रक्षा के लिए तथा आत्म-रक्षा के लिए' बन्दूक़ रखने का लाइसेंस दिया जायगा। इस सर्क्यूलर से यह ध्वनित होता है कि कांग्रेसी सरकार भी प्रान्त के अन्य भागों के निवासियों को 'अपनी फ़सल या आत्मरक्षा के लिए' बन्दूक़ रखने का अधिकार देना मुनासिब नहीं समझती, भले ही शस्त्रधारी डाकू उनको कुत्ते की मौत मारकर उनको लूटते-फूसते रहें तथा जंगली जानवर और सूअर उनकी खेती-बारी को तहस-नहस करते रहें। उक्त सर्क्यूलर में यह भी कहा गया है कि 'फ़सल की रक्षा के लिए 'सच्चे किसानों' को स्वतन्त्रता-पूर्वक, लाइसेंस देना सरकार की हमेशा नीति रही है'। परन्तु सरकार 'सच्चे किसान' किसे समझती है, यह बात उस सर्क्यूलर में नहीं बताई गई है और न यही कि ऐसे कितने 'सच्चे किसानों' को इन प्रान्तों में बन्दूक़ रखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। परन्तु इस सर्क्यूलर का निकाला जाना ही यह व्यक्त करना है कि सरकार की 'सच्चे किसान' को बन्दूक़ का लाइसेंस देना 'हमेशा की नीति' केवल नीति भर ही रही है। प्रसन्नता की बात है कि कांग्रेसी सरकार अब इसे कार्य का रूप देना चाहती है। यह बात दूसरी है कि उसने इस प्रश्न पर आवश्यक दृष्टिकोण से विचार नहीं किया है। उसे जानना चाहिए कि इस प्रान्त में सभी चोर-बदमाश सशस्त्र हैं और वे यहाँ की निःशस्त्र प्रजा को किस प्रकार त्रस्त किये रहते हैं, इसकी करुण कथा सरकार को अज्ञात नहीं है। उसे चाहिए कि केवल सर्क्यूलर में उल्लिखित भूभागों के ही 'सच्चे किसानों' को नहीं, किन्तु प्रान्त भर के 'सच्चे किसानों' को बन्दूक़ रखने का अधिकार ही न मिलना चाहिए, किन्तु उसे सौ आदमियों में ऐसे दस 'सच्चे किसान' निकालकर उन्हें जल्दी से जल्दी सशस्त्र कर देने की व्यवस्था करनी चाहिए। केवल सर्क्यूलर निकाल देने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि इन प्रान्तों की दीन-हीन प्रजा तो हथियार का नाम सुनकर डर जाती है—उनके संग्रह करने की उनमें उमंग ही नहीं रह गई है। यह सरकार का कर्तव्य है कि वह उन्हें इसके लिए उत्साह प्रदान करे।

संयुक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पंजाब, बिहार और मध्यप्रदेश में 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के प्रान्तीय सम्मेलन बराबर होते रहते हैं, परन्तु हिन्दी के प्रमुख केन्द्र संयुक्त-प्रान्त में वे एक अर्से से बन्द हैं। प्रसन्नता की बात है कि अब यहाँ के प्रान्तीय सम्मेलन का अधिवेशन ईस्टर की छुट्टियों में फ़ैज़ाबाद में होने जा रहा है। गत वर्ष मेरठ के कुछ हिन्दी-प्रेमियों ने प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन अपने यहाँ करने का प्रयत्न किया था, परन्तु वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। इस बार उसके करने का आयोजन हिन्दी के प्रसिद्ध प्रेमी फ़ैज़ाबाद-डिवीज़न के इन्सपेक्टर पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने किया है। अतएव उसका यह अधिवेशन सब तरह से सफल ही नहीं होगा, किन्तु उसके भविष्य में भी होते रहने की गहरी नींव भी पड़ जायगी। इस सम्बन्ध में जो सूचनायें प्रकट हुई हैं उनसे विदित होता है कि आचार्य नरेन्द्रदेव स्वागत-समिति के अध्यक्ष हुए हैं और शिक्षा-प्रदर्शनी के अध्यक्ष स्वयं चतुर्वेदी जी। तब इस अधिवेशन के सुचारु रूप में सम्पन्न होने में कोई सन्देह नहीं है। वस्तुतः में श्रीमान् चतुर्वेदी जी ने प्रान्तीय सम्मेलन को नवजीवन प्रदान करके एक उपयुक्त कार्य किया है और इसके लिए हिन्दी के प्रेमियों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

संयुक्त-प्रान्त का बजट

संयुक्त-प्रान्त की सरकार के प्रधान मंत्री माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रान्त के अगले साल के आय-व्यय का जो बजट तैयार किया है वह अनेक दृष्टियों से एक लोकोपयोगी बजट जान पड़ता है। इस बजट के अनुसार अगले साल की आय १३,०१,७०,०००) कूती गई है और व्यय का अनुमान १३,१६,७८,०००) किया गया है। इस प्रकार १५ लाख ८ हज़ार रुपये के घाटे का अन्दाज़ किया गया है, जो उतने महत्त्व की बात नहीं है।

उपर्युक्त व्यय में १,१०,००,०००) लोकोपयोगी कार्यों में लगाया जायगा, जिसमें ९७,००,०००) ग्राम-सुधार की मद में ख़र्च होगा और यह एक ऐसी मद है जो सर्वसाधारण के लिए विशेषरूप से आकर्षक है। इस रक़म का उपयोग सरकार ग्राम-सुधार के कार्य में करेगी। इसका व्यय इस प्रकार होगा—

२५ लाख रुपया से ५०० केन्द्र खोले जायँगे, जहाँ से किसान बीज, खाद, औज़ार आदि पा सकेंगे।

७ लाख रुपया से उपयुक्त स्थानों में आदर्श फ़ार्म खोले जायँगे, जहाँ किसान खेती करने की विधि देख सकेंगे और खेती-सम्बन्धी नई जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

४ लाख रुपये से सौ अस्पताल और दो सौ देशी दवाख़ाने खोले जायँगे।

७ लाख रुपये से घरेलू उद्योगों की उन्नति की जायगी।

५ लाख रुपये लोगों को उधार दिये जायँगे ताकि वे घरेलू उद्योगों के लिए औज़ार और कच्चा माल ख़रीद सकें।

४ लाख रुपये से पशुओं और डेरी की उन्नति की जायगी।

२ लाख रुपये से शुद्ध जल की व्यवस्था की जायगी।

इसमें ३० हज़ार रुपया केवल हरिजनों के सम्बन्ध में ख़र्च किया जायगा।

१ लाख रुपया से सहयोग-समितियों का संगठन किया जायगा।

१० लाख रुपया से शिक्षा-प्रचार किया जायगा। नये स्कूल खोले जायँगे, घूमनेवाले पुस्तकालय खोले जायँगे, स्कूलों में ग़रीब विद्यार्थियों के लिए जलपान का प्रबन्ध किया जायगा।

१६ लाख रुपया डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को सड़कें बनाने के लिए दिया जायगा।

९॥ लाख रुपया से कृषि-विभाग के डायरेक्टर बीज और खाद की व्यवस्था अपनी ओर से अलग करेंगे।

इस साल के बजट की यह एक मुख्य विशेषता है कि जनता के हितों की ओर सरकार ने प्रधानतया अपना ध्यान दिया है। उसने नशाख़ोरी बन्द करने, हरिजनों में शिक्षा-प्रचार करने, आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करने और उद्योग धन्धों की वृद्धि करने की बजट में समुचित व्यवस्था की है। आशा है, बजट के अनुसार कार्य्रवाही होने से जनता की दयनीय दशा में काफ़ी सुधार हो जायगा और जनता उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगी।

रानी गिडालो

असहयोग-आन्दोलन के ज़माने में आन्ध्रदेश में एक 'राजू' ने स्वतन्त्रता के लिए, कहा जाता है, सशस्त्र विद्रोह किया था और उसका दमन करने में सरकार को काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी थी। उसी से मिलती-जुलती कथा आसाम की एक नागा-कन्या की है, जो विद्रोह के अपराध में इस समय जेल में बन्द है।

आसाम के दक्षिण-पूर्वी अञ्चल 'नागा पहाड़ियाँ' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की जन-संख्या चार लाख है। इस भू-भाग का आधा अंश अँगरेज़ी क्षेत्र है और आधा स्वाधीन क्षेत्र है। इस 'अँगरेज़ी क्षेत्र' का शासन-प्रबन्ध सीधा आसाम-सरकार के द्वारा नहीं होता और यह अंचल एक प्रकार से प्रान्त से अलग रक्खा जाता है। यहाँ के निवासी नागा लोग हैं और उनको ईसाई मिश्नरी शिक्षित करने में सदा लगे रहते हैं। यहीं के निहिया नामक गाँव में उक्त नागा कन्या का जन्म हुआ है। उक्त कन्या का कुटुम्ब नागा लोगों में बहुत अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है। उस कन्या ने कोहिया के स्कूल में पढ़ते समय महात्मा गान्धी का नाम पहले-पहल सुना और उसने उनकी शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त किया और उनका 'गीता-भाष्य' भी पढ़ा। सन् १९३० में वह १८ वर्ष की थी और उसी समय से उसने नागा लोगों में अपना प्रचार प्रारम्भ कर दिया। उसने अफ़ीम का निषेध किया और स्वाधीन होने और एक-मात्र ईश्वर से डरने का उपदेश किया। इस पर अधिकारियों ने गिडालो को पकड़ लिया। परन्तु बाद को वह छोड़ दी गई। कुछ समय के लिए वह शान्त हो गई, पर उसका छेड़ा हुआ आन्दोलन बन्द नहीं हुआ।

अब एक दूसरे नागा ने उसका नेतृत्व ले लिया था। वह पकड़ा गया और उसे मृत्यु की सज़ा दी गई। यही नहीं, सरकार ने उस अंचल में सेना भेजकर अपने बल का प्रदर्शन किया। इस पर गिडालो फिर आगे आई और नागा-राज्य क़ायम करने का आन्दोलन छेड़ दिया। उसको पकड़ने के लिए सरकार ने इनाम की घोषणा की और वह १९३२ के आक्टोबर में पकड़ी गई और ख़ून का अपराध लगाकर उसे आजीवन देशनिकाले की सज़ा दी गई। कहते हैं कि सज़ा को सुनकर उसने कहा था—हम विदेशी सरकार को कर क्यों दें? सरकार ने हमारे लिए क्या किया है? पशुओं और पक्षियों की तरह हमने भी जंगल में अपना काल-यापन किया है। ये पहाड़ियाँ और जंगल पुश्तों से हमारे हैं। इसके लिए हम ब्रिटिश लोगों को कर क्यों दें? क्या पशु और पक्षी किसी तरह का कर देते हैं? हम क्यों विदेशी शासन को स्वीकार करें?

रानी गिडालो के क़ैद हो जाने पर आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया, जिसके दमन के लिए सरकार को शस्त्र का उपयोग करना पड़ा और उसने आन्दोलन के नये नेता को प्राण-दण्ड दिया। परन्तु इतने पर भी आन्दोलन नहीं बन्द हुआ। १९३६ के नवम्बर में सरकार को फिर वहाँ सेना भेजनी पड़ी। इस समय गिडालो शिलांग के जेल में बन्द है। हरिपुर की कांग्रेस ने उसके मुक्त किये जाने की माँग की है।

संयुक्त-प्रान्त के अल्पसंख्यक

अगले साल का बजट उपस्थित करते हुए संयुक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री माननीय पन्त जी ने बहुत ही सुन्दर भाषण किया है। उसमें उन्होंने स्पष्ट भाषा में यह बता दिया है कि सरकार की कितनी आय होगी और कितना व्यय होगा तथा प्रान्त की आर्थिक अवस्था का क्या रूप है। इसी सिलसिले में उन्होंने प्रसंगवश यह भी बता दिया है कि सरकार अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय और ज़ुल्म नहीं करती, किन्तु उनके साथ बहुसंख्यकों की उपेक्षा करके उदारता का व्यवहार करती है। नौकरियों की बात उठाकर उन्होंने आँकड़े देकर बताया है कि अल्पसंख्यकों के साथ कैसा व्यवहार किया गया है। उन्होंने कहा है—

सरकार ने हाल ही में ३ आदमियों को प्रान्तीय सरविस में कलक्टर के ग्रेड में रख दिया है। इनमें २ मुसलमान हैं और एक हिन्दू। हमने डिपटी कलक्टरी के लिए १२ आदमियों को चुना है, जिनमें ५ मुसलमान हैं और ७ हिन्दू। इस प्रान्त की जन-संख्या में मुसलमानों का अनुपात १४ फ़ी सदी है जितना कि पंजाब में सिखों का है। अस्थायी नियुक्तियों में हमने मुसलमानों को सेक्रेटरियट में लाने का बड़ा ख़याल रक्खा है। स्पेशल ड्यूटी के अफ़सरों में ३ हिन्दू, २ मुसलमान और १ योरपीय है। स्थायी सुपरिंटेण्डेण्टों में १ मुसलमान और २ हिन्दू हैं। सार्वजनिक सूचना-विभाग में तीन नियुक्तियाँ हुई हैं, जिनमें २ हिन्दू और १ मुसलमान है। ईख इंस्पेक्टरों और चीनी कारख़ाना सम्बन्धी अफ़सरों में ५ मुसलमान और ५ हिन्दू हैं। १४ तहसीलदार एवज़ डिपटी कलक्टर बनाये गये हैं, जिनमें ४ मुसलमान, १ क्रिस्तान और ९ हिन्दू हैं। सेटलमेंट अफ़सरों में १ हिन्दू, १ योरपीय और १ मुसलमान है।

यदि अल्पसंख्यक इस व्यवहार से नहीं सन्तुष्ट हैं तो उन्हें स्वयं ब्रह्मा भी सन्तुष्ट न कर सकेंगे।

साँप काटे का इलाज

रावल-पिंडी की श्रीमती इन्द्राक्षी देवी निगम ने साँप काटे का विष दूर करने के लिए दो नुस्ख़े लिख भेजे हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) कसौंदी के पत्ते गीले-गीले २ तोले तक और सूखे ६ माशे से एक तोला तक (परन्तु सूखे पत्ते बहुत पुराने न हों) तथा १२ काली मिर्च थोड़े से घी में पीस कर पिला दे और कसौंदी के पत्तों को पीस कर काटे पर व्रण करके बाँध भी दे। इससे चाहे कैसे भी सर्प ने काटा हो, अवश्य लाभ होगा। यह शर्तिया इलाज है। इसके सम्बन्ध में एक दोहा भी प्रसिद्ध है—

पात कसौंदी विष हरे, जड़ से साँप डरात।
फल से बाघ डरात हैं, फूल रतौंधी जात॥

(२) केले के पेड़ के छिलके का रस २ तोला १०-१२ काली मिर्च के साथ पिलाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। पहली मात्रा से यदि आराम न हो तो दूसरी मात्रा एक घंटे के बाद और फिर दो-दो घंटे के बाद देनी चाहिए। केले के छिलके को ख़ूब बारीक पीस कर सर्प के काटे स्थान पर थोड़ा-सा खुरच कर बाँध भी देना चाहिए। यह भी अचूक और शर्तिया योग है। इससे अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर एक साधु ने एक सर्प काटे को अच्छा किया था। वह रोगी स्वर्गीय स्वनाम-धन्य मुंशी अमनसिंह जी (जो काँगड़ी-ग्राम गुरुकुल के लिए दान देकर संसार में अपनी कीर्ति छोड़ गये हैं) का नौकर था।

नक़ली घी का क़ानून

प्रसन्नता की बात है कि संयुक्त-प्रान्त की सरकार एक ऐसा क़ानून बना रही है, जिससे बाज़ारों में शुद्ध घी प्राप्त हो सकेगा। यह एक प्रकट बात है कि मिलावटी घी और तेल आदि के कारण लोगों के स्वास्थ्य आदि को भारी हानि पहुँची है। बनारस में बेरीबेरी रोग के फैलने का एक कारण बङ्गालियों का मिलावटी तेल का सेवन करना बताया गया है। चाहे जो हो, सरकार को ऐसी व्यवस्था करनी ही चाहिए कि घी-दूध, तेल आदि खाद्य-पदार्थ अपने शुद्ध रूप में ही बिकने पावें। ऐसा होना नैतिक-दृष्टि से भी आवश्यक है, स्वास्थ्य की दृष्टि से तो है ही। अस्तु।

प्रान्तीय असेम्बली में श्री कृष्णचन्द्र एम० एल० ए० ने इस आशय का एक बिल पेश किया है कि सभी नक़ली घी रँग देकर बेंचे जायँ ताकि शुद्ध घी से उनकी पहचान हो सके। इस क़ानून पर विचार करने के लिए एक कमिटी बना दी गई है, जो लोगों की सम्मतियों पर विचार कर इस क़ानून का मसविदा दुरुस्त करेगी। इस क़ानून के

अनुमार गाय और भैंस का घी ही 'घी' माना जायगा। इसके सिवा और जो पदार्थ घी के नाम से विकते हैं वे सब रँग देकर बेचे जायँगे और उनके बेचनेवाले उन्हें सरकार से लायसेंस लेकर बेच सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं, यह एक बहुत ही उपयोगी क़ानून होगा। क्या ही अच्छा होता, यदि सरकार शुद्ध दूध तथा शुद्ध तेल के मिलने की भी इसके साथ ही कोई उपयुक्त व्यवस्था कर देती।

—

ग्राम-पंचायतें

देहाती पंचायतों का क़ानून संयुक्त-प्रान्तों में वर्षों से प्रचलित है, परन्तु ये संस्थायें न तो लोकप्रिय ही हुईं और न इनका आशा के अनुसार वैसा व्यापक प्रचार ही हुआ। यदि अधिकारी उनकी स्थापना के साथ साथ इनके उपयोगी बनने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन देते तो अब तक ये समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गई होतीं। परन्तु यह सब कुछ नहीं हुआ और पञ्चायतें आज षड्यन्त्रकारियों के लाभ का एक नया साधन बन गई हैं। इनकी इस समय कैसी दयनीय दशा है, इसका पता इलाहाबाद-डिवीज़न के कमिश्नर मिस्टर पन्नालाल ने सन् १९३७ के सितम्बर में समाप्त होनेवाले साल की अपनी रिपोर्ट में ब्योरेवार दिया है। कमिश्नर साहब ने लिखा है कि उनके डिवीज़न की पचायतों में अधिकांश ने बहुत थोड़ा काम किया है और कुछ ने तो बिलकुल ही नहीं किया है। उदाहरण के लिए फ़तेहपुर ज़िले की १७ पंचायतों ने कुछ भी काम नहीं किया है और २४ ने साल में दस से भी कम मुक़दमे किये हैं। इसका कारण यह नहीं है कि ग्रामों में शान्ति का राज्य क़ायम हो गया है और वहाँ के निवासियों ने मुक़दमे लड़ना बन्द कर दिया है। इस अवस्था का यह कारण जान पड़ता है कि सबार्डीनेट मेजिस्ट्रेट मुक़दमा अपने यहाँ लेने के पहले यह नहीं देखते कि वह मुक़दमा उनकी अदालत में चलना चाहिए या पंचायत में। इस प्रकार वे पचायतों में होनेवाले मुक़दमे को भी लेकर अपनी अदालतों में कर डालते हैं। कमिश्नर साहब ने अब यह व्यवस्था की है कि जो मुक़दमे पचायतों में हो सकते हों वे उन्हीं में पेश और फ़ैसल हुआ करें। अन्य डिवीज़नों के कमिश्नरों का भी ध्यान पंचायतों की दयनीय दशा की ओर जाना चाहिए और उन्हें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि ये पचायतें ग्रामों की सजीव संस्थायें हो जायँ और उनसे लोक का कल्याण हो।

—

रेलवे-विभाग में आशाजनक लाभ

रेलवे-विभाग में सन् १९३० से बराबर घाटा ही होता आया है। प्रसन्नता की बात है, अब उसमें लाभ होना शुरू हो गया है। सन् १९३७ के मार्च में समाप्त होनेवाले साल की उसकी जो रिपोर्ट हाल में निकली है उसमें उपर्युक्त बात स्वीकार की गई है। उसमें लिखा है कि रिपोर्ट के साल सरकारी रेलों से ९५$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपये की आय हुई है, जहाँ उसके पहले वर्ष ९० करोड़ रुपये दो आने तीन पाई की आय हुई थी। इधर यह आय हुई, उधर व्यय भी ५० करोड़ रुपये तक ही रक्खा गया। ब्याज आदि दे दिला कर १$\frac{1}{4}$ करोड़ रुपये की बचत हुई है। यह बचत सात वर्ष के बाद हुई है। यदि रेलवे विभाग के लाभ का यह क्रम बना रहा तो रेलों की ही अधिक उन्नति न होगी, किन्तु उसकी आय राष्ट्र के दूसरे उपयोगी कार्यों में भी सहायक हो सकेगी। यह सब तो होगा, परन्तु जिन तीसरे दर्जे के यात्रियों का इस लाभ में काफ़ी अधिक भाग है उनकी असुविधाओं के दूर करने में रेलवे-बोर्ड अब अपना समुचित ध्यान देता है या नहीं, यह देखना है।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

मई १९३८ } भाग ३९, खंड १
संख्या ५, पूर्ण संख्या ४६१ { वैशाख १९९५

क्योंकर

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

प्यास में देते तड़पने
था दिया दो बूँद क्योंकर ?
कुछ दिखाकर चाहते हो
आँख लूँ अब मूँद क्योंकर ?
मरु-सदृश सूखे हृदय को
था दिया तब सींच क्योंकर ?
हाथ जो फैला चुके थे
आज लेते खींच क्योंकर ?
तुम मुझे देते बिलखने
था सिखाया हास क्योंकर ?

दूर से मुझको बुलाकर
अब न रखते पास क्योंकर ?
डूबने देते मुझे था
यह दिया पतवार क्योंकर ?
और फिर अब छोड़ते हो
किसलिए मँझधार क्योंकर ?
नींद में मैं सो रहा था
स्वप्न के ये साज क्योंकर ?
बरसने को थे घिरे इन
बादलों से गाज क्योंकर ?



[स्वर्गीय बाबू शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय ।]

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

लेखक, श्रीयुत राजनाथ राय, एम० ए०, बी० एस०

गत पचीस वर्ष पहले बँगला-साहित्य के जीवन में एक अजीब काल आ गया था। बंकिम बाबू के उपन्यास अवश्य ही १९वीं सदी के अन्त तक—और बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक भी सहस्रों-लाखों मनुष्यों के हृदयहार बने रहे, फिर भी लोगों में वर्तमान सदी के प्रथम दशक में ही उनके प्रति उदासीनता-सी होने लगी थी। 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपालकुण्डला' आदि के लेखक ने बंगाल के नीरस जीवन में एक अभाव की जो पूर्ति की थी उसे न स्वीकार करना एक अन्याय होगा, लेकिन पाठकों की रुचि धीरे धीरे किस स्वस्थ दिशा की ओर मुड़ती जा रही थी, इसका पता लेखक को तो लग ही गया था, पाठकों को भी उसी समय लगा था जब बंकिम बाबू का 'विषवृक्ष' सामने आया था। इसके पहलेवाली कृतियों में घटना-वैचित्र्य था, वर्णन की मनोमुग्धकर शैली थी, फिर भी उनकी कथा-भित्ति जीवन से दूर—बहुत दूर थी। वे एक कुशल कलाकार के सुन्दर चित्र-से थे, जिन्हें देखकर हम प्रसन्न हुए, थोड़ी देर के लिए बहुत सम्भव है, मंत्रमुग्ध भी हुए, लेकिन उनसे वह भावात्मक आत्मीयता नहीं प्राप्त हो सकी जिससे हृदय की भूख मिटाई जा सकती।

इसी लिए 'विषवृक्ष' की कहानी ने जो पाठकों के जीवन को छूकर बढ़ी थी, शीघ्र ही बंगाल के साहित्यिक जीवन को उद्वेलित-सा कर दिया। 'कृष्णकान्त का वसीयतनामा' जो इसके बाद आया, पाठकों को अपनी प्रकृत रुचि को समझा सकने में और भी अधिक सफल हुआ। 'आनन्दमठ' आया; उसने अपनी शक्तिशाली पंक्तियों में जिस स्वदेशाभिमान का, आत्म-त्याग का आदर्श खड़ा किया, उसे दासतापीड़ित बंगाल ने सिर झुकाकर स्वीकार किया। मातृभूमि की पीड़ित मूक पुकार ने राष्ट्रीय जीवन को उद्वेलित कर दिया। 'आनन्दमठ' ने जैसे लेखक की अन्य कृतियों को ढँक-सा लिया। उसे जो प्रशंसा मिली वह शुद्ध साहित्यिक नहीं, एक क्षणिक भावावेश की अस्थायी प्रेरणा की देन थी। इसलिए कहा जा सकता है कि 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकान्त के वसीयतनामा' के बाद वैसी स्थायी-सी चीज़ न मिल सकी, जो हमारे दैनिक कौटुम्बिक जीवन में हिल-मिल जाती अथवा हिलने-मिलने की चेष्टा ही करती। अवश्य ही रवीन्द्रनाथ ने साहित्य में नूतन मार्ग की ओर निर्देश किया था, लेकिन वे भी उस समय जैसे थककर शक्ति-संचय में लगे हुए थे। उस समय तक 'घर और बाहर' जिसने बँगला-उपन्यास-साहित्य में एक नवीन अध्याय का श्रीगणेश किया, सामने नहीं आया था। ऐसे ही समय, रंगून-स्थित एक अज्ञातनामा बंगाली की दो-एक सद्यःप्रकाशित कहानियों ने साहित्यिकों की आँखें अपनी ओर विस्फारित करने को बाध्य किया। उन प्राथमिक कहानियों में भी जो जीवन की मधुर गम्भीरता का, सहानुभूतिपूर्ण चित्रण का आभास मिला, वह बँगला-साहित्य के लिए अत्यन्त नूतन था। अपने प्रथम प्रयास में ही लोगों को विस्मय-विमुग्ध कर शरद् बाबू ने जो लगातार २५ वर्षों तक अपने पाठकों के भावदेश पर एकच्छत्र शासन किया वह साहित्य की एक चिरस्मरणीय घटना है। यह बात और भी विशेषता इसलिए रखती है कि जिस समय उन्होंने ऐसा किया उस समय भी रवीन्द्र जैसे प्रतिद्वन्द्वी वर्तमान थे। जब तक वे जीवित रहे और लिखते रहे, उन्होंने अपने पाठकों को अपना वास्तविक मूल्य समझने का मौक़ा ही नहीं दिया। आज भी हम उनकी कृतियों का ठीक ठीक मूल्य समझ सकेंगे, यह कहना मुश्किल है।

शरद् बाबू का जन्म हुगली-ज़िले के देवनन्दपुर में १५ सितम्बर सन् १८७६ को हुआ था। अपने तीन भाइयों में वो सबसे बड़े थे; बाक़ी दो भाइयों का नाम क्रमशः प्रभाश और प्रकाश था। भागलपुर में अपने नाना के घर में ही इनका बचपन बीता। टी० एन० जे० स्कूल, भागलपुर, से इन्होंने मेट्रिक पास किया। इसी स्कूल में प्रसिद्ध बंगाली साहित्यिक श्रीयुत पाँचकौड़ी वन्द्योपाध्याय से इनकी मुलाक़ात हुई, जो वहीं शिक्षक थे। कालेज में ये अधिक दिन नहीं रह सके। द्वितीय वर्ष में ही पढ़ाई छोड़ दी। इसके बाद के कुछ दिनों का इनका जीवन एक 'आवारा' का जीवन था। इनके जीवन का यह हिस्सा अन्धकारपूर्ण है, जिस पर अभी पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ा है। इस बीच में इन्होंने बहुत-से कामों में हाथ डाला, परन्तु किसी में भी सफलता नहीं मिली।

इन्होंने कुछ लिखना भी शुरू कर दिया था। इनकी पहली साहित्यिक चेष्टा 'मंदिर' नामक एक कहानी थी, जिसे इन्होंने अपनी बड़ी बहन अनिलादेवी के नाम से 'कुन्तलिन-कहानी-प्रतियोगिता' में रक्खा। जब रायबहादुर श्री जलधरसेन ने निर्णायक की हैसियत से निर्णय सुनाया तब प्रथम स्थान उन्हीं की कहानी को मिला। इस प्रतियोगिता में १५० कहानियाँ आई थीं। भागलपुर में रहते हुए ही इन्होंने 'बड़ी दीदी' लिखी, जो 'भारती' नामक मासिक में क्रमशः प्रकाशित हुई। लेकिन इस समय तक ये अज्ञात-नाम ही रहे। बाद में 'बड़ी दीदी' के पुस्तकाकार छपने पर इनका प्रकृत नाम और स्वरूप प्रकट हुआ। इसके बाद ये सरकारी सिक्रेटेरियट में नौकरी पा गये और रंगून चले गये। यहीं से इन्होंने 'यमुना' में 'विन्दो का लड़का' और 'राम की सुमति' नामक कहानियाँ प्रकाशित कीं। नये लेखक की प्रतिभा को पहचानकर 'भारतवर्ष' के अधिकारियों ने इन्हें अपने यहाँ बुला लिया। नौकरी छोड़कर ये कलकत्ते आये और तभी से साहित्य-सृजन में लग गये। जितना शीघ्र इन्होंने साहित्य में अपने लिए स्थान बना लिया, उतना शीघ्र आज तक किसी बंगाली लेखक ने नहीं बनाया था। इन्होंने शादी नहीं की और जीवन भर क्वाँरे ही रहे।

लगभग पाँच वर्ष हुए इन्होंने बालीगंज में अपने लिए एक मकान बनवाया था। इधर ज़्यादातर यहीं रहते थे। ये कितने लोकप्रिय लेखक थे, इस बात का अन्दाज़ 'शरत्-वन्दना' के नाम से प्रकाशित पुस्तक से किया जा सकता है, जिसे बंगाल ने उन्हें श्रद्धाञ्जलि के रूप में अर्पित किया है।

ढाका विश्वविद्यालय ने १९३६ में इन्हें 'डाक्टरेट' की उपाधि दी थी और कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने 'जगततारिणी मेडल' देकर स्वयं अपने को गौरवान्वित किया था।

शरद् बाबू की लोक-प्रियता का सबसे बड़ा कारण यह था कि इन्हीं के उपन्यासों में पहले-पहल जीवन की उस वास्तविकता का चित्रण मिला जिसके लिए पाठक अब तक इन्तज़ार कर रहे थे। हिन्दू-समाज के गार्हस्थ्य जीवन के जो चित्र इनकी क़लम से निकले हैं वे इतने सजीव और मर्म-स्पर्शी हैं कि उनकी भारतीय कथा-साहित्य के इतिहास में तुलना नहीं। इन्होंने बंगाली कथा-साहित्य को एक मानवीय स्पर्श दिया, जिससे हमें केवल अपने अतृप्त कौतूहल की ही सन्तुष्टि नहीं प्राप्त हुई, बल्कि इससे बहुत आगे बढ़कर उसने हमारी उस भूख को मिटाने की चेष्टा की जिसका स्पष्ट रूप भी हमें उस समय तक मालूम नहीं हो सका था। बड़ी से बड़ी बात को, अत्यन्त उलझी हुई घटनाओं को साधारण शब्दों में व्यक्त करने की अभूत-

पूर्व मनोमुग्धकर शैली ने इन्हें पाठकों के हृदय-देश तक पहुँचने का वह साधन दिया जिसकी कमी अन्य लेखकों में स्पष्ट ही दिखलाई पड़ती है। इन्हें लिखने के लिए बहुत अभ्यास नहीं करना पड़ा। यह इस बात से ही प्रकट है कि जब इनकी 'बिन्दो का लड़का' नामक कहानी क्रमशः प्रकाशित होने लगी तब उसने पहले ही दिन से लोगों की दृष्टि अपनी ओर ऐसा आकर्षित कर ली कि इसके अज्ञात लेखक के विषय में उनकी कल्पना-जल्पना का अन्त न रहा। प्रायः सभी ने यही सोचा कि रवि बाबू ही इसे लिख रहे हैं। लेकिन कवीन्द्र ने जब स्वयं ही इस बात का खंडन किया तब लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। ऐसी थी ठोस सामग्री शरद् बाबू के उपन्यासों में, जिसने इन्हें इतना शीघ्र बंगाल का हृदयहार बना दिया।

शरद् बाबू के अंकित चित्र कल्पना-लोक के उपकरणों से बने होने पर भी बहुत ज़्यादा मानवीय ही हैं। हमारे ही जैसा उन्हें भी दुःख-सुख का अनुभव होता है और इन दुःख-सुखों की अभिव्यक्ति इस ढंग से, इतने मार्मिक रूप से इनकी पुस्तकों में होती है कि हम स्वयं भी उनके साथ रोते हैं, हँसते हैं और कभी-कभी घटना-चक्र की उलझन में स्वयं भी उलझकर खो-से जाते हैं।

'श्रीकान्त' में इनकी शैली की सभी प्रधान विशेषतायें स्पष्ट रूप में मिल सकती हैं। व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग तो इनका इतना सहज और उपयुक्त होता है कि बरबस 'वाह' कह देना पड़ता है। स्थल-विशेष पर इनके वर्णन अत्यन्त काव्यमय और सजीव हो उठते हैं। रात्रि और उसके काले रूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

'......किस मिथ्यावादी ने यह बात फैला दी है कि केवल प्रकाश का ही रूप होता है, अन्धकार का नहीं। इतना बड़ा झूठ मनुष्य ने किस तरह चुपचाप मान लिया होगा!......इस ब्रह्माण्ड में जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है; वह उतना ही अंधकारमय है। अगाध समुद्र स्याही जैसा काला है; अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अंधकारमय है; सर्वलोकों का आश्रय, प्रकाश का भी प्रकाश, गति की भी गति, जीवन का भी जीवन, संपूर्ण प्राण पुरुष भी, मनुष्य की दृष्टि में निविड़ अंधकारमय है!......इसी लिए राधा के दोनों नेत्रों में समाकर जिस रूप ने प्रेम के पूर में जगत् को बहा दिया वह भी घनश्याम है।'

शरद् बाबू की कृतियों को पढ़ते हुए जो बात हृदय की सम्पूर्ण इच्छा-अनिच्छा से ऊपर उठकर हमें बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है वह है उनका आश्चर्यजनक प्रेमचित्रण। बंकिम बाबू ने यद्यपि अपने प्रेमचित्रण की ओर क़दम बढ़ाया था, फिर भी उनके प्रेम के वर्णन में कवित्व की मात्रा अधिक होते हुए भी प्राण-दायिनी सहानुभूति का सर्वथा अभाव ही था। 'आँख की किरकिरी' में रवि बाबू 'त्याज्य' प्रेम का कुछ ब्योरेवार वर्णन करते हुए दिखलाई देते हैं, फिर भी इसके लिए जिस साहस और सहानुभूति की आवश्यकता थी उसकी शायद उनमें भी कमी ही थी। 'शायद' इसलिए कि अपने बाद के उपन्यास 'घर और बाहर' में जिस साहस का परिचय उन्होंने दिया वह आश्चर्यजनक है। लेकिन 'घर और बाहर' में वर्णित प्रेम क्रान्तिकारी-सा भले ही दीखे, उसमें भी वह सहानुभूति और मार्मिकता नहीं है जो शरद् बाबू के प्रेम-वर्णन में हमें मिलती है। भाव-देश के उलझे हुए दुर्गम पथों पर चलता हुआ प्रेम; परम्परा से स्थापित और स्वीकृत विधिविधानों, गुण-दोषों से लड़ता झगड़ता, कभी विजयी और विजित-सा दीख पड़नेवाला प्रेम, और इन सबसे बढ़कर पारस्परिक विरोधात्मक पहलुओं में अपने को न पहचान सकनेवाला प्रेम,—प्रेम के यही रूप हैं जिन्हें शरद् बाबू ने बड़ी सफलतापूर्वक अपने चित्रों में अंकित किया है।

इनके प्रेम का आश्रय राम और सीता जैसी अलौकिक विभूतियाँ नहीं हैं। ये तो साधारण-से साधारण परिस्थिति के लोगों में भी उसे पाते थे और उसे उसी रूप में चित्रित करते थे।

शरद् बाबू का प्रेम प्रायः परस्परविरोधी परिस्थितियों से होकर गुज़रने पर भी जीता रहता है, राख-सा दीखने पर भी वह एकदम राख नहीं है, उसमें जीवन-स्फुलिङ्ग रहते ही हैं। उनके प्रेमचित्र ऐसे सरल नहीं हैं, सीधी रेखा पर चलनेवाले भी नहीं हैं। बहुधा वे अपने वास्तविक और काल्पनिक प्रेम के आलम्बन को ढूँढ़ने में ही खो-से जाते हैं। सहस्रों बहानों और आवरणों के नीचे उनका 'प्रेम' अपने को छिपाने की चेष्टा करता है—दूसरों से भी और अपने से भी। अचानक एक दिन वह अपनी भ्रान्ति-निद्रा से जाग उठता है और अपने को पाकर ही अपने 'प्रियतम' को भी पहचान जाता है। कोई दुराव, कोई भी मिथ्या आत्म-प्रवञ्चना उसे भुलावे में नहीं रख सकती। शरद् बाबू का प्रेम एक आश्चर्यजनक, अपने ही से पुष्ट होनेवाली जीवन-शक्ति लिये होता है, जिसे कभी किसी सहानुभूति की भी आवश्यकता नहीं मालूम होती। अपने ही हृदय-रक्त से वह रस पाता है, बढ़ता है और संपूर्णता को प्राप्त होता है। उसे दूसरे की परवा तो है, परन्तु नितान्त आवश्यकता हो सो बात नहीं है।

शरद् बाबू की कृतियों की दूसरी प्रधान विशेषता है उनका नारी-चरित्र-चित्रण। इसके पहले के लेखकों की कृतियों में बङ्गाल की स्त्री-जाति की कोई भी आवाज़ नहीं सुनाई देती थी। उनके जीवन का परम्परागत चित्रण ही कला की इतिश्री थी। उनका कोई अपना व्यक्तित्व नहीं, विशेषता नहीं थी। सामाजिक अवस्थाओं और परिस्थितियों का ग़ुलाम रहना ही उनका जीवन था। वे किसी हालत में भी अपने चारों ओर के वातावरण पर किसी तरह की भी छाप नहीं डाल सकती थीं। उनमें सामर्थ्य नहीं था, योग्यता भी नहीं थी। यही था उस समय के नारी-चरित्र-चित्रण का स्वीकृत आधार। बंकिम बाबू के स्त्री-चरित्र अपनी नारी-सुलभ कोमलता और सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के होते हुए भी नारी-जाति का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस उत्तरदायित्व के लिए उनमें मूलभूत अभाव-सा है। रवीन्द्र की कृतियों में नारी ने पहले-पहल अपने को समझने की, दूसरों को भी अपने विषय में जानकारी देने की चेष्टा की। लेकिन यह सब होते हुए भी यह केवल शरद् बाबू की ही क़लम थी, जिससे अपूर्व दृढ़-मृदुल, समाज-विधान के विरुद्ध उठ खड़ी होती हुई स्वतन्त्र नारी के विस्मय-विमोहक चरित्र-चित्र बहिर्गत होते हैं। यहाँ नारी-जाति एक गतिशील शक्ति के रूप में आविर्भूत होती है, जो अपनी समस्याओं को, अपनी आवश्यकताओं को स्वयं सोचती है और उन्हें दृढ़ता के साथ स्पष्ट शब्दों में समाज के सामने रखती हैं। इन चित्रों में अत्याचार के प्रति, रूढ़िगत निर्जीव विधि-निषेधों के प्रति तथा पुरुषों-द्वारा अपने ऊपर किये गये अत्याचारों के प्रति एक स्पष्ट विद्रोह का स्वर सुनाई पड़ता है। लेकिन इस स्वर में कोई कर्कशता नहीं, गाली देकर जी की उ... ठंडी करने का कष्टकर प्रयास भी नहीं है—केवल मृ... मधुर, परन्तु दृढ़ नारीकण्ठ है, जिसकी तुलना ढूँढ़... आसान नहीं है। कौटुम्बिक जीवन में उनका ही... अधिकारपूर्ण-सा सुनाई देता है और इनके सम्मुख पु... की मुँह बचानेवाली बातें केवल 'दुहाई' देती हुई, फ... याद करती हुई-सी मालूम देती हैं। सोचिए, वह कितनी ज़ोरदार क़लम है जिसने युगों से गिरी हुई, अपने आपको भूली हुई नारी को पुनः उसके गौरवपूर्ण आसन पर आसीन कर दिया!

शरद बाबू के हृदय में नारी-जाति के प्रति एक असीम अनुराग, एक महान् श्रद्धा का भाव है—यह भाव उनकी कृतियों के पन्ने-पन्ने में स्पष्ट है। इस नारी-भाव की प्रधानता के कारण ही इन्होंने अपना क्षेत्र बाह्य की विशालता को नहीं, अन्तर की निगूढ़ता को चुना है; और इसी लिए इन्हें पाठकों को औत्सुक्यपूर्ण असमंजस में डाल रखने की अपनी अपूर्व क्षमता के प्रयोग का उपयुक्त अवसर मिलता है। नीचे दिये उद्धरण से प्रकट हो जायगा कि नारी-जाति के प्रति इनके क्या भाव हैं—

"पहले मैं कई दफ़े कह चुका हूँ कि नारी के कलंक की बात पर मैं सहज में विश्वास नहीं कर सकता। मुझे जीजी (अन्नदा जीजी) याद आ जाती हैं।...न जानते हुए नारी के कलंक की बात पर अविश्वास करके संसार में ठगा जाना भला है, किन्तु विश्वास करके पाप का भागी होना अच्छा लाभ नहीं।"

जिस समय शरद् बाबू आये उस समय क्या साहित्य, क्या समाज, चारों तरफ़ अँगरेज़ियत का ही बोल-बाला था। साहित्य-सूत्र अँगरेज़ी के शिक्षित संभ्रान्त श्रेणी के मुट्ठी भर लोगों के हाथ में था, जिन्हें हिन्दुस्तानी संस्कृति, रहन-सहन, वेशभूषा आदि सभी बातों से एक तरह की चिढ़-सी थी। हिन्दू-समाज में जो बुराइयाँ थीं उनकी खिल्ली उड़ाई जाती थी, इसलिए नहीं कि वे कोई सुधार चाहते हों, बल्कि महज़ खिल्ली उड़ाने के लिए। शरद् बाबू ने शीघ्र ही स्थिति को पहचान लिया और अपना सारा ज़ोर इस ग़लत तरीक़े के विरुद्ध लगा दिया। 'पंडिताऊ साहित्य' के स्थान पर इन्होंने 'जन-साहित्य' का निर्माण किया—वैसा जन-साहित्य नहीं जैसा 'गोर्की' ने रूस में

किया, बल्कि एक आदर्श-मूलक हिन्दू-जन-साहित्य, जिसमें अपने को सर्वसाधारण हिन्दुस्तानी से भिन्न समझनेवाले, पाश्चात्य रहन-सहन के पक्षपाती नवीन 'संभ्रान्त' श्रेणी के लोगों के मिथ्याभिमानों पर तो कटाक्ष था ही—लेकिन जो प्रधान बात थी वह थी हिन्दू-समाज-जीवन की नये सिरे से जाँच पड़ताल करने की एक अत्यन्त नूतन क्रिया, परम्परागत निर्धारित मूल्यों और संस्थाओं की निर्भीकता-पूर्ण आलोचना-विवेचना। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ 'संभ्रान्त श्रेणी' अपने आपमें सिकुड़ती गई, वहाँ हिन्दू-समाज के प्रतिनिधियों ने भी अपना हृदय टटोलना शुरू कर दिया।

एक ओर सामाजिक आदर्श और बौद्धिक विश्वास तथा दूसरी ओर अर्धजाग्रत हृदयगत प्रवृत्तियाँ—इन दोनों के संघर्ष का चित्रण ही शरद् बाबू के चरित्र-चित्रों की आधार-शिला है। सामाजिक विकास के एक विशेष युग में जो नैतिकता का, विधि-निषेध का स्वरूप था, ठीक वही रूप आज भी कई युगों के बाद भी बना रहे और हम उसे आँखें बन्द किये स्वीकार करते चलें, इस बात पर सन्देह प्रकट करते हुए-से शरद् बाबू उठ खड़े हुए। हमारे जीवन-विकास के साथ, संस्थाओं और उनके मूल्यों में परिवर्तन होना ही चाहिए, नहीं होने से विकास पंगु होकर खड़ा हो जायगा—इसी बात का चित्रण शरद् बाबू ने किया है। समाज जिसे 'पतिता' कहता है, जिसके सिर पर दुराचारिणी की छाप लगाकर ही सन्तोष पाता है, वह क्या किसी को 'प्यार' कर सकती है या सामाजिक दृष्टि से क्या ऐसे 'प्यार' को प्रोत्साहन ही मिलना चाहिए और जो विधि-विधान हृदय की गंभीरतम पुकार का गला दबाता हुआ-सा मालूम हो उसकी हमारे जीवन में आवश्यकता ही क्या है—ऐसे ही सैद्धान्तिक प्रश्न शरद् बाबू उठाते हुए आते हैं। वे जैसे पूछते-से हैं कि 'श्रीकान्त' और 'राजलक्ष्मी' तथा 'सतीश' और 'सावित्री' को स्त्री-पुरुष के रूप में समाज क्यों नहीं स्वीकार कर सकता और यदि समाज उसे नहीं कर सकता तो क्या इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि उसमें उस 'आग' की कमी है जो जीवन की निशानी है। और जैसे वे इसी आग को पुनः प्रज्वलित करने के लिए सभी चिन्तनशील व्यक्तियों का आवाहन करते हैं।

'पतितों' के प्रति, समाज के उपेक्षितों के प्रति जो एक गहरी वेदना का, एक मर्मस्पर्शी सहानुभूति का भाव उनकी क़लम से फूटा पड़ता है वह अकथनीय है। इन समाज और साहित्य के 'अछूतों' के जो चित्र इन्होंने चित्रित किये वे जैसे चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे कि उनका भी एक अस्तित्व है, उन्हें भी जीवन-नाटक में अपना 'पार्ट' खेलना है, मूलगत मूल्यों और मापदण्डों के आधार पर उनका भी जीवन किसी से कम मूल्यवान नहीं है।

शरद् बाबू ने हमारे साहित्य-क्षेत्र में एक नवीन दृष्टिकोण रक्खा अवश्य, लेकिन वह दृष्टिकोण अपनी नूतनता के कारण क्रान्तिकारी-सा दीखता हुआ भी वास्तव में क्रान्तिकारी नहीं था। किसी नये सिद्धान्त के लिए विध्वंसकारी परिवर्तन को लेकर वे नहीं खड़े हुए। उन्होंने पुराने ही 'पक्ष' को नूतन आच्छादन के भीतर से एक नवीन दृष्टिकोण के साथ रक्खा। 'पतितों' और 'त्याज्यों' को देवत्व प्रदान करने के कारण कुछ लोगों की दृष्टि में शरद् बाबू सामाजिक क्षेत्र में एक 'अराजकवादी'-से, एक विध्वंसकारी-से प्रतीत हुए, लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति उनकी किसी भी कृति में नहीं दिखलाई पड़ती है। उन्होंने चोटें की हैं, आक्रमण किये हैं, फिर भी उनके आक्रमणशील हृदय ने कहीं भी संयम का बाँध नहीं टूटने दिया। आधुनिक पाश्चात्य लेखकों की तरह वे 'समस्या' को स्वीकार कर उसके 'समाधान' के स्वरूप को देने की चेष्टा नहीं करते। वे तो स्वयं ही समस्याओं की सृष्टि करते हैं, उन्हें सजीव बनाकर समाज के आँगन में बैठा देते हैं। बस उनका काम ख़त्म हो गया, इसके आगे उनका क्षेत्र नहीं है। 'शेष प्रश्न' आपके सामने रख देंगे, परन्तु उसका उत्तर और कोई भले ही ढूँढ़े, कम से कम वे तो इससे कोई मतलब नहीं रखते। इसलिए विध्वंसात्मक प्रवृत्ति की अमानुषिकता, दोष-रूक्षता उनके साहित्य में आ ही कैसे सकती है? यदि यह बात न होती तो 'देवदास' को न मरना पड़ता और न 'किरणमयी' को पागल होने की आवश्यकता होती। 'सावित्री' भी 'सतीश' से दूर न भागती और 'श्रीकान्त' की 'राजलक्ष्मी' को भी योग-साधन की आवश्यकता न होती। फिर 'गुणेन्द' को भी 'हेम' से ये बातें

कहने की, 'विच्छेद' के गुणगान करने की आवश्यकता न होती—

"(हेम, इस पार्थिव विच्छेद को तुम) ज़रूर सह सकोगी। जब तुम समझोगी कि प्रेम को महामहिमान्वित करने के लिए विच्छेद ने तुम जैसी अतुल ऐश्वर्यशालिनी के ही द्वार पर आकर हमेशा हाथ पसारे हैं, वह अल्पप्राण क्षुद्र प्रेम की झोपड़ी में अवज्ञा से नहीं गया, तब तुम सह सकोगी। जब समझोगी कि अतृप्त वासना ही महत् प्रेम का प्राण है, इसी के द्वारा ही वह अमरत्व प्राप्त करके युग युग में कितने काव्य, कितनी मिठास, कितने अमूल्य आँसू संचित करके रख जाता है, जब इस बात का निःसंशय अनुभव कर सकोगी कि क्यों राधा का शतवर्ष-व्यापी विरह वैष्णवों का प्राण है, क्यों वह प्रेम-मिलन के अभाव में ही सम्पूर्ण और व्यथा में ही मधुर है तब तुम सह सकोगी।" कहिए, पार्थिव सम्बन्ध के औचित्य को सहानुभूतिपूर्वक देखनेवाले इस महान् लेखक ने अपने इस सिद्धान्त को अपने चरित्रों के द्वारा भी समाज पर ज़बर्दस्ती लादने की जो चेष्टा नहीं की है वह क्या इस बात को प्रकट करती है कि वह एक विध्वंसकारी 'सामाजिक अराजक' था! वह मूलतः अपरिवर्तनवादी है—हाँ, उसके भीतर जो ज़ोर से जलनेवाली 'आग' है वही हमारी बुद्धि को झुलसाकर उसे उस रूप में देखने को बाध्य करती है जो उसका वांछित प्रकृत रूप कभी नहीं है।

शरद् बाबू ने जब तक वे जीवित रहे, अपने को निष्पक्ष रूप से समझने का मौक़ा नहीं दिया। जीवित लेखक के विषय में कोई निश्चित राय क़ायम कर लेना आसान नहीं है। इसमें जो सबसे बड़ी बाधा उठ खड़ी होती है वह है उसका अपना निजी व्यक्तित्व, जो हममें से कइयों में श्रद्धा, कइयों में घृणा का भाव भर कर हमें उनकी कृतियों को अच्छी तरह समझने का मौक़ा नहीं देता। उनकी कृतियों से हम उनके व्यक्तिगत जीवन को प्रायः अलग नहीं कर सकते। यही कारण है कि साहित्यिक गुट्टबन्दियों ने, पारस्परिक मनमुटौवल ने उनकी कृतियों को अच्छी तरह—शुद्ध वैज्ञानिक आलोचनात्मक रूप से—समझने का अवसर ही नहीं दिया। आज भी जब वे नहीं रहे हम निष्पक्ष रूप से उनकी आलोचना कर सकेंगे, उनका बँगला-साहित्य और विश्व-साहित्य में उचित मूल्य निर्धारित कर सकेंगे, कहना कठिन है।

भूला पथ !

लेखिका, श्रीमती दिनेशनन्दिनी

(१)

शून्य दिशा है भूला पथ है
अन्धकार गाढ़ा होगा,
पीड़ा में भ्रम है मदिरा है
टीस भरा यौवन होगा।

(२)

इस ओर सुधा-मिश्रित विष है
जीवन भर जलना होगा,
जर्जर वीणा-अस्फुट स्वर है,
तारों में कम्पन होगा।

(३)

आशा में क्लान्त पिपासा है
अवलम्बन आँसू होगा,
अमर प्रतीक्षा विधुर हास है,
फूलों-सा झड़ना होगा!

(४)

सुन्दर शैशव जीर्ण व्यथा है
भावों में बन्धन होगा,
निष्प्राण औ म्लान चितवन है
टीस भरा यौवन होगा!!

उत्तेजना

लेखक, श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

दो पहर का खाना सुबह-सुबह ही खाकर एक वसूली करने के बहाने हमीद जब घर से बाहर निकला तब शाम के सात बजे तक उसने घर वापस जाने का नाम ही न लिया।

हमीद एक ग़रीब पठान का नौजवान बेटा है। बिलकुल अवारागर्द और बाप की राय में निकम्मा। हाल में ही उसकी शादी हुई है। मा-बाप का ख़याल था कि शादी शैतान को इन्सान बना देती है और इन्सान को घर का पालतू जानवर। सो दो-तीन सौ रुपया ख़र्च कर उन्होंने सरहद के किसी किसान की एक सुन्दरी और हृष्ट-पुष्ट कन्या से हमीद का विवाह कर दिया। मगर हमीद पर इस विवाह का कोई लाभ-प्रद प्रभाव नहीं पड़ा। वह इन्सान से जानवर भले ही बन गया हो, परन्तु वह पालतू हर्गिज़ नहीं बन पाया।

भाग्यवश हमीद की पत्नी सुन्दरी है और लाहौर में आकर उसे अपने जीवन में पहली बार कुछ कुछ समझ आने लगी है कि वह अपने सौंदर्य को किस तरह आकर्षक और उग्र बना सकती है। परन्तु इस बात के लिए चाहिए पैसा, और हमीद के पास पैसे का नितान्त अभाव है। परिणाम यह हुआ कि हमीद अपनी पत्नी के दिल में अपने लिए आदर और प्रतिष्ठा का स्थान नहीं बना सका।

हमीद का पिता एक मामूली सूदख़ोर पठान है। शेरांवाला दरवाज़े के बाहर, लकड़ी की एक बड़ी-सी टाल के निकट दो-तीन कच्ची-सी कोठरियों में, वह अपने बड़े-से परिवार के साथ रहता है। हिन्दुस्तान भर में जिस तरह छोटे-छोटे पठान बेझक सूदख़ोरी से अपना निर्वाह करते हैं, उसी तरह वह भी अपनी आजीविका चला रहा है। बहुत ऊँचे सूद पर पाँच-सात या आठ-दस रुपयों की रक़में वह ग़रीब मज़दूरों या बेकार नौकरों को देता है। उनसे न वह रसीद लेता है, न दस्तावेज़ लिखवाता है और न गवाह ही जमा करता है। फिर भी क्या मजाल कि कोई उसका पैसा हज़म कर जाय। वह चाहता है कि हमीद भी यही पेशा अख़्तियार करे। पर न जाने क्यों हमीद अपने को इस काम के लिए नितान्त अयोग्य पाता है। अर्सा हुआ, जब बाप की प्रेरणा पर कुछ छोटी-छोटी रक़में उसने अनेक लोगों को एक पाई प्रतिरुपया प्रतिदिन के सूद पर उधार दी थीं। परन्तु उन रक़मों में से एक की भी वसूली वह आज तक नहीं कर पाया। पठान होते हुए भी वह न किसी को डरा सकता है, न धमका सकता है और न किसी पर रोब ही डाल सकता है, बल्कि ज़रा-सा गम्भीर होने का प्रयत्न करते ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट छा जाती है, बात-बात पर वह हँस देता है। हमीद के दिल का प्रत्येक अच्छा या बुरा भाव मानो उसे गुदगुदी कर देता है और तब वह बरबस हँस पड़ता है। ऐसा आदमी भला वसूल तहसील क्या करता? हमीद के तीन असामी तो चकमा देकर निकल गये, उसे फिर कभी उनकी सूरत ही नहीं दिखाई दी। चौथा असामी गुरु अर्जुननगर का रहनेवाला एक बनिया था। इस लाला की नोन-तेल की एक छोटी-सी दूकान थी। हमीद जब इस लाला के पास जाता तब मीठी-मीठी बातें बनाकर ऐसा टालता कि हमीद फिर हफ़्तों तक उसके पास जाने की हिम्मत न कर सकता था।

सर्दी के दिन थे। सूरज डूबे काफ़ी देर हो चुकी थी कि दरवाज़ा खोलकर हमीद अपने घर के भीतर दाख़िल हुआ। दिन भर की जो कुढ़न उसकी पत्नी के चेहरे पर साफ़ तौर से अंकित थी, हमीद ने उसे देखा, समझा और वह घबरा गया। इसी समय उसके बाप ने पूछा—"दिन भर कहाँ रहे हमीद?"

"वसूली करने गया था?"

"कहाँ?"

"गुरु अर्जुननगर।"

"उसी लाला के यहाँ? उससे कुछ वसूल भी हुआ?"

हमीद ने बड़े उत्साह के साथ कहा—"बाबा, मैंने उसके यहाँ सात चक्कर लगाये, मगर लाला एक बार भी

नहीं मिला। कुछ बदक़िस्मती ऐसी रही कि जब जब मैं उसकी दूकान पर गया, यही मालूम हुआ कि सिर्फ़ दो-चार मिनट हुए वह अपने किसी काम पर गया है।"

"तुम्हें यह किस तरह मालूम हुआ?"

"उसका छोटा पुत्र हर बार मुझे यही बताता था कि वह अभी अभी अमुक काम पर गया है।"

बूढ़े बाप ने ज़रा खिन्नभाव से कहा—"मैं सब समझता हूँ हमीद। लाला लोग जान-बूझकर हैरान करते हैं। ये दिन भर में क्या, महीने भर में सात बार भी अपनी दूकान छोड़कर नहीं जाते। तुम सारा दिन रहे कहाँ?"

"सादिक के घर। मैंने सोचा था कि आज लाला से मिलकर ही घर वापस जाऊँगा।"

न जाने किस बात पर बूढ़े बाप को क्रोध हो आया। उसने बहुत ही आवेश से कहा—"नालायक़ कहीं का! सारा दिन सादिक के यहाँ ताश खेलता रहा होगा। अब बातें बनाता है। लाला से मिलकर ही आने का इरादा किया था तो अब बग़ैर मिले कैसे चला आया। हरामख़ोर, बुज़दिल कहीं का। इतना भी नहीं समझता कि लाला तुझे देखकर कहीं भीतर छिप जाता होगा। मैंने सोचा था कि तेरी पहली वसूली के सूद से बहू को चाँदी के काँटे ख़रीद दूँगा, मगर ऐसा निखट्टू पठान बच्चा तो मैंने आज तक कहीं नहीं देखा।"

हमीद की पत्नी अपने कमरे के दरवाज़े पर खड़ी यह सब सुन रही थी। अब उसके चेहरे पर अपने पति के लिए क्रोध के स्थान पर सहानुभूति का भाव आ गया था। हमीद ने आँख उठाकर चुपके से अपनी पत्नी की ओर देखा। उन सुन्दर आँखों के गीले छोर देखकर न जाने हमीद को क्या हो गया। अपने बाप की बात का जवाब दिये बिना ही वह लौट पड़ा। उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख अब अपनी पत्नी के कानों में चाँदी के काँटे झूम रहे थे।

बाप को यह देखकर ख़ुशी हुई कि बेटा कुछ करने चला है। परन्तु पत्नी से नहीं रहा गया। उसने बाप की ओर घूँघट बढ़ाकर धीरे-से आवाज़ दी—"सुनो, इस वक्त कहाँ जाते हो? न हो, कल सुबह चले जाना।"

चलते-चलते हमीद ने जवाब दिया—"घबराओ नहीं। मैं अभी वापस आया।" और दरवाज़ा खोलकर वह घर से बाहर हो गया।

लाहौर की सरकूलर रोड पर धूल, कुहरे और धुएँ का घना आवरण चढ़ा हुआ था। हमीद इसी सड़क पर से होकर तेज़ी से गुरु अर्जुननगर की ओर बढ़ा जा रहा था। राह की अधिकांश दूकानें बन्द हो चुकी थीं। लोग भारी ऊनी कपड़ों में अपना सिर-मुँह छिपाये इधर-उधर आ-जा रहे थे।

दूर से ही लाला की दूकान पर रोशनी देखकर हमीद की ख़ुशी का पारावार नहीं रहा। उसकी सम्पूर्ण नाराज़ी भी काफ़ूर हो गई और वह मुसकराता हुआ-सा लाला की दूकान के सामने जा खड़ा हुआ।

लाला हमीद को दिन भर चराता रहा था। उसका छोटा बच्चा सी० आई० डी० के इनफ़ार्मर का काम करता रहा था। जब उसे हमीद के आने की ख़बर मिलती, वह दूकान के पिछवाड़े के गन्दे-से पेशाबघर में चला जाता। दीया जलते ही जब हमीद अपने यार-दोस्तों के सहित सैर पर निकल गया तब उसकी जान में जान आई, उसने राम का नाम लिया। दीये को नमस्कार कर उसने लोई ओढ़ी और कुछ ऊँचाई पर बिछी एक बोरी पर पलथी मारकर जा बैठा। इस वक्त अचानक हमीद को वहाँ देखकर लाला क्षण भर के लिए तो सन्न-सा रह गया। परन्तु इसके बाद उसने ऐसा भाव प्रदर्शित किया, जैसे वह हमीद को पहचानता ही न हो। लाला पूरा घाघ था। मौक़ा देखकर उसने पैतरा बदल लिया।

हमीद ने मुसकराकर कहा—"क्या हाल है लाला साहब?"

लाला ने हमीद की ओर ऐसी निगाह से देखा, जैसे वह उसे अपनी ज़िन्दगी में पहली ही मर्तबा देख रहा हो। उसने पूछा—"कुछ ख़रीदना है? क्या चाहिए?"

हमीद ने हँसते हुए कहा—"पैसे चाहिए लाला!" और इसके बाद अट्टहास करते हुए वह बोला—"ओफ़्फ़ो! लाला साहब आप मुझे पहचाने भी नहीं!"

लाला को जैसे आग लग गई—"तेरा दिमाग़ तो ठिकाने है न? पैसे माँगने आया है। कैसे पैसे? चल यहाँ से! दीया जला नहीं कि चट से पैसे माँगने आ गया। अभी बोहनी तक तो हुई नहीं। इन नालायक़ों को ज़रा भी तमीज़ नहीं।"

लाला यद्यपि बहुत क्रोध और गम्भीरता के साथ ये

बातें कह रहा था, मगर हमीद को समझ न आई कि वह मज़ाक कर रहा है, टालना चाहता है या इनकार कर रहा है। मगर टालना भी हो तो यह कौन-सा ढंग है। उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा—"लाला, इस सर्दी में कहीं भाँग तो नहीं खा गये। मैं हमीद हूँ, हमीद, जिससे पिछले साल तुमने सात रुपये लिये थे। कुछ मालूम है। सात रुपये तो अब सूद के ही हो गये। तुम्हें शरीफ़ समझकर दो-चार महीने मैं आया नहीं। उसका अब यह नतीजा है!"

और यह सब कहते-कहते हमीद दूकान के फ़र्श पर चढ़ गया।

लाला को जैसे क्रोध का उन्माद हो आया। वह बकने लगा—"वाह रे वाह! बड़ा आया है, धन्ना सेठ। है कोई लिखत-पढ़त तेरे पास? तेरे जैसे जूतीचोरों से मैं उधार लूँगा! चल भाग यहाँ से। नहीं तो तेरी हड्डी-पसली सब एक कर दूँगा। बड़ा हमीद का बच्चा बना फिरता है। वाह रे वाह!"

हमीद को अब भी क्रोध नहीं आया। और आख़िरी बात सुनकर तो उसे बरबस हँसी आ गई। दूकान के फ़र्श पर एक बड़ा-सा हथौड़ा पड़ा था। यों ही बिलकुल अचानक उसे उठाकर उछालते-उछालते हमीद हँसी-हँसी में कहने लगा—"लाला साहब, आपने नशा करना कब से शुरू किया? भलेमानस, कुछ सँभलकर तो पिया करो। मैं हमीद का बच्चा नहीं, ख़ुद हमीद हूँ।"

लाला अपने दोनों हाथ दसों दिशाओं में फटकारता हुआ कहने लगा—"हरामज़ादा, पाजी का बच्चा, मुझे शराबी बनाता है। अभी पुलिस को बुलाता हूँ। जूती-चोर कहीं का! ठहर, अभी तेरी ख़बर लेता हूँ।"

हमीद ने अब भी शान्ति के साथ कहा—"गालियाँ मत बको लाला। कहे देता हूँ। वर्ना पछताओगे।"

अब लाला उछल कर खड़ा हो गया। उसका मुँह बिजली की तेज़ी से चल रहा था—"ठहर साले, तू भी क्या याद रक्खेगा। कभी तुझे भी लाला घसीटामल से साबका पड़ा था।"

और तब मा-बहन की गालियाँ देता हुआ वह हमीद की ओर बढ़ा। हमीद को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे लाला उस पर आक्रमण कर रहा है। क्षण भर की भी देर नहीं हुई और लोहे का वह भारी हथौड़ा हमीद के बलिष्ठ हाथों से गति पाकर पूरे ज़ोर के साथ लाला के सिर से जा टकराया। लाला धड़ाम से उसी जगह चित गिर पड़ा। उसे चिल्लाने को भी फ़ुर्सत नहीं मिली। चिल्लाया तो उसका छोटा पुत्र। पल भर के लिए तो हमीद किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया। उसके बाद आगे बढ़कर उसने लाला को उठाया। शोर-गुल सुनकर जो थोड़े-से लोग इस सर्दी में भी दूकान के बाहर आ जमा हुए थे वे भीतर घुस आये। लाला के सिर से ख़ून का परनाला-सा बह रहा था और दूकान के सम्पूर्ण फ़र्श को भिगोता हुआ वह सामने की गन्दी नाली में टप-टप करके टपक रहा था। लाला घसीटामल उसी क्षण निर्जीव हो चुके थे।

हमीद की समझ न आया कि बिलकुल अचानक यह सब क्या काण्ड हो गया! लाला मर गया है, यह देखकर भी यन्त्रचालित की तरह हमीद ने अपनी पगड़ी उतारी और उसे लाला के फटे हुए सिर पर बाँधकर वह ख़ून रोकने का प्रयत्न करने लगा। और ख़ूनियों के समान उसने भागने की कोशिश नहीं की, आत्मरक्षा के लिए भी उसने कोई प्रयत्न नहीं किया, कोई हिंसात्मक भावभङ्गी उसके चेहरे पर नहीं आई, 'उफ़!' को छोड़कर कोई आवाज़ भी उसके मुँह से नहीं निकली और यहाँ तक कि अत्यन्त सहज भाव से हो गई इस हत्या के लिए कोई बहाना तक सोचने का प्रयत्न भी उसने नहीं किया।

लाला का वह छोटा-सा अबोध पुत्र रो-रोकर ज़मीन-आसमान एक कर रहा था। दूकान के बाहर और भीतर तमाशबीनों की भीड़ क्रमशः बढ़ती जा रही थी। जब लोगों ने देखा कि 'ख़ूनी' बिलकुल साधारण मनुष्यों के समान भलामानस-सा प्रतीत होता है, उसमें असाधारणता ज़रा भी नहीं, तब उनके हौसले बढ़ गये। कुछ लोगों ने हमीद को धर दबाया और देखते ही देखते उसके हाथ-पाँव कस दिये गये।

क्रमशः अर्जुननगर की वह ज़रा-सी दूकान आस-पास के लोगों के लिए थियेटर-हाल से बढ़कर दिलचस्पी का केन्द्र बन गई। लाल पगड़ियाँ भी वहाँ काफ़ी तादाद में पहुँच गईं और बहुत शीघ्र सारे लोग दूकान के बाहर कर दिये गये। हमीद के हाथों में कड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ जकड़ दी गईं। ख़ूनी रँगे हाथों पकड़ लिया गया था।

सादिक के मार्फ़त बहुत शीघ्र यह दुस्समाचार हमीद के बाप, चचा आदि को भी मिल गया। बीस-पचीस आदमी जमा हुए और वे सब एक साथ ग्वालमंडी के पुलिस-स्टेशन के सामने जा खड़े हुए। हमीद इसी थाने की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया था। वह तो चुप-चाप, गुम-सुम हतज्ञान-सा बैठा था, परन्तु थाने के बाहर उसका बूढ़ा बाप दहाड़ें मार मार कर रो रहा था। आस-पास के सभी मोहल्लों में भय का संचार हो आया था। लोगों ने गली-कूचों में घूमना-फिरना बन्द कर दिया और दस बजते न बजते उस संपूर्ण इलाक़े की सड़कों पर नीरवता और निर्जनता का साम्राज्य हो गया।

शहर भर को तो समाचार काफ़ी अतिरञ्जना के साथ ज्ञात हो गया, परन्तु यदि किसी से यह समाचार छिपाया गया था तो हमीद के घर की स्त्रियों से। उन्हें यही बताया गया कि किसी सवारी के नीचे आकर हमीद के एक दोस्त को चोट लग गई है और वे सब लोग उसका हाल-चाल पूछने अस्पताल जा रहे हैं।

रात आधी के क़रीब बीत चुकी थी। शुक्लपक्ष की चतुर्थी का चाँद, बहुत समय हुआ, अस्त हो चुका था। आसमान में बादल नहीं थे, परन्तु धुन्ध और धुआँ इतने ज़ोरों का व्याप्त था कि कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता था। सर्दी बहुत बढ़ गई थी। सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हमीद के पिता और रिश्तेदार अभी तक घर वापस नहीं आये थे। इस सर्दी और इस अन्धकार में एक नवविवाहिता युवती की दो आँखें उस कच्चे मकान की देहरी पर खड़ी होकर सामने की धूलिधूसरित और अँधियारी-सी सड़क की ओर देख रही थीं। इस सड़क पर अभी तक मिट्टी के तेल के लैम्प जलते हैं। ये लैम्प इस समय आसमान की धुन्ध और पृथ्वी के धुएँ के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर चुके थे।

सभी तरफ़ घोर नीरवता थी। कहीं दूर पर एक कुत्ता चीख़ती-सी आवाज़ में रो देता था। कहीं कुछ भी दिखाई न देता था। किसी अज्ञात आशङ्का से उस नारी की आँखों में आँसू भर आये थे और वह रह रह कर सिहर उठती थी।

आधी रात बीत गई है। उसका हमीद वापस नहीं लौटा। क्या जाने, वह कभी लौटेगा भी या नहीं।

——

आँच

लेखक, श्रीयुत श्रीनारायणलाल कटरियार

तप्त विवशता के आँसू से बुझा रहे यौवन की आँच।
ठहर-ठहर कर किन्तु अग्नि की लपटें क्यों उठती हैं नाच॥
तलफ रहा सदियों से टूटे अन्तर का कोना-कोना।
नहीं धधकने देता किस जादूगर का जादू-टोना॥
वे सहस्र वरदान बन गये हैं मिलकर भीषण अभिशाप।
हाय! पुण्य बन गये हिमालय के मिट-मिटकर दुस्तर पाप॥
आज उमंगें झुलस बन रहीं जीवन के निर्मम अपवाद।
तिल-तिल कर जल रहे प्राण बिन पावन घड़ियों की कर याद॥
दग्ध असंख्य फफोले उग-उग सुलगा रहे हृदय में आग।
फूट-फूट अँगड़ाई ले कलियों-सी चटक रहे हैं जाग॥
साँसों से कसती न कमायें तूफ़ानी निदाघ की आह।
थिरक रहीं ज्वालायें अधरों पर बन-बन कर करुण-कराह॥

——

उस पार

लेखक, श्रीयुत किशोरीरमण टन्डन

ले चलेगा क्या मुझे
इस पार से उस पार नाविक !

एक क्षीण प्रकाश देखो पार तम के दृष्टि आता,
हाँ, वहीं संकेत दे देकर मुझे कोई बुलाता,
दे मुझे कोई निमन्त्रण
और मैं इनकार कर दूँ;
बेरुखाई में किसी से इस तरह की कर न पाता,
है मुझे जाना ज़रूरी और मैं जाकर रहूँगा,
क्यों खड़ा निरुपाय, करता
व्यर्थ सोच-विचार नाविक !

'अगम तमसावृत निशा है' है नहीं परवाह मुझको,
'प्रबल-झंझा' कर न पायेगी कभी गुमराह मुझको,
और ये' लहरें लखो तो
सानुरोध बुला रही हैं,
(इस अथाह समुद्र की है आज लेनी थाह मुझको)
रख ज़रा विश्वास तू अपनी सुदृढ़तम बाहुओं का
छोड़ दे अपनी तरी औ'
मोड़ दे पतवार नाविक !

है हँसी मेरी उड़ाती आज यह दुनिया दिवानी,
यह जगत की सभ्यता है और यह इसकी निशानी;
जो बढ़े आगे हँसी पर
फबतियाँ दो-चार कसना
आज से क्या, आदि युग-युग से यही इसकी रवानी,
जो निडर हैं पग बढ़ाते और कायर लौट जाते,
ध्यान मत दे, गर मुझे कुछ
कह रहा संसार नाविक

चाहती दुनिया खुशामद, मैं खुशामद कर न पाता,
चाहती दुनिया चलूँ इस राह, मैं उस राह जाता,
मैं जगत का मत ग़लत
कहता, जगत मेरा बताता
मैं उठाता उँगलियाँ जग पर, जगत मुझ पर उठाता
फिर, बुरा कुछ मानने की कौन सी है बात इसमें--
सिद्ध निज मत कर सकें
सबको मिला अधिकार नाविक !

हैं बुलातीं मस्जिदों की उच्चतम मीनार मुझको,
और देते हैं निमन्त्रण मन्दिरों के द्वार मुझको,
किन्तु इनमें तथ्य क्या है
खूब इसको जानता हूँ,
याद आती है किसी की बात बारम्बार मुझको;
"धर्म का इतिहास काले कारनामों से लिखा है"
ले इसी की ओट, होते—
घोर अत्याचार नाविक !

है सुना उस पार बारोमास ही मधुमास होता,
प्यार का, मधुमय जवानी का, न कम उल्लास होता,
पाप कैसा, पुण्य कैसा
यह न कोई जानता है !
पा सकेंगे हम वहाँ चिर-शान्ति, यह विश्वास होता,
बस वहीं चलकर, अलग अपनी नई दुनिया बस लें,
फिर न आयेंगे कभी
उस पार से इस पार नाविक !

ले चलेगा क्या मुझे इस पार से उस पार नाविक !

मेरी कुल्लू-यात्रा

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

पंजाब में हिमगिरि-माला का जो भाग उत्तर-पूर्व में फैला हुआ है उसमें यों तो काश्मीर, मरी, एबटाबाद, शिमला, धर्मशाला और डलहौज़ी प्रभृति अनेक स्वास्थ्य-हितकर पहाड़ी स्थान हैं, जहाँ लोग गर्मियों में भ्रमणार्थ जाते हैं, परन्तु कुल्लू में कई ऐसी विशेषतायें हैं जो उनमें से किसी में भी नहीं। उन स्थानों में रहने का ख़र्च भी इतना अधिक है कि साधारण स्थिति का मनुष्य वहाँ नहीं जा सकता। केवल धनी लोग ही शिमला और काश्मीर का आनन्द ले सकते हैं। दूसरे, जिस उद्देश्य से मनुष्य पर्वतों पर जाता है वह उन स्थानों में जाने से बहुत कम पूरा होता है। साल भर निरन्तर काम करते रहने के बाद मनुष्य चाहता है कि कोलाहलमय संसार से दूर जाकर कहीं एकान्त में विश्राम करें। परन्तु रेल की निकटता के कारण सभ्यता के रोग—सिनेमा, थियेटर, फ़ैशन—वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। काश्मीर के श्रीनगर में तो लाहौर के समान ही धुआँ, धूलि और दुर्गन्ध भी है। फिर कुल्लू में जितना फल और जिस प्रकार का बढ़िया सेब होता है, उतना और वैसा किसी भी दूसरे पहाड़ी स्थान में नहीं होता। कुल्लू की उपत्यका लाहौर से कोई पौने तीन सौ मील दूर, उत्तर-पूर्व में, प्रकृति की शान्तिमयी गोद में विश्राम कर रही है। इसके भोले-भाले निवासी, हरे-भरे जंगल, तुषारमण्डित शैल-शृङ्ग, मनोहारी दृश्यावली, नाचती-गाती नदियाँ, शीतल जल और स्वच्छ सुगन्धित वायु सृष्टि-सौन्दर्य के उपासकों का मन बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

पहले कुल्लू पैदल चल कर या घोड़ा-खच्चर पर सवार होकर जाना पड़ता था। परन्तु अब कुछ वर्ष से 'काँगड़ा वैली रेलवे' बन गई है। लाहौर से पठानकोट तक 'नार्थ वेस्टर्न रेलवे' की बड़ी लाइन है। एप्रिल, मई और जून के महीनों में लाहौर से रोज़ सायंकाल ४ बज कर ३० मिनिट पर एक विशेष द्रुतगामी ट्रेन चलती है, जो उसी रात लगभग नौ बज कर ३ मिनिट पर पठानकोट पहुँच जाती है। पठानकोट से आगे योगेन्द्र-नगर तक २½ फ़ुट चौड़ी छोटी पटरी की रेल है। वह लाहौरवाली गाड़ी के यात्री लेकर उसी रात चल पड़ती है और दूसरे दिन सवेरे कोई ७ बज कर ४० मिनट पर योगेन्द्र-नगर पहुँच जाती है। योगेन्द्र-नगर से फिर ८ बज कर ४० मिनट पर आगे लारी चलती है। वह मण्डी होती हुई कोई ४ बज कर १० मिनट पर सायंकाल कुल्लू पहुँचा देती है। पठानकोट से योगेन्द्र-नगर १०० मील और योगेन्द्र-नगर से सुलतानपुर (कुल्लू) ७५ मील है। लारी का किराया प्रतियात्री पौने चार रुपये के लगभग है। जुलाई में वर्षा-ऋतु आरम्भ हो जाती है, इसलिए पठानकोट और योगेन्द्र-नगर के बीच रात को कोई गाड़ी नहीं चलती।

इसमें सन्देह नहीं कि रेल और मोटर-लारी ने कुल्लू पहुँचना बहुत आसान कर दिया है, परन्तु पर्वत-यात्रा का जो आनन्द और जो लाभ पैदल चल कर कुल्लू पहुँचने में है वह पार्सल की तरह रेल और लारी में 'बुक' होकर जाने में नहीं। मुझे तो वैसे भी मोटर-लारी से पहाड़ जाने में तकलीफ़ होती है। पेट्रोल की दुर्गन्ध और पहाड़ी सड़क के घूम-घुमाव से मुझे उलटी होने लगती है। इसलिए पैदल ही चलने का निश्चय किया।

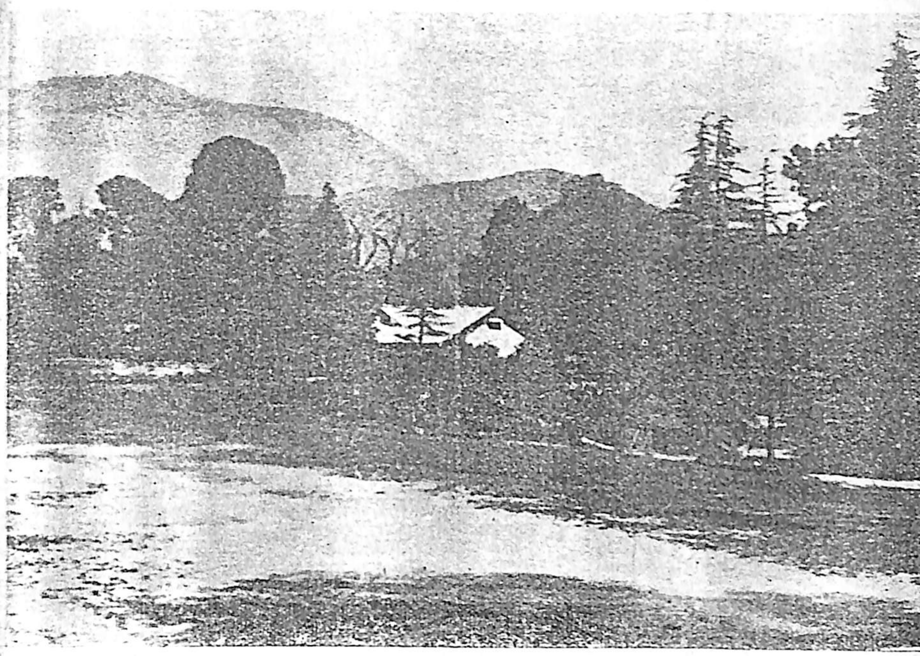
कुल्लू जाने के लिए तीन मार्ग हैं। एक तो उपरिलिखित लाहौर से रेल में पठानकोट होते हुए योगेन्द्र-नगर और वहाँ से लारी में मण्डी होते हुए कुल्लू। दूसरा शिमला से फागू, ठियोग, मतियाना, नारकण्डा, लूहरी, अनी, खनाग, शोजा, बनजार, लारजी, और बजौरा और भूईंतर होते हुए कुल्लू। यह मार्ग १२०½ मील लंबा है। मोटर-लारी नहीं चलती। पैदल या घोड़े पर सफ़र किया जाता है। शिमला से बिलासपुर के रास्ते मण्डी होते हुए भी कुल्लू जाते हैं। यहाँ भी मोटर नहीं चलता। शिमला से मण्डी ७ पड़ाव या ८४½ मील है, फिर मण्डी से कुल्लू ४२ मील है। कुल्लू का तीसरा रास्ता होशियारपुर से है। होशियारपुर से भी दो मार्ग हैं। एक होशियारपुर से ऊना, बड़ई, जाहू, गलपादेवी के रास्ते मण्डी। मण्डी होशियारपुर से लगभग ९४ मील है। पहले यहाँ भी मोटर-लारी से मुसाफ़िर जाते-आते थे, परन्तु अब रास्ता

ख़राब हो जाने से दो-एक वर्ष से मोटर का आना-जाना बन्द है। होशियारपुर से मण्डी का दूसरा मार्ग होशियारपुर से नगरोटा और ज्वालाजी होते हुए रानीताल के 'ज्वालामुखी-रोड-स्टेशन' पर 'काँगड़ा-वेली-रेलवे' की गाड़ी लेकर योगेन्द्र-नगर जा पहुँचना और वहाँ से लारी में मण्डी जाना है। होशियारपुर से ज्वालाजी-रानीताल तक लारी भी जाती है, परन्तु वर्षाकाल में वह कुछ मास बन्द रहती है।

हमने इस वर्ष इस पिछले मार्ग से ही कुल्लू जाने का निश्चय किया। हमारे दल में सब मिलाकर दस जन थे। मैं १७ अगस्त १९३७ को लाहौर से चलकर होशियारपुर के निकट अपने जन्म-स्थान पुरानी बसी में पहुँच गया। मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दर बाई, पुत्री गार्गी देवी और सेवक सूरजबली था। पुरानी बसी में पाँच-छः दिन ठहर कर यात्रा की तैयारी की। असबाब उठाने के लिए १=) रोज़ प्रति ख़च्चर के हिसाब से दो ख़च्चर लिये। खाने-पीने के लिए कुछ मीठा और नमकीन पकवान बनवाया और रक्षा के लिए 'सफ़ाजंग' अर्थात् एक विशेष प्रकार का फरसा लिया। रोटी बनाने के आवश्यक बर्तन, छतरियाँ, लालटेन, टार्च, मोमबत्तियाँ, मोमजामे, चपलियाँ और बल्लम भी पहाड़ी यात्रा के लिए साथ लेना आवश्यक था। २१ अगस्त की रात को जात-पाँत-तोड़क-मण्डल, लाहौर, के उपमंत्री श्रीयुत इन्द्रसिंह जी भी, अपनी भगिनी सुशीलादेवी और छोटे भाई नरेन्द्रपालसिंह को साथ लेकर मेरे पास पुरानी बसी पहुँच गये। इनके अतिरिक्त मेरा भतीजा रणवीरचंद और भतीजी उषादेवी भी हमारे साथ चलने को तैयार हो गई। इस प्रकार निक्काराम ख़च्चरवाले को मिलाकर हमारे दल में दस मनुष्य हो गये। सोमवार २३ अगस्त १९३७ को सायंकाल यह दल यात्रा के लिए निकल पड़ा। ५ मील तक रास्ता समतल था। आगे पर्वत के मुखालय में पहुँचने पर चोहाल नाम का पड़ाव मिला। वहाँ से पहाड़ आरम्भ हो जाता है। वहाँ एक टूटी हुई सरकारी सराय और दूध-मिठाई की तीन-चार साधारण-सी दूकानें हैं। इर्द-गिर्द टीलों पर मुसलमान गूजरों के घर हैं। चोहाल से सड़क ऊपर चढ़ने लगती है। यहाँ थोड़ा विश्राम करने के पश्चात् हम आगे चल पड़े और ४ मील चलकर रात्रि को मंगूवाल नामक पड़ाव पर जा पहुँचे।

तले हुए मीठे चद्दूरे अर्थात् ख़मीरी मोटी रोटियाँ हमारे साथ थीं। उन्हें खाकर थोड़ा-थोड़ा दूध पी लिया और चारपाइयाँ लेकर सो गये। यात्रा का पहला दिन था। लड़कियाँ पहले कभी इतना पैदल नहीं चली थीं, इसलिए आशा थी कि थक जाने के कारण ख़ूब नींद आयेगी, परन्तु चारपाइयों में पिस्सुओं के काटने से भली भाँति नींद न आई।

२४ अगस्त को सवेरे तड़के उठे। परन्तु असबाब बाँधने और ख़च्चरों पर लादने में कोई डेढ़ घंटा लग गया। मंगूवाल से ७ मील पर गगरेट नाम का पड़ाव है। सूर्योदय के साथ हम वहाँ जा पहुँचे। गगरेट से आगे सुआँ नदी मिली और ४ मील की दूरी पर अम्ब नाम का छोटा-सा नगर मिला। यहाँ थाना और स्कूल है, छोटा-सा बाज़ार भी है। अम्ब के राजा साहब का एक सुन्दर फलोद्यान है। यहाँ हमने नाशपाती और अमरूद लिये। अम्ब से आगे कोई डेढ़ मील पर एक पहाड़ी खड्ड मिला। यहाँ स्नानकर जल-पान किया। गगरेट से लेकर इस खड्ड तक एक छोटी-सी उपत्यका है। खड्ड के आगे फिर चढ़ाई शुरू हो जाती है। एक तो दोपहर का समय, ख़ूब धूप चमक रही थी, दूसरे यह चढ़ाई। मेरी स्त्री जो लाहौर में कभी दो मील भी न चलती थी, थकान से घबराने लगी। बड़ी मुश्किल से ज्यों-त्यों करके दोपहर को नहरिया के पड़ाव पर पहुँचे। यहाँ दो-चार दूकानें हैं। आटा-दाल और घी मिल जाता है। यहाँ पहुँचकर हमने भोजन बनाया और खा-पीकर विश्राम किया। नहरिया की दूकानें अम्ब से ४ मील हैं। सायंकाल यहाँ से चलकर आगे ४ मील पर जुआर नामक पड़ाव पर आ गये और रात में यहीं विश्राम किया। ये कोई पक्के पड़ाव नहीं। यहाँ कोई डाक-बँगला या रेस्ट-हाउस भी नहीं। दो-चार दूकानें हैं, जिनमें भोजन की सामग्री मिल जाती है। कभी कभी दूध भी मिल जाता है। दूकानदारों में दो पैसा किराये पर चारपाई मिल जाती है। भोजन बनाने के लिए निर्वाह के योग्य बर्तन भी दूकानदार ही दे देता है। मुसाफ़िर को अपने साथ बर्तन लाने की ज़रूरत नहीं। पीने का पानी दूर खड्ड से लाना पड़ता है। इसलिए कई परोपकारी धनियों ने जगह जगह पर पानी पिलाने के लिए प्याऊ रख छोड़े हैं।



[पालमपुर से पहाड़ और बर्फ़ से ढकी हुई चोटियों का दृश्य]

२५ अगस्त को सवेरे फिर चले। ४ मील चलने पर कलोहा नाम का पड़ाव मिला। जुआर से ३ मील आगे तक रास्ता बहुत अच्छा है। चील के हरे-भरे जंगल से होकर सड़क जाती है। परन्तु कलोहे से १ मील इधर से उतराई आरम्भ हो जाती है और सड़क टूटी-फूटी एवं पत्थरों से भरी हुई है। कलोहा नीचे खड्ड के किनारे पर बसा है। यहाँ रात को अच्छी ठंड हो जाती है। अगस्त के दिनों में भी दो कम्बल ओढ़कर भीतर सोना पड़ता है। यहाँ तीन-चार दूकानें, डाकघर और स्कूल हैं। यहाँ से बाईं ओर नादौन रियासत कोई १२ मील के अन्तर पर है। हम जिस समय कलोहा पहुँचे, उस समय लोग अभी जागे नहीं थे। हमारा मार्ग यहाँ से बाईं ओर था। पहाड़ में प्रत्येक पड़ाव को अमुक स्थान की दूकानें कहकर पुकारते हैं, जैसे नहरिया की दूकानें, जुआर की दूकानें और कलोहा की दूकानें। इसका कारण यह है कि पहाड़ के गाँव दो-दो तीन-तीन मील में फैले रहते हैं। गाँव के सब घर एक जगह इकट्ठे नहीं बने होते। एक घर से दूसरे घर का अन्तर, अनेक अवस्थाओं में, फ़र्लाङ्ग फ़र्लाङ्ग, दो दो फ़र्लाङ्ग तक का होता है। इसलिए यह कहना कठिन होता है कि अमुक गाँव यह है। सड़क के किनारे पड़ाव पर दो-चार दूकानें होती हैं। उन्हीं को उस गाँव की दूकानें कहते हैं।

कलोहा से आगे खड्ड पारकर फिर चढ़ाई आरम्भ हुई। कोई चार मील चलने पर फिर उतराई आई। कलोहा से ५ मील की दूरी पर गरली नाम का एक सुन्दर क़स्बा है। गरली से पहले एक पथरीला खड्ड मिलता है। खड्ड पारकर चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। तब गरली आती है। गरली का बाज़ार पक्का है। दूकानें भी काफ़ी हैं। यहाँ के एक परोपकारी सज्जन स्वर्गीय राय बहादुर मोहनलाल ने अपने ख़र्च से, कोई दो मील से पानी लाकर, सारे नगर में पानी के नल लगवा दिये हैं। पहाड़ी मैदानों को पानी देते हैं, परन्तु स्वयं पहाड़ों

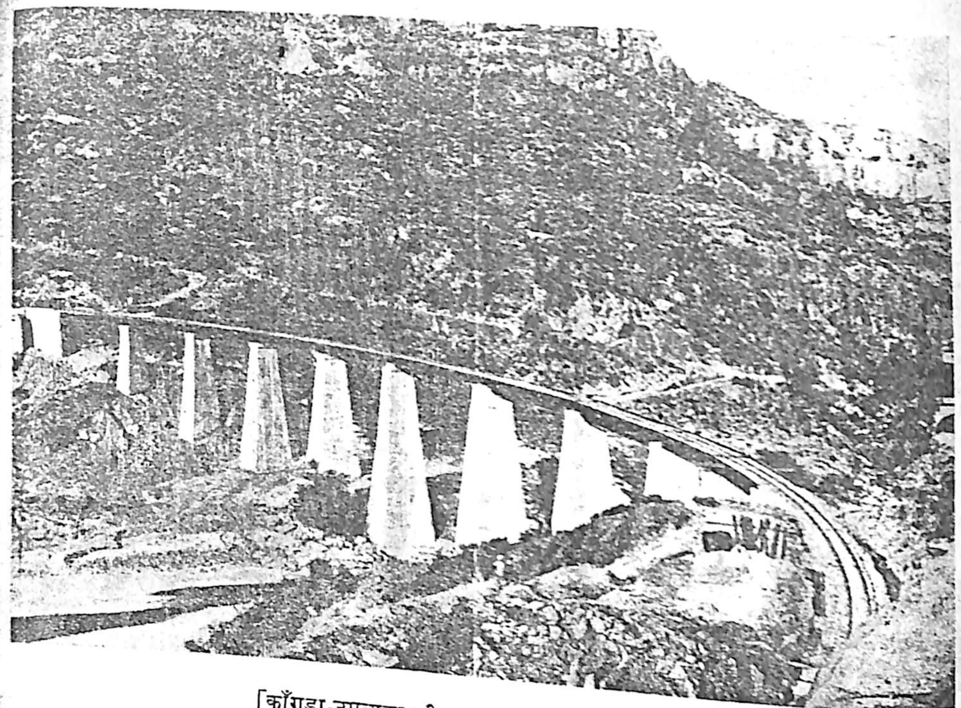
में पानी की बड़ी कमी रहती है। इन जल-नलों से गरली के लोगों को बड़ा आराम हो गया है। श्री मोहनलाल जी ने यहाँ स्त्रियों के लिए एक अस्पताल, एक सराय, एक हाई स्कूल और एक संस्कृत-पाठशाला भी बनवाई है। इन सब चीज़ों के कारण इस पहाड़ी प्रान्त में गरली सभ्यता का एक छोटा केन्द्र जान पड़ता है। यहाँ के लोगों ने शिमला आदि में जाकर व्यापार-द्वारा प्रचुर धन संग्रह किया है। यह बात उनके रहन-सहन और वेष-भूषा से ही प्रकट हो जाती है।

गरली से आगे दो मील तक रास्ता समतल और छायादार है। दो मील पर 'चम्बे का पत्तन' है। यहाँ व्यास नदी को नाव-द्वारा पार करना पड़ता है। हम कोई ७½ बजे सवेरे घाट पर पहुँच गये। परन्तु यहाँ आकर मालूम हुआ कि मनुष्य तो नाव में बैठकर पार जा सकेंगे, परन्तु नदी में अधिक जल हो जाने के कारण वर्षा-ऋतु में ख़च्चर-घोड़े पार नहीं ले जाये जा सकते। अब बड़ी कठिनाई हुई। आगे कैसे जायँ? मल्लाहों की मिन्नत-समाजत की, इनाम-इकराम देने को कहा कि किसी प्रकार बेड़े में बैठाकर ख़च्चर पार करा दो, परन्तु वे न माने। यहाँ नदी पार कराने का ठेका है। ठेकेदार ने मल्लाह नौकर रख छोड़े हैं। प्रत्येक मुसाफ़िर से नदी पार करने के लिए दो पैसे लिये जाते हैं। ख़च्चर-घोड़े के लिए दो आने के लगभग देना पड़ता है। बहुत कहने-सुनने पर ठेकेदार ने कहा कि अच्छा, आप १२ बजे तक यहाँ ठहरें। दोपहर के बाद नदी का पानी कम हो जाता है। तब मल्लाह बेड़ा (बड़ी नाव) डालकर आपके ख़च्चर पार करा देंगे। अब हम पानी के उतरने की प्रतीक्षा में नदी के घाट पर बैठे। बारह बज गये, एक बज गया, परन्तु पानी कम न हुआ। भूख सताने लगी। यहाँ घाट पर एक दूकान थी, पर उसके पास खाद्य पदार्थ कुछ भी नहीं था। उसे कहकर पकौड़े बनवाये। उन्हें खाकर जब पेट की ज्वाला कुछ शान्त हुई तब मैं और इन्द्रसिंह जी तो वहीं ठहर गये, शेष सबको नाव में नदी के पार भेज दिया, ताकि वे धीरे-धीरे पैदल चलते हुए अगले पड़ाव पर पहुँचें। हमारी धारणा थी कि तीसरे पहर पानी कम हो जायगा तो हम ख़च्चरों को पार कराकर तेज़ चलते हुए अगले पड़ाव पर पहुँच जायँगे। स्त्रियाँ धीरे-धीरे चलती हैं, इसलिए उनको पहले भेज देना ठीक समझा। परन्तु तीसरे पहर घटने के बजाय पानी और बढ़ने लगा। जान पड़ता था, ऊपर के पहाड़ों में वर्षा हुई है।

चम्बे के पत्तन पर नदी का पाट बहुत छोटा है और पानी बड़ी तेज़ी से बहता हुआ चट्टान से टकराता है। पानी के वेग से वहाँ नाव के बे-क़ाबू हो जाने का भय रहता है, इसलिए मल्लाह लोग पूर के समय वहाँ नाव विशेषतः बड़ी नाव, नहीं डालते। वहाँ से कोई पाँच मील नीचे जाकर गोपीपुर-देहरा नाम का एक स्थान है। वहाँ नदी का पाट बहुत चौड़ा हो गया है। वहाँ हर समय नाव चल सकती है। इसलिए लाचार होकर हमने ख़च्चरों को तो गोपीपुर के पत्तन (घाट) से नदी पार करने के लिए भेज दिया और आप कुछ कम्बल, दरियाँ और चादरें आदि कंधे पर लादकर सायंकाल ४ बजे नदी के पार हुए। अगला पड़ाव, ज्वालाजी, वहाँ से ६ मील है। अधिकांश रास्ता समतल और साफ़ है। जहाँ चढ़ाई है, वहाँ भी वह तीखी नहीं। हम दोनों द्रुतगति से चलते हुए कोई डेढ़ घंटे में ज्वालाजी जा पहुँचे। इस समय बूँदा-बाँदी हो रही थी। अठारह-बीस सेर का बोझ उठाकर द्रुतगति से पहाड़ पर चढ़ने के कारण रात को मुझे बड़ी थकावट मालूम हुई। टाँगों में खलियाँ पड़ गईं।

ज्वालामुखी—ज्वालाजी हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ चट्टान में कई जगह दरारें हैं। जिस चट्टान में ये दरारें हैं उस पर एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर के कलश पर सोने का मुलम्मा है। मन्दिर के भीतर एक कोने में सबसे बड़ी अग्निशिखा है। इसको 'हिङ्गलाज' कहते हैं। मन्दिर के अन्दर एक बड़ा हवनकुण्ड है, जिसमें अनेक छोटे-छोटे छिद्रों से दाह्य वायु निकलती है। मन्दिर के बाहर चारों ओर संगमरमर का सुन्दर फ़र्श है। एक ओर पानी का बड़ा कुण्ड है, जिसमें हर वक्त ऊपर से पानी गिरता रहता है। कुण्ड के ऊपर छत है।

प्रधान मन्दिर से थोड़ा ऊपर पानी का एक छोटा-सा डबरा है। इसे 'गोरख टिब्बी' अर्थात् गुरु गोरखनाथ का टीला कहते हैं। यहाँ ठंडे पानी में से गैस (वायु) के बुदबुदे इस प्रकार निकलते हैं जैसे वह उबल रहा हो। डबरे में जहाँ पानी है उससे थोड़ा ऊपर दीवार में



[काँगड़ा-उपत्यका की एक नदी पर रेलवे का पुल]

दाह्य वायु निकलती है। उसको जब दियासलाई दिखाई जाती है तब वह लौ के रूप में जलने लगती है।

मन्दिर से कोई आधा मील ऊपर अर्जुन नागा का मन्दिर है। मन्दिर के नीचे खड्ड में जल के दो नमकीन झरने हैं। मन्दिर में कोई देव-मूर्ति नहीं। इस ज्वलन्त अग्नि-शिखा की ही पूजा होती है।

ज्वालाजी एक छोटा-सा क़स्बा है। यहाँ अँगरेज़ी मिडिल स्कूल और अस्पताल भी है। हलवाइयों की भी अनेक दूकानें हैं। फ़र्श पत्थर का है। यहाँ बन्दरों का बड़ा भारी उत्पात है। ये खाने-पीने की वस्तुएँ और वस्त्र आदि उठा ले जाते हैं।

ज्वालाजी में मुसाफ़िरों के ठहरने के लिए कोई सराय अथवा धर्मशाला नहीं है। यात्री लोग प्रायः पंडों के मकानों में ही ठहरते हैं और वहाँ आराम भी अच्छा रहता है। हम भी यहाँ श्री रोशनलाल जी के मकान में ठहरे। श्री रोशनलाल एक सुपठित और मिलनसार नवयुवक हैं। गत वर्ष ही इनसे मेरा परिचय हो गया था। मैंने इनसे स्पष्ट कह दिया था कि मेरा उद्देश देशाटन-द्वारा केवल ज्ञान-वृद्धि तथा मनोरञ्जन करना है। मैं जाति-भेद का भी विरोधी हूँ। यदि आप एक मनुष्य या अधिक से अधिक एक हिन्दू के नाते से मुझे अपने यहाँ ठहराने को तैयार हों तो मैं ठहर सकता हूँ। मेरी धारणा थी कि कट्टर-पंथी पण्डा-पुरोहित जात-पाँत-तोड़क का नाम सुनकर ही छिः छिः चिल्ला उठेगा, परन्तु श्री रोशनलाल जी का सौजन्य देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। वे बोले, कोई बात नहीं। आपके विचार कुछ भी हों। आप मेरे यहाँ ही विश्राम कीजिएगा। वहाँ कोई धर्मशाला नहीं, जहाँ आप ठहर सकें। मैं वैसा लालची पण्डा नहीं, जो केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही सब काम करता हो। उनके इन उदार विचारों से परिचित होने के कारण ही मैंने अपनी स्त्री से कह रक्खा था कि यदि आप हमसे पहले ज्वालामुखी पहुँच जायँ तो श्री रोशनलाल जी के यहाँ

जाकर डेरा डालना। जब मैं और इन्द्रसिंह जी पीछे से पहुँचे तब मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि रोशन-लाल जी ने उनके ठहरने के लिए एक सुखद स्थान का प्रबन्ध कर दिया था।

रात्रि को रोशनलाल जी के बड़े भाई श्री भैरवदत्त जी से भेंट हुई। इनके गुणों का मुझे पहले पता न था। वार्तालाप करने पर मालूम हुआ, आप 'सरस्वती' के पुराने ग्राहक हैं। आपने अपने पुरुषार्थ से लड़कियों के लिए एक पाठशाला और लड़कों के लिए एक संस्कृत-विद्यालय खोल रक्खा है। आप अच्छे सुविज्ञ और स्वदेश-भक्त सज्जन हैं। इन दोनों भाइयों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

कहते हैं, जब सम्राट् अकबर ज्वालामुखी देखने आया तब उसने इन दरारों के मुँह पर लोहे के तवे लगाकर इनको बन्द कर देने की चेष्टा की। परन्तु जब इसमें उसे सफलता न हुई तब उसने एक नहर बनवाकर इन दरारों पर पानी डाला। परन्तु इससे भी वे अग्नि-शिखायें न बुझीं। वे एक जगह छोड़कर दूसरी जगह फूट निकलीं।

मन्दिर के अहाते में एक ओर सिक्खों का 'ग्रन्थ साहब' भी खुला रहता है। सुना है, इसके 'भाई' को मन्दिर की भेंट में से कुछ अंश मिलता है। सिक्खों के कुँवर नौनिहालसिंह ने मन्दिर को एक रजत-मण्डित सुन्दर दरवाज़ा भेंट किया था। यह अब तक मौजूद है और शिल्पविद्या की दृष्टि से एक दर्शनीय वस्तु है।

२६ अगस्त को हमने ज्वालाजी में ही विश्राम किया। सवेरे आठ नौ बजे के लगभग निक्काराम भी ख़च्चर लेकर गोपीपुर के पत्तन से आ पहुँचा। इस दिन यहाँ बूँदा-बाँदी होती रही।

२७ अगस्त को कोई चार बजे सवेरे उठकर आगे चलने को तैयार हुए। एक तो ख़च्चरवाले ने असबाब बाँधने में एक घंटा ले लिया, दूसरे जब चलने लगे तब ख़च्चर बीमार हो गया। दाना खाते समय उसने ज़ोर से भीतर साँस खींची, कोई चना उसके तालू में या गले में जाकर फँस गया। ख़च्चरवाला चिल्लाया कि अब मेरा ख़च्चर मरा। हमें भी बड़ी व्याकुलता हुई कि ख़च्चर मर गया तो आगे कैसे जा सकेंगे। किसी ने कहा, ख़च्चर को घी दो तो ठीक हो जायगा। परन्तु सवेरे तड़के कोई दूकान न खुली थी। अन्ततः एक दूकानदार को जाकर जगाया और उससे घी लिया। परन्तु घी देने से पहले ही अपने आप ख़च्चर स्वस्थ हो गया और हम कोई साढ़े पाँच बजे चल पड़े।

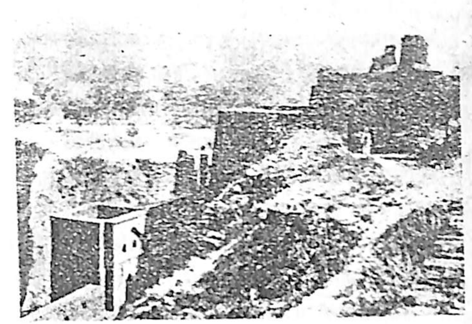
ज्वालामुखी से आगे साफ़ सुन्दर सड़क है। यहाँ से १२ मील के अन्तर पर रानीताल का पड़ाव है। हम वहाँ कोई दस बजे पहुँच गये। वहाँ हलवाई की एक साधारण सी दूकान है। एक सराय भी है। हम चारपाई बिछाकर सराय में बैठे ही थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा। खाने के लिए यहाँ पेड़ों और दूध के सिवा और कुछ न मिला। जब पानी का बरसना बन्द हुआ तब हम फिर आगे चल पड़े। ज्वालाजी से रानीताल तक मोटर आता है। यहाँ से कोई एक मील के अन्तर पर 'काङ्गड़ावेली-रेलवे' का 'ज्वालामुखी-रोड' नाम का स्टेशन है। यहाँ पहुँचकर यह निश्चय हुआ कि स्त्रियों और बच्चों को तो रेल में बैठा दिया जाय और मैं तथा इन्द्रसिंह जी ख़च्चर-वाले को लेकर पैदल काँगड़ा पहुँचें। 'ज्वालामुखी-रोड स्टेशन' से 'काँगड़ा-स्टेशन' १० मील है। गाड़ी साँझ को आनेवाली थी। अतएव बच्चों को स्टेशन पर छोड़ हम दोनों पैदल चल पड़े। सड़क बान-गङ्गा नदी के साथ साथ गई है और चढ़ाई ही चढ़ाई है। रास्ते में बाथू नाम की एक उपनदी बान-गङ्गा में आकर गिरती है। इनके संगम पर पटरी डालकर रेलवे का पुल बनाया गया है। वह बड़ा ही सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। दोनों ओर ऊँचे पर्वत हैं, बीच में खड्ड में सौ फ़ुट ऊँचे स्तम्भ खड़े करके पुल बनाया गया है, वैसे पैदल सड़क बहुत चक्कर काटकर आती है, परन्तु इस पुल ने रेल का रास्ता बहुत छोटा कर दिया है। सायंकाल हम 'काँगड़ा-स्टेशन' पर जा पहुँचे। हमारे साथी रेल-द्वारा हमसे थोड़ी ही देर पहले पहुँचे थे।

काँगड़ा-स्टेशन पर कोई मुसाफ़िरख़ाना नहीं है। नया शहर यहाँ से कोई तीन मील दूर है। पुराना काँगड़ा सन् १९०६ के भूचाल में नष्ट हो गया था। वह स्टेशन से कोई डेढ़ मील बान-गङ्गा के पार है। स्टेशन से पहले नीचे उतरना पड़ता है, फिर बान-गङ्गा के पुल-द्वारा पार कर पत्थरों की सीढ़ियों से कोई पौन मील ऊपर चढ़ना पड़ता है। उतरना-चढ़ना काफ़ी श्रमसाध्य कार्य है। स्टेशन पर बनिये की केवल एक छोटी-सी दूकान है।

...के पास आटा-दाल तो था, परन्तु घी नहीं था। इस-... घी, तरकारी और कुछ मिठाई हमें पुराने काँगड़े से ...नी पड़ी। स्टेशनमास्टर श्रीयुत साधुराम बड़े सज्जन ...ष्य थे। उन्होंने हमारे सोने का प्रबंध कर दिया और ...ई बनाने के लिए एक कमरा दे दिया। पहाड़ में ...काल में सूखा ईंधन बहुत कम मिलता है। गीले ...न से रसोई बनाने में कष्ट तो हुआ; परन्तु इतनी यात्रा ...ने के कारण भूख ख़ूब लग रही थी, इसलिए साधारण-भोजन करके भी इतना आनन्द आया कि वह सब कष्ट ...ल गया।

मैं पहले कह चुका हूँ कि पहाड़ में पीने के पानी की ...ड़ी कमी रहती है। एक तो नदियों और खड्डों का पानी ...ग गंदा कर देते हैं, उनके किनारे मल-मूत्र कर देते हैं, ...रे खड्ड और नदी इतनी नीचे होते हैं कि वहाँ से पानी ...ने में पर्याप्त श्रम पड़ता है। इसलिए 'काँगड़ा-वेली-...लवे' के स्टेशनों पर रेलवे विभाग ने लोहे की बड़ी बड़ी ...ङ्कियाँ बना रक्खी हैं। वे पठानकोट या नीचे के किसी ...रे स्टेशन से रेल में पानी लाकर भर दी जाती हैं। ...साफ़िर और स्टेशन के कर्मचारी नहाने-धोने और पीने ...लिए वहीं से पानी लेते हैं। प्रत्येक स्टेशन पर वाटर-...र्क्स का प्रबंध किया जाता तो बड़ा ख़र्च पड़ता।

काँगड़ा उपत्यका का मनोहारी दृश्य—२८ अगस्त ...ो सवेरे पानी बरस रहा था कि हम सब ८ बजे को ...ाड़ी में योगेन्द्र-नगर के लिए रवाना हो गये। निक्के ...ो ख़ाली ख़च्चर लेकर योगेन्द्र-नगर पहुँच जाने को ...ह दिया। 'काँगड़ा-वेली-रेलवे' अतीव शोभायुक्त ...ुन्दर पहाड़ी दृश्यों में से होकर जाती है। भारत में कोई ...ी रेल-पथ हिमाच्छादित गिरिमाला से इतना निकट नहीं ...है, जितना यह रेल-पथ है। बहुतेरे स्थानों पर पन्द्रह ...हस्र फ़ुट से भी अधिक ऊँचे शैल-शिखर इस रेल-पथ से ...स मील से भी कम अन्तर पर रह जाते हैं। ये शैल-शृङ्ग ...र्ष में छः मास से भी अधिक काल तक तुषार से ढँके रहते हैं। उपत्यका में से होकर दौड़ती हुई गाड़ी यात्री के सामने एक अद्‌भुत और मनोरम दृश्य उपस्थित करती है। नीचे की पहाड़ियाँ एक-दूसरे के बाद ऐसी उठती दिखाई देती हैं, मानो सागर की लहरें एक-दूसरे के पीछे भागती और खेलती चली जाती हों। दृष्टि बिना किसी



[काँगड़ा के क़िले का मोर्चा]

विघ्न-बाधा के एक ऐसी गिरिमाला पर जा पड़ती है जो उसके अंचल में फैली हुई उपत्यका से तेरह सहस्र फ़ुट की ऊँचाई तक उठती चली गई है। प्रकृति की नानाविध दृश्यावली का ऐसा आनन्ददायक एवं भव्य मिलान बहुत कम देखने को मिलता है। नीचे मैदान है जो ग्राम्य-सौन्दर्य तथा शान्ति का चित्र उपस्थित करता है। खेतों में फ़सलें खड़ी लहलहा रही हैं। इन भूमियों का सिंचन उन नहरों-द्वारा होता है जो चिरस्थायी हिमराशि के नीचे-नीचे बह कर आती हैं। उद्यानों और फलदार पेड़ों के बीच जगह जगह ग्रामीण लोगों के घर हैं। हमारी दृष्टि इस सुन्दर दृश्य से उठकर उन भव्य पर्वतों पर पड़ती है जिनकी घाटियों में नाले और जल-प्रपात बह रहे हैं। इन पर्वतों के पार्श्व सागौन के जंगलों से ढँके हुए हैं। ऊपर चील के वृक्ष उदास खड़े देख पड़ते हैं। सबसे ऊपर ऐसे स्तर हैं जो या तो हिमावृत हैं या प्रस्तर के ऐसे शंक्वाकार टीले हैं जिनके बिलकुल सीधा खड़ा होने के कारण उन पर हिम ठहर नहीं सकती। ट्रेन सीधे मार्ग पर जा रही हो या घाटियों में चक्कर लगा रही हो या टीलों की चढ़ाई में किसी ऐसी चट्टान के साथ साथ लगी जा रही हो जिसमें से होकर एक नदी प्रचण्ड गति से सुदूर मैदानों पर किसी बड़े नद में निरन्तर गिर रही हो, प्रत्येक अवस्था में गाड़ी की खिड़की से झाँक कर देखते ही सामने उत्तर-दिङ्मण्डल पर एक भव्य और उल्लास-जनक दृश्य ही दिखाई देगा। वहाँ पर्वतों की तुषार-मण्डित चोटियाँ भास्कर की रश्मि-माला से जगमगा रही हैं, दृष्टि

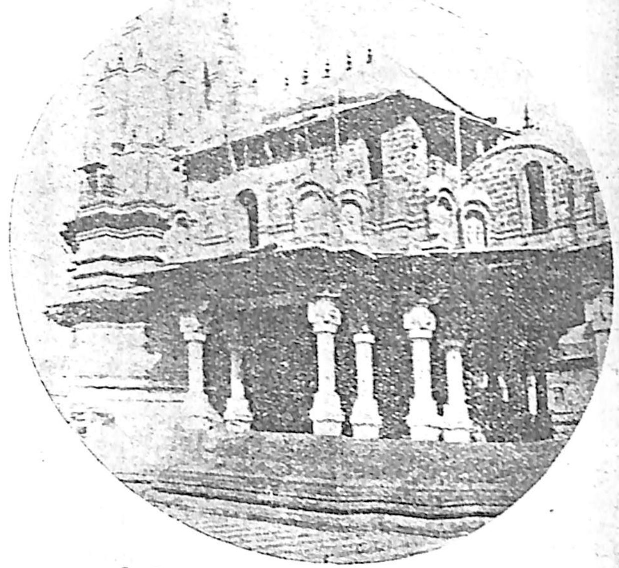
जहाँ तक काम करती है उनकी पंक्ति पूर्व से पश्चिम तक फैलती चली जाती है। प्रातःकाल के सुहावने समय में यदि उपत्यका का अवलोकन किया जाय तो गिरिमालायें आश्चर्य-जनक और सुन्दर देख पड़ती हैं। इस चित्ताकर्षक और नयनाभिराम प्राकृतिक चित्र के अंचल में गेहूँ अथवा धान की शस्यश्यामला लहलहाती हुई खेतियाँ अद्भुत शोभा देती हैं। जब यह रेल-पथ दक्षिण की ओर एक बड़ा चक्कर खाकर पुनः उत्तराभिमुख हो धवला धारा के निकट पहुँचता है और पर्वत-शिखर प्रतिक्षण ऊँचे होने लगते हैं और जब दिन का प्रकाश वस्तुओं को निकट कर देता है उस समय यात्री को निश्चय हो जाता है कि प्रकृति का यह अचल संसार का एक अतीव सुन्दर दृश्य है।

काँगड़ा में हिमाच्छादित गिरिमालायें सारे दृश्य पर छाई हुई देख पड़ती हैं। बड़े-बड़े पर्वत अतीव निर्भीक भाव से अपने अभिमान-पूर्ण सिर आकाश की ओर उठाये चले जाते हैं। उनके पार्श्व में भयङ्कर दरारें हैं। ये पर्वत कुछ तो दूरी के कारण और कुछ शान्ति एवं मुस्कराती हुई घाटी के बीच में आ पड़ने के कारण मध्यम और धुँधले दीखते हैं। पालमपुर और बैजनाथ में तो प्राकृतिक दृश्य और भी अधिक भव्य हैं, क्योंकि यहाँ से गिरिमाला छः-सात मील दूर है और यहाँ केवल अंचल की पहाड़ियों की एक दीवार खड़ी है। यदि यह किसी दूसरी जगह होती तो बड़े-बड़े पहाड़ों में गिनी जाती। कारण यह कि इसकी कोई कोई चोटी आठ सहस्र से दस सहस्र फ़ुट तक ऊँची है। यह दीवार हिम और संग ख़ारा की प्राकृतिक प्राचीर को यात्री की आँख से ओझल किये हुए है। जब रेलगाड़ी बैजनाथ स्टेशन से आगे निकलती है तब वातावरण बदलने लगता है। यहाँ रेल-पथ मण्डी-राज्य में प्रवेश करता है। जिन चोटियों से यात्री के नेत्र परिचित हो चुके हैं वे अब पश्चिम की ओर रह जाती हैं। इस स्थान पर ट्रेन और ऊँचे ऊँचे पर्वतों के बीच एक और पहाड़ी आ पड़ती है। यह जंगल से ढँकी हुई है। यहाँ यात्री को गाड़ी की दक्षिणी खिड़की से एक सुरम्य एवं सुविस्तृत मैदान दृष्टि-गोचर होता है। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। इस मैदान से आगे निचले पहाड़ों की बहुत-सी पंक्तियाँ दिखाई देती हैं और उनके साथ ही बहुत-सी रजत-रेखायें भी दृष्टिगोचर होती हैं, जो किसी सुदक्ष चित्रकार की तूलिका का फल जान पड़ती हैं। ये रजत-रेखायें ... नाले और खड्ड हैं जो अपने प्रलयंकरी वेग के साथ ऊँचे पहाड़ों से नीचे उतरती चली आती हैं जहाँ अभी मेघ बरस चुके हैं। ये खड्ड नदी में और नदी से सागर में अपनी सत्ता को खो देने के आमोद के लिए नाचते, कूदते और उछलते हुए बराबर चले जा रहे हैं। इसके अनन्तर एक मोड़ पर आकर सहसा पहाड़ियों की पंक्ति भङ्ग हो जाती है और उसके बीच से कुल्लू के ऊँचे ऊँचे पर्वत दृष्टिगोचर होते हैं। इन पर्वतों की नई चोटियों और बर्फ़ानी मैदानों से सूर्य की दक्षिणी रश्मिमाला का इतना तीक्ष्ण प्रतिबिम्ब पड़ता है कि आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। पठानकोट से योगेन्द्र-नगर को जाते हुए, चाहे हम पहाड़ी पर हों या मैदान में, पग पग पर काँगड़ा के प्राकृतिक दृश्य इतने सुन्दर और भव्य हैं कि दर्शक आश्चर्य और स्तुति के भाव-सागर में लीन होकर अवाक् रह जाता है। काँगड़ा उपत्यका के पहाड़ और घाटियाँ, नदियाँ और चट्टानें, हिमाच्छादित शैल-शिखर और वन-वैभव ये सब मिल कर यात्री के मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यहाँ खेतियाँ केसरिया वस्त्र धारण किये पर्वतों की गोद में लह-लहा रही हैं और अलबेली नदियाँ तथा मधुर कण्ठवाले पक्षी गान-नृत्य में लीन हो नवागत दर्शक को अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करते हैं।

रेलगाड़ी में हमें अनेक प्रकार के लोग मिले। एक मुसलमान सज्जन पहाड़ में जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करने जा रहे थे। बात-चीत करने पर मालूम हुआ, आप लाहौर के रहनेवाले हैं, शिक्षा बहुत कम है। दो-चार टोटके हाथ आ गये हैं, उन्हीं से अच्छा पैसा कमाया है। उन्होंने बताया कि मैं दमा की दवाई मुफ़्त बाँटता हूँ। वह एक नमक है। आप चाहें तो ख़ुद भी बना सकते हैं। मैंने पूछा, किस तरह। उन्होंने बताया—मदार (आक) के पाँच सेर फूल लो। उनमें से आधे मिट्टी के एक बर्तन में रखकर उन पर आधी छटाँक नमक की डली और उसके ऊपर बाक़ी के ढाई सेर फूल डालकर उस बर्तन का मुँह मिट्टी से बन्द कर दो। तब एक गड्ढा खोद कर उसमें डेढ़ मन उपले डालो। इनमें वह मिट्टी का बर्तन इस प्रकार रक्खो कि आधे उपले उसके नीचे रहें और आधे ऊपर। तब उपलों को आग दे दो। ... सब जलकर राख हो जायँ तब बर्तन को ...लकर खोल लो। नमक की डली की ... हो जायगी। यह नमक एक चावल ... रोज़ मक्खन के साथ दो। सात मात्रा खाने ... दमा दूर हो जायगा। इस प्रकार बातें ...ते, पार्वत्य दृश्यों का आनन्द लेते, और ...ों की बहार देखते हम कोई १२ बजे दोपहर ... योगेन्द्र-नगर जा पहुँचे।

योगेन्द्रनगर—योगेन्द्रनगर काँगड़ा वैली ...वे का अन्तिम स्टेशन है। यह नई बस्ती है। ...टा-सा बाज़ार है। यहाँ आर्य-समाज-मन्दिर, ...नातन-धर्म-सभा-मन्दिर और सिक्खों का गुरु-...रा है। यात्री इन्हीं में से किसी एक में ठहर ...ते हैं। हम आर्य-समाज-मन्दिर में ठहरे। भोजन का प्रबन्ध होटल में हो गया। समाज-मन्दिर एक सुन्दर स्थान है। इसके अहाते में एक पहाड़ी नहर बहती है। इससे नहाने और ...पड़े धोने का अच्छा सुभीता है।

योगेन्द्रनगर की प्रसिद्धि इसके बिजली-घर के कारण है। बाज़ार से कोई डेढ़ मील की दूरी पर शीनन नाम की एक छोटी-सी बस्ती है। वहाँ पंजाब-सरकार ने पानी से बिजली पैदा करने के लिए एक बहुत बड़ा कारख़ाना बनाया है। यह स्थान मण्डीराज्य के अन्तर्गत है। यहाँ उहल नाम की एक नदी से पानी लाकर बिजली तैयार की जाती है। जिन बर्फ़ानी इलाक़ों का पानी बहकर इस नदी में आता है वे ६,००० से लेकर १६,००० फ़ुट की विभिन्न ऊँचाइयों पर हैं। इनका सामूहिक क्षेत्रफल लगभग ५५० वर्गमील है। जिस पानी की आवश्यकता विद्युच्छक्ति उत्पन्न करने के लिए है वह ६,००० फ़ुट की ऊँचाई पर से एक ऐसी सुरङ्ग में प्रविष्ट किया गया है जिसका व्यास ९ फ़ुट है। यह सुरङ्ग ढाई मील तक पर्वत के भीतर ही भीतर चली गई है। इसके बाद यह पानी लोहे के बड़े बड़े दो नलों में से होकर १,८०० फ़ुट की ऊँचाई से 'पावरहाऊस' में जाकर गिरता है। इससे ४६,००० किलोवाट विद्युच्छक्ति उत्पन्न होती है। यह इस विशाल बिजली-घर के निर्माण की प्रथम अवस्था है।



[काँगड़ा में देवी के मंदिर का भीतरी दृश्य]

प्रकृति ने इस स्थान पर हाइड्रो-इलेक्ट्रिक-पावर की उत्पत्ति के लिए ऐसी विशेषतायें प्रदान कर रक्खी हैं कि एक छोटा-सा बाँध लगा देने से इस बिजली की मात्रा बढ़कर ७०,६०० किलोवाट तक पहुँच जायगी। यह इस कारख़ाने की दूसरी अवस्था कहलायगी।

ज्यों ज्यों कालान्तर में अधिक विद्युच्छक्ति की आवश्यकता पड़ेगी वही पानी जिसका उपयोग पहले पावरहाऊस में हो चुका है, तीन मील लम्बी नहरद्वारा ले जाकर एक स्थान पर १,२०० फ़ुट की उँचाई से दूसरे पावरहाऊस में गिरा दिया जायगा। इससे और ४८,००० किलोवाट विद्युच्छक्ति प्राप्त होगी।

अंदाज़ा लगाया गया है कि इस योजना के संपूर्ण हो जाने से पञ्जाब के ४७ नगरों को ५ पाई प्रति यूनिट के हिसाब से विद्युच्छक्ति दी जा सकेगी। बिजली की इस प्रचुरता से पञ्जाब के इन नगरों में कृषि एवं उद्योग-सम्बन्धी आवश्यकतायें भी पूरी हो जायँगी। इससे २५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी।

[असमाप्त

कायाकल्प

लेखक, श्रीयुत श्रीकान्त शास्त्री

महामना मालवीय जी ने कायाकल्प-द्वारा कहाँ तक स्वास्थ्य और यौवन-लाभ किया है यह विषय अभी विवादग्रस्त है। तथापि इतने प्रसिद्ध व्यक्ति पर यह प्रयोग होने से समस्त देश का ध्यान इस चिकित्सा-पद्धति की ओर आकृष्ट हुआ है। कायाकल्प क्या है और क्यों तथा कैसे किया जाता है यह इस लेख में बताया गया है।

इधर हाल में प्रयाग में पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर स्थित शिव-कोटि नामक स्थान में जो स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रयोग हुए हैं उन पर देश-विदेश के वैज्ञानिकों की तथा भारतीय जनसाधारण की दृष्टि लगी हुई है। शरीर-शास्त्र के प्रेमी इन्हें कौतूहल और जिज्ञासा के भाव से देख रहे हैं, त्रस्त रोगिसमूह एक आशा-भरी निगाह से देख रहा है, तथा भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के धनीधोरी 'अहोरूपम-हो ध्वनिः' के नारे बुलन्द कर रहे हैं और प्रबन्ध कर रहे हैं अपने पुराने ग्रन्थों में फिर से नेफ्थलीन की गोलियाँ रख देने का। इन प्रयोगों के सम्बन्ध में साधारण जनता का दृष्टि-कोण भी भिन्न-भिन्न है। यदि एक की राय में पूज्य मालवीय जी ही क्या, हर एक आदमी शारीरिक और मानसिक परिश्रम छोड़कर 'कंप्लीट रेस्ट' ले तो उसके स्वास्थ्य में बहुत परिवर्तन हो सकता है, तो दूसरे की सम्मति में पाश्चात्य विज्ञान को ही अब भारत से गर्दनिया देकर निकाल देना चाहिए, तीसरे की रायशरीफ़ में पर्याप्त प्रकाश और साफ़ हवा का सिद्धान्त ही हवा हो गया है। इत्यादि-इत्यादि। परन्तु आयु के सम्बन्ध में आयुर्वेद का सिद्धान्त तो वास्तव में यही है कि—

'इहाग्निवेश भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते।' अर्थात् बुढ़ापा भी दूर किया जा सकता है और आयु भी बढ़ाई जा सकती है। इधर शिवकोटि से भी जितने समाचार प्राप्त हुए हैं उनसे बहुत कुछ इस बात का समर्थन ही होता है। पूज्य मालवीय जी महाराज की नेत्र-शक्ति बढ़ गई है, चेहरे की झुर्रियाँ मिट गई हैं, शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त स्मरण-शक्ति में सुधार हुआ है तथा स्फूर्ति और उत्साह में भी वृद्धि हुई है। यह निश्चय है कि पूज्य मालवीय जी महाराज जैसे श्रद्धास्पद और ख्यातनामा महापुरुष के द्वारा किये गये प्रयोगों का लाभ उन्हीं तक सीमित नहीं रह सकता तथा इसके और भी कई लाभ होंगे। पहला लाभ तो नई रोशनी से रोशन दिमाग़वालों का ध्यान भी इस प्राचीन विज्ञान की ओर आकृष्ट होगा। वे अपने देश के प्राचीन वैज्ञानिकों को सराहेंगे और उनके श्रम से लाभ उठाने की इच्छा करेंगे। पूज्य मालवीय जी को भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उद्धार के श्रेय के अतिरिक्त भारतीय विज्ञान की सैकड़ों वर्ष से लुप्त एक परिपाटी में फिर से प्राण फूँक देने का अक्षय यश प्राप्त होगा और तीसरा स्वास्थ्य-लाभ तो घाते में होगा ही।

उपर्युक्त कल्प के प्रयोग-काल में ही अन्य लोगों ने भी देखा-देखी कुटियाँ तैयार कर डाली हैं। आशा है कि भविष्य में और भी शीघ्रता तथा बाहुल्य से 'रसायन-कुटी' तैयार होंगी। यह सबकी सब योग्य वैद्यों के निरीक्षण में ही संचालित होंगी और जनसाधारण इनसे लाभ ही उठायेंगे, इसमें बहुत सन्देह है। परन्तु इस बासी कढ़ी में उबाल ला देनेवाले मालवीय जी महाराज ही हैं। यदि आज इस दिशा में आप स्वयं मार्गदर्शक न बने होते तो कोई भी कुटी स्थापित करने का साहस न कर सकता था। यदि कोई मनचला कभी दुःसाहस करता भी और लोगों को कुटी में बन्द करके रसायन का सेवन कराता तो उसे 'रसायन-कुटी' न कहकर लोग 'बेक़सूरों का स्लाटर हाउस' क़रार देते या कलकत्ते की कालकोठरी बताते। यह कायाकल्प क्या है, कैसे किया जाता है, क्यों किया जाता है इत्यादि प्रश्नों पर पाठकों की जिज्ञासा-निवृत्ति के लिए हम कुछ प्रकाश डालते हैं।

समाचार-पत्रों के पढ़नेवाले पाठक यह भली भाँति जानते होंगे कि आज-कल के विदेशी वैज्ञानिक बुढ़ापा और मृत्यु इन दोनों को दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी विज्ञानशालाओं में इसके लिए नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। सतत परिश्रम और सच्ची लगन के फल-स्वरूप उन्हें लोगों को अपने प्रयोगों में बहुत कुछ सफलता भी मिली है। यदि एक वैज्ञानिक बन्दर के 'ग्लैन्ड' लगाकर आदमी को जवान बना देता है तो दूसरा बर्फ़ में गाड़कर बुढ़ापा भगा देता है और तीसरा बिजली की मार से ज़ईफ़ी की जान निकाल देने का दावा करता है। इन प्रयोगों से कहाँ तक सफलता मिलती है और वह कितनी टिकाऊ होती है, यह हम नहीं कह सकते। कारण कि इन प्रयोगों का क्षेत्र अभी तक विदेश ही है। इन विदेशी प्रयोगों के अतिरिक्त यदि हम भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य आज से नहीं, बल्कि अनादिकाल से जरा और मृत्यु से लड़ता चला आ रहा है। दुर्भाग्यवश यहाँ की प्राचीन सभ्यता के विकास और ह्रास का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं पाया जाता, फिर भी दूसरों को जवान बना देने की और स्वयं अपनी युवावस्था दूसरे को दे डालने की कई कथायें अवश्य मिलती हैं। हमारी समझ में भारतीय शल्य-शास्त्रियों की प्रवीणता का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। यदि ऐसी घटनाओं पर किसी को अनास्था हो तो वह भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के पन्ने उलट कर देखे। आयुर्वेद की उन संहिताओं से जिनका निर्माण-काल दो हज़ार वर्ष से पूर्व माना जाता है, यह पता चलता है कि उस समय के भारतीय वैज्ञानिक उम्र बढ़ाने और बुढ़ापा दूर करने के प्रयोगों में पूरी सफलता प्राप्त कर लेते थे। ये प्रयोग 'रसायन' के नाम से शास्त्र में कहे गये हैं। आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व भारत में 'रसायन-शास्त्र' की इतनी उन्नति हो गई थी कि वह आयुर्वेद के आठ अंगों में एक अंग मान लिया गया था। उस समय चिकित्सक और शल्यशास्त्री की तरह 'रसायन-शास्त्री' भी अलग होते थे। आज-कल न तो रसायन पर स्वतन्त्र संहितायें ही पाई जाती हैं और न बड़ी-बड़ी व्याख्यायें ही। विशेषज्ञ तो दर किनार, साधारण जानकार भी सुलभ नहीं है। इस समय चरक, सुश्रुत आदि में ही रसायन के सेवन की प्रामाणिक विधि प्राप्त होती है। इन ग्रन्थों में रसायन-सेवन की दो विधियाँ निर्दिष्ट हैं—एक 'कुटी-प्रावेशिक' और दूसरी 'वातातपिक'। वातातपिक में रसायनसेवी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। वात और आतप इन दो शब्दों का अर्थ ही हवा और धूप है। इस विधि में न तो हवा से बराव है और न धूप से बचाव। आप नौकरी करते रहिए, व्यापार में चिपके रहिए, अपना कामकाज देखिए-भालिए और रसायन का सेवन भी करते चलिए। चाहे जितनी धूप फाँकिए या हवा खाइए, कोई चिन्ता नहीं। यदि हो सके तो भोजन में तेल, दही और सिरका जैसी चीज़ों से परहेज़ कर डालिए और न हो सके तो न सही। आजकल च्यवनप्राश का सेवन इसी विधि से होता है। यह भी रसायन ही है। च्यवनप्राश के सम्बन्ध में यह उक्ति कि यह बूढ़े को जवान बना देता है और परम वृद्ध च्यवन ऋषि इसको खाकर युवा हो गये थे, 'कुटी-प्रावेशिक-विधि' से ही सफल होती है। हर एक रसायन का शास्त्रों में उल्लिखित पूरा पूरा फल पाने के लिए इसी विधि का अवलम्बन आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त जनसाधारण में फैले हुए एक बड़े भ्रम पर भी प्रकाश डाले देते हैं। लोग आम तौर से जवान होने का अर्थ 'पुरुष-शक्ति' की वृद्धि होना ही समझते हैं। परन्तु इस आशा से रसायन का सेवन करना सरासर मूर्खता है। बुढ़ापे की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है, फिर भी इतना कह सकते हैं कि समय के प्रभाव से उत्पन्न हुए शारीरिक असामर्थ्य का नाम बुढ़ापा है और रसायन का सेवन इसी को दूर करने के लिए किया जाता है। रसायन से आँख, नाक, कान इत्यादि इन्द्रियों की शक्ति जिस प्रकार बढ़ती है, इसी अनुपात से 'पौरुष' भी कुछ बढ़ जाता है। केवल पुरुषत्व बढ़ाने के लिए जो औषधें काम में आती हैं उनकी गणना 'वाजीकरण' में की जाती है, रसायन में नहीं। रसायन से वाजीकरण के गुण की आशा करना वैसा ही है, जैसा गंगाजल में 'एक्शा नं० वन' के तत्त्व ढूँढ़ना। रसायन-सेवन से साधारणतया निम्नलिखित लाभ होते हैं—

"आयु बढ़ती है। बुद्धि और स्मृति बढ़ती है। स्वास्थ्य सुधरता है। स्वर मधुर और तीव्र होता है। चेहरे की कान्ति बढ़ती है। सम्पूर्ण शरीर की और आँख, नाक, कान इत्यादि इन्द्रियों की शक्तियों में वृद्धि होती है" इसी को दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि आदमी फिर से जवान हो जाता है। कहा जाता है कि "इन्हीं रसायनों की बदौलत प्राचीन ऋषिगण नीरोग और शक्ति-सम्पन्न होते हुए सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते थे। स्वर्ग के देवता

अमृत पीकर जो जो लाभ उठाते हैं, पृथ्वी के मनुष्य रसायन-सेवन करके उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। रसायन के जो नुसख़े ग्रन्थों में पाये जाते हैं उनमें से ६ ऐसे हैं जिनके नाम देवताओं के नाम पर हैं। तीन का नाम है ब्राह्म रसायन और तीन का ऐन्द्र रसायन। कहा जाता है कि ब्राह्म रसायन के प्रयोग स्वयं ब्रह्मा जी के बनाये हुए हैं और ऐन्द्र रसायन के नुसख़े इन्द्र भगवान् ने ऋषियों को दिये थे। इनके अलावा रसायनों के और भी बहुत भेद हैं। कुछ नुसख़े बुद्धि बढ़ाने के हैं, कुछ आयु बढ़ाने के हैं, किन्हीं का सेवन भिन्न भिन्न बीमारियों को दूर करने के लिए किया जाता है, किसी किसी रसायन से पुराने बाल, दाँत और नाख़ून गिर कर फिर से नये पैदा होते हैं और पुरानी खाल ऐसे छुट जाती है जैसे साँप पर से केंचुल।

बहुधा अत्यन्त दुष्कर और परिश्रम-साध्य कार्य करने के पश्चात् लोग कहा करते हैं कि 'इस काम में तो हमारे पाँचों करम हो गये' या 'सब करम हो गये'। यह विचारने योग्य है कि ये पाँचों करम क्या हैं और उनमें कौन-सी ऐसी कठिनाई है जिसके कारण दुष्कर कार्यों के साथ उनकी तुलना की जाती है। वास्तव में ये पाँचों करम हैं आयुर्वेद के स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन और वस्ति नामक पञ्चकर्म। पञ्चकर्म भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के मूलाधार, सर्वस्व या प्राण हैं। परन्तु वर्तमान काल में कोई विरला ही वैद्य होगा जो इनमें से एक का भी अवलम्बन करता हो। इस समय पञ्चकर्म में मुख्य केवल एक कर्म अवशिष्ट है और वह है वस्ति। यह भी वैद्यों के पास नहीं है, बल्कि एनीमा के नाम से डाक्टरों के हाथ में है। रसायनद्वारा शास्त्रोक्त लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य पञ्चकर्म से शुद्ध होने के बाद रसायन का सेवन करे और वह भी कुटी-प्रावेशिक-विधि से। यह विधि कठिन है और इसी कारण धीरे धीरे इसका प्रचार कम हो गया तथा आजकल तो लोप ही हो गया है। इसके सेवन में तीन कठिनाइयाँ सामने आती हैं। पहली कठिनाई यह है कि रसायन-सेवन कराने के लिए योग्य वैद्य मिले, दूसरे कुटी ठीक ठीक बने और तीसरे रसायन-सेवन करने लायक़ आदमी मिलें। हर एक मनुष्य को इस रसायन का सेवन कराया जा सके, यह सम्भव नहीं है। सर्वप्रथम तो रसायन-सेवी में धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य ४५ दिन, तीन महीने, छः महीने या साल भर तक दुनिया से और घरवालों से नाता तोड़कर एक कमरे में बन्द रह सके, और सो भी वहाँ जहाँ न ताज़ी हवा और न पूरी रोशनी, यह कितना कठिन है। फिर रसायन-सेवी चटोरा न हो, क्योंकि दवाइयों और गिनी-चुनी चीज़ों पर ही उसे निर्भर रहना पड़ता है। वह चञ्चलचित्त और छोटी छोटी बातों से घबरा जानेवाला न हो। यह भी आवश्यक है कि उसके घर में दूसरे ऐसे लोग हों जिससे उसकी अनुपस्थिति में घर का प्रबन्ध सुचारु रूप से हो सके। उसे पैसेवाला भी होना चाहिए, जिससे रसायन-सेवन के समय घरवालों की रोटी-दाल की चिन्ता उसे न सताये। तात्पर्य यह है कि हर तरह की चिन्ताओं से उसे मुक्त रहना चाहिए। जो मनुष्य अपने मन और शरीर को क़ाबू में न रख सकता हो उसे कुटी-प्रावेशिक-रसायन का सेवन नहीं करना चाहिए। दूसरी कठिनाई कुटी के निर्माण की है। इसकी परिपाटी नष्ट हो जाने के कारण हर एक वैद्य इसे ठीक ठीक तैयार नहीं कर सकता। शास्त्रों में जो "सूक्ष्मगर्भा त्रिलोचनाम्" इत्यादि वर्णन मिलता है वह स्वयं ही अत्यन्त सूक्ष्म है। सबसे अच्छा हो यदि सरकार और देश के धनीमानी जनसाधारण के लाभार्थ योग्य वैद्यों के निरीक्षण में कुटियाँ स्थापित करायें। तीसरी कठिनाई है कुशल वैद्य की। इस सम्बन्ध में हम शास्त्र का भाव दे देना ही पर्याप्त समझते हैं। "रसायन सेवन करानेवाला संस्कृत का ज्ञाता हो, दर्शनशास्त्र से परिचित हो और आयुर्वेद का तो पूरा तत्त्वदर्शी हो। केवल पढ़ा-लिखा ही न हो, बल्कि प्रतिभा और कुछ गाँठ की बुद्धि भी रखता हो। न तो शास्त्रमात्रपरायण हो और न अज्ञातशास्त्रसद्भाव ही हो। रसायन-सेवन करानेवाला वैद्य रोगियों पर पुत्र के समान प्रेम करता हो। अयोग्य आदमियों को पैसे के लोभ में पड़कर रसायन का सेवन न कराता हो। क्योंकि रसायन का उपदेश ऋषियों ने जगत् के उपकारार्थ और सुखशान्ति बढ़ाने के लिए ही किया है"।

कायाकल्प क्या है और कैसे होता है, आशा है उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को ज्ञात हो जायगा।

वसन्त

लेखक, श्रीयुत नर्म्मदाप्रसाद खरे

(१)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
मेरे अधरों में है गुलाल,
हँसकर किंशुक के चूम गाल,
कर देता उसको लाल-लाल,
खिल जाती उसकी डाल-डाल,
छा गई अरुणिमा दिग-दिगन्त।

(२)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
मुझमें वासन्ती का दुलार,
मुझमें सुख, श्री-सुषमा अपार,
मुझमें नन्दन-वन की बहार,
मैं प्रकृति-वधू का नव सिंगार,
मधु, रूप-रंग मुझमें अनन्त।

(३)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
मैं फूलों का अनुराग-राग,
हँस लुटा रहा परिमल-पराग,
अलि गाते मुझमें मधुर राग,
कोकिल के स्वर में जगी आग—
मुखरित हो-हो झूमा अनन्त।

(४)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
विरही के उर में जगा ज्वार
मुझमें बहती शीतल बयार,
कलिकायें घूँघट-पट उघार,
किसको देतीं निज मधुर प्यार
आ गई मिलन-वेला ज्वलन्त।

(५)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
फैली दिशि-दिशि सौन्दर्य-ज्वाल,
जल उठी विजन की डाल-डाल,
लद गये स्वर्ण से तरु रसाल,
गृह, मग, वन-उपवन हैं निहाल,
मुसकाते मुझमें आदि-अन्त।

(६)

मुझमें हँसता मादक वसन्त,
मैं स्वर्गिक सुन्दरता-विकास,
कुसुमित प्रभात का मधुर हास,
मैं वसुधा के उर का हुलास,
सुख-सौरभ मेरे आस-पास,
पतझड़-पीड़ा का हुआ अन्त।

कणों की आश्चर्यजनक जीवनी पर प्रकाश डालने वाला एक वैज्ञानिक निबन्ध

स-ध्रुव मालेक्यूल

लेखक, श्रीयुत जगद्विहारी सेठ, एम० ए० (केम्ब्रिज), आइ० ई० एस०

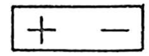
अल्कोहल (मद्यसार) पानी में अच्छी तरह क्यों मिल जाता है? पेट्रोल (मोटरकार आदि में काम में आनेवाला शुद्ध किया हुआ मिट्टी का तेल) पानी पर ही क्यों उतराता रहता है? वह उसमें मिल क्यों नहीं सकता? मिट्टी का तेल पेट्रोल के साथ क्यों ख़ूब मिल जाता है और पानी के साथ क्यों नहीं मिलता? क्या किसी तरह पानी और तेल मिलाये जा सकते हैं? नमक और शक्कर तो पानी में डालते ही, ज़रा-सा हिलाने-डुलाने से, ग़ायब हो जाते हैं, पर गन्धक, आयडीन, नेप्थलीन आदि पानी में क्यों नहीं घुलते? अगर उनका महीन बूरा बनाकर भी पानी में डालें और ख़ूब हिलावें-डुलावें, तो भी वे पानी में क्यों नहीं घुलते और आख़िर में अलग होकर नीचे क्यों बैठ जाते हैं? पानी में मिला हुआ साबुन मैल और चिकनाहट को क्यों दूर कर देता है? इन सब तथा ऐसे ही और बहुत-से सवालों ने सायंस के विद्वानों को बहुत दिनों से पशोपेश में डाल रक्खा था और उनका ठीक ठीक जवाब वे न पा सके थे। लेकिन हाल में इन सवालों के नये जवाब मिल गये हैं, जो बहुत ही चित्ताकर्षक और ठीक मालूम पड़ते हैं। मालेक्यूलों के आकार, उनके स्वरूप तथा उनके बिजलीपन के अध्ययन से ये जवाब हासिल हुए हैं।

मालेक्यूल अँगरेज़ी का एक शब्द है। हिन्दी में इसका अर्थ अणु, ज़र्रा, कण है। सारे वैज्ञानिक चाहे वे किसी भी देश के क्यों न हों, मालेक्यूल शब्द का ही व्यवहार करते हैं। हमें भी सारे संसार में प्रचलित और सर्वत्र समझे जानेवाले इस शब्द को अपना लेना चाहिए। अणु, ज़र्रा वग़ैरह का किसी भी छोटी चीज़ के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन पश्चिमी देशों में विज्ञान में ही नहीं, साहित्य में भी जब या जहाँ मालेक्यूल शब्द का इस्तेमाल करते हैं, उसका केवल एक यही मतलब होता है कि 'किसी भी पदार्थ का वह छोटे से छोटा हिस्सा जिसमें उस पदार्थ का अस्तित्व हो सकता है, चाहे वह पदार्थ बिलकुल बेमेल, सादा यानी तात्त्विक हो, चाहे पेचीदा, जटिल, यानी संयोगिक हो।' अस्तु।

मालेक्यूल इतने छोटे होते हैं कि वे सिर्फ़ मामूली दृष्टि के ही अगोचर नहीं, बल्कि तीक्ष्ण से तीक्ष्ण ख़ुर्दबीन से भी नहीं देखे जा सकते। परन्तु ऐसा होते हुए भी उनके रूप तथा आकार का पता लगाया जा चुका है। जैसे नितान्त अँधेरे में भी कोई शख़्स किसी चीज़ को टटोल-टटोल कर उसके आकार और आकृति का अंदाज़ा कर सकता है, वैसे ही वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार की टटोलने की युक्तियों के द्वारा अदृश्य, दर्शनातीत, दृष्टि अगोचर मालेक्यूलों के डील-डौल का भी पता लगा लिया है। इन टटोलने की युक्तियों में बिजली ने प्रधान सहायता पहुँचाई है। इस प्रकार की बिजली की टटोलनेवाली युक्तियों ने मालेक्यूलों की बनावट के बारे में विज्ञान के एक नये अङ्ग की ही रचना कर डाली है।

पाठक चुम्बक से अवश्य परिचित होंगे। छड़-चुम्बक के दोनों सिरे चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। बहुतेरे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि अनुकूल हालत में किसी धातु-छड़ को बिजली से पूरित करने पर उस छड़ के एक सिरे में 'धन' और दूसरे में 'ऋण' बिजली का प्रादुर्भाव होता है। हाल में छड़-चुम्बक की तरह की एक छड़-बिजली का भी निर्माण हुआ है। जैसे छड़-चुम्बक के सिरे हमेशा के लिए उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव होते हैं, यानी उभय ध्रुव स्थायी होते हैं, क्षणभंगुर नहीं, इसी प्रकार इस नई नई ईजाद की गई छड़-बिजली का एक सिरा हमेशा 'ऋण'-बिजली-युक्त, दूसरा 'धन'-बिजली-युक्त होता है। यानी इस छड़-बिजली के दोनों सिरे स्थायी रूप से 'धन' और 'ऋण' बिजली से युक्त होते हैं।

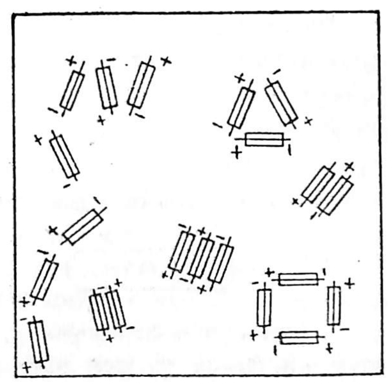
ऊपर कही हुई बिजली की टटोलने की युक्तियों से ऐसा जान पड़ता है कि बहुतेरे मालेक्यूल, यानी अनेक प्रकार के पदार्थों के मालेक्यूल, छोटे छोटे चुम्बकों की तरह बने हुए होते हैं। इस प्रकार के किसी एक मालेक्यूल के एक सिरे पर तो 'धन' बिजली का पूर (चार्ज) रहता है, दूसरे पर इससे उलटा यानी 'ऋण' बिजली का पूर। कह सकते हैं कि ये मालेक्यूल उपर्युक्त छोटी छोटी छड़-बिजलियाँ हैं, जिनका एक सिरा होता है 'धन' ध्रुव और दूसरा 'ऋण' ध्रुव। इस प्रकार के मालेक्यूल 'स-ध्रुव' मालेक्यूल



[आकृति १, जल-मालेक्यूल-सूचक।]

कहलाते हैं। स-ध्रुव मालेक्यूलों की एक सबसे अच्छी मिसाल पानी है। पानी का एक एक मालेक्यूल छड़-बिजली समझा जा सकता है। सहूलियत के लिए इसको आकृति १ में दिखलाये हुए रूप का समझ सकते हैं।

अगर बहुत-सी सूइयों से बहुतेरे छोटे छोटे छड़-चुम्बक बनाकर उनमें से एक एक को काग के छोटे छोटे टुकड़ों पर रखकर पानी में तैरायें तो देखेंगे कि वे सब एक ख़ास बनावट में होकर रहेंगे। वे आपस में छोटी छोटी मंडलियाँ बना लेंगे और सो भी इस तरह कि एक सुई (चुम्बक) का उत्तरी (या धन) ध्रुव पास की सुई के दक्षिणी

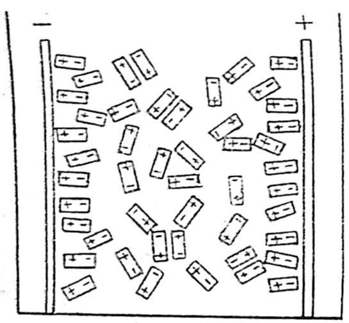


[आ० २, चुम्बकों की मंडलियाँ।]

(या ऋण) ध्रुव के पास होकर ठहरेगा, जैसा कि आकृति २ में दिखलाया गया है। इसमें चुम्बकों के सिरों पर उ- और द लिखने के बजाय सिर्फ़ धन और ऋण के संकेत से ही ध्रुवों को सूचित किया है। आप देखेंगे कि कहीं तो सिर्फ़ दो छड़ों की मंडली है, कहीं तीन की, कहीं चार की। वास्तव में चार से ज़्यादा की मंडलियाँ भी होंगी। पर इन सबमें एक यह साधारण विशेषता पाई जायगी कि धन और ऋण ध्रुव हमेशा पास पास होकर ठहरेंगे। दो धन या दो ऋण ध्रुव पास पास होकर कभी नहीं ठहर सकते। अगर पानी को हिलावें-डुलावें तो पहले की मंडलियाँ तो शायद टूट जायँ, लेकिन दूसरी नई मंडलियाँ तैयार होती रहेंगी। किसी एक चुम्बक पर नज़र जमाकर अगर पानी को हिलावें तो देखेंगे कि चुम्बक अपनी पहलीवाली मंडली को तो शायद छोड़कर बाहर निकल आवे, लेकिन आख़िर में जाकर वह किसी दूसरी मंडली में मिल जायगा, अकेला कभी नहीं ठहरेगा, और जब कभी ठहरेगा तब उसी पुराने उपर्युक्त नियम की पाबन्दी करते हुए, यानी धन सिरा किसी दूसरे ऋण सिरे के पास और ऋण सिरा धन सिरे के पास।

वैज्ञानिकों का ख़याल है कि पानी सरीखे स-ध्रुव मालेक्यूलों की चाल-ढाल भी ठीक इसी तरह की होती है। ऐसे मालेक्यूल अकेले कभी नहीं रहते, दो या ज़्यादा साथ साथ होकर तरह तरह की आकृतियों की मंडलियों में ही विराजते हैं। किसी भी द्रवशील पदार्थ के मालेक्यूल एक जगह ठहरे हुए नहीं रहते, वे सदैव चलते, फिरते, नाचते रहते हैं। जल-मालेक्यूलों को अकेले अकेले अलग अलग नाचना पसन्द नहीं; वे सदैव एक-दो या ज़्यादा संगी-साथियों को साथ लेकर ही अपनी नृत्य-क्रीड़ा करते हैं, यद्यपि वे अपने संगी-साथी अक्सर बदलते रहते हैं। पानी को एक बहुत ही 'सोशल' यानी मिलनसार द्रव कह सकते हैं, क्योंकि उसके मालेक्यूलों में साथ साथ मिलकर रहने की बहुत अधिक प्रवृत्ति होती है।

यदि पानी से भरे शीशे के बर्तन में धातु की दो प्लेटें अलग अलग रखते हुए डाल दें और उन प्लेटों को तार के द्वारा किसी बिजली की बैटरी के सिरों से जोड़कर उन्हें धन और ऋण बिजली से पूरित कर दें तो पानी के मालेक्यूल इन दोनों प्लेटों के पास एक ख़ास ढंग से क़तार बाँधकर खड़े हो जायँगे, जैसा कि आकृति ३ में दिखाया गया है। धन-बिजली-पूरित प्लेट से लगे हुए



[आ० ३, जल-मालेक्यूलों पर बिजली का असर।]

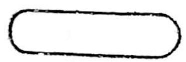
जितने भी मालेक्यूल होंगे उन सबका ऋण सिरा इस प्लेट की तरफ़ होकर ठहरेगा और ऋण प्लेट के साथ धन सिरे लगे होंगे। पानी का मालेक्यूल हाइड्रोजन और आक्सीजन नाम की दो गैसों के मालेक्यूलों के जोड़ से बनता है। हाइड्रोजन धनात्मक होती है और आक्सीजन ऋणात्मक, और उपर्युक्त क्रिया में जल-मालेक्यूल टूटकर अपनी रचक इंटों यानी हाइड्रोजन और आक्सीजन में परिवर्त्तित हो जाता है। हाइड्रोजन ऋण द्वार पर जमा होकर निकलने लगती है, आक्सीजन धन-प्लेट से।

यदि पानी में गर्मी पहुँचाकर उसका टेम्परेचर बढ़ावें तो उपर्युक्त नृत्य का वेग, नाचने की मस्ती, भी बढ़ती है और बाज़ बाज़ मालेक्यूलों की मस्ती इतनी ज़्यादा हो जाती है, ज़ोर से नाचते-नाचते उनको इतनी ज़्यादा घुमनी आ जाती है कि मस्ती में आकर अपने साथियों को छोड़कर वे अकेले अकेले ही पानी के बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार जैसे जैसे पानी के मालेक्यूल पानी को छोड़कर बाहर हवा में घूमने के लिए जाते हैं, वैसे ही वैसे, धीरे धीरे, पानी उड़ता रहता है। मामूली टेम्प-रेचर पर तो कुछ थोड़े-से ही मालेक्यूलों को इस प्रकार की मस्ती या घुमनी आती है और पानी धीरे धीरे ही उड़ता है, लेकिन टेम्परेचर बढ़ते रहने पर मस्त मालेक्यूलों की संख्या भी ज़्यादा होती जाती है और पानी के उड़ने की गति भी बढ़ती है। उबलने के टेम्परेचर पर तो उनकी मस्ती और उनकी घुमनी इस क़द्र ज़्यादा और इतनी सर्वव्यापक हो जाती है कि अनगिनती जोड़े, गिरोह के गिरोह, टूट-फूट जाते हैं और मस्ती से भरे अकेले अकेले मालेक्यूल, संख्या में अगणित पानी की सतह को लाँघकर, खुली हवा में विचरने को चले जाते हैं।

अगर बढ़ाने के बजाय टेम्परेचर घटाया जाय तो नाचने की मस्ती कम होती है। यहाँ तक कि आख़िर में, टेम्परेचर के काफ़ी नीचे होने पर मालेक्यूलों के जोड़ों और गिरोहों का इधर-उधर विचरना बन्द हो जाता है, सबके सब एक ही जगह ठहरे हुए रहते हैं। इधर-उधर घूमने के बजाय अब वे सिर्फ़ अपनी अपनी जगहों पर ठहरे हुए, पर अब भी ज़रा ज़रा हिलते हुए रहते हैं, मानो थिरक रहे हैं या यह कहिए कि ठंड के मारे काँप रहे हैं। मतलब यह कि पानी अब जम गया।

पानी के मालेक्यूलों में आपस में बहुत प्रेम होता है, उनको एक-दूसरे से अलग करना आसान काम नहीं। इसी लिए पानी के उबलने का टेम्परेचर काफ़ी ऊँचा है। इसी प्रेम के कारण पानी के मालेक्यूलों को एक ही जगह पर ठहरा देना काफ़ी आसान है, यानी पानी आसानी से जमाया जा सकता है, उसके जमने का टेम्परेचर बहुत नीचा नहीं है। इसमें शक नहीं कि पानी जमने के टेम्परेचर को टेम्परेचर का सिफ़र (०°) मानते हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यह टेम्परेचर बहुत नीचा है। बहुतेरे ऐसे द्रव हैं, जिनके जमने के टेम्परेचर इससे कहीं नीचे हैं।

पेट्रोल के मालेक्यूल जल-मालेक्यूलों से बिलकुल दूसरी तरह के होते हैं। पानी की अपेक्षा पेट्रोल के मालेक्यूलों की लम्बाई ज़्यादा होती है और उसके सिरे धन और ऋण बिजली से पूरित नहीं होते। इन माले-क्यूलों के सिरे ध्रुव नहीं होते, इसलिए ये 'अ-ध्रुव' मालेक्यूल कहलाते हैं। सुविधा के लिए उनकी शकल

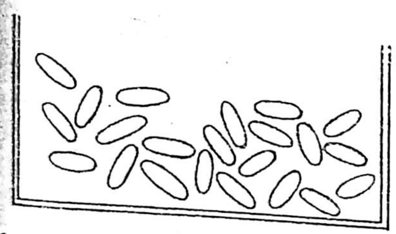


[आ० ४, पेट्रोल-मालेक्यूलसूचक।]

आकृति ४ में दिखलाई हुई शकल की-सी समझी जा सकती है। देखिए, एक तो उसके सिरों पर धन (+) और ऋण (−) के निशान नहीं दिये गये और दूसरे उसके सिरे कुछ गोलाई लिये हुए दिखलाये गये हैं।

मालेक्यूलों में परस्पर बिलकुल प्रेम या आकर्षण नहीं। हर अपनी अपनी ज़िन्दगी अलग ही अलग गुज़ारता यद्यपि काफ़ी बोझीले होने की वजह से वे पास ही रहते हैं, इसलिए मामूली हालत में यह पदार्थ अवस्था में ही होता है। इस द्रव का हर एक माले-अकेला ही अकेला, बिना किसी संगी-साथी के, रहता है। इस एकाकी नृत्य में वह अक्सर पड़ोसियों यानी दूसरे मालेक्यूलों के पास तो पहुँच जाता है, लेकिन पहुँचते ही धक्का लगता और टकराकर वह फिर अपना अनवरत एकाकी जारी रखने के लिए दूर चला जाता है।

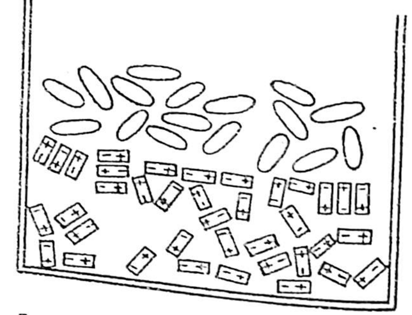
इन मालेक्यूलों को अगर गर्मी पहुँचायें यानी टेम्परेचर ज़्यादा करें तो जल-मालेक्यूलों की तरह भी नृत्य-मस्ती बढ़ती है। परन्तु ये होते हैं अकेले इनका कोई संगी-साथी नहीं कि इनको ज़रा थामे रक्खे। इसलिए ये बहुत आसानी से द्रव से कर हवा में उड़ाये जा सकते हैं। यानी पेट्रोल जल्दी और ज़्यादा मात्रा में उड़ता रहता है उसके उबलने का टेम्परेचर नीचा ही होता है। बनाकर इकट्ठा होकर रहने की प्रवृत्ति न होने कारण इन मालेक्यूलों को एक ही जगह ठहरा देना, इनका जमाना आसान नहीं। ये एक ही स्थान पर रक्खे जा सकें, इसके लिए पहले इनकी नाच-बहुत ही कम करनी पड़ती है। मतलब यह कि जमाने का टेम्परेचर पानी के जमने के टेम्परेचर



[आ० ५, पेट्रोल-मालेक्यूलों की चालढाल।]

०° से नीचा होता है। आकृति ५ में दिखलाया गया पेट्रोल के मालेक्यूलों की चालढाल कैसी होती है। इनमें एक भी जोड़ा या समूह नहीं।

पेट्रोल के मालेक्यूलों को पानी की नृत्य-क्रीड़ा-शाला में जाने की सख़्त मुमानियत है। एक तो इसलिए कि वे ख़ुद एकान्त पसन्द करते हैं, दूसरे वे हैं भी बहुत ही कुरूप, शोभाहीन—कम से कम जल-मालेक्यूलों की निगाह में। पानी के मालेक्यूलों को अपनी ही और अपनी प्रकृति-वालों की ही सोहबत बहुत अच्छी लगती है। कह सकते हैं कि वे अपने को बहुत ही ऊँचे वर्णवाले, उच्च जाति के समझते हैं और अपनी जाति-बिरादरी में ऐरों ग़ैरों को नहीं आने देते। जल-मालेक्यूलों के बीच परस्पर इतना ज़्यादा स्नेह है और आपस में ही उनका इतना ज़्यादा मन लगा रहता है कि ऐसे प्रेम-पाश को तोड़कर उनके बीच जाने की पेट्रोल-मालेक्यूलों की मजाल नहीं। पानी की नृत्य-क्रीड़ा-शाला को बिजली की एक आदर्श दीवार से घिरी हुई समझना चाहिए या यह कह सकते हैं कि पानी की नृत्यशाला के चारों ओर बिजली के पहरेदारों का घना पहरा रहता है। अगर कभी, किसी तरह, पेट्रोल का कोई मालेक्यूल पानी के नृत्य में शामिल होने के लिए आतुर होकर क्रीड़ाशाला में बलपूर्वक घुसने की चेष्टा करे तो इस दीवार से टकराकर या उन पहरेदारों से धकियाया जाकर अपने ही जैसे कुरूप व्यक्तियों में रहने के लिए दूर कर दिया जाता है। लेकिन पेट्रोल के मालेक्यूल बड़े ही बेशर्म होते हैं। ऐसी दुतकार पाने पर भी वे बाज़ नहीं आते और पानी की नृत्यशाला पर एकाएक, बहुत-से इकट्ठा

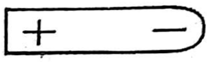


[आ० ६, पेट्रोल और जल-मालेक्यूलों का परस्पर बर्त्ताव।]

होकर, धावा करने के लिए पानी की सतह को पूरी तौर से ढँक लेते हैं कि जहाँ कहीं, कभी भी, मौक़ा मिले, शाला

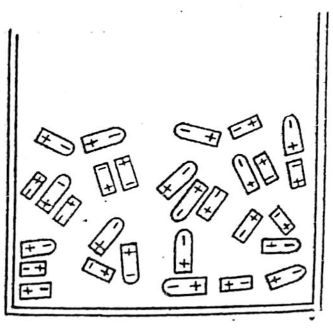
के अन्दर घुस जायँ। लेकिन वे दीवार को कदापि लाँघ नहीं सकते और नतीजा यह होता है कि अगर पेट्रोल की मात्रा ज़्यादा न हुई तो उसकी एक बड़ी ही महीन, सिर्फ़ एक मालेक्यूल जितनी पतली, तह पानी पर छा जाती है। इसी लिए अगर पानी से भरे टब में एक बूँद पेट्रोल का डाल दें तो पेट्रोल की बड़ी ही महीन, तरह तरह के रङ्गों को दिखलानेवाली, चादर पानी की सतह पर बिछ जाती है। यह चादर तरह तरह के रङ्गोंवाली और चमकती हुई ही क्यों होती है, इसकी एक दूसरी ही लम्बी कहानी है, जिसके बयान करने का यह मौक़ा नहीं। आकृति ६ में दिखलाया है कि पेट्रोल और पानी के मालेक्यूल किस तरह आपस में पेश आते हैं।

इसके विरुद्ध अल्कोहल के मालेक्यूल पानी की सोसाइटी में खुले दिल अपनाये जाते हैं, उनकी ख़ूब ही आवभगत और ख़ातिर-तवाज़ा होती है, क्योंकि ये भी स-ध्रुव हैं, इसलिए पानी की ही जात-बिरादरी के हैं। ये भी आपस में जोड़े और समूह बनाकर रहते हैं और जल-सभा में पहुँचने पर उसमें प्रवेश कर सकते हैं। प्रवेश ही नहीं, बल्कि पानी के मालेक्यूल इनके साथ और ये पानी के मालेक्यूलों के साथ जोड़े या समूह बनाते हैं।



[आ० ७, अल्कोहल मालेक्यूलसूचक।]

कह सकते हैं कि आपस में ये शादी-रस्म वग़ैरह करते हैं और इस प्रकार पानी की सोसाइटी के गूढ़ से गूढ़ स्थानों



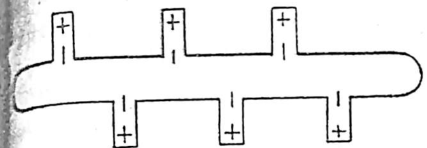
[आ० ८, अल्कोहल का पानी में मिलना।]

में भी अल्कोहल-मालेक्यूलों की पहुँच हो जाती है। ... पानी में अल्कोहल भली भाँति मिल या घुल सकता है। आकृति ७ अल्कोहल के मालेक्यूल का सूचक है। देखिए, इसमें और जल-मालेक्यूल-सूचक आकृति ... कुछ थोड़ा-सा भेद है। आकृति ८ में अल्कोहल का ... में मिलना या घुलना दिखलाया गया है।

यद्यपि अल्कोहल-मालेक्यूल उसी जाति के होते ... जिसके जल-मालेक्यूल, तो भी उनमें उतना ज़्यादा ... नहीं होता। उनके मालेक्यूलों के जोड़ों और समूहों ... बीच उतना ज़्यादा प्रेम नहीं होता, जितना जल-मालेक्यूलों के बीच होता है, इसलिए वे एक-दूसरे से आसानी ... अलग किये जा सकते हैं और अल्कोहल के उबलने ... टेम्परेचर जल-उबाल-टेम्परेचर जितना ऊँचा नहीं होता ... इन्हीं कारणों से अल्कोहल के जमने का टेम्परेचर ... पानी के जमने के टेम्परेचर से नीचा होता है। ... पानी में अल्कोहल के मिलाने से पानी के उबलने ... जमने, दोनों का टेम्परेचर कम हो जाता है और जितना ही ज़्यादा अल्कोहल मिलाया जाय, उतना ही ज़्यादा कम होता है।

मिट्टी के तेल के मालेक्यूल पेट्रोल के मालेक्यूल की तरह अ-ध्रुव-जाति के होते हैं। वे भी एकाकी ... हैं। इसलिए पेट्रोल के मालेक्यूलों के साथ वे ... आज़ादी से मिल-जुल सकते हैं, दोनों के परस्पर मिलने-जुलने में कोई विघ्न-बाधा नहीं पड़ती। लेकिन पेट्रोल ... मालेक्यूलों की तरह वे पानी की सोसाइटी से सख़्त ... हैं। पेट्रोल के मालेक्यूलों की अपेक्षा मिट्टी के तेल ... मालेक्यूलों का बोझ ज़्यादा होता है, लम्बाई भी ... होती है, इसलिए वे उतनी सुगमता से उड़ नहीं ... और पेट्रोल की अपेक्षा मिट्टी के तेल के उबलने ... जमने में दोनों का ही टेम्परेचर ज़्यादा ऊँचा है।

यहाँ तक द्रवों की ही परस्पर मिलनशीलता का ... हुआ है। अब थोड़ा-सा हाल ठोस और द्रव पदार्थों ... मिलने का भी सुनिए। असल में ठोस और द्रव की ... मिलनशीलता (या घुलनशीलता) के नियम वैसे ही ... जैसे ऊपर वर्णन किये हुए द्रवों के परस्पर घुलने ... शक्कर पानी में तो बख़ूबी घुल जाती है, लेकिन पेट्रोल ... बिलकुल नहीं घुलती। अतः उसके मालेक्यूल ...

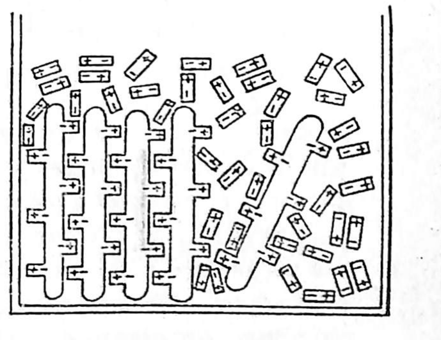


[आ० ९, शक्कर-मालेक्यूलसूचक]

... के होंगे जिसके पानी के होते हैं। वास्तव में वे भी ... हैं। लेकिन थोड़ा-सा फ़र्क़ है; वे जल-मालेक्यूल ... से सादे और ख़ालिस स-ध्रुव नहीं हैं। शक्कर का माले-... बड़ा और भारी होता है, जिसके थोड़ी-सी भुजायें ...-उधर निकली हुई होती हैं और ध्रुवत्व इन भुजाओं ... ही होता है। शक्कर का मालेक्यूल आकृति ९ में दिख-... हुई शकल जैसा समझा जा सकता है।

... जमे हुए पानी यानी बर्फ़ की तरह शक्कर एक ठोस ... है। पड़ोसी मालेक्यूलों की भुजाओं के ध्रुवत्व में ... आकर्षण-शक्ति है कि उनको साथ ही साथ, गठे, यानी ठोस हालत में रख सके। शक्कर के मालेक्यूल ... अवस्था में किस प्रकार रहते होंगे, इसका अनुमान ... ति. १० के बायें कोने पर ध्यान देने से किया जा ... है। भुजाओं के ध्रुवत्व के कारण ये भी जोड़े या ... बनाकर रहते हैं; लेकिन न तो जोड़ों में न समूहों ... इतनी शक्ति होती है कि नाच-कूद कर सकें, इधर-... घूम सकें। हाँ, गर्मी पहुँचाकर उनकी शक्ति ज़्यादा ... जा सकती है, क्योंकि गर्मी शक्ति का एक रूप है। ... गर्मी मिलने पर उनमें भी नाचने और घूमने का ... हो जाता है और ठोस, खिल कर, द्रवावस्था में ... हो जाता है। कह सकते हैं कि नाच के लिए जो ... बाजे की ज़रूरत होती है उसका बजना तब तक नहीं ... होता जब तक टेम्परेचर काफ़ी ऊँचा न हो ले।

... पानी की सोसाइटी या समाज में शक्कर के मालेक्यूल ... बहुत ही स्वागत होता है। सिर्फ़ स्वागत ही नहीं, ... पधारने के लिए उनसे बहुत ही मिन्नत की जाती ... शक्कर-मालेक्यूलों को अपने समाज में लाने के लिए ... अपने दूतों और अहलकारों को उनके पास भेजता ... उनको बहुत आदर के साथ अपने कंधों पर बैठा ... लाते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए एक दूसरी उपमा लीजिए। बहुतेरे पाठकों को पता होगा कि किसी बड़े जहाज़ को बन्दरगाह के अन्दर लाने या वहाँ से बाहर ले जाने के लिए खींचनेवाली छोटी छोटी नौकाओं (टग-बोट) की ज़रूरत होती है। ये नौकायें बड़े बड़े मज़बूत रस्सों के द्वारा जहाज़ से बाँध दी जाती हैं और वे जहाज़ को बन्दर के पेचीदा रास्तों में तथा लंगर डाले हुए अन्यान्य बड़े जहाज़ों से बचाकर ले जाती हैं। यहाँ शक्कर के मालेक्यूल को तो समझिए जहाज़। पानी के छोटे छोटे मालेक्यूल, खींचनेवाली नौकाओं की तरह, शक्कर-मालेक्यूल के भुजा-रूपी रस्सों के द्वारा, उसको अन्यान्य शक्कर-मालेक्यूलों की क़तार से निकाल कर ले जाते हैं। जब थोड़े-से खींचनेवाले जल-मालेक्यूल एक शक्कर-मालेक्यूल को इस प्रकार निकाल कर ले भागते हैं तब और इसी की प्रतीक्षा में खड़े हुए दूसरे जल-मालेक्यूल दूसरे शक्कर-मालेक्यूल को निकाल कर ले जाते हैं और ऐसी कार्रवाई तब तक जारी रहती है जब तक सबके सब शक्कर-मालेक्यूल न निकाल लिये जायँ। अन्त में हर एक

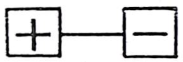


[आ० १०, शक्कर का पानी में घुलना।]

शक्कर-मालेक्यूल-रूपी जहाज़, पानी-मालेक्यूल-रूपी अपनी अपनी खींचनेवाली नौकाओं के द्वारा प्रेरित खींचनेवाली नौका से आच्छादित समुद्र में चलता रहता है। इस प्रकार शक्कर के डले के मालेक्यूल चुस्त, फ़ुर्तीले जल-मालेक्यूलों के द्वारा खींचे जाते हैं और पानी और शक्कर के संयुक्त-समाज के सभासद बन जाते हैं। आकृति १० में शक्कर के पानी में घुलने की क्रिया का ख़ाका खींचा गया है। बायें

कोने में शक्कर के मालेक्यूलों की एक छोटी-सी संस्था है। जल-मालेक्यूल-रूपी अनुचर इनकी प्रेरणा में आलग्न हैं और एक मालेक्यूल के निकालकर अपने समाज में ले जा रहे हैं। धीरे धीरे सभी शक्कर-मालेक्यूलों के अपनाने में समर्थ होंगे और शक्कर का डला पानी में बिलकुल घुल जायगा।

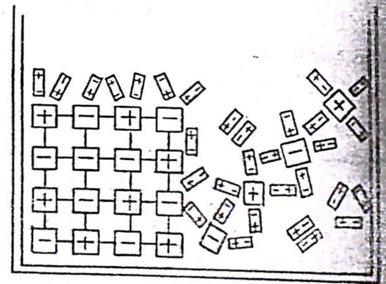
शक्कर को छोड़कर अब ज़रा नमक की कुछ बातें सुनिए। नमक एक अजीब तरह का पदार्थ है। शक्कर, अल्कोहल और पानी आदि के मालेक्यूल होते तो हैं ज़रूर स-ध्रुव, यानी किसी एक मालेक्यूल में एक जगह धन और दूसरी जगह ऋण बिजली का पूर होता है, लेकिन होते हैं ये फिर भी पूरे और मुकम्मल या पोढ़े। नमक के मालेक्यूल भी स-ध्रुव होते हैं, लेकिन इनके धन और ऋण हिस्से पुख़्ता तौर से परस्पर जुड़े हुए नहीं होते। या यह कहिए कि दोनों हिस्सों के जोड़नेवाली जो जंज़ीर होती है वह काफ़ी मज़बूत नहीं होती; मुआफ़िक़ हालत में ज़रा-सा ज़ोर लगाने से ही टूट जाती है, जिससे मालेक्यूल दो हिस्सों में विभक्त हो जाता है; और हर एक हिस्सा, अकेला



[आ० ११, नमक-मालेक्यूलसूचक।]

ही अकेला, धन अलग और ऋण अलग, इधर-उधर टहलने को चल पड़ता है। इन हिस्सों के एक ख़ास नाम दिया गया है; योरपीय भाषाओं में इनमें से हर एक आयन (Ion) कहलाता है। यह शब्द असल में यूनानी भाषा का है और इसका अर्थ है इधर-उधर घूमनेवाला, भ्रमणशील। संस्कृत में भी एक 'अयन' शब्द है, जिसका अर्थ है गति या चाल। अतएव हिन्दी में यह यूनानी शब्द आयन ज्यों का त्यों रह सकता है। धन बिजली-पूरित घूमनेवाला हिस्सा धनायन और ऋण हिस्सा ऋणायन। नमक का मालेक्यूल आकृति ११ में दिखलाई हुई शकल का समझा जा सकता है।

ठोस हालत में नमक-मालेक्यूल के दोनों हिस्से, एक दूसरे से आकर्षित, परस्पर चिपटे हुए रहते हैं; वैसे ही जैसे कि धन और ऋण बिजली-पूरित दो गोलियाँ अगर पास पास लाई जायँ तो एक-दूसरे से चिपट जाती हैं। नमक का डला पानी में रखते हैं तब जल-मालेक्यूल के बहिर्भाग में स्थित आयनों-द्वारा आकर्षित होकर जा चिपटते हैं और खींचकर उनको डले से बाहर लने की कोशिश करते हैं। आयनों की परस्पर की र्षण-शक्ति और जल-मालेक्यूलों की इस खींचकर निकालनेवाली प्रवृत्ति में एक प्रकार की जो रस्सा होती है उसमें पानी की जीत होती है। एक एक डले के सभी आयन खिंच जाते हैं और नमक घुल है। हर एक आयन, घोल में, अपने अपने जल-क्यूलों-रूपी वाहनों के द्वारा इधर-उधर ले जाया है। कभी कभी ये जल-मालेक्यूल-वाहित आयन इतने पास आ जाते हैं कि ये कम से कम थोड़ी देर के लिए पानी-जमादारों से छुटकारा पाकर परस्पर मिल जाते हैं फिर उनका जोड़ा बन जाता है। लेकिन ये हमेशा चौ रहनेवाले जल-मालेक्यूलों की निगाह से बाहर ज़्यादा तक नहीं ठहरने पाते; जल्द ही फिर अलग अलग



[आ० १२, नमक का पानी में घुलना।]

दिये जाते हैं। इस प्रकार किसी एक समय कुछ आ तो जुड़ रहे होंगे और कुछ जुड़े हुए आयन अलग रहे होंगे, यानी घोल में कुछ नमक के मालेक्यूल तो समूचे रूप में होंगे और कुछ टूट कर आयनों के रूप में। आकृति १२ पानी में नमक के घुलने का सूचक है। यानी आकृति १० की तरह इसमें भी बायें कोने में पदार्थ, यानी नमक का डला दिखलाया गया है। बाहरी पानी से छूते हुए हिस्से के आयनों को नि

के जल-मालेक्यूल तत्पर हैं और थोड़े-से आयनों का अपहरण भी हो चुका है।

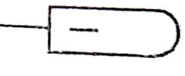
आयडीन, गंधक, नेफ्थलीन सरीखे ठोस पदार्थों के मालेक्यूल अ-ध्रुव-जाति के होते हैं। इन मालेक्यूलों में भुजायें नहीं होतीं, जिनको जल-मालेक्यूल पकड़ सकें। असल में जैसे कि पेट्रोल और तेल के मालेक्यूल पानी की नृत्यशाला के चौकीदारों से छिप या बचकर पानी की नृत्य-क्रीड़ा में शरीक नहीं हो सकते, वैसे ही इन ठोस पदार्थों के मालेक्यूलों की भी पानी की सोसायटी में जाने की मजाल नहीं पड़ती। हाँ, पेट्रोल और मिट्टी के तेल की अ-ध्रुव सोसायटी में, बतौर एकाकी नर्त्तक के, ये बिना रोक-टोक शामिल हो सकते हैं। पेट्रोल के चलते फिरते मालेक्यूल आयडीन जैसे ठोस पदार्थों के मालेक्यूलों को डले से निकालकर अपनी सोसायटी में ले आते हैं, जहाँ वे अपना अपना एकाकी नृत्य करना शुरू कर देते हैं। ठोस पदार्थों के मालेक्यूल काफ़ी भारी और इसलिए सुस्त होते हैं; और अगर इनको कोई उत्तेजित करनेवाला न हो तो ये सदैव स्थिर और सुप्त अवस्था में ही पड़े रहें। लेकिन पेट्रोल के हलके और फुर्तीले मालेक्यूल उनको हमेशा उत्तेजित रखते हैं; धक्के दे देकर जागते हुए और नाचते हुए रखते हैं। यानी ये ठोस पदार्थ पेट्रोल जैसे तरलों में घुल सकते हैं और घुले हुए रह सकते हैं।

घुलनशीलता के दो मोटे मोटे नियम हैं, जो यों कहे जा सकते हैं—

(१) स-ध्रुव तरल, जैसे कि पानी, अन्यान्य स-ध्रुव तरलों और स-ध्रुव ठोसों को तथा आयनों को भी अपने में घोल सकते हैं, लेकिन अ-ध्रुव पदार्थों को नहीं।

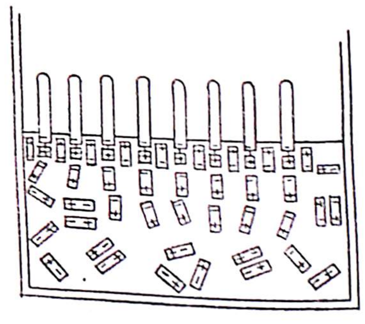
(२) पेट्रोल सरीखे अ-ध्रुव तरल अन्यान्य अ-ध्रुव पदार्थों को तो घोल सकते हैं, पर स-ध्रुव पदार्थों को नहीं।

साबुन का मालेक्यूल तो निराले ढंग का ही होता है। इसका एक सिरा स-ध्रुव होता है, पर दूसरा अ-ध्रुव। इसकी शकल १३ वीं आकृति जैसी समझी जा सकती है। इस विचित्र विशेषता के कारण उसकी पहुँच स-ध्रुव और अ-ध्रुव दोनों प्रकार के ध्रुवों में हो सकती है। असल में वह उभयचर है। अगर उसका एक सिरा द्रव में होता है तो दूसरा हवा में। पानी में तो अपना अ-ध्रुव सिरा हवा

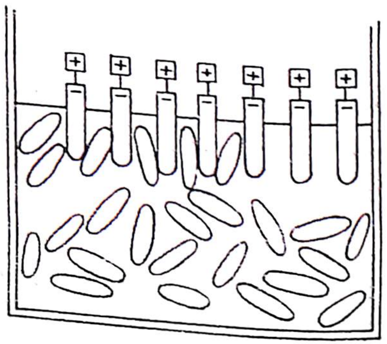


[आ० १३, साबुन-मालेक्यूलसूचक।]

में फटकारता हुआ तैरता है, जैसा आकृति १४ में दिखलाया गया है, पर तेल में उसका स-ध्रुव सिरा हवा में



[आ० १४, पानी में तैरते हुए साबुन-मालेक्यूल।]

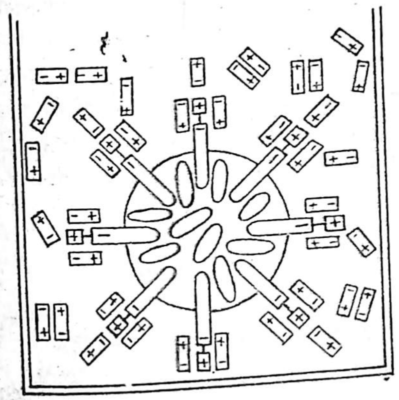


[आ० १५, तेल में तैरते हुए साबुन-मालेक्यूल।]

रहता है और अ-ध्रुव तेल में डूबा हुआ (आकृति १५)। यदि साबुन-मालेक्यूल अपना स-ध्रुव सिरा आगे करके पानी की नृत्य-शाला के पास पहुँचता है तो वह क्रीड़ाशाला में बिना रोक-टोक के जाने पाता है, लेकिन अगर अ-ध्रुव सिरा सामने हो तो प्रवेश में ज़रा दिक़्क़त पड़ती है, यद्यपि स-ध्रुव सिरे के रोब की वजह से घुस जाय तो घुस ही जाय। पर अक्सर वह अपने को एक अजब ग़ैरमामूली हालत में पाता है, आधा अन्दर और आधा

बाहर। इस अभागे मालेक्यूल की हालत होती है दोग़ले शख़्स की-सी, कभी तो पानी और तेल दोनों में इसका स्वागत होता है और कभी दोनों ही उसे दुतकार भगाते हैं। लेकिन इस दोग़लेपन के कारण यह मालेक्यूलों के संसार में बहुत ही उपयोगी व्यक्ति साबित होता है।

यदि पानी और तेल को एक ही बोतल में रखकर, उनको परस्पर मिलाने के लिए बोतल को अच्छी तरह हिला-डुलाकर, थोड़ी देर के लिए अलग रख दें तो दोनों तरल शीघ्र ही अलग हो जायँगे। पानी नीचे और तेल ऊपर हो जायगा। लेकिन हिलाने के पहले अगर थोड़ा-सा साबुन भी बोतल में डाल दें और फिर हिलावें तो तेल के छोटे छोटे बूँद पानी में जहाँ-तहाँ छिटके-से टँगे हुए रह जाते हैं, पानी और तेल की अलग अलग परतें अब उतनी जल्दी नहीं बनतीं। साबुन के दोग़ले मालेक्यूलों ने मानो पानी और तेल जैसे दो बिलकुल ही भिन्न भिन्न जाति और प्रकृति के लोगों का भी परस्पर मिलाप करा दिया। परन्तु अब भी पानी जैसी उच्च जाति की अत्युत्कृष्ट सोसायटी में अधमजाति तेल के मालेक्यूल अकेले अकेले नहीं जा सकते, सिर्फ़ अपना समूह बना-कर ही प्रवेश करने पाते हैं। कह सकते हैं कि तेल-मालेक्यूलों का एक छोटा-सा अरक्षित, ख़ाली हाथ, समूह जल सरीखे शत्रुपक्ष में तभी प्रवेश कर सकता है जब वह चारों ओर से साबुन-मालेक्यूल सरीखे हथियारबन्द सिपाहियों के द्वारा घिरा



[आ० १६, पानी के अन्दर तेल की बूँद।]

हुआ हो, जो उसके लिए जल-देश में प्रवेश करने के लिए रास्ता बनाते हैं और अपने देश में दुश्मनों को घुसते देखकर क्रुद्ध जल-मालेक्यूलों के हमलों से उसे बचाये रखते हैं। साबुन-मालेक्यूलों की दोनों पक्षों में पहुँच है और उक्त क्रिया में वे पुलिस का काम करते हैं। आकृति १६ में दिखलाया गया है कि किस तरह से तेल का बूँद, साबुन से लपेटा हुआ, पानी के अन्दर लटका हुआ रह सकता है।

मैल, तेल, चिकनाहट और चर्बी ये सभी चीज़ें जिन तरह तरह के मालेक्यूलों से बनी हैं उनमें के ज़्यादातर मालेक्यूल अ-ध्रुव जाति के ही होते हैं, इसलिए स्पष्ट है कि सिर्फ़ पानी से ही धोने से ये चीज़ें कपड़ों वग़ैरह से नहीं छुटाई जा सकतीं। मालेक्यूलों की दुनिया के बाशिंदे ऐसे उदारचरित नहीं कि सर्वसाधारण की सब जगह पहुँच होने दें। केवल पुलिस के डंडे के डर से ही दो भिन्न तरह के समाजों के लोग साथ-साथ बिना लड़ाई दंगे के रह सकते हैं। इसलिए क़ुदरतन् मैले जैसे गंदे और ओछे व्यक्ति साधारणतया पानी की उच्च और उत्कृष्ट सोसायटी में शरीक़ नहीं हो सकते। ऐसा करने के लिए पुलिस के सिपाहियों की मदद लेनी पड़ती है।

मैले कपड़ों को गीलाकर पहले उन पर साबुन रगड़ा जाता है। रगड़ने की क्रिया में एक तो मैल के बड़े बड़े झुण्ड तोड़कर उसके छोटे छोटे समूह बनाये जाते हैं और दूसरे ये छोटे छोटे समूह साबुन से भली भाँति लपेटे जाते हैं। पुलिस के डंडे पहले तो मैल पर ही पड़ते हैं ताकि उसके बड़े बड़े झुण्ड तोड़ डाले जायँ। अब सिपाही छोटे छोटे समूहों को अलग अलग अच्छी तरह घेर लेते हैं, इस प्रकार सुरक्षित समूह बिना किसी डर या बाधा के शत्रुपक्ष के ठीक अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। इस तरह अपनी दोमुँही प्रकृति के कारण साबुन अ-ध्रुव और स-ध्रुव जातियों के व्यक्ति में कम से कम ऊपरी, दिखाने की, एकता पैदा कर सकता है, इसलिए वह सफ़ाई करानेवाला सफ़ाई का दारोग़ा होता है।

प्रकृति के अपरिवर्तनीय नित्य नियमों के वशीभूत मालेक्यूलों के संसार में साम्यवाद सर्वसाधारण-प्रभुत्व का प्रकार नहीं है। इस संसार में किसी एक प्रकार के मालेक्यूल के क्या अधिकार होंगे, उनका कौन-सा पद

...गा, इस बात का निर्णय चिरकाल हुआ, ठंडे होते हुए ...में मालेक्यूल के जन्म-काल से भी बहुत पहले, हो ...का था। और 'होइहै वही जो राम रचि राखा' यानी ...मालेक्यूल भाग्यवाद के सिद्धान्त के पक्के अनुयायी हैं। ...ई मालेक्यूल चाहे वह स-ध्रुव हो या अ-ध्रुव, विद्युत्पूरित ...हो या अपूरित, एकान्त-प्रिय हो या समाज-प्रिय, सादा हो ...या पेचीदा, जैसा भी पैदा हुआ हो, हमेशा वैसा ही रहेगा। ...र एक जाति का मालेक्यूल हमेशा अपनी ही जाति का ...होगा, एक जाति से दूसरी जाति का कभी नहीं हो सकता। हाँ, कभी कभी उपयुक्त सिपाहियों वग़ैरह से सुरक्षित होकर, उन सिपाहियों से घिरा रह कर उनके द्वारा वह अपनी जाति से दूसरी जाति के समाज में जा सकता है, पर ध्यान रहे कि उसकी जाति नहीं बदल सकती, केवल दूसरी जाति के दरबार के अन्दर बलपूर्वक उसका प्रवेश कराया जा सकता है। कौन मालेक्यूल किस जाति का होगा, यह उसके 'बिजलीपन' पर निर्भर है।†

† जुलाई १९३६ के 'सायंटिफ़िक अमेरिकन' नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र के एक लेख के आधार पर।

विस्मय

लेखक, श्रीयुत बलराम दुबे, बी० ए०

(१)

दुःख का उद्भव सुख से होता
अन्तर्हित दुख में सुख-सार।
व्यथा अपरिमित कूक-कुहू में
शलभ-जलन अनुराग अपार॥

(२)

बलि होने में बल का गौरव,
गुप्त गोलियों में लख हार।
विस्मय कब न हुआ किसको सुन
सरस बेड़ियों की झनकार॥

(३)

अन्धकार से निकलें दिनकर
हों प्रकाश से शशि द्युतिहीन।
वैभव में कब नाश नहीं था—
कब था पतन विकास-विहीन?

(४)

पतझड़ में पत्तों का उद्भव,
बहा इंद में रक्त-प्रवाह।
विस्मय क्या आरत भारत की,
होली में जल जाये दाह॥

छोटी बहू

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

जब कोई नया व्यक्ति किसी मकान में आता है तब वह कुछ कुसंयोग का अनुभव करता है। धीरे धीरे वह व्यक्ति परिवार के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है और उनसे परिचय प्राप्त करता है। यही बात बूढ़ी दादी ने परिवार में आई नई दुलहिन—छोटी बहू से कही, जिसका ख़याल था कि दादी के सिवा उसे और कोई नहीं चाहता। उसकी सास को उसके ऊपर मेहरबान होना चाहिए था, परन्तु वह अपनी पतोहुओं में से किसी को भी नहीं चाहती थी। वह उनसे घृणा करती थी। उसका समस्त स्नेह अपनी पुत्रियों के लिए सुरक्षित था। उनसे अप्रसन्न होने पर भी वह उन्हें कटु शब्द नहीं कहती थी। अपनी पतोहुओं के साथ वह कोई ख़ास दुर्व्यवहार नहीं करती थी, परन्तु उनके प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग वह खूब धड़ल्ले से करती थी। छोटी बहू सोचती थी कि उनका अधिकांश प्रयोग उसी के लिए होता है। केवल बूढ़ी दादी भड़पकर उससे नहीं बोलती थी और बराबर उस पर मेहरबान रहती थी।

छोटी बहू वास्तव में बहुत कम आयु की नहीं थी। जब उसका विवाह हुआ था तब भी वह छोटी नहीं थी, और विवाह के बाद तत्काल ही वह अपने श्वसुर के गृह में नहीं चली आई थी। विवाह के बाद अपने मा-बाप के साथ वह दो वर्ष रही। उसके पति को वे लोग प्रायः आमंत्रित किया करते थे। इस प्रकार दोनों में प्रेम हुआ। अब उसकी अवस्था सत्रह वर्ष की थी और उसका नाम कुसुमकुमारी था। उसके पति का नाम चन्द्रनाथ था। उस गृह में वह सबसे छोटा था, परन्तु बहुत शर्मीला था। यद्यपि वह एक तेज़ विद्यार्थी था, तथापि अपने माता-पिता और बड़े भाइयों के नियंत्रण में रहता था और इस प्रकार उसे अपना अधिकार व्यक्त करने का अवसर नहीं मिलता था। यदि वह दिन में घर के भीतर जाता था तो उसकी पत्नी उसके सामने नहीं आती थी। यदि अचानक उनकी भेंट हो जाती थी तो वह उससे कुछ बोलती नहीं थी। रात के समय वे बहुत धीमे धीमे बात करते थे ताकि कोई सुन न ले। इस प्रकार वे अपने प्रेम को स्वच्छन्द रूप से व्यक्त नहीं कर पाते थे। यही कारण था कि उनका प्रेम बहुत गहरा था। छोटी बहू अपने हृदय की सब बात अपने पति से भी नहीं कहती थी, क्योंकि वह जानती थी कि वे स्वतन्त्र नहीं हैं और उसकी सहायता नहीं कर सकते। इस प्रकार अपने कष्टों को वह स्वयं झेलती थी और उनमें किसी को साझीदार नहीं बनाती थी। रात के समय दीपक के प्रकाश में पति-पत्नी मूक भाव से एक-दूसरे की ओर देखकर बहुत आनंदित होते थे।

चन्द्रनाथ क़ानून पढ़ रहा था। उसके अन्य भाइयों में कुछ क्लर्क थे और कुछ घर पर काहिली में दिन काटते थे। वे कभी कभी चन्द्रनाथ से कहते थे कि उसकी क़ानून की पढ़ाई व्यर्थ साबित होगी, क्योंकि वह इतना शर्मीला है कि बोलने के लिए ओंठ तो हिला ही नहीं सकता। जज के सामने जाते ही वह गूँगा हो जायगा।

इस पर चन्द्रनाथ हतोत्साह होकर कहता—"भाई! तब मैं क्या करूँ?"

उसका यह भाई न तो वकील था और न क्लर्क, पर मुरब्बी के पद से बातें किया करता था। उसने कहा—"तुमने सफलतापूर्वक बी० ए० पास किया है। तुम डिप्टी-मजिस्ट्रेटी की परीक्षा क्यों नहीं दे देते या भारत-सरकार के दफ़्तर के लिए क्लर्की की परीक्षा क्यों नहीं देते? वकालत तुमसे नहीं हो सकेगी।

चन्द्रनाथ ने एक निर्बल प्रतिवाद के स्वर में कहा—"क्लर्क की अपेक्षा क्या वकील होना अधिक अच्छा नहीं है?"

"अच्छा! तुम स्वाधीन रहना चाहते हो? परन्तु तुम्हारी प्रकृति ऐसी नहीं है।"

यह झिड़की सुनकर चन्द्रनाथ चुप रह गया।

छोटी बहू को दूसरे क़िस्म की झिड़कियाँ सुननी पड़ती थीं। उसे आज्ञायें दी जाती थीं, पर उसका काम किसी को पसन्द नहीं आता था। यदि कोई दूध का प्याला गिरा देता था तो उसका दोष भी छोटी बहू के ही सिर मढ़ा जाता था। ननदें अन्य बहुओं को आज्ञायें नहीं देती थीं और सास उनको किसी के काम लायक समझती ही नहीं थी।

एक दिन छोटी बहू दूध भरा एक प्याला सीढ़ी के ऊपर लिये जा रही थी। उसकी एक ननद तेज़ी से नीचे उतर रही थी। छोटी बहू एक बग़ल खड़ी हो गई, किन्तु ननद उससे टकरा ही गई और कुछ दूध छलक गया। गृहस्वामिनी के पास तुरन्त शिकायत पहुँची। उसने अपराधिनी पुत्रवधू को बुलाया और उससे नाराज़ होकर कहा—"छोटी बहू! तुम कोई काम ठीक ठीक नहीं करती हो। क्या तुम बिना छलकाये हुए एक प्याला दूध भी नहीं ले जा सकती हो? क्या कलकत्ता में दूध सस्ता है, जो तुम उसे इस प्रकार नष्ट करती हो?"

छोटी बहू ने लज्जित होकर मुलायमियत के साथ कहा—"मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया। छोटी ननद नीचे उतर रही थीं। इत्तिफ़ाक़ से उनका धक्का लग गया।"

सास का पारा गरम हो गया—"मेरी लड़कियों का ही हमेशा ही क़सूर होता है। तुम तो साक्षात् लक्ष्मी बनकर इस घर में आई हो। जैसे मा-बाप, वैसी लड़की। अपराध तुम्हारा है और तुम मेरी लड़की को अपराधिनी बना रही हो। ऐसी बात मैंने कभी नहीं देखी।"

छोटी बहू की आँखों में आँसू छलछला आये। वह अपने कमरे में चली गई और भीतर से उसे बन्द करके चुपचाप रोने लगी।

इस प्रकार की घटनायें प्रायः हुआ करती थीं। रात अधिक बीतने पर जब घर के सब लोग सो जाते, चन्द्रनाथ अपनी पत्नी की ओर देखता और उससे कहता—"मैं देखता हूँ कि तुम उदास हो। तुम मुझसे कोई बात क्यों नहीं कहती हो?"

छोटी बहू ने अपने पति के मुँह पर हाथ रखते हुए उत्तर दिया—"कौन कहता है, मैं उदास हूँ। दूसरों के साथ रहने में तरह तरह की बातें सुननी ही पड़ती हैं। उससे मैं उदास क्यों होऊँ? यदि तुम मुझसे कटुभाषण करोगे तो मैं अवश्य उदास होऊँगी।"

चन्द्रनाथ ने कुसुमकुमारी को अपने निकट खींचा और उसे चूमते हुए कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम चुपचाप कष्ट सहन करती हो और कभी शिकायत नहीं करती हो। परन्तु यह स्थिति सदैव न रहेगी। यदि मुझमें कुछ योग्यता होगी तो एक दिन तुम स्वयं अपने अलग घर की स्वामिनी होओगी। तब तुम्हें किसी की झिड़की न सुननी पड़ेगी।"

पत्नी ने दृढ़ भक्ति के साथ उत्तर दिया—"ऐसे विचारों से अपने हृदय को दुःखी मत बनाओ। जब मैं तुम्हारे साथ रहती हूँ तब मैं बराबर सुखी रहती हूँ। स्त्रियों को थोड़ी-बहुत असुविधा होती ही है।"

अच्छा तो उसे बहुत कुछ झेलना पड़ता था। उसे बच्चों को नहलाना-धुलाना और खिलाना पड़ता था। लड़कियों के बाल सँवारने पड़ते थे और सैकड़ों दूसरे काम करने पड़ते थे। और ज़रा भी चूक हुई तो झिड़की अलग सुननी पड़ती थी। यही उसका पुरस्कार था। उसका फ़ुर्सत का समय चुपचाप रोने में व्यतीत होता था सिर्फ़ बूढ़ी दादी उसका पक्ष लेती थी और कभी कभी उसे सान्त्वना देती थी।

छोटी बहू सबके सो जाने पर सोने जाती थी। पहले वह कभी नहीं सोती थी। उसे भय लगा रहता था कि कहीं कोई टीका-टिप्पणी न करने लगे। जब वह अपने पति का स्नेहपूर्ण मुख देखती थी तब उसे दिन के सारे कष्ट भूल जाते थे। शिकायत करने की उसकी आदत नहीं थी और अपने पति से वह किसी की शिकायत नहीं करती थी। एक रात जब वह बूढ़ी दादी के कमरे से निकलकर अपने कमरे में जा रही थी, दूसरी बहू ने उसे एक बात सुनने के लिए रोका।

कुसुमबाला तुरन्त उसके निकट जाकर बोली—"क्या है बहन?"

"मेरी साड़ी छत पर सूख रही है। उसे उठा ले आओ।"

"यदि मैं कल सुबह उसे ला दूँ तो ?"

"मैं दिन निकलने से पहले ही कपड़ा बदलती हूँ। यदि साड़ी रात भर ऊपर पड़ी रही तो वह ओस से भीग जायगी।"

थोड़ा सोचने के बाद छोटी बहू बोली—"तो बहन तुम भी मेरे साथ चलो।"

"हे भगवान् ! इतनी रात गये मैं छत पर नहीं जा सकती। कल रात हमारी दूसरी ननद ने वहाँ सफ़ेद धोती पहने एक स्त्री को देखा था। मुझे भय मालूम होता है। जब तक कोई साथ न हो मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकती। तुम अपने कमरे से रोशनी ले लो।"

छोटी बहू भूत से उतना ही डरती थी, जितना दूसरी बहू। परन्तु वह बड़ी ही आज्ञाकारिणी थी। तो भी वह इतनी रात गये छत पर जाने से हिचकिचा रही थी। उसने भी सफ़ेद साड़ीवाली स्त्री के बारे में सुना था। उसने कहा—"बहन मुझे भी भय लगता है। भला मैं कैसे जा सकती हूँ ?"

"तुम क्यों डरती हो। छत पर बाघ या रीछ थोड़े ही बैठा है ?"

इसी समय चन्द्रनाथ अपने कमरे से बाहर निकला। उसने मुस्कुराते हुए कहा—"तुम दोनों बड़ी बहादुर हो। मैं तुम्हारी साड़ी छत पर से ले आऊँगा।"

उसे देखते ही छोटी बहू ने अपना घूँघट काढ़ लिया और वह एक ओर खड़ी हो गई। दूसरी बहू मुँह में कपड़ा दाब कर हँसने लगी और बोली—"मेरे देवर, तुम अभी तक सोये नहीं। परन्तु जब तक तुम्हारी बहू तुम्हारे पास न हो, तुम सो कैसे सकते हो ? पर तुम दौड़ते हुए क्यों आये ? मैंने तुम्हारी बहू का सिर बाघ के मुँह में तो डाला नहीं।"

चन्द्रनाथ ने कहा—"यह सवाल नहीं है। जब तक मैं ऊपर न जाऊँ, तुम अपनी साड़ी नहीं पा सकती हो।"

"तुम अपनी बहू को क्यों नहीं जाने देते हो ?"

"वह भी तुम्हारी तरह डरती है। मैं अभी अभी तुम्हारा कपड़ा लाये देता हूँ।"

"नहीं नहीं, तुम्हें इतना कष्ट करने की ज़रूरत नहीं है। तुम अपवित्र हो। तुम अपनी धोती दिन में—दो बार नहीं बदलते हो। तुम मेरी साड़ी मत छूना।"

"बहुत अच्छा। तब छोटी बहू को लाने दो। मैं उसके साथ जाऊँगा।"

दूसरी बहू को फिर हँसी आ गई। उसने अपनी साड़ी का एक कोना अपने मुँह में दाबते हुए कहा—"ख़ैर, इतनी कृपा करना कि जब वह मेरी साड़ी ला रही हो तब तुम उसे मत छूना।"

छोटी बहू बहुत ही अनिच्छापूर्वक ही अपने पति के साथ गई। छत पर पहुँचने पर वह हँसती हुई बोली—"तुम मेरे साथ क्यों आये ? मुझे अकेले ही आना चाहिए था। कल वे सब मेरा मज़ाक उड़ायेंगी।"

चन्द्रनाथ जानता था कि यह उससे भी कुछ अधिक होगा।

समय बीतने पर छोटी बहू घर की उस घृणित टोकरी के समान हो गई जिसमें कूड़ा भर कर बाहर फेंक दिया जाता है। परन्तु इससे उसके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

चन्द्रनाथ ने क़ानून की परीक्षा पास की। उसके बड़े भाइयों मुरब्बी और क्लर्क ने कहा—"चन्द्रनाथ परीक्षा में तो पास हो गया है, पर वह अच्छा वकील कभी नहीं हो सकेगा।"

चन्द्रनाथ ने तय किया कि वह दूर के किसी ज़िले में वकालत शुरू करेगा। हर परीक्षा के बाद उसे छात्रवृत्ति मिलती रही थी और इससे उसने तीन सौ रुपया बचा लिया था। कुछ और धन की ज़रूरत थी। उसने सोचा कि पिता से रुपया माँगना उचित न होगा। रात भर वह अपनी पत्नी से सलाह करता रहा। उसने उसके साथ सहमत होते हुए कहा—"पिता से रुपया माँगने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पास कुछ रुपया है ही। मेरे गहने बेचकर तुम साल भर काम चला सकते हो। लोगों के कहने का ख़याल न करो। मैं जानती हूँ कि तुम शीघ्र रुपया पैदा करने लगोगे।"

चन्द्रनाथ ने कहा—"तुम्हारे आभूषणों के बेचने की ज़रूरत न पड़ेगी। उन्हें थोड़े समय के लिए गिरवी रख देने से काम चल जायगा।"

"जो मुनासिब समझो करो।" कहती हुई पत्नी अपने आभूषण देने के लिए उठी। चन्द्रनाथ ने हाथ पकड़ कर उसे रोकते हुए कहा—"उन्हें इसी समय लाने की ज़रूरत नहीं है। जब आवश्यकता पड़ेगी, मैं तुमसे माँग लूँगा।"

चन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी के गहनों को एक हज़ार में गिरवी रख दिया। इस प्रकार तेरह सौ रुपये लेकर उसने घर से चलने की तैयारी की।

रवाना होने से पहले चन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी से विदा माँगी। उसकी आँखों में पानी था, पर उसने अपने पति को हतोत्साह करने का प्रयत्न नहीं किया। चन्द्रनाथ ने उसके अश्रुपूर्ण मुख को अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—"बूढ़ी दादी के सिवा इस घर में तुम्हारा कोई मददगार नहीं है। जब तक मैं तुम्हें अपने साथ न ले चलूँगा, तुम्हें सुख नहीं होगा।"

छोटी बहू ने अपने पति का आलिङ्गन करते हुए और उसकी छाती पर अपना सिर रखते हुए कहा—"मुझे एक ही बात का कष्ट होगा कि मैं तुम्हें कुछ दिन न देख सकूँगी। इसके सिवा मुझे और कोई कष्ट न होगा। मैं घर में सबसे छोटी हूँ। सबके साथ बराबरी का दावा कैसे कर सकती हूँ ? मेरी चिन्ता मत करना, क्योंकि इससे तुम्हारे काम में विघ्न पड़ेगा। मुझे यहाँ कुछ कष्ट नहीं होगा।"

चन्द्रनाथ ने उसका सिर उठाते हुए कहा—"बेशक ! मैं तुम्हारी चिन्ता करूँगा और इसी लिए मैं और भी कठिन परिश्रम करूँगा।"

जाते समय चन्द्रनाथ अपने आँसुओं को मुश्किल से रोक सका। उसकी स्त्री वह भी न कर सकी। पत्नी की भीगी पलकों को चूमकर वह चला गया।

उसके जाने के पन्द्रह दिन बाद उसकी मा को एक सम्बन्धी के घर जाना पड़ा। सबसे छोटी लड़की भी उनके साथ जाने को तैयार हुई। छोटी बहू बुलाई गई और उससे गहने माँगे गये। इस लड़की का नाम फूलकुमारी था।

छोटी बहू पीली पड़ गई। उसने कहा—"मेरे पास गहने नहीं हैं ?"

"क्या हुए ? नैहर से आने पर तो तुम्हारे पास गहने थे।"

"वे (पति) गहने ले गये है।"

"तुम यहाँ हो और चन्द्र तुम्हारे गहने ले गया।"

"वे अपने साथ नहीं ले गये। वे गिरवी रख गये हैं, क्योंकि उन्हें धन की ज़रूरत थी।"

"स्त्री के गहनों के बल पर धन जमा करना। ख़ूब ! यह अक़्ल उसमें कहाँ से आई ? इस मामले में तुम दोनों ने यहाँ तक साज़िश की कि हमें कानों कान ख़बर न हुई।

एक तूफ़ान-सा आ गया। छोटी बहू को बहुत-सी अप्रिय बातें सुननी पड़ीं। चन्द्रनाथ के पास एक पत्र भेजा गया, पर उसने कुछ जवाब न दिया।

एक महीना के बाद चन्द्रनाथ ने अपने पिता को पत्र लिखा। पत्र का आशय यह था—"पहले महीने में मैंने ७००) पैदा किये। इसमें से मैंने ५००) गहने छुड़ाने के लिए अलग रख लिये हैं। १५०) आपके पास भेज रहा हूँ और ५०) अपने ख़र्च के लिए रख लिये हैं।

पिता ने पत्र को चन्द्रनाथ की मा को पढ़ कर सुनाया और उसे १५०) दिया। उसने कहा—"चन्द्र होनहार पुत्र है। उसने परिवार को रोशन किया है।"

पुत्र के रुपये हाथ में आने पर चन्द्रनाथ की मा को प्रसन्नता हुई और छोटी बहू के प्रति भी उसका हृदय कुछ अनुकूल हुआ। चन्द्रनाथ के भाइयों में कुछ सनसनी पैदा हुई। उन्होंने कहा—"वह नई जगह में गया है, इसलिए पहले महीने में उसे कुछ आमदनी हो गई है, पर आगे चलकर वह कुछ भी पैदा नहीं कर सकेगा। परन्तु उनकी यह भविष्य-वाणी ग़लत साबित हुई। दूसरे महीने में छोटी बहू के गहने उसके पास वापस आ गये और चन्द्रनाथ के पिता के पास १५०) फिर पहुँचे। २०) का मनीआर्डर छोटी बहू के लिए भी था। इन रुपयों को लेकर वह सास के पास पहुँची। पर सास ने लेने से इनकार कर दिया और कहा—"तुम्हीं अपने पास रक्खो।"

तीन या चार महीने के बाद चन्द्रनाथ ने अपनी मा को लिखा कि मैं शीघ्र ही अपनी पत्नी को लिवाने आऊँगा। उसका पहले का शर्मीलापन छूट गया था। पर छोटी बहू से किसी ने इस बात का ज़िक्र न किया।

चन्द्रनाथ घर आया और अपने साथ अपनी बहू को भी ले गया। जब वे जाने के लिए तैयार हो रहे थे तब सास और अन्य बहुएँ और ननदें छोटी बहू को घेर कर खड़ी हो गईं। उसकी आँखों में आँसू थे और उसका

चेहरा झुका हुआ था। उन सबने अनुभव किया कि वह घर की लक्ष्मी थी। सास ने कहा—"तुम मेरे घर की लक्ष्मी हो। जल्दी ही लौटना"। अन्य बहुओं ने कहा—"हमें अपना हाल लिखना न भूलना।"

कम्पित अधरों और अश्रुपूर्ण नेत्रों से छोटी बहू ने सबके चरणों की रज अपने मस्तक पर रक्खी और चली गई।

चन्द्रनाथ के भाइयों ने कहा—"हम जानते थे कि चन्द्र जीवन में बहुत सफल होगा। ऐसे दिनों में उसके ऐसा युवक तुम्हें और कहाँ मिल सकता था।"

कुछ समय के बाद छोटी बहू को दूसरी बहू का एक पत्र मिला। उसने लिखा था—"बहन! हमें तुम्हारी याद बहुत आ रही है। इस घर में तुम्हें इतना प्यार कोई नहीं करता है, जितना मैं करती हूँ। मैंने सुना है कि तुम्हारे यहाँ तोशक की फ़र्दें बहुत अच्छी बनती हैं। मेरे लिए दो शीघ्र भेज दो।"

खुला पत्र लिये हुए छोटी बहू अपने पति के पास पहुँची और बोली—"मेरी दूसरी जीजी दो फ़र्दें चाहती हैं उनके पास शीघ्र जानी चाहिए।"

"चिट्ठी कहाँ है?"

छोटी बहू ने मुस्कुराते हुए वह चिठ्ठी अपने पति के हाथ में दे दी। उसको पढ़ने के बाद चन्द्रनाथ ने कहा—"वह तुम्हें प्यार करती है, इसमें सन्देह नहीं। यदि यह बात न होती तो वह रात को तुम्हें छत पर क्यों भेजती?"

छोटी बहू ज़ोर से हँसी और बोली—"क्या यह हमेशा याद रखने की बात है?"

चन्द्रनाथ ने हँसते हुए उत्तर दिया—"मैं इसे भूल कैसे सकता हूँ? पर चूँकि इस बात को मैं याद रखता हूँ इसलिए मैं उसके पास बजाय दो के तीन फ़र्दें भेजूँगा।"

कवि का नव आह्वान

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुरसिंह

(१)

सारी दुनिया भीग रही है,
नये-नये हैं बादल।
वह कोना ख़ाली है, देखो,--देखो!
सिर पर हैं ये स्मृतियों के दल के दल।
साधु, बताओ! संत, बताओ!
पी हैं, ऐसी बूँदें पी हैं?
—घूम-घूम कर, गरज-गरज कर
इनकी सागर-लहरी
हाँ-हाँ बरसा की है
पागल कवि के उर में!
आह, प्रेम-घन! वह आनंद नहीं है
जोगी हो जाने में,
जो कुछ खो कर पा जाने में
अपने अंदर ही है!

(२)

खोलो अपना अंतर-द्वार;—
रमा हुआ है, घुटा हुआ है
यहाँ युगों का पावस धुआँधार!
जहाँ चमकते
विद्युज्ज्वाल-शिला के नगर बसे हों;
प्राणों के डम-मग शिखरों पर
पूर्ण अतंद्र व्योम के नर्तन;
शत-शत लक्ष सूर्य-से जग-मग
चिर अनादि से जहाँ हँसे हों;
बरस रहा हो सृष्टि-सृष्टि का वैभव
टूट रहे हों व्योम-व्योम के वक्ष;
स्वर्गंगाओं के गजरों का हार पहनकर
हृदय प्रफुल्लित मेरा अपार हर्षित;
विश्व-हास में मृत्यु-स्कंध डुलाकर,
उस ज्ञानेश्वर को ढुलकाकर,
पागल कवि-शिशु केलि-विभोर:—
कूद-कूदकर द्वंद मचाता,
सब देवों को मुकुर दिखाता,
—यह अनंत चिर-विस्मय में खो जाता

(३)

सुनो,—सुनो वह क्षीण अपट पर
नव सावन की मृदुल घहर है!—
वह, संस्मृतियों के भारत-से,
खेल रहे हैं अगम-पुरी की
शाश्वत लीला!
—देखो, वह कोना है अब भी सूना!
कवि का पागल द्वार!
उसके स्थिर-तम सीपी-उर पर
बरस रही है धाराधार—
अगम की वाणी,
उसके एक बिंदु-करतल पर!

(४)

शुष्क हिमावृत जड़ निद्रा में
जग पाषाण!
सह विस्मय की चाप कठोर,
सुन यह रोर!
मसृण समिद्ध शिला-उर-दर्पण
में लख वह घनघोर!—
वज्रायुध की जीवन-वर्षा
जिसमें तेरे तम का शोर!
चमक विहर पागल शिशु-सा, जग!
कवि के नर्तन-पद में गिर-गिर
अमर विभोर!
कवि की आँखों में लख,—सपना
बनता सत्य!
पागल हास विश्व का वैभव-ज्ञान!
क्षार समय सम्मान, क्षार सब कृत्य,
स्वर्ण-सार, पारद-कन-अंतर,
स्थिरतम गत्य-अगत्य;
मिथ्या सब आदान-प्रदान,
युग-युग के निर्माण;
मिथ्या, ओ जग! सब इतिहास-पुराण;—
जिन मंत्रों का स्वर भर
बरस रहा वह जलधर
सर्वाख्यानोपरि वह दान!
वह चिर सावन,
जीवन-प्लावन,
घिर-घिर घहर रहा है
बन विश्वात्मा का धन!

(५)

जग-पवि पुलक उठा, खो
शिथिल शृंखला-भार,
स्वयं बन गया है वह पावन
गम-आगम जलधार!
—पार, साथ कवि के यह मंडल
वहर रहा है हिल-मिल
पारज्योति-नगर के नर्तन-रव से
यति-मय,—
जग चिर
विहर रहा है;—सावन
के कवि-उर का माया-हास;
उस छवि का दर्शन बन!

'१६वीं अप्रैल'

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

सरस्वती के गताङ्क में पाठक इस रोचक लेख का पूर्वार्द्ध पढ़ चुके होंगे। कुँवर साहब के हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने 'ग्रेंडरेवल' नामक ग्रन्थ में वर्णित शिवाजी के इस सुन्दर चरित को परिश्रम के साथ सरस्वती के पाठकों के लिए प्रस्तुत किया।

(२)

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि जब भाग्य साथ देने लगता है तब ख़ूब साथ देता है और तब पाँचों उँगलियाँ घी में होती हैं जैसा कि हमारे यहाँ की एक कहावत है। लोग अब उनसे ऐसा डरते थे कि मुग़ल-दरबार के अन्धविश्वासी मुसलमान उन्हें जिन या भूत समझते थे। चारों तरफ़ धाक बैठी हुई थी। औरङ्गज़ेब यह नहीं भूला था कि शिवाजी ने उसके घोड़े लूट लिये थे जब वह बीजापुर पर चढ़ाई करने जा रहा था। बड़े भाई का वध करवा और बाप को क़ैद में डाल कर जब औरङ्गज़ेब तख़्त पर बैठा तब पुरानी चोट याद आ गई और हुक्म दिया कि शिवाजी का घमण्ड चूर किया जाय। अपने चचा शायस्ताख़ाँ को इस काम के लिए भेजा। शायस्ताख़ाँ के साथ बहुत बड़ी फ़ौज थी—घुड़सवार थे, तोपख़ाना था। एक आफ़त से छुट्टी मिलते ही शिवाजी के सामने यह दूसरी आफ़त आ खड़ी हुई। यह तो तय था कि आमने-सामने के युद्ध में शिवाजी को सफलता नहीं मिल सकती थी, और ऐसा युद्ध करना दीवार से सिर टकराना था। शिवाजी अपनी फ़ौज को लेकर पहाड़ों में छिप रहे। शायस्ताख़ाँ ने बड़ी धूम से पूना में प्रवेश किया और उसी 'रङ्गमहल' में उसने अपना डेरा डाला जो दादा जी ने शिवाजी के लिए बनवाया था।

महाराष्ट्र-देश में तुकाराम एक बहुत श्रेष्ठ साधु कवि हुए हैं। उनके 'अभंगों' का शिवाजी पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनकी कविता सुनते सुनते वे मुग्ध हो जाते थे। आश्चर्य यह है कि इतिहास में 'भूषण' का नाम शिवाजी के सम्बन्ध में नहीं मिलता है, यद्यपि उनकी अधिकांश कविता शिवाजी के ही सम्बन्ध में है। भूषण-ग्रन्थावली के संग्रहकार मिश्रबन्धुओं ने भूषण का जन्म-काल सं[illegible] १६१४ के आस-पास या इसके कुछ पहले माना है। औ[illegible] संवत् १६२७ में शिवाजी का जन्म हुआ था। अतएव [illegible] दोनों समकालीन थे। यह पता नहीं है कि इनका [illegible] क्या था। 'भूषण' तो इनका उपनाम था। उपनाम [illegible] ही बड़े कवि जीवित रहते हैं, जैसे ग़ालिब, दाग़, आ[illegible] इत्यादि। भूषण कानपुर-ज़िले के रहनेवाले थे। शिवा[illegible] जैसे तुकाराम की रचना पर मुग्ध थे, वैसे ही भूषण [illegible] कविता पर भी मुग्ध थे। कदाचित् शिवाजी साहित्य के [illegible] अच्छे मर्मज्ञ थे। कहा जाता है कि भूषण के एक [illegible] को बावन दफ़े सुना था और उन्हें बावन लाख. रु[illegible] इनाम दिया था। भूषण का वह पद्य यह है—"इंद्र जि[illegible] जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर, रावन सदंभ पर रघुकुल[illegible] हैं। पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर ज्यों सहस्र[illegible] पर रामद्विजराज हैं॥ दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग-झु[illegible] पर, 'भूषण' वितुंड पर जैसे मृगराज हैं। तेज तम [illegible] पर, कान्ह जिमि कंस पर, त्यों म्लेच्छ-बंस पर सेर सि[illegible] राज हैं। पद्य भी तो बहुत बढ़िया है। अस्तु।

शायस्ताख़ाँ की आज्ञा से पूना के हर एक फ[illegible] पर पहरा रहता था—बग़ैर आज्ञा के कोई बाहर आ[illegible] नहीं सकता था। एक मन्दिर में तुकाराम के अभंग [illegible] थे। एक दिन शिवाजी वेष बदल कर वहाँ पहुँच गये [illegible] शान्ति-रस का आस्वादन करने लगे। बाज़ार से [illegible] आते उन्हें किसी ने पहचान लिया था। ऐसी [illegible] के पर जम जाते हैं। यह ख़बर फ़ौरन तमाम शहर में [illegible] गई और वह मन्दिर घेर लिया गया। पर "जाको [illegible] साइयाँ मारि सकै नहिं कोय।" शिवाजी मन्दिर से [illegible] निकले। लोगों ने पीछा किया, लेकिन किसी के हा[illegible] आये। यह भी एक किंवदन्ती है कि जिसका पीछा [illegible] गया था वह कोई दूसरा आदमी था, शिवाजी तो

[illegible]र में ही बैठे रहे। ख़ैर, कुछ हो, शिवाजी निकल [illegible]। शिवाजी को कैसे चैन पड़ सकता था कि दुश्मन [illegible] क़ब्ज़ा जमाये बैठा रहे। उन्हें यही एक चिन्ता थी [illegible] किसी तरह शायस्ताख़ाँ की ख़बर ली जाय। लड़कर [illegible]ने की कोई आशा थी नहीं। तब और क्या हो, यह [illegible] था।

यद्यपि शायस्ताख़ाँ की आज्ञा थी कि बिना आज्ञा के [illegible] बाहर आने-जाने न पाये, तो भी यह रुकावट [illegible]त्सवों और बारातों के लिए नहीं थी। एक दिन [illegible]वाजी ने अपने सिपाहियों को बाराती बनाया और ख़ुद [illegible]ा बन कर घोड़े पर सवार होकर बग़ैर किसी रोक-टोक [illegible] फाटक के अन्दर पहुँच गये और पूना में मार-काट [illegible]कर दी। इससे गड़बड़ मच गया। किसी को भी [illegible]ल नहीं था कि इस तरह धावा होगा। शायस्ताख़ाँ [illegible]ाखों में जाकर छिपे और वहाँ से पालकी में बैठ कर [illegible]ल भागे। शिवाजी और उनकी फ़ौज काफ़ी मार-काट [illegible]के निकल गई। शत्रु को धोखा देने के लिए उन्होंने [illegible]ल के हर एक दरख़्त में मशाल बँधवा दी थी। जब [illegible] निकल भागे तब उधर वे मशालें जला दी गईं। मुग़ल [illegible] डर गई। सारे जङ्गल को प्रकाशमान देखकर उसने [illegible]ा कि आक्रमणकारी अधिक संख्या में हैं, उनका कैसे [illegible]ाबिला किया जा सकेगा। अतएव वे बाहर नहीं [illegible]ले। जब इस घटना की ख़बर देहली पहुँची तब [illegible]ङ्गज़ेब बहुत नाख़ुश हुआ—एक तो हार और सो भी [illegible] हिन्दू के मुक़ाबिले में।

[illegible] अद्वितीयता शायद प्रकृति का नियम नहीं है। शिवाजी [illegible] बड़े सेनानायक थे, बहुत बड़े कूटनीतिज्ञ थे, परन्तु [illegible]पुर के महाराज जयसिंह इन बातों में उनसे भी [illegible] बढ़े थे। या ये दोनों उपमा-उपमेय थे। आपस के [illegible] और विद्रोह ने न मालूम कितने साम्राज्यों का सत्या[illegible] किया है। यदि यह हिन्दू-जाति का अभाग्य न कहा [illegible] तो और क्या कहा जाय कि महाराज जयसिंह ऐसे [illegible]ादुर नरपति मुग़ल-सम्राट् के सेवक हों। परन्तु सेवा [illegible]र स्वार्थ आग और पानी की तरह एक साथ नहीं रह [illegible]। जहाँ सेवा है, वहाँ स्वार्थ कहाँ और जहाँ स्वार्थ [illegible] वहाँ सेवा कहाँ? कोई बड़ा काम बिना स्वार्थ-त्याग के [illegible] नहीं हुआ है, और यह बहुत बड़ी भूल है कि किसी स्वार्थ-त्याग के परिणाम की फ़ौरन प्रतीक्षा की जाय। 'चट मँगनी और पट विवाह' वाला सिद्धान्त प्रकृति का नहीं है। उसका नियम संचय और संग्रह है। जब वसुदेव देवकी को विदा कराये लिये जा रहे थे तब उसका भाई कंस साथ में ही था। जब यह देववाणी हुई कि देवकी की सातवीं सन्तान उसका घातक होगी तब उसने यही सोचा था कि वह देवकी की सातवीं सन्तान का वध कर उससे छुट्टी पा जायगा। नारद जी ने यह सुझाया कि अगर सात रेखायें अलग अलग खींची जायँ तो गिनने के उलट-फेर से कोई भी रेखा सातवीं हो सकती है। अतएव कंस देवकी की प्रत्येक सन्तान का वध करवाने लगा। पूछने पर नारद जी ने कहा था कि वे चाहते थे कि पाप इतना संचित हो जाय कि 'तदात्मानं सृजाम्यहम्' की नौबत आ जाय।

प्रत्येक बड़े काम में देर लगती है। स्वार्थ-त्याग कभी निष्फल नहीं जाता। क्या कोई कह सकता है कि प्रातः स्मरणीय महाराना प्रतापसिंह का जंगलों में पड़ा रहना और महान् कष्ट उठाना बेकार हुआ? संसार में वे जो आदर्श छोड़ गये हैं उसकी शायद ही कोई मिसाल हो। महाराज जयसिंह के सामने शिवाजी की मिसाल मौजूद थी। अगर शिवाजी औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार कर लेते तो महाराज जयसिंह की ही भाँति उनकी भी ज़िन्दगी चैन से कटती। परन्तु आज संसार उसी तरह उन्हें भूला होता, जैसे जयसिंह को भूला हुआ है। औरङ्गज़ेब ने अब उन्हीं महाराज जयसिंह को शिवाजी के मुक़ाबिले में भेजा। ठीक सोचा। अपनों से ज़्यादा अपनी और कौन बुराई कर सकता है? महाराज जयसिंह को सर्वाधिकार दिये गये। बहुत बड़ी फ़ौज साथ में थी। शिवाजी समझते थे और ठीक समझते थे कि नमक से नमक नहीं खाया जा सकेगा। अब की दफ़ा अफ़ज़लख़ाँ और शायस्ताख़ाँ का मुक़ाबिला नहीं था। मुक़ाबिला था महाराज जयसिंह का, जो ख़ुद बहुत बड़े सेनानायक थे। मरहठे घबराये हुए थे, शिवाजी परेशान थे। एक तरफ़ मुग़ल-साम्राज्य की पूर्ण शक्ति और दूसरी तरफ़ केवल दस-पन्द्रह हज़ार सिपाही और वे भी पूरी तौर से शिक्षित योद्धा नहीं। अब तक जो दो-एक छोटी छोटी मुठभेड़ें हुई थीं उनमें शिवाजी के सैनिकों ने बड़ी वीरता से अपने प्राण दिये थे। परन्तु जान देना

और बात है। ऐसे अवसरों पर तो संख्या ही सफलता का कारण बनती है। महाराज जयसिंह भी समझते थे कि आमने-सामने की लड़ाई को शिवाजी बचायेंगे और इस तरह न मालूम कितने दिन लग जायँ। युद्ध के विषय का कौन ऐसा दाँव-पेंच था जो महाराज जयसिंह के समझ में न आता? उन्होंने उस पहाड़ी को जिसमें शिवाजी और उनकी फ़ौज छिपी हुई थी, घेर लिया और वहाँ कोई चीज़ बाहर से नहीं पहुँचने पाती थी। लोग भूखों मरने लगे। जब पेट विद्रोह मचाता है तब किसी की नहीं सुनता। जब लोग पीड़ित और व्याकुलित हो गये तब महाराज जयसिंह ने शिवाजी से कहला भेजा कि वे उनसे आ करके मिल लें। बहादुर को बहादुर पहचानता है। शिवाजी ने समझा होगा कि बहादुर दुश्मन पर भी विश्वास किया जा सकता है। शिवाजी आये और महाराज जयसिंह ने उचित मान और सम्मान के साथ उनका स्वागत किया और उठकर गले मिले। महाराज जयसिंह का यह कहना था कि वे देहली जाकर सम्राट् से मिलें और शिवाजी दिल्ली जाने को राज़ी नहीं होते थे। महाराज जयसिंह ने कहा कि उनकी रक्षा के वे ज़िम्मेवार होंगे और इसके लिए एक ख़त अपने लड़के के नाम लिख देंगे। मजबूरी थी। शिवाजी ने प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपने लड़के सम्भाजी को लेकर आगरे को प्रस्थान किया। महाराज जयसिंह ने अपने लड़के रामसिंह को ख़त लिख दिया कि इन बाप-बेटों की पूरी रक्षा की जाय।

दिल्ली पहुँचने पर शिवाजी और सम्भाजी ने रामसिंह के साथ दरबार में प्रवेश किया। साथ में सम्राट् की भेंट के लिए एक किश्ती में दो हज़ार मोहरें थीं। रस्सी के जल जाने पर भी ऐंठन बाक़ी रहती है, और फिर यहाँ अभी पूरी तरह रस्सी जली भी नहीं थी। शिवाजी ने सम्राट् का उसी तरह अभिवादन किया, जिस तरह उनकी रिआया उनका अभिवादन करती थी। यह मड़क देखकर औरङ्ग-ज़ेब को बहुत बुरा मालूम हुआ होगा, परन्तु चेहरे पर क्रोध के कोई चिह्न नहीं प्रकट होने दिये। जहाँ जाकर शिवाजी खड़े हुए, वहाँ से एक सरदार ने उन्हें हटाकर दूसरी जगह खड़े होने के लिए कहा। औरङ्गज़ेब ने उसे बुलाकर ऐसा कहने का धीरे से उसके कान में हुक्म दिया था। वह स्थान बहुत ऊँचे दरबारियों का नहीं था। शिवाजी वहाँ राठौर-फ़ौज के एक सरदार के पीछे खड़े किये गये। वह सरदार एक दफ़ा शिवाजी से लड़ने गया था और हार कर उसे भागना पड़ा था। शिवाजी यह अपमान नहीं सह सके। वे कहने लगे कि मेरे आदमियों ने इनकी पीठ देखी है और वही आज मुझे दिखाई जा रही है। रामसिंह डरे, क्योंकि वे सम्राट् के स्वभाव को जानते थे। उन्होंने सम्राट् से निवेदन किया कि शिवाजी पहाड़ों के रहनेवाले सरदार हैं, इनको दरबार के नियमों का ज्ञान नहीं है। औरङ्गज़ेब चुप तो रहा, परन्तु चेहरा बतला रहा था कि ज़बान खुलने के लिए तड़फड़ा रही है।

रामसिंह के साथ शिवाजी और उनके लड़के सम्भाजी जयपुर के मकान को वापस आये। शिवाजी शिकायत कर रहे थे कि सम्राट् ने उनका अपमान किया है। इतने में मकान को शाही फ़ौज ने आकर घेर लिया। औरङ्गज़ेब ने यह सोचा होगा कि शिवाजी को फ़ौरन मरवा डालने से अशान्ति और बढ़ेगी तो फिर वह तरीक़ा क्यों न काम में लाया जाय कि साँप भी मर जाय और लाठी न टूटे—घुला घुला करके उनकी जान ली जाय। जो सेना मकान को घेरे हुए थी उसके अफ़सर ने यह हुक्म दे दिया कि बिना उसकी आज्ञा के शिवाजी कहीं बाहर आ-जा न सकेंगे। इधर यह व्यवहार था, उधर फलों और फूलों की भेंटें उनके लिए सम्राट्-द्वारा भेजी जाती थीं—रोटी और पत्थर साथ ही साथ मिलते थे। रामसिंह बराबर शिवाजी की सिफ़ारिश करते थे, लेकिन जो अपने स्वतन्त्र विचार खो चुका हो उससे कौन कब डरा है। यह सच है कि औरङ्गज़ेब महाराज जयसिंह को बहुत मानता था। और यहाँ तक कि डरता भी था, परन्तु समझता होगा कि जो अपनों का न हुआ वह दूसरों का क्या होगा। उसी की सब इज़्ज़त करते हैं जो अपनी इज़्ज़त करना जानता है। वह अपनी इज़्ज़त क्या करेगा जो आन-बान खोकर अपनों का विरोधी बन गया हो? रामसिंह के बनाये कुछ न बनती थी। एक दफ़ा औरङ्गज़ेब ने बातों बातों में कह दिया कि वह किसी हिन्दू पर विश्वास नहीं करता। अब रामसिंह को बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। शिवाजी के हाथ-पैर ढीले पड़ गये। जानते थे कि अब की दफ़ा यहाँ से निकल जाना कोई हँसी-खेल नहीं है। जब ह-उद्वेग कुछ शान्त हुआ तब शिवाजी ने सोचना शुरू किया कि क्या करना चाहिए। कोई तरकीब समझ में नहीं आती थी। बाहर से किसी मदद की उम्मीद नहीं थी और न यह उम्मीद थी कि किसी तरह भागने का मौक़ा मिलेगा। ज़हर की दवा ज़हर है। शिवाजी ने भी उसी कूटनीति से काम लेने की दिल में ठानी जिससे औरङ्गज़ेब काम ले रहा था। औरङ्गज़ेब की तरफ़ से तो भेंटें आती ही थीं। अब शिवाजी ने भी भेजना शुरू किया। शिवाजी और दरबारियों के यहाँ भी चीज़ें भेजते थे और वहाँ से भी तोहफ़े आते थे। दरबार के सन्देह को और भी शान्त करने के लिए शिवाजी ने अपनी माता और स्त्री को आगरा में बुला भेजने के लिए हुक्म माँगा था। अब वही हो रहा था, जो औरङ्गज़ेब चाहता था। समझता होगा कि कैसा बेवक़ूफ़ है कि ख़ुद तो फँसा है और घर-वालों को भी फँसाना चाहता है। ख़ुशी की एक यह भी वजह थी कि वह समझता था कि अब शिवाजी ने दुम दबा कर अधीनता स्वीकार कर ली है। इस आज्ञा माँगने के यही अर्थ लगाये जा सकते थे। रहे सहे सन्देह को भी और शान्ति मिल गई। जब शिवाजी ने अपने फ़ौज के सिपाहियों को वापस जाने के लिए आज्ञा माँगी। पहरे की सख़्ती भी घट गई। अब जिन बहँगियों में लदी जो चीज़ें आती या जाती थीं उनकी उतनी कड़ी देख-भाल नहीं की जाती थी।

एक दफ़ा शिवाजी बीमार पड़े। दरबार के हकीम उनकी दवा करते थे। उनका कराहना और चिल्लाना लोग सुनते थे जैसे कि वे त्रिदोष से पीड़ित हों। एक दफ़ा उन्होंने आँख खोली और कहने लगे कि उनका अच्छा होना मानुषीय प्रयत्नों के परे है। उन्हें अब केवल ईश्वर का भरोसा रह गया है। उन्होंने आज्ञा माँगी कि उनके दो नौकरों को बाहर जाने की इजाज़त दी जाय, क्योंकि वे दो घोड़े ख़रीद कर मथुरा में कृष्ण को भेंट करने के लिए भेजा चाहते हैं। पहरेदारों के अफ़सर ने आज्ञा दे दी। जब शिवाजी कुछ अच्छे होने लगे तब दरबार के शिष्टाचार के अनुसार दरबार के कुछ दरबारियों के यहाँ बहँगियों में खाने और पीने को चीज़ें भेजना चाहा। इसमें क्या रोक-टोक होती? हुक्म मिल गया। एक में शिवाजी और दूसरे में सम्भाजी लेटकर बाहर पहुँच गये। घोड़े पहले से ही मौजूद थे। उन्हीं पर सवार होकर दोनों चलते बने। बहँगियों के उठानेवाले शिवाजी के दो सरदार थे, जो वेष बदले कुलियों का काम करते थे। तीसरा सरदार हीरा शिवाजी की जगह पर पलँग पर लेट रहा। रोज़ की तरह हकीम के साथ काम करनेवाला तेल मलने के लिए आया। उसको पता चल ही गया होगा कि यह महाशय कौन हैं, लेकिन बाहरी रिश्वत! यदि जादू का नाम सार्थक है तो तू ही जादू है। मुँह मीठा हो जाने से बन्द हो गया। हीरा इनके साथ बाहर निकल आया। पहरेदारों ने समझा होगा कि बाहर दवा लेने जा रहा होगा, दूसरे हकीम के सहायक के साथ जाने में और भी शक नहीं हुआ।

मुग़ल-साम्राज्य ने शिवाजी का पता लगाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। शिवाजी वेष बदलते और इधर-उधर छिपते सब तरह की मुसीबतें उठाते पाँचवें महीने फ़क़ीर के वेष में अपनी राजधानी में पहुँचे। रिआया ने बड़ी ख़ुशी मनाई और हर एक गढ़ी से तोपें दगीं। सम्भाजी को शिवाजी रास्ते में ही छोड़ गये थे। वे भी शिवाजी के लौट जाने पर फ़क़ीरों के वेष में घर पहुँचाये गये।

चाहे सब कुछ खो जाय, लेकिन ईश्वर यह अकृपा न करें कि किसी का स्वाभिमान खो जाय। महाराज जयसिंह चिढ़े हुए थे कि जो ज़बान शिवाजी को उन्होंने दी थी उसके ख़िलाफ़ औरंगज़ेब ने शिवाजी से बर्ताव किया था। वे इससे भी चिढ़े हुए थे कि रामसिंह पर शिवाजी के भाग जाने का दोष लगाया गया था और वे दरबार से निकाल दिये गये थे। इससे भी चिढ़े थे कि सम्राट् ने कहा था कि वह किसी हिन्दू पर विश्वास नहीं करता। परन्तु "कर्तव्य से जो च्युत हो चुका हो, क्या है जिसे वह न डुबो चुका हो?" इन सब अपमानों को महाराज जयसिंह ने, जैसी अँगरेज़ी में कहावत है, अपनी जेब में रख लिया था और हर एक ख़त में सम्राट् को शिवाजी का पता न लगा पाने पर खेद प्रकट करते थे और अपने को निर्दोषी प्रमाणित करने का प्रयत्न करते थे। दरबारी सम्राट् को भड़का रहे थे। और भड़काने की ज़रूरत ही क्या थी? वह ख़ुद ही महाराज से कब ख़ुश

ये। ज़रूरत ज़बान रोके हुए थी। जब महाराज को ये ख़बरें मिलीं तब कहने लगे कि ईश्वर मुझे मौत दे। मेरी राजभक्ति पर दोष लगाया जा रहा है, जिसे हमेशा मैंने अपना धर्म समझा। अगर यही धर्म है जो महाराज समझे हुए थे तो अच्छा होता कि यह शब्द ही संसार भूल जाता। आगरा से हुक्म आ गया कि महाराज अपने पद से हटा दिये गये। तब भी आँखें न खुलीं। उस समय उनका मक्का आगरा था। वहीं को चले। वहाँ पहुँचकर और न मालूम किन अपमानों का सामना करना पड़ता। परन्तु मृत्यु ने कृपा की। रास्ते में ही मर गये।

शिवाजी अपने कामों में लगे हुए थे। उनकी वही पुरानी धुन थी कि हिन्दू-जाति में जाग्रति आ जाय और एक हिन्दू-राज्य की स्थापना हो जाय। क़िस्मत बराबर साथ दे रही थी और हिम्मत मदद कर रही थी। जो लड़ाइयाँ लड़ीं, जो धावे किये, सबमें सफलता हुई। सन् १६६८ में मुग़ल-साम्राज्य से उनकी सन्धि हो गई। जो सत्ताईस गढ़ियाँ शिवाजी के पास थीं वे उन्हीं के पास रहीं। केवल दो क़िले, पुरन्दर और सिंहगढ़, बादशाह को लौटा दिये। सन्धि होने पर शिवाजी ने औरंगज़ेब को एक ख़त लिखा। उसके जवाब में उसने उन्हें राजा का ख़िताब दिया और बहुत प्रसन्नता प्रकट की। मजबूरी भी कभी कभी दोस्ती की वजह होती है। बीजापुरवालों ने जब यह देखा तब उन्होंने भी शिवाजी से सन्धि कर ली और साढ़े तीन लाख रुपया भेंट में भेजे।

औरंगज़ेब कब हार माननेवाला था और फिर एक हिन्दू से। एक 'आस्तीन के साँप' की जगह पर दूसरा पैदा हुआ। महाराज जयसिंह के मरने पर महाराज जसवन्तसिंह आ गये। शिवाजी ने महाराज जसवन्तसिंह से कहा कि अब मुग़लों और मरहठों में सन्धि हो गई है, इस वजह से मरहठा-फ़ौज के कुछ आदमी मुग़ल-सेना में रख लीजिए ताकि जो कुछ पुराना वैमनस्य रह भी गया हो वह भी जाता रहे। महाराज जसवन्तसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। संदेहपूर्ण आत्मा को कभी शान्ति नहीं मिलती है। औरङ्गज़ेब चौकन्ना हो गया और उसे शक हुआ कि शाहज़ादा मोअज्ज़म, शिवाजी और महाराजा जसवन्तसिंह—यह त्रिकूट चूर्ण उसे हज़्म कर जायगा। औरंगज़ेब अपने लड़कों का भी एतबार नहीं करता था और ख़ासकर मोअज्ज़म का। वह भली भाँति जानता था कि वही चालें उसके साथ भी चली जा रही हैं जो उसने अपने बाप के साथ चली थीं। विश्वास से विश्वास पैदा होता है। जैसे औरंगज़ेब मोअज्ज़म का विश्वास नहीं करता था, वैसे ही मोअज्ज़म भी बादशाह का विश्वास नहीं करता था। गुप्तचर लगे हुए थे, जो बादशाह की ख़बरें शाहज़ादे तक पहुँचाया करते थे। लोगों ने ख़बर दी कि एक ख़त उनके नाम दरबार से भेजा गया है जिसमें लिखा है कि शिवाजी को धोखा देकर अपने यहाँ बुलाओ और पकड़कर यहाँ भेज दो। मोअज्ज़म इस षड्यन्त्र में कोई भाग नहीं लिया चाहता था और उसने शिवाजी के पास कहला भेजा कि वे बुलाने से न आवें। एक दफ़ा मोअज्ज़म ने शिवाजी को जसवन्तसिंह के साथ देखा था और उस पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। जब बादशाह का ख़त पहुँचा तब शाहज़ादा ने शिवाजी को बुला भेजा। जानता ही था कि ख़बर पहुँचा दी गई है और वे बुलाने से नहीं आवेंगे। मुग़लों और मरहठों में फिर लड़ाई छिड़ गई। औरंगज़ेब ने उस फ़ौज में जिसकी हुकूमत मोअज्ज़म और जसवन्तसिंह के हाथ में थी, दिलेरख़ाँ को तैनात कर दिया और इसको भी वही पद दिया जो इन दोनों को प्राप्त था। इससे ये लोग चिढ़ गये और इन दोनों से दिलेरख़ाँ भी चिढ़ गया था। आये दिन एक-दूसरे की शिकायतें बादशाह के पास पहुँचा करती थीं। बड़ा गड़बड़ मचा हुआ था। तीनों अपना अपना हुक्म चलाते थे। किस किस की कौन सुनता! इस खींचातानी में कैसे काम ठीक होता? उधर मरहठे पहले से ही सोचे हुए थे कि उनका पहला आक्रमण सिंहगढ़ पर होगा। शिवाजी का यह ख़याल था कि यह गढ़ी हाथ नहीं आयेगी और उनकी माता उसी के लिए ज़िद कर रही थीं। शिवाजी राज़ी तो हो गये, लेकिन गढ़ी पर अधिकार करने का कोई उपाय नहीं सोच पाते थे। अपने एक विश्वासपात्र और महापराक्रमी सरदार ताना जी को बुला भेजा। वह अपने लड़के की शादी के कामों में फँसा हुआ था। ख़बर मिलते ही फ़ौरन आया, यद्यपि अपशकुन हो रहे थे। आकर पूछा कि क्या हुक्म है। शिवाजी ने कहा कि इस समय मेरी माता को तुम्हारी

ज़रूरत है। जब जीजाबाई ने अपनी इच्छा प्रकट की तब तानाजी ने अपनी पगड़ी उतारकर उनके पैरों पर रख दी और कहा कि माता सिंहगढ़ पर आपका अधिकार होगा। तानाजी अपने आदमियों के साथ गढ़ी के नीचे चुपके से रात में पहुँच गया और वहाँ नीचे जो गाँव बसा हुआ था उसके लोगों से सब हाल पूछा और अपने एक आदमी को कमन्द के ज़रिए से ऊपर चढ़ा दिया, जो एक गोह के कमर में बँधी हुई थी। उसके पहुँचते ही वहाँ गड़बड़ मच गया। उसने वहाँ जाकर एक बड़े पत्थर से कमन्द को बाँध दिया। वह तो काम आया, परन्तु कमन्द के सहारे सब मरहठे गढ़ी में पहुँच गये और मार-काट कर उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस संघर्ष में तानाजी भयानक रूप से घायल हुआ था। मरने के पहले चेहरे पर वही मुस्कराहट थी जो केवल कर्तव्य पालन करने के सन्तोष से पैदा होती है। शिवाजी बहुत दुखी हुए और कहने लगे कि सिंहगढ़ तो प्राप्त हो गया, परन्तु सिंह खो गया। मरहठों के दिल बढ़े हुए थे और मुग़लों के दहले हुए। जीत और हार का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जितनी गढ़ियाँ सन्धि के समय शिवाजी ने बादशाह को लौटा दी थीं उनको फिर जीत लिया।

दिलेरख़ाँ बीमारी का बहाना करके चला गया। उसको डर हो गया था कि मोअज़्ज़म उसको ज़हर दिलवा देगा। बादशाह को लिख भेजा कि शाहज़ादा बादशाह की जान लेने की फ़िक्र में है। बादशाह ने एक विश्वासपात्र उच्च पदाधिकारी दरबारी को भेजा कि फ़ौज के इन तीनों अफ़सरों की जाँच कर रिपोर्ट भेजे। वह बेचारा ख़ुद परेशान था कि किसके ख़िलाफ़ क्या कहे और हर तरफ़ शिकायतों का पूरा दफ़्तर खुला हुआ था। इन सबका परिणाम यह हुआ कि लड़ाई बन्द हो गई, लेकिन शिवाजी ने हमले नहीं बन्द किये। अब औरंगज़ेब ने महाबतख़ाँ को फ़ौज का सरदार बना कर भेजा। इनके ठाठ-बाट का क्या कहना था! साथ में चालीस हज़ार फ़ौज थी, एक छोटी-मोटी फ़ौज दोस्तों और वाह वाह करनेवालों की थी। इतना ही नहीं, चार सौ नाचनेवालियाँ भी साथ में थीं। इस साज़ और सामान से उसने मरहठों का मुक़ाबिला किया। परिणाम जो होना था वही हुआ। मुग़ल-फ़ौज के बीस हज़ार आदमी काम आये। जिन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली या जो ज़ख़्मी हुए उनके साथ शिवाजी ने अपनी आदत के मुआफ़िक़ पूर्ण उदारता का बर्ताव किया। सबको रुपया देकर घर भेजवा दिया। मुग़ल-फ़ौज के छः हज़ार घोड़े, सवा सौ हाथी और पूरा ख़ज़ाना शिवाजी के हाथ आया।

पहाड़ी चूहे से (औरंगज़ेब शिवाजी को यही कहता था) बादशाह अब और नाराज़ हो गया। अब बहादुरख़ाँ फ़ौज का सरदार बनाया गया। यह ख़ुद डरा हुआ था और पिटते पिटते फ़ौज की भी हिम्मत पस्त हो गई थी। अतएव इसने कभी लड़ने का नाम नहीं लिया। शुरू से ही नये क़िलों के बनवाने में लगा रहा ताकि कम से कम शाही जायदाद पर तो हमले आसानी से न हो सकें। बेकार रहने से सिपाही बुज़दिल हो गये थे। डाक्टर जान फ़ायर ने लिखा है कि 'वही सबसे अच्छा सिपाही समझा जाता था जो बहुत तेज़ दौड़ कर अपनी जान बचा सकता था'। काम में न लाने से और रोज़ साफ़ किये जाने से तलवारें और बन्दूक़ें चमकती थीं और उनको छू कर उन पर धब्बा न डालने का सिपाहियों को घमंड था। बहादुरख़ाँ विलासप्रिय था। महल में चार बीबियाँ और तीन सौ रखेली रंडियाँ थीं। चौदह महीनों से फ़ौज को तनख़्वाह नहीं दी गई थी। ऐसी दशा में यदि मरहठों की शक्ति बढ़ती गई तो क्या आश्चर्य्य है।

गोलकुंडा ने मुसलमानी राज्य होने पर भी बीजापुर का साथ नहीं दिया था, तो भी शिवाजी ने उससे अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। उसने बग़ैर किसी हुज्जत के अधीनता स्वीकार कर ली और लाखों रुपयें भेंट में दिये। उसी साल बीजापुर के बादशाह की मृत्यु हो गई। राज्य की हीन दशा पहले से ही थी। शिवाजी ने उसका बहुत बड़ा हिस्सा जीतकर अपने राज्य में मिला लिया और जब जीत कर वहाँ गये तब बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत हुआ। समय के हेर-फेर से सब कुछ सम्भव है। असम्भव सम्भव हो जाता है। एक दिन वह था जब बादशाह को सलाम करने में ज़मीन पर मत्था न टेकने से यह डर हो रहा था कि कहीं जान ही पर न बन आवे और वह भी एक दिन था जब शिवाजी के बाप शाहजी ज़िन्दा दीवार में चुनाये जा रहे थे और आज वह दिन था कि उनके सामने सब लोग सिर झुकाते थे।

दक्षिणी भारत में अब वही वे थे। उनके उद्देश्य में उनको पूर्ण सफलता हो चुकी थी। हिन्दू-जाति की निद्रा भंग हो चुकी थी और हिन्दू-राज्य की स्थापना हो गई थी। संसार की विचित्र गति है। जो उनके विरोधी थे, आज उन्हीं को उन पर अभिमान था। सफलता के सब साथी हैं। सन् १६७४ में रायगढ़ के क़िले में शिवाजी का राज्याभिषेक बड़े धूमधाम से हुआ। वे प्रतापगढ़ के क़िले में भगवती का दर्शन करने गये और सोने का एक बहुत क़ीमती छत्र भगवती पर चढ़ाया।

राज्याभिषेक के दो साल बाद तक शिवाजी चुप से रहे। जिस श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से वे अपनी माता को देखते थे वह आदर्श था। उनकी माता की मृत्यु हो चुकी थी और उस शोक से वे इतना व्याकुल हुए थे कि उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया था। सन् १६७६ में उनके जीवन की आशा नहीं रह गई थी, परन्तु तबीअत फिर सँभल गई। उनके दुखी होने का एक और भी कारण था। उनके उत्तराधिकारी सम्भाजी के कुछ और रङ्ग-ढङ्ग थे। शिवाजी की प्रथम रानी का देहान्त हो चुका था और उनकी रानी अपने पुत्र राजाराम को गद्दी पर बिठलाने के लिए शिवाजी की नाक में बराबर दम किया करती थी। वास्तव में योग्य राजाराम ही थे। शिवाजी के विमातृ भाई व्यंकोजी अपने बाप शाहजी के मरने पर उनकी जगह पर करनाटक देश के प्रबन्धकर्त्ता बना दिये गये थे। शिवाजी के अच्छे होते ही उनको फिर वही पुरानी धुनि हुई। दक्षिणी भारत में कुछ जगहें अभी बच गई थीं, जिन्हें विजय करना था। मौक़ा अच्छा था। मुग़ल-सेना उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त में युद्ध कर रही थी और औरङ्गज़ेब ख़ुद राजपूताना में फँसा हुआ था। जिन जगहों पर शिवाजी हमला किया चाहते थे उनमें करनाटक देश भी था, जहाँ उनका भाई गवर्नर था। कुछ बहाना ढूँढ़ना था ही। शिवाजी को सूझ गया। उन्होंने भाई के पास कहला भेजा कि बाप की जो जायदाद है उसमें उनका भी हक़ है। व्यंकोजी को कब पसन्द आता। उन्होंने हीले-हवाले किये। शिवाजी ने कहा कि वे बलात् क़ब्ज़ा कर लेंगे। फलतः सत्तर हज़ार फ़ौज लेकर शिवाजी रवाना हुए। धाक बैठी हुई थी। कौन सामने आता? जो आया भी उसने मुँह की खाई। करनाटक देश पर भी विजय प्राप्त हो गई। व्यंकोजी हारे और भाग खड़े हुए। सब तरफ़ मदद की पुकार लगा आये। कौन आग में कूदता और किसी दूसरे के लिए। चारों तरफ़ शिवाजी का नाम गूँज रहा था। जब कहीं से कोई उम्मीद नहीं रह गई तब अधीनता स्वीकार कर ली। शिवाजी ने उन्हें तंजोर शहर और आस-पास की ज़मीन जागीर में दे दी, लेकिन इस शर्त के साथ कि वे हन्मन्त को अपना प्रधान मन्त्री बनावें। मरता क्या न करता? मानना पड़ा। व्यंकोजी बरायनाम के मालिक थे। सब अधिकार मन्त्री के हाथ में था। व्यंकोजी इतना परेशान हो गये कि राज्य छोड़ कर संन्यासी हो गये।

आख़िरी लड़ाई शिवाजी ने बीजापुर की सहायता करने में लड़ी थी। औरंगज़ेब को बीजापुर हमेशा खटकता रहा था। फिर लड़ाई छेड़ दी। बीजापुर ने शिवाजी से मदद माँगी। शिवाजी ने मदद दी और बीजापुर तहस-नहस होने से बच गया।

वहाँ से वापस आने पर शिवाजी के विचारों में बड़ा परिवर्तन आ गया था। वे बहुत शान्त हो गये थे और अपने राज्य के भविष्य की प्रायः चिन्ता किया करते थे। माँ और प्रथम स्त्री के देहान्त से वे बहुत खिन्नचित्त रहा करते थे। सम्भाजी की अयोग्यता और दूसरी स्त्री की कलहप्रियता उन्हें बहुत दुखी किये हुए थी।

उनके जीवन-रूपी नाटक का अब अन्तिम दृश्य था। पैर के घुटने पर वर्म आ गया था जो बढ़ता गया, यहाँ तक कि उन्हें बुख़ार आने लगा। अन्त में ३ अप्रैल सन् १६८० को यवनिका का पतन हुआ। उनकी मृत्यु के समाचार सुनने पर जब दरबार के ख़ुशामदी बुरा-भला कहने लगे तब औरंगज़ेब ने कहा—"वह बहुत बहादुर फ़ौज का सरदार था, जिसने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करके छोड़ा। उन्नीस सालों तक मेरी फ़ौजें उससे लड़ती रहीं, परन्तु उसका राज्य विस्तृत ही होता गया।"*

शिवाजी पर हिन्दुस्तान और हिन्दू-जाति को हमेशा उचित अभिमान रहेगा।

---

* डेनिस किन्केड की पुस्तक 'दि ग्रान्ड रेबल' से मुझे इस लेख के लिखने में सहायता मिली है।

चीन-जापान-युद्ध के लिए वर्दियाँ

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

"जापान-गवर्नमेंट ने चीन में हो रहे युद्ध के लिए और बीस करोड़ येन की रक़म मंज़ूर की है। इसको पूरा करने के लिए गवर्नमेंट लोगों पर युद्ध-कर लगाने का विचार कर रही है।"

यह समाचार पढ़कर पाठक के मन में प्रायः यह विचार उत्पन्न होता है कि इस रुपये से गवर्नमेंट जंगी हथियार, बम, तोपें, बंदूकें तथा टैंक, हवाई जहाज़, जंगी जहाज़ और पनडुब्बियाँ ख़रीदेगी। परन्तु इस बात की तरफ़ तो बहुत कम ध्यान दिया जाता है कि युद्धक्षेत्र में लड़नेवाले सैनिकों को हथियारों के अतिरिक्त कई और चीज़ों की भी ज़रूरत होती है। भोजन के अलावा उन्हें कपड़े चाहिए ताकि वे उनको गर्मी-सर्दी से बचा सकें। सैनिकों के स्वास्थ्य का ख़याल रखना जहाँ इसलिए आवश्यक होता है कि लड़ाई अंत में मनुष्यों से ही करनी है, वहाँ वार-आफ़िस यह बात कभी नहीं भूलता कि जलवायु के कारण अगर कुछ सैनिकों को कोई बीमारी चिमट जाय तो इससे इर्द-गिर्द की सारी फ़ौज के लिए ख़तरा पैदा हो जाता है। यही कारण है कि वह ख़ूराक के बाद उनके पहनने के कपड़ों का सबसे ज़्यादा ख़याल रखता है।

यह ठीक है कि युद्ध पर ख़र्च होनेवाली रक़म का एक बड़ा भाग अस्त्रशस्त्रों और जहाज़ों पर व्यय होता है। परन्तु इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि शेष रुपये का एक तिहाई, बल्कि इससे भी अधिक भाग सिपाहियों के वस्त्र खा जाते हैं।

एक फ़ौजी सिपाही को देखिए। वह कौन-से कपड़े पहने है? पाँवों में जुर्राब और बूट, टाँगों में पट्टियाँ, उसके ऊपर गरम पायजामा, फिर कमीज़ के ऊपर कोट और सिर पर टोपी। भारतीय सिपाही सिर पर टोपी की जगह साफ़ा बाँधते हैं। जापानी सिपाही चपटी और गोल-सी टोपियाँ पहनते हैं। इसके अतिरिक्त इनके कपड़ों में एक और अंतर भी होता है। हिन्दुस्तानी फ़ौजी सिपाही को गर्मी के दिनों में सूती कमीज़ और ख़ाकी कोट दिया जाता है। इसके मुक़ाबले पर जापानी सिपाही को आम तौर पर ऊनी कपड़े पहनाये जाते हैं। जापानी डाक्टरों का ख़याल है कि सूती कपड़ों के कारण अगर सिपाही को ठंड लग जाय तो यह उसके लिए प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। परन्तु अगर गरमियों के दिनों में भी उसने गरम कपड़े पहन लिये तो इससे कोई हर्ज न होगा। वह योंही थोड़ी-सी गरमी का अनुभव करेगा और बस। इसके अलावा जापान में 'सन-स्ट्रोक' वाली गरमी भी तो नहीं होती।

हज़ारों-लाखों सिपाहियों के कपड़े तैयार करना भी आसान काम नहीं है। यहाँ हिन्दुस्तान में तो इस काम के लिए ठेके दे दिये जाते हैं। किसी अँगरेज़ी फ़र्म को सारा सामान प्रस्तुत करने का ठेका दे दिया और बस गवर्नमेंट का यह महकमा निश्चित हो गया। कुछ रुपया विलायती कारख़ानेदारों ने कमाया, कुछ ठेकेदारों ने और कुछ ठेका देनेवालों की जेबों में गया। बजट में स्वीकृत रक़म ख़र्च तो हो गई और बिल फ़ाइलों में टाँक दिये गये। इस बारे में एसेम्बली का कोई सदस्य पहले तो सवाल नहीं करता, लेकिन अगर किसी तरह केंद्रीय सरकार पकड़ी गई तो वह झट इन बिलों का हिसाब पेश कर देती है और पूछनेवाला निरुत्तर हो जाता है। वह कर ही क्या सकता है?

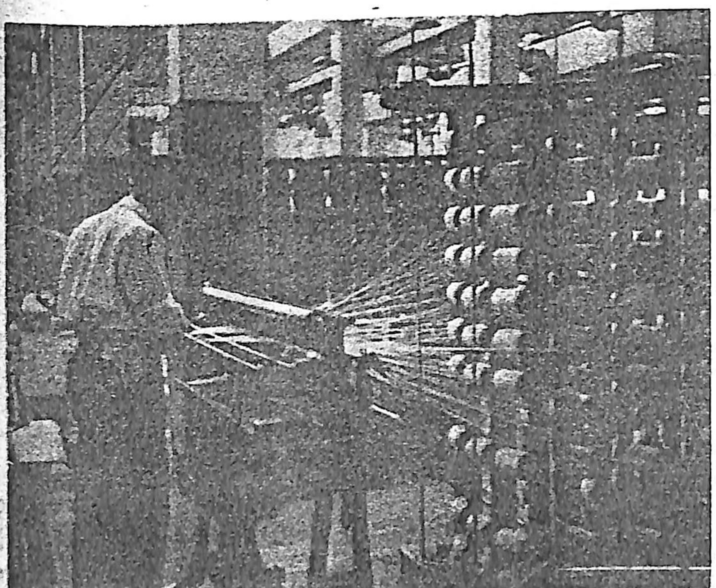
जापान में दूसरा तरीक़ा है। जापान-गवर्नमेंट को फ़ौजी सामान के लिए न तो प्राइवेट कारख़ानों और फ़र्मों पर विश्वास है और न ठीकेदारों पर। इस मतलब के लिए उसके निजी कारख़ाने हैं। इनमें ऊनी कपड़ा बुना जाता है, कपड़े सिये जाते हैं और कमीज़ें, कोट और जुर्राबें बिलकुल तैयार होकर निकलती हैं। इसी प्रकार टोकियो में गवर्नमेंट की अपनी बड़ी भारी फ़ैक्टरी है, जिसमें टोपियाँ तैयार की जाती हैं। जिस प्रकार इनके कारख़ानों में सैकड़ों-हज़ारों मर्द काम करते हैं, उसी प्रकार जुर्राबों और टोपियों की फ़ैक्टरियों में हज़ारों लड़कियाँ फ़ुर्ती दिखलाती हैं। गत्ते काटना, फ़ीते बाँधना और मोहरें लगाना—ये सभी काम युवतियों के सिपुर्द हैं। वे

इन फ़ैक्टरियों के अन्दर ही रहती हैं, अन्दर ही खाती-पीती और सोती हैं। छुट्टी का ख़ास दिन होता है जब ये अपने-अपने गाँव में जाकर घरवालों से मिल आती हैं। इसके साथ ही हफ़्ता भर की कमाई भी उनके हवाले कर आती हैं।

इन फ़ैक्टरियों के अन्दर जहाँ लड़कियों के रहने का उचित प्रबन्ध है, वहाँ उनके खाने-पीने का भी प्रबन्ध है। यह ख़ूराक उनको सस्ते दामों पर दी जाती है। भोजन का बिल हफ़्तेवार वेतन में से काट



[मशीनों से तैयार करने के बाद रही-सही सिलाई हाथ से हो रही है।]



[ऊनी धागा बटा जा रहा है।]

लिया जाता है। लेकिन कोई मनुष्य केवल खाने-पीने से तो नहीं जीता रह सकता। इसके अतिरिक्त उसे कई और बातों की ज़रूरत होती है। उदाहरणार्थ वह लिखना-पढ़ना चाहता है, समाज के दूसरे सदस्यों से बातचीत और विचार-विनिमय करना चाहता है, आचार-नीति एवं धर्म को समझने और उस पर आचरण करने की आवश्यकता का अनुभव



[जुराबें बुनने के लिए ऊनी धागा लपेटा जा रहा है।]

करता है। इन सब बातों का प्रबन्ध इन फ़ैक्टरियों के अन्दर विद्यमान है। लेकिन अगर ये लड़कियाँ दिन भर काम करती रहें और शाम को नैतिक विषयों पर व्याख्यान सुन लिया करें तो इनका जीवन रूखा रहे। इस रूखेपन को दूर करने के लिए गवर्नमेंट की तरफ़ से मनोरञ्जन के क्लब बने हुए हैं, जहाँ ये लड़कियाँ उठ-बैठ और खेल-कूद सकती हैं। काम करने के बाद ये घंटे दो घंटे वहाँ जाकर अपनी थकावट दूर करती हैं। जापानी मालिक इस बात विश्वास रखता है कि मुलाज़ि को हर प्रकार का उचित ए आवश्यक आराम प्रस्तुत कि जाना चाहिए। अगर इसक प्रबन्ध न होगा तो स्वभावत मुलाज़िम इस मतलब के लि कहीं और जायगा। ऐसी अवस्थ में उसके पथ-भ्रष्ट हो जाने क सम्भावना रहती है। इससे स्व मुलाज़िम का जीवन ख़राब ह जायगा, वह समाज एवं घरवाल के लिए तकलीफ़ का कारण होगा और अन्त में कारख़ाने को आर्थिक हानि होगी।

अब सिपाहियों के लिए बूट चाहिए। इस काम के



[टोपियों के अन्दर फ़ीते लग रहे हैं।]

लिए गवर्नमेंट चमड़ा ख़रीदती है, बूटों के अन्दर ऊन लगाने के लिए ऊन मोल लेती है और तस्मे बनाने के लिए धागा एकत्र करती है। फ़ैक्टरी में पहुँचने पर इन कच्ची चीज़ों को बिजली से चलनेवाली मशीनें कुछ से कुछ रूप दे देती हैं। लाखों बूट तैयार हो जाते हैं। गरमियों के मौसिम में पहनने के लिए अलग, सरदियों में इस्तेमाल के लिए अलग। पहले बूटों के अन्दर ऊन नहीं होती, दूसरे बूटों के अंदर ऊन लगी रहती है ताकि जिन पैरों को हज़ारों मील का सफ़र तय करना है उनको चलते वक्त यह न मालूम दे कि बाहर बर्फ़ पड़ रही है।

गवर्नमेंट के इन कारख़ानों और फ़ैक्टरियों में काम करने के लिए आदमी को पहले कई एक परीक्षायें पास करनी पड़ती हैं। आख़िर सरकारी मामला ठहरा, ख़ास कर उस महकमे का जिसका सम्बन्ध देश की रक्षा करनेवालों से है। अगर किसी प्रकार से कोई दुश्मन इस कारख़ाने या उस फ़ैक्टरी में घुस जाय तो सारे भेद मालूम कर ले। फिर न मालूम वह क्या अनर्थ कर दे। यही कारण है कि कोई विदेशी इन कारख़ानों और फ़ैक्टरियों में प्रविष्ट नहीं होने पाता। ख़ास तौर पर इजाज़त लेने के लिए काफ़ी दौड़-धूप करनी पड़ती है।

इन बातों को सामने रखकर सिर्फ़ उन उम्मीदवारों को जगह दी जाती है जिनके बारे में पुलिस को हर तरह से यक़ीन हो। पुरुष हो या स्त्री, लड़का हो या लड़की, काम सीखने के लिए हर एक को पहले कुछ समय ट्रेनिंग हासिल करनी पड़ती है। इसके लिए कारख़ानों में अलग इंतज़ाम होता है। जब कारख़ाने या फ़ैक्टरी का उच्च-अधिकारी देखता है कि यह नौसिखिया अब किसी काम को सँभाल सकता है और इसके सिपुर्द की गई ड्यूटी को यह निभा लेगा तब इसे ज़िम्मेदारी का काम दे दिया जाता है। वेतन भी अब से ही शुरू होता है। पहले तो केवल अलाउंस ही दिया जाता है।

यों तो जापान-सरकार के ये कारख़ाने और फ़ैक्टरियाँ साल भर चलती रहती हैं। फ़ौजी सिपाहियों और अफ़सरों के लिए कभी कोई चीज़ बनती है, कभी कोई। एक-न-एक चीज़ हमेशा ही तैयार होती रहती है। लेकिन जब कहीं लड़ाई शुरू हो जाती है तब इन कारख़ानों और फ़ैक्टरियों की चिमनियों से हर समय धुआँ निकलता रहता है। दिन और रात मुलाज़िम काम करते रहते हैं। दिन को एक सेट काम करता है, रात को दूसरा। एक सप्ताह काम करने के बाद इनकी शिफ़्टें बदल जाती हैं; रातवाले दिन को ड्यूटी देने लगते हैं, दिनवाले रात को जागते हैं।*

* चित्रों के लिए असाही के श्री कात्सुमाता को अनेक धन्यवाद।—ले०

पागल

लेखक, श्रीयुत पन्नालाल महतो 'हृदय'

हम हैं आग लगानेवाले यहाँ कहाँ नयनों में पानी।
ज्वाला-सी है जलन, अनल-सी पगलों की मदहोश जवानी।

सोया खग दिन - र का हारा, फिरता आया मारा-मारा। नीचे लक्ष्य लगाकर बैठा, सावधान हो वधिक विचारा।
हाथ अगर लग जाये चिड़िया, सोच रहा, सुख पाऊँगा मैं; विधना को करतूत ग़ज़ब की, एक प्रवाह मगर दो धारा।
ऊपर सुखसागर तो नीचे, मरण कर रहा है अगवानी। हम हैं आग लगानेवाले यहाँ कहाँ नयनों में पानी॥

सन्ध्या आई लिये गोद में जगमग करनेवाले तारे चली चाँदनी उन्हें चूमने अपने दोनों हाथ पसारे।
माता का उर भरा स्नेह से क्यों न चूम ले शिशु को न्यारे हो; उभय भाँति है जीत दाँव पर जीते जीवन चाहे हारे।
अरे सँभाल रखो थाती है हम पगलों की ख़ाक निशानी। हम हैं आग लगानेवाले यहाँ कहाँ नयनों में पानी?

ज़मीन का मालिक कौन?

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र वेदालंकार

इस लेख में लेखक ने प्राचीन ग्रन्थों, परम्पराओं और ब्रिटिश गवर्नमेंट के डिस्पैचों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ज़मीन के वास्तविक मालिक किसान हैं। यदि यह बात स्वीकार कर ली जाय तो किसानों की स्थिति सुधरने में देर न लगे।

(१)

ज़मीन का मालिक कौन है—'प्रान्तीय स्वायत्त शासन' के सूत्र-पात के साथ किसान और ज़मीन की समस्या ने महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर लिया है। सात प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की ...सना से यह प्रश्न प्रथम श्रेणी का हो गया है। किसानों ...लिए ही नहीं, राजनीति के विद्वानों के लिए भी यह ...ज्ञातव्य विषय हो गया है कि भारत में भूमिकर किस ...र लगाया जाता है, ज़मीनों की मालियत कैसे कूती ...ी है, इस सम्बन्ध में क्या रवाज और परम्परायें ...लित हैं।

बिहार और उड़ीसा में सरकार द्वारा आमदनी बढ़ाने ...उद्देश्य से ज़मींदारों की आय पर कर लगाने से एक ...ना प्रश्न नये सिरे से फिर सामने आ गया है कि ज़मीन ...वास्तविक मालिक कौन है। ज़मींदार, किसान या ...ार? बंगाल, बिहार, पूर्वी संयुक्त-प्रान्त और उड़ीसा ...'इस्तमरारी बन्दोबस्त' के आधार पर जो ज़मींदारी-...प्रचलित है वही युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, पंजाब और ...स के उत्तरी सरकार के ज़िलों में नहीं प्रचलित ...ज़मींदारी-प्रथा का यह सुधरा हुआ रूप भी बाद में ...रहा और बम्बई तथा शेष भारत में रैयतवारी-प्रथा ...में लाई गई। 'बाम्बेलैंड रेवेन्यु कोड' में मालिकाना ...पर विचार नहीं किया गया है। वह खातेदार को ...न का 'मालिक' नहीं मानता, बल्कि 'दख़ीलकार' ...ार करता है। मगर दख़ीलकारी का हक़ अपनी ...में स्थिर, उत्तराधिकार योग्य वंशानुगत और ...नीय है।

मिस्टर जी० एच० एण्डर्सन ने स्वीकार किया है ...दिक युग में ज़मीन की मालगुज़ारी ली जाती थी, जो राजा के जीवन-निर्वाह और सरकार के लाभ के लिए दी जाती थी। पर वे इसके साथ यह भी लिखते हैं—"आधुनिक अर्थशास्त्री मानते हैं कि जनता का प्रतिनिधि सरकार खेती की ज़मीन का दूसरी ज़मीनों की अपेक्षा अधिक लगान ले सकती है। मगर यह अधिकार स्वामित्व के सिद्धान्त के आधार पर आश्रित नहीं है।" उनकी यह भी राय है—"यदि सरकार सब अनुपार्जित किराये पर कर लगा सकती है तो स्वामित्व और कर लगाने के अधिकार में भेद करना सर्वथा शाब्दिक बहस की बात हो जाती है, क्योंकि वर्तमान गवर्नमेण्ट की स्थापना के बाद से जिस ज़मीन पर दख़ीलकारी का हक़ स्वीकार कर लिया गया है उस पर स्वामित्व का अधिकार असन्दिग्ध रूप से है और ऐसी ज़मीन वर्तमान समय में जोत के नीचे की ज़मीन का एक बहुत बड़ा भाग है।"

इससे यह एक बात स्पष्ट होती है कि दख़ीलकारी और स्वामित्व के अधिकार में अन्तर नहीं है और जिस ज़मीन पर किसान को दख़ीलकारी का हक़ प्राप्त है उसका वह मालिक है। ज़रूरत केवल शब्दों के क़ानूनी अर्थ के भेद को दूर करने की है।

सरकार का प्रभुत्व—मगर 'लैण्ड रेवेन्यु कोड' में सारी ज़मीन का, यहाँ तक जिस पर किसान खेती करता है, उसका भी मालिक सरकार को ही माना है। क्योंकि यदि किसान मालगुज़ारी व लगान न अदा करे तो उसकी ज़मीन ज़ब्त की जा सकती है, चाहे ज़मीन की क़ीमत बाज़ार में बढ़ क्यों न गई हो। दूसरी बात यह है कि ज़मीन की सतह पर जो उपजता है उसी पर किसान का अधिकार है, मगर ज़मीन के गर्भ में मौजूद चीज़ पर उसका हक़ नहीं है। खान और खनिज द्रव्य का मालिक सरकार है। लगान और मालगुज़ारी नक़द वसूल की जाती है और वह समय समय पर बढ़ाई जाती रहती है

नक़दी तरीक़ा—१९वीं सदी में सरकार किसान से

लगान अनाज के रूप में न लेकर नक़द लेने लगी है। इसके पक्ष में सरकार की ओर से कहा गया है कि अनाज की अपेक्षा मुद्रा का मूल्य कम उतरता-चढ़ता है। दूसरे इससे सरकार को अपनी आमदनी का निश्चित रूप में पता चल जाता है और वह अपने बजट का अन्दाज़ा ठीक ठीक लगा सकती है। इसके साथ यह भी कहा गया है कि यह किसानों के लिए भी फ़ायदेमन्द है, क्योंकि वे भी जान जाते हैं कि उनको लगान में कितना चुकाना है। यह तरीक़ा उस समय तक ठीक ठीक चलता रहा जब तक लगान व मालगुज़ारी बढ़ाई नहीं गई। बन्दोबस्त की अवधि उस समय ३० साल नियत की गई थी।

महायुद्ध के बाद मुद्रा की क़ीमत बढ़ जाने पर लगान बढ़ा दिया गया। जब तक अनाज का भाव बढ़ा हुआ था, किसानों को कुछ महसूस नहीं हुआ। मगर १९२९ के बाद से चीज़ों की क़ीमत गिर जाने पर किसानों के लिए नक़द लगान चुकाना कठिन हो गया, क्योंकि उनको अपनी फ़सल की जो क़ीमत मिलती थी वह लगान चुकाने के लिए काफ़ी नहीं होती थी। अन्य देशों ने इसके लिए अपनी मुद्रा की क़ीमत गिरा दी और कृषि और व्यवसाय की रक्षा के लिए चुंगी भी बढ़ा दी। मगर भारत-सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही।

अस्थिर मूल्य—अन्य चीज़ों के समान रुपये का दाम भी घटता-बढ़ता रहता है। इसके उतार-चढ़ाव का नियन्त्रण मुद्रा-नीति और टैरिफ़ की नीति-द्वारा होता है। इसलिए नक़द लगान के पक्ष में जो यह बात कही जाती थी कि रुपये की क़ीमत स्थिर और एक-सी रहती है, वह नहीं रही है। दूसरी ओर अकबर के ज़माने तक लगान चुकाना किसान की मर्ज़ी पर था, चाहे वह नाज में लगान चुकाये या रुपये में चुकावे।

किसान मालिक है—किसान के लिए ज़मीन की श्रेणी व योग्यता के आधार पर ठहराया हुआ नाज का भाग चुकाना बहुत आसान था, क्योंकि यदि वह ज़मीन का कोई भाग फ़सलों की अदला-बदली के लिए खेती करने से छोड़ देता है तो उसे उसके लिए कुछ नहीं देना पड़ता था। दूसरी ओर यदि फ़सल अच्छी होती थी तो राज्य को भी अधिक मात्रा मिल जाती थी। फ़सल के ख़राब होने पर राज्य का हिस्सा अपने आप कम हो जाता था। अकाल, सूखा और बाढ़ के साल सरकार से कुछ नहीं मिलता था। सरकार का यह भी फ़र्ज़ था कि यदि किसान कठिनाई में है तो वह उसकी मदद करे।

इस्तमरारी बन्दोबस्त—पिट के 'इण्डिया एक्ट सन् १७८४' की ३९वीं धारा में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी-गवर्नमेण्ट ख़राबी और अत्याचार को दूर करने के लिए न्याय और भारतीय क़ानून और परम्परा के अनुसार खेत, ज़मींदार, पोतीगार, ताल्लुक़ेदार और अन्य थानेदारों के ख़िराज, लगान आदि के बारे में स्थिर नियम बना दे।

लार्ड कार्नवालिस ने वारेन हैस्टिंग्ज़ के द्वारा चलाई गई लम्बी लड़ाइयों से कम्पनी के ख़ाली ख़ज़ाने को भरने के उद्देश्य से ज़मींदारों और राजाओं के लाभ के विचार से उक्त धारा को पीछे डालकर रैयत की उपेक्षा कर दी। सन् १७८४ के इण्डिया एक्ट की ३९ वीं धारा में जो रैयत शब्द है उसका अर्थ है ज़मीन का मालिक किसान, जो हिन्दू और मुस्लिम काल से चला आता है। मगर आज तक यह अर्थ मंज़ूर नहीं किया गया है। क्या यह अंधेर नहीं है?

विजयी का स्वामित्व—पड़ती ज़मीन पर दो तरह हक़ स्थापित होता है। एक यह कि जो उस पर सबसे पहले अपना दख़ल जमा ले। दूसरा उस व्यक्ति का जो उसको साफ़-सुथरा बना कर खेती योग्य बनाता है। यह अधिकार उस समय तक बना रहता है जब तक वह ज़मीन का कर गवर्नमेण्ट को देता रहता है। मगर इसके अतिरिक्त एक और सिद्धान्त निकला है कि विजेता का विजय करने से विजित भूमि पर स्वतः अधिकार स्थापित हो जाता है। ब्रिटिश सरकार और मध्ययुग के अवशेष देशी राजे ज़मीन पर अपना अधिकार इसी सिद्धान्त के अनुसार बताते हैं। मगर यह सिद्धान्त सर्वथा ग़लत है, क्योंकि कोई भी विजेता सब किसानों को अपना दास नहीं बना सकता। विद्रोह के भय से कोई सरकार सारे किसानों से ज़मीन छीनने का साहस नहीं कर सकती। व्यवहार में यह देखा जाता है कि देश की परम्परा और रवाज के अनुसार किसानों को चलने दिया जाता है, क्योंकि ज़रूरी है कि राज्यकर वसूल करने के लिए किसानों को अपने खेतों में खेती करने और फ़सल उपजाने दे।

ऐतिहासिक विवेचन से भी यही मालूम होता है कि ...ान की ज़मीन से वसूल किया गया 'महसूल' लगान ...हीं है, बल्कि 'कर' है। प्रसिद्ध लेखक बेडेन पावेल ने भी ...ी बात का समर्थन किया है। वे लिखते हैं—

"ज़मीन का महसूल इसलिए 'लगान' नहीं समझा ...सकता। यहाँ तक कि रैयतवारी ज़मीन पर भी, जहाँ ...ूनन खातेदार को दख़ीलकार कहा जाता है, मालिक ...ी माना जाता। विशेष परिभाषा से भी गवर्नमेण्ट ...ान की अधिकारिणी नहीं होती।"

यह कथन उस व्यक्ति का है जो बंगाल आई० सी० ...० का एक मेम्बर था और बाद में पंजाब चीफ़ कोर्ट ...एक जज रहा था। इसलिए बेडन पावेल का कथन ...ना महत्त्व रखता है। उन्होंने यह भी लिखा है—"भारत ...सब भागों में शासक, राजा और सम्राट् अपने राज्य की ...धिकांश आमदनी ज़मीन से कर वसूल कर प्राप्त करते ...े हैं। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि 'बादशाह, ...ा व प्रदेश का स्वामी व सरदार का खेती की ज़मीन ...उपज में हिस्सा है।"

दान की चीज़ नहीं—प्राचीन स्मृतिकार भी इसी ...का समर्थन करते हैं कि ज़मीन दान की चीज़ नहीं ...मीमांसाकार जैमिनि प्रभृति बारीकी से विचार करने के ...इस निर्णय पर पहुँचे हैं—"राज्य ज़मीन का दान ...कर सकता, क्योंकि भूमि पर जहाँ तक स्वामित्व का ...है, सब मनुष्य एक स्थिति में हैं।"

सायणाचार्य इससे भी एक क़दम आगे बढ़ कर ...ते हैं—"भूमि राजा की मिलकियत नहीं है। देश की ...किसी को नहीं दी जा सकती।"

'आइने अकबरी' में भी इसका समर्थन किया गया ... उसमें लिखा है—"प्राचीन काल में हिन्दुस्तान के ...ज़मीन की फ़सल का षष्ठांश ख़िराज और कर ...रूप में लेते थे, लगान में नहीं। सम्राट् ने मध्यम ...की जोती ज़मीन की फ़सल का एक तिहाई लेना ...ा है।"

जैमिनि ने तो यहाँ तक लिखा है—"राजा ज़मीन नहीं ...ता, क्योंकि सबकी यह सामान्य सम्पत्ति है।"

इस पर टीका करते हुए टीकाकारों ने लिखा है— ...को फ़सल में से एक निश्चित भाग लेने का अधिकार है, क्योंकि वह फ़सल आदि की रक्षा करता है; मगर ज़मीन पर उसका कोई अधिकार नहीं है।"

मनु महाराज का मत है कि "खेत उस व्यक्ति की सम्पत्ति है, जो पहले-पहल उस पर हल चलाता है।"

राजा का धर्म—आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है—"जहाँ खेती नहीं होती है उन ज़मीनों में राजा चरागाह का इन्तज़ाम करे।" आगे वे लिखते हैं—"अकाल के समय राजा किसानों को बीज और उपकरण देकर उन पर कृपा दिखाये। वह अपनी जमा अन्न-सामग्री भी धनियों की संचित आमदनी को जनता में बाँट कर उन पर कृपा दिखा सकता है या अपने मित्र राजा से सहायता लेकर अपनी प्रजा पर कृपा कर सकता है।"

कर्नल बुन ने लिखा है—"राजा का ज़मीन पर कोई अधिकार नहीं है। वह राज्य का शासन करता है और दुष्टों का दमन करता है, इसलिए वह किसानों से कर वसूल करता है और क़ानून भंग करनेवालों पर जुर्माना करता है, मगर इससे उसका ज़मीन पर अधिकार नहीं स्थापित होता।"

परम्परागत क़ानून—बहुत से आलोचक संस्कृत-ग्रन्थों और उनकी टीकाओं के आधार पर निश्चित सिद्धान्तों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि आधुनिक समय में उनका क़ानूनी दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है। आज-कल के क़ानून को राज्य ने बनाया है, इसलिए सम्पूर्ण राज्य-शक्ति उसको अमल में लाती है। मगर यह बात संस्कृत-ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों और क़ानूनों के बारे में नहीं कही जा सकती। वे प्रतिपादित सिद्धान्त वस्तुतः व्यवहार में आते थे, यह सन्दिग्ध है। ऐसे लोग भी परम्परागत व रवाजी क़ानूनों को मान्य मानते हैं। यही नहीं, ये लोग परम्परा को दैवी क़ानून मानते हैं। प्राचीन काल में कोई राजा-प्रजा में अप्रिय होने के भय से और ऋषियों व ब्राह्मणों के व्यापक प्रभाव के कारण परम्परागत क़ानूनों का विरोध नहीं कर सकता था। इसलिए यह बात असत्य है कि प्राचीन क़ानून में राजा का बहुत थोड़ा भाग निश्चित किया गया है और वह कभी क़ानून के रूप में व्यवहृत नहीं होता था।

मगर इसके साथ यह स्वीकार करना चाहिए कि गृह-

युद्ध व प्रादेशिक युद्ध के समय शासक लोग किरच की नोक पर किसानों से मनमाना कर लेते थे। मुग़ल-साम्राज्य और महाराष्ट्र-मण्डल के पतन के समय यही हुआ था। इनके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 'भारतीय साम्राज्य' की स्थापना की। पर यह भी मानना चाहिए कि आज भी लड़ाई के ख़र्च को पूरा करने के लिए सरकारें कर बढ़ाकर और क़र्ज़ लेकर रुपया जमा करती हैं। लड़ाई के लिए रुपया अब भी लिया जाता है और उस समय भी लिया जाता था। फ़र्क़ केवल तरीक़े व उपाय में है।

मुस्लिम शासकों का उदाहरण—भारत के मुसलमान शासकों ने हिन्दू-क़ानून को स्वीकार किया था। उसमें कुछ हेर-फेर करके उसको मूल रूप में उन्होंने अपना लिया था। बाद में वह आइने-अकबरी में संग्रह किया गया।

मुसलमान शासक किसानों से उनकी रक्षा करने के बदले में 'बलि' लेते थे। मुसलमान शासकों-द्वारा देश-विजय से किसानों के अधिकार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वे पहले के समान अपनी ज़मीन के मालिक थे। मुसलमान शासकों ने इस आधार पर कि वे विजेता हैं, इसलिए वे ज़मीन के मालक हैं, इसका कभी दावा नहीं किया और न उन्होंने यहाँ की ज़मीन अपने कृपा-पात्रों में बाँट दी, जैसा कि नार्मन विजेताओं ने इँग्लैण्ड की ज़मीन बाँट दी थी। इँग्लैण्ड में इससे लार्डों व कुलीनों की एक श्रेणी पैदा हो गई, जो स्वतः ज़मीन के बदले में राजा को कोई लगान नहीं देती थी मगर उसको अपनी रैयत से लगान लेने का हक़ हासिल था।

इस्तमरारी बन्दोबस्त—लार्ड कार्नवालिस ऐसे ही वातावरण और संस्कारों में पला हुआ था। उसने यहाँ भी उसी पद्धति को जारी किया। बंगाल व बिहार में किसानों के हितों की उपेक्षा करके 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' शुरू किया और वंशानुगत उत्तराधिकारवाले ज़मींन्दारों की एक नवीन श्रेणी यहाँ पैदा कर दी। इसके कारण किसानों का ज़मीन पर से स्वामित्व व मालिकाना हक़ छीन लिया गया और वे केवल रैय्यत रह गये। बाद में इनके अधिकार 'बंगाल टेनेन्सी एक्ट'-द्वारा निर्धारित किये गये। बैडन पावेल ने लिखा है—"फ़सल की क़ीमत में आनेवाले परिवर्तनों और खेती की पैदावार की क़ीमतों के उतार-चढ़ाव का ध्यान रक्खे बग़ैर सदा के लिए ठहराये गये ज़मीन के महसूल से जनता के साथ अन्याय हुआ है और उसे इससे असुविधा होती है, यह शीघ्र मान लिया गया।"

फलतः यू० पी०, सी० पी०, पंजाब में ज़मीन्दारी-प्रथा जारी करते हुए ३० साल के लिए बन्दोबस्त ठहराया गया और बम्बई और मदरास में (उत्तरी सरकार को छोड़कर) रैय्यतवारी तरीक़ा जारी किया गया।

मालिकाना हक़—भारत की प्रचलित प्रथा के विरुद्ध मिस्टर एफ़० जी० एच० एण्डरसन (सेटलमेण्ट आफ़िसर ने) बाम्बे लैण्ड रेवेन्यु रूल (१९२१) में लिखते हैं—"सब ज़मीनों पर सरकार के मालिकाने हक़ पर १८७३ के जी० आर० नं० ४२३९ और नं० ५२६३ में विचार किया गया है और यह उसी साल के नं० आर० ३६१ सर्क्युलर में सरकार के लिए सुरक्षित रक्खा गया है। आश्चर्य की बात है कि बम्बई में इस बात को मान लिया गया जब कि हम यह लिखा पाते हैं—

"यह सिद्धान्त कि ज़मीन राज्य की शाही मिल्कियत के रूप में है, कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के १७ दिसम्बर १८५६ के डिस्पैच में खण्डित किया गया और वहाँ ... किया गया है कि ज़मीन पर लगाई गई लाग व ज़मीन ... बन्दोबस्त कर समझना चाहिए, लगान नहीं।"

इस बात का सर चार्ल्स वुड के द्वारा १८६४ में ... गये डिस्पैच में समर्थन किया गया है। लार्ड लिटन ... गवर्नमेंट ने भारत-मन्त्री को ८-६-१८८० को एक डिस्पैच इस सम्बन्ध में भेजा था। उसके ३१ वें पैरे में इसका ... किया गया था। मगर इसके बावजूद मिस्टर एण्डरसन कहते हैं कि जब गवर्नमेंट व्यवहारतः ज़मीन की ... अनुपार्जित क़ीमत पर कर लगा सकती है तब भूमि ... स्वामित्व और कर लगाने के अधिकार में भेद करना ... शाब्दिक है।

मिस्टर एण्डरसन का कथन सरकार की अन्तिम ... नहीं समझनी चाहिए। क्योंकि बम्बई-सरकार ने ... मत देते हुए लिखा है—"यह स्पष्टरूप से समझ ... चाहिए कि गवर्नमेंट टीकाकारों की राय से ... हुई है और न वह इस बात का उत्तरदायित्व लेती ... उन्होंने जो राय प्रकट की है वह ठीक है। ...

... में बम्बई-सरकार और भारत-सरकार किसी निर्णय ... अभी तक नहीं पहुँचे हैं। ज़मीन का महसूल कर है या ...न, यह अभी अनिर्णीत है, यद्यपि ख़याल किया जाता ... लार्ड कर्ज़न की गवर्नमेंट के द्वारा निकाले गये आर्डरों, ... १६ जनवरी १९०२ का लैण्ड रेवेन्युवाला प्रस्ताव, ... मार्च १९०५ का 'सस्पेन्शन और रिमीशन'-सम्बन्धी ... और २४ मई १९०६ के 'लैण्ड इम्प्रूवमेंट' के प्रस्ताव ...मीन के महसूल के सम्बन्ध में भविष्य में किन सिद्धान्तों ...नुसार कार्य होना चाहिए, इसकी विशद व्याख्या कर ...ई है।"

१६५ साल के शासन के बाद भी ब्रिटिश गवर्नमेंट ... तक यही निर्णय नहीं कर सकी है कि ज़मीन का महसूल ... सिद्धान्तों के अनुसार वसूल किया जाना चाहिए। ...ता है कि सरकार इस बात में कोई अन्तर ही नहीं देखती ...ज़मीन पर किसान का स्वामित्व और वंशानुगत अधि...स्थापित हो जाने से कृषि और उसके जीवन में ... अवस्था के मुक़ाबिले क्या फ़र्क़ पड़ेगा। किसान ... किसान नहीं रहा है—अर्धदास हो गया है। उसको स्वाभिमानी पुरुष बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि ...ो सर्वप्रथम ज़मीन का स्वामी माना जाय। भू-स्वामी होने से किसान के सब दुःखों का अन्त हो जायगा, यह तो कोई व्यक्ति कहने का साहस नहीं कर सकता, मगर इतना पूरे विश्वास से कहा जा सकता है कि उसके जीवन में स्थिरता तथा निश्चिन्तता आ जायगी और वह ज़मीन की उपजाऊ शक्ति के बढ़ाने में इस समय से अधिक समय और धन लगायेगा और दिलचस्पी लेगा। इससे उसकी आर्थिक अवस्था सुधर जायगी। उसकी आर्थिक अवस्था उन्नत किये बग़ैर उसके क़र्ज़ के बोझ को हलका करने से किसान को स्थायी लाभ न होगा, क्योंकि क़र्ज़ की ज़रूरत आज के समान ऋणमुक्त होने पर भी उसे बनी रहेगी। इसलिए किसान की माली हालत सुधारने के लिए प्रान्तीय गवर्नमेंटों को ज़मीन का किसान को वास्तविक मालिक बनाना चाहिए और यह उसी समय सम्भव है, जब उसका ज़मीन पर मालिकाना हक़ व स्वामित्व स्वीकार किया जाय। आज किसान बहुत-से स्थानों में दख़ीलकार हैं, यद्यपि उससे उसको और उसकी सन्तान को कोई हटा नहीं सकता। ज़रूरत इस बात की है कि वह ज़मीन का असली स्वामी माना जाय। यह भारत की प्राचीन परम्परा और संस्कृति के अधिक अनुकूल होगा।

मैं अमर हूँ विश्व में होंगे अमर ये गीत मेरे !

लेखक, श्रीमती तारा पाँडे

आँसुओं से होड़ करते
चपल तारे गगन के ये
...े आँसू नहीं चिर-जन्म के हैं मीत मेरे !
जगत कहता 'क्यों व्यथित हो ?
हास में यह रुदन कैसा ?'
कैसे ? मधुर दिन तो सब चले हैं बीत मेरे !

स्वप्न में भरता नहीं अब
हाय ! मेरा जीर्ण अंचल
रूक्ष इस जग के सदृश होंगे सजनि, ये गीत मेरे !
मैं नहीं हँसती जगत में
देखती हूँ हास शिशु का
इस मधुरिमा को लिये जीवित रहेंगे गीत मेरे !

मैं मधुर हूँ विश्व में होंगे मधुर ये गीत मेरे !

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

तेंतीसवाँ परिच्छेद

प्रतिज्ञा की पराजय

साँझ को वायु-सेवन के बाद सन्तोष लौटकर घर आया। यहाँ आकर उसने देखा तो विनय अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा है। कपड़े आदि उतार कर उसने एक कुर्सी दखल कर ली और वह उसी पर बैठ गया। बाद को उसने विनय से कहा—फूफा जी ने बुआ जी के जाने के सम्बन्ध में क्या किया विनय? दो-तीन महीने बीत चले, किन्तु अभी तक उनका ज्वर छूटता नहीं दिखाई पड़ता।

विनय ने कहा—पिता जी भी बहुत चिन्तित हो उठे हैं। क्या करना चाहिए, यह बात उनकी समझ में ही नहीं आती। उन्हें सबसे अधिक कठिनाई यह बात तय करने में मालूम पड़ रही है कि मा के साथ जायगा कौन।

सन्तोष ने कहा—क्यों?

"आप ही न बतलाइए कि उनके साथ किसे भेजा जाय? चमेली को यदि भेज दिया जाय तो बाबू जी को देखनेवाला कोई न रह जायगा। उसके सिवा यहाँ का काम सँभालनेवाला और है ही कौन?

कुछ क्षण के बाद सन्तोष ने कहा—हाँ, यह कठिनाई तो अवश्य है, परन्तु फिर क्या किया जाय? बुआ जी को जब तक थोड़ा-सा घुमा-फिरा न लाया जायगा तब तक उनका ज्वर छूटने को नहीं!

सन्तोष के मुख-मण्डल पर चिन्ता की रेखा उदित हो आई। क्षण भर तक उनकी ओर ताकने के बाद विनय ने कहा—सोच-विचार करने से कोई लाभ न होगा भै[या।] यह बड़ी कठिन समस्या है।

"ऐसा ही तो जान पड़ता है। बड़ी कठिनाई आ प[ड़ी] है। परन्तु तुम्हारी भाभी को तो घूमना बहुत पसन्द है। उन्हीं को क्यों नहीं बुलवा लेते। आज-कल जब देखो वे यात्रा ही तो करती रहती हैं।

दृष्टि में कुछ फटकारने का-सा भाव लाकर सन्तोष [की] ओर ताकते हुए विनय ने कहा—भैया—तुम—

ज़रा-सा मुस्करा कर सन्तोष ने कहा—नाराज़ क्यों [हो] रहे हो विनय? जो कुछ कहने की इच्छा हो, कह लो।

विनय ने कहा—बुरा न मानना भैया, आप इ[तने] स्वार्थ-परायण हैं, यह मैं नहीं समझता था। वे ज़[रा] इधर-उधर घूम फिरकर जी बहला लेती हैं, शायद यह आपके लिए सहन करने के योग्य नहीं है। भाभी जी [यहाँ] होतीं तो शायद आप इसके लिए उनसे जवाब भी [तलब] करते।

सन्तोष ने धीमे स्वर से कहा—मेरे कहने का मतलब नहीं है कि वे कोई अपराध कर रही [हैं।] जिसका अपना ही अपराध पर्वत के समान है, क्या [वह] दूसरे से जवाब तलब कर सकता है? मुझे इतना नी[च न] समझ लो भाई। मैं ही उनसे इस तरह के घुमक्कड़पन [की] आदत डालने का कारण हूँ, मैं ही उनके दुःख-क्लेश [और] मनोवेदना का मूल हूँ। क्या यह बात मुझे मालू[म नहीं] है विनय?

लज्जित कण्ठ से विनय ने कहा—नहीं, आपको [...] दुःखी करने के लिए मैंने ये बातें नहीं कही हैं। इसके [सिव]ा आप लोगों के सम्बन्ध में कोई बात कहना भी मेरे [लिए] अनधिकार चर्चा है। परन्तु आपको यह मालूम नहीं [है] भैया कि भाभी जी अपने भाग्य को ही दोषी ठहराया [कर]ती हैं। आपको कभी वे किसी तरह का दोष नहीं दिया [कर]तीं। उस दिन उन्होंने चमेली को लिखा था—यह सब [मेरे] भाग्य का दोष है, अन्यथा ऐसा स्वामी पाने का [सौ]भाग्य कितनी स्त्रियों को होता है? मुझे क्षमा करना [भैया], इतना अधिक पुस्तकें पढ़कर भी आप कुछ सीख न [सके]। यही कारण है कि मनुष्य का चरित्र समझने की [शक्ति] आज तक आपमें नहीं आ सकी। भाभी जी आपको [प्रसन्न] नहीं कर सकीं, इस बात का दुःख उनके हृदय में [बराबर] बना रहता है, क्योंकि वे प्रायः ऐसा कहा [कर]ती हैं।

सन्तोष सोच रहा था कि क्या ऐसे अयोग्य और [हृद]यहीन स्वामी के लिए भी वासन्ती चिन्ता किया करती [है]। परन्तु यदि चिन्ता नहीं करती तो स्वामी को इस रूप [में] चित्रित करने में वह कैसे समर्थ हो सकी? मेरे स्वामी [बुरे] नहीं हैं, यह बात वह समझ कैसे पाई?

सन्तोष वासन्ती की इस प्रकार की उदार मनोवृत्ति पर [बा]र बार विचार करके मुग्ध होने लगा। वह सोचने [लग]ा—मैं जो इस तरह का दुःखमय जीवन व्यतीत कर [रहा] हूँ, इसमें वासन्ती का दोष ही क्या है? दोष तो सारा [का] सारा मेरा है। फिर भी—फिर भी तो वह इतने दिनों [से] इतना दुःख-क्लेश, इतना अपमान और इतनी लाञ्छना [सह]न करते हुए भी अपने अदृष्ट को ही दोष दिया [कर]ती है। इस तरह वह मेरा सारा अपराध अप्रकाशित रखना चाहती है, यद्यपि इस बात की मुझे किसी प्रकार [की] सूचना नहीं है। इसका कारण क्या है?

वासन्ती की इस प्रकार की महत्ता पर विचार करते [कर]ते सन्तोष की अन्तरात्मा अत्यधिक उद्विग्न होने लगी। [वह] हृदय में इस बात का अनुभव करने लगा कि मैंने इस [तर]ह की स्त्री का हाल किसी से भी नहीं सुना, जो [स्वा]मी के यथेच्छाचार को प्रश्रय देकर अपने अदृष्ट का [दोष] स्वीकार कर ले।

अपने मन का भाव दबा कर सन्तोष ने क्लेशमय स्वर [से] विनय से कहा—तो उपाय क्या है?

दुखी भाव से विनय ने कहा—मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाता हूँ। मैंने मा से कहा था, वे कहती हैं कि अभी तो कुल दो ही महीने यहाँ से बहू को गये हुए हैं। वहाँ भी बहुत-से झंझट हैं। उन्हें यहाँ बुलाकर निरर्थक रात-दिन कष्ट देना उनको पसन्द नहीं है।

सन्तोष ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

उसे चुप देखकर विनय ने कहा—अच्छा भैया, न हो तो इस बार आप ही एक काम क्यों न कीजिए। आप घर चले जाइए और भाभी को लिवा ले आइए। इससे मा भी प्रसन्न हो जायँगी, साथ ही कोई झंझट भी न होगा।

सन्तोष ने स्थिर कण्ठ से कहा—यह नहीं होने का है विनय, मैं वहाँ नहीं जा सकता। मेरी—

आश्चर्य में आकर विनय ने कहा—क्यों भैया?

सन्तोष ने शुष्क कण्ठ से कहा—मेरे लिए वहाँ जाने का मार्ग नहीं है। उत्तेजना के मारे सन्तोष का गला रुँध गया।

सन्तोष के मुख-मण्डल पर विषाद की रेखा उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती गई। उसकी ओर ताकते हुए विनय ने कहा—इसमें मार्ग या अमार्ग का क्या प्रश्न है भैया? आप अपने घर जायँगे, यह तो आनन्द की ही बात है।

सन्तोष ने भर्राई हुई आवाज़ से कहा—तू जानता नहीं विनय। इसमें बहुत-सी बातें हैं। वहाँ जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

उत्तेजनापूर्ण कण्ठ से विनय ने कहा—असम्भव है? क्षण ही भर में उसने अपने आपको सँभाल लिया। तब उसने धीमे स्वर से कहा—मेरे विचार से तो वहाँ आपका जाना ही अच्छा है भैया।

सन्तोष के चिन्तायुक्त मुँह की ओर ताक कर विनय ने कहा—आप इतना सोच क्या कर रहे हैं भैया?

सन्तोष ने विचलित कण्ठ से कहा—मैं जो वहाँ से प्रतिज्ञा करके आया हूँ।

संयत कण्ठ से विनय ने कहा—प्रतिज्ञा करना तो आसान है, किन्तु उसका पालन करना बहुत ही कठिन है।

यह कह कर विनय बाहर चला गया।

सन्तोष के मन में यह बात आई कि विनय ने ठीक ही कहा है। दुनिया के सामने न सही, किन्तु अपने मन

के सामने तो मेरी पराजय हो ही गई है। क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने में समर्थ हो सका हूँ? यदि नहीं तो फिर इस पाखंड की क्या आवश्यकता है? परन्तु फिर भी वहाँ जाना मेरे लिए असम्भव है। क्षण भर के लिए भी पैर रख कर वह घर कलङ्कित करने का अधिकार मुझे नहीं है। परन्तु वासन्ती ही क्यों आने लगी? जिस हृदयहीन को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है, वैसे निष्ठुर स्वामी के सम्पर्क में वह किस आशा से आने लगी? क्या कोई भी शिक्षित स्वामी विवाहिता पत्नी के साथ इतने दिनों तक इस प्रकार का बुरा बर्ताव करता रहता है? सुषमा ने ठीक ही कहा था, क्या शिक्षित स्वामी का आदर्श यही है। जहाँ से बदले में अणुमात्र भी कोई वस्तु मिल सकने की सम्भावना नहीं है, वहाँ वह इस तरह का अपरिमित दान क्यों देती रहेगी? इससे उसका मतलब? विवाह-रूपी मूल्य से वह ख़रीद कर लाई गई है तो क्या इसके कारण उसने अपनी मनुष्यता को भी दासीपन की सीमा में आबद्ध कर दिया है?

वासन्ती के हृदय में पति के प्रति जो अपरिमित स्नेह तथा अगाध श्रद्धा का भाव था उसे सोच सोच कर सन्तोष का हृदय बहुत दुःखी हो रहा था। वह इस बात का अनुभव कर रहा था कि मेरे ऊपर वासन्ती के ऋण का भार बराबर बढ़ता ही जा रहा है। उस ऋण से छुटकारा पाने के लिए क्या मैंने अभी तक कोई उपाय किया है? कृतज्ञता का एक शब्द भी तो उसे कभी मुझसे सुनने को नहीं मिला? ऐसी दशा में वही मेरे पास क्यों आने लगी?

परन्तु प्रयाग में रहते समय वासन्ती जो इस प्रकार का शान्त, शिष्टतापूर्ण तथा निःसङ्कोच व्यवहार किया करती थी और पति का कोई ख़याल न करके अपनी धुन में जो सारा काम-काज करती रहती थी उसके कारण सन्तोष बड़े आश्चर्य्य में पड़ गया था। वह बार बार सोचता कि उस दिन वह इतनी आसानी से अपना सारा अधिकार त्याग कर क्यों चली आई थी? उसकी ओर से जो कुछ कहना था वह सब सुषमा ने ही कहा था। वासन्ती ने तो उसके सिवा एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं कहा था। सुषमा के द्वारा भी उसका जो कुछ अभिप्राय ज्ञात हुआ है उसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं था। उसका केवल घर चल कर रहने भर के लिए मुझसे अनुरोध था। उस दिन क्या मैंने उसके उस अनुरोध पर कर्णपात किया था? आज जब उसकी ओर से कोई उद्योग नहीं है, ... एक प्रार्थी के रूप में उसके सामने जाकर कैसे ... होऊँगा? नहीं, यह तो मुझसे न हो सकेगा।

सन्तोष ने इस तरह का निश्चय कर तो लिया, ... साथ ही वह यह भी सोच रहा था कि वासन्ती ने ... लिए मुझे इस प्रकार के आदर्श के रूप में चित्रित ... है? मैं तो उसके योग्य नहीं हूँ। जिस भोग की लाल... को हृदय में स्थान देकर मैं साध्वी पत्नी का परित्याग ... आया हूँ, मेरे किये हुए पापों के निदारुण यन्त्रणा ... कारण जिसका हृदय क्षत-विक्षत हुआ जा रहा है, वही ... जब यह बात जान पावेगी कि मेरा हृदय दूसरी स्त्री के ... भी आसक्त हो चुका है तब उसके हृदय की क्या द... होगी? तब तो उसका हृदय अत्यधिक वेदना के कार... क्षत-विक्षत हो जायगा। उसने अपने विश्वासी ... निष्पाप हृदय में स्वामी के पवित्र और उज्ज्वल आदर्श ... जो चित्र अङ्कित कर रक्खा है वह क्या निमेषमात्र ... ही न मिट जायगा? नहीं, नहीं, वासन्ती मुझसे घृणा करे... वह यह न सहन कर सकेगी। बाद को जब कभी वास... से मेरी मुलाक़ात होगी तब मैं स्वयं जाकर सारी ... उससे कहूँगा। उसके लिए वासन्ती मुझे जो कुछ ... वह सब मैं अपने कान से सुन लूँगा। उसके बाद ... उसके बाद मैं अपने मार्ग का अपने आप ही अवलम्... कर लूँगा।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

आशा और निराशा

वासन्ती सिराजगंज चली आई है। इस बार उ... तबीयत यहाँ बिलकुल ही नहीं लगती थी। बात यह थी ... बुआ जी की बीमारी के कारण चमेली इस बार उ... साथ आ नहीं सकी थी। इधर ताई जी का भी स्वा... अच्छा नहीं था, इससे वे प्रायः एकान्त में ही पड़ी ... थीं, वासन्ती अकेले में पड़ी पड़ी बहुत घबराया करती ... अन्त में उसने निश्चय किया कि थोड़े दिनों के ... सुषमा के ही यहाँ हो आऊँ।

जिन लोगों का संसार कभी सूना नहीं हुआ, ... लोग इस विशाल जगत् के सूनेपन का अनुभव कैसे कर सकेंगे? इस तरह के सूनेपन में किसी का साथ पाने के लिए मनुष्य को किस तरह की बेकली होती है; अपने प्रिय जनों से मिलने के लिए वह किस तरह पागल हो उठता है, इस बात को वे नहीं समझ सकते। कोई साथी न होने के कारण वासन्ती का जीवन आजकल बहुत ही कष्टमय हो उठा था। उसके लिए तो एक एक दिन एक एक रात पर्वत-सी होती जा रही थी, बीतने में ही नहीं आती थी। यही कारण था कि सुषमा के लिए उसका व्याकुल हृदय बहुत ही अधीर हो उठा था। जो लोग अन्तःकरण से इस बात का अनुभव करते रहते हैं कि मेरे लिए किसी प्रकार का भी अवलंबन या आश्रय नहीं है, उनका समय किस प्रकार व्यतीत हुआ करता है, यह अन्तर्यामी के सिवा और कोई भी नहीं समझ सकता। दिन के प्रकाश का अन्त हो जाने पर जब यह जगत् रात्रि के अन्धकार से ढँक जाता तब रात्रि व्यतीत करना वासन्ती के लिए बहुत ही अधिक यन्त्रणादायक हो उठता। जिस समय सन्ध्या रानी मस्तक से लेकर पैर की एँड़ी तक काले आवरण से ढँके हुए आकर दर्शन देतीं, उस समय भीतर ही भीतर उसके अन्तःकरण में भी एक विराट् अन्धकार की सृष्टि हो उठती। हृदय के सबसे एकान्त कोने में भी यदि कहीं थोड़ी बहुत आलोक-रश्मि के छिपी रह जाने की सम्भावना थी, वहाँ भी वह अन्धकार दौड़ जाता। वासन्ती के हृदय का कोई भी ऐसा कोना न रह जाता जो अमावस्या की रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार से परिपूर्ण न हो उठता। हृदय में उस समय किस प्रकार की बेकली का तूफ़ान आ जाता, यह वह स्वयं भी न समझ पाती।

असह्य दुःख की अतिशयता के कारण अन्तरात्मा जब विक्षिप्त हो उठती, रात भर में एक मिनट के लिए भी—नींद न आ सकने पर जब अविराम अश्रुधारा से वह तकिया भिगो देती, उस समय उसके मन में आता कि प्रियजनों से विहीन इस पत्थर की अट्टालिका में अपना ऐसा कोई नहीं है जो मेरे दुःख के अंश को ग्रहण करता।

अतीत की स्मृति दुःख सहन करने में मनुष्य के लिए बहुत सहायक होती है। यदि अतीत न होता तो वर्तमान का दुःख सहन करना सम्भव ही न होता। वासन्ती भी मन ही मन अपने अतीत जीवन पर विचार किया करत... थी। इस विशाल अट्टालिका में निवास करते समय उ... मामा का क्षुद्र कुटीर प्रायः याद आया करता। वह अनु... भव किया करती कि मामी के कठोर शासन के कारण भ... मेरा शरीर और मन इस तरह जीर्ण नहीं हो सका था... रात-दिन मामा के परिवार के लोगों की सेवा-सुश्रूषा ... लगी रहने पर भी वह मन में कभी क्लान्ति या कष्ट क... अनुभव नहीं करती थी। समस्त दिन के परिश्रम के बा... खुले मैदान में खड़ी होकर जब वह अपनी बाल्य सहचरियों ... के साथ लुका-छिपी खेलती फिरती तब उसका क्षुद्र हृद... कितने आनन्द से नहीं परिपूर्ण हो उठा करता था। परन्तु ... आज ऐश्वर्य्य के उच्च आसन पर विराजमान होने प... भी चारों ओर की मुक्त वायु वासन्ती का श्वास क्यों रु... करती जा रही थी? संसार में क्या भोजन-वस्त्र मिल जाने में ही नारी-जीवन की सार्थकता है? यह विशाल, शान्त, निस्तब्ध, निर्मम और निष्ठुर अट्टालिका ही क्या स्वर्ग है?

वासन्ती तन्मय होकर इन्हीं सब बातों पर विचार कर... रही थी। एकाएक उसकी एक लंबी साँस निकल पड़ी। ... बाद को स्वर्ग को गये हुए श्वशुर के प्रति वह मन ही मन कहने लगी—इस अभागिनी को दुर्भाग्य के आवरण से बचाकर आप सोने के पींजड़े में क्यों बन्द कर ले आये हैं? ऐसा करके क्या आप इसके अदृष्ट की गति फेरने में समर्थ हो सके हैं?

ज्ञान का उदय होने के साथ ही साथ जिसकी चिन्ता से हृदय परिपूर्ण हो उठता है, आठों पहर काम-काज के समय भी जिसकी मूर्ति हृदय में अचल और अटल भाव से विराजमान रहती है, वही प्राणी यदि स्वेच्छा से दूर हट जाता है तो उस अवस्था में जगत् किस तरह सर्प के विष से परिपूर्ण हो उठता है, यह समझा कर बतलाने की बात नहीं है।

जीवन के लिए जो अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है, जो एकमात्र कामना का पात्र है, उसी प्रियजन की प्रीति-लाभ!—क्या यह सभी नारियों के भाग्य में बदा होता है? किन्तु यदि किसी नारी का भाग्य इतना प्रबल हुआ कि वही प्रियतम जीवन भर भी निराशा की व्यथा को अपनी अविराम प्रेम-धारा से तृषित हृदय को तृप्त करके शान्त कर देता है तो वह नारी देवताओं की कान्ति से

दीप्यमान शुभ्र स्वर्गवास दिव्यचक्षु, से देखने में समर्थ हो पाती है। जिसके भाग्य के खोटेपन के कारण वह दिन उदय होकर भी यदि अमावस्या की रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार से आच्छादित हो उठे तो उसके लिए यह दुःख रखने का स्थान मिलना कहीं सम्भव है क्या? वासन्ती का भी वह शुभ दिन बहुत दिनों की साधना के बाद सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा था। परन्तु बीच में न जाने कौन सा ऐसा प्रलय का तूफ़ान आया कि वासन्ती के उस शुभ दिन को वह अनन्त के पथ पर उड़ा ले गया। वासन्ती उसे किसी प्रकार भी समझ न सकी।

आशा के ही बल पर विशाल धरणी के समग्र नर-नारी किसी प्रकार जीवन धारण किये रहते हैं। यदि आशा का अवलम्बन न होता तो वर्तमान के असह्य और दुःखमय दिनों को व्यतीत करते जाना किसकी शक्ति का काम था? दुःख के बाद सुख भी आ सकता है, इस भरोसे पर ही हम वर्तमान के दुःख, क्लेश और यातना को सहन करते हुए किसी प्रकार जीवित रहते हैं। यदि कोई आदमी महासागर में डूबते समय मुट्ठी भर घास-फूस भी पा जाता है तो उसे वह बड़े ज़ोर से पकड़ता है, सोचता है कि शायद इसके सहारे से मैं बच सकूँगा। ठीक इसी प्रकार निराश हृदय में दूसरे व्यक्तियों के द्वारा प्राप्त की हुई सान्त्वना ही आशा का सञ्चार करती है। परन्तु एकमात्र जिसकी चरण-सेवा करना ही नारी की कामना का विषय हो सकता है, जिसकी अलौकिक प्रीति ही नारी की एकमात्र तपश्चर्या है, जिसका ध्यान ही नारी-जीवन का चरम लक्ष्य है, उसी एकमात्र आराध्य देवता को यदि न प्राप्त किया जा सके तो किस अपरिसीम यन्त्रणा से नारी का हृदय भग्न हो उठता है, यह बात व्यक्त करने की शक्ति किसमें है?

निराशा की घनघोर घटाओं में वासन्ती के दिन कटे जा रहे थे—उसी समय एक दिन एक दुःखमय समाचार पाकर वह स्तम्भित हो उठी। सुषमा का पत्र आने पर मालूम हुआ कि उसकी माता की मृत्यु हो गई है, इससे वह बहुत उद्विग्न हो उठी है। सुषमा ने लिखा था—"मा मेरे लिए क्या थीं, यह बात तू ही जानती है। आज उन्हें खोकर मैं किस तरह दिन काट रही हूँ, यह लिख कर मैं तुझे नहीं सूचित कर सकती। ज़रा दिन के लिए तू मेरे पास आ जा। आज-कल मैं कितने कष्ट से—" केवल इतने ही शब्दों में वह पत्र समाप्त हो गया था। वह अधूरी ही चिट्ठी वासन्ती के पास भेजी गई थी।

सुषमा का पत्र लेकर वासन्ती ताई जी के पास गई। उन्हें उसने सारा हाल बतलाया और उनका परामर्श लेकर सुषमा के यहाँ जाने के लिए वह तैयारी करने लगी। ताई ने बहुत ही क्षीण और दुःखमय कण्ठ से कहा—मैं देखती हूँ बिटिया कि तुम्हारा यह जीवन गली गली की राख छानने में ही बीतेगा। दो दिन शान्तिपूर्वक बैठ सको, इतना भी तुम्हारे भाग्य में नहीं बदा है। छः मास इधर-उधर बिता कर अभी ही आई हो। दो मास भी नहीं व्यतीत हो पाये कि यह विपत्ति आ खड़ी हुई। परन्तु परिस्थिति ऐसी है बिटिया कि तुम्हारा न जाना भी ठीक न होगा। उस लड़की ने बुरे दिनों में तुम्हारी बड़ी सहायता की है। अहा, बेचारी ऐसा भी भाग्य लेकर पृथ्वी पर आई थी। मा थी, भगवान् ने उसे भी—ताई जी की आँख की पलकें भीग गईं। वे अञ्चल से आँसू पोंछने लगीं।

वासन्ती उस समय सोच रही थी कि मेरे समान भी क्या कोई दुर्भागिनी है। कितना समय तो बीत गया; आशाहीन, उद्देश्यहीन व्यर्थ जीवन का भार लादे लादे मैं कहाँ कहाँ नहीं घूम आई हूँ? परन्तु इस यात्रा का फल क्या हुआ? क्या इससे ज़रा-सी शान्ति, ज़रा-सी तृप्ति या इसी प्रकार की और ही कोई वस्तु संचित कर सकी हूँ? केन्द्र से च्युत हुए ग्रह के समान ही विशाल जगत् में गृह-हीन और नष्टाश्रय होकर क्या मैं नहीं घूमती फिर रही हूँ? क्या इस गति के वेग से कोई मुझे लौटाल ले आ सकेगा? गति के पथ पर ग्रह चलता है अवश्य, किन्तु उसका भी एक स्थिर, निर्दिष्ट पथ होता है। मेरा क्या इस प्रकार का कोई पथ है? है केवल लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन शून्य जीवन को किसी प्रकार व्यतीत करना।

यात्रा के दिन प्रातःकाल वासन्ती को चमेली का एक पत्र मिला। उससे उसे मालूम हुआ कि बुआ जी इस समय भी पूर्ण रूप से आरोग्य नहीं हो सकी हैं। उन्हें मन्द मन्द ज्वर होता है, भोजन नहीं पचता, इसी तरह की कुछ शिकायतें और हैं। सभी लोगों का यह विचार है कि उन्हें देहरादून घुमा ले आया जाय। परन्तु पिता के पास उसका रहना आवश्यक है, इसलिए यदि उसकी माता के साथ

वासन्ती वहाँ जा सके तो बड़ा अच्छा हो। उसके पिता की भी यही राय है। अतएव वासन्ती को यदि जाना स्वीकार हो तो यात्रा का प्रबन्ध किया जाय। उसका उत्तर मिल जाने पर ही यात्रा का दिन स्थिर किया जायगा।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

सुषमा का ब्रह्मचर्य्य

कलकत्ता पहुँच कर वासन्ती पहले सुषमा के ही बँगले पर उतरी थी। परन्तु वहाँ उसे कोई नहीं मिल सका। तब उसने माली को भेजकर अपने मामा को बुलवाया। माली से ही उसे यह भी मालूम हो गया कि इधर महीने भर से सुषमा आश्रम में ही वास करती है। इसलिए मामा के साथ वह आश्रम की ओर चली।

गाड़ी आश्रम में पहुँची। वासन्ती ने देखा तो कैसा एक शान्त, स्निग्ध और पवित्र भाव उस स्थान की चारों दिशाओं को मनोरम किये हुए था। आश्रम में किसी भी स्थान पर गन्दगी नाम तक को न थी। स्थान निर्वाचित करने के सम्बन्ध में सुषमा की क्षमता देखकर वासन्ती मन ही मन आश्चर्य में आ गई। इस कोलाहलपूर्ण नगरी में इस तरह का नीरव और निर्जन स्थान सुषमा ने किस तरह खोज निकाला, यह वासन्ती की समझ में नहीं आ रहा था।

आश्रम के लिए बने हुए विशाल भवन के सायबान में आकर गाड़ी खड़ी हुई। वासन्ती उतर पड़ी और मामा के बुलाने पर ज़ीने से होकर ऊपर की ओर चली। ज़रा ही दूर आगे बढ़ने पर उसने देखा कि एक सुथरे कमरे में सुषमा बैठी हुई है। उस समय उसके शरीर पर एक धुली हुई गेरुआ रंग की साड़ी थी। मृगचर्म पर बैठी हुई वह सामने बैठी हुई छात्राओं को गीता पढ़ा रही थी। उस समय दूर से देखने पर वह देवकन्या-सी जान पड़ रही थी। उसके लम्बे लम्बे और खोल देने पर घुटने तक लटक आनेवाले काले काले किन्तु रूखे बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। नीले कमल के समान सुन्दर और कान तक फैले हुए उसके दोनों ही विशाल नेत्र कैसी एक पवित्र ज्योति से उद्भासित हो उठे थे। सुषमा की अग्नि की शिखा के समान तपस्विनी-मूर्ति देखकर वासन्ती अनुभव करने लगी, मानो वह सौन्दर्य्य के एक नये जगत् में आ गई है। उसके मन में यह बात आई कि बहुमूल्य वेश-भूषा में भी सुषमा का इस तरह का सौन्दर्य्य कभी उसके देखने में नहीं आया। जिसे देखकर वासन्ती हक्का-बक्का हुई जा रही थी वह प्रसन्न भाव से बैठी हुई एकाग्रचित्त से छात्राओं को गीता के श्लोक पढ़ा पढ़ा कर उन्हें उनका सारांश समझा रही थी—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥"

"जिस तरह कपड़ा फट जाने पर आदमी उसे उतार कर नया कपड़ा पहन लेता है, उसी तरह जीव भी एक शरीर पुराना हो जाने पर उसे छोड़ देता है और नया शरीर धारण करता है अर्थात् पुनर्जन्म होता है।"

सुषमा के मुँह से निकले हुए गीता के ये वाक्य वासन्ती के कानों में अमृत की वर्षा कर रहे थे। वह सोचने लगी, हाय! सभी लोग यदि ज्ञानी जनों के पथ का अनुसरण करते तो जगत् में दुःख नाम की कोई वस्तु ही न रह जाती।

कुछ ही क्षणों के बाद वासन्ती कमरे के द्वार के पास आ पहुँची। चौखट के पास उसने जैसे ही पैर रक्खा, सुषमा के साथ उसका दृष्टि-विनिमय हुआ। वासन्ती को देखते ही वह दौड़ पड़ी। आँसुओं के कारण उसकी आँखें अन्धी होगईं। रुद्ध कण्ठ से सुषमा ने कहा—तू आगई! यह केवल मुहूर्त भर की बात थी। बाद को वह कटी हुई लता के समान वासन्ती की गोद में लोट पड़ी। खुल कर रोने का अवसर मिल जाने के कारण उसके अन्तःकरण की ग्लानि बहुत कुछ कम हो आई। तब उसने रुद्ध कण्ठ से फिर कहा—"वासन्ती दीदी, मेरा क्या गया है— जानती—"

आँसुओं की धारा फिर उमड़ आई। वह जो कुछ कहने जा रही थी वह फिर न कह सकी। तब वे दोनों नीरव भाव से रोने लगीं।

वासन्ती को लेकर सुषमा एक ऐसे एकान्त कमरे में गई थी, जो बिलकुल ही अँधेरा था। उसी अन्धकारमय कमरे में बैठी बैठी वासन्ती कहने लगी—दीदी, इस तरह

न व्यतीत करके आप कितने दिनों तक जीवित रह केंगी ?

स्निग्ध कण्ठ से सुषमा ने कहा—क्यों वासन्ती, तुमने री कौन-सी ऐसी बात देखी है ?

कातर कण्ठ से वासन्ती ने कहा—कौन-सी बात तलाऊँ दीदी ? शरीर के ऊपर जितने प्रकार के भी अत्या-ार किये जा सकते हैं उनमें से क्या आप कुछ बाक़ी क्खे हैं ? इस तरह करते रहने पर शरीर कितने दिनों क टिक सकेगा ?

वासन्ती की यह बात सुनते ही सुषमा का दुःख का प्रावेग उमड़ आया। भर्राई हुई आवाज़ से वह कहने गी—अब जीवित रह कर क्या करूँगी वासन्ती ? जिनके लिए शरीर की रक्षा करती थी वे ही जब छोड़कर चली ाईं तब इस शरीर को सुरक्षित रखने की क्या आवश्य-कता है ? अब तो जिस तरह भी जल्दी से जल्दी मा के ास पहुँच सकूँ, वही उपाय मुझे करना चाहिए न ? और दि सच बात पूछो तो मा को खो देने के बाद अब मेरी जीवित रहने की इच्छा नहीं है। मा मेरी क्या थी, यह ात अब मैं ख़ूब समझ रही हूँ। मा के न रह जाने पर ाबू जी भी भैया के पास चले जा रहे हैं। ज़रा तुम्हीं न सोच-कर देखो वासन्ती, और कितना कष्ट सहन कर सकती हूँ मैं।

वासन्ती ने पूछा—तो क्या तुम इसी तरह सारा जीवन व्यतीत कर दोगी दीदी ? विवाह न कर लो दीदी ?

सुषमा ने कहा—अब विवाह करने की क्या आवश्य-कता है वासन्ती ? मा की बड़ी इच्छा थी मेरा विवाह कर देने की। उनके जीवनकाल में जब विवाह नहीं हो सका तब अब क्या होगा। इसके सिवा मैं तो वन की पक्षी हूँ। मैं क्या पिंजड़े में बन्द होकर रह सकूँगी ?

"तो भी दीदी क्या किसी अवलम्बन के बिना मनुष्य रह सकता है ?"

सुषमा ने ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ कहा—क्यों वासन्ती, तुम्हीं ने तो मुझे अवलम्बन का मार्ग दिखला दिया है। अब ये अनाथ ही मेरे लिए सब कुछ हैं। इनके पीछे सारा दिन किस तरह जल्दी से जल्दी कट जाता है, यह मैं समझ ही नहीं पाती हूँ। मुझे तो अब किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं है। अब मैं रात-दिन इन्हीं की चिन्ता में पड़ी रहती हूँ। जगत् में जितने भी अनाथ और अना-थिनें हैं, वे सभी तो मेरी सन्तानें हैं। मैं तो इस समय जगत् की माता हूँ। मैं तो अब अपनी नहीं रह गई हूँ।

ज़रा से विराम के बाद सुषमा ने फिर कहना आरम्भ किया। वह कहने लगी—बाबू जी जब मुझे छोड़कर जा रहे थे, तब मैं बहुत रोई थी वासन्ती ! उस समय उन्होंने मुझसे कहा था—तू तो अब अपने आपको नये रूप में गढ़ कर बना रही है बिटिया। मैंने तो तुम्हें केवल अपने ही लोगों से माया-मोह करना सिखलाया नहीं ! तुम्हें तो मैंने यह सिखलाया है कि तू जगत् को स्नेह की दृष्टि से देख, जगत् में जितने भी प्राणी हैं, उन सभी को अपना समझ। ऐसी दशा में आज एक ही दिशा की ओर तेरा आकर्षण क्यों हो रहा है ? तेरे बिभुक्षित हृदय में जितना भी स्नेह-ममता का भाव है, वह सब जगत् के अनाथ शिशुओं के ऊपर बिखरा दो। तब देखना कि वहाँ के वही तेरे खोये हुए माता-पिता फिर मिल जाते हैं या नहीं।

इतना कह कर सुषमा गम्भीर हो गई। वह कहने लगी—वासन्ती, पिता जी की आज्ञा मेरे लिए भगवान् की आज्ञा है।

वासन्ती सुषमा के गले से लिपट गई। उसकी उस समय की अवस्था के कारण उसे बड़ी वेदना हो रही थी। विषादमय स्वर से वह कहने लगी—दादी—

वासन्ती का सूखा हुआ और विषादमय मुख अपने वक्ष पर रख कर स्नेहार्द्र कण्ठ से सुषमा ने कहा—क्या कहती है वासन्ती ?

"मैं न जाऊँगी ?"

आलिङ्गन में आबद्ध करके सुषमा ने कहा—छिः बहिन, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? चमेली दीदी की चिट्ठी तो देखी है न ? मैं तुझे समझा-बुझा कर किसी न किसी तरह भेज दूँ, इसी बात पर उन्होंने ज़ोर दिया है। इस समय यदि तू न जायगी तो वे लोग कहेंगी कि मैंने ही तुझे रोक रक्खा है। तू तो बुद्धिमती है। इस तरह का पागलपन का काम क्यों कर रही है ? बुआ जी की तबीयत अच्छी नहीं है, इस समय उनको सेवा-शुश्रूषा करना तेरा कर्त्तव्य है ! तेरे लिए वे कितनी चिन्ता किया करती हैं, यह तू अच्छी तरह जानती है। उनको बीमारी के समय क्या तेरा न जाना उचित होगा, विशेषतः ऐसी परिस्थिति



जयमाल

जब कि वहाँ के लोगों ने बुला भेजा है। तुझे छोड़ने में मुझे स्वयं कितना क्लेश हो रहा है, यह मैं किस तरह समझाऊँ वासन्ती।

वासन्ती ने कहा—परन्तु मुझे तो वहाँ जाना इस समय बिलकुल नहीं अच्छा लग रहा है दीदी।

सुषमा ने कहा——अच्छा न लगने पर भी अच्छा जाना पड़ेगा। इस समय तू इतनी नासमझी का काम क्यों कर रही है वासन्ती? यह जगत् भी कभी कभी भूकम्प आने पर डगमग हो उठता है, परन्तु तुझे तो मैंने डगमग होते कभी नहीं देखा। तूने तो अपने हृदय को पत्थर की तरह कड़ा कर लिया था। परन्तु आज ऐसी बात क्यों कर रही है?

सुषमा ने आग्रहपूर्ण स्वर में कहा—देखो वासन्ती, मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह हर अवस्था में नीति से काम ले। समीप रहते रहते यदि तू विरक्तहृदय को गृहस्थ बना सके तो इसमें हानि ही क्या है? अपने में आकर्षण उत्पन्न करना क्या उचित नहीं है? वासन्ती, छोटी बहन मेरी, तूने तो किसी दिन भी मेरी इच्छा के विरुद्ध आचरण नहीं किया! क्या आज मेरे अनुरोध पर ध्यान न देगी बहिन? यह तेरे लिए बहुत ही अनुकूल अवसर है, माहेन्द्रक्षण है, इसे न जाने दे।

यह कह कर सुषमा चुप हो गई। वासन्ती उसके प्रति अगाध ममता का भाव प्रकट कर रही थी उसके कारण उसके प्रति सुषमा को बड़ी श्रद्धा हो रही थी। वह सोचने लगी कि वासन्ती के साथ मेरा सम्बन्ध ही क्या है यही दो दिन का परिचय तो है। इतने में ही वह मुझ इस तरह का स्नेह क्यों करने लगी? परन्तु क्षण ही भर के बाद उसके मन में फिर आया कि स्नेह करना तो वासन् का स्वभाव ही है। क्या वह निष्ठुर है? वह मुझे छोड़क जाना नहीं चाहती, मैं ज़ोर देकर उसे भेज रही हूँ। परन् जाना उसका कर्त्तव्य है।

उस समय सुषमा बहुत ही गम्भीर थी। सारी परिस्थिति उसकी आँखों के सामने मूर्तिमान होकर नाचने लगी। उसके हृदय पर रह रह कर उचित हो रहा था उस दिन का सन्तोष का व्यवहार। वह सोच रही थी कि उस दिन सन्तोष भाई ने कैसा असभ्यतापूर्ण व्यवहार किया था। हाय रे पुरुष! तुम्हारी बातें तुम्हीं को मालूम हैं। आरम्भ-काल से ही तुम लोगों में इस प्रकार की प्रथा चली आ रही है। स्त्रियों के ऊपर अत्याचार करने में तुम सदा ही सिद्धहस्त रहे हो।

सुषमा के विषादमय मुख की ओर ताक कर वासन्ती ने कहा——मैं तुम्हारी बात न टालूँगी दीदी, तुम मुझे क्षमा कर दो।

सुषमा ने वासन्ती को अपने उच्छ्वसित हृदय से ज़ोर से लगा लिया, और मन ही मन वह कहने लगी—यह क्या शान्ति है? यह क्या तृप्ति है? क्या है यह?

दीपक से

लेखक, श्री विश्वम्भरनाथ

कहीं न हो दीपक तू मतिभ्रम!

आज प्रकृति के अटल नियम में,
तेरा है निश्चित जीवनश्रम!

एक रात बस एक रात में,
कर देगा निष्प्राण मृत्युक्रम!

यह तेरी इच्छा पर निर्भर,
हँसकर गाकर रात बिता दे!

या अपने इस मलिन वेश में,
रो रोकर अस्तित्व मिटा दे!

पल दो पल का यह मेला है,
तू होता है व्यर्थ निरुद्यम!

खेल समझकर खेल अभागे,
यह हँसना रोना केवल भ्रम!

506

सरस्वती
मई 1938

विदेशी भारतीयों का देश के लिए प्रेम

प्रेषक, डाक्टर राममनोहर लोहिया

विदेश में रहनेवाले भारतीय मज़दूर देश की आज़ादी के लिए किस तरह तड़पते रहते हैं और उनको कांग्रेस का संवाद पहुँचाने के लिए कांग्रेस का विदेशी विभाग क्या कर रहा है, यह बात सिंगापुर से आये हुए एक पत्र और उसके उत्तर से मालूम होती है। वे पत्र हम यहाँ छाप रहे हैं—

प्रिय महोदय,

"सेवा में सविनय निवेदन है कि हम लोग अपने अभाग्यवश इस प्रदेश में दुखःमय जीवन बिता रहे हैं। लेकिन अब हम लोग इस दुख-दर्द की परवाह न करके आप महानुभावों के शरणागत हो रहे हैं और आशा करते हैं कि आप लोग हम दीनों की रक्षा करते हुए जो हम लोग अपनी अल्पशक्ति द्वारा सेवा कर रहे हैं उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे और हम लोगों के योग्य कार्य की सूचना बराबर देने की कृपा करते रहिएगा।

"महाशय जी निवेदन है कि सदस्य-नामावली को सकृपया स्वीकार करते हुए नियमोपनियम के सूचना के साथ साथ सबके नाम से रसीद काटकर पत्र में भेजने की कृपा कीजिएगा। पत्रोत्तर के साथ नियमोपनियम मिलना ज़रूरी है ताकि मैं उसकी सूचना सबको देकर उसके अनुकूल चलने की प्रार्थना करूँगा और जो लोग उसे स्वीकार करेंगे उनकी नामावली आपकी सेवा में देता रहूंगा। और यहाँ की जनता में दिन पर दिन उत्साह बढ़ रहा है, लेकिन दुःख की बात यह है कि यहाँ के क़ानूनों के डर से अधिक जनता भयभीत हो रही है, विद्या के अभाव से। अगर इसका डर किसी न किसी तरह से दूर हो जाय तो अधिक चन्दा मिल सकेगा और यदि कांग्रेसी सरकार-द्वारा क़ानून यह सूचना प्रकाशित हो जाय कि सब प्रवासी भारतीयों को अधिकार है कि यथाशक्ति सहायता करें। यदि इसके लिए उनको किसी प्रकार का कष्ट दिया जायगा तो उनको मदद की जायगी और साथ साथ रसीद बुक भेज कर समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाय कि फ़लां आदमी के नाम से कांग्रेसी सरकार रसीद बुक भेज रही है और देश के प्रति सहायतार्थ आशा कर रही है कि प्रवासी भारतीय इस पर ध्यान देवेंगे। इसके साथ साथ निवेदन है कि देश के कर्णधार महाशयगण स्वदेशी कारबार को बढ़ाने के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं जिसके साथ साथ खपत की जगह खोजना ज़रूरी है। इसलिए विदित हो कि इस समय स्वदेशी चीज़ों के लिए जनता अत्यन्त उत्सुक है। लेकिन दुख की बात यह है कि कुछ स्वार्थी लोग नक़ली चीज़ को असली बनाकर बेच रहे हैं, जिससे असली माल मँगानेवालों को हैरानी उठानी पड़ती है। और इस समय जापानी माल बहिष्कार से कितने व्यवसायी अपने मालों पर इन्डिया की मोहर लगाकर बेच रहे हैं। इस पर ध्यान देते हुए यदि सरकार स्वदेशी चीज़ों को व्यवस्था के साथ पहुँचाने पर ध्यान देने की कृपा करे तो यहाँ कई एक रोज़गारों पर अधिकार हो सकेगा। प्रथम कपड़े के कारबार पर ध्यान देना अत्यन्त ज़रूरी है, क्योंकि इस समय यहाँ कपड़े का कारबार अच्छी तरह चल रहा है और इसके साथ साथ स्वदेशी मिलों के पते के साथ उनका नाम समाचार-पत्रों में प्रकाशित होना ज़रूरी है, क्योंकि भारत में विदेशी लोगों के भी मिल हैं, जिससे जनता को विदित हो जाय कि यह माल स्वदेशी मिल का है। और हम भी यथाशक्ति अखिल भारतीय चर्खासंघ से माल मँगा रहे हैं—जो हम लोग अल्पबुद्धि-द्वारा आप महानुभावों की सेवा कर रहे हैं उसके लिए बार बार प्रार्थना करते हैं कि जो त्रुटियाँ हों उनको सकृपया क्षमा करते हुए पत्रोत्तर देने की कृपा कीजिएगा।

विशेष प्रार्थना

प्रार्थी राजाराम शर्मा

सिंगापुर, मलय

प्रिय श्री राजाराम जी,

आपका पत्र मिला। हमें यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि आप अपने दुख-दर्दों के होते हुए भी देश की आज़ादी की लड़ाई में इतनी दिलचस्पी रखते हैं।

आपकी भेजी हुई नामावली मिली। हमें यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि ये सब कांग्रेस के मेम्बर बनना चाहते हैं। कांग्रेस के नियमों के अनुसार हिन्दुस्तान के बाहर रहनेवाले सिर्फ़ हिन्दुस्तान की ही किसी कांग्रेस-कमिटी के सदस्य बन सकते हैं। इस क़ायदे के मुताबिक़ हम आपको इलाहाबाद, आज़मगढ़ या गोरखपुर ऐसे किसी जगह के कांग्रेस के सदस्य बना सकते हैं। ख़ुद सिंगापुर में आप एक ऐसा संगठन ज़रूर बना सकते हैं जिससे हम हमेशा पत्र-व्यवहार करेंगे और सब तरह से जिसकी हम सहायता करेंगे। आप इसका नाम भारतीय राष्ट्रीय संघ या ऐसा और कुछ नाम रख सकते हैं।

हमें यह जानकर भी बड़ी ख़ुशी हुई कि प्रवासी भारतीयों में देशी चीज़ों के व्यवहार का बड़ा उत्साह बढ़ रहा है। हम यहाँ पर इसकी कोशिश कर रहे हैं कि हिन्दुस्तान का मलाया के साथ व्यापार और ज़्यादा बढ़े और आपको हिन्दुस्तानी चीज़ें मिलने का मौक़ा मिले। हमें यह जानकर भी ख़ुशी हुई कि आप अखिल भारतीय चरखा-संघ से खादी मँगाया करते हैं। देश की आज़ादी के लिए आपमें जो प्रेम और उत्साह है उसके लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं।

आप यह तो जानते ही हैं कि कांग्रेस का उद्देश्य हिन्दुस्तान की पूरी आज़ादी प्राप्त करना है। कांग्रेस की लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी राज्य क़ायम न हो जाय। आज-कल जो कुछ सूबों में कांग्रेसी सरकारें बनी हैं वे तो हमारी इसी लड़ाई में मदद पहुँचाने के लिए हैं और देश में अँगरेज़ों के रहते हुए जो कुछ ग़रीबों का फ़ायदा हो सकता है उसके करने के लिए हैं, इसलिए जब तक देश पर विदेशी हुकूमत है तब तक किसी भी सरकार के द्वारा, चाहे वह कांग्रेसी सरकार क्यों न हो, यह मुमकिन नहीं कि हम आपके नाम अपील निकलवायें। अपील निकालनेवाली और देश को आज़ादी दिलानेवाली तो एक ही संस्था है और वह है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस। उसकी अपील तो आपके सामने बड़े ज़ोरदार शब्दों में है कि आप अपने उत्साह को बढ़ायें और देश को आज़ाद बनाने में हिस्सा लें।

प्रवासी भारतीय हिन्दुस्तान के अंग हैं उनका दुख-दर्द हमारा दुख-दर्द है और हमारे दुख-दर्द उनके दुख-दर्द हैं।

आपके भेजे हुए २१ रुपये हमें मिले हैं, जिनकी रसीद भी अलग पत्र में आपको भेज दी गई है और जिनको हम कांग्रेस के काम में लगायेंगे। हिन्दी और अँगरेज़ी की कुछ पुस्तकें आपको हम भेज रहे हैं।

भवदीय

(ह०) राममनोहर लोहिया

मन्त्री

वैदेशिक विभाग

अ० भा० का० क०

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथा समय प्रकाशित होगा।]

१—**ग्राम्य-शिक्षा का इतिहास**—लेखक, श्रीयुत श्रीनारायण चतुर्वेदी, प्रकाशक, सरस्वती पब्लिशिङ्ग हाउस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

२—**सुभाषचन्द्र बोस**—लेखक, श्रीयुत रमेशचन्द्र आर्य, प्रकाशक, विजय-पुस्तक-भंडार, अर्जुन-प्रेस के ऊपर, देहली हैं। मूल्य ।=) है।

३—**श्रीमद्भगवद्गीता-भक्तियोग**—लेखक, परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक, सेक्रेटरी, हरिनाम संकीर्तन सम्मेलन, लाहौर हैं।

४—**विधवा-विवाह विचार**—लेखक, बाबू सुमेरचन्द्र जी 'कौशल', बी० ए०, प्रकाशक, श्री दिगम्बर जैन स्याद्वाद-प्रचारिणी सभा, नं० १ बैसाख लेन, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता हैं। मूल्य 'धर्मशील प्रचार' है।

५—**समाजवाद के सिद्धान्त**—अनुवादक, श्रीयुत पुरुषोत्तमलाल दुबे, प्रकाशक, बनारस न्यूज़ सिन्डिकेट, काशी हैं। मूल्य ।) है।

१-५—कविता की ५ पुस्तकें

१—**नीराजना**—लेखक, श्रीयुत वागीश्वर विद्यालंकार, प्रकाशक, शारदा-मन्दिर लिमिटेड, नई सड़क, देहली हैं। मूल्य १) है।

विभिन्न विषयों पर लिखे गये गीतों का यह एक सुन्दर संग्रह है। एक गीत में कवि 'पथ-प्रदीप' से पूछता है—

दीपक तू क्यों जलता है?
क्या तू कोई योगी मुनि है जो पाकर एकान्त
रातों ध्यान किया करता है हो एकाग्र नितान्त
नष्ट सब चंचलता है।

दीपक इसका यह उत्तर देता है कि कोई पथ-भ्रष्ट मुझे देखकर सीधी राह चला जाय। तब कवि उससे कहता है—

धन्य धन्य है जीवन तेरा धन्य पुण्य अभिलाष
जल कर अपने आप जगत् को तूने दिया प्रकाश
शुभ तेरी उज्ज्वलता है।

'नीराजना' में प्रकृति-सम्बन्धी भी कुछ सुन्दर गीत हैं। इन्द्रधनुष के विषय में कवि कहता है—

इस झूले में झूलूँगा।
दूर क्षितिज के कोने में है बँधी रेशमी डोर
देख देखकर मुदित हो रहा है मेरा मन मोर
इस पर चढ़कर एक बार तो
सकल विश्व को भूलूँगा,
इस झूले में झूलूँगा॥

गीत-प्रेमियों को इसका अवलोकन करना चाहिए

२—**मदशाला**—लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र', प्रकाशक, चैत्यधाम, मेरठ हैं। मूल्य ॥) है।

जब से बचन जी की 'मधुशाला' प्रकाशित हुई है, अनेक 'शालायें' हमारे सम्मुख आ चुकी हैं और अभी नई नई 'शालाओं' का निर्माण होता जा रहा है। इस 'मदशाला' में भी भावाभिव्यक्ति के लिए वही रूपक लिया गया है जो 'मधुशाला' में लिया गया है। देखिए—

लख शुष्क अधर मेरे कब से
संकेत कर रही थी हाला।
ओठों से लगने को कब से
बेताब हो रहा था प्याला॥
लेकिन पहिले से मिला हुआ—
था साक़ी का अभिशाप मुझे
मुद्दत से जब बरगश्ता थे
तो क्या करते शादाब मुझे?

भाषा के विषय में कवि ने स्वयं ही लिखा है—"आज हिन्दी का नवीन युग है, वह सार्वजनिक भाषा बनकर 'राष्ट्र-भाषा' होने जा रही है; इस विचार से मैंने भी इन कविताओं में हिन्दी शब्दों के साथ उर्दू शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है।" हमें संदेह है कि राष्ट्रभाषा

हिन्दी में 'बरगश्ता' और 'शादाब' जैसे शब्दों को स्थान मिल सकेगा।

रचना रोचक है। कविता-प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए।

३—**मधु-कण**—रचयिता व प्रकाशक, 'साहित्य-रत्न' श्री भंवरलाल भट्ट 'मधुप', हैं। मूल्य ।) है। पता—वाणी-मन्दिर, खरगोन (होलकर-राज्य) है।

'मधु-कण' कवि के सरल गीतों का संग्रह है। गीत हृदि-निकुञ्ज, कुसुम-कुञ्ज, स्मृति-कुञ्ज, मधु-वन और कंटक-वन में विभाजित हैं। कुछ सुन्दर राष्ट्रीय गीत भी संग्रह में हैं। किसान के विषय में कवि कहता है—

यही है दीन देश का प्राण
निर्मल मन है,
श्यामल तन है,
सहज सरलता सुख साधन है
विनय-विवेक-निधान।
× × ×
भूखों मरकर,
संकट सहकर,
शीतातप वर्षा में रहकर,
रखता धीर महान्।

भाषा की सरलता इसकी सभी कविताओं का विशेष गुण है।

४—**शंखनाद**—प्रणेता, साहित्य-रत्न श्री 'सुधीन्द्र' बी० ए०, प्रकाशक, प्रलय-पुस्तक-माला, कोटा हैं। मूल्य ।।) है।

हिन्दी के अधिकांश आधुनिक कवि प्रकृति-प्रेम और वेदना के वातावरण में इतनी बुरी तरह फँस गये हैं कि राष्ट्र की ओर उनका ध्यान बहुत कम जाता है। सुभद्राकुमारी चौहान तथा माखनलाल जी आदि दो-चार ही कवियों ने राष्ट्रीय कवितायें लिखी हैं, किन्तु अब प्रतिक्रिया के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। 'रोटी के राग' में हमारे सम्मुख एक नया दृष्टिकोण रक्खा गया है, शंखनाद भी राष्ट्रीय गीतों का एक ऐसा ही संग्रह है।

कवि कहता है—

भारत-माता के दुर्दिन की,
चक्की में पिसते लालों को—
उसके बँधे विवश हाथों को—
नत शिर के बिखरे बालों को—
× × ×
उसकी हृद्भेदी चीखों को
कातर वाणी को सुनकर
फट न जाय जो वही व्यथा से
प्रभो न दो ऐसा अन्तर॥

शंखनाद की अधिकांश कवितायें इसी प्रकार की हैं।

५—**अर्घ्य**—रचयिता, श्री भुवनेश्वरसिंह "भुवन", प्रकाशक "भुवन" साहित्यसरोज, वैशाली प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर हैं। मूल्य ।।) है।

अर्घ्य भक्तिभावना से पूर्ण है। उसके साथ राष्ट्रीय भावनाओं तथा आत्म-बलिदान की भावनाओं का भी सम्मिश्रण है।

एक उदाहरण लीजिए—

लाख-लाख आपदाओं से न मैं घबड़ाऊँ कभी,
धैर्य को गँवाऊँ न विपत्तियों की मार से।
सबल बना दो मेरे प्राण को दयानिधान!
एक यही भीख माँगता हूँ तेरे द्वार से॥

सारी पुस्तक में प्रायः इसी प्रकार का वातावरण है। इसके प्रणेता भुवन जी बिहार के प्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी हैं।

६—**दुविधा**—लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर हैं। मूल्य ॥) है।

हिन्दी-साहित्य का नाटक-अंग अभी काफ़ी पुष्ट नहीं हुआ है। इसका एक कारण यह है कि नाटक की पर्याप्त उन्नति होने से पूर्व ही 'नाटक' को चित्रपट ने उसके स्थान से अलग कर दिया है। हिन्दी में जो मौलिक नाटक लिखे गये हैं, या तो मंच के दृष्टिकोण से लिखे गये हैं या साहित्यिक दृष्टिकोण से। 'दुविधा' सामाजिक वातावरण के आधार पर लिखा गया है। नाटक छोटा है, किन्तु लेखक अपने प्रयास में सफल हुआ है। नाटक की भाषा भी सरल है।

नाटक सुपाठ्य है।

७—**अभिषेक नाटक**—अनुवादक, श्रीयुत प्रेमनिधि शास्त्री 'व्यास', प्रकाशक स्वाध्याय-सदन, मोहनलाल रोड, लाहौर हैं। मूल्य ।।।) है।

नाटक के कथानक के विषय में व्यास जी ने भूमिका

में लिखा है—"इसकी मूल कथा का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धा-काण्ड, सुन्दर-काण्ड और युद्ध-काण्ड हैं।" अनुवाद में पद्य के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है और गद्य के लिए खड़ी बोली का—एक नमूना देखिए—

[राक्षसों से बाँधे हुए हनुमान का प्रवेश]

सब लोग—अरे इधर, इधर।

हनुमान—तिन मोहि धर्ल्यो नाहिं निपट अनारी असुर ने।
आपहिं बन्धन माँहिं परयो लखन हित असुर के॥
(समीप जाकर) राजन्! आप प्रसन्न हैं?

रावण—(अवज्ञापूर्वक) विभीषण! इसने क्या किया है?

नाटक साधारण है।

८—सायंस—मूल लेखक—डाक्टर ई० जे० होमयार्ड, एम० ए०, एम० एस-सी०, डी० लिट्, प्रकाशक, पंजाब एडवाइज़री बोर्ड फ़ॉर बुक्स, लाहौर हैं। मूल्य १=)४ पाई है।

हिन्दी में विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों की कमी का अनुभव प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी कर रहा है। ऐसी स्थिति में विज्ञान-सम्बन्धी अँगरेज़ी पुस्तकों का अनुवाद भी कम उपयोगी नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक डाक्टर होमयार्ड की अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। पुस्तक उपयोगी है, किन्तु इसमें एक बात खटकती है। यंत्रों आदि के लिए कहीं कहीं केवल अँगरेज़ी शब्दों का ही प्रयोग किया गया है, कहीं विशुद्ध हिन्दी शब्दों का और कहीं उर्दू शब्दों का। इस विषय में यदि एक नियम से काम लिया जाता तो अधिक उत्तम होता। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

९-१० वैद्यक की २ पुस्तकें

९—सरल रोग-विज्ञान - वरालोकपुर, इटावा, के पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज केवल चिकित्सक ही नहीं हैं, किन्तु आयुर्वेद के ग्रन्थों के एक अच्छे प्रकाशक भी हैं। उनके एक बृहद् निघण्टु-ग्रन्थ के पहले खण्ड का यथा-समय परिचय दिया जा चुका है, प्रस्तुत ग्रन्थ उनका निदान-विषय का एक अनूठा ग्रन्थ है। इसकी रचना रायगढ़-राज्य के भूतपूर्व राज्यवैद्य पंडित रवीन्द्र शास्त्री ने की है। उन्होंने इस ग्रन्थ में रोगों का निदान विस्तार के साथ लिखा है और लिखा है यूनानी, डाक्टरी तथा आयुर्वेदिक प्रणालियों के आधार पर। इस प्रकार यह रचना अपटुडेट हो गई है और इसका अध्ययन करके रोग-निदान का सम्यक् ज्ञान पूर्णतया प्राप्त किया जा सकता है। इसमें आधुनिक रोगों के निदान भी शामिल कर दिये गये हैं। बड़े आकार के ४२० पृष्ठों का मूल्य कुल २।) हैं।

१०—बृहत - आसव - अरिष्ट - संग्रह—आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली में आसव-अरिष्टों का विशेष स्थान है, परन्तु इनका चिकित्सकों में वैसा प्रचार न होने से इनके निर्माण की विधि के ज्ञान का अभाव हो गया है। प्रसन्नता की बात है कि इस त्रुटि की ओर विद्वान् चिकित्सकों का ध्यान गया है और आसव-अरिष्ट के निर्माण के सम्बन्ध में उन्होंने खोज के साथ कुछ उपयोगी निबन्ध लिखे हैं। अब चाँदा मध्यप्रदेश के आयुर्वेदाचार्य पंडित कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने आसव-अरिष्टों के शास्त्रीय तथा विद्वान् वैद्यों द्वारा नये आविष्कृत योगों को अकारादि क्रम से इस संग्रह में संकलन किया है और भूमिका में उनके निर्माण की विधि भी बतला दी है। आसव-अरिष्टों के सिवा इसमें अँगरेज़ी ढङ्ग के कुछ टिंचरों के भी नुस्खे संग्रह किये गये हैं। देशी चिकित्सकों के लिए यह संग्रह अत्युपयोगी है और उन्हें इसका संग्रह कर आसव-अरिष्टों का निर्माण कर उनका प्रचार करना चाहिए। इस ग्रन्थ का मूल्य १॥) है।

पता - 'वैद्य' आफ़िस, मुरादाबाद।

११—रसिक-रसाल—हिन्दी में रीति-ग्रन्थों की यों तो काफ़ी प्रचुरता है, परन्तु ऐसे ग्रन्थ इने-गिने ही हैं जिनमें दशांग-काव्य का वर्णन किया गया हो। दशांग-काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों में केवल चिन्तामणि का 'कवि-कल्पतरु', कुलपति का 'रस-रहस्य' और भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' ही छपा है। इस कोटि का यह चौथा ग्रन्थ है, जिसके प्रणेता कुमारमणि हैं। कुमारमणि ने इसकी रचना संवत् १७७६ में की थी और वे दतिया के राजा महाराज रामसिंह के दरबारी कवि थे। वे तैलंग ब्राह्मण थे और संस्कृत के भारी विद्वान् थे, हिन्दी के एक उत्कृष्ट कवि तो थे ही। अपने इस ग्रन्थ में उन्होंने काव्य के दशांगों पर विचार किया है। उनका यह ग्रन्थ भी ऐसे ही अन्य ग्रन्थों की तरह संस्कृत के काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। इस पुस्तक के भूमिका-लेखक ने लिखा है कि 'रसिक-रसाल' भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है। काव्य-निर्णय की हिन्दी के विद्वानों में अधिक ख्याति है, परन्तु उक्त महोदय इस ग्रन्थ की अपेक्षा उसे 'बहुत नीचे' स्थान देते हैं और कहते हैं कि उसमें 'बहुत-से स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ लक्षण अथवा परिभाषा अपूर्ण है अथवा अशुद्ध किंवा भ्रामक है।' चाहे जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि रसिक-रसाल अपने विषय का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, अतएव रीति-ग्रन्थों के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए। इसका सम्पादन भी बड़े परिश्रम के साथ किया गया है। कांकरोली (मेवाड़) के विद्याविभाग ने इसे प्रकाशित किया है और वहीं से यह १॥) में मिलता है।

—क-च-ट

१२—वीरप्रतापनाटकम्—लेखक, महामहोपाध्याय श्री पण्डित मथुराप्रसाद जी दीक्षित, प्रकाशक, श्री मोतीलाल बनारसीदास, पञ्जाब संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

यह एक नये युग का सफल संस्कृत-नाटक सात अङ्कों में विभक्त है। लेखक महाशय ने बड़ी सावधानी एवं गम्भीरता से इसे लिखा है।

यों तो सभी काव्यों की मानव-जीवन पर अमिट-रेखा खिंच जाती है, किन्तु मनोरञ्जन के साथ साथ दृश्य काव्य की महत्ता के विषय में कहना ही क्या है। उपर्युक्त रस की प्रधानता देकर यदि नाटक लिखा जाय तो उसका समादर होता ही है। किसी कवि की सूक्ति भी है—"काव्येषु नाटकं रम्यम्"।

इस नाटक के कथानक का परिचय "वीरप्रताप" नाम से ही व्यक्त है। किस हिन्दू को प्रताप-चरित का परिचय नहीं है? और किसे बार बार उनके चरित-परिचय से ऊब होती है? मैं तो कहूँगा हर एक नवयुवक के हृदय में उस सम्राट् के प्रति श्रद्धा है, और भक्ति है।

स्थान के आवश्यकतानुकूल भक्ति, शृङ्गार, करुण, रौद्र आदि रसों का आविर्भाव कवि ने इस रचना में खूबी से किया है। वर्तमान जगत् का प्रवाह हमें पूर्व भारत का स्मरण दिलाकर अपने पूर्व-पूर्वजों की भाँति वीरता की ओर आकर्षित करता है। उसमें इस नाटक से हमें अतिशय उत्साह मिलता है। प्रत्येक नवयुवक को इसकी एक प्रति रखना चाहिए। इसकी छपाई-सफ़ाई, और "वैजयन्ती टीका" सोने में सुहागे का काम करती है। किन्तु पात्र-सूचक पत्र का अभाव पाठकों को अवश्य खटकता है। तथापि "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" के अनुसार हम भारतीय संस्कृतज्ञ नवयुवक दीक्षित जी के इस कृति के लिए नितान्त कृतज्ञ हैं।

यद्यपि कहीं कहीं छन्दोभङ्ग तथा प्रसादगुण की अवहेलना एवं नाटकीय नियमों का उल्लङ्घन देख पड़ता है, तथापि "कुमारिलभट्ट" की "नात्रातीव प्रकर्त्तव्यं दोष-दृष्टिपरं मतः, दोषोह्यविद्यमानोऽपि तच्चित्तानां प्रकाशते" इस उक्ति के अनुसार हमें मौन ही धारण करना पड़ता है, कुछ भी हो इसकी लोक-प्रियता तथा समयानुकूल उपयोगिता हमें बाध्य करती है कि हम अपने भावी नवयुवकों से इसके अध्ययन तथा मनन का निवेदन करें।

—भूपेन्द्रपति त्रिपाठी शास्त्री
काव्यतीर्थ

१३—"पत्र-पुष्प"—संग्रहकार, श्रीमान् ठाकुर देवीसिंह जी साहब बहादुर चौमूँ—प्राप्तिस्थान पं० हनुमान शर्मा, चौमूँ (जयपुर स्टेट)

इसमें धार्मिक, राजनैतिक, व्यावहारिक, शिक्षाप्रद, उपदेशात्मक, गूढ़ाशयगर्भित, देवस्तवन और भगवद्भक्ति-पूर्ण ४७० दोहे, छंद, पद, भजन या शेर आदि हैं। संग्रह विद्वत्तापूर्ण किया गया है। कई पद्य बड़े ही रहस्यपूर्ण, आकर्षक और मर्मस्पर्शी हैं। साथ ही संस्कृत, हिन्दी, मारवाड़ी, फ़ारसी और पञ्जाबी आदि के चुने हुए सुगन्धपूर्ण पुष्पों का हृदयग्राही संग्रह हुआ है। डाक-व्ययमात्र के लिए सवा पाँच आने के टिकट भेजने से 'पत्र-पुष्प', 'चारु चयन' और 'सिलेक्ट जेम्स' आदि पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं।

१४—राष्ट्र-निर्माता मुसोलिनी—लेखक, आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक, भारती साहित्यमंदिर, देहली हैं। मूल्य ३) है।

गत महायुद्ध के बाद संसार की राजनीति जिस द्रुतगति से परिवर्तित हो रही है उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि अभी भविष्य के अन्धकार में कितने अप्रत्याशित परिवर्तन छिपे पड़े हैं। कहने के लिए तो यह विराट् महायुद्ध—यह दुर्दान्त संहार-आयोजन संसार को डेमोक्रेसी के लिए सुरक्षित स्थान बनाने का प्रयास

था, लेकिन महायुद्ध के बाद डेमोक्रेसी के विरुद्ध जो भीषण प्रतिक्रिया हुई है वह संसार की राजनैतिक गतिविधि में एक नवीन घटना है। इस प्रतिक्रिया का नाम 'फासिस्टवाद' है। इसका जन्मस्थान है इटली और जन्मदाता हैं मुसोलिनी जिनकी भ्रू-भंगिमा की ओर आज छोटे-बड़े सभी देशों के लोगों की भयाकुल दृष्टि टँगी रहती है।

योरप की राजनीति में आज इटली का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है वह छिपा नहीं है। महायुद्ध की सन्धि-चर्चा में उपेक्षित एवं अवहेलित इटली अपने सुयोग्य कर्मयोगी नेता की उत्कट क्रियाशीलता और सतत जागरूकता से आज सारे विश्व की हलचल एवं हड़कम्प का केन्द्र बन गया है। एक सामान्य लोहार के पुत्र ने राष्ट्रनिर्माण का कैसा अभिनन्दनीय कार्य किया है और अपने देश को आज कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है, यह सब पढ़कर, देखकर, सुनकर आश्चर्य होता है। इटली के उसी महान् निर्माता का यह जीवन-चरित है, जो एक अधिकारी और विद्वान् लेखक की अनुद्वेगशील लेखनी से लिखा गया है। लेखक महोदय पहले हिटलर—जर्मनी के राष्ट्रनिर्माणकर्ता महापुरुष—की ऐसी ही प्रामाणिक और ऐतिहासिक एवं राजनैतिक जीवनी लिख चुके हैं और प्रस्तुत पुस्तक लिखकर भी उन्होंने हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति की है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और आधुनिक विचारधारा पर ऐसे गवेषणापूर्ण ढंग से प्रकाश डालनेवाली पुस्तक में कम-से-कम हिन्दी में लिखने की लोगों की न जाने क्यों रुचि नहीं होती जब कि हिन्दी-भाषा-भाषी असंख्य पाठक जो अँगरेज़ी नहीं जानते, सदैव ज्ञान-पिपासु की भाँति ऐसी रचनाओं का पान कर जाने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन इटली का इतिहास, मुसोलिनी का आरम्भिक जीवन, महायुद्ध, महायुद्ध में मुसोलिनी, महायुद्ध के बाद इटली की राजनैतिक दशा, फ़ासिस्म का अभ्युदयकाल, रोम की विजय, मुसोलिनी की नई सरकार आदि भिन्न भिन्न विषयों पर सरल और सुबोध ढंग से बड़ी स्वच्छ भाषा में पर्याप्त विचार और राजनैतिक बातें एवं सूचनायें संकलित की गई हैं। इसके बाद मुसोलिनी के व्यक्तित्व, फ़ासिस्म के मौलिक सिद्धान्त, शासन-पद्धति, राष्ट्र-संगठन आदि विषयों की विवेचना की गई है। अबीसीनिया की समस्या के उद्गम से लेकर उपसंहार तक सभी बातों की विस्तृत चर्चा की गई है। मुसोलिनी के अतिरिक्त इटली के अन्य राजनीतिज्ञों का भी संक्षेप में परिचय दिया गया है।

पुस्तक की शैली रोचक और वर्णन आकर्षक है। पढ़ने में उपन्यास का-सा आनन्द मिलता है। हिन्दी-भाषा-भाषियों को इस पुस्तक को अपनाकर लेखक महोदय को उत्साहित करना चाहिए, जिससे वे भविष्य में ऐसी ही सुन्दर राजनैतिक ऐतिहासिक जीवनियों को लिखकर साहित्य के एक रिक्त अंग की पूर्ति करते रहें।

१५—नारी—लेखक, श्री सियारामशरण जी गुप्त, प्रकाशक, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी हैं। मूल्य १॥) है।

कविवर गुप्त जी का यह ताज़ा उपन्यास है। मीठी कविता और सरस कहानी लिखनेवाले कवि ने बड़ी सहृदयता के साथ इस सुन्दर उपन्यास की रचना की है।

संक्षेप में कथानक है—जमुना उपन्यास की नायिका का पति शहर में नौकरी करने चला गया है। उस समय नारी की गोद में एक बालक है हल्दी। परन्तु जमुना का पति वृन्दावन बरसों बाद भी नहीं लौटता। कभी सुनने में आता है कि उसने वहीं दूसरा विवाह कर लिया है, कभी सुनने में आता है कि वह मर गया है, जमुना इन बातों को सुनती है। हल्दी बड़ा हो जाने पर पिता के बारे में कभी कभी पूछ बैठता है।

जमुना की बिरादरी में दुबारा विवाह हो सकता है, परन्तु जमुना इन सब बातों से दूर—दृढ़ और स्थिर है। अजित उसे अपनाना चाहता है छल-प्रपंच और गाँव-वालों की स्वाभाविक सहज गहराईशून्य चालबाज़ियों से। लेकिन जमुना उसे स्पष्ट जवाब देती है, फटकार बैठती है। बाद में जब जमुना अजित के उपकारों से भारानत हो उठती है तब वह एक मूक समर्पण की असह्य भावना से गल जाती है। चाहे जिस रूप में अजित उसका उपयोग करे—उसे सब मंज़ूर है।

लेकिन अजित भी सब देखता है, सुनता है और समझ जाता है। नारी के इस अवसाद-भरे सजल समर्पण से बढ़ कर संसार की कोई बात अधिक ग्लानिप्रद नहीं होती। अजित इनकार कर देता है। वह जमुना के मन के विरुद्ध नहीं करेगा। यदि दूर रहने में ही उसे सुख है तो वह भी नारी के सुख में सुखी है।

बाद में वृन्दावन की भी ख़बर मिलती है। वह बीमार पड़ जाता है, जमुना को उसकी ख़बर नहीं मिल पाती। वह लौट जाता है। हल्दी उसे लेने जाता है, परन्तु निराश लौटता है। वहाँ से लौट कर हल्दी अपने पिता के ऊपर नाराज़ होता है। माता के कष्ट और नारी के दंशन दोनों मिलकर उसे क्षुब्ध कर देते हैं। वह मा से कहता है कि यह घर छोड़ दो और अजित काका के यहाँ चल कर रहो। इस घर में तुम्हें विराट् दुःख मिला है—यहाँ तुम न बचोगी। परन्तु जमुना विवेकशील है—नारीत्व के चिन्तन-प्रकाश से उसकी आत्मा उजागर है—वह हल्दी को ऐसी बातें करने के लिए मना करती है और अपने पूर्व-निश्चय पर ही स्थिर रहती है।

पुस्तक की लेखनशैली सजीव है। उपन्यास में स्वाभाविकता का वह द्रुत स्रोत नहीं है जो एक अधिकारी उपन्यास-लेखक की कृति में होता है। ऐसे घटनास्थल कृत्रिमता की ओर ले जाते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि स्वर्गीय श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की उन्मादिनी शीर्षक अत्यन्त सुन्दर कहानी जो किसी समय चाँद में निकली थी, लेखक के हृदय पर अपनी अमिट स्मृति छोड़ गई है, क्योंकि उपन्यास का 'थीम' (विषय) बहुत दूर तक उसी से मिलता-जुलता चला जाता है। लेकिन कवि के मानस का गीलापन उपन्यास को चारों ओर से आच्छन्न किये है, जो लेखक की अपनी चीज़ है। आशा है, आगे के उपन्यास और भी प्रौढ़ और पुख़्ता होंगे।

—'अंचल'

१६—अपराधी कौन?—लेखक श्रीयुत इन्द्रविद्यावाचस्पति, प्रकाशक, विजय पुस्तक भाण्डार देहली हैं, पृष्ठ-संख्या ४२२ और मूल्य १॥) है।

श्रीयुत इन्द्रविद्यावाचस्पति हिन्दी के एक अनुभवी पत्रकार और धुनी राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं। देश की दशा पर जिन लोगों ने गम्भीरतापूर्वक मनन और विचार किया है उनमें एक आप भी हैं। लेखों के रूप में आप के विचार जनता के सामने आते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आपने अपने विचारों को एक रोचक कथा के दृढ़ सूत्र में पिरोकर उपस्थित किया है।

यह उपन्यास दिल्ली में ग़रीबों के मुहल्ले के तीन-चार लड़कों की शैतानी को लेकर आरम्भ होता है। उनका नायक उम्मेद है, जो तेज़ और बहादुर लड़का है। बाप के मरने पर मा उसे पालती है। ग़रीबी और बीमारी से असमर्थ होने के कारण मा बच्चे को चोरी करने से नहीं रोक पाती। एक शैतानी की घटना के सिलसिले में उम्मेद गिरफ़्तार होता है। मा उसके वियोग में मर जाती है। जेल के बेंत की सज़ा खा आने पर उम्मेद का जीवन आरम्भ होता है। वह मज़दूरी करता है मेहनत करता है, मिल की हड़ताल रोकने का प्रयत्न करता है। एक असहाय युवती की मानरक्षा का प्रयत्न करता है, पर फल बराबर उलटा होता है। जिस प्रकार सत्ययुग में हरिश्चन्द्र की दृढ़ता की परीक्षा ली गई थी उससे भी अधिक त्रास का सामना इस ग़रीब उम्मेद को करना पड़ता है। अन्त में जेल में वह गलाघोंट कर मारा जाता है। पाठक की आदि से अन्त तक उसके साथ सहानुभूति होगी। पर पाठक देखेंगे कि न्याय, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि सब मानवीय रस का एक बूँद भी उसको न मिलकर उनको मिलता है जो धनी हैं, छल कर सकते हैं और दूसरों के परिश्रम पर मौज उड़ाते हैं। लेखक महोदय ने अपने विषय को बड़ी ख़ूबी के साथ उपस्थित करने की चेष्टा की है। उन्होंने जेल के भीतर के क़ैदियों का दुख-दर्द, मिल-मज़दूरों की कष्ट-कथा, डाकुओं का जीवन और अदालतों का स्वाँग बड़ी सजीव भाषा में अङ्कित किया है। सिर्फ़ एक बात हमें खटकी। उन्होंने उपन्यास के पात्रों को वहीं तक जिन्दा रहने दिया है, जहाँ तक उनकी आवश्यकता थी। जहाँ उनका काम समाप्त हुआ, वहाँ लेखक महोदय ने उनको भी क़त्ल करा डाला है। इसके उदाहरण पाठक को उपन्यास पढ़ते समय स्थान स्थान पर मिलेंगे। पर यह होते हुए भी हम लेखक महोदय की सरस वर्णनशैली और कथानक को सब प्रकार से रोचक बनाने की कला का बिना प्रशंसा किये नहीं रह सकते। इस क्षेत्र में हम उनका सहर्ष स्वागत करते हैं। हमें आशा है, वे और भी सुन्दर सुन्दर उपन्यास लिख कर हिन्दी का भांडार भरेंगे।

—श्रीनाथसिंह

स्वदेश-भक्त

लेखक, श्रीयुत दुर्गादास भास्कर, एम० ए०, एल-एल० बी०

उसका हृदय दया का स्रोत था, मन सद्भावों का सागर। तपे हुए सोने की सी विशुद्ध आत्मा, परन्तु उसमें एक अवगुण, एक अक्षम्य अपराध था —स्वदेश-प्रेम!

× × ×

विस्तृत ज़मींदारी, ऊँचे महल, सुन्दर बँगले, मनोहर उद्यान, सुख के सभी साधन उसके पास मौजूद थे। परन्तु देश में चारों ओर मचे हुए हाहाकार ने उसे घर न बैठने दिया। उसके हृदय में अपने दुःखी देश के लिए दर्द था।

वह राजकुमारों का-सा जीवन व्यतीत कर सकता था, परन्तु देशहित के लिए उसे दरबदर भटकने का उन्माद था। यह उन्माद उसे उसके ऐश्वर्यमय संसार से दूर—बहुत दूर ले चला।

उसकी भूमि में हज़ारों-लाखों मन अनाज उपजता था, परन्तु अपने कठोर व्रत के कारण वह दाने दाने के लिए मुहताज रहता था! फिर भी उसे भूखे देश का एक भूखा सिपाही होने का गर्व था।

× × ×

अमन और शान्ति के ठेकेदारों की आँख उस पर पड़ी। वह राजद्रोही ठहराया गया। गुलाम देश की गुलामी के जुए का नग्न चित्र उसके सामने आया। शान्ति के रक्षक बेड़ियाँ लिए उसके पीछे पीछे घूमने लगे। उसे कहीं सिर छिपाने को जगह न मिली। हज़ारों निराश्रितों को आश्रय देनेवाला आश्रयहीन था।

× × ×

सुनसान बीहड़ जंगल में ज्वर से पीड़ित, शारीरिक और मानसिक व्यथा से निढाल वह बेसुध पड़ा था। उसके भाग्य में कोई औषध-उपचार नहीं, कोई पानी तक पूछनेवाला नहीं। उस असहाय अवस्था में भी उसकी जान के दुश्मन उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। राजपाट के मालिक को एक चप्पा भूमि शान्ति से मरने के लिए नहीं मिल रही थी।

× × ×

......अभी [illegible] उसने अन्तिम साँस ली थी। उसकी आत्मा प्रस्थान कर चुकी थी, पता नहीं कहाँ को। पर संसार वैसे ही बना था। इन्द्र ने उसकी मृत्यु पर आँसू नहीं बहाये, आकाश स्वच्छ था। वन के पेड़ों ने उस पर फूल नहीं बरसाये, शिशिर की ऋतु थी। पवन देवता ने सिसकियाँ नहीं भरीं, हवा शान्त थी।

× × ×

मैं उसके निर्जीव शरीर को कन्धों पर लिये कब से फिर रहा हूँ। राज के रक्षक अब भी उसके पीछे पड़े हैं। उनकी नज़र बचाकर मुझे उसकी लाश पर दो आँसू बहाने का भी अवकाश नहीं मिलता ....बड़े यत्न से मैंने कुछ लकड़ियाँ चुनीं और अपना साफ़ा फाड़कर कफ़न बनाया। बड़ी मुश्किल से आग मिली, परन्तु चिता में आग देने की मेरी हिम्मत न पड़ी। मैं जानता हूँ उसके शिकारी उसको जलती चिता से भी बाहर निकाल लेंगे। उसके भाग्य में निर्विघ्न जलना भी नहीं लिखा था।

× × ×

कितनी देर से मैं उसे अपनी गोद में छिपाये बैठा हूँ। उसके शिकारियों के भय से मैं उसे मिट्टी भी नहीं दे सकता।

कहते हैं, मृत शरीर का हिंसक जन्तु भी मान करते हैं। परन्तु मुझे डर है कि इन मानव शिकारियों में वह पशुता भी नहीं है।

× × ×

आधी रात को सुनसान बीहड़ जंगल में मैंने उसे मिट्टी दे दी। उसकी क़ब्र पर कोई कीर्ति-स्तम्भ नहीं खड़ा हुआ; अख़बारों के कालम नहीं काले हुए, स्थान-स्थान पर शोक-प्रस्ताव नहीं पास हुए—उस अज्ञात सिपाही का नाम अज्ञात ही रहेगा।

× × ×

बहुत दिनों के बाद उसकी क़ब्र पर, एक बेल उग आई है उसके चिर तप्त शरीर पर छाया करने के लिए। मैं वहाँ जाता हूँ, रात को छिप छिप कर, अपने आँसुओं से उसे सींचने के लिए, परन्तु प्रतिदिन मैं यह भी नहीं कर सकता—सोचता हूँ, कहीं उसकी स्मृति के दुश्मनों को उसके अन्तिम स्थान की बू न मिल जाय! वह स्वदेश-भक्त था।

बैसवारी बोली का ब्रजभाषा पर प्रभाव

लेखक, साहित्यरत्न पंडित शिवरत्न शुक्ल, सिरस

अवध प्रांत में रायबरेली-ज़िले का पश्चिमी भाग, कुछ पश्चिमी भाग छोड़कर उन्नाव का सम्पूर्ण [ज़िल]ा, और लखनऊ-ज़िले का पूर्वी और दक्षिणी भाग [बैस]वारा' कहलाता है। इसकी बोली पर कन्नौजी बोली [का] विशेष और अवधी का कम प्रभाव पड़ा है। यह भूमि [प्रा]चीन काल से ही कवि-प्रसूता रही है। किसी समय यहाँ [घर] घर कवि पाये जाते थे। यहाँ बैस क्षत्रियों और कान्य-[कुब्]ज ब्राह्मणों की बस्ती है। इन लोगों में संस्कृत-भाषा [का] बहुत प्रचार रहा है। कहावत प्रसिद्ध है—नैन-चैन की [चन्]द्रिका निजानन्द का न्याय। उमादत्त की कौमुदी रही [...]त में छाय। नैन चैन जी ने चन्द्रिका-व्याकरण की ऐसी [मह]त्वपूर्ण टीका लिखी है कि उसके पढ़ लेने से 'सिद्धान्त-[कौम]ुदी' पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। नैन-चैन [औ]र निजानन्द बैसवारे के ही प्रसिद्ध विद्वान् थे। खजुरगाँव [के] बैसों के राना के यहाँ प्रत्येक वर्ष दशहरा के अवसर पर [पं]डितों का सम्मेलन आज भी होता है, काशी आदि प्रसिद्ध [स्था]नों के भी प्रकांड पण्डित एकत्र होते हैं। कहने का [ता]त्पर्य यह कि इस भूमि में विद्या-व्यसन बहुत काल से [चल]ा आ रहा है। व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष मन्त्र-तन्त्र में [यह]ाँ के लोग पारंगत थे।

इन विषयों के हस्तलिखित ग्रंथ बैसवारा में बाँस के [पिट]ारों में भरे पड़े हैं। उनमें बहुत-से सड़ गये, बहुत-से [...]र में जला दिये गये और कुछ आज भी पड़े हैं। [यह]ाँ के विद्वानों की पहुँच दिल्ली के बादशाहों और बुँदेल-[खं]ड के राजाओं के यहाँ थी, जिससे इनकी बोली का [प्रच]ार अन्य स्थानों में भी हो गया था और उसका व्यवहार [का]व्य में यहाँ के विद्वानों की देखादेखी अन्य प्रांतवाले [भी क]रने लगे थे।

ब्रजभाषा के कवियों ने बैसवारी बोली के शब्दों और [क्रिय]ाओं का व्यवहार अपनी कविता में किया है। इसके [प्रमा]ण में कुछ कवियों की कविता के उद्धरण यहाँ दिये [जाते] हैं। उद्धरणों में ऐसे प्रयोग बड़े टाइप में छापे [गये] हैं—

(१)

"दधि ओदन दोना भरि देहौं अरु भाइन मैं थपिहौं"।
"सुत सनेह तिय सकल कुटुँब मिलि निसिदिन होत खई।
"भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायों अजहुँ न टेव गई"॥
जेंवत स्याम नंद का कनियाँ
जो न पत्याहि पूँछ बलदाउहि"

—सूरदास

(२)

"पूँछे क्यों रूखी परति सगबग रही सनेह।
कव की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि॥
"बोझनि सौंतिन के हिये आवत रूँधि उसास"।

—बिहारी

(३)

"धीर धरौ अकुलात कहा अबतौ बलिजात सबै बनि आई"।
"कहै मतिराम मनि मंजुल तरौन छोटी
नथुनी बिराजै गज मुकतान की"।
"समर के सिंह शत्रुशाल के सपूत सहजहि
बकसैया सद सिंधुर मदंध के"।

—मतिराम

(४)

"सिर ओढे बढ़ौनी करे छतिया
फरिया पहिरे फहराती फिरै"॥
"नित पीँच पै मीच न नीचहि सूझत
मोह के कीच के बीच फँस्या है"॥
"आपनो देखि भिनौची भरो
मिस टानि परायो कहो करती है"॥
"गाहक रिझाइबे को ब्योंत बिसतारे हैं"।

—ठाकुर

(५)

"ठानती इतेकु ठनगन अनमानती हौ
मानती न केहू जो ललान पाँव परते"॥
"दौर है आये किये पट बेनीप्रवी[न] प्रसेद भये तरबोर है।"

—बेनी प्रवीन

(६)

"घोंघन के जाल जामें नरई सिवार व्याल
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै" ॥ —श्रीपति

(७)

"कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि,
गोपगन निज नेह गेह के पथै गयो ॥
—पद्माकर

(८)

"रंगित चोली ते टोली खरा चुनि,
चार सौ आछे उबेर अमेठी ।
"कवि देव कछू मुलकै पुलकै,
उर के उरप्रेम कलोलनि पै ।
"पीरी पिछौरी के छोर छुटे,
छहरै छविमोर पखान की जामैं ॥
—देव

(९)

"मासक ते खिरकी हिरकै थिरकाति अटा झुकि लावत झाँकी।
कान दिये सब मौजी दुकी हैं हँसैंगी हमें सब हात सकारो ॥
—तोष

(१०)

"जिनको गरज सुने दिग्गज बेआब होत,
मद ही के आब गड़काव होत गिरि हैं ।
"भूषण भनत तेरे बैर रायनगर जवाँरि,
पर वह वहे रुधिर नदीन के ॥
—भूषण

२—क्रिया आदि

(१)

बैसवारी बोली में सामान्य वर्तमान काल में कर्ता की क्रिया अकारांत होता है । जैसे मोहन हुवाँ का करत है ।
आवत गाढ़ै अषाढ़ के बादर मो तन मैं अति आग लगावत ।
गावत भाव चढ़े पपिहा जिन मोसों अनङ्ग सों बैर बढ़ावत ॥
धावत वारि भरे बदरा कवि श्रीपति जू हियरा डरपावत ।
पावत मोह न जीवन प्रीतम जो नहि पावस में घर आवत ॥

सामान्य भविष्यत् काल में अकारांत और एकारांत क्रिया के साथ "इहौ" लगाया जाता है—जैसे कब अइहौ । का खेलिहौ ।
दागुरा मेरो तबै मिटिहै जब पीतम के सँग खेलिहौं-फागुरी ।

× × ×

हिन्द बिलायत की सब चीजैं पिटारी सुहाग भरी सजवैहौं ।
कँगही दपन प्याला सलाई सुगोली सुई डिबियाहु बिछैहौं ॥
मजन कै मुख माहिँ मिसी मिलि सुमन सुमऊ दैके सुमैहौं ।
हो हार हीरों में आज देहातिन की-सी बिसातिन ताहि बनैहौं ॥

(२)

बैसवारी बोली में संदिग्ध वर्तमान काल में गेकारांत के पूर्व इकारांत का प्रयोग होता है, जैसे जानौ आजु ताल भरिगे ।
कैधों वही देस घन घुमड़ि न बरसत,
कैधों मकरन्द नदी नद पथ भरिगे ।
कैधों पीक चातक चकित चक्रवाक वाक,
मत्त भये दादुर मधुप मर मरिगे ॥
मेरे मन आवत न आली प्यारे आवत है,
कमांकुर निकर मही ते धौं निकरिगे ?
कैधौं पंचसर हर फेरके भसम कीन्हो,
कैधौं पचसर जू के पाँचो सर सरिगे ॥

(३)

सर्वनाम अनिश्चयवाचक 'कोई', 'कौन' और 'क्या' को क्रमशः 'कोऊ', 'का' और 'का' कहते हैं ।
जैसे—"कोउ डारे धरे कर एक ते एक ते,
पोंकी बचावति है घातया" ।
कोउ गाइ मलार रिझाइ रही अरु,
कोउ करै रस की बतिया ॥

× ×

"क है वह ग्वालन सुग्वालन के सँग में
अनग छविवारा रसरङ्ग में भिजै गयो" ।

× × ×

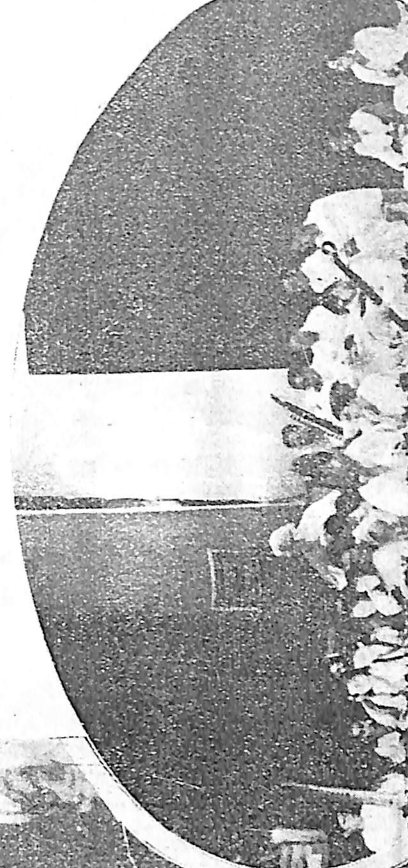
"का छाँड़ि है तू न छिछोरपना औ
मना करिबै पै अली नहिं मानतो" ।

(४)

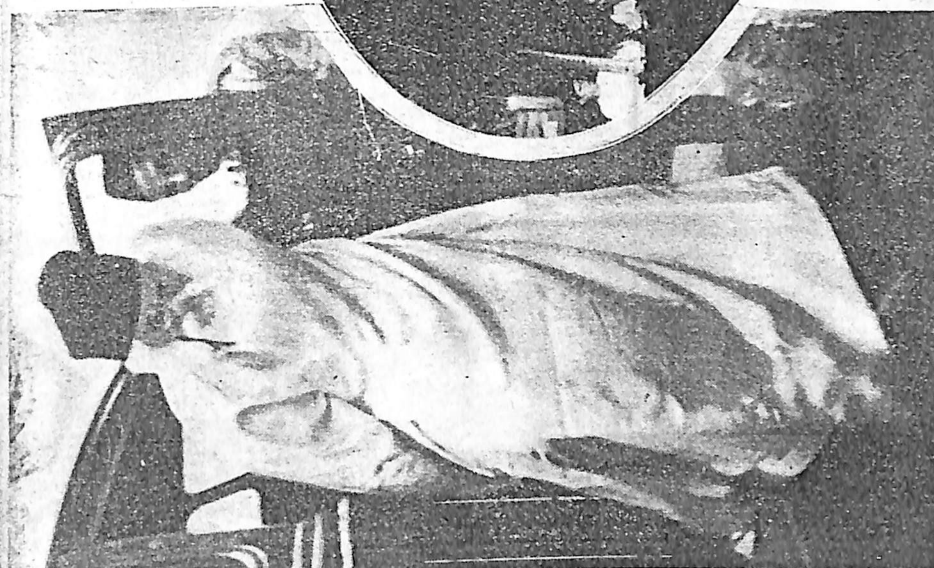
बैसवारी बोली में "से" विभक्ति के स्थान में "ते" का प्रयोग किया जाता है—जैसे ।
"तड़पै तड़िता चहुँ ओर ते
छिति छाई समीरन की लहरैं" ।

उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट होता है कि बैसवारी के शब्दों और क्रियाओं को ब्रज-भाषा के उत्कृष्ट कवियों तक ने आदर से ग्रहण किया है । आज की तरह वे 'त्याज्य' तथा 'ग्रामीण' नहीं समझे गये ।

चित्र-संग्रह

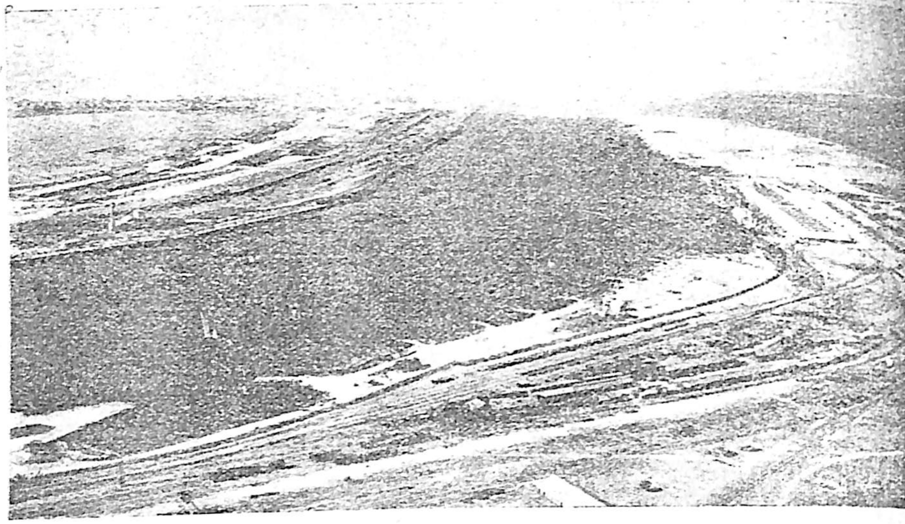


['छायाथियेटर' में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'वर्षमंगल' नामक नाटक खेला गया था, जिसमें उन्होंने अपने शिष्यों के साथ स्वयं भाग लिया था । ये चित्र उसी समय के हैं ।]



[दाहनी ओर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का छायाथियेटर में आगमन । ऊपर रवीन्द्र अपनी शिष्य-मंडली के साथ रंग-मंच पर ।]

से चित्र लिये हैं। उनमें से कुछ हम यहाँ छापते हैं।]



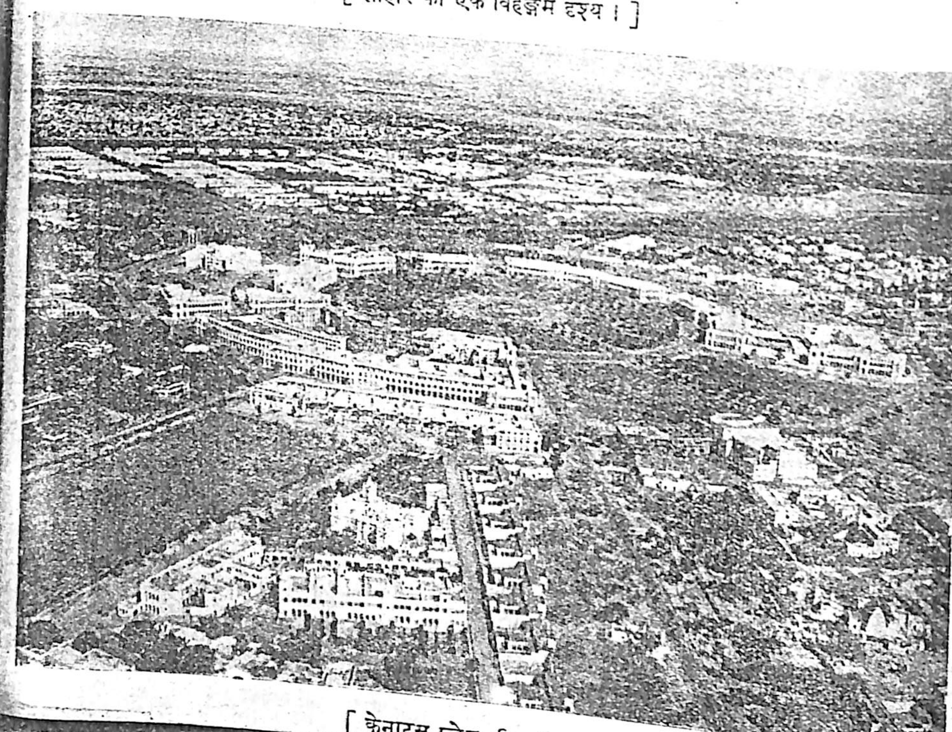
[कराची बन्दर।]



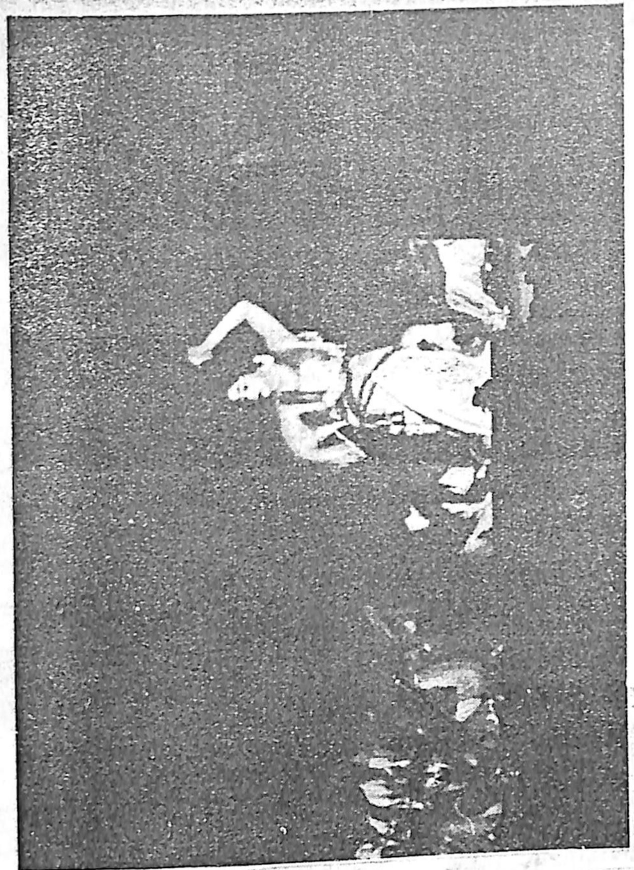
[कलकत्ता का एक विहङ्गम दृश्य।]



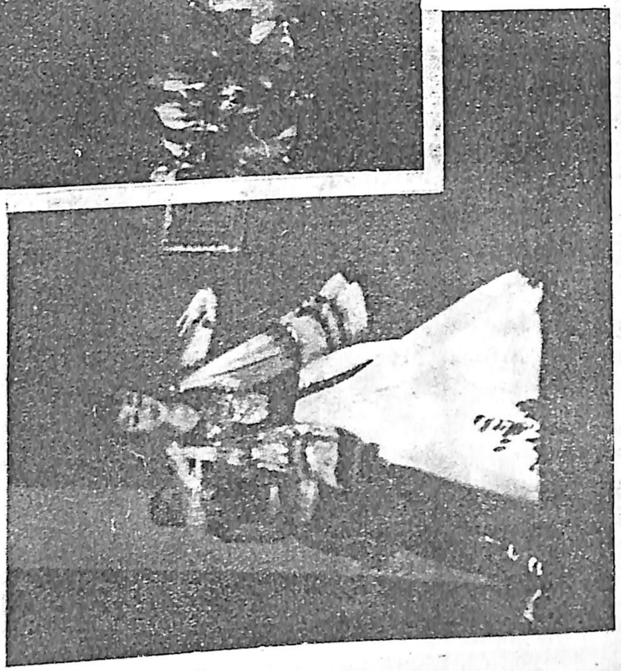
[लाहौर का एक विहङ्गम दृश्य।]



[केनाट्स प्लेस, दिल्ली।]



[छायाथियेटर में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्यों का नृत्य ।]



व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २२, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

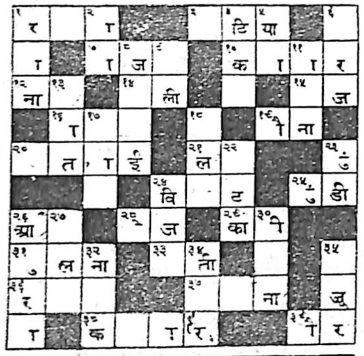
(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ मई तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

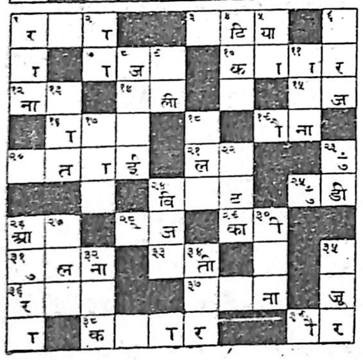
(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बाँये से दाँये

१—ईश्वर की···न्यारी (रचना)।
३—इसके रहनेवाले मनुष्य के ख़ून के प्यासे होते हैं।
७—प्रेयसी की आँखों में इसका ठिकाना है।
१०—बुरी चाल। १२—आवाज़।
१४—ऐसा मनुष्य प्रायः निडर होता है।
१५—जो भक्त हैं वह ईश्वर को किसी न किसी प्रकार··· ही लेते हैं।
१६—श्री रामचन्द्र जी ने अपनी सेना में इनकी भरती की थी।
१६—बहुतों के मनोरंजन का कारण होता है।
२०—किसी की जीविका की यही आस है।
२१—कवि इसमें अँधेरी रात का समाँ ढूँढ़ते हैं।
२४—भयकर। २५—रक्षा के लिए इसे प्रायः बन्द रखते हैं।
२६—इसके टूटने से कभी कभी दुनिया तारीक मालूम होने लगती है।
२८—ऐसे भी ग़रीब हैं जिनको कभी इसका सुख नहीं मिला।
२९—तरकारी पैदा करनेवाला। ३१—उपमा।
३३—इस स्त्री ने उलट कर एक प्रकार से योगी का रूप धारण कर लिया है।
३६—बिगड़ा हुआ नरक। ३७—पार करना।
३८—शराब से अकसर इसकी ख़ूब आमदनी होती है।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २२ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।





३९—चूहों की पंचायत में 'मियाँव' के......होने पर खोलकर आँसू बहाये गये।

ऊपर से नीचे

१—जो उँगलियों से खाना खायें उनको नाख़ून...उचित नहीं। २—लड़ाई में चोट इस पर भी की जाती है।
४—किसी किसी मेले पर म्युनिसिपैलिटी ने यह लगा दिया है।
५—इसके उलटने से दया समझ में आने लगे तो ठीक है।
६—कहते हैं कि गज की यह सुनकर ईश्वर नंगे पाँव ही दौड़े आये थे। ८—ज़बरदस्ती।
९—सुनार की यह, कभी घर पर कभी दूकान पर।
११—एक प्रकार से खाना।
१३—स्कूल के बच्चे बिना गिराये मानते ही नहीं।
१७—बनरा बिगड़ कर बैठा है।
१८—मदभरे नैन की यह मनमोहित करने में जादू का काम करती है। २२—कोरा या नया।
२३—इन संकेतों को ध्यान से पढ़नेवाले चतुर प्रतियोगी को यह मिलना कठिन नहीं।
२४—हर एक अपनी यही चाहता है। २६—घबराहट।
२७—इस कलस को आप सीधा न कर सकेंगे।
३०—बेगार बन्द हो जाने से लश्कर के लिए अब देहात में घास का......बन्द हो गया है।
३२—इनके मत पर चलनेवाले अब भी भारत का मान बढ़ाते हैं। ३४—इसकी रंगत बटेर से मिलती है।
३५—यह इतनी ऊँचाई पर होता है कि इसके देखने के लिए अकसर गर्दन टेढ़ी करनी पड़ती है।

वर्ग नं० २१ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २१ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।



वर्ग नं० २१ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २१ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३, ४ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ....

पता ....

....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १८ मई के बाद नहीं लिया जायगा।

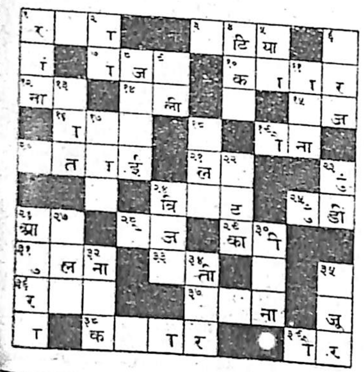
इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २२

इंडियन प्रेस, लि०,

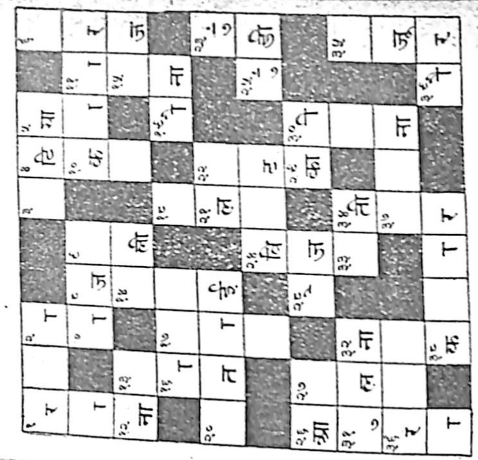
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

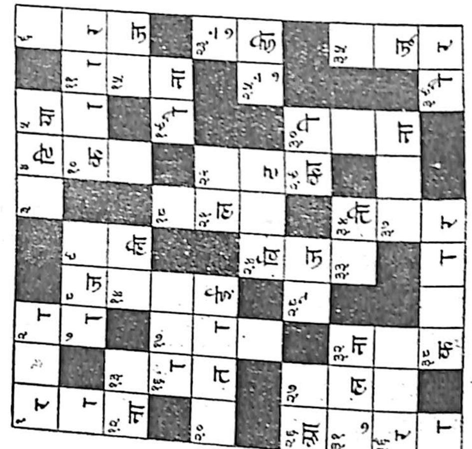


इस लाइन से काटिए

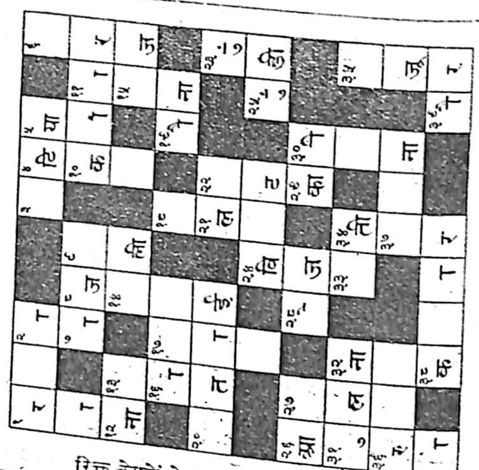
वर्ग नं० २२ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० २२ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)



वर्ग नं० २२ पूर्ति नं०... फ़ीस ॥)



रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

नाम .... पता ....

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे ॥) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ५२६ पर देखिए।

वर्ग नं० २० का नतीजा

भूल-सुधार

जाँच के फ़ार्म आने पर निम्नलिखित व्यक्तियों के भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ।

तीन अशुद्धियों पर

सूरजप्रकाश c/o बाबू मुकुटबिहारीलाल वकील आलमगीरीगंज, बरेली। यह ७०) का पुरस्कार बजाय १० व्यक्तियों के ११ व्यक्तियों में बाँटा गया। इसलिए प्रत्येक के पास बजाय ७) के जैसा कि घोषित किया गया था अब ६।=) भेजा गया।

चार अशुद्धियों पर

गिरिजाशङ्कर गौड़ २०८ पियरीकलां बनारस, सुखवासीलाल दुबे c/o बाबू शेरसिंह जज, गंगानगर, बीकानेर, श्यामसुन्दर पाठक c/o पं० रामनारायण पाठक नयाटोला स्ट्रीट बरेली। इन तीनों व्यक्तियों के पास भी १) का कूपन भेजा गया। इन सब का दावा ठीक निकला इसलिए इनकी जाँच की फ़ीस भी लौटाई गई।

——

शंका-समाधान

सीतामढ़ी (बिहार)
ता० १० अप्रेल, १९३८

पहेली-सम्पादक महोदय,

गत मार्च मास की सरस्वती में, वर्ग नं० १८ की शुद्ध पूर्ति पर बाबू राधाकिसन गुप्ता को छः शङ्कायें प्रकाशित हुई हैं। सिलसिलेवार उनका समाधान सुनिए।

(१) नम्बर १, ऊपर से नीचे—'इसके देने से एक प्रकार का बन्धन-सा हो जाता है'—वचन या बटन। यहाँ 'बन्धन-सा' पर ग़ौर कीजिए। वचन देने से तो 'बन्धन' हो जाता है, 'बन्धन-सा' नहीं। 'बटन' शब्द 'बटना' क्रिया की भाववाचक संज्ञा है, और अर्थ है—'ऐंठन'। 'ऐंठन' और 'बन्धन' पर्यायवाची शब्द नहीं। इसलिए 'बटन' (ऐंठन) देने से एक प्रकार का बन्धन-सा हो जाता है, कहना सर्वथा युक्तियुक्त है।

(२) नम्बर २ ऊपर से नीचे—'नौ दस साल तक के बच्चे यह काम बहुत ठीक नहीं कर सकते'—लिपाई या लिखाई। इस अङ्क-परिचय में 'बच्चे' और 'बहुत ठीक नहीं कर सकते' ध्यान देने योग्य है। कौन नहीं जानता कि नौ दस साल तक के लाखों बच्चे 'बहुत ठीक'... कौन कहे, 'लिखाई' के श्रीगणेश से भी अनभिज्ञ हैं। 'लिपाई' कोई कारीगरी का काम नहीं है। ठीक इसी लिए तो उतने साल के बच्चे बिना जाने हुए अच्छा-बुरा कर सकेंगे। अलबत्ता, सयाने मनुष्य के समान 'बहुत ठीक' नहीं कर सकते।

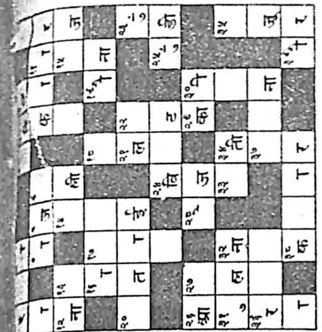
(३) नम्बर १० ऊपर से नीचे—'कोई कोई...... खाकर भी नहीं टरकते'। गुप्ता जी रिक्त स्थान को 'सात' या 'मात' से भरना चाहते हैं। कारण? कारण यह है कि 'खाकर' के ठीक पहले बैठा हुआ छोटा कामा (,) आपकी तेज़ (?) नज़र से किसी न किसी तरह बच गया। अगर वहाँ कामा न होता, तो गुप्ता जी की शंका बजा होती। मगर कामा के कारण 'कोई कोई' कर्त्ता न होकर रिक्त स्थानवाला शब्द ही कर्ता हो जाता है। अब पढ़िए—'कोई कोई नात (नातेदार), खाकर भी (भोजन करके भी) नहीं टरकते'। क्यों, ठीक है न?

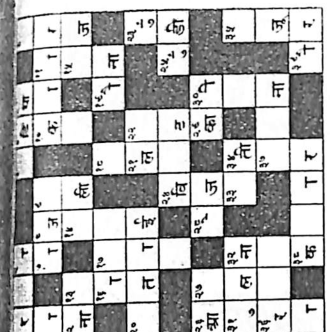
(४) नम्बर ३ ऊपर से नीचे—'गले में यह डालकर बाज़ार में घूमना भलेमानसों का काम नहीं'—हार या हाथ। यदि अङ्क परिचय में 'गले' के पहले 'दूसरे के' होता तो 'हाथ' की 'हार' पर बाज़ी थी। वास्तव में तब 'हार' में कोई वक्र प्रत न थी। मगर 'दूसरे के' बिना तो 'हार' की ही जीत है। अपने गले में हाथ डालकर आप बाज़ार में बेख़ौफ़ चक्कर लगाइए, कोई भी आपको भलेमानसी की गद्दी से उतारने का साहस नहीं करेगा। मगर गले में हार डालकर बाज़ार में छैला बने फिरना तो बेशक आवारों का लक्षण है।

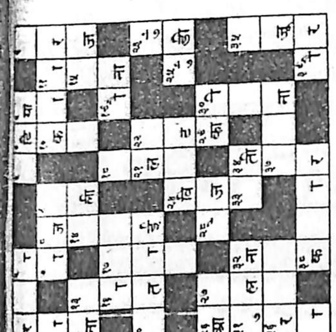
(५) नम्बर ३१ ऊपर से नीचे—'अब भी कोई कोई घराने ऐसे हैं जिनमें कितनी ही पीढ़ी से पुरानी यह चली आती है'—रीत या रीस। यदि 'रीत' उत्तर होता तो अङ्क परिचय होता—बहुत-से घराने ऐसे हैं जिनमें......' वास्तव में ब्याह शादी वग़ैरह के पुराने रिवाज तो संसार भर के प्रत्येक देश के अधिकांश परिवारों में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं। प्राचीन और मध्यकालीन युग में योरप के शाही ख़ानदानों एवं अरब के क़बीलों में 'रीस' (नफ़रत, द्वेषभाव, शत्रुता) कई कई पीढ़ियों तक ख़ून-ख़राबी बराबर करती रही, परन्तु इसका पीढ़ी दरपीढ़ी चले आना अब किन्हीं किन्हीं घरानों तक ही महदूद है।

विनीत, अखिलेश्वरप्रसाद, सीतामढ़ी

शेष आगामी अङ्क में।

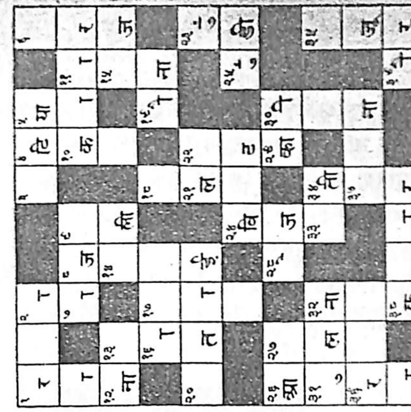






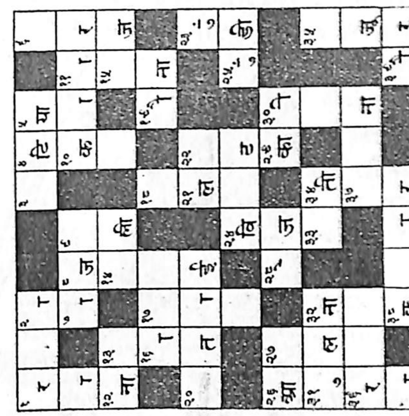
अपनी यादगाश्त के लिए वर्ग नं० २२ की पूर्तियों की नकल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २२ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

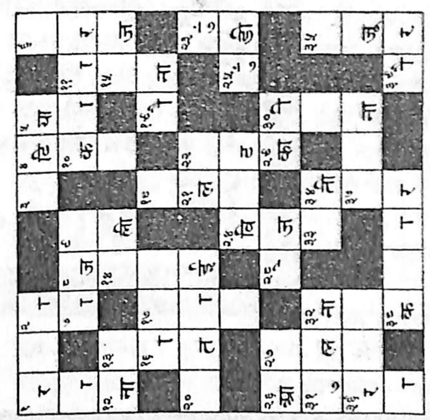


इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २२ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)



वर्ग नं० २२ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे ऊपर का ही छोड़ दें। जो दो भेजें उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे ।।) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ५२६ पर देखिए।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २२ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो आने खाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २२ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ मई सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

भक्त कवि मुनीन्द्र

लेखक, पण्डित दुर्गाशङ्कर शुक्ल

श्री सिद्धप्रवर ओझा मुनीन्द्र जी की कवितायें यद्यपि बरेली, पीलीभीत, काशीपुर व शाहजहाँपुर के कविता-प्रेमियों व साधकों की गोष्ठियों में बड़े प्रेम व ध्यान से पढ़ी व श्रवण की जाती हैं, तथापि हिन्दी-साहित्य के प्रचलित इतिहास में उन्हें स्थान नहीं मिला है। मुनीन्द्र जी के जन्मस्थान व जन्मतिथि का भी पूरा पता नहीं है। वे मेरे पूज्य पितामह पण्डित तोताराम जी शुक्ल के साथ बहुत काल तक रहे थे तथा उनके दौहित्र बाबू कृष्णानन्द जी जो काशीपुर के राजा साहब के ट्यूटर थे, उनकी बड़ी ख्याति थी। अपने पितामह से मैंने बचपन में उनकी 'जगदम्बा-स्तुति' के कवित्त सुने थे तथा उनके अलौकिक चमत्कारों की कथायें भी सुनी थीं। मुनीन्द्र जी कोरे कवि ही नहीं, पहुँचे हुए साधक भी थे। वे सन् ५७ के ग़दर के समय विद्यमान थे। वे मैथिल ब्राह्मण थे। अपने से ऊँचे कुल की कन्या को उन्होंने सिद्धि के द्वारा शास्त्रार्थ में जीत कर पाणिग्रहण किया था।

मुनीन्द्रजी ने एक कवित्त में अपने सम्बन्ध में कहा है—

वासी हैं बिसौली के प्रकाशी मिथिला के हम,
अब सुखवासी काशीपुर औ बरेली के।
मैथिल मुनीन्द्र पलवार अरिपारी भारी,
पुत्र है प्रसिद्ध श्री कवीन्द्र मनि मेली के॥
पौत्र हैं हरीन्द्र के प्रपौत्र हैं रतनपांत जू के,
गुरु शिवपुरी शीशगढ़ मल्लापुर देल्ही के।
लाहौर कुमाऊँ कलकत्ता और लंदन मान-
जस के जपैया जगदम्बा अलबेली के॥

उनकी 'जगदम्बा-स्तुति' के तीन कवित्त ये हैं—

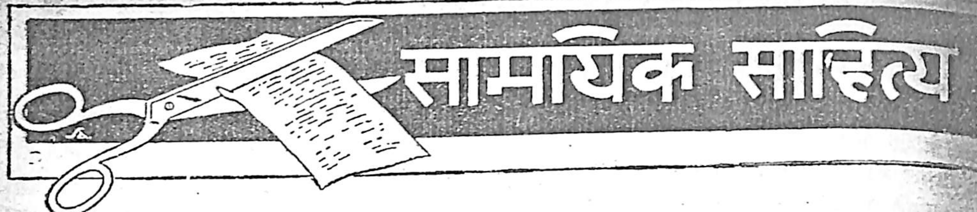
दक्षिणा को दास हौं फराश पासवारी को मैं
रासभ हौं राज-राज रानी सों कृपाली को।
छल्लू उग्रतारा को हौं बगुलामुखी को बैल,
छिन्ना को छौकरा हौं मूढ़ मुडमाली को॥
सुकवि मुनीन्द्र सिंधुबाला जू को बालक हौं,
भैरवी को भक्त धूत धूमा बिकराली को।
चामुंडा के चाकर के चीकर को चूकर मैं,
शूकर हौं श्यामा जू को कूकर हौं काली को॥

जाके अंबुजासन खगासन वृषासन
गणेश शेष आसन सिंहासन भरे रहें।
तापर अनंगरूप सेज-रूप ब्रह्मणी की,
चंद्र हैं वितान छाँह शीश पै करे रहें।
श्रीपति रहत जाकी चरण-शरण ताके
चाकर से बारहों दिवाकर खड़े रहें।
मंदिर के धनाधीश द्वार पै कलंदर से
बंदर से चौदहों पुरन्दर पड़े रहें॥

नागानन नाज़िर सो हाज़िर हो हुज़ूर
श्री पति सिररतेदार सुखमा सने रहें।
द्रुहिण दिवान मबवान ऐसे मुंशी जी सु
मारतंड तुलित मुसद्दी से बने रहें।
वरुण वकील तहसीलदार तारापति
जम से जमादार संतत अने रहें।
सुकवि मुनीन्द्र महारानी जू के दरबार
महादेव ऐसे यूँ मुसाहिब बने रहें॥

उनके पिता कवीन्द्र का भी एक कवित्त मिला है, जो इस प्रकार है—

तुही खड्गधारा निराधारा की अधारा मातु
तू ही धाराधर की सुधार है ढरतु है।
सुभट हजारन में जाने जन आपने को
जहाँ रन रूद्र की बढ़ूह प्रगटतु है।
भनत कवीन्द्र तेरी मूरति त्रिलोकमयी
ठौर ठौर सूरनि यों पूरन पठतु है।
जहाँ देवबृन्दन पै परम निरारी भीर
तहाँ अम्ब तेरी ही निपारी निपटतु है॥



सामयिक साहित्य

दुःखद प्रसंग

पिछले दिनों जब महात्मा गांधी अपनी मण्डली के साथ उड़ीसा में थे तब श्रीमती कस्तूरी बाई गांधी और श्री महादेव देसाई की पत्नी और मण्डली के दो-एक और सदस्य पुरी का मंदिर देखने गये थे और मंदिर के भीतर तक चले गये थे। इससे महात्मा जी बहुत दुःखी हुए, क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि उनकी मंडली का कोई व्यक्ति उन मंदिरों के भीतर जाय जिनमें हरिजनों का प्रवेश वर्जित है। इस दुःखद घटना का श्री महादेव देसाई ने 'हरिजन' में विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसके कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

सोमवार की शाम को जब वे वहाँ से लौटे और गांधीजी को सारा क़िस्सा मालूम हुआ तब वे खिन्न हो गये। रात को उन्हें नींद नहीं पड़ी। कस्तूरी बाई को, और मेरी पत्नी को और मुझे बुलाया और हर एक से जवाब तलब किया। उन्होंने कहा कि सबसे ज़्यादा दोष इसमें तुम्हारा है। तुम्हें इन लोगों को हरिजन-आन्दोलन का इतिहास अच्छी तरह बता देना चाहिए था कि १९३४ में मैं किस तरह पुरी गया था, वहाँ के सनातनी किस तरह उपद्रव करने की घात में थे, मुझे उड़ीसा की यात्रा क्यों पैदल करनी पड़ी और सुधारक क्यों आगाह किये गये कि जब तक इस मन्दिर में हरिजन नहीं जाने पाते, तब तक उन्हें भी नहीं जाना चाहिए। इतने पर भी अगर तुम्हारी पत्नी तुम्हारी बात नहीं मानती थी, तो तुम्हें इसमें मेरी मदद लेनी चाहिए थी। और फिर भी वह मन्दिर में जाने का आग्रह करती तो वह जा सकती थी। तुम काफ़ी जाग्रत नहीं रहे, और इस तरह तुमने मेरे साथ, अपने साथ और हरिजन-कार्य के साथ अन्याय किया है। संघ के सदस्यों के सामने तो उस दिन इस दुःखद प्रसंग पर बोलते हुए उन्होंने अपना सारा हृदय उँड़ेल दिया। उन्होंने कहा—

"मुझे खुशी है कि महादेव ने आप लोगों को ... घटित हुआ है उसके विषय में कुछ बता दिया, और इस... से अब मुझे ऐसा लगता है कि इस घटना के बारे में मेरे मन में जो-जो भाव उठ रहे हैं वह सब आप लोगों से कह दूँ। रचनात्मक प्रवृत्ति के जिन विविध कार्यों को आप कर रहे हैं वे तो सत्य और अहिंसा की केवल बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं। ये कार्य केवल यह प्रकट करते हैं कि अहिंसा और सत्य के और अंततः स्वतंत्रता के मार्ग पर आपको वे कहाँ तक ले जा सकते हैं। अस्पृश्यता का निवारण अहिंसा की ऊँची-से-ऊँची अभिव्यक्तियों में से एक है। यह मेरी दैनिक प्रार्थना है, और आप सबकी भी यही प्रार्थना होनी चाहिए कि यदि अस्पृश्यता का नाश न हुआ तो हिंदू-धर्म के लिए यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि उसका ही अंत हो जाय। जब मैं हरिजन-प्रवास कर रहा था जिसका कि मुख्य उद्देश्य हरिजनों के लिए मंदिर खुलवाने का था, तब इस प्रार्थना की अभिव्यक्ति पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। और उन दिनों मैं रोज़ ही ... घोषित किया करता था कि अस्पृश्यता-निवारण में जिसका विश्वास हो उसे ऐसे मंदिरों से दूर ही रहना चाहिए जिनके द्वार हरिजनों के लिए बंद हैं। अब आप ही बताइए, मैं अपनी पत्नी या अपनी पुत्रियों का ऐसे मंदिरों में जाना कैसे बर्दाश्त कर सकता था? मैं तो पहले उन्हें अच्छी तरह समझाता, ऐसे मंदिरों में जाने से उनके आगे घुटने टेककर उन्हें भरसक रोकता, और अगर मेरा तमाम अनुनय-विनय निष्फल जाता तो उनसे मेरे जो व्यक्तिगत संबंध हैं उनका भी शायद अन्त कर देता। इतने बरसों से इस सिद्धान्त पर चलने का मेरा प्रयत्न रहा है, और जब मुझे ... मालूम हुआ कि मेरी पत्नी और आश्रम की दो बहनें ... मैं अपनी पुत्रियों की तरह मानता हूँ, पुरी के मंदिर में ... थीं तब मैंने अपने को बड़ा ज़लील और शर्मिन्दा ... किया। यह कष्ट अवसान कर देने के लिए काफ़ी ... यंत्र से मालूम हुआ कि खून का दबाव इतना बढ़ ...

...कि उससे ख़तरा पैदा हो सकता था, पर मुझे यंत्र से ... ज़्यादा पता था। यंत्र से जो पता चल सकता था ... से मेरी हालत कहीं बदतर थी। गीता हमें अनासक्ति ... शिक्षा देती है, पर उस अनासक्ति का यह अर्थ नहीं ... कि इस प्रकार के धक्कों, अर्थात् अपने अत्यंत प्रियजनों ... कर्त्तव्यच्युति के प्रति हम उदासीन रहें। उन तीनों का ... सबसे कम दोष है। उन बेचारियों से तो यह भूल ... ज्ञान के कारण हुई। पर दोष तो मेरा है, और महादेव ... और भी अधिक दोषी है कि उसने उन्हें उनका धर्म नहीं ... बताया और उनसे यह नहीं कहा कि इस प्रकार के धर्म- ... से मुझे कितना करारा धक्का लगेगा। महादेव को तो ... भी विचार करना चाहिए था कि इसका समाज पर ... प्रभाव पड़ेगा। मैं यह जानता हूँ कि उन्होंने अज्ञान- ... ऐसा किया, पर उनके अज्ञान के ज़िम्मेवार हमीं हैं; ... उनके अज्ञान को भंग न करना अहिंसा के विपरीत है। ... ने उन्हें पुरी के मंदिर में जाने के लिए नहीं भेजा था, ... इसलिए भेजा था कि जिस हद तक हरिजन जा सकते ... वहीं तक वे जायँ, और इसके विरोधस्वरूप उससे आगे ... पग भी बढ़ने से इनकार कर दें। उनका यह ... दिशा में प्रचार-कार्य होता, और इस तरह उन्होंने ... हरिजनों की सेवा की होती। जब तक हमारे प्रिय बन्धु ... हरिजनों को मन्दिरों का उपयोग नहीं करने दिया जाता ... तब तक हमें भी मन्दिरों के अन्दर नहीं जाना चाहिए। ... सिद्धान्त पर अगर हम दृढ़ न रहेंगे तो पाख़ानों की ... सफ़ाई करना या हरिजनों के साथ खाना खाना या उन्हें ... खिलाना हमारे लिए काफ़ी नहीं है।

"एक और दृष्टि है। सनातनियों का यह विश्वास है ... अस्पृश्यता हिंदू धर्म का एक अंग है और मुसलमान और ... भाई भी यही मानते हैं। उनका ख़याल है कि हिन्दूधर्म में ... अगर 'छुआछूत' नहीं तो फिर वह कुछ नहीं है। जब तक ... आप अस्पृश्यता के कलंक को अहिंसात्मक तरीक़ों से मिटा ... नहीं देते तब तक हिंदू-मुस्लिम-समस्या को भी आप हमेशा ... के लिए हल नहीं कर सकते। मुसल्मान हमें काफ़िर न ... समझें, यह तभी हो सकता है जब हम अस्पृश्यता का ... ख़ात्मा कर दें।

"फिर खुद हरिजनों का भी तो सवाल है। हम उन्हें ... कैसे प्रतीति करायें कि हम उनकी कठिनाइयों और विपत्तियों में उनके साथ हैं। हमने अपने को पूरी तरह से उनके साथ घुला-मिला दिया है, जब तक कि अस्पृश्यता-निवारण के कार्य-क्रम में हम अपने कुटुंब को—अपनी स्त्री को अपने बालबच्चों को, अपने भाइयों व बहनों को और अपने रिश्तेदारों को अपने साथ नहीं ले जा सकते।"

अपने हृदय की व्यथा को उन्होंने इन मर्मस्पर्शी शब्दों में प्रकट किया तब इससे उनकी मानसिक वेदना और भी बढ़ गई। वे बहुत खिन्न मालूम हुए। दूसरे दिन वे इतनी कमज़ोरी का अनुभव कर रहे थे कि बोल नहीं सकते थे, अतः सारे दिन के लिए मौन ले लिया। ऐसी परिस्थिति में मैं क्या कर सकता था? मुझे डर था कि जवाबों और दलीलों में उतरने से मामले को मैं कहीं और न बिगाड़ बैठूँ। मुझे लगा कि जब तक उनके खून का दबाव साधारण स्थिति पर नहीं आ जाता और वे पुनः शक्ति नहीं प्राप्त कर लेते तब तक मेरा प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा। पर इस सबका कारण मैं ही हूँ, यह ख़याल मुझे अत्यन्त व्यथित कर रहा था, मेरे अन्तर में दारुण वेदना हो रही थी। यदि मैं इस गंभीर अविचार का अपराधी हूँ तो उनकी सेवा में कैसे रह सकता हूँ? हरिजन-कार्य का प्रतिनिधित्व और हरिजन-सेवा मैं किस तरह उचित रीति से कर सकता हूँ? उनके द्वारपाल होने का मुझे क्या अधिकार है? रात मेरी दारुण वेदना में कटी और अत्यन्त निराशा में मैंने उन्हें लिखा कि 'कृपाकर आप मेरा परित्याग कर दें'।

इससे तो वे और भड़क उठे और उनका कष्ट और भी असह्य हो गया। उन्होंने कहा कि ऐसे आदमी के द्वारा जीवन प्राप्त करने की अपेक्षा जो मुझे प्यार नहीं करता, मैं ऐसे आदमी के द्वारा मारा जाना पसन्द करूँगा, जो मुझे प्यार करता है। बजाय इसके कि मेरी मूर्खता को समझकर उसे दुरुस्त करने के लिए सत्याग्रही तीर्थयात्रियों का एक जत्था लेकर पुरी जाते, उन्होंने कहा कि सदुद्देश्य से की गई मलामत से तुम विक्षिप्त-से हो गये हो! और अपनी पत्नी की सेवा करने के बजाय, उसके प्रति अपने अन्धे प्रेम के वश होकर तुमने उसके अंधविश्वास को प्रोत्साहन दिया है!

यह बात इतनी चकरा देनेवाली थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मुझे ऐसा लगा कि जिन्होंने प्रेम के क्लोरोफ़ार्म का उपयोग करके कई आध्यात्मिक आपरेशन

किये हैं उन्होंने यह आपरेशन उस क्लोरोफ़ार्म के बग़ैर ही किया है। इससे कुछ रुष्ट-सा हो कर मैं चिल्ला उठा—

स्वर्ग में संतों के साथ रहना
आनंददायक और गौरवप्रद है,
किन्तु संसार में संत की संगति में
रहना इससे जुदी बात है।

क्योंकि, यह संभव नहीं कि उन्होंने राई का पर्वत बना लिया हो।

लेकिन इस बात का फ़ैसला करनेवाला मैं कौन हूँ? यह लिखते हुए मुझे ऐसा लग रहा है कि उनके (गाँधीजी के) अत्यन्त भावप्रवण मस्तिष्क में प्रवेश कर यह मालूम करने के लिए कि उसमें क्या चल रहा है, मैं शायद बहुत ठोस अक़्ल का था। और फिर यह भी बात है कि जिन्होंने लगभग आधी सदी सत्य और अहिंसा की खोज में जागरूक प्रयत्न करते हुए बिताई है वे बजाय मेरे जिसके कि भावनाओं और वासनाओं के प्रवाह में बह जाने की हमेशा की सम्भावना है, कहीं अच्छी तरह परिस्थिति का निर्णय कर सकते हैं। मुझे जो बातें नगण्य-सी प्रतीत हों वही उनके लिए जीवन-मरण के विषय हो सकती हैं। मैंने महसूस किया कि उनके साथ रहना भले ही मुश्किल मालूम हो, उनका वियोग तो और भी असह्य होगा। सन्तपन से वे इन्कार करते हैं। हममें से अदना-से-अदना जो व्यक्ति हो उससे भी श्रेष्ठ वे अपने को नहीं बताते। मुझे लगा कि मैंने उनके विचारों में भी उन ग़मग़ीन पंक्तियों का समावेश कर बहुत सख़्त ग़लती की है। वे चाहे सन्त हों या हम सबकी तरह केवल मर्त्यप्राणी हों, लेकिन मैं देखता हूँ कि उनसे अलहदा होने की मेरी पुकार मेरी सनक ही थी। क्योंकि जब मैं उस पत्र को देखता हूँ जो मैंने इसके लिए उन्हें लिखा था तब मुझे ऐसा लगता है कि मैं उनसे अलहदा होकर पाँच गज़ भी आगे न जा सकता और प्रायश्चित्त के भाव से लौट आता।

और इस सब कहने और करने के बावजूद यह बात तो बिलकुल स्पष्ट है कि हरिजनों से गांधी जी का इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि उसमें वे रत्ती भर भी समझौता नहीं कर सकते और उनके लिए वे अपने प्राण तक अर्पण कर देने को तैयार रहते हैं। यह जोश में निकला हुआ उद्गार इस कार्य के प्रीत्यर्थ महत्तर स्वार्पण करने का आह्वान बन गया। जो लोग इस साल संघ की बैठक में शामिल हुए उन सबके सामने यह घटना मूर्तिमान् बन गई और हर एक को यह शिक्षा मिली कि वे ख़ूब जागरूक रहेंगे और रचनात्मक कार्य की इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति में कोई ढिलाई नहीं करेंगे। गाँधी जीने जो एकाएक यह बिजली का-सा धक्का लगाया उसके पवित्र करनेवाले असर से पावन उत्कल का यह पुनीत सप्ताह और भी पुनीत हो गया, और गाँधी-सेवा-संघ के सदस्य ऐसे सन्देश को लेकर अपने-अपने घर लौटे जिसे वे शायद आसानी से न भूल सकेंगे।

बिहटा-काण्ड की जाँच

प्रयाग-हाई कोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर जान टाम ने जो बिहटा-काण्ड की जाँच के लिए विशेष विचारक नियुक्त हुए थे, अपना निर्णय सुना दिया है। आपने रेलवे कम्पनी को अपराधी ठहराया है और कहा है कि उसे हताहतों के लिए हर्जाना भी देना चाहिए। उनके निर्णय का सारांश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

१६ जुलाई की आधी रात के बाद १८ डाउन एक्सप्रेस ४५ के बदले क़रीब ५५ मील फ़ी घण्टे की गति से दौड़ रही थी और उसके इंजिन एस-बी नम्बर १९१६ में ख़राबी भी आ गई थी, क्योंकि वह कभी बायें और कभी दाहने झुक झुककर चलता था। दो हफ़्ते पहले से इंजिन में यह दोष था, जिसकी रिपोर्ट तीन बार हो चुकी थी।

लाइन की कमज़ोरी से दुर्घटना होने की बात साबित नहीं हुई।

एक्स-बी इंजिन ही ख़राब होते हैं, क्योंकि न तो ऐसे इंजिन की आमद के पहले अर्थात् १९२८ के पहले लाइनें टूटने की दुर्घटना होती थी, न बाद में इस तरह के इंजिन का तेज़ ट्रेनों में चलना रोक देने पर। १९२८ से १९३७ तक अर्थात् लगातार दस बरस तक रेल-अधिकारी एक्स-बी इंजिनों को लाइन तोड़ने का कारण मानते आये थे। पर उस दिन झाझा शेड में वह इंजिन फ़ालतू पड़ा था, इसलिए वही भेज दिया गया।

१६ जुलाई की रात को डाउन 'पञ्जाब-मेल' के ड्राइवर ने दानापुर पहुँचकर ९ बजे रात को रिपोर्ट की थी कि कोयलवर और बिहटा के बीच लाइन पर इंजिन बहुत हिलता था। ऐसी सूचना पाकर भी रेल-अधिकारियों ने और ट्रेनों के ड्राइवरों को पहले से सावधान कर देने की व्यवस्था नहीं की। यह बहुत बड़ी लापरवाही हुई। ड्राइवर को पहले चेतावनी मिल जाती तो दुर्घटना न होती।

एक्स-बी इंजिनों की ख़राबी के बारे में रेलवे के अन्यान्य विभागों के बड़े बड़े अफ़सरों ने भी समय समय पर शिकायत की थी कि इस क़िस्म का इंजिन जिस ट्रेन में रहता है उसमें दुर्घटना होती ही है, कभी लाइन टूटती है कभी इंजिन बिगड़ता है अतएव इसका प्रतिकार किया जाय। ऐसी स्थिति में भी कम्पनी ने वह इंजिन चलाया।

रेलवे कम्पनी की ओर से यह दलील दी गई कि कम्पनी ने अपने कर्तव्य में कोई त्रुटि नहीं की। इस सम्बन्ध में मेरा निर्णय है कि मुसाफ़िरों की जान की रक्षा के सम्बन्ध में रेलवे कम्पनी का जो सामान्य कर्तव्य है उसका पालन भी कम्पनी ने नहीं किया।

आपरेटिंग विभाग भी दोषी है। उस विभाग के प्रधान गवाही देने नहीं आये, क्योंकि दुर्घटना होने के बाद ही उन्हें अवसर ग्रहण करने की तैयारी करने को छुट्टी दे दी गई। एजण्ट ने कहा कि उक्त अफ़सर श्री राबर्टसन अपने प्राविडेण्ट फ़ण्ड की रक़म लन्दन के एक बैंक में जमा करने की तारीख़ नियत करके ठेका कर चुके थे और स्विटज़रलैंड में मकान भी किराये पर ले चुके थे, इसलिए मैंने उन्हें जाने दिया। मैं कहता हूँ, उस भीषण दुर्घटना के सामने इन छोटी बातों को कौन पूछता है। ऐसी भीषण दुर्घटना हुई कि १०७ आदमी मरे और ११७ घायल हुए। इसके लिए चीफ़ आपरेटिंग सुपरिन्टेण्डेण्ट श्री राबर्टसन के विभाग पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी थी। चीफ़ इंजीनियर और डिप्टी चीफ़ इंजीनियर भी अवसर ग्रहण करने को थे, पर गवाही देने को दोनों रह गये। खेद है कि श्री राबर्टसन हिन्दुस्तान से बाहर जाने पाये।

एक्स-बी इंजिन ख़राब होते हैं, यह सप्रमाण सिद्ध है। अतएव मेरी राय है कि लोकहित की दृष्टि से इस बात की पूरी और स्वतन्त्र जाँच कराई जाय कि इस क़िस्म का इंजिन ख़रीदना जारी रखना ख़तरे से कहाँ तक ख़ाली है।

अहिंसा या हिंसा?

महात्मा गांधी 'हरिजन' में लिखते हैं—

संयुक्तप्रांत में हाल में जो दंगे हुए हैं उनके सम्बन्ध में मेरी आलोचनाओं की तरफ़ बहुतों का ध्यान गया है। मित्रों ने मेरे पास अख़बारों की कतरनें भेजी हैं। उनमें लिखित या ज़बानी आलोचना का सार यह है—

(१) मेरा लेख कुछ ख़ब्तियों का-सा है।

(२) मैंने पूरी सामग्री के बग़ैर उसे लिखा है।

(३) असहयोग या निष्क्रिय प्रतिरोध-सम्बन्धी अपने विचारों से मैं हट गया हूँ।

(४) मैं लिबरलों [नरम दलवालों] की नीति पर आ गया हूँ।

(५) कांग्रेसियों ने अपने आपस में अहिंसा को कभी भी नहीं अपनाया था।

(६) मैं मानव-स्वभाव से असंभव बातों की आशा कर रहा था।

(७) अगर मेरी बात मानी जाय तो स्वराज्य हर्गिज़ हासिल नहीं होगा, क्योंकि सारा हिन्दुस्तान कभी भी अहिंसक नहीं बन सकता।

आलोचना में से मैं और भी बहुत कुछ ले सकता था, लेकिन मैंने केवल संगत अंश ही लिये हैं।

(१) अगर मेरा लेख ख़ब्तियों का-सा है तो उसके आसार तो अभी भी मुझमें मौजूद हैं, क्योंकि आलोचनाओं को उपयुक्त ध्यान से पढ़ने के बाद भी मैंने जो बात कही है उसमें तब्दीली करने जैसी कोई बात मुझे दिखाई नहीं देती। आलोचकों को यह याद रखना चाहिए कि मेरी तजवीज़ निश्चित और परिमित थी। अहिंसक उपायों से स्वराज्य तब तक हासिल नहीं हो सकता जब तक हमारी अहिंसा बहादुरों की ऐसी अहिंसा न हो, जो सफलता-पूर्वक हिंसा का मुक़ाबला कर सके। मैंने यह दावा कभी नहीं किया कि स्वराज्य और उपायों से नहीं हासिल हो सकता। लेकिन अगर उसे अन्य किसी उपाय से प्राप्त किया जा सके तो हमारी उसके लिए तैयारी नहीं है, क्योंकि ब्रिटेन से अपनी ताक़त की ज़ोर आज़माई करने के लिए हम तैयार नहीं हैं।

(२) जहाँ तक सामग्री का सवाल है, यही पर्याप्त है कि दंगे हुए, फिर वे कितने ही छोटे क्यों न हों। कांग्रेस-

वादी अहिंसात्मक तरीक़े से उनका मुक़ाबला न कर सके और उन्हें शांत करने के लिए पुलिस और फ़ौज की मदद लेनी पड़ी। इन तीन मुख्य बातों के बारे में कोई मतभेद नहीं है, और मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा उसके लिए यही बातें काफ़ी थीं। इसमें मन्त्रियों पर कोई आक्षेप नहीं है। बल्कि यह बात मैं ख़ुद मञ्ज़ूर कर चुका हूँ कि वे और कुछ कर ही नहीं सकते थे। मगर यह बात तो रहती ही है कि कांग्रेसी अहिंसा ज़रूरत के वक्त कारगर साबित नहीं हुई।

(३) मेरे लेख में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकलता हो कि असहयोग और सत्याग्रह में मेरा विश्वास नहीं रहा है। मैं तो सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि इनमें मेरा विश्वास आज पहले से भी ज़्यादा है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ये दोनों उपाय बहुत काफ़ी हैं, बशर्ते कि जिस अहिंसा पर अमल किया जाय वह बहादुरों की अहिंसा हो।

(४) लिबरलों की नीति पर मैं आ सकूँ तो अच्छा ही है ? क्योंकि लिबरलों में मेरे व्यक्तिगत मित्र बहुत-से हैं। लेकिन उनके पास कोई ताक़त नहीं है जबकि मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मेरे पास अचूक ताक़त है। मैंने वह लेख यह दिखलाने के लिए लिखा था कि दंगे में बल-प्रयोग असफल नहीं रहा, बल्कि वह संस्था असफल रही जिसने क्रियात्मक और रचनात्मक अहिंसा को अपनी शक्ति बना रक्खा है।

(५) आलोचकों का ध्यान मैं कांग्रेस के उन अनेक प्रस्तावों की ओर आकर्षित करता हूँ जिनमें अहिंसा के प्रयोग को केवल अँगरेज़ों तक ही सीमित नहीं रक्खा गया है; बल्कि कार्य-समिति की बैठकों में होनेवाली बहसों में भी इस बात पर ज़ोर दिया जाता रहा है कि हमें अपने आपस में भी अहिंसा की ही ज़रूरत है। यह मुझे अच्छी तरह याद है।

(६) मानव-स्वभाव ने अभी तक अहिंसा का बड़ी अच्छी तरह स्वागत किया है, यह सच है। लेकिन मतलब उस अहिंसा से है जिसे कांग्रेस ने अपनाया है। कांग्रेसवादियों को एक प्रतिज्ञा पर दस्तख़त करने पड़ते हैं, जो उन्हें अहिंसा के प्रति वचन-बद्ध करती है। मेरा सवाल पहले भी यही था और अब भी यही है कि क्या उनमें अहिंसा मौजूद है। अगर है तो क्या वह बहादुरों की अहिंसा है ? मेरा विवेचन यह है कि अगर वह बहादुरों की अहिंसा है तो वह दंगों से निपटने तथा उद्देश्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।

(७) इसका जवाब इससे पहले के नम्बर में दिया जा चुका है।

लेकिन मुझे भय है कि हमारी अहिंसा बहादुरों की अहिंसा नहीं है। कांग्रेसवादी मेरी इस चेतावनी की अपेक्षा न करें। क्योंकि अहिंसा के बारे में आख़िर कांग्रेसी विशेषज्ञ मैं ही तो समझा जाता हूँ, फिर मेरी क्षमता कितनी ही कम क्यों न हो। मैंने जो कुछ ख़याल बनाये हैं और जो उपाय सुझाये हैं उन पर मुझे विश्वास है। अहमदाबाद, बीरम-गाँम के दंगे, युवराज के आगमन पर हुआ बम्बई का दंगा और बारडोली-सत्याग्रह के वक्त के चौरा-चौरा-काण्ड को उदाहरण के रूप में पेश करता हूँ। मेरे कहने पर जो उपाय अख़्तियार किये गये उनकी उस समय आलोचकों ने कुछ कम नुक्ताचीनी नहीं की, लेकिन उनके परिणामों ने पूरी तरह यह साबित कर दिया है कि उन उपायों का अख़्तियार करना बिलकुल वाजिब था। मौजूदा निदान और उपाय के बारे में भी मुझे कोई संदेह नहीं है। अहिंसा और उसकी प्रवृत्ति के विषय में अगर हमारा जीता-जागता विश्वास हो तो जो उपाय मैंने सुझाये हैं वे हमारे सामर्थ्य के बाहर के नहीं हैं।

श्री राजेन्द्र बाबू का वक्तव्य

बिहटा-काण्ड में जो लोग मरे हैं या घायल हुए हैं उन्हें या उनके परिवारवालों को रेलवे कम्पनी से कोई हरजाना नहीं मिला है। जस्टिस सर जान के निर्णय के बाद तो अब उसके मिलने में देर होनी ही न चाहिए। इस सम्बन्ध में देशरत्न श्री राजेन्द्र बाबू ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया है उसका एक अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

सर जान टाम ने बिहटा-दुर्घटना के लिए रेलवे प्रबन्धकों को ज़िम्मेदार ठहरा दिया है और दूसरी बातों के सिवा इसके लिए भी सिफ़ारिश की है कि दुर्घटना में घायल आदमियों को और जो मर गये हैं उनके आश्रितों को रेलवे के प्रबन्धक हरजाना दें। भारत-सरकार ने सिफ़ारिश मान ली है और हरजाना देने का हुक्म दिया है।

मैं समझता हूँ कि यह इरादा नहीं किया गया है कि कष्टपीड़ित लोग अपने दावे साबित करने के लिए अदालत में मुक़द्दमे दायर करें और उनसे यह आशा न की जाती होगी कि वे रेलवे की गफ़लत साबित करेंगे। मैं समझता हूँ कि उन सब लोगों से यही साबित करने को कहा जायगा कि वे कष्टपीड़ित हैं और इतना हरजाना पाने के हक़दार हैं। कष्टपीड़ित लोग अनेक ज़िलों के हैं। उनमें से बहुतेरे देहाती हैं। इतने दिनों के बाद बहुतेरे नहीं जानते कि उनको कोई हरजाना मिलनेवाला है। इसलिए जहाँ तक बने व्यापक रूप से यह जता देने की ज़रूरत है कि कष्टपीड़ितों को हरजाना दिया जानेवाला है। इसके साथ ही ऐसी व्यवस्था भी कर देने की ज़रूरत है कि जिससे दावा सहज में और जल्दी से साबित किया जा सके।

दीवानी अदालत की-सी कारवाई करना अच्छा न होगा। इन दावों को सुनने के लिए एक ख़ास अदालत (ट्रिब्यूनल) क़ायम कर दी जाय ताकि दावों का फ़ैसला जल्दी से हो सके। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि वह ट्रिब्यूनल ऐसा हो जिस पर लोगों का विश्वास हो और जहाँ बाल की खाल न निकाली जाय, जिससे सरकार का उद्देश्य ही नष्ट हो जाय।

कष्टपीड़ितों को भी एक चेतावनी दे देने की ज़रूरत है। मैंने सुना है कि कुछ लोगों ने एजेन्सियाँ क़ायम करके कष्टपीड़ितों से कहा है कि हमारी मार्फ़त दावा करो, हम रेलवे से हरजाना वसूल करेंगे और जो हरजाना मिलेगा उसमें से इतनी रक़म या इतना फ़ी सदी दे देंगे। कष्टपीड़ित लोग अगर अविश्वासी एजेन्सियों से सहायता लेंगे तो अगर ठगे न जायँगे तो भी उनके साथ अन्याय होने का भारी भय है। पटने में हमने दुर्घटना के बाद ही बिहटा-ट्रेन-दुर्घटना-कमिटी क़ायम कर दी थी। उस कमिटी ने बहुत-से कष्टपीड़ितों के नाम-पते आदि संग्रह कर लिये हैं। उस कमिटी के मेम्बर मुफ़्त में बिना कुछ लिये काम कर रहे हैं। जो कष्टपीड़ित अपना मामला उसके हाथ में सौंपेंगे उनकी मदद कमिटी करेगी। पंजाब और युक्त प्रान्त की—अधिकतर कष्टपीड़ित इन प्रान्तों के हैं—प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को मैं लिख रहा हूँ कि अपने अपने प्रान्त में ऐसी ही कमेटियाँ कष्टपीड़ितों को अपना दावा पेश करने में मदद देने के लिए क़ायम करें। मुझे आशा है कि जब चीफ़ जस्टिस ने बहुत साफ़ राय दे दी है तब रेलवे प्रबन्धक कष्टपीड़ितों के प्रति उदारता का भाव दरशावेंगे और उन्हें काफ़ी हरजाना देंगे।

रेलवे यात्रियों का कष्ट-निवारण

रेलवे यात्रियों के कष्ट-निवारण के सम्बन्ध में बेज़वाड़ा में हाल में ही एक अखिल भारतीय रेलवे यात्री-सम्मेलन हुआ है। इसके अध्यक्ष श्रीयुत आर० के० सिधवा ने अपने भाषण में अनेक शिकायतों का ज़िक्र किया है, जिनका शीघ्र से शीघ्र दूर हो जाना आवश्यक है भाषण का सारांश यह है—

रेलवे की अधिक आय तीसरे दर्जे के यात्रियों से होती है, पर यह बड़ा ही दुःख का विषय है कि इन यात्रियों को सफ़र में बहुत ही कम आराम मिलता है। ट्रेनों में अत्यन्त अधिक भीड़ हो जाने की शिकायत बहुत ही आम और पुरानी है। समाचार-पत्रों और सार्वजनिक व्याख्यानों के द्वारा और केन्द्रीय ऐसेम्बली में प्रस्ताव पेश करके और बहस करके इस शिकायत की ओर रेलवे अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। लम्बा सफ़र करनेवाले यात्रियों को इन दर्जों में ज़रा भी आराम नहीं मिलता। बिजली के पंखों का प्रबन्ध नहीं है, यद्यपि इस विषय की ओर अधिकारियों का ध्यान कई बार आकृष्ट किया गया है, और एडवाइज़री (सलाहकार) कमिटी में इस सम्बन्ध में कई बार प्रस्ताव भी पास किये गये हैं। इसके बाद दूसरी शिकायत यह है कि पाख़ानों में पानी बहुत ही कम रहता है, प्लेटफ़ार्मों पर पीने के पानी का प्रबन्ध काफ़ी नहीं होता। रेलवे-कर्मचारियों के द्वारा तीसरे दर्जे के यात्रियों को सहायता नहीं मिलती। ऐसी शिकायतों से मालूम होता है कि रेलवे-अधिकारियों का तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ मनुष्योचित व्यवहार नहीं होता। मुझे इसका पूर्ण निश्चय है कि जब तक और तेज़ ट्रेनों की संख्या न बढ़ाई जायगी तब तक ट्रेनों में भीड़ होने की शिकायत न जायगी।

आजकल बहुतेरे स्टेशनों पर पीने के पानी का प्रबन्ध काफ़ी नहीं है। पानी देने के लिए आदमियों की काफ़ी

संख्या नहीं रक्खी जाती, और जहाँ आदमी रक्खे जाते हैं, वहाँ रेलवे कर्मचारी स्वयं उनसे और उनके बर्तनों से काम लेते हैं। इस तरह की कुव्यवस्था रहने में रेलवे-शासकों की कोई तारीफ़ नहीं है।

ट्रेनों में तीसरे दर्जे के यात्रियों का असबाब तौलने का प्रबन्ध बहुत अनुचित है। ट्रैवेलिंग टिकट एक्ज़ामिनर हाथ के तराज़ू से जिस तरह यात्रियों का असबाब तौलता है उसे देखते हुए बुरा मालूम होता है। कितनी ही बार ऐसा हुआ है कि यात्रियों का असबाब तौलने के लिए उन्हें स्टेशन पर उतार लिया गया है। यात्रियों के दर्जे में असबाब तौलने का तरीक़ा बन्द होना चाहिए। यदि यात्री का असबाब ज़्यादा है तो उसे उसकी यात्रा समाप्त होने के बाद तौलना चाहिए और उससे मूल्य वसूल करना चाहिए।

कितने ही रेलवे-स्टेशनों पर प्लेटफ़ार्म या शेड आदि नहीं होते। तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए मुसाफ़िरख़ाने चारों तरफ़ से खुले रहते हैं, जहाँ धूप और वर्षा का पानी आता है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि रेलवे-अधिकारी उन मुसाफ़िरख़ानों में थोड़ा आराम और सुख पहुँचाने का प्रबन्ध क्यों नहीं करते।

तीसरे दर्जे के यात्री जैसे अछूत हैं, इसलिए उनके लिए टिकटघर बहुत ही दूर रक्खा जाता है। प्रायः प्रत्येक स्टेशन पर ऊँचे दर्जे के यात्रियों के लिए टिकटघर मुख्य प्रवेशद्वार के पास रहता है, पर तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए टिकटघर दूर रक्खा जाता है और ट्रेन आने के कुछ ही मिनट पहले खुलता है, जिसका फल यह होता है कि कितने ही यात्री टिकट नहीं ले पाते, ट्रेन छूट जाती है और वे बेचारे पीछे ही रह जाते हैं। तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए फाटक जल्दी नहीं खुलता, ट्रेन के स्टेशन पर पहुँच जाने पर या उसके पहुँचने के कुछ ही मिनट पहले फाटक खोला जाता है। समय बहुत ही कम रहता है इसलिए कितने ही यात्री तो ट्रेनों में चढ़ने भी नहीं पाते क्योंकि तीसरे दर्जे में अत्यन्त अधिक भीड़ रहती है।

प्रत्येक डाकगाड़ी या एक्सप्रेस ट्रेन में उच्च श्रेणी के मुसाफ़िरों के आराम के लिए कुछ कंडक्टर होते हैं, पर तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है। इसलिए प्रत्येक पेसिन्जर ट्रेन में ऐसे अफ़सर नियुक्त होने चाहिए जिनका यह कर्तव्य हो कि वे केवल तीसरे दर्जे के यात्रियों के आराम का ख़याल रक्खें।

कितने ही रेलवे-कर्मचारी यात्रियों के साथ दुर्व्यवहार और बेईमानी करते हैं। यह शिकायत इतनी आम है कि वेजउड-कमिटी का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ, और कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में यह ज़ोर के साथ लिखा है कि यह दुर्व्यवहार और बेईमानी रोकने के लिए रेलवे-अधिकारियों को विशेष रूप से प्रबन्ध करना चाहिए। केवल आज्ञा निकाल देने से बुराई दूर न होगी। जब तक कुछ रेलवे-कर्मचारी इस बुराई के लिए न निकाले जायँगे तब तक यह बुराई दूर न होगी।

ट्रेनों के डिब्बों में जो गाड़ी के रोकने के लिए 'एलार्म चेन' (ज़ंजीर) लगी है, उसे खींचने के कई मामले भी प्रकाश में आये हैं। कितनी ही बार यात्रियों ने ज़ंजीर इसलिए खींची कि पाख़ाने के ऊपर टंकी में पानी नहीं था या डिब्बे में बहुत ज़्यादा भीड़ थी। इस तरह ज़ंजीर खींचनेवाले यात्रियों पर मामले चलाये गये, पर अदालतों ने फ़ैसलों में उनके द्वारा ज़ंजीर का खींचा जाना उचित ठहराया और उन मनुष्यों को छोड़ दिया जिन्होंने ज़ंजीर खींची थी।

इस समय कुछ स्टेशनों पर खाद्य पदार्थों का मूल्य बहुत अधिक है। इसका यही कारण है कि लाइसेन्स की फ़ीस अधिक रक्खी है। यह पद्धति अवश्य बन्द होनी चाहिए।

इस समय केवल एक जोधपुर-स्टेट-रेलवे को छोड़कर अन्य सभी रेलों में सलाहकार (एडवाइज़री) कमिटियाँ हैं। अब वह समय आ गया है कि रेलवे-बोर्ड इन कमिटियों के विधान में संशोधन करे। इस समय यह कमिटी जो सलाह देती है उसे न तो रेलवे के एजेन्ट मानने के लिए मजबूर हैं और न तो वे सलाहें मानी जाती हैं, चाहे वे कितनी भी अच्छी और लाभदायी क्यों न हों। इसलिए कमिटी के विधान में अवश्य ऐसा संशोधन होना चाहिए कि बहुमत का फ़ैसला रेलवे के अधिकारी मानने के लिए मजबूर हों। इस समय कमिटी में कितने ही नामज़द सदस्य हैं जो केवल रेलवे के पक्ष का ही ध्यान रखते हैं। सदस्यों को नामज़द नहीं करना चाहिए बल्कि उनके चुनाव की पद्धति ग्रहण करनी चाहिए और उन्हें अधिक शक्तियाँ मिलनी चाहिए। इस कमिटी की बैठक कम से कम एक मास के भीतर अवश्य करनी चाहिए। यह एक आश्चर्य की बात है कि यात्रियों के एसोसिएशन का कोई प्रतिनिधि इस कमिटी में नहीं होता।

—

चातुर्वर्ण्य-विचार

जात-पाँत-तोड़क-मंडल, लाहौर, की ओर से श्री सन्तराम जी ने यह वक्तव्य प्रकाशित कराया है—

सनातनधर्मी लोग चातुर्वर्ण्य जन्म से मानते हैं और आर्य-समाजी गुण, कर्म और स्वभाव से। परन्तु ऐसे भी बहुत से विद्वान् हैं जो कहते हैं कि हिन्दुओं के परम शास्त्र वेद में चातुवर्ण्य का विधान बिलकुल नहीं है। उनका मत है कि वेद मनुष्य-जाति को केवल दो वर्णों में बाँटता है—एक आर्य और दूसरा दास या दस्यु या शूद्र। जो आर्य है, वह दास, शूद्र या दस्यु नहीं। जैसा कि—

(१) विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः। ऋ० १।५१।८

अर्थात्, हे इन्द्र आर्यों को पहचान और (उनको) जो दस्यु हैं।

(२) सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः। अथर्व० ४।२०।४

अर्थात् मैं सबको देखता हूँ जो शूद्र है और जो आर्य है।

वेद में केवल आर्य और दास के साथ ही वर्ण शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसा कि—

यो दासं वर्णमधुरं गुहाकः। ऋ० २।१२।४

हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत। ऋ० ३।३४।९

जैसे इन मन्त्रों में 'दास वर्ण' और 'आर्य वर्ण' स्पष्ट लिखा मिलता है, वैसे चारों वेदों में कहीं भी 'ब्राह्मण-वर्ण' 'क्षत्रिय वर्ण' या 'वैश्य-वर्ण' नहीं लिखा मिलता। इतना ही नहीं, वरन वेद में दो वर्ण (उभौ वर्णौ) भी साफ़ साफ़ लिखा मिलता है। जैसे कि—

उभौ वर्णौ ऋषिरुग्रः पपोष। ऋ० १।१७९।६

परन्तु 'चातुर्वर्ण्य' कहीं भी लिखा नहीं मिलता।

स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास (पृष्ठ २३६, दशमवार) में लिखते हैं—

"आर्य नाम धार्मिक, विद्वान् पुरुषों का है...ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है।"

और—यथावशं नेयति दासमार्य्यः। ऋ० ५।३४।६ का भाष्य करते हुए स्वामी जी लिखते हैं—

("आर्य) ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य वर्ण आर्य राजा यथाशक्ति (दासम) सेवक शूद्र को प्राप्त करता है।"

इससे स्पष्ट है कि शूद्र आर्यों से बाहर है। इससे आर्यों के चार नहीं तीन वर्ण रह जाते हैं। सत्यार्थप्रकाश में जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण लिखे हैं, वह स्वामी जी का अपना मत नहीं, बरन मनुस्मृति का है, और मनुस्मृति की बहुत-सी बातें वेद-विरुद्ध होने से मान्य नहीं। (देखिए निर्णयसागर प्रेस बम्बई में संवत् १९३५ में मुद्रित स्वामी दयानन्दकृत ऋग्वेद-भाष्य के प्रथमाङ्क के आरम्भ में दिया विज्ञापन) आर्यों में वर्ण-भेद नहीं; वे सब एक वर्ण हैं, इस बात की पुष्टि इतिहास-पुराण से भी होती है। जैसे कि—

एकं वर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर!—महाभारत

अर्थात् हे युधिष्ठिर, इस जगत् में पहले एक ही वर्ण था।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।

देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च।—श्रीमद्भागवत।

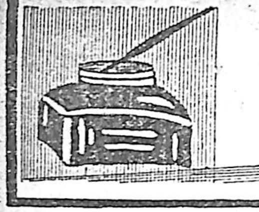
अर्थात् पहले एक अद्वितीय नारायण देवता, एक अग्नि और एक ही वर्ण था।

वेद के एक आर्य वर्ण को स्मृतियों और शास्त्रों ने चार वर्णों में बाँटकर और उनके साथ ऊँच-नीच का भाव लगाकर बड़ा भारी अनिष्ट किया है। जैसे कि—

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१॥

अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यवर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥२॥

आपस्तम्ब के इन सूत्रों में कहा गया है कि धर्म-चर्चा से नीच वर्ण उच्च वर्ण को और अधर्माचरण से उच्च वर्ण नीच वर्ण को प्राप्त होता है। इस दृष्टि से ब्राह्मण के सिवा शेष सब वर्ण अधर्माचारी ठहरते हैं। इस प्रकार इस अवैदिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से हिन्दू-समाज की घोर हानि हुई है और हो रही है।



सम्पादकीय नोट

इटली से ब्रिटेन का समझौता

आख़िर इटली और ग्रेट ब्रिटेन का समझौता हो गया और योरप के ये दोनों राष्ट्र पहले की भाँति फिर मैत्री के बन्धन में बँध गये। इसका सारा श्रेय एकमात्र ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री सर आस्टन चैम्बरलेन को है। इसके लिए उन्हें भारी विरोध का सामना करना और उनके ब्रिटेन के गौरव को कुछ हद तक झुकाना भी पड़ा है। परन्तु यह समझौता करके उन्होंने और न सही तो कुछ काल के लिए योरप को समरानल में से तो बचा ही लिया है। यह वास्तव में बहुत बड़ी बात हुई है और इसके लिए यदि ब्रिटेन की कुछ हेठी भी हुई है तो वह इस लाभ के सामने नगण्य है। इस समझौते से एक यह बात भी हुई है कि जर्मनी से ब्रिटेन का और फ्रांस से इटली का मेल-मिलाप हो जायगा और इस प्रकार योरप के ये चारों राष्ट्र एकता के सूत्र में आबद्ध हो जायँगे और यह योरप के राजनैतिक क्षेत्र में एक ऐसी बात होगी जो उसके इतिहास में अभूतपूर्व मानी जायगी। परन्तु इसके साथ एक बात है, जो इस अवसर पर भुलाई नहीं जा सकती। वह यह कि योरप में नये राष्ट्रों ने जो विराट् बल-सञ्चय किया है तथा उनमें जो महत्त्वाकांक्षायें जाग्रत हो चुकी हैं उनका समाधान कैसे होगा? इसमें सन्देह नहीं कि इटली की मनस्तुष्टि के लिए ब्रिटेन ने इस समझौते के द्वारा बहुत कुछ स्वार्थ-त्याग किया है और जर्मनी के साथ भी वह उदारतापूर्वक ही व्यवहार करेगा, परन्तु योरप के बलशाली डिक्टेटरों का जो रवैया अब तक रहा है उससे तो विश्वास नहीं होता कि यह समझौता या ऐसे ही अन्य समझौते स्थायी रूप ग्रहण करेंगे। चाहे जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि कम से कम इस समय ये राह पर आ गये हैं और आगे भी कुछ वर्षों तक इनका दम नहीं जागेगा। योरप की वर्तमान भीषण परिस्थिति को देखते हुए यह कुछ कम लाभ की बात नहीं है। और इस परिस्थिति को एक बार फिर शान्ति के राह पर ले आने के लिए ब्रिटेन के वर्तमान सूत्रधारों को जितनी बधाई दी जाय, थोड़ी होगी। यह उन्हीं के सत्साहस का परिणाम हुआ है कि आज रोम-बर्लिन का धुरा ढीला पड़ गया है और अब उसमें उतना बल नहीं दिखाई दे रहा है। जो मुसोलिनी अभी कल तक अपने गर्जन-तर्जन से सारे योरप को कम्पायमान किये हुए थे और भूमध्यसागर को इटली की 'झील' समझ रहे थे उन्हीं को ब्रिटेन के कूटनीतिज्ञों ने एकाएक इस प्रकार दबोच लिया है कि वे एकदम ठंडे पड़ गये हैं और भले आदमी की तरह भलमनसी की बातचीत ही नहीं कर रहे हैं, किन्तु चुपचाप उस सन्धि को स्वीकार कर लिया है जो उनके सामने विचारार्थ उपस्थित की गई थी।

तथापि इस समझौते से यह भी प्रकट हो गया है कि इटली का बल कितना अधिक बढ़ गया है। अभी कल तक जिस ब्रिटेन के जंगी जहाज़ संसार के सातों समुद्रों पर अपना एकाधिपत्य क़ायम किये हुए थे उसी ब्रिटेन को इटली को सन्तुष्ट रखने के लिए भूमध्यसागर के पूर्वी भाग में विशेष स्वत्व प्रदान करने पड़े और अदन के देश में उसको व्यापार करने की सुविधायें दी गईं तथा अबीसीनिया पर उसका राज्य स्वीकार किया गया। यह सच है कि इटली को स्पेन से अपने वालंटियर बुला लेने, स्पेन में अपना किसी तरह का प्रभुत्व न स्थापित करने एवं अरब तथा यमन की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का वचन देना पड़ा है, परन्तु इससे भी इटली का ही महत्त्व व्यक्त होता है। चाहे जो हो, यह तो स्पष्ट ही है कि ब्रिटेन ने एक बार फिर योरप की राजनीति में अग्र स्थान ग्रहण किया है।

भारतीय राजनैतिक स्थिति

कांग्रेस के सहयोग-नीति ग्रहण करने पर आशा की गई थी कि भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में एक बार फिर शान्ति और व्यवस्था का प्रवर्तन होगा और देश राष्ट्र-निर्माण के काय में संलग्न होगा। परन्तु दुख की बात है कि इस काल में सम्प्रदायवाद ने इतना ज़ोर पकड़ लिया है कि बड़े बड़े गम्भीर विचारवान् तक विचलित हो उठे हैं और वे ऐसे प्रयत्न में लग भी गये हैं कि इस समस्या का जल्दी से जल्दी निपटारा हो जाय और राष्ट्र की शक्ति दूसरे आवश्यक कामों में लगाई जाय। तथापि यह प्रसन्नता की बात है कि इस विषम परिस्थिति में भी कांग्रेसी सरकारें अपने अपने प्रान्त में ऐसी शासन-व्यवस्था ही नहीं कर रही हैं, किन्तु ऐसे क़ानून भी बनाती जा रही हैं जिनसे देश की दुखी और दरिद्र प्रजा को सुख से साँस लेने की सम्भावना दिखाई देने लगी है। प्रायः सभी प्रान्तों में किसानों और मज़दूरों की दशा में सुधार करने के लिए ऐसे क़ानून बनाये जा रहे हैं जिनसे उनकी माली हालत का ही सुधार नहीं होगा, किन्तु वे अपने को एक स्वतन्त्र नागरिक होने का भी गर्व कर सकेंगे। शराबबन्दी, ग्राम-पंचायतों का संगठन, शिक्षा का व्यापक प्रचार आदि उनके प्रयत्न इसी बात को लक्ष्य में रखकर किये जा रहे हैं। और यदि साम्प्रदायिकों की उपेक्षा करते हुए एकमात्र राष्ट्र-निर्माण के इन कार्यों में ही दत्तचित्त होकर लगा जाय और ऐसे उपयोगी क़ानून जल्दी से जल्दी बना दिये जायँ जिनसे कृषक, मज़दूर आदि साधारण जनता के खाने को दोनों बेर रोटी और पहनने को वस्त्र मिलने लगें तथा उन्हें विश्वास हो जाय कि अब उन पर कोई किसी तरह का ज़ुल्म नहीं कर सकेगा तो सम्प्रदायवादियों की यह प्रतिक्रिया अपने आप तिरोहित हो जायगी। अतएव सम्प्रदायवाद को महत्त्व देना ठीक नहीं है और लगाम कड़ी रखनी चाहिए तथा राष्ट्र-निर्माण के कार्य को जल्दी से जल्दी इस स्थिति पर ला रखना चाहिए ताकि जनता जान जाय कि उसके हिताहित की कैसी कहाँ कितनी सम्भावना है। शासन-प्रबन्ध के दृष्टिकोण से देखते हुए यह तो कहना ही पड़ेगा कि अभी तक जो कुछ हुआ है, अच्छा ही हुआ है, परन्तु कार्य-पद्धति पहले जैसी ही है, जिससे शीघ्र सुफल प्रकट होने की आशा नहीं है। कांग्रेसी सरकारों को नौकरशाही की फ़ाइलबाज़ी के गोरखधन्धे में न पड़कर अपनी नई सूझ बूझ तथा मौलिकता का परिचय देना चाहिए ताकि लोग समझ जायँ कि 'स्वराज्य' सचमुच निकट आ गया है। उसे 'परीक्षण' और 'निरीक्षण' की कीच में अपने शासन-शकट को भूलकर भी न फँसा देना चाहिए और अपना सारा कार्य निर्भीकता और निस्सन्देह होकर करना चाहिए। ऐसा करने में ही उनकी सफलता है।

किसानों का नया क़ानून

संयुक्त-प्रान्त की सरकार किसानों के सम्बन्ध का एक नया क़ानून बनाने जा रही है। अभी तक इस प्रान्त में खेती के लगान के सम्बन्ध में दो क़ानून प्रचलित थे। आगरा-प्रान्त के लिए अलग और अवध-प्रान्त के लिए अलग क़ानून था। परन्तु अब जो नया क़ानून बन रहा है वह सारे प्रान्त पर एक समान लागू होगा। इस क़ानून के अनुसार खेत किसानों को मिल जायँगे और वे उसमें अपनी आवश्यकता के अनुसार घर बना सकेंगे तथा पेड़ भी लगा सकेंगे और जब तक वे उनका लगान देते जायँगे, कभी बेदख़ल न होंगे। इसके सिवा भूमि का लगान भी घटाकर उतना कर दिया जायगा, जितना ३५ वर्ष पहले था। यही नहीं, उनका लगान खेती की उपज के दसवें भाग के मूल्य से अधिक बढ़ न सकेगा। इस क़ानून के पास हो जाने पर इस प्रान्त के किसानों की स्थिति में ज़मीन-आसमान का अन्तर हो जायगा और उनकी माली हालत बहुत कुछ सुधर जायगी। निस्सन्देह इस क़ानून के जारी होते ही किसानों की अवस्था का कायापलट हो जायगा और हम चाहते हैं कि यह क़ानून ज्यों का त्यों पास हो जाय। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात यह ज़रूर कहना चाहते हैं कि सिद्धान्त की दृष्टि से इस क़ानून में बेदख़ली की धारा न होनी चाहिए। जब इस क़ानून के अनुसार खेती की भूमि किसानों को वंशानुगत दी जा रही है तब लगान के बाक़ी रह जाने पर उस पर से उनका 'दख़ल' कैसे उठाया जा सकता है, क्योंकि बाक़ी लगान तो दूसरे उपायों से भी सरलता से वसूल किया जा सकता है। आशा है, कांग्रेसी सदस्यों का ध्यान इस त्रुटि की ओर जायगा और वे इस दफ़ा में उचित फेर-फार करने का अवश्य प्रयत्न करेंगे। बेदख़ली की पख के सदा के लिए उठ जाने पर ही किसानों की समुचित भलाई हो सकेगी और तभी वे देश के असली

नागरिक बन सकेंगे। यदि बेदख़ली की पख कांग्रेसी सरकार के ज़माने में भी बनी रह गई तो किसान पहले की ही तरह भाड़े के टट्टू ही बने रहेंगे और उनमें उन प्राणों का सञ्चार नहीं हो सकेगा जो एक शक्तिशाली राष्ट्र के प्रजाजनों के लिए परमावश्यक बात है। इस क़ानून में और भी त्रुटियाँ हो सकती हैं, परन्तु यह बेदख़लीवाली पख एक ऐसी त्रुटि है जिससे इस अति महत्त्वपूर्ण क़ानून का सारा महत्त्व नष्ट हो गया है। यदि कांग्रेसी सरकार चाहती है कि राष्ट्र की रीढ़ ये किसान सचमुच राष्ट्र की रीढ़ बनें तो उसे बेदख़ली के दूषित उपाय को छोड़कर अपना लगान वसूल करने के लिए किसी अन्य उपाय का आश्रय लेना चाहिए और इस क़ानून को जल्दी से जल्दी पास कर सदियों से पददलित किसानों में नवजीवन का सञ्चार करना चाहिए ताकि इस प्रान्त की करोड़ों कृषक जनता स्वाधीन जीवन का यत्किञ्चित् सुख का उपभोग तो कर सके।

ठेकेदारों का ज़ुल्म

देश के शासन प्रबन्ध में सरकार को कुछ कार्य सुविधा की दृष्टि से ठेकेदारों के द्वारा कराने पड़ते हैं। यह पद्धति आबकारी-विभाग, इमारत-विभाग आदि में ख़ूब प्रचलित है। परन्तु इससे सरकार और जनता दोनों को घाटा उठाना पड़ता है और यह एक ऐसी बात है जो सरकार और जनता दोनों को मालूम है, अतएव उसका ब्योरा देने की ज़रूरत नहीं है। ठेकेदारी-पद्धति से कहाँ कैसी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, इस सम्बन्ध की शिकायतों से सरकार के दफ़्तरों की रद्दी की टोकरियाँ प्रायः सदा भरी रहती होंगी। दुःख है, अभी तक उनकी ओर जैसा चाहिए वैसा ध्यान नहीं दिया गया है। परन्तु अब तो देश में जनता की सरकार स्थापित हो गई है। उसको तो इस दुरवस्था की ओर ध्यान देना ही होगा और 'सरकारी' ठेकेदारों के अत्याचारों तथा अनाचारों से दीन और असहाय प्रजाजनों की रक्षा करनी ही होगी। उदाहरण के लिए नदियों के घाटों के ठेकेदारों को ही लीजिए। सरकार ने नदियों की उतराई का निर्ख़नामा बना दिया है। परन्तु देहात के घाटों में कदाचित् ही किसी घाट में उसका पालन होता होगा। बात यह है कि सरकार ठेकेदारों को ठेका देकर छुट्टी पा जाती है और ठेकेदार यात्रियों से मनमाना 'कर' वसूल करते रहते हैं और जो रसीद माँगता है या निर्ख़नामा दिखाने को कहता है उसकी बेइज़्ज़ती करते हैं। कहने का मतलब यह है कि यह प्रणाली ठीक नहीं है और वर्तमान सरकार को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए। देखने में तो ये छोटी बातें हैं, परन्तु यही छोटी बातें उस महान् बुराई का पोषक हैं जिसकी बदौलत आज भारतीय राष्ट्र वर्तमान दयनीय दशा को प्राप्त है।

बिहार की सरकार का एक सत्कार्य

बिहार की कांग्रेसी सरकार ने दहेज़ की कुप्रथा दूर करने के लिए एक क़ानून बनाने का निश्चय किया है। इसके अनुसार दहेज़ लेनेवाले व्यक्ति को ६ महीने की सज़ा भोगनी पड़ेगी तथा एक हज़ार रुपया जुर्माना भी देना पड़ेगा। पिछले वर्ष हमने झाँसी की दुर्घटना का उल्लेख करते हुए संयुक्त-प्रान्त की सरकार से निवेदन किया था कि दहेज़ रोकने के लिए वह अपने यहाँ कोई उपयुक्त क़ानून बनावे, क्योंकि संयुक्त-प्रान्त में दहेज़ की प्रथा बहुत ही उग्र रूप धारण किये हुए है। परन्तु यहाँ की सरकार का ध्यान अभी तक इस दुरवस्था की ओर नहीं गया है। प्रसन्नता की बात है कि बिहार की सरकार इस दिशा में सबसे पहले पग बढ़ाकर दूसरे प्रान्तों के लिए एक आदर्श उपस्थित करने जा रही है। हम उसके इस सत्कार्य की सफलता चाहते हैं।

बिहटा-दुर्घटना की जाँच का परिणाम

सन् १९३७ की १९वीं जुलाई को ई० आई० आर० रेलवे के बिहटा-स्टेशन में जो भीषण रेलगाड़ी-दुर्घटना हुई थी उसकी जाँच भारत-सरकार ने इलाहाबाद-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर जान टाम से कराई थी। सर जान टाम ने इस दुर्घटना की जाँच बड़ी तत्परता तथा अध्यवसाय से महीनों तक की। हाल में उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उसमें उन्होंने रेलवे कम्पनी को अपराधी बताया है और लिखा है कि इस दुर्घटना में जो व्यक्ति मरे हैं तथा जो घायल हुए हैं उनकी क्षतिपूर्ति रेलवे कम्पनी करे। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने यह भी लिखा है कि इस दुर्घटना का मूलकारण एक्स-बी इंजिन है और इस श्रेणी के इंजिनों का उपयोग बन्द हो जाना चाहिए। सरकार ने उनकी रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया है और कम्पनी को हरजाना देने का आदेश किया है। उक्त इंजन के उपयोग के सम्बन्ध में उसने कहा है कि इंजिन की उपयोगिता-अनुपयोगिता के सम्बन्ध में वह विशेषज्ञों की कमेटी से भी जाँच करा लेना चाहती है। इसके बाद वह अपना निर्णय प्रकट करेगी। तब तक ये इंजन उतनी द्रुतगति से नहीं चला करेंगे। सरकार को जानना चाहिए कि इस रिपोर्ट के निकलने के कुछ ही दिन पहले इलाहाबाद में बिहटा जैसी ही भीषण दुर्घटना फिर हो चुकी है, यद्यपि संयोग से इस बार मृत्युएँ बहुत कम हुई हैं। ऐसी दशा में उक्त महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट के निष्कर्षों के अनुसार रेलवे में उस श्रेणी के इंजनों का उपयोग जैसा कि सर जान टाम ने कहा है, एकदम बन्द ही कर देना चाहिए।

कांग्रेस और साम्प्रदायिक समस्या

मुसलिम-लीग के प्रमुख नेता तथा उसके वर्तमान अध्यक्ष इधर कुछ समय से अधिक उग्र रूप प्रदर्शित कर रहे हैं। उनकी इस मनोवृत्ति को देखकर कांग्रेस उनसे साम्प्रदायिक मसलों के सम्बन्ध में समझौता करने को प्रवृत्त हुई है। कहा जाता है कि कांग्रेस के अधिकारियों से जिन्ना साहब का पिछले दिनों से पत्र-व्यवहार भी हो रहा है और अब २८ अप्रेल को उनकी महात्मा गान्धी से बम्बई में बातचीत भी होगी। देखना है कि कांग्रेस से मुसलिम-लीग का क्या समझौता होता है। जिन्ना साहब ने तो समझौते के लिए अपनी शर्तें भी प्रकाशित कर दी हैं। उनकी पहले की १४ शर्तें तो पाठकों को मालूम ही हैं। अब उन्होंने ७ और नई शर्तें पेश की हैं, जो ये हैं—

(१) मुसलिम-लीग का अस्तित्व अलग स्वीकार किया जाय, उसे कांग्रेस के साथ मिलने की आज़ादी रहेगी। (२) मुसलमानों को कांग्रेस में शामिल करने की जो लहर शुरू की गई है वह बन्द कर दी जाय और मुसलमानों को कांग्रेस का सदस्य न रहने दिया जाय। (३) असेम्बली में साम्प्रदायिक प्रश्नों पर मुसलिम-लीग को कांग्रेस के साथ मिलने न मिलने का अधिकार होगा। (४) लोकल बाडीज़ के चुनाव हर अवस्था में अलग हों संयुक्त चुनाव कहीं भी जारी न किया जाय। (५) कांग्रेस अपने तिरंगे झण्डे के साथ साथ मुसलिम-लीगी झण्डे को भी फहराया करे, ये दोनों इकट्ठे रहें। (६) कांग्रेस की सभाओं में वन्दे मातरम् गीत न गाया जाया करे। (७) कांग्रेस की ओर से हिन्दी के पक्ष में जो आन्दोलन किया जाता है वह बन्द कर दिया जाय। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से कांग्रेस का कोई सम्बन्ध न रहे। वह उर्दू का प्रचार करे।

यदि कांग्रेस जिन्ना साहब की इन २१ शर्तों को स्वीकार करेगी तो जिन्ना साहब का उससे समझौता हो जायगा, नहीं तो जो साम्प्रदायिक संघर्ष इस समय देश में छिड़ा हुआ है वह अपना रंग इसी तरह दिखाता रहेगा। उधर हिन्दू सभा का नाम ले लेकर डाक्टर मुंजे और भाई परमानन्द चिल्ला रहे हैं कि हिन्दुओं के नाम पर कांग्रेस को मुसलमानों से समझौता करने का कोई अधिकार नहीं है। चाहे जो हो, कांग्रेस को तो इस लज्जाजनक परिस्थिति का जैसे हो अन्त ही कर देना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि वह इस ओर प्रवृत्त है।

रिश्वतख़ोरी की रोक-थाम

देश में रिश्वतख़ोरी का बाज़ार कितना अधिक गर्म है और यह महाव्याधि कितना अधिक व्यापक रूप धारण कर गई है, इसका परिचय यहाँ देने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वह तो 'हक़' के नाम पर यहाँ के सामाजिक जीवन का अंग बन गई है। परन्तु जब से संयुक्त-प्रान्त में कांग्रेसी सरकार ने शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में लिया है, उसने इस महामारी के उन्मूलन की ओर शुरू से ही ध्यान दिया है। उसने इसका एक विभाग ही खोल दिया है जो रिश्वत के मामलों की शिकायतें सुनता है और समुचित कार्रवाई करता है। रिश्वतख़ोरी के उन्मूलन का समुचित उपाय सोचने के लिए उसने कुँवर सर महाराजसिंह की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की थी। उस कमिटी की रिपोर्ट हाल में प्रकाशित हुई है। उसमें बताया गया है कि रिश्वत लेने का रोग बहुत बढ़ गया है, जिसका मूल-कारण लोकमत का अभाव और अधिकारियों की उपेक्षा है। इस दोष को दूर करने के लिए उसमें निम्न उपाय बताये गये हैं—

प्रत्येक ज़िले में एक रिश्वत-निवारिणी क[illegible] जाय, जिसका चेयरमैन ज़िला-मजिस्ट्रेट हो।

पुलिस, दो वकील, ज़िला-बोर्ड व म्युनिसिपल कमिटी का एक-एक प्रतिनिधि और स्थानीय असेम्बली-सदस्य इसके मेम्बर हों।

यह कमिटी रिश्वत के सब मामलों की जाँच कर ऊपर भेजेगी।

जिन अफ़सरों के बारे में पिछले छः सालों में तीन या अधिक बार रिश्वतख़ोरी की शिकायत उच्च अधिकारियों-द्वारा की गई हो वे बरख़ास्त कर दिये जायँ।

जो अफ़सर १५ साल तक काम कर चुके हैं उनमें से जिनका रिकार्ड ख़राब हो वे भी निकाल दिये जायँ।

रिश्वतख़ोरी के मामलों में गवाही का क़ानून बहुत सख़्त न बनाया जाय।

कोई अफ़सर यदि रिश्वतख़ोरी के अपराध से बरी हो जाता है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसकी पुनर्नियुक्ति की ही जाय।

निम्न कर्मचारियों-द्वारा सब प्रकार की डाली व भेंट लेना बन्द हो जानी चाहिए।

कैम्प की सजावट, शिकारपार्टी की व्यवस्था और ख़र्चीला भोजन, विनोद आदि भी बन्द कर देने चाहिए।

निजी लोगों या निम्न कर्मचारियों की सवारियों का प्रयोग भी बन्द हो जाय। किराये की सवारी भी बग़ैर पैसा न की जाय।

नियुक्ति से पूर्व सरकारी नौकर को अपनी व अपने परिवार की अचल सम्पत्ति की सूची उच्च अधिकारी को सौंपनी चाहिए।

सालाना ईमानदारी का सार्टिफ़िकेट दिया जाया करे।

सिफ़ारिशें बिलकुल बन्द कर दी जायँ।

आशा है, प्रान्तीय सरकार रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के अनुसार रिश्वतख़ोरी रोकने की समुचित कार्रवाई करने की ओर अब अग्रसर होगी।

——

भारतीय बजटों के आँकड़े

केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों ने नवीन वर्ष के लिए अपने अपने जो बजट पास किये हैं उनके आय-व्यय के आँकड़े 'अग्रवाल-हितैषी' ने इस प्रकार संग्रह किये हैं—

		आय	व्यय	बेशी	कमी
(१) भारतीय ऐसेम्बली का	बजट	८५९२ लाख रु०	८५८३ लाख रु०	९ ला० रु०	....
(२) U. P. (संयुक्त प्रांतीय)	,,	१३०१·७ ,,	१३१६·७८ ,,	....	१५·०८ लाख
(३) मदरास	,,	१५९८·२१ ,,	१५८६·०६ ,,	१२ ,,	....
(४) *बम्बई	,,	१२०६ ,,	१२५० ,,	....	४१ ,,
(५) बिहार	,,	५०५·५ ,,	५०४·२५ ,,	१·२५ ,,	....
(६) मध्य प्रान्तीय	,,	४८१·९९ ,,	४८१·१८ ,,	·८१ ,,	....
(७) उड़ीसा	,,	१९२·०८ ,,	१९४·५६ ,,	२·४८ ,,	....
(८) उत्तर-पश्चिमी सरहदी सूबे का	,,	१८०·०५ ,,	१८६·६८ ,,	....	६·६३ ,,
(९) बंगाल सूबे का	,,	१३१३ ,,	१३२५ ,,	....	१२ ,,
(१०) पंजाब	,,	११४१·५६ ,,	११३६·४२ ,,	५·१४ ,,	....
(११) सिन्ध	,,	३६०·६७ ,,	३५९·१२ ,,	१·५५ ,,	....
(१२) आसाम	,,	२६४·२४ ,,	२६८·८६ ,,		४·६२ ,,

* बम्बई में खाते बाक़ी या रोकड़ बाक़ी के ५१ लाख रुपये में से कमी पूरी की जायगी और तब १० लाख की बेशी होगी जो आकस्मिक ख़र्च के काम आयगी।

उपर्युक्त आँकड़ों से केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा पर ख़ासा प्रकाश पड़ता है।

कि स०.

——

मक्का में 'हिन्दी'

भारतीय हिन्दू-शुद्धि-सभा के पंडित रुचिराम जी आर्योपदेशक सात वर्ष तक अरब में रहकर भारत को लौटे हैं। अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में उन्होंने अजमेर के 'आर्यमार्तण्ड' में एक लेख-माला छपाई है। 'मक्का' के न्ध में उन्होंने जो लेख लिखा है उससे प्रकट होता है वहाँ वाले भी हिन्दी जानते हैं! वे लिखते हैं—

मक्का एक बड़ा शहर है, यहाँ पर सर्राफ़ों की दूकानें हैं, जहाँ हर एक क़िस्म का सिक्का बदल सकता है। के दिनों में ताजिर लोग जहाज़ों से हर प्रकार का मान जिद्दा बन्दरगाह के रास्ते से मक्का लाते हैं। मक्का चार करुश सऊदी अर्थात् चार आने का एक टीन बिकता है और दो पैसे का एक गिलास। हिन्दुस्तानी लोग अरबी नहीं बोल सकते, मगर मक्का के दूकान-रों का गुज़ारा हाजियों पर ही होता है, इसलिए वे हिन्दी वान भी सीख लेते हैं। किसी के सिर पर पगड़ी देखते कहने लगते हैं—"आओ बाई बैतो अर्थात् भाई बैठो। ई को 'बाई' बैठो को 'बैतो', पानी को 'बानी', रोटी 'रोती', चावल को 'शावल', छोटा को 'शोता', चाय 'शाय', पंजाब को 'बंजाब', काची को 'क़ाशी', स्याल-टि को 'स्यालकोत', गांधी को 'गांदी' कहते हैं और टी फ़र्स्टक्लास उर्दू बोलते हैं तथा अँगरेज़ी भी बहुत द्ध बोलते हैं।

——

एग्रिकल्चरल इंस्टिट्यूट का महत्कार्य

पूसा के 'इम्पीरियल एग्रिकल्चरल रिसर्च इन्स्टिटयूट' के नाम और कामों से पाठक भले प्रकार परिचित होंगे। अब यह संस्था पूसा से उठकर दिल्ली चली गई है। कृषि-सम्बन्धी खोज की यह संस्था भारत की अपने विषय की सबसे बड़ी संस्था है और यह सरकारी ढंग से इस देश की कृषि आदि की उन्नति के कार्य में बराबर लगी रहती है। अभी हाल में इसकी एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिससे प्रकट होता है कि अपने जीवन के गत ३१ वर्षों में इस संस्था ने कितना और कैसा काम किया है।

भारत-सरकार ने सन् १९०५-०६ और १९३६-३७ के बीच ३१ साल में इस संस्था पर लगभग २८२ लाख रुपया ख़र्च किया। इसके कार्यों से एक साल (१९३४-३५) में कृषिजन्य पदार्थों से देश को लगभग ४। करोड़ की आमदनी होने का अनुमान किया गया है।

इस संस्था ने भारत के बहुत-से महत्त्वपूर्ण खाद्यों और औद्योगिक फ़सलों को नई नई क़िस्में पैदा की हैं।

आँकड़ों से पता चलता है कि जितने क्षेत्र में गन्ने की सुधरी हुई क़िस्में बोई जाती हैं वह सन् १९२४-२५ में ७५,३३४ एकड़ से बढ़कर सन् १९३४-३५ में २४,४५,७१९ एकड़ हो गया है। इन दस वर्षों में गन्ना बोये जाने-वाले समस्त क्षेत्र में २७,०४,००० एकड़ से ३८,८५,००० एकड़ तक वृद्धि हुई है।

सन् १९३४-३५ में २६,९०,२९० टन गन्ना अधिक पैदा हुआ, जो ५ आना फ़ी मन के हिसाब से २॥ करोड़ रुपये का हुआ।

इसी प्रकार 'पूसा गेहूँ' की खेती भी धीरे धीरे बढ़ रही है। सन् १९३५-३६ में ३४,८९,६८४ एकड़ में सुधरे हुए क़िस्म का गेहूँ बोया गया था, जो गेहूँ की खेती के समस्त क्षेत्र का लगभग पाँचवाँ हिस्सा है। इस प्रकार ३ रुपये फ़ी मन के हिसाब से कृषकों की आमदनी में लगभग २ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई है।

पूसा में गेहूँ, जौ, दाल, तेलहन, तमाखू और दूसरी फ़सलों की बहुत-सी नई नई क़िस्में पैदा की गई हैं, जो अनेक कृषि विभागों-द्वारा कृषकों में बाँटी जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों में सुधरी हुई क़िस्म की गन्ने की २० क़िस्में, गेहूँ की ९ क़िस्में, अरहर, अलसी और तमाखू की ७-७ क़िस्में, सफ़ेद चना, जौ, चावल, मिर्च आदि की भी बहुत-सी क़िस्में बाँटी जाती हैं।

तरह तरह की ज़मीन के लिए खाद और पानी की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भी अन्वेषण हुए हैं।

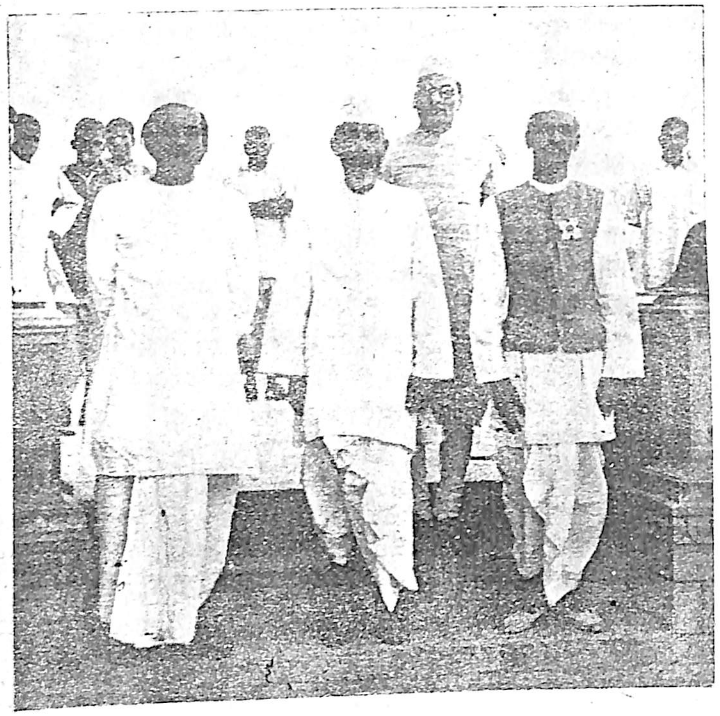
फ़सलों की बीमारियों के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान किया गया है।

भारतीय पशुओं में भी क्रमशः सुधार करने का प्रयत्न किया गया है। इन्स्टिटयूट में अच्छी नस्ल की बहुत-सी साहीवाल गायें हैं। बहुत-सी गायें प्रतिदिन लगभग १५ सेर दूध देती हैं और कुछ ऐसी हैं जो प्रतिदिन २० से २५ सेर तक देती हैं।

——

संयुक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

यह प्रसन्नता की बात है कि संयुक्त-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पुनर्जन्म गत १६ और १७ अप्रैल को फ़ैज़ाबाद में हो गया। प्रान्त के इस बहुत बड़े अभाव की पूर्ति का श्रेय प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता आचार्य नरेन्द्रदेव



[प्रान्तीय सम्मेलन के त्रिदेव—बाबू सम्पूर्णानन्द, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन और आचार्य नरेन्द्रदेवजी। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी जिनके प्रयत्न से यह सम्मेलन सफल हुआ। श्री टंडन जी के पीछे खड़े हैं।]

और पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स फ़ैज़ाबाद को है। इस सम्मेलन के साथ एक साहित्यिक प्रदर्शनी भी हुई थी, जिसका उद्घाटन प्रान्तीय सरकार के शिक्षामंत्री माननीय बाबू संपूर्णानन्द जी ने किया था। सम्मेलन के सभापति असेम्बली के स्पीकर माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन थे। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के सभापतित्व में साहित्य-परिषद् और डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी के सभापतित्व में एक कविसम्मेलन हुआ। ... अभिनय और कविदरबार भी हुआ। इस प्रकार फ़ै... में दो दिन अच्छी साहित्यिक चहल-पहल रही। इस चहल-पहल के बीच प्रान्तीय सम्मेलन को स्थायित्व प्रदान ... का भी प्रयत्न किया गया। २७ सदस्यों की एक समिति बनाई गई है, जो प्रान्तीय सम्मेलन के कार्य का संचालन करेगी और उसकी नियमावली आदि बनावेगी।

सम्मेलन के अधिवेशन में अध्यापक रामरत्न, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी, इंडियन प्रेस के स्वामी श्रीयुत हरिकेशव घोष, पंडित भागीरथप्रसाद दीक्षित, प्रिन्सपल हीरालाल खन्ना, पंडित दया... दुबे, बाबू गुलाबराय, बाबू शालिग्राम वर्मा, पंडित गौरीश... मिश्र, पंडित दुलारेलाल भार्गव, श्रीयुत धुलेकर जी, श्री करन... काने और बाबू शीतलासहाय आदि प्रान्त के अनेक गण्यमान्य नेता और साहित्यिक उपस्थित थे। जिन विषयों पर चर्चा हुई उनमें लिपि और भाषा का प्रश्न मुख्य था। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने अपने भाषण में बड़ी उक्ति के साथ सिद्ध किया कि राष्ट्रभाषा का हिन्दी नाम वास्तव में मुसलमान लेखकों का दिया हुआ है। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्राचीन मुसलमान साहित्यकारों के वाक्य प्रमाणस्वरूप उपस्थित किये और कहा कि "हमारे लिए हिन्दी शब्द हिन्दू मुसलमान के प्रेम-सम्मिलन का सूचक है।" बाबू सम्पूर्णानन्दजी ने 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' को कृत्रिम भाषा बताया और कहा कि हिन्दी-उर्दू के झगड़े को मिटाने के लिए यह नाम आया है। लिपि के सम्बन्ध में ... हुए उन्होंने कहा—"मुझे देवनागरी-लिपि कुछ भली ...लूम होती है। फिर भी जब तक हम एक लिपि से ...नहीं चला सकते तब तक दो लिपियाँ तो चाहिए ... पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी के पिछले इतिहास ...अच्छा प्रकाश डाला। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने एक ...व रक्खा था कि इस प्रान्त का नाम सूबा हिन्द रक्खा ...। इस प्रस्ताव पर सबसे अधिक विवाद हुआ। इसके ...में आचार्य नरेन्द्रदेव का भाषण बहुत अधिक पसन्द ...या गया। अन्त में प्रस्ताव पास हो गया। स्वागता... आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने प्रतिनिधियों का मौखिक ही ...त नहीं किया, अपने निवासस्थान पर उन्होंने उन्हें ...अच्छी दावत भी दी। आशुकवि श्री जगमोहननाथ ...र्मा ने दिये गये विषयों पर तत्काल धाराप्रवाह कवि... करके श्रोताओं को चमत्कृत किया। बाबू पुरुषोत्तम... टंडन ने अपने भाषण में कई एक कार्यों की ओर ...त किया है जिन्हें यह सम्मेलन कर सकता है। कार्य... ...लन के लिए जो समिति बनाई गई है यदि उसने ...ह और लगन से काम किया तो शीघ्र ही इस प्रान्त ...साहित्यिक स्थिति बहुत सुधर जायगी और दूसरे सम्मे... ...में हमें और भी अधिक साहित्यिक उत्साह से भाग ...ते हुए दिखाई पड़ेंगे।

संसार में लोगों की शारीरिक दशा

'लीग आफ़ नेशन्स' ने अपनी कार्य्यवाही की रिपोर्टें ...दी में भी प्रकाशित करना शुरू किया है। ये ज्ञातव्य ...र काम की होती हैं। यहाँ हम उसका स्वास्थ्य-सम्बन्धी ... उद्धृत करते हैं—

अमरीका के संयुक्त-राज्य में १ लाख मनुष्यों की ...च की गई थी। ये सब किसी न किसी व्यवसाय में ...म करते थे और सभी का जीवन-बीमा हो चुका था। ...प्रायः मज़दूर थे। इनमें से ३३ प्रतिशत को तो कब्ज़ की ...कायत थी; ६ प्रतिशत को हृदय का रोग था। इन दो ...गों के अतिरिक्त और अनेक रोग भी ३ प्रतिशत से १३ ...प्रतिशत मजदूरों में पाये गये।

उसी देश में सन् १९२० से १९३० तक तीन हज़ार ...गी विद्यार्थियों की जाँच से पता चला था कि अनेक ...गों में से कई प्रधान रोग बालकों के थे—कान का रोग ३१ प्रतिशत; आँख की कमज़ोरी ३२ प्रतिशत; दाँत के रोग ६६ प्रतिशत; हृदय-रोग ४ प्रतिशत; क्षय-रोग ½ प्रतिशत इत्यादि।

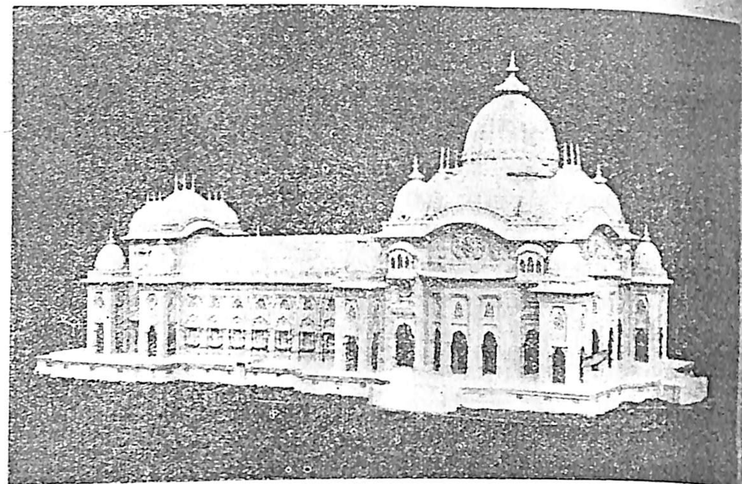
कोपिनहेगिन शहर में (डेनमार्क देश) ७६४६ स्कूल-विद्यार्थियों (३६६३ लड़के और ३९८६ लड़कियों) की सन् १९३२-३३ में डाक्टरी परीक्षा की गई। यह पता चला कि केवल १२ प्रतिशत का स्वास्थ्य साधारण से अधिक अच्छा था; ७१·८ प्रतिशत का प्रायः साधारण स्वास्थ्य था और १५·५ प्रतिशत का स्वास्थ्य साधारण से नीचे था। उनकी ऊँचाई को देखते हुए २१·३ प्रतिशत लड़कों का वज़न कम था और ९·८ प्रतिशत लड़कियों का वज़न कम था।

राष्ट्रसंघ की ओर से जो आँकड़े इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुए हैं उनसे पता चलता है कि वर्तमान आर्थिक प्रणाली और हमारी सभ्यता के कई पहलुओं का हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है, सीने कमज़ोर होते जा रहे हैं; श्वास-रोग बढ़ रहा है। ऐसी दशा में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि प्रत्येक देश अपने निवासियों को अधिक स्वस्थ बनाने का उद्योग करे।

श्री रामकृष्णमन्दिर

कलकत्ते का बेलूरमठ भारत की अपने ढंग की एक अनूठी लोकसेवक संस्था है। यह परमहंस रामकृष्ण के अनुयायियों की संस्था है। इसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने की थी। स्वामी विवेकानन्द उक्त मठ में परमहंस जी की एक मूर्ति स्थापित करना चाहते थे और उसके मन्दिर की सारी योजना भी आप ठीक कर चुके थे। परन्तु इसी बीच में आपका निधन हो गया और धनाभाव के कारण मन्दिर का निर्माण नहीं हो सका। चार वर्ष हुए, अमरीका की कुमारी हेलेन रूबेल और श्रीमती अन्ना वारसेस्टर ने इसके निर्माण के लिए साढ़े छः लाख रुपया प्रदान किया था, जिससे उक्त मन्दिर बनकर अब तैयार हो गया है। यह २३३ फ़ुट लम्बा, १०९ फ़ुट चौड़ा और ११२ फ़ुट ऊँचा है। इसका प्रार्थना-हाल १५२ फ़ुट लम्बा, ४८ फ़ुट चौड़ा और ७७ फ़ुट ऊँचा है। यह भव्य

मन्दिर उत्तर-भारत में अपने ढंग का एक ही मन्दिर होगा। इसका उद्घाटन इसी मार्च में हुआ है। परन्तु अभी पूर्ण-रूप से बनकर तैयार नहीं हुआ है। इसके लिए लाख डेढ़ लाख रुपये की और ज़रूरत है। आशा है, श्री रामकृष्ण परमहंस के भारतीय भक्त इस कमी की पूर्ति करने में मठ के अधिकारियों की अवश्य सहायता करेंगे।



[श्रीरामकृष्ण परमहंस मन्दिर]

दिल्ली के देहातों में रेडियो

पाश्चात्य देशों में लोकशिक्षण के कार्य में रेडियो का जो उपयोग किया गया है उसका कल्याणकारी परिणाम हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि भारत में भी उसके उपयोग की ओर समुचित ध्यान दिया जा रहा है। हाल में दिल्ली के समीप के गाँवों में उसके लगाये जाने का उपक्रम किया जा रहा है। इसका विवरण 'भारत' में दिया गया है, जो इस प्रकार है—

दिल्ली के समीप गाँवों में रेडियो लगाने की योजना की जा रही है। इसके द्वारा न केवल प्रान्तों के ही समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे, किन्तु विदेशी समाचार भी मिलेंगे। इस प्रकार देहातों में फ़िलस्तीन तथा अफ्रीका के अन्य प्रान्तों के भी समाचार प्राप्त किये जा सकेंगे। ऐसा समझा जाता है कि इस योजना के अनुसार देहातों में १२० रेडियो स्टेशन स्थापित किये जायँगे। दिल्ली-प्रान्त में इस तरह इसके छः केन्द्र होंगे। हर एक केन्द्र में रेडियो का मेकेनिक और जेनरेटर (समाचार देनेवाला पत्र) होगा। इस तरह उस केन्द्र से समाचार दिये जायँगे। मेकेनिक आस-पास के गाँवों में लगे हुए रेडियो के यन्त्रों की देख-रेख करता रहेगा और यदि उसमें कुछ ख़राबी होगी तो वह ठीक कर देगा। इसके अतिरिक्त सरकार की ओर से निरीक्षक (सुपरवाइज़र) नियुक्त किये जायँगे। वे इस बात का पता लगायेंगे कि देहात की जनता किस प्रकार के समाचार पसन्द करती है और वे लोगों की रुचि के अनुसार समाचार देने का यत्न करेंगे। इस प्रकार रेडियो की योजना कहाँ तक सफल होती है, इसका एक रेकार्ड रक्खा जायगा। लाभदायक सिद्ध होने पर भारत के अन्य प्रान्तों में भी यह योजना कार्यान्वित की जायगी। यदि यह योजना स्वीकृत हो गई तो इस कार्य के लिए तीन वर्ष तक का ख़र्च एक लाख से अधिक नहीं होगा। मंज़ूरी मिल जाने पर तीन महीने के भीतर अर्थात् जाड़े के अन्त तक दिल्ली के देहातों में रेडियो लग जायँगे। बहुत सम्भव है कि दिल्ली में सफलता मिलने पर इसके लिए सरकार की ओर से एक सलाहकार रक्खा जाय जो भारत के अन्य प्रान्तों में जाकर वहाँ के अधिकारियों को इस योजना को लागू करने की सलाह दे, जिससे भारत के सभी प्रान्तों के देहातों के लोग रेडियो से लाभ उठा सकें।

——

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जून १९३८ } भाग ३९, खंड १
संख्या ६, पूर्ण संख्या ४६२ { ज्येष्ठ १९९५

संस्कृति-रहस्य

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

पूछता मानव मनुज बन परम सत्तावान है क्या ?
पूछता अज्ञान बन वह यह कि सच्चा ज्ञान है क्या ?

मैं कहूँगा पूछता भगवान है भगवान है क्या ?
पूछता है सत्य ज्ञानी यह कि सच्चा ज्ञान है क्या ?
सत्य-माया-आवरण का मान है उसको भुलाता,
भूल के झूले मनोहर पर उसे कुछ दिन झुलाता।
इस तरह जग जन्म होता, ऐक्य से होती बहुलता,
परम सत्तावान के काठिन्य की माया मृदुलता।
या चरम सातत्य में व्यवधान का परिधान सुन्दर,
ज्ञान में अज्ञान या अज्ञान में है ज्ञान सुन्दर !

ब्रह्म-माया भेद भी है भेद में क्या भेद कोई ?
मिलन में भावी-विरह का खेद भी है खेद कोई ?
भेद हो यह और फिर इसका अभाव प्रभाव पावे,
इस तरह ब्रह्माण्ड के गतिभाव में स्थिरभाव आवे।
मनुज से भगवान हो, भगवान से होवे मनुज फिर,
इस तरह स्थिर भाव से मिलता रहे नित भाव अस्थिर।
है यही जग और जग के लोप का सुरहस्य सुन्दर,
मृत्यु में है अमरता फिर अमरता में मृत्यु का कर !

स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र

लेखक, बाबू गोपालराम गहमरी

वर्तमान समय हिन्दी-लेखकों की तीसरी पीढ़ी का समय है। पहली पीढ़ी के जो इने-गिने लेखक रह गये हैं उनमें बाबू गोपालराम गहमरी आज दिन भी उसी लगन से साहित्य-सेवा में जुटे हैं। इस लेख में आपने पहली पीढ़ी के प्रमुख लेखक स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का संस्मरण लिखा है। इससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि उस समय हिन्दी लेखकों की क्या स्थिति थी।

स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकक्ष कवि जिन पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का संस्मरण मैं लिख रहा हूँ वे जब मुझे चिट्ठी भेजते थे तब मोटो की तरह ऊपर "ख़ुदादारम चेगम दारम" यह वाक्य लिखा करते थे—मिश्र जी उन्नाव-ज़िले के बैंथर गाँव के रहनेवाले थे। बाद को कानपुर में आये। उनके वहाँ कई मकान थे और वहीं 'सतघरा' महल्ले में रहते थे। उनका दर्शन मुझे कालाकाँकर में हुआ था। जब मैं १८९२ ईसवी में कालाकाँकर-नरेश तत्रभवान् राजा रामपालसिंह की आज्ञा से 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय विभाग में काम करने को पहुँचा तब वहाँ साहित्यिकों की एक नवरत्न कमिटी-सी हो गई थी। उस समय वहाँ पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पंडित राधारमण चौबे, पंडित गुलाबचन्द चौबे, पंडित रामलाल मिश्र, बाबू शशिभूषण चटर्जी, पंडित गुरुदत्त शुक्ल और स्वयं राजा साहब आदि लोग थे।

मुझसे मिश्र जी का पत्रालाप और पहले से था, लेकिन उनका दर्शन वहीं पहले-पहल हुआ। मैं रात को वहाँ पहुँचा और बाबू बालमुकुन्द गुप्त के यहाँ ठहरा था। मेरा उनका (गुप्त जी का) पत्र-द्वारा परिचय उसी समय से था जब मैं बम्बई में सेठ गङ्गाविष्णु खेमराज के यहाँ था और मेरा 'श्री वेङ्कटेश्वर-प्रेस' में काम करते समय 'हिन्दोस्थान' में छपे त्रिपती के महन्त के आचरण-सम्बन्धी एक लेख पर गुप्त जी से विवाद उठा था। गुप्त जी में यह गुण था कि जो उनकी भूल दिखाता था उस पर वे अनखाते नहीं थे, प्रसन्न होते थे। उसी के फलस्वरूप मुझे राजा साहब के यहाँ जाना पड़ा था।

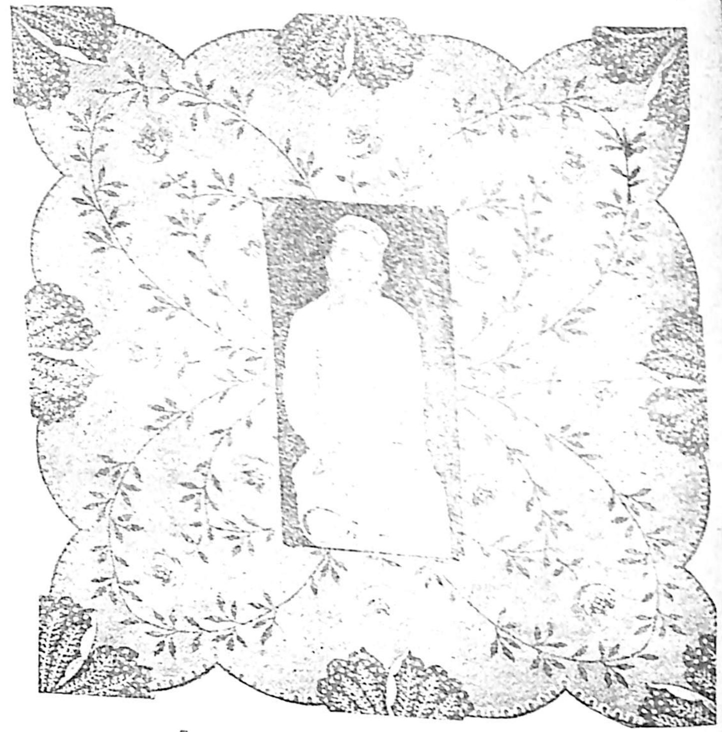
जब सबेरे मैं उठकर दातून कर रहा था तभी उनके चौतरे पर चढ़ते हुए खद्दर का बहुत लम्बा कुर्त्ता और धोती पहने कन्धों पर तेल चुचुआते, लम्बे बाल हलराते, झूमते हुए, नङ्गे सिर एक देवता ने कहा—"तुम हूँ बलमकुन्दवा की तरह सबेरे सबेरे लकड़ी चबात हौ।"

मैं तो उनका रूप, उनकी चाल, उनकी लम्बी-ऊँची नाक, उनका उज्ज्वल रूप देखकर धक से रह गया। उनका रूप निहारने के सिवा मुझसे उस समय और कुछ कहते नहीं बना। वे अपनी बात पूरी करते हुए बैठक में चले गये। मैं जल्दी जल्दी प्रातःक्रिया से निपटकर भीतर गया। जिस खाट पर वे देवता बैठे थे उसी पर मुझे बिठाकर नम्रता से बोले—"आपने मुझे पहचाना न होगा। मेरा एक बौड़म काग़ज़ है, जो हर महीने आपके यहाँ भी जाया करता है। उसका नाम 'ब्राह्मण' है।"

इससे आगे उनको और कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं रही। मैंने उठकर सादर प्रणाम किया, लेकिन उन्होंने फिर उसी सम्मान से बिठाकर अपना स्नेह दिखाया और बाबू बालमुकुन्द गुप्त भी जो इतनी देर से मुसकुराते हुए 'हिन्दोस्थान' का अग्रलेख लिख रहे थे, समालाप में शामिल हुए। उसी दिन पंडित जी का मुझे पहले-पहल साक्षात् दर्शन हुआ था। तब से मेरे ऊपर मिश्र जी का स्नेह बहुत बढ़ा, वे मुझे अपने लड़के की तरह प्यार करने लगे। उनके साथ मैं कालाकाँकर के जंगलों में बहुत घूमता था। वहाँ स्वास्थ्यकर वायु के सिवा मकोय खाने को ख़ूब मिलती थी। मैं घूमने का सदा से आदी हूँ। अपराह्न का समय हम लोगों का कालाकाँकर के जङ्गलों में ही बीतता था। 'हिन्दोस्थान' दैनिक 'आज' का आधा केवल चार पेज का निकलता था। बाबू बालमुकुन्द गुप्त अग्रलेख के सिवा टिप्पणियाँ भी लिखते थे। बाक़ी समाचार, कुछ साहित्य

...र स्वतन्त्र स्तम्भ के लिए मेरे ऊपर ...र था। पंडित प्रतापनारायण ...न्दोस्थान' पत्र के काव्य-भाग के ...ादक थे। वे फ़सली लेखक थे। ... कोई फ़सल जैसे जन्माष्टमी, ...सन्त, दशहरा, दीपावली, होली ...दि आती तब इन अवसरों पर हम ... उनसे कविता लिया करते थे। ...डित राधारमण चौबे और चौबे ...लाबचन्द जी अँगरेज़ी अख़बारों ... सार-सङ्कलन करते थे। इँग्लिशमैन, ...यनियर, मार्निङ्गपोस्ट और सिविल ...लिटरी गज़ट उन दिनों एङ्गलो-...इंडयन अख़बारों में मुख्य थे। ...नका मुँहतोड़ जवाब राजा रामपाल-...िंह अपने 'हिन्दोस्थान' में दिया करते ...। आज-कल हिन्दी में दैनिक पत्र ...हुत निकलते हैं। काशी, कलकत्ता, ...ल्ली, लाहौर, इलाहाबाद आदि से ...िकलनेवाले विशाल हिन्दी दैनिक ...ों के दर्शन जैसे इन दिनों हिन्दी ...ठकों को हुआ करते हैं, उन दिनों वैसे नहीं थे। हिन्दी ... प्रेमी दैनिक पत्रों के लिए तरसते रहते थे। मासिक ...र साप्ताहिक पत्रों के लिए तो हिन्दी की दुनिया में कमी ...ीं थी, लेकिन दैनिक पत्र तो हिन्दी का एक 'हिन्दो-...स्थान' ही था। उसमें एक बड़ी ख़ूबी थी। वह यह कि ... दैनिक राजनैतिक विषयों से जैसे भरा-पूरा रहता था, ...ैसे ही साहित्य से भी सम्पन्न रहता था। आज-कल ...िन्दी दैनिकों में राजनैतिक लेखों के आगे साहित्यिक ...ौर काव्य, नाटक आदि की चर्चा बहुत कम रहती है, ...ों में हफ़्ते में एक-दो लेख निकल जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि राजनैतिक लेख जिस अधिकता से आज-...कल दैनिकों में निकलते हैं, वैसे इनमें साहित्य के लेखों ...की अधिकता नहीं देखी जाती।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र में कई अनोखे गुण थे। ...कविता उनकी बहुत ऊँचे दर्जे की होती थी। भारतेन्दु ने ... उनके काव्य की बड़ाई की थी। नाटक और रूपक भी



[स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र]

बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखते थे। अपने लेख में जहाँ जिसका वर्णन करते थे, वहाँ उसको मानो मूर्त्तिमान् खड़ा कर देते थे। कलिकौतुक नाटक, जुआरी-खुआरी रूपक आदि उनकी लिखी पुस्तिकाओं के पढ़नेवाले इसके साक्षी हैं। बङ्किम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद उन्होंने हिन्दी में किये थे। उनकी पुस्तकें बाँकीपुर के 'खड्ग-विलास प्रेस' में छपी हैं। उस प्रेस के स्वामी मिश्र जी की पुस्तकों को छापने पर भी उनके प्रचार में उदासीन ही रहे। भारतेन्दु जी की सब पुस्तकों के छापने का अधिकार भी 'खड्गविलास प्रेस' के स्वत्वाधिकारी को है, लेकिन उन पुस्तकों के प्रचार का उद्योग नहीं देखने में आया। भारतेन्दु जी की पुस्तकों का प्रचार तो काशी की नागरी-प्रचारिणी ने भी प्रकाश करके किया, भारतजीवन प्रेस से भी भारतेन्दु जी की पुस्तकें प्रकाशित हुईं, लेकिन मिश्र जी की पुस्तकों का प्रचार आज कहीं नहीं दीख पड़ता। स्कूल और विद्यालयों की कोर्स-बुकों में उनके लेख और

कविताओं का प्रचार कुछ हद तक है, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी कीर्ति लोप-सी हो रही है।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र सत्यभाषी थे। उनके मुँह से भूलकर भी असत्य कभी नहीं सुना। वे बड़े निर्भीक और बड़े हाज़िरजवाब थे।

कालाकाँकर के प्रवासकाल में एक पितृपक्ष में आग्रह करने पर उन्होंने 'तृप्यन्ताम्' शीर्षक एक लम्बी कविता लिखी थी। उसमें उन्होंने समाजनीति, राजनीति और धर्म सब भर दिया था। उन्होंने कचहरियों की दशा देखकर उसमें लिखा है—

अब निज दुखहू रोय सकत नहिं,
प्रजा ख़रीदे बिन इस्टाम।

पण्डित जी अपने कान हिलाया करते थे। जब दो-चार मित्र इकट्ठे होते तब कहने पर पशुओं की तरह कान हिलाने लगते थे। हँसी-दिल्लगी में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। एक बार भादों के महीने में वे अपने हाथों में मेंहदी रचाये हुए आये। मैंने पूछा, पण्डित जी मेंहदी भी आप हाथों में तीज में रचाते हैं। उन्होंने छूटते ही कहा—"अरे भई! मेंहदी न रचाऊँ तो मेहरिया मारन लगे। यह उसी की आज्ञा से तीज की सौगात है।"

मिश्र जी बड़े हँसोड़ थे। कविता तो चलते चलते करते थे। एक बार कानपुर में मित्र-मण्डली के आयोजन से एक नाटक खेला गया। उसमें हिन्दी के बड़े बड़े उद्भट लेखकों ने भाग लिया था। 'शब्दकोष' के रचयिता राधा बाबू भी उसमें थे। प्रसिद्ध कवि और सुलेखक राय देवीप्रसाद पूर्ण का भी उसमें सहयोग था।

मिश्र जी नास बहुत सूँघते थे। सुँघनी भरा बेल सदा अपने खद्दर के कुर्तेवाले पाकेट में रखते थे और जब चाहा बेल निकालकर हथेली पर नास उड़ेलते और सीधे नाक में सुरक जाते थे। एक बार उसी नाटक में राधा बाबू पियक्कड़ बनकर स्टेज पर आये और झूम झूमकर कहने लगे—

कहाँ गई मेरि नास की पुड़िया,
कहाँ गई मेरी बोतल।
जिसको पी के ऐसे चलिहौं,
जैसे टट्टू कोतल।
चलो दिल्ली चलें हरे-हरे खेतन की सैर करें॥

इसे पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने अपने ऊपर ताना समझा। उस समय वे नेपथ्य में मछली बेचनेवाली मल्लाहिन का स्वाँग भर चुके थे। झट स्टेज पर आकर बोले—

बाम्हन छत्री सभी पियत हैं,
बनिया अगरवाला।
हाँ मल्लाहिन पीऊ लयी
तो क्या कोइ हँसेगा साला।
चलो दिल्ली चलें हरे-हरे खेतन की सैर करें।

मुँहतोड़ जवाब की कविता सुनकर सब बड़े प्रसन्न हो गये।

पण्डित जी कविता में अपना उपनाम 'बरहमन' रखते थे, इसी कारण उन्होंने अपने मासिक पत्र का नाम 'ब्राह्मण' रक्खा था। उर्दू की शायरी भी उनकी बड़ी चुटीली होती थी। उन्होंने नीचे लिखी स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी हैं—

(१) शृङ्गारविलास, (२) मन की लहर, (३) प्रेम-प्रश्नावली, (४) कलिकौतुक रूपक, (५) कलिप्रभाव नाटक, (६) हठी हमीर, (७) गो-सङ्कट, (८) जुआरी-खुआरी, (९) दङ्गल खण्ड, (१०) लोकोक्ति-शतक, (११) रसखान-शतक, (१२) तृप्यन्ताम्, (१३) ब्राडला-स्वागत, (१४) भारत-दुर्दशा, (१५) शैवसर्वस्व, (१६) मानस-विनोद, (१७) वर्ण-माला, (१८) शिशु-विज्ञान, (१९) स्वास्थ्यरक्षा, (२०) प्रताप-संग्रह।

और नीचे लिखी पुस्तकों का अनुवाद किया था—

(१) राजसिंह, (२) इन्दिरा, (३) युगलांगुलीय, (४) सेन-वंश व सूबे बङ्गाल का इतिहास, (५) नीतिरत्नावली, (६) शाकुन्तल, (७) वर्ण-परिचय, (८) कथा बाल सङ्गीत, (९) चरिताष्टक, (१०) पञ्चामृत।

कालाकाँकर-प्रवासकाल में उन्होंने ब्राडला-स्वागत और तृप्यन्ताम् नाम की कवितायें लिखी थीं।

मिश्र जी हिन्दी की दीन दशा पर बड़ा दुःख करते और साथ ही बँगला की उन्नतावस्था पर बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहा करते थे कि देशी भाषाओं में बङ्ग-भाषा का साहित्य ख़ूब भरा-पूरा है। इसका कारण यह है कि उसके लेखक धनी-मानी और समृद्धिशाली तथा ऊँचे पदों पर पहुँचकर भी अपनी मातृ-भाषा के प्रचार का ख़ूब उ

करते रहते हैं। उसके लेखक अँगरेज़ी आदि विदेशीय भाषाओं में ऊँचा ज्ञान प्राप्त करने पर भी उन भाषाओं के सब उपयोगी विषय अपनी मातृ-भाषा में लाकर साहित्य-भाण्डार भरने में सदा सहायक होते हैं। उस भाषा के पाठक भी बहुत हैं। उन दिनों बङ्ग-भाषा में दैनिक 'चन्द्रिका' निकलती थी। उसमें समाचार और राजनैतिक लेखों के सिवा साहित्यिक लेख भी ख़ूब रहते थे। पण्डित जी ने राजा रामपालसिंह को वही दिखाकर 'हिन्दोस्थान' में साहित्य-स्तम्भ का कालम सन्निवेश कराया था।

पण्डित जी कहा करते थे—भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-बल से थोड़े ही दिनों में ख़ूब फैली। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिन्दी में बहुत कुछ काम करता। हिन्दी में पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रन्थकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता। वे दिन भी हिन्दी में कभी आवेंगे जब हिन्दी के पाठक बँगला के पाठकों की तरह ख़ूब बढ़ेंगे, जिनके भरोसे हिन्दी के ग्रन्थकार फलें-फूलेंगे और उदर-भरण की चिन्ता से मुक्त होकर हिन्दी में ग्रन्थ-रत्न-संग्रह करके ग़रीबिनी हिन्दी को उन्नत करेंगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आयें।

कालाकाँकर के जङ्गल में घूमते हुए एक बार मुझसे उन्होंने कहा था—"बच्चा मेरे पास एक अनमोल वस्तु है। जिसे मैंने बेदाम लिया है, लेकिन उसकी तुलना में संसार की दौलत भी पलड़े पर रक्खी जाय तो वह हलकी होगी। उसको हम भी बेदाम देने को तैयार हैं, लेकिन कोई लेनेवाला नहीं मिलता।" मैं तो अकचकाकर उनका मुँह ताकने लगा। फिर पूछा—"वह कौन चीज़ है पण्डित जी? ज़रा मुझे भी तो नाम बतलाइए।"

पण्डित जी ने कहा—"यों नाम जानकर क्या करोगे?" तुम लेते हो तो अलबत्ते मैं देने को तैयार हूँ। मैंने कहा—"इतना महान पदार्थ जिसकी तुलना में दुनिया भर की सम्पत्ति हलकी है, मैं भला कहीं पा सकता हूँ!"

पण्डित जी बोले—"नहीं वह कोई ऐसी भारी या नायाब चीज़ नहीं है, जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे। वह संसार में अतुलनीय और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जो जब चाहे ले ले। उसमें कुछ दाम नहीं लगेगा, न कुछ बोझ ही उठाना पड़ेगा।"

मैं तो बिलकुल न समझकर बड़े अचरज में आ गया, कहा—"अगर मेरे साध्य का हो, मैं सँभाल सकता हूँ तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूँ।" उन्होंने भूत झाड़नेवाले ओझाओं की तरह हेकड़कर कहा—"ले बच्चा। वह 'सत्यभाषण' है।

मैं तो सकते में आ गया। और कुछ देर तक विस्मय में पड़े रहकर फिर बोला—"पण्डित जी, है तो ज़रूर यह अनमोल और जगत् में इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है, लेकिन बहुत ही कठिन नहीं, बल्कि असाध्य भी है।"

उन्होंने कहा—"नहीं बच्चा! यह असाध्य नहीं और कष्टसाध्य भी नहीं। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे।"

मैंने कहा—"पण्डित जी! रात-दिन मैं झूठ बोला करता हूँ। यहाँ तक कि बेज़रूरत झूठ बोलने की बान-सी पड़ गई है। जिसका झूठ ही ओढ़न-डासन और चबेना है वह कैसे सत्यभाषण कर सकता है?" उन्होंने उसी दम कहा—"इसका रास्ता तो मैं बताये देता हूँ। तुम आज से ही सच बोलने को मन में ठान लो और जब मुँह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाय तब याददाश्त लिख लिया करो। मुझे संध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोले। बस, इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नहीं है।"

मैं उस घटना के बादवाले अपने अनुभव से कहता हूँ, उनकी ये बातें बिलकुल सत्य हैं। उसी दिन से नम्बर लिखने लगा और महीने भर भी नहीं बीता कि अभ्यास-वश अनजाने अर्थात् इच्छाविरुद्ध जो झूठ कभी निकल जाता था वही रह गया था। स्वयं अपने मन में रुकावट हो गई और मैं उनका इस विषय में चेला हो गया।

एक बार राजा रामपालसिंह 'हिन्दोस्थान' पत्र के लिए अग्रलेख लिखा रहे थे। जो कुछ वे बोले जाते थे उसको लिखने में जो उनसे दोबारा कुछ भी पूछता था उस पर बहुत बिगड़ उठते थे। मैं तेज़ लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफ़र में भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गये, लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनने लगे तब जहाँ मैंने सुधार कर लिखा था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पण्डित जी वहाँ

बैठे थे। उन्होंने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर परिडत जी से बोले—"आप बड़े गुस्ताख़ हैं।" परिडत जी ने छूटते ही जवाब दिया—"अगर सच्ची बात को सच कहना आपके दरबार में गुस्ताख़ी है तो मैं सदा गुस्ताख़ हूँ।"

राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले—"निकल जाव यहाँ से।"

परिडत जी बोले—"हम यह चले।" यह कहकर उसी दम बारादरी से उठे और चले आये। फिर कभी उनके यहाँ नहीं गये और थोड़े दिन में अपना हिसाब चुकाकर कानपुर को चले गये। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, परिडत रामलाल मिश्र आदि किसी की बात उन्होंने नहीं सुनी।

परिडत जी कभी स्नान नहीं करते थे। मित्रों के आग्रह करने पर भी टाल जाते थे। जब कभी कोई त्योहार या बड़ा पर्व आता, बहुत उद्योग करने पर कभी कभी स्नान कर लेते थे। कालाकाँकर में उनके डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गङ्गा जी बहती थीं, लेकिन अपने मन से उन्होंने कभी स्नान नहीं किया। जब मित्र-मराडली उनको स्नान कराने पर तुल जाती थी तब भी बड़ा समर लेना पड़ता था।

एक बार लोग उन्हें टाँगकर गङ्गातट पर उठा ले गये। किनारे जाकर भी भागने लगे। तब सबने उठाकर गङ्गा में फेंकना चाहा। उन्होंने कहा—"अच्छा गङ्गा में ऐसा डालना कि मेरा पाँव पहले गङ्गा के उदर में न पड़कर मस्तक ही पड़े। तब वैसा ही किया गया। कालाकाँकर में मिश्र जी को तीस रुपया मासिक दिये जाते थे। उस समय वह तीस रुपया उनके निर्वाह को काफ़ी था। कानपुर से मकानों का किराया आया करता था।

परिडत जी के कालाकाँकर रहते समय परिडत श्रीधर पाठक की पुस्तक 'एकान्तवासी योगी' का प्रकाशन हुआ और खड़ी बोली कविता में व्यवहृत हो इस पर बड़ा विवाद छिड़ा। 'हिन्दोस्थान' में 'स्वतंत्र स्तम्भ' नाम का एक अलग कालम था। उसमें खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष के लेख सालाना प्रकाशित किये जाते थे। पाठक जी के पक्ष में मुज़फ़्फ़रपुर की कलक्टरी के पेशकार बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री मुख्य थे। उन्होंने विलायत से सुन्दरतापूर्वक खड़ी बोली काव्य छपाकर यहाँ मँगाया और बिना मूल्य वितरित किया। खड़ी बोली की कविता का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इसके सिवा गढ़वाल के परिडत गोविन्दप्रसाद मिश्र खड़ी बोली में कविता करके उत्साह बढ़ाते थे। लेकिन विपक्ष में बड़े बड़े प्रभावशाली कवियों ने क़लम उठाये थे।

परिडत प्रतापनारायण मिश्र खड़ी बोली की कविता के विरोधियों में प्रधान थे। लखनऊ के 'रसिक-पञ्च' के सम्पादक, सुलेखक व सुकवि परिडत शिवनाथ शर्मा भी खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे। लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रचार को और जिस भाषा का साधारण बोल-चाल में प्रचार है उसको कविता में भी अधिकार देना उसकी और राष्ट्र दोनों की उन्नति के लिए परमावश्यक है, इस विचार से प्रेरित होकर सबको खड़ी बोली की कविता के आगे अवनत होना पड़ा। इसके सिवा परिडत श्रीधर पाठक ने भी यह सत्य प्रमाणित कर दिया कि उत्तम और रोचक लालित्य-पूर्ण कविता करना कवि की शक्ति पर निर्भर है, भाषा पर नहीं।

तब परिडत जी ने राष्ट्रभाषा की उन्नति का ध्यान करके कह दिया—"अच्छी बात है! आप कविता कर चलिए। मैं भी उस पर रोड़ा-कङ्कड़ फेंकता चलूँगा। लेकिन याद रखिए, यह सड़क ऐसी सुन्दर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश उक्ति बे-रोक दौड़ सके।"

पाठक जी ने कहा—"हम इञ्जीनियरों को आप ऐसे कङ्कड़-पत्थर फेंकनेवाले खँचिवाहों की बहुत ज़रूरत है। आप उन्हें फेंकते चलिए। देखिएगा, यह सड़क ऐसी सुढार और उत्तम बनेगी कि कवि लोग बे-रोक इस पर सरपट दौड़ेंगे।"

आज मिश्र जी की आत्मा स्वर्गलोक से यह देखकर ख़ूब प्रसन्न होती होगी कि खड़ी बोली काव्य किस उन्नत दशा को प्राप्त है और कैसे कैसे उद्भट कवि इन दिनों हुए हैं जिनकी मर्य्यादा और काव्य-शक्ति के आगे अब विरले ही किसी कवि की ब्रजभाषा की कविता में रुचि देखी जाती है। परिडत जी का जन्म आश्विन कृष्ण नौमी को संवत् १९१३ वि० में हुआ था। अड़तीस वर्ष की उम्र में आप आषाढ़ शुक्ल चौथ को संवत् १९५१ वि० में परलोकगामी हुए।

भारत में कोयले का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

भारत में कोयले के व्यवसाय के आगे इस समय कैसी कठिनाई उपस्थित है, इसे श्रीयुत वर्मा जी ने इस लेख में बहुत ही अच्छे ढंग से बतलाया है।

कोयले का व्यवसाय भी हमारे देश के लिए बहुत कुछ नया है, पर देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विश्व की शक्तियाँ ज्यों-ज्यों युद्ध की ओर अग्रसर हो रही हैं तथा मनुष्य के स्थान पर यंत्रों का प्रयोग जितना ही बढ़ता जा रहा है, हर एक देश के लिए कोयले का महत्त्व उतना ही बढ़ता जा रहा है। कोयला तथा तेल निकलनेवाले स्थानों के ऊपर क़ब्ज़ा करने के लिए ही हज़ारों सिर कटे और कटनेवाले हैं। पेट्रोल इत्यादि नवीन आविष्कारों से भी कोयले का महत्त्व कम नहीं हुआ है और विशेषज्ञों का तो यहाँ तक कहना है कि आज जिस तेज़ी से कोयला ख़र्च हो रहा है उसे देखते हुए यही अन्दाज़ लगाया जाता है कि सौ-डेढ़ सौ वर्ष में संसार में प्राप्त होनेवाले कोयले के सभी स्थान ख़ाली हो जायँगे और एक मुट्ठी भर भी कोयला न मिल सकेगा। ऐसी दशा में भारत में कोयले की खानों का होना बड़े सौभाग्य की बात है और इन खानों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना देश का तथा देश की सरकार का धर्म है।

३१ मार्च १९३६ को सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत में २१३ ऐसी ज्वायंट स्टॉक कम्पनियाँ थीं जो कोयला निकालने या बेचने का व्यवसाय करती थीं। इनमें कुल मिलाकर १९,५६,६४,८०८ रुपये की चुकती पूँजी तथा २५,२५,००० पौंड स्टर्लिङ्ग पूँजी लगी हुई थी। इनके अलावा रेलवे-कम्पनियों ने स्वयं अपना कोयला निकालने का जो काम उठा रक्खा है वह अलग है। रेलवे-कम्पनियों के इस कार्य से उपरिलिखित कम्पनियों को काफ़ी हानि भी हुई है। देश की प्रधान कोयले की खानों में रानीगंज, झरिया, बोकारो तथा करनपुरा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज-कल झरिया प्रधान है। अभी तक रानीगंज का ही बोलबाला था। कोयले के निर्यात के लिए प्रमुख बन्दरगाह कलकत्ता के निकट होने तथा जलने में भी अधिक अच्छा होने के कारण रानीगंज कोयले का बड़ा धनी क्षेत्र था। ६०० वर्गमील के दायरे में उसकी खानें फैली हुई हैं। १९०५ तक भारत की समूची कोयले की उत्पत्ति का ३० प्रतिशत अकेले रानीगंज से होता था। पर १९०५ के बाद झरिया का अभ्युदय शुरू हुआ और अब वह समूची उत्पत्ति का ४२ प्रतिशत स्वयं पैदा करता है।

अस्तु, खानों की सम्पत्ति, उनका भविष्य तथा प्राप्त कोयलों के भेद आदि जानने के लिए अँगरेज़ी में काफ़ी साधन हैं और उन्हें बतलाने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। हमें तो यह देखना है कि इस व्यवसाय का उदय किस प्रकार हुआ तथा इस समय क्या दशा है। इसके विकास की कथा बहुत ही रोचक है। जिस समय वारेन हेस्टिंग्ज़ बंगाल के गवर्नर थे, इस कार्य का श्रीगणेश एक अँगरेज़ ने किया था। छोटानागपुर के मजिस्ट्रेट मिस्टर एस० जी० हीटली ने मिस्टर जान समर के साथ साझा कर गवर्नर से 'पचेती और बीरभूमि' के कोयले की खदान को उपयोग में लाने की आज्ञा प्राप्त की थी। यह सन् १७७४ की बात है। बाद को मिस्टर रेडफ़र्न नामक एक अँगरेज़ भी उनके साथ शामिल हो गये। पर जो कोयला निकला वह इतना ख़राब था कि उसकी पूछ ही न हुई और मिस्टर हीटली का दूसरे ज़िले के लिए तबादला होते ही उनका कोयले का कारबार बन्द हो गया। ४० वर्ष तक फिर किसी ने इस ओर ध्यान न दिया। १८१४ में ब्रिटिश-खनिज-विशेषज्ञ मिस्टर जोन्स भारत-स्थित कोयले की खानों की छानबीन के लिए आये। ईस्ट इरिडया कम्पनी से ४०,०००) क़र्ज़ लेकर इन्होंने रानीगंज में काम शुरू किया। किन्तु इनका शीघ्र ही देहान्त हो गया, अतः इनकी जायदाद इनके ज़ामिन मेसर्स अलेक्ज़ेंडर एराड कम्पनी के

हाथ लगी। कुछ वर्षों के उपरान्त यह जायदाद कवीन्द्र रवीन्द्र के पूर्वज श्री द्वारकानाथ ठाकुर के हाथ आई और इस प्रकार भारत-प्रसिद्ध 'बङ्गाल-कोल-कम्पनी' की नींव १८४५ में पड़ी। किन्तु शुरू शुरू में बाज़ार में इन खानों के कोयले की माँग ही न थी। यदि १८५५ में रानीगंज को ईस्ट इण्डियन रेलवे की लाइन न जाती तो 'बङ्गाल-कोल-कम्पनी' इतनी तरक्क़ी न कर सकती! इस लाइन के जाते ही हिन्दुस्तानी कोयले की पहली बार असली माँग पैदा हुई, जो धीरे-धीरे बढ़ती ही गई।

सन् १८६० तक रानीगंज में ही ६० कोयला-कम्पनियाँ खुल गईं। इसके बाद तो अच्छी से अच्छी कम्पनियाँ खुलती गईं। १८९० में 'बङ्गाल-नागपुर-कोल-कम्पनी' का जन्म हुआ। इस साल से लेकर १९०१ तक १२ कम्पनियाँ खुलीं। १९०१ में चार कम्पनियों ने जन्म लिया। इस प्रकार इतनी कम्पनियाँ खुलने, रेलवे के विकास तथा व्यापारिक अभ्युदय के साथ १९०४ के बाद, भारतीय कोयला-कम्पनियों के लिए सुनहरा समय आया और इन्होंने काफ़ी फ़ायदा उठाया। ऐसे अवसर पर और भी कई कम्पनियों ने जन्म लिया और इनकी बड़ी अच्छी प्रगति रही। सन् १९२१ में करनपुरा की खदानों का पता लगने के बाद कोयला-व्यवसाय का ज़माना फिर ज़ोरों से चमका, पर आज यह व्यवसाय उन्नति के स्थान में अवनति की ओर है और इसके भविष्य के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कोयले का उपयोग और उपभोगी

ऊपर के वर्णन से यह तो प्रकट ही है कि देश का काफ़ी रुपया इस व्यवसाय में लगा हुआ है और ऐसी दशा में कोयला का उपयोग भी देश में काफ़ी होता होगा। रानीगंज का कोयला जलनेवाला ज़्यादा है, अतः पत्थर का कोयला उससे वैसा नहीं बन सकता। इसके लिए बराकर का कोयला प्रसिद्ध है। रानीगंज की खानें १५०० फ़ुट तक गहरी हैं, अतः उनमें कोयला काफ़ी है। इसलिए जब हमारे यहाँ हर प्रकार का कोयला मिलता है तब हर प्रकार का ख़र्च भी इससे पूरा होना चाहिए। इसलिए यह तो मान ही लेना चाहिए कि प्रायः सभी कामों के लिए कोयला हमारे यहाँ मिलता है और काम में आता भी है।

इसके अलावा प्रमुख ख़रीदार रेलवे (उनके कारख़ाने भी), लोहे-पीतल के कारख़ाने, कॉटन-मिल, जूट-मिल, ईंट वग़ैरह के कारख़ाने, चाय-गार्डेन, काग़ज़ की मिलें, देश के भीतर चलनेवाले स्टीमर, रेलवे तथा जहाज़ के साथ लगा रहनेवाला कोयला — बंकर कोल, जहाज़ी सेना इत्यादि हैं। इसके अलावा प्रायः सभी बड़े कल-कारख़ाने, जो बिजली या पेट्रोल से नहीं चलते, कोयला ख़रीदते हैं। भारत में कोयले की खपत के सबसे ताज़े आँकड़े १९३४ तक के ही हमें मिले हैं और वे यहाँ दिये गये हैं। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत के कोयला का सबसे बड़ा ख़रीदार रेलवे है। रेलवे कम्पनियाँ कुल मिलाकर ३० लाख टन तक कोयला ख़रीदती हैं। पर दस वर्ष पहले वे बहुत ज़्यादा कोयला ख़रीदती थीं, किन्तु इधर उन्होंने अपनी नीति बदल दी है और ख़ुद अपनी खानें ख़रीदकर कोयला निकाल रही हैं। इससे इनकी ख़रीद कम होती जा रही है और सरकार को इन्हें ऐसा करने से रोकना चाहिए। रेलवे की ख़रीद कम हो जाने का असर इस व्यवसाय पर इतना अधिक पड़ा है कि इसकी कमर-सी टूटने लगी है। १९३२ के दिसम्बर में 'इण्डियन माइनिंग फ़ेडरेशन' की ओर से एक डेपुटेशन रेलवे-बोर्ड के सामने उपस्थित हुआ था और उसने कहा था कि "कोयले के व्यवसाय की कमर तोड़ने के लिए १० लाख टन कोयले की माँग (ख़रीदार) कम हो जाना काफ़ी है, क्योंकि और दिशा में माँग बढ़ने से भी इस क्षति की पूर्ति नहीं हो सकी है।" पर इस दुहाई की कोई सुनवाई न हुई। अस्तु। उपयोग के आँकड़े सामने लिखित हैं। आँकड़ा नं० १—

सन् १९३४ में यही आँकड़े क्रमशः ७,१२६, ४,६५७, १,३६०, ९४४, ६५८, ७०६, ५७७, १८६, १४९, १४५, २८, ३,७८८ तथा १,९६६ हो गये, यानी कुल २१,७९६ हज़ार टन। अब इन आँकड़ों के देखने के बाद यह भी जान लेना ज़रूरी है कि हर एक प्रान्त कितना कोयला पैदा करता है ताकि यह अन्दाज़ लग सके कि इन आँकड़ों में से उसको कितना अंश मिलता होगा। इस जानकारी से उस प्रान्त की समृद्धि का आभास भी प्राप्त हो सकता है, इसे दिखलाने के लिए यहाँ एक आँकड़ा नक़्शा दे देना उचित होगा। आँकड़ा नं० २—

(१) (एक हज़ार टन में)

उपभोगी	१९२७.	१९२८.	१९२९.	१९३०.	१९३१.	१९३२.	१९३३
रेलवे (मय कारख़ानों के)	७,२५६	७,४४०	७,५८३.	७,५३१	६,६२९.	६,४४३.	६,६८२.
लोहे व पीतल के कारख़ाने	५,२६०	४,२६४	५,२३१	५,६०६	४,७१६.	३,९९७.	४,०९२
कॉटन-मिलें	८३०	७८१	१,५३८	१,२६०	१,३११.	१,३६१.	१,५४७.
बंकर कोल	१,३१७	१,२७७	१,३७६	१,२७२	१,१०९.	१,०७७.	९६७
जूट-मिलें	९३५	९२५	९६२	८६७	६७३.	६५३.	६५६.
ईंट आदि के भट्ठे	५६५	६३८	६९१	१,०८९	७५८	६६९.	६४४.
अन्तर्देशीय स्टीमर	६३६	६५३	६७४	७०२	६२१.	५७९.	५०६.
चाय गार्डेन	२२३	२१८	२२०	२०२	१८९.	२०३.	१८७
पेपर-मिलें	१५६	१५९	१३९	१५६	१४६.	१४२.	१४२.
पोर्ट-ट्रस्ट	२०५	२०६	१९८	१९७	१५६.	१४३.	१४३.
जहाज़ी सेना इत्यादि	२७	२६	३८	३१	२९.	२५.	२५.
अन्य व्यवसाय तथा घरेलू ख़र्च	२,०८५.	३,२१२	१,८७९	२,२१८	२,८४६.	१,७७८.	३,७५८.
कोयले की खानोंपरख़र्च तथा अपव्यय इत्यादि (अनुमानित)	२,२०८.	२,२५४	२,३४२	२,३८०	२,१७२.	१,९७९.	१,९७९.
कुल	२१,७०६	२२,०८३	२२,८७१	२४,५१४	२१,३५५	१९,६७९	१९,४२८

(२) भिन्न भिन्न प्रान्तों में कोयले की उत्पत्ति—

सन् १९१५ से १९३५ तक—१००० टन में बम्बई तथा युक्तप्रान्त शून्य के बराबर

वर्ष	बङ्गाल	बिहार व उड़ीसा	आसाम	पंजाब	बलूचिस्तान	मध्यप्रान्त	हैदराबाद	राजपूताना (बीकानेर)	मध्यभारत (रीवाँ)
१९१५	४,९७५	१०,७१८	३११	५७	४३	२५३	५८६.	१७	१३९
१९१६	४,९९२	१०,७६७	२८७.	४७	४२	२८७.	६१५	१३	२००
१९१७	४,६३१	११,९३२	३०१	४९	४०	३७१	६८०	६	१९८
१९१८	५,३०२	१३,६८०	२९४	५०	४३	४८१	६५९	११	१९९
१९१९	७,७७७	१५,११९	२९१	४६	३४	४९७	६६२	१४	१८२
१९२०	४,२०७.	११,९७५	३२५	५८	३३	४९१	६९४	१८	१५८
१९२१	४,२५९	१२,०९०	३१२	६७	५४	७१२	६८८	२४	१९२
१९२२	४,३२८	१२,७११	३४८	६७	६०	६७५	६४२	१५	१६१
१९२३	४,६२१	१३,२१२	३२६	६३	४२	५४८	६५८	७	१७५
१९२४	५,०३१	१४,१०५	३३४	८०	४०	६७९	६४४	२१	२३५
१९२५	४,९१३	१३,९३८	३१८	७४	३४	७०८	६६७.	२८	२१९
१९२६	५,१३७	१३,९५५.	३०४	६८	१५	६३५	६३७	३१	२१६
१९२७	५,५५४	१४,५१७	३२३	६२	१४	६६६	७०७.	१७	२१७
१९२८	५,६३९	१४,८२७	२९८	४६	१७	७३२	७३४.	२७	२१८
१९२९	५,९६५	१५,१३३.	३२२	४३	१६	८८२	८१५.	३५	२०५
१९३०	६,३१६	१५,०६४	३५९	५०	१५	६५५	८१२	३५	१९३
१९३१	५,८१०	१३,५३२	२७१	५४	१६	१००४	७५७	३८	२२६
१९३२	५,७८२	११,८४७.	२१०	७२	१८	११६३	७८१	३७	२४०
१९३३	५,६९१	११,२५७.	१९४	९४	११	१५००	७५३	३३	२५२
१९३४	६,१५	१२,६३०.	१८९	१२५	१४	१८४२	७६९	३६	२८९
१९३५	६,६८१	१२,७३६.	२१९.	१४४.	५.	१५२७.	७२९	३४	३२९

उत्पत्ति तथा भारतीय उपयोग के आँकड़े देखने से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि हमारे यहाँ अपनी ज़रूरत से ज़्यादा कोयला बच रहता है और उसको बेचने के लिए विदेशी बाज़ार में पहुँचना ज़रूरी है। भारतीय कोयला बहुत अच्छा भी होता है, अतएव उसकी माँग भी जल्दी ही होने लगी। फलतः इसका विदेशी व्यापार नीचे लिखे रूप में रहा —

कोयला का निर्यात

[निर्यात के आँकड़े औसतन हैं।]

अवधि	ग्रेट ब्रिटेन	अदन	सीलोन	मिर्च का टापू	स्ट्रेट सेटलमेंट	हांगकांग	जावा	सुमात्रा	फ़िलिपाइन-गुआटामाला	अन्य देश	योग
१९००-१-२-३	...	४०,५७१.	३२५,८३७.	१३,०६४.	८१,६२४.	...	...	१२,०६९.	...	२५,२०९	४,१८,८३७.
१९०३-४-से-८	...	२४,०७७.	३६०,४२७.	६,५५०.	२०३,७२४.	४५,३५६.	७,९३६.	५०,४६१	...	१५,९२५.	७,१७,५५६.
१९०९-१३-	...	८,०८४.	४६६,६६५.	२,४२३.	१८७,५२५.	...	६,१२०	१,०२,२३९.	...	४१,११८	८,१८,४७५.
१९१४-१८	...	६,४४२.	३५९,४६६.	८३७.	८८,३८२.	...	८,४९६.	५२,१४१.	...	२०,२४८	५,३९,४२२.
१९१९-२३	...	२२,९५४.	२८२,९५१.	...	७४,२८४.	...	६,६८५.	२३,४९६.	...	३४,१३९	४,४४,५१०.
१९२४-२८.	१०,२७२.	१३,३५३.	२६०,४२१.	९८४.	७४,९५६.	२४,३०८.	...	४,०४५.	१४,४१६.	४५,७७१.	४,४८,५२६.
१९२९-३२.	१७,७२५.	...	२८०,०९५.	...	३४,५६१.	१४१,४३१.	...	...	३८,७१०.	२१,५९०	५,३७,१३२
१९३३.	१	...	२५८,६२५.	...	१४,६८६.	१३१,३८२.	...	...	६,२४२.	१४,९३३	४,२६,१७६
१९३४.	१८	...	२३०,४५९.	१,९३५.	३४,६२२.	५५,८६३.	...	...	...	७,००६	३,३०,२३३
१९३५.	...(?)	...	१४५,९१४.	१,००१.	१६,५८९.	५०,६३८.	...	...	..	...	...

इन आँकड़ों से कई बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि २०वीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय कोयले की माँग बहुत काफ़ी हो गई थी और १९०६ तक लगभग ११,००,००० टन कोयला भारत से बाहर जाने लगा था। घर तथा बाहर दोनों जगह काफ़ी ख़र्च था। मूल्य में भी हेर-फेर होता रहता था, पर उसका व्यापार पर विशेष असर नहीं पड़ता था। कोयले का मूल्य उसके गुण तथा बन्दरगाह से निकट होने पर निर्भर करता है। अतएव बन्दरगाह के निकट की खानें काफ़ी लाभ उठा रही थीं। यह बात विशेष ध्यान रखने की है कि कोयले का प्रमुख अथवा एकमात्र बन्दरगाह कलकत्ता है, अतः केवल बंगाल तथा बिहार व उड़ीसा का ही कोयला भारत से बाहर जाता है। और खानें काफ़ी दूर हैं, अतः वे अपना माल देश के बाहर नहीं भेज सकतीं। १९०६ तक कोयले के व्यवसाय का सुनहरा युग रहा। पर उसके बाद पासा पलटने लगा। फिर भी दूसरे ही साल ७,५०,००० टन कोयला बाहर गया। इस कमी-बेशी का कारण दक्षिण-अफ़्रीका तथा जापान की प्रतिद्वन्द्विता भी अंशतः अवश्य थी, पर इनको भारतीय रोज़गार को चौपट करने का असली मौक़ा १९१८ के बाद ही मिला। लड़ाई के ज़माने में ज़्यादातर जहाज़ लड़ाई के काम में लग गये, अतः बाहर माल भेजना बन्द-सा हो गया, यहाँ तक कि साधन के अभाव में १९१८ में केवल ७४,००० टन कोयला बाहर गया। पर लड़ाई समाप्त होते ही व्यापारिक अभ्युदय का अनोखा युग आया और अन्य भारतीय व्यवसाय के साथ कोयला भी चमक उठा। यहाँ तक कि १९२० में १२,००,००० टन कोयला बाहर गया। पर इसका दुष्परिणाम भी बड़ा। इस समय देश में अभूतपूर्व व्यावसायिक जागृति हो गई थी। विदेशी व्यापार काफ़ी चढ़ा-बढ़ा था। रेलवे-कम्पनियों को जहाज़ों तक माल पहुँचाने के लिए डिब्बों की माँग पूरी करते-करते नाक-दम हो रहा था। कोयला के व्यवसायी अपनी ज़बर्दस्त माँग की धुन लगाये हुए थे। रेलवे-कम्पनियों को इस हैरानी से बचाने के लिए भारत-सरकार ने एक ऐसा अनोखा उपाय सोचा जो इस व्यवसाय के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ। उसने निर्यात को नियन्त्रित करने के लिए जुलाई १९२० में यह नियम बना दिया कि बिना लैसंस के कोयला बाहर न जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि कोयले के विदेशी व्यापार में बहुत कमी हो गई। अभी तक हमारे प्रमुख विदेशी ग्राहक स्ट्रेट सेटलमेंट तथा सीलोन थे। इस लैसंस के नियम से जकड़े हुए भारतीय कोयला-व्यवसाय की लाचारी का फ़ायदा उठाकर तुरन्त दक्षिण अफ़्रीका तथा जापान दौड़ पड़े और स्ट्रेट सेटलमेंट का बाज़ार हमेशा के लिए भारत के हाथ से छिन गया। सीलोन का भी छिना ही जा चुका था, परन्तु सौभाग्यवश रेलवे कांट्रैक्ट प्राप्त हो जाने के कारण वह हाथ से बाहर न हो पाया। फिर भी कहाँ लड़ाई के पहले भारत से सीलोन को कम-से-कम ५ लाख टन कोयला जाता था, कहाँ १९३५ में केवल १,४६,००० टन कोयला गया। पर इतने से ही विपत्ति की समाप्ति नहीं हुई। लड़ाई के कुछ ही समय के बाद भारतीय व्यापार का भी घोर पतन हुआ। देश में भयानक अर्थ-संकट उपस्थित हुआ और देश की भीतरी माँग भी बहुत गिर गई। इस अवसर पर यह ज़रूरी हो गया कि विदेशी बाज़ार हाथ से न जाने पावे।

अब सरकार भी चेती। लैसंस के नियम को वह अंशतः १९२३ से ही तोड़ चुकी थी। अब उसने इस उद्देश्य से कि बाहर जो कोयला जाय वह अच्छा हो, क्योंकि अच्छा कोयला जाने से बाहरी बाज़ार ख़राब न होंगे। ६ फ़रवरी १९२६ को एक 'कोल ग्रेडिंग बोर्ड' की स्थापना की गई। इसके अध्यक्ष भारत-सरकार के चीफ़ मायनिंग इञ्जीनियर तथा इण्डियन मायनिंग फ़ेडरेशन, इण्डियन मायनिंग असोशियेसन तथा बंगाल चैम्बर आव कामर्स के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। यह संस्था बाहर कोयला भेजनेवाली कम्पनियों के कोयले की परीक्षा कर, उनके गुण — राख, नमी, जलने की शक्ति आदि की परीक्षा कर, उनको सार्टिफ़िकेट देती है। उसने चार श्रेणी में कोयलों का विभाग कर रक्खा है। अपने माल की परीक्षा कराने तथा सर्टिफ़िकेट प्राप्त करने के लिए एक निश्चित फ़ीस देनी पड़ती है। इस संस्था ने बड़ा उपयोगी काम किया है तथा कम-से-कम इतना तो लाभ हुआ ही है कि माल का गुण घटने के बजाय बढ़ा है तथा विदेशी बाज़ार भी एक निश्चित श्रेणी का माल प्राप्त करने की गारण्टी के कारण भारत के लिए खुला रहा। पर सरकार ने इस एक छोटे-से अच्छे काम के अलावा इस उद्योग की सहायता के लिए बहुत-कुछ करने योग्य काम नहीं किया। हमारे बाज़ार की बिगड़ी हालत अभी तक नहीं सुधर पाई है। बंकर कोल भी पहले इतना नहीं ख़र्च हुआ। जहाँ १९०८ में १०,५८,३०२ टन बंकर कोल विदेशी तथा देशी बन्दरगाहों पर गया, वहाँ १९२७ में ८,७०,२८६ टन तथा १९३५ में ६,०८,०४८ टन ही ख़र्च हुआ। कितना अधिक अन्तर हो गया है? इसके अलावा जापान तथा दक्षिण अफ़्रीका ने हमारे हाथ से जो बाज़ार छीन लिये हैं वे प्रायः वापस नहीं मिले।

सॉफ़्ट कोक सेस कमिटी

ऊपर हम यह उल्लेख कर आये हैं कि विदेशी बाज़ार में अच्छा कोयला पहुँचने के लिए 'ग्रेडिंग बोर्ड' की किस प्रकार रचना की गई। उसी प्रकार यह प्रश्न भी हाथ में लिया गया कि किस प्रकार भारत में ही घरेलू काम के लिए कोयले का उपयोग बढ़ाया जाय। इसके लिए अनेक उपाय सोचे गये। भारत में बहुत-से ऐसे स्थान हैं, जहाँ लोगों ने कोयले की सूरत तक नहीं देखी है। खाना बनाने के काम में यह उपयोगी हो सकता है तथा गृहिणी के नेत्रों को जल्द ख़राब होने से रोक सकता है एवं ईंधन का ख़र्च भी इसके द्वारा किस प्रकार कम हो सकता है—ये बातें बतलाने—सिखलाने—प्रचार करने से सम्बन्ध रखती हैं। इसी लिए नर्म जलानेवाले पत्थर के कोयले के प्रचार के लिए सरकार ने 'इण्डियन सॉफ़्ट कोक सेस कमिटी' की रचना की तथा 'सॉफ़्ट कोक सेस ऐक्ट १९२९' भी पास किया। अपनी संस्थापना के समय से ही इस समिति को अभूतपूर्व

सफलता मिली है तथा यह बड़ा उपयोगी कार्य कर रही है। १९३० में बंगाल तथा बिहार-उड़ीसा से ७,४५,५६४ टन घरेलू-पत्थर-कोयला देश में बिका था। १९३५ में वही बढ़कर ८,९८,४९३ टन हो गया। अतएव इस कमिटी की प्रशंसा उचित ही है।

व्यवसाय के संकट

भारतीय कोयला-व्यवसाय पर क्या संकट है, इसको भी संक्षेप में समझ लेना चाहिए। उसकी समस्यायें भी अनेक हैं, जैसे—

(१) हाल में कई दुर्घटनायें (खान की) हो गई हैं, जिनसे प्रश्न यह उठता है कि ऐसा कौन-सा उपाय किया जाय जिससे खान के नीचे काम करनेवालों का जीवन संकटमय न रहे; खान के भीतर आग न लगे। जिन खदानों से कोयला निकाला जाय वे किस प्रकार भरी जायँ, खानों को फोड़नेवाले विस्फोटक पदार्थ किस प्रकार रक्खे जायँ?

(२) कोयला निकालने का तरीक़ा पुराना हो गया है। इससे अपव्यय बहुत होता है। इस अपव्यय को रोकने तथा उत्पत्ति का ख़र्च कम करने का कौन-सा उपाय है?

(३) कोयले के व्यवसायियों में आपस में हो बहुत गहरी प्रतिस्पर्धा है, अतएव ये कोई काम संयुक्त रूप से नहीं कर रहे हैं, जिससे इनके व्यवसाय का संकट दूर हो। कोयले का भाव गिरता जा रहा है। उसको ऊपर उठाने का कोई उपाय करना चाहिए।

इन समस्याओं पर विचार करना जितना आवश्यक है, उतनी ही ढिलाई से इन पर विचार हो रहा है। १९१८ में सरकार ने विलायत से एक विशेषज्ञ बुलाकर ख़ास तौर सें दूसरी नम्बर की समस्या की जाँच कराई थी। उन विशेषज्ञ का नाम था मिस्टर ट्रेहार्न रीस। उन्होंने दूसरे वर्ष रिपोर्ट भी दे दी, और आज १८ वर्ष से उस रिपोर्ट पर विचार हो रहा है! पर इधर व्यवसाय की समस्यायें बढ़ती देखकर तथा सार्वजनिक दबाव के कारण सन् १९३६ में सरकार ने एक "कोल इनक्वायरी कमिटी" की रचना की है, जिसको ऊपर लिखी तीनों श्रेणियों की बातों पर विचार करना है। अभी हमको इसकी रिपोर्ट का पता नहीं है।

व्यवसाय की हालत अच्छी नहीं है। १ अक्टूबर १९३६ से सरकार ने भारत से बाहर जानेवाले कोयले पर ॥) फ़ी टन की छूट दी है। इससे विदेशी व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। पर इतना ही काफ़ी नहीं है। वर्षों से रेलवे कम्पनियाँ अपनी ज़्यादातर माँग स्वयं पूरी कर रही हैं। वे जो माल ख़रीदती भी हैं उसमें मूल्य गिराती चली जा रही हैं। १९३१ से कोयला ढोने के रेलवे-महसूल पर १५ प्रतिशत अतिरिक्त कर (सर चार्ज) लगा दिया गया था, जिससे देश के भीतर ही कोयला भेजना कठिन हो गया। कोयला ऐसी चीज़ है जिसकी माँग औद्योगिक विकास तथा कल-कारख़ानों की वृद्धि पर निर्भर करती है। देश में इस समय मन्दी छाई हुई है। अतएव कोयले की माँग यों ही कम है। दूसरे, मूल्य में महसूल के कारण वृद्धि होने से उसकी माँग नहीं पनप पाती। रेलवे-कम्पनियों को महसूल बढ़ाने से जो आमदनी करने की सम्भावना थी उसका एक-चौथाई भी इसी लिए पूरी नहीं हुई कि माँग ही घट गई। दूसरी ओर माँग बहुत कम व उत्पत्ति बहुत काफ़ी है। अन्य व्यवसायों की भाँति इसमें इतना एका नहीं कि मिलकर उत्पत्ति पर कोई नियंत्रण कर सकें। फलतः इन सब कठिनाइयों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए इंडियन माइनिंग फ़ेडरेशन, इण्डियन माइनिंग असोशियेसन तथा बंगाल चैम्बर आव् कामर्स ने सरकार से प्रार्थना की कि वह क़ानून बनाकर उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध लगावे ताकि बाज़ार का एकदम गिरना रुक जाय, साथ ही रेलवे-कम्पनियों को भी मार्ग पर लाने को प्रार्थना की। पर २८ जनवरी १९३५ को सरकार ने इनकी माँग को ठुकरा दिया। उसका कहना था कि "ऐसा करने से ख़रीदारों को मँहगा माल मिलेगा, जिससे व्यवसायों की तरक्क़ी न हो सकेगी।" उसने इस आज्ञा के साथ ही १५ प्रतिशत के अतिरिक्त कर को घटाकर १२½ प्रतिशत कर दिया। पर इससे क्या हो सकता है, यह पाठक स्वयं समझ लें।

अब सरकार की नई कमिटी की रिपोर्ट की बाट जोही जा रही है। पर अभी तक उसने इस व्यवसाय के साथ जो व्यवहार किया है वह विशेष उत्साह-वर्द्धक नहीं है, अतएव केवल इसके व्यवसायियों से ही यह कहना उचित होगा कि वे अपने पैरों खड़े हों।

—०—

सिक्ख-राज्य के बुरे दिन

लेखिका, श्रीमती रामप्यारी खन्ना 'हिन्दीरत्न', 'साहित्यालंकार'



महाराज रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद सिक्ख-राज्य के बुरे दिन आये और दस वर्ष तक रहे। इतिहासज्ञों ने उन दिनों का वर्णन बहुत ही प्रामाणिक और मार्मिक शब्दों में किया है। यहाँ मैंने भी उन्हीं का वर्णन किया है। मेरे वर्णन का आधार तत्कालीन पंजाबी कवि शाह मुहम्मद का एक 'क़िस्सा' है, जिसका नाम 'लड़ाई सिंघाँ' है।

यह 'क़िस्सा' ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से भले ही भ्रामक हो, अनेक ग़लतियों से भरा हो, पर मनोरंजक खूब है। उस वक़्त की गवाही नहीं तो उस वक़्त के लोगों की जानकारी का चित्र तो ज़रूर है।—लेखिका

महाराज रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज खड्गसिंह राज्य के उत्तराधिकारी हुए। महाराज खड्गसिंह का चेतसिंह नाम का एक मित्र था। दरबारियों के बहकावे में आकर कुँवर नौनिहालसिंह ने अकारण ही उसे मार डाला। महाराज खड्गसिंह को बहुत दुःख हुआ। इसके बाद वे बीमार हो गये और एक वर्ष के बाद अपने मित्र के पास चले गये। उनकी मृत्यु हो गई।

महाराज खड्गसिंह का दाह-संस्कार करके कुँवर नौनिहालसिंह वापस आ रहे थे। जम्मू और कश्मीर के महाराज गुलाबसिंह का पुत्र ऊधमसिंह भी उनके साथ था। ज्यों ही क़िले की ड्योढ़ी से गुज़रने लगे कि ऊपर से एक छज्जा आ गिरा। ऊधमसिंह तो वहीं मर गया, पर कुँवर महलों में जाकर मर गये। सरदारों ने आठ पहर तक इस घटना की बात प्रकट नहीं होने दी। अगले दिन महारानी चन्दकौर की आज्ञा से दाह-संस्कार हुआ।

महाराज खड्गसिंह के भाई महाराज शेरसिंह उन दिनों बटाला में रहते थे। वे जल्दी जल्दी लाहौर आये और नगर के बाहर डेरा डाला। प्रधान मन्त्री राजा ध्यानसिंह ने कहला भेजा कि अभी आप लौट जायँ। आपके विरुद्ध रानी चन्दकौर ने बड़ा भारी षड्यन्त्र रच रक्खा है। अवसर आने पर मैं स्वयं ही आपको बुला लूँगा। शेरसिंह लौट गये। रानी चन्दकौर राज्य करने लगीं। आख़िर ध्यानसिंह का मनोरथ सफल हो गया। उन्होंने शेरसिंह को गद्दी पर बैठा ही दिया। रानी चन्दकौर क़ैद करके जेल में डाल दी गईं। एक वर्ष के बाद वे मार डाली गईं। सन्धाँवालियों के पाँव उखड़ गये। सन्धाँवालिये सरदार रिश्ते में महाराज रणजीतसिंह के भाई लगते थे।

जिन दासियों ने रानी का वध किया था, लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए महाराज शेरसिंह ने उनके नाक-कान कटवा डाले, उनके ज़ेवर ले लिये गये और काला मुँह करके वे नगर में घुमाई गईं।

एक वर्ष के बाद वार्षिक हाज़िरी लेने के लिए शेरसिंह ने दरबार किया। अवसर पाकर सन्धाँवालिये सरदार अजीतसिंह ने महाराज शेरसिंह को गोली से मार डाला और उनका सिर काटकर नौ-दो ग्यारह हो गया।

लहिणासिंह अजीतसिंह का चाचा था। वह रिश्ते में

शेरसिंह का भी चाचा लगता था। अब वह बाग़ में पहुँचा। वहाँ शेरसिंह का पुत्र प्रतापसिंह हवन कर रहा था। उसने दादा की वक्र दृष्टि देखकर बहुत नम्रता से प्राणों की भीख माँगी, पर उसने कुछ परवा न की और उसे मार डाला।

अब सन्धाँवालिये सरदार नगर में आये। उन्होंने ज्ञानी गुरुमुखसिंह और मिहिर घसीटा की सलाह से राजा ध्यानसिंह को भी मरवा डाला। इससे पहले चन्दकौर के असली हत्यारों को मौत की सज़ा दी। फिर कुँवर दलीपसिंह को बुलाया। उनके माथे पर ध्यानसिंह के ख़ून का तिलक लगाकर कहा कि यह सब हमने तेरे लिए और केवल तेरे लिए किया है।

उधर जब ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को अपने पिता की हत्या का पता लगा तब वह भारी सेना लेकर लाहौर पर चढ़ आया। सन्धाँवालिये सरदारों को उसने मार भगाया। फिर दलीपसिंह को आगे करके ख़ुद राज्य करने लगा। उसने जल्लाह पण्डित नाम के एक उद्दण्ड ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया। सिक्ख जल्लाह से बहुत असंतुष्ट थे। उन्होंने राजा ध्यानसिंह के भाई सुचेतसिंह को प्रधान मंत्री बनाने का लालच देकर बुला भेजा। सुचेतसिंह ससैन्य आया और हीरासिंह से युद्ध किया। हीरासिंह मारा गया। जल्लाह को भी सिक्खों ने मार डाला। सुचेतसिंह को बहकाकर भगा दिया। अब बड़ा ऊधम मचने लगा। कोई किसी को न पूछने लगा। जो जिसके जी में आता, करता। सिक्खों ने तमाम बड़े बड़े प्रतिष्ठित सरदारों को एक एक करके मार डाला। उन्होंने जम्मू पर भी चढ़ाई की और वहाँ से राजा गुलाबसिंह को बाँध लाये।

अब बिगड़े हुए सैनिक बिना लगाम के घोड़े हो गये। तब महाराज रणजीतसिंह की विधवा महारानी जिन्दाँ के भाई जवाहरसिंह पर चढ़ गये। जब महारानी ने देखा कि यह भयंकर आँधी अब उन्हीं की ओर आ रही है तब वे अपने भानजे कुँवर दलीपसिंह को साथ लेकर, हाथी पर सवार होकर, रास्ते में उनकी अगवाई करने को चल पड़ीं। सिक्खों ने आते ही नेज़े की नोक से जवाहरसिंह को हाथी से नीचे गिरा दिया और उसके हज़ार अनुनय-विनय करने पर भी उसे मार डाला। उन्होंने महारानी जिन्दाँ को क़ैद कर लिया और उनके रोने-बिलखने पर उनका व्यंग्य करने लगे। कहने लगे, इनाम दे हमें, हमारे ही सिर पर राज्य कर। रानी जिन्दाँ बहुत घबराई। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गईं। कहने लगीं—"ज़ालिमों ने मुझे बहुत तंग कर रक्खा है। चारों ओर अन्याय और अत्याचार फैला रक्खा है। मेरे भाई जवाहरसिंह को जिसके अधीन हज़ारों और लाखों घुड़सवार थे, मेरे सामने ही क़त्ल कर डाला। ऊपर से मुझसे इनाम माँगते हैं। बारह रुपया मासिक वेतन मुफ़्त में मार लेते हैं। मैं रोज़ कहाँ से कलंगियाँ और तोड़े लाऊँ। कहाँ है अँगरेज़ों का राज्य, जो आकर इनका अहंकार चूर करें। मैं उस पर बलिहार जाऊँगी जो जवाहरसिंह के ख़ून का बदला लेगा। अगर मैं जट्टी हूँ तो एक बार ज़रूर ही पञ्जाब को विधवा बनाकर रक्खूँगी, सारे देश में हाहाकार मचा दूँगी, घर घर में विलाप फैला दूँगी। ये जो बड़े बड़े अकड़ख़ाँ सरदार बने बैठे हैं, मैं इन्हें मरवा डालूँगी या पंजाब से बाहर कर दूँगी। उनकी स्त्रियों के तमाम सौभाग्य-चिह्न उतरवाकर उन्हें विधवा बना दूँगी। कोई कसर नहीं बाक़ी रक्खूँगी। जवाहरसिंह का बदला पूरा पूरा लूँगी।

इस प्रकार विवेकशून्य विचार कर रानी जिन्दाँ ने एक पत्र अँगरेज़ों को लिखा। उसमें साफ़ लिख दिया कि मैं अपनी फ़ौज को आपके राज्य पर चढ़ाई करने को भेजती हूँ। आप उनके ख़ूब दाँत खट्टे करें, कोई कसर बाक़ी न रक्खें, अपना सारा ज़ोर उन पर लगायें। मैंने अपनी सेना में फूट भी डाल रक्खी है। उसमें अचानक भगदड़ भी मचवा दूँगी। फिर सेना और सरदारों को बुलाकर कहने लगी—"मेरे पास धन नहीं रहा है। सब लुट गया है। अँगरेज़ों का देश बहुत मालामाल है। आप जाकर उसे लूट लाइए।" यह सुनते ही सारी सेना जाने को तैयार हो गई। फ्रांसीसी सेनापति ने भी जाने की इच्छा प्रकट की। उसने कहा—मैं अँगरेज़ों को चनों की तरह चबा जाऊँगा। पर उसे आज्ञा न मिली और वह कश्मीर की ओर भेज दिया गया।

सेना चली। सरदार लोग शेख़ियाँ बघारने लगे—"हमने बड़े बड़े योद्धाओं को मार भगाया है। अँगरेज़ चीज़ ही क्या हैं? बात की बात में हम देहली को हथिया लेंगे। वहाँ के ख़ज़ाना को लूट लेंगे। अँगरेज़ स्त्रियों को पकड़ लायँगे।

फ़िरोज़पुर के पास सिक्खों ने जाकर डेरा जमाया। ...ज़ों ने वहाँ उनको कहला भेजा कि महाराज रणजीतसिंह ...के मित्र थे। तुम भी मित्र हो। व्यर्थ में ख़ून की नदियाँ ...हाओ। अगर कुछ धन चाहिए तो ले जाओ। सिक्खों ...कुछ न सुनी, लड़ने का ही हठ किया। अँगरेज़ों ने दूर-...क यन्त्र के द्वारा सिक्ख-सेना की सारी व्यवस्था मालूम ...की और लड़ाई का झंडा खड़ा कर दिया।

मुदकी नाम के स्थान में युद्ध हुआ। सिक्ख-सेना में ...गोलन्दाज भी बहुत थे। घुड़सवार थे। ज्यों ही अँगरेज़ों ...की तोपें अग्नि उगलने लगीं, सेना में भगदड़ मच गई। ...फिर सब डेरे में एकत्र हुए और फिर लड़ने की आज्ञा ...ने लगे। उस समय सिक्खों में बड़ा जोश था। आज्ञा ...मिली। फिर युद्ध शुरू हुआ, पर स्थान बदल कर। ...बार सिक्खों ने ख़ूब वीरता से मुक़ाबिला किया, ...उन्होंने बहादुरी का बहुत अच्छा परिचय दिया, फलतः ...अँगरेज़ों के पाँव उखड़ गये। वे भागना ही चाहते थे कि ...अँगरेज़ सेनापति ने उन्हें सँभाल लिया। अँगरेज़ बड़ी ...बहादुरी से लड़े। सिक्ख-सेना के छक्के छूट गये। वह ...रानी जिन्दाँ तो ...दान छोड़ना ही चाहती थी कि अँगरेज़ी सेना में भगदड़ ...मच गई और वह सिर पर पाँव रखकर भागने लगी। ...इतने में बागसिंह नामक सरदार ने विभीषण का काम ...किया। सारा भेद अँगरेज़ों को बतला दिया। वे फिर डट ...गये और सारा ज़ोर लगाकर एक बार फिर सफलता का ...द्वार खटखटाया। द्वार खुल गया। सफलता हासिल हो ...गई। सिक्ख भाग खड़े हुए। अँगरेज़ों के हाथ १२३ तोपें ...और बहुत-सा सामान आया।

सिक्ख मन ही मन बड़े लज्जित हुए। सोचने लगे कि ...हमने व्यर्थ ही लड़ाई मोल ली। न लड़ते, न यह दिन ...देखने को नसीब होता। अनायास ही अँगरेज़ों को लाहौर ...मिल गया। चलो घरों को चलें। बहुत बुरा हुआ।

बहुत से सिक्ख अभी अपने घरों में आये ही थे कि फिर युद्ध का निमन्त्रण मिला। इच्छा न रहते हुए भी लाचार होकर जाना पड़ा। सरदार तेजासिंह नेता था। उसने सेना को आगे किया, आप पीछे हुआ। जब सारी सेना सतलज को पार कर गई तब उसने पुल को तोड़ दिया, ताकि सिक्ख भाग कर घरों को न जा सकें, युद्ध-भूमि में ही लड़कर विजय हासिल करें या प्राण दे दें। सिक्ख योद्धा मैदान में उतरे। उधर से अँगरेज़ भी निकले। सिक्खों ने पहले हल्ले में ही अँगरेज़ों के पाँव उखाड़ दिये, उनकी छावनी फूँक दी, सामान लूट लिया। अँगरेज़ों को बड़ा क्रोध चढ़ा। उन्होंने प्राणों की बाज़ी लगाकर बड़े ज़ोर से आक्रमण किया। सिक्ख भाग खड़े हुए। पर शीघ्र ही सँभल गये। शामसिंह अटारीवाले के नेतृत्व में उन्होंने बहुत वीरता का परिचय दिया, पर भाग्य ने उनका साथ न दिया। अँगरेज़ जीत गये और सदा के लिए जीत गये। रानी जिन्दाँ ने अँगरेज़ों को पत्र लिखा। उसमें उनको धन्यवाद किया और लिखा कि आपने मेरा बदला ले लिया। अँगरेज़ी सेना ने लाहौर की ओर कूच किया। विजयदुन्दुभी बजाती हुई अँगरेज़ी सेना लाहौर पहुँची। बड़े बड़े सरदार उपहार लेकर अँगरेज़ों से मिले। राजा गुलाबसिंह स्वयं अँगरेज़ सेनापति का हाथ पकड़ कर उसे नगर में लाये और कहने लगे—"आपने बड़ी कृपा की जो यहाँ पधारे। अँगरेज़ रानी जिन्दाँ के रक्षक बने। उन्होंने वहाँ अपनी छावनी डाल दी और लाहौर पर क़ब्ज़ा कर लिया। अब उन्होंने चुन चुनकर उन तमाम सैनिकों और सरदारों को जिनके सम्बन्ध में उन्हें कुछ सन्देह था, पदच्युत कर दिया।

अब सिक्खों को होश हुआ और उन्हें पता लगा कि क्या का क्या हो गया। सब मन मसोस कर रह गये।

वह गूँगी थी। पर इसका पता पति को तब लगा जब विवाह हो चुका और वह उसके घर आई। उसके बाद—

पगली रानी

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

(१)

"नीरा ! अरी ओ नीरा !! मर गई !"

कर्कश आवाज़ घर के इस छोर से उस छोर तक हवा में कम्पन पैदा करती हुई गूँज उठी।

गर्मी की संध्या थी। प्रकृति थकी हुई-सी, हाँफती हुई-सी, दिखलाई पड़ती थी। वृक्ष के पत्ते धूलि से भरे हुए थे। डालों पर दो-चार पक्षी चोंच खोले हाँफते हुए नज़र आते थे। लू ने मानो संसार को झकझोरकर थका डाला था—सर्वत्र निष्प्राणता, सर्वत्र उदासी, सर्वत्र शिथिलता ! पुकारनेवाले ने फिर ज़रा-सा सुर चढ़ाकर और उसमें रोष भर कर पुकारा—"अरी नीरा ! सुनती भी नहीं अभागी !"

कमरे के भीतर से चूड़ियों की खनक के साथ सारी की सरसराहट सुन पड़ी और एक नवयुवती चकित हरिणी की तरह भयमिश्रित आँखों से इधर-उधर देखती हुई निकल आई। कुछ भी हो, पर यह नवयुवती भोली-भाली थी, सुन्दरी थी, शान्त थी और थी गूँगी। इसी का नाम था नीरा !

पुकारनेवाले नवयुवक का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था, उसके भरे हुए सुन्दर कपोल अस्तप्राय दिनकर की तरह आरक्त हो रहे थे। नीरा धीरे-धीरे आकर सामने खड़ी हो गई और अपनी बड़ी बड़ी आँखों से पूछने लगी—"क्या आज्ञा है। दासी चरणों में हाज़िर है।"

युवक ने झल्ला कर कहा—"गधी कहीं की। तुझे बेंत से ठीक करूँगा। माता जी की पूजा का सामान ठीक नहीं किया। क्या तू यहाँ रानी बनकर आई है ? अपनी सूरत तो देख। कुतिया की तरह लगती है। आज तुझे ठीक करके ही दम लूँगा। ठहर !" माता जी पास की कोठरी में बैठी जप कर रही थीं। इस अत्यन्त रुचिकर संवाद को सुनते ही जल्दी जल्दी गले में जप की माला डालकर बाहर निकलीं और बोलीं—"मैं कहती हूँ कुमार, यह चुड़ैल जब से घर में आई है, मेरा तो नाक में दम है। इसके कलमुँहे बाप ने धोखा दिया। यह गूँगी हमारे गले मढ़ी गई। हाय, यह मेरे किस जन्म का पाप उदय हुआ !" इतना एक साँस में बोल कर कपाल ठोक कर माता जी धम्म से चौखट पर ही बैठ गईं। कुमार ने चिल्लाकर कहा—"तुम पूजा करो मा ! इसकी ख़बर मैं लेता हूँ।"

नीरा की तरफ़ फिर कर कुमार ने धमकाते हुए कहा—"तेरे सिर का सनीचर उतारता हूँ। कहाँ गई मेरी छड़ी !"

नीरा की दोनों आँखें छलछला आईं। वह ज़ोर ज़ोर से साँस लेने और काँपने लगी। उस गूँगी के हृदय में विचारों के तूफ़ान उठ रहे थे, वह चाहती थी कि अपनी निरपराधिता का इज़हार करे, पैरों पड़कर क्षमा-याचना करे, फिर भूल न करने की प्रतिज्ञा करे। पर ईश्वर ने मूक रहकर सब कुछ सहने के लिए ही उसे संसार में भेजा था। मन के उमड़ते हुए भावों को मन में ही दबाकर रखने के लिए वह संसार में इस मानव-समुदाय में केवल श्रोता बन कर आई थी, केवल मूकदर्शक बन कर आई थी। वह गूँगी थी और उसकी अच्छी-बुरी सभी भावनायें उसकी आँखों की राह से, एक ठंडी साँस के रूप से ही, व्यक्त हो सकती थीं। वाणी नहीं थी, पर एक नन्हा-सा हृदय था, जो सुख-दुःख की ताल पर हर घड़ी धुकधुक करता रहता था, दो आँखें थीं जो कभी उदास, कभी पुलकित, कभी म्लान, कभी सभय होकर हृदय की भवानाओं को इंगित के रूप में व्यक्त कर सकती थीं। आँखें उसके मन की बातें व्यक्त करने के लिए दुभाषिया थीं, पर इन दुभाषियों की भाषा समझनेवाले संसार में कितने हैं—एक, दो, या तीन ! आँखों की भाषा कान नहीं, हृदय सुनता है।

(२)

धुँधली चाँदनी नीरा के आँगन में उतरी। दिन भर की कड़ी धूप से आँगन तप रहा था—जल का छिड़काव हो जाने पर भी गरम-गरम भाफ निकल रही थी, मानों अचला धरणी की आह हो ! माता जी खाट पर पड़ी थीं और बीच-बीच में "श्रीराम-सीताराम" की मधुर ध्वनि उनके दंतविहीन मुख से गूँज उठती थी। रात धीरे धीरे खिसक रही थी और नीरा अपने कमरे की खिड़की पर चुपचाप बैठी थी। कमरे में अन्धकार था, उमस थी, हवा में उत्ताप था, वातावरण में उदासी थी।

नीरा उदास आँखों से दूर-दूर तक फैले हुए शहर की ओर देख रही थी। छतों पर अन्धकार और मटमैले प्रकाश की आँख-मिचौनी हो रही थी, मानो अन्धकार और प्रकाश का जाल-सा बुन दिया गया हो।

कुछ देर में चाँद ऊपर उठ आया और हलकी-ठंडी हवा के एक मधुर झोंके ने नीरा के उस ललाट को स्पर्श किया जो पसीने से तर था और उसमें सोहाग की आग जैसी एक लाल बिन्दी लगी हुई थी। नीरा ने अपनी सुन्दर चिकनी और नरम हथेली से ललाट को पोंछ लिया और एक गम्भीर साँस लेकर उठ खड़ी होने का प्रयत्न किया। इसी समय कमरे में कुमार का प्रवेश हुआ।

गूँगी नीरा ने चौंककर देखा। उसके चेहरे पर पल भर के लिए आनन्द की एक प्रत्यक्ष क्षीण रेखा झलक कर मिट गई और उस पर भय के अन्धकार ने अधिकार जमा लिया। वह सिर झुकाकर इस तरह खड़ी हो गई, जैसे अपराधी छात्र अपने चिरक्रोधी शिक्षक के सामने खड़ा होता हो। उसका शंकाग्रस्त हृदय ज़ोर से कई बार धड़क उठा। नीरा की ओर बिना भ्रूक्षेप किये कुमार ने एक कुर्सी पर लापरवाही से बैठते हुए कहा—"बड़ी विपत्ति है—रात-दिन चैन नहीं। उफ़।" इतना कहकर उसने कुर्सी के पीछे अपना सिर लटका लिया और दोनों हथेलियों से कसकर ललाट को दबाते हुए फिर अस्फुट स्वर में कहा—"जहन्नुम में जाय ऐसी नौकरी। देखें, क्या होता है। मौत भी नहीं आती—न घर सुख और न बाहर चैन ?"

नीरा का चेहरा विषाद से, चिन्ता से, भर गया, पर अन्तिम वाक्यांश ने घाव पर नमक का काम किया। वह आत्म-मंथन का अनुभव करने लगी। हाय, वही कुमार के जीवन को भार बनाने का कारण है। यदि वह बोल सकती तो अपना हृदय स्वामी के चरणों पर रख देती ! आज वह एक मूर्तिवत् है—बहुत अंशों में उससे भी तुच्छ। मूर्ति की मौनता प्यार की वस्तु है। एक भावुक उसकी मौनता में अपनी वाणी का संयोग करके, अपने ही हृदय के भावों को उसमें प्रतिबिम्बित करके, अपने हृदय से ग्रहण करता है। यद्यपि मूर्ति हृदयहीन होती है, तथापि कोई भी सहृदय अपने हृदय को उसमें स्थापित करके अपनी कल्पना की दुनिया में उससे बातें करता है बशर्ते कि वह मूर्ति 'नीरा' जैसी भोलीभाली और प्रियदर्शिनी हो, पर नीरा के लिए यह सवाल ही नहीं। उसकी मूकता दूसरों के लिए झुँझलाहट पैदा करनेवाली है। उसे बोलना चाहिए था, मानो न बोलना उसका अपना ही अपराध हो। विधाता से कह-सुनकर—दूसरों को तंग करने के लिए—जैसे उसने गूँगापन का वरदान लिया हो। बात ऐसी नहीं है, पर लोग उस पर झुँझलाते क्यों हैं ?

नीरा के हृदय में विचारों का तूफ़ान उठने लगा। उसके स्वामी उसकी मूकता से उकता गये हैं, ऊब उठे हैं, उनका जीवन भार हो चुका है। एक साध्वी यह कब सहन कर सकती है कि उसका प्राणाधार उसी के अपराध को अपने आपको विनाश-पथ का पथिक बना ले ? लाचारी—बुरी लाचारी थी ! नीरा क्या कहकर अपने ऊबे हुए स्वामी को परितोष दे सकती थी ? यदि वह परितोष देने पर भी बोल सकती, फिर तुरन्त गूँगी हो जाती, तो भी उसका जीवन धन्य हो जाता। वह मन ही मन अकुला उठी और जहाँ खड़ी थी वहीं बैठ गई।

कुमार ने नीरा को उदासीन दृष्टि से देखा और फिर धीरे-धीरे उठकर कमरे के बाहर आकर खड़े होकर कुछ सोचना आरम्भ किया। नीरा साहस करके उठी और द्वार पर डरी-सी खड़ी हो गई। कुमार इधर-उधर देखकर फिर ऊपरवाली छत पर चला गया, जहाँ उसकी खाट बिछी थी। उसने बड़े ग़ौर से खाट पर की वस्तुओं को देखा। तकिया, चादर, सिगरेट, सलाई सभी चीज़ों को यथा-स्थान पाकर वह मानो कुछ हताश-सा हो गया। वह नीरा का कोई अपराध ढूँढ़ रहा था, पर सभी चीज़ें ठीक रूप में अपनी जगह पर थीं। वह धम्म से खाट पर बैठा और 'हे भगवान्' कहकर लेट गया। चाँद ऊपर उठ आया था, चाँदनी फैल रही थी।

छाया की तरह नीरा दूर खड़ी थी—पति क्या आज्ञा

देते हैं, उन्हें किस चीज़ की आवश्यकता है, शायद नाराज़ हों तो दो-चार गालियाँ या तमाचे खाने के लिए भी तो हाज़िर रहना उचित है—ग़ैरहाज़िरी अपराध को और गुरुतर बना डालती है। दासी का इससे अधिक और क्या कर्तव्य हो सकता है? नीरा यह सोच भी नहीं सकती थी कि वह घर की रानी है।

कुछ देर तक आकाश की ओर चित लेटकर देखते हुए कुमार ने करवट बदली। उसने एक मूकनारी मूर्ति को कुछ दूर पर खड़ी देखा। कुमार दीर्घनिःश्वास त्याग कर बोला—"नीरा!"

स्वर में कोमलता थी और हृदय का दबा हुआ विषाद था! नीरा का हृदय मानो फट पड़ा। वह चाहती थी कि यदि बोल सकती तो पुकारती—"प्यारे, हृदयधन, प्राणनाथ!" कुमार ने फिर पुकारा—"नीरा, क्या इधर नहीं आ सकती?"

नीरा धीरे-धीरे खाट के निकट तक चली आई। उसने मन ही मन कहा—"आज्ञा हो तो चरणों के निकट बैठूँ, आँचल से तलुवों की धूल पोछूँ।"

कुमार फिर बोला—"पगली, डरती क्यों है? क्या मैं तेरा कोई नहीं हूँ? अरी, तू बोल नहीं सकती तो क्या समझ भी नहीं सकती?" परन्तु उसका चिरव्यथित हृदय बोल रहा था और उसकी मुर्झाई हुई प्यासी आत्मा सुन रही थी। नीरा धीरे-धीरे नीचे बैठने लगी तब कुमार ने उसका हाथ पकड़कर खाट पर बिठा लिया। नीरा की आँखों ने आँसुओं की भाषा में मर्म की बातों को, उसके आनन्द को व्यक्त कर दिया। कुछ क्षण ठहर कर कुमार बोला—"नीरा, बुरा तो नहीं मानोगी? मैं दूसरा व्याह करना चाहता हूँ। माता जी और मित्रों का बड़ा आग्रह है। मेरी पगली रानी! लाचार हूँ। बुरा न मानना!" नीरा कैसे कहती कि वह इस संवाद को किस रूप में ग्रहण कर रही है? पर उसे ऐसा लगा कि दो सनसनाती हुई गोलियाँ उसके दोनों कानों में घुस गईं और हृदय में जाकर बम की तरह भयानक शब्द के साथ फट पड़ीं। क्या यही संवाद सुनाने के लिए वह इतने आदर से बुलाई गई, प्रेम से बिठाई गई और फिर अमृत के प्याले में विष भरकर सामने रख दिया गया? उसने बड़े प्रेम से इस प्याले को पी लिया। स्वामी का दिया हुआ हलाहल भी अमृत है—जीवनदाता है, नारी-जाति का यही आदर्श है।

(३)

कुमार ने विकलता-पूर्वक करवटें बदल बदल कर रात व्यतीत करने की पीड़ा का कभी अनुभव नहीं किया था। शेष रात को ठंडी हवा के झोंके से आकाश के दीपक एक-एक कर बुझने लगे—दो-चार बड़े बड़े दीपकों को छोड़कर। पीत-मलिन शशि पश्चिम क्षितिज को छूने लगा, मानो निद्रित वसुधा को जगाकर कह रहा हो—"सुनो जी, अब मुझे विदा दो।"

कुमार ने देखा कि नीरा के भोले-भाले मुखड़े पर पीली चाँदनी आड़े होकर पड़ रही है। उसका उदास चेहरा बहुत ही करुणोत्पादक दिखलाई पड़ रहा है। पलकें बन्द हैं, पर अब तक भींगी हुई हैं। तकिये पर काले काले बाल बिखरे हुए हैं। कुमार उठकर बैठ गया और आँखें भर कर अपनी पगली रानी का मुखड़ा एकटक देखने लगा। आज मानो सबसे पहली बार उसने नीरा को मन लगाकर देखा। भाँति-भाँति के विचार कुमार के व्यथित मन को थकाने लगे—"क्या वह दूसरा व्याह करेगा? नीरा का क्या होगा—इस गूँगी नीरा का? यदि यह बोल सकती तो अपनी अन्तर्व्यथा को गाकर, रोकर, कह कर कुछ मिटाती, पर इस मूक के हृदय की आग इसे ही पका डालेगी, उबाल डालेगी भीतर ही भीतर—हाँ आँखें कुछ सहारा देंगी, उच्छ्वास कुछ साथ देगा।"

कुमार ने अच्छी तरह नीरा के मुँह की ओर देखा। ललाट पर एक पतली-सी रेखा थी? उस मूक निशान के अस्तित्व में एक सकरुण इतिहास छिपा हुआ था। कुमार के ही निष्ठुर प्रहार ने इस चिह्न को जन्म दिया था। नीरा की दाहनी कलाई पर भी चोट का एक निशान था। यह माता जी की नाराज़ी का प्रसाद था। स्वामी ने अपना स्मृति-चिह्न उस कलाई पर छड़ी की चोटों से अंकित कर दिया था जिस कलाई को पकड़ कर—जिस बाँह को पकड़ कर किसी मधुयामिनी में उसने नीरा को अपना बनाया था—धर्म, ईश्वर, अग्नि और समाज को साक्षी रखते हुए।

इन चिह्नों के बाद पीठ, बाँह, जाँघों और कन्धों पर भी कितने चिह्न वर्तमान होंगे, जिनका इतिहास विस्मृति ने पोंछ डाला है। नीरा ने करवट बदली। कान के नीचे एक धुँधला-सा काला दाग़ नज़र आया, जिसे देखते ही कुमार ने दोनों हाथों से आँखों को ढाँप लिया। वह रो पड़ा। पर किसके सामने? नीरा तो सो रही थी, पर "नारायण" जाग रहा था। उसी ने कुमार के आँसुओं को देखा और देखकर मुस्करा दिया। उसकी मधुर मुस्कान फूलों में फैल गई, उषा की लाली में चमक उठी, मन्द मलयानिल के सिहरन के रूप में विश्व के अणु अणु में फैल गई, रम गई!

आम की बारी से कोयल बोल उठी—कूहू! नीरा ने फिर करवट बदली। वह आँचल सँभालती हुई उठ बैठी और पति-परमेश्वर को प्रणाम कर अपने दिन का आरम्भ किया।

(४)

माता जी ने अपने हृदय का समस्त मातृस्नेह कंठ पर एकत्र करके कहा—"बेटा, क्या मैं यों ही तड़प कर मर जाऊँ? क्या वह लड़की सुन्दर नहीं है? गूँगी को लेकर संसार नहीं चलने का। मैं कहती हूँ बेटा, मेरी आँखों की यह साध पूरी कर। इस अभागी को इसके दुष्ट बाप के सिर पर लाद दे। वह अपनी करनी का फल तभी भोगेगा जब उसकी जवान बेटी........।" कुमार विकल होकर बोला—"मा, तुम तो व्यर्थ अपने को परेशान करती हो। तुम्हें तो अब भगवद्भजन में मन लगाना चाहिए।" माता जी ने ललाट पर आँखें चढ़ाकर कहा—"क्या मैं कोई बुरी बात बोल रही हूँ? मैं इस कलमुँही का स्पर्श किया हुआ जल पीना भी नहीं चाहती। इस राक्षसी का मुँह देखना पातक है। हे भगवान्! अब दुःख नहीं सहा जाता। उठा लो संसार से प्रभो।" प्रभु को ललकारती और फटकारती हुई माता जी खाट पर आँखें बन्द करके लेट गईं। कुमार धीरे-धीरे कमरे में चला गया। नीरा शीशे के पास खड़ी खड़ी अपने आपको देख रही थी। वह अपने आपको फिर से प्राप्त करना चाहती थी या अपने दुर्भाग्य की लिपि को पढ़ना चाहती थी, यह तो परमात्मा जाने, पर कुमार की आहट पाते ही घबराकर उसकी ओर देखने लगी। कुमार का मुख-मंडल क्षोभ, चिन्ता, मनःस्ताप से म्लान हो रहा था। माता जी ने बाहर से कराहती हुई आवाज़ में कहा—"बेटा, मुझे काशी पहुँचा दे। मैं अब इस घर में एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहती। हे नारायण, तू कहाँ है? नटवर! क्या मेरे पापों के प्रायश्चित्त का अन्त अभी तक नहीं हुआ? हे अशरण-शरण!" नीरा ने आँखों में आँसू भर कर कुमार की ओर देखा। वह आँखें बन्द किये चुपचाप कुर्सी पर पीछे की ओर सिर लटकाये बैठा था। माता जी ने स्वर में भरपूर करुणा और विषाद भर कर कहा—"बेटा, क्या मैं यों ही तड़प-तड़प कर जान दे दूँ? यदि तुम मुझे काशी नहीं भेजोगे तो मैं भीख माँगती चली जाऊँगी। अब इस घर में एक पल भी टिकना कठिन है। हे भगवान्! दया करो प्रभो!"

कुमार घबराया-सा उठकर कमरे में टहलने लगा। उसके पैर मद्यप की तरह पड़ रहे थे। नीरा डर से एक किनारे हट कर खड़ी हो गई। कुमार की मनःस्थिति का वह अनिमेष दृष्टि से अध्ययन कर रही थी। घबराया हुआ-सा कुमार एक बार द्वार की ओर गया, फिर लौटकर कुर्सी पर बैठ गया। नीरा धीरे-धीरे आकर सामने खड़ी हो गई। उसकी आँखों ने प्रश्न किया—"इस विकलता का क्या कारण है मेरे हृदय?" कुमार के उदास चेहरे ने जवाब दिया—"क्या बतलाऊँ मेरी रानी?"

कुमार ने नीरा को अपने निकट बुलाया और बैठने का इशारा किया। वह चुपचाप उसके पैरों के पास बैठ गई। कुमार ने नीरा के कन्धे को थपथपाते हुए कहा—"मेरी पगली रानी, सुना तुमने? माता जी गृहत्याग कर रही हैं। कारण जानती हो? सुन लो। उनका आदेश है कि मैं एक और व्याह करूँ। क्या मैं दूसरा व्याह कर लूँ?"

नीरा के हृदय में समुद्र-मंथन-सा होने लगा। लाखों बातें उसके मूक कंठ से टकराती हुई पछाड़ खाकर हृदय पर गिरने लगीं। कुमार ने नीरा की ठोढ़ी को पकड़कर ऊपर उठाया। भोला-भाला सुन्दर मुखड़ा, सकरुण आँखें और चेहरे पर उद्विग्नता के आकुल भाव! कुमार ने अपने हृदय की वेदना को बलपूर्वक दबाकर कहा—"नीरा, क्या तुम नहीं जानती कि मैं माता जी के इस आदेश को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ? तुम्हें पाकर सुखी हूँ या दुखी जैसा भी हूँ, पर मैं नहीं चाहता कि फिर जुआ खेलूँ। एक बाज़ी हार गया। अब हृदय में इतना साहस नहीं कि

फिर दाँव लगाऊँ। हाँ, यदि तुम कहो तो मैं इस प्रश्न पर फिर से विचार कर सकता हूँ। पर हाय, यदि तुम बोल सकती तो यह झगड़ा ही क्यों पैदा होता ? मेरा जीवन भार हो चुका है, मैं इस जीवन से मृत्यु को अधिक प्रिय समझता हूँ।" नीरा ने धीरे से कुमार के दोनों पैरों को उठाकर अपनी गोद में रख अपने कोमल हाथों से दबाना आरम्भ किया। शायद वह यह प्रकट करना चाहती हो कि "मैं तो इन चरणों की दासी हूँ। मेरा यह अधिकार बना रहे। तुम चाहे नित्य एक नई शादी करो, मुझे कोई दुःख नहीं"।

एक दीर्घनिश्वास त्याग कर कुमार ने फिर कहा—"क्या मैं ब्याह करूँ नीरा" ?

नीरा ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया। कुमार को ऐसा जान पड़ा कि उसके पैरों पर दो बूँद गरमागरम आँसू गिरे। नीरा का सारा शरीर पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था, ज़ोर ज़ोर से साँस चल रही थी। कुमार फिर बोला—"नीरा, मैं सोचता हूँ, तुम भी सोचो। तुम्हारे रहते यह कैसे संभव हो सकता है कि मैं दूसरा ब्याह करूँ ? मुझसे तुम्हारा दुःख देखा नहीं जायगा। तुम गूँगी हो, अपने मन की व्यथा मन में रख सकती हो। मैं बोल सकता हूँ, इसी लिए कहता हूँ कि मेरा जीवन भार बन चुका है। मैंने स्वयं अपना नाश अपने हाथों किया। एक बार भूल की। फिर उसी की आवृत्ति करूँ" ? नीरा दोनों हाथों से कुमार के पैरों को ज़ोर से पकड़कर काँप उठी, उसका चेहरा मुर्दे के चेहरे की तरह पीला पड़ गया। इसी समय माता जी ने फिर कराहकर ईश्वर का स्मरण किया और अपने आपको धिक्कारते हुए कहा—"अरे पापी प्राण, निकल इस शरीर से। हाय, मैं कैसी अभागी हूँ ! संसार में मेरा कोई नहीं। एक तू ही अशरणशरण है !" कुमार ने कसकर दोनों कानों में अपनी उँगली दे दी और नीरा आँचल से मुँह ढाँपकर रो उठी।

ग्रीष्म की दुपहरी हाहाकार करती हुई संसार के हृदय पर आघात करने लगी !

(५)

नीरा—गूँगी नीरा का संसार अन्धकारमय था। कहीं शान्ति नहीं, कहीं विश्राम नहीं। उसने अपने आपको अपने पति के चरणों पर न्योछावर कर दिया था। उसने केवल इस संसार में "कुछ" प्राप्त किया था। वह विश्व में एक मूक भिखारिणी बनकर आई थी—स्नेह नहीं दया की। सुन्दरी नीरा स्नेह की रानी हो सकती थी, अपने प्रेम-भिखारी को अयाचक कर सकती थी, उसके हृदय की समस्त दरिद्रता को, अभाव को अपनी एक ही मीठी मुस्कान से मिटा सकती थी, पर गूँगी नीरा ! आह, गूँगी नीरा ख़ुद परमुखापेक्षी बनकर जीना चाहती थी—उसके रूप-यौवन का कोई मान तथा उसके छलकते हुए हृदय का कोई मूल्य न था। वह स्नेह की नहीं, दया का पात्र थी, करुणापूर्ण दया की अधिकारिणी। ऐसी थी नीरा। बचपन में वह अपने मा-बाप का भार रही, यौवन प्राप्त होने पर पति का भार बनी और अब संसार का भार बना चाहती है। जिस संसार में असंख्य प्राणी हैं, इतने बड़े जंगल हैं, हिमालय जैसे गगनचुंबी पहाड़ हैं, वहाँ उस अभागी के लिए साढ़े तीन हाथ जगह का अभाव था। अपने पति के चरणों के अतिरिक्त कहीं सिर रखने भर के लिए भी उसे जगह न थी। नीरा ने अपने विषय में सोचना आरम्भ किया। उसके पास उसके प्राणनाथ की कुछ धरोहर थी। दो तुनुक चूड़ियाँ और सिन्दूर की एक पतली लकीर, बस !

नीरा ने एक बार अपनी भरी हुई सुन्दर कलाई की लाल लाल चूड़ियों को जी भर कर देखा और उन्हें चूम लिया। उसे ऐसा लगा कि वह अपने देवता को चूम रही है। उसका हृदय क्षण भर के लिए प्रकाशमय हो उठा, उसका हृदय-शतदल विहँस उठा, पर फिर विषाद की कालीरात छा गई। उसने अनुभव किया, उसके पति का जीवन उसी के कारण भार बन चुका है—उसी के कारण उनका सोने का संसार आज श्मशानवत् हाहाकारमय हो रहा है। यदि नीरा न होती तो शायद वे ख़ूब सुखी होते, अपने संसार को 'स्वर्णमय' से भी आगे बढ़कर 'सुधामय' या 'स्वर्गमय' बना डालते। नीरा ऐसी अभागी है कि वह दूसरे के घर के सौभाग्यप्रदीप के बुझाने का पातक अपने सिर पर थोप चुकी है। कुमार—सुन्दर युवक कुमार आज चिन्ता, मनस्ताप के मारे सूखता जा रहा है, घर की साक्षात् देवी माता जी आज - इस अन्तिम समय में—गृ‍ह्त्याग करने पर तुली हुई हैं, कुमार ने घर का रहना तक छोड़ दिया है—कभी कभी नीरा के कारण भूले-भटके

जाता है। नीरा के माता-पिता नित्य माता जी के मुँह से लियाँ सुनते हैं। नीरा की आत्मा फूट फूटकर रो उठी। उपाय ? इसमें उस अभागी गूँगी युवती का क्या राध है ? क्या उसने तप करके विधाता से वाणी न का ही वरदान माँगा था ? वह तो अभिशाप है, जो मा माँगे मिला ! नीरा ने अपने चारों ओर घोर अन्धकार । इतना कलंक, इतना मनस्ताप, इतनी पीड़ा वह केले कैसे वहन करे, पर दुर्भाग्य का बँटवारा करनेवाला तो संसार में नहीं मिलता।

कुमार बार बार आता और अपनी मा के वाग्बाणों से घ कर तत्काल चला जाता। घर में रहती अकेली गूँगी रा, जिसकी मनोव्यथा की कोई हद न थी। माता जी ने सके हाथ का जल पीना भी बन्द कर दिया। यदि वह भूल उनका लोटा छू लेती तो माता जी उस लोटे को छुतहे ड़े की तरह उठाकर पटक देतीं और गालियों की तो कोई मा ही न रहती। कुमार आता तो नीरा को चुपके से क नज़र देखकर चला जाता। वह मा के निकट जाते बराता। यदि कभी नज़र पड़ जाती तो माता जी चिल्ला उठतीं—"मुझे इस नरक में क्यों रख छोड़ा है ? इस अभागी का मुँह देखती हूँ। हे नारायण, पतितपावन।"

कुमार अत्यन्त ऊब उठा। उसने अपनी माता जी से पूछा—"तो तुम्हारी क्या राय है मा ? नीरा को घर से निकाल दूँ ? आख़िर यह है तो हमारी इज़्ज़त ! गूँगी हो या अन्धी। दुनिया तो यही कहेगी कि अमुक की स्त्री है। वंश-मर्यादा...।" माता जी ने चिल्ला कर उत्तर दिया—"मैं तुम्हारी रानी को क्यों घर से निकालने की राय दूँगी बेटा ? मैं तो ख़ुद इस नरक से बाहर निकलना चाहती हूँ। मैं जिसकी इज़्ज़त थी वे तो अब स्वर्ग में हैं। आज यदि पथ की भिखारिणी बन जाऊँगी तो किसी की भी हँसाई नहीं होगी।"

इस व्यंग्य को कुमार बर्दाश्त नहीं कर सका ! उसका सारा शरीर जल उठा। बड़े यत्न से अपने को शान्त रखते हुए कुमार ने कहा—"मा, तुम अन्याय कर रही हो। मैं कहता हूँ उसे सुनो। गूँगी होने के कारण नीरा हमारी दया की अधिकारिणी है। बोल नहीं पाती तो उसका दुःख मुझे होना चाहिए। तुम्हारी सेवा तो वह अभागी करती ही है। फिर.....।"

"मेरी सेवा ! मैं उस अभागी का मुँह देखना नहीं चाहती।" माता जी ने गम्भीर स्वर में कहना आरम्भ किया—"तुम तो घर पर रहते नहीं, मैं ख़ून का घूँट पीकर जी रही हूँ। कह नहीं सकती बेटा, बस, मेरी प्रार्थना यह है कि मुझे काशी पहुँचा दो। यदि मैं तुम्हारी मा हूँ तो मेरी प्रार्थना पर ध्यान देना तुम्हारा धर्म है।" इतना बोलते बोलते माता जी ने रोने का उपक्रम किया। कुमार के शरीर में मानो बिजली का तार छू गया। क्या नीरा ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। माता जी यह क्या कह रही हैं ? वे ख़ून का घूँट पीकर क्यों रहती हैं ? नीरा का मुँह देखना पाप क्यों समझती हैं ? क्या कारण है ? क्या कारण है कि माता जी नीरा की स्पर्श की हुई कोई वस्तु नहीं खातीं ? कुमार अत्यन्त व्याकुल हृदय से उठा और अपने कमरे में घुसा। नीरा कुमार के जूतों में पालिश लगा रही थी ! वह ख़ूब प्रसन्न थी।

कुमार खाट पर बैठ कर सोचने लगा—"ऐसी सौम्य-मूर्ति ! क्या यह सम्भव है कि यह अपराधिनी होगी ? पर माता जी ने इशारे से क्या कहा है ? कुछ नहीं। यह मेरा ही भ्रम है। कुमार का हृदय फिर भी साफ़ नहीं हुआ। वह किससे पूछे ? नीरा तो गूँगी ही है और मा से ऐसे प्रश्न···? हरि हरि ! कुमार के हृदय में इतना बल नहीं था कि वह कुछ दिनों तक ठहरकर परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करता। उसने फिर नीरा की ओर देखा। वह चुपचाप अपने काम में संलग्न थी। उसके शान्त चेहरे पर कुमार अपराध की छाया खोजने लगा। क्या एक अपराधी अपने को इतना शान्त रख सकता है ? उसका मुखमंडल इतना सौम्य रह सकता है ? असम्भव, नितान्त असम्भव ! नीरा के सम्बन्ध में एक नई तरह की भयानक बात सोचने के लिए कुमार प्रस्तुत न था, पर माता जी का स्वर कुछ ऐसा था कि कुमार का हृदय शंकाग्रस्त हो गया। सम्भवतः माता जी ने कुछ दूसरी ही बात कही हो, पर कहने के तर्ज़ ने कुमार को चुटीला कर दिया, वह एक नई चिन्ता में फँस गया।

नीरा अपने काम से छुट्टी पाकर कुमार के निकट आई। कुमार ने मन ही मन लज्जा का अनुभव किया और नीरा की ओर से नज़र हटा ली।

माता जी ने फिर कुमार को सुनाने की गरज़ से कहा—"बाबा विश्वनाथ, शरण दो !"

(६)

तो क्या नीरा अपने पतिपरमेश्वर के जीवन को कंटकमय बनाने की अपराधिनी है? जब जब नीरा के मन में यह बात उठती, वह काँप जाती। एक साध्वी स्त्री के लिए इससे बढ़कर दूसरा कलंक, मनस्ताप, आत्मघात की बात हो भी तो नहीं सकती। दूसरी बात तो यह भी थी कि नीरा का इसमें अपराध ही क्या था। उसका गूँगापन दैवप्रदत्त-दुर्गुण था, पर इस दुर्गुण का सारा दायित्व लादा जाता था नीरा के सिर पर। नीरा की सास यदि नाराज़ थी तो उसके गूँगेपन के कारण, नीरा के पति का यदि जीवन भार हो गया था तो उसके गूँगेपन के कारण, नीरा को यदि इतनी शारीरिक-मानसिक सज़ा भोगनी पड़ती थी तो उसके गूँगापन के कारण और उससे उसकी चूड़ियाँ, सेन्दुर की पतली लकीर हाथ उमेठकर जो छीनी जा रही हैं वह भी उसके गूँगापन के चलते।

नीरा के भयाकुल हृदय ने आज तक केवल डरना ही सीखा था। नीरा की अनियारी आँखों ने संसार से केवल दयादान माँगना ही सीखा था। वह ऐसी दयनीय स्थिति में थी कि उसका यौवन रोदन बनकर आया, उसका रूप कँटीली झाड़ी में अनाघ्रात पुष्प बनकर विकसित हुआ।

नीरा को यह विश्वास हो गया कि वह यदा-कदा जिस शय्या के एक कोने पर क्षण भर के लिए बैठ जाने का सौभाग्य प्राप्त करती थी वह अधिकार भी सपना का धन होने ही वाला है। स्वामी के जिन चरणों को गोद में रखकर कभी कभी वह आँसुओं से धो देती थी वे चरण भी अब दूर हटने ही वाले हैं। उसके कंठ में वाणी नहीं थी, पर उसका हृदय संवेदनशील था, क्रियाशील था। नीरा चुप रहकर रात-दिन मानो भीतर ही भीतर घुली जाती थी, मन की व्यथा मन में ही सुलगा करती थी। ऐसी अवस्था और भी दारुण होती है। नीरा का मन भी संसार से ऊब उठा था। सुख, प्यार और आकांक्षा का अनुभव उसने कभी नहीं किया। केवल भर्त्सना, केवल तिरस्कार, केवल भय, केवल घबराहट, केवल छिः छिः! नीरा को तो ऐसा लगता था कि उसका समस्त जीवन केवल "राम-राम छिः छिः" का एक विशाल-समूह मात्र है। ऐसे जीवन को जीवन कहना "जीवन शब्द" को चिना देना है।

कुमार ने माता जी को किसी न किसी तरह समझा बुझाकर काशी जाने से विरत किया, पर नीरा के प्रति वह उन्हें सहनशील न बना सका। माता जी ने कुमार से कहा—"मैं इस राक्षसी के साथ नहीं रहना चाहती, पर तुम्हारी बात मानकर रहना ही पड़ा। अब बेटा, ऐसी कृपा कर कि सुख से मरूँ। बिना तुम्हारी दूसरी शादी किये मेरी आत्मा को शान्ति नहीं। इस चुड़ैल से तुम्हारी रक्षा करना उचित है। रात-दिन के कलह से तुम्हारी दशा कैसी हो गई? हाय, मेरा फूल जैसा कुमार सारा दिन—सारी रात कुढ़ते-कुढ़ते सूखकर काँटा हो गया। इस राक्षसी का मुँह काला कर। बेटा, मैं देखती हूँ, यह घर की चीज़ें चुराकर अपने बाप के घर भेजवाती है। कल मैंने उसे तुम्हारा छोटा बक्स खोलते देखा था। हाय, ऐसी कुलच्छनी मेरे घर आई! मैं उसका मुँह देखना नहीं चाहती...!"

लज्जा से कुमार का मुँह लाल हो गया। नीरा चोरी कर सकती है। भगवान् ने समस्त पापों को एकत्र करके नीरा के रूप में जन्म दे दिया। क्या वह अभागी गूँगी नीरा चोरी करना भी सीख गई? छिः! लज्जा और मनस्ताप ने कुमार को अधमरा कर दिया। कभी उसकी आँखों के सामने नीरा का भोला-भाला सकरुण रूप नाच उठता तो कभी उसका अवांछनीय आचरण! दया और क्रोध की, क्षमा और क्षोभ की घोर धींगाधींगी ने कुमार के अन्तर्प्रदेश में भयानक भूकम्प का मनहूस तथा डरावना दृश्य उपस्थित कर दिया। वह घबरा उठा, विकल हो उठा, किंकर्तव्यविमूढ़-सा होकर बिना एक शब्द बोले घर के बाहर हो गया। नीरा कमरे के दरवाज़े की दरार से बड़ी आशा लगाये देख रही थी। नाना प्रकार की भावनायें उसके हृदय में जलबुदबुद की तरह उठ उठकर मिट रही थीं। अचानक कुमार को जाते देखकर उसकी आँखें भर आईं। वह दौड़ी हुई खिड़की पर गई और कुमार को गली में तब तक देखती रही जब तक वह दीख पड़ता रहा।

कुमार चला गया। नीरा आकर खाट पर हारी हुई सी गिरी और दोनों हाथों से आँखें बन्द कर चिन्ता में डूबने-उतराने लगी।

संध्या के बाद बड़ी साध से उसने छत पर अपने ...र के लिए बिस्तरा ठीक किया। उसकी सभी ज़रूरी ...ँ एकत्र करके ख़ुद जाकर खिड़की पर बैठ गई—कमरे ... अन्धकार रक्खा ताकि गली से कोई देख न सके कि ...ड़की पर कोई है।

धीरे-धीरे रात समाप्त होने लगी। कुमार चोर की ...ह घर में आया। नीरा की आँखें जाग रही थीं, हृदय ...ग रहा था, प्रेम जाग रहा था अपने कुमार के लिए, ...सो रहा था उसका भाग्य! हाँ, उसकी भी नींद गाढ़ी थी। कुमार आया अपने आपको ख़ूब छिपाता हुआ। ...रे धीरे कमरे में घुसा। नीरा सामने आकर खड़ी हो ..., सभय हृदय से कुमार की ओर देखने लगी। कुमार ... आँखें चढ़ी हुई और लाल लाल थीं, मानो भयानक ...र चढ़ा हो या विष खा लिया हो। नीरा बेंत की ...ह आपादमस्तक काँप उठी। यदि बोल सकती तो एक ...त में सैकड़ों प्रश्न करके ही चुप होती, पर उसके ...तुक प्रश्न कंठ तक आकर फिर पछाड़ खा खाकर हृदय ...ही गिरते और दूने वेग से हृदय को रौंदते हुए फिर कंठ ... उठने लगे। उसके अन्तर्प्रदेश में ऊधम मच गया।

कुमार ने भर्राये हुए स्वर में कहा—"तू...राक्षसी ...मैं कहता हूँ...हट जा...मेरे...सामने से वर्ना...यह.......!" इतना बोलते हुए कुमार ने खींच कर एक भर...र तमाचा नीरा के कोमल गाल पर मारा। नीरा चीख़कर ...ाँ की तहाँ बैठ गई और दुर्गन्धमय वमन करता ...आ कुमार भी फ़र्श पर गिर पड़ा। शराब की कड़ी ...बू घर में फैल गई।

नीरा ने अपने पतिदेव की दशा देखकर तत्काल ...ने को सँभाला। दौड़कर वह लालटेन ले आई। ...मार औंधे मुँह फ़र्श पर बदहोश पड़ा था, सर्वत्र कै ...ी हुई थी! बड़ी विकलता से नीरा ने कुमार को ...ड़ कर हिलाया, पर वह टस से मस न हुआ। नीरा के ...ण के तोते उड़ गये। वह घबराई हुई दौड़ी और जल ...े आई।

धीरे धीरे कुमार करवट बदलने की चेष्टा करने लगा, ...र उसे लगातार उबकाई आ रही थी।

(७)

उषा ने पूर्व के क्षितिज को अपने पैरों के अलक्त से रँग दिया। अन्धकार भागकर अज्ञानियों के हृदय में जा छिपा। कुमार की चेतना लौटी। उसने अपने आपको नीरा की गोद में सिर रक्खे हुए पाया। एक बार आँखें भर कर नीरा की ओर देखकर कुमार ने आँखें बन्द कर लीं। वह इसी तरह रहना चाहता था। नीरा धीरे-धीरे कुमार के सिर में चमेली का ठंढा तेल अपनी सुन्दर गोरी गोरी कोमल उँगलियों से लगा रही थी—सारी रात वह कुमार की सेवा करती रही।

कुछ देर के बाद कुमार ने फिर आँखें खोलीं। वह कुछ स्वस्थ हो रहा था। उसने नीरा के आँचल को रक्त से भरा हुआ देखा और उसके दाहने गाल पर नीली नीली तीन गाढ़ी रेखायें। तमाचे की चोट से नीरा का एक दाँत टूट गया था और गाल सूज उठा था तथा दाहनी आँख का एक कोना भी बेतरह लाल हो रहा था!

कुमार ने पूछा—"नीरा, मुझे मरने क्यों नहीं दिया?"

नीरा ने कुमार का मुँह अपने हाथों से बन्द कर दिया। कुमार ने उसकी नरम हथेलियों को चूमते हुए हटाया और कहा—"मेरी दुर्दशा का अन्त हो गया रानी! मैं अब मनुष्य नहीं रहा—शराब पीने लगा हूँ। मनस्ताप मिटाने के लिए यह पाप करता हूँ। तुम मुझसे घृणा तो नहीं करती रानी! मैंने तुम्हें बहुत सताया है, बड़ा अत्याचार किया है, मैंने पशु से भी बुरा बर्ताव तुम्हारे साथ किया है। देवि, मुझे क्षमा करो।" गूँगी नीरा क्या उत्तर देती? उसकी दोनों आँखें छलछला उठीं।

भावोन्मत्त होकर कुमार बोला—"रानी, मैंने आज फिर से तुम्हें प्राप्त किया। मैं हाथ जोड़ कर क्षमायाचना करता हूँ। अपने इस पतित पति को क्या क्षमा नहीं करोगी?"

कुमार की आँखों से भी पवित्र गङ्गा-यमुना उमड़ पड़ीं। नीरा ने कस कर अपने दोनों कानों में उँगलियाँ डाल लीं। यदि कुमार का सिर उसकी गोद में न होता तो वह घर के सबसे अन्धकारपूर्ण तथा दूर की कोठरी में जा छिपती।

कुमार ने उसके हाथों को खींच कर पकड़ लिया और कहा—"देवप्रतिमा तो बोलती नहीं, पर संसार उसकी पूजा करता है, अपने हृदय की श्रेष्ठतम भावनाओं की

अञ्जलि उत्सर्ग करता है। तुम भी नहीं बोलती। मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम मेरी लालसा की देवी हो और मैं हूँ तुम्हारा भक्त !"

माता जी ने कराहती हुई आवाज़ में पुकारा—"हे राम! तुम कहाँ गये भगवान्!! इस नरकयातना से उबारो दीनबन्धु! दयासागर!! अशरणशरण!!!"

कुमार बोलता ही गया—"चलो तुम्हें मायके पहुँचा दूँ और अम्मा जी को अपने काशीवाले मकान में। फिर तुम्हें ले आऊँगा। घबराना मत! मैं प्रत्येक सप्ताह आऊँगा। माता जी इस घर को नरक समझ रही हैं तो हमारा धर्म है कि अपनी पूजनीया जननी को नरकयन्त्रणा से प्राण देकर भी उबारें।"

× × × ×

मलयानिल ने कलियों का मुख चूम लिया, कलियों ने भ्रमरों का मुँह चूम लिया, भ्रमरों ने कमलिनी का मुँह चूम लिया, उषा ने अस्तप्राय चन्द्रमा का मुँह चूम लिया, चन्द्रमा ने प्रतीची का मुँह चूम लिया और नीरा ने चोरी से कुमार का मुँह चूम लिया। जब कुमार ने अपनी दोनों बाहें फैला दीं तब वह भागकर कमरे में छिप गई।

दोनों की खिलखिलाहट से माता जी का नरक स्वर्ग बन गया। जहाँ कुण्ठा नहीं है वहीं तो वैकुण्ठ है। सुना है कि वैकुण्ठ में भगवान् रहते हैं।

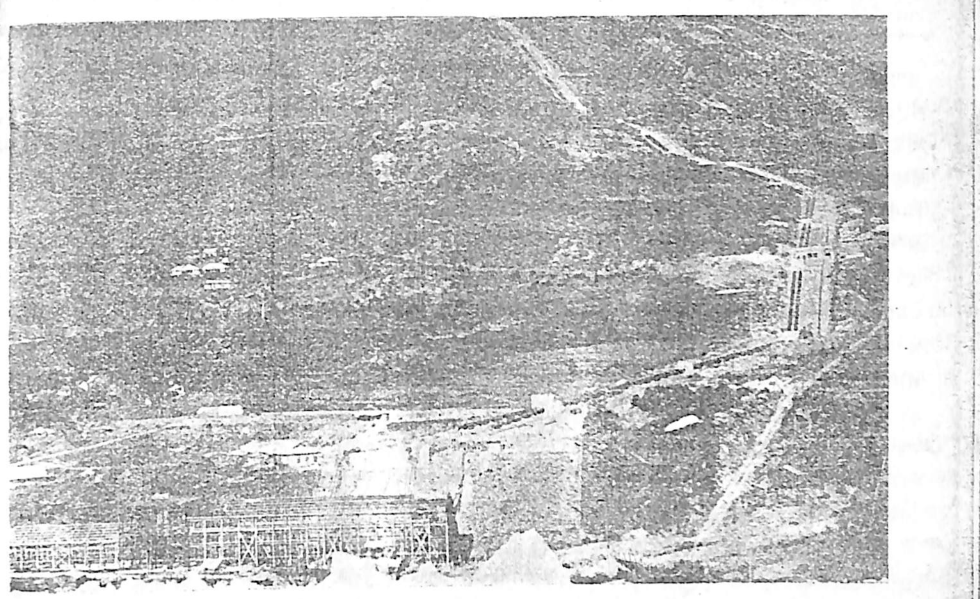
गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

ओ मेरी गोदी के धन!

जीवन के प्रभात-शैशव में
जब से अपना ज्ञान हुआ
गुड़िया बना खिलाया तुझको
कितना भोला वह बचपन!
ओ मेरी गोदी के धन!
कुसुम चुने प्रभु की पूजा को
बहुत रूप से ध्यान किया
कर आह्वान बुलाया तुझको
था वह मेरा नवयौवन!
ओ मेरी गोदी के धन!

नारी का जीवन सार्थक है
गोदी की इस शोभा से
अपने को खोकर पाया है
मैंने सुन्दर नव-जीवन!
ओ मेरी गोदी के धन!
तू विभूति है निखिल विश्व की
मेरी आँखों का तारा
जाने क्या इतिहास बताते
तेरे ये मुकुलित लोचन!
ओ माँ की गोदी के धन!



[योगेन्द्रनगर में बिजली का पावरहाउस उह्ल नदी से आनेवाले पानी के दो नल और ट्रक की सड़क बाईं ओर है।]

मेरी कुल्लू-यात्रा

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

श्री सन्तराम जी के इस सुन्दर यात्रा-वृत्तान्त का पूर्वार्द्ध 'सरस्वती' के गत अङ्क में प्रकाशित हो चुका है। जिन्होंने उस अङ्क को पढ़ा होगा वे इसको भी पढ़ कर प्रसन्न होंगे।

उह्ल नदी से जहाँ पानी लिया गया है वहाँ जाने के लिए बिजली के पावरहाउस के निकट सीधे खड़े पहाड़ पर रेल की पटरी के सदृश एक पथ बनाया गया है। उस पर बिजली का ट्रक (छकड़ा) चलता है। जो लोग देखने के लिए ऊपर जाना चाहते हैं उन्हें एक रुपये के काग़ज़ पर एक 'बाँड' लिखना पड़ता है। इस ट्रक के तीन स्टेशन हैं। किसी किसी जगह तो यह मार्ग इतना सीधा खड़ा है कि डर लगता है कि यदि ट्रक का रस्सा टूट जाय तो ट्रक पहाड़ की चोटी से सीधा कई सहस्र फ़ुट नीचे जा गिरे। हम भी इस ट्रक पर सवार होकर पर्वत पर चढ़े। हम सबका एक ही 'बाँड' से काम चल गया, प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग 'बाँड' नहीं भरना पड़ा। चित्र में ट्रक का मार्ग और पानी के दो नल साफ़ दीख रहे हैं।

(२)

२९ अगस्त को निक्का खच्चरों को लेकर योगेन्द्रनगर आ पहुँचा। बूँदा-बाँदी बराबर हो रही थी, इसलिए आगे चलना कठिन था। योगेन्द्रनगर के आर्य-समाज के प्रधान श्रीयुत गुरुदास रायजी हमारे 'जात-पाँत-तोड़क-मण्डल' के प्रेमी और मण्डल की मुखपत्रिका 'क्रान्ति' के ग्राहक निकले। उन्होंने रात्रि को मेरे व्याख्यान का प्रबन्ध कर दिया। यद्यपि आकाश मेघाच्छादित था, तो भी श्रोतागण अच्छी संख्या में आ गये। मैंने कोई सवा घंटे तक

वर्णभेद की हानियाँ बताते हुए उसे शुद्धि, अछूतोद्धार और संगठन के मार्ग में भारी रुकावट सिद्ध किया। इसके बाद जनता से प्रश्न करने को कहा गया। योगेन्द्रनगर की सनातन-धर्म-सभा के मंत्री महाशय ने कुछ प्रश्न किये, जिनका उत्तर दिया गया। इस वाद-विवाद में जीत-हार का भाव काम नहीं कर रहा था, वरन हिन्दू-जाति की अवस्था को उन्नत करने के उपायों पर एक प्रकार से प्रेमपूर्वक विचार-विनिमय हो रहा था। सनातन-धर्म-सभा के मंत्री महाशय का व्यवहार बहुत ही सज्जनोचित था। श्रीयुत गुरुदास रायजी के उद्योग से वहाँ 'मण्डल' की पुस्तकें अच्छी बिकीं। इधर हिन्दी का प्रचार नहीं के बराबर होने पर भी डाक्टर अम्बेडकर-रचित 'जाति-भेद का उच्छेद' नामक पुस्तक की कई प्रतियाँ निकल गईं।

योगेन्द्रनगर से कुल्लू को तीन मार्ग जाते हैं। एक तो मण्डी होकर और दूसरा भब्बू की जोत से और तीसरा गूमा, दरङ्ग, कटौला और बजौरा होते हुए। मण्डी के रास्ते मोटरलारी जाती है। दूसरे मार्ग में पहले योगेन्द्रनगर से चलकर १३ मील पर झरिङ्गरी का पड़ाव मिलता है। झरिङ्गरी से ११ मील आगे शिल बधवानी, उससे १२ मील आगे कड़ाओं, और उससे ८ मील आगे सुल्तानपुर (कुल्लू) है। भब्बू की घाटी सागर-तल से १०,००० फ़ुट ऊँची है। यह सारा मार्ग पर्वतों और वनों में से होकर जाता है, इसलिए यहाँ गर्मी का नाम तक नहीं। प्राकृतिक दृश्य बड़े रमणीक हैं। हमारा विचार इसी मार्ग से कुल्लू जाने का था। परन्तु यहाँ पहुँचने पर पता लगा कि वर्षा के कारण मार्ग बहुत ख़राब हो गया है। रास्ते में कीचड़ है। कीचड़ में ऐसी छोटी छोटी अगणित जोंकें हैं जो उछलकर पाँवों और टाँगों में लग जाती हैं। उनका पता तभी लगता है जब वे रक्त पीकर फूल जाती हैं। इनके अतिरिक्त भालुओं और डाकुओं का भी त्रास बढ़ गया है। सबसे बढ़कर कठिनाई यह है कि जब से लारी का मार्ग खुला है, भब्बू का मार्ग उजड़ गया है। अब इधर पड़ावों पर खाद्य-सामग्री भी नहीं मिलती। हमारे साथ स्त्रियाँ और बच्चे थे। इसलिए हमने इस मार्ग से जाने का विचार छोड़ दिया। तीसरा मार्ग योगेन्द्रनगर से उरला, उरला से दरङ्ग, दरङ्ग से कटौला, कटौला से बजौरा और बजौरा से कुल्लू है। हमने इसी मार्ग से चलने का निश्चय किया।

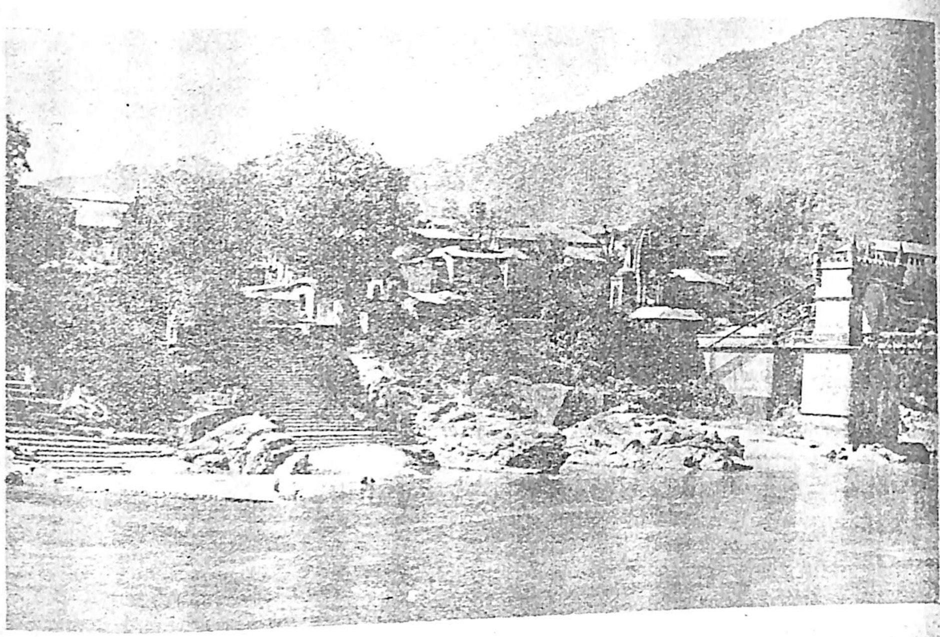
३० अगस्त १९३७ को सवेरे मेरी स्त्री और भतीजी लारी में सवार हो गईं, क्योंकि वे थक गई थीं। कुल्लू तक एक सवारी का किराया ३॥।-) लगा। शेष हम सब पैदल चले। बूँदा-बाँदी हो रही थी, इसलिए गर्मी से बचाव रहा। बारह मील जाने पर उरला नाम का स्थान मिला। यहाँ मण्डी-राज्य का डाक-बँगला और सराय है। परन्तु सराय बिलकुल जीर्ण अवस्था में थी। खाने को भी यहाँ कुछ न मिला। योगेन्द्रनगर से हम रोटियाँ बनवा लाये थे। वही यहाँ बैठकर खाईं। पहाड़ का दृश्य सुन्दर था। चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। यहाँ एक बावली पर हिन्दी-अक्षरों में एक शिलालेख देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बनवानेवाले सज्जन का नाम श्री हेमप्रभ ठेकेदार। पंजाब में ऐसे शुद्ध संस्कृत नाम बहुत कम सुनाई देते हैं। उरला में थोड़ा विश्राम करने के बाद हम आगे चल पड़े और ऊला, पद्दर और नारला आदि छोटे छोटे स्थानों में से होते हुए ८ मील चलकर रात में कुल्लू पहुँचे। कुल्लू में ठहरने के लिए हमें एक दूकान का साफ़ सुथरा बराण्डा मिल गया। हम अपना असबाब अभी भली भाँति रखने भी न पाये थे कि मूसलधार वर्षा होने लगी। जल-स्थल एक हो गया। यहाँ केवल एक ही दूकान थी। उससे आटा, दाल, घी आदि लेकर रोटी बनाई। २० मील चलने और पर्वतों की स्वच्छ वायु के कारण भूख ख़ूब लग रही थी। रोटी बड़ी मीठी और स्वादिष्ट जान पड़ी। दूकानदार का नाम चौधुरीराम था। रात को पीने के लिए हुकुमचन्द के घर से दूध भी मिल गया। सुना है, पहले यहाँ कई दूकानें थीं। परन्तु जब से मोटरगाड़ी चलने लगी, सब बर्बाद हो गईं। योगेन्द्रनगर से बैठकर मुसाफ़िर सीधा मण्डी जा ठहरते हैं, इसलिए दूकानें नहीं चलतीं।

रात भर पानी बरसता रहा। सवेरे बन्द हुआ। मैं प्रातः उठकर घूमता-घूमता सड़क से थोड़ा ऊपर एक मकान में गया। इसका स्वामी तो मर गया था, पर उसकी विधवा-स्त्री और पुत्र हुकुमचन्द मौजूद थे। हुकुमचन्द की माता ने बड़े सत्कार के साथ मुझे ताज़ा दुहा हुआ दूध गिलास भरकर दिया। मैंने अभी हाथ-मुँह भी नहीं धोया था। इसलिए धन्यवाद-पूर्वक लौटाना चाहा। परन्तु उस देवी के आग्रह करने पर मुझे पीना ही पड़ा। उन पहाड़ी लोगों का आतिथ्य-भाव देखकर मेरे मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तब हुकुमचन्द की बाल-विधवा बहन भी आ गई। यह लड़की बड़ी सुशील और सुसभ्य थी। इसके बाल-वैधव्य को देख बड़ा दुःख हुआ। हमने अपनी लड़कियों को भी इनसे मिलाया। यह घर कभी अच्छा सम्पन्न था। यहाँ की सभी दूकानें इनकी थीं। गाँव में इनकी भूमि भी बहुत थी। परन्तु हुकुमचन्द के पिता के देहान्त से इनका काम अब बहुत खिसक गया है।

३१ अगस्त को हम कुल्लू से आगे चले। हल्की हल्की बूँदें पड़ रही थीं। रात की भारी वर्षा से सड़क टूट गई थी। सड़क पर पानी की नहरें बह रही थीं। गूमा के निकट से हमने एक पगडंडी के रास्ते जल्दी दरङ्ग पहुँचने का निश्चय किया, क्योंकि सड़क कुछ घूमकर आती थी। पगडंडी धान के खेतों में से पर्वत के ऊपर होकर गई थी। रास्ते में बिछलाहट, लम्बी घास, टूटे हुए वृक्ष, कँटीली झाड़ियाँ, खड्ड, बड़े बड़े पत्थर तंग कर रहे थे। एक जगह पानी की धारा इतने ज़ोर से बह रही थी कि गार्गी के पाँव से एक चप्पल निकलकर बह गया। जितनी देर में झुककर वह पकड़ा जाता, उतनी देर में पानी का खर-स्रोत उसे बहाकर सहस्रों फ़ुट नीचे बहे जा चुका था। कुछ दूर आगे चलने पर पगडंडी का निशान लुप्त हो गया। वहाँ बड़े बड़े पेड़ों और 'ढंखों' के टूटने और नालों के गिरने से रास्ते का कुछ पता ही नहीं चलता था। चारों ओर घना वन था। जलप्रपातों के शब्द से कुछ सुनाई न देता था। भूख लग रही थी। कुछ सूझता न था कि किधर जायँ। जगह जगह पर फिसल कर गिर जाने का भय था। कुछ दूर पर नीचे एक बड़ा खड्ड देख पड़ा। टूटे हुए वृक्षों और हज़ारों मन के बड़े बड़े प्रस्तर-खण्डों पर से लाँघते हुए बड़ी कठिनाई से किसी तरह उसके किनारे पर पहुँचे। परन्तु जल-धारा इतने प्रबल वेग से बह रही थी कि उसको पार करना भयावह जान पड़ता था। हम हैरान थे कि क्या करें और किधर जायँ। इतने में निक्का सामने खच्चर लिये आता दिखाई दिया। उसको आवाज़ देकर बुलाया। [illegible] खड्ड के दूसरे किनारे पर पहुँचा तब हमने जल-धारा में पैर डालने का साहस किया। खड्ड फिसलनेवाले पत्थरों से भरा था और उन पर गहरा पानी विद्युत्-वेग से बह रहा था। नरेन्द्र का पाँव फिसल गया और वह बहने लगा। परन्तु उसका हाथ मैं पकड़े हुए था, इसलिए वह बच गया। नहीं तो दुर्घटना हो जाने में कोई कसर बाक़ी न थी। निक्के से पता लगा कि हम रास्ता भूल गये हैं। रात की वर्षा से पगडंडी नष्ट हो गई थी। अब दरङ्ग से कटौला जाना कठिन था। हम खड्ड से ऊपर चढ़ने लगे और कुछ ही देर में ऊपर सड़क पर जा पहुँचे। आज के कष्ट से हमने यह निश्चय किया कि पहाड़ों में पगडंडियों से कभी नहीं जायँगे। यहाँ से थोड़ी दूर चलकर दरङ्ग का पड़ाव मिला।

दरङ्ग कुल्लू से केवल ४ मील है, परन्तु हमें यहाँ पहुँचने में कोई ४ घण्टे लग गये। दरङ्ग में एक हलवाई की दूकान थी। उससे रोटी बनवाई। कुछ केले और सेब भी मिल गये। यहाँ नमक की एक खान है। हम उसे देखने गये। परन्तु रात की वर्षा से पहाड़ गिर जाने से उसका मुँह बन्द हो गया था, इसलिए हम उसके भीतर न जा सके। साल्ट-इंस्पेक्टर श्रीयुत पुरुषोत्तमराम एक सज्जन व्यक्ति हैं। उन्होंने हमें खान का प्राकृतिक नमक और उसे साफ़ करके कलमों के रूप में बनाया हुआ नमक दोनों दिखाये। प्राकृतिक नमक काले रंग का था और साफ़ किया हुआ रुई-सा सफ़ेद। इससे मण्डी-राज्य को अच्छी आय हो जाती है। पहले गूमा में भी नमक की खान थी, परन्तु कुछ काल से वह बंद कर दी गई है।

दरङ्ग में दोपहर का भोजन करके हम आगे चल पड़े। साढ़े तीन मील चलने पर टाँडू नाम का स्थान मिला। यहाँ एक ही दूकान है। वहाँ आटा, दाल, घी, दूध, कपड़ा, दियासलाई आदि सब चीज़ें मिलती हैं। यहाँ आने पर पता लगा कि आगे सड़क टूटी हुई है। खच्चर-घोड़े की बात तो दूर रही, ख़ाली मनुष्य भी पार नहीं जा सकता। इसलिए यहीं ठहरना पड़ा। यहाँ कोई सराय या धर्मशाला नहीं थी। एक पहाड़ी मकान था, जिसके निचले भाग में ढोर बँधते थे और ऊपर के तल्ले में दूकानदार की कुछ फालतू चीज़ें पड़ी थीं। ऊपर के तल्ले का बराण्डा अच्छा था। उसी को साफ़ करके हमने अपने बिछौने लगा लिये। रात को केवल दूध पीकर निर्वाह किया।



[मण्डीनगर में व्यास नदी का घाट।]

रात को फिर ज़ोर की वर्षा हुई, परन्तु सवेरे बन्द हो गई। टाँडू एक बहुत सुन्दर स्थान है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। नहाये-धोये पर्वत धानी वस्त्र पहने और सिर उठाये खड़े थे। गगन-चुम्बी चोटियाँ बादलों से ढँकी हुई थीं। धान के खेत लहरा रहे थे। मक्की पक रही थी। पंजाब में केले के पत्ते तनिक बड़े होते ही फट जाते हैं। परन्तु यहाँ बिलकुल साबूत थे। रात की वर्षा के कारण सड़क पर पानी की धारायें बह रही थीं। पर्वत-शिखरों के टूटने और विशाल वृक्षों के गिरने से सड़क रुक गई थी। पहाड़ टपक रहे थे। नालों में पूर आ रहा था। सड़क पर पानी के खड्ड बड़े ज़ोर से गिर रहे थे। हम न आगे जा सकते थे, न पीछे लौट सकते थे। सवेरे का भोजन यहीं तैयार किया। इस प्रवास में सादा भोजन खाकर भी वह आनन्द आया जो लाहौर में छप्पन व्यञ्जन खाकर भी नहीं आता। यहाँ १) सेर घी और ‒)॥ सेर आटा मिला।

सवेरे ही श्रीयुत इन्द्रसिंह और रणवीर दोनों आगे रास्ता देखने गये। मैं भी एक पगडंडी के रास्ते जंगल में से होकर खड्ड पर पहुँचा। पानी बहुत गहरा था। एक पहाड़ी मनुष्य लम्बी लाठी के सहारे कमर तक पानी में से होकर पार चला गया। परन्तु मुझे साहस नहीं हुआ। मैं वापस टाँडू लौट आया। इन्द्रसिंह कोई १२ बजे लौटे। उन्होंने आकर समाचार दिया कि मण्डीनगर से कोई दो मील इधर सड़क टूटी है। खड्ड बड़े ज़ोर से उस पर गिर रहा है। परन्तु मण्डी के फ़ौजी सिपाही उसको मरम्मत कर रहे हैं। उन्होंने वचन दिया है कि हम तुम्हें पार करा देंगे।

अतएव १ सितम्बर ३७ को तीसरे पहर हम टाँडू से चल पड़े। रास्ते में कोई चार मील चलने के बाद वह जगह मिली, जहाँ खड्ड ने सड़क को तोड़ डाला था। हम तो पैदल खड्ड को पार कर गये, परन्तु खच्चरों को, असबाब उतारकर, ख़ाली लँघाना पड़ा। फ़ौजी सैनिकों ने हमारा असबाब उठाकर दूसरे किनारे पर पहुँचा दिया। खड्ड में से लाँघते समय गिरकर बह जाने का डर बराबर

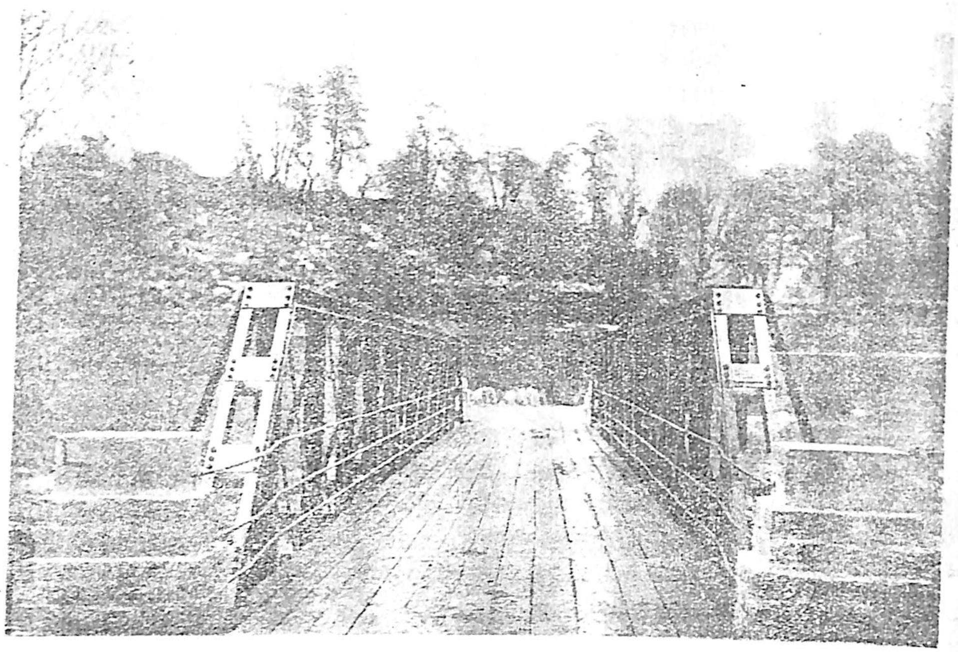
गा रहता था। टाँडू से मण्डी ६ मील है। रास्ता ास नदी के किनारे किनारे है। हम सायंकाल वहाँ हुँच गये और आर्यसमाज-मन्दिर में जाकर टिके। ण्डी योगेन्द्रनगर से ३५ मील है। यहाँ व्यास नदी र एक पुल बँधा है। उस पर से होकर नगर में जाना ड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति से दो पैसे कर लिया जाता है।

मण्डी—यह मण्डी-राज्य की राजधानी है। व्यास नदी के किनारे पर बसी है। एक छोटा-सा सुन्दर नगर है। एक हाई स्कूल है। सारे राज्य में हिन्दुओं की संख्या ९५ प्रतिसैकड़ा से भी अधिक है। पंजाब भर में केवल यही एक राज्य है, जिसकी अदालत की भाषा उर्दू के स्थान में हिन्दी है। यद्यपि यहाँ के लोगों की भाषा में संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता है और ये लोग अपना निजी कार-बार भी हिन्दी-अक्षरों में ही करते थे, तथापि आज से कोई दो वर्ष पहले तक यहाँ भी उर्दू ही अदालत की भाषा थी। अदालती समन आदि तो हिन्दी में छपे होते हैं, परन्तु कचहरी के मुंशी उनमें लोगों के नाम अब भी उर्दू-लिपि में लिखते हैं। यहाँ के स्त्री-पुरुषों के नाम संस्कृत-भाषा के देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। एक महाशय का नाम हरिवल्लभ, आर्यसमाज के मंत्री महोदय का नाम पिनाकपाणि और एक ठेकेदार महाशय का नाम हेमप्रभ था। स्त्रियों के नाम कोकिला, कला, ललिता, अयोध्या आदि सुनने को मिले। ऐसे नाम पंजाब में नहीं होते। मण्डी का चौहटा बाज़ार प्रसिद्ध है। कई अच्छे मन्दिर हैं। मण्डी में रबड़ी और दही बहुत सस्ता और अच्छा मिलता है।

पिछले दिनों यहाँ एक 'मण्डी मण्डी-वालों के लिए' का आन्दोलन चला था। मण्डीवाले कहते थे कि राज्य के बड़े बड़े पद हमें ही मिलने चाहिए— राज्य के बाहर के लोगों को लाकर उन पर नियुक्त नहीं करना चाहिए। इस आन्दोलन में बहुत-से मनुष्यों को जेल जाना पड़ा और स्त्रियों को लाठियों के प्रहार सहने पड़े। परन्तु यह सफल न हो सका। इसकी विफलता का एक बड़ा कारण जाति-भेद था। मण्डी के केवल खत्री लोग ही अधिकतर सरकारी नौकरी करते हैं। उन्होंने ही इस आन्दोलन को चलाया था। उन्हीं की स्त्रियाँ सत्याग्रह करने निकली थीं। परन्तु दूसरी जाति के लोग उनके साथ इस कार्य में सम्मिलित न हुए। इससे यह आन्दोलन दब गया। यदि खत्री एक अलग जाति न होकर एक ऐसा जन-समुदाय होता जिसका दूसरे लोगों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध होता तो अवश्य ही मण्डी की सारी प्रजा अपने भाई-बहनों को जेल जाते और डण्डे खाते देख समवेदना से उनके साथ सम्मिलित हो जाती। अब एक खत्री के प्रति सिवा दूसरे खत्री के और किसी को कोई सहानुभूति नहीं पैदा होती, क्योंकि सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से दूसरे हिन्दुओं की खत्रियों के साथ कोई भी चीज़ साझे की नहीं है।

मण्डी में पहुँचकर हमें मालूम हुआ कि ३० और ३१ अगस्त की मध्यवर्ती रात्रि को जो वर्षा हुई थी उससे व्यास नदी की उपनदी रत्ती खड्ड में इतनी ज़ोर की बाढ़ आई कि उसमें मनुष्य, गायें, भैंसें, बकरियाँ, छप्पर, ट्रंक, खाट, कपड़े, संदूक़, लकड़ी आदि सभी चीज़ें बहकर व्यास में आ गिरीं। धन और जन दोनों की घोर हानि हुई। इस वर्षा से सड़क के टूट जाने के कारण जो लारी योगेन्द्रनगर से ३० अगस्त को कुल्लू के लिए चली थी वह तो उसी दिन वहाँ पहुँच गई थी, परन्तु उसके जो मुसाफ़िर रात में विश्राम करने के लिए मण्डी में ठहर गये थे वे फिर दूसरे दिन आगे न जा सके। वे अभी यहीं पड़े थे। जिस लारी में मेरी स्त्री सवार हुई थी उसी में लुधियाना के श्रीयुत भक्तराम जी डोगरा एडवोकेट, उनकी धर्मपत्नी और दिल्ली के तीन प्रोफ़ेसर भी योगेन्द्रनगर से बैठे थे। मेरी स्त्री तो उसी दिन मण्डी से कुल्लू के लिए चल दी थी, परन्तु ये महाशय मण्डी में ठहर गये थे। रात को वर्षा हो जाने से मण्डी से आगे दो-तीन जगह सड़क टूट गई। लारी का चलना असंभव हो गया। इसलिए ये अभी यहीं पड़े थे। न ये आगे जा सकते थे और न पीछे, क्योंकि दोनों ओर सड़क टूट गई थी। वर्षा और पत्थरों के कारण हम सबके जूते टूट गये थे। यहाँ उनके मरम्मत कराये और कुछ नये मोज़ लिये।

२ सितम्बर को लोगों के मना करने पर भी हम मण्डी से आगे चल पड़े। मण्डी से एक मार्ग कटौला होकर दुलची कण्डी से बजौरा और कुल्लू को जाता है। यह रास्ता कुछ छोटा भी है। सन् १९२२ में जब मैं कुल्लू गया था तब इसी रास्ते से गया था। तब मोटर का निचला मार्ग बना



[डोबी के पुल का दृश्य ।]

भी न था। परन्तु अब यह मार्ग उजड़ गया है। सारा आवागमन निचले मोटर के मार्ग से ही होता है। पहले ख़याल आया कि इसी कण्डी के मार्ग से चलें, क्योंकि मोटर की सड़क के टूट जाने के समाचार मिल चुके थे। परन्तु बाद को किसी ने सुझाया कि मोटर का मार्ग टूटा है तो उसकी मरम्मत भी हो रही होगी। टूटी जगहों को पार करने के लिए मज़दूरों की सहायता भी मिल सकेगी। परन्तु यदि दुलची कण्डी का मार्ग कहीं से टूट गया तो वहाँ न तो कोई सहायता मिलेगी और न कोई खाद्य-सामग्री ही। एक बार टूट जाने पर फिर महीनों उस सड़क की कोई सुधि ही नहीं लेता। इसलिए अन्त को मोटर के मार्ग से ही चलना निश्चित हुआ। इस मार्ग से कुल्लू ४३ मील था। मण्डी से आगे कोई छः मील तक जगह जगह सड़क बुरी तरह टूटी हुई थी। लारी का चलना तो दूर, घोड़ा-खच्चर भी नहीं जा सकते थे। पैदल मनुष्य झाड़ियों और पत्थरों को पकड पकड कर बड़ी कठिनाई से चलते थे। पहाड़ की सड़क मैदान की सड़क की तरह नहीं होती। वह पहाड़ को काटकर बनाई जाती है और प्रायः नदी के किनारे किनारे होती है। इसलिए उसके एक ओर पर्वत की ऊँची दीवार होती है और दूसरी ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे नदी या खड्डु। सड़क जब टूटती है तब रास्ते में एक बड़ी गहरी खाई बन जाती है, जिसमें यदि मनुष्य गिर पड़े तो लुढ़कता और पत्थरों से टकराता हुआ सीधा नदी में जा पहुँचे। एक जगह इसी प्रकार सड़क टूटी थी। हमने खच्चरों का असबाब उतार कर ख़ाली पशुओं को पार कराया। फिर असबाब को आप उठाकर दूसरी ओर ले गये। इससे कुछ दूर आगे, मण्डी से ४ मील के अन्तर पर, एक जगह बड़ा भारी 'ल्हासा' (पर्वत-खण्ड) सड़क पर आ गिरा था। इससे रास्ता रुक गया था। मिट्टी के ढेर में भारी दलदल थी। घोड़े-खच्चर का तो कहना ही क्या, ख़ाली मनुष्य भी घुटनों तक धँस जाता था।

थी। पेड़ उखड़े पड़े थे। पानी टपक रहा था। अच्छी बात यह थी कि इसे साफ़ करने के लिए मज़दूर लगे हुए थे। इन्होंने पैदल यात्रियों के लिए एक सँकरा सा मार्ग बनाया था। उस मार्ग से पहले चढ़ाई थी, फिर एकदम दूसरी ओर को उतराई थी। यहाँ कोई तनिक भी फिसल जाय तो सीधा सैकड़ों फ़ुट नीचे व्यास नदी में जा पहुँचे। यहाँ हमने खच्चर और घोड़े पर से असबाब उतार कर मज़दूरों की सहायता से उन्हें पार ले जाने का यत्न किया। खच्चर बड़ा सयाना जन्तु है। वह बहुत देख-भालकर पैर रखता है। थोड़ा सा रास्ता भी मिल जाय तो पार चला जाता है। सो हमारा खच्चर सकुशल इस 'ल्हासे' पर से होकर दूसरी ओर चला गया। परन्तु टट्टू बड़ा मूर्ख और दुर्बल था। वह बड़ी कठिनाई से ल्हासे पर चढ़ाया जा सका। परन्तु शिखर पर पहुँच कर उसके हवास उड़ गये। आगे की ओर सड़क पर उतरने के बजाय वह नदी की ओर गिर पड़ा। निक्के ने चिल्लाना आरम्भ किया, हाय! मेरा घोड़ा गया, हाय! मेरा घोड़ा मरा। सौभाग्य से वहाँ बहुत से मज़दूर मौजूद थे और घोड़े पर हमारा असबाब नहीं था। अन्यथा घोड़ा तो मरता ही, साथ ही हमारा बहुमूल्य असबाब भी नदी की भेंट हो जाता। निक्के के चिल्लाने पर मज़दूरों ने दौड़कर घोड़े को पकड़ लिया और बड़ी कठिनाई से उसे उठाकर पार लँघाया। मार्ग में हमें बहुत-सी लारियाँ, छकड़े और खच्चर, रास्ता टूट जाने के कारण, रुके हुए मिले। हम कोई १२½ बजे दोपहर को मण्डी से १२ मील चलकर पण्डोह के पड़ाव पहुँचे।

पण्डोह एक छोटा सा सुन्दर स्थान है। डाक-बँगला भी है। पाँच-छः दूकानें हैं। दूध और आटा-दाल मिल जाता है। यहाँ जीवनी नाम का एक बड़ा खड्डु बाईं ओर से आकर व्यास नदी में मिला है। वर्षा-काल में यह खड्डु दूकानों तक चढ़ आता था और बड़ी हानि करता था। परन्तु जब से पत्थरों का एक बड़ा बाँध बाँध दिया गया है तब से बहुत बचाव हो गया है। जीवनी और व्यास के संगम पर एक पुल बनाया गया है। इसी पर से होकर आगे कुल्लू को जाते हैं। जीवनी खड्डु में स्नान करके और कपड़े धोकर बड़ा आनन्द आया। कपड़े बहुत अच्छे निखरे।

आज हमने यहीं पड़ाव किया। पण्डोह में श्रीयुत गोन्दूराम ठेकेदार एक सज्जन पुरुष हैं। पहले जङ्गल और सड़कों के ठेकेदार थे। उस काम में ख़ूब पैसा कमाया था। पर अब दूकान करते हैं। इनके सुपुत्र श्रीयुत भूपचन्द जी कालेज के विद्यार्थी हैं। मण्डी से पण्डोह आते हुए रास्ते में हमारी इनसे भेंट हो गई थी। पण्डोह पहुँचने पर इन्होंने हमें अपना आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करने पर विवश किया। इनका मकान सड़क से कोई दो फ़र्लाङ्ग ऊपर था। हमारा असबाब दूकान में रखवाकर ये हमें अपने घर ले गये। रात भी हमें वहीं सुलाया। बिछौने तक अपने पास से दिये। इनके घर की देवियाँ हमारी लड़कियों से इस प्रकार हिल-मिल गईं कि हमें ऐसा जान पड़ने लगा, मानो यह अपना ही घर है। इनके आर्य-शिष्टाचार ने मुझे ऐसा अनुभव कराया, मानो मैं कलियुग में नहीं, सत्ययुग में जी रहा हूँ। रात में ख़ूब कहानियाँ सुनते-सुनाते रहे। मण्डी की बोली लाहौर की बोली से थोड़ी भिन्न है। परन्तु हिन्दी से ख़ूब मज़े से काम चल गया।

पहाड़ों के देहाती घर प्रायः तङ्ग और गन्दे होते हैं। नीचे के खण्ड में लोग पशु बाँधते हैं और ऊपर के खण्ड में आप रहते हैं। छतों के नीची होने से सारा मकान धुएँ से काला हो जाता है। परन्तु श्रीभूपचन्द जी का मकान देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह ख़ूब साफ़-सुथरा और खुला है। मध्य में एक बड़ा चौक है। चौक में पत्थर का एक बड़ा कुंड है। कुंड के मध्य में एक ऊँचे चबूतरे पर एक बड़े गमले में तुलसी का पेड़ लगा है। चौक के चारों ओर, थोड़ा-सा बरामदा छोड़कर, कमरे बने हैं। रसोई-घर एक ओर अलग है। मकान की छत, बँगले की छत के सदृश, इस प्रकार ढालू है कि उस पर पानी अथवा बर्फ़ नहीं ठहर सकता। सफ़ाई की दृष्टि से यह अपनी उपमा आप ही है। इसके चारों ओर हरी-भरी खेती और फल-दार पेड़ लहलहा रहे हैं। देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। पण्डोह में, सभी दूसरे पहाड़ी गाँवों के सदृश, घर एक-दूसरे से दूर दूर हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो पहाड़ पर कोठियाँ बनी हों। श्रीयुत भूपचन्द और उनके परिवार ने जिस शुद्ध प्रेम से हमें आतिथ्य-दान दिया उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

३ सितम्बर १९३७ को हम सवेरे पण्डोह से चले।



[कुल्लू की सुन्दरियाँ विभिन्न वेशों में।]

नूपचन्द जी हमें दो मील तक छोड़ने आये। पण्डोह से आगे १३ मील पर औट का पड़ाव है। रास्ता व्यास नदी के किनारे किनारे चला गया है। बड़ा साफ़-सुथरा है। सवेरे ख़ूब शीतल पवन चल रहा था। जगह जगह पर्वतों से पानी टपक रहा था। नदी के दूसरे किनारे पर बड़े बड़े जल-प्रपात गिर रहे थे। दूर से ये चाँदी की श्वेत रेखाओं के समान चमकते थे। सड़क की बाईं ओर सैकड़ों फ़ुट ऊँची हरित पर्वतमाला थी और दाईं ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे व्यास नदी प्रचण्ड वेग से बह रही थी। इन सब बातों के कारण, दोपहर होने पर भी, चलते समय बिलकुल गरमी नहीं मालूम होती थी। दोपहर को औट पहुँचकर देवी शत्रो और बालकृष्ण के भोजनालय में हमने हलुआ-पूरी बनवाकर खाई।

औट में तीन-चार दूकानें हैं। उनमें से दो रोटी और मिठाई की हैं। यहाँ से व्यास नदी के बायें किनारे के साथ साथ शिमला को सड़क गई है। शिमला यहाँ से १०३½ मील है। औट में व्यास के पार जाने के लिए एक पुल बना है। आज तक हमें कोई भी यात्री पैदल चलता हुआ नहीं मिला था। सभी लारियों में लदकर जा रहे थे। परन्तु यहाँ मुझे करनाल के पुराने मित्र सरदार उजागरसिंह वकील मिले। वे शिमला से पैदल आये थे और कुल्लू जा रहे थे। दोपहर को थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर हम फिर आगे चल पड़े और सायंकाल ९ मील चल कर अगले पड़ाव बजौरा में पहुँचे।

यहाँ मण्डी-राज्य की सीमा समाप्त हो जाती है। बजौरा ब्रिटिश इलाक़ा है। यहाँ से कुल्लू-उपत्यका आरम्भ होती है। यह एक खड्ड के किनारे बसा है। यहाँ एक सरकारी सराय, डाक-घर, तार-घर और स्कूल है। हलवाई या रोटी की कोई दूकान नहीं। सराय में =) देने पर एक कमरा मिल जाता है। सराय साफ़-सुथरी है। शौच और स्नान के लिए नीचे खड्ड बहता है। मण्डी से कटौला और दुलची घाटी में से होकर जो मार्ग कुल्लू को आता

है वह यहाँ आकर मोटर की सड़क में मिल जाता है। यहाँ गडरास्टेट के सेब-नाशपाती के फलोद्यान हैं।

यहाँ मुझे अपने गाँव के दो लड़के—पुन्ना और रामचन्द—मिले। कोई चार-पाँच वर्ष से ये यहाँ खेती का काम करते हैं। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। पानी की प्राकृतिक नहरें बहती हैं। भाजी-तरकारी प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होती है। इन्होंने एक घोड़ा रख छोड़ा है। उस पर लादकर रोज़ या तीसरे दिन कुल्लू ले जाते हैं। जो तरकारियाँ नीचे मैदान में शरद्-ऋतु में होती हैं वे यहाँ इस समय थीं। कई वर्ष से ये लड़के घर नहीं गये थे। इनकी बहन और विधवा माता ने मुझे कहा था कि ये कई वर्ष से घर नहीं आये; इन्हें प्रबल प्रेरणा करना कि एक बार घर आकर मिल तो जायँ। मैंने दोनों भाइयों को बुलाकर समझाया और उनसे वचन लिया कि वे दशहरे के बाद अवश्य माता से मिलने जायँगे।

४ सितम्बर १९३७ को सवेरे बजौरा से चलकर ३ मील पर भूँतर नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ बहुत-सी दूकानें हैं। हलवाई और रोटीवाला भी है। डाक घर, स्कूल, दो सरायें और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की डिस्पेंसरी भी है। जंगलात के रेंजर आदि कर्मचारी यहाँ रहते हैं। अच्छी रौनक़ की जगह है। यहाँ एक बड़ा भारी मैदान है। इसे प्रगान कहते हैं। मेरा अनुमान है कि इस स्थान का नाम भूतल (या भूमितल) भी इसके मैदान होने के कारण ही है। क्योंकि इसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं और बीच में यह विस्तृत समतल भूमि है। यहाँ जून मास में दो दिन मेला लगता है। यहाँ पार्वती नदी व्यास से आकर मिली है। दोनों के संगम पर लोहे का एक बड़ा पुल है। इसके ऊपर से होकर जाने से यह झूलने लगता है। इसके मध्य में खड़े होकर नदी की बहार देखें तो बड़ा आनन्द आता है। गर्मी में भी हिम-शीतल पवन के झोंके आते हैं। यह पुल श्रीयुत 'गार्डन डफ़ डम्बार ऑव एकरगिल केथन्स' नाम के किसी परोपकारी सज्जन ने अपनी जेब से ५० सहस्र रुपये लगाकर जनता के लिए बनवा दिया था। परन्तु यह ५० सहस्र से पूरा नहीं बन सका था। इस पर सरकार ने ३० सहस्र रुपया और डालकर सन् १८८० में इसे सम्पूर्ण किया था। पुल के दायें द्वार पर एक शिलालेख में पुल का सारा इतिहास दिया गया है। इस पुल को पार करके पार्वती उपत्यका में जाते हैं।

कुल्लू—भूँतर में दस-पन्द्रह मिनट विश्राम करके हम आगे चले। कुल्लू यहाँ से केवल ६ मील था। रास्ते में जापानी फलों का एक बग़ीचा मिला। इसे एक मुसलमान ख़ानसामे ने लगा रक्खा है। यहाँ से कुछ फल लेकर खाये। परन्तु ठीक पके न होने के कारण मुझे कुछ स्वादिष्ठ नहीं लगे। आगे मौहूल नाम का एक खड्ड मिला। यहाँ हमारे गाँव के ढेरूराम नामक एक व्यक्ति की दूकान मिली। ढेरूराम कोई ४० वर्ष से यहीं आकर बस गये हैं। यहाँ की एक स्त्री से उन्होंने विवाह कर लिया है। ये अब देश में नहीं जाते हैं। बरसों बाद इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मौहूल से आगे कोई दो-ढाई मील पर कुल्लू है। हम पौने १२ बजे वहाँ पहुँच गये। वर्षा से सड़क टूटने के कारण जब से लारी का आना-जाना बन्द हुआ है तब से मण्डी से कुल्लू पहुँचनेवाला पहला यात्री-दल हमारा ही था। लारी के जो यात्री मण्डी में रुक गये थे वे अभी तक यहाँ नहीं पहुँचे थे।

कुल्लू व्यास नदी के दायें तट पर बसा है। समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई ४,००० फ़ुट है। इसके चार भाग हैं। एक सुलतानपुर जो असली शहर है और सबसे ऊँची जगह पर अवस्थित है; दूसरा अखाड़ा जो सुलतानपुर से नीचे एक बड़ा बाज़ार है; तीसरा सर्वरी जो अखाड़े से भी नीचे है; चौथा ढालपुर का मैदान। सबसे अधिक रौनक़ अखाड़ा बाज़ार है। यहीं आकर मोटर ठहरते हैं। ढालपुर के मैदान में सरकारी दफ़्तर, अस्पताल, स्कूल, डाक-तार-घर हैं। बड़ी सुन्दर जगह है। देवदारु के पेड़ बड़े सुहावने ढङ्ग से लगाये गये हैं। दशहरे के दिनों में यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

कुल्लू में यों तो डाक-बँगला और रेस्ट-हाउस है, परन्तु उनका किराया और दूसरे ख़र्च इतने अधिक हैं कि केवल धनी लोग ही उनका उपयोग कर सकते हैं। साधारण लोगों के लिए यहाँ सराय है, पर वह उतनी साफ़ नहीं। हमें तो एक मित्र के द्वारा एक ख़ाली मकान 'अखाड़े' में मिल गया। वहीं हमने डेरा डाल दिया। कुल्लू सब-डिवीज़न का सबसे बड़ा सरकारी कर्मचारी यहीं रहता है। यहाँ बड़ा अच्छा बाज़ार है, होटल है, हलवाई की दूकानें हैं।

५ सितम्बर १९३७ को रविवार था। हम आर्य-समाज के सत्संग में सम्मिलित होने के लिए सुलतानपुर गये। [illegible] खोला। तब हम सबने मिलकर हवन किया। तत्पश्चात् जात-पाँत-तोड़क-आन्दोलन और कुल्लू में इस्लाम की दिन पर दिन बढ़ती हुई लहर के सम्बन्ध में बात-चीत हुई। आर्य-समाज के प्रधान श्रीयुत प्राणनाथ जी एडवोकेट ने आर्य-समाज के लिए मण्डल का साहित्य एवं डाक्टर अम्बेडकर-विरचित 'जाति-भेद का उच्छेद' नामक पुस्तक ख़रीदी।

कुल्लू के इर्द-गिर्द कई नाशपाती और सेब के बाग़ीचे हैं। इनमें से कुछ तो अँगरेज़ों के हैं और कुछ देशवासियों के। अँगरेज़ लोग फल महँगा देते हैं, देशवासियों के यहाँ सस्ता मिल जाता है। रोडा पाँधा और बंसी पाँधा के फलोद्यान प्रसिद्ध हैं। कुल्लू से छः मील दूर ५,००० फ़ुट की ऊँचाई पर बन्दरौल नाम का एक ग्राम है। वहाँ शीतल जल का एक उत्तम झरना है। वहाँ श्रीयुत ए० एच० जी का प्रसिद्ध सेब-उद्यान है। कहते हैं जैसा बढ़िया सेब इस बाग़ीचे में होता है, वैसा समूचे कुल्लू में अन्यत्र कहीं नहीं होता। कुल्लू में फल इतनी बहुतायत से होते हैं कि आप किसी भी बाग़ीचे में चले जाइए, आपको पेट भर कर खाने के लिए फल मुफ़्त में मिल जायँगे। यहाँ से कोई दो लाख रुपये के फल प्रतिवर्ष बाहर भेजे जाते हैं। मेरी स्त्री हमसे पहले ही, ३० अगस्त को, कुल्लू पहुँच चुकी थी। उसने हमारे लिए दो-तीन टोकरी नाशपाती और सेब लेकर रख लिये थे। वे हमने ख़ूब खाये। नाशपाती यहाँ एक आना सेर और सेब दो आने सेर मिल जाता है। नाशपाती बहुत मीठी थी, परन्तु सेब अभी कच्चे थे। तोड़ कर रखने से पन्द्रह-सोलह दिन में अच्छे ख़स्ता—आटे की तरह भुरभुरे—हो जाते हैं। ये ठीक कार्तिक में पकते हैं। हमारी सारी मंडली ने इतने फल खाये कि जी ऊब गया।

कुल्लू (सुलतानपुर) नीची जगह पर है। चारों ओर ऊँचे पर्वत हैं। इसलिए यहाँ बहुत ठंड नहीं होती। यहाँ सर्वरी नाम की एक नदी व्यास में आकर मिलती है। सर्वरी का पानी कुछ कालिमा लिये है। शायद इसी लिए इसका नाम सर्वरी पड़ा है। कुल्लू जल-वायु की दृष्टि से अच्छा स्थान है, परन्तु [illegible] लोग नदी के तट पर ही [illegible] करते हैं। इससे वहाँ इतनी दुर्गन्ध फैलती है कि बस्ती के निकट जो नदी का भाग है वहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। व्यास का पानी हिम-शीतल है। उसके दो लोटे शरीर पर डालना कठिन हो जाता है। परन्तु इस गन्दगी के कारण वहाँ नहाने को जी नहीं चाहता। 'अखाड़ा' बाज़ार से तनिक आगे एक 'जारू' है। वहाँ स्वच्छ जल का झरना है। प्रायः लोग वहीं नहाते हैं। वैसे व्यास के बर्फ़ानी पानी को पीकर तबीयत बहुत प्रसन्न होती है। किनारे पर इतना गन्दा रहते भी नदी का जल नील स्वच्छ देख पड़ता है।

६ सितम्बर १९३७ को हम सब पुरुष तो सवेरे ५½ बजे पैदल चल पड़े, परन्तु लड़कियों के लिए लारी में आने का प्रबन्ध कर दिया। लारी कुल्लू से दोपहर को चलती थी। कुल्लू से आगे मनाली का मार्ग व्यास नदी के साथ-साथ है और अधिकांश समतल और छायादार है। कुल्लू से ८ मील पर रायसन है। वहाँ दो-तीन बड़े बड़े फलोद्यान हैं। रायसन से आगे कोई ढाई मील पर डोभी और वहाँ से आगे डेढ़ मील पर कटराईं है। इन दोनों स्थानों पर बड़े बड़े फलोद्यान और डाक-घर हैं। डोभी में श्री डानल्ड का बाग़ीचा है। डाक-घर भी उस बाग़ीचे के फलों के पार्सल बाहर भेजने के लिए बनाया गया है। कुल्लू से लेकर कटराईं तक दूध या हलवाई की कोई दूकान नहीं। हाँ, स्थान स्थान पर सेब ज़रूर मिल जाते हैं। यहाँ एक मिडिल स्कूल और तीन-चार दूकानें हैं। अँगरेज़ों एवं धनी लोगों के लिए कई महँगे होटल भी हैं। सड़क से कोई दो फ़र्लाङ्ग नीचे उतर कर एक नाला बहता है। स्नान आदि के लिए वहीं जाना पड़ता है।

कटराईं से, एक ओर दो मील के अन्तर पर 'नगर' है। यहाँ गर्मियों में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर रहते हैं। यहाँ भी फल के कई बाग़ीचे हैं। बड़ी ठंडी जगह है। यहीं रोरिक-म्यूज़ियम है।

मनाली—कटराईं में रोटी की एक रद्दी-सी दूकान थी। वहाँ हमने भोजन बनवाकर खाया। फिर थोड़ी देर विश्राम करके कोई १२½ बजे आगे चल पड़े और सायङ्काल कोई ४½ बजे [illegible] मील चलकर मनाली जा पहुँचे। मनाली कुल्लू से २४ मील है। कुल्लू में मेरे मित्र श्री [illegible] जी नायब तहसीलदार हैं। उनकी कृपा से वहाँ पी० डब्ल्यू० डी० के रेस्ट-हाउस में ठहरने का प्रबन्ध हो गया।

मनाली समुद्र-तल से ६,२०० फ़ुट ऊँचा है। इससे कोई दो मील पहले कुल्लू की ओर 'कलाथ' नाम का और कोई डेढ़ मील आगे रोहटांग की ओर 'वशिष्ठ' नाम का गरम पानी का झरना है। लोग इनको तीर्थ मानकर इनमें स्नान करना पुण्य समझते हैं। मनाली बड़ा सुन्दर स्थान है। व्यास के तट पर बसा है। सैर के लिए बड़ी अच्छी जगह है। मीलों तक देवदारु और मीठे खनोर (चेस्टनट) के वृक्षों का घना जङ्गल है। मनाली से थोड़ा पहले एक छोटा-सा खुला मैदान है। वहाँ देवदारु के पेड़ों का झुरमुट बड़ा ही मनोहर दृश्य उपस्थित करता है। सामने 'हिमालय' की तुषारमण्डित चोटियाँ चाँदी के मुकुट के समान चमक रही हैं।

मनाली में धनी लोगों के ठहरने के लिए अँगरेज़ों के कई बँगले, कोठियाँ और विश्राम-गृह हैं। इनका किराया ७५) मासिक से लेकर १००) मासिक तक है। इनके स्वामी बेनन-बन्धु हैं। कुल्लू-उपत्यका में इसी प्रकार के कई प्राइवेट मकान भी हैं, जहाँ ५) रोज़ रहने और खाने का ख़र्च देना पड़ता है। परन्तु साधारण स्थिति के लोगों के रहने के लिए मनाली में न कोई सराय है और न कोई होटल। डाक-बँगले के निकट दो-तीन टूटी-फूटी मैली कोठरियाँ-सी हैं। डाक-बँगले के खानसामा को कुछ भेंट चढ़ाने पर उनमें दो-तीन दिन ठहरने की आज्ञा मिल जाती है। बाज़ार में दो ढाबे या रोटी की दूकानें भी हैं। इनमें से श्रीयुत मिहिरचन्द का ढाबा अच्छा है। हमने यहीं खाने का प्रबन्ध किया। वे दो पैसे प्रति चपाती के हिसाब से मूल्य लेते थे। घी अपना लेकर देना होता था। दो-तीन जून हमने आप भी रोटी बनाई, वह ढाबे की रोटी से कहीं अधिक स्वादिष्ठ और सस्ती थी। यहाँ कुल्लू (अखाड़ा) की अपेक्षा ठंड बहुत अधिक थी। रात को चादर और लोई ओढ़कर और किवाड़ बन्द कर भीतर सोना पड़ा।

मनाली में ईसाइयों का लेडी-विलिङ्गडन-हास्पिटल है। सुना है, इसका उद्घाटन करने के लिए लार्ड विलिङ्गडन की धर्मपत्नी हवाई जहाज़ से दिल्ली से सवेरे आकर साँझ को दिल्ली लौट गई थीं।

कुल्लू-उपत्यका अँगरेज़ों को बहुत पसन्द है। यहाँ कई अँगरेज़ बस गये हैं। उनमें से अधिकतर फलों का व्यापार करते हैं। इन्होंने पहाड़ी हिन्दू-स्त्रियों से विवाह कर लिया है। पहले-पहल कर्नल बेनन नाम के एक अँगरेज़ सज्जन मनाली में आकर आबाद हुए थे। वे थियासफ़िस्ट थे। उन्होंने एक ब्राह्मण स्त्री से विवाह किया था। वे अब मर गये हैं, परन्तु उनके तीन पुत्र यहाँ रहते हैं। उनमें से एक सनशाइन आर्चर्ड्स के स्वामी मेजर एच० एम० बेनन हैं, दूसरे न्यूहोम आर्चर्ड्स के स्वामी केप्टन एच० बेनन हैं, तीसरे मिस्टर हर्बर्ट बेनन हैं। इन तीनों भाइयों की स्त्रियाँ भी हिन्दू हैं। वे हिन्दू-देवी-देवताओं की पूजा करती हैं। बेनन-बन्धुओं का अपना झुकाव भी हिन्दू-धर्म की ही ओर है। परन्तु जाति-भेद की रुकावट के कारण हिन्दू-समाज उनको अपने में खपा नहीं सका। अँगरेज़ी नामों के अतिरिक्त इनके किष्टा, मिष्टा आदि देशी नाम भी हैं। ये सज्जन हिन्दू होते हुए भी 'अहिन्दू' हैं।

बेनन-बन्धुओं के अतिरिक्त मनाली में कर्नल जानसन नाम के एक अँगरेज़ रहते हैं। इन्होंने बहुत-सा रुपया लगाकर परोपकारार्थ पानी का एक कुण्ड बनवा दिया है। वहाँ से पीने का शुद्ध जल सब लोग लेते हैं। रायसन में लेफ़्टिनेंट कर्नल मिनिकन हैं। बन्दरौल में श्रीयुत ली हैं।

कुल्लू का प्रदेश बिलकुल हिन्दू-प्रदेश है। ईसाई और मुसलमान बहुत ही कम हैं। परन्तु कुछ दिनों से इस प्रदेश पर इस्लाम का प्रवेश हुआ है। मैदान से मुसलमान खानसामे, बहरे, मौलवी, चपरासी और व्यापारी इधर आकर छोटे छोटे स्थानों में बस गये हैं। उन्होंने इधर की कथित छोटी जाति की स्त्रियों से विवाह कर लिया है। मुसलमानों की जन-संख्या द्रुतगति से बढ़ रही है। मनाली से ८ मील के अन्तर पर जगतसुख नाम का एक अच्छा गाँव है। वहाँ एक मुसलमान ने एक हिन्दू दूकानदार की स्त्री को फुसलाकर मुसलमान बना लिया है और उसी दूकानदार के सामने दूकान डाल कर रह रहा है। कुल्लू-प्रान्त में स्त्रियाँ स्वतन्त्र विचरती हैं। पुरुषों से बात-चीत करने में भी इन्हें कोई संकोच नहीं। दूसरे, यहाँ

५ सितम्बर १९३७ को रविवार था। हम आर्य-समाज के सत्संग में सम्मिलित होने के लिए सुलतानपुर गये। परन्तु मन्दिर बन्द था। श्रीयुत मेलाराम जी बज़ाज़ यहाँ के प्रसिद्ध आर्य-समाजी हैं। उनसे मिले तो उन्होंने मन्दिर खोला। तब हम सबने मिलकर हवन किया। तत्पश्चात् जात-पाँत-तोड़क-आन्दोलन और कुल्लू में इस्लाम की दिन पर दिन बढ़ती हुई लहर के सम्बन्ध में बात-चीत हुई। आर्य-समाज के प्रधान श्रीयुत प्राणनाथ जी एडवोकेट ने आर्य-समाज के लिए मण्डल का साहित्य एवं डाक्टर अम्बेडकर-विरचित 'जाति-भेद का उच्छेद' नामक पुस्तक ख़रीदी।

कुल्लू के इर्द-गिर्द कई नाशपाती और सेब के बाग़ीचे हैं। इनमें से कुछ तो अँगरेज़ों के हैं और कुछ देशवासियों के। अँगरेज़ लोग फल महँगा देते हैं, देशवासियों के यहाँ सस्ता मिल जाता है। रोडा पाँधा और बंसी पाँधा के फलोद्यान प्रसिद्ध हैं। कुल्लू से छः मील दूर ५,००० फ़ुट की ऊँचाई पर बन्दरौल नाम का एक ग्राम है। वहाँ शीतल जल का एक उत्तम झरना है। वहीं श्रीयुत ए० एच० जी का प्रसिद्ध सेब-उद्यान है। कहते हैं जैसा बढ़िया सेब इस बाग़ीचे में होता है, वैसा समूचे कुल्लू में अन्यत्र कहीं नहीं होता। कुल्लू में फल इतनी बहुतायत से होते हैं कि आप किसी भी बाग़ीचे में चले जाइए, आपको पेट भर कर खाने के लिए फल मुफ़्त में मिल जायँगे। यहाँ से कोई दो लाख रुपये के फल प्रतिवर्ष बाहर भेजे जाते हैं। मेरी स्त्री हमसे पहले ही, ३० अगस्त को, कुल्लू पहुँच चुकी थी। उसने हमारे लिए दो-तीन टोकरी नाशपाती और सेब लेकर रख लिये थे। वे हमने ख़ूब खाये। नाशपाती यहाँ एक आना सेर और सेब दो आने सेर मिल जाता है। नाशपाती बहुत मीठी थी, परन्तु सेब अभी कच्चे थे। तोड़ कर रखने से पन्द्रह-सोलह दिन में अच्छे ख़स्ता—आटे की तरह भुरभुरे—हो जाते हैं। ये ठीक कार्तिक में पकते हैं। हमारी सारी मंडली ने इतने फल खाये कि जी ऊब गया।

कुल्लू (सुलतानपुर) नीची जगह पर है। चारों ओर ऊँचे पर्वत हैं। इसलिए यहाँ बहुत ठंड नहीं होती। यहाँ सर्वरी नाम की एक नदी व्यास में आकर मिलती है। सर्वरी का पानी कुछ कालिमा लिये है। शायद इसी लिए इसका नाम सर्वरी पड़ा है। कुल्लू जल-वायु की दृष्टि से अच्छा स्थान है, परन्तु स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का ज्ञान न होने से अथवा विवशता से लोग नदी के तट पर ही मल-मूत्र त्याग देते हैं। इससे यहाँ इतनी दुर्गन्ध फैलती है कि बस्ती के निकट जो नदी का भाग है वहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। व्यास का पानी हिम-शीतल है। उसके दो लोटे शरीर पर डालना कठिन हो जाता है। परन्तु इस गन्दगी के कारण वहाँ नहाने को जी नहीं चाहता। 'अखाड़ा' बाज़ार से तनिक आगे एक 'जारू' है। वहाँ स्वच्छ जल का झरना है। प्रायः लोग वहीं नहाते हैं। वैसे व्यास के बर्फ़ानी पानी को पीकर तबीयत बहुत प्रसन्न होती है। किनारे पर इतना गन्दा रहते भी नदी का जल नील स्वच्छ देख पड़ता है।

६ सितम्बर १९३७ को हम सब पुरुष तो सवेरे ५½ बजे पैदल चल पड़े, परन्तु लड़कियों के लिए लारी में आने का प्रबन्ध कर दिया। लारी कुल्लू से दोपहर को चलती थी। कुल्लू से आगे मनाली का मार्ग व्यास नदी के साथ-साथ है और अधिकांश समतल और छायादार है। कुल्लू से ८ मील पर रायसन है। वहाँ दो-तीन बड़े बड़े फलोद्यान हैं। रायसन से आगे कोई ढाई मील पर डोबी और वहाँ से आगे डेढ़ मील पर कटराईं है। इन दोनों स्थानों पर बड़े बड़े फलोद्यान और डाक-घर हैं। डोबी में श्री डानल्ड का बाग़ीचा है। डाक-घर भी उस बाग़ीचे के फलों के पार्सल बाहर भेजने के लिए बनाया गया है। कुल्लू से लेकर कटराईं तक दूध या हलवाई की कोई दूकान नहीं। हाँ, स्थान स्थान पर सेब ज़रूर मिल जाते हैं। यहाँ एक मिडिल स्कूल और तीन-चार दूकानें हैं। अँगरेज़ों एवं धनी लोगों के लिए कई महँगे होटल भी हैं। सड़क से कोई दो फ़र्लाङ्ग नीचे उतर कर एक नाला बहता है। स्नान आदि के लिए वहीं जाना पड़ता है।

कटराईं से, एक ओर दो मील के अन्तर पर 'नगर' है। यहाँ गर्मियों में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर रहते हैं। यहाँ भी फल के कई बाग़ीचे हैं। बड़ी ठंडी जगह है। यहीं रोरिक-म्यूज़ियम है।

मनाली—कटराईं में रोटी की एक रद्दी-सी दूकान थी। वहाँ हमने भोजन बनवाकर खाया। फिर थोड़ी देर विश्राम करके कोई १२½ बजे आगे चल पड़े और

सायङ्काल कोई ४½ बजे ११ मील चलकर मनाली जा पहुँचे। मनाली कुल्लू से २३ मील है। कुल्लू में मेरे मित्र श्री गुरुदयालसिंह जी नायब तहसीलदार हैं। उनकी कृपा से यहाँ पी० डब्ल्यू० डी० के रेस्ट-हाउस में ठहरने का प्रबन्ध हो गया।

मनाली समुद्र-तल से ६,२०० फ़ुट ऊँचा है। इससे कोई दो मील पहले कुल्लू की ओर 'कलाथ' नाम का और कोई डेढ़ मील आगे रोहटाँग की ओर 'वशिष्ठ' नाम का गरम पानी का झरना है। लोग इनको तीर्थ मानकर इनमें स्नान करना पुण्य समझते हैं। मनाली बड़ा सुन्दर स्थान है। व्यास के तट पर बसा है। सैर के लिए बड़ी अच्छी जगह है। मीलों तक देवदारु और मीठे खनोर (चेस्टनट) के वृक्षों का घना जङ्गल है। मनाली से थोड़ा पहले एक छोटा-सा खुला मैदान है। वहाँ देवदारु के पेड़ों का झुरमुट बड़ा ही मनोहर दृश्य उपस्थित करता है। सामने 'हिमालय' की तुषारमण्डित चोटियाँ चाँदी के मुकुट के समान चमक रही हैं।

मनाली में धनी लोगों के ठहरने के लिए अँगरेज़ों के कई बँगले, कोठियाँ और विश्राम-गृह हैं। इनका किराया ७५) मासिक से लेकर १००) मासिक तक है। इनके स्वामी बेनन-बन्धु हैं। कुल्लू-उपत्यका में इसी प्रकार के कई प्राइवेट मकान भी हैं, जहाँ ५) रोज़ रहने और खाने का ख़र्च देना पड़ता है। परन्तु साधारण स्थिति के लोगों के रहने के लिए मनाली में न कोई सराय है और न कोई होटल। डाक-बँगले के निकट दो-तीन टूटी-फूटी मैली कोठरियाँ-सी हैं। डाक-बँगले के खानसामा को कुछ भेंट चढ़ाने पर उनमें दो-तीन दिन ठहरने की आज्ञा मिल जाती है। बाज़ार में दो ढाबे या रोटी की दूकानें भी हैं। इनमें से श्रीयुत मिहिरचन्द का ढाबा अच्छा है। हमने यहीं खाने का प्रबन्ध किया। वे दो पैसे प्रति चपाती के हिसाब से मूल्य लेते थे। घी अपना लेकर देना होता था। दो-तीन जून हमने आप भी रोटी बनाई, वह ढाबे की रोटी से कहीं अधिक स्वादिष्ठ और सस्ती थी। यहाँ कुल्लू (अखाड़ा) की अपेक्षा ठंड बहुत अधिक थी। रात को चादर और लोई ओढ़कर और किवाड़ बन्द कर भीतर सोना पड़ा।

मनाली में ईसाइयों का लेडी-विलिङ्गडन-हास्पिटल है। सुना है, इसका उद्घाटन करने के लिए लार्ड विलिङ्गडन की धर्मपत्नी हवाई जहाज़ से दिल्ली से सवेरे आकर साँझ को दिल्ली लौट गई थीं।

कुल्लू-उपत्यका अँगरेज़ों को बहुत पसन्द है। यहाँ कई अँगरेज़ बस गये हैं। उनमें से अधिकतर फलों का व्यापार करते हैं। इन्होंने पहाड़ी हिन्दू-स्त्रियों से विवाह कर लिया है। पहले-पहल कर्नल बेनन नाम के एक अँगरेज़ सज्जन मनाली में आकर आबाद हुए थे। वे थियासफ़िस्ट थे। उन्होंने एक ब्राह्मण स्त्री से विवाह किया था। वे अब मर गये हैं, परन्तु उनके तीन पुत्र यहाँ रहते हैं। उनमें से एक सनशाइन आर्चर्ड्स के स्वामी मेजर एच० एम० बेनन हैं, दूसरे न्यूहोम आर्चर्ड्स के स्वामी केप्टन एच० बेनन हैं, तीसरे मिस्टर हर्बर्ट बेनन हैं। इन तीनों भाइयों की स्त्रियाँ भी हिन्दू हैं। वे हिन्दू-देवी-देवताओं की पूजा करती हैं। बेनन-बन्धुओं का अपना झुकाव भी हिन्दू-धर्म की ही ओर है। परन्तु जाति-भेद की रुकावट के कारण हिन्दू-समाज उनको अपने में खपा नहीं सका। अँगरेज़ी नामों के अतिरिक्त इनके किष्टा, मिष्टा आदि देशी नाम भी हैं। ये सज्जन हिन्दू होते हुए भी 'अहिन्दू' हैं।

बेनन-बन्धुओं के अतिरिक्त मनाली में कर्नल जानसन नाम के एक अँगरेज़ रहते हैं। इन्होंने बहुत-सा रुपया लगाकर परोपकारार्थ पानी का एक कुण्ड बनवा दिया है। वहाँ से पीने का शुद्ध जल सब लोग लेते हैं। रायसन में लेफ़्टिनेंट कर्नल मिनिकन हैं। बन्दरौल में श्रीयुत ली हैं।

कुल्लू का प्रदेश बिलकुल हिन्दू-प्रदेश है। ईसाई और मुसलमान बहुत ही कम हैं। परन्तु कुछ दिनों से इस प्रदेश पर इस्लाम का प्रवेश हुआ है। मैदान से मुसलमान खानसामे, बहरे, मौलवी, चपरासी और व्यापारी इधर आकर छोटे छोटे स्थानों में बस गये हैं। उन्होंने इधर की कथित छोटी जाति की स्त्रियों से विवाह कर लिया है। मुसलमानों की जन-संख्या द्रुतगति से बढ़ रही है। मनाली से ८ मील के अन्तर पर जगतसुख नाम का एक अच्छा गाँव है। वहाँ एक मुसलमान ने एक हिन्दू दूकानदार की स्त्री को फुसलाकर मुसलमान बना लिया है और उसी दूकानदार के सामने दूकान डाल कर रह रहा है। कुल्लू-प्रान्त में स्त्रियाँ स्वतन्त्र विचरती हैं। पुरुषों से बात-चीत करने में भी इन्हें कोई संकोच नहीं। दूसरे, यहाँ

दरिद्रता का राज्य है। तीसरे, जात-पाँत और छूत-छात की कठोरता पराकाष्ठा को पहुँची हुई है। इन सब कारणों से मुसलमान खानसामों और बहरों के लिए पहाड़ी हिन्दू-स्त्रियों को अपने पंजे में फँसाना बहुत सरल है। अभी काँगड़ा उपत्यका में बहावलपुर के नवाब ने बहुत सी भूमि ख़रीद की है। काँगड़ा की सारी प्रजा हिन्दू और दरिद्र है। इसलिए भय हो रहा है कि नवाब साहब के नौकर-चाकर जो सैकड़ों की संख्या में यहाँ आयँगे, हिन्दुओं की संख्या के घटाने का कारण बनेंगे।

कुल्लू में अस्पृश्यता की भयंकरता यहाँ तक बढ़ी हुई है कि कई गाँव ऐसे हैं जहाँ यदि कोई अछूत किसी हिन्दू के मकान को छू दे तो वह मकान अपवित्र मान लिया जाता है। इस पर वह अभागा अछूत बहुत बुरी तरह पीटा जाता है और दंड-स्वरूप उससे बकरा लिया जाता है। मनाली में मुझे एक तिब्बती मुसलमान श्री अब्दुलसत्तार मिले। कुल्लू-उपत्यका में इतने देवी-देवता हैं कि यह 'देवताओं की भूमि' कही जा सकती है। प्रत्येक गाँव का अपना एक देवता या देवी है। इन देवी-देवताओं के आपस में विवाह भी होते हैं। कई देवियाँ विधवा भी हैं। ये देवता काठ की बनी मूर्तियाँ हैं। ये चाँदी या सोने के चेहरों और रङ्ग-बिरंगे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होती हैं। इनको एकाधिक मनुष्य पालकी की तरह उठाकर चलते हैं। फिर इनका नाच होता है। इनके सामने मन्नतें मानी जाती हैं और इनसे मन की छिपी बातें पूछी जाती हैं। इनके नाम पर मेले होते हैं। दशहरे के अवसर पर कुल्लू में जो भारी मेला होता है उसमें कई सौ देवता इकट्ठे होते हैं। यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों का भी इन देवताओं की अलौकिक शक्ति पर बड़ा विश्वास है।

इन देवताओं के अतिरिक्त इस पार्वत्य प्रदेश में वशिष्ठ, व्यास, लोमश आदि ऋषि भी बहुत हैं। ऐसा जान पड़ता है, मुसलमानों के आक्रमण से डरकर ये देव-ऋषिगण मैदान से भागकर यहाँ आ छिपे हैं। पर अब जब इस्लाम यहाँ भी आ पहुँचा है तब न मालूम यहाँ से भागकर ये कहाँ जा छिपेंगे?

७ सितम्बर १९३७ को तीसरे पहर ४ बजे साँझ का भोजन साथ ले हम मनाली से आगे चले। मोटर-कार और लारी केवल दाणा तक आती है। मनाली गाँव का जहाँ बाज़ार बना है उस स्थान को दाणा कहते हैं। दाणा से आगे व्यास नदी को पुल के द्वारा पार कर सड़क बायें किनारे के साथ साथ जाती है। यह सड़क लाहूल होती हुई लद्दाख पहुँचती है। जिस समय हम चले, थोड़ी थोड़ी बूँदा-बाँदी हो रही थी। कोई तीन मील तक सड़क समतल है। हरे-भरे वृक्ष भी हैं। परन्तु आगे चलकर चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। ५ मील पर रुआड़ नाम का गाँव मिला। यहाँ दो-तीन दूकानें हैं। इस समय ज़ोर से वर्षा हो रही थी, जिससे मार्ग में पाँव फिसलते थे। अब अँधेरा होना शुरू हुआ। आकाश मेघाच्छन्न था, वर्षा हो रही थी, पाँव फिसलने का भय हर समय लग रहा था, पहाड़ी खड्ड भयङ्कर कोलाहल कर रहे थे, और हम भीगते-फिसलते अँधेरे में चल रहे थे। सड़क की दाईं ओर गगनचुम्बी पर्वत-शिखर खड़े थे, बाईं ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे व्यास नदी दौड़ी जा रही थी। बिलकुल सुनसान था। भेड़-बकरी के रेवड़ों के रखवाले कुत्तों के भयानक शब्द के सिवा और कोई मानव-शब्द सुनाई न पड़ता था। घने जङ्गलों से लदी हुई पर्वतों की ढलानों पर बकरी चरानेवालों ने कहीं कहीं डेरे लगा रक्खे थे। अँधेरे में वहाँ जलती हुई लालटेनें बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थीं। चलते चलते हमारे दो दल हो गये थे। श्रीयुत इन्द्रसिंह, लड़कियाँ और दोनों लड़के आगे चले गये, और मैं तथा मेरी स्त्री खच्चरवाले के साथ पीछे रह गये। मनाली से आगे ९ मील पर राहला है। वहीं आज हमें ठहरना था। परन्तु कोई ८ मील चलने पर एक जगह हमारा टट्टू पहाड़ के नीचे धड़ाम से खड्ड में गिर गया। बड़ी मुश्किल हुई। अँधेरे में कुछ दीख नहीं पड़ता था। खड्ड भयङ्कर शब्द कर रहा था। मैं समझा, बस अब घोड़ा और असबाब दोनों गये। उधर खच्चर रुकता न था, बराबर आगे आगे बढ़ता चला जा रहा था। मेरी स्त्री ने मुश्किल से उसे रोक रक्खा, क्योंकि डर था कि वह धक्का मार कर कहीं उन्हें भी खड्ड में न ढकेल दे। तब मैं और निक्का लालटेन लेकर टट्टू को देखने गये। वह बड़ी बुरी तरह से गिरा पड़ा था। बड़ी कठिनाई के साथ उसे पूँछ से पकड़ कर उठाया और बाहर निकला। सौभाग्य से वह पानी में नहीं गिरा था। अँधेरे में आवाज़ से ऐसा जान पड़ता था कि खड्ड बिलकुल सड़क के साथ ही है। परन्तु वास्तव में

वह वहाँ से कुछ परे था। हमारे लिए यह बड़ी भीषण रात्रि थी। ज्यों-त्यों करके हम राहला पहुँचे। इसकी उँचाई ८५०० फ़ुट है।

राहला में एक बड़ी कठिनाई है। वहाँ न कोई खाने-पीने की दूकान है, न ठहरने के लिए कोई सराय। वहाँ एक पी० डब्यू० डी० का रेस्ट-हाउस है। उसमें ठहरने के लिए कुल्लू के असिस्टेंट इन्जीनियर से आज्ञा लेनी पड़ती है। परन्तु पहले से ख़याल न रहने से हम यह आज्ञा न ले सके थे। जिस समय हम रेस्ट-हाउस में पहुँचे, वहाँ चौकीदार न था। उसे ढूँढ़ने के लिए कोई मील भर चल कर उसके गाँव में जाना पड़ा। पहले तो वह आने को ही तैयार न था। पर जब वह आया तब उसने रेस्ट-हाउस खोलने से इनकार कर दिया। उसे बहुतेरा समझाया कि वर्षा हो रही है, ग़ज़ब की सरदी है, हम रात को ठिठुर कर मर जायँगे, कुछ दया करो। परन्तु वह एक न सुनता था। मनाली से हमारे साथ गवर्नमेंट कालेज, लाहौर के एक एम० ए० के विद्यार्थी श्रीयुत ज़मानअली भी आये थे। हैट-पैण्टधारी थे। कुल्लू के लोग हैटवाले से बहुत डरते हैं। उन्होंने साहबी ढङ्ग से उसे डाँटना शुरू किया और साथ ही कुछ लालच भी दिखाया। तब उसने रेस्ट-हाउस खोल दिया। भीतर बिछौने बिछाकर हमने मनाली से लाया हुआ भोजन किया। यद्यपि सितम्बर का आरम्भ था, परन्तु सर्दी इतनी थी, जितनी लाहौर में दिसम्बर में होती है।

रोहटाङ्ग-ल्हा—८ सितम्बर १९३७ को सवेरे उठकर रोहटाङ्ग-ल्हा देखने चले। खच्चर-टट्टू को यहीं रहने दिया। राहला से आगे सीधी चढ़ाई है। इसी लिए हमने रात को यहीं आकर रहना उचित समझा था। राहला के आगे पर्वत सूखे और बर्फ़ से जले हुए हैं। इन पर पेड़-पौधे बिलकुल नहीं। नंगे खड़े हैं। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ रहे हैं, त्यों-त्यों साँस फूल रही है, सिर चकरा रहा है। कोई एक मील चलकर मेरी स्त्री ने चलने से जवाब दे दिया। वह वहीं बैठ गई। उसे वापस राहला के रेस्ट-हाउस में चले जाने का परामर्श दे मैं आगे चलने लगा। यहाँ उँचाई पर खड़े होकर जब नीचे की ओर दृष्टिपात किया तब एक बड़ा ही मनोमुग्धकारी एवं नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। देवदार के घने जङ्गल से ढँके हुए पर्वतों में उछलती, कूदती, गाती और साँप के सदृश बल खाती हुई नदी चाँदी की तरह चमक रही थी। ज्यों-ज्यों हम ऊपर बढ़ रहे थे, त्यों त्यों चलना मुश्किल होता जा रहा था। रास्ते में जगह-जगह भेड़ बकरी लिये 'गद्दी' लोग तम्बू लगाये पड़े थे। इनके भयानक कुत्ते रेवड़ों की रखवाली कर रहे थे। एक स्थान पर इकट्ठी होकर बैठी हुई सफ़ेद भेड़ें बहुत ही भली प्रतीत होती थीं। कोई चार मील ऊपर जाने पर एक बर्फ़ानी नाला मिला। इसमें बर्फ़ की एक बड़ी हिमानी पड़ी थी। दूर से ऐसा देख पड़ता था, मानो दूध का नाला जमा पड़ा हो। हिम धूप से उतनी नहीं पिघलती, जितनी वर्षा से पिघलती है। परन्तु इस नाले में गरमी-बरसात बारहों महीने यह कभी समाप्त नहीं होती। मैंने बल्लम से तोड़कर ख़ूब खाई। यहाँ से एक मील आगे चलने पर हम रोहटाङ्ग ल्हा पर जा पहुँचे। यहाँ एक विस्तृत मैदान है। इसमें एक जगह एक कुण्ड बना हुआ है। इसमें से व्यास नदी निकलती है। कुण्ड पर व्यास मुनि की मूर्ति है। यहाँ प्रचण्ड शीतल हवा चलती है। यात्रियों की रक्षा के लिए यहाँ दो कोठे बने हुए हैं। आँधी पानी के समय वे इनमें आकर शरण ले सकते हैं। राहला से रोहटाङ्ग केवल ५ मील है, परन्तु इसकी उँचाई १३,२०० फ़ुट है। इसलिए लड़कियाँ यहाँ मुश्किल से १०½ बजे पहुँच सकीं।

[असमाप्त

भारतीय मज़दूरों की कार्यक्षमता

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल, बी० काम०

उत्पादन-क्रिया में वातावरण और मशीन इत्यादि का जो महत्त्व होता है वह तो होता ही है, पर सबसे अधिक महत्त्व मनुष्य का होता है। एक लेखक ने लिखा है कि यदि किसी देश के मनुष्य बुद्धिमान् और काम करने में मज़बूत नहीं हैं तो प्रकृति के क़ीमती से क़ीमती ख़ज़ाने भी बेकार रहेंगे। पर मनुष्य की शक्ति, बुद्धि और योग्यता के सामने असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। संसार के जितने भी उन्नतिशील और धनी देश हैं, उन सबमें मज़दूरों की कार्यक्षमता बहुत ऊँचे दर्जे की होती है। बिना कुशल मज़दूरों के किसी भी देश की आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान की आर्थिक हीनता का एक ख़ास कारण यहाँ के मज़दूरों की हीन उत्पादन-शक्ति भी है।

'भारतीय मज़दूरों' का नाम लेने से बहुत-से मनुष्य केवल शहर के उन मज़दूरों को समझते हैं जो कारख़ानों में काम करते हैं। पर उनसे कई गुने अधिक गाँवों में खेती करनेवाले मज़दूर हैं, जो या तो दूसरों के खेतों पर मज़दूरी पर काम करते हैं या अपने ही खेतों पर मज़दूरी करते हैं। गाँव और शहर, दोनों ही जगहों के मज़दूरों की कार्यक्षमता बहुत हीन है।

कारख़ानों के मज़दूरों के विषय में सर एलेक्ज़ेंडर मेक्रावर्ट का मत है कि अँगरेज़ मज़दूर भारतीय मज़दूर से ३½ गुना या ४ गुना अधिक कार्यकुशल है, अर्थात् वह ३½ गुना ज़्यादा माल पैदा करता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन का कहना है कि लंकाशायर के रुई के कारख़ानों का एक मज़दूर हिन्दुस्तान के २·७ मज़दूरों के बराबर काम करता है। अच्छा तो हिन्दुस्तानी मज़दूर इतना कम माल क्यों पैदा करते हैं? इसका कारण केवल उनकी अयोग्यता ही नहीं है, कितने कारख़ानों का ख़राब प्रबन्ध, पुरानी और ख़राब मशीनें, कच्चे माल की ख़राबियाँ आदि भी हैं। पर भारतीय मज़दूर की अयोग्यता मूल कारण है, यह अवश्य मानना पड़ेगा। अगर मशीनें, कच्चा माल और अन्य सब बातें अपटु-डेट भी हों, तो भी हिन्दुस्तानी मज़दूर की पैदावार अँगरेज़ी मज़दूर की पैदावार से कम ही होगी।

डाक्टर नेयर का कहना है कि यदि लंकाशायर का एक मज़दूर २·७ हिन्दुस्तानी मज़दूरों के बराबर है तो एक भारतीय कारख़ानेवाला उतने ही रुपये से लंकाशायर के एक कारख़ानेवाले के मुक़ाबले में दुगना काम करा सकता है, क्योंकि लंकाशायर के मज़दूर की तनख़्वाह ६०) है और भारतीय मज़दूर की १५) है। इससे कुछ लोगों ने यह मतलब निकाला है कि भारतीय मज़दूर की कार्यक्षमता अँगरेज़ी मज़दूर की कार्यक्षमता से दूनी है। पर यह अर्थ निकालना सरासर भूल है। कम मज़दूरी देना एक बात है और मज़दूरों में कार्यक्षमता का होना दूसरी बात है। यदि हम एक मज़दूर का वेतन कम करते चले जायँ तो इससे उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि नहीं होती चली जायगी। झूठे तर्कों से प्रत्येक भारतीय वस्तु और दशा को श्रेष्ठ बतलाना अपने पैरों में अपने हाथों कुल्हाड़ी मारना है।

कुछ लेखकों ने खेतों पर काम करनेवालों की भी कार्यकुशलता दिखलाने की कोशिश की है। लेकिन अभी उनकी कार्यक्षमता में बहुत कुछ कमी है। वे बिलकुल लकीर के फ़क़ीर हैं और अंध-विश्वास में डूबे हुए हैं। उनकी रहन-सहन का तरीक़ा गंदा और स्वास्थ्य के नियमों के विरुद्ध है। उन्हें व्यर्थ की मुक़द्दमेबाज़ी में समय, शक्ति और रुपया बर्बाद करने का चसका-सा पड़ गया है। वे रुपये को गहने बनवाने में ख़र्च कर देते हैं और ऐसे कामों में नहीं ख़र्च करते जिनसे उनकी उत्पादक-शक्ति बढ़े या ऐसे स्थान पर रुपया नहीं लगाते जिससे उन्हें ब्याज मिले। शादी-विवाह इत्यादि में वे सामर्थ्य से बाहर ख़र्च कर देते हैं, जिससे उन्हें महाजन की शरण लेनी पड़ती है और वे हमेशा के लिए उसके चंगुल में फँस जाते हैं। इन लोगों में भाग्य-वाद की मात्रा भी ख़तरनाक

हद तक पाई जाती है। जिस किसी को भी गाँवों की दशा का ज्ञान है वह इन दोषों के होने में अविश्वास नहीं कर सकता। देश के हित के लिए और किसानों की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि ये दोष सत्यता के प्रकाश में ठीक ठीक समझे जायँ और उनके दूर करने की चेष्टा की जाय।

गाँवों के मज़दूरों में कम उत्पादक-शक्ति के होने का कारण यहाँ की जलवायु या कोई जातीय कारण नहीं है। इसका असली कारण है यहाँ का अनुविधापूर्ण वातावरण और इस वातावरण के दुखमय परिणाम। जहाँ कहीं भी वर्षा काफ़ी और ठीक समय पर होती है या जहाँ ठीक तरह से सिंचाई होने का प्रबन्ध है और किसान अपने परिश्रम का फल पाने की आशा कर सकता है, वहाँ किसान बुद्धिमान्, परिश्रमी और चतुर हैं। इसलिए किसानों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उनकी आर्थिक दशा का सुधारना बहुत ज़रूरी है। जब उनको रोटी मिलने लगेगी तब उनमें कार्य करने की शक्ति भी बढ़ेगी, उनका भाग्य-वाद हलका पड़ जायगा और उनको अधिक कार्य करने, अधिक कमाने और जीवन का अधिक आनन्द उठाने में एक घनिष्ठ सम्बन्ध दीख पड़ेगा।

आर्थिक दशा के सुधार के अतिरिक्त ऊपर बतलाये हुए दोषों को दूर करने के लिए गाँवों में शिक्षा का प्रचार करना चाहिए। जब तक गाँवों में शिक्षा की कमी रहेगी तब तक किसी भी प्रकार का सुधार करना कठिन है। अशिक्षित होने के कारण किसानों का दृष्टि-कोण परिमित हो गया है और वे दूर की नहीं सोच सकते और न खेती के नये क़ायदों को आसानी से अपना सकते हैं। शिक्षा-पद्धति में प्राथमिक शिक्षा को तो एक ख़ास स्थान देना ही होगा, पर साथ-साथ यह भी ख़याल रखना होगा कि विद्यार्थियों में खेती की तरफ़ रुचि हो और वे श्रम को ऊँची दृष्टि से देखें। अब तक शिक्षा में यह दोष रहा है कि विद्यार्थी अपने को अन्य अशिक्षित आदमियों से ऊँचा और खेती करने में अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए खेती को एक अनिवार्य विषय बना देना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को यह भी फ़ायदा होगा कि वे स्कूल से निकलने के बाद खेती में नये नये अन्वेषणों के मुताबिक़ सुधार कर सकेंगे और अपने ख़ानदानी पेशे की उन्नति कर सकेंगे।

आदमियों को भी शिक्षा देना ज़रूरी है। उन्हें खेती के नये नये सुधारों को समझाना चाहिए और इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि पढ़े-लिखे गाँव के मनुष्य अपनी विद्या भूल न जायँ। स्थान स्थान पर पुस्तकालय खोलने चाहिए। जादू की लालटेन और सिनेमा के द्वारा शिक्षा का काफ़ी प्रचार किया जा सकता है।

दिमाग़ी उन्नति के साथ-साथ किसानों की शारीरिक उन्नति का भी प्रश्न उठता है। गाँवों में रहन-सहन का ढंग बहुत गंदा है। इसलिए वहाँ बड़ी बड़ी बीमारियाँ जैसे, हैज़ा, प्लेग, क्षय और छोटी छोटी बीमारियाँ जैसे, ख़ाल की बीमारियाँ अक्सर फैला करती हैं। बहुत-से हट्टे-कट्टे मज़दूर इन बीमारियों के शिकार होते हैं; और जो मृत्यु के मुख से बच भी जाते हैं वे बहुत कमज़ोर हो जाते हैं। इन आफ़तों से दूर रहने के लिए किसान को स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने के लाभ और आवश्यकतायें बतलानी चाहिए। स्वास्थ्य-प्रचार-संस्थायें, शिशु-सप्ताह, रेड-क्रास का काम, सरकारी दवाख़ाने स्थान स्थान पर होने चाहिए। गाँवों में स्वच्छ पानी और साफ़-सुथरे घरों की कमी भी एक बड़ी भारी कमी है। मकानों में केवल एक दरवाज़ा होता है और खिड़कियाँ अक्सर ग़ायब रहती हैं। गाय-भैंस इत्यादि जानवर और मनुष्य प्रायः एक ही कमरे में सोते हैं और एक-दूसरे की साँस लेते रहते हैं, जो दोनों को नुक़सान पहुँचाता है। इन सब सुधारों के लिए धन, समय और सबसे अधिक ऐसे सेवा-भाव से भरे हुए कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो प्रचार करने के योग्य हों।

अब शहरों को देखिए। वहाँ के कारख़ानेवालों की अवस्था तो और भी असंतोषजनक है। पहले तो हिन्दुस्तान की जलवायु अधिक देर तक कड़ी मेहनत करने के लायक़ नहीं। इसलिए मज़दूरों की कार्यक्षमता अधिक नहीं हो सकती। फिर कारख़ानों में काफ़ी सफ़ाई नहीं रहती, ठीक रोशनदान नहीं होते और काम करने के घंटे बहुत अधिक होते हैं। शायद इसी कारण मज़दूर, जान में या अनजान में सुस्त हो जाता है, क्योंकि अगर वह तेज़ी और फुर्ती से इतने अधिक घंटों तक लगातार काम करे तो उसे जल्दी ही मृत्यु के मुख में जाना पड़े। इसलिए अगर मज़दूरों के घंटे कम कर दिये जायँ तो आशा है कि मज़दूरों की कार्यक्षमता बढ़ जाय।

मज़दूरों की शारीरिक कमज़ोरी भी कम उत्पादक शक्ति होने का एक ख़ास कारण है। यह कमज़ोरी, बीमारी के कारण होती है। रूखा-सूखा खाना जो मनुष्य की शक्ति की वृद्धि नहीं कर सकता, और जो बहुधा पेटभर भी नहीं मिलता, उनकी कमज़ोरी का दूसरा कारण है।

शहरों के मज़दूरों को शायद सबसे कठिन समस्या घरों की है। गाँव के मज़दूरों को तब भी खुली और साफ़ हवा मिल जाती है, पर शहर में तो उन्हें दिन-रात छोटी-छोटी गलियों और तंग कमरों में ही रहना पड़ता है, जहाँ आदमी जानवरों की तरह थोड़ी-सी जगह में ठूँस दिये जाते हैं और जहाँ केवल बदबूदार, बीमारी के कीटाणुओं से भरी हुई हवा साँस लेने को मिलती है।

मज़दूरों को रहन-सहन का दर्जा भी बहुत नीचा है और यह उनकी कार्यक्षमता का एक ख़ास कारण है। मज़दूरों को इतनी कम तनख़्वाह मिलती है कि वे यदि जीवन-रक्षक पदार्थ पा जायँ तो बहुत काफ़ी है। निपुणता-दायक पदार्थों के सेवन करने का तो उन्हें सौभाग्य कभी प्राप्त ही नहीं होता। खाना, रहना जैसा है वह तो हम देख ही चुके हैं। पहनने के विषय में भी वही बात है। शिक्षा के मामले में तो वे कुछ भी ख़र्च नहीं कर पाते।

पर इससे भी भयानक समस्या शराबख़ोरी की है, जो शहर के मज़दूरों में दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही है। मज़दूरों के बजट-द्वारा पता चला है कि उनकी आमदनी का लगभग ४% भाग शराब या ताड़ी इत्यादि नशीली वस्तुओं पर ख़र्च होता है। नीची जाति और छोटे छोटे मज़दूरों की तो १% आमदनी तक नशेबाज़ी में व्यय हो जाती है। नशा करने से मज़दूरों की कार्यक्षमता पर बहुत बुरा असर पड़ता है। चाय की दूकानों को चलाना, सिनेमा दिखाना, खेल-कूद की आदत डालना, शराब की दूकानों और शराब बेचने के घंटों में कमी करना—ऐसे कार्यों-द्वारा इस आदत को दूर करने की चेष्टा की जा रही है।

इन सब दोषों को दूर करना और इन सब कारणों को, जो भारतीय मज़दूरों की कार्यक्षमता को नीचा बनाये हुए हैं, हटाना बहुत ही टेढ़ी खीर है। इस विषय का हर एक पहलू ख़ुद एक बड़ी समस्या है। समस्त देश के सुधारकों का ध्यान इन समस्याओं पर लगा हुआ है। जब तक मज़दूरों की उत्पादक शक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक देश धनवान् नहीं बन सकेगा और देश में सुख-समृद्धि नहीं दिखलाई देगी, यह अक्षर-अक्षर ठीक है।

गीत

लेखक, श्रीयुत सुबोध अदापाल

पीड़ा जीवन-बन्धन में।
इतनी विस्तृत इच्छायें भी
क्या रह सकतीं मन में?

नित नित अभाव का क्रन्दन
मानव को कितना गुरुतर!
पाकर खोने के दुख की
तो माप नहीं जीवन में।

स्वच्छन्द सरल आत्मा का
पृथ्वी पर घोर पतन ही
उसका ऐश्वर्य मिटाता
लाकर इस सूनेपन में।

पापों की ज्वाला भयप्रद,
दुर्गुण दुख-दर्द बढ़ाते,
आशा दिखती बस केवल
तेरे ही अभिनन्दन में।

ब्याह-शादी में नृत्य-गान का निषेध

लेखक, श्रीयुत लालभानुसिंह जी बाघेल

श्रीयुत सन्तराम जी बी० ए० हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। गत फ़रवरी की 'सरस्वती' में उपर्युक्त नाम का उनका एक लेख निकला है। उसमें विद्वान् लेखक ने पाश्चात्य देशों का उदाहरण देकर अपने यहाँ ब्याह-शादी में होनेवाली स्त्रियों की गालियों, स्त्री-पुरुषों के बुरे हाव-भावों और होली आदि त्योहारों के पुरुषों के अश्लील गानों को समाज-सुधारकों के रोकने से स्त्रियों में अपस्मार, मूर्छा, हिस्टीरिया आदि रोगों का होना तथा पुरुषों में भक्तों और मुल्लाओं के पतन का कारण बताया है। साधारण पुरुषों को क्या होता है, यह नहीं बताया! उनका कहना है—"मनुष्य के अन्दर बुरे विचार स्वाभाविक रूप से उठते रहते हैं। उनके निकलने के लिए समाज में कोई मार्ग होना आवश्यक है। अन्यथा वे भीतर ही भीतर सड़कर भाफ-रूप में बाइलर की भाँति फूट पड़ते हैं।" उनका यह कहना कहाँ तक ठीक है सो तो मनोविज्ञान के पण्डित ही जानें, क्योंकि लेखक महोदय ने इसे वैज्ञानिक रीति से सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की। मनुष्य में स्वभावतः पशु-प्रवृत्तियाँ होती हैं। आदिमकाल में तो मानव-समाज में विवाह की भी प्रथा न थी। किन्तु मनुष्य का मस्तिष्क जैसे जैसे विकसित होता गया, वैसे ही वैसे वह वर्तमान सभ्यता की ओर अग्रसर होता गया, अर्थात् अश्लीलता या पशु-वृत्ति से दूर भागता गया। आश्चर्य तो यह है कि संसार भर के समाज-शास्त्रियों ने इसी का समर्थन किया है। किसी के भी विचार में यह बात नहीं आई कि मनुष्य की पशु-प्रवृत्ति के दबाने से कभी भयानक 'बाइलर-स्फोट' होगा! उनका यह कहना बहुत ठीक है कि "स्त्री-पुरुषों का प्राकृतिक आकर्षण प्रकृति का एक साधन है। इस साधन को एकदम विफल कर देना मनुष्य की शक्ति के बाहर है।" पर मानव-जाति का इतिहास बताता है कि वह इस आकर्षण के जितना ही निकट था, पशु था और जितना ही दूर होता गया है, उससे ऊपर उठता गया है। आश्चर्य तो यह है कि इसी को सभ्य संसार ठीक भी मानता जाता है। अस्तु।

यदि समय समय पर स्त्री-पुरुषों की पशु-वृत्तियाँ निकालने के लिए गाली बकना, एक-दूसरे से अश्लील हँसी-मज़ाक़ करना आदि आवश्यक होगा तो फिर हो चुका। दीवाली के जुए का भी लेखक महोदय ने समर्थन किया है। किन्तु यह नहीं बताया कि इसके रोकने से कौन-सा 'बाइलर-स्फोट' होता है। जब जुआ भी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, खेलना ही चाहिए, तब चोरी भी तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो सकती है, क्योंकि उसके करने को भी तो मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है। पर मालूम नहीं उसके लिए कौन-सा दिन नियत किया गया है! लेखक महोदय का कहना है कि "सफल और स्वस्थ समाज वही है जिसमें मनुष्य की प्रत्येक अवस्था के लिए गुंजायश हो।" ऐसा कहना सचमुच बड़े साहस का काम है, क्योंकि प्रत्येक अवस्था के भीतर कुछ 'अवाञ्छनीय अवस्थायें' भी आ जाती हैं।

लेखक महोदय लिखते हैं—"होली में लोग मन भरकर हँसी-मज़ाक़ और नृत्य-गान कर लेते थे। यहाँ तक कि दीवाली पर एक दिन के लिए जुआ खेलने के लिए भी छुट्टी रहती थी ताकि मनुष्य की अन्तर्निहित पशु-वृत्तियाँ निकल जायँ और वर्ष के शेष दिन शान्ति से बीत जायँ। परन्तु अब पश्चिम के अन्ध-अनुकरण में पड़कर हम स्वास्थ्य-रक्षक तत्त्व को भूल गये हैं।" कुप्रवृत्तियाँ अपनी आवृत्ति से शान्त होती हैं या और बढ़ती हैं, यह तो मनःशास्त्र के पण्डित ही जानें। यहाँ मेरा इतना ही निवेदन है कि जहाँ एक कालम में पश्चिम के अन्ध-अनुकरण की निन्दा की गई है, वहीं दूसरे कालम में वहाँ के अश्लील त्योहारों का उदाहरण देकर अश्लील प्रवृत्तियों का समर्थन किया गया है! उन्होंने लिखा है—"योरप और विशेषतः अमेरिका में ३१ अक्टोबर की रात 'हेलोएन रजनी' कहलाती है। इस रात को प्रत्येक नवयुवक एवं नवयुवती को सामान्य से अधिक

स्वतन्त्रता दी जाती है।" पर कदाचित् पश्चिम के इन पशु-वृत्ति-पूर्ण त्योहारों का अनुकरण 'अन्ध-अनुकरण' न हो! इसी प्रकार वे एक ओर तो पुराने रीति-रवाजों और वारात के धूम-धक्कड़ का समर्थन करते हैं, जिसमें विशेष व्यय पड़ता है और दूसरी ओर दस-पाँच रुपये व्ययवाले योरपीय विवाहों के अनुकरण की राय देते हैं! यह सब क्या है?

लेखक महोदय के लेख से मालूम होता है कि पंजाब में सुधारकों-द्वारा स्त्रियों का गाना बन्द किया जा रहा है। किन्तु जहाँ तक मेरा अनुभव है, कह सकता हूँ कि कोई सुधारक गाना क्या, नाचना तक नहीं बन्द करते। वे केवल उनके तरीक़ों—प्रकारों—में सुधार चाहते हैं। स्त्रियाँ और गाना! ऐसे दुग्ध-मधु संयोग को कौन पाषाण-हृदय रोकेगा? स्त्रियों से तो कांग्रेस जैसी खुली सभा में भी गवाया जाता है। हाँ, लेखक महोदय की 'मीठी गाली' ज़रूर रोकी जाती होगी। जो स्त्रियाँ नाच सकती हैं अपने घरों में नाचती भी हैं, आनन्द मनाती हैं। इसी प्रकार शुद्ध हास्य का भी कोई बायकाट नहीं करता। हास्य तो साहित्य का एक मुख्य अंग ही है। आशा है, लेखक महोदय अपनी बातों पर पुनर्विचार करेंगे और यह बताने की कृपा करेंगे कि उनके विचारों में परस्पर विरोध क्यों है और वे समाज को एक भयानक दिशा में इस तरह की छूट क्यों देना चाहते हैं।

गीत

लेखक, श्रीयुत शम्भूनाथसिंह 'रसिक'

नयन में हों अश्रु मेरे
तो अधर पर हास भी हो।

दुख-सुखों के अश्रु-कण से
सिक्त करके मन हमारा
काल के निशिदिन नयन दो
नाप दें जीवन हमारा
यदि विरह-पतझर यहाँ हो
तो मिलन-मधुमास भी हो।

यदि बिछूँ तरु-तृण-लता पर
रजत-हिम-कण बन सबेरे
सान्ध्य-वन भी बन अरुण अल-
सित मिटूँ मैं तो चितेरे!
प्राण में चिर तृप्ति हो तो
हृदय में चिर प्यास भी हो।

गान बन यदि रुदन बेचूँ
तो बिकूँ विष बन सुधा पर
यदि बनूँ मैं चिर विकलता
तो उड़ूँ बन अमर रे स्वर
जागरण में दूर हो तो
नींद में प्रिय पास भी हो।

एक सुन्दर सामाजिक कहानी

हार

लेखक, श्रीयुत चन्द्रभूषणसिंह

घमंडीलाल आये और पसीना पोंछते हुए धड़ाम से खाट पर गिर पड़े। बाहर ज़ोर की आँधी चल रही थी। कमरे का दिया बुझा हुआ था, मगर उनका ...न फूल रहा था। ज़िम्मेदारी का बोझ गर्दन दबाये जा रहा ...। रह रह कर अपने को कोसने लगते थे। कहते थे—...ख़िर मुझे धर्म-संकट में पड़ने की क्या ज़रूरत थी? ...-सा तो बहाना था। कहला देता कि घर में नहीं हैं, ... घूमने गये हैं—सारा झगड़ा ख़त्म था। परन्तु यदि ...दारी न मरता तो! जन्म भर के लिए कहने को हो जाता कि इतने घनिष्ठ मित्र होकर मरते समय नहीं आये। ख़ैर ...हे जो हो, मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है। वैसे आपस ...की खींचातानी की वजह से नतीजा बुरा हो तो और बात है।

बेचारे तरह तरह से अपने दिल को तसल्ली दे रहे ... और चाहते थे कि राजरानी को बुलाकर जो कुछ हुआ ...था, साफ़ साफ़ कह दें। परन्तु रानी की भयानक सूरत याद आते ही हिम्मत जवाब दे देती थी। उधर भूख ज़ोरों की ...गी हुई थी, परन्तु बीवी को बुलाकर खाना माँगने का ...हस न होता था। सोचते थे, जभी तक सामना न हो, ...नीमत है।

कैलाश मा के डर से घबराया हुआ आया और चुपके ... चारपाई के एक कोने पर बैठ गया। कमरे में अँधेरा ...था। चुहियाँ और छछूँदरें बाज़ी लगाकर इधर-उधर दौड़ ...रही थीं, लेकिन बत्ती जलाने से वह डरता था। उसे ...भय था कि ज्यों ही उसने लैम्प जलाया, मा उसे ढूँढ़ती हुई ...आ पहुँचेगी और उसे बकरी का दूध पीना पड़ेगा। ...केवल आध घण्टे तक चकमा देना था, फिर तो रोटी हो ...जाने पर दूध का पीना न पीना उसके हाथ की बात थी। उसने सोचा, क्यों न पड़ोसी के यहाँ जाकर तब तक ...तम्बाकू ही पी जाय। समय भी कट जायगा और मा को ...ख़बर भी न होगी। और यदि यहीं सो रहूँ तो कैसा रहे! यह तो बड़ा अच्छा बहाना होगा कि 'क्या करूँ? अम्मा ...आँख लग गई थी!'

घमंडीलाल पहले तो डरे, परन्तु जब आँखों पर ज़ोर देकर देखा तब मालूम हुआ कि इतना छोटा क़द उनके घर में कैलाश के सिवा और किसी का नहीं है। उन्होंने धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। कैलाश चौंक पड़ा। वह कहने ही वाला था कि "कौन? दादा!" परन्तु घमंडीलाल ने उसे कुछ कहने का मौक़ा न देकर धीरे से कहा—बेटा, यह दुअन्नी लो और बाज़ार से कुछ खाने को ले आओ। लड़के ने भी सोचा कि चलो अच्छा बहाना मिल गया। अब यदि अम्मा ने कुछ कहा तो कह दूँगा कि दादा ने बाज़ार भेज दिया था।

अभी वह दादा से पूछ भी न पाया था कि 'क्या लाऊँ' कि कमरे की ओर कोई आता जान पड़ा। पैरों की धमक साफ़ कह रही थी कि राजरानी है और वह भी ग़ुस्से में। घमंडीलाल डर गये। चारपाई पर ओढ़ना भी न था कि मुँह ढाँप कर सोने का बहाना करते।

राजरानी चिराग़ लिये हुए आई। कैलाश की जान निकल गई। सम्भव था कि वह उसे दो थप्पड़ लगाती कि उसकी नज़र घमंडीलाल पर पड़ गई। उसने कहा—अहा! आप हैं। कब से छिपे बैठे हैं? बाहर आकर बैठते। मुझसे डर लगता था तो कहते मैं पर्दा कर देती। यह क्या? अफ़ीम मँगा रहे हैं? मैं तुमसे सच कहती हूँ, अपनी तरह इस लड़के को भी बनाकर छोड़ोगे। कहाँ थे तीन दिन से? बोलते क्यों नहीं? क्या बोलना भी पाप है? घमंडीलाल ने कहा—भई, तुम तो व्यर्थ नाराज़ होती हो। मदारी बीमार था। मरते समय मुझे देखना चाहता था। वहीं से आ रहा हूँ। बेचारे ने बड़ी बुरी मौत पाई। अगर न जाता तो जन्म भर के लिए कहने को हो जाता कि मित्र मर गया और ये देखने भी नहीं गये।

राजरानी ने मटकते हुए कहा—वाह रे मित्र! जब तुम बीमार पड़ते हो तब तो कोई भूल कर भी इधर नहीं आता। हाँ, पेट भरने के लिए बीसों आते हैं। मदारी तो तुमसे बड़े ही रहे होंगे, कभी भूल कर भी धेले की चीज़ नहीं लाये। तुम्हीं जब देखो, कुत्ते की तरह दुम हिलाते हर जगह पहुँच जाते हो।

लोग उठकर अपना अपना काम करने लगे तब उसने

घमंडीलाल ने कहा—बेचारा अच्छा था या बुरा, अब उसको कुछ न कहो। बड़ी बुरी मौत पाई। सब जगह तार दिये, आदमी भेजा, मगर कोई नहीं आया।

"हाँ, तुम्हारे सिवा कौन बेकार था जो वहाँ जाता। ख़ैर, वह मर गया, एक झंझट छूटा। उसके तो एक लड़की भी थी न।"

घमंडीलाल का मुँह सूख गया। चाहते थे कि बात टाल जायँ, परन्तु कहना ही पड़ा—हाँ, उस लड़की को मैंने रखने का वादा कर लिया है। सोचा कि तुम घर में अकेली हो, रोटी बनाने में मदद भी मिलेगी और उसके रिश्तेदारों पर एहसान रहेगा।

"क्या! मैं उसकी लड़की को अपने यहाँ कभी नहीं रक्खूँगी। अब मैं समझी कि उसके रिश्तेदार क्यों जी चुरा रहे थे।"

घमंडीलाल ज़रा तन कर बैठ गये। उन्होंने कहा—हम दोनों बचपन के दोस्त थे। दादा उसको बहुत मानते थे। उसी की राय से मैंने तुमसे विवाह किया था।

विवाह की बात लाने से घमंडी ने समझा था कि रानी ख़ुश हो जायगी, परन्तु वह तो जली हुई थी, उसने जल कर कहा—तभी तो मैं उससे जलती हूँ कि मेरा ब्याह तुम्हारे जैसे आदमी से करा दिया। ख़ैर, मैं ग़ैर की बेटी अपने यहाँ नहीं रख सकती। उसकी शादी कौन करेगा? है इतना रुपया? न बाबा। यह कभी नहीं हो सकता। घमंडीलाल ने मन ही मन कहा—मैं इतना बेवक़ूफ़ नहीं हूँ। वे चुप बैठे रहे। राजरानी बड़बड़ा रही थी। पत्थर पर ओले पड़ रहे थे।

घमंडीलाल बात के धनी थे, परन्तु खुले शब्दों में बीबी का मुक़ाबिला करने का साहस उनमें नहीं था। परन्तु वे अपने मन की ही करते थे। उधर राजरानी बड़बड़ाकर दिल का बुख़ार निकाल लेने के सिवा और कुछ नहीं करती थी। वह अपना स्वभाव जानती थी। दुनिया में कौन ऐसा है जो विष देकर शहद पाने की आशा रखता हो। वह घमंडीलाल से मजबूर थी। वह हिन्दुस्तानी मर्द था, और हिन्दुस्तानी मर्द अपने को औरत का ग़ुलाम नहीं समझता, वह स्वभाव का कुछ ज़िद्दी होता है।

घमंडी और मदारी बचपन के मित्र थे। साथ पढ़ा-लिखा और खेला-कूदा था। दोनों एक साथ जुआ खेलने जाते और एक साथ शराब पीकर आते थे और एक ही साथ अपना सिर भी तोड़वाते हुए दिखलाई पड़ते थे। यहाँ तक कि दोनों एक ही साथ अपने घरों में आग लगाकर बैठ भी रहे। अन्तिम समय में दोनों को लाटरी का शौक़ भी पैदा हुआ था, परन्तु जब तक दोनों का साझा रहा, कभी कुछ न मिला। हाँ, एक बार सगुन विचार कर मदारी से छिपा कर घमंडी ने टिकट लिया था। संयोग की बात, दो हज़ार रुपया मिल गया। घमंडी की दशा सुधर गई। मदारी ज्यों का त्यों कंगाल रहा।

अन्तिम समय में मदारी ने घमंडी को समझने में धोखा खाया। परन्तु इसमें मित्र का क़सूर नहीं था। राजरानी मिज़ाज की बड़ी तेज़ थी। उसे दोनों बूढ़ों का एक साथ उठना-बैठना बहुत ही बुरा मालूम होता था। वह समझती थी और ठीक समझती थी कि जब दोनों एक साथ होंगे तब शराब-अफ़ीम के रङ्ग में ही रहेंगे। यही कारण था कि जब घमंडीलाल घर से निकलते तब राजरानी तड़फड़ाने लगती थी। वह समझती थी कि बूढ़ा ज़रूर मदारी के यहाँ गया और उसका गुमान प्रायः ठीक ही होता था।

× × × ×

मरते समय जब मदारी का कोई रिश्तेदार उसे देखने न आया तब उसने अपनी बेटी किशोरी का हाथ घमंडीलाल के हाथ में देकर गिड़गिड़ाकर कहा—"इस संसार में मेरा कोई नहीं है। यदि मेरे पास धन होता तो मुझे दम तोड़ते देखकर रिश्तेदार कुत्तों की तरह ललचाई हुई नज़रों से मुझे देखते और हर तरह की सेवा के लिए तैयार नज़र आते। आज किसी का पता नहीं। भगवान् ही जानता है कि इस मिट्टी की क्या गति होगी। लेकिन जीते-जी ही कौन दुर्दशा बाक़ी है, जो मरने की फ़िक्र करूँ। भाई, इस लड़की का बाप मैं नहीं, तुम हो। मैं जानता हूँ कि तुम इसका मुझसे कहीं अधिक ख़याल करोगे, इसी लिए...आह! बड़ा दर्द है! मरते समय बोला भी नहीं जाता। भैया तुम बोलते क्यों नहीं?"

मदारी चल बसा। घमंडीलाल को कुछ कहने का मौक़ा ही न मिला। किशोरी को घर लाना पड़ा।

(२)

"उधर खड़ी होकर क्या देखती है पागल लड़की!

चावल पक गया? हाय राम! मैं कहती थी कि इस मुसीबत में न पड़ो, मगर न जानें क्यों उनको मेरी बातों से ज़िद-सी हो गई है।"

"अम्मा जी, चावल तो हो गया है। अब आकर अंधकें नवाइए तो भीतर चलूँ।"

है जो "बना क्यों नहीं लेती? क्या हाथ कट जायँगे? अब किस बात पर तुझसे कहा करूँ कि यह करो वह करो। कुछ तो शऊर सीख।"

किशोरी को रोटी बना लेने में कोई उज़्र न था। सिर्फ़ हुक्म मिलने की देर थी। राजरानी से वह बेहद डरती थी। यह अजीब बात थी कि जब कभी वह कोई काम अपनी इच्छा से करती तब रानी उसे टोक देती और यह इल्ज़ाम लगाती कि 'मुझसे पूछा क्यों नहीं? सारा काम चौपट हो गया' और अगर वह पूछने की राह देखती तो काम न करने, भूल जाने अथवा बात बनाने का दोष लगता। कैलाश साढ़े नौ बजे तक स्कूल चला जाता था, इसलिए नौ बजे तक भोजन बन जाता था। घर में कुल चार आदमी थे, लेकिन राजरानी की घबराहट से यही मालूम होता था कि एक बरात का प्रबन्ध करना है। बात बात में खरी-खोटी, झाड़-झपट और ताना मारने की नौबत आ जाती थी। यदि किशोरी की आँखों में आँसू आ जाते तो ताने की जगह नसीहतें और उपदेश ले लेते थे, परन्तु ताड़झाड़ और सख़्ती वैसे ही बनी रहती। रानी अब उसे अलग भी न कर सकती थी। हुकूमत करने का मज़ा उसे मिल गया था। बिना पैसे-कौड़ी का ऐसा नौकर कहाँ मिलता? और अगर मिलता भी तो उस पर इतनी आसानी से हुकूमत नहीं हो सकती थी। आदमी रुपये और रोटी दोनों का ग़ुलाम है। भेद यह है कि रुपये का एहसान भुलाया जा सकता है, लेकिन रोटी का एहसान! नमक का ग़ुलाम तानाज़नी के ख़ौफ़ से काँप जाता है। रुपया पानेवाला नौकर रानी की बातों का जवाब दे सकता था। परन्तु दोनों जून आधा पेट रोटी पानेवाली किशोरी क्या कह सकती थी?

कैलाश में धीरे-धीरे जवानी की वह मादकता आ रही थी जो जवान आदमी को यह समझने पर मजबूर करती है कि संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु का उससे अच्छा अधिकारी दूसरा कोई नहीं हो सकता। परन्तु वह किशोरी की ओर से बेफ़िक्र था। उसकी आँखें जैसे बन्द थीं। उसे इतनी फ़ुर्सत ही न थी कि वह किशोरी की ओर आकर्षित होता। दोनों के बीच एक खाई थी, जो प्रतिदिन की घटनाओं के कारण गहरी और चौड़ी होती जा रही थी। जब कभी मा किशोरी पर ख़फ़ा होती तब वह समझता कि किशोरी से ज़रूर ग़लती हुई होगी। उस समय 'अपनी मा' और 'पराई बेटी' का ख़याल कठोर हृदया मा की उस क्रूरता को भुला देता था जब वह एक पैसे के लिए सारा दिन गिड़गिड़ाता रहता था और सिवा चपत और घुड़की के कुछ न पाता था। उसके साथ साथ उसकी निगाह में मा की इज़्ज़त भी बढ़ती जा रही थी। परन्तु चाहे जो हो, घमंडीलाल भविष्य में किशोरी को कैलाश की बहू बनाने का विचार कर चुके थे। उनके नज़दीक ऐसा करने से जहाँ दोस्ती का फ़र्ज़ अदा होता था, वहाँ लड़के को सुन्दर बहू मिलती थी। धन की बचत होती सो अलग। यही उमंगें उन्हें बीबी की सख़्त-सुस्त बातें सुनने पर मजबूर किये हुए थीं। यदि वे तनिक साहस से काम लेकर अपना विचार बीबी पर प्रकट करते तो दोनों तरह के नतीजे की सम्भावना थी—या तो बिलकुल विपरीत या अनुकूल। और यह मामला हमेशा के लिए साफ़ हो जाता और किशोरी की या तो बहू ऐसी सेवा होती या बेचारी लात मारकर घर से निकाल दी जाती। परन्तु घमंडीलाल के नज़दीक ऐसा साहस करना अपराध करने से पहले ही अपने को अपराधी बनाना था। वे समझते थे कि जब तक बला टल रही है, टलने दो। समय आने पर देखा जायगा। राजरानी यहाँ जन्मभर बैठी थोड़े ही रहेगी।

इसी चिन्ता में सुबह-शाम होती थी।

जाड़े के दिन थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। घमंडीलाल सवेरे जाग जाते थे। चार बजे से ही वे खाँसना शुरू कर देते थे, जिसका मतलब यह होता था कि बेटा कैलाश मैं उठ गया हूँ, मेरी गुड़गुड़ी ताज़ी करके दे। परन्तु आज सदैव की भाँति कौवों के काँव काँव के साथ लिहाफ़ के अन्दर से उनकी कमज़ोर आवाज़ बिलकुल न सुनाई पड़ी। कैलाश अपने समय पर जाग गया था, परन्तु उसे क्या पड़ी थी कि दादा को जगा कर दर्द सर मोल लेता। जब ख़ूब उजाला हो गया और घर के सब लोग उठकर अपना अपना काम करने लगे तब उसने

गुड़गुड़ी ताज़ी करके दादा की चारपाई के पास रख दी। चिलम जल गई, परन्तु घमंडीलाल ने मुँह न खोला। राजरानी उधर से जा रही थी। उसने झुँझला कर लिहाफ़ उलटा, देखा कि वे मुँह बाये और आँखें बन्द किये पड़े हैं।

राजरानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। दुनिया उसकी नज़रों में अँधेरी हो गई।

(३)

राजेश्वर घमंडीलाल का छोटा भाई था। शहर की किसी मिल में क्लर्क था। बाप के ही ज़माने से दोनों भाई अलग रहते थे। बेचारा बाप एक जून घमंडीलाल के यहाँ खाता और दूसरी जून राजेश्वर के यहाँ, यद्यपि वह दिल से यही चाहता था कि उसकी सेवा का भार बसंती बहू अपने ज़िम्मे ले ले। परन्तु बसंती बहू में इतना साहस नहीं था कि वह यह कहती कि अब बाबू जी उसी के यहाँ रहेंगे और न बाबू जी में ही इतनी हिम्मत थी कि राजरानी की रूखी-सूखी रोटियों को ठुकराकर उसके यहाँ आ जमते। बूढ़ा सोचता था कि क्यों किसी से वैर बढ़ायें।

बसंती का लड़का मनोहर बी० ए० में पढ़ता था। बचपन में बहुत ही नटखट था और पढ़ने के नाम से भागता था, परन्तु अब हर घड़ी किताब खुली रहती थी। एक दिन राजरानी कहीं बाहर गई थी। किशोरी को हुक्म मिला था कि वह जल्दी भोजन बनाकर भैया को खिला दे। जब घर में खोजने पर दियासलाई न मिली तब वह दौड़ी हुई बसंती के घर गई। बसंती ने उसको बहुत कम देखा था और आज-कल वह पहले से बहुत दुबली हो गई थी। उसने दियासलाई देते हुए पूछा—"तू कौन है बेटी?"

किशोरी न समझ सकी कि क्या कहकर अपना परिचय दे। मनोहर बोल उठा—"मा, इनको तुम नहीं जानती। चाचा के यहाँ ये तो बहुत दिन से रहती हैं।"

"चल, मुझसे हँसी करता है। क्या मैंने उसको देखा नहीं है? बड़ी सुन्दर गोरी-सी—और वह तो अब ब्याहने के लायक़ हुई होगी।"

मनोहर को मा की बातों पर हँसी आ गई।

बसंती ने उस समय किशोरी को छेड़ना मुनासिब नहीं समझा। हाँ, उससे कभी कभी उसके घर आने का अनुरोध अवश्य किया।

किशोरी दियासलाई लेने आई थी, लेकर चली गई।

× × × ×

शाम को जब राजेश्वर घर आया तब बसन्ती ने अपने मन की बात उससे कही। राजेश्वर को कोई उ[illegible] न था, परन्तु सवाल राजरानी की नाराज़गी का था। फ[illegible] में यह निश्चय हुआ कि 'किशोरी कभी कभी दोनों यहाँ बुलाई जाया करे। यदि राजरानी हस्तक्षेप न सगुन समझ लेना चाहिए कि काम बनने की आशा है, नहीं[illegible] फिर अपना अधिकार ही क्या'।

"चलो चलती हो रमेश के यहाँ"। राजेश्वर ने कहा।

"हाँ, चलती तो ज़रूर, परन्तु मनोहर नहीं है। चाभी किसे दूँगी।"

"तो मैं जाता हूँ। तुम कल चलना।"

राजेश्वर उठने ही वाला था कि मनोहर आ गया। उसने अन्दर घुसते ही कहा—"अम्मा, आज तो चाची उसे बहुत फटकार रही हैं।"

"किसे?" राजेश्वर ने पूछा।

"उसी लड़की को जो उनके यहाँ रहती है।"

इतने में सिसकती हुई किशोरी ख़ुद आ गई।

बसंती ने मानो उसे कुछ मालूम ही न था, इस प्रकार कहा—"आ गई बेटी। आओ, इधर चली आओ।" किशोरी भीतर जाकर बैठ गई। बसंती ने संकेत करते हुए राजेश्वर से कहा—"अब तुम जाते क्यों नहीं"। बसंती ने पूछा—"क्या हुआ बेटी"?

किशोरी मुँह से कुछ कहना नहीं चाहती थी। आँखों का इशारा था कि जो कुछ हुआ, समझ लो। परन्तु बसंती के लगातार अनुरोध करने पर उसे कहना ही पड़ा—

"अम्मा ने आज मुझे इसलिए मारा कि मैं दियासलाई लेने तुम्हारे घर क्यों आई। मैंने कहा कि घर में न तो आग थी और न दियासलाई और न तुम पैसा ही दे गई थीं। तब फिर उधार माँगने के सिवा और उपाय ही क्या था? इस पर उन्होंने कहा कि तुमने पहले ही पैसा क्यों नहीं माँग लिया। मैंने कहा यदि यही मालूम होता कि आप सलाई बन्द करके चली जायँगी तो पैसा माँगने की क्या ज़रूरत थी, दियासलाई ही न माँग लेती। इस पर वे जल गईं और मुझे पकड़ कर मारने लगीं। किसी ने बाहर से ज़ञ्जीर खटखटाई तब मेरे प्राण बचे। नहीं तो मालूम होता था कि आज क़िस्सा ही ख़त्म कर देंगी।"

दो वर्ष पहले यदि कोई किशोरी को थप्पड़ों के बदले लातों से मारता तो पीड़ा के अतिरिक्त उसे इतनी मानसिक वेदना न होती। वह समय खेलने-खाने और काम करने [illegible] था, परन्तु यह समय तो रूठने और मान करने का [illegible] इस उम्र में जब दुनिया मुसकुराती हुई नज़र आती है [illegible]ड़ों के प्रहार से आँसुओं का निकलना! समय की [illegible] किया। हँसती हुई दुनिया को देखकर रोना भी पड़ता है!

[illegible] "तुमने ग़लती की बेटी। मुझे ख़याल ही नहीं रहा, [illegible] तो मैं तुम्हें समझा देती। मनोहर के बाप और कैलाश के दादा दोनों सगे भाई हैं, परन्तु राजरानी की बदौलत हम लोग कोई तेरह वर्ष से अलग हैं। वह तो हम लोगों को देखकर जलती है। अगर उसे मालूम हो जाय कि तुम यहाँ हो तो गालियों की झड़ी लगा दे।"

"उन्होंने मुझे यहाँ आते हुए देखा है।"

"उसने तुमको रोका नहीं?"

"उन्होंने कहा कि नानी के यहाँ जाती हो। तब जानूँ जब घूमफिरकर फिर मेरे यहाँ न आओ।"

मनोहर की मा ने आँख बन्द करके एक मिनट तक सोचा। फिर उसने कहा—"अच्छा अब वहाँ कभी न जाना। तुम मेरे ही यहाँ रहो।"

एक दबी हुई आह के साथ कृतज्ञता के दो बूँद आँसू किशोरी के गालों पर लुढ़क गये।

(४)

किशोरी इतने दिनों तक पत्थर के नीचे दबी हुई दूब थी। अब आज़ादी के हवा-पानी ने उसे निखार दिया। उसे राजरानी का घर छोड़े हुए सवा महीने हो गये थे। इस बीच में बसन्तो पर कई हमले किये गये। राजरानी कभी किसी से कहती कि किशोरी उसके कुल गहने उठाकर बसन्ती को दे आई है, कभी पड़ोसियों से रुपये चोरी जाने की चर्चा करती। मतलब यह कि जितने आदमियों से कहती, उतने प्रकार की बातें भी होती थीं और लोगों के विचार भी उतने ही प्रकार के होते थे।

एक दिन झींगुर की बहू से राजरानी ने कहा—"मुई मेरे सौ रुपये उठा ले गई।"

रामदेई ने कहा—"चल झूठी कहीं की। अभी तो मैंने बिटिया के गौने में तुमसे दस रुपये उधार माँगे थे तब तुमने बीस बहाने किये थे। भला उस अभागिन के जाते ही तेरे पास रुपये तो हो गये!" सारांश यह कि राजरानी को हर बात पर मुँह की खानी पड़ती थी, मगर वह सहज में ही मान जानेवाली औरत न थी। आग की प्यास पानी से नहीं बुझती। आग की प्यास उस समय बुझती है जब उसकी लपट में आनेवाली कुल चीज़ें जलकर भस्म हो जाती हैं। अभी राजरानी के पास साधन थे। उसका सबसे बड़ा हथियार उसकी कभी न थकनेवाली जीभ थी।

(५)

भगवान् भास्कर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे। जाड़े के दिनों की काँपती हुई धूप दिन भर की चहल-पहल के बाद दुनिया को शांति का सन्देश सुना रही थी। दिन भर चारे की खोज में इधर-उधर भटकनेवाले पक्षी अपने बच्चों को देखने के लिए घोंसलों की ओर खिंचे जा रहे थे। सरसों का पीला फूल, मटर की लाल, नीली, पीली और सफ़ेद फुनगियाँ बसन्त के यौवन की सूचना दे रही थीं। कहीं कहीं पुर से सिंचाई हो रही थी। अपना काम दूसरे दिन पर न छोड़नेवाले किसान बेज़बान जानवरों को मार रहे थे और संध्या के उस कोलाहल में उनके पीटने का शब्द साफ़ दूर तक सुनाई देता था, छोटे छोटे बच्चे अलाव जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे थे। एक अनोखा दृश्य था।

ग्राम के एक घने पेड़ के नीचे राजरानी और राजेश्वर के झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायत बैठी थी। झगड़े का मुख्य विषय यह था कि किशोरी पर किसका अधिकार है। अपने अपने धन का फ़ैसला करने के लिए लोग पंचायत करते हैं, परन्तु एक तीसरे व्यक्ति के माल पर अधिकार जमाने की यह एक अनोखी पंचायत थी।

पण्डित छोटेराम सरपंच थे। बड़े-बूढ़ों ने किसी समय में संस्कृत पढ़ी होगी, परन्तु इन पण्डित जी को हज़ारों वर्ष की इस पुरानी भाषा से घृणा थी। थोड़ी-सी अँगरेज़ी जानते थे। इनको सरपंच बनाते समय इनकी तीव्र बुद्धि की अपेक्षा लोग इनके धनी होने का अधिक ध्यान करते थे और विनयपूर्वक इतना आग्रह करते थे कि पंडित जी चुपचाप पंचायत के सरपंच बन बैठते थे।

पंडित छोटेराम ने पूछा—"बात क्या है? अब तो इस गाँव में रोज़ पंचायत ही होती रहती है। किसे इतनी फ़ुर्सत है, जो काम-काज को छोड़कर इसी का हो रहे।"

राजेश्वर ने कहा—"महाराज, इसका जवाब भाभी ही देंगी।"

राजरानी के निकट अपनी बात हाकिम से पहले कहना आधी जीत के बराबर थी। उसने यह अवसर छोड़ना मुनासिब न समझा। उसने कहा—"महाराज, मेरे घरवाले—उनको तो आप जानते ही होंगे। आपके पास घंटों बैठे सुर्ती बनाया करते थे। कहा करते कि पंडित जी बड़े अच्छे आदमी हैं। हाँ, तो वे अपने मित्र की एक लड़की पालने-पोसने के लिए लाये थे। अब इन लोगों ने उसको बहकाकर अपने यहाँ रख लिया है और वापस नहीं करते। महाराज, वह मुझे दिला दी जाय। यदि ये लोग उसे रखना चाहते हों तो इतने दिनों का ख़र्च हमको दिलाया जाय। इसके सिवा मुझे कुछ नहीं कहना है।"

"कन्या की क्या अवस्था होगी?"

"कोई पन्द्रह वर्ष।"

"पन्द्रह वर्ष की लड़की तो बहकाई नहीं जा सकती। अच्छा, मैं उससे पूछ लूँ। अगर वह तुम्हारे यहाँ जाने को राज़ी होगी तो तुमको दिला दी जायगी।"

"महाराज, उसको ऐसी पट्टी पढ़ाई गई है कि अब वह हमारे घर आने के लिए अपने मुँह से नहीं कहेगी। पंच या तो उसे मेरे यहाँ जाने को कहे या ख़र्च दिलावे।"

मुक़द्दमा छोटे महाराज की क़ानूनी समझ से बाहर हो गया। इस तरह ख़र्च दिलाने की कोई नज़ीर उनको नहीं मिलती थी। उन्होंने झगड़ू की ओर सिर खुजलाते हुए देखा।

झगड़ू ने तम्बाकू की पीक थूकते हुए कहा—"महाराज, लड़की चाहे तो दिलाय दीन जाय। रुपया के नाम पर इनको झंझी कौड़ी न मिलनी चाहिए। इनके घर लड़की को तकलीफ़ थी, इसी से भाग गई। इनके पति परवरिश की ख़ातिर लाये थे। अगर ये उसकी रोटी नहीं चला सकती हैं तो पाँच रुपया महीना ये राजेश्वर के दिया करें। पंच का फ़ैसला यह है। नहीं तो ये कन्या से बाज़ आवें। सीधी बात यह है।"

सबने झगड़ू के फ़ैसले को मंज़ूर किया। छोटे महाराज ने कहा—"ऐसा दो टूक फ़ैसला तो अदालत भी नहीं कर सकती। दूध का दूध पानी का पानी। चलो चलें। भंग छानने को देर हो रही है।"

सब लोग एक साथ उठे और इधर-उधर छिटक गये। राजरानी आम के पेड़ के नीचे गड़ी जा रही थी।

(६)

मई का महीना था। स्कूल और कालेज बन्द थे। कैलाश हिसाब में फ़ेल हो गया था। जु[illegible] उसका फिर से इम्तिहान होनेवाला था। वह रेखा-[illegible] की शक्लों से दिमाग़ लड़ा रहा था। पोस्टमैन ने [illegible] नाम लेकर पुकारा।

वह ख़ुशी से उठा—"मोहिनीबाला का पत्र आया है।"

वह एक लाल लिफ़ाफ़ा लिये हुए मुँह लटकाये अन्दर आया और रेखा-गणित के व्यूह में फिर उलझ गया।

"क्या है?" राजरानी ने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"नहीं कुछ तो ज़रूर है।"

"मनोहर का ब्याह किशोरी से हो रहा है।"

"कौन? मेरी किशोरी!" सहसा उसके मुँह से निकला। किशोरी का दुबला-पतला शरीर, गोरा रङ्ग, बड़ी बड़ी आँखें और भौंरे की तरह काले बाल क्षणमात्र में उसकी आँखों में फिर गये। "वह तो मेरी बहू भी हो सकती थी। मगर—हाय राम! मैंने उसको 'पराई कन्या' न समझ कर अपनी 'होनेवाली बहू' क्यों न समझा? ब्याह में एक पैसा भी ख़र्च न होता। लड़की के मा-बाप की आत्मा कितनी प्रसन्न होती। कैलाश के बाबू मुझे माफ़ करना। मुझसे घोर अपराध हुआ है।"

कैलाश के स्वर्गीय पिता के अंतिम समय का चित्र राजरानी की आँखों में खिंच गया। वही खुला हुआ मुँह, बन्द आँखें मानो उससे कह रही थीं, "हाँ तुमने ग़लती की"।

राजरानी के गालों पर आँसू की लुढ़कती हुई दो बूँदों ने इसका समर्थन किया।

दूर पर बाजे की मधुर आवाज़ सुनाई पड़ी।

कैलाश गणित की पुस्तकों को बन्द कर रहा था। मोहिनीबाला का पत्र न मिलने से वह दुखी था। उसका मन काम में नहीं लग रहा था।

भारतीय साक्षरता का भविष्य और वर्तमान

लेखक, श्रीयुत विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'

'भारतीय साक्षरता का भविष्य अत्यंत ही अंधकारपूर्ण है और इक्कीसवीं सदी में भी भारत अपने को अंधकार में ही पायगा।' यह कथन उस वक्तव्य में का है जो 'हिन्दी-समाचार-समिति' ने हाल में प्रकाशित किया है। वास्तव में यह एक निष्ठुर सत्य है। भारतीय शिक्षा की समस्या उस स्थिति को पहुँच गई है, जहाँ केवल प्रान्तीय सरकारों का ही यह कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि वे इस समस्या की ओर अधिक दत्तचित्त हों, वरन हर एक नागरिक का भी यह कर्त्तव्य है कि वह साक्षरता की ओर अपनी वैयक्तिक ज़िम्मेवारी का अनुभव करने और उस ज़िम्मेदारी को लेने के लिए अपनी शक्तियों को केन्द्रित करे। इस दृष्टि से प्रजातंत्रवाद का यह सबसे बड़ा दुर्गुण है कि उसमें कोई भी कार्य एकदम नहीं किया जा सकता। जितने समय में कमाल अतातुर्क या स्टेलिन ने अशिक्षा पर क़ाबू पा लिया है, उतने में भारत में शायद एक अंश भी पूरा नहीं किया जा सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रजातन्त्रवाद बुरा है, लेकिन वह प्रगति की बाधक प्रगतियों को नहीं रोक सकता है।

अपनी साक्षरता की स्थिति को ठीक ठीक समझने के लिए हमें कुछ आँकड़ों की सहायता से चलना पड़ेगा। भारतीय साक्षरता की प्रगति के निम्न आँकड़े गवाही देते हैं कि हम किस गति से बढ़ रहे हैं—

(कुल विद्यार्थी स्कूलों में)

प्रान्त	१९३४	१९३५	१९३६
मदरास	३०,१९,३६०	३०,६४,२०५	३१,७३,९८०
बम्बई	१३,७४,२६६	१४,२२,१४६	१४,७६,४०४
बंगाल	२९,६६,७१२	३०,७५,२७२	३१,४६,२९१
संयुक्त-प्रान्त	१५,७८,६८९	१५,९४,६४०	१६,२०,२६०
पंजाब	१२,८०,७५४	१२,६८,४७४	१२,७४,४३३
बर्मा	७,२७,०५२	७,३०,१०६	७,४३,७८५
बिहार-उड़ीसा	२१,३३,६०९	११,८४,९६८	१२,१४,८८७
मध्यप्रान्त	४,८२,७१८	५,०१,१६७	४,९९,१००
आसाम	३,८३,४५१	४,०३,८९०	४,३४,०२१
कुर्ग	११,२०८	११,१३०	११,५८६
दिल्ली	४५,४१८	४७,११४	४९,२२४
अजमेर मेरवाड़ा	२५,१४७	२६,१०२	२७,२४७
बलूचिस्तान	११,९३६	१२,७८२	७,३८४
बँगलोर	१७,५६७	१८,२३४	१८,७२६
अन्य क्षेत्र	२१,०९८	२१,०८४	२२,६२६
सीमा-प्रान्त	९३,५७५	९५,२६३	९७,१६६
योग	१,३१,७२,८९०	१,३५,०६,८६९	१,३८,१६,१४९

इन आँकड़ों से ३७ करोड़ की आबादी में जो लोग पढ़ रहे हैं उनकी संख्या का पता तो लग ही जाता है, लेकिन इससे एक और आवश्यक बात यह ज्ञात होती है कि पिछले दो वर्षों में विद्यार्थियों की संख्या में जो वृद्धि हुई है वह ३,३३,९७९ (१९३५) और ३,०९,२८० (१९३६) है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृद्धि का जो क्रम शुरू हुआ था उसमें सन् १९३६ में कमी हो गई है। यह चिह्न उस देश के लिए अच्छा नहीं है जो किसी प्रगति-पथ पर बढ़ना चाहता है। यह इसलिए कि इस देश में हर वर्ष लाखों की तादाद में बच्चे बढ़ रहे हैं। उदाहरण के लिए सन् १९३१ में यह वृद्धि केवल २५,२०,७९१ थी तो सन् १९३४ में २४,३५,६५३ थी, और इस तरह जन-संख्या में जो वृद्धि हो रही है, अगर उसके अनुपात से स्कूलों में दाख़िल होनेवाले शिक्षार्थियों की वृद्धि न हुई तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा कि जन-संख्या बढ़ती जायगी और शिक्षितों का औसत कम होता जायगा। इन्हीं आँकड़ों

से यह पता लगता है कि हम शिक्षा के मार्ग पर किस प्रकार मन्द गति से बढ़ रहे हैं! अर्थात् सन् १९३४ में कुल जनता के ४·८ प्रतिशत विद्यार्थी स्कूलों में थे, सन् १९३५ में यह प्रतिशत ४·९७ हुआ और सन् १९३६ में ५·०६। किस प्रकार घोंघे की गति से शिक्षा का प्रसार हो रहा है, इसे ध्यान में रखते हुए यह कहना उचित होगा कि अगर यह भी मान लिया जाय कि ८ प्रतिशत लोग पढ़े-लिखे हैं और क़रीब ५ प्रतिशत पढ़ रहे हैं तो साक्षरता १३ प्रतिशत होती है। अगर इस देश में निरक्षरता के विरुद्ध इसी गति से युद्ध होता रहा तो उसको दूर करने में ब्रिटिश भारत को ७१६ वर्ष लग जायँगे। यह गणित सही होता, अगर उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का प्रारम्भ न होता। लेकिन उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के बावजूद भी समस्या इतनी महान् है कि मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों में अगले पचास वर्षों में भी कोई आशाजनक परिणाम सम्भव नहीं, जब तक कि महात्मा जी की शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की योजना स्वीकृत न कर ली जाय। वास्तव में शिक्षा का महँगापन और देश की ग़रीबी—इन दोनों परस्परविरोधी स्थितियों में शिक्षा का विकास घोंघा-गति के अतिरिक्त अन्य प्रकार से नहीं हो सकता। आप नीचे दिये कोष्ठक के आधार पर जब शिक्षा की महँगाई पर विचार करेंगे तब पता चलेगा कि स्वावलम्बी बनाये बिना यह अशिक्षा का दानव विनष्ट नहीं किया जा सकता—

शिक्षा-व्यय प्रतिविद्यार्थी प्रतिवर्ष

प्रान्त	१९३५ रु०	आ०	पा०	१९३६ रु०	आ०	पा०
मदरास	१८	१	२	१७	९	७
बम्बई	३०	०	०	२९	७	६
बंगाल	१४	४	९	१४	६	५
युक्तप्रान्त	२४	१३	१	२५	०	१
पंजाब	२०	८	९	२८	६	१०
बर्मा	२९	३	५	३०	३	८
बिहार-उड़ीसा	१५	५	५	१५	१५	०
मध्यप्रान्त	२१	१३	५	२२	९	२
आसाम	१३	६	४	१३	७	१०
सीमाप्रान्त	३२	३	१	३१	१२	५
कुर्ग	२२	२	२	२३	१५	८
दिल्ली	६०	०	९	६०	१४	६
अजमेर-मेरवाड़ा	३८	१	७	४१	८	१०
बलूचिस्तान	५८	२	७	६०	१	६
बँगलौर	५२	११	६	५०	०	१
अन्य क्षेत्र	७२	११	८	५९	१५	३
ब्रिटिश भारत औसत	२०	११	०	२०	१३	४

जिस देश में प्रतिव्यक्ति की औसत आमदनी ६ पैसे रोज़ हो, वहाँ २०॥।=)४ प्रतिविद्यार्थी शिक्षा पर व्यय करना संभव नहीं तो अधिक तो है ही। शिक्षा इस प्रकार की महँगी चीज़ हो रही है कि अगर प्रान्तीय सरकारें अनिवार्य शिक्षा भी करें तो उन्हें आज की परिस्थिति में हर विद्यार्थी के भर्ती होने के साथ ही काफ़ी रक़म की व्यवस्था भी रखनी होगी। वैसे पिछले वर्ष से सन् १९३६ में शिक्षा के व्यय में ८०,६७,५८६ रुपये की वृद्धि हुई है और कुल ख़र्च २७,३२,७६,००९ रुपया हुआ। लेकिन इस अस्सी हज़ार की वृद्धि से शिक्षार्थियों की संख्या में क्या वृद्धि हुई, इस पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

मूल कारणों की ओर

इस अवस्था में हमें अब विचार करना चाहिए कि कौन-सी ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें हम साक्षरता शीघ्र और ठीक प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं। अभी कुछ दिन पहले एबट-वुड ने अपनी रिपोर्ट में साक्षरता के प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है—

हमको कई क्षेत्रों से यह सुझाया गया है कि प्रारम्भिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्थायी साक्षरता के लिए है। हम इसे शिक्षा का किसी भी अवस्था में यह उद्देश्य नहीं समझते। साक्षरता, सुख की नाईं, ऐसी चीज़ नहीं है, जो सँकरे दायरों से प्राप्त की जा सके। वह तो संतोष देनेवाले कार्यों का एक अवश्यम्भावी परिणाम है।

मिस्टर एबट और वुड ने एक महान् सत्य कहा है, जिसका प्रमाण हमारे देश के आँकड़े हैं। वास्तव में हमारी साक्षरता के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि साक्षरता का लोप बड़ी शीघ्रता से हो रहा है। संभवतः संसार के किसी देश में इस तरह साक्षरता का निरक्षरता में

परिवर्तन नहीं होता, जितना कि हमारे देश में। साक्षरता का मापदण्ड अक्षरज्ञान तक मान लेने पर भी हमारे देश में पढ़ने की दिलचस्पी बहुत शीघ्र समाप्त हो जाती है। प्रायमरी शिक्षा में जो विनाश होता है वह अत्यन्त ही भयंकर है। थोड़ा-सा दृष्टिपात कीजिए—

बालक शालाओं में—पहले तो ५१ प्रतिशत ही ऐसे बच्चे पढ़ने जाते हैं जिन्हें पढ़ना चाहिए। इसका अर्थ है कि हमारे ४९ प्रतिशत बच्चे शिक्षालयों का मुँह ही नहीं देखते। इसके पश्चात् यह देखिए कि पहली कक्षा में भर्ती होने के बाद कितने लड़के चौथी कक्षा तक पहुँच पाते हैं—

सन्	पहली कक्षा	चौथी कक्षा में
		सन् १९२१
१९१७	२९,३३,६०५	४,१५,४२८
		सन् ३४-३५
१९३१-३२	३८,७१,१८६	१० १७.२३०

इसका अर्थ यह है कि प्रायमरी स्कूलों में जो बच्चे दाख़िल होते हैं उनमें से ७४ प्रतिशत चौथी कक्षा तक पहुँच ही नहीं पाते। इसको प्रधानतः शोचनीय और दयनीय स्थिति कहनी चाहिए, जो सन् १९३६ की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार "वर्तमान प्रणाली में मेटी नहीं जा सकती।" लेकिन इस प्रणाली के कुछ मुख्य दोष तो दूर किये ही जा सकते हैं। उदाहरण के लिए १,६६,५८८ प्रायमरी स्कूलों में (जो २० गाँव के लिए एक स्कूल के हिसाब से पड़ते हैं) ९५,८५१ अर्थात् ५७·५ प्रतिशत ऐसे प्रायमरी स्कूल हैं, जहाँ केवल एक ही शिक्षक है। फिर हर एक स्कूल में औसतन ५२ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। चार कक्षाओं के एक स्कूल में ५२ लड़कों को सँभालने की क्षमता एक अध्यापक की शक्ति के बाहर है। फिर भी शिक्षा के ढोंग को क़ायम रखने के लिए यह जारी रक्खा गया है। इस स्थिति में पढ़ने योग्य जो ५०·३ प्रतिशत बालक भर्ती भी होते हैं, उनमें २६ प्रतिशत का चौथी कक्षा तक पहुँच जाना ही आश्चर्य है।

लड़कियों की शिक्षा में तो यह स्थिति और भी विकट है। जितनी लड़कियाँ स्कूल में जाने के क़ाबिल हैं उनमें से सिर्फ़ १९·५ प्रतिशत तो स्कूलों में भर्ती होती हैं और फिर जितनी भर्ती होती हैं उनमें से केवल १३ प्रतिशत चौथी कक्षा तक पहुँच पाती हैं। निम्न आँकड़े इसकी गवाही देंगे और बतायेंगे कि किस प्रकार लड़कियों की शिक्षा में विनाश का क्रम जारी है—

पहले दर्जे में (३१-३२)	१४,१०,१९९
दूसरे दर्जे में (३२-३३)	४,२५,९४५
तीसरे दर्जे में (३३-३४)	२,८६,७७८
चौथे दर्जे में (३४-३५)	१,८६,७२८

लड़कियों की शिक्षा में भी यही अन्धेरखाता है। वहाँ भी कुल ५.२ प्रतिशत शिक्षिकायें पढ़ी हुई हैं और शेष अपना काम यों ही चला ले जाती हैं। लड़कियों की शिक्षा की समस्या इस दृष्टि से और भी विकट है। अगर वे भी भर्ती हो जायँ जो अभी स्कूलों में नहीं हैं तो १३,१९,१७,५०० रुपयों की फ़ौरन आवश्यकता हो जायगी। इसके सिवा स्कूल में पढ़ने योग्य जितनी लड़कियाँ हैं उनमें से आधी भी भर्ती हो जायँ तो १,५१,१८८ अध्यापिकाओं की आवश्यकता अलग होगी। इसलिए शिक्षा को बढ़ाने का काम साधारण नहीं है।

हमारी शिक्षा-समस्या इस दृष्टि से कई प्रकार के रूप धारण कर लेती है और ऐसी स्थिति में जो लोग यह कहा करते हैं कि पाँच वर्ष में इसी आधार से अशिक्षा का निवारण किया जा सकता है वे बहुत ग़लती में हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे सामने कठिनाइयों का पहाड़ है। इस विवरण में वयस्कों की शिक्षा का उल्लेख नहीं किया गया है, जिनकी स्थिति बच्चों से अधिक पढ़ने की है। इनके लिए हम क्या कर सकते हैं, यह भी एक चिन्ता का विषय है। प्रान्तों की आज की स्थिति को देखते हुए अगर कोई उपाय है तो वह यही है, जो हम नीचे अंकित करते हैं।

सन् १९३५-१९३६ के तख़मीने के अनुसार हमने शिक्षा पर २५ करोड़ ३६ लाख रुपये व्यय किये। इसमें से सिर्फ़ ५ करोड़ आठ लाख प्राथमिक शिक्षा, १ करोड़ ५० लाख यूनिवर्सिटी और ५ करोड़ ७६ लाख हाई स्कूलों की शिक्षा पर व्यय किये गये। इस तरह आप देखेंगे प्रायमरी शिक्षा और उच्च शिक्षा में ख़र्च का जो विभाजन है वह अत्यन्त अनुदार है। उदाहरण के लिए ग्रेट ब्रिटेन को ही लीजिए। ग्रेट ब्रिटेन ने सारी जनता को प्राथमिक शिक्षा दे डाली है। उसके शिक्षा के कुल ख़र्च में ६८·२ प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर ख़र्च होता है, ३·८ प्रतिशत

आता है। शाम का ...सात बज जाते हैं फिर रात

यूनिवर्सिटी शिक्षा पर और २८.५ प्रतिशत सेकेंडरी शिक्षा पर। इसके विपरीत भारत में ३.८ यूनिवर्सिटी पर, ३४.३ प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर और २४.१ प्रतिशत सेकेन्डरी शिक्षा पर व्यय हो रहा है। अगर सारी यूनिवर्सिटियाँ, कालेज और हाई स्कूल पाँच वर्ष के लिए बन्द कर दिये जायँ और सारा का सारा धन प्रायमरी शिक्षा के प्रसार में लगाया जाय तो ज़रा-सी भी हानि न होगी और निरक्षरता का मैदान हम आसानी से मार लेंगे।

इस सलाह पर लोग चौंकेंगे, लेकिन जब वे तथ्यों की जाँच करेंगे तब उन्हें इसके मानने में आपत्ति न होगी कि मेरे इस प्रस्ताव से लाभ होगा। ज़रा इन ख़र्चों पर नज़र दौड़ाने की कृपा तो कीजिए। प्राथमिक शिक्षा पर प्रतिलड़के पर ७ रु० १२ आ० ख़र्च होता है और लड़की पर ९ रु० ६ आ० २ पा०। इसके विपरीत हाई स्कूल में प्रतिलड़के-लड़की पर यह सालाना ख़र्च है—

			रु०	आ०	पा०
हाई स्कूल	लड़की	...	५०	५	३
,,	लड़का	...	७८	१४	२
यूनिवर्सिटी	लड़की	...	३९८	८	८
,,	लड़का	...	१९१	६	५
मिडिल स्कूल	लड़की	...	३०	८	६
,,	लड़का	...	१९	११	१

इस तरह यह समझने में ज़रा भी मुश्किल नहीं होगी कि यूनिवर्सिटी के एक विद्यार्थी पर जो ख़र्च होता है उससे २० से लेकर चालीस तक प्राथमिक शिक्षा के बालकों को आसानी से शिक्षा दी जा सकती है।

सच तो यह है कि हम जो आज २८ करोड़ रुपया शिक्षा पर ख़र्च कर रहे हैं वह तालाब में बूँद के समान हो रहा है। हमारी शिक्षा-पद्धति एकदम बदली जानी चाहिए, शिक्षक बदले जाने चाहिए, प्रायमरी और यूनवर्सिटी शिक्षा के बीच के ख़र्चों का संतुलन होना चाहिए, अच्छी इमारतें होनी चाहिए और स्कूलों में लाभजनक धंधे शुरू किये जाने चाहिए। एबट-वुड-रिपोर्ट में इन सब पर ज़ोर दिया गया है, लेकिन प्रायः दिवालिया प्रान्तीय सरकारों से जब और अधिक व्यय करने की उम्मीद नहीं की जा सकती और जब शराब-बन्दी प्रान्तीय आमदनी पर वज्रपात कर रही है तब शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने के सिवा और कोई मार्ग तो फ़िलहाल नहीं दिखाई देता है।

गीत

लेखक, श्रीयुत महेशशरण जौहरी 'ललित'

कौन किसका दुख मिटाये।
आज रोने का समय है;

किसे सुख का गान भाये।
कौन किसका दुख मिटाये॥

यह तुम्हारा प्यार कैसा;
लघु हृदय पर भार कैसा;
अब मुझे सत्कार कैसा;
कौन क्योंकर पास आये।
कौन किसका दुख मिटाये॥

आज क्यों आँसू भरे हैं;
मेघ नयनों पर तरे हैं;
और ये उर व्रण हरे हैं;
युगों की मेरी प्रतीक्षा,
क्यों उसे कोई नसाये।
कौन किसका दुख मिटाये॥

आदर्श ग्राम बद्रीपुर

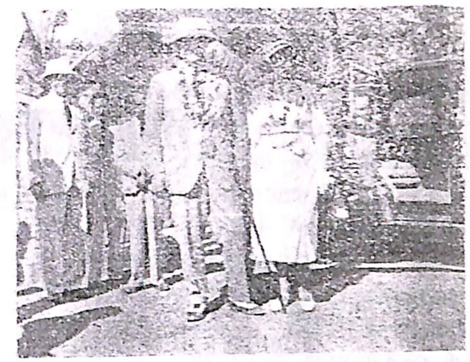
लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

वर्तमान परिवर्तित परिस्थिति में साधारणतया सारे देश में और विशेषतः युक्त-प्रान्त और बिहार में किसान-ज़र्मीदार-समस्या पेंचीदा होती जाती है। जो किसान कल तक एक इंच ज़मीन का भी मालिक न था, वही आज चाहता है कि ज़मींदार के पास से सारी ज़मीन लेकर मुझे दे दी जाय और मुझसे उसके एवज़ में कच्ची कौड़ी भी न ली जाय। किसान को इस प्रकार का पाठ पढ़ानेवाला एक दल भी है, जिसका काम है किसान को ज़मींदार के विरुद्ध भड़काना।

एक ओर किसान जहाँ सब कुछ हथियाने की सोचता है, वहाँ दूसरी ओर ज़मींदार भी कुछ नहीं देना चाहता, वह समझता है कि यदि मैंने आज कुछ दे दिया तो मैं बाद को और भी देने को विवश किया जाऊँगा।

आज ग्रामों की मुख्य समस्या यही वर्ग-युद्ध है। वर्ग-युद्ध का आधार है अविश्वास और भय। अविश्वास और भय दोनों हिंसा के विभाव और अनुभाव हैं। संसार की और हिन्दुस्तान की भी सारी समस्याओं का आधार यही वर्ग-युद्ध है। यदि युक्त-प्रान्त में किसान-ज़मींदार-समस्या ग़रीब-अमीर की समस्या है तो बंगाल और पंजाब के पश्चिमी भाग में यही समस्या साम्प्रदायिक रूप में व्यक्त की जाती है। भारत की हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी इसी वर्ग-युद्ध का नग्नरूप है। अविश्वास, भय, मनुष्य-समाज को सुखी नहीं बना सकते। युद्ध जीवन का अणुतम भाग है। वर्ग-युद्ध उसको जीवनव्यापी बनाना चाहता है, इसलिए वह शुद्ध सत्य के प्रतिकूल है। जो लोग वर्ग-युद्ध को उत्तेजित करके किसान-ज़मींदार-समस्या को हल करना चाहते हैं वे देश का हित नहीं करते हैं।

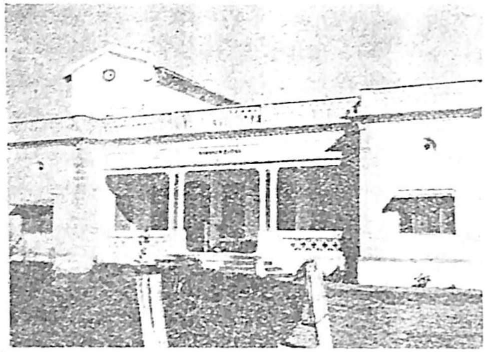
गांधीवाद का आधार सत्य है। अहिंसा उसी सत्य का मूर्त और विश्वास तथा निर्भयता उसी सत्य का मूर्ततर रूप हैं। गांधीवाद किसी व्यक्तिविशेष को किसी वर्ग अथवा सम्प्रदाय या देश का रहनेवाला होने से अविश्वसनीय नहीं कहता, इसलिए वह एक लाठी से सबको हाँकने का विरोधी है। साथ ही गांधीवाद स्वभावतः मनुष्य को अविश्वास्य-पापी और खूँख़्वार जानवर मानने को तैयार नहीं है। इससे भी बढ़कर गांधीवाद मनुष्य का स्वरूप उसके दृश्यमान शरीर की अपेक्षा उसके अदृश्य शरीर—मन-बुद्धि और उससे परे आत्मा को मानता है, इसलिए वह बाह्य परिवर्तन करके रोग का तात्कालिक उपचार करने की अपेक्षा बुद्धि और मन—आत्मा के परिवर्तन पर अधिक निर्भर करता है। इसी आधार पर गांधीवादी केवल ज़मींदार होने से किसी को बुरा नहीं मान सकता। गांधीवाद ज़मींदार को किसान का उसकी इच्छा से रक्षक—ट्रस्टी बनाना चाहता है।



[बद्रीपुर में लॉर्ड और लेडी लिनलिथगो (भारत के वर्तमान वायसराय)]

कहा जाता है कि गांधीवाद भूतल की चीज़ नहीं, वह तो देवों का आदर्श है। हमारा कथन है कि गांधीवाद मनुष्यों के लिए है और इसी भूतल को स्वर्ग बनाने का सरल उपाय है। आज भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए वर्गवादी नेता भी गांधीवाद के उपर्युक्त सिद्धान्त को मानते हैं। उनका कहना है कि वर्ग-युद्ध स्वराज्य-प्राप्ति के बाद की बात है। इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि वर्ग-युद्ध स्वराज्य-प्राप्ति में बाधक है। परन्तु गांधीवाद आज के समान स्वराज्य के बाद भी उपादेय है। वह नित्य नूतन है और नित्य नूतन

आता है। शाम को छः-सात बज जाते हैं, फिर रात



[चौ० शङ्करलाल का घर—शङ्करसदन (बद्रीपुर)]

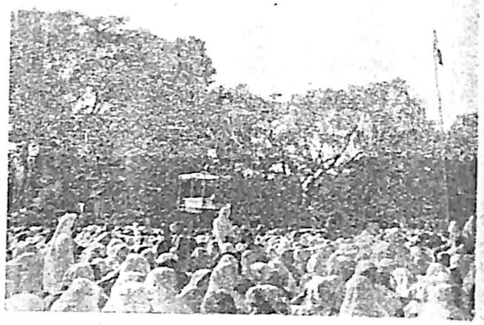
होने से ही सनातन है। मनुष्यों की पशुवृत्ति जगाकर फिर उसे पुलिस और फ़ौज से शान्त करना रोग को पैदा करके उसके इलाज करने के समान है। राष्ट्रीय महासभा भी आज गांधीवाद के आधार पर वर्ग-युद्ध करने अथवा एक वर्ग का सर्वनाश करने के पक्ष में नहीं है। परन्तु इस समस्या का हल तो तभी सम्भव है जब किसान और ज़मींदार दोनों राष्ट्रीय महासभा को सहायता दें। यह बहुत कुछ ज़मींदारों पर ही निर्भर है। आज भी हमारे देश में बड़ों की प्रतिष्ठा की भावना कम नहीं हुई है। यदि ज़मींदार त्याग और स्नेह से किसानों को अपनाना चाहें तो फिर कोई भी शक्ति किसानों को उनके विरुद्ध भड़काने में समर्थ नहीं हो



[बद्रीपुर के अस्थायी रेलवे स्टेशन पर गन्ने की गाड़ियाँ।]

सकती। इसके उदाहरण हमारे देश में अनेक मिल सकते हैं।

देहरादून का बद्रीपुर ग्राम इसका एक जीवित उदाहरण है। बद्रीपुर देहरादून शहर से हरिद्वार जानेवाली सड़क पर शहर से ५ मील पूर्व में है। ग्राम में जहाँ ज़मींदारों के सद्व्यवहार से किसान-ज़मींदार की कोई समस्या नहीं है, वहाँ बद्रीपुर और बातों में भी आदर्श है। आदर्श शब्द के साथ 'पूर्ण' विशेषण को जान बूझकर मैंने नहीं प्रयुक्त किया है। 'पूर्ण आदर्श' ग्राम की दृष्टि से अनेक त्रुटियों के रहते हुए भी बद्रीपुर में साधारणतया अनेक अनुकरणीय विशेषतायें हैं।

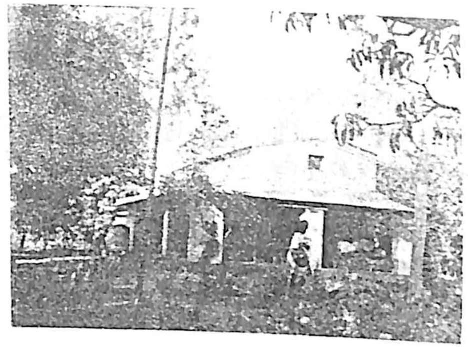


[भू० पू० राष्ट्रपति जवाहरलाल जी के स्वागत के लिए एकत्रित देवियाँ।]

जब बद्रीपुर के युवक ज़मींदार श्री सत्येन्द्रसिंह के साथ मेरा सर्वप्रथम परिचय हुआ तब मुझे यह विश्वास न हुआ कि वे एक ज़मींदार हैं। श्री सत्येन्द्रसिंह की वेष-भूषा उसके सर्वथा विपरीत थी जो मैंने अब तक के अनुभव के आधार पर ज़मींदार युवकों की समझी थी। वे खादी के वस्त्र धारण किये हुए थे, और सो भी मोटे। उनसे बातें करके तो मुझे आश्चर्य के साथ आनन्द भी हुआ। यह जानकर कि वे पक्के राष्ट्रवादी और गांधीवादी हैं और गांधीवाद के आधार पर बद्रीपुर ग्राम का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं, मेरी उनके प्रति सहानुभूति-सी हो गई। इसलिए बद्रीपुर चलने की उनकी इच्छा का मैं विरोध न कर सका। इसके बाद तो उनसे स्नेह हो जाने

से मैं कई बार बद्रीपुर गया और प्रतिबार मुझे वहाँ जाने से अधिक हर्ष हुआ। यह ठीक है, बद्रीपुर भारत की आर्थिक दुरवस्था से अछूता नहीं है, तो भी साधारणतया ग्राम के सब जाति के स्त्री-पुरुष अन्न-वस्त्र से वंचित नहीं हैं।

ग्राम के ज़मींदार कर्नवाल क्षत्रिय राजपूत हैं। सम्भवतः इनके पूर्व-पुरुष जब यहाँ बसने के लिए आये तब यहाँ बेरों का जंगल था और उन्होंने परिश्रम से उसको साफ़ करके खेती की ज़मीन तैयार की। तब से यह ज़मीन और ग्राम उनके वंशजों की सम्पत्ति बना हुआ है। कर्नवाल क्षत्रियों के गाँव में २० घर हैं। इनमें मुख्य



[श्रीयुत बाबू गिरधारीलाल जी का वानप्रस्थ-आश्रम (बद्रीपुर का बग़ीचा)।]

चौधरी शङ्करलाल जी हैं, जो ग्राम के नम्बरदार भी हैं। श्री सत्येन्द्रसिंह चौधरी शङ्करलाल के ज्येष्ठ पुत्र हैं। ग्राम में इन क्षत्रियों के पक्के मकान हैं और सब घर पृथक् पृथक् हैं। मकानों का निर्माण नवीन ढङ्ग से हुआ है। स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से मकान आदर्श हैं। चौधरी शङ्करलाल का मकान शङ्करसदन ग्राम का सुन्दरतम मकान है। भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो भारत में वाइसराय बनकर जब सर्वप्रथम देहरादून आये थे तब वे भी बद्रीपुर को देखने के लिए गये थे और शङ्करसदन में कुछ देर सपत्नीक ठहरे भी थे।

कर्नवाल क्षत्रियों के अतिरिक्त चमार, भंगी, पुर्बिया (पासी-कुर्मी) भी ग्राम में रहते हैं। इनके मकान भी अच्छे



[बद्रीपुर स्कूल के बालक ज्वाइंट मजिस्ट्रेट मि० बेगी मोज़िज़ का स्वागत कर रहे हैं।]

हैं। जिस प्रकार अन्य ग्रामों में मकान सटे हुए और स्वास्थ्य के लिए हानिकर होते हैं, वैसे इस गाँव में नहीं है। प्रतिदिन सायं-प्रातः दो समय सारे गाँव की सफ़ाई होती है। गोबर आदि जहाँ-तहाँ नहीं डाला जाता। इसी लिए कभी कोई संक्रामक रोग भी इस ग्राम में नहीं होता।

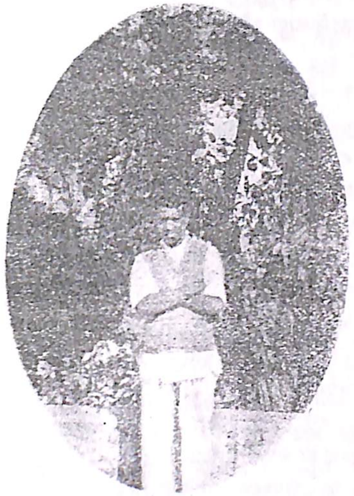
ग्राम को हम 'आर्य-समाजी' ग्राम कह सकते हैं। इसलिए हरिजन और सवर्णों की समस्या भी यहाँ बिलकुल नहीं है। सब जाति के लोग एक-दूसरे का पानी पीते हैं। ब्याह-शादियों में एक-दूसरे के यहाँ आते-जाते हैं।

ग्राम में मन्दिर है, परन्तु वहाँ कोई जाता ही नहीं। हरिजनों को वहाँ जाने की मुमानियत नहीं है। ग्राम के



[बद्रीपुर में हरिजन-बालिका जल लिये जाती हैं।]

आता है। ग्राम को लड़-सात बज जाते हैं फिर रात



[सुधारवादी राष्ट्रीय विचार के ज़मीन्दार युवक श्री सत्येन्द्रसिंह जी वद्रीपुर ।]

बीच में एक कुआँ है, परन्तु वह आनन्दीदेवी नाम की एक विधवा का है। वे उस पर. हरिजनों को चढ़ने नहीं देना चाहतीं। जिन दिनों गांधी जी ने हरिजनोद्धार के लिए उपवास किया था तब आनन्दीदेवी के कुएँ से हरिजनों को पानी भरने देने को कहा गया। परन्तु ऐसा करने पर उनके कुएँ में डूब मरने की धमकी देने से इच्छा रहने पर भी ग्रामवासी वैसा न कर सके। ग्राम का एक कुआँ ग्राम की सीमा पर पद्मसरोवर के पास है। वह हरिजनों को खुला है। पद्मसरोवर बहुत दर्शनीय है। देहरादून से इसको देखने बहुत लोग प्रायः आते रहते हैं।

शिक्षा की दृष्टि से ग्राम के सब बालक साक्षर हैं। ग्राम में एक स्कूल भी है। वह उन्नत दशा में चल रहा है। सरकारी पंचायत और कोआपरेटिव बैंक होने से ग्राम के किसानों को जहाँ आर्थिक दृष्टि से लाभ है, वहाँ पंचायत- द्वारा मुक़द्मों का निपटारा हो जाने से उनका समय भी बचता है। पंचायत के ही द्वारा सफ़ाई और रोशनी का भी प्रबन्ध चलता है। सफ़ाई तो शहर की अपेक्षा यहाँ अधिक है। पंचायत के सरपंच चौधरी प्रतापसिंह जी सज्जन—व्यवहार-पटु और ग्रामीणों के विश्वासभाजन व्यक्ति हैं।

श्री सत्येन्द्रसिंह ने शङ्करसदन में एक औषधालय खोल रक्खा है। वर्ष में डेढ़ सौ रुपये की औषधि वे वद्रीपुर के किसानों में वितरण करते हैं। उनके साथ एक बार गाँव में घूमते हुए मैंने देखा कि औषधि-वितरण के कारण ग्रामवासी उनकी कितनी पूजा करते हैं।

ग्राम में कांग्रेस-कमिटी भी है। श्री सत्येन्द्रसिंह उसके उत्साही कार्यकर्ता हैं। वद्रीपुर में राष्ट्रपति जवाहरलाल जी भी चुनाव के दिनों में आ चुके हैं।

ग्राम में चर्खा न चलने की शिकायत मैंने ग्रामवासियों से की। सम्भवतः वे चर्खा शुरू भी करेंगे। वास्तव में वद्रीपुर गन्ने की खेती का मुख्य केन्द्र है। एक नहर भी वद्रीपुर होकर गई है, इसलिए यहाँ के किसान सारा साल खेती के धन्धे में ही लगे रहते हैं।



[वद्रीपुर में विचित्र हरिजन बालक—इसकी पीठ पर भैंस की तरह की खाल और बाल होते हैं। जब बाल एक एक बालिस्त लम्बे हो जाते हैं तब काट देते हैं।]

डोईवाला की शुगर-मिल में यहाँ का ही गन्ना अधिक त्रा में जाता है। गन्ना ले जाने के लिए वद्रीपुर के पास लवे का एक छोटा-सा अस्थायी स्टेशन भी है।

इस प्रकार शारीरिक भोजन के साथ वद्रीपुर को ध्यात्मिक और नैतिक भोजन भी मिलने का जीवित रण विद्यमान है। श्रीयुत बाबू गिरिधारीलाल जी ी शङ्करलाल के ज्येष्ठ भ्राता) ग्राम के पास बाग़ीचे में मप्रस्थ-आश्रम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आप ध्यात्मिक वृत्ति के स्वाध्यायशील, विद्वान् और विचार- ल पुरुष हैं। आपके पास बैठ कर बात-चीत करके नकी विद्वत्ता की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती। गीता तो आप बड़े भक्त हैं।

गन्ने के अतिरिक्त वद्रीपुर बासमती चावल उत्पन्न करने का भी केन्द्र है। श्री सत्येन्द्रसिंह ने बासमती चावलों का व्यापार करने के लिए 'डून राइस स्टोर' की भी स्थापना की है।

एक और बात। मनुष्यों की भाँति पशुओं के हित और पुष्टि के लिए ग्राम के पास कुछ जङ्गल भी छोड़ा हुआ है, जहाँ पशु स्वच्छन्द भोजन पाते हैं। इसी लिए वद्रीपुर के पशु और स्थानों की अपेक्षा पुष्ट हैं। इन्हीं कारणों से मैं वद्रीपुर को एक आदर्श ग्राम कहता हूँ।

बवण्डर की आप बीती

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

एकाकी चल पड़े कहीं से,
जाना भी है यहीं कहीं
मत पूछो हमसे जीवन की—
कितनी घड़ियाँ शेष रहीं?
हम पथ के उद्भ्रान्त पथिक से—
लक्ष्य-हीन बढ़ते आये।
उठे धरातल से बरबस,
गिरि-शृङ्गों पर चढ़ते आये॥
यह उत्थान-पतन के झोंके,
ले जायँगे कहाँ-कहाँ?
इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है,
उड़ते फिरते यहाँ-वहाँ॥
शासन-दण्ड बने जिसके, वह—
क्रूर नियति कहलाती है।

जिसके इङ्गित से मलयानिल,
झञ्झा बन कर आती है॥
बैठ उसी के अभिनव रथ पर,
दिश-दिश में हैं घूम रहे।
कभी विजय-यात्रा करने को,
उद्धत होके झूम रहे॥
यद्यपि रह-रह भटक चुके हैं,
और भटकते जाते हैं।
तो भी भूले-भटके प्राणी,
हमसे आश्रय पाते हैं॥
है इतनी विशालता हममें,
अवनी-अम्बर जोड़ रहे।
पर 'मुट्ठी भर धूल' समझते,
वे जो नाता तोड़ रहे॥

'सुकवि' से

अधिकार का रक्षक

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए०, एल-एल० बी०

पात्र

घनश्यामदास—एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार

रामलखन—उनका नौकर

भगवती—रसोइया

कालेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती घनश्याम नन्हा, बलराम इत्यादि

समय—आठ बजे सुबह

स्थान—(घनश्यामदास के मकान का ड्राइङ्ग रूम)

सामने बाईं ओर दीवार के साथ एक बड़ी मेज़ लगी हुई है, जिस पर एक रैक में क़रीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-बायें कोनों में लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें एक में आवश्यक काग़ज़-पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रक्खे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग-गज़ का चौकोर टुकड़ा रक्खा है, जिसके नीचे ज़रूरी काग़ज़ दबे हुए हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर क़लमदान रक्खा हुआ है और एक-दो होल्डर शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज़ के इस ओर एक गद्देदार कुर्सी है, जिसके पास ही दाईं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोंगा रक्खा हुआ है। स्टूल के दाईं ओर एक तख़्त-पोश है, जिस पर सफ़ाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुर्सी और तख़्त-पोश के बीच में स्टूल इस तरह रक्खा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख़्तपोश के पास एक आरामकुर्सी पड़ी हुई है। बाईं दीवार के साथ एक कोच का सेट है। बाईं दीवार में दो खिड़कियाँ हैं, जिनके मध्य में कैलैण्डर लटक रहा है। दाईं ओर दीवार में एक दरवाज़ा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर घनश्यामदास कुर्सी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नज़र आते हैं।

(टेलीफोन की घंटी बजती है।)

घनश्यामदास समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं

"हेलो !"

(ज़रा और ऊँचे) "हेलो !"

"हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप ......अच्छा अच्छा, इलाराम जी। मन्त्री हरिजन-सभा हैं ! नमस्ते, नमस्ते। (ज़रा हँसते हैं) सुनाइए महाराज कल के जलसे की कैसे रही ?"

"अच्छा ! आपके भाषण के बाद हवा पलट गई सब हरिजन मेरे हक़ में प्रचार करने को तैयार हो गये ?"

"ठीक ठीक। आपने ख़ूब कहा, ख़ूब कहा आपने ! वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, गिरे हुओं और पददलित लोगों को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए। हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है ? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के तरीक़े कितने पुराने और दक़यानूसी हैं ? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान रक्खा जाता है और अनुचित दबाव में रखकर वे कितना डरपोक और भीरु बनाये जाते हैं ? उन्हें......"

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम—बाबू जी, बाबू जी, हमें मेले......

घनश्याम—(पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊँची हो जाती है) हाँ, हाँ, मैं कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य......

बलराम—(और समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़कर) बाबू जी......

घनश्याम—(चोंगे से मुँह हटाकर, क्रोध से) ठहर ठहर कमबख़्त ! देखता नहीं मैं टेलीफोन पर बात...

(बच्चा रोने लगता है)

घनश्याम—(टेलीफोन पर) मैं आपसे अभी एक सेकेंड में बात करता हूँ, इधर ज़रा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट से मेज़ पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) "चल, निकल यहाँ से। सूअर ! कमबख़्त !!"

[कान पकड़कर उसे दरवाज़े की तरफ़ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है]

(नौकर को आवाज़ देते हैं) "ओ रामलखन, ओ रामलखन !"

रामलखन (बाहर से)—आया बाबू जी,

[भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है]

बाबू जी।"

(घनश्यामदास नौकर को पीटते हैं)

"सूअर ! हरामख़ोर। पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ? क्यों इधर आने दिया इसे ?"

रामलखन—अब बाबू जी क्यों मारते हो ? लिये तो जाते थे।

[लड़के का बाज़ू थामकर उसे बाहर ले जाता है]

घनश्याम—और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आकर ख़बर दे देना। समझे। नहीं तो मारकर खाल उधेड़ दूँगा।

(नौकर और लड़के को बाहर निकालकर ज़ोर से किवाड़ लगा देते हैं)

"हुँ ! बेवक़ूफ़ ! व्यर्थ ही इतना समय नष्ट कर दिया।"

(चोंगा उठाते हैं।)

(तनिक कर्कश स्वर में) "हेलो !......(आवाज़ में ज़रा विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा, आप हैं अभी, (स्वर को कुछ और सँभालकर) तो मैं कह रहा था कि प्रांत में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरों और स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर तोड़ा जाता है और पाठशालाओं में शारीरिक दंड को तत्काल बन्द कर देने पर ज़ोर दिया। दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग घरों में काम करनेवाले भोले-भाले निरीह नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के ज़ुल्म का शिकार बनते हैं। इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने के हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उनके स्वत्वों की, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया, और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं असेम्बली में गया तो..."

(दरवाज़ा खुलता है)

रामलखन—(दरवाज़े से झाँककर) बाबू जी भंगिन......

घनश्याम—(टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—(ज़रा अन्दर आकर) बाबू जी......

घनश्याम—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन में) नहीं नहीं मैं नौकर से कह रहा था (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप एलान कर दें कि मैं असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक़ में प्रोपेगेंडा करें।

"हैं... ...क्या ? ... ... अच्छा अच्छा, मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने की कोशिश करूँगा, क्या करूँ अवकाश ही नहीं मिलता।"

"अच्छा नमस्कार।"

(टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं)

(नौकर से) "तुम्हें तो कहा था, इधर मत आना"।

रामलखन—आपने ही तो कहा था कि कोई आये तो इत्तला कर देना। भंगिन आई है और दो महीने की मजूरी......

घनश्याम—(गुस्से से) कह दो भंगिन से, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाज़े के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज दूधों नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गये हैं।

घनश्याम—कह जो दिया, फिर आना। जाओ। अब समय नहीं।

(भगवती प्रवेश करता है)

भगवती—जयराम जी की बाबू जी।

घनश्याम—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबू जी, हमारा हिसाब कर दो !

घनश्याम—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आज-कल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

आता है। शाम को छः-सात बज जाते हैं फिर रात

भगवती—बाबू जी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता। आप मेरा हिसाब चुका ही दीजिए।

घनश्याम—(ज़रा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब हिसाब चिल्लाये जा रहे हो।

भगवती—जब आपकी नौकरी करते हैं तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जायँ?

घनश्याम—अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

भगवती—वे कहाँ रहे? एक तो मार्ग में बनिये की भेंट हो गया था। दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

घनश्याम—(जेब से रुपया निकालकर फ़र्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती—नहीं बाबू जी, एक एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले तीन तीन महीने हो गये हैं। एक-एक, दो-दो से कितने दिन काम चलेगा? हमारे भी आख़िर बीवी-बच्चे हैं; उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना ख़र्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने........।

घनश्याम—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो? कह जो दिया, अभी यह ले जाओ, बाक़ी फिर ले जाना।

भगवती—हम तो आज ही सब लेकर जायँगे।

घनश्याम—(उठकर, और भी क्रोध से)—क्या कहा? आज ही लोगे। अभी लोगे! जा। नहीं देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामख़ोर, सूअर! आज तक, सब्ज़ी में, दाल में, सौदा-सुलुफ़ में, यहाँ तक कि बाज़ार से आनेवाली हर चीज़ में पैसे रखता रहा, हमने एक बात तक न की और अब यों अकड़ता है। जा। निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। देखना चोरी के अपराध में चार महीने के लिए जेल भिजवा देता हूँ या नहीं।

भगवती—सच है बाबू। ग़रीब लाख ईमानदार हो तो [illegible] भी चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखों में धूल झोंककर हज़ारों पर हाथ साफ़ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रों............।

घनश्याम—(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं। (नौकर को आवाज़ देते हैं) रामलखन, रामलखन!

रामलखन—जी बाबू जी, जी बाबू जी!

(भागता हुआ भीतर आता है)

घनश्याम—इसको बाहर निकाल दे।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ, चौड़े शरीर को नख से शिख तक देखकर) इसको बाहर निकाल दूँ, यह हमसे कब निकलेगा? यह तो हमीं को निकाल देगा... .।

घनश्याम—(बाज़ू से रामलखन को परे हटाकर) हट, तुझसे क्या होगा?

(भगवती को पकड़कर बाहर निकालते हैं)

"निकलो, निकलो।"

भगवती—मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रखकर आप लखाधीश नहीं हो जायँगे।

(घनश्यामदास उसे बाहर निकालकर ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर देते हैं)

(रामलखन से) "तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो? निकलो!"

(रामलखन डरकर निकल जाता है)

घनश्याम—(तख़्त-पोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल! (फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं)

"रामलखन, रामलखन!"

रामलखन—(बाहर से) आया बाबू जी

(प्रवेश करता है)

घनश्याम—अख़बार अभी आया है कि नहीं।

रामलखन—आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ रहे हैं, अभी लाये देता हूँ!

घनश्याम—पहले इधर क्यों नहीं लाया? कितनी बार कहा है, अख़बार पहले इधर लाया कर। लाओ दौड़कर।

(रामलखन दौड़ता हुआ जाता है)

घनश्याम—(घूमते हुए अपने आप) मेरा बयान कितना ज़ोरदार था, छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

(टेलीफोन की घंटी बजती है। घनश्याम जल्दी से चोंगा उठाते हैं)

(टेलीफोन पर, धीरे से) "हेलो!"

(ज़रा ऊँचे) "हेलो!...कौन साहब?...मन्त्री होज़री-यूनियन! अच्छा अच्छा, नमस्कार, नमस्कार। सुनाइए। आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है?"

"क्या?......सब मेरे हक़ में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।"

"इस ओर से आप बिलकुल तसल्ली रक्खें। मैं उन आदमियों में नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन-मैनीफ़ेस्टो, चुनाव-सम्बन्धी घोषणा नहीं पढ़ी। मैं असेम्बली में जाते ही मज़दूरों की हालत सुधारने की कोशिश करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में ख़ास बिल असेम्बली में पेश करूँगा।"

"क्या? हाँ हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूँ, इस सिलसिले में श्रम-जीवियों को किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजी-पति ग़रीब मज़दूरों के कई कई महीनों के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर विवश करते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, आलीशान होटलों में खाना खाते हैं और जब ये ग़रीब दिन-रात मेहनत करने के बाद—ख़ून पसीना एक कर देने के बाद अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने के, कारोबार में हानि होने के और ऐसे ही दूसरे बहाने बनाकर टाल देते हैं। मैं असेम्बली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मज़दूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने ग़रीब श्रमियों की तनख़्वाहें तीन महीने से ज़्यादा दबा रक्खी हों उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दंड दिया जाय।"

"हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहो आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घंटे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आख़िर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। तेरह तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कोई हद भी है!"

(धीरे धीरे दरवाज़ा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं)

(पतले-दुबले से—आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका की तकलीफ़ हो)

(धीरे से दरवाज़ा बन्द करके खड़े रहते हैं)

घनश्याम—(सम्पादक से) आप बैठिए। (टेलीफ़ोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर शाम को आपकी सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

(चोंगा रख देते हैं)

(सम्पादक से) "बैठ जाइए। आप खड़े क्यों हैं?"

सम्पादक—नहीं, नहीं, कोई बात नहीं।

(तकल्लुफ़ के साथ कोच पर बैठते हैं। रामलखन अख़बार लिये आता है)

रामलखन—बड़े काका तो देते नहीं थे, पर ज़बर्दस्ती ले आया।

घनश्याम—(समाचार-पत्र लेकर) जा, जा, बाहर बैठ!

(कुर्सी को तख़्त-पोश के पास सरकाकर उस पर बैठते हैं, पाँव तख़्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं)

सम्पादक—मैं........मैं।

घनश्याम—(अख़बार बन्द करके) हाँ, हाँ, पहले आप ही फ़र्माइए?

सम्पादक—(ओठों पर ज़बान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी......मेरा मतलब है कि मेरी आँखें बहुत ख़राब हो रही हैं।

घनश्याम—आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

सम्पादक—नहीं, यह बात नहीं, (थूक निगलकर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सह सकतीं। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः-सात बज जाते हैं, फिर रात

को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

घनश्याम—तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस, जल्दी काम निपटा दिया करिए।

सम्पादक—मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निपट सकता है? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्दी ख़त्म हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़......।

घनश्याम—हाँ, हाँ, समाचार तो न रुकना चाहिए!

सम्पादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा होती है। उन्हें ठीक करते-कराते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं?

घनश्याम—(बेज़ारी से) तो आख़िर आप चाहते क्या हैं?

सम्पादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं और फिर प्रति-सप्ताह बदली भी हो सकती है। इससे.....

घनश्याम—मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। अख़बार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

सम्पादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आख़िर आँखें कब तक बारह-बारह, तेरह-तेरह घंटे काम कर सकती हैं?

घनश्याम—कैसी मूर्खों की बातें करते हो। छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहते हैं तो शौक़ से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायँगे, लेकिन......

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन—बाहर दो लड़के हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।

घनश्याम—कौन हैं?

रामलखन—अपने को सेक्रेटरी कहते हैं।

घनश्याम—जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(अन्यमनस्कता से) अवश्य पड़ा होगा।

घनश्याम—मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो ख़ूब की है। स्टूडेंट फ़ेडरेशन (छात्र-संघ) ने जो माँगें यूनिवर्सिटी के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

(दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के खुले गले की कमीज़ है।)

दोनों—नमस्ते।

घनश्याम—नमस्ते!

(दोनों कोच पर बैठते हैं।)

घनश्याम—कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालरवाला—हमने आज आपका बयान पढ़ा है।

घनश्याम—आपने कैसा पसन्द किया?

वही लड़का—छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

घनश्याम—आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं?

वही लड़का—कल तक तो कुछ न पूछिए; लेकिन मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी तरफ़ था।

घनश्याम—(उल्लसित होकर) और मैंने ग़लत ही क्या लिखा है? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या करेंगे? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफ़ार्म से ख़ौफ़ न खाय, सुधारों से न कतराय।

वही लड़का—हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्वे-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

घनश्याम—आपको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—हमने हड़ताल कर दी है।

घनश्याम—आपने क्या माँगें पेश की हैं?

वही लड़का—हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह

ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित है और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमानजनक!

घनश्याम—(उदासीनता से) तो आप क्या चाहते हैं?

दोनों—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

घनश्याम—(गिरी हुई आवाज़ से) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले वैधानिक रीति प्रयोग में लाते, प्रबन्धकर्त्ताओं से मिल-जुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब करके देख चुके हैं।

घनश्याम—हुँ!

टाईवाला लड़का—बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवा नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबन्धक कमिटी के पास भेजे गये, पर कमिटी के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी। हारकर हमने हड़ताल कर दी है, पर मुश्किल यह है कि कमिटी काफ़ी मज़बूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे बयान प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारा समाचार तक नहीं छापा जाता। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसी लिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

घनश्याम—(रुखाई से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं। आप कल दफ़्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा में हाज़िर होंगे। नमस्कार।

घनश्याम और सम्पादक—नमस्कार।

(दोनों का प्रस्थान)

घनश्याम—(सम्पादक से) यदि ये कल आयें तो इनका बयान हर्गिज़ न छापना। प्रिंसिपल हमारे मेहरबान हैं और कमिटी के सदस्य हमारे मित्र!

सम्पादक—(मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

घनश्याम—आप घबरायँ नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज़्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफ़त आ गई। जब मैंने अख़बार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।

(प्रस्थान। घनश्याम समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे मिसेज़ घनश्याम बगुले की भाँति प्रवेश करती हैं]

मिसेज़ घनश्याम—मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी मुहब्बत करना सीखेंगे भी। जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नज़र आते हो, जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

घनश्याम—(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आयगा। जाओ इस समय मेरे पास वक्त नहीं है।

मिसेज़ घनश्याम—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है? मारने और पीटने के लिए न जाने कहाँ से समय निकल आता है? इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसों आवाज़ें दीं, घर का कोना कोना छान मारा। आख़िर देखा कि भुसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आख़िर क्या बात हो गई थी?

घनश्याम—(क्रोध से अख़बार को तख़्त-पोश पर पटककर) क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह दिमाग़ चाटने के लिए।

(मिसेज़ घनश्याम बच्चे के दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।)

मिसेज़ घनश्याम—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। ये बाप नहीं, दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल

पास करायेंगे, उनकी उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द ज़बान पर न लायँगे।

(बच्चे के एक और चपत लगाती हैं)

"तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती (आवाज़ ऊँची होते होते रोने की हद को पहुँच जाती है)। स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने, कान तुड़वाने?

घनश्याम—(क्रोध से पागल-सा होकर, पत्नी को ढकेलते हुए)—मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो। यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया? अभी कोई आ जाय तो क्या हो? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

(मिसेज़ घनश्याम तनकर खड़ी हो जाती हैं)

मिसेज़ घनश्याम—आप कभी घर के अन्दर आयें भी। आपके लिए तो जैसे घर के अन्दर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफ़ोन सिरहाने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलनेवालों का ताँता यहाँ लगा रहे। न हो तो कुछ न कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आख़िर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें?

घनश्याम—कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो मुझे कुछ कहने की नौबत आ गई? ज़रा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

मिसेज़ घनश्याम—सिर फोड़ने का अर्मान रहा जाता हो तो वह भी निकाल डालिए। कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

(उन्मत्तों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख़्त-पोश पर मारती हैं। घनश्याम उसे तड़ातड़ पीटते हैं)

घनश्याम—(पीटते हुए पूरी पूरी आवाज़ से) मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बकबक से तंग आकर मैं इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीख़ना-चिल्लाना शुरू कर दिया। क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

मिसेज़ घनश्याम—(रोते हुए) आप क्यों चले जायँ? हम ही चली जायँगी!

(भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है)

"रामलखन, रामलखन!"

रामलखन—आया बीबी जी।

(प्रवेश करता है)

मिसेज़ घनश्याम—जाओ। जाकर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी।

(तेज़ी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होता है)

घनश्याम—बेवक़ूफ़!

(आरामकुर्सी पर बैठकर टाँगें तख़्त-पोश पर रख लेता है और पीछे को लेटकर अख़बार पढ़ने लगता है। टेलीफ़ोन की घंटी बजती है।)

घनश्याम—(वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हेलो! हेलो!.........नहीं, यह ३८१२ है, ग़लत नम्बर है।

(बेज़ारी से चोंगा रख देता है)

"ईडियट्स" (मूर्ख)।

(टेलीफ़ोन की घंटी फिर बजती है)

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो! हेलो!"

"कौन? श्रीमती सरलादेवी! (उठकर बैठता है। चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है) माफ़ कीजिएगा, मैं ज़रा परेशान हूँ। सुनाइए तबीअत तो ठीक है?"

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में नज़र न आयेगा"।

(पर्दा गिरता है)

धारावाहिक उपन्यास

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

छत्तीसवाँ परिच्छेद

कानों का अपराध

साँझ का समय था। काम-काज से निवृत्त होने के बाद वासन्ती बुआ जी के कमरे में गई और कुछ चिट्ठियों का जवाब देने के लिए बैठी।

उन लोगों को देहरादून पहुँचे प्रायः पन्द्रह-सोलह दिन बीत चुके थे। इस बीच में सुषमा की दो-तीन चिट्ठियाँ आ चुकी थीं, सिराजगञ्ज से भी कई चिट्ठियाँ आई थीं। वासन्ती इन सबमें से एक का भी जवाब नहीं दे सकी। यहाँ नई जगह में आकर नई गृहस्थी जमाने में ही वह इधर कई दिनों तक व्यस्त रही थी, इससे इन चिट्ठियों का जवाब देने का उसे अवकाश नहीं मिल सका। आज ज़रा-सा अवसर निकालकर वह इन सबका जवाब देने के लिए बैठी। इतने में पासवाले कमरे से एक सुमधुर गीत सुनाई पड़ा। उस गीत का भाव इस प्रकार था—

"हे मेरे प्राणों के आधार, तुम्हें रिझाना मेरे लिए सम्भव नहीं है, तुम्हें प्रसन्न करके तुम्हारी कृपा का अधिकारी बनने के लिए मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है। मेरे हृदय में कौन-सी बात है और अन्तःकरण में मैं किस प्रकार की व्यथा का अनुभव कर रहा हूँ, यह सब मैं तुमसे कुछ भी न कहूँगा। मैं केवल अपना जीवन और हृदय तुम्हारे चरणों में अर्पित करके ही चुप हुआ जा रहा हूँ। तुम अपनी सहृदयता के बल पर मेरी अवस्था का अनुभव कर लो।"

गायक के मुँह से निकले हुए गीत के गम्भीर भाव ने वासन्ती की चित्तवृत्ति को डाँवाडोल कर दिया। अनायास ही आँसू की धारा उसके गालों पर कब बह चली, यह उसकी समझ में भी न आ सका। गायक चारों दिशाओं को गुञ्जायमान करता हुआ फिर गा उठा। उसके गीत की इस बार की पंक्तियाँ और भी अधिक भावपूर्ण और मर्मान्तिक थीं। वे इस प्रकार थीं—

"हे प्राणप्रिय, यदि मैंने तुम्हारे चरणों में अपराध किये हैं और वे अपराध क्षमा के योग्य नहीं हैं, उन अपराधों के लिए तुम मुझे क्षमा करना उचित नहीं समझते तो न सही। मैं यह नहीं चाहता कि तुम मुझे क्षमा ही कर दो। तुम मुझे दण्ड दो, प्रतिदिन नई नई व्यथायें दो, जिससे समुचित प्रायश्चित्त हो जाय।"

जो गा रहा था उसका स्वर बहुत ही मधुर था। उसके कण्ठ से निकले हुए गीत की एक एक कड़ी चारों दिशाओं में मादकता का विस्तार कर रही थी। वासन्ती बैठी तो थी चिट्ठियाँ लिखने, किन्तु सङ्गीत के मोहन-मन्त्र ने उसे अहल्या के समान पाषाण में परिणत कर दिया था।

ऊँची-नीची शिलाओं से संकुल नगाधिराज हिमालय का वह चरणप्रान्त था। जल से भरे हुए मेघों की श्याम-घटा से वह सुशोभित था। ऐसे मनोरम प्रदेश में मादकता का सञ्चार करता हुआ अमृत का झरना फिर उफना उठा।

"परन्तु फिर भी मुझे दूर न भगा देना, मुझे नित्य नई नई व्यथायें देकर भी, मेरे हृदय को सन्तप्त करके भी—मुझे दूर न कर देना। दिवस का अवसान होने पर मुझे

अपने चरणों में बुला लेना। इस जगत् में तुम्हें छोड़कर मेरा अपना और कौन है? तुम्हारे बिना मेरे लिए यह विश्वब्रह्माण्ड मृत्यु की विभीषिका से परिपूर्ण है।"

सेफ़ाली आकर बासन्ती के पीछे खड़ी थी, किन्तु बासन्ती को उसके आने की आहट तक नहीं मिल सकी थी। सेफ़ाली जैसे ही बासन्ती के सामने धीरे धीरे आकर खड़ी हुई, बासन्ती चौंक पड़ी। सेफ़ाली ने कहा—यह क्या है भाभी? भैया का एक गीत सुनने से ही तुम्हें रुलाई आगई?

लज्जित होकर बासन्ती ने कहा—दुर!

सेफ़ाली हँस पड़ी। वह कहने लगी—रोती तो हैं, फिर भी स्वीकार न करेंगी।

बासन्ती ने कहा—पता नहीं क्या बात है भाई, गीत सुनने से ही मुझे न जाने कैसी रुलाई आती है?

बासन्ती को धमकी देती हुई सेफ़ाली ने कहा—ठहरिए, ठहरिए, अभी मैं सबको बतलाये देती हूँ कि बड़े भैया का एक गीत सुनकर भाभी कमरे में बैठी हुई रो रही थीं।

बासन्ती सेफ़ाली से अनुनय-विनय करने लगी। उसने बहुत ही विनम्रतापूर्ण स्वर से कहा—मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ सेफ़ाली, यह बात किसी से कहना मत। छिः, कहीं कोई इस तरह की बातें किसी से कहा करता है। पता नहीं क्या बात है भाई, बाबू जी का श्राद्ध जब से हुआ है, तब से भिखमङ्गों तक के गीत सुनकर मुझे रुलाई आती है? कहीं किसी तरह का गीत सुना नहीं कि रो रोकर मरने लगती हूँ!

सेफ़ाली कहने लगी—अच्छा भाभी, आप तो मुझसे बड़ी हैं न। आप मेरे पैरों पड़ने को क्यों कहती हैं? क्या आप पागल हो गई हैं?

इतना कहकर सेफ़ाली कमरे से निकलने को ही थी कि बासन्ती ने उससे फिर कहा—देखो सेफ़ाली, यह बात किसी से कहना मत, नहीं तो अच्छा न होगा। फिर मैं तुमसे जीवन-पर्यन्त नहीं बोलूँगी।

सेफ़ाली 'नहीं' करके चली तो गई, किन्तु वह अपने वादे पर कहाँ तक क़ायम रही, यह उसी दिन रात्रि में बासन्ती को मालूम हो गया।

सन्तोष एक अच्छा गायक भी है, यह बात बासन्ती को नहीं मालूम थी। उसके साथ जब विवाह हुआ था तब से कभी उसके सम्पर्क में आने तथा उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त करने का सौभाग्य तो उसे कभी मिला नहीं, आज सेफ़ाली के सम्मुख बैठा सन्तोष गा रहा था। वह गीत सुनकर बासन्ती पहले तो यह विश्वास ही नहीं कर सकी कि यह गीत उसके स्वामी का ही है। इतना मधुर जिसका कण्ठ है, इस तरह की करुणामय वेदना की धारा जिसके सङ्गीत में प्रवाहित हो रही हो, वह केवल मनुष्य का ही दुःख क्यों नहीं अनुभव कर पाता?

इलाहाबाद में केवल फूफा जी और चमेली, यही दो आदमी रह गये थे। परिवार के और सभी लोग बुआ जी के साथ देहरादून चले आये थे। सेफ़ाली के स्वामी शिशिर बाबू का भी शरीर अच्छा नहीं था, इसलिए वे भी इन लोगों के साथ आये थे। अनिल मा के साथ आया था, किन्तु वह कल ही जानेवाला भी था।

रात्रि में बासन्ती नन्दोई को पान देने के लिए उसके कमरे में गई। परन्तु उसके चौखट के भीतर पैर रखते ही शिशिर बाबू ने कहा—छिः भाभी जी, आज आपने रो दिया। भैया को तो जैसे ही यह बात मालूम हुई, उन्होंने गाना ही बन्द कर दिया।

बासन्ती बहुत ही लज्जित हुई। वह सोचने लगी कि उन्होंने भी मेरी इस दुर्बलता का हाल सुन लिया है। मैं द्वार बन्द करके क्यों नहीं बैठी थी? बाद को ज़रा-सा लज्जित कण्ठ से उसने कहा—आप सुनने क्यों लगे। यह सब झूठी बात है। सेफ़ाली भी क्या क्या गढ़ती रहती है?

"आप रो तो रही थीं, दोष उस बेचारी को देती हैं?"

ज़रा-सा मुस्कराती हुई बासन्ती ने कहा—ठीक है बाबू साहब, अपने अपने फ़ायदे की बात सभी देखते हैं। दुलहिन का दोष भला कोई देख सकता है?

बासन्ती के मुखमण्डल पर दृष्टि दौड़ाते हुए शिशिर बाबू ने कहा—करूँ क्या? बतलाइए न। आप लोगों की आँखों का प्रहार ही ऐसा है। हम बेचारे विवाह के बाद से ही निस्तेज हुए रहते हैं। इसके सिवा कोहनूर के पाँसे खेलते समय की बात याद है न? आप ही लोगों ने तो ज़ोर करके प्रतिज्ञा करवा ली है।

इतने में सुजाता भी आ पहुँची। वह कहने लगी—

ऐसे आज्ञाधीन भृत्य हर समय हर एक का रुख़ देख देख कर चलते हैं न।

"अब बतलाइए, इसमें क्या स्वीकार करूँ, क्या अस्वीकार करूँ।"

मृदु कण्ठ से बासन्ती ने कहा—आप लोग चाहे जो करें सब ठीक ही है। दोष हमीं लोगों का है। देखो न सुजाता, बीबी साहब के पेट में बात नहीं पच सकी, झट से जाकर ख़सम के कान में डाल दिया।

शिशिर बाबू ने हँसकर कहा—जहाँ जोड़ी की जोड़ी सरस्वती आकर, विराजमान हैं, वहाँ मेरे जैसे बच्चे को पार लग सकता है? न हो तो भैया वग़ैरह में से किसी को बुला ले आऊँ।

हास्यमय स्वर में सुजाता ने कहा—ओहो, एकदम से नाबालिग़ हैं! ये बेचारे क्या जानें सत्तू में गड्ढा करना! कहाँ गये इनके गार्जियन साहब इस समय?

मुँह दबाकर हँसते हँसते शिशिर बाबू ने कहा—लड़ाई ठानने के प्रबन्ध में हैं शायद। उन्होंने देख लिया कि मुझे अपनी जगह से बेदख़ल करने का प्रबन्ध हो रहा है, इससे मा के पास—

सुजाता की ओर ताककर बासन्ती ने कहा—देखा न सुजाता, नाबालिग़ की बातें सुन रही हो न? करें क्या? रात जो बढ़ती जा रही है। और देर होने पर कहीं हम लोगों को शाप में न पड़ना पड़े।

"उलटा धरा बाँध दिया न! समय नष्ट हो रहा है आप लोगों का, दोष मढ़ दिया उलटा मेरे मत्थे पर।"

बाहर जाते जाते बासन्ती ने कहा—मेरी बात अलग है। अन्धे जागो, तुम्हारे लिए क्या रात क्या दिन। परन्तु छोटी बहू की—

कमरे से बाहर पैर रखते ही बासन्ती ने देखा कि बुआ जी को दवा देकर सन्तोष सदर की ओर लौटे आ रहे हैं। बासन्ती सोचने लगी कि आज मैं क्यों इस तरह मुँहज़ोर हो गई। एक तो सेफ़ाली ने ही आज मामला बना दिया है, तिस पर स्वामी ने भी आज यदि मेरी बातें सुन ली होंगी तो वे मुझे कितनी अभद्र समझेंगे।

बासन्ती शय्या पर जाकर लेट रही, परन्तु सारी रात उसे नींद नहीं आई। अपनी क्षण भर की दुर्बलता की बात सोच सोच कर वह लज्जा के मारे मरी जा रही थी।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

चिकित्सा का फल

उस दिन तीसरे पहर सन्तोष आदि घूमने के लिए निकले थे। साँझ नहीं हो पाई कि वे सब स्थान की ओर लौट पड़े। देहरादून की नदी में जल प्रायः नहीं रहा करता। परन्तु कभी कभी एकाएक वह इतना बढ़ आती है कि उसे पार करना असम्भव हो जाता है। बात यह है कि तब उस नदी की धारा बड़ी तेज़ हो जाती है। उस नदी में रङ्ग-बिरङ्गे पत्थर भी बहुत अधिक मिलते हैं। वे पत्थर बहुत ही सुन्दर होते हैं। कितने ही लोग तो उन्हें एकत्र करके घर ले जाते हैं। सन्तोष के दल के सभी लोग आगे निकल गये थे, केवल बासन्ती ही पीछे रह गई थी। नदी में उसने बहुत-से पत्थर संग्रह किये थे। उन सबको लेकर उतावली के साथ जैसे ही वह आगे की ओर चली, वैसे ही उसने पैर के तलवे में असह्य यन्त्रणा का अनुभव किया। अकस्मात् उसके मुँह से यन्त्रणा-सूचक 'हाय माई रे!' शब्द निकल गया। असह्य यन्त्रणा के कारण आगे पैर बढ़ाने में असमर्थ हो जाने पर वह वहीं नदी की बालू पर बैठ गई।

कुछ दूर बढ़ जाने के बाद बुआ जी को बासन्ती का ध्यान आया। वे कहने लगीं—क्यों रे सेफ़ाली, बड़ी बहू कहाँ है? उन्हें तो मैं नहीं देख रही हूँ। तुम लोगों की बुद्धि में तो पत्थर पड़ गया है। सबके सब भागे चले आ रहे हो, बहू की चिन्ता किसी को नहीं है।

यह कहकर बासन्ती को खोजने के लिए नदी के किनारे ही किनारे बुआ जी तेज़ी के साथ फिर लौट पड़ीं। तब सन्तोष ने कहा—"बुआ जी, आप यहीं खड़ी रहें, मैं देख आता हूँ।"

कुछ ही दूर जाने पर सन्तोष ने देखा तो बासन्ती बैठी थी। पहले वह उसके वहाँ पर बैठ जाने का कारण न समझ सका। समीप पहुँच जाने पर वह कहने लगा—यह क्या? यहाँ बैठी हो? क्या पैर में कुछ लग गया है?

सन्तोष ने संध्या के धुँधले प्रकाश में देखा तो बासन्ती के पैर से ज़ोर से ख़ून बह रहा था। हाथ से पैर दबाये हुए बासन्ती सिसक सिसक कर रो रही थी। सन्तोष हाथ में अपना कोट लिये हुए था। उसे शीघ्र ही उसने भूमि पर

रख दिया और वासन्ती का पैर पकड़ कर उसे देखने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु पैर के समीप तक सन्तोष का हाथ पहुँचते ही वासन्ती बहुत अधिक आपत्ति करने लगी। आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ से उसने कहा—आप पैर में हाथ न लगाइए, कोई वैसी बात नहीं है, मैं चलती हूँ।

सन्तोष ने धीमे स्वर से कहा—मुझे देखने दो। ऐसे समय में भी कहीं कोई किसी बात का ख़याल करता है? तुम्हें तो मालूम है कि मैं डाक्टर हूँ।

सन्तोष ने उत्तर की ओर प्रतीक्षा नहीं की। उसने एक हाथ में वासन्ती की पौली ले ली और दूसरे हाथ से सहला सहला कर उसका तलवा देखने लगा। इस प्रकार उसने मालूम किया कि वासन्ती के पैर में बोतल का एक टुकड़ा गड़ गया है। तब उसने धीरे धीरे उस टुकड़े को निकाला। जेब से उसने रूमाल निकाला और पानी में ज़रा-सा भिगो कर उसने उसी से घाव को बाँध दिया। परन्तु इससे रक्त बन्द नहीं हुआ। वासन्ती उठकर खड़ी होने का प्रयत्न तो करने लगी, परन्तु उसे साहस न हो सका, इससे वह तुरन्त ही फिर बैठ गई।

अब सन्तोष निरुपाय हो गया। वासन्ती से उसने पूछा—तुम मेरी सहायता लोगी या और किसी को बुलाऊँ?

वासन्ती ने रुद्ध कण्ठ से कहा—आपसे न हो सकेगा। सन्तोष ने हास्यमय स्वर में कहा—जिन लोगों को बुलाउँगा, शायद वे मुझसे अधिक बलवान् हैं!

इसके उत्तर में वासन्ती के मुँह से कोई बात निकलने से पहले ही सन्तोष ने सेफाली को पुकारा।

क्षण भर में ही आकर सेफाली ने कहा—क्या हुआ है भैया? यह क्या? भाभी बैठी क्यों हैं?

सन्तोष ने गम्भीर भाव से कहा—शीशे से पैर कट गया है। तेरी भाभी का विश्वास है कि तू एक बहुत बहादुर है। अब देखता हूँ कि किस तरह तू उन्हें घर तक ले चलती है। किन्तु देखना इस समय भी रक्त बन्द नहीं हुआ है। बहुत सावधानी करने की आवश्यकता है।

लौटकर घर आने पर सेफाली ने अलम्यूनियम की एक कटोरी में पानी गरम किया। तब वह सन्तोष को बुलाने चली। कुछ ओषधि आदि लेकर सन्तोष बुआ जी के कमरे में जाकर बैठा। वासन्ती के पैर में जो रूमाल बँधा था वह घाव पर से हटा लिया गया। उजाले में देखने पर मालूम हुआ कि घाव कुछ बड़ा है। रक्त उस समय भी ज़रा ज़रा करके निकल रहा था। बुआ जी ने आकर घाव को देखा। वे बहुत शङ्कित हो उठीं। बहू की दुखमय अवस्था उनसे देखी नहीं जाती थी, इससे वे तुरन्त ही कमरे से बाहर चली गईं।

बुआ जी जब चली गईं तब वासन्ती अपने हाथ से ही रूमाल खोलने लगी। यह देखकर सन्तोष ने कहा—रूमाल अपने आप खोल रही हो तब डाक्टरी भी स्वयं ही कर लोगी?

वर्षा-काल में एक स्थान पर एकत्र होकर उमड़े हुए मेघों के समूह की तरह अत्यधिक विरक्ति के कारण वासन्ती का मुँह गम्भीर हो उठा। सन्तोष का यह व्यङ्ग्यमय वाक्य-रूपी बाण वासन्ती के हृदय में विद्ध हो गया, फिर भी उसने अपने आपको बहुत कुछ सँभाल लिया। जहाँ तक सम्भव था, बहुत ही धैर्य्य और संयम के साथ उसने कहा—ज़रा-सा रेंड़ी का तेल लगा देने से ही अच्छा हो जायगा, और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

सन्तोष ने व्यङ्ग्यमय स्वर से कहा—दवा के चुटकुले कब से सीख लिये हैं? डाक्टरी भी किया करती हैं क्या?

सन्तोष को इस तरह खिल्लियाँ उड़ाते देखकर वासन्ती ने कुछ वेदना का अनुभव किया। कम्पित-कण्ठ से वह कहने लगी—समय समय पर आवश्यकता पड़ ही जाती है।

और बात बढ़ाना सन्तोष ने उचित नहीं समझा। घाव की मरहम-पट्टी करने के विचार से वह वासन्ती की ओर बढ़ा। परन्तु उसके समीप आते ही रोक कर वह कहने लगी—ठहरिए, ठहरिए। मैं सब—

वासन्ती की इस बात से सन्तोष को मन ही मन बड़ा क्रोध आया। परन्तु हृदय के इस भाव को दबाकर धीर संयत कण्ठ से उसने कहा—वासन्ती, कौन-सी ऐसी बात है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ भी करने चलता हूँ, तुम रोक ही देती हो? कर्तव्य क्या केवल तुम्हारा ही है? तुम्हारे प्रति मैंने जो कुछ अनुचित व्यवहार किया है, क्या उसका प्रायश्चित्त अभी तक नहीं हो सका? मैं जानता हूँ कि मेरा अपराध क्षमा के योग्य नहीं है। तो भी, मैं समझता हूँ कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है।

आवेग के कारण सन्तोष का कण्ठ रुद्ध हो गया। जहाँ तक सम्भव था, उसने वासन्ती के घाव के भीतरी अंश की परीक्षा की, घाव को धोया, उसमें पट्टी बाँधी, तब बाहर की ओर चलने लगा। उसके दरवाज़े की ओर मुँह फेरते ही शिशिर भी मुस्कराता हुआ आ पहुँचा और कहने लगा—और चाहे कुछ भी हो भाभी जी, भैया से चरण-सेवा तो ख़ूब करवा ली। इतने पर भी हम लोगों को बुरा कहती हैं।

सन्तोष ने कहा—स्वयं भगवान् ही जब इनके हाथ से निस्तार नहीं पा सके तब हम तो मनुष्य ही हैं।

यह कहकर सन्तोष बाहर चला गया। उसके साथ ही साथ शिशिर भी चला गया।

वासन्ती की दृष्टि में आज परिस्थिति बिलकुल विपरीत थी। कहाँ निदाघकाल की धू धू करके जलती हुई दावाग्नि और कहाँ इस प्रकार की शीतलता! इस प्रकार का घोर परिवर्तन किसने ला दिया? सात वर्ष के सुदीर्घ काल के बाद आज उसने पहले-पहल अपना नाम सुना। सुनकर पहले तो वह विह्वल हो उठी। धरित्री मानो उसके चरणों के नीचे से हटी जा रही थी। आज उसका यह क्षुद्र नाम ही उसकी दृष्टि में कितना अधिक सार्थक नहीं मालूम पड़ रहा था! इस नाम से तो कितने ही लोग उसे पुकारा करते थे। परन्तु आज इस मधुर सन्ध्या के स्निग्ध अन्धकार में स्वामी के हृदय के अन्तस्तल से आवेग के कारण रुँधे हुए कण्ठ से निकला हुआ यह प्रिय सम्बोधन उसके लिए कितना सुखकर था। कितने लोगों ने कितनी बार कितने स्नेहमय स्वर में उसके नाम का उच्चारण किया है, किन्तु वह सम्बोधन उसके जीवन की शुष्क मरुभूमि को और किसी दिन भी तो पानी बरसा कर स्निग्ध नहीं कर सका। आज भी वासन्ती को स्वामी की बातें छल-प्रवञ्चना तथा उपहास से हीन नहीं मालूम पड़ रही थीं। फिर भी उसका हृदय सन्तोष के दोषों की ओर दृष्टिपात करने को तैयार नहीं था।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

मीमांसा

रात्रि अधिक व्यतीत होने पर ज़रा ज़रा ठण्डक मालूम पड़ने लगी, इससे सन्तोष की निद्रा भंग होगई। गले में कुछ पीड़ा हो रही थी, इससे उसने बत्ती जलाई और फ़लालेन का मफ़लर ख़ूब कस कर बाँध लिया। बाद को शय्या पर वह फिर लेट गया।

सन्तोष शय्या पर लेट तो गया किन्तु निद्रा-देवी एकदम से ही उसका परित्याग करके चली गई थी। इससे सन्तोष जागता ही रह गया। उस समय उसके हृदय पर आकर एक दूसरे ने अपने आधिपत्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया था। वह थी चिन्ता। चिन्ता के साथ ही साथ आज इतने दिनों से परित्याग की हुई उपेक्षिता पत्नी की वही अस्पष्ट किन्तु मधुर वाणी—'अन्धे जागो, तुम्हारे लिए क्या रात, क्या दिन'—रह रह कर उसके स्मृतिरूपी सागर के तल-देश को मथित करके उदित हो रही थी। एकाएक हृदय में वह एक प्रकार के अभाव की वेदना का अनुभव करने लगा।

सन्तोष ने इतना जीवन इसी तरह तो शून्य शय्या पर सो सो कर व्यतीत किया है, परन्तु उसे इस अकेलेपन ने कभी ज़रा भी क्लेश नहीं पहुँचाया। आज इतने दिन के बाद यह एकान्त शय्या उसके चित्त को व्याकुल कर रही थी। उसके अन्तःकरण में कोई बहुत ही प्रबल शक्ति इतने दिनों तक छिपी थी, जो आज उदित होकर उसे दुर्बल किये डालती थी। उसके शरीर की सभी शिराओं से मानो रक्त की तीव्र धारा प्रवाहित हो रही थी। अङ्ग के सभी अंश मानो विद्रोही हो रहे थे। इतने दिनों से जो चित्तवृत्तियाँ रोक रक्खी गई थीं, आज मानो उनका बन्धन शिथिल हो गया था, इससे वे वासन्ती की खोज में दौड़ी जा रही थीं।

यह भी सन्तोष का अपने किये हुए पाप-कर्म का प्रायश्चित्त था। सन्तोष अनुभव करने लगा कि यह तो अभी आरम्भ ही है, इसका भी अन्त है, किन्तु वह बहुत दूर है। कितनी दूर है, यह कौन जाने? इसके लिए वासन्ती को अपराधी ठहराने का तो कोई कारण नहीं है। उसके दाम्पत्य-जीवन में यह जो देश का सा विशाल प्राचीर खड़ा हो गया है, इसे तो स्वयं मैंने ही अपने हाथ बना कर खड़ा किया है।

सन्तोष के नेत्रों की निद्रा जहाँ की तहाँ हो गई। क्रमशः उसका माथा गरम हो गया। वह उठ कर खिड़की के पास गया और वहीं खड़ा हो गया।

वह एक दुर्बला नारी थी, किन्तु कितनी असीम थी उसके अन्तःकरण की शक्ति, जिसके सामने पुरुष के कठोर हृदय का सङ्कल्प देखते ही देखते निरर्थक प्रमाणित हुआ ! मन की चञ्चलता के कारण सन्तोष क्रमशः भयभीत होता जा रहा था। हृदय के आवेग ने उसे इस तरह व्याकुल क्यों कर दिया था ? इतने दिनों तक जिन विकार के बादलों ने उसे ढँक रक्खा था, आज क्या वे बादल कटते जा रहे थे ? उसके मन की—शरीर की यह दुर्बलता कहाँ से आई थी ? अब वह क्या करे ? कहाँ जाय ?

जो पक्षी आहार की खोज में समस्त दिन आकाश-मण्डल में चक्कर लगाते फिरते हैं उन्होंने उस समय भी घोंसला नहीं छोड़ा था। पूर्णिमा के चन्द्रमा ने उस समय भी एकदम से मुँह नहीं छिपा लिया था। प्रभात का आलोक उस समय भी धरणी के वक्षःस्थल पर विस्तृत नहीं हो सका था। ऐसे समय में जब कि ज्योत्स्ना का धुँधला प्रकाश चारों दिशाओं में व्याप्त था, अत्यन्त प्रबल चिन्ता से मुक्ति पाने के लिए सन्तोष कमरे से निकलकर बरामदे में आया और टहलने लगा। वह सोचने लगा—ओह, ऐसा पराजय ! क्या पुरुष का होता है ? पेड़ की पत्तियाँ, आकाश के तारे, ये सभी तो मुझ पर हँस रहे हैं। और कहाँ तक कहूँ, मेरा हृदय तक आज मेरी खिल्लियाँ उड़ा रहा है !

कहाँ गया वह दिन जब कि सन्तोष ने चित्त को दृढ़ करके बहुत ही गर्व के साथ सुषमा से कहा था कि मैं वासन्ती को प्यार न कर सकूँगा। मूर्छित और अचेत होकर पत्नी को चरणों के समीप पड़ी देखकर भी वह विचलित नहीं हुआ ! विवाहरूपी मूल्य से जिस दिन वह उसे ख़रीद कर ले आया है तब से उसके मस्तक पर वह बराबर घृणा और दुर्व्यवहार का ही बोझा लादता रहा है, किन्तु इस तरह का दुष्कर्म करने में उसने ज़रा भी ग्लानि का अनुभव नहीं किया। यह वही सन्तोष है। किन्तु उसके हृदय में आज किस तरह का परिवर्तन हो गया है। असहाय और उपेक्षिता पत्नी का आग्रहपूर्ण आह्वान भी जिसे सङ्कल्प से च्युत करने में समर्थ नहीं हो सका था, आज उसी पत्नी की निष्ठुरता तथा उदासीन भाव देखकर सन्तोष का हृदय गम्भीर व्यथा से परिपूर्ण क्यों हो रहा था ?

दीर्घ साधना के बल पर इतने दिनों से धैर्य्य का जो बन्धन वह बाँध रहा था, आज वह इस तरह उसकी सारी साधना की उपेक्षा करके क्यों टूट गया ? इस पराजय का टीका मस्तक में लगाकर सन्तोष दुनिया को मुँह न दिखा सकेगा। उसे यहाँ से भागना ही पड़ेगा। अन्तःसलिला फल्गु के समान मन के इस भाव को प्रश्रय देना उसके लिए निरापद नहीं है। इस समय वासन्ती के सङ्ग का परित्याग करके चला जाना ही सन्तोष के लिए कल्याण-कर है। यद्यपि इस समय उससे विदा लेने में सन्तोष का हृदय विदीर्ण हो जायगा, तथापि यही दण्ड उसके लिए उपयुक्त है।

सन्तोष की चिन्ता के इस प्रवाह को रोकते हुए विनय ने पुकारा—भैया ! चौंक कर सन्तोष पीछे की ओर फिरा। उसने देखा, विनय खड़ा है। व्यथित कण्ठ से वह कहने लगा—कहो विनय, क्या कहते हो ? मुझसे क्या कुछ कह रहे थे ?

विनय ने देखा कि सन्तोष का जो मुख सदा प्रफुल्लित रहा करता था वह आज सूखा हुआ है। विषाद के बादल उमड़ कर मानो उसके मुख पर छाये हुए हैं। एक ही रात में बड़े भाई में इतना अधिक परिवर्तन देखकर विनय स्वयं विस्मित हो गया। सन्तोष के हृदय की व्यथा अपने हृदय में अनुभव करके विनय बहुत ही व्यथित हो उठा। फिर भी अपने इस भाव को छिपाकर उसने बहुत ही सरल और स्वाभाविक कण्ठ से कहा—क्या आपकी तबीअत कुछ ख़राब है ?

अपने शरीर पर दृष्टि दौड़ाकर सन्तोष ने कहा—नहीं तो। मेरी तबीअत तो ख़राब नहीं है। क्या तुम्हें कोई ऐसी बात मालूम पड़ रही है ?

सन्तोष के मुरझाये और उतरे हुए मुँह की ओर ताक कर विनय ने कहा—एकाएक आपका चेहरा इस तरह का कैसे हो गया ?

धीमी-सी साँस लेकर सन्तोष ने कहा—चेहरा उतरा हुआ है ? कल रात को नींद नहीं आई, शायद इसी लिए। और कोई बात—

"तो फिर जाने की ज़रूरत नहीं है।"

आग्रहपूर्ण कण्ठ से सन्तोष ने कहा—कहाँ ?

विनय ने कहा—टपकेश्वर।

सन्तोष ने कहा—भाई, मैं तो आज न चल सकूँगा। कल रात को माइक्रसकोप में अच्छी तरह से देख नहीं सका हूँ। आज सवेरे तुम्हारी भाभी के पैर की फाँस ज़रा-सा फिर देखनी होगी। इससे शायद मैं आज न चल सकूँगा।

यह कहकर सन्तोष उठकर बैठने ही जा रहा था कि शेफाली आकर कहने लगी—भैया आइए, मैं सब ठीक कर आई हूँ।

सेफाली की यह बात सुनते ही सन्तोष उठकर चला गया। विनय कुछ देर तक अकेला ही चुपचाप बैठा रहा, किन्तु उसकी तबीअत ऊबने लगी, इससे बरामदे से उतर कर जैसे ही वह सड़क पर आने लगा, वैसे ही उसे एक गाड़ी दिखलाई पड़ी। उस गाड़ी में थे विनय के पिता, चमेली, ताई जी और सुषमा।

रमाकान्त बाबू जैसे ही गाड़ी से उतरे, विनय ने कहा—बाबू जी आप आये हैं ? सूचना क्यों नहीं दी ? स्टेशन पर आ जाता। आपको बड़ा कष्ट हुआ होगा।

पुत्र के कन्धे पर हाथ रखकर रमाकान्त बाबू ने कहा—नहीं बेटा, कोई कष्ट नहीं हुआ। छुट्टी होने से दो दिन पहले ही चला आया।

वे सभी लोग भीतर की ओर बढ़े।

—— ——

व्रज-दर्शन

लेखक, पंडित शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन'

'नूतन' सुकवि उतै निरखि विषाद बढ़ै, जितै छैल छलिया करी हैं रंग-रलियाँ।
कानन उजारि परे पादप उघारि खरे, सूखी लतिका हैं औ न देखी खिली कलियाँ॥
गूँजत न भृङ्ग देखे कूजत न खग देखे, देखी हाय सूनी सारी कुञ्जन की थलियाँ।
जमुना मलीन देखीं गौवैं कृश दीन देखीं, सुखमा-विहीन देखी गोकुल की गलियाँ॥

वहीं आज हेरे ते मिलत था सुलभ जहाँ, दूध दधि माखन महेर ठाँव-ठाँव में।
अगम अपार ब्रह्मानन्द था सुगम जहाँ, वहीं आज सिगरे निरत खाँव-खाँव में॥
हटि जात चित्त-चाव घटि जात भक्ति-भाव, ध्यान बँटि जात मंगनों की काँव-काँव में।
जब रहा ह्वैहै तब ह्वैहै पर अब कहाँ, बिना व्रजचन्द के अनन्द नन्दगाँव में॥

श्यामा की सहेली जब छोर गहि माँगें दान, तब चितचोर साँवरे की सुधि आती है।
उद्धव सिखायो जहाँ बैठि ज्ञान गोपिन को, अजौ वहि ठौर ज्ञान-ज्योति जग जाती है॥
कलित कदम्बन के पातन की दोनी मंजु, माखन के चाखन की सुरति कराती है।
वर बरसाने की बिलोकि वर भूमि हाय, हूक उठै हिय में छटूक होत छाती है॥

सुरभी सलोनी जौने गह्वर गोवर्धन में, रहीं सदा मौज से हरेरी दूब चरती।
जिन तरु-कुञ्जन में गुल्म-लता-पुञ्जन में, खग-मृग-सेनी थी उमङ्ग से विचरती॥
सुघर सलोने बाँके कुँवर कन्हैया संग, चोप से सदैव गोप-मण्डली विहरती।
वही गिरिराज की विशाल भूमि हाय-हाय! बिना गिरिधारी के अवाँ-सी आज जरती॥

'सुकवि' से

—— ——

बम्बई का दङ्गा

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

जब अन्य बहुतेरी जगहों से दङ्गे के समाचार आने लगे तब जान पड़ा कि अब बम्बई में भी बिना दङ्गा हुए न रहेगा। बम्बई नगर जो बहुत-सी बातों में बहुत आगे बढ़ा है, इधर कई वर्षों से कलह का केन्द्र बना हुआ है। बम्बई के गुण्डे या मवाली जो उनका स्थानीय नाम है, भारत में अपना सानी नहीं रखते। जीविकोपार्जन के लिए वे कोई कार्य नहीं करते। वे जुआ खेलते हैं और दूकानदारों और भोले यात्रियों को भय-त्रस्त करते हैं। वे क्रमबद्ध रूप से लोगों को भय-त्रस्त करके उनसे रुपया ऐंठते हैं। उनका व्यवहार ऐसा आतङ्कपूर्ण होता है कि लोग बहुत कम मामलों की ख़बर पुलिस को देते हैं।

बम्बई को 'भारत का सबसे अधिक विश्व-प्रेमी नगर होने का गर्व है। इससे गुण्डे भी विश्वबन्धुत्व के माननेवाले हैं। वे भारत के विभिन्न भागों से आते हैं और बम्बई के ख़ास-ख़ास स्थानों में जमा होकर बसते हैं। उनमें रामपुरी, हिन्दुस्तानी या भैया, मोपला, पञ्जाबी, मुल्तानी, शिद्दी, कोंकणी सभी होते हैं। इनके अतिरिक्त स्वयं बम्बई के निवासी तो होते ही हैं। एक समय बम्बई में अरबों का बहुत आतङ्क छाया हुआ था, परन्तु आजकल उनका ज़िक्र नहीं आता। इसी प्रकार शिद्दी या हब्शी भी अब बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। सबसे भयानक अपराधी रामपुरी और दक्षिण या कोंकण से आनेवाले होते हैं। ये सब लोग आपस में भाईचारे का सम्बन्ध करते हैं और हर समय शरारत करने के लिए तैयार रहते हैं।

इस लेख में मैं दूसरे स्थानों में होनेवाले दङ्गों का ज़िक्र न करूँगा। बम्बई का मेरा अनुभव गत बीस वर्षों का है। गम्भीर और व्यापक दङ्गों में बम्बई के मिलों में काम करनेवाले मज़दूर भी भाग लेते हैं, पर आम तौर पर वे क़ानून के अनुसार चलनेवाले और परिश्रमी होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पूँजीपति और मज़दूर का झगड़ा जड़ पकड़ गया है और जब कभी हड़ताल होती है, परिस्थिति गम्भीर हो जाती है। परन्तु ऐसे दङ्गे स्थानीय होते हैं और मिल की सीमा तक ही परिमित रहते हैं। सौभाग्य से बम्बई काफ़ी अरसे से हड़तालों से बचा हुआ है।

मवाली सर्वथा भिन्न तौर-तरीक़े के आदमी हैं। वे दूसरों की कमाई पर मौज करते हैं और बहुत ही ख़तरनाक होते हैं। वे संगठित होते हैं, पुलिस तक को धमकियाँ देते हैं और अनाचार उनके जीवन का मूलमन्त्र होता है। बम्बई के दङ्गों की अपनी अलग विशेषतायें होती हैं। इनमें प्रायः छूरियाँ चलती हैं और सर्वथा बेक़सूर लोग मर्द और औरतें छूरियों से मारे और घायल किये जाते हैं। घायलों और मृतकों में अधिक संख्या भोले-भाले लोगों की ही होती है। सड़कों पर चलनेवाले या गाड़ियों और ट्रामों से गुज़रनेवाले लोगों पर आक्रमण होता है। उनकी जेबें ख़ाली कर ली जाती हैं या उनके पेटों में छुरियाँ भोंक दी जाती हैं। जब दङ्गाइयों के दो दलों में मुठभेड़ होती है तब ईंट-पत्थर, सोडावाटर की बोतलें आदि ख़ूब धड़ल्ले से फेंकी जाती हैं और उनसे सड़कें ढक जाती हैं। जब पुलिस गोली चलाती है तब दङ्गाइयों की भीड़ वहाँ से हट जाती है और दूसरे स्थान पर दङ्गा व मारपीट आरम्भ करती है।

गत वर्षों में बम्बई में अक्सर दङ्गे हुए हैं। ये सब दङ्गे साम्प्रदायिक दङ्गे में परिणत हो जाते हैं और हिन्दुओं और मुसलमानों का प्रश्न आ खड़ा होता है। प्रत्येक अवसर पर दङ्गे को शान्त करने में बड़ी कठिनाई हुई है। दुर्घटनायें बढ़ जाती हैं, मृतकों और घायलों का ढेर लग जाता है। फिर भी दङ्गा दिन पर दिन और रात पर रात जारी रहता है। महीनों नागरिकों को शान्ति नहीं मिलती

और वे ख़तरे का जीवन व्यतीत करते हैं। गड़बड़ के स्थानों में लोग जाने से परहेज़ करते हैं, फिर भी लोग घायल किये जाते हैं और क़त्ल होते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि पुलिस और सरकार के विरुद्ध लोग तरह तरह की बातें करने लगते हैं। पुलिस को वे अयोग्य और सरकार को सुस्त घोषित करते हैं।

परन्तु पिछले दङ्गे ने इन सब कल्पनाओं को व्यर्थ सिद्ध कर दिया। कांग्रेस-सरकार ने यह सिद्ध कर दिया कि दङ्गा आरम्भ में ही रोका और प्रभावपूर्ण ढङ्ग से दबाया जा सकता है। जैसे ही दङ्गा आरम्भ हुआ, क़ानून का यंत्र संचालित कर दिया गया। चीफ़ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ने उसी रात कर्फ़्यूआर्डर जारी किया और एक स्थान पर पाँच से अधिक व्यक्तियों के इकट्ठा होने को वर्जित कर दिया। 'ला और आर्डर' के मिनिस्टर आनरेबुल मिस्टर मुंशी ने घटनास्थल पर पहुँचकर भ्रमण करना और मजिस्ट्रेटों और पुलिस से मशविरा करना आरम्भ कर दिया। दूसरे दिन प्रीमियर और अन्य मिनिस्टर भी घटनास्थल पर पहुँचे और अपनी रायें दीं। मजिस्ट्रेट और पुलिस के आर्डरों का कड़ाई के साथ पालन कराया गया। चन्द दिनों में ही बम्बई में शान्ति स्थापित हो गई और सब कार्य पूर्ववत् होने लगे।

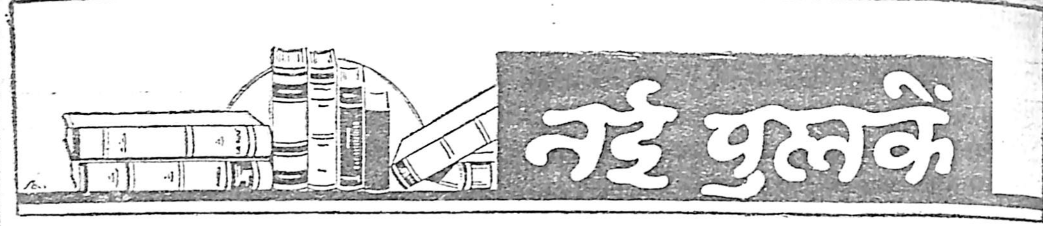
गुंडों और संदेहयुक्त लोगों की गिरफ़्तारी का बड़ा प्रभाव पड़ा। यह लेख मैंने दङ्गा होने के पाँचवें दिन लिखा है। इस समय में लगभग पन्द्रह सौ व्यक्ति हिरासत में ले लिये गये थे और पुलिस के दूर तक फेंके गये जालों में औरों को भी लाने का प्रयत्न जारी था। यह विघ्न के मूल में ही कुठाराघात करना है। यदि मवाली मुक्त नहीं हैं तो दङ्गा कौन कर सकता है? दङ्गाइयों के हथियार छीन लिये गये हैं और मजिस्ट्रेट लोग अपराधियों को दण्ड देने में लगे हैं। यदि ख़तरनाक और क़ानून की अवज्ञा करनेवाला गिरोह बम्बई से निकाल दिया जाय तो दङ्गा दुबारा नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्य को ईमानदारी से अपनी जीविका कमानी चाहिए। नहीं तो बेहतर है कि वह अपने पैरों से बम्बई की धूल झाड़ डाले। कांग्रेस-सरकार और कांग्रेसी मंत्रियों की इस गौरवपूर्ण कार्य के लिए जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है! ईश्वर करे बम्बई में ऐसी सरकार वर्षों बनी रहे।

बलिदान

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

चाह नहीं उत्साह नहीं है
    है कैसा उद्वाह?
क्षार नीरनिधि में बहता है
    सुरसरि - पुण्य-प्रवाह।
आत्म-समर्पण करती शशि की
    कला राहु को आज।
यह अचरज विलोक विस्मित है
    नभ - नक्षत्र - समाज।
कुसुम-कली वानर के कर में
    है मलीन म्रियमाण।
मृदु लतिका का प्रेमालिङ्गन
    करता है पाषाण।

व्यथित हृदय में छिपा रो रहा
    है युवती का प्रेम।
जहाँ प्रथम ही अश्रु-पात है
    वहाँ कहाँ है क्षेम?
नयन नयन से हृदय हृदय से
    और प्राण से प्राण।
कहते यही मौन-भाषा में
    "करिए मेरा त्राण"।
उत्सव की मुदमयी निशा में
    किसे भला है ध्यान?
जग की कोमल मानवता का
    होता है बलिदान।



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-३—श्याम-सुन्दर-रसायनशाला, गायघाट, काशी की ३ पुस्तकें—

(१) अनुपान-विधि—मूल्य ।=) है।

(२) अनुभूत योग—मूल्य ॥=) है।

(३) नीम के उपयोग—मूल्य ।॥) है।

४—जैन-इतिहास (प्रथम भाग,—लेखक, श्रीयुत सूरजमल जैन, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, गांधी-चौक, कापडिया-भवन, सूरत हैं। मूल्य ॥) है।

५—साँवरी—लेखक, श्रीयुत रामस्वरूप शर्मा 'विशारद', चम्पा अग्रवाल इएटरमीजिएट कालेज, मथुरा हैं। मूल्य ।)। है।

६—पञ्चामृत—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा, प्रकाशक, जगन्नाथ किशनलाल, कालबादेवी रोड, बम्बई हैं। मूल्य ॥) है।

७—मेरा गाँव—लेखक, श्रीयुत तनसुख जी राजवैद्य, प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, अजमेर हैं। मूल्य ॥) है।

८—हिन्ट्स आन स्युजियम एजूकेशन (अँगरेज़ी)—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत जे० सी० बासक, ३६३, अपर चित्तपुर रोड, पो० बीडन स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य १) है।

९—जीवन-संघर्ष—लेखक, पंडित महाबलीप्रसाद 'त्रिवेदी', प्रकाशक, श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी, कानपुर हैं। मूल्य ।॥) है।

१०—आशा—लेखक, श्रीयुत करुण, प्रकाशक, सरस-साहित्य-सदन, प्रयाग हैं। मूल्य ।॥) है।

११-१२—कल्पवृक्ष कार्यालय की २ पुस्तकें—

(१) अलौकिक चिकित्सा—मूल्य १) है।

(२) सूर्य-किरण-चिकित्सा—मूल्य २॥) है।

१३—श्री श्री सद्गुरु [illegible] (प्रथम खंड)—अनुवादक, श्रीयुत लल्लीप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, श्री गौराङ्ग सुन्दरता, २० नं० दर्माहाटा स्ट्रीट, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता हैं। मूल्य १॥) है।

१४—नवीन भारतीय शासन-विधान (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत रामनारायण यादवेन्दु, प्रकाशक, नव साहित्य-निकेतन, आगरा हैं। मूल्य २) है।

१५-१६—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस की दो पुस्तकें—

(१) चटनी—

(२) हँसी-दिल्लगी—मूल्य १।) है।

१७—गोवंश-सुधार की आवश्यकता—प्रकाशक, गो-रक्षा-समिति, सनातन धर्म-प्रतिनिधि-सभा, लाहौर हैं।

१—विहारी-दर्शन—लेखक, साहित्याचार्य पंडित लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी हैं। मूल्य २) है। पता—गंगा-ग्रन्थागार, ३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

यह ग्रन्थ लेखक के अप्रकाशित 'हिन्दी-शृंगार-दर्शन' नामक एक बड़े ग्रन्थ का एक भाग है। महाकवि विहारी की काव्यकला तथा उनकी जीवनी के सम्बन्ध में इसमें गवेषणा तथा मार्मिकता से विचार किया गया है। बिहारी की कला पर किये गये अन्य आलोचकों के आक्षेपों का 'उपसंहार' तथा 'परिशिष्ट' के खण्डों में समुचित परिहार भी किया गया है। इस पुस्तक की आलोचनाशैली प्रौढ़ तथा शिष्ट, विवेचन सहृदयतापूर्ण और दृष्टि मार्मिक तथा कवि का उत्कर्ष प्रमाणित करनेवाली है। बिहारी की काव्यालोचना पर जो अच्छी पुस्तकें अब तक लिखी गई हैं उनमें इस पुस्तक की भी गिनती होगी, इसमें सन्देह नहीं है।

२—यात्री-मित्र—लेखक, स्वामी सत्यदेव हैं। मूल्य ।4) है। पता—मैनेजर, सत्य-ज्ञान निकेतन, ज्वालापुर।

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रकट है।

स्वामी जी ने स्वयं देश-विदेशों में भ्रमण किया है और वे उसे 'ज्ञान का भण्डार' तथा जाति के जीवन के लिए—मनुष्य-शरीर के लिए ताज़ी हवा के समान आवश्यक बताते हैं। स्वामी जी ने यात्रा-सम्बन्धी अपने बहुमूल्य अनुभवों को यात्रा की सामग्री, रेल, जहाज़-सम्बन्धी उपयोगी बातें, योरप-भ्रमण, पूर्वी देशों की यात्रा, कहाँ जायँ? आदि शीर्षक देकर सरल और मनोरंजक शैली में इस पुस्तक में लिखा है। इस पुस्तक से यात्राभिलाषी सज्जन अनेक उपयोगी बातें जान सकेंगे और यात्रा करने की ओर उत्साहित भी होंगे। 'यात्री-मित्र' सचमुच उन्हें मित्र के समान सलाह देगी और उनकी यात्रा को सरल और सुखद बनाने में हाथ बँटायेगी।

३—सप्तसरिता—लेखक, श्रीयुत काका कालेलकर हैं। मूल्य ।) है। पता—व्यवस्थापक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली।

मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गई है। उसका यह अनुवाद 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' में है। साथ ही नूतन सुधार से सरल की हुई नागरी-लिपि में यह छापी भी गई है। इसमें सात नदियों के प्रति लेखक ने अपने भक्तिपूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं। सात लोकमाताओं का यह भक्ति-पूर्ण उपस्थान है। लेखक ने इन नदियों की यात्रा की है और उन्हें अपने भक्त हृदय से भावना-कुसुमाञ्जलि भेंट की है। इसकी शैली में चित्त को आनन्द देनेवाली अपनी एक विशेष मौलिकता है। इन संस्मरणों में वर्णनात्मक रीति, देश और जाति की समस्याओं की ओर संकेत, मधुर व्यंग्य, पौराणिक कथांशों का उपमान के रूप में प्रयोग, स्वगत भाषण की शैली में भक्ति, भावुकता और सहृदयता से भरे उद्गार, इन सबने मिलकर एक अनूठापन, एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। पुस्तक पठनीय है। आशा है, हिन्दी के लेखक इस नूतन उपस्थान-प्रणाली का अभिनन्दन करेंगे।

४—योग-प्रदीप—मूललेखक श्री अरविन्द हैं। मूल्य ।।) है। पता—श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता है।

योगी अरविन्द ने समय समय पर अपने शिष्यों को, उनके प्रश्नों के उत्तर में, जो पत्र लिखे हैं उनके आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। १ हमारा लक्ष्य, २ आधार के लोक और अंग, ३ समर्पण और आत्मोद्घाटन तथा ४ कर्म। इन शीर्षकों के नीचे श्री अरविन्द के योग का स्वरूप तथा अन्य योगपद्धतियों से उसका भेद, शरीर के षट्चक्र, मन आदि विषय, उच्चतम अवस्था को प्राप्त करने के साधन तथा कर्मयोग का वास्तविक रहस्य—इन विषयों का गम्भीर तथा ज्ञानप्रद विवेचन किया गया है। अनुवाद की भाषा परिष्कृत तथा विषय के सर्वथा उपयोगी है। श्री अरविन्द की साधना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा योग-मार्ग के साधकों के लिए इस पुस्तक में बहुमूल्य सामग्री एकत्र मिलेगी। इस प्रकार के उच्च कोटि के ग्रन्थों के अनुवाद से निःसन्देह जनता की चिन्ताशीलता तथा ज्ञान-वृद्धि होती है। पुस्तक सर्वथा उपयोगी और प्रचुर प्रचार के योग्य है। मननशील पाठकों तथा साधकों को इसका अवश्य संग्रह करना चाहिए।

५—स्मृति-शक्ति—संग्रहकर्ता, पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी। मूल्य ॥) है। पता—भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

'स्मृति-शक्ति' मानव-जीवन का आधार-स्तम्भ है। अँगरेज़ी में मनोविज्ञान-विशारदों ने स्मृति की वृद्धि, अपचय तथा स्वरूप के अनेक उपयोगी तथ्यों को ढूँढ़ निकाला है। संस्कृत के दर्शन-ग्रन्थों में भी 'स्मृति-शक्ति' का अच्छा विवेचन स्थान स्थान पर मिलता है। इस पुस्तक की रचना अँगरेज़ी तथा बँगला के ग्रन्थों के आधार पर हुई है। वैज्ञानिक ढंग से 'स्मृति-शक्ति' की वृद्धि, ह्रास आदि के कारणों का इसमें सरल तथा सुबोध भाषा में वर्णन किया गया है। मस्तिष्क से जीविकोपार्जन करनेवाले वकीलों, अध्यापकों तथा छात्रों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी।

६—अतीत के चित्र—लेखिका, श्री कुमारी सुशीला आगा, बी० ए० हैं। मूल्य ॥=) है। पता—गंगा-ग्रन्थागार, ३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ है।

इसमें नौ गल्पों का संग्रह है। अन्तिम गल्प के शीर्षक के अनुसार ही पुस्तक का नाम रक्खा गया है। भाषा तथा भाव की दृष्टि से इन गल्पों को हम सफल रचना ही कहेंगे। घटनाओं को अभिनयोपयोगी ढंग से उपस्थित करने की कुशलता, सहानुभूति-पूर्वक अंकित किये गये पात्रों के सुन्दर

कथोपकथन एवं कहानी कहने की चित्ताकर्षक कला आदि का इन गल्पों में पर्याप्त दर्शन मिलता है, जो हमारी संवेदनाओं को जाग्रत और हृदय को आनन्दित कर देता है। 'जहाँनारा' नामक गल्प में शाहजहाँ तथा उसकी पुत्री 'ताजमहल' में रक्खे गये हैं। ऐतिहासिक सचाई की दृष्टि से यह बात खटकती है। शाहजहाँ की मृत्यु आगरे के क़िले के 'सम्मन बुर्ज़' पर १६६६ में हुई थी, जहाँ से 'ताजमहल' दीख पड़ता है। इस त्रुटि से गल्प की सफलता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु अकारण ही इस परिवर्तन को भी स्थान न मिलना चाहिए था। आशा है कि लेखिका की लेखनी से भविष्य में और भी प्रौढ़ तथा सुन्दर रचनायें मिलेंगी और उनसे हिन्दी के गल्प-साहित्य की श्री-वृद्धि होगी।

७—चेतावनी-समीक्षा—लेखक, पंडित हरदेव शर्मा त्रिवेदी, ज्योतिःशास्त्री हैं। मूल्य ≋) है। पता—मूलचन्द एण्ड संस, बुकसेलर, मच्छीहट्टा, लाहौर।

बाबा राजनारायण नामक किन्हीं लेखक ने 'चेतावनी' नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें इसी कलियुग में वि० सं० २००० श्रावण अमावस्या तदनुसार १ अगस्त सन् १९४३ ई० को उन्होंने सत्ययुग का आगमन बतलाया था। उसी 'चेतावनी' की यह प्रखर आलोचना है। प्रसंगतः शब्दों के निर्वाचन आदि बातों की भी समीक्षा की गई है। लेखक ने ज्योतिषीय गणित के आधार तथा दृढ़ प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि बाबा जी का कथन सर्वथा असत्य है। कल्कि अवतार हो जाने की जो बात बाबा जी ने लिखी है उसकी भी पोल खोली गई है। समीक्षा की भाषा तीव्र और चटपटी है। परन्तु मिथ्या बातों के प्रचार से जनता में भ्रम उत्पन्न करनेवाले लोगों के प्रति ऐसी भाषा की विशेष निन्दा भी नहीं की जा सकती। आशा है, लोगों के भ्रम-निवारण में यह समीक्षा पूर्णतया सफल होगी।

८—श्री कौशलेन्द्र-कौतुक—लेखक, पण्डित बिहारीलाल विश्वकर्मा "कौतुक" हैं। मूल्य १॥) है। पता—हंसतीर्थ, बनारस सिटी।

गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस तथा कवितावली आदि ग्रन्थों के सतत पारायण से कौतुक जी के हृदय को काव्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। 'मानस' की चौपाइयाँ तथा कथा-वस्तु इस ग्रन्थ में कवित्त और सवैया के रूप में अंकित हुई है। महाकवि के भाव स्थान स्थान पर उन्हीं के शब्दों में पाठकों को इन छन्दों में मिलेंगे। कहीं कहीं तो कथा को आगे बढ़ाने के लिए गोस्वामी जी के दोहे ज्यों के त्यों उद्धृत किये गये हैं। लेखक की शैली प्रौढ़ तथा अनुप्रास-प्रधान है। सम्पूर्ण ग्रन्थ सुपाठ्य है और मौलिकता के अभाव की कमी कवित्त और सवैया छन्दों तथा आवेगमयी भाषा के प्रयोग ने पूरी हो गई है। ऋतु-वर्णन, काशी-वर्णन, उत्तर काण्डस्थ स्वर्ण-शिक्षा, कौतुकविनय, मनोप्रबोध तथा मनोभावना आदि स्थलों पर मौलिकता की छटा भी देख पड़ती है। लेखक गोस्वामी जी के अनन्य भक्त हैं और उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने का इस कृति में उन्होंने प्रयास किया है। 'काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' इस सूक्ति के अनुसार उनका यह प्रयत्न सराहनीय है। मौलिकता का अभाव, कहीं कहीं वस्तुओं के नामों के गिनाने की प्रवृत्ति (यथा फुलवारी तथा जेवनार प्रसंग में), भाषा तथा व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ, और अन्य छोटे-मोटे काव्य-दोष या अनौचित्य के उदाहरण भी इसमें ढूँढ़े जा सकते हैं, किन्तु इस दृष्टि से इस कृति की आलोचना करना व्यर्थ है। क्योंकि प्रारम्भ में स्वयं लेखक ने इन बातों की ओर ध्यान न रखने की ओर 'कौतुक कुबुद्धि कवितान के, कछु न दोष गुन उर धरब' कहकर संकेत कर दिया है। एक भक्त हृदय का यह 'काव्य-कौतुक' भक्ति की दृष्टि से एक आदरणीय रचना है।

इस कृति में पाठकों को क्या मिलेगा, इसका परिचय लेखक के शब्दों में इस प्रकार है—

× × ×

विरचे विचित्र यामें विविध प्रबन्ध छन्द,
मधुर मनोहर रहस्य सिय पिय को है।
विपुल प्रसंग अघ निग्रह को संग्रहित,
सत्य धर्म नीति को निबाह बिधि नीको है॥
भणित भदेस भाव पूरन मृदुल मानो,
टेढ़ो बेढ़ो मोदक सँवारो घनो घी को है।
साँची सब भाँतिन सों बिगत बिवाद यह,
कौशलेन्द्र 'कौतुक' प्रसाद तुलसी को है॥

'जनकपुर-प्रवेश' में से एक कवित्त और देखिए—

सादर नहाइ गंग कौसिक मुनी के संग,
गही है रुचिर राह मिथिला सहर की।
श्याम गौर सुभग सलोने सुखमा के सींव,
अँखिया अनौखी कहि 'कौतुक' कहर की॥
बाएँ दिसि लखन बिराजै राम दाएँ दिसि,
मध्य मुनि महिमा त्रिवेनी की लहर की।
मानों प्रात सन्ध्या बीच सग्रह स्वरूप धरि,
राजति अनूप रूप धूप दुपहर की॥

इसी प्रकार के छन्दों में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है।

९—ए पीप इन टु दि डार्क पास्ट—लेखक, श्रीयुत भगवानदास पाठक हैं। मूल्य ३) है।

इस पुस्तक का दूसरा नाम "ए हिस्ट्री आफ़ दि ह्वाइट रेस" भी है। इसमें 'गौर-वर्ण' जाति का मूल निवास-स्थान क्या था, किन किन ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर इसका निर्णय हो सकता है, आदि विषयों पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। वेद, ज़िन्दावस्था, पुराणों के आख्यानों तथा ज्योतिष की वर्ष-गणना के आधार पर विद्वान् लेखक ने इस बात को प्रमाणित किया है कि 'ध्रुव-प्रदेश' ही इन गौर-वर्ण जातियों का मूल आवास-स्थान था, यहीं से ये लोग अन्य देशों में फैले। लोकमान्य तिलक भी अपने अनुसन्धानों-द्वारा इसी परिणाम पर पहुँचे थे। इस ग्रन्थ में विभिन्न देशों में प्रचलित वर्ष-गणना के आधार एकत्र किये हुए प्रमाण अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। हिन्दू-पर्वों और त्योहारों के आधार पर स्थापित प्रमाण यद्यपि पूर्णरूप से निश्चायक नहीं कहे जा सकते, तथापि वे भी ऐतिहासिक अनुसन्धान-क्षेत्र में काफ़ी मनोरंजक सिद्ध होंगे। मिस्र के प्राचीन धार्मिक विश्वासों तथा प्रथाओं का भारतीय विश्वासों और प्रथाओं से सादृश्य, वैदिक मंत्रों में वर्णित ध्रुवीय ऋतु-संकेत, मूसा, राम तथा कृष्ण का ध्रुवीय देवता होना, प्रचलित गोपाष्टमी, वसन्त-पञ्चमी आदि पर्वों का भी ज्योतिष-द्वारा ध्रुवीय ऋतु-घटनाओं से सम्बद्ध होना आदि आदि ऐसे विषय हैं जो लेखक की गम्भीर अनुसन्धान-प्रवृत्ति, विस्तृत अध्ययन, मौलिक खोज तथा कल्पना के परिचायक हैं। प्रमाण यद्यपि प्रधानतया उपमानमूलक होने से सन्देहास्पद ही हैं, फिर भी इतिहास के इस प्राचीन युग के विषय में अनुसन्धान करनेवाले ऐतिहासिकों के सामने वे एक नवीन दृष्टि-कोण तथा अनुसन्धान के लिए कुछ और नूतन क्षेत्र तथा सामग्रियों की ओर संकेत करते हैं। लेखक की शैली विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरंजक है। हिन्दू-देवताओं, पर्वों, त्योहारों तथा पौराणिक आख्यानों को जिस ढंग से लेखक ने अपने प्रतिपाद्य विषय के लिए उपयोगी बनाया है उस पर कहीं तो पाठक मुसकरायेंगे और कहीं चौंक उठेंगे। विवादास्पद विषय को सुलझाने का यह एक नूतन खोज-पूर्ण प्रयत्न है। आशा है, हमारे इतिहास-रसिक सज्जन इसका उचित आदर करेंगे।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

१०—हिन्दी के कवि और काव्य—इलाहाबाद की 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने, कुछ समय हुआ, हिन्दी और उर्दू काव्य के दो संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया था। उनमें से हिन्दी के 'संग्रह-ग्रन्थ' का यह प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है। इसमें 'वीरगाथा' के मुख्य ग्रन्थों के अंश संग्रह किये गये हैं और उनके रचयिता का तथा उसकी रचनाओं का भी परिचय दिया गया है। रासो जैसे ग्रन्थों के जो अंश संग्रह किये गये हैं उनके कठिन शब्दों के अर्थ भी पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं। संगृहीत अंश के पाठ का सम्पादन परिश्रम से किया गया है, साथ ही रचयिता की जीवन-सम्बन्धी बातें भी खोज करके लिखी गई हैं। इस प्रकार इसको सब तरह प्रामाणिक बनाने में इसके प्रणेता पण्डित गणेशप्रसाद द्विवेदी एम० ए० ने अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा है, यह इसके आकलन से भले प्रकार प्रकट हो जाता है। विषय के अनुसार हिन्दी के काव्यों का एक ऐसा ही संग्रह स्वर्गीय लाला सीतारामजी ने भी तैयार किया था, जिसे कलकत्ता-यूनिवर्सिटी ने प्रकाशित किया था। परन्तु यह संग्रह उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विशद है। इसके सिवा इसमें काव्यों के अंश भी अधिक संग्रह किये गये हैं और कवियों तथा उनके काव्यों पर तो और भी अधिक विस्तार से विचार किया गया है। इन सब बातों के विचार से यह 'संग्रह'-ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा होगा और इसके शेष भागों का प्रकाशन यथाशीघ्र हो जाना चाहिए। इस संग्रह-ग्रन्थ में वीरगाथा के १७ कवियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है। ये कवि नल्ह, जगनिक, चंद,

तुलसीदास, केशवदास, मान, जोधराज, रूपलसिंह, गोरे-लाल, भूषण, श्रीधर, पद्माकर, सूदन, गोकुलनाथ, गोपी-नाथ, मणिदेव और चन्द्रशेखर हैं। इन कवियों में जगनिक के नाम से 'आल्हखण्ड' के जो अंश उद्धृत किये गये हैं उनको जगनिक-रचित मानना बड़े साहस की बात है। इसी तरह तुलसीदास को भी इन कवियों की श्रेणी में रखना समीचीन नहीं प्रतीत होता। चाहे जो हो, यह पुस्तक एक उपयोगी पुस्तक है और हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए। बड़े आकार की ५२० पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य भी ४॥) ही है।

पता—हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, इलाहाबाद।

११—कुमाऊँ का इतिहास—भारत बहुत बड़ा देश है। वह अनेक प्रान्तों में बँटा हुआ है, और फिर वे प्रान्त कतिपय ऐसे मण्डलों में बँटे हुए हैं जो स्वयं छोटे-मोटे स्वतंत्र देश-से हैं, क्योंकि उनकी अपनी अलग अलग रीति-नीति, चाल-ढाल तथा इतिहास है। अँगरेज़ सरकार ने तो शासन आदि की सुविधा के लिए अँगरेज़ी में प्रत्येक ज़िले के 'गेज़ेटियर' तैयार करवाये हैं, जिनमें ज़िलों का आवश्यक परिचय पूरा पूरा दिया गया है। परन्तु ऐसे ग्रन्थ लोक-भाषा में नहीं हैं। प्रसन्नता की बात है कि लोगों का ध्यान इस ओर गया है और ऐसे मण्डलों के इतिहासात्मक ग्रन्थ लिखे जाने लगे हैं। इस ओर सबसे पहले स्वर्गीय रायबहादुर बाबू हीरालाल का ध्यान गया था और उन्होंने दो-एक किताबें लिखवाकर प्रकाशित भी करवाई थीं। उपर्युक्त कुमाऊँ का इतिहास उसी कल्पना का विकसित रूप है और इसके लेखक पंडित बदरीदत्त पाँड़े ने अपने इस ग्रन्थ में कुमाऊँ के प्रत्येक अञ्चल का ब्योरेवार वर्णन किया है। इसके पढ़ने से कुमाऊँ का इतिहास ही नहीं, उसकी सामाजिक और आर्थिक तथा धार्मिक अवस्थाओं का, और सो भी आज तक का सारा का सारा हृदयगम हो जाता है। क्या ही अच्छा हो यदि अन्य स्वतंत्र भू-भागों के भी ऐसे ही विस्तृत खोजपूर्ण इतिहास लिखे जायँ। इतिहास-प्रेमियों को और कुमाऊँ के निवासियों को इस ग्रन्थ का अवश्य अवलोकन करना चाहिए। इसकी पृष्ठ-संख्या ७०६ है और मूल्य ३) है।

पता—पंडित बदरीदत्त पाँड़े, प्रेमकुटी, अल्मोड़ा।

१२—चिता की चिनगारियाँ—(कहानी-संग्रह) लेखक श्री कुँवर मोहनसिंह सेंगर, भूमिका-लेखक स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द, प्रकाशक, नवयुग-पुस्तक-भंडार बहादुरगंज, इलाहाबाद। मूल्य १।) है।

सेंगर जी के इस कहानी-संग्रह में नौ कहानियाँ हैं। कहानियाँ प्रायः सभी किसी न किसी आदर्श को लेकर लिखी गई हैं। इसकी भूमिका में स्वर्गीय प्रेमचन्द ने लेखक के सम्बन्ध में लिखा है कि "लेखक का चरित्र-वैचित्र्य इसका प्रमाण है कि उन्होंने जीवन में जो कुछ देखा है आँखें खोलकर देखा है, जो कुछ अध्ययन किया है स्वस्थ मन से किया है।" इन कहानियों में यह बात बहुत साफ़ मालूम होती है। मुर्दा, पत्रकार, मातृत्व की भूख, सन्तान की चाह आदि में लेखक ने संसार की विकलता को उसी रूप में व्यक्त किया है। ऐसा मालूम होता है कि जीवन की प्रत्येक चिन्ता और व्यथा उनके हृदय में घर करके कहानी के आकार में व्यक्त हुई है। ऐसी कहानियाँ अपने रूप में साँगोपाँग न होते हुए भी जीवन की गहरी अनु-भूति पर प्रकाश तो डालती हैं। मैं समझता हूँ, लेखक केवल आदर्शवादी ही नहीं, कहीं कहीं यथार्थवादी भी हो गये हैं। मुर्दा कहानी कुछ अस्वाभाविक होते हुए भी जीवन के यथार्थ का चित्र है। हम दिन-रात जीवन की भयङ्करताओं को देखते हैं और उन्हें भूल जाने का मिथ्या प्रयास करते हैं। परन्तु वे कितनी सत्य हैं, यही इस कहानी में दिखाया गया है। शान्ति एक लड़की है वह रात को सोती हुई किसी मुर्दे का दृश्य देखकर चौंक पड़ती है। मा उसे ढारस बँधाती है। फिर वह देखती है कि उसकी सहेली की मा की अर्थी भी एक दिन उसी राह से ले जाई जा रही है। यह चित्र उसके ऊपर गहरा प्रभाव डालता है। फिर उसकी अपनी माँ भी मर जाती है। एक रात को वह उठकर श्मशान की ओर चली जाती है। वहाँ कुछ देर पूर्व अपनी मा की जली हुई राख का ढेर देखकर उसके पहले के संस्कार उसे अभिभूत कर लेते हैं और पागल होकर वह वहीं समाप्त हो जाती है। इस कहानी में लम्बापन काफ़ी है। शायद कहानी के लिए दो चित्र ही काफ़ी होते, पर जीवन की यथार्थता इससे अधिक सुन्दर ढंग से व्यक्त नहीं की जा सकती। इसी प्रकार अन्य कहा-नियों में कथानक, घटना-क्रम बड़े चुभते हुए हैं। पगली कहानी इस संग्रह की सबसे सुन्दर वस्तु है। मैं समझता हूँ, यदि सेंगर जी यह एक कहानी ही लिखते तो भी वे कहानी-लेखकों में अपना स्थान पा जाते। संग्रह उपादेय है। प्रत्येक कहानी-पाठक को इस ढङ्ग का यह संग्रह रुचिकर होगा, ऐसी मेरी धारणा है।

—उदयशङ्कर भट्ट

१३—क्रान्तियुग के संस्मरण—लेखक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ-संख्या २१५, मूल्य १) है। प्राप्ति-स्थान—साहित्य-सेवक कार्यालय, जालिपादेवी, काशी।

इस पुस्तक के लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त को काकोरी षड्यन्त्र में १४ साल की सज़ा हुई थी। अभी कुछ महीना पहले कांग्रेस-सरकार ने उन्हें सब काकोरी-क़ैदियों के सहित रिहा कर दिया है। छूटने के बाद से उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, एक 'जययात्रा' जिसकी समालोचना 'सरस्वती' में प्रकाशित हो चुकी, और दूसरा यह 'क्रान्तियुग के संस्मरण'। क्रान्तियुग के संस्मरण में एक तरह से सारे क्रान्तिकारी-आन्दोलन का इतिहास आ गया है, किन्तु विशेषकर यह काकोरी तथा लाहौर का इतिहास है। लेखक की भाषा सजीव तथा मज़ेदार है, इसलिए व्यक्तित्व तथा घटनायें प्रत्यक्ष-सी हो जाती हैं। इस पुस्तक में ये अध्याय हैं—(१) क्रान्तिकारी आन्दोलन पर एक सरसरी दृष्टि, (२) काकोरी की घटना, (३) काकोरी का मुक़द्दमा, (४) काकोरी के बाद के षड्यन्त्र, (५) हमारे समय के कुछ व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय, (६) एक शहीद की अन्तिम घड़ियाँ, (७) देवघर षड्यन्त्र और काकोरी की कुछ अन्य बातें, (८) काकोरी की कुछ अन्य बातें, (९) मेरे अनशन के अनुभव, (१०) अंडमन-जीवन की झलक। इन शीर्षकों से ही पता लगता है कि पुस्तक का दायरा विस्तृत है। लेखक ने काकोरी-ट्रेन-डकैती तथा अपने अनशनों का विस्तृत इतिहास लिखा है। जिस स्पष्टता से उन्होंने घटनाओं को खोलकर लिखा है उससे पुस्तक की रोचकता बढ़ गई है। इस पुस्तक में भगतसिंह से लेकर इस युग के सभी शहीदों के विवरण हैं। पुस्तक उपन्यास से भी अधिक रोचक, अतः संग्रहणीय है।

क्रान्तिकारियों के सिद्धान्तों से कोई सहमत हो या न हो, यह मानना पड़ेगा कि क्रान्तिकारियों का भारत के इति-हास में अपना एक स्थान है। मन्मथ बाबू की पुस्तक से पता चलता है कि सारे भारत का क्रान्तिकारी-आन्दोलन एक सूत्र में ग्रथित तथा एक ही उद्देश्य से चलाया हुआ था। इस पुस्तक के पढ़ने से क्रान्तिकारी-आन्दोलन का बहुत काफ़ी ज्ञान हो जाता है। क्रान्तिकारी रंगमच के एक प्रमुख अभिनेता की लेखनी से निकली हुई यह पुस्तक अपने विषय की एक प्रामाणिक पुस्तक है।

१४—परमात्मप्रकाश और योगसार—ये दोनों प्राचीन रचनायें अपभ्रंश-भाषा की हैं। इनके रचयिता कोई 'योगीन्दु' हैं, जिनका कोई पता नहीं है कि वे कौन थे और कब हुए थे। परन्तु हेमचन्द्र ने इनके परमात्म-प्रकाश के दोहे अपने व्याकरण में उद्धृत किये हैं, अतएव ये दोनों रचनायें ग्यारहवीं सदी के पहले की ठहरती हैं। ऐसी ही महत्त्व की इन रचनाओं का बम्बई के परमश्रुत-प्रभावक मण्डल ने बहुत ही सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। ये दोनों ग्रन्थ जैन-धर्म के आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं और बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ हैं। इनके मूल का बड़े अच्छे ढंग से सम्पादन किया गया है। साथ ही संस्कृत व हिन्दी-अनुवाद के सिवा संस्कृत-भाष्य के सहित इनका प्रकाशन किया है। उक्त मण्डल ने इन ग्रन्थों के प्रकाशन में बड़ा परिश्रम किया है और इनके यथासम्भव उपयोगी बनाने में कोई कोर-कसर बाक़ी नहीं रक्खी है। जैनेतर भी जिन्हें अध्यात्म से तथा अपभ्रंश-भाषा से प्रेम है, इन अलभ्य रचनाओं से विशेष लाभ उठा सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थों के इस सजिल्द संस्करण का मूल्य ४॥) है। पता—व्यवस्थापक, रायचन्द्र-जैनशास्त्र-माला, जौहरी बाज़ार, बम्बई २।

१५—भूषण-ग्रन्थावली—भूषण की रचनाओं का यह एक नया संस्करण है। यह संस्करण विद्यार्थियों के उपयोग के लिए निकाला गया है। भूषण के ग्रन्थों के अब तक छः संस्करण निकल चुके हैं और यह उनका सातवाँ संस्करण है। इसमें प्रारम्भ के १२० पृष्ठों में कवि का परिचय, उसके नायकों का परिचय, वीर-काव्य और रीतिग्रन्थों पर विचार, भूषण के काव्य की आलोचना, उनकी शैली, उनकी विशेषतायें और उनका साहित्य में स्थान आदि बातों पर पृथक् पृथक् समुचित प्रकाश डाला गया है और पिछले संस्करणों की त्रुटियों तथा मतभेदों की चर्चा करते हुए वास्तविक बातों का समर्थन किया गया है। इसके बाद भूषण के ग्रन्थ—शिवराज-भूषण, शिवाबावनी,

छत्रसाल-दशक, तथा फुटकर पद्य संग्रह दिये गये हैं। फुटकर पद्यों को छोड़कर शेष भाग सारा का सारा सटीक है, जिसमें पद्यगत कठिन शब्दों के अर्थ एवं पद्यार्थ अलग अलग दिये गये हैं. साथ ही पद्यों में जिन ऐतिहासिक घटनाओं या व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है उनका भी परिचय विस्तार के साथ दिया गया है। इस प्रकार यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए सब प्रकार से उपयोगी बनाया गया है। विद्यार्थियों को इससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य २।) है।

पता—हिन्दीभवन, लाहौर है।।

१६—ग्राम-सुधार—लेखक, श्रीयुत पंडित अश्विनी-कुमार शुक्ल, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, गंगा-ग्रंथागार, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ हैं। मूल्य ॥=) है

यह एक ग्राम सुधार-सम्बन्धी पुस्तक है। यह पाँच प्रकरणों में विभक्त है। पहले प्रकरण में प्राचीन काल की ग्राम-सम्बन्धी बातों की चर्चा है। दूसरे में वर्तमान ग्राम सुधार का वर्णन है। तीसरे प्रकरण में पशुओं की उन्नति, चौथे में ग्रामों की आर्थिक बातें तथा पाँचवें में ग्रामों के व्यापार की चर्चा है। प्राचीन और नवीन बातों की जानकारी प्राप्त करके ग्रामवासियों को अपनी कठिनाइयों के हल करने में इस पुस्तक से बड़ी मदद मिल सकती है। पुस्तक की भाषा भी सरल है। ग्रामवासियों को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

१७—एक भूल—लेखक, श्रीयुत शिवदेव उपाध्याय, बी० ए०, एल-एल-बी०, प्रकाशक, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा हैं। पृष्ठ-संख्या २०३ और मूल्य १॥) है।

यह सामाजिक उपन्यास पत्रों के रूप में लिखा गया है। प्राणनाथ जी इस उपन्यास के प्रधान नायक हैं। वे कशर-देवी नामक एक सुन्दरी से अपनी शादी कर लेते हैं, किन्तु सोहागरात के बाद उसे सदा के लिए तज देते हैं। यह स्त्री इस शोक में संन्यासिनी हो जाती है। बाद में फिर पति-पत्नी में पत्रों-द्वारा प्रेमचर्चा शुरू होती है। साथ ही एक नीलम नामक युवती से प्राणनाथ जी का प्रेम हो जाता है और वे उससे शादी करके उसके साथ विलायत चले जाते हैं। किन्तु संन्यासिनी पत्नी के प्रेम में वे बेहद चिंतित हो जाते हैं। इसी समय एक भयानक तूफ़ान आता है और प्राणनाथ जी नीलम को गोद में लेकर सदा के लिए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं।

इस उपन्यास में शिक्षित युवक-युवतियों के चरित्र पर ख़ासा प्रकाश डाला गया है। इसकी भाषा सरल और विशुद्ध है, पर शैली चक्करदार है। नवयुवकों के लिए यह पुस्तक लाभदायक है। उन्हें इस उपन्यास को अवश्य पढ़ना चाहिए।

—गङ्गासिंह

१८—डाबर-पञ्चाङ्ग—संवत् १९९५ का यह डाक्टर एस० के० बर्म्मन, कलकत्ता का सुन्दर पञ्चाङ्ग है। यह सचित्र है और बिना मूल्य वितरित होता है। इसमें ५ चित्र राजा नल और दमयन्ती-सम्बन्धी हैं। ये सभी चित्र नयनाभिराम और भावव्यञ्जक हैं। इसमें ग्रह, उपग्रह, फल, वर्षफल, योगिनी-विचार, चरण-विचार आदि ज्योतिषीय बातों के सिवा प्रान्तीय विभाग से प्रधान प्रधान तीर्थ-स्थानों के नाम, नीरोग रहने के सहज उपाय, तन्दुरुस्ती किस तरह ख़राब होती है आदि ऐसी बातें दर्ज की गई हैं, जो मनुष्य के रात-दिन उपयोग में आने योग्य हैं। साथ ही विविध और अत्युपयोगी ओषधियों का भी वर्णन है। यह पञ्चाङ्ग सभी के काम का है और जन-समाज में अधिकाधिक प्रचार पाने योग्य है।

—पण्डित सुन्दरलाल द्विवेदी

वर्ग नं० २२ का नतीजा

यह प्रसन्नता की बात है कि इस बार प्रतियोगियों ने वर्गनिर्माता को हराया। इस बार पाँच शुद्ध पूर्तियाँ आईं और इतनी ही एक भूलवाली पूर्तियाँ आईं।

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६०) मिला।

(१) शिवगोविन्द वाजपेयी मु० पो० अजगैन, जिला उन्नाव।
(२) कलावती देवी c/o मु० देवनारायण लाल, ग्राम मधय्या टोला, डा० हड़िया, जिला इलाहाबाद।
(३) मदनगोपाल, अमरकोट, पो० अमरकोट, राजपूताना।
(४) आर० पी० यादवा, हेड अध्यापिका, गर्ल्स स्कूल, हरगाँव।
(५) आर० बी० सिंह c/o हेड अध्यापिका गर्ल्स स्कूल, हरगाँव।

द्वितीय पुरस्कार १२५) (१ अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २५) मिला।

(१) कमला देवी c/o रविशङ्कर ग्राम मधय्या टोला, डा० हड़िया, इलाहाबाद।
(२) भँवर शिवनाथसिंह c/o कुँअर शेरसिंह एम० ए० एल-एल० बी०, जज श्री गङ्गा-नगर, बीकानेर।
(३) बद्रीप्रसाद वाजपेयी मु० पो० अजगैन, उन्नाव।
(४) शिवदत्तप्रसाद वाजपेयी अजगैन, उन्नाव।
(५) दयानिधान c/o डाक्टर पी० सरन पेंसनर जकाती, बरेली।

तृतीय पुरस्कार ५४) (२ अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६) मिला।

(१) अंजनीकुमार c/o रामचन्द्र सुल्तेरे सेकन्ड मास्टर, स्टेट हाई-स्कूल, अजैगढ़।

(२) सत्यदेव पालीवाल c/o योगेश, आगरा।

(३) कलादेवी c/o विष्णुसिंह, मुवानी, डा० खा० थल, अलमोड़ा, (यू० पी०)।

(४) एकबालनारायण पार्सल क्लर्क, ई० आई० आर०, कानपुर सेन्ट्रल।

(५) सूरजप्रकाश c/o बा० मुकुटबिहारीलाल वकील, आलमगीरीगंज, बरेली।

(६) श्रीनारायण भारती विद्यार्थी, मिडिल स्कूल सोमेश्वर, पो० आ० सोमेश्वर, ज़िला अलमोड़ा।

(७) सोमेश्वरदयाल c/o हरिहरदयाल ट्रेज़री आफ़िसर, मेरठ।

(८) भँवर महेन्द्रसिंह c/o कुँवर शेरसिंह एम० ए०, एल-एल० बी० जज, बीकानेर।

(९) बी० एन० वर्मा, बाग़ मुज़फ़्फ़रख़ाँ, आगरा।

चतुर्थ पुरस्कार २१) (३ अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २१ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) श्रीमती सरस्वती देवी c/o कन्हैयालाल श्रीवास्तव बी०, काम० शान्ति-निकेतन, इलाहाबाद।

(२) चुन्नीलाल c/o दि रुड़की इंजीनियरिङ्ग वर्क्स, १३ कैनिङ्ग रोड, इलाहाबाद।

(३) पं० गोपीनाथ मालवीय शास्त्री, c/o पं० केशवदेव शास्त्री पाधा, लोकनाथ महादेव, इलाहाबाद।

(४) रश्मि c/o डी० एन० कौल, रूरा स्टेशन ई० आई० आर०।

(५) सूरजमुखी देवी c/o जगदीशप्रसाद अग्रवाल, लक्ष्मीगञ्ज, काशगञ्ज (यू० पी०)।

(६) सुखवासीलाल दुबे c/o बा० शेरसिंह एम० ए०, एल-एल० बी० जज, श्री गङ्गानगर (बीकानेर स्टेट)

(७) शिवनारायणसिंह नेगी c/o हरिनिवास, आनंद चौक, देहरादून।

(८) विद्यावती देवी c/o शिवनारायणसिंह नेगी, हरिनिवास, आनन्द चौक, देहरादून (यू० पी०)।

(९) ला० गोपाल साह ओखलिया, पो० आ० बागेश्वर, चौक बाज़ार, ज़िला अल्मोड़ा।

(१०) राजकुमारी कपूर c/o हरिकृष्ण कपूर बैंकर एण्ड रईस, पिहानी, हरदोई।

(११) सतीशचन्द्र मेहता, मेहतानिवास, लाटूश रोड, ज्वीनस्कायर, लखनऊ।

(१२) व्रजकिशोर c/o काशीराम गर्ग, बड़ौत, मेरठ।

(१३) काशीराम गर्ग, बड़ौत, ज़िला मेरठ।

(१४) भानुकुमारी गौड़ c/o श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ बड़ी पियरी, बनारस सिटी।

(१५) श्री महेशचन्द्र c/o श्यामनारायण शर्मा, पल्टन बाज़ार देहरादून, (यू० पी०)।

(१६) गायत्री देवी c/o योगेश, आगरा।

(१७) अमरचन्द सेठ c/o योगेश, आगरा।

(१८) नंदलाल सुवर्णकार, मु०, डा० आसौधा, ज़िला, मेरठ।

(१९) कुमारी निक्की c/o सुपेरिन्टेन्डेण्ट पुलिस, आर० चौधरी खेतड़ी (राजपूताना)

(२०) रामप्रकाश c/o बा० मुकुटबिहारीलाल वकील आलमगीरगञ्ज, बरेली।

(२१) विनयसिंह c/o दी० हरदयालसिंह, पो० बिलाईगढ़ सारंगढ़।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३० जून को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) का प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिया जायगा, जो नियम २ के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ एक पूर्ति भेज सकेंगे।

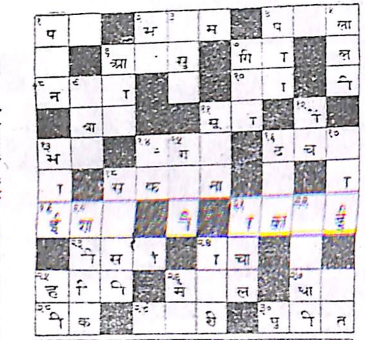
अङ्क-परिचय

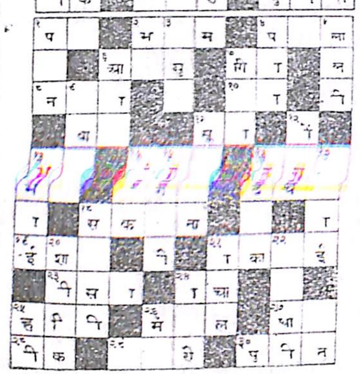
बायें से दाहिने

१—'जग चौराय रान ..पाये' (पद)।
२—योगी अक्सर इसमें सने मिलते हैं।
४—उस सिर का। ६—इजाज़त। ७—आवाज़।
८—नाच। १०—जो पुराना न हो।
११—उजड़ा हुआ।
१४—बुरी यह देख, यार लोग अक्सर सरकने लगते हैं।
१६—टटा। १८—स्वीकार करना। १९—एक कोना।
२१—यह 'कारवाई' बिगड़कर पूरी न हुई।
२३—..गुस्सा होना। २४—काका।
२५—इसकी छलाँग बहुत साफ़ और मनोहर होती है।
२६—जातीय...के विचार ने कभी किसी ऐसे को भी नेता बना दिया है जिसको कभी कोई न पूछता।
२७—राजपूती तलवार की.. अँगरेज़ों के भारत में आने के पहले ही बँध चुकी थी।
२८—जिसे सब मानें वही यह है।
२९—यदि...बिगड़ जाय तो प्रजा को फिर से बस में लाना, बिना रक्त बहाये असम्भव हो जाता है।
३०—पवित्र।

ऊपर से नीचे

१—चतुर और शिक्षित दाई के पाले हुए बच्चों की यह शक्ति कमज़ोर न होनी चाहिए।
२—यह नाहक़ भी होता है।
३—यह 'ससुर' टेढ़े नहीं, सीधे हैं।
५—इच्छा पूर्ण होने पर इसके आनन्द की सीमा नहीं रहती।
६—एक बढ़िया चित्रकार, ब्रश और रङ्ग से इसमें जान डाल देता है। ७—सब ही को सीखना पड़ता है।
९—आलसी चित्त को...कहाँ? ११—सोना।
१२—एक कुटिल मनुष्य सदा यह मारने की सोचता रहता है।
१३—मलेरिया की रोकथाम में देश की यह होती है।
१४—चिन्ता और इसका साथ प्रायः रहता है।
१५—आज-कल बड़े ज़ोरों से पड़ रही है।
१६—इसमें दवा डाली जाती है।
१७—यदि ज़रूरत पर न मिले तो सब ही इसके लिए व्याकुल हो जाते हैं।
१८—आश्चर्य भी इसका एक कारण है।
२०—शरीर-सम्बन्धी। २१—बकवादी।
२२—देहली को यह होने का मान है।
२५—बिगड़े हुए बच्चे अक्सर ऐसे होते हैं।
२६—माँग।

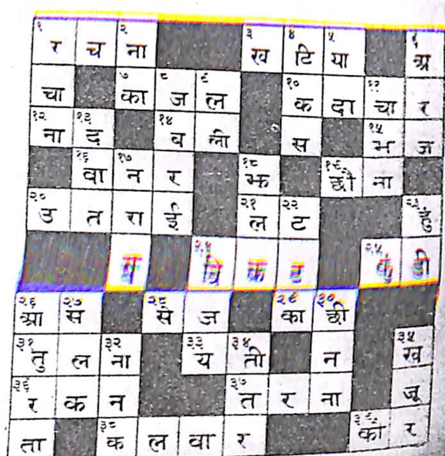




अपनी याददाश्त के लिए वर्ग नं० २३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २२ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २२ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।



वर्ग नं० २२ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २२ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ....

पता ....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० जून के बाद नहीं लिया जायगा।

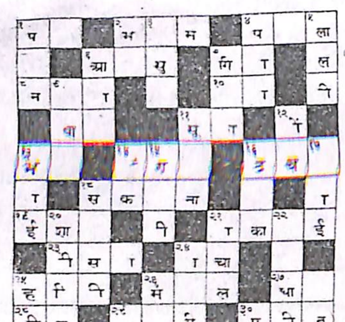
इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २३

इंडियन प्रेस, लि०,

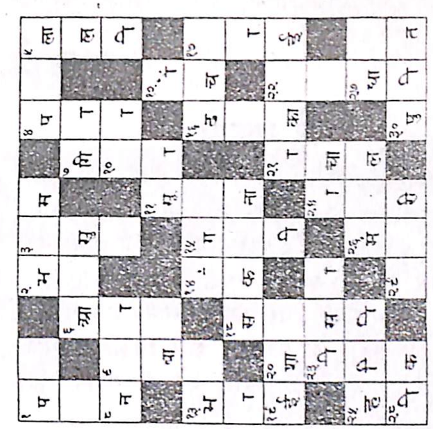
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

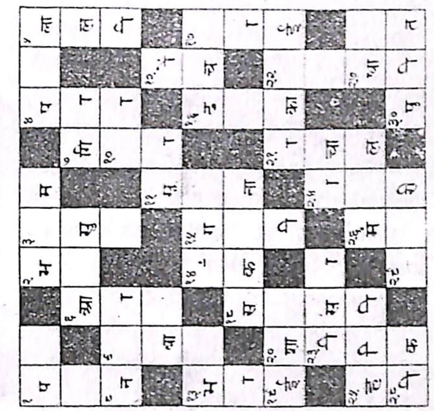


इस लाइन से काटिए

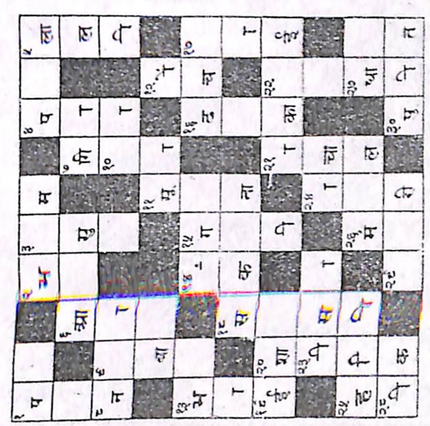
वर्ग नं० २३ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० २ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



वर्ग नं० २३ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)



नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को ही छोड़ दें। जो ... उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ६३० पर देखिए।

नई शङ्कायें

श्रीमान् वर्गनिर्माता जी,

शङ्काओं का उत्तर आप स्वयं न देकर पुरस्कार-विजेताओं से दिलाते हैं। पुरस्कार-विजेता तो आपकी-सी कहेंगे ही। मज़ा तो तब है, जब वे लोग जिन्हें पुरस्कार नहीं मिला है, आपके उत्तर को बिना मीन-मेख मान लें। नीचे मैं तीन शङ्कायें पेश करता हूँ और इसका समाधान उन लोगों से चाहता हूँ जिन्होंने मेरे ही समान भूलें की हैं।

१—"हर = घर"

वर्ग नं० ३१ बायें से दाहिने १३ नम्बर पर देखिए। संकेत है "...रोज़ देर से पहुँचनेवाले को प्रायः नित नये बहाने ढूँढ़ने पड़ते हैं।" उत्तर में सिर्फ़ एक शब्द बनता है। वह है "हर" पता नहीं आपने हर न रखकर "घर" क्यों रक्खा है? जो लोग हिन्दी में ठीक-ठीक वाक्य-रचना की ज़रा भी परवाह रखते हैं वे यह कहे बग़ैर न रहेंगे कि जो स्थान ख़ाली है वहाँ पर "हर" ही फिट बैठता है। हर की जगह "घर" रखकर वाक्य को पढ़िए। वाक्य असुन्दर और अस्वाभाविक जान पड़ेगा। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी आदमी ने "हर" की जगह घर भरा है। मेरा ख़याल है जिन महाशय को एक ग़लती पर इनाम मिला है उनकी यही ग़लती होगी।

२—घरवाला = हरवाहा

उसी १३ नं० में उसी वर्ग में ऊपर से नीचे चले आइए। संकेत है—"कठिन मालकिन प्रायः इसके नाक में दम कर देती है।"

स्पष्ट है कि "हरवाहा" ही अधिक उपयुक्त है। मालकिन से उसी का काम अधिक पड़ता है। पर आपने "घरवाला" लिखा है। "घरवाला" का सबन्ध घरवाली से होता है मालकिन को वह क्या जाने?

३—हाल = लाल

बायें से दाहिने २४ नम्बर देखिए। संकेत है—"परमात्मा न करे किसी का...बुरा हो।

बुरा के साथ "हाल" का ही प्रयोग अधिक होता है। यही महावरा है। बुरा हाल बोलते सैकड़ों आदमी आपको सड़क पर नज़र आवेंगे। बुरा लाल कोई नहीं बोलता। कम से कम आपको भाषा के प्रवाह और महावरा का तो ध्यान रखना ही चाहिए।

आपका सेवक—
रामभजन तिवारी
कानपुर

नोट—आशा है इन शङ्काओं का समाधान इस बार वे सज्जन भी भेजेंगे जिन्होंने इन शब्दों को छपे जवाब के अनुसार नहीं भरा था पर जो अब यह समझते हैं कि छपा जवाब ही ठीक है।

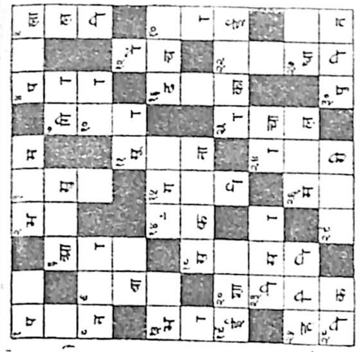
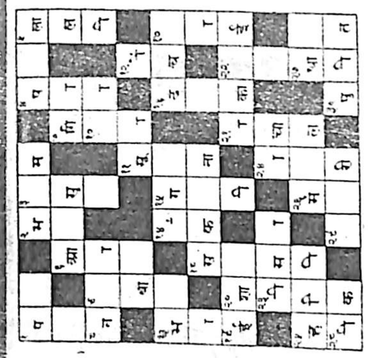
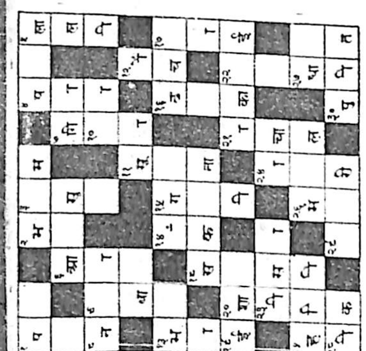
—सम्पादक

शङ्का-समाधान

गताङ्क का शेषांश

(६) नम्बर २४ ऊपर से नीचे—'बुढ़ापे का सारा रोग इसकी कमी ही तो है,—रकत या सकत। बुढ़ापे में शरीर निर्बल हो जाता है। क्योंकि जठराग्नि मन्द हो जाती है, नसें ढीली पड़ जाती हैं और रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र ये सातों धातु त्रिदोष विकार, विशेषतः कफ-वृद्धि के कारण दूषित या निर्बल हो जाते हैं। रक्त की कमी ही नहीं होती, इसकी गर्मी भी कम हो जाती है। वे (Glands) जो जीवनी शक्ति (Energy) की रक्षा के लिए आवश्यक हैं घिर कर निर्बल या बेकार हो जाते हैं। इसी लिए इसके विशेषज्ञों ने चिंपाञ्ज़ी आदि नवजवान बन्दरों के ऐसे (Glands) को पुराने शक्ति-शून्य (Glands) की जगह पर लगाकर कितने ही बूढ़ों को नवयौवन प्रदान कर उनको बहुत-से जीर्ण रोगों से मुक्त कर दिया है। अतएव 'सकत' के सिवा कोई अन्य उत्तर हो नहीं सकता।

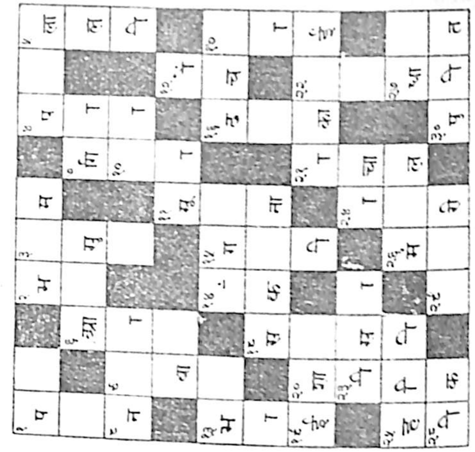
—अखिलेश्वरप्रसाद
सीतामढ़ी

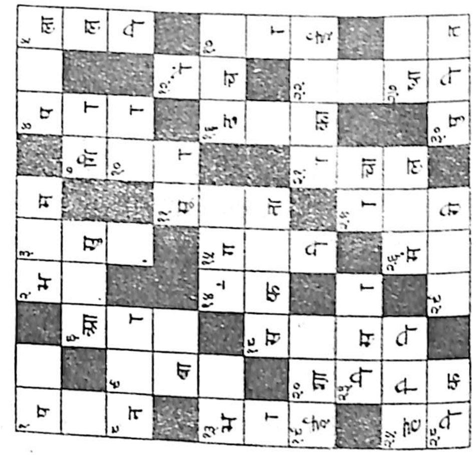
आपनी याददाश्त के लिए वर्ग २३की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

इस लाइन से काटिए

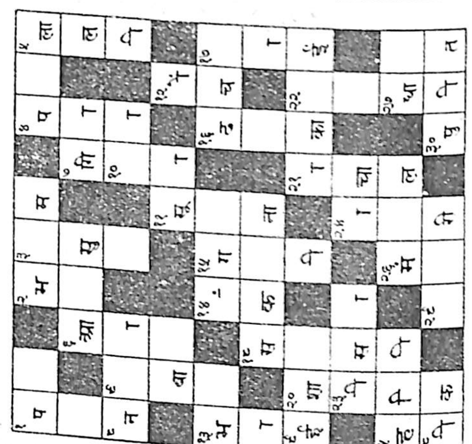
वर्ग नं० २३ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...



वर्ग नं० २३ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)



वर्ग नं० २३ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)



नाम पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काटकर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ६३० पर देखिए।

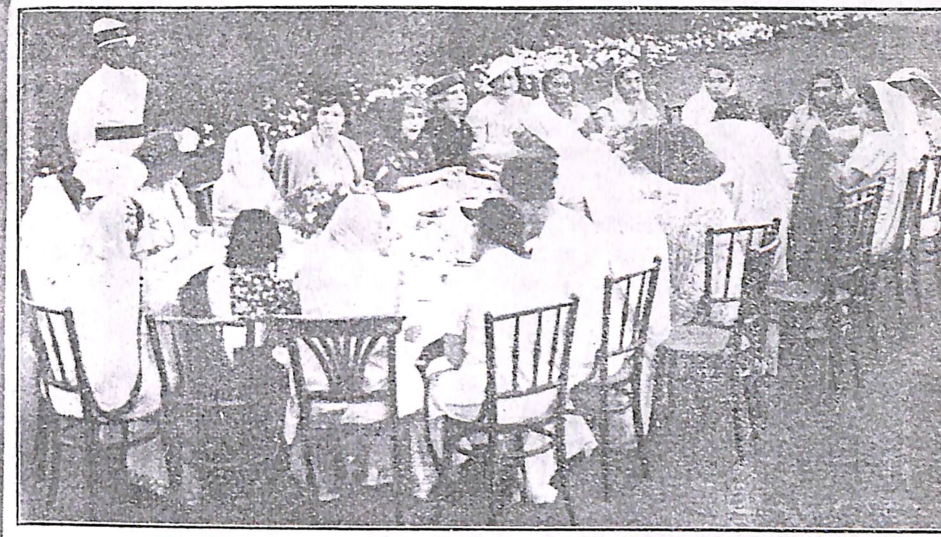
आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २३ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो आने खाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २३ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ जून सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

चित्र-संग्रह



बम्बई के श्री पी० बी० एम० जिमावात्र ने लेडी लुमली को चाय की दावत दी थी। यह चित्र उसी अवसर का है।





हर हिटलर बवेरिया की एक ग्राम युवती का अभिवादन कर रहे हैं।



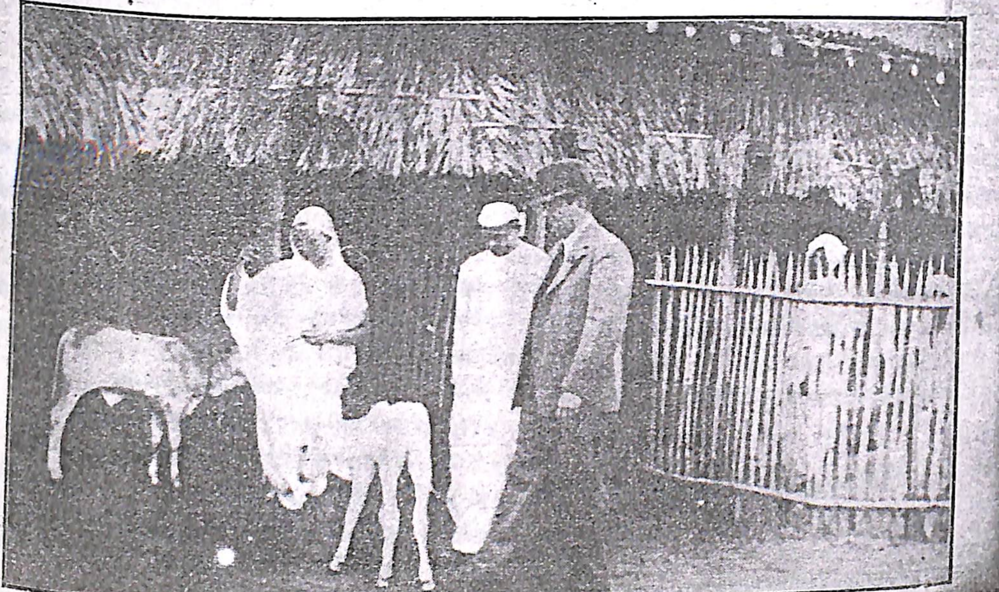
मिट्टी के बर्तन बनाने की कला भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित है और आज भी उसी रूप में है।



मेडम चाङ्ग काई-शेक। चीन की युद्ध-समिति की सदस्या हैं। इस पद पर विश्व में ये प्रथम महिला हैं।



मिसेज़ दमयन्ती खन्ना, बी० ए०। इन्होंने १६३१ में योरप का भ्रमण करके वहाँ की आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया है। ये रिज़र्व बैंक के डाइरेक्टरेट के लिए उम्मीदवार हैं।



सामयिक साहित्य

बाबू शिवप्रसाद गुप्त की पत्नी का आत्मोत्सर्ग

बाबू शिवप्रसाद गुप्त की पत्नी श्रीमती भगवती देवी के स्वर्गवास का दुःखद समाचार पाठक समाचार-पत्रों में पढ़ चुके हैं। स्वर्गीया श्रीमती भगवती देवी जी बाबू साहब की सच्ची सहचरी थीं, उनके आदर्शों की पूर्ति में उनकी निरन्तर सहायता करती रहती थीं। उनका व्यक्तित्व कैसा महान था और अपने पति के प्रति उनका कैसा अटल अनुराग था, इसका वर्णन 'आज' के सम्पादक श्रीयुत बा० वि० पराड़कर जी ने उक्त पत्र में अपने लेख में मार्मिक ढंग से किया है। उस लेख का मुख्य अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

श्री शिवप्रसाद जी को रक्तसंचार बढ़ने की बीमारी बहुत दिन से है, जिससे बहू जी बड़ी चिन्तित रहती थीं और उनकी कुण्डली ज्योतिषियों को दिखाया करती थीं। गत मार्गशीर्ष में उन्हें पता चला कि फाल्गुन शुक्ल में गुप्त जी को भयंकर अरिष्ट है। कई ग्रह, जैसे सूर्य, शनि, बुध, शुक्र और चन्द्र मृत्युस्थान में एकत्र हो रहे हैं। काशी के कई प्रमुख ज्योतिषियों को बहू जी ने कुण्डली दिखाई। सबने एक स्वर से (शब्दों का हेरफेर करके) यही कहा कि इस योग से गुप्त जी का बचना असम्भव है।

यह जानकर बहू जी की जो अवस्था हुई उसका वर्णन करना कठिन है। वे इस धुन में लगीं कि इस भीषण अरिष्ट का निवारण किस प्रकार हो। पण्डित लोग पूजा-पाठ, जप-दान इत्यादि बताते थे, पर प्रबल मारकेशों को देखकर कोई साहसपूर्वक यह वचन नहीं देता था कि ऐसा करने से गुप्त जी की मृत्यु टल ही जायगी।

बहू जी का एक महात्मा से परिचय था, जो दक्षिण-मार्गी सिद्ध तान्त्रिक हैं। उनसे भी उन्होंने अपना कष्ट निवेदन किया और उपाय पूछा। महात्मा ने कहा—'एक प्रयोग मैं बता सकता हूँ जिससे गुप्त जी तो निश्चयरूपेण बच जायँगे, पर तुम्हारे ऊपर आ बनेगी। तुम्हारे बचने में सन्देह है। गुप्त जी का तो एक बाल भी न बाँका होगा, पर तुम प्रयोग समाप्त होते होते बीमार पड़ जाओगी, फिर ईश्वर ही तुम्हारी रक्षा करे।'

बहू जी ने महात्मा से इस प्रयोग को जानने का बड़ा हठ किया। महात्मा उन्हें बराबर चेतावनी देते गये कि इस कार्य में तुम्हें अपने लिए पूरा ख़तरा है, मत करो। पर बहू जी ने अपना हठ न छोड़ा। बहू जी ने जब बहुत बल बाँधा, यहाँ तक कहा कि मैं अपनी आयु सहर्ष पति को भेंट करना चाहती हूँ, तब महात्मा ने लाचार होकर बहू जी को प्रयोग बताया।

अन्त में वही हुआ जैसा महात्मा ने कहा था। इस दुर्दान्त अरिष्ट के समय, जब कि मृत्यु ही अवश्यंभावी थी, शिवप्रसाद जी की एक उँगली में भी पीड़ा न हुई, और बहू जी अनुष्ठान समाप्त होने के ५-६ दिन पहले से ही बीमार पड़ गईं।

पर उन्होंने किसी से कहा नहीं, बराबर छिपाये रहीं। स्नान, हविष्यान्न भोजन इत्यादि कठिन नियमों के साथ अनुष्ठान चलाती गईं। पूर्णाहुति होकर जिस दिन कुमारी-पूजन, ब्राह्मण-भोजन इत्यादि था उस दिन उन्हें १०३ डिगरी ज्वर चढ़ा था।

इसके बाद फिर वे उठ नहीं सकीं। आरम्भ में आयुर्वेदिक, फिर एलोपैथिक और अन्त में होमियोपैथिक चिकित्सा हुई, पर अवस्था दिन पर दिन गिरती ही गई।

महात्मा ने कह रक्खा था कि अनुष्ठान समाप्त होने पर भी, जब तक गुप्त जी का अरिष्टकाल बीत न जाय, तुम बताये हुए मन्त्र का जप १०८ बार सवेरे और इतनी ही बार रात्रि में नियमित रूप से करते जाना। इस आज्ञा का बहू जी ने अक्षरशः पालन किया। १०३-१०४ डिगरी ज्वर चढ़ा रहता था, पर वे उठकर, चारपाई से उतरकर, बैठकर, सविधि—अंगन्यास, करन्यास आदि करके दोनों समय जप कर लेती थीं। जब उठने-बैठने से लाचार हो गईं तब महात्मा ने लेटे लेटे ही जप कर लेने की अनु-

मति दी। वह जप वे अपनी मृत्यु के दो दिन पूर्व तक अर्थात् जब तक होश बना रहा, करती गई।

एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बहू जी की बीमारी जब बहुत बढ़ गई थी, उसके कुछ पूर्व से ही महात्मा उनसे कहते आ रहे थे कि चाहो तो अब भी जप करना छोड़ दो। जप छोड़ते ही तुम अच्छी हो जाओगी। पर उन्होंने एक दिन भी जप नहीं छोड़ा। जो आयु पति को दे चुकी थीं उसे वापस लेने का विचार वह सती कैसे करती? एक दिन इन्हीं शब्दों में उन्होंने महात्मा को उत्तर दिया—'महाराज! आपकी कृपा से मैंने उन्हें बचा लिया है, अब तो मैं उनके कन्धों पर हुमचती हुई जाऊँगी।" इस 'हुमचती हुई' को याद करके अब वे महात्मा भी कभी कभी रो पड़ते हैं।

इस प्रयोग की बात सेवा-उपवन के बहुत कम लोग जानते थे। शिवप्रसाद जी को तो उनकी मृत्यु के बाद ही इसका पता लगा। मुझे दो-चार दिन पहले मालूम हुआ था। शिवप्रसाद जी रोकर कहते थे कि मुझे मालूम होता तो कभी न करने देता। उनकी दृष्टि से उनका यह कथन ठीक ही है। पर बहू जी की दृष्टि से उन्होंने जो किया क्या वह उचित नहीं था? उससे उनकी आत्मा की जिस महत्ता का परिचय मिलता है, ईश्वर करे वह भारत के घर घर में दिखाई दे।

महात्मा गांधी की शरण में सरदार पृथ्वीसिंह

सरदार पृथ्वीसिंह को राजनैतिक षड्यन्त्र के एक मामले में लम्बी क़ैद की सज़ा मिली थी। पर सन् १९२२ में वे जेल से निकल भागे थे और अब तक बराबर फ़रार थे। गत १८ मई को उन्होंने महात्मा गांधी की शरण में पहुँचकर अपने हिंसा का मार्ग छोड़कर अहिंसा के उपासक बन जाने की बात कही। महात्मा गांधी ने उन्हें अपने आपको गिरफ़्तार करा देने की सलाह दी, पर उन्हें छुड़ाने का आश्वासन दिया। इस सम्बन्ध में महात्माजी ने जो वक्तव्य दिया है वह यह है—

जिन सरदार पृथ्वीसिंह को बम्बई-उपनगर-ज़िलों के कलेक्टर ने हिरासत में लिया है, उन्हें १९१५ के प्रथम लाहौर-षड्यन्त्र-केस में आजीवन क़ैद की सज़ा मिली थी। इस सज़ा का कुछ हिस्सा उन्होंने कालेपानी (अण्डमान) में काटा। कुछ दिनों के बाद सार्वजनिक आन्दोलन के फल-स्वरूप क़ैदियों का सेटिलमेंट बन्द कर दिया गया। सरदार पृथ्वीसिंह वहाँ से मदरास भेज दिये गये और फिर मदरास से राजमहेन्द्री ले जाये गये। राजमहेन्द्री में जेल-जीवन से ऊब कर इन्होंने दो बार वहाँ से भाग निकलने की कोशिश की। १९२२ में दूसरी बार इन्होंने भागने का जो प्रयत्न किया उसमें इन्हें सफलता मिल गई, और तभी से ये सफलतापूर्वक पुलिस को धोखे में रख रहे थे।

ये अपने प्रयत्नों से बने हुए आदमी हैं। ये एक प्रमुख क्रान्तिकारी हैं और कुछ समय से सशस्त्र क्रान्ति के बारे में अपने विचारों पर पुनर्विचार करते हुए अन्त में अपने मित्रों की सलाह से इस निश्चय पर पहुँचे कि मुझे आत्म-समर्पण कर दें और जैसा मैं कहूँ वैसा करें। इनसे अच्छी तरह बातचीत करके मैंने इन्हें अपनी देखभाल में लेने का निश्चय किया और इनसे कहा कि जीवन का मेरा जो दृष्टिकोण है उसके अनुसार कोई गोपनीयता नहीं हो सकती और अधिकारियों को स्वेच्छापूर्वक आत्मसमर्पण कर देना ख़ुद ही एक प्रकार की देश-सेवा है। मेरी राय में जो ज़ोर था उसे इन्होंने मान लिया।

यह १८ मई के सवेरे मेरे पास आये और १९ मई को मैंने ज़िला-मजिस्ट्रेट को यह लिख भेजा कि सरदार पृथ्वीसिंह ने मुझे आत्म-समर्पण कर दिया है और मैं उनकी रिहाई के बारे में भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी करने-वाला हूँ, लेकिन अगर इस बीच में ज़िला-मजिस्ट्रेट क़ानूनन सरदार पृथ्वीसिंह को मेरे साथ रहने की इजाज़त न दे सकें तो वे उन्हें हिरासत में ले सकते हैं। इस पर ज़िला-मजिस्ट्रेट ने मुझे लिखा कि उन्हें उनको स्वतन्त्र रहने देने का कोई अधिकार नहीं है और पुलिस-सुपरिंटेंडेंट के साथ ख़ुद ही आकर दोपहर के १ बजे जुहू के हमारे निवासस्थान पर उन्होंने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया।

मुझे बताया गया है कि उनके साथ 'ए' क्लास के क़ैदी का-सा व्यवहार किया जायगा। मैंने सरदार पृथ्वी-सिंह से अपनी आत्म-कहानी जो 'रोमांस' से भरी हुई है, लिखने के लिए कहा है। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, वह ऐसे किसी जुर्म के अपराधी नहीं हैं जिसके लिए उन्हें लज्जित होने की ज़रूरत हो। वे अपनी तरुणाई में

कनाडा चले गये थे और वहीं उनमें क्रान्तिकारी विचारों का विकास हुआ। कनाडा के समुद्र-तट से 'कोमागाटामारू' जहाज़ को ग़ैरक़ानूनी और लज्जाजनक तरीक़े से हटाने का दृश्य उन्होंने देखा था और तभी उन्होंने तथा कनाडा-प्रवासी भारतीयों के एक दल ने हिन्दुस्तान लौटकर क्रान्ति करने का निश्चय किया।

यह स्पष्ट है कि जेल से फ़रार होने के बाद उन्होंने अपने को राष्ट्र के लिए कई तरह से उपयोगी बनाया है। वे बड़े हट्टे-कट्टे शरीर के राजपूत हैं। कालेपानी की पाँच महीने की भूख-हड़ताल और पुलिस की ज़्यादतियों को बर्दाश्त करने तथा जेल से भागने में आई हुई चोटों की कमज़ोरी के कोई चिह्न उनके शरीर पर नहीं दिखाई देते। बल्कि वे अव्वल दर्जे के व्यायाम-शिक्षक बन गये और अनेक स्कूलों में व्यायाम सिखाने का काम किया। मालिश करने की कला भी वे जानते हैं। व्यायाम की शिक्षा उन्होंने कई स्कूलों में दी है।

अपने जीवन की उत्तरावस्था में राजनैतिक क़ैदियों की मदद के लिए प्रयत्न करने का मिशन मानो ईश्वर ने ही मुझे सौंपा है। सरदार पृथ्वीसिंह की शीघ्र रिहाई के लिए कोशिश करने का यह काम मेरे इस मिशन में सबसे नया जुड़ा है। उन्होंने (सरदार पृथ्वीसिंह ने) मुझसे कहा है कि वे यह देखने का प्रयत्न कर रहे हैं कि देश की आज़ादी अहिंसा के ज़रिये कितनी मुद्दत में मिलती है। उनका कहना है कि उनके अनेक पुराने क्रान्तिकारी साथियों के विचार भी इसी दिशा में जा रहे हैं। भारत की आज़ादी ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। जिस सचाई के साथ उन्होंने मुझसे बातचीत की उसका मुझ पर इतना असर पड़ा कि जिस रूप में उन्होंने बातें कहीं उन्हें उसी रूप में ग्रहण करने में मुझे क़तई कठिनाई नहीं हुई और स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर की तीर्थयात्रा में इन जैसे आदमियों को अपने साथ तीर्थ-यात्री के रूप में देखना मुझे अवश्य आनन्दप्रद होना चाहिए।

मध्यप्रान्त का शासन-संकट

उपर्युक्त शीर्षक से 'कर्मवीर' में मध्यप्रान्त के कांग्रेसी मंत्रियों की आपसी फूट पर एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

इस समय हमारे मन्त्रिमण्डल में जो झगड़ा है वह कलेजों और कूटनीतियों से निकलकर मैदान में आ गया है। बिहार, युक्तप्रान्त और उड़ीसा के कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल इसलिए सौभाग्यशील हैं कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ दो-दो हाथ किये। और हमारे प्रान्त के मन्त्रीगण इसलिए सौभाग्यशील (!) हैं कि वे आपस में जूती-पैजार करते हैं! हमारे इन दोस्तों के दफ़्तरों की ख़बरें, वादी-प्रतिवादी के रवैये से, कांग्रेस-विरोधी पत्रों में छपती रही हैं। न जाने वे कौन-से कारण हैं जिनके कारण सरकारी प्रान्तीय विभागों की पेंदी की ख़बरें ग़ैर-कांग्रेसी पत्रों को पहले पहुँचती हैं।

हमें पूरी ख़बरें तो मालूम नहीं, किन्तु अब सुनते हैं, प्रान्त के हिन्दी-भाषी और मराठी-भाषी लोगों के पक्षपात के नाम पर टुकड़े किये जाने की अपीलें हो रही हैं। हम स्वयं उन लोगों में से हैं, जिन्होंने महाकोशल प्रान्त का अलग निर्माण करने में बल लगाया। किन्तु क्या शासन में भी हम हिन्दी-भाषी और मराठी-भाषी का ओछावाद बोकर प्रान्त के सौभाग्य के दिन देखना चाहते हैं? यदि एक मुँह से हम हिन्दी और मराठी-भाषियों के भेद की बात लोगों से कहते हैं तो फिर हिन्दू-मुसलमानों के मेल की बातें कहने का हमें क्या अधिकार रह जायगा?

क्या हम मुसलमानों और हरिजनों से कहना चाहेंगे कि भारतवर्ष में हिन्दी-मराठी के झगड़े तो रहें, किन्तु हिन्दू-मुसलमानों, सवर्णों-हरिजनों के झगड़े न होने पावें। हमारी इसी मनोवृत्ति ने माननीय शरीफ़ के प्रकरण को इतना बढ़ा दिया और सारे भारत में मध्यप्रान्त की इज़्ज़त को अब हम आपस के जूती-पैजार से बरबाद करना चाहते हैं। कांग्रेसी अख़बार ज़हर के घूँट पीकर इसी लिए बैठे रहे कि वे ऐसी कोई बात न लिखें जिससे उनका मन्त्रि-मण्डल अपमानित हो, किन्तु अपने और प्रान्त के अपमान का ढोल जब मिनिस्टरों ने अपने ही गले में टाँग लिया है तब महाकोशल और मध्यप्रान्त में कांग्रेस की रक्षक शक्तियाँ यदि इस समय चुप रहीं तो आगे आनेवाली पीढ़ियाँ उन्हें कोसेंगी कि जिस मिनिस्टरी के लोगों ने अपने अपने रिश्तेदारों के, अपने मित्रों के और अपनी

जाति के स्वार्थों को आगे बढ़ाकर प्रान्त में कांग्रेस की जड़ काटी उनके ख़िलाफ़ अपने स्वार्थ दब्बूपन या मिनिस्टरों से लाभ उठाने की भावना के कारण लोगों ने चुप रहकर कांग्रेस का अपने देखते-देखते सर्वनाश होने दिया।

हम प्रान्त के मित्रों से निवेदन करते हैं कि वह प्रान्त में बोये जानेवाले फूट के बीज बोने में सहायक होकर प्रान्त का मुँह काला न होने दें और देश के उज्ज्वल नाम पर दाग़ न लगा लें। प्रान्त का हित चाहनेवाले लोगों का काम प्रान्त के विक्षुब्ध वातावरण को और भी सर्व-नाशक बनाना नहीं, किन्तु उसे समझौता, स्नेह और भाईचारे की भावना से शान्त बनाना है। यदि आज कांग्रेस-मिनिस्टरी में कुछ परिवर्तन होता है तो प्रान्त विश्वास करे कि आगे इससे भी कड़वे परिवर्तन होंगे। हम नहीं समझते कि, कांग्रेस की शक्ति, केवल इन्हीं तमाशों को देखने के लिए है या इन बुराइयों का इलाज करने के लिए भी है। हम तो हिन्दू-मुसलिम, हिन्दी-मराठी, सवर्ण-हरिजन, समस्त साम्प्रदायिकता के विरोधी हैं; क्योंकि जिस तरह हम अविभाज्य भारत के हिमायती हैं, उसी तरह हम अपने प्रान्तीय दायरे में बलवान् ब्रिटिश शक्ति के मुक़ाबिले में प्रान्तीय शक्ति को अविभाज्य देखना चाहते हैं। हमने माननीय शरीफ़ के प्रकरण को, ज़रूरत से अधिक ज़ोर देकर, वर्किङ्ग कमेटी तक पहुँचाया है, जिसका परिणाम देश की मुसलिम जनता पर शायद ही अच्छा पड़े। यदि इसी समय को, हमने हिन्दी-मराठी के झगड़ों के लिए भी चुना तो हम लोकमान्य और गांधी जी के स्कूलों के बीच ग़लत-फ़हमी से रहनेवाले भेदों को अपनी अदूरदर्शिता से और भी कड़वा बना देंगे; और उन लोगों को दण्ड देंगे जिन्होंने महाराष्ट्र समाज के लड़ाके मित्रों को कांग्रेस के झण्डे के नीचे श्रद्धा, साहस और आदर से आमन्त्रित किया। हम प्रधान मन्त्रित्व भी जब बदलें जब इलज़ाम लगाने का भोंडा प्रदर्शन दोनों ओर से न हो, किन्तु भाईचारे के स्नेह के साथ, कांग्रेस के सारे परिवर्तन, यात्रा में बदली जानेवाली रेलगाड़ियों की तरह शान्ति से होने चाहिए। यदि हमने शान्ति और दूरदर्शिता का पथ छोड़ा तो हम कांग्रेस जैसी महान् संस्था का शासन शेष साढ़े तीन वर्षों के लिए ख़तरों से भरा हुआ कर देंगे। अतः हमारी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि जो क़दम उठे, साम्प्रदायिकता से परे और झगड़े बन्द करनेवाला उठे। यों तो कांग्रेस के निर्णय पर हमारा मस्तक श्रद्धा से झुका रहेगा।

सरकार के ऋण

अखिल भारतीय मारवाड़ी-सम्मेलन के सभापति के आसन से सेठ पद्मपत जी सिंहानिया ने जो महत्त्व-पूर्ण भाषण किया है उसमें उन्होंने सरकार के ऋण पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके भाषण का वह अंश यह है—

इनकम-टैक्स-बिल की अनुभव-पूर्ण और उपयोगी आलोचना से सर जेम्स ग्रिग चिढ़ जाते हैं। किन्तु वे उस शासक-यंत्र के पुर्ज़े हैं जिसने हमारे भारतीय साधनों और सम्पत्तियों को ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के लिए चूस डाला है। उदाहरण के लिए भारतीय विदेशी ऋण को ही लीजिए। मिस्टर ए० जे० रेज़मैन के ही कथनानुसार भारत-सरकार पर सूद देनेवाला बोझ ७३०·२४ करोड़ है। इसमें से ४३७·८८ करोड़ तो बाज़ार से उगाहा हुआ क़र्ज़ है और १०२·२८ करोड़ प्राविडेंट-फ़ण्ड मद का है। यह स्वदेश का ऋण हुआ। विदेशी—अर्थात् इँग्लेंड के प्रति हमें ३५८·७८ मिलियन पौंड चुकाना है। पावना-मद में स्वदेश में ६८४·३१ करोड़ और इँग्लेंड के प्रति १९·३७ मिलियन स्टर्लिंग है। इसलिए देना-पावना सब मिलाकर कुल २०४·३६ करोड़ रुपये का पलड़ा हमारे सिर पर रह जाता है। इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि भारत को एक बहुत बड़ी रक़म ब्रिटेन को ही चुकानी है और ऋण-सूद तथा अन्य ज़िम्मेदारियों की भरपाई में हमें लगभग ६५ करोड़ रुपया हर साल—अर्थात् २) रुपया फ़ी व्यक्ति पीछे औसतन देना पड़ता है। अगर उस वस्तु को जिसे हम ऋण कहते हैं तथा अन्य ज़िम्मेदारियों को मिला दें तो प्रत्येक भारतीय ११००) के लगभग मक़रूज़ है। जब हम ३०) साल की हर एक भारतीय की आमदनी कूतते हैं तब २) हर साल ऋण के मद में देना और भारत से सोने के निर्यात में ५ प्रतिशत का घाटा उठा कर सात प्रतिशत आमदनी चली जाती है—या यों कहिए कि दो आना फ़ी रुपया नष्ट हो जाता है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पूर्व के काले पन्नों को इतिहास से निकाल देने पर ब्रिटिश शासन की सत्ता कम-से-कम सौ वर्ष पुरानी है। यदि हमको ६५ करोड़ रुपया हर साल क़र्ज़ की अदायगी में—उसके सूद तक ही पहुँच सकने की ज़िम्मेदारी पूरा करने इत्यादि में बाहर भेजना पड़ता है तो अनुमान लगाइए कि हमारा कितना भयंकर शोषण हो रहा है! १००) का ६ प्रतिशत दर-सूद के हिसाब से १०० वर्ष में एक लाख रुपया होता है। इस हिसाब से ६५ करोड़ का क्या होगा—यह सोचने में कल्पना भी भयभीत होकर हार मान लेगी। ब्रिटिश सरकार की हमारे ऊपर उदारता का यही पुरस्कार है।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल 'प्रताप' में लिखते हैं—

एक दृष्टि से तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बढ़ रहे हैं, लेकिन जाति के अन्तःस्थल में नवचेतना का संचार हो रहा है।

इसका समर्थन हमें इस बात से मिलता है कि किसान और मज़दूर-आन्दोलन में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना हिन्दू और मुसलमान मिलकर कर रहे हैं। साम्प्रदायिकता को दूर करने का श्रेष्ठ उपाय यह है कि राष्ट्रीय आन्दोलन को ऐसे उच्च स्तर पर पहुँचाया जाय जिसके प्रभाव से समस्त संकीर्ण मनोवृत्तियाँ अपने आप ही दब जायँ। सन् १९०७ और १९०८ में विदेशियों के बहकाने से बङ्गाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं के ऊपर यथेष्ट अत्याचार किया। लेकिन जब क्रान्तिकारी-आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा तब यह सब साम्प्रदायिक झगड़े कुछ दिन के लिए दब गये। आज भी यदि राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नवीन प्रेरणा से नये रास्ते में ले जाकर सजीव करें तो साम्प्रदायिक दंगे अपने विष को अधिक दूर नहीं फैला सकते। अभी पाण्डीचेरी में गोली का सामना करते हुए भी वहाँ का मज़दूर-वर्ग अद्भुत साहस के साथ एक नवीन प्रेरणा लेकर आगे बढ़ रहा है। इसके पहले भी गोली की बौछारों का सामना ये लोग कर चुके थे। इनमें साम्प्रदायिकता की बू छू तक नहीं गई। इस तरह से अगर आज हम नवीन आन्दोलन की सृष्टि कर सकते हैं और यदि ऐसे आन्दोलन में भाग लेते हुए मुस्लिम सम्प्रदायों में भी त्याग और वीरत्व का दृष्टान्त हमें मिलता रहे तो किसी की ताक़त नहीं है कि साम्प्रदायिकता की आड़ में हमारे राष्ट्रीय जीवन में किसी भेद-भाव को पैदा कर सके। हमें भूलना नहीं चाहिए कि सन् सत्तावन में हिन्दू और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा लगाकर किस बहादुरी से दुश्मनों का सामना किया था। इसी बात का उल्लेख करते हुए मैलेसन साहब ने अपनी लिखी हुई सिपाही-युद्ध के इतिहास नामक ग्रन्थ में इस बात की चेतावनी दी है कि सिपाही-विद्रोह से हमें यह सबक़ सीखना है कि मौक़ा आने पर हिन्दू और मुसलमान मिलकर विदेशियों का सामना कर सकते हैं। कांग्रेस के बहुत-से नेता इस बात का महत्त्व नहीं समझ रहे हैं। इसलिए केवल पार्लियामेंटरी आन्दोलन की तरफ़ ध्यान रखते हुए क्रान्ति के मार्ग को भूलकर जिन्ना जैसे साम्प्रदायिक नेताओं के साथ समझौता करने में पड़े हुए हैं। ऐसा करने में राष्ट्रीयतावादी मुसलमानों की हम उपेक्षा करते हैं और साम्प्रदायिक संस्थाओं को प्रोत्साहन देते हैं। सौदे की मनोवृत्ति से राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता।

सरकारी कर्मचारी और रिश्वत

'भारत' एक सम्पादकीय लेख में लिखता है—

सरकारी कर्मचारियों-द्वारा रिश्वत लिये जाने की प्रथा किसी भी सभ्य देश की सरकार के लिए एक कलंक की ही बात हो सकती है। भारत के अनेक सरकारी महकमों में रिश्वत चलती है, साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी महकमों में अधिकांश कर्मचारी या किसी महकमे के सभी कर्मचारी रिश्वत लेते हैं। जहाँ रिश्वत चलती है, वहाँ से उसका अन्त करने का प्रयत्न एक प्रशंसनीय प्रयत्न ही कहा जा सकता है। हमारी प्रान्तीय सरकार इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील दिखाई पड़ती है, और इसके लिए वह प्रशंसा का पात्र है। उसने कुँवर सर महाराजसिंह की अध्यक्षता में जो जाँच कमिटी नियुक्त की थी उसने अपनी

रिपोर्ट पेश कर दी है। हमें विश्वास है कि उसकी सिफ़ारिशों को कार्य-रूप में परिणत करने की कोशिश की जायगी और इससे रिश्वतख़ोरी में कुछ न कुछ कमी भी होगी। परन्तु अगर कोई यह आशा करता हो कि चूँकि अब सरकार कांग्रेसी है या चूँकि एक कमिटी ने बहुसंख्यक सिफ़ारिशें कर दी हैं, इसलिए अब रिश्वतख़ोरी का ख़ात्मा ही हो जायगा तो हम तो यही कहेंगे कि वह स्वप्नलोक में रहता है। इससे पहले भी रिश्वतख़ोरी का अन्त करने की कोशिश की गई है, परन्तु जितनी सफलता हुई वह काफ़ी नहीं समझी गई। इस बार मुमकिन है कि परिस्थिति अधिक अनुकूल होने के फल-स्वरूप कुछ अधिक सफलता प्राप्त हो जाय, परन्तु इस बुराई का पूरी तरह से अन्त हो सकना तो अभी असम्भव ही है। सरकार यह नहीं चाहती और जनता भी यह नहीं चाहती कि कोई आदमी रिश्वत दे या कोई सरकारी कर्मचारी रिश्वत ले, परन्तु कठिनाई तो यह है कि न रिश्वत देनेवालों का ही अभाव है और न लेनेवालों का ही। जहाँ ज़बर्दस्ती रिश्वत लेने की कोशिश की जाती हो, वहाँ तो सरकार तथा लोकमत को उसे रोकने में सफलता मिल सकती है; परन्तु जहाँ देनेवाला अपने स्वार्थ के कारण ख़ुशी से देता हो वहाँ तो उसे रोकना प्रायः असम्भव ही होता है। जहाँ लेनेवाला भी छिप कर लेता है और देनेवाला भी छिपकर देता है, वहाँ उन दोनों में से तो किसी से यह आशा की नहीं जा सकती कि वे अधिकारियों को सच्ची बात बतायेंगे और किसी तीसरे व्यक्ति के सिर उसे प्रमाणित कर सकना आसान नहीं होगा। और अगर तीसरे आदमी की बात बिना काफ़ी प्रमाण के मान ली जाय तो इस बात की काफ़ी सम्भावना हो सकती है कि जिस ईमानदार कर्मचारी से भी कुछ लोग नाराज़ हों उसे वे हानि पहुँचा सकें। स्वेच्छा से दी जानेवाली रिश्वत के मामले में देनेवाला प्रायः उतना ही अपराधी होता है जितना कि लेनेवाला, और अगर किसी समाज में ऐसे आदमियों की संख्या बहुत काफ़ी है जो रिश्वत देने में संकोच का अनुभव नहीं करते तो कर्मचारियों में भी लेनेवालों का अभाव नहीं हो सकता। रिश्वतख़ोरी का पूरी तरह अन्त तो तभी हो सकता है जब समाज में ईमानदारी की भावना इतनी विकसित हो जाय कि कोई रिश्वत देने की बात न सोचे और अगर कोई ऐसा करे तो उसे समाज घृणा की दृष्टि से देखे। हाँ, सरकार तथा जनता के मिलकर कोशिश करने से मौजूदा रिश्वतख़ोरी में कुछ कमी ज़रूर हो सकती है और इसी आशा के साथ हम कमिटी की सिफ़ारिशों का स्वागत करते हैं। कमिटी की कुछ सिफ़ारिशें ऐसी हैं जिनकी व्यावहारिक उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता, साथ ही कुछ ऐसी अव्यवहार्य भी हैं कि थोड़े ही समय में सम्भवतः उनको अधिकारीगण भूल जायँगे और कुछ ऐसी भी हैं जिन पर अगर वास्तव में अमल करने की कोशिश की गई तो उनसे ईमानदार कर्मचारियों को हानि भी पहुँच सकती है। इसलिए हम यही आशा कर सकते हैं कि सिफ़ारिशों को कार्य-रूप में परिणत करते समय उत्साह के साथ ही समझदारी से भी काम लिया जायगा।

सम्पादकीय नोट

योरप—युद्ध के पथ पर

योरप की राजनीति में स्थिरता नहीं आ रही है, वरन वह अधिकाधिक चंचल ही होती जा रही है। इस बात का समर्थन वहाँ की घटनायें स्पष्ट रूप से कर रही हैं। आस्ट्रिया का प्राचीन स्वतन्त्र राज्य जर्मनी का एक प्रदेश बन गया है। उधर राष्ट्र-संघ की उपेक्षा कर ब्रिटेन ने इटली से समझौता कर लिया है। यह देखकर फ़्रांस भी उससे मेल-जोल कर लेने को उत्सुक हुआ है। परन्तु इटली मेल करने के स्थान में उससे झगड़ा बढ़ाना चाहता है। ब्रिटेन इस बात का यत्न कर रहा है कि योरप की शान्ति भंग न हो। परन्तु लक्षण उसके अनुकूल नहीं हैं। बात यह है कि एक ओर हिटलर ज़ेचोस्लेवेकिया के उस भाग को भी जर्मनी में मिला लेना चाहते हैं, जहाँ ४० लाख जर्मनों की ठोस आबादी है, उधर दूसरी ओर इटली यह चाहता है कि सारे स्पेन पर जनरल फ़्रेंको का एकच्छत्र राज्य क़ायम हो जाय। पर इन दोनों बातों की पूर्ति होने में अभी भारी बाधायें हैं। ज़ेचोस्लेवेकिया की रक्षा के लिए तो फ़्रांस और रूस कमर कसे तैयार हैं। इनके सिवा ब्रिटेन भी धमकी दे रहा है कि वह भी इस सम्बन्ध में उपेक्षा का भाव नहीं ग्रहण करेगा। स्पेन के मामले में फ़्रांस और रूस यह चाहते हैं कि जनरल फ़्रेंको के स्थान में वहाँ की प्रजातन्त्र-सरकार की ही विजय हो। इस प्रकार योरप के दो शक्तिशाली समूहों में भारी मतभेद बना हुआ है। ऐसी दशा में इस बात की कैसे आशा की जा सकती है कि योरप में युद्ध नहीं होगा, और सो भी उस अवस्था में जब वहाँ के सभी राष्ट्र सब काम छोड़कर एकमात्र सामरिक बल बढ़ाने के कार्य में ही संलग्न हैं। यह सच है कि पिछले दिनों ब्रिटेन ने अलग होकर इटली से मेल करके युद्ध की सम्भावना को बहुत कुछ कम कर दिया है, परन्तु उसका जैसा प्रभाव पड़ना चाहिए था, नहीं पड़ा, क्योंकि ज़ेचोस्लेवेकिया के जर्मन आस्ट्रिया की घटना के कारण जर्मन-राज्य में मिल जाने के लिए अधिक उत्सुक हो उठे हैं। यद्यपि वहाँ की ज़ेच-सरकार ने अपने जर्मन प्रजाजनों को सभी विभागों में उनके स्वत्व और अधिकार प्रदान करने की घोषणा कर दी है, तथापि वे इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। वहाँ की स्थिति नाज़ुक हो गई है और उस सम्बन्ध में अन्य राष्ट्र भी अधिक चिन्तित हुए हैं और इस प्रयत्न में हैं कि ज़ेचोस्लेवेकिया के जर्मनों का मामला आपस में ही शान्तिपूर्वक निपट जाय। परन्तु जर्मनी की सरकार इस सम्बन्ध में अपने हृदय का भाव नहीं प्रकट कर रही है, यह नहीं जान पड़ रहा है कि इस मामले में वह कैसा रुख़ ग्रहण करेगी। तथापि यह तो प्रकट ही है कि हिटलर इस बात का निश्चय किये हुए हैं कि वे उन सभी भू-भागों को जर्मनी के अन्तर्भुक्त कर लेंगे जहाँ जर्मन लोग बसे हुए हैं। ऐसी दशा में इस प्रश्न का निर्णय सरलता से नहीं होगा, जैसा कि लोग समझ रहे हैं। चाहे जो हो, योरप की परिस्थिति में जैसा समझा गया था, वैसा सुधार नहीं हुआ है और यह प्रकट है कि वहाँ किसी भी समय किसी भी साधारण बात को लेकर युद्ध की घोषणा हो सकती है, क्योंकि यह तो डंडावाद का युग है, जिसकी लाठी उसकी भैंस का ज़माना है। इटली के मुसोलिनी अपने डंडे के ज़ोर से ही अबीसीनिया पर अधिकार कर ही चुके हैं और अब भूमध्यसागर पर अपनी सत्ता क़ायम करने में संलग्न हैं। उधर जापान चीन के महाराज्य का एक बहुत बड़ा भाग हड़प चुका है और शेष भी हथियाता जा रहा है। इधर योरप में हिटलर इन दोनों डंडावादी देशों को पीछे ढकेलकर आगे आ खड़े हुए हैं और एक ही छलाँग में आस्ट्रिया को इस प्रकार निगल गये हैं कि एक बूँद रक्त तक ज़मीन पर नहीं गिरने पाया। अबीसीनिया, चीन और आस्ट्रिया संसार के प्राचीन ऐतिहासिक राज्य थे, वे ही अपनी युगयुगान्तर की स्वाधीनता से आज वञ्चित हो रहे हैं।

इस प्रकार योरप में तथा एशिया में भी प्रबल डंडावादी

राज्य अपनी शक्ति का नँगनच कर रहे हैं और अपने से निर्बल राज्यों को सता रहे हैं। स्वाधीनता, न्याय, शान्ति, व्यवस्था जैसी बातों का एक प्रकार से लोप होता जा रहा है और जो राष्ट्र इन उच्च सिद्धान्तों के प्रवर्तन के लिए अभी तक अपने अस्तित्व तक को बाज़ी पर लगाते आये थे वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो बैठे हैं और उनका कुछ किया नहीं हो रहा है। उनकी इस तटस्थता या असमर्थता से तो यही जान पड़ता है कि संसार में एक बार फिर निरंकुशता का प्राबल्य होगा और प्रजातंत्र की उच्च भावनाओं का बुरी तरह उपमर्दन होगा।

——

देश के दो महान् विद्वानों का निधन

पिछले महीने में देश के दो महान् विद्वानों का निधन हो गया। इनमें से सर मुहम्मद इक़बाल साहब तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के महान् कवि थे। अपनी श्रेष्ठ कविता के द्वारा उन्होंने मुसलमानों में, विशेषकर भारतीय मुसलमानों में जो अभिनव जाग्रति पैदा की है और उनमें इस्लामी संस्कृति के प्रति इस विज्ञान के युग में जो व्यापक अनुराग पैदा किया है उसके लिए इक़बाल साहब का नाम इस्लामी साहित्य के क्षेत्र में अमर रहेगा। यही वे व्यक्ति हैं जिन्होंने सन् १९०४ के स्वदेशी-आन्दोलन के ज़माने में 'हिन्दुस्तान हमारा' का अमर गीत गाया था और जो आज भी भारत का राष्ट्रीय गीत बना हुआ है। प्रारम्भ में वे उर्दू में कविता लिखते थे और सो भी राष्ट्रीय भावनों से ओत-प्रोत। परन्तु बाद को वे फ़ारसी में लिखने लगे और राष्ट्रीयता के स्थान में इस्लामी संस्कृति का राग गाने लगे। अपनी इसी विचारधारा की बदौलत उनकी विदेशों में प्रसिद्धि हुई और विद्वानों ने उन्हें वर्तमान युग के एक महान् कलाकार के रूप में ग्रहण किया। अपनी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण यद्यपि इस समय वे हिन्दुओं में पहले की भाँति लोकप्रिय नहीं थे, तथापि अपनी अमर रचनाओं के द्वारा एक महान् कलाकार के रूप में वे अपने विरोधियों में भी सदैव आदर के पात्र बने रहेंगे। उनके दिवंगत होने से इस देश की वास्तव में भारी क्षति हुई है।

दूसरे सज्जन श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य हैं। ये भी आजीवन आर्यों की संस्कृति के प्रचार के कार्य में ही निरत रहे। परन्तु इन्होंने कल्पना के स्थान में इतिहास का मार्ग ग्रहण किया। भारत के मध्यकालीन युग का खोजपूर्ण इतिहास लिखकर इन्होंने हिन्दुओं को उनकी अधोगति का बोध कराया, साथ ही महाभारत की आलोचना लिखकर उन्हें उनकी संस्कृति का परिचय दिया। ये भी आजीवन अपने इसी प्रिय कार्य के सम्पादन में संलग्न रहे और इतिहास के विद्वानों ने इनकी मौलिक सूझ-बूझ का लोहा माना। इनके स्वर्गारोहण से वास्तव में इतिहास का एक ऐसा विद्वान् उठ गया है जो आर्य-संस्कृति का एक मार्मिक विद्वान् ही नहीं था, किन्तु जिसने उसका अपनी अमूल्य रचनाओं से यथासम्भव प्रचार भी किया। आज इनका स्वर्गवास हो जाने से हिन्दू-जाति के एक महान् शुभचिन्तक का अभाव हो गया है।

——

हिन्दू-मुस्लिम-एकता का प्रयत्न

महात्मा गान्धी ने हिन्दू-मुस्लिम-समझौते के लिए जो प्रयत्न किया है वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। कुछ लोगों का कहना है कि यह अवसर इस प्रश्न के लिए उपयुक्त नहीं है। परन्तु ऐसा समझना भूल है। इस प्रश्न के हल के लिए यदि कोई उपयुक्त समय हो सकता है तो वह यही है। उन्हें इस बात की ख़बर ही नहीं है कि साम्प्रदायिक नेताओं के प्रचार से हिन्दू-मुसलमानों में भीतर ही भीतर भयानक द्वेषाग्नि भड़क उठी है और इसके परिणाम-स्वरूप देश की इन दो प्रधान जातियों के बीच मतभेद की खाई गहरी होती जा रही है। इसलिए यह आवश्यक था कि उसके अलङ्घ्य या दुर्लङ्घ्य हो जाने के पहले ही वह जल्दी से जल्दी पाट ली जाय। यही सब सोच-समझकर महात्मा जी ने इस काम को अपने हाथ में लिया और बिना किसी तरह के विचार के मुस्लिमलीग के प्रधान श्री मुहम्मद अली जिन्ना के घर जाकर समझौते के सम्बन्ध में बातचीत की, जो अब व्यवस्थापूर्वक चल रही है। महात्मा जी के सीमाप्रान्त के दौरे से लौट आने पर उसी सिलसिले में वर्तमान राष्ट्रपति श्रीयुत सुभाषचन्द्र वसु ने भी श्री जिन्ना से मिलकर बातचीत की, और वर्धा लौटने के दिन महात्मा गान्धी फिर जिन्ना साहब से मिले। इस महत्त्वपूर्ण बातचीत में क्या कहा गया और क्या तय हुआ, यह नहीं प्रकट हुआ है। अब ५ जून को मुस्लिम

लीग-कौंसिल की जो बैठक श्री जिन्ना के यहाँ होगी उसमें वे मुसलमान नेताओं से विचार-विनिमय करेंगे। कांग्रेस के नेता तो बम्बई में उपस्थित थे ही, अतएव उनकी सलाह से कांग्रेस की ओर से बातचीत की जा चुकी है, पर मुस्लिम नेता नहीं थे, अतएव उनकी भी सलाह ले लेनी आवश्यक है। ५ जून को वह सलाह प्राप्त हो जायगी। आशा है कि कांग्रेस के नेताओं की तरह मुसलमान नेता भी एक राय होकर इस बार कोई स्थायी समझौता कर लेने के लिए आगे होंगे।

——

ब्रिटेन और भारत

ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान सरकार का मनोभाव इस समय सर्वथा शान्तिमूलक जान पड़ता है। आयर्लैंड से भी उसने हाल में मेल कर लिया है। आयर्लैंड से उसकी जो तनातनी थी वह अब दूर हो गई है और उनमें ऐसा समझौता हो गया है कि अब वहाँ वैसी अरुचिकर एवं भयंकर परिस्थिति होने की आशंका नहीं रह गई है। इसी प्रकार भारत के प्रति भी ब्रिटेन काफ़ी उदारनीति का व्यवहार कर रहा है। संयुक्त-प्रान्त, बिहार और उस दिन उड़ीसा के मंत्रिमंडलों ने गवर्नर से मतभेद हो जाने पर जब पदत्याग करने की धमकी दी तब अँगरेज़-सरकार ने कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की ही बात रक्खी। और पिछले दिनों महात्मा गान्धी और वायसराय महोदय में जो वार्तालाप हुआ है उसका अपना अलग महत्त्व है। वायसराय महोदय बिलायत जानेवाले हैं। उदार-दल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर हर्बर्ट सेमुअल ने अभी से यह कहना शुरू किया है कि भारत को 'डोमीनियन स्टेटस' देना ही चाहिए। यह सब परिस्थिति वास्तव में महत्त्वपूर्ण है और ऐसा जान पड़ता है कि फ़ेडरेशन की स्थापना के पहले अँगरेज़-सरकार ऐसी कोई कार्रवाई करना चाहती है ताकि फ़ेडरेशन की स्थापना में कांग्रेस की ओर से कोई बाधा न डाली जाय। ब्रिटेन के वर्तमान राजनीतिज्ञों का इस समय ऐसा ही शान्तिपूर्ण मनोभाव है। वे यही चाहते हैं कि उनके साम्राज्य के देशों में शान्ति का वातावरण ही स्थापित रहे ताकि वे अपनी सामरिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के कार्य में निश्चिन्त भाव से संलग्न रहें। ऐसी अवस्था में यदि यह आशा की जाय कि अँगरेज़-सरकार भारतीयों की वास्तविक माँगों की पूर्ति कर देने में ज़रा भी आगा-पीछा न करेगी तो कोई असम्भव कल्पना न होगी। अँगरेज़ राजनीतिज्ञों से यह बात छिपी नहीं है कि इस समय कांग्रेस का बल बहुत बढ़ा-चढ़ा है। सीमाप्रान्त के दौरे में महात्मा गान्धी का जो असाधारण स्वागत हुआ है उससे यह भले प्रकार प्रकट हो गया है कि सीमाप्रान्त के मुसलमानों में कांग्रेस के प्रति कितना अधिक अनुराग है। इसके सिवा कांग्रेस ने मुस्लिम-लीग के प्रधान श्री मुहम्मद अली जिन्ना से साम्प्रदायिक समझौता का प्रस्ताव करके भी यही प्रकट किया है कि उसने अपनी ज़िम्मेदारी को भले प्रकार महसूस कर लिया है और वह पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिए जहाँ अपने मन्त्रि-मण्डलों-द्वारा शासित प्रान्तों में वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना के काम में संलग्न है, वहाँ वह केन्द्रीय शक्ति को भी अपने हाथ में करने की चिन्ता में है। और यह सब अँगरेज़-सरकार को ज्ञात है। फिर जैसी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इस समय हो गई है उसको ध्यान में रखते हुए वह भारत को असन्तुष्ट नहीं रख सकती। ऐसी स्थिति में तो यही प्रतीत होता है कि अँगरेज़-सरकार भारत के सम्बन्ध में कोई महत्त्व की कार्रवाई करने की तैयारी कर रही है। ऐसी स्थिति में यदि इधर साम्प्रदायिक समझौता भी हो गया तो कांग्रेस के पौ बारह ही समझिए। और यह देश के लिए बड़े महत्त्व की बात होगी।

——

चीन और जापान

समाचार-पत्रों के पाठकों को ज्ञात ही है कि इस समय चीन की सेनायें जापानियों का दृढ़ता से सामना कर रही हैं और उन्होंने जापानियों को शंघाई और नानकिंग के प्रदेश में पिछले दिनों बार-बार हराया है। कहा जाता है कि चीन को बाहर से काफ़ी युद्ध-सामग्री प्राप्त हो गई है, चीनी सोवियट-प्रदेशों की सारी सेनायें राष्ट्रीय सरकार की मदद को आ गई हैं तथा विदेशी युद्ध-कला-विशारदों की सलाह से चीनी युद्ध कर रहे हैं। परन्तु सबसे अधिक महत्त्व की बात यह बताई जा रही है कि आज सारा चीन एकता के सूत्र में बँध गया है और उनमें अभूतपूर्व देश-भक्ति का भाव जाग्रत हो गया है। इसी से सारे प्रान्तों के शासक, यहाँ तक कि बोलशेविक प्रान्तों के शासक भी तन,

मन और धन से आक्रमणकारी जापान के मुक़ाबिले में राष्ट्रपति च्यांगकैइ-शेक के नायकत्व में समवेत हो गये हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या चीन का यह दृढ़तापूर्ण विरोध जापानियों को उन प्रान्तों से निकाल बाहर करने में समर्थ होगा जिनको उसने अपने अधिकार में कर लिया है। अबी-सीनिया की लड़ाई में हम देख चुके हैं कि एक बार इटली को भी युद्ध-क्षेत्र से विमुख होना पड़ा था, परन्तु बाद को जो हुआ वह सब आज हम देख रहे हैं। ऐसी दशा में चीन की विजय के इन संवादों का अभी कोई मूल्य नहीं है। अभी तक जापान समरक्षेत्र में पूर्ववत् डटा ही नहीं हुआ है, किन्तु और भी भीषण रूप से युद्ध करने में संलग्न है। जापान से अकेला चीन और सो भी वैज्ञानिक साधनों से रहित चीन, कब तक मोहरा ले सकेगा। अतएव उसकी हाल की जीतों से अभी प्रसन्न होने का अवसर नहीं है।

भारत में प्रान्त-विभाजन

भारत इस समय जिन प्रान्तों में विभाजित है उनका यह विभाजन किसी विशेष सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है। भारत का जो जो विभाग अँगरेज़ों के अधिकार में जैसे जैसे आता गया, शासन की सुविधा के अनुसार प्रान्तों का संगठन होता गया। फलतः जिन भौगोलिक तथा स्थानीय संस्कृतियों के अनुसार भारत भिन्न प्रान्तों में विभक्त था वे छिन्न-भिन्न हो गये। यही सब देखकर कांग्रेस ने भाषा के आधार पर भारत को नये प्रान्तों में विभक्त किया है। यदि सरकार उसके विभाजन को स्वीकार कर ले तो इस दिशा की एक हानिकर भूल का संशोधन ही नहीं हो जायगा, किन्तु उससे लोक का बड़ा हित भी होगा। नये सुधारों के जारी करते समय सरकार ने उड़ीसा और सिन्ध को तो स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया, परन्तु ऐसे ही अन्य प्रान्तों की उसने सुध न ली। इस समय आन्ध्र और कर्नाटक में इस सम्बन्ध में आन्दोलन हो रहा है। मदरास-असेम्बली में तो आन्ध्र को एक अलग प्रान्त बना देने का प्रस्ताव भी पास हो गया है। परन्तु अँगरेज़-सरकार कदाचित् ऐसा कोई परिवर्तन करने को अभी तैयार नहीं है, क्योंकि हाउस आफ़ कामन्स में उस दिन लार्ड स्टेनले ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि भारतमंत्री लार्ड ज़ेटलैंड नये प्रान्तों का निर्माण इस समय भारत के लिए अहितकर समझते हैं। जनता जिस बात को चाहती है और जिसके हो जाने में वह अपना हित समझती है उसको भारतमंत्री देश के लिए अहितकर बता रहे हैं। ख़ूब! ज़बर्दस्त का ठेंगा सिर पर इसी को कहते हैं।

देशी राज्यों में असन्तोष की लहर

नये शासन-विधान के कार्य में परिणत हो जाने तथा कांग्रेस के उससे सहयोग करने से ब्रिटिश भारत में राज-नैतिक संघर्ष शान्त-से हो गये हैं। परन्तु जान पड़ता है कि उनकी छूत देशी राज्यों को लग गई है, और उनमें अब ऐसे राज्य कम ही हैं, जहाँ प्रजावर्ग में असन्तोष और विक्षोभ का वातावरण न दिखाई देता हो। हैदराबाद-राज्य में इसी अप्रैल में साम्प्रदायिक दंगा हो चुका है। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यों में राजनैतिक आन्दोलन पहले से जारी है; और हाल में मैसूर जैसे सुव्यवस्थित और सुशासित राज्य में तो कांग्रेस के झंडा लगाने की बात पर भारी अनर्थ तक हो गया है। यह सन्तोष की बात है कि कांग्रेस के नेताओं के बीच में पड़ने से सारी परिस्थिति राज्य के उच्चाधिकारियों की समझ में आ गई और प्रधान मंत्री ने ही नहीं, स्वयं मैसूर के महाराज बहादुर ने भी उस दुर्घटना के लिए खेद प्रकट किया और वहाँ की सरकार ने सभी गिरफ़्तार किये गये लोगों को छोड़ भी दिया, साथ ही समझौते की वे शर्तें भी मान लीं जो कांग्रेस की ओर से उपस्थित की गई थीं। इस घटना से प्रतीत होता है कि देशी राज्यों की स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया है और कतिपय राज्यों में भीतर ही भीतर राज-नैतिक आन्दोलन की आग सुलग ही नहीं रही है, किन्तु दो-एक राज्यों में वह भभक भी उठी है। इसका सबसे ताज़ा उदाहरण जयपुर-सीकर का झगड़ा है, जिसमें सीकर के प्रजाजन अपने सीकर के राजा के साथ हैं और उनके लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने को तैयार हैं। कहने का मतलब यह है कि ब्रिटिश भारत के स्थान में राजनैतिक

आन्दोलन का केन्द्र देशी राज्य बन गये हैं और वहाँ के निवासी अपने स्वत्वों की प्राप्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार जान पड़ते हैं। अतएव यदि संघर्ष बचाना है तो देशी राज्यों के सूत्रधारों को चाहिए कि वे जल्दी से जल्दी अँगरेज़ी भारत जैसा ही उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अपने यहाँ भी प्रचलित करें। अन्यथा उनको भी अँगरेज़-सरकार की तरह भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

ब्राडकास्टिंग और संयुक्त-प्रान्त के साहित्यिक

रेडियो ब्राडकास्टिंग का यदि व्यापक उपयोग किया जाय तो उससे राष्ट्र-निर्माण के कार्य में भी विशेष सहायता मिल सकती है। प्रसन्नता की बात है कि भारत में भी ब्राडकास्टिंग की ओर सरकार का ध्यान गया है और उनके स्टेशन कतिपय प्रधान प्रधान नगरों में खोले गये हैं, साथ ही उनका तत्परता के साथ उपयोग भी किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में 'श्रीवेंकटेश्वर' ने अपने सम्पादकीय नोट में संयुक्त-प्रान्त के हिन्दीवालों को साव-धान करते हुए एक नोट लिखा है, जो इस तरह है—

> प्रसन्नता की बात है कि बुद्ध-जयन्ती पर हिन्दी के ...द्ध लेखक पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी का एक ...षण ब्राडकास्ट हुआ है। हिन्दी के सम्पादक महोदय जानना चाहिए कि ऐसी बात नहीं है। अभी अभी अन्य साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त करने की भी ...चित व्यवस्था हो गई है।

हम देख रहे हैं कि अन्य प्रान्तों के—विशेषतः ...बई, बंगाल और पंजाब के—साहित्यिक रेडियो ...डकास्टिंग से काफ़ी लाभ उठा रहे हैं और यहाँ आये ...न कोई न कोई साहित्यिक चर्चा, कहानी, कविता, नाटक और विशिष्ट आलोचनात्मक भाषण रेडियो पर ब्राडकास्ट ... जाते हैं, परन्तु युक्त-प्रान्त में १ अप्रैल से लखनऊ का ...डियो स्टेशन चालू हो जाने पर भी अभी वहाँ अधिकांश रूप में रंडी-भडुओं की उछल-कूद के सिवा कोई विशिष्ट भाषण, कहानी, नाटक, कविता या सर्वोपयोगी वैज्ञानिक विषय ब्राडकास्ट नहीं किया जाता। इसका कारण हमारी समझ में यह है कि युक्त-प्रान्त के प्रमुख साहित्यिक इस दिशा में उदासीन हैं और वहाँ की कांग्रेसी सरकार भी इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देती। यह समय तो ऐसा है, जब कांग्रेस सरकार के सहयोग से युक्त-प्रान्त के हिन्दी के प्रमुख साहित्यिक, लेखक, कवि, वक्ता कलाकार और वैज्ञानिक अपने-अपने विषय के सुन्दर भाषण रेडियो पर करें और इस प्रकार प्रान्त भर के श्रोताओं को अपनी कृतियों से लाभान्वित करें। हमने अभी तक लखनऊ-रेडियो-स्टेशन से ब्राडकास्ट किये जानेवाले जो भाषण सुने हैं उनमें से अधिकांश उर्दू या अँगरेज़ी के ही हुए हैं। क्या युक्त-प्रान्त के हिन्दी-प्रेमी नेता और साहित्यिक इस दिशा में अपने उपेक्षा-भाव को दूर न करेंगे?

हिन्दुस्तान में भूकम्प

'ज़िओलाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया' नाम का भू-विद्या-सम्बन्धी जाँच-पड़ताल का भारत-सरकार का अपना एक अलग महकमा है। पिछले दिनों इसे हिन्दुस्तान और ब्रह्मदेश के भिन्न-भिन्न भागों से जो रिपोर्टें मिली हैं उनसे ज्ञात होता है कि सन् १९३७ में ८२ बार भूकम्प हुआ। परन्तु इनमें एक बार को छोड़कर और सभी भूकम्प मामूली ही हुए। उक्त रिपोर्ट का विवरण 'प्रताप' ने इस प्रकार दिया है—

इनमें से केवल एक को छोड़कर बाक़ी सभी भूकम्प साधारण थे और उनमें जान या माल की हानि नहीं हुई। यह एक असाधारण भूकम्प १४ नवम्बर को आया था। इसका केन्द्रस्थल हिन्दूकुश पर्वत था और इसके धक्के उत्तर-पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भाग में मालूम पड़े थे।

भौगोलिक विभाजन की दृष्टि से भूकम्पों का ब्योरा इस भाँति रहा—

बर्मा में २८; उत्तर-पूर्वी भारत में जिसमें शिकम, नेपाल और तिब्बत भी सम्मिलित हैं ३१; उत्तर-पश्चिमी भारत में जिसमें काश्मीर, चितराल और बलूचिस्तान सम्मिलित हैं २१; और भारतीय प्रायद्वीप में २।

१४ नवम्बर १९३७ वाले भूकम्प का केन्द्रस्थान हिन्दूकुश पर्वत में द्रोश के उत्तर-पश्चिम चितराल में निर्धारित किया गया है। इसका निर्णय बम्बई, आगरा, कलकत्ता तथा कोदईकनाल की भूगर्भ-वेधशालाओं में लगे हुए भूकम्प-मापक यन्त्रों के लेखों को मिलाने और भूकम्प-निरीक्षकों की रिपोर्टों से तुलना करने के बाद किया गया है। इस भूकम्प के धक्के काबुल, देहरादून, शिमला, मुलतान, डेरा इस्माइल ख़ाँ तथा रुड़की जैसे सुदूर स्थित स्थानों पर आये थे।

ज़िओलाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया का कहना है कि सन् १९३५ के क्वेटा-भूकम्प के प्रतिक्रियात्मक धक्कों की पुनरावृत्ति में अब कमी हो गई है। फिर भी इस वर्ष इस प्रकार के कई धक्के आसाम प्रदेश में आये। इनमें से एक १६ जनवरी के ६-४५ बजे शाम को और दूसरा २१ मार्च को ९-४५ बजे रात को आया था।

——

भारतीयों की सैनिक योग्यता

ज्यों ज्यों हमारा स्वराज्य निकट आता जाता है, ज्यों त्यों हमारा ध्यान देश-रक्षा के दायित्व [cut off] जा रहा है। अँगरेज़ी शासन के शस्त्र-क़ान[cut off] स्वरूप देश की साधारण जनता अस्त्र-शस्त्र[cut off] करना ही भूल गई है और उधर सरकार [cut off] कुछ ही जातियों को फ़ौजी सेवा के उपयुक्त म[cut off] उन्हीं को फ़ौज में भर्ती करती रही है। इस[cut off] की जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ दिये [cut off] से प्रकट हो जायगा कि अँगरेज़ सरकार [cut off] लोगों को फ़ौज में भर्ती करने के योग्य समझ[cut off]

जाति	धर्म	निवासस्थान	
डोगरा	हिन्दू	रावी और सतलज के बीच की पहाड़ियाँ	
गढ़वाली	,,	दिल्ली के उत्तर गढ़वाल पर्वतों में	
जाट	,,	पंजाब और यू० पी०	२[cut off]
कुमायूँ	,,	दिल्ली के उत्तर-पूर्व की पहाड़ियाँ	
मराठा	,,	दक्षिणी भारत, पूना और बेलगाँव के चारों ओर	४[cut off]
राजपूत	,,	पूर्व और पश्चिम राजपूताना	३[cut off]
सिक्ख	सिक्ख	पंजाब अमृतसर के चारों ओर	३[cut off]
हज़ारा	मु० (शिया)	उ० प० सीमाप्रान्त के किनारे	१[cut off]
पंजाबी	मुस्लिम	सिन्ध नदी से सतलज तक	६[cut off]
हिन्दुस्तानी	,,	यू० पी० और दिल्ली	१[cut off]
राजपूत	,,	अलवर, भरतपुर और गुड़गाँव	

कुल—२,२[cut off]

परन्तु पिछले महायुद्ध के समय जब सरकार को अधिक सैनिकों की ज़रूरत हुई तब उसने अपने उस नियम को शिथिल कर देश के अन्य भागों के लोगों को भी सेना में भर्ती किया। उसने कहाँ कितने सैनि[cut off] इसका पता निम्न आँकड़ों से लग जायगा—

प्रान्त	लड़ाई पर गये	भरती हुए	योग	कुल जन-संख्[cut off]
आसाम	९००	१४,२००	१५,१००	७६[cut off]
बंगाल	७,१००	५१,६००	५९,०००	४,६७[cut off]
बिहार-उड़ीसा	८,६००	३३,०००	४१,६००	३,४[cut off]
बम्बई	४१,३००	३०,२००	७१,५००	१,९३[cut off]
मध्यप्रान्त	५,४००	९,६००	१५,०००	१,३९[cut off]
मद्रास	५१,२००	४१,१००	९२,३००	४,२३[cut off]
उ० प० सीमाप्रान्त	३२,२००	१३,०००	४५,२००	२३[cut off]
पंजाब	३,४९,७००	९७,२००	४,४७,०००	२,०७[cut off]
युक्तप्रान्त	१,६३,६००	१,१७,६००	२,८१,२००	४,५४[cut off]
बर्मा	१४,१००	४,६००	१८,७००	१,३२[cut off]
अजमेर-मेरवाड़ा	७,३००	१,६००	८,६००	५[cut off]
बिलोचिस्तान	१,८००	३००	२,१००	४[cut off]
गोरखा (नेपाल)	५४,७००	४,१००	५८,८००	३५[cut off]
देशी राज्य	८८,९००	२१,६००	१,१०,८००	७,००[cut off]
	८,२६,८००	४,४०,४००	१२,६७,२००	३१,६८[cut off]

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि कुछ ख़ास लोगों को ही सेना में भर्ती करने की बात उतनी वज़नदार नहीं, और सभी प्रान्तों के निवासी सेना में भर्ती किये जाने के योग्य हैं। खेद है, सरकार का ध्यान अपनी इस त्रुटि की ओर नहीं है। ऐसी दशा में बिहार और संयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकारें स्कूल-कालेजों में सैनिक शिक्षा का जो आयोजन कर रही हैं उनका वह कार्य वास्तव में अभिनन्दनीय है, क्योंकि हमें देश को आत्मरक्षा के लिए शुरू से तैयार करना होगा। तभी हम स्वराज्य की रक्षा कर सकेंगे। उपर्युक्त आँकड़े हमने लखनऊ के 'संघर्ष' से लिये हैं।

——

यहूदियों की दुर्दशा

सन् १९३३ में हर हिटलर का प्राधान्य जर्मनी पर स्थापित हुआ था। अपने समय में इन्होंने यहूदियों को 'विदेशी' घोषित करके घोर त्रास दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पिछले ५ वर्षों में यहूदी जर्मनी से हज़ारों की संख्या में भाग खड़े हुए हैं। जर्मनी में यहूदियों की संख्या ५,१०,००० थी, जो अब घटकर ३,५०,००० रह गई है। हेसी के प्रदेश में १८,००० यहूदी बसते थे। अब वहाँ १०,५०० रह गये हैं। वहाँ उनके २६० उपासना-मन्दिर थे, जिनमें ६० बन्द हो गये हैं। अब तक १,३०,००० यहूदी जर्मनी छोड़कर बाहर के देशों को चले गये हैं। नियम के अनुसार वे अपनी सम्पत्ति में से दशमांश ही ले जाने पाये हैं। और जो अभी वहाँ रह रहे हैं वे किस दयनीय स्थिति को प्राप्त हैं यह उनकी मृत्यु-संख्या से व्यक्त होता है। जन्म-संख्या की अपेक्षा उनकी मृत्यु-संख्या ५,००० अधिक है। यहूदी लोगों के लिए एक एक करके सभी धन्धे बन्द होते जा रहे हैं। हाल में एक यह नियम बनाया गया है कि यहूदी पुस्तक-विक्रेता केवल यहूदी किताबें ही बेच सकेंगे और सो भी यहूदियों के ही हाथ। इसी तरह वे किसी कारख़ाने में भर्ती होकर कोई रोज़ी-धन्धा भी नहीं सीख सकते हैं। और तो और, वे खेती का धन्धा भी नहीं सीख सकते। परन्तु सबसे अधिक विपत्ति तो यह है कि वे अब बाहर भी नहीं जा सकते, क्योंकि पेलेस्टाइन तथा अमरीका में भी एक प्रकार से उनका प्रवेश बन्द हो गया है। और इधर आस्ट्रिया भी जर्मनी के अधिकार में हो गया है, जहाँ यहूदी अभी तक आराम से रहते थे। अब वहाँ के यहूदियों पर भी आफ़त आई है। इस प्रकार संसार की इस अति प्राचीन जाति पर योरप के एक अति-सभ्य देश में जो अत्याचार हो रहे हैं वे अति निन्द्य और असाधु हैं।

——

हिन्दी की प्रगति

हिन्दी की वर्तमान प्रगति को देखकर कौन हिन्दी-प्रेमी संतोष की साँस न लेगा। उसका सामयिक साहित्य अप-टु-डेट हो गया है और स्थायी साहित्य का भाण्डार दिन प्रतिदिन बढ़ता ही नहीं जा रहा है, किन्तु उससे हिन्दी के गौरव की भी वृद्धि हो रही है। और यह प्रगति उन दस-पाँच इनी-गिनी संस्थाओं तथा सौ-डेढ़ सौ लेखकों के सतत अध्यवसाय और अनवरत परिश्रम का सुफल है जो गत ४०-५० वर्ष से हिन्दी के क्षेत्र में, बिना राजाश्रय तथा पूँजीपतियों की सहायता के, दत्तचित्त होकर लगे रहे हैं। ऐसी दशा में इन संस्थाओं तथा लेखकों का हिन्दी के प्रेमियों को कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि आज हिन्दी एक-मात्र उन्हीं के घोर परिश्रम के फल-स्वरूप उस स्थिति को पहुँच गई है कि वह देश की किसी भी उन्नत प्रान्तीय भाषा के समकक्ष बैठ सकती है। यही क्यों, वह वर्तमान स्वराज्य-युग की प्राप्त सुविधाओं का सदुपयोग करने को भी नवीन उत्साह और उमङ्ग के साथ तैयार हो रही है। और उसके इस इङ्गित से यही व्यक्त होता है कि वह अपने महान् भविष्य के निर्माण में और भी अधिक सफलता प्राप्त करेगी, क्योंकि उसको सबसे अधिक राज्य और धनिकों की अपेक्षा जनता का सहयोग प्राप्त है। ऐसी दशा में हमारे बीच के जो दो-चार लोग नन्ददास, सोमनाथ आदि के पोच साहित्य का रोना रो रहे हैं या अपनी कला और अपने राग की दुहाई देकर हिन्दी की इस गति में बाधा डालने का उपक्रम कर रहे हैं उनकी ये कुचेष्टायें कारगर नहीं होंगी और हिन्दी अपने प्रगति के पथ पर बराबर बढ़ती ही जायगी। यह कहना कि अमुक संस्था के अब अमुक काम नहीं करना चाहिए अथवा उसने अमुक काम करके अपना समय और धन दोनों बरबाद किये हैं और उसे तो अमुक काम ही करना चाहिए, सत्परामर्श की कोटि में उस दशा में लिया जा सकता

था यदि परामर्शदाता स्वयं किसी संस्था का कर्ता-धर्ता न होता। जब वे स्वयं एक संस्था के सर्वे-सर्वा बनाये गये हैं तब दूसरों की निन्दा करने के बजाय वे उसके द्वारा अपने मन के साहित्य का ख़ुशी से प्रचार कर सकते हैं। इसी तरह जो अपनी उलझी हुई कला की बात लाकर या अपने टेढ़े-मेढ़े गीत सुनाकर आगे आना चाहते हैं और इसके लिए हिन्दीवालों की सारी गतिविधि को अपने पैरों के नीचे रौंद डालना चाहते हैं उनकी भी बातें कोरी बातें ही हैं। जनता के हृदय की इन दोनों प्रकार के जीवों में किसी ने भी थाह नहीं ली है, भले ही वे अनहद और अन्तरिक्ष की पड़ताल कर आये हों और आत्म-प्रचार में लासानी हों। ऐसी दशा में इनकी ये हुँकारें अरण्य के चीत्कार के ही समान ही हैं। चाहे जो हो, हमें हिन्दी की वर्तमान गति से पूर्ण संतोष है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि उसकी चतुर्मुखी उन्नति हो रही है।

भारत का दोहन

भारत में, कहा जाता है, प्रान्तों को स्वराज्य मिल गया है। परन्तु उसका दोहन अभी बन्द नहीं हुआ है। उसका कैसा और कितना दोहन हो रहा है, यह सब 'आज' ने संक्षेप में बड़े अच्छे ढङ्ग से बताया है। वह लिखता है—

२ अरब ३० करोड़ रुपये सालाना वह रक़म है जो ब्रिटेन को प्रतिवर्ष भारत से मिलती है, इस सत्य का पता हाल ही में चला है। सन् १८८३ में लार्ड मेकाले ने कहा था कि फ्रांस को छोड़कर भारत दुनिया में सबसे धनी देश है। लेकिन सन् १९३३ में यह पता चला कि ब्रिटेन की जो पूँजी उसके सारे साम्राज्य और शेष दुनिया में लगी हुई है उसका एक चौथाई भारत में है, अर्थात् क़रीब १३ अरब रुपये की पूँजी इस देश में लगी हुई है, जिससे कम-से कम ६५ करोड़ सालाना का मुनाफ़ा होता है। साल में क़रीब ६५ करोड़ रुपया हमें अदृश्य आयात के कारण ब्रिटेन के हवाले कर देना पड़ता है। २१ करोड़ रुपया सालाना विलायती बैङ्क कमीशन से वसूल करते हैं। इसके अतिरिक्त ३५ करोड़ रुपया सालाना विलायती जहाज़ी कम्पनियाँ ले जाती हैं। उद्योग-व्यवसाय में गोरे नौकरों की तनख़्वाह सालाना क़रीब ४० करोड़ होती है। यह सब मि[illegible]कर १ अरब ६१ करोड़ हुआ। इसके अतिरिक्त [illegible] होम चार्जेज़ के रूप में ब्रिटेन पहुँच जाता है। [illegible] सन् १८८३ से अब तक सालाना २ अरब [illegible] रुपया उस देश से जाता रहा है जिसकी कुल आमदनी [illegible] अरब है और जिसमें १ लाख से अधिक आम[illegible] वाले तीन सौ तथा दो हज़ार से अधिक आमदनी [illegible] २९,३०,००० व्यक्ति हैं।

श्रीमती भगवती देवी का स्वर्गवास

बड़े दुःख की बात है कि काशी के प्रसिद्ध हिन्दी [illegible] तथा कांग्रेसी नेता बाबू शिवप्रसाद गुप्त की धर्म[illegible] श्रीमती भगवती देवी का स्वर्गवास हो गया और [illegible] एक विचित्र ढंग से। इस सम्बन्ध के मार्मिक विवरण [illegible] कुछ अंश हमने अन्यत्र छापा है। उससे प्रकट होगा [illegible] श्रीमती जी किस युग की नारी थीं। उनके स्वर्ग[illegible] से श्रीमान् गुप्त जी को जो स्वयं दीर्घ काल से [illegible] हैं, कितना दुःख हुआ होगा, यह कहना कठिन है। [illegible] उनकी आत्मा की सद्गति चाहते हैं और श्रीमा[illegible] साहब के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते [illegible]

एक स्पष्टीकरण

वर्धा से हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत [illegible] 'मिलिंद' लिखते हैं—

फ़रवरी की 'सरस्वती' के १८८वें [illegible] 'मिलिंद' का ज़िक्र आया है वे कोई अन्य [illegible] मैं न तो गोरखपुर गया था और न उस [illegible] हूँ। सन् २२ में जब मैंने 'मिलिंद' उपनाम [illegible] प्रायः सब प्राप्य काव्यग्रंथों तथा श्रेष्ठ पत्रिकाओं [illegible] लिया था। इधर सन् ३६ तक भी देखता रहा [illegible] तब तक कहीं किसी अन्य 'मिलिंद' का नाम नहीं [illegible] और मैं शुरू से इसी उपनाम से बराबर अपनी [illegible] छपाता आ रहा हूँ। आशा है, पाठक मुझे किसी अन्य नवीन 'मिलिंद' महोदयों की कृतियों के लिए [illegible] न समझेंगे।